110468

76180

Regd, No. L. 1240.

वर्ष ७] वैशाख १९८३—मई १९२६ [खण्ड ७, संख्या १

ज्योति

110468

110468

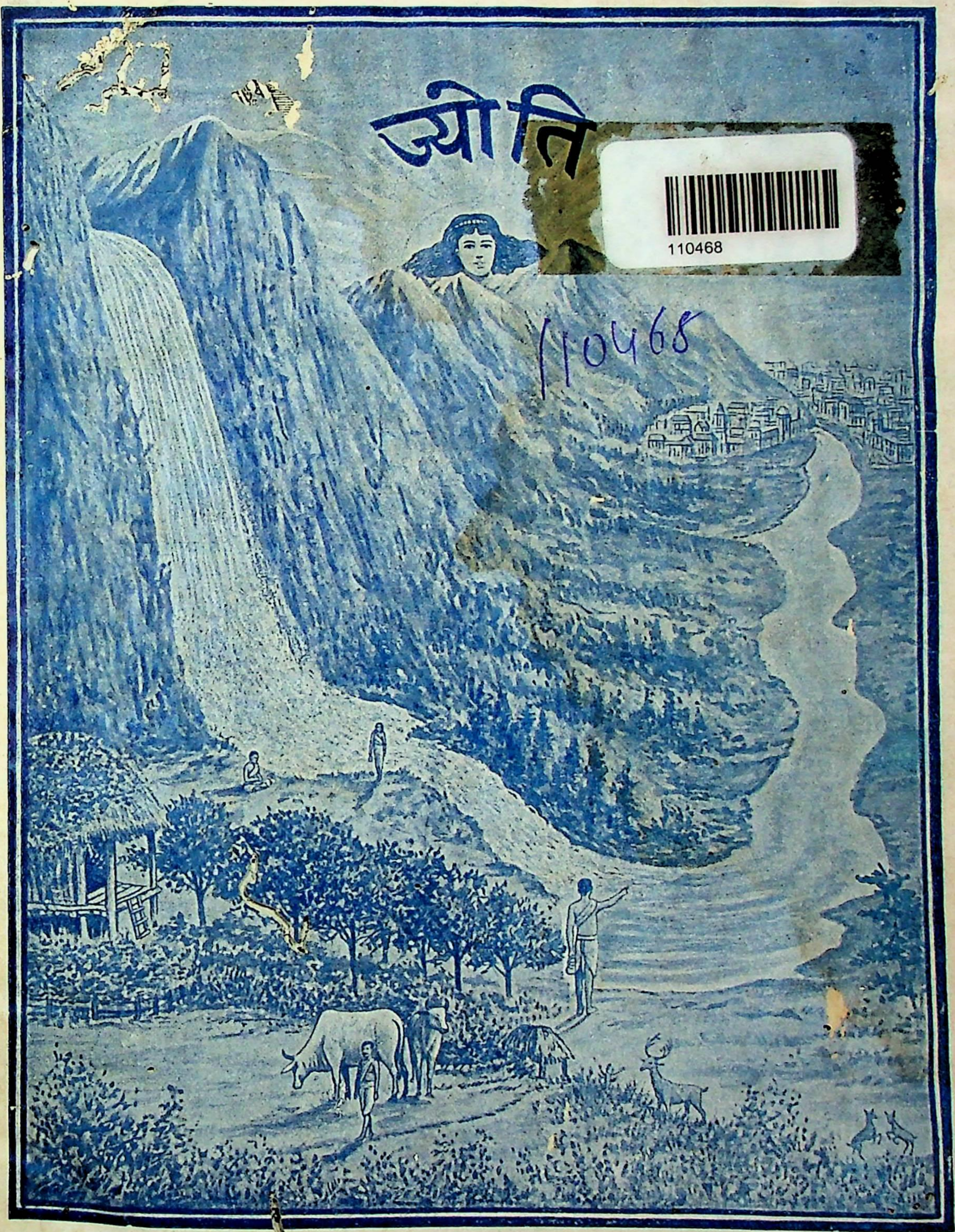

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी० ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ३)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची ।

विषय — पृष्ठ

१—नव वर्ष स्वागत (कविता)—ले० "एक मंगला भिलाषी" — १

२—महा पुरुषों की मातायें—ले० "आर्य्य महिला" — २

३—विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय—ले० श्रीयुत इन्द्र विद्यालंकार — ५

४—साहित्य और संगीत—ले० श्रीमती अम्बा देवी वैदिकधर्म विशारद विदुषी विशारद सरस्वती — १०

५—पद (कविता)—ले० वीर हरि — १२

६—गुरुमुखी लिपि—ले० श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज — १३

७—देश की वर्तमान स्थिति और आर्य्यसमाज—ले० श्री० प्रो० रामदेव जी आचार्य्य गुरुकुल कांगड़ी — १४

८—मन्दिर के द्वार पर अछूत (कविता)—ले० श्री० जगदीशचन्द्र शास्त्री — १६

९—स्वतन्त्रता की प्राप्ति का साधन—ले० श्रीयुत हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार — २०

१०—जीवन तथा इसका उद्देश्य (३)—ले० श्री० डाक्टर राधाकृष्ण जी M. B. B. Sc. प्रिंसिपल मेडिकल कालेज गुरुकुल कांगड़ी — २४

११—कुलियों की माता—ले० श्री० देवशर्मा जी विद्यालंकार — २७

१२—निदाघ (कविता)—ले० वीरहरि — ३०

१३—हमारी मंजूषा — ३१

१४—वैज्ञानिक संसार — ३४

१५—कुसुमोद्यान — ४०

१६—वनिता विनोद—१ स्त्री जगत—२ क्या कभी तुम जागोगे?—३ भारत में मज़दूर स्त्रियों की दशा—४ अपनी बहिनों को संदेश — ४३

१७—कन्या गुरुकुल समाचार — ४९

१८—विचार प्रवाह — ५२

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ ता० को ग्राहकों को मिला करेगी ।

(२) भारत के लिये डा० व्यय सहित इसका वा० मूल्य—
१ वर्ष के लिये ४॥) है ।
६ मास के लिये २॥) है ।
विदेश के लिये इसका डा० व्यय सहित वार्षिक मूल्य ६) है ।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है ।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है ।
पुरानी प्रतियां सब नहीं मिलतीं जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता । नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है ।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है । बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियां दी जाती हैं ।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये । जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे । पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये ।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें । वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें दोनों को कष्ट पहुंचता है । पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है । आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे ।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये ।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये । यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये । परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी ।

मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र

मैनेजर,

'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली

के पते पर आने चाहियें ।

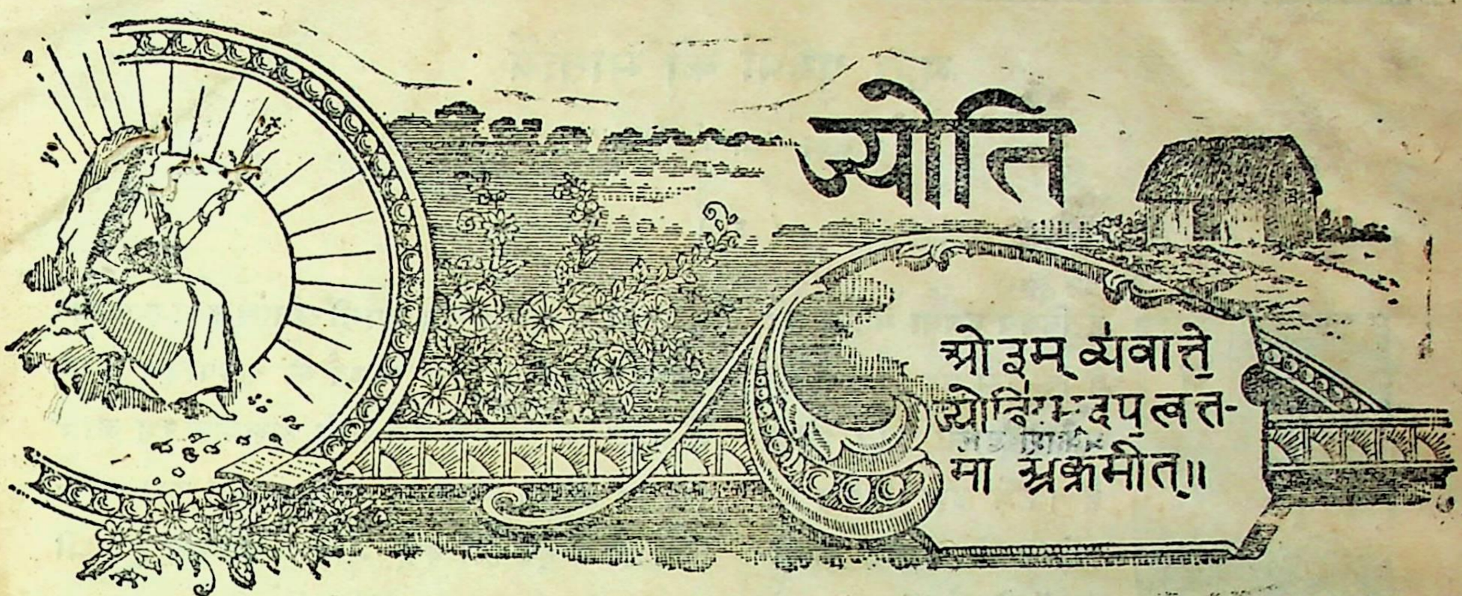

वर्ष ७ | वैशाख, १९८३—मई, १९२६ | संख्या १

* नव वर्ष स्वागत *

स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

जन्म दिवस की शुभ्र कामना, पूर्ण होय वह विविध भावना।
सदा बढ़े मन का उत्कर्ष, स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

अबला जन को बला बनाकर, शान्ति सुधा का पान कराकर।
भाव भरे हिय में हो हर्ष, स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

मन्मथ व्यथित मनुज मण्डल का, घोर विरोध दुष्ट मण्डल का।
तू करता है सदा सहर्ष, स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

दूर होय विघ्न बाधा सब, कभी न हो वह वस्तु मिले कब?
तेरा जुग जुग होय प्रकर्ष, स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

तारागण सम पत्र जगत् में, ज्योति जगमगे सब के मत में।
हो सब को तेरा आदर्श, स्वागत हो प्यारे नव वर्ष।

एक मंगलाभिलाषी

महा पुरुषों की मातायें

लेखिका—"आर्य्य महिला"

(१)

यह विषय इतना महत्व का है कि इस पर जितना भी प्रकाश डाला जाय थोड़ा है। हमें इस विषय को ज्योति के पाठक पाठिकाओं के सन्मुख रखने की बड़ी देर से इच्छा थी किन्तु आज यह इच्छा पूर्ण हुई है। यद्यपि ातृत्व शक्ति के गुण आज कल प्रायः सभी की छा से निकल रहे हैं तथापि यह विषय इतना हन तथा आवश्यक है कि इस रत्न के मूल्य को परखने वाले लायक से लायक देशी विदेशी सभी जौहरी चाहे सहस्र् बाहु की भुजाओं से लेखनी पकड़ कर महिम्न स्तोत्र लिखेंगे फिर भी यह पुराना और फीका नहीं हो सकता।

अपने बच्चेके आचार व्यवहार में महानता के अंकुरों को पुष्ट तथा परिवर्धित करने में माता का जितना हाथ होता है उसका वर्णन करना किसी भी लेखक के लिये बड़ा उदात्त और उत्साह वर्धक कार्य्य है। इसी के द्वारा मानवीय हृदय की अत्यन्त मार्मिक सहानुभूतियां जागृत होकर प्रगट होती हैं। परन्तु मेरा आशय आज केवल यह दिखने का है कि कुछ महा पुरुषों की जीवनियों का संग्रह करके यह बतलाऊं कि हमारे जीवन के दाता परमात्मा ने प्रत्येक माता के हाथ में यह शक्ति दी है कि उसके हृदय में जिस प्रकार के भाव वर्त्तमान रहेंगे उसी प्रकार के भावों से पूरित वह अपनी संतान बना सकेगी। यह सम्भव है कि इस कार्य्य के सम्पादन करने में बहुत सी मातायें इस लिये असफल रह जावें कि वह उचित साधनों से अज्ञानता वश परिचित ही न हुई हों, कई मातायें जानती हुई भी अपनी स्थिति तथा परिस्थिति के कारण कृतकार्य्य न हो सकें, लेकिन जो भी देवियां अपने ऊपर मातृत्व का उत्तर दायित्व लेती हैं उनके सन्मुख यह अत्यन्त आवश्यक प्रश्न है कि स्वयं उनकी ओर से ऐसी कुछ शिथिलता या उदासीनता न होने पावे जिस के कारण अधिकांश मातायें अपने बच्चों के हृदय पटल पर महानता के सिद्धान्त खचित करने में असमर्थ रह जाती हैं।

मेरा मुख्य आशय आज इस विषय को चुनने का यही है कि भारतीय महिलाओं को यह दिखलाऊं कि माता की ओर से यदि यह दृढ़भाव रहे तो वास्तव में वह क्या रूप धारण करता है? इस बात के समझाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि नयी घटनाओं का उल्लेख किया जाय। साधारणतया जो घटनायें जनता को विदित हैं उन से ही यह आशय पूरा हो जायगा।

यह भी आवश्यक नहीं कि सभी प्रसिद्ध पुरुष श्रेष्ठ पुरुष भी हुये हों; या वह मातायें जिन के ख़ास गुणों के द्वारा उनके सन्तानों में वह ख़ास गुण आये हुये हों सर्वांश में अनुकरणीय मातायें होंगी। दुर्भाग्य-वश ऐसे भी उदाहरण

हैं जिन से यह पता लग सक्ता है कि माता ने यह प्रभाव डाला ही नहीं है या शक्ति का दुरुपयोग किया है, जोकि अत्यन्त शोचनीय है। अपने सन्तान के चरित्र को निर्माण करने का माता का जो अविच्छेद्य अधिकार ईश्वर प्रदत्त है उस का उदाहरण देने के लिये जो भी घटनायें वर्णित हों उन के आधार भूत यही चार एक बातें होंगी:—

१-माता के हृदय में जिस तरह का दृढ़भाव हो।
२-माता के जीवन का आदर्श।
३-माता के अन्तः करण के भाव जिस स्वर में निकलें।
४-अथवा माता के अन्तस्थ भाव प्रकट करने का जो साधन प्रकृति ने उसे दिया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उत्सुकता पूर्ण हृदय को यह बातें कितनी रोचक प्रतीत होंगी या यह बातें उन लोगों के भावों से बिल्कुल मिलती हैं जिन्होंने हम से पूर्व इनका मनन करके यह बतलाया है कि मानव समाज के सुख तथा कुशलता के लिये यह कितनी आवश्यक हैं। परन्तु इनके स्पष्टी करण में एक बड़ी भारी आपत्ति-जिसका सामना करना पड़ता है-यह है कि साधारणतया जब मनुष्य का चरित्र अभी पूर्णरूप से प्रसिद्धि को प्राप्त भी नहीं हुआ होता है तभी से माता का प्रभाव प्रकट रूप से पड़ता लोगों को दीख नहीं पड़ता, क्योंकि न तो प्रारम्भिक जीवन की उस सम्बन्ध की बातें लिखित होती हैं, और न ही सब लोगों को है वह ढंग ज्ञात होता है जिस ढंग से माता ने उस प्रभाव को डाला। चरित्र की महत्ता एक दम तो हो ही नहीं जाती। इस के पकने में समय लगता है। यह परिस्थितियों द्वारा परिपुष्ट होती है। कितने ऐसे उदाहरण होंगे जहां माता ने स्वयं भी तथा जनता ने किसी महापुरुष के बचपन में तथा युवावस्था में भी उसकी महत्ता के चिन्ह पहिले से अनुमान किये हों ? इस लिये इन बातों का तो कोई चिट्ठा भी नहीं रखा जाता कि माता ने क्या कहा या क्या किया—शायद किसी २ की दशा में मुश्किल से यह पता लगे कि किस ढंग से मातृत्व शक्ति ने कार्य्य किया। यह शक्ति वही हो सक्ती है जिसने बच्चे को सदाचार के वातावरण से ढककर उसी में श्वास प्रश्वास लेने पर बाधित कर बच्चे के आचारों को पुष्ट और परिवर्द्धित किया हो। और बच्चे को कभी स्वप्न में भी यह ज्ञान न हो कि उसकी महत्ता का रहस्य या श्रोत कहां छिपा हुआ है।

निस्सन्देह इस विषय को स्पष्ट करने में विघ्न डालने वाले इतने कारण हैं कि हम अपने परिणाम पर पहुंचने के लिये जितना ज्ञान चाहते हैं नहीं मिलता। एक बात जो कम महत्व की नहीं है यह है कि बहुत सी सर्वोत्तम देवियां जो कि संसार में कभी हुई हैं और बहुत सी मातायें जो आदर्श थीं वह इस संसार रंग मंच पर नाटक खेल कर चली गईं और इतिहास में उन का उल्लेख भी नहीं हुआ।

जो देवियां बड़े सूक्ष्म स्त्रीत्व गुणों से भूषित होती हैं उनका स्वभाव एकान्त प्रिय और लोगों की दृष्टि से दूर रहने का होता है। और जिन देवियों ने दूसरों पर बड़ा लाभ दायक और गम्भीर प्रभाव डाला हुआ होता है उन देवियों की ओर से यह बड़ी सावधानी होती है कि

वह प्रभाव जन साधारण की आंखों तले न आवे । इस लिये भी वह बातें लेखबद्ध नहीं होतीं और बहुत से उदाहरणों में हम नहीं जान पाते कि माता का प्रभाव कितना शिक्षाप्रद, प्रयत्न कितना उतेजनापूर्ण, प्रार्थना कितनी हृदयंगम तथा माता की जीवनी ने उस महत्ता के बीज को पुष्ट करने में कितनी सहायता दी जिसे बोया ही उसी ने था ।

किन्तु दुर्भाग्य से यह बात नहीं है कि श्रेष्ठ माता का प्रभाव बुरी माता की अपेक्षा अधिकतर पड़ता हो, क्योंकि यह भी तो सम्भव है कि जिस माता में संयम, ब्रह्मचर्य्य तथा आचार का भाव अत्यन्त न्यून भी हो उस में भी अपने प्रभाव को डालने का दृढ़ भाव हो सकता है तथा नैसर्गिक मातृत्व भाव सर्व शक्ति सम्पन्न हो सकता है । यह दशा उन माताओं की होती है जिन्हें ऊंचे आदर्शों का तथा सीधे मार्ग का ज्ञान तो होता नहीं है किन्तु बच्चे के प्रति माता का अंधा प्रेम या मोह बहुत होता है । ऐसी मातायें भी हमारी बात की सच्चाई की पुष्टि तो करती ही हैं यद्यपि उन के प्रभाव का वर्णन करना एक दृढ़ आर्य और वैदिक धर्मी परमात्मरत मंदालसा जैसी माता के प्रभाव के वर्णन करने की अपेक्षा नीरस तथा कष्टप्रद ही है ।

लेकिन मानवीय अनुभवों का ज्ञान हमें किस तहक़ीक़ात से पता लगे ? क्योंकि जैसे एक नदी किसी बड़े ऊँचे पहाड़ की चोटी से निकल कर समुद्र को जाती है तो यह पता लगाना मुश्किल है कि उसे उधर जाने का मार्ग किस ने बताया ? इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन को जानो कि उनके प्रारम्भिक जीवन में उन की प्रवृत्तियों के रुख को किसने, क़ब, कैसे २ बदला, यह पता लगाना मुश्किल है ।

निस्सन्देह महापुरुषों की जीवनी में जब कोई घटना हर्ष या शोक की अथवा शुभ या अशुभ परिणाम की उपस्थित होती है तो प्रायः करके चपला की झलक की भांति माता के प्रभाव की द्योतक घटनायें अकस्मात् उनके मुख से निकल जाती हैं । प्रायः सभी जानते हैं कि बुख़ार से खाट पर पड़ा हुआ बीमार अपनी माता को याद करता है । रणक्षेत्र में घायल पड़ा हुआ योद्धा अपनी बालपन की अवस्था की याद कर चाहता है कि माता का सस्नेह कोमल हाथ पुनः उस के घावों को मरहम लगाकर पीड़ा हरे !! धर्म के मार्ग से पतित जन जब वह गिरावट की ओर अभी झुकने ही लगता है तो उस के मन में यह भावनायें अवश्य आती हैं उस की माता उसे उंगलियों से धर्मपथ की ओर आने का इशारा कर रही है । जो लोग बुरे मार्ग का अनुसरण करके मौजें उड़ाने के बजाय अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुनते हुये सूखी रोटी खाकर ठंडा पानी पीने में ही खुश रहते हैं वह शायद यही समझते होंगे कि उनकी माता की आत्मा पानी का प्याला पकड़े हुये है और उसका प्रेम सूखी रोटी को तर बना रहा है । जिस मनुष्य के परोपकार के कार्य्य पूर्ण होते हैं और वह अपने सहयोगियों के प्रति शुभ सम्वाद लेकर आता है तो उस की अन्तरात्मा में अवश्य यह भाव उत्पन्न होता होगा कि "यदि मेरी माता सुनती तो कितनी खुश होती ।" परन्तु इस प्रकार से चाहे कैसी प्रेम और पवित्रता की स्मृतियां माता की मूर्ति, उसकी

आवाज़, उस की दृष्टि, उस के शब्द, और उस के हृदय को-सामने लावें तथापि बहुत करके सर्वोत्तम माता ने भी क्या २ कहा या किया इसकी झलक भी पाना मुश्किल है।

इसलिये जीवन की घटनाओं से जो शिक्षा हमें मिलती है उसी को हमें स्वीकार करना पड़ता है-चाहे शुभ या अशुभ साधनों द्वारा उपलब्ध हो। केवल एक बात ध्यान रखने योग्य है कि यदि वह शक्ति जिसे प्रकृति ने माता के हाथ में रखा है इतनी प्रभावशाली है कि वह मानवी चरित्र के दुर्गुणों को ही प्रगट करती रही है तो वही शक्ति सर्वोत्तम गुणों के प्रगट करने में दशगुणा अधिक प्रभावशालिनी होगी। यह हमारे लिये विचार करना असम्भव है कि सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ने यह मातृ-शक्ति रूप साधन पवित्रतम आदर्श और उन्नति के प्रचार के हेतु न बनाये हों। जो लोग इस पर शक करते हैं वह परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता और सत चित् आनन्द स्वरूप को नहीं पहिचानते। किन्तु जिन का इस पर पूरा विश्वास है उनको चाहिये कि अपनी सामाजिक और धार्मिक उन्नति के हेतु मातृत्व शक्ति की महत्ता को अनुभव करें और स्त्रियों की शिक्षा, दीक्षा, उन्नति और विशाल हृदयता को सर्वत्र प्रचारित करने में तन मन धन अर्पण करें। तभी संसार का कल्याण होगा तभी सर्वत्र शान्ति फैलेगी। अन्यथा राक्षसी सन्तान जो कि माताओं के कुविचारों की प्रति मूर्ति बनकर सर्वत्र विचरती दीख पड़ती है संसार को रौरव नर्क बनाकर मानव जीवन को दुखों की भट्टी में ही तपाती रहेगी।

इतनी भूमिका के बाद अगले अंक से हम अपने इस विचार की पुष्टि में एक २ करके भारतीय तथा विदेशीय, प्राचीन महा पुरुषों की जीवनियों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे और मातृत्व शक्ति की महत्ता के ज्वलन्त प्रमाण पेश करेंगे। आशा है कि पाठिकायें ध्यान से इसे पढ़ेंगी।

(क्रमशः)

विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय।

लेखक-श्रीयुत इन्द्र विद्यालंकार

वकल प्रभृति योरोपियन विद्वानों का एक विचित्र सिद्धान्त है कि एक विशेष जलवायु में-एक विशेष प्राकृतिक स्थिति में ही 'उन्नति' हो सकती है। उनका दृढ़ मन्तव्य है कि शीतप्रधान देशों में ही सामाजिक, राजनीतिक, एवं मानसिक शक्तियों का विकास हो सकता है, अन्यत्र नहीं। वे विद्वान् अन्त में इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि श्वेत जातियाँ पैदा ही प्रभुत्व स्थापन के लिये हुई हैं, और काली जातियाँ गुलामी के लिये। अरस्तू दास प्रथा को स्वाभाविक एवं आवश्यक मानता था, उसका कथन था कि कुछ लोग जन्म से ही गुलाम पैदा होते हैं-उन्हें गुलामी से स्वतन्त्र करना, परमात्मा के नैसर्गिक नियमों का भङ्ग करना है। उक्त विद्वान् भारत प्रभृति देशों को

भी दासता के लिये उत्पन्न हुआ मानते हैं, उनके लिये यह कल्पना से बाहर है कि कभी भारतीय भी सांसारिक, विशेषतः राजनीतिक उन्नति कर सकते हैं।

उपर्युक्त 'परिस्थिति सिद्धान्त' (Climotology theory) के अनुसार यह स्वयमापतित परिणाम है कि उष्णता प्रधान देशों वाले लाग मानसिक उन्नति करने में भी असमर्थ होते हैं। वे विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि विद्याओं के क्षेत्र में अन्य लोगों से पिछड़े होतेहैं। प्राकृतिक उष्णता के कारण उनके शरीर कमज़ोर होते हैं। शक्तियाँ क्षीण होती हैं। मानसिक विकास निर्बल तथा अपूर्ण होता है।

हमें प्रस्तुत लेख में केवल मानसिक शक्तियों के सम्बन्ध में किये गए आक्षेपों का ही उत्तर देना है। प्रलोभन होते हुए भी हम विस्ताररूप से अन्य आक्षेपों का विचार नहीं कर सकते।

"क्या भारतीय सचमुच ऐसे अवनत थे या हैं, कि वे कभी भी मानसिक विकास को प्राप्त न कर सके थे, या नहीं कर सकते हैं? क्या प्रकृति की व्यवस्था अटल है? भारतीय क्या सदा मानसिक दासता में बन्धे रहने के लिये ही उत्पन्न हुए हैं? हमारे देश में इस समय क्या कोई भी ऐसे बड़े दिमाग नहीं, जो संसार को एक बार तो चकाचौंध कर सकें?" हम इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए फिर अपने आपको सीमित कर लेते हैं और नियत विज्ञान (Exact sciences) के क्षेत्र में ही भारतीयों की उन्नति पर विचार प्रस्तुत करेंगे।

हमारा देश विद्वानों की जन्म भूमि रहा है और अबतक है। लीलावती का हमें अबतक अभिमान है कि ऐसी विदुषी महिला हमारे भारतवर्ष में ही उत्पन्न हुई। योरोप के लीलावती समकालीन इतिहास में ऐसा कोई भी व्यक्ति, पुरुष या स्त्री नहीं मिलती जिसने गणित सदृश्य कठिन तथा 'नियत-विज्ञान' में ऐसी उन्नति प्राप्त की हो। हमें गौरव है—उचित गौरव है—कि जब समग्र संसार अविद्या के निविड़ अन्धकार में सो रहा था, उस समय हमारा देश विज्ञान के अरुण भास्कर से देदीप्यमान हो रहा था। आध्यात्मिक विज्ञान के अतिरिक्त अन्य व्यावहारिक विज्ञान भी हमारे देश में उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुंच चुके थे। यद्यपि इस कथन में अत्युक्ति होगी, तथापि यह सर्व सम्मत है कि प्राचीन भारत में 'नियत विज्ञान' सम्बन्धी ऐसे २ सिद्धान्त आविष्कृत हो चुके थे, जो कि १९ वीं तथा २० वीं शताब्दि के बड़े २ विद्वानों को बहुत परिश्रम तथा गवेषणाओं के बाद उपलब्ध हो सके हैं। ज्योतिर्विद्याविषयक उन्नति अब भी भारतीय प्राचीन साहित्य के गौरव को बढ़ा रही है। कई योरोपियन वैज्ञानिकों को स्वीकार करना पड़ा है कि भारतीय इस 'नियत विज्ञान' के क्षेत्र में भी आश्चर्यकर उन्नति कर चुके थे।

अस्तु! हम अब वर्त्तमान भारतीयों के दृष्टान्त देना प्रारम्भ करते हैं, जिन से स्पष्ट होगा कि इस असहाय निर्धन पराधीन अवस्था में भी भारतीय भूमि ऊसर नहीं होगई है। अब भी वह वसुन्धरा है, उज्ज्वल रत्नों की जननी है, अब भी प्रकृति की रमणीय अद्भुत स्थली है। हमारे देश में अब भी ऐसे २ विद्वान् पैदा होते हैं जिनके दिमाग की धाक को सारा सभ्य

संसार स्वीकार करता है। एक नहीं अनेक वैज्ञानिक, भारतवर्ष में अब भी विद्यमान हैं। उनके 'नियत विज्ञान' के क्षेत्र में किये गये आविष्कार संसार के मानसिक जगत् में क्रान्ति मचाने वाले सिद्ध हुए हैं:—

(१) रसायन शास्त्र के क्षेत्र में सर पी० सी रेय, शरत् चन्द्र चैटर्जी, एवं आनन्दकिशोर दास के नाम उद्धरणीय हैं। लण्डन के 'Proceedings of the chemical society of London' तथा 'Journal of the American Chemical Society' में उक्त महानुभावों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं। ये लेख वर्त्तमान विज्ञान-जगत् की उन्नति में सहायक होते हैं या नहीं, इसमें सन्देह करना व्यर्थ है।

रसिकलाल दत्त विष-सम्बन्धी आविष्कारों में तत्पर हैं। उनके इन आविष्कारों की ओर अमेरिकन सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उनके साथ ज्ञानेन्द्र नाथ, नागेन्द्र प्रसाद प्रभृति अन्य भारतीय भी इसी गवेषणा कार्य्य में शामिल हैं। युद्ध के दिनों में बी० आर कोकटनुर-एक भारतीय वैज्ञानिक बहुत प्रसिद्ध होगये थे। उन्होंने 'निआग्रा अलकली वर्क्स' (Niagra Alkali works) में काम करते हुए एक ऐसी विषैली गैस का आविष्कार किया जो तत्कालीन सब अन्य गैसों से अधिक चिरस्थायी प्रभाव डालने वाली थी। इस आविष्कार से कई देशों ने युद्ध के दिनों में लाभ उठाया। इसी प्रकार उक्त महानुभाव ने एक ऐसा वार्निश निकाला जो कि वायुयानों के पङ्खों में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। इस गुणकारी वार्निश का आविष्कार किसी अन्य योरोपियन या अमेरिकन वैज्ञानिक ने न किया था।

अवनीश चन्द्र भट्टाचार्य्य के महुआ फूल से अल्कोहल का तैयार करना, धीरेन्द्र कुमार सरकार का कई प्रकार के तेलों को बनाना, वागेश्वर दास का कई धात्वीय परीक्षण करना, एवं अखिल चन्द्र चक्रवर्त्ती का अमेरिका में नवीन (Automatic vaccuum soldering Machine) बेंत के व्यवसाय के लिये मशीन निर्माण करना भारतीयों के मौलिक विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति का दिग्दर्शन कराता है। क्या ऐसे ऐसे अध्यवसायी भारतीय वैज्ञानिकों के होते हुए भारतीयों पर नैसर्गिक मानसिक निर्बलता का दोष लगाना उचित तथा तर्क पूर्ण है?

(२) भौतिक विज्ञान (Physics) की उन्नति के वर्त्तमान इतिहास पर दृष्टिपात् किया जाय तो स्पष्ट विदित होगा कि भारतीयों ने भी उसमें पर्याप्त भाग लिया है। जहाँ बड़े बड़े योरोपियन विद्वानों ने भौतिक विज्ञान सम्बन्धी आविष्कार किये हैं, वहां भारतीय वैज्ञानिकों ने भी अपनी सफल गवेषणाओं द्वारा उन आविष्कारों को सहायता पहुंचाई है। जगदीश चन्द्र वसु का नाम संसार प्रसिद्ध है। बोस आज विज्ञान क्षेत्र का विजयी सिकन्दर है। योरोपियन विद्वानों के उसके मार्ग में कितने ही अड़चन डालने पर भी वह वीर सफल हुआ और आज सारे सभ्य संसार को उसके अधिकारों की सत्यता को मानना पड़ा है।

जगदीश चन्द्र वोस की Annals of the Bose Institute पत्रिका ने योरोप के वैज्ञानिक क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दी है। जगदीशचन्द्र को कितनी बार स्वीडन, जर्मनी, फ्राँस

आदि देशों के बड़े २ विश्वविद्यालयों से आमन्त्रित किया गया है। इस विज्ञानवेत्ता भारतीय को कितनी सफलता प्राप्त हुई, इसका कितना सन्मान तथा प्रतिष्ठा हुई, यह सब भारतवर्षके इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखा जायगा। बर्लिन के हैवरलेण्ड, पेरिस के डेस्लेण्डर, स्टौकहम तथा आरहीतस प्रभृति विद्वानों ने डाक्टर बोस के वैज्ञानिक आविष्कारों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उसे कितनी विज्ञान परिषदों में (Acadamic des sciences) अभिनन्दन पत्रों से सन्मानित किया गया। सर रिवर्डग्रेगरी जो नेचर (Nature) नामक पत्रिका के सम्पादक हैं-ने डा० बोस के आविष्कारों की भौतिकज्ञान के आकर्षण सिद्धान्त (Law of Gravitation) से तुलना की है। ल्यू मम्फोर्ड ने 'Asiatic Review' में बोस के कार्य्यों के विषय में लिखा है कि—

Dr Bose's work is an exceedingly capable illumination of a field of scientific thought which has undergone a revolution comparable only to that which has taken place in Mathematics and astronomy through the researches of Einstein!

अर्थात् डा० बोस के आविष्कारों ने वैज्ञानिक क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति पैदा की है जिसकी तुलना गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्रों में ईन्स्टन कृत क्रान्ति से की जा सकती है।

१८२० दिसम्बर में मोन्स मेनगिन ने डा० बोस का 'Museum d' Historie naturelle' नामक परिषद् में परिचय कराते हुए भारतवर्ष के गौरव के विषय में जो शब्द कहे थे, वे किसी भारतीय के हृदय को प्रफुल्लित कर सकते हैं। उन का कथन था कि:—

The waters of the Ganges have not yet ceased to be life-giving. Its currents are still needed for the inspiration and uplift of mankind!

ऐसी साक्षियों के होते हुए भारतवर्ष को वैज्ञानिकता के लिये ऊसर भूमि कहना सर्वथा उचित नहीं। पराधीनता में भी हमारा देश बोस सदृश वैज्ञानिकों का अभिमान कर सकता है। इस प्रकरण में मेघनाद साह का नाम उद्धारणीय है। इस भारतीय ने (Astrophysics) के क्षेत्र में संसार प्रसिद्धि प्राप्त की है। साह ने बर्लिन विश्वविद्यालय में कई चमत्कार पूर्ण आविष्कार किये हैं, जिन की प्रशंसा प्रो० नेरस्ट ने (Physikalische Chemie) नामक पत्र में बड़ी उदारता से की है। इन आविष्कारों के परिणाम जर्मन के भिन्न २ पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं। साह ने न केवल जर्मनी में ख्याति प्राप्त की है, परन्तु Philosophical magazine of London' और 'Physical Review' तथा Astro-physical Journal in America' नामक पत्रिकाओं द्वारा हालेण्ड तथा अमेरिका में भी अपनी विद्वत्ता के लिये सन्मान लाभ किया है। उसने Imperial College of science, London' में निरन्तर अभ्यास कर विज्ञान क्षेत्र में इतनी निपुणता प्राप्त की है। यदि भारतीयों को आज ऐसे अवसर मिलें—और मिल सकें—तो न मालूम कितनी गुप्त महाशक्तियों का प्रकाश हो सके। न केवल भारतीय गौरव की वृद्धि ही इस परिवर्त्तन से हो, परन्तु संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र की भी उन्नति हो।

रामानुज गणित के क्षेत्र में प्रसिद्ध हुए हैं। वे सब से प्रथम भारतीय थे जिन्होंने F.R.S. के सन्मान को प्राप्त किया था। उनके गणित की समस्याओं के विषय में विद्वत्तापूर्ण लेख Proceedings of the Royal Society, में छपते रहे हैं, जिनको देखकर जी० एच० एच० कैंब्रिज के प्रख्यात गणित-शास्त्र-वेत्ता ने रामानुज के विषय में लिखा था कि-'I can compare him only with Euler or Jacobi. My belief is that all mathematicians think at bottom in the same kind of way and that Ramanuja was no exception.

१९१४ से १९२१ तक रामानुज के २१ योग्यतापूर्ण लेख योरोप के भिन्न २ पत्रों में प्रकाशित हुए। लण्डन की 'The journal of the Mathematical Society' में ही उनके १८ लेख प्रकाशित हुए। रामानुज का १९२१ में देहान्त हो गया। यदि यह भारत सुपुत्र अधिक देर तक जी सकता तो अवश्य गणित विज्ञान क्षेत्र में भारतीय सत्ता को स्थापित कर जाता।

सेवाराम कश्यप तथा बीरबल साहनी ने कृषिविज्ञान में प्रसिद्धि प्राप्त की है। समरेन्द्र चन्द्र मलिक तथा कर्मचन्द्र बाल ने भी कृषि विद्या तथा भूगर्भविद्या विषयक अन्वेषणाओं में सफलता प्राप्त की है। उनके कृषियों के विषय में आविष्कार मूल्यवान् हैं। प्रभातचन्द्र सर्वाधिकारी के (Cytologn) के क्षेत्र में कार्य्य प्रशंसनीय है।

Botanical gustitute of Berlin) में कृष्ण दास बत्ती की गवेषणाएं महत्त्व पूर्ण तथा कृषिविज्ञान पर प्रभाव डालने वाली हैं। हरप्रसाद चौधरी का वृक्ष वनस्पतियों के रोगों का अनुशीलन तथा उनके प्रतिकारों का अध्ययन आशा पूर्ण है।

संक्षेप में भारतीय दिमाग़ इस समय नियत विज्ञान (Exact sciences) के क्षेत्र में लग रहा है और सफलता प्राप्त कर रहा है। हमने इस लेख में विज्ञान के सम्बन्ध में भारतीयों की सफलताओं का दिग्दर्शन मात्र कराया है। कवीन्द्र रवीन्द्र की अपूर्व प्रतिभा, चमत्कार पूर्ण कवित्व, आदर्श दार्शनिकता, हमारे देश के अभिमान का कारण बन सकती है। परन्तु हमने उनका यहां उद्धरण नहीं किया। हमारे थोड़े से प्रयत्न का यही अभिप्राय है कि भारतवर्ष विज्ञान की उन्नति के लिये भी उतना ही उपजाऊ है, जितना किसी अन्य विद्या की शाखा की समृद्धि के लिये। भारतवर्ष उत्पन्न दार्शनिकों (Born philosophers) की भूमि है। यहां बच्चा २ भगवद्गीता के कर्म सिद्धान्त तथा उपनिषदों के श्रेय, प्रेय मार्गों के कर्म सिद्धान्तों से परिचित है। इसके अतिरिक्त उक्त प्रमाणों के होते हुए यह तनिक भी अत्युक्ति नहीं कि प्रत्येक भारतीय गुप्त विज्ञान वेत्ता है। यदि हमारा देश स्वतन्त्र हो, यदि हमारे में राष्ट्र की तरफ़ से बड़ी २ रसायन शालाएं खोलने की सामर्थ्य हो, तो हम क्या आविष्कार नहीं कर सकते? यदि आज बोस ने वनस्पतियों के विषय में इतने आविष्कार किये हैं, तो अन्य भारतीय किसी अन्य क्षेत्र में वैसे चमत्कार पूर्ण आविष्कार कर सकते हैं। हम इन्हीं शब्दों के साथ प्रस्तुत लेख को समाप्त करते हैं, कि हमें आत्म-प्रबोध की आवश्यकता है, तभी हम अपनी अनन्त सुप्त शक्तियों का प्रकाश कर सकते हैं।

साहित्य और संगीत

[ले०–विद्यार्थिनी अम्बादेवी, वैदिक धर्म विशारद विदुषी, विशारद, सरस्वती]

जिस गुण या कौशल के कारण किसी वस्तु में उपयोगिता और सुन्दरता आती है उस की "कला" संज्ञा है।

(साहित्यालोचनकार)

भिन्न २ विद्वानों ने कला की भिन्न २ परिभाषायें की हैं। उन में से ही कला की उपर्युक्त परिभाषा की गई है। प्रधानतः कला के दो भेद-उपयोगी तथा ललितकला हैं। उपयोगी कला में बढ़ई, लुहार, राज, जुलाहे आदि का व्यवसाय है। ललितकला के वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला ये पाँच भेद हैं। उपयोगी कला मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करती है, और उसकी शारीरिक, आर्थिक, उन्नति में सहायता देती है। ललितकला मानसिक विकास, अलौकिक आनन्द को बढ़ाने वाली है। नित्य व्यवहारोपयोगी उपयोगीकला हैं। ललितकला सभ्यता के साथ २ विकास पाती हैं। मनुष्य सौन्दर्योपासक प्राणी है। जैसे २ वह सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ता है वैसे २ उसका सौन्दर्य ज्ञान भी बढ़ता है।

ललितकला के विभागों में जिसका मूर्त आधार जितना ही बढ़ा हुआ है, उतना ही उसका कम महत्व है। और जिसमें मूर्त आधार जितना ही कम है उतना ही उसका पद ऊँचा है। इसी मूर्त आधार पर वस्तुकला का स्थान सब से नीचा है और काव्यकला का सब से ऊँचा। वास्तुकला (इमारत आदि) मूर्तिकला, चित्रकला से जो आनन्द मन को मिलता है वह नेत्रेन्द्रिय की मध्यस्थता द्वारा मिलता है। संगीतकला और काव्यकला का आनन्द कानों द्वारा मन को प्राप्त होता है। यद्यपि काव्य के भी दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य दो भेद हैं। साहित्य का सम्बन्ध अधिकतर काव्यकला और संगीतकला से है। काव्य कला और संगीतकला का आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। पृथक २ इनका प्रभाव बहुत कुछ कम हो जाता है।

संगीतकला का आधार नाद है। प्राचीन ऋषियों ने इसके सप्तस्वर, सप्तताल, ध्वनि आदि भी निश्चित किये हैं। यद्यपि गद्यकाव्य भी होता है परन्तु काव्य (कविता) में वृत्त-लय संयुक्त गान की भी बड़ी आवश्यकता है। काव्य को प्रभावशाली बनाने के लिये जहाँ अर्थ, भाव आदि की जितनी प्रधानता है वहाँ संगीत की भी उतनी ही आवश्यकता है। भाषा कविता का शरीर है, संगीत उसका हृदय और रस आत्मा है। संगीत का प्रभावक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इस के प्रभाव से मनुष्य, पशु, पक्षी और पत्थर तक भी प्रभावित हो जाते हैं। निरस हृदय आदमी किस काम का ?

साहित्य संगीत कला विहीनः ।
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः ॥

जिसकी आत्मा पर साहित्य संगीत का प्रभाव नहीं पड़ता उसको साहित्यालोचनकारों

ने 'जड़' ही कहा है। सृष्टि के आरम्भ से सभी गम्भीर और मर्मव्यापी भावों को मनुष्य ने संगीतमय भाषा में ही व्यञ्जित किया है। यह संसार ही कविता और संगीत से भरा हुआ है। श्री विद्वद्वर्य शालिग्राम जी शास्त्री लिखते हैं:—

"सच पूँछिये तो संगीत में प्रभावुकता साहित्य से भी कहीं बढ़कर है। साहित्य का प्रभाव पढ़े लिखे अथवा सहृदय मनुष्यों तक ही परिमित है परन्तु संगीत तो पशुओं पर भी अपना प्रभाव दिखाता है। बैजू बावरे आदि की अनेक दन्त कथायें प्रसिद्ध हैं। किसी ने जंगली हिरनों को अपने गान से मोहित करके उनके गले में मालायें पहिनाई। किसी ने मस्त हाथी को वश में किया। किसी ने कुछ किया, किसी ने कुछ। राग रत्नाकर नामक संस्कृत के संगीत ग्रन्थ में लिखा है कि एक साल का बच्चा और एक साल का बैल जिसके गाने से यथावत् प्रभावित नहीं होता वह गवैया ही नहीं। प्रभावुकता में साहित्य और संगीत का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा एक प्रकार व्यर्थ हो रहा करता है। ये एक गाड़ी में दोनों पहिये हैं।"

साहित्य में दृश्य काव्य अर्थात् नाटक का स्थान जितना उच्च और महत्त्वपूर्ण है इससे सभी साहित्य मर्मज्ञ परिचित हैं। सैकड़ों हजारों उपन्यास और इतिहास जिस प्रभाव के प्रसार से वंचित रहते हैं उसे नाटक का एक दृश्य चन्द मिनिटों में कर दिखाता है। इसका कारण सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि नाटक में संगीत की पुट लगी है। उसके प्रभाव को रहीम ने स्पष्ट कहा है:—

नाद रीझि तनु देइ मृग, नर धन देत लुटाइ।
वह पशु यह मानस कहे, क्यों रहीम कहि जाय॥

प्राचीन सभ्य देशों का इतिहास यही बतलाता है कि वहाँ के साहित्य की वृद्धि में संगीत का विशेष स्थान है। पुराने यूनानी साहित्य में यदि होमर की संगीतमय 'अजागीत' न होती तो इसमें पूरा सन्देह है कि वह समस्त यूरोप में इतना प्रसार पाता या नहीं। आर्यावर्त्त का वैदिक साहित्य तो प्रारम्भ से ही वीणाधारिणी सरस्वती का अनुगामी है। वेद का प्रत्येक मन्त्र स्वर के आश्रित है। और सामवेद तो संगीत का उत्पादक ही कहा जाता है। शिव और नारद के संगीत में जैसी मोहिनी शक्ति थी, वह और जगह कहाँ है? हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य के रचयिताओं में यदि संगीत कला की अभिज्ञता न होती तो वैष्णव, शैव, शाक्त, कबीर, नानक, तुलसीदास आदि इतना साहित्य प्रचार कभी न कर पाते। संगीत के आधार पर ही आज राम चरित मूर्खों का शृंगार बना हुआ है। तुलसीदास जी की गीतावली, विनय पत्रिका, रामायण के पद हिन्दुओं की मूर्ख स्त्रियों और साधुओं तक को याद हैं। वे उनके अर्थ और भावों को न समझते हुये भी घर २ में राम चर्चा पहुँचा रहे हैं। जायसी की पद्मावत भी एक काव्य है किन्तु संगीतमय न होने के कारण देश व्यापकता के गुण से वंचित है।

आज सूर को साहित्याकाश का सूर्य किसने बना दिया? कहना न होगा कि केवल एक संगीत ने। यदि सूरदास के पद गान में न आ सकते तो उनका काव्य आलमारी की शोभा ही होता। तानसेन यह कदापि न कह सकते:—

किधौं सूर को सर लगो, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लगो, तन मन धुनत शरीर ॥

आज सूर का संगीत ही है जो कृष्ण-भक्ति की धारों को प्रवाहित कर रहा है । और सैकड़ों अपढ़ कुपढ़ हिन्दू नर नारियों की भावनाओं को जागृत कर हिन्दी साहित्य का गौरव वर्द्धन करता जाता है । इसी से तो रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है । इसी काव्य में वह शक्ति है, जिससे मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी और पत्थर तक भी प्रभावित होते देखे गये हैं । जहाँ पर और अन्य उपाय व्यर्थ हुये हैं वहाँ संगीत के शस्त्र की ही अव्यर्थता अक्षुण्ण रही । युद्धस्थल में संगीत की मोहिनी मदिरा से मत्त सैनिक प्राण हथेली पर रख मरने मारने में स्वर्ग प्राप्ति समझने लगते हैं । सारांश यह कि संगीत मनुष्य की स्वभाविक सम्पति है । फिर इस स्वभाविक सम्पत्ति से रहित साहित्य क्या कभी मानव समाज का उतना हित कर सकता है, जितना कि संगीतमय साहित्य में संगीत वही स्थान रखता है जो शरीर में हृदय । महात्मा गाँधी जी कहते हैं:—

“यदि संगीत का विशाल अर्थ करेंगे तो हम यह देखेंगे कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में हम लोग संगीत के बिना नहीं चल सकते हैं । संगीत के मानी आज स्वच्छन्द और स्वेच्छाचार होगया है-किसी चरित्र हीन स्त्री के नाच गान को हम संगीत कहते हैं और हमारी पवित्र मां-बहिनें बेसुरा ही राग अलाप सकती हैं । वे यदि संगीत सीखें तो शरम की बात समझी जाती है ।”

आज वस्तुतः हमारे साहित्य की दुर्दशा हो रही है और वह अनधिकारी वर्ग का शिकार हो रहा है । हमारे ग्रामों में जहाँ कभी तुलसी, सूर और कवीर के गीतों का मान था उसका स्थान आज हाथरस के सांगों और राधेश्याम की रामायण ने ले लिया है । इससे सिद्ध होता है कि संगीत का आश्रय पाकर रद्दी से रद्दी साहित्य भी प्रचुर प्रसार पा जाता है । यद्यपि ऐसे साहित्य की दशा वही होती है जो विकृत हृदय मनुष्य की होती है । तात्पर्य यह है कि संगीत साहित्य का एक अनिवार्य और आवश्यक अंग है । जिसकी रक्षा करना साहित्य सेवियों का परम कर्त्तव्य है ।

पद

मेरी मन-वीणा की तान ।
निसरत होती सरस-सुरीली, धीमी-धीमी एक प्रधान ॥
कभी न पल भी स्थिर रहती है, गुन-गुन करती है गुन-गान ।
वीर हरी यह दिव्य अनूपम, दिव्य लोक की रखती शान ॥

वीर हरि

गुरुमुखी लिपि

ले० श्रीस्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

पंजाब में इस समय लिपि की दृष्टि से तीन पक्ष हैं आर्य्य-देवलिपि, मुसलमान-फारसी लिपि और सिख गुरुमुखी-के पक्षपाती हैं। प्रथम और द्वितीय लिपि के विषय में कुछ लिखने की आश्यकता नहीं है क्योंकि प्रायः जनता उन से परिचित है और उन पर अनेक लेख लिखे गए हैं । इसलिये उन दोनों को छोड़ कर इस लेख में तीसरी लिपि के विषय में लिखूंगा । यह लिपि

किसने बनाई

है ? प्रथम प्रश्न यही है । क्योंकि गुरुमुखी के अर्थ है जो गुरु के मुख से निकली हो । अर्थात् जिसे गुरु ने बनाया हो अथवा जिसका प्रचार गुरु ने किया हो वह गुरु मुखी । और गुरु १० हैं इसलिये यह संदेह होता है । कि दसमें से इस के कर्ता कौन हैं ? सिख इतिहास में जिस गुरु जी ने यह लिपि बनाई उनका नाम गुरु अंगदजी लिखा है । यह दूसरे गुरु थे, तवारीख गुरु खालसा के पृष्ट १७ पर लिखा है "सं० १५९८ विक्रमी विच अंगदजी ने गुरुमुखी अखर नवें रचकर" गुरु नानकदेवजी का जीवन चरित्र इन्हीं अक्षरों में लिखकर प्रचार किया

उ, ੳ । अ, ਅ । इ, ੲ । स, ਸ । ह, ਹ ॥
क, ਕ । ष* ਖ । ग, ਗ । घ, ਘ । ङ, ਙ ॥
च, ਚ । छ, ਛ । ज, ਜ । झ, ਝ । ञ, ਞ ॥
ट, ਟ । ठ, ਠ । ड, ਡ । ढ, ਢ । ण, ਣ ॥
त, ਤ । थ, ਥ । द, ਦ । ध, ਧ । न, ਨ ॥
प, ਪ । फ, ਫ । ब, ਬ । भ, ਭ । म, ਮ ॥
य, ਯ । र, ਰ । ल, ਲ । व, ਵ । ड़, ੜ ॥

यहलिपि वास्तव में कोई नई नहीं रची गई । देवाक्षरोंको कुछ बिगाड़कर उनके नाम लंबे कर दिये गये हैं यह बात पाठकों की समझ में आजाय इस लिये मैं देवाक्षरों के साथ २ गुरुमुखी अक्षर लिख देना उचित समझता हूं । प्रथम देवाक्षर हैं पश्चात् गुरुमुखी अक्षर हैं ।

आकृतिका भेद पाठक समझ गये होंगे और नाम का भेद इस प्रकार है-उ को ऊड़ा और अ को आड़ा । इ को ईड़ी तथा स को ससा और ह को हाहा पढ़ते हैं । इसी भांति क्रम से कका, खखा, गगा, घघा, ङङा से समझलें ।

सिख इतिहास में इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला कि गुरुजी ने यह लिपि क्यों बनाई ? इस समय कई महानुभाव कहते हैं कि ब्राह्मण संस्कृत पढ़ाते नहीं थे इसलिये गुरु जी ने यह लिपि निर्माण की । किन्तु यह पक्ष सत्य प्रतीत नहीं होता है । यह सत्य है कि ब्राह्मण संस्कृत पढ़ने का अधिकार सब को नहीं देते थे तो भी देवलिपि सब पढ़ सकते थे । भारत के इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं मिलता जिस समय इस लिपि के पढ़ने का किसी ने

---

* ख के स्थान में ष लिखा है क्योंकि इसको कई उसी स्वर में पढ़ते हैं जिस में ख पढ़ा जाता है और गुरुजी ने उसे ही यह आकृति देकर यह नाम रखा ।

किसी के लिये निषेध किया हो और संस्कृत पढ़ने में भी वेद पढ़ने का निषेध तो अवश्य किया था, साधारण संस्कृत पढ़ना भी वर्जित न था। और पुराणादि पुस्तक तो लिखे ही शूद्रों के लिये थे। यह सर्व पुराण तंत्र सिद्धान्त है इस लिये पक्ष सर्वथा निराधार है।

जिस भांति महाराष्ट्र वालों ने अपनी पुरानी लिपि छोड़कर देवाक्षरों को स्वीकार कर लिया है इसी भाँति सिक्खों को भी गुरुमुखी लिपि के स्थान में इसी लिपि की माता देवलिपि को ही अपनालेना चाहिये। दोनों लिपियों में कोई विशेष भेद भी नहीं है और इस समय गुरुमुखी भाषा में साहित्य भी अधिक नहीं है और सौभाग्य से सिखों का धर्म ग्रन्थ भी देवाक्षरों में छप गया है। अतः देवलिपि पढ़ने में सिक्खों को कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि गुरुमुखी इसी की विकृति है।

पश्चिमी देशों ने अपनी २ भाषाएं भिन्न रखकर भी लिपि एक बनाली है। क्या पंजाबी सिख इस लिपि को छोड़कर इसकी प्रकृति को स्वीकार करके भारत की राष्ट्रीय भाषा के उन्नत करने में सहायक न होंगे? अभी यह लिखना कठिन है कि भविष्य में क्या होगा। तो भी मैं सानुरोध यही कहूंगा कि सिक्खों को यह कार्य्य कर लेना चाहिये।

देश की वर्तमान स्थिति और आर्य समाज

ले०-श्री० प्रो० रामदेवजी आचार्य्य गुरुकुल कांगड़ी

आर्य समाज को स्थापित हुए ५० साल से ऊपर हो गये हैं। इस लेख में हम यह देखने का यत्न करेंगे कि महर्षि दयानन्द तथा उनकी आर्य समाज ने भारतवर्ष पर क्या प्रभाव डाला? महर्षि के आगमन के पूर्व देश राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा जा चुका था। उस समय भारत में बड़ा भारी विप्लव हो रहा था। राष्ट्रीय शक्ति किसी सुदृढ़ नीति-सूत्र में आबद्ध न थी। मुग़ल राज्य का मङ्गल ग्रह म्लान मुख हो चुका था। राजपूताने की समर-शालिनी शक्ति परिश्रान्त होकर अपने ही मरुस्थलों और पहाड़ियों की क्रोड़ में बहुत देर की सो चुकी थी। उस समय देश में अशान्ति के चिन्ह जहाँ तहाँ दिखाई दे रहे थे। इसी लिए देशवासी प्रायः भय से शङ्कित-चित्त काल यापन करते थे। लुटेरों के अत्याचार विशेष करके असह्य हो गये थे। उनके त्रास से लोग कांप उठे थे। उस समय की सामाजिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। भारत भूमि अनेक कुरीतियों से कण्टकाकीर्ण हो गई थी। सैंकड़ों चिताएं अबलाओं की सजीव देहों से धधक रही थीं। परस्पर, ईर्षा द्वेष और जाति द्रोह ने घोरतम रूप धारण किया था। जन-शिक्षण की आवश्यकता का अनुभव करके अधिकारी और नेता वर्ग उसकी

पद्धति पर परस्पर विचार कर रहे थे। ईसाई धर्म्म के पादरी लोग आर्यावर्त को ईसाई बनाने के लिए सर्वथा सुसज्जित होकर आ रहे थे। उस समय ईसाई सेना ने गङ्गा और सागर के समीपवर्ती स्थानों में अपने दुर्ग निर्माण करके कुछ एक ऐसे प्रारम्भिक शस्त्रपात किए थे कि जिनसे पौराणिक धर्म की अवस्था डांवाडोल हो रही थी। प्रारम्भ में पादरी लोग लोकशिक्षा और धर्मदीक्षा दोनों का प्रचार करते थे। इस से उनके कार्य का प्रभाव दिन पर दिन अधिकाधिक होता जाता था। राजधर्म वैसे ही प्रलोभन पूर्ण, आकर्षणकारी होता है, परन्तु जब उसके साथ लोकहित की बात भी मिल गई तो वह नव शिक्षितों और पश्चिमी सभ्यता में दीक्षितों को एक २ करके मन्दिर में प्रवेश कराने लगे थे। इससे पूर्व वाममार्ग के फैलने से देश में अनाचार की वृद्धि हो रही थी, 'लोग वेदान्ती बन कर अकर्मण्य बन रहे थे। विधवाओं के आर्तनाद से भारत का निस्तब्धाकाश क्षुब्ध हो रहा था। ब्राह्मणों के अनुचित अधिकारों से आर्यजाति का एक बड़ा भाग उससे अलग हो रहा था। मुसलमान विजेताओं के आक्रमणों से भारत की केवल आर्थिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता ही नष्ट हुई किन्तु इस समय अंग्रेजों के आ जाने से आर्य सभ्यता ही खतरे में पड़ गई। राजनैतिक उद्देश्य से ईसायत का खूब प्रचार किया गया। ब्राह्मणों के अत्याचारों से पीड़ित अन्त्यज कहलाने वाले लोगों का एक बड़ा समुदाय अपने आर्य भाइयों को छोड़ कर ईसाइयों से जा मिला। देश पर सब तरफ़ से काले बादल घिरने लगे। जैनियों के "अहिंसा परमो धर्मः" के प्रचार से और अन्ध विश्वासों से आर्यों में प्रतिवाद करने का स्वभाव लुप्त होने लगा। जो जाति दूसरे के मुकाबिले में खड़ी होकर उसके अत्याचारों का प्रतिवाद नहीं कर सकती उसका काल निकट ही होता है। उस समय आर्यजाति एक कच्चे धागे के समान निर्बल हो चुकी थी। स्वार्थ और फूट ने सब को तीन तेरह किया हुआ था। यही कारण था जिससे कि यवन राजा इस आर्यावर्त में राज्य स्थापित कर सके। बारम्बार पराजित होने पर भी आर्यों ने कभी सम्मिलित प्रतिवाद नहीं किया। यही कारण है कि महमूद ग़ज़नवी का साहस इतना बढ़ गया कि उसने वह रोमाञ्चकारी अत्याचार किए जिनके नमूने के अत्याचार इतिहास में ढूंढ़े भी नहीं मिलते। जिस समय महमूद ग़ज़नवी सोमनाथ के मन्दिर पर हृदय द्रावक हमला कर रहा था उस समय सोमनाथ की रक्षार्थ आस पास के राजा एकत्रित न हो सके थे और नगर तथा मन्दिर निवासी सेनाओं की सहायता की आवश्यकता भी नहीं समझते थे। क्योंकि वे तो इष्ट देव पर विश्वास किए हुए थे कि "स्वयं देव ही इन म्लेच्छों को यहां लाया है ताकि एक ही बार सब को भस्म कर दे।" इसी अन्धविश्वास में आकर क्षात्रधर्म का पालन न करते हुए हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहे।

परन्तु जब वीर यवनों ने धावे किए और जब हिन्दुओं के परम इष्टदेव सोमदेव ने उनको अपनी शक्ति से भस्मीभूत न किया, तब भी बार २ अपने प्रिय पूज्यदेव के सामने माथे रगड़ते थे। निदान अन्ध-बिश्वासों में पड़े हुए असहाय हिन्दुओं को यह मर्म समझ में आया

कि परमपिता परमात्मा उन्हीं के सहायक हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। अद्भुत वीरता से मुट्ठी भर राजपूतों ने युद्ध किए, महमूदी सेना के छक्के छूट गये और मुसलमान भाग ही जाते यदि युद्ध रसिक, अति वीर, अनुभवी, नीतिज्ञ, सेनाप्रिय, रण पीड़ित ग़ाज़ी अपने तिलस्मी भरे शब्दों से उन्हें न ललकारता।* इसीलिए शहीद होने पर तुले हुए यवनों ने आन की आन में राजपूतों को भगा दिया। दुर्ग में प्रवेश किया और सहस्रों हिन्दुओं का घात करके जगमगाते मन्दिर में पहुंचे। महमूद ने क्रुद्ध होकर मूर्ति पर प्रहार किया। पुजारियों ने करोड़ों रुपये मूर्तिके भङ्ग न करने के बदले में देने का वचन दिया। परन्तु मूर्ति भञ्जक महमूद गज़नवी ने एक न मानी। मूर्ति तोड़ दी गई। मूर्ति ने हिन्दुओं की कुछ भी रक्षा न की। वहां दूसरी तरफ़ हिन्दुओं ने दुश्मनों से अपने अधिकारों की रक्षा के लिये कभी भी प्रतिवाद नहीं किया और जब※सीकरी में वीर राणा साङ्गा के साथ बाबर का युद्ध हुआ तब राणा साङ्गा ही की जीत हुई थी। परन्तु एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी ने भी बाबर की हार हो कही थी उसी विश्वास में पड़े रहने से और बाबर का युद्ध में अपूर्व वीरता धीरता से लड़ते रहना ही जीत का कारण हुआ।† इस प्रकार की जब हिन्दुओं की कुदशा हो रही थी, आर्य जाति के करोड़ों मनुष्य धर्म ग्रन्थों को पढ़ने के तो कहां उनको सुनने के भी अधिकारी नहीं समझे जाते थे। कुसंस्कारों का इतना प्राबल्य था कि विदेश-गमन, समुद्रयात्रा और विदेशी के स्पर्श आदि से ही लोग जाति पतित किए जाते थे। इस से भी अधिक भारतवर्ष में चारों ओर अविद्या और अधर्म की अन्धेरी रात राज्य करती थी। आर्य जाति की रीति-नीति का आकाश पश्चिमी सभ्यता की घन घोर घटाओं से आक्रान्त हुआ जाता था। नवीन संस्कारों की झंझा-वात पुरातन चाल ढाल, आचार विचार के प्रत्येक पेड़ को जड़ से कम्पित कर रही थी। इस पर नवीन धर्म की उक्तियों-युक्तियों की वाण वंसी आर्य धर्म के मूलाधार स्थल को पोला करने के यत्न में थी। परन्तु भारतवासी किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर आलस्य की गहरी निद्रा में निमग्न हो रहे थे। कहीं २ इस घटा टोप में ब्रह्म विद्या की विद्युत्-रेखा चमक जाती थी, नहीं तो भारत के भविष्य पर निराशता का गहरा पर्दा पड़ा हुआ था।

इस अवस्था की विद्यमानता में महर्षि दयानन्द सरस्वती की दिव्य उज्वल पवित्रात्मा ने इस जगत् को अपने शुभागमन से प्रकाशित किया। स्वामी महाराजके पास परहित साधना और परमार्थोपदेश रूपी दो वारुणास्त्र थे। इन्ही को लेकर, वे रण रङ्ग में अपनी वीरता का

---

* महमूद गज़नवी के समयमें गौएं मर रही थीं गौओं की रक्षा के लिए काफ़ी प्रयत्न किया। जहां सैंकड़ों मनुष्यों की हत्या हो रही थी वहां गौओं का क्या था ?

† १८ वार राणा साङ्गा ने बाबर को हरा दिया १९ वीं बार भी बाबर हारने वाला ही था, कि सलौंदी उससे आकर मिल गया इससे जातपात का झगड़ा हो गया इसी कारण हिन्दू पराजित हुए। और यह भी कि बनारस में मूर्ति कुंए के अन्दर चली गई थी इत्यादि अन्ध विश्वासों में लिप्त हो रहे थे।

परिचय देकर साम्प्रदायिक सैनिकों के उत्पन्न किए हुए धूंवे धूल को उपशमन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषि ने तर्क का आश्रय लेकर मूल वेदों की रक्षा करते हुए आर्यजाति के भ्रम मूलक विश्वासों का विरोध किया। इस से जहां देश के भ्रम मूलक विश्वास दूर हुए वहां तर्क के द्वारा प्रतिवाद करने का स्वभाव भी आर्य जाति को हो गया। अपने धर्म की रक्षा के लिए अनेकानेक शास्त्रार्थ हुए। जिन से कि यह प्रतिवाद करने का स्वभाव और भी दृढ़ हो गया। महर्षि से पूर्व आर्यजाति पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध और ईसायत के प्रभाव से अपनी सभ्यता को भुला रही थी। यज्ञोपवीत और गायत्री में विश्वास शिथिल हो रहा था। ब्राह्मसमाज इसी का परिणाम था। महर्षि ने हमारा ध्यान फिर अपनी सभ्यता की ओर खींचा, गायत्री का उपदेश दिया और मूल वेदों की रक्षा की।

किसी देश को उठाने में उस के इतिहास का भी ऊंचा हाथ होता है। महर्षि से पूर्व हमें बताया जाया करता था कि हमारा कोई इतिहास नहीं, वेद गडरियों के गीत हैं, राम और कृष्ण कोई महान् व्यक्ति नहीं थे। इत्यादि २।

ऋषि दयानन्द ने आर्यजाति के मन में उस के भूत के लिए अभिमान और भविष्य के लिए विश्वास पैदा किया। आर्य्यसमाज की इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि जो आर्यजाति का बड़ा भाग अपने धर्म से घृणा करके ईसाई और मुसलमान बन रहा था, उस को अपने धर्म के लिए गौरव और अभिमान अनुभव होने लगा। और उन में भी प्रतिवाद करने की शक्ति आगई। उसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि मुसलमान, ईसाई पादरी आर्यसमाजके विरुद्ध हो गये। बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में हिन्दू लोग जो कि अछूत कहे जाते थे कूए पर नहीं चढ़ सकते थे और न ही देवी देवताओं के दर्शन कर सकते थे, आर्य समाज के प्रचार से यह बात कम होती गई। मुसलमान अधिक धर्मान्ध हैं, ग़ुलाम हैं, ग़रीब हैं, अतः लड़ाई पर उतारू हो गये।

इधर धीरे २ आर्यसमाजी और हिन्दुओं में धर्मभेद भाव कम होता गया। इसलिये ईसाइयों और मुसलमानों की बड़ी क्षति हुई। आर्यसमाज के प्रचार से देश की राजनैतिक अवस्था पर भी भारी असर हुआ। अपने भूत में अभिमान और भविष्य में विश्वास होने से भारत के नवयुवकों के मन में यह उमड़ने लगा कि हम पहिले चक्रवर्ती राजा थे अब चक्रवर्ती क्यों नहीं हो सकते? अवश्य ही हो सकते हैं। इन मनोगत भावों के कारण गवर्मेन्ट के अधिकारी भी आर्यसमाज के विरुद्ध हो गये। ईसाई, मुसलमान, अंग्रेज़ तीनों मिल गये।

इस विरोध का परिणाम पटियाले का सुप्रसिद्ध अभियोग हुआ। आर्यसमाज के बड़े बड़े उच्च पदाधिकारी निरपराध होने पर भी जेल में डाल दिए गये। ब्रिटिश सरकार आर्य समाज को सर्वथा कुचलना चाहती थी। नौकरशाही की यह नीति थी कि यदि आर्यसमाजी पटियाले में कुचल दिए गये तो अन्य ब्रिटिश भारत में भी इनको कुचलना कुछ कठिन न होगा। इसी नीति का अवलम्बन करके आर्यसमाजियों को कुचल डालेंगे। परन्तु इस सब का आर्यसमाजियों ने घोर प्रतिवाद क्रिया और बड़ी

वीरता से मैदान में लड़े। इस प्रतिवाद और वीरता के सामने पटियाला स्टेट झुक गई और नौकरशाही को भी झुकना पड़ा। फिर कुछ देर के लिए युद्ध स्थगित किया गया।

इस का कारण यह है कि खिलाफ़त के प्रश्न के आजाने से मुसल्मानों ने अपने स्वार्थ के वश होकर युद्ध स्थगितकर दिया। लाहौरके अखबार "सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट" ने सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध लिखा। इस पर मुसल्मानों ने घोर विरोध किया। और गवर्न्मेन्ट को बाधित किया कि वह सम्पादक को डांटे। गोबध बहुत कम हो गया यहां तक कि मध्यप्रदेश में गवर्मेन्ट ने एक नया बुचड़खाना खोलने का यत्न किया परन्तु हिन्दू मुसल्मानों के सम्मिलित विरोध से उस की अपने इस उद्देश्य में कामयाबी नहीं हुई। उस के वाद फिर संसार में नयी क्रान्ति हुई, सैंकड़ों हिन्दू, मुसल्मान और आर्यसमाजी खिलाफ़त के लिए जेल में गये। टर्की ने खिलाफत के नाम पर अन्ध विश्वासी भारतीय मुसल्मान से अपना काम सिद्ध करलिया। किन्तु जब अभीष्ट सिद्ध हो गया तो खलीफ़ा और खिलाफत दोनों की समाप्ति कर दी। भारत के मुसल्मान स्वराज्य के लिये तो हिन्दुओं से मिले ही न थे। जब खिलाफ़त का मूलोच्छेद होगया तब हिन्दुओं पर टूट पड़े जिस का परिणाम मालाबार, सहारनपुर मुलतान और कोहाट के हत्याकाण्ड हुए जिन में कि हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार हुए। इन हत्याकाण्डों से हिन्दुओं की आंखें खुलीं, अपनी बिखरी हुई शक्तियों को सङ्गठित करने के विचार हिन्दुओं के दिमाग़ों में चक्कर लगाने लगे। हिन्दुओं ने आर्यसमाज की शरण में आकर सङ्गठन और शुद्धि की प्रथाएं चलाईं। जो हिन्दू एक बार भी मुसल्मान के साथ हुक्का पी लेता था उसे जाति से पृथक कर दिया जाता था। अब सैंकड़ों वर्षों से मुसल्मान हुए २ हिन्दुओं को बिरादरी में मिला दिया।

मुसल्मान मौलवी जो खिलाफ़त के नाश से दुःखित थे उन्होंने भारतवर्ष में भी अपने शिकार को पंजे से निकलता देख आर्यसमाज पर अपना दाँत लगाने लगे, क्योंकि आर्यसमाज को ही इस का मूलकारण समझते थे। दोनों में युद्ध छिड़ गया। गवर्न्मेन्ट ने भी देखा कि अब असहयोग असफल हो चुका है, मुसल्मानों और आर्यसमाजियों में परस्पर युद्ध हो रहे हैं। ऐसे सुअवसर को सरकार ने हाथ से न जाने दिया, उस ने आर्य समाज के विरुद्ध मुसल्मानों के साथ सन्धि कर ली। मुसल्मानों का दिल इस से और भी बढ़ गया। जब से आर्यसमाज की स्थापना हुई है तब से नगर कीर्तन के जलूस सदा बाजे के साथ निकलते हैं। मुसल्मानों ने लड़ाई का एक नया बहाना ढूंढा और यह कहना आरम्भ किया कि मस्जिदों के आगे बाजा बजाना धर्म के विरुद्ध है। सरकार मुसल्मानों के साथ मिल ही चुकी थी उस ने जहां एक ओर हिन्दुओं के दिल दुखाने के लिए सब पुरानी प्रथाओं के विरुद्ध मुसल्मानों के अनधिकारों को भी अधिकार बनाने के लिए मशीन गन और गोरी पलटन की संरक्षा में गौ का जलूस निकाला, वहां मंसूरी, हापड़ और मरी में आर्यसमाज के अधिकारों की परवाह न करके मुसल्मानों के आदेशानुसार उस का

नगर कीर्तन बन्द कर दिया। उधर हसन नज़ामी अपने वेश्याओं, खानसामों, बहरों, बूचड़ों कुंजड़ों, चूड़ीहारों इत्यादि की सेना के साथ आर्यसमाज के विरुद्ध षडयन्त्र रचने लगे और आर्यों, सनातनियों के बीच में भी युद्ध करने का प्रयत्न करने लगे। अब आर्यसमाजियों की परीक्षा का समय फिर आ रहा है और आर्यसमाजी अपने अस्तित्व और अधिकारों की रक्षा के लिए इंच २ स्वाहा होने के लिए उद्यत हो रहे हैं। दिल्ली में जो खिलाफत कान्फ्रेंस हुई उस की वक्तृताओं का सारा जोर आर्यसमाज के विरुद्ध हुआ। आर्यसमाजियों का कण्टक इस्लाम के वक्षस्थल में बड़ा तेज और चुभने वाला है। यदि मुसलमानों और नौकरशाही ने होश न संभाली तो एक ऐसा भीषण अहिंसात्मक युद्ध होने वाला है कि जिस को देख कर सब संसार रोमाञ्चित हो जायगा और अकालियों की कृतियां लोगों को भूल जांयगी। ईश्वर हमारे शासकों और भाइयों को सुमति दे ताकि जिस शक्ति का व्यय भाई भाई के युद्ध में होना है वह शक्ति देश के उद्धार और राष्ट्रोत्थान में लगाई जा सके।

* * *

मन्दिर के द्वार पर अछूत

क्षमा करो प्रभु मम अपराध।
है यह देह समर्पित तुम को अर्पित है यह प्राण।
अनुचित उचित बात बिन सोचे मांग रहा निज त्राण॥

भाँति भाँति के फूल मूल सब होते जाते म्लान।
नहीं खुला वह द्वार आजतक कहां करूं अब ध्यान॥

भूला भटका इधर उधर मैं खोज रहा तव द्वार।
विनय सुनें पर बन्द करें सब बार बार आगार॥

कैसे करूं नाथ पूजन मैं आऊँ कैसे पास।
जाने दो मनमन्दिर मेरा होगा तब आवास॥

हृदय पुष्प सम पद पंकज में तेरे अर्पण आज।
ग्रहण करो यह तुच्छ भेंट रखता हूं बिन आवाज़॥

डरता हूँ मनमन्दिर मेरा छिने न यह उपहार।
लो अब तो सब पाप माफ़ कर तुरत करो भवपार॥

जगदीशचन्द्र शास्त्री

स्वतन्त्रता की प्राप्ति का साधन।

लेखक-श्रीयुत हरिशरण सिद्धान्तालंकार

कोई भी जाति हो, वह साधारणतया, निम्न चार भागों में विभक्त हुई २ होती है :-ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। नाम भेद बेशक हो परन्तु सर्वत्र इन्ही विभागों में जातियां बँटी हुई होती हैं। King Alfred कहा करता था कि *जिस प्रकार एक किसान को घोड़ों तथा हल की आवश्यकता होती है, जिस प्रकार कि एक बढ़ई को औज़ारों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार एक राजा रूपी शिल्पी को अपना कार्य सम्यक्तया निभाने के लिये तीन प्रकार के हथियारों की ज़रूरत है। वे हथियार निम्न हैं :—

Working Men-कारीगर, मज़दूर तथा व्यापारी अर्थात् शूद्र तथा वैश्य

Fighting Men-योद्धा, क्षत्रिय

Praying Men-पुरोहित, ब्राह्मण

इस प्रकार हमने देखा कि साधारणतया प्रत्येक जाति के पास ये शक्तियां होती हैं :— ब्राह्मशक्ति, क्षात्रशक्ति, वैश्यशक्ति तथा शूद्रशक्ति। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये इन में से किसी का उपयोग किया जा सकता है। आइये हम देखें कि हम अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये किस शक्ति का उपयोग आज कर सकते हैं ?

(२)

भिन्न २ धर्मों में अहिंसा का आदर्श

St. Mathew के ५-३९ वा ४४ में Christ इस प्रकार उपदेश देता है कि "But I say unto you that ye resist not evil; but whosoever shall smite thee on thy right cheek turn to him the other also. Love your enemies, bless them that curse you; do good to them that hate you and pray for them that despitefully use you and persecute you," अर्थात् अपने शत्रुओं के साथ प्रेम करो। तुम्हें कोई दाईं गाल पर चपेट मारे तो बाँईं गाल भी उसके सामने कर दो, गाली देने वाले के लिये शुभ शब्दों का प्रयोग करो तथा बुरा करने वाले का भला करो। ये था अहिंसा का आदर्श जो कि वर्तमान सभ्यम्मन्य संसार के आदि प्रचारक ने उसके सामने रखा था। क्या आज Christ के अनुगामी ये कह सकते हैं कि वह इस उपदिष्ट धर्म का किसी अंश में पालन कर रहे हैं ? नहीं, कभी नहीं। कुछ ही वर्ष पूर्व समाप्त हुवा योरोपियन महा-संग्राम यह स्पष्ट दर्शा रहा है कि वह अहिंसा का उपदेश कार्य रूप में लाया नहीं जा रहा।

वर्तमान संसार का सब से अधिक विस्तृत धर्म, "अहिंसा परमो धर्मः" इस अहिंसा की

---

* Conduct and charachter by. J. H. Wicksteed. P. 95-96…And king Alfred said his work of king-craft required three kinds of men for its tools—working men, fighting men and praying men.

~~76180~~ 110468 369 I

नींव पर रखा गया था। परन्तु आज उसी बौद्ध धर्म के अनुयायियों में हिंसा का अंश अन्य धर्मावलम्बियों से कहीं बढ़कर पाया जाता है। इन गिरावटों के जहां अन्य भी कारण हैं, वहां यह मानना ही पड़ता है कि पूर्ण अहिंसा का इस लोक में पालन करना असम्भव ही है। बौद्धधर्म से मिलते जुलते जैनधर्म के अनुयायी लोग इस भय से कि, कहीं उन के मुख से निकलते हुए उष्णवायु के कारण वायुमण्डलस्थ सूक्ष्म कीटाणुओं का नाश न हो जाय, अपने मुख पर एक पट्टी बांधे रहते हैं। इस धर्म में कृषि जैसे पुण्यकर्म को इसलिये कि हल से भूमि के उदरस्थ कीटों की हिंसा होती है, पाप ठहराया गया है तथा इसे नरक का कारण माना है। परन्तु इतना होने पर भी क्या एक जैन पूर्णअहिंसा का पालन कर सकता है? नहीं। ऐसा होना सम्भव ही नहीं। महाभारत के शान्ति पर्व के १५ वें अध्याय में कहा है कि—

सूक्ष्म योनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्ध पर्ययः॥२६

अर्थात् इस जगत् में ऐसे २ सूक्ष्म जन्तु हैं कि जिनका अस्तित्व यद्यपि नेत्रों से दीख नहीं पड़ता तथापि तर्क से सिद्ध है, ऐसे जन्तु इतने हैं कि यदि हम अपनी आँखों के पलक हिलावें उतने ही से उनमें से सैंकड़ों चित ज़मीन पर लेट जाते हैं। तो एक व्यक्ति को पूर्ण अहिंसा का पालन करने के लिये आँखों के पलक भी हिलाने न होंगे। जैन धर्म में चर्खे के चलाने का तो सम्भव ही नहीं चूंकि जो कीड़े आँखों के पलक के गिरने से चित हो जाते हैं उनका चर्खे रूप सुदर्शन चक्र के चलने से तो नामोनिशान भी बचेगा नहीं। मनुष्य का जीना भी इस आदर्श के पालन की अवस्था में हो नहीं सकता। क्योंकि "जीवो जीवस्य भोजनम्" इस कथन के अनुसार दूसरे प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना एक प्राणी अपना भोजन भी प्राप्त नहीं कर सकता।

~~76180~~ 28/369 I

ऐसी हालत में इस धर्म का पालन कहाँ तक करना चाहिये? आइये देखें कि वेद इस विषय में हमें क्या रास्ता दिखलाते हैं।

३ वैदिक धर्म में अहिंसा का स्थान

वैदिक धर्म का भी अहिंसा का आदर्श निःसन्देह अत्युच्च है। वहां यह माना गया है कि "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः" (योग दर्शन) अर्थात् अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा होने पर अहिंसक लोकोत्तर पुरुष के समीप हिंसक प्राणी भी अपने वैरभाव को त्याग देते हैं। यद्यपि परमार्थतः यह निःसन्देह सत्य है तो भी कार्यरूप में इसका लाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है। देखिये कि हमें यदि कोई जान से मारने के लिये आरहा हो तो क्या उस समय हमें "अहिंसा परमो धर्मः का जप करते रहना चाहियें? नहीं। मनु महाराज कहते हैं कि* ऐसे समय चाहे गुरु हो, बालक वृद्ध, अथवा विद्वान् ब्राह्मण हो, जो कोई भी हो उसको बिना विचार किये मार डाले। वेद भी कहता है कि यदि कोई शत्रु सेना लेकर तुम्हारे

---

* मनु ८। ३५०–गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायान्तं हन्या देवा विचारयन्॥

पर आक्रमण करे तो अहिंसा का जप करते हुए मौन बैठे न रहो परन्तु इसके विपरीत

"प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानु
ग्रबाहवः। अथर्व ३।१६।७"

अर्थात् तुम तेजस्वी भुजाओं से युक्त होकर तथा तेज़ शस्त्रों को हाथ में लेकर आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो तथा अपने शत्रुओं को नेस्त नाबूद कर डालो। इतना ही नहीं अपितु तुम्हें चाहिये कि—

"असौ या सेना मरुतः परेषाम स्मानैत्यभ्यो।
जसा स्पर्धमाना। तां विध्यत, तमसापव्रतेन
यथैषा मन्योऽन्यं न जानात्। अथर्व ३।२।६,

अर्थात् तुम वह जो शत्रुओं की, बल के ारण संघर्ष करने वाली, सेना बढ़ी चली ारही है, उसमें अन्धकार को फैलाने वाला एक ऐसा गैस छोड़ दो कि उनमें एक व्यक्ति अपने समीपस्थ व्यक्ति को पहिचान न सके।

"सचित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च
कृणवज्जात वेदाः।" अथर्व ३।२।१,

तुम शत्रुओं को मूर्छित करके उनके हाथों को काट डालो।

"चक्षूंष्यग्निरादत्तां पुनरेतु पराजिता।"
अ० ३।१।६

तुम उनको अन्धा करदो और इस प्रकार अपने शत्रु को पूर्ण रूप से पादाक्रान्त करो।

"जयामित्रान् प्रपद्यस्व जह् येषां वरं वरं
मामीषां मोचि कश्चन। अथर्व ३।१९।८

अर्थात् तुम शत्रुओं के मुख्य २ शूरवीर व्यक्तियों को चुन २ कर मार डालो; उनमें का कोई तुम्हारे से छूट न जाय।

इस प्रकार वेद हमारे सामने अहिंसा का आदर्श रखते हुए भी क्षात्रधर्म का उपदेश कर रहे हैं। कृष्ण भगवान् तो कहते हैं कि:—

अथ चेत्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि"।

अर्थात् यदि एक क्षत्रिय क्षात्रधर्म का पालन करता हुआ युद्ध न करेगा तो उसे पाप होगा।

एवं हमने देख लिया कि वेद हमें स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये क्षात्र धर्म का उपयोग करने से मना नहीं करता परन्तु क्या आज हम स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये

४ क्षात्र शक्ति

का उपयोग कर सकते हैं? उत्तर स्पष्ट है। उनासी उनासी मील तक दागने वाली तोपों के सामने हम निहत्थे भारतीय लड़ने लगे तो परिणाम क्या होगा? सम्पूर्ण अमृतसर को नष्ट करने के लिये प्रथम तो एक ही, एक नहीं तो दो गोले तो अवश्य ही पर्याप्त हैं। एक नहीं, लाखों जालियांवाले बाग़ एक मिन्ट के अन्दर अन्दर बनाये जा सकते हैं। ऐसी हालत में क्रान्तिकारी हिंसामय उपायों का अवलम्बन करना अपनी मूर्खता—अज्ञानता—को प्रकट करने के सिवाय कुछ नहीं है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये कई बलिदानों की आवश्यकता होती है इसलिये हमें इतने नाश का भय न करना चाहिये तथापि इतने त्याग के लिये हम अभी तय्यार भी तो नहीं है। एवं क्षात्रधर्म का पालन करते हुए हम अपनी स्वतन्त्रता को, वर्तमान परिस्थिति, में, प्राप्त नहीं कर सकते।

इसलिये विवश होकर उपायान्तर को सोचना पड़ता है।

५ वैश्य शक्ति

वैश्य वृत्ति तथा शूद्रवृत्ति से किसी ने आज तक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की । वस्तुतः वैश्य वृत्ति कोई शक्ति ही नहीं है । वैदिक साहित्य में तो वैश्यों का वर्ण पीला दिखलाया गया है। इनमें तो खून ही नहीं है; ये स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये क्या कर सकते हैं ?

६ शूद्र शक्ति

शूद्रों में तप के कारण यद्यपि कुछ शारीरिक बल है परन्तु वह बल ज्ञान शून्य होने के कारण स्वतन्त्रता को प्राप्त कराने का साधन होना तो दूर रहा यह तो परतन्त्रता की बेड़ियों को और भी दृढ़ता से जकड़े चला जा रहा है। जहां तहां मुसलमानों और हिन्दुओं में जो शूद्र हैं उनको भड़का कर आपस में लड़ा दिया जाता है, एवं इन शूद्रों के बल का उपयोग अपने आपको मारने में ही हो जाता है। ये बल न होता तो शायद स्वतन्त्रता प्राप्त करनी कुछ सुगम हो जाती।

७ ब्राह्म शक्ति

अब केवल ब्राह्म शक्ति ही रह जाती है जिसके द्वारा कि हम स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की कुछ उमीद कर सकते हैं। वस्तुतः ये शक्ति अन्य सब शक्तियों से श्रेष्ठ है। वैश्य तथा शूद्र-शक्ति की अपेक्षा तो क्षात्रशक्ति अच्छी थी परन्तु ब्राह्मशक्ति के सामने इसे भी सिर झुकाना पड़ता है और क्षात्रशक्ति कह उठती है कि:—

"धिग्बलं क्षत्रबलं ब्राह्मतेजो बलं बलम् ।"

वस्तुनः यह शक्ति इतनी श्रेष्ठ है इसलिये हमें इस से अवश्य स्वतन्त्रता मिलेगी ऐसी हमें पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये।

आइये देखें कि इस शक्ति का उपयोग हम किस रूप में करें? कई तो इसका प्रयोग Council में जाकर विचारार्थ पेश हुए २ नियमों पर वादविवाद करने के रूप में करना चाहते हैं । परन्तु दूसरे इस प्रकार के प्रयोग को आकाश में प्रहार करने के समान व्यर्थ बतलाते हैं । वस्तुतः जो हमें स्वतन्त्रता देना नहीं चाहते उनके साथ युक्ति प्रत्युक्ति करके हम स्वतन्त्रता लेलेंगे यह एक शेख़चिल्ली का मनसूबा कभी कार्य रूप में परिणत हुवा २ हमें दीखेगा नहीं। स्वतन्त्रता लेना तो दूर रहा। होता क्या है ? हमारी जाति के बड़े २ दिमाग़ शुष्क विवाद में लगे रहते हैं; उनका व्यय वहीं होजाता है । जाति का जो भला उन दिमाग़ों से होना था वह भी नहीं होता, हमारे बड़े २ नेता वस्तुतः नेतृकार्य न करके Councils के खेल खिलौने में ही लगे रह जाते हैं। वृद्ध होते हैं तो आंख खुलती हैं। परन्तु अब तो वह शक्ति समाप्त होचुकी होती है जिसने कि जाति की उन्नति के लिये कुछ कार्य करना था। वस्तुतः ही ब्राह्म-शक्ति का यह कोई सदुपयोग नहीं। उसका व्यर्थ व्यय करना हो, उसका कोई लाभ न होने देना हो, तो निःसन्देह सर्वोत्तम उपाय Councils में लड़ना झगड़ना ही है। अस्तु

इसका उपायान्तर यह है कि हम इस शक्ति का उपयोग सूत्रयज्ञ में करें। आइये, देखें तो सही कि इस प्रकार करने से होगा क्या ? कृष्ण महाराज कहते हैं कि:—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्त दनुवर्तते ।"

अर्थात् बड़े पुरुष जो कुछ करते हैं छोटे उनका अनुकरण करते हैं। एवं हमारे ज्ञानी लोक क्रियारूप से इस यज्ञ का उपदेश करेंगे तो समान्य लोक भी इस यज्ञ को करेंगे। धीरे २ यह यज्ञ आठों दिशाओं में विस्तार होजाने पर यहां विदेशी कपड़े की आवश्यकता न रहेगी। विदेशी महायन्त्रों के अधिपति धनाभाव के कष्ट को अनुभव करने लगेंगे तथा वे भी भारतीयों की Level पर आजाने से हमारी अवस्था को अच्छी प्रकार समझ सकेंगे। जहां हमें स्वतन्त्रता स्वतः मिल जायगी तहां साथ ही साथ सम्भवतः उनको भी यह समझ आजायगी कि "दूसरे को पराधीनता रख कर अपने भोगों को प्राप्त करना मनुष्य का आदर्श नहीं अपितु हेय है। हमें स्वतन्त्रता मिल जायगी उन्हें धर्म का मार्ग दृष्टि गोचर हो जायगा। एवं, इस चक्र के चलाने से एक के स्थान में दो उत्तम फल प्राप्त होंगे। इस चक्र का चलाना स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। यह प्रत्येक भारतीय का धर्म है। कृष्ण महाराज कहते हैं किः—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयती ह यः ।
अघायु रिन्द्रिया रामो मोघं पार्थ स जीवति ।"

यदि इस प्रकार इस स्वतन्त्रता प्राप्ति के सात्विक रणाङ्गण में हम "युधि-ष्ठिर" बने तो अन्त में हम अवश्य अपने "अनन्त-विजय" नामक शङ्ख को गुञ्जा ही देंगे।

जीवन तथा इसका उद्देश्य (३)

लेखक-श्री डाक्टर राधाकृष्ण जी M. B B. Sc. प्रिंसिपल मेडिकल कालेज गुरुकुल कांगड़ी

(फाल्गुण के अंक से आगे।)

वायु

गत अंकों में हम इस नियम पर पहुँचे थे कि जीवन विद्या के अनुसार जीवन का उद्देश उत्तम सन्तान उत्पत्ति है और इस उद्देश की पूर्ति के लिये :—

१-वंश की उत्तम शारीरिक अवस्था होनी चाहिये जिसके लिये वंशीय स्वास्थवृत (Racial Hygiene) का ज्ञान होना चाहिये।

२-माता पिता का शरीर उत्तम होना चाहिये जिसके लिये माता पिता को वैयक्तिक तथा गृह स्वास्थ्य वृत (Personal and Domestic Hygiene) का ज्ञान होना चाहिये।

३-उत्तम उत्पादक अणुओं के लिये ब्रह्मचर्य तथा उत्तम आचार और विचार के सिद्धान्त पता होने चाहिये।

पिछले अंक में यह भी देखा था कि किसी व्यक्ति को अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये निम्न साधनों की आवश्यकता है :—

१. उत्तम वायु
२. उत्तम भोजन

३. मल त्याग
४. उत्तम स्थिति (Posture)
५. स्नान तथा शारीरिकस्वच्छता
६. व्यायाम, कार्य तथा विश्राम

हमें क्रम से प्रत्येक साधन पर विचार करना होगा।

१. उत्तम वायु

यह एक ऐसा आवश्यक पदार्थ है जिसके बिना जीवन असंभव है। लोग वस्त्रों के बिना रह सकते हैं और भारतवर्ष में तो वस्त्र रहित व्यक्तियों की तो कोई गिनती ही नहीं है। जो लोग वस्त्र के बिना एक मिनट भी नहीं रह सकते वह केवल फैशन और अभ्यास के आधीन हैं। कई पुरुषों ने भोजन बिना कई २ दिन तक जीवित रह कर सिद्ध कर दिया है कि इसके बिना भी पर्याप्त समय तक रह सकते हैं। जल बिना भी कुछ दिन तक प्राण नहीं निकलते परन्तु वायु एक ऐसी वस्तु है जिसके बिना ५ मिन्ट से अधिक जीवित रह सकना किसी योगी का ही काम है। आश्चर्य तो यह है कि जीवन के लिये इतनी अत्यन्त आवश्यक वस्तु के भी हम गुण नहीं जानते। संभवतः इसका यह कारण है कि इस माया काल (materialism) में हमें यह वस्तु बिना मूल्य के मिल जाती है। परन्तु यहीं पर तो हमारी भूल है क्योंकि यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो इस भयंकर भूल का दाम अन्त में पर्याप्त देना पड़ता है, जो निम्न चक्र (table) से स्पष्ट है :—

यह तो सब को ही पता है कि क्षयरोग (Phthisis) दुष्टवायु के कारण होता है। भारतवर्ष में प्रति वर्ष १० लाख मृत्यु इस रोग से होती है और लगभग ७० लाख पुरुष इस रोग में आक्रान्त होते हैं। यदि मान लिया जाये कि औषधि, सेवा सुश्रूषा, बेकारी में प्रति रोगी पर केवल १० रुपया (जो बहुत कम राशि है) व्यय होते हैं, तो कुल धन ७ करोड़ रुपया केवल क्षयरोग या दुष्ट वायु के परिणाम पर ख़र्च होते हैं। यदि शुद्धवायु का सेवन किया जाता तो १ पैसा भी व्यर्थ व्यय न होता।

वायु की उपयोगिता सिद्ध करने के लिये कोई बड़े २ प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। जिस को संदेह हो उसे चाहिये कि अपने शहर से बाहर खुली हवा में गहरा श्वास (deep breath) लेकर देखे। यदि उसके अन्दर स्फुर्ती न आजावे या अपने आपको उत्तेजित अनुभव न करे या अपने मस्तिष्क (brain) को अधिक निर्मल न पावे तो निसन्देह वायु का कोई लाभ नहीं कहना चाहिये। अमेरिका में परीक्षण करने पर पता लगा कि जो व्यक्ति साधारणतया २५ सेर का बोझ शिर के ऊपर २५ बार ले जा सकते थे, वे १५ बीस बार गहरा श्वास लेने के पीछे उसी भार को ५० बार ऊपर उठा सकते थे। वास्तव में हर एक व्यक्ति के जीवन में ऐसे उदाहरण मिलते ही रहते हैं। परन्तु हम उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते।

वायु की आवश्यकता का इस से अधिक और क्या प्रमाण होगा कि यदि कोई आदमी ४ मील चले तो वह जो पहले २ पाव भोजन खाता था अब २॥ या ड्योढ़ा ३ पाव खा लेगा परन्तु देखा गया है कि सब आदमी प्रति मिंट में ४८० घन इञ्च (cubic inches) वायु निश्वास के साथ (inhale) लेते हैं, परन्तु ४ मील चलने पर उन्हें ५ गुणा अर्थात् २४०० घन इञ्च प्रति

मिन्ट वायु लेनी पड़ती है।

अब देखना यह है कि वायु का इतना महत्व और आवश्यकता क्यों है? इस लिये कि :—

१ यह रक्त को शुद्ध करती है, केवल इस लिये नहीं कि वायु रक्त को ओक्सीजन (Oxygen) दे कर चमकीला लाल बना देती है परन्तु इस लिये भी कि यह रक्त में मिले मल पदार्थों को (Carbon-Di-Oxide) को ले लेती है। अर्थात् वायु रक्त को उत्तम और शुद्ध पदार्थ देती है और अशुद्ध (impurity) ले लेती है। यह मल (C^{o}_{3}) रक्त शरीर के एक २ भाग से एकत्रित करके फेफड़ों (lungs) में ले आता है जिससे रक्त ही नहीं प्रत्युत शरीर के सब तन्तु शुद्ध हो जाते हैं। यदि इसे शरीर से बाहर न जाने दिया जावे तो ३—४ मिंट में ही आदमी दम घुट जाने से मर जाता है। किसी व्यक्ति को ऐसे स्थान में रक्खें जहां कि उसके रक्त का शोधन न हो सके अर्थात् जिस कमरे में (Oxygen) (वायु का शुद्ध भाग) कम हो और (Crbonic acid gas) (वायु का अशुद्ध भाग) अधिक हो तो फिर देखें कि उसकी क्या अवस्था होती है। आप स्वयम् ही ऐसे कमरे में जा कर देखें कि कितनी जल्दी बेचैनी, कठिन श्वास (hard breathing) और अंगों की फड़फड़ाहट (Convulsions) आरंभ होते हैं व नहीं। क्या आपने कभी यह नहीं सुना कि अमुक कूप में कई आदमी उतरे और सब के सब मर गए—क्यों-यह इस लिये कि उस कूप में कार्बोनिक गैस बहुत अधिक थी। इस कूप का एक लक्षण यह है कि उसमें जलती हुई मोमबत्ती उतार कर देखते हैं कि मोमबत्ती बुझ जाती है या नहीं। शुद्ध कूप में नहीं बुझेगी। जब इसमें यह छोटी सी ज्वाला (Flame) बुझ जाती है तो क्या हमारे जीवन की ज्वाला न बुझेगी?

२. दूसरा लाभ यह है कि जो हम भोजन खाते हैं वह वायु की सहायता से ही तन्तुओं में परिणित हो सकता है।

३ जिस प्रकार लकड़ी वायु की सहायता से जल कर गर्मी उत्पन्न करती है इसी प्रकार शरीर में भोजन भी वायु के सहायता से धीरे २ जल कर (Combustion) शरीर में गर्मी उत्पन्न करता है। वायु के अभाव में शरीर ठंढा पड़ जाता है।

इन कारणों से पता लगता है कि वायु क्यों शरीर के लिये एक अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है? अतः हमें यह जानना ज़रूरी है कि वायु को शुद्ध कैसे रखें और इसका सेवन कैसे करें।

जो लोग खुले स्थानों में निवास करते हैं और प्रकृति के खुले कमरे में रहते हैं उनके लिये यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता कि शुद्ध वायु कहां से लें। यह प्रश्न तो वहीं कठिन है जहां शहरों में ऊंचे २ घरों की लम्बी २ पंक्तियां तंग गलियां बना देती हैं और जहां कई लोगोंने—जो घरों के निचले कमरों में रहते हैं—कमरों में सूर्य भगवान की जीवन देने वाली किरणों को प्रवेश करते कभी नहीं देखा। जिन्हें यह भी पता नहीं कि खुली हवा का ठंढा कोमल झोंका किसे कहते यह प्रश्न इस लिये भी तीव्र होता जाता है क्योंकि शहरों में जनसंख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है औ निवास स्थान छोटे और तंग होते जाते हैं यदि इसका शीघ्र ही उपाय न किया गया औ लोगों के दिल में शुद्ध वायु का प्रेम उत्पन्न

हुआ तो भयंकर परिणाम की संभावना है। दुर्भाग्य से जिन शिशुओं, बालकों और गर्भवती स्त्रियों को शुद्ध वायु की विशेषतः आवश्यकता है (क्योंकि शिशु बालकों में वृद्धि ज़ोरों पर होती है और जननी में भ्रूण वृद्धि कर रहा होता है), उन्हीं को घरों और तंग गलियों, कूचों में कैद रखा जाता है। यही कारण है कि भारतवर्ष में शिशु बालक और स्त्रियां क्षयरोग से अधिक मरते हैं। क्या आपको अब पता लगा कि शुद्ध वायु का सेवन केवल इसलिये नहीं कि इस से स्वास्थ्य ही ठीक हो जाता है प्रत्युत इस लिये भी यह आप की जाति के नन्हे फूलों की जीवन-दातृ और वर्द्धक है। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि जो बच्चे खुली वायु में रहते हैं उनके चेहरे गुलाब की न्यायीं दमकते और चमकते हैं, उनका रंग मुर्दों जैसा पीला नहीं होता। हम लोग संभवतः यह समझते हैं कि शुद्ध वायु की आवश्यकता केवल दिन को ही होती है क्योंकि रात्रि को हम कमरों को खूब बन्द कर के एक बन्द बक्स (Black hole) बना कर सोते हैं। कितनी भूल है! रात्रि को ही दिन की थकावट दूर करने के लिये निद्रा देवी की गोद में जाते हैं, और उसी समय थकावट के दूर करने के उपायों में बाधा भी डाल देते हैं और फिर कहते हैं कि रात बड़ी बेचैनी से कटी। इसका यह अर्थ नहीं कि यदि कभी ऐसे स्थान में रहना पड़े जहां वायु का प्रवेश कम हो तो मनुष्य इतना झुंझलाये कि निर्बल हो जावे परन्तु शुद्ध वायु का सेवन एक स्वभाव बन जाना चाहिये।

एक भयंकर भूल हम और भी करते हैं कि रोगियों को विशेषतः बन्द स्थान में रखते हैं जब कि उन्हें स्वस्थ होने के लिये, अतीव रोग से युद्ध करने के लिये शुद्ध वायु की विशेष आवश्यकता होती है।

अब इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि शुद्ध वायु किसे कहते हैं? उत्तम वायु में निम्न गुण होने चाहिये :—

१. इसमें गति हो, बन्द न हो।
२. यह ठंडी हो, गर्म न हो।
३. यह तर हो खुश्क न हो,
४. यह ताज़ी हो।

(क्रमशः)

कुलियों की माता

ले०—श्री० देवशर्मा जी विद्यालंकार

क्या तुम जानते हो कि जिस तरह अंग्रेज़ लोग 'दुकानदारों की क़ौम' (Nation of shop-keepers) कहलाते हैं और जिस तरह जर्मन लोग 'सिपाहियों की क़ौम' (Nation of soldiers) कहलाने लगे थे वैसे ही हम भारतवासी क्या कहाते हैं? हमारा नाम है 'कुलियों की क़ौम' (Nation of Coolies)। हम, तीस करोड़ बोझा उठाने वाले, 'भार वहन करने वाले' कुली हैं। हमने ३००००००० होकर क्या किया? क्या हम इतनी बड़ी संख्या में भार ढोने के लिये

ही पैदा हुवे हैं? ओह! कुलियों की माता, कुलियों की दुःखिया दीन माता, जो कि तीस करोड़ बालक रखती हुई भी उनके साथ दिन रात कुलीगीरी ही करती है। अच्छा होता कि हम संख्या में इस से आधे, चौथाई, वल्कि दसवां हिस्सा होते–तीस करोड़ की जगह केवल तीन करोड़ ही होते–परन्तु कुली न होते; 'मनुष्य' होते, माता के 'पुरुष' (पौरुषयुक्त) संतान होते। तब हमारी माता हमारे भरोसे पर रात भर निश्चिन्त तो सो सकती।

इस प्रकार के विचार उठने लगे जब कि एक पढ़ते हुवे विद्यार्थी के मुख से निम्न श्लोक सुनायी दिया। कान में पड़ाः—

सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी।
एकेनैव सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया* ॥

* * * *

वास्तव में हमने अपनी माता को 'सिंही' के स्थान पर 'गर्दभी' ही साबित किया है। सचमुच संख्या वृद्धि वृथा है। जहां 'गुण' (quality) होता है वहां 'संख्या' (quantity) की आवश्यकता नहीं होती। शेर का बच्चा एक ही पर्य्याप्त है। भारत माता के इतने पुत्रों की जगह तिलक, गांधी जैसे थोड़े से ही 'वीर' पुत्र रहते तो उस के सब दुःख मिट जाते। इस लिये अब अपना सब ध्यान, सब सामर्थ्य सब वीर्य 'संख्या' बढ़ाने के स्थान पर 'गुण' बढ़ाने में ही ख़र्च करें। ठीक कहा जाता है कि 'गुलामों की संख्या मत बढ़ाओ, स्वामी रामतीर्थ ने तो अपने प्रसिद्ध 'ब्रह्मचर्य' व्याख्यान में कहा था, "क्या भारतवर्ष को काल कोठरी ही बनाकर छोड़ोगे"।

स्वामी सत्यदेव ने 'राष्ट्रीय संध्या' में एक प्रार्थना यह भी लिखी हैः—

'मैं देश के लिये ब्रह्मचारी रहूंगा।'

इस प्रार्थना को प्रति दिन करो और ब्रह्मचर्य द्वारा माता की 'शेर' संतान बनो!

* * * *

हम 'भार वहन करने वाले' कुली क्यों हो गये? क्योंकि हम अपना बोझ अपने आप नहीं उठा सकते। जो मनुष्य अपना बोझ अपने आप (स्वेच्छा से) उठाता है वह तो 'स्वाधीन पुरुष' है। जो दूसरों का भी बोझ अपने आप स्वेच्छा से उठाता है वह 'परोपकारी' है। किन्तु जो दूसरों का बोझ दूसरों की इच्छा से उठाता है वह 'कुली' है। और मनुष्य दूसरे की इच्छा के अधीन तब होता है जब कि उस में इच्छा को स्वाधीन रखने की शक्ति नहीं रहती। इस लिये मैं कहता हूं कि हमारे कुली होजाने का कारण यह है कि हम में अपना बोझ अपने आप उठाने की शक्ति नहीं रही।

अपने राज्य का अपना बोझ हम स्वयं नहीं उठा सकते हैं इसीलिये हम कुली बनकर नाना तरह से दूसरों का बोझ उठा रहे हैं। हम तीस करोड़ मिलकर मांचेस्टर की मिलों का बोझ उठा रहे हैं। यदि हम 'कुली लोग' आज विदेशी वस्त्र पहिनने से हड़ताल करदें तो कल ही इन मिलों में ताले पड़ जांय।

---

*इस का अर्थ है—गधी अपने दसों लड़कों के साथ भार ही ढोती है। (जबकि) शेरनी अपने एक ही सुपुत्र के कारण निर्भय होकर सोती है।

ब्रिटिश हित के लिये हिन्दुस्तान में रखी हुई बड़ी फ़ौज के महाव्यय का भारी बोझ कर (Tax) दे दे कर हम ही ग़रीब भारतवासी 'कुली' उठा रहे हैं। इसी तरह अन्य नाना प्रकार के कर देते हुवे, सरकारी नौकरियां करते हुवे, तथा अन्य सैकड़ों तरह से सहयोग करते हुवे समूहरूप से हम सब भारतवासी 'कुलियों की क़ौम'—'विदेशी नौकरशाही' के इस बड़े भारी बोझ को उठाये जारहे हैं। इस तरह हम तीस करोड़ लोग कुलीगिरी में अपना जीवन बिता रहे हैं। ऐ मेरे कुली भाइयो! मैं रोकर कहता हूं कि अब यह कुलीगिरी बस करो। यह अच्छा नहीं। पराई इच्छा से (पराधीनता से) दूसरों का बोझ उठाना छोड़, अपना बोझ स्वयं उठाने वाले बन जाओ और किसी तरह अपनी माता को 'कुलियों की माता' की जगह वही 'देव माता' बनालो।

सब से पहिले अपने खद्दर का थोड़ा सा किन्तु खुरदरा भार अपने कंधे पर स्वेच्छा से उठा कर मांचेस्टर की मलमल का मुलायम बोझ ढोने की कुलीगिरी तुरंत त्याग दो (इस कुलीगिरी की दासता से मिलने वाले दो पैसे भी हंसी के साथ त्याग दो)। अपना यह एक बोझ स्वयं उठा कर देखो। यदि इसे उठाओगे तो थोड़े दिनों में ही देखोगे कि अपने राज्य का अपना बड़ा भारी बोझ भी स्वयं उठाने की शक्ति तुममें होगी और तब तुम सब कष्ट सहन करना स्वीकृत कर लोगे, पर दूसरों के दासता पूर्वक दिये इस 'नौकरशाही' के बोझ को घड़ी भर भी उठाने की कुलीगिरी न कर सकोगे।

* * * *

आओ हम अब 'कुलियों' की जगह सचमुच राजपूत (राज पुत्र) बन जांय। अपना बोझ स्वयं उठालें। इस में क्या है ?

गुरु गोविन्दसिंह ने कहा था 'चिड़ियों से मैं बाज बनाऊँ'। और उन्होंने 'चिड़ियों' से 'बाज़' बना दिये थे। हम वे ही भारतवासी आज भी फिर चिड़ियों से बाज़ बन सकते हैं, गर्दभ से सिंह बन सकते हैं, कुलियों से राजपूत बन सकते हैं, गुलामों से 'मनुष्य' बन सकते हैं, और हमारी माता 'कुलियों की माता' की जगह 'देवमाता' बन सकती है, 'चेरी' की जगह रानी बन सकती है।

और बनना क्या है ? यह राम और कृष्ण की माता ऋषि, मुनियों की माता भीष्म और अर्जुन की माता, सीता और सावित्री की माता अभी गुज़रे प्रताप और शिवा की माता, क्या, यह कभी 'कुलियों की माता' कहलाने योग्य है ? केवल 'स्मृति' होने की देर है। जब दासी रानी बन सकती है तो रानी को ही फिर रानी बनाने में क्या घबराहट है ? क्या मुश्किल है ?

* * * *

हे भारतवासी ! ज़रा देख हम कुली बने हुवे कुपुत्रों ने अपनी माता को बंधवा रखा है और अपनी कुलीगिरी की कमाई में मस्त हैं। यदि तेरा ध्यान इस तरफ नहीं जाता तो तेरा पूजापाठ किस काम का, रोज़ा, नमाज़, किस काम का, 'फास्ट प्रेयर' किस काम का ? माता के इस मोक्ष के लिये तू प्रतिदिन कितना यत्न करता है ? अपने चौबीस घन्टों में से कितना समय माता की पूजा, माता की सेवा में ख़र्च करता है ? क्या तू समझता है कि माता को

(इस हालत में) भुला कर, विमुख रह कर तू ईश्वर को प्राप्त होजायगा ? मूर्ख झूठे धर्म के आडम्बर और पाखण्ड को दूर करके तथा भय और पक्षपात के गाढ मलों से हृदय को शुद्ध करके पवित्र अन्तःकरण से देख कि अपनी माता की सेवा करना ही बच्चों का सबसे पहिला धर्म है, यही ईश्वर पूजन है, इसी में ही जगन्माता की सेवा है, सचमुच इसी में ही जगन्माता की सेवा है।

× × × ×

निदाघ!

प्रिये!
यह क्या ? निदाघ!
जिस से व्याकुल हैं, इस सृष्टि में—
भूचर, जलचर तथा नभचर, मम दृष्टि में।
कालिंदी के कूल,
है अलबेली वह छवि क्या ? जो—
श्रीकृष्ण के काल में,
वृन्दावन की कुञ्ज-निकुञ्जके पुंज में,
थी, वह अद्भुत सुख-शांतिता।
वे दिन थे, निदाघ।

× × × ×

प्रिय निदाघ!
यद्यपि तू है उग्रता की मूर्त्ति;
तो भी होती है एक हमारी स्वार्थ-पूर्त्ति।
अच्छा आओ,
तुम देते हो क्यों नहीं मुझे शिक्षा ?
हाँ
ठीक है।
जब आपत्ति का होता है सामना;
सारे व्यक्ति तब,
त्याग ईर्षा द्वेष, करते हैं सद्भावना।
लेओ, यह दीक्षा।
देखो,
तेरी संतप्तता से व्यग्र हो।
दुखिया मयूर,
जो तेरे आतप से, पंखे फैलाकर बैठे।
उनकी ही छाँह में,
सर्प, नकुल अरु मूषक—
वैर भाव को भुलाकर,
पास-पास, आकुल हो आकर बैठे।

× × × ×

वह समय,
अब है क्या दूर ?
जब,
देश के सब आर्य-बन्धु—
पारस्परिक की फूट को त्यागकर,
आपने को भूलकर,
संगठित हों एक-सूत्र में।

× × × ×

'वीर-हरि'

❀ हमारी मंजूषा ❀

१. **आज़ाद कथा** (अर्थात संक्षिप्त हिन्दी फिसाना-आज़ाद) रूपान्तरकार श्री० प्रेमचन्द, प्रकाशक—गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ, पृष्ठ संख्या ५४८ मूल्य २॥)।

उर्दू भाषा में पंडित रत्ननाथ दर लिखित फ़िसाना-आज़ाद को जो उच्च स्थान प्राप्त है वह उर्दू जानने वालों से छुपा नहीं। हास्य और विनोद का यह भंडार उर्दू भाषा का एक अमूल्य रत्न है। इस पुस्तक में लेखक ने उस समय की विलासप्रिय सामाजिक दशा का बड़ा चित्ताकर्षक चित्र खींचा है, उस समय की सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं पर ऐसी मधुर हंसी उड़ाई है कि पढ़ने से ही पता लग सक्ता है। उर्दू भाषा साहित्य के इस सुरभित पुष्प को हिन्दी भाषा-भिज्ञ पाठकों के लिये प्राप्य बनाकर श्रीयुत प्रेमचन्द जी ने बड़ा उपकार किया है। मूल पुस्तक बड़े साईज की चार जिल्दों में कोई ४००० पृष्ठ पर समाप्त हुई। श्री प्रेमचन्द जी ने इसका पूरा हिन्दी अनुवाद न करके परिष्कृत रूपान्तर ही किया है। और इस का कारण उन्हीं के शब्दों में यह है कि पुस्तक में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिन से न तो छात्रों पर प्रकाश पड़ता है और न हास्य या व्यंग ही का कुछ स्वाद मिलता है। कहीं २ हास्य इतना नीरस और अश्लील है कि उस का अनुवाद करना अनुपयुक्त था। हमने इन प्रसंगों को छोड़ दिया है। फुटकल लेखों को भी हमने एक शृंखला में बान्धने की चेष्टा की है, बोल चाल की भाषा ज्यों की त्यों रहने दी है, बहुधा जगह की किफायत के लिये कई २ वाक्यों को मिला दिया है" अतः यह हिन्दी रूपातंर दो भागों में १००० पृष्ठ पर पूरा होगा। प्रस्तुत पुस्तक पहिला भाग है।

फ़िसाना आज़ाद क्या है यह प्रेमचन्द्र जी ने स्वयं ही भूमिका में लिखा है:—

"फ़िसाना आज़ाद में आपको लखनऊ के भोले भाले, रंगीन नव्वाब मिलते हैं, उनके खुशामदी मुसाहबों के दर्शन होते हैं, उनकी वेगमात के हावभाव का चित्र नज़र आता है; कहीं बांके आते हैं। तो कहीं अफ़ीमची, कहीं भटियारियों की तिर्छी चितवन हैं, तो कहीं वेश्याओं के नाज़ नख़रे; कहीं मदारी के तमाशे हैं तो कहीं सरकस के; कहीं बाज़ार का मोल तोल है कहीं मजलसों का रागरंग। ये सब दृश्य इतने मनोरंजन, इतने हास्यमय हैं कि पढ़ते ही बनता है। फ़िसाना आज़ाद उर्दू भाषा का पहला उपन्यास है। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी पाठक इस साहित्य रत्न पुस्तक के पाठ से अवश्य लाभ उठावेंगे।

२. सुकवि-सकीर्तन—लेखक महावीर-प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक-गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ १५० मूल्य १)

सरस्वती सम्पादक श्री पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी से हिन्दी संसार का परिचय कराना हिन्दी प्रेमियोंका उपहास करना है। यह पुस्तक इन्हीं हिन्दी साहित्यरत्न की रचना है। द्विवेदी जी ने समय २ पर सरस्वती में अपने सुकवियों, कविताप्रेमियों तथा कवि-कोविदों

के आश्रय दाताओं के सम्बन्ध में जो परिचयात्मक लेख लिखे थे, इस पुस्तक में उनका संग्रह है। श्रीयुत पंडित दुर्गा प्रसाद, कवि माइकेल मधुसूदनदत्त, कविवर लछीराम, प्रतापनारायण, नवीनचन्द्र इत्यादि चौदह विद्वानों और विद्या प्रेमियों के जीवन चरित्र हैं। साहित्य प्रेमियों के लिये यह पुस्तक एक अनमोल वस्तु है, जहाँ इस से इन विद्वानों की कविता का स्वाद लेने का अवसर मिलता है वहाँ अनेक विघ्नबाधाओं के होते हुए भी इन्होंने जो विद्या प्रेम प्रकट किया वह नितान्त अनुकरणीय है। हम साधारण व्यक्ति तनिक भी अवस्था के प्रतिकूल होने पर शिथिल होकर बैठ रहते हैं परन्तु इस पुस्तक के कथानायकों के जीवन हमें यही शिक्षा देते हैं कि परस्थिति पर विजय पाना ही शिक्षा का उद्देश्य और विद्या विलासियों का अवलम्ब है। इस के अतिरिक्त इन चरित्रों के पाठ से हमें अपने साधारण जीवन को सफल और उच्च बनाने वाली भी अनेक शिक्षा मिलती हैं।

पुस्तक की शैली के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। द्विवेदी जी की लेखनी में जो माधुर्य्य कोमलता, और रस है वह हिन्दी के बहुत कम लेखकों को प्राप्त है। इन चित्रों के चित्रण में आपके इन गुणों के अतिरिक्त आप के गूढ़ स्वाध्याय, विचार-स्पष्टता तथा प्रौढ़ पाण्डित्य का पूरा २ परिचय मिलता है। सब के सब लेख जहां सारगर्भित है वहां मनोरंजक भी हैं। गंगा पुस्तक माला कार्यालय ने इन लेखों को पुस्तकाकार छाप कर हिन्दी संसार का बड़ा उपकार किया है।

३, राव बहादुर (प्रहसन) अनुवादक श्रीयुत लल्लीप्रसाद पांडेय। प्रकाशक उपरोक्त गंगा पुस्तक माला कार्यालय, पृष्ठ १७० मू० १।)

मोलियर फ्रेंच भाषा का प्रसिद्ध लेखक और विख्यात नाटक कार है। साहित्य संसार में इसकी तुलना कालिदास और शैक्सपीयर से की जाती है। प्रहसन तथा उसके नाटकों में व्यंग और हास्य रस की प्रधानता है। उसने कितने ही प्रहसन लिखें हैं और गम्भीर नाटक भी। उसके गम्भीर नाटक उसकी कल्पना और रचना शक्ति के परिचायक हैं परन्तु इन में भी विनोद की झलक पग पग पर दीखती है। हास्य और विनोद तो मानों मोलियर के स्वभाव का अटूट अंग है। यही कारण है कि उसे प्रहसन लिखने में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उसने प्रहसन भी ऐसे लिखे हैं जो कि अभिनय करने योग्य हों। इन प्रहसनों का एक मात्र उद्देश्य वैयक्तिक और सामाजिक कुरीतियों का दूर करना है। इन की हंसी उड़ाकर ही दर्शकों के हृदय में इन से घृणा उत्पन्न करना और साथ ही मनोरंजकता की पूरी २ सामग्री उपस्थित करना यही मोलियर का लक्ष्य था। और इसे अपने उद्देश्य में बड़ी सफलता प्राप्त हुई।

राव बहादुर भी मोलियर के एक ग्रन्थ के आधार पर ही लिखी गयी है। कोई २० वर्ष हुये इस पुस्तक का मराठी अनुवाद हुआ था। श्रीयुत लल्लीप्रसाद जी ने उस अनुवाद के सहारे ही इस पुस्तक को लिखा है। परन्तु प्रस्तुत हिंदी पुस्तक अनुवाद नहीं। मानव हृदय की निर्बलतायें सर्व संसार में एक सम होने पर भी भिन्न २ देशों में तत्कालीन परस्थिति और

76180

रिवाजों के कारण भिन्न २ रूप ग्रहण कर लेती हैं। यही कारण है कि हमारे देश के रीति रिवाज में फ्रान्स के रीति रिवाज से बहुत कुछ अन्तर है। श्रीयुत पाण्डेय जी ने मूल पुस्तक में उचित परिवर्तन कर इसे हमारे देश और सामाजिक अवस्था के ठीक २ अनुकूल बना दिया है। परन्तु इस परिवर्तन और कांट छांट में पाण्डेय जी ने काफी सफलता प्राप्त की है। पुस्तक को पढ़ने से यह पता नहीं चलता कि यह किसी अन्य भाषा की पुस्तक का अनुवाद है। इनकी भाषा परिमर्जित सरल और शुद्ध है; भाव हमारी अवस्था के सर्वथा अनुकूल और ढंग रोचक है। केवल एक आध स्थान पर घटना शृंखला में ढीला पन आगया है, जैसा कि विष्णुलाल का एक दम और अचानक राव साहब बन जाना।

प्रहसन का विषय राय साहब और राय बहादुरों के खिताब और पदवियों के भूखे मूर्ख धनवानों का उपहास उड़ाना है। पुस्तक समयानुकूल है क्योंकि अब गान्धी आन्दोलन के धीमा पड़जाने से यह भूख पुनः चमकती दीखती है।

४. जनन विज्ञान—

जनन विज्ञान-लेखक पं० शिवशङ्कर गिज्ज। प्रकाशक सरस्वती सदन, १२१-२ चोर बागान लेन, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या ३४२। चित्र संख्या ४०। मूल्य

जनन विज्ञान एक अत्यन्त उपयोगी विषय है। प्रत्येक मनुष्य यह तो अवश्य चाहता है कि उस के यहां सन्तान हो और उत्तम सन्तान हो परन्तु यह कैसे हो इस विषय में उसे बहुत ही अपर्य्याप्त ज्ञान होता है। खेद का विषय तो यह है कि अपर्य्याप्त ज्ञान के होते हुए भी वह सर्वथा सन्तुष्ट है और लकीर का फ़कीर बना रहता है।

गर्भ-धारण किन अवस्थाओं में होना चाहिये, नौ मास तक उस की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिये, स्त्री और पुरुष को उत्तम सन्तान की प्राप्ति के वास्ते किस प्रकार अपना आहार व्यवहार रखना चाहिये, प्रसवावस्था के पूर्व और पश्चात् किन २ बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये, प्रसव गृह किस प्रकार का होना चाहिये और प्रसव के बाद सन्तान और माता का भोजन आच्छादनादि किस प्रकार होना चाहिये ये सब जितने ही आवश्यक विषय हैं इन पर उतना ही कम ध्यान दिया जाता है।

यह बात प्रत्यक्ष है कि जिस सन्तान को हम सर्व गुण सम्पन्न देखना चाहते हैं उस का ध्यान गर्भ में उस के आने से पूर्व से ही रखा जाय। गर्भ स्थिति के पूर्व से ले कर सन्तान के उत्पन्न हो जाने तक किन २ साधनों का अवलम्बन करना चाहिये यह सब इस पुस्तक के मनन से स्पष्ट हो जायगा। जिन उपायों का निर्देश किया गया है उन सब का परिज्ञान प्रत्येक परिवार को होना चाहिये। लेखक का शुद्ध भाव और परिश्रम अत्यन्त सराहने योग्य है, बीच २ में चित्र देकर पुस्तक को और भी उपयोगी और मनोरञ्जक बना दिया गया है।

पुस्तक की भाषा, लिखाई, छपाई आदि सभी चित्राकर्षल हैं।

५-खूनी इतिहास—लेखक श्रीगनपतराय अग्रवाल, प्रकाशक आर्य साहित मण्डल अजमेर। पृष्ठ संख्या १५२ मूल्य ॥)

इस पुस्तक में इस्लाम धर्म की उत्पति उस के बिकास तथा प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। अरब की मरुभूमि में कोई १२०० वर्ष पूर्व मुहम्मद साहब तथा इस्लाम धर्म का जन्म हुआ। अर्बी लोग स्वभाव से ही निठुर, क्रूर, अत्याचारी तथा विश्वास घातक रहे हैं। इस्लाम का प्रवर्तक यद्यपि अपने समकालीन देशवासियों से आचार के लिहाज से बहुत बढ़कर था, परन्तु इन जातीय दुर्गुणों का उसमें सर्वथा अभाव न था। फिर जिन साथियों की सहायता से उसने अपने मत का प्रचार किया वह तो इन गुणों में प्रवीण थे। यही कारण है कि इस्लाम धर्म को फैलाने में कितने ही क्रूर और अन्याय युक्त साधनों का सहारा लेना पड़ा। जो कुछ उस समय केवल आत्म रक्षा के लिये किया गया वही पीछे से सिद्धान्त रूप से प्रतिपादित किया गया। इसी कारण इस्लाम धर्म में कितनी ही ऐसी आज्ञायें हैं जो कि उच्च सदाचार के दृष्टि कोण से किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं। इस्लाम का सारा इतिहास इसी सिद्धान्त का दृष्टान्त है, यह इस पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है और यदि लेखक ने इस को खूनी इतिहास का नाम दिया है तो अनुपयुक्त नहीं।

पुस्तक में इस्लाम की उत्पत्ति और विकास, कुरान की शिक्षा, खलीफ़ा अबूबकर से लेकर खलीफा सुलेमान तक के १२ खलीफ़ाओं का इतिहास और उन के कारनामे, हिन्दुस्तान में इस्लाम का इतिहास, तथा इतिहास वेत्ताओं की इस्लाम पर सम्मतियां इत्यादि अनेक जानने योग्य विषयों पर प्रकाश डाला है। पुस्तक समयानुकूल है। इस से इस्लाम तथा उस के अनुयायियों की मानसिक भावनाओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

लेखक पुस्तक को इतिहास कहता है, परन्तु इस में कहीं २ पर गपोड़ों का आभास आता है। यदि अगले संस्करण में लेखक इस भाग को पुनः संशोधन कर देंगे तो पुस्तक वास्तविक इतिहास कहला सकेगी।

६–श्री माइकेल मधुसूदन दत्त—लेखक बजरंगवली गुप्त विशारद, प्रकाशक साहित्य सेवक कार्यालय काशी, पृष्ठ ६० मूल्य।)

माइकेल मधुसूदन दत्त बंगला के सिद्धहस्त कवि हुये हैं। बंगला में पहिले पहल आप ही ने अतुकान्त कविता की नीव डाली। और यह सिद्ध करदिया कि सुन्दर मधुर ललित काव्य का आधार तुक अथवा "तुक हीनता" पर नहीं परन्तु कवि की निज प्रतिभा ही उसका एक मात्र आधार है। आप का रचित "मेघनाथ वध" एक ऐसा काव्य है कि जिस की टक्कर के इने गिने काव्य ही अन्य भाषाओं में मिलते हैं। यह एक ही काव्य बंगभाषा को अमर कर देने के लिये पर्य्याप्त है।

यह छोटी सी पुस्तक इसी महान कवि की जीवनी है। यही उसकी रचनाओं की आलोचना है। इस के पाठ से हमें जहां असली कविता का आनन्द मिलता है वहां कवि के जीवन से अनेक शिक्षा भी मिलती हैं। इतने विद्वान और प्रतिभा सम्पन्न होने पर भी आप स्वभाव से ही बड़े उच्छृंखल थे। इसी कारण इन्हें जीवन में अनेक कष्ट सहने पड़े, वरन यह कहना सर्वथा ठीक है कि आप का जीवन कभी सुखमय नहीं हुआ।

पुस्तक में कवि के ग्रन्थों की आलोचना के अतिरिक्त उनकी कविता के भी उदाहरण हैं। लेखक का श्रम प्रशंसनीय है।

७ चान्द—सम्पादक तथा प्रकाशक श्रीयुत रामरखपाल सिंह सहगल, चांद कार्यालय ३४ जार्जटाऊन, इलाहाबाद। वार्षिक मूल्य ६॥)

चांद स्त्री उपयोगी उच्चकोटि की मासिक पत्रिका है जो कि गत ३॥ वर्ष से इलाहाबाद से निकल रही है। इस के सम्पादक बड़े साहसी पुरुष हैं जो कि घाटा सहकर भी सुधार के भावों से प्रेरित होकर इस पत्रिका को निकाल रहे हैं। साधारणतया इस में समाज पीडित स्त्री जाति की दशा को सुधारने तथा उच्च बनाने से सम्बन्ध रखने वाले लेख निकलते रहते हैं। परन्तु समय२ पर हिन्दू जाति की अनेक सामाजिक समस्यायों तथा अवस्थाओं पर भी विचार पूर्ण तथा सारगर्भित लेख रहते हैं। विशेषाङ्क चांद की एक विशेषता है। गत तीन वर्ष में शिशु अंक, प्रवासी अंक, विधवा अंक इत्यादि आधी दर्जन के लगभग निकले हैं जो कि बाह्य तथा अन्तरीय रूप रंग और गुणों में बहुतही उत्तम हुये हैं।

गत मई मास से चांद ने अपने कार्यक्षेत्र में और भी बहुरूपता लाने की आयोजना की है। इस अंक से सती-प्रथा का रक्त रंजित इतिहास, लखनऊ की नवाबी, (सचित्र) बाल मनोरंजन कई एक नवीन लेख माला निकलनी आरम्भ हुई है। इस के अतिरिक्त प्रेम चन्द्र जी का निर्मल, श्री शीतल सहाय जी की बम्बई की शिशु प्रदर्शिनी तथा १९२५ में महिला आन्दोलन शीर्षक लेख खूब बढ़िया हुये।

स्त्री सुधार सम्बन्धी कई एक बातों में चान्द की नीति से कड़ा विरोध रखते हुये भी हम सम्पादक महाशय को ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर पत्र निकालने पर बधाई देते हैं।

× × × ×

वैज्ञानिक संसार

१. रक्त दाब द्वारा उत्पन्न रोगों का इलाज।

मनुष्य के शरीर में नसों और नाड़ियों में बहने वाला रक्त एक प्रकार का दाब या भार pressure डालता है जिसे Blood pressure (रक्त भार) कहते हैं। कभी २ विशेष रोगों के कारण यह रक्त भार बहुत अधिक हो जाता है। इस का फल शिर तथा दिमाग पर बहुत पड़ता है। कभी २ तो सिर में चक्कर आने लगते हैं और व्यक्ति बेहोश होजाता है। एक जर्मन डाक्टर ने अनुभव किया है कि यदि मनुष्य पशुओं की भान्ति हाथों और पैरों को ज़मीन पर टेक कर चले तो यह रक्त भार साधारण अवस्था से भी बहुत कम हो जाता है। उन जीवों में जिन्हें कि केवल टांगों के सहारे खड़े हो कर चलना पड़ता है रक्त भार बहुत बढ़ जाता है जिस का कि फल यह होता है कि रक्त के प्रवाह में गड़बड़ हो जाती है। इसी के फल से एक पशु की मृत्यु तक होती देखी गई है।

डाक्टर महाशय का कथन है कि उन मनुष्यों के लिये जो कि दिल की कमज़ोरी के कारण साधारण व्यायाम से लाभ नहीं उठा सके, हाथों और पैरों के सहारे चलना बड़ा हितकर होगा।

२. कांच का स्थानापन्न।

इंग्लैंड निवासी श्री वैडन वर्ग और आस्ट्रिया के रहने वाले महाशय पालक ने एक इस प्रकार का कांच का स्थानापन्न यंत्र बनाने में सफलता प्राप्त की है जो कि रबड़ की तरह झुक सके। कांच जो कि धातुओं से बनाया जाता है दबाने से टूट जाता है। यह नवीन स्थानापन्न धातुओं से नहीं बना। यह उतना ही पारदर्शी है जितना कि कांच। इसको झुका कर, मोड़ कर जो आकृति चाहो बना सकते हो। यह टूट सकता है परन्तु इस के कोई तीखे सिरे नहीं रहते। आंच से यह जलेगा भी नहीं। फेंके जाने पर यह गाल्फ खेलने के गेंद से अधिक ऊपर को कूदता है। इस को भिन्न २ प्रकार के वनस्पति के रंगों से बहुत ही सुन्दर रंगों का बनाया जा सकता है। मकानों, मोटरों, रेल गाड़ियों इत्यादि के दर्वाजों और खिड़कियों में शीशों के स्थान में यह जड़ा जा सकेगा।

३. वैज्ञानिक क्षेत्र में कार्यकर्त्ता किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं?

विज्ञान को जिस रूप में कि हम आजकल इसे देखते हैं। हमारे इस मानवी इतिहास में पदार्पण किये बहुत चिर नहीं हुआ। परन्तु यह हमारे व्यवहारिक जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन कर रहा है। उदाहरण के लिये यह बतलाना पर्याप्त है कि बीस वर्ष पहिले अमरीका में प्रति १००००० पीछे १७५५ मनुष्य प्रति वर्ष मरते थे। परन्तु आज यह मृत्यु संख्या घट कर १२८८ रह गई है। विज्ञान की बदौलत हम आजकल ऐसी २ वस्तुओं का भोग कर रहे हैं जिन्हें हमारे पूर्वज स्वप्न में भी न पा सक्ते थे। परन्तु इस प्राकृतिक वैभव के अतिरिक्त-जो कि आज हमें, बेतार की तार, हवाई जहाज़, चलने फिरने वाले चित्र इत्यादि हज़ारों रूपों में दिखलाई देता है। विज्ञान का एक और भी लाभ है और वह आत्मिक क्षेत्र में है। विज्ञान के आत्मिक लाभ उस के प्राकृतिक लाभों से कहीं अधिक हैं। हमारी धर्म पुस्तकों का रचयिता ही संसार का निर्माता है और यह प्रकृति अपने असंख्य रूपों और चिन्हों द्वारा उसी सत्य को प्रगट कर रही है जिसे कि धर्म पुस्तकें शब्द द्वारा दर्शाती हैं।

यह सत्य है कि प्रकृति का पाठ मनुष्य की शिक्षा का आवश्यक अंग है। विज्ञान धर्म की कुंजी है। अतः यह निर्विवाद है कि विज्ञान मनुष्य जाति के लिये एक ऐसे भविष्य की रचना कर रहा है जिस को कि हम अभी विचार भी नहीं सक्ते। वह कौन हैं जो कि इसके रूप की रचना कर रहे हैं? जिन की मुट्ठी में हमारा भविष्य है? वह एक मुट्ठी भर व्यक्ति हैं, जिन की गणना संसार के २० अरब मनुष्यों में कुछ सहस्र से अधिक नहीं।

विज्ञान पर जितना हम व्यय करेंगे उससे कहीं अधिक हमें मिलेगा, अतः हमें उसके प्रसार में दिल खोल देना चाहिये। सब से पहिले हमें अधिक वैज्ञानिक कार्यकर्ता उत्पन्न करने चाहियें। यह किस प्रकार हो सकता है? हम

किस प्रकार वह वैज्ञानिक सदाचार उत्पन्न कर सकते हैं जो कि हमें वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में देखने योग्य बनाता है और मानवी समस्याओं को उनके वास्तविक रूप में सुलझाने में सहायता देता है। किस प्रकार हम वैज्ञानिक अनुसन्धान को सामाजिक धर्म का एक अंग बना सकते हैं, जिस से कि यह संसार के भिन्न २ व्यक्तियों को एक ही उद्देश्य की लड़ी में परो कर एक बना सकता है। निःसन्देह इस प्रश्न का उत्तर, इस समस्या की पूर्ति 'बालक' में ही है। डारविन और वालेस सरीखे संसार के बड़े २ वैज्ञानिक अपने शैशव काल को ही अपना कर्ता मानते हैं। यदि शिक्षा के आरम्भ काल में ही हम बालकों के हृदय में विज्ञान की शिक्षा के बीज बो देंगे, यदि हम आरम्भ से ही प्रकृति के रहस्यों को जानने की ओर झुकादेंगे तो यह नितान्त सरल होजायगा कि वह बड़े होकर विज्ञान द्वारा मनुष्य जाति की सेवा करने में प्रवीण हो सकें। बडे हो जाने पर, कुछ थोड़ी बहुत अन्य प्रकार की शिक्षा प्राप्त करलेने पर, यह असम्भव हो जायगा। क्यों कि उनकी वैज्ञानिक रुचि और प्रकार के भावों से दब जायगी। अतः यदि बालक बालिकायें प्रकृति देवी के मन्दिर को सुशोभित और अलंकृत करने वाली नाना प्रकार की वस्तुओं के विषय में "क्यों", "क्या" और "कैसे" प्रश्न करते हैं तो उन्हें इसका उत्तर दो। यह कह कर न टाल दो कि क्यों मगज खाते हो। वरन उन के लिये ऐसे साधन उत्पन्न करो कि वह स्वयं प्रकृति से इन प्रश्नों का उत्तर पाने के समर्थ हो सकें। इसी प्रकार हम इस वैज्ञानिक क्षेत्र के कार्य कर्ता उत्पन्न कर सकेंगे।

४. सूर्य के ताप को जोड़ कर रखना।

आज कल लोहा इत्यादि बनाने के बड़े २ कारखानों में बिजली की भट्टियां रहती हैं जिनका ताप कोयला जलाने वाली भट्टियों से कहीं अधिक होता है। सब से अधिक ताप जो आजकल की इन बिजली की भट्टियों में प्राप्त हुआ है वह २००० डिग्री C अथवा ३००० दर्जे F है। अब सान फ्रान्सिसको के एक युवक ने घोषणा दी है कि उसने एक इस प्रकार का यन्त्र बनाया है जो कि सूर्य के ताप से गरम होता है और इससे ८००० डिग्री C अथवा १५००० डिग्री F का ताप प्राप्त हो सकता है। उसका यन्त्र बहुत ही सादा है। इसकी आकृति एक प्याले की सी है। जो ४ फुट चौड़ा है और ऊपर से सूर्य की रोशनी के लिये खुला रहता है। इसके भीतर की ओर कितने ही शीशे लगे हुए हैं। जिन पर सूर्य्य की किरने पड़ती हैं। यहाँ से लौटकर वह एक ताल-पंक्ति (शीशों की पंक्ति) पर एकत्र होती हैं और प्याले के पेंदे में जाकर सब एक स्थान पर इकट्ठी हो जाती हैं। यहाँ इतना ताप हो जाता है कि लोहा, भट्टी की पक्की इन्टें, अबरक के टुकड़े, पत्थर इत्यादि बड़ी जल्दी पिघल जाते हैं और गैस बन कर उड़ जाते हैं।

५. मलेरिया ज्वर की नाशक मछलियाँ

अन्य गरम देशों की तरह हमारे देश में भी मलेरिया अथवा मौसमी ज्वर का बड़ा प्रकोप रहता है। एक समय था इसे छूत का रोग माना जाता था, परन्तु अब पता लग गया है एक प्रकार के मच्छर ही इसके प्रचार के

साधन हैं। सब प्रकार के मच्छरों द्वारा यह नहीं फैलता। मोटे और अधिक शोर मचाने वाले मच्छर चाहे रात को सोने न दें और काट २ कर शरीर को लाल करदें, परन्तु वह मलेरिया के रोगाणुओं को शरीर में प्रवेश करवाने का साधन नहीं बनते। यह तो छोटे और कम सुरीले मच्छर ही हैं जो कि मौसमी ज्वर को एक स्थान से दूसरे स्थान में और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ले जाने का साधन बनते हैं। जिस मनुष्य को यह ज्वर होता है उसके रक्त में इसके असंख्य ज्वाराणु उत्पन्न हो जाते हैं। यदि तब उसे मच्छर काटले तो रक्त के साथ मच्छर के मुख में कितने ही ज्वराणु प्रविष्ट हो जाते हैं। इससे मच्छर को भी बड़ी पीड़ा होती है और उसके मुख का स्वाद खराब हो जाता है। अपने मुंह का "कड़वापन" दूर करने के लिये वह फिर काटता है। यदि अब भी उसने रोगी को ही काटा तो कुछ और ज्वाराणु उसके मुंह में पहुंच जाते हैं परन्तु यदि किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटा तो कुछ रोगाणु उसके मुंह से निकल कर स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ पहुंच कर यह गणना में बढ़ने लगते हैं और जो कल चंगा भला था आज ज्वर से दबोच लिया जाता है। इस प्रकार मनुष्य से मच्छर और मच्छर से मनुष्य में होता हुआ यह सैंकड़ों लाखों व्यक्तियों में फैल जाता है।

इस ज्वर के इलाज की समस्या यही है कि किसी प्रकार इन ज्वाराणुओं को मार डाला जाय। मनुष्य को ऐसी औषधि दी जाय जो इसके लिये विष का काम करे, परन्तु मनुष्य के लिये अमृत सिद्ध हो। चाहे कड़वा ही अमृत क्यों न हो। कुनैन एक औषधि है जिसमें यह गुण विद्यमान है। यह ठीक है कि जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध है यह कोई स्वादिष्ट अथवा रुचिकर औषधि नहीं है। इसकी खूबी यही है कि यह मनुष्य को मारे बिना ज्वराणुओं को मार देती है।

परन्तु रोग के इलाज से उसका न होने देना सर्वोत्तम है। इस ज्वर को अन्त करने का तरीका यही है कि इसके कीटाणुओं के वाहक मच्छरों का नाश कर दिया जाय। उन स्थानों पर जहां कि वर्षा बहुत होती है यह कार्य-सरल नहीं, परन्तु सब से भयानक प्रकार के मच्छर इन स्थानों में नहीं वरन् गरम देशों में होते हैं। यह अधिक करके दल दलों में होते हैं परन्तु जंगलों से दूर सूखे स्थानों पर भी पाये जाते हैं।

किस प्रकार इन मच्छरों को दूर किया जाय यह आजकल वैज्ञानियों के सामने बड़ा भारी प्रश्न है। इसके तीन उपाय हैं :—

१. इनके उत्पन्न होने और बढ़ने के स्थानों को दूर करना।

२ इनको अंडों सहित मार डालना।

३. एक ऐसा शत्रु का लाना जो कि इनको और अंडों को अपना भोजन बना डाले।

१. पहली विधि तो यही है कि दलदलों और ऐसे जलाशयों को जहाँ यह मच्छर रहते और फलते फूलते हैं रेत अथवा मिट्टी से भर देना चाहिये।

२ यह मच्छर खड़े हुये और सड़े हुये जलों में ही अंडे देते हैं (अतः ऐसे जलों पर यदि मट्टी के तेल की एक तह फैला दी जाय

तो यह समूल नष्ट हो जाते हैं। परन्तु ऐसे कितने ही जलाशय हैं जहां कि इन दोनों में से कोई भी विधि काम में नहीं लाई जा सक्ती। ऐसे स्थानों पर मच्छर भक्षी मछलियां ही एक मात्र उपाय हैं। कई प्रकार की मछलियां अपनी इच्छा अनुसार मच्छरों और उनके अंडों को खा जाती हैं, परन्तु हमें ऐसी मछली चाहिये जो कि इनको खाना ही अपना एक मात्र कर्तव्य समझें। जमव्युसिनो नाम की छोटी २ मछलियां हैं जो कि मच्छरों को बड़ी चाह और रुचि से खाती हैं। २० वर्ष पहिले हवाई प्रान्त के होनोलूलू नगर में मौसमी ज्वर का इतना प्रकोप था कि कुछ कहना नहीं। १९०४ में उपरोक्त मछली वहाँ के जलाशयों में पहुंचाई गई और इन्होंने तत्क्षण इनको मच्छरों से मुक्त कर दिया। यह सब प्रकार के जलाशयों में रह जाती है। दलदलों से लेकर, धान के खेत के जल सभी इसके अनुकूल हैं। यह नदियों द्वारा समुद्र की ओर भी नहीं जाती और दूसरी मछलियों को खाती भी नहीं। होनोलूलू से यह मछली फारमूसा, चीन, जापान, सभी स्थानों में भेजी गई हैं। जलों के सूखने पर यह दलदलों की मट्टी में घुस जाती है। यह मच्छर और मक्खी दोनों को ही खा लेती है। इस का रंग हलका भूरा होता है, मादा कोई ढाई इंच लम्बी होती है और नर कठिनता से एक इन्च। कोई १० मादा और १ नर के हिसाब से इनका जन्म होता है। मादा के शरीर में अन्डे सेये जाते हैं और मार्च से लेकर सितम्बर तक कोई ३० से ५० अन्डे होते हैं। जन्म के समय बच्चे बड़े चमकदार, पारदर्शी होते हैं। इनकी आंखें काली होती हैं और लम्बाई कोई इन्च का पाँचवा भाग।

यदि इन मछलियों को उन स्थानों के जलाशयों में जहाँ कि मौसमी बुख़ार का बड़ा प्रकोप रहता हो ले जाया जाय तो संसार के लाखों प्राणियों की जीवन रक्षा हो सकती है। समाज सेवक सभाओं को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

६. ज्वार भाटा का प्रयोग।

भूगोल अथवा भौतकी विज्ञान के विद्यार्थियों को पता है कि चांद द्वारा संसार के बड़े २ जलाशयों में हलचल मच जाती है। जलों के उतार चढ़ाव को ज्वार भाटा कहते हैं। पूर्णमाशी की रात को समुद्र के जलों में जो लहरें उठती हैं वह देखने योग्य हैं। कहीं २ तो यह ५० फुट तक ऊंची होती हैं। क्या इन लहरों से कोई काम नहीं लिया जा सक्ता? महाशय कूपर का विचार है कि बड़ी कैनेडा (अमरीका) के पास फन्डे खाडी में इस ज्वार भाटे को इस प्रकार काबू किया जा सका है कि जिस से ५ लाख घोड़ों की शक्ति प्राप्त हो सके।

इसी खाड़ी में दो तालाब हैं एक छोटा और दूसरा बड़ा। इन दोनों के बीच में और खाडी में टापुओं की एक श्रृंखला है जो कि इन के जलों को आपस में मिलने से रोकती। इन टापुओं के बीच में पतली २ नालियां सी हैं जिन में से कि ज्वार भाटा भीतर जा सक्ता है और फिर जल बाहर निकल सक्ता है। उत्तरी और बड़े तालाब का क्षेत्रफल १०६ वर्ग मील है और छोटे तथा निचले तालाब का ७६ वर्ग मील।

यहां पर भूमि की बनावट ही कुछ ऐसी है जिस से कि म. कूपर को यहां के ज्वार भाटे के जलों को काबू करने का विचार आया। वह कहते हैं कि मैं दोनों तालावों को टापुओं के बीच में बड़ी २ मोटी दीवारें अथवा बन्द बनाकर घेर लूंगा। मैं ज्वार भाटे के जलों को इस प्रकार काबू करूंगा कि बडे तालाब में उसकी ऊंचाई छोटे की अपेक्षा सदा ही अधिक रहे और जहां पर दोनों तालाब का जल मिलता है वहां पनचक्की लगादूंगा जो कि ऊंचाई से जल के नीचे गिरने से वरावर २४ घन्टे चलती रहे। ज्वार भाटे के जलों की गति इस प्रकार है कि वह फन्डे की खाड़ी से सदा बडे तालाब के भीतर जाते हैं और बडे तालाब से छोटे में होते हुये वाहर निकल कर पुनः उसी खाड़ी में पहुंच जाते हैं।

इस सारे कार्य पर ३००,०००,००० रुपया खर्च आयेगा। बन्दों की समस्त लम्बई १४५०० फुट होगी। इन बन्दों में दोनों तालाबों में जल की गहराई को इच्छानुकूल रखने के लिये खुलने और बन्द होने वाले दरवाजे होंगे। बड़े तालाब के लिये २० दर्वाज़े होंगे और छोटे के दस। जब बड़ा ज्वार भाटा उठेगा तो बड़े तालाब के दर्वाजे बन्द करदिये जायेंगे जिस से कि उसका पानी छोटे में लगातार जाता रहे। इस की गति इस प्रकार रखी जायगी कि यह शनैः २ यहां तक गिरे यहां से कि ज्वार भाटा के जल ने दर्वाजों के बाहर ऊपर को चढ़ना है। जब जल ऊपर चढ़ने लगेगा तो यह दर्वाज़े खोल दिये जायेंगे और इस चढ़ते हुये जल को पुनः बड़े तालाब में काबू कर लिया जायगा। इसी प्रकार छोटे तालाब के जलों की गति को नियमित किया जायगा कि जब जल ज्वार भाटे के कारण नीचे गिरने लगे तो छोटे तालाब में बड़े से आया हुआ सारा फालतू जल बाहर निकल जाय।

कुसुमोद्यान

१—चोर को पकड़ने की बेतार की मशीन।

जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने अभी एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार किया है जिससे फैक्टरी और खानों में काम करने वालों की चोरी अच्छी तरह से पकड़ी जा सके। इन फैक्टरी या खानों के द्वार पर विजली के तारों वाले फाटक लगे हुये हैं। और चौकीदार के सिर पर एक टोपसा पहिना हुआ होता है जिससे जब कोई मजदूर फाटक बाहर निकले तो उसे झट खबर पहुंच जाती है। बिजली की मशीन इस प्रकार बनी हुई है कि यदि कोई मज़दूर किसी धातु को अधिक ले आये तो उस की आबाज़ कान में होने लगती है। अतः कुछ हद से अधिक मज़दूर कहीं भी कोई धातु छिपावे तो झट पता लगजाता है; और इस ढंग से कीमती धातुओं और औज़ारों की चोरी पकड़ी जाती है। मशीन की

बनावट ऐसी है कि जेब में पड़े हुये कुछ सिक्के, जेबी चाकू और जेबी घड़ी के लिये घण्टी नहीं बजती।

२—मिश्रदेश की एक विशाल दानव मूर्ति

एक आश्चर्यजनक गाथा

ज्योति के पाठकों में से जिन्हों ने दुनियां के अद्भुत क्रित्रिम पदार्थों के वर्णन पढ़े होंगे और चित्र भी देखे होंगे उन्हें बहुत पुरानी मिश्र देश की एक विशाल मूर्ति जिस को (Sphinx of Giza) अर्थात् गीज़ा का दानव कहते हैं का ज्ञान होगा। यह मूर्ति ठोस पहाड़ के पत्थर को खराद् कर बनाई गई है जो कि १४३ फीट लम्बी है और ६० फीट ऊंची है। उसकी आकृति इस प्रकार है कि उस का शरीर तो शेर का सा है और शिर एक राजा का है जिसके सिर पर मुकुट है, जिस में राज्य-चिन्ह रूप एक सर्प की मूर्ति है। इस आकृति के मुख का सब से चौड़ा भाग गालों के आरपार तक १३ फीट ७ इञ्च है।

यह किस समय की बनी हुई है यह, मिश्र देश-सम्बन्धि-पुरातत्ववेत्ता अभी तक पता नहीं लगा सके हैं। एक पुरातत्व वेत्ता का मत है कि इतनी पुरानी है कि इतिहास इस का पता नहीं लगा सकता। एक समय था जब कि यह समझा जाता था कि यह शायद मिश्र राजाओं की १८ वीं पीढ़ी में बनाई गई होगी। लेकिन वृटिश म्युज़ियम (लंड़न के इजाइबघर) के एक पत्थर से हमें पता लगता है कि इस शिला में इस बात का उल्लेख है कि यह मूर्ति राजा च्योप्स के समय से पूर्व की है, और उसने इसकी मरम्मत कराई थी। जिस किसी ने इस विराट मूर्ति को बनाया था उसने उस पहाड़ी के दोनों ओर भी इस प्रकार खुदाई करवाई थी कि चारों तरफ के रेतीले मैदान के तल से नीचे गढ़े में यह मूर्ति स्थित रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय यह विचारा ही नहीं गया था कि आंधी से उड़ २ कर जंगल की रेत कभी आवेगी और धीरे २ गढ़े को भरदेगी, जिससे मूर्ति का बहुत भाग ढक जायगा। लेकिन इन हजारों वर्षों से यही बात होती रही है। लेकिन सौभाग्य की बात है कि ४ हज़ार वर्षों से जो मूर्ति सम्पूर्णतया दृष्टि गोचर नहीं होती थी वह अब सर्वाङ्ग में साफ २ दिखाई देने लगी है। क्यों कि छै महीने से अरबी लोगों के झुण्ड के झुण्ड बड़े परिश्रम से वहां से रेत हटाने में लगे हुये हैं, और वह इस के विशाल शिर को पत्थरों के अड़ाने का सहारा देने का भी प्रयत्न कर रहे हैं और दीवाल भी उठा रहे हैं ताकि धूल न पड़े। जिन्हों ने इस मूर्ति का चित्र पहिले देखा है उन्हें अब बिल्कुल स्पष्ट और सम्पूर्ण चित्र देख कर बहुत आश्चर्य होगा। इस मूर्ति के बड़े २ पंजे हैं जो कि ५० फीट लम्बे हैं, और उनके अगले पैरों से एक यज्ञशाला बनी हुई है, जहां पर बैठ कर सूर्य की पूजा होती थी। यहां पर एक शिला भी है। यह दोनों चीज़ें लाल पत्थर की बनी हुई हैं। इस शिला पर जो लेख है उस में यह आश्चर्य-जनक गाथा लिखी हुई है कि एक युवा राजकुमार टोपेमीज़ १९वीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। वह केम्फिस के इर्द गिर्द शेरों का शिकार किया करता था। एक दिन दो पहर को शिकार से

थका हुआ वह अधदवी हुई इसी मूर्ति के नीचे छाया में आराम करता सोगया। तो क्या स्वप्न देखता है कि सूर्य्य के देवता हरमेकिस—जिस का यह मन्दिर था—उस के सनमुख आया है और कहता है कि मेरे इस निवास स्थान से जिस में मैं मिट्टी से दवा पड़ा हूँ सारी मिट्टी निकलवादो तो तुम अवश्य राजा वनोगे। इसके आगे उसमें वर्णन है कि कैसे वह राज कुमार राजाटोथेमीज़ ४ था वना। और अपने राज्य के प्रथम वर्ष में ही उसने इस मूर्ति को भूमि से खुदवाया और साफ कराकर पूर्ववत् बनाया।

इस शिला पर जो लेख है, जो कुछ २ पढ़ा जाता है उससे पता चलता है कि यह मूर्ति केपूरोन ४ थे पीढी के राजा द्वारा (लगभग ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व) बनाई गई थी। जिसने पिरेमिड़ भी बनाये थे जो कि बडे पिरमिड से दूसरे दर्जे पर हैं और इससे पश्चिम की ओर ६०० गज की दूरी पर हैं। यदि यह बात सच हो तो यह मूर्ति सूर्य्य देवता हरमेकिस के भेष में उसी राजा केफेरोन का ही प्रतिविम्ब होगा।

पुरुषों की शोक जनक दशा

वेश्या का उत्तर

पूनाकी एक वेश्या का उद्धार करने का प्रयत्न पूनाके श्री के० टी० डांगेने किया था। वेश्याने उसका जो उत्तर श्रीडांगेको दियाथा वह बम्बई के "इंडियन सोशल रिफार्मर में छपा है। उसका भावार्थ यह है—"आप हमें वेश्या, स्वैरिणी और निर्लज्ज स्त्री कहते हैं। हम आप पुरुषोंसे घृणा करती हैं। आप लोगों ने ही तो हमारी यह दशा की है। आपने हमें कैद कर रखा। जीवन सफल करने का अवसर कभी नहीं दिया। वस्तुतः अवला वना रखा। और आप ही आज हमारी दशा पर दया करते हैं। विश्वास घातक पुरुष अब हमें ठग नहीं सकते। मेरी माँ वेश्या थी। वह बहुत ही सुशील स्त्री थी। उसे वाध्य होकर वेश्या बनना पड़ा। वह पतिव्रता स्त्री थी पर उसका पति उसे पीटा करता था। बेचारी सब अत्याचार चुपचाप सह लेती थी। एक दिन वह अपने घरमें अपनी 'रखनी' को ले आया और दुष्टने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया। स्त्री स्वभावतः सहनशील होती है पर सहनशीलता की कुछ सीमा होती ही है। इस सीमा के बाहर जाकर वह मायावनी हो जाती है फिर तो ईश्वर भी उसे रोक नहीं सकता। उस समय से मेरी मा ने वेश्या वृत्ति ग्रहण की—केवल जीविका के लिये नहीं पुरुष से बदला लेनेके लिये। उसने मुझे पुरुषोंसे घृणा करना उन्हें अपने जाल में फंसाना, उनको कुत्ता समझना; मौका मिलते ही ठग कर उन्हें भिखमंगे बनाना—सिखाया है। अब आप हमारा उद्धार करना चाहते हैं। कैसे कीजियेगा? क्या हमको अनाथालय में भेजियेगा? या शादी के सबसे बुरे बांधनमें बाधियेगा? शादी क्या है, नकाली है। इसमें अब पवित्रता कुछ भी नहीं रह गयी है। जब अग्नि के सन्मुख की हुई प्रतिज्ञाओं का स्मरण पुरुष नहीं रखते, स्त्रियों को अपनी क्रीत दासी समझते हैं, तब विवाह पुरुषों की इन्द्रियलिप्सा चरितार्थ करने के साधन के सिवा और क्या हो सकता है? हम स्वतंत्र हैं और अपनी स्वतन्त्रताका उपभोग करती हैं। हमारा व्याह ईश्वर से होता है आदमी से नहीं होता। आप पुरुष कुछ नहीं करते, सिर्फ बातें बनाया करते हैं। हम लोग लोक सेवा करती हैं। आप हमारा उद्धार करेंगे? जरा उन असंख्य आवारों और ब्रह्मचारी कहलाने वालों की भी सोचिये जिनको हम लोग रोक रखती हैं। हम न हों तो क्या समाज पर आक्रमण करेंगे। क्या अब भी हमारे उद्धार का विचार है।

वनिता विनोद

(स्त्री जगत्)

दिल्ली विश्वविद्यालय की बी० ए० की परीक्षा में सर्व स्त्री-उम्मेदवारों में प्रथम श्रीमती राजदुलारी जी हुई हैं जिन्हें एक ख़ास पारितोषिक भी मिला है।

अलीगढ़ में डिपुटी कलेक्टर रायसाहब लाला बृजलाल की अध्यक्षता में हिन्दू विधवाओं की रक्षा के लिये एक विधवा संरक्षणी सभा स्थापित हुई है। उस में विधवाओं को शिल्प उद्योग धंधे सिखाने का प्रबन्ध किया गया है तथा जो पुनर्विवाह करना चाहें तो उसका भी प्रबन्ध होगा।

बिजनौर ज़िले में शेरकोट ग्राम में एक ६६ वर्ष के बुड्ढे ने १६ वर्ष की युवा बालिका के साथ विवाह किया। ६२ वर्ष के बुड्ढे ने १२ वर्ष की बालिका के साथ विवाह किया। क्या अंधेर मचाया है?

तुर्किस्तान में तीन महिला विमान उड़ाने की शिक्षा लेने के लिये हवाई सैन्य में दाखिल हुई हैं।

कुमारी चन्द्रवती शुक्ला बी० ए०

ज्योति की पाठिकायें कुमारी चन्द्रवती जी शुक्ला बी० ए० से बखूबी परिचित हैं क्यों कि उन के लेख समय २ पर ज्योति में निकलते रहते हैं। यह देवी इस वर्ष इलाहाबाद बिश्व विद्यालय की बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई हैं। आप का विवाह हमारे ज्योति के पाठकों के पूर्व परिचित प्रसिद्ध लेखक प्रो० सत्यव्रतजी के साथ १५ जून को होना निश्चित हुआ है। परमात्मा इन दोनों के सम्मेलन को सुखी बनावें।

चर्खा के विरुद्ध आन्दोलन

मद्रास के शिक्षा विभाग की एक निरीक्षिका ने ब्राह्मण लड़कियों के चरखा कातने के विरुद्ध आज्ञा निकाली है।

शिकागो में कुमारी वायोलेट पेन्डरसन एक निग्रो (काली) अमरीकन महिला हैं। वह लगभग तीन वर्ष से इलिनो के हाईकोर्ट में वकालत कर रही थीं। यह पहिली ही निग्रो महिला हैं जिन्हे अमरीका के संयुक्तराज्य के सुप्रीम कोर्ट में बारिस्ट्री करने की आज्ञा मिली है। अमरीका में निग्रो जाति दासत्व में दबी थी तथापि उस में ७० प्रति सैंकड़ा जन पढ़ लिख सक्ते हैं। और नीग्रो स्त्रियां डाक्टर, नर्स, न्याय धीश और अध्यापिकायें बनकर योग्य बन रही हैं।

हर्ष का विषय है कि हमारे देश की देवियां भी सार्वजनिक कार्य्यों में भाग ले रही हैं। कुमारी सोनुताई चवन भारतीय महिला विश्वविद्यालय को स्नातिका बन कर कोल्हापुर में अहल्याबाई कन्यापाठशाला की मुख्याध्यापिका का कार्य्य करती रही हैं। अब वह कोल्हापुर की म्यूनिसिपैलिटी की कमिश्नर नियुक्त हुई हैं।

क्या कभी तुम जागोगे?

ले०—कुमारी पुरुषार्थवती काश्यप

शताब्दियां बीत गईं। संसार का तख्ता उल्ट पल्ट हो गया। रक्त के स्रोत प्रवाहित हो उठे और फिर शुष्क प्राय हो गये। जगाने वाले जगा गए। उन्होंने सहस्रों आवाज़ें दीं, किन्तु सोने वाले न उठे। ओह, ऐसी भयंकर निद्रा तो कभी न हुई थी जैसी अब हो रही है।

कैसा विकराल रूप धारण किये यह निद्रा देवी तुम पर अपना आधिपत्य जमा रही है। तुम्हारे सामने ऐसे पाशविक अत्याचार कई बार अपना भीषण ताण्डव नृत्य कर चुके और कर रहे हैं। किन्तु तुम्हारी नींद न टूटी। हाय क्या यह नींद कभी न टूटेगी, क्या तुम कभी जागृत अवस्था को प्राप्त होवोगे; क्या इस अत्याचार का अन्त होगा?

तुम्हारी मातृभूमि परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ गई है। दृढ़ बंधनों से बंध गई है। उस के हत भाग्य पुत्र निद्रा देवी को आलिंगन किये शयन कर रहे हैं। क्या वह पुनः स्वतंत्रता को अपनी सहचरी बनाएंगे? क्या तुम पर वह विश्वास कर सकती है कि तुम्हारे हाथों उसका उद्धार होगा? क्या उसका छीना हुआ आधिपत्य उसे फिर से प्राप्त होगा? क्या उस के मुख पर वही पूर्व कान्ति प्रदीप्यमान होगी?

तुम पर आशा रखे हुए तुम्हारे भावी कृत्यों की प्रतीक्षा करते हुए तुम्हारे कार्यों पर दृष्टिपात करते हुए, आज भारत में करोड़ों विधवा अबलाएं वैधव्य की दुःसह यंत्रणा को सहन करती हुईं, उसे अपनी चिर संगिनी बना कर बैठी हैं। कितने ही अत्याचारों को सहन कर रही हैं। अपने मनोभावों को दबा कर रोदन कर रही हैं। उनके इस क्रान्तिकारी, हृदय विदारक चीत्कार को सुन कर तुम्हारी निद्रा, जिसे तुम ने अपनी सहचरी बना रखा है, क्या कभी दूर होगी? जिनकी सर्द आहों से तुम्हारी जाति अधोगति को प्राप्त हो रही है, क्या उन के मनोभाव प्रगट होंगे? क्या उनका इन भयानक अत्याचारों से पल्ला छूटेगा। क्या उन का रोदन बंद हो कर कभी उन अबलाओं के मुख पर हास्य की रेखा प्रस्फुटित होगी। क्या यह बाल-विवाह की कुरीति कभी दूर होगी?

और भी ज़रा आंखें खोल कर देखो, आज छः करोड़ अछूत भाई जिन्हें तुमने अधम अन्त्यज मान कर छोड़ दिया है, अपनी दोनों भुजा पसार कर के तुम्हें कह रहे हैं कि हमें गले से लगावो २। किन्तु तुम तो अपनी निद्रा में ही मस्त पड़े हो। अरे? सात करोड़ तो आगे खो दिये क्या इन्हें भी खो दोगे? क्या तुम्हारी निद्रा (अज्ञानता) रूपी नदी के प्रवाह में यह भी प्रवाहित हो जाएँगे।

नीन्द के कारण तुम मतिहीन से हो रहे हो। भाई २ हो कर अपने आप को विद्वेष की प्रज्वलित अग्नि में भस्म कर रहे हो। चार सहस्र भागों में बंट कर परस्पर विरोध के बीज बो रहे हो। जाति पांति के झूठे बंधनों में बंध कर अपनी जाति की अधोगति कर रहे हो। अपने

पूर्वजों की चिर संचित मर्य्यादा को निद्रा की बाढ़ में बहा रहे हो।

तुम्हारे अत्याचारों से अन्त पाने के लिए कई भारतीय प्रवासी होगए। कई विधर्मी हो गये। क्या वह दिल से हुए? वह तो तुम्हारे जाति पांति के बखेड़े से छूटने के लिए अपनी प्यारी मातृभूमि को, अपने प्यारे धर्म्म को छोड़ रहे हैं। क्या वह आशा रख सकते हैं कि तुम इस पिशाचनी निद्रा को दूर से ही नमस्कार कर के उन्हें फिर से अपनाओगे? क्या उन्हें गले से लगावोगे?

प्यारे हिन्दू भाइयो? अब भी कुछ नहीं गया, जो हो चुका उसके लिए पश्चात्ताप के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। किन्तु अब भी अपनी कान्तिहीन दुखिया माता का उद्धार करो। विधवाओं की पुकार को सुनो बालविवाह रूपी भयंकर कीट की जड़ उखाड़ डालो। जाति पांति के मिथ्या बंधनों को तोड़ो। महर्षि वशिष्ठ की संतान को गले से लगावो। परस्पर प्रेम करो। यही तुम्हारे लिये श्रेय पथ है। इसी से तुम्हारी प्यारी आर्य्य जाति उन्नत होगी।

भारत में मजदूर स्त्रियों की दशा

'दी इन्डियन ऐण्ड ईस्टर्न इञ्जिनियर' नामक पत्र लिखता है कि :—

"हमें रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स ने श्रीमती लेडी चैटर्जी ने जो निबन्ध फैक्टरी आदि में काम करने वाली स्त्रियों और बच्चों के सम्बन्ध में पढ़ा था। उसकी एक नकल भेजी है। इस निबन्ध में उक्त देवी ज़ी ने यह बतलाया है कि स्त्रियों ने खास करके चाय, कोयला और रुई, सन इत्यादि के व्यवसाय में ही दिन पर दिन अधिकाधिक भाग लिया है। इधर ३० वर्षों में इन कामों में लगने वाली स्त्रियों की संख्या तो पंचगुनी हो गई है और बच्चों की तिगुनी। खानों में तो १९२२ सन् की यह रिपोर्ट है कि लगभग ४० हजार तो जमीन के अन्दर और २५ हज़ार जमीन के ऊपर के कार्य्य में लगी हुई थीं, और बच्चों की संख्या ८०० तो नीचे और ३२५० ऊपर के कार्य्य में थी। इन स्त्रियों का फैक्टरी में काम करने जाने का मुख्य कारण तो यह दिया गया कि उनकी ग़रीबी उन्हें खींच ले गई और यह भी कहा गया है कि भारत में उच्च घरानों को छोड़ कर सभी स्त्रियां थोड़ा बहुत रोज़ी कमाने का काम करती हैं। बहुत सा भाग तो किसानों में लगा है। लेकिन गांवों में जीवन निर्वाह के साधन अच्छे नहीं होते, सफाई का प्रबन्ध नहीं होता, स्थान गन्दे होते हैं, जमीन की पैदावार या उस काम की मज़दूरी कम मिलती है और रुपये उधार देने वाले भी तंग करते हैं। हिन्दू और मुसलमान कानूनों के हिसाब से जमीन का बंटवारा उत्तराधिकारियों में करते २ दो तीन पीढ़ी के बाद नाम मात्र की ज़मीन जोतने बोने के लिये रह जाती है अतः लोग धन उपार्जन करने के लिये, अपनी दुर्दशा से बचने के लिये तथा अधिक स्वतंत्र बनने के लिये अन्य व्यवसायों में लगते हैं। पाश्चात्य देशों में भी यही तीन कारण लोगों को प्रेरणा करते हैं।

लेडी चटर्जी ने कानपुर, बम्बई, कलकत्ता आदि की मिलों के सम्बन्ध में यह कहा कि वह

साफ और हवादार जगह हैं लेकिन बहुत से रुई ओटने और पूनी बनाने के स्थान अच्छे नहीं हैं। मिलों में स्त्रियों का काम बहुत थकावट का नहीं है क्योंकि एक तो स्थान मशीनों के शोर से दूर पड़ता है दूसरा उनका काम खास कर उन विभागों में है जहां रोल करते और चक्कर चलाते हैं। बच्चों की दशा अधिक शोचनीय है क्योंकि उनका काम धूल और मिट्टी में तथा मशीनों के शोर गुल में बोबिन आदि चीजें उठाने लाने का है। रुई की मिलों की अपेक्षा सन की मिलों में स्त्रियों की दशा अच्छी है। वहां पर स्त्रियां बनाने में बड़ा भाग लेती हैं क्योंकि आदमियों को बहुत भारी काम में लगाया जाता है लेकिन कई एक विभागों में सारा कुटुम्ब इकट्ठा भी काम करता है।

कोयले की खानों में जमीन के नीचे के कामों में बच्चों को अब नहीं लगाते। वहां पर पुरुष तो कोयला खोदते हैं और स्त्रियां टोकरे भर २ कर २०० गज की दूरी पर तथा ऊंची चढ़ाई पर ले जाती हैं। और भार का बोझ ६० या ८० पौण्ड होता है। स्त्रियों को जमीनके नीचे के कार्य्य से हटाने का प्रश्न १८९४ से सोचा विचारा जा रहा है परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई है। बंगाल के चाय बागों में १९२१ में लगभग २१५,००० और आसाम के चाय बागों में ४००,००० जन थे जिनमें आधी स्त्रियां थीं और लड़कियां थीं। चाय के व्यवसाय में मकानों के अन्दर तथा खेतों में भी काम होता है।

मजदूर कहां से आते हैं इस पर विचार करते हुये लेडी चटर्जी ने बताया कि जहां कहीं भी मज़दूर हैं वह बहुत दूर २ से आते हैं। बंगाल में तो बहुत से मज़दूर संयुक्त प्रान्त के हैं। काम करने वालों को जब विभक्त किया तो पता लगा है कि ७० से ऊपर भिन्न २ जातियों के लोग इनमें लगे हैं और सभी वंशों और देशों के लोग हैं, लेकिन अधिकतर तो गांवों से आये हुये किसान या कारीगर हैं जिनका अपने २ काम से बचे हुये समय को इन फैक्टरियों में लगाकर कुछ अधिक आमदनी पैदा करना उद्देश्य है। दार्जिलिंग के ज़िले में आधे मज़दूर तो वहीं के हैं, शेष नैपाल के आये हुये हैं। आसाम में चाय बागों का तो सारा काम बाहर के मज़दूरों पर ही निर्भर है, कोयलों की खानों में मज़दूर तो वहीं के संथाल और बौरी जाति के लोग हैं किन्तु शेष लोग संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रदेश के हैं।

काम करने वालों की दृष्टि से तो किसानी और कोयले की खानों का काम साथ २ अच्छा चल रहा था क्योंकि जब किसानों को काम में लगने की बड़ी ज़रूरत हुई तो कोयले का काम छोड़ दिया गया। कोयले की खानों में तथा चाय बागों में तो सारा कुटुम्ब इकट्ठा काम कर सकता था, अतः अब बच्चों से काम न कराने के कारण सारे परिवार को नौकरी मिलने का निश्चय तो नहीं रहा।

रुई, सन इत्यादि कच्चे माल के व्यवसाय में दशायें आगे से अच्छी हैं। काम के घन्टे रोजाना ११ या हफ़्ते के ६० हैं और साथ में आराम का भी समय मिलता है। रात को फैक्टरियों में स्त्रियों का रहना रुकगया है। १५ दिन की मजदूरी रखने के बाद मजदूरी माहवारी बंट जाती है। अहमदाबाद में एक हफ़्ते की मज़दूरी दबाकर हर १५ वें दिन मजदूरी बंटती है।

बम्बई के प्रान्त में इस का कोई एक नियम नहीं है, क्योंकि वहां कहीं पर मासिक, कहीं १५ वें दिन, ८ वें दिन या रोज २ भी वेतन बंटता है। बम्बई में १९२३ में स्त्रियों का वेतन १७) रुपये औसत था और बच्चों का लगभग इस का आधा, अहमदाबाद में इससे कुछ अधिक था लेकिन शोलापुर में लगभग ८) रु. ९ आना मासिक था।

१९२४ की बंगाल की सन के व्यवसाय की रिपोर्ट से पता लगता है कि कपड़े का काम करने वाली स्त्रियों को ३।।।≡) से ७।।, तक और तैयार करने वालियों को २।।) से ४) तक प्रति सप्ताह मिलते थे। और बच्चे को प्रति सप्ताह १।।-) से २।।) तक मिलते थे।

इन मजदूरों के रहने की जगह का प्रश्न बड़ा जटिल था और बम्बई में जितनी तंग जगह है उसका सबूत यह था कि बच्चों की मृत्यु संख्या प्रति हज़ार ४१९ थी। लेकिन बम्बई में सारे बच्चे बाहर से ही लाये गये हैं। अतः परिणाम निकालते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये। बंगाल के सन की मिलों के मजदूरों के लिये रहने के स्थान का प्रश्न इतना जटिल नहीं जैसा कि बम्बई की रूई के कारखानों में है। वहां जगह खुली है चाहे कारखाने खुलने की खबर होते ही पास की जमीन के दाम बढ़जाते हैं। इस लिये सन के कारखाने के पास ही मट्टी के झोपड़ों की आबादी बनाकर यह मज़दूर लोग रखे जाते हैं और उनके लिये मालिकों ने जो मकानात बनाये होते हैं जो साफ भी होते हैं उन में नहीं रहते।

कोयले की खानों के जिलों में काम करने वालों की हाज़री अनिश्चित सी रहती है क्योंकि वह अपने खेतों की भी—जो दूर २ होते हैं—देखभाल की फिकर रखते हैं अतः मालिक लोग उनके रहने के स्थान नहीं बनाते।

लेडी चटर्जी ने बड़ा बल इस बात पर दिया है कि इन काम करने वाली स्त्रियों की देख भाल अच्छी होनी चाहिये, उनको प्रसव के दिनों का वेतन मिलना चाहिये और रखने का स्थान साफ सुथरा होना चाहिये। जिससे कि वह घरेलू आराम और रक्षा के लिये पुरुषों के साथ अनुचित सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता से प्रेरित होकर निन्द्य न बनें। उन्हों ने बड़ा जोर लगाया है कि अधिक अफ़सर लोग रक्षा का प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त किये जांय और घरेलू जीवन की प्रथा को उन्नत किया जाय जो कि स्त्रियों के फैक्टरी में कामों में लगने के कारण दिन पर दिन घट रही है।

अपनी बहिनों को सन्देशा

लेखिका—ऐन मार्ग्रेट होमग्रेन

(स्वीडन में स्त्रियों के मताधिकार फैलाने वाली देवी)

प्रिय भारतीय बहिनो,

तुम नहीं समझ सकीं कि तुम्हें यह पत्र लिखते हुये मुझे कैसा आनन्द आ रहा है। श्रीमती बुटन्शन, महाशय कालिदास नाग की एक मित्र ने मुझ से अपने सम्बन्ध में तथा स्त्रियों के मताधिकार के विषय में कुछ बातें लिखने का आदेश किया है, क्योंकि मुझे स्वीडन की स्त्रियों के मताधिकार को उत्पन्न करने वाली कहा जाता है। मुझे विश्वास है कि मेरे लेख से तुम्हें अवश्य लाभ होगा यद्यपि दूसरी स्त्रियों के कामों

के वर्णन करने में मुझे इससे अधिक आनन्द होता।

मैं १८५० ई० में एक गांव में पैदा हुई थी, मेरे पिता माता एक प्राचीन अमीर घराने के थे। मेरे पिता अपनी जायदाद के प्रबन्ध का भार लेने से पहिले ही राजनीति कुशल थे। अतः वह दूसरे देशों से प्रेम करना जानते थे। राजनीति में वह अपरिवर्तन दल के थे लेकिन स्त्रियों के अधिकारों का जहां प्रश्न हो तो वह कई अंश में बहुत बढे हुये थे। उन्हीं से मुझ में राजनीति के लिये रुचि तथा अपने देश वासियों के लिये प्रेम का भाव उत्पन्न हुआ। जब मैं १७ वर्ष की थी तब उनका देहान्त हो गया। यद्यपि मेरा और उन का ५० वर्ष का अन्तर था तथापि वह मेरे केवल पिता ही न थे वरन मेरे सर्वश्रेष्ठ साथी भी थे।

१९ वर्ष की अवस्था में मैंने फ्रिथ आफ़ होमग्रेन के अपसला विश्वविद्यालय के एक प्राणी-जीवन-शास्त्र के प्रोफ़ेसर से विवाह किया। वह बड़ा चतुर और सत्य प्रिय मनुष्य था, प्रायः ऐसे आदमी बहुत कम हुआ करते हैं। उसने ही मुझे जीवन का बड़ा उदार भाव ग्रहण करना सिखलाया जिसे मैंने अब तक रखा है, और यह मेरे बुढ़ापे मे भी बढ़ता ही गया है।

मेरे ९ बच्चे हुये हैं। इतना बड़ा कुटुम्ब, और बड़ा भारी गृह प्रबन्ध स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव डालते हैं अतः यह सब कभी २ मेरे लिये बहुत अधिक भार बनजाते थे। मेरे और घरेलू धंधों के अतिरिक्त एक काम और भी था, वह यह कि हर पन्द्रहवें दिन हमारे घर पर विश्वविद्यालद के विद्यार्थियों का सहभोज होता था। लेकिन मैं इन दुनियावी झगड़ों के वशीभूत होकर दुःखी न होती वरन अपनी आत्मा की शान्ति, बाजा, साहित्य और आदर्श सामाजिक कार्य्यों में लगकर करती थी। मेरे अध्यात्मिक जीवन के लिये अति आवश्यक मैत्री तो स्वर्गवासी नार्वे निवासी कवि और लेखक एक सज्जन जार्नस्ट जर्नी जार्न सन तथा उनकी धर्मपत्नी के साथ मित्रता थी।

मैं यह स्वीकार करती हूं अधिकांश में पुरुष ही हैं जिन्होंने मुझ में परमात्म सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि में सहायता दी है लेकिन इसके दो अपवाद हैं। एक तो मेरी बहिन है जिसने मुझे सारी जिन्दगी बड़ी सहायता दी है और दूसरी एलन की नामक प्रसिद्ध लेखिका हैं।

मेरे विचारों के घुमाने का श्रेय अधिकतर जार्नसन को ही है। उसका स्त्रियों में तथा उनकी सामाजिक स्थिति में विश्वास इतना अटल था कि उससे मुझमें भी आत्मविश्वास पैदा हुआ जिसका कि पहिले बिल्कुल अभाव था, लेकिन व्याख्यान देने वालों के लिये इस गुण का होना बड़ा आवश्यक है। बहुत देर तक तो मुझे पूरा निश्चय रहा कि मैं किसी काम की नहीं हूँ।

अपने पति की मृत्यु के ४ वर्ष बाद मैं स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम में रहने लगी। सन् १९०१ में मैं एक महिला-शान्ति-समिति की उप-प्रधाना चुनी गई। दूसरे वर्ष मुझ पर स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन का बहुत काम आ पड़ा क्योंकि हमारे पार्लियामेन्ट में कार्ल लिडज़न, स्टाक होम के मेयर ने स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश

किया जिसके कारण यह विषय बहुत ही आकर्षक बन गया था। स्त्रियों के मताधिकार प्रचारिणी सभा बनाई गई जिसकी मैं उपप्रधाना बनाई गई। अपने कार्य्य को सिद्ध करने के लिये हमें पता लग गया कि यहां पर स्त्रियों को जागृत करने तथा इधर रुचि दिलाने के लिये बड़े परिश्रम की जरूरत है। परन्तु बिना धन की सहायता के तथा व्याख्याताओं के यह काम कैसे हो? सारे देश में घूमने का भी समय किस के पास है?

मेरे आठों बच्चे अब बड़े हो चुके थे और घर से बाहर जा चुके थे। अतः मुझे कोई बन्धन न था। केवल बन्धन यही था कि मैं अपने आपको व्याख्यान देने के बिल्कुल अयोग्य समझती थी। जब मैं व्याख्यान वेदी पर चढ़ी तो ऐसा मालूम होता था कि मानो शूली पर चढ़ रही हूं तथापि अन्तरात्मा से आवाज़ उठती थी कि यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास था कि स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त करना उनके लिये राज्यकार्य्य तथा सार्वजनिक कार्य्य में पुरुषों के समान जिम्मेदारी से भाग लेने का कार्य्य प्रारम्भ करने की कुञ्जी है। इन कामों को मैं स्त्रियों के लिये इतना ही आवश्यक समझती थी जितना कि राज्य की उन्नति के लिये।

(शेष फिर)

× × × ×

कन्या गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य

हर्ष का विषय है कि टाइफाइड के तीनों रोगी स्वस्थ हो रहे हैं। एक को दुबारा फिर ज्वर होगया था और जीवन संकट था किन्तु परमात्मा का बड़ा धन्यवाद है कि वह भी अब स्वस्थ होरही है। इन रोगियों के लिये श्रीमान् डाक्टर तुलसीराम जी ने बड़ा कष्ट उठाया है और डाक्टर सुखदेव जी ने भी बड़ी सहायता दी है। जिसके लिये उक्त दोनों डाक्टर धन्यवाद के पात्र हैं। अन्य ब्रह्मचारिणियों को सुरक्षित रखने के लिये टाइफाइड ज्वर के रोकने के टीके भी सब को करा दिये गये हैं। यद्यपि इस टीके के कराने में व्यय बहुत हुआ करता है किन्तु श्री० डाक्टर तुलसीराम जी के पुरुषार्थ से हेल्थ आफिर दिल्ली ने मुफ्त में ही वैक्सीन मंगवादी है। आशा है कि अब कम से कम दो वर्ष तक इस रोग की शिकायत यहां न होगी।

साधारणतया कन्यायें आजकल स्वस्थ ही हैं परन्तु एक आध को मलेरिया ज्वर या गर्मी से ज्वर हो ही जाता है। शायद ऋतु का यह प्रभाव है।

षाण्मासिक परीक्षायें

षाण्मासिक परीक्षायें समाप्त हो चुकी हैं परन्तु कार्य्य भार से अभी तक परीक्षा का परिणाम प्रकाशित नहीं किया जासका है। एक सप्ताह तक प्रकाशित होगा। अब कन्यायें दैनिक पठन पाठन में लग गई हैं और वर्ष की

समाप्ति से पूर्व २ अपना कोर्स समाप्त करने का प्रयत्न कर रही हैं ।

अध्यापिकायें

प्रायः प्रत्येक समाचार पत्रों में अध्यापिकाओं के लिये विज्ञापन निकाले गये हैं परन्तु अभी तक कोई यहां पर आई नहीं हैं । यद्यपि पत्र व्यवहार बहुतों से हो रहा है लेकिन निश्चय रूप से अभी कुछ नहीं हुआ है । आशा है कि शीघ्र ही यहां कार्य्य कुशल अध्यापिकायें आजावेंगी और कार्य्य सुचारु रूप से चलता रहेगा ।

लाडकुंवर गृहप्रबन्ध विभाग

महराजकुमार उम्मेदसिंह शाहपुर मेवाड़ की धर्मपत्नी कुंवरानी लाडकुंवर जी ने कन्या गुरुकुल को एक सहस्र रुपया इस लिये प्रदान किया है कि यहां पर कन्याओं को गृहप्रबन्ध सम्बन्धी विषयों की शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जा सके । इस की स्कीम बनाई जा रही है और उसके अनुसार शीघ्र ही कार्य्य प्रारम्भ होगा । कुंवरानी जी की इस उदारता के लिये बड़ा धन्यवाद है और आशा है कि यह उदारता उत्तरोत्तर बढ़ेगी और आप अपनी जाति के उत्थान में अच्छा भाग लेकर अपना एक चिरस्मरणीय स्मारक बना कर पुण्य और यश की भागी बनेंगी ।

कन्या गुरुकुल का स्थायी भवन

गत मास में संरक्षक सभा के मंत्री की ओर से ज्योति में एक सूचना प्रकाशित हुई थी कि कन्या कुरुकुल को कहां बनाया जाय ? और संरक्षकों की सम्मति पूछी गई थी । हमें मंत्री संरक्षक सभा से ज्ञात हुआ है कि प्रायः करके सभी पत्र जो उनके पास आये हैं उनमें दिल्ली से हटा कर इसे लेजाने का प्रस्ताव है । कई महाशय तो इतने अधीर हुये हैं कि उन्होंने कन्या गुरुकुल कार्यालय में भी लिख भेजा है कि इसे शीघ्र यहां से हटाया जाय । परन्तु एक बात जो ध्यान में रखनी चाहिये वह प्रायः सभी लोग भूल गये हैं । स्थायी भवन के लिये रुपये की आवश्यकता होगी वह कहां से आवे ? कन्या गुरुकुल की अधिकारिणी सभा यदि इस सम्मति को आज स्वीकार करले तो प्रश्न यह है कि हमारे पास साधन भी हैं या नहीं ? अतः हम आर्य्य पुरुषों विशेषतया संरक्षकों से अपील करते हैं कि जिस उदारता के साथ उन्होंने सम्मति भेजी है उसी उदारता से यह भी क्रियात्मक रूप से दर्शावें कि उन्हें सचमुच इस के लिये ध्यान है । यदि मान लिया जावे कि जमीन दिल्ली या हरिद्वार में भी ली तो विल्डिंग कैसे बने जब तक कि रुपया पर्य्याप्त न हो । यह कार्य्य एक मनुष्यका है भी नहीं । अतः सारी शक्ति लगा कर इस कार्य्य को पूरा करना पड़ेगा ।

स्थायी भवन के लिये दान ।

हमारे एक संरक्षक डाक्टर राधाकृष्ण जी प्रिन्सिपल मेडिकल कालेज गुरुकुल कांगड़ी ने हमें ११००) रुपया दान दिया है कि उन की स्वर्गीय माता की स्मृति में स्थायी भवन में कमरा बनवाया जाय । हम उक्त डाक्टर जी के बड़े कृतज्ञ हैं । हमें पूर्ण आशा है कि हमारे अन्य संरक्षक भाई और बहिनें शीघ्र ही इनका

अनुकरण करेंगे और सूचनायें भेजना प्रारम्भ करेंगे कि स्थायी भवन के बनाने में वह क्या २ सहायता देंगे । जितनी जल्दी और अधिक राशि में सहायता मिलेगी उतनी ही जल्दी स्थायी भवन बनाने का प्रश्न हल होगा ।

कन्या गुरुकुल को दिल्ली से शीघ्र हटा लेने का केवल पत्रों द्वारा परामर्श दे देना ही कार्य्य सिद्धि के लिये पर्य्याप्त नहीं है ।

ज्योति के लिये ५० स्थायी ग्राहक:--

इस अंक से ज्योति का ७वां वर्ष प्रारम्भ होता है कई बार ज्योति के लिये ग्राहक बनाने तथा अन्य प्रकार से सहायता देकर स्थायी बनाने का प्रस्ताव हमारे पाठकों के सामने आचुका है, क्योंकि ज्योति को प्रारम्भ से ही बहुत घाटा हो रहा है । इस घाटे को कन्या गुरुकुल के ऊपर डालना उचित नहीं प्रतीत होता । और ज्योति के प्रेमियों को ज्योति को चलाना अभीष्ट भी है क्योंकि हमारे पास कई ग्राहकों के पत्र आये हैं कि इसे बन्द न करना हम से जो सहायता हो सकेगी करेंगे । इस दशा में एक उपाय इस के स्थायी बनाने का बहुत अच्छा है और यदि पाठक पाठिकायें ध्यान दें तो बहुत शीघ्र इस की दशा सुधर जाय और उन पर बोझ भी न पड़े ।

वह उपाय यह है कि ज्योति के कम से कम ५० ऐसे ग्राहक बन जावें जो ४॥) रु० वार्षिक न देकर १००) एक दम देकर इस के स्थायी ग्राहक बनें । उन को जीवन भर ज्योति मिला करेगी । उनका रुपया जमा रहेगा और सूद ज्योति को दिया जायगा । यदि दुर्भाग्यवश ज्योति कभी बन्द करनी पड़े तो उनकी सम्मति से उन के इस दान का उपयोग किया जायगा । यह रुपया कन्या गुरुकुल के कोष में ज्योतिफण्ड में रहेगा । इस रुपये के ब्याज से ज्योति के वार्षिक घाटे का कुछ अंश पूरा करने में मदद हो सकेगी । दूसरी बात यह है कि प्रत्येक पाठक और पाठिका कम से कम दो, एक ग्राहक तो अवश्य बना कर ही चैन लें, और जबतक एक भी ग्राहक न बना लें तबतक अपने दिल में सोचें कि हमने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है । तो उन के इस लगन का फल अवश्य मीठा होगा । तीसरी बात यह है कि कन्या गुरुकुल का प्रत्येक संरक्षक इसका ग्राहक अवश्य बने, चाहे वह हिन्दी जनता हो या नहीं । प्रायः करके सभी के घर में देवियां पढ़ने वालियां होती हैं, यदि न हों तो किसी शिक्षणालय को ही भिजवादें । यदि इतना कार्य हो सके तो अवश्य यह पत्रिका स्थायी बन जावे ।

हम ज्योति की सहायता क्यों करें

अब प्रश्न यह हैकि हम ज्योति की सहायता क्यों करें ? कई लोग कहते हैं कि उस से अच्छे पत्र, पत्रिकायें भी हैं उन्हें क्यों न मंगायें ? इस में क्या है ? उन को उत्तर यह है कि प्रथम तो ज्योति ने कई विचार ऐसे फैलाये हैं जिनका प्रचार समाचार पत्रों की सृष्टि में इस से पहिले नहीं था और यदि इसे साधन सम्पन्न बनाया जाता तो यह अबतक बहुत ही लाभ दायक बन जाती । दूसरी बात यह है कि कन्या गुरुकुल को मुख पत्रिका भी चाहिये और यह बनी बनाई पत्रिका स्थिर रह जाय तो चलाने का

प्रारम्भिक व्यय आदि बहुत व्यय बच जाता है। तीसरी बात यह है कि इस की बड़ी उपयोगिता है। यह धार्मिक सामाजिक तथा आत्मिक विचारों के फैलाने तथा पुष्ट करने में बड़ो सहायता दे रही ही! पत्रिकायें बहुतेरी हैं, और सुन्दर भी हैं। किन्तु आर्य्यसमाज अपनी छाती पर हाथ रख कर देखे कि ज्योति की टकर की पत्रिकायें आर्य्य समाज में कितनी हैं? ईसाई मिशनरी अपने मिशन के प्रचार में क्या कुछ नहीं करते? उन में लोग अपने काम के चलाने के हेतु ही अपने लिये अनावश्यक भी चीज़ों को खरीद लेते हैं क्योंकि वह समझते हैं कि हम जहां अपनी सारी आमदनी अन्य कई प्रकार से व्यय कर लेते हैं वहां धर्म के काम में कुछ खर्च कर दिया तो कोई भार न पड़ा; और उधर बहुतों के इस भाव से प्रेरित होकर खरीदने पर मिशन का काम चल गया। हम अपने आर्य्य भाइयों और बहिनों से आज यह प्रार्थना करते हैं कि आप भी धर्म प्रचार के लिये इन लोगों का अनुकरण कीजिये और चूंकि आप का धर्म बड़ा उत्तम है, परमात्मा की भी सहायता है तो इन साधनों के द्वारा पुरुषार्थ करने से आप को भी सफलता मिलेगी ही।

ज्योति का यह नया वर्ष है। सब ग्राहक लोग मिल कर इस में भाग लें। जिन के पास वी० पी० पहुँचे अवश्य छुड़ा लेवें और यदि किसी ने वापस कर दिया हो तो सूचना मिलने पर पुनः मंगालें। इस प्रकार अपने देश और जाति के कार्य्य में सहायता देकर पुण्य के भागी बनें। आशा है कि विनीत प्रार्थना पर ध्यान दिया जायगा।

विचार-प्रवाह

कोल-समस्या

इङ्गलैंड की कोइले की हड़ताल संसार के इतिहास में एक अनोखी घटना है। सर्व व्यापी हड़ताल समाप्त होगई है, कोइले की खानों में काम करने वाले मज़दूरों के सिवाय सब अपने अपने काम पर जा डटे हैं, ग्रेट बृटेन का सब काम यथावत चलने लग गया है, पर कोइले की समस्या अभी ज्यों की त्यों बनी है। दोनों दल अपनी शर्तों पर डटे हुए हैं। कोई झुकने का नाम तक नहीं लेता। मज़दूरों के वेतन घटाने या काम के घंटों के बढ़ाने या घटाने का सवाल नहीं है। यह तो एक घटनाचक्र का फल मात्र है। वास्तविक बात यह है कि आया खानों का संघटन किस प्रकार किया जाय। खानें राष्ट्र की सम्पत्ति बनाई जायें या व्यक्तिगत सम्पत्ति रहें? इनके अलावा और कौनसा मार्ग है जिसके, द्वारा दिन बदिन खानों की गिरने वाली अवस्था सुधारी जाय। दूसरी बात यह है कि, किस कारण से यह अवस्था उत्पन्न होगई है और इसका भविष्य क्या है? इङ्गलैंड की खानों की अवस्था की उन्नति और अवनति जहां उनके अन्तरीय

संघटन पर निर्भर है वहां संसार की बाजारों में इंग्लैंड के कोइले की क़ितनी खपत हो सकती है, संसार के बाजार कितनी मात्रा में बृटेन के कोइले को चाहते हैं इस पर भी निर्भर है। बृटेन की वर्तमान समस्या का मुख्य कारण उत्पत्ति और वितरण के साधनों के बहुत पुराने और अनुपयोगी होने के साथ साथ तीव्र प्रतियोगिता भी है।

यह समस्या आज की नहीं है। युद्ध के समय से चली आरही है। १९१८ के बाद से दो हड़तालें हो चुकी हैं। इन हड़तालों को रोकने के लिए बृटिश खजाने से रुपया भी दिया जा चुका है। सेम्युल कमीशन ने भी वर्तमान खानों में बरते जाने वाले साधनों की अनुपयोगिता को स्वीकार किया था। रायल कमीशन ने भी इस को दुहराया है और पुनर्संघटन पर जोर दिया है। १९२३ तक बृटेन इस विकट प्रसंग से बचा रहा क्योंकि रूर की खानें उस समय काम में नहीं लाई जारही थीं। संसार का व्यापार और बाज़ार मन्द था, पर फिर भी इस कारण इस विकट प्रसंग से इंगलैंड बचा रहा, इस बात को श्री बाल्डविन ने भी माना है। पर जब रूर की खानें काम में आने लगीं और उत्पत्ति की मात्रा बढ़ गई तब अवस्था अन्तिम छोर पर पहुंच गई, जिस को प्रधान मन्त्री ने बृटिश खजाने से रुपया देकर इस वर्ष की अप्रेल मास तक बचाया। रायल कमीशन बैठाकर थोड़े दिनों के लिए टाल दिया। समय समाप्त होते ही भयंकर अवस्था प्रगट होगई। अभी तक भयंकर अवस्था टली नहीं है। बृटेन की कोइले की उत्पत्ति का १२% घरेलू कामों में खपता है, ५५% व्यवसायों में खपता है, ३३% बाहर जाता है। घरेलू कामों में १९१३ से खपत होने वाली कोइले की मात्रा निश्चित है, पर व्यवसायों की खपत घट रही है, और निर्यात की मात्रा तो तेज़ी से घट रही है। १९०९-१३ से १९२५ के अन्तर में निर्यात की मात्रा में १५,०००,००० टन का अन्तर आया है जो ६८००० खनकों के परिश्रम का फल है। इंगलैएड के कोयले की कम खपत का कारण उसकी निर्यात मात्रा की कमी नहीं है जैसा कहा जाता है क्योंकि १९२५ की कोइले की निर्यात मात्रा १९१३ की अपेक्षा कृत अन्य देशों से बृटेन की अधिक है। खपत की कमी का कारण है लोहा और इस्पात के व्यवसायों का गिरना। इसके साथ साथ और कारण हैं, योरप का आर्थिक जीवन का साधारणतया अभाव, व्यावसायिक उन्नति में घाटे का आना, यन्त्रों के सहारे उत्पन्न किए जाने वाले पदार्थों की कमी, मुद्रा से उत्पन्न कठिनाइयां तथा कोइले की मांग में कमी। बिजली और मिट्टी का तेल निरन्तर कोइले का स्थान ले रहे हैं, और वह देश जो अपने व्यविसाय के लिए आधीन थे अपने आप अपनी आवश्यकता पूरी करने लग गए हैं।

अब सवाल यह है कि इस समस्या का हल किस प्रकार लिया जाय। मजदूर चाहते हैं खानें राष्ट्र की सम्पत्ति बनाई जांय। वे काम के घंटे घटाये जाने को तय्यार नहीं हैं, न अपनी उजरत में कमी सह सकते हैं। सारे राष्ट्र में एक किस्म की वेतन पद्धति चाहते हैं। खानों के मालिकों का कहना है कि इस हालत में हम अन्य देशों की प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकते। उत्पादक

व्यय और वितरण का व्यय ज्यादा है। खानों के पुनर्संघटन के लिए भी उस समय तक उत्सुक नहीं है जबतक मजदूर काम के घंटे बढ़ाने को या मजदूरी घटाने को उद्यत न हों। खान मालिकों के लिए 'राष्ट्रीय करण' शब्द टैबू (Taboo) हो गया है। समस्या ज्यों की त्यों है। संसार के श्रम जीवियों की सहानुभूति खनकों के साथ। पूंजीपतियों की पीठ पर सरकार है। श्रम जीवियों और पूंजीपतियों के महा भारत युद्ध की पहिली मुठभेड़ हो चुकी है। उसमें मजदूरों के आश्चर्यजनक संघटन शाली के होने पर भी अपने नेताओं की मतभिन्नता के कारण झुकना पड़ा है। आगे क्या होगा यह भविष्य बतायगा।

काली घटायें—

महा युद्ध की भयंकर गोलाबारी करने वाली भीमकाय तोपों का मुख बन्द होगया, सारी दिशाओं को पैरों की टाप से कंपा देने वाली फौजों ने मोर्चा स्थापित करदिया, मानव समाज को कम से कम समय में अधिक से अधिक संख्या में मारने के उपाय सोचने वाली बुद्धियों और उनको कार्य रूप में परिणत करने वाले कल, कारखाने कुछ काल के लिए बन्द हो गए, पर संसार की शान्ति खतरे से एक दिन के लिए भी मुक्त नहीं हुई! आकाश काली घटाओं से सदा घिरा ही रहा। आशंका और भय की सम्भावना सदा बनी रही। आज यह समस्या फिर विकट रूप धारण कर रही है। इसको यह भयंकर रूप देने वाले इटली के प्रधान मन्त्री श्री मुसोलिनी हैं।

आज आप भूतपूर्व कैसर के स्वप्नों को चरितार्थ करने के लिए यत्नवान हो रहे हैं। महान इटली का स्वप्न आपकी आँखों के सामने है। ट्रिपोली की आपने इसी लिए यात्रा की थी। इटली की मुरादें युद्ध से पूरी नहीं हुईं। भूमध्यसागर में आज भी फ्रांस का प्रभुत्व है। इटली के लिए यह कांटा हो रहा है। लोकार्नो समझौता के बाद रैवेलो में श्री चैम्बरलेन और श्री मुसोलिनी के सम्मेलन को राजनीतिज्ञ लोग खासा महत्व दे रहे हैं। इटली ने रूमानिया, बासबेरिया, अलोंरिया से जिस प्रकार सन्धियां कर फ्रांस को अकेला छोड़ दिया है यह रहस्य से खाली नहीं है। पोलेण्ड और जैकोस्लेविका इस समय केवल फ्रांस के साथ हैं। हंगरी और बवेरिया के फासिटी दल और स्कर्जिनिस्की का वायना गमन ये सब घटनायें श्री मुसोलिनी के स्वप्न को सत्य सिद्ध करने के लिए किसी अदृश्य प्रेरणा से हो रही हैं। ट्रायल के लोगों को इटालियन बनाने के लिए श्री मुसोलिनी ने जिन भयंकर साधनों का उपयोग किया है वे सभ्य समाज द्वारा कभी अनुमोदित न होंगे। वहां की प्रजा को नागरिकता के अधिकार से वंचित रखना, उनकी मातृभाषा का तिरस्कार करना, जर्मनी के लिए सह्य नहीं हो सकते। जर्मन चिन्ह तक को मिटाने वाली प्रवृत्ति हजार निशस्त्री करण सम्मेलनों के होने पर भी संसार को भावी भयंकर युद्ध से नहीं बचा सकती। अभी हाल में श्री मुसोलिनी ने इटली की उन आकांक्षाओं को और अपने महान स्वप्नों को इस रूप में प्रगट किया है—Nation follows an international policy and a policy of fraternity. All nations erect formidable barriers which for the moment are only economic and political. अपने

भाषण को समाप्त करते हुए श्री मुसोलिनी ने कहा—Italy conld not disarm without the risk of losing her independence and committing suicide. Young Italy must find a place in the run.

इटली उपनिवेशों को लिए जर्मनी के समान व्यग्र हो उठा है। रोमन सभ्यता और रोमन साम्राज्य के पुनरुद्धार की भावना प्रबल हो उठी है। इटली की यह प्रवृत्ति संसार की अशान्ति के लिए अशुभ सूचना है।

शिर झुक गया—

अन्त को फ्रांस और स्पेन की संयुक्त शक्ति के सामने मोरोक्को की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले रिफियों के सर्दार अब्दुल करीम ने शिर झुका दिया और आत्म—समर्पण कर दिया। पाशविक शक्ति की विशाल शिला से वीरों की टुकड़ी की स्वातन्त्र्य—भावना नदी टकरा कर छिन्न भिन्न हो गई। यह सच है पर इसके साथ यह भी सच है कि, इस टक्कर से छिन्न भिन्न हुई जल राशि से आकाश में बने रंगविरंगे इन्द्र धनुषों की शोभा भी संसार के इतिहास में अमिट रहेगी। अब्दुल करीम के रणकौशल, अदम्य उत्साह और पवित्र स्वातन्त्र्य भावना संसार की अक्षय सम्पत्ति हैं। संसार आदर और श्रद्धा के साथ स्वतन्त्रता के वीर पुजारी के नाम को याद करेगा। पराधीनता के कीचड़ में फंसे मानव-समाज के लिए नव वर्ष का सन्देह होगा। स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने वाले अब्दुल करीम के चरणों में सब भेद भाव भूलकर अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करेंगे और स्वाधीनता संग्राम में नूतन बल को अनुभव करेंगे, यह हमें पूरा विश्वास है। यह पराजय मोरोक्को वासियों की स्वातन्त्र्य भावना को नष्ट नहीं करेगी पर उसको अवसर देगी। दुगने वेग से बढ़ने का। जो सब विरोधी शक्तियों को निगल जाने में समर्थ होगी।

ख़िलाफ़त परिषद्—

दिल्ली में खिलाफत परिषद् का अधिवेशन होगया। भारतकेअशान्त और विषाक्त वातावरण को और भी अशान्त और विषमय कर गयाहै इस परिषद् को समझदार मुसल्मान किस दृष्टि से देखते हैं यह भी हाफ़िज़ुर्रहमान बी० ए० के शब्दों से प्रगट हो जायगा—"जिन लोगों को खिलाफतियों की विधायक बुद्धि पर सन्देह है, वे खूब अच्छी तरह जानते हैं कि खिलाफत परिषद् के प्रस्ताव कागज पर ही रहेंगे- कार्य में परिणत न होंगे। एक प्रमुख खिलाफती तथा राष्ट्रीयता वादी मि० सिराजुद्दीन प्रांचा ने अपने भाषण में कहा था कि "तञ्जीम का नया आन्दोलन संगठन के आन्दोलन के बाद स्वराज्य पर दूसरा प्रहार है।" इस दृष्टि से देखने से प्रस्तावों का खोखलापन साफ जाहिर हो जाता है। ये प्रस्ताव नयी तन्जीम की पुकार के काम में लाए जायेंगे। प्रमुख खिलाफती लोग चतुराई से दूसरी बात कहते हैं। परन्तु वास्तव में जो लोग अन्दरूनी बातों को देखते हैं, वे जानते हैं कि संगठन के प्रतिकार के लिए आन्दोलन रचा गया है। खिलाफत परिषद् के पहले प्रस्ताव की पहली बात थी-मुसलमानो दुनिया के लिए मरमवर्ती खिलाफत की स्थापना! मौलाना मुहम्मदअली ने इस प्रस्ताव को पेश किया था। अरब के रेगिस्तान का यह एक मृगजल मात्र है।

खिलाफत-ई-रशीदा की तरह खिलाफत का पुनरुज्जीवन करना असम्भव है। जिस दिन मुस्तफा कमालपाशा ने उसे मन्सूख किया, उसी दिन उसकी मृत्यु हो चुकी। हिन्दुस्तानी मुसलमानों को चाहिये कि सर्वाङ्गीण आधुनिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील होवें और उन पर लगाये हुए इस कलंक को—जिसे मैं भी मानता हूं—वे धो डालें कि हिन्दुस्तानी मुसलमान समस्त मुसलमानी संसार में अत्यधिक अनुदार हैं। इस कलंक को मिटाने के लिए हिन्दुस्थानी मुसलमानों को विधायक नेतृत्व चाहिए विनाशक नहीं।"

ृग मरीचिका के पीछे—

हज़ारों वर्षों की गुलामी के कारण हमारी दृष्टियां पर्दे के पीछे को नहीं देख सकतीं। हम तह तक जाने का यत्न नहीं करते इस का परिणाम यह होता है कि हमें बार बार पछाड़ खा के मुंह के बल गिरना पड़ता है। प्रवासियों की समस्या उन्हीं में से एक समस्या है। हम वादों से, कमीशनों से और समझौतों से खुश होते रहे हैं इसी कारण हम को अपने अधिकारों से च्युत भी होना पड़ा है और नल मस्रूक भी होना पड़ा है। दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने भारत सरकार के 'समझौता परिसद्' के प्रस्ताव को मान लिया है, यह खबर बड़े उत्साह और खुशी से पढ़ी गई। विजय के सूचक बधाई के तार खटकाए गए। इस विजय की खुशी में यह किसी ने नहीं सोचा कि एक मास पहिले तिनका भर न झुकने वाली सरकार एकदम से इतना कैसे झुकगई? वाइसराय के डिस्पैचों, भारतीयों के डेपुटेशनों और भारत की हड़तालों से जो काम न हो सका था, जिस अन्धकार के बीच में दीनबन्धु एण्ड्रूज भी प्रकाश किरण ढूंढने पर भी ढूंढ नहीं पाए थे, और परमात्मा की शरण जाने के लिये आदेश दे रहे थे उसको पैडीसन डेपुटेशन ने कैसे छिन्न विछिन्न कर दिया तथा उस अड़ियल सरकार को झुकने को बाधित किया? पैडिसन डेपुटेशन के पास कौनसा जादू था जिसने दक्षिण अफ्रीका की सर्कार को मोह लिया। यह सब सोचने को उस समय समय नहीं था। पर जब वर्णद्वेष बिल पास हो गया और लार्ड बर्कनहेड ने घोषणा की यह पास होके रहेगा, और इसकी 'समझौता परिषद्' में चर्चा न हो सकेगी, श्री हर्टजोग ने श्री एण्ड्रूज़ की इस बात का भी खण्डन कर दिया कि यह भारतीयों पर लागू न होगा तब आँखें खुलीं। हमने देखा कि मैदान तो शत्रु के हाथ में है। अब पता लगा कि हमें मनुष्य कहलाते हुए भी पशु बनना होगा। हमारी आशा का केन्द्र फिर भी सम्राट बने रहे। बृटिश सम्राज्य की नागरिकता का दम्भ हममें से नहीं गया। पर दक्षिण अफ्रिका के प्रधान मन्त्री कहते हैं—"दक्षिण अफ्रिका बृटेन के बराबर खड़ा होगा। अब स्वतन्त्र सभा का प्रश्न नहीं है। अब प्रश्न प्राप्त अधिकारों को अधिकाधिक मात्रामें क्रिया में प्राप्त करना। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि दक्षिण अफ्रिका संसार के सामने पूर्ण स्वतन्त्रराष्ट्र के रूप में खड़ा हो तो सारी पिछली समस्यायें स्वतः सुलझ जांयगी।" आगे श्री हर्टजोग कहते हैं—"स्वतन्त्र राष्ट्र को केवल एक सभा स्वीकार करनी चाहिए-वह है जनता की इच्छा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है यह समझ लेना चाहिए

कि, संसार के मामलों में दक्षिण अफ्रिका स्वतन्त्र-राष्ट्र के रूप से योग देगी वह संसार के साथ समानता के भाव से खड़ी होगी।"

सम्राट् से आशा करने वालों को ऊपर के वाक्यों को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए। भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध में यूनियन सरकार के मन्त्री मण्डल के भूतपूर्व सदस्य श्री वाल्ट के विचार उन्हीं के शब्दों में पढ़िए :—

This matter is to us in south Africa such a vital and fundamental matter that no ethical considerations such as the rights of man and equal opportunities for all non-Europeans will be allowed to stand in the way. It is a question of self-preservation with us.

थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देने वालों के विरोधी ऊपर की पंक्तियों पर विचार करें। सम्राट् और बृटिश साम्राज्य के न्याय में अटूट निष्ठा रखने वाले, दक्षिण अफ्रीका के कोइले पर तट कर लगाने के विरोधी विचारक, हम चाहते हैं विचार करें और यदि कोई 'शठं प्रति शाठ्यं' के सिवाय कोई मार्ग हो तो बतायें।

कारण क्या है—

पागल ड्राइवर से चलाई जानेवाली ट्रेनों के समान इस समय भारत की दो मुख्य समाजें हिन्दू नाम धारी और मुसलमान नाम धारी एक दूसरों से टकरा रहीं हैं। और एक दूसरे के शिर की गाहक बनी हुई हैं। कोई शक्ति इन को इस समय लड़ाई से विरत नहीं कर सकती। जाति गत भावों का प्रबल उन्माद का नशा दोनों के दिमाग़ में भरा हुआ है। भारत के इतिहास में इस से बुरी हालत कभी आयी है या नहीं यह ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता। जाति गत प्रतिनिधित्व और जाति गत निर्वाचन प्रथा इसका एक कारण है। मुख्य कारण है राष्ट्रीय उद्देश्य का आँखों से ओझल होना। स्वतन्त्रता की पवित्र भावना, स्वाधीनता की मूर्त्ति जब हृदय से मिट जाती है, उस समय पागल होकर बिना विचारे एक दूसरे पर दोनों जातियाँ टूट पड़ती हैं। राष्ट्रीय पराजयों से उत्पन्न निराशा से पागल हो कर हम आपस में लड़ पड़ते हैं। विरोधी का मुक़ाबिला करने में अक्षम होकर अपना ग़ुस्सा अपने पड़ोसियों और भाइयों पर उतारते हैं बेकारी प्रति दिन बढ़ती जाती है। शिक्षित बेकारों की तादाद बढ़ रही है इन की रोटी का सहारा यदि कोई है तो सरकारी नौकरियाँ! पर इन की संख्या परिमित है। यह कल्प तरु तो है नहीं कि मनमाना मनोरथ पूरा कर सकें इस कारण नौकरियों में भी जातिगत भावना का प्रसार किया जारहा है। चुनाव से पहिले इन दोनों का होना हमारे कथन की पुष्टि कर रहा है।

आज की भयानक स्थिति जिसने श्री सप्रू और श्री नेहरु सदृश कानूनी पण्डितों का धैर्य च्युत कर दिया है और उनके मुंह से यह निकलवा दिया कि दंगे के प्रदेश के लोगों के नागरिक के अधिकार छीन लिए जाँय; उन को कोई राज्यकीय सम्मान न दिया जाय, क्या हमेशा इसी तरह बनी रहेगी? हम अमेरिका

से प्रकाशित होने वाली Current History Magazine में लिए श्री ब्राउन के विचारों से पूर्णतया सहमत हैं—अवस्था निराशा जनक नहीं है । हिन्दू और मुसलमान अंग्रेज़ों की अपेक्षा ज़्यादा समीप हैं । आज की धर्मान्धता और दुर्भावना के होने पर भी वस्तुतः हिन्दू मुसलमानों में कोई सैद्धान्तिक विरोध नहीं है। जल्दी या देर में वे अपने भेदभावों को भूल जाँयगे, और अटूट तथा अविभक्त राष्ट्र का निर्माण करेंगे। जैसा कि उन्हों ने म० गान्धी के नेतृत्व में किया था। गहरे धक्के और शोक-जनक भ्रम उनको राष्ट्रीयता के घात के पाप को शीघ्र दिखायगा और उन दोनों को परस्पर चिरकाल के लिए आलिङ्गन करा मैत्री के बन्धन में बाँध देगा। और कोई चारा नही है। इस बीच में धर्मान्धता और भ्रातृ हत्या के कुएँ खुले रहने दो, इनके विकास को देखना रोचक यद्यपि दुःखदायी है।"

शुभ चिन्ह—

जब सारा उत्तरीय भारत जाति गत भावना के नशे में चूर है, बड़े बड़े शान्त दिमागों ने अपने मन को हाथ से बाहर जाने दे दिया है तब बिहार में दोनों जातियों के बीच में प्रेम की विशुद्ध और पवित्र भावना का उदय होना और उसके प्रचार के लिए कई नेताओं का कटिबद्ध होना तथा सांसारिक क्षेत्र से विरत भजन में मग्न वयोवृद्ध श्री मजुरुल हक़ सदृश नेताओं का कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना, अंजुमन इस्लामिया में श्री मालवीय जी का यह घोषणा करना कि यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर दंगों से रक्षा करने के लिए संघठन करें तब मैं हिन्दू संघटन और महावीर दल का संघटन छोड़ने को उद्यत हूं। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत मौलवी एम० तैयबुल्ला सदृश सज्जनों का खिलाफत कमेटी से इस्तीफा देना और दिल्ली की खिलाफत परिषद के बारे में ऐसे विचार प्रकट करना कि-"क्या भारत के काफिरों के विरुद्ध जहाद घोषित करने से स्वराज मिल सकता है? क्या समुदायवाद से जो कुछ लोगों के स्वार्थ का दूसरा नाम है-कभी भी भारत में स्वराज्य स्थापित हो सकता है। नव युवको इन शब्दों में राष्ट्रीय मन्त्र की शिक्षा देव, तरुण मुस्लिम भारत! अंगोरा का उसके इस्लाम भाव का और उसकी राष्ट्रीयता का अनुसरण करो। इन्डियन नैशनल कांग्रेस का-भारत की राष्ट्रीय संस्था का अनुसरण करो और अपनी जननी जन्म भूमि को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न करो। स्वतन्त्रता से और केवल स्वतन्त्रता से ही इस्लाम का सत्य भाव फिर से प्रफुल्ल होकर इस देश को अपनी सुगन्ध से भर देगा। पराधीन जाति का कोई धर्म भी नहीं होता, जैसे राजनीतिक दल बन्दी नहीं होती उसमें धर्म भास भले ही हो।" यह सब बतला रहा है कि आज जो विषैली वायु सम्पूर्ण भारत में बह रही है, जिसमें दम घुट रहा है यह सब क्षणिक है। यह काली घटा और यह घनघोर अन्धकार उषा के आगमन की पूर्व सूचना है। इस समय जिनका दिमाग़ शान्त है, शान्त चित्त से परिस्थिति पर विचार करते हैं और अविचल भाव से राष्ट्रीय मार्ग में अग्रसर हो रहे हैं वे ही वास्तव में सच्चे सिपाही हैं।

× × × ×

(The Presidency Emergency Security Bill).

प्रेसिडेन्सी रक्षा विधान—

जलयानवाला बाग की रंजित भूमि से राष्ट्रीय नद की जो प्रबल धारा बह निकली थी वह कलकत्ते पहुंचने तक छिन्न विछिन्न हो गई और सम्प्रदाय गत तथा जातिगत भावनाओं ने उस निर्मल धारा को गंदला और विषाक्त कर दिया। कलकत्ते में जो खून वर्षा हुई जिसका अभी तक अन्त नहीं हुआ है। अभी राज राजेश्वरी यात्रा मुसलमानों के हठ के कारण रोकदी गई। पुलिस नियन्त्रण और अनुशासन भी जुलूस को धार तक उसी रास्ते से पहुँचाने में असमर्थ रहा। जब हम ये पंक्तियां लिख रहे हैं उस समय कलकत्ते का बाजार बन्द हैं-हिन्दू दुःखी हैं। विरोध की भावना अन्तिम घोर पर पहुंची हुई है। कलकत्ते में इस विरोध भावना से खून खराबी न हो इसको रोकने के लिए बंगाल की प्रान्तीय कौन्सिल में प्रेसीडेन्सी-आवश्यक-रक्षा-विधान स्वीकृत लार्ड लिटन ने कराया है। क्या इसकी आवश्यकता थी? क्या ऐसे कानूनों का बनाना भारत की अमंगल की दृष्टि से उचित है? दंगे का कारण क्या है? महाराज बर्दवान ने इण्डियन एशोसियन में हुई हिन्दू मुसलमानों की सभा में साफ साफ कहा था कि इन दंगों के लिये गुप्त शक्ति है। सर अब्दर रहीम सुधार वेदी और भजन की उस सभा में उपस्थित थे। कलकत्ते के इस दंगे का कारण बहुत पुराना है। सरकार को इसकी पहिले से खबर थी। सरकार चाहती तो पहिले से ही इसको रोक सकती थी। विष को फैलाने वाले अखबारों पर मुकद्दमा चला सकती थी-जिन पर अब चला रहा है। गुण्डा एक्ट से उसके पास यथेष्ट शक्ति मौजूद थी। पर सरकार ने उस समय कुछ न किया।

लार्ड लिटन का कहना है कि उत्तरीय भारत से गुण्डों का आगमन हुआ है और कलकत्ते के रजिस्टर्ड बदमाशों ने इसमें कुछ भाग नहीं लिया इस कारण यह कानून बनाना पड़ा है। वर्मा कौंसिल में जब Non Burma offenders, Expulsion Act बना था उस समय ऐसेम्बली में कहा गया था कि भारत के किसी प्रान्त को अन्य प्रान्त वासियों के विरुद्ध धारा सभाओं में कानून नहीं बनाना चाहिए। परन्तु इस कानन के बनाते समय किसी वक्ता ने इस सिद्धान्त की ओर ध्यान नहीं दिया। Non Burma offenders' Expulsion Act जहां न्यायालयों द्वारा सिद्ध मुजरिम को ही वर्मा छोड़ने के लिए कहता है वहां कलकत्ता रक्षाविधान बिना किसी न्यायलय में मुकद्दमा चलाए और बिना किसी अपील का अवसर दिए प्रेसीडेन्सी क्षेत्र या बंगाल प्रान्त से निकल जाने के लिये कह रहा है। जो बात वर्मा के सम्बन्ध में अनुचित समझी जाती थी वही बात बंगाल के सम्बन्ध में उचित कैसे हो गई। स्वतन्त्र दल के सदस्यों को समर्थन करते देख आश्चर्य होता है। पुलिस और शासकों पर वर्मा के सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता पर बंगाल की पुलिस और शासन इस कानून का प्रयोग राजनैतिक आन्दोलनों के विरुद्ध न करेंगे इसका समर्थकों के पास क्या प्रमाण है? आर्थिक, राजनैतिक और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की यह बिल हत्या करने वाला है।

क्या करें—

आर्य समाज के नगर कीर्तनों को जगह जगह रोका जा रहा है। सरकार समाज के शान्त और धार्मिक जलूसों को रोक रही है। कलकत्ते के भयानक दंगे के समय मुसलमानों के विरोध करने पर भी सरकार सिक्खों के जलूस को ले जाने में सहायता देती है पर वही सरकार मंसूरी तथा अन्य स्थानोंमें कलकत्ते से अशान्ति की लपटों की आच आरही है यहां सूखा फूंस है, आग लगने की सम्भावना है यह कह कर धार्मिक जलूसों को रोक देती है। सरकार का धार्मिक और व्यक्तिगत अधिकारों पर आक्रमण है यह हम मानते हैं। यह भी सम्भव है कि सरकार समाज को नेस्तनाबूद करना चाहती है। पर सवाल यह है कि सरकार को यह साहस ही क्यों कर हुआ? क्या समाज की स्वयं निर्बलता इस का कारण नहीं है? मंसूरी में समाज के बड़े २ नेताओं की उपस्थिति में जलूस रोका जाता है। नेतागण विरोध सूचक प्रस्ताव पास करते हैं। सारे समाजों से उनकी आवाज की प्रतिध्वनि होती है। पर सरकार दुबारा फिर मंसूरी में ही समाज की जोरदार आवाज की अवहेलना करने का साहस करती है! समाज को चितौनी को स्वीकार कर लेती है। आर्य्यसमाज फिर प्रस्ताव पास करती है, पर सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आज कल सत्याग्रह की चर्चा है। आर्यधर्म दक्षिणी सभा में भी सत्याग्रह की आयोजना की जा रही है। पर प्रश्न यह है क्या सत्याग्रह की धमकी सरकार को विचलित कर सकती है? हमारा ख्याल है कि यदि आर्यसमाज का संघटन मजबूत हो, आर्यसमाज तन्त्रनिष्ठा और अनुशासन के नियमों का पालन करने वाला हो, अपनी शक्तियों को अन्तर्मुखी करने का यत्न करें। दूसरे पर आक्रमण करने का इरादा छोड़कर अपने को मजबूत करने का यत्न करें तो सरकार संघटित शक्ति के सामने स्वतः शिर झुका देगी। केवल शोर करने से और बवेला मचाने से बल की वृद्धि नहीं होगी। आवश्यकता है आत्म निरीक्षण की और अपने आपको संघटित करने की।

मनोहर कार्ड!
कन्याओं को इनाम देने की अपूर्व वस्तु!
हिन्दी में ऐसे कार्ड अभी तक नहीं छपे
कला कौशल के सरल, सस्ते, और उत्तम नमूने!!!
जल्दी आर्डर देकर मंगाओ
आठों पत्रावली केवल १।=)॥ में
मिलने का पता:—ज्योति कार्य्यालय
कोठी नं० ४ दर्यागंज दिल्ली

बड़े बड़े अक्षरों में सुन्दर छपाई ! मोटे रङ्गीन काग़ज़ की मज़बूत जिल्द !!

सचित्र हिंदी महाभारत

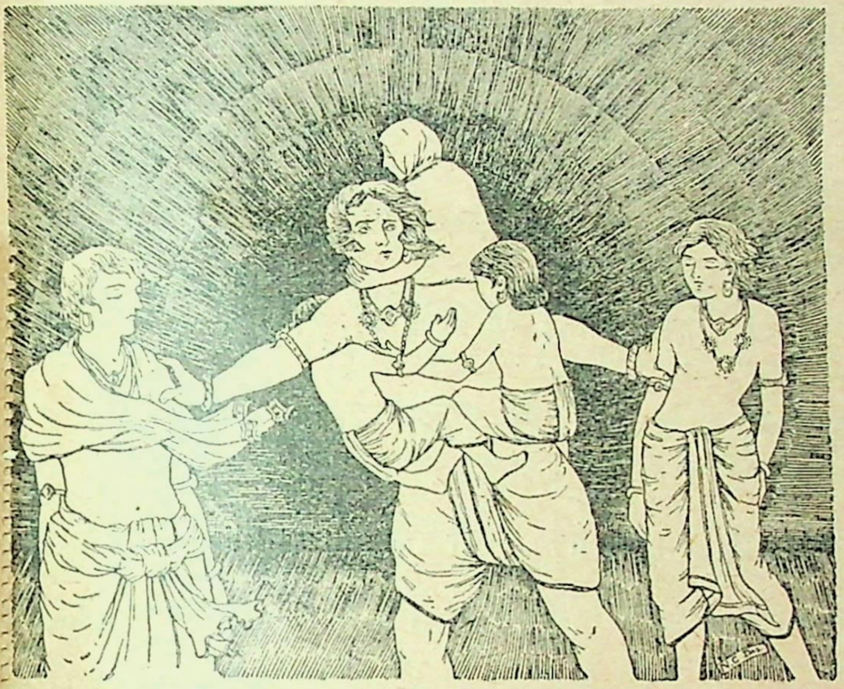

※ भीम का भाइयों और कुन्ती को कन्धे पर ले जाना ※

पृष्ठ-संख्या ४,०००,
चित्र-संख्या २,०००,
खण्ड ८, अङ्क ४०,
मूल्य ५०)

स्थायी ग्राहकों से रियायत

बढ़िया काग़ज़ पर १०० पृष्ठों और ५० चित्रों का एक अङ्क प्रतिमास

व्यासपूर्णिमा (आषाढ़ सुदी १५ सं० १९८३) से निकलेगा।

मूल्य प्रति अङ्क का १।)

संस्कृत और हिन्दी के अनेक विद्वानों के परामर्श तथा सहायता से सुयोग्य लेखकों ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से इस सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत के अनुवाद को तैयार किया है। इसमें आख्यानों को समझने में सहायता देने के लिए २०० पूरे पृष्ठ पर रङ्गीन, तथा १,८०० सादे सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। इस सर्वमान्य ग्रन्थ के जो स्थायी ग्राहक बन जायँगे उनको प्रति अंक १) में ही मिलेगा और जो ग्राहक साल भर का मूल्य १२) मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेज देंगे या पहला अंक १२) की वी० पी० से भेजने की आज्ञा देंगे, उन्हें डाकखर्च भी नहीं देना होगा। ग्राहकों के सुभीते के लिए अलग से बहुत सुन्दर कपड़े की जिल्दें भी सुनहले नाम के सहित तैयार कराई जायँगी। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ॥।) रहेगा पर स्थायी ग्राहकों को ॥) ही में मिलेगी। यह पवित्र ग्रन्थ हर एक व्यक्ति के घर में रहना चाहिए।

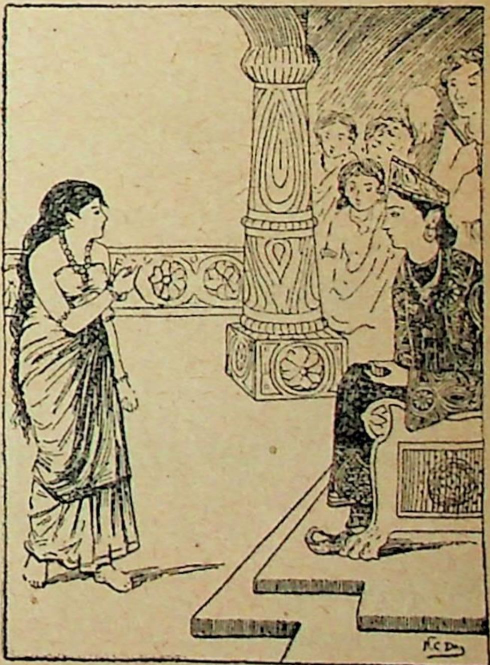

दुष्यन्त से तिरस्कृत शकुन्तला

नोट—विशेष जानने के लिए परिचय-पुस्तक और ग्रन्थ का एक अध्याय नमूने के तौर पर मुफ़्त में मँगाकर पढ़िए।

कृपया इस कार्ड की खानापुरी कर शीघ्र ही भेज दीजिए।

नेजर महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

सज-धज के साथ, सुन्दर चित्रों और लेखों से विभूषित

सहेली

हिन्दी-भाषा में बालिकाओं के लिए एकमात्र मासिक पत्रिका

शीघ्र ही जुलाई सन् १९२९ से प्रकाशित होगी।

हिन्दी में इस समय ऐसी एक भी पत्रिका नहीं है जो एकमात्र बालिकाओं ही के लिए हो। स्कूली-शिक्षा के सिवा बालिकाओं के लिए भी ऐसे पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता है जिससे स्कूल की शिक्षा में उन्हें सहायता पहुँचे और उनका पढ़ने-लिखने में विशेष रूप से उत्साह उत्पन्न हो, साथ ही उनके ज्ञान की भी वृद्धि हो। हम बहुत दिनों से इस प्रकार की एक सर्वाङ्ग-सुन्दर पत्रिका की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। हमारे यहाँ से प्रकाशित 'बाल-सखा', बाल-सखा-पुस्तकमाला तथा अन्य बालोपयोगी सचित्र साहित्य को हिन्दी-संसार ने भले प्रकार से अपनाया है। अस्तु, इसी प्रकार से विशेषकर बालिकाओं के लिए भी एक पत्रिका निकालने के लिए हमसे हमारे प्रेमी ग्राहक अनुरोध कर रहे थे। अब हमारे प्रेमियों को यह सुनकर हर्ष होगा कि इस अभाव की पूर्ति के लिए और अनेक सज्जनों के आग्रह से हमने हिन्दी-भाषा-भाषी बालिकाओं के लिए **'सहेली'** नाम की सचित्र मासिक पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

'सहेली' बालिकाओं के पढ़ने के लिए परमोपयोगी बिलकुल नये ढंग की ऐसी सचित्र मासिक पत्रिका होगी जिसकी

हर एक घर में बहुत अधिक आवश्यकता है।

थोड़ी भी पढ़ी-लिखी बालिकायें बड़े चाव से इसे पढ़ेंगी और जो पढ़ी-लिखी नहीं हैं वे अपनी सखी-सहेलियों से पढ़वाकर इससे लाभ उठावेंगी।

'सहेली' को पढ़-सुन कर बालिकायें ऐसी उपयोगी बातें सहज ही में सीख जायँगी जानना और सीखना उनके लिए बड़ा ही आवश्यक है।

'सहेली' के प्रति अङ्क में

सुप्रसिद्ध लेखकों और लेखिकाओं के लेख तथा कवियों की उपदेशप्रद मनोहर ायें, सती स्त्रियों के शिक्षाप्रद छोटे-बड़े जीवन-चरित, मनोहर कहानियाँ, मनोरञ्जक याँ तो रहेंगी ही, साथ ही

स्वास्थ्य-रक्षा, पाक-शिक्षा, गृह-प्रबन्ध आदि विषयों के भी उपयोगी लेख रहेंगे।

तु उन सभी उपयोगी विषयों का समावेश इस पत्रिका में किया जायगा जिनका ध बालिकाओं की शिक्षा और मनोरञ्जन से है।

'सहेली' में प्रतिमास फुलस्केप कार्टो (बाल-सखा) साइज़ के ४० पृष्ठ, एक सुन्दर रङ्गीन १०–१२ सादे चित्र रहेंगे और

वार्षिक मूल्य केवल २॥) ही होगा।

ली' को आपकी कन्यायें, छोटी बहनें और बहुएं बड़े चाव से माँग कर पढ़ेंगी। इसलिए

आज ही एक कार्ड भेज कर आप ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लीजिए।

मैनेजर 'सहेली', इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

१ और २ वाक्यों में से जो स्वीकार हो उसे छोड़ कर शेष काट दीजिएगा।

पहला ग्रन्थ

परिडतजी

ग्राम्य-सुधार की उत्तम आयोजना

मूल्य १॥)

शरद्-ग्रन्थावली में भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक शरद् बाबू के बढ़िया उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद निकलता है।

दूसरा ग्रन्थ

बड़ी दीदी

सुरेन्द्र और माधवी की मर्मस्पर्शी कथा

मूल्य १)

शरद्-ग्रन्थावली के उपन्यास हमारे वास्तविक जीवन का जीता जागता चित्र दिखानेवाले होते हैं। उनकी छपाई, सफ़ाई, काग़ज़, चित्र आदि अद्वितीय होता है।

शरद्-ग्रन्थावली

के

अब तक के प्रकाशित चारों उपन्यास-ग्रन्थों ने

उपन्यास-जगत् में

चारों ओर धूम मचा दी है

आप भी ॥) भेज कर स्थायी ग्राहक बन जाइए

और

पौन मूल्य में उपन्यासों को मँगा कर

मनोरञ्जन कीजिए

शरद्-ग्रन्थावली में बिलकुल नये ढंग के उपन्यास सरल भाषा में प्रकाशित होते हैं।

तीसरा ग्रन्थ

परिणीता

खेल-खेल में विवाह का हाल

मूल्य १)

शरद्-ग्रन्थावली का पाँचवाँ उपन्यास नव-विधान भी शीघ्र ही छपकर प्रकाशित होगा। मूल्य १)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

चौथा ग्रन्थ

मँझली दीदी

वात्सल्य तथा करुणा-भाव का सच्चा चित्र

मूल्य ।।।)

स्त्रियों और बच्चों के लिये सुन्दर वस्त्र

हमारे यहां स्त्रियों और बालकों के उपयोगी साड़ियाँ जाकटें और कुरते बहुत ही खूबसूरत फ़ैंसी बनावट के मिलते हैं। एक बार मंगाकर देखिये नापसन्द हों या महंगे जचें तो फौरन वापिस भेज कर कीमत वापिस मंगा लीजिये। की० साड़ी वेल रेशम की किनारीदार ७) ८) ९) १०) १२) जरी किनारी १५)

बाल बढ़ाने वाला तैल—इसके लगाने से बाल बढ़ते हैं, काले रहते है, और बालों का उखड़ २ कर गिरना बन्द होता है की०॥)

बच्चों के गले के लाकिट—ये लाकिट दांत सुगमता से निकलने के लिये प्रसिद्ध हैं की०॥।)

बालसुधा—गोद के बच्चों को मोटा ताज़ा और तन्दुरुस्त बनाने की मीठी दवा कीमत फी शी० ।।।)

महासुगंधित तैल—माथे को सुगंधित और ठंडा करने वाला तैल कीमत १)

ब्रासलेट वाच ।

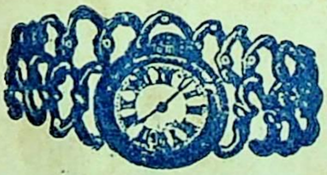

न० ३२ यह बिल्कुल ही नई फैशन की चीज़ है इसके बीच में एक छोटी सी जेबघड़ी है। और इधर उधर चूड़ियां ऐसी तर्ज से बनाई गई हैं कि चाहे जैसे बडे हाथ में पहिना लीजिये ठीक नाप की हो जावेगी। हिन्दुस्तानी बड़े घरों की स्त्रियां भी इसे बहुत पसन्द करती हैं क्योंकि घड़ी की घड़ी और गहने का गहना है पीतल पर सोने की गिलट वाली का दाम ८) जिसके चारों तरफ नग जड़े हैं दाम १०) रु०।

बालकों के फैंसी कुरते—इनकी सुन्दरता देखने ही से सम्बन्ध रखती है, हर एक रङ्ग के क़ीमत ४) ५) ६) ७) ९) १०) यही जरी के १५) २०) २५)

बोडी या जाकेट—जनानी चाहे जिस नाप की क़ीमत ४) ५) ६) यही जिस में सुनहरी काम हो रहा है ८) १०) १४) २०) २५) ३०)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूची पत्र मंगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—

सुख-संचारक कम्पनी

मथुरा

Any Shape / Design / Number is Given for

Rs. 7 Only.

22 Ct. Rolled gold wrist watches.

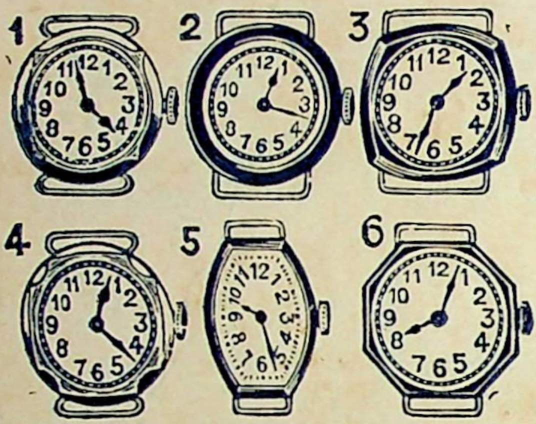

Original Price Rs. 14

Half Price Rs. 7

Only for one month. We are giving this offer for the New Year. All watches are, given at half Prices. The best movement and with perfect mechanism, looks beautiful to wear and handy. All wrist watches are guaranteed. Any Shape, Design or any Number is given with superior Silk strap free.

Sale Price Rs. 7 only. Guaranteed for ten years.

ONLY A FEW MORE. WRITE NOW.

Apply to:—**SWAN HOUSE, P. B. 508, P. T. MADRAS.**

FREE! FREE!!

"C" Regd. TIME PIECE given FREE

TO ANY ONE

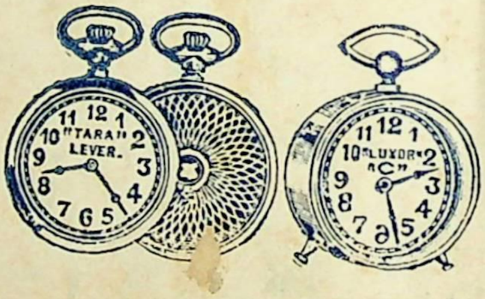

ordering for our "Tara Lever" 18 caret Rolled gold Pocket Watch with beautiful engravings on the back and guaranteed for five years, duly stamped on the dial, by the manufacturers, costing **RUPEES FIVE**,

We give as a **Free Offer**, our "C" Regd. Time Piece.

Write now. This Offer is Limited.

Can be had from—

CAPTAIN WATCH CO., P. B. 265, MADRAS.

महारथी प्रेस, कृष्णा बिल्डिङ्ग, देहली में छपा। और बा० त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने

Regd, No. L. 1240

वर्ष ७] ज्येष्ठ, आषाढ़ १९८३—जून, जुलाई १९२६ [खण्ड ८, संख्या २

ज्योति

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी० ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय — पृष्ठ
१—कामना—ले० "श्री हरि" ६१
२—महा पुरुषों की मातायें—ले० "आर्य्य महिला" ६२
३—भारतीय राजनीति का आधार—ले० श्रीयुत जगदीश चन्द्र शास्त्री ६६
४—हिन्दू संगठन (कविता)—ले० भानुदत्त 'ऋषि' हिन्दी प्रभाकर, साहित्यालङ्कार ७१
५—हमारे सूक्ष्मदर्शियों के सिद्धान्त—ले० श्रीयुत इन्द्र शर्मा 'अच्छेद्य' ७२
६—हितोपदेश—ले० धर्मचन्द्र खेमका ७४
७—राष्ट्रीय गीत—ले० श्री० पं० "वीरहरि" साहित्य कुल भूषण ७५
८—आर्य्यसमाजी—ले० श्रीयुत निरंजन नाथ जी ७६
९—समस्या पूर्ति ७९
१०—मोहिनी के आंसू—ले० श्री सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज ८०
११—एलन का आशीर्वाद………… ८९
१२—आवागमन—ले० श्रीमती राजकुमारी ९६
१३—स्त्रियों के अधिकार—ले० पं० यशपाल सिद्धान्तालंकार ९८
१४—हिन्दी साहित्य में काव्य की दुर्दशा—ले० श्री० रामकृष्ण मिश्र साहित्याचार्य्य १०१
१५—गुजरात की हृदय विदारक दुर्दशा—ले० विद्याव्रत शास्त्री १०३
१६—वैज्ञानिक संसार १०८
१७—हमारी मंजूषा ११२
१८—कुसुमोद्यान ११७
१९—वनिता विनोद १२५
२०—कन्या गुरुकुल समाचार १४२
२१—विचार प्रवाह १४५

ग्राहकों के लियेः—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ ता० को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्यय सहित इसका वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्यय सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियां सब नहीं मिलतीं जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रैल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियां दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी० पो० भेजने से ग्राहकों को और हमें दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र

मैनेजर,
'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली
के पते पर आने चाहियें।

बड़े बड़े अक्षरों में सुन्दर छपाई ! मोटे रङ्गीन काग़ज़ की मज़बूत जिल्द !!

सचित्र हिंदी महाभारत

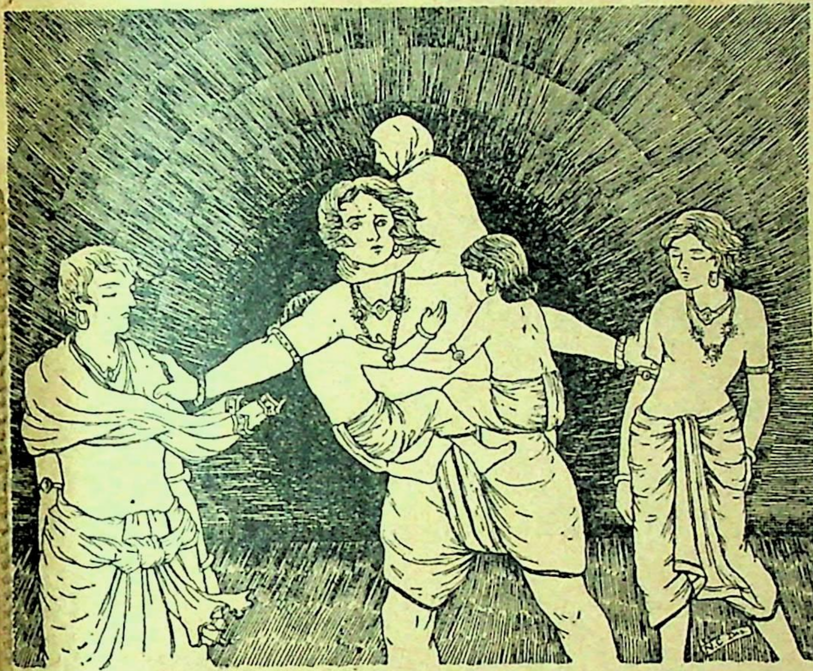

✻ भीम का भाइयों और कुन्ती को कन्धे पर ले जाना ✻

पृष्ठ-संख्या ४,०००,
चित्र संख्या २,०००,
खण्ड ८, अङ्क ४०,
मूल्य ५०)

स्थायी ग्राहकों से रियाअत

बढ़िया काग़ज़ पर १०० पृष्ठों और ५० चित्रों का एक अङ्क प्रतिमास

व्यासपूर्णिमा (आषाढ़ सुदी १५ सं० १९८३) से निकलेगा।

मूल्य प्रति अङ्क का १।)

संस्कृत और हिन्दी के अनेक विद्वानों के परामर्श तथा सहायता से सुयोग्य लेखकों ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से इस सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत के अनुवाद को तैयार किया है। इसमें आख्यानों को समझने में सहायता देने के लिए २०० पूरे पृष्ठ पर रङ्गीन, तथा १,८०० सादे सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। इस सर्वमान्य ग्रन्थ के जो स्थायी ग्राहक बन जायँगे उनको प्रति अंक १) में ही मिलेगा और जो ग्राहक साल भर का मूल्य १२) मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेज देंगे या पहला अंक १२) की वी० पी० से भेजने की आज्ञा देंगे, उन्हें डाकख़र्च भी नहीं देना होगा। ग्राहकों के सुभीते के लिए अलग से बहुत सुन्दर कपड़े की जिल्दें भी सुनहले नाम के सहित तैयार कराई जायँगी। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ॥।) रहेगा पर स्थायी ग्राहकों को ॥) ही में मिलेगी। यह पवित्र ग्रन्थ हर एक व्यक्ति के घर में रहना चाहिए।

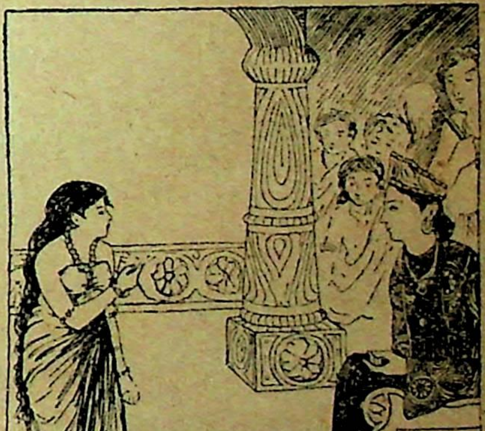

दुष्यन्त से तिरस्कृत शकुन्तला

नोट—विशेष जानने के लिए परिचय-पुस्तक और ग्रन्थ का एक अध्याय नमूने के तौर पर मुफ़्त में मँगाकर पढ़िए।

नेजर महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

सज-धज के साथ, सुन्दर चित्रों और लेखों से विभूषित

सहेली

हिन्दी-भाषा में बालिकाओं के लिए एकमात्र मासिक पत्रिका

शीघ्र ही जुलाई सन् १९२६ से प्रकाशित होगी।

हिन्दी में इस समय ऐसी एक भी पत्रिका नहीं है जो एकमात्र बालिकाओं ही के लिए हो। स्कूली-शिक्षा के सिवा बालिकाओं के लिए भी ऐसे पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता है जिससे स्कूल की शिक्षा में उन्हें सहायता पहुँचे और उनका पढ़ने-लिखने में विशेष रूप से उत्साह उत्पन्न हो, साथ ही उनके ज्ञान की भी वृद्धि हो। हम बहुत दिनों से इस प्रकार की एक सर्वाङ्ग-सुन्दर पत्रिका की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। हमारे यहाँ से प्रकाशित 'बाल-सखा', बाल-सखा-पुस्तकमाला तथा अन्य बालोपयोगी सचित्र साहित्य को हिन्दी-संसार ने भले प्रकार से अपनाया है। अस्तु, इसी प्रकार से विशेषकर बालिकाओं के लिए भी एक पत्रिका निकालने के लिए हमसे हमारे प्रेमी ग्राहक अनुरोध कर रहे थे। अब हमारे प्रेमियों को यह सुनकर हर्ष होगा कि इस अभाव की पूर्ति के लिए और अनेक सज्जनों के आग्रह से हमने हिन्दी-भाषा-भाषी बालिकाओं के लिए, **'सहेली'** नाम की सचित्र मासिक पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

'सहेली' बालिकाओं के पढ़ने के लिए परमोपयोगी बिलकुल नये ढंग की ऐसी सचित्र मासिक पत्रिका होगी जिसकी

हर एक घर में बहुत अधिक आवश्यकता है ।

थोड़ो भी पढ़ी-लिखी बालिकायें बड़े चाव से इसे पढ़ेंगी और जो पढ़ी-लिखी नहीं हैं वे अपनी सखी-सहेलियों से पढ़वाकर इससे लाभ उठावेंगी ।

'सहेली' को पढ़-सुन कर बालिकायें ऐसी उपयोगी बातें सहज ही में सीख जायँगी जिनका जानना और सीखना उनके लिए बड़ा ही आवश्यक है ।

'सहेली' के प्रति अङ्क में

सुप्रसिद्ध लेखकों और लेखिकाओं के लेख तथा कवियों की उपदेशप्रद मनोहर वितायें, सती स्त्रियों के शिक्षाप्रद छोटे-बड़े जीवन-चरित, मनोहर कहानियाँ, मनोरञ्जक हेलियाँ तो रहेंगी ही, साथ ही

स्वास्थ्य-रक्षा, पाक-शिक्षा, गृह-प्रबन्ध आदि विषयों के भी उपयोगी लेख रहेंगे ।

र्थात् उन सभी उपयोगी विषयों का समावेश इस पत्रिका में किया जायगा जिनका म्बन्ध बालिकाओं की शिक्षा और मनोरञ्जन से है ।

'सहेली' में प्रतिमास फुलस्केप कार्टो (बाल-सखा) साइज़ के ४० पृष्ठ, एक सुन्दर रङ्गीन गैर १०–१२ सादे चित्र रहेंगे और

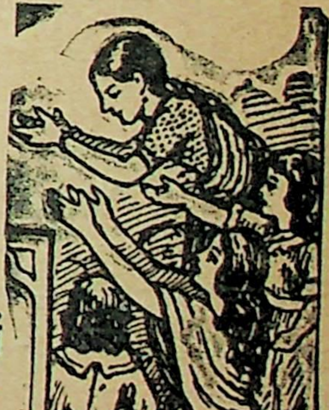

वार्षिक मूल्य केवल २॥) ही होगा ।

हेली' को आपकी कन्यायें, छोटी बहनें और बहुएं बड़े चाव से माँग ाँग कर पढ़ेंगी । इसलिए

आज ही एक कार्ड भेज कर आप ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लीजिए ।

नेजर 'सहेली', इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

१ और २ वाक्यों में से जो स्वीकार हो उसे छोड़ कर शेष काट दीजिएगा ।

नई पुस्तक ! तैयार होगई !! **शीघ्र मँगाइए !!!**

इ-त्सिङ्ग की भारतयात्रा

हमें अपने देश के इतिहास का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में जिन मार्गों से सहायता मिलती है उनमें चीनी यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों को मुख्य स्थान प्राप्त है। फ़ाहियान और ह्यून-स्याँग के यात्रा-वर्णनों से भारतीय इतिहास पर जैसा कुछ प्रकाश पड़ा है वह विज्ञ पाठकों से छिपा हुआ नहीं है। उल्लिखित पुस्तकों के हिन्दी रूपान्तर भी पाठकों ने देखे होंगे। किन्तु एक और चीनी पर्यटक यहाँ सन् ६७१ से ६९५ तक रह कर विद्याभ्यास करके अपने देश में बहुत सी संस्कृत पुस्तकें ले गया था और वहाँ उसने इनका अनुवाद, भारतीय भिक्षुओं की सहायता से, किया था। इस यात्री का नाम इ-त्सिङ्ग है। इसका यात्रा-वर्णन बड़े काम का है। अध्यापक मैक्समूलर ने संस्कृत-साहित्य का काल-निर्णय करने में इ-त्सिङ्ग की बताई हुई तिथियों से सहायता मिलना स्वीकार किया है और महत्त्व की बात यह है कि इस देश में जितने चीनी यात्री आये थे उनमें यह इ-त्सिङ्ग ही सबसे अधिक संस्कृत का ज्ञाता माना जाता है। इससे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि इसका यात्रा-विवरण कैसा महत्त्वपूर्ण होगा।

किन्तु यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब तक हिन्दी में नहीं था। इसके लिए लोगों को अन्यान्य भाषाओं की शरण लेनी पड़ती थी। प्रसन्नता की बात है कि अब यह कठिनाई दूर हो गई। लाला सन्तराम बी० ए० ने इसका बढ़िया अनुवाद किया है; साथ ही बहुत सी टिप्पणियाँ लिख कर विषय को सुस्पष्ट कर दिया है। इसके सिवा और भी कई विद्वानों ने आवश्यक टिप्पणियाँ लिख कर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ा दी है। पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि ऐसे अच्छे ग्रन्थ का अनुवाद अब तक किसी भारतीय भाषा में नहीं था। यह सम्मान पहले-पहल राष्ट्र-भाषा हिन्दी को प्राप्त हो रहा है। व्यापक भूमिका, प्रस्तावना, यात्राविवरण, अतिरिक्त टीका, वैयाकरण भर्तृहरि, अतिरिक्त टीका और अनुक्रमणिका आदि शीर्षकों में पुस्तक विभक्त है। बड़े आकार के कोई पौने पाँच सौ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ २॥।) पौने तीन रुपये।

मिलने का पता——

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

इस मास की नई पुस्तकें

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की छोटी छोटी कहानियों का संग्रह।

गल्पगुच्छ

तीसरे और चौथे भाग भी छप कर तैयार हो गये।

वैसे कहानियां तो बहुत लोग लिखते हैं पर इनमें कुछ और ही मज़ा है। ये कहानियां क्या हैं मनुष्यों के अन्तर्जगत् के रहस्यागार हैं। एक एक कहानी एक एक भाव का सजीव चित्र है। कभी पढ़ते पढ़ते आप आश्चर्य से चकित होंगे, कभी भय से स्तम्भित होंगे, कभी शोक से व्यथित-चित्त होंगे और कभी हँसते हँसते लोट जायँगे। इनमें कहीं बाल्यरूप का सरल चित्र है, कहीं युवावस्था की उन्मादकारिणी छवि है, कहीं मिलन है और कहीं विच्छेद है। कहीं आशा है और कहीं अनन्त निराशा। इस पुस्तक में ऐसी छोटी छोटी कहानियां हैं जिनका मूल्य अगर सच पूछिए तो कोई लगा ही नहीं सकता। पढ़ कर देखिए तो आपका हृदय उच्च भावों से कैसा परिपूर्ण होता है।

दोनों भागों की कहानियों के नाम ही पढ़ कर देखिए कि कैसी मनोरंजक कहानियाँ हैं:—

तीसरे भाग की कहानियों की सूची	चौथे भाग की कहानियों की सूची
नवाबज़ादी	नन्दकिशोर
जासूस	दुर्बुद्धि...दीदी
बालक	सम्पादक...आफ़त
सज़ा	आधी रात में
अध्यापक	जीतहार...प्रतिहिंसा
मुंशी कुन्दनलाल	दादा...व्यर्थ चेष्टा
विचित्र कहानी	परोसिन...गुप्तधन
प्रतिज्ञा	अनधिकार-प्रवेश

इन दोनों भागों का मूल्य एक एक रुपया।

नोट—पूर्व प्रकाशित गल्पगुच्छ के पहले भाग का मूल्य ॥।) और दूसरे भाग का १) है

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

इस मास की नई पुस्तकें

यदि आप घर बैठे—

लन्दन-पेरिस की सैर

करना चाहते हों तो इस सचित्र बढ़िया पुस्तक को अवश्य पढ़िए। इसमें दुनिया भर के सबसे प्रसिद्ध दोनों नगरों—लन्दन और पेरिस—की सड़कों, दूकानों, स्टेशनों, अजायबघरों, मीनारों, थियेटरों, होटलों, महलों और प्रसिद्ध तथा ख़ास इमारतों की बनावट, वहाँ के निवासियों का रंग-ढंग, चाल-चलन, रहन-सहन, धन-वैभव, विद्या-बुद्धि और आचार-विचार का आँखों देखा वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को पढ़कर आप जान जायँगे कि हमारे देश से इन देशों में क्या भेद है, वहाँ के निवासी इतने सुखी और भारतीय इतने दुखी क्यों हैं, बड़े बड़े राजनीति-विशारद संसार के बड़े बड़े भागों पर कैसे शासन करते हैं, विज्ञान की नई नई बातों का आविष्कार कैसे होता है; बुद्धि और व्यापार से पृथ्वी का धन चारों ओर से खींच कर योरपवासी कैसे माला-माल हो रहे हैं। जिस सभ्यता और फ़ैशन ने संसार को वायुमंडल की तरह घेर रक्खा है और जिसका चित्र देखने के लिए भला कौन लालायित न होगा, उनका रोचक वर्णन आपको इसी पुस्तक में मिलेगा।

पुस्तक में २०-२५ सुन्दर तस्वीरें भी लगा दी गई हैं। पुस्तक पढ़ते जाइए और चित्र देखते जाइए बस, आपको यही मालूम होगा कि लन्दन की सड़कों पर घूम रहे हैं और पेरिस की सुन्दरता देख रहे हैं। मूल्य केवल २) दो रुपया।

बाल-दुर्गा

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सभी आस्तिक हिन्दुओं की आराधना का प्रधान अंग दुर्गापाठ है। जहाँ कहीं कुछ आपत्ति-विपत्ति, रोग-पीड़ा, मामला-मुक़द्दमा हुआ कि सप्तशती का पाठ प्रारम्भ किया गया। पर सप्तशती में जिस कथा का वर्णन है, जिन आपत्तियों के आने तथा उनसे छुटकारा पाने की शिक्षा है उससे बहुत थोड़े मनुष्य परिचित हैं। इसी कमी को पूरा करने के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में सप्तशती का भावानुवाद सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। इसके पढ़ने से छोटे छोटे बच्चे तक भी समझ जायँगे कि दुर्गा कौन हैं? उनमें कितनी शक्ति है? उन्होंने कैसे कैसे दुष्ट दैत्यों का दमन किया है और किस प्रकार अपने भक्तों का उद्धार किया है? दुर्गा-पाठ में कैसी-कैसी वीरताओं की बातों का वर्णन है?

आज ही एक प्रति मँगा कर स्त्रियों और बच्चों के हाथ में दीजिए। इस पुस्तक को पढ़ कर उनकी बुद्धि और व्यवहार सुधर जायगा, साथ ही महामाया के प्रति उनकी भक्ति उत्पन्न हो जायगी और उनका हृदय बलवान् बन जायगा। पुस्तक में तीन-चार सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल ॥=) दस आना।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

उपयोगी ! रौचक ! ! नई पुस्तक ! ! !

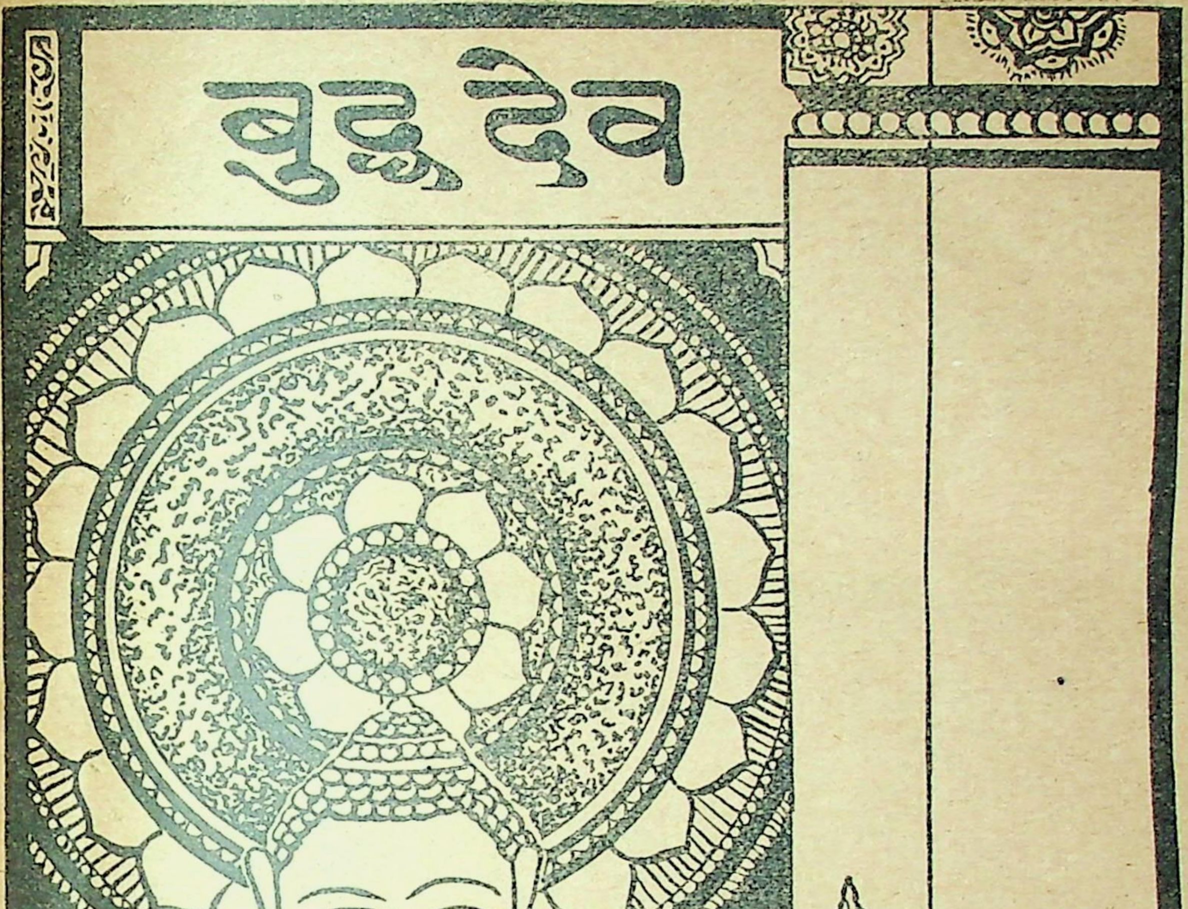

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीशरत्कुमार राय लिखित बँगला-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तक में बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध-देव की साधना का वर्णन और उनके अनुपम धार्मिक उपदेशों का संग्रह है। इसमें न तो बुद्ध का एकमात्र ऐतिहासिक रूखा विवरण है और न वे साक्षात् देवता बना दिये गये हैं। इसमें उनके साधक और उपदेशक रूप का मनोरञ्जक मुख्य चरित बड़ी उत्तम शैली में लिखा गया है जिसे पढ़ कर पाठकों को उनकी वास्तविक महत्ता का सहज में ज्ञान हो जाता है। यह सारा विवरण प्रामाणिक बौद्धशास्त्रों के आधार पर एकत्र किया गया है, कपोल-कल्पना नहीं है। इस कारण पुस्तक बड़ी ही उपयोगी हो गई है। पढ़ने से स्वर्गीय शान्ति और सुख प्राप्त होता है। तथा ढाई हज़ार वर्ष पहले की भारतीय सभ्यता और ज्ञान का जीता-जागता चित्र आँखों के सामने आ जाता है। पुस्तक में कई सुन्दर चित्र भी लगाये गये हैं। सचित्र कवर और रैपर संयुक्त तथा सुन्दर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

पहला ग्रन्थ

परिडतजी

ग्राम्य-सुधार की उत्तम आयोजना

मूल्य १॥)

शरद्-ग्रन्थावली में भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक शरद् बाबू के बढ़िया उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद निकलता है।

दूसरा ग्रन्थ

बड़ी दीदी

सुरेन्द्र और माधवी की मर्मस्पर्शी कथा

मूल्य १)

शरद्-ग्रन्थावली के उपन्यास हमारे वास्तविक जीवन का जीता जागता चित्र दिखानेवाले होते हैं। उनकी छपाई, सफ़ाई, काग़ज़, चित्र आदि अद्वितीय होता है।

शरद्-ग्रन्थावली

के

अब तक के प्रकाशित चारों उपन्यास-ग्रन्थों ने

उपन्यास-जगत् में

चारों ओर धूम मचा दी है

आप भी ॥) भेज कर स्थायी ग्राहक बन जाइए

और

पौन मूल्य में उपन्यासों को मँगा कर

मनोरञ्जन कीजिए

शरद्-ग्रन्थावली में बिलकुल नये ढंग के उपन्यास सरल भाषा में प्रकाशित होते हैं।

तीसरा ग्रन्थ

परिणीता

खेल-खेल में विवाह का हाल

मूल्य १)

शरद्-ग्रन्थावली का पाँचवाँ उपन्यास नव-विधान भी शीघ्र ही छपकर प्रकाशित होगा। मूल्य १)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

चौथा ग्रन्थ

मँझली दीदी

वात्सल्य तथा करुणा-भाव का सच्चा चित्र

मूल्य ॥।)

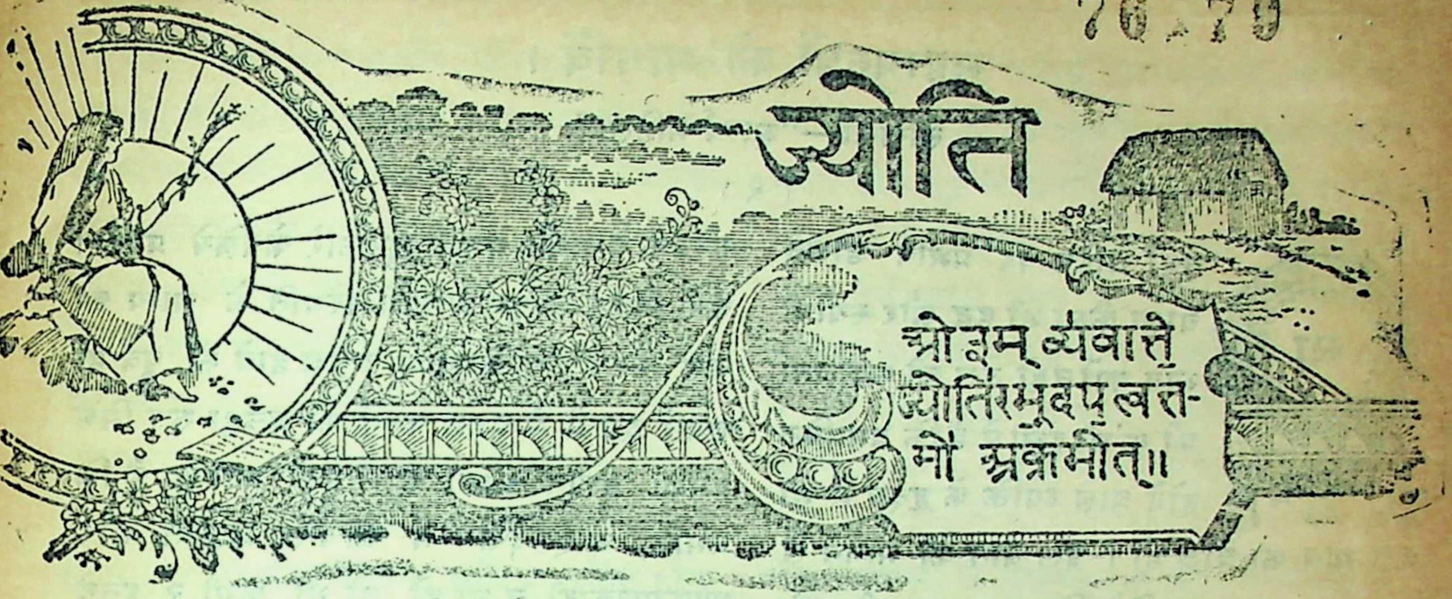
ज्योति
ओ३म् व्यवाते
ज्योतिरभूदपप्लवत-
मो अक्रमीत॥

वर्ष ७ } ज्येष्ठ, आषाढ़ १९८३—जून, जुलाई १९२६ { संख्या २, ३

कामना

लेखक—"श्री हरि"

हे प्रेम सिन्धो ! बस, मुझे इक प्रेम भिक्षा दीजिये ।
मेरा विरस जीवन प्रभो ! निज प्रेम पावन कीजिये ॥
हों शान्त तृष्णायें सभी, तव प्रेम ही की प्यास हो ।
हे प्रेमरूप ! हरे !! न फिर यह दीन दास निरास हो ॥

+ + + + +

प्रिय-प्रेम--मृग-जल में बहुत दिन तक भटकता हूं रहा ।
प्रियतम ! इसी से मैं तुम्हें, अब तक खटकता हूं रहा ॥
अब दीजिये वह प्रेम आसव, पी जिसे विश्वास से ।
यह प्रेम का पागल न होवे, दूर प्रभु के पास से ॥

महापुरुषों की मातायें।

लेखिका—"आर्य्य महिला"

(२)

मानवी चरित्र पर प्रभाव डालने वाला कैसा भी दृढ़ और स्थायी भाव क्यों न हो उस की सफलता की कुंजी इसी में है कि प्रभावित होने वाले व्यक्ति के हृदय में भी इस भाव का वीज हो। इस बात को मानने से यह न समझना चाहिये कि परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता में भेद आता है कि वह भाव में भावुकता, प्रेरणा में प्रेरक शक्ति, तथा आशा में लक्ष्य, आदि गुणों को भर नहीं सकता; क्योंकि जहां यह ईश्वरीय विधान के ही अनुकूल है कि परमात्मा की इच्छा और आज्ञा उसकी प्रजा को ईश्वरीय ज्ञान द्वारा ज्ञात हो, वहां मानवीय हृदय किसी अज्ञात नियम से प्रेरित होकर–जिसे हम अन्तरात्मा में ईश्वर की प्रेरणा के नाम से कह सक्ते हैं—अपनी कुशल क्षेम के लिये अत्यावश्यकीय ऐहिक और पारलौकिक बातों के ज्ञान को ग्रहण करने के लिये उद्यत भी हो यह भी उसी विधान के अनुकूल है। यह ग्रहण करने की इच्छारूप मित्रभाव, जिसके कारण विश्वास का द्वार हमेशः ही खुला रहता है, हमें कभी तो आवेश के स्वरूप में दिखाई देता है, कभी किसी के स्नेह के रूप में, कभी न्यूनता के अनुभव के रूप में। किसी भलाई की आकांक्षा का रूप भी यह ले सक्ता है, तथा किसी भावी आपत्ति की भावना के भय का रूप भी धारण कर सक्ता है। चाहे इसके कारण हम कमज़ोरी की दशा में सहायता के लिये चिल्ला उठें या बन्धन के समय उससे छुटकारे के लिये प्रार्थना करें, किन्तु सम्पूर्ण मानवी–स्थिति के भाग्य को वश करने वाले भाव के उत्पन्न होने से पूर्व ही हमारे हृदयों में ग्रहण करने की इच्छा-रूप मित्र हमेशः जागृत रहता है। यही कारण है कि प्रभाव, चाहे देखने में अत्यन्त प्रशान्त और आक्रमणकारी न भी हों तो भी कभी २ इतने शक्तिशाली बन जाते हैं कि यदि ग्रहण शक्ति इस से कम दृढ़ होती तो वह कभी भी इतने शक्तिमान न होते।

अनुकूल मित्रभाव के रहते हुये तो अत्यन्त कोमल कानाफूंसी भी बड़ी शक्ति वाली बन जाती है, और अनिच्छा तथा अस्वीकृति से अधिकारियों की अत्यन्त आवश्यक आज्ञायें भी बलवती नहीं होती। इस लिये वह प्रभाव जो माता के स्नेह के द्वारा मनुष्य के रग रग में समा जाता है। अपनी दृढ़ता और स्थिरता के लिये बच्चे के हृदय में प्रकृति द्वारा स्थापित, माता के प्रेम के समकालीन प्रत्युत्पन्न ग्राहाशक्ति की सर्वथा अपेक्षा करता है।

सभी काल में माता के सुकोमल स्पर्श के आश्रय युवा पुरुषों की नम्र होने वाली प्रकृति के नत हो जाने के सुन्दर और सामायिक उदाहरण इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं। कितनी बार और किस खूबी के साथ! माता और बच्चे के पारस्परिक प्रेम के कारण मनुष्य प्रकृति में मनो भावनायें साथ २ परस्पर के आकर्षण से प्रभावित होती हैं और वह गर्म मिज़ाज को शांत,

दृढ़ इच्छा शक्ति को कमजोर, और अधूरे कार्य्य क्रम को परिवर्त्तित करने में सहायक होती हैं। यह ऐसा रोचक और शिक्षाप्रद गुण है जिसको जातीय लक्षण के प्रकट करने में इतिहास हमेशः दर्शाता रहता है, यहां तक कि उनके झूंठे धर्म में भी यह पारस्परिक सम्बन्ध, यह आपस का प्रेरक कारण--कार्य्य सम्बन्ध कभी दृष्टि से ओट नहीं होता। यह ध्यान भी रखना शिक्षा दायक होगा कि जो जाति जितनी ही नीचे गिरी होगी या जो लोग जितने अधिक पतित होंगे उन में मातृ शक्ति का प्रभाव-चाहे किसी रूप में हो, उसी समानुपात से कम होगा। दूसरी तरफ सभ्यता के ऊंचे पलड़े पर बैठे हुये देशों की जातियों की गाथायें भी-ख़ासकर पाश्चात्य देशों में तो रोम और ग्रीस और पूर्व में भारत वर्ष-पुत्र के भाग्य के ऊपर माता के प्रभाव के ज्वलन्त उदाहरणों से भरी पड़ी हैं; चाहे उन्हों ने अपने पुत्र को कीर्ति प्राप्ति का पथ प्रदर्शन किया हो, उसे खतरे से निकाला हो, या उसके हृदय में ऐसे वीरत्व के भाव डाले हों जिन के बिना वह अपनी आत्मरक्षा न कर सका हो।

उदाहरण के लिये रोम देश की गाथाओं में से एक जुपिटर की गाथा ले लीजिये। जुपिटर स्वयं मनुष्यों और देवाताओं का भी पिता था। यद्यपि उस की जीवन रक्षा उस की माता की ऐसी चातुरी से हुई थी जो कि गपाष्टिक जंचती है, तथापि इसका उदाहरण एक ऐसी घटना है जो कि-इन बहुतेरी गाथाओं में से जिनमें कि गपोड़े भी बहुत भरे हैं जिन का विश्वाश करना असम्भव है-एक अनोखी बात को संसार के सामने लाती है। वह बात है माता की ध्यान पूर्वक रक्षा तथा प्रभाव द्वारा बच्चे के भाग्य का निर्मित होना-जो कि मानव प्रकृति का सबसे प्रथम और गूढ़ सिद्धान्त है। यूनान देश के वीर योद्धाओं में ऐशेलीज़ नामक एक महाप्रतापी और दुर्दमनीय पुरुष हो गया है जिस पर कविता भी रची गई हैं। कहा जाता है कि उस में यह गुण कभी न आते यदि उसकी माता अपने एकान्त सामुद्रीय स्थान से आ आ कर समराङ्गण में उस का निरीक्षण न करती रहती, और देवताओं से उसकी रक्षा की अभ्यर्थना न करती। इस देव-माता में अपने पुत्रों को अमर-कीर्ति बनाने का लोभ इतना प्रबल था कि उसके लिये उसे उसके जीवन को भी परित्याग करने में कोई आपत्ति न थी। किन्तु फिर भी जब पुत्र पर संकट आता देखती है तो मातृप्रेम-स्वाभाविक मातृप्रेम के वशीभूत होकर अपने निज प्राणों को भी निछावर करदेने पर उतारू हो जाती है।

गाथाओं में इस प्रकार की असंख्य घटनायें विद्यमान हैं। उनका कहां तक उल्लेख किया जाय। और पाश्चात्य देशों की गाथायें साधारण जनों की समझ में भी कम आयेंगी; अतः हम एक दो भारतीय गाथाओं का भी उल्लेख करके आगे चलेंगे।

हमारे पाठकों ने देवहूती का नाम सुना होगा। इस प्रसिद्ध रमणी की गाथा जो पुराणों में मिलती है, वह इस प्रकार है। यह राजा स्वायंभुव मनु की कन्या थीं। इन का विवाह कर्दम ऋषि जो ज्ञान, विद्या, बुद्धि में अद्वितीय थे, के साथ हुआ था और इनकी तीन सन्तान सुप्रसिद्ध हुई हैं। दो कन्यायें अरुन्धती और

अनुसूया, तथा एक पुत्र, सांख्य दर्शनके रचयिता कपिल मुनि। कपिल मुनि ने जो अविष्कार किया है वह दार्शिनकों से छिपा हुआ नहीं है। किन्तु कपिल के इस शिक्षा लाभ के मूल में कान विद्यमान है? किसने उनकी क्षुद्रदृष्टि को जगत् की व्यापकता में फैला दिया? मानवी हृदय के सत्यों के खोजने के भाव को उन के हृदय में किसने जगाया? उनकी जननी देवहूती ने ही। अगर ऐसी माता न मिलतीं तो शायद कपिल। देव हमें सांख्याचार्य्य के रूप में न दीख पड़ते। मंदालसा के प्रभाव को कौन नहीं जानता कि जिस ने अपने भक्ति और ज्ञान के प्रभाव से पुत्रों को भी ब्रह्मज्ञानी बना दिये! प्रह्लाद की कथा किस से छिपी है कि जब विमाता के कहने पर उसके पिता राजा उत्तानपाद ने गोद से उसे उतार दिया और वह रोता २ अपनी माता सुनीति के पास गया तो वह देवी क्या कहती है? उस ने उसे बड़े २ उपदेश देकर मधुर बचनों से चुप करा के, शान्त करके, कहा कि "बेटा ईश्वर की कृपा बिना इस संसार में कुछ नहीं मिलता।" इन बचनों में क्या जादू था यह तो भगवान् ही जाने, परन्तु इस के सुनते ही ध्रुव पर वह प्रभाव पड़ा कि वह फिर घर में नहीं ठहरा और बन में जाकर तपस्या द्वारा ही अपनी अभिलाषा पुरी की।

प्राचीन पौराणिक गाथाओं ने ही नहीं, वरन मध्यकालीन समय में भी राजपूत वीरांङ्गनाओं ने अपने सन्तानों पर प्रभाव डालने के उदाहरण दिये हैं। और योरूप में भी ईसाई धर्म के फैलने के पश्चात् जब कि वहां की जनता के विश्वासों और विवेक में बड़ा भारी परिवर्त्तन हो चुका था, तब भी प्रकृति के इस प्रथम सिद्धान्त की अवहेलना नहीं की जा सकी थी। केवल उस का स्वरूप बदल गया था और स्वरूप बदल ने से मातृ-प्रेम की आकर्षण शक्ति और ज्यादः बढ़ गई थी, जो कि बिल्कुल स्पष्ट दीखने लगी थी। प्रकृति की दृढ़ झुकावट, चाहे वह गाथाओं में प्रगट की गई है, या वास्तविक घटनाओं में सर्वदा और सब काल में इसी अटल सिद्धान्त की पुष्टि करती रही है कि माता के पास एक शक्ति है जिसे वह अपने सन्तान की जीवनी में, उसके कार्य्यों को निर्माण करने तथा उसे प्रभावित करने में लगा सकती है, और नहीं भी लगा सक्ती है। इस भूमिका में हमने इसी सिद्धान्त को दिग्दर्शन कराने के हेतु संक्षेप से कुछ उदाहरण ऐसे दर्शाये हैं जिन में आचार व्यवहार को बनाने में माता का स्पष्ट हाथ दूर से ही दीख पड़ता है, किन्तु प्रत्येक देश और जाति में इस शक्ति के उदाहरण अवश्यमेव विद्यमान हैं और पेश किये जा सक्ते हैं। हमारी इच्छा है कि हम क्रमशः कभी भारतीय और कभी विदेशी उदाहरणों द्वारा ज्योति के पाठकों का मनोरंजन करते रहें, और यतः विदेशी महापुरुषों के सम्बन्ध में हमारे बहुतेरे बहिन भाइयों का ज्ञान बहुत कम होगा, हम विदेशी, प्रसिद्ध, कतिपय महापुरुषों की जीवनियां पहिले देंगे फिर भारतीय देंगे। किन्तु स्मर्ण रहे कि महा पुरुष की जीवनी पढ़ने के समय तत्कालीन परिस्थिति पर विशेष ध्यान रखना होगा वरना महत्व समझ में नहीं आवेगा।

वह मनुष्य जो प्रायः करके जनता के शब्दों में 'बड़े आदमी' कहलाया करते हैं वह लोग

हुआ करते हैं जो कि अपने ज़माने में, अपने स्थान पर, और अपने समय के लोगों में से कुछ विशेष गुण धारण करने के कारण ऊपर उठे हुये होते, हैं और विशेष सन्मान के पात्र बन जाते हैं, और जन साधारण उन्हें अपने से ऊंचा समझने लगते हैं।

लेकिन 'बड़े आदमी' या महापुरुष शब्दों का अर्थ इस से कुछ ऊंचा है। वह यह है कि उन्हीं दशाओं में एक मनुष्य इतना ऊंचा उठ जाता है और इतना लाभदायक बन जाता है कि अपने अध्यवसाय, अपने पराक्रम, अपने विवेक अथवा अन्य स्वाभाविक या प्राप्त किये हुये गुणों के कारण वह अपने समकालीन जनों को बहुत लाभ पहुंचाने में समर्थ होता है। सब की आंखें उसी ओर लगी रहती हैं, और उसके कृत्यों को-जिन्हें वह अन्यों की अपेक्षा अधिक उत्तमता से करता है। सभी चातक की दृष्टि से देखते हैं। इनकी छोटी २ घरेलू बातें भी और साधारण से गुण भी लोगों की दृष्टि में बड़ा महत्व रखते हैं और लोग उन्हें पथ प्रदर्शक मानकर उन पर चलने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे सज्जन ही सचमुच 'बड़े' कहलाने योग्य होते हैं, चाहे संसार में उन का कोई भी पद हो या अधिकार हो। लेकिन वह दुर्लभ ही होते हैं, इतने दुर्लभ होते हैं कि हमें 'बड़े' का अर्थ विस्तृतरूप में लेना पड़ेगा ताकि हम कुछ उदाहरण दे सकें।

जब हम किसी 'बड़े आदमी' या महापुरुष की बाबत कुछ कहते हैं तो तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान कराना बड़ा आवश्यक होजाता है। बड़े बनने के लिये जिन गुणों की आवश्यका है उन में सब से प्रथम तो यह है कि उस व्यक्तिको अवस्थाओं का ज्ञान हो, और उन्हें काबू करने का सामर्थ्य भी हो जिस से उसको लाभदायक बना सके। किसी में और सभी गुण हों केवल यही गुण न हो, ऐसा भी हो सक्ता है; परन्तु ऐसा मनुष्य इतना कमजोर होगा कि वह बचपन से मृत्यु तक कोई ऐसा कार्य्य न करेगा जिसे लोग 'बड़ा' कह सकें। सौभाग्य की बात तो यह है कि सर्वोत्तम महापुरुषों के लिये परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने या अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल बनाने का कार्य्य स्वयं भाग्य के निर्माण द्वारा ही हो जाता है, उनकी ओर से तो कोई ख़ास कोशिश नहीं रहती, केवल यह बात होती है कि वह अपनी दशा में उन परिस्थितियों के घटाने अथवा उनको पहिचान करने में अत्यधिक ध्यान-शील व चतुर रहते हैं नहीं तो वह 'बड़े' न बन सकें।

जब हम संसार के विस्तृत क्षेत्र में दृष्टि डालते हैं तो पता लगता है कि इन परिस्थितियों के विधान में किसी २ के लिये तो परिस्थिति तैय्यार होती है, और उसके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती है और कभी २ महापुरुष अनजान में ही बहुत देर तक परिस्थितियां तैयार करते रहते हैं, अपने को उनके लिये तैय्यार बनाते रहते हैं। ईसाई धर्म के इतिहास में युरोप में ल्यूथर के लिये पहिली अवस्था थी, किन्तु राज नीतिक क्षेत्र में क्रामवेल के लिये दूसरी दशा थी। संसार को प्रतीक्षा करने की ऋतुयें बहुत आती हैं। भिन्न २ देशों और भिन्न संस्थाओं को प्रायः करके महापुरुष के आगमन की ही

प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जब कि सब कुछ तैयार रहता है, केवल पुरुष के आने की जरूरत रहती है। जैसा कि भगवान कृष्ण जी ने गीता में कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

ऋषि दयानन्द के लिये परिस्थिति तैयार थी, उन्हों ने केवल उसे पहिचान लिया। इसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी परिस्थिति की पहिचान करली है, यही उनकी महत्ता का रहस्य है।

दूसरी तरफ़ हमें बहुतेरे ऐसे भी व्यक्ति दिखाई देते हैं जिन में यह गुण होते हैं कि यदि वह किसी भिन्न परिस्थिति, समय, या स्थान में होते तो अपने लिये भी तथा दूसरों के लिये भी आश्चर्य्यजनक कार्य्य करते। लेकिन अपनी वर्तमान स्थिति में वह ऐसे तारे से शोभित होते हैं जो अपनी परिस्थिति से भ्रष्ट हो गया हो, वह वर्त्तमान वातावरण से बिल्कुल पृथक् दीखते हैं अतः उसका जीवन बिना लाभ का होता है, उसका चरित्र शोभाहीन होता है, और अधिकांश में उनका जीवन सुखमय नहीं होता।

भारतीय राजनीति का आधार

लेखक—श्रीयुत् जगदीशचन्द्र शास्त्री

जिस समय कोई शिल्पी किसी विशाल भवन का निर्माण करना चाहता है तो वह उसकी आधार शिला (बुनयादी पत्थर) को स्थापित करते समय आधार की गहराई और चिरस्थापिता का विचार कर लेता है उसी भांति भारतीय राजनीति का विशाल-भवन बनाते हुए हमें उसके आधार की स्थिरता पर विचार करना पड़ेगा। देश के बड़े २ नेताओं ने जिस समय इंडियन नेशनल कांग्रेस की नीव डाली थी उस समय इसका आधार क्या था? यदि आधार शिला में दृढ़ता थी तो कांग्रेस इतने बड़े दीर्घजीवन में भी भारतीय राजनीति का विशाल भवन क्यों नहीं बन सकी? और वह बनते २ ही क्यों खंडहर हो गया? इत्यादि शंकायें राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में उठती रहती हैं। भवन के खंडरातों के देखने की अपेक्षा यदि हम उसके आधार की ओर देखें तो यह समस्या शीघ्र ही सुलझ जायगी और हमें अपनी सारी भूल मालूम हो जायगी। हम जाति, देश, भाषा इन तीनों बातों को भारतीय राजनीति का आधार मानते हैं, और इन्हीं के आधार पर हम पाठकों के आगे अपने विषय का विस्तार करेंगे।

हम ने राजनीति का प्रथम आधार 'जाति' माना है। इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय राजनीति में जिस जाति की अधिकता है उसके नेतृत्व में इतर जातियों को संगठित होना चाहिये। भारतवर्ष में हिंदुओं की संख्या सब से अधिक है अतएव मुसलमान, ईसाई आदि इतर जातियों को हिन्दुओं के नेतृत्व का अवलम्बन करना चाहिये। न्याय के बल पर प्रत्येक

हिन्दू को यह कहने का अधिकार है कि इतर जातियों को हमारी अनुमति से चलना पड़ेगा। हिन्दुस्तान के प्रत्येक निवासी को-चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान-अपने धर्म का यथारीति पृथक्२ पालन करते हुए भी हिन्दुस्तानी और भारतीय बनना पड़ेगा, परन्तु भारतीय राजनीति की यह प्रथम आधार शिला ही डाँवाडोल है। भारतीय राजनीति के नेता भी इस आधार की उपयोगिता को ठीक २ अनुभव नहीं कर सके हैं जिस का फलस्वरूप प्रति दिन दिल्ली सहारनपुर, कोहाट और कलकत्ते के भीषण दंगे हो रहे हैं। इन दंगों का मूल कारण धार्मिक आवेश है। हम धर्म के जोश में अंधे हैं, और हम देश की करुण चीत्कारों को अनसुनी कर रात दिन मरने के लिये प्रस्तुत रहते हैं। हम उन ओहदों और कौंसिल और म्युनिसपिलटी के मेम्बरी के लिये लड़ते हैं जो कि एक विदेशी गवर्नमेण्ट ने हमारे सामने टुकड़े के रूप में फेंक रक्खे हैं। हम उन पदों को प्राप्त कर अपने अधिकारों की रक्षा का दम भरते हैं, पर यह सर्वथा भूल है। इसमें गवर्नमेण्ट का कोई दोष नहीं, क्योंकि यह राजनीति का नियम है और जो राजा राजनीति के नियमों का पालन नहीं करता उसका राज्य कभी चिरस्थायी नहीं रह सकता। हमारे धार्मिक पंडे और मौलवी इतने अन्धे हो गये हैं कि वह हमें मित्रता का अनुसरण करने नहीं देते। सचमुच मित्रता भी जाति के अनुसरण करने पर ही हो सकती है। आजकल भारतवर्ष के निवासी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं पर हिन्दुओं की संख्या और काल दोनों ही मुसलमानों की अपेक्षा बढ़े चढ़े हैं, फिर यह कदापि संभव नहीं कि हिन्दू मुसलमानों के पीछे लग जायँगे।

परन्तु हमें यह सुन कर आश्चर्य होता है कि भारत का एक २ मुसलमान ३ तीन हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर सारी जाति को अपने धर्म में दीक्षित करना चाहता है। मौलाना मुहम्मदअली जैसे भारतीय राजनीति के कर्णधार महात्मा गांधी को मुसलमान धर्म में दीक्षित होने की शुभ घड़ी की बाट जोह रहे हैं, क्योंकि वह एक पतित से पतित मुसलमान को भी एक धर्मपरायण हिन्दू से ही नहीं वरन् महात्मा गांधी से भी अच्छा समझते हैं। जिस राजनीति के अनुयायी इतने धर्मान्ध होकर, अपने राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य को भूलकर, मूल आधार की बात को भुला दें उस राजनीति के महल को खड़ाकर उसमें प्रतिष्ठित भारतीय राष्ट्रदेव की मूर्ति को कैसे देख सकते हैं? स्वार्थपरायण और क्षमताहीन जातियां कभी अपने उद्देश्य को नहीं प्राप्त कर सकतीं। अतएव जो भारतीय राजनीति को जागृत रखना चाहते हैं उन्हें या तो ऐसे धर्मोन्मत्त लोगों का साथ ही छोड़ना पड़ेगा, या उन्हें अपनी शक्ति द्वारा हिन्दू जाति की शक्ति का अनुभव करा देना होगा। जब सन् २१ में असहयोग आन्दोलन जोरों पर था तब प्रत्येक विजातीय के लिये आवश्यक था कि वह हिन्दुओं का हाथ पकड़ कर आगे बढ़े परन्तु उस मिलाप के सुखद समय में भी इस्लामी पेशवा चुप्पी साधे नहीं बैठे थे क्योंकि उनमें धार्मिक जोश के फव्वारे फूट रहे थे। और अतएव उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का काम जारी रक्खा।

जो मुसलमान हिन्दुओं के साथ थे उन में से

बहुधा लोग लहर में बह रहे थे और अब यह स्पष्ट हो गया कि कौन अपने आप रंगे हुए थे और कौन रंगे गये थे। किसी आन्दोलन में उल्लू सीधा करने वालों की संख्या कम नहीं होती और उसी आधार पर हम बल पूर्वक कह सकते हैं कि मुसलमानों के दो, तीन नेताओं को छोड़ कर सभी दुरंगी चाल चलने वाले हैं। मुसलमान यदि अपने को हिन्दुओं से बलवान् समझते हैं या अधिक स्वराज्य के अधिकारी समझते हैं तो यह उनकी उस मदान्धता का परिणाम है जो उन्हों ने हिन्दुस्तान के शासनकाल में प्राप्त की थी। भारतवर्ष के आदिमवासी वह नहीं हैं, और न उनकी इतनी संख्या थी और न अब भी कोई बड़ी संख्या है। हम यह नहीं चाहते कि हिन्दू उनको अनुचित रीति से दबावें. पर यह भी कभी नहीं मान सकते कि हिन्दू मुसलमानों के दबाव से दब जावें। जो विजातीय 'महान् मध्यवर्ती खिलाफत संघ' की स्थापना से अपने को बलवान् बनाना चाहते हैं वह भूले हुए हैं। उनको यह विश्वास रखना चाहिये कि वह 'महान् भारतीय राष्ट्रीय संघ' बनाकर ही मुसलमानों के स्वत्वों की रक्षा कर सकते हैं अन्यथा नहीं। उन को अपनी शासकता का व्यर्थ का मद छोड़ना ही पड़ेगा और भारतीय जाति, हिन्दुओं के नेतृत्व में चलना ही पड़ेगा। अब मौलाना लोग महात्मा गांधी को मुसलमान बनाने की आशा छोड़ दें और राष्ट्र धर्म में दीक्षित हों।

हम नहीं चाहते कि वह अपने धर्म को छोड़ कर हिन्दुओं से मेल रक्खें। पर वह अपने धर्म का पालन करते हुए भी भारतीय बन सकते हैं और हिन्दुओं के नेतृत्व में चल सकते हैं। उनका टर्की से जो सम्बन्ध था वह टूट चुका, क्योंकि वहां स्वतन्त्र विचारों का साम्राज्य है। वहां से दिमाग़ और दिल की गुलामी मिट गई और आज मौलवी टर्की के नाम पर अपना सिर नहीं उठा सकते। जैसे २ लोगों में स्वतन्त्र-विचार-शक्ति बढ़ती जायगी वे स्वयं भी स्वतन्त्र होते जायेंगे। याद रहे कि मुसलमान विदेशीय मुसलमान राष्ट्रों की सहायता से कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकते चाहे वह संख्या में कितने ही अधिक क्यों न हों। भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं की सहायता से भारतीय स्वराज्य प्राप्त हो सकता है परन्तु उन्हें धार्मिक जोश को छोड़ 'मुसलमान राज्य की स्थापना' का स्वप्न भी छोड़ना होगा।

हम ने भारतीय राजनीति का दूसरा आधार 'वेश' को माना है। 'वेश' हमारे बाह्य जीवन की पवित्रता का सूचक है। कोई मनुष्य किसी के हार्दिक विचारों को यथावत् नहीं जान सकता पर जब हम स्वदेशी वेश में किसी को देखते हैं हम उसको स्वदेशी जान जाते हैं। जब एक भारतीय कोट, पतलून और हैट पहन कर भारत की भूमि पर चलता है तब हम उसे कभी भारतीय नहीं कह सकते। इंगलैंड की सड़कों में भारतीय वेश के पुजारी पर जैसी दृष्टि पड़ती है उसी तरह भारत में भी इंगलिश वेशधारी पर पड़नी चाहिये। परन्तु जब हमारे सामने कोई भी इस प्रकार का मनुष्य आता है तब हम उस का आदर करते हैं जिस का फल यह होता है कि वह आजन्म विदेशीय वस्त्रों को पहिरने की धृष्टता करता है। हमारे राजनैतिक

नेता ने इस प्रश्न को बड़ा महत्व दिया है और वह स्वयं मौखिक और क्रियात्मक रुप से चरखे के पक्षपाती हैं और इसी में देश का हित समझते हैं। वास्तव में यदि भारत के आबाल-वृद्ध सभी स्त्री पुरुष महात्मा जी की इच्छानुसार चरखे का व्रत धारण करें तो इस वेश के सारे ही प्रश्न का समाधान हो जावे। वेश हमारे राष्ट्रीयता का परिचायक है। हमारे प्रत्येक व्यापारी और धनी के हृदय में राष्ट्रीय वेश के प्रति प्रेम हो जावे तो आज ही देश में विदेशीय वस्त्रों का आना बन्द हो जावे। जब हम अपना इतिहास उठा कर अपने देश के शिल्प के नाश की ओर दृष्टि डालते हैं हमारा रक्त खौल उठता है। हमें उन ईस्ट इंडिया कंपनी की सभी नीतियों का स्मरण आजाता है जो उन्हो ने भारतीय शिल्प के नाश के लिये कीं, किन्तु जो कुछ बीत गया उसके लिये रोने से क्या? हम इस हीन अवस्था में भी भारतीय शिल्प की वृद्धि देख कर भारतीय प्रजा को बधाई दे सकते हैं और शीघ्रातिशीघ्र उनसे एक योग्य शिल्पी बनने की आशा करते हैं किन्तु शिल्प की वृद्धि देश के धनिकों की रुचि और उत्साह पर निर्भर है। हमारे शिल्पियों की कठिनता और अधिक व्यय से बनाई वस्तुएँ प्रदर्शनियों में ही रक्खी जाती हैं। प्रायः बड़े २ धनी भी उनका योग्य मूल्य देख कर नहीं ख़रीदते क्योंकि उनकी रुचि विदेशीय वस्तुओं की ओर होती है और उनका सारा उत्साह अपने प्रभुओं को प्रसन्न रखने के लिये होता है। जो लोग भारतीय राजनीति के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हों उनको चाहिये कि वह राष्ट्रीय सैनिकों की वर्दी पहिनें, उनके वेश से भारतीयता का परिचय मिलता है चाहे वह किसी जाति के हों। मुसलमानों की टोपी और ईसाइयों के टोपों का सम्बन्ध टर्की और इंगलैण्ड के साथ न हो पर भारतवर्ष के साथ है। तीसरी बात है—'भाषा'। हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी है। यह निर्विवाद बात है कि हिन्दी प्रत्येक हिन्दुस्तानी को आनी चाहिये। हिन्दी का पढ़ना तभी संभव हो सकता है जब बचपन से ही प्रत्येक हिन्दुस्तानी लड़के की शिक्षा और दीक्षा का प्रबन्ध हिन्दुस्तानी विद्यालयों में और रहन सहन का प्रबन्ध हिन्दुस्तानी रीति से हो। बच्चे के हृदय पर वायु मण्डल तथा प्रत्येक बात का प्रभाव पड़ता जाता है। और युवावस्था में वह सारी स्मृतियां उसके भावी जीवन के निर्माण का कारण होती हैं। हम जब हिन्दुस्तानी शिशुओं को ईसाइयत के रहन सहन में अंगरेज़ी पढ़ते देखते हैं तभी यह निश्चय हो जाता है कि इन बालकों की मृत्यु तक भारत स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता। जब उन को A. B. C. D की शिक्षा के साथ आजन्म पराधीनता की घुट्टी पिलाई जाती है, तभी उन के विचार और मस्तिष्क भी पराधीन हो जाते हैं; और सदा के लिये उन के मस्तक अपने गुरुओं के आगे नये रहते हैं। जब एक भारतीय बालक को आँख की जगह Eyes और नाक की जगह Nose पढ़ाया जाता है वहीं उसके जीवन को आजन्म पराधीनता में रख कर बचे खुचे टुकड़ों को खाने की विद्या पढ़ाई जाती है। उसी समय उसकी शिक्षा का बड़े से बड़ा उद्देश्य I. C. S. की परीक्षा पास करना होता है, या सरकारी कोई

अन्य छोटा मोटा ओहदा प्राप्त करना। वह कभी भी इस बात को नहीं सोच सकता कि शिक्षा का उद्देश्य सेवा नहीं अपितु, ज्ञान प्राप्त करना है। शोक है हमारे सभी नेता उसी रीति से दीक्षित हैं अतएव यह कदापि संभव नहीं कि इनके जीवन में स्वराज्य मिल जावे। इस में सन्देह नहीं कि उन के विचारों में बड़ी स्वतन्त्रता है, और वह देश का हित भी चाहते हैं, पर अधिकांश में उनको त्यागमय जीवन की दीक्षा नहीं मिली है। जिन लोगों ने बिल्कुल भारतीय रीति और ढंग से भारतीय भाषा से शिक्षा प्राप्त की है वह आज कल भारत के नेता नहीं और यह संभावना भी नही कि इस प्रकार के लोग हमारे नेता हों। हमारे नेता वही होते हैं जिनकी प्रशंसा विदेशों से उठे और जिन की शिक्षा की प्रशंसा विदेशीय लोगों ने की हो। जिनकी अंगरेज़ी की योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी हो और जिनके विचार विदेशियों को भी उनकी ही भाषा में पढ़ना मिले। हमें आश्चर्य होता है कि एक ओर तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का ढोल पीटा जाता है दूसरी ओर अपने विचार दूसरों को सुनाने के लिये अंगरेज़ी भाषा के पत्र निकाले जाते हैं। जिस देश की भाषा उन्नत न हो वह कभी राजनैतिक क्षेत्र में आगे बढ़, अपनी परतन्त्रता नहीं हटा सकता। हमारी भाषा इतनी कमज़ोर है कि हमारे देशीय लोगों के बड़े २ विचार पढ़ने के लिये भी विदेशीय लोगों को उसके सीखने की आवश्यकता नहीं। हमें अपनी सारी बातें अपनी भाषा में ही करनी चाहिये और जिसको हमारे विषय में जानकारी प्राप्त करनी हो उन्हें हिन्दी सीखनी चाहिये।

हम किसी व्यक्ति पर आक्षेप नहीं करते पर यह भाषा के सिद्धांत पर कटाक्ष है। और जो लोग बबूर का पेड़ बो कर आम खाने की आशा करते हैं उनका यह उपहास है। इस उपहास के पात्र वही हैं जो इस बेढंगी नीति का अनुसरण करते हैं। हमें यदि भारतीय राजनीति के महान् प्रसाद को चिरकाल के लिये बनाना है तो यह प्रत्येक भारतीय के लिये आवश्यक है कि वह अपने समय का यथासंभव कुछ न कुछ भाग हिन्दी के लिये दे। बूढ़े लोगों को भी अन्तिम समय में हिन्दी सीख कर अपनी भावी संतान को मार्ग दिखाना चाहिये। जिन के लड़के स्कूलों और कालिजों में पढ़ रहे हैं उन के पिता के लिये आवश्यक है कि वह अपने पुत्र को राष्ट्रीय शिक्षा घर पर दें और उन्हें शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पढ़ावें। प्रत्येक पिता को चाहिये कि वह अपने बच्चे को भोग विलास के जीवन में न फंसने दें क्योंकि पराधीन राष्ट्र के निवासी कभी सुखी नहीं हो सकते। जो लोग कौंसिलों और यूनिवर्सिटियों के सदस्य हैं, उन को चाहिये कि वह सारी शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनवावें। भारतीय विद्यार्थी जितना परिश्रम विदेशीय भाषाओं में करते हैं यदि वह अपनी भाषाओं–हिन्दी और संस्कृत में करें तो सारी समस्या सहज में सुलझ जावे। देश के नाम पर स्कूलों में पढ़ाने वाले प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह अपने छात्रों में राष्ट्रीयता भरने का यत्न करे, अपने रहन, सहन और वेश भूषा से स्वयं भारतीय बन कर उन को भारतीय बनावे।

यह कोई कठिन काम नहीं, क्योंकि इस में कोई व्यय नहीं और न कठिनता है। पराधीनता

में अपने को कोई भी सुखी नहीं मान सकता। पशु भी पिंजरे से भागने का मार्ग देखता है। भारतीय बालकों का भविष्य मंगलमय बनाने का एक मात्र साधन यही है कि प्रत्येक अध्यापक अपने को राष्ट्र का दूत समझे और हिन्दी की ओर उन की रुचि बढ़ावे। बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा राष्ट्रभाषा में ही हो।

जब हम इन्ट्रेंस के हिन्दी के पर्चों में उनकी क्रियाओं का आदेश अंगरेज़ी में देखते हैं तो कैसी हंसी आती है। कभी किसी ने सुना है कि इंगलैंड के अमुक विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के पर्चे में 'अनुवाद करो' लिखा आया हो॥

अब इंगलैंड में इंगलिश ही प्रधान विषय है तो भारत में अंग्रेज़ी प्रधान विषय कैसे? इन सारी बातों को सुधार केवल बातों से नहीं हो सकता वरन् प्रत्येक भारतीय को अपने प्रत्येक सैनिक को हिन्दी पढ़ा कर दीक्षित करना पड़ेगा, और हिन्दी के धुरन्धर पंडित ही नेता बनाने पड़ेंगे। उपर्युक्त तीनों बातें राजनीति भवन की आधारभूत शिला हैं। यदि यह दृढ़ होजावें तो स्वराज्य का भवन बड़ी शीघ्रता से बन जायगा और वह चिरस्थायी होगा। इस लिये अब प्रत्येक भारतीय को सिपाही बनना चाहिये और यहाँ के निवासी प्रत्येक मुसलमान, ईसाई और इतर जातियों को भी अपनी जाति, भाषा और वेश से दीक्षित कर भारतीय राजनीति की नींव को दृढ़ बनाना चाहिये।

हिन्दू सङ्गठन

लेखक—भानुदत्त 'ऋषि' हिन्दी प्रभाकर साहित्यालङ्कार लाहौर

[१]

हा हिन्दुओ! सोये बहुत अब जागना भी सीखलो,
लड़ते रहोगे हाय! कब तक मेल करना सीखलो।
संसार ने क्या२ किया, हा! दृष्टि को अब खींचलो,
किस भांति देखोगे उन्हें अब आंख को कुछ मीचलो॥

[२]

हा! दुर्दशा को तो ज़रा अब भाइयो सोचो सही,
क्या शोचनीय दशा तुम्हारी आजकल है या नहीं?
जो जातियां पीछे तुम्हारे सौ कदम में थीं पड़ीं,
क्या सौ कदम वे जातियां आगे नहीं हैं अब खड़ीं?

[३]

क्या वीर अर्जुन हम नहीं थे, क्या शिवा थे हम नहीं?
संसार था जिनसे चकित, क्या वीर वैसे हैं कहीं?
क्या भीष्म जैसे ब्रह्मचारी, दीख सकते हैं कहीं?
अन्यत्र भारतवर्ष से ये मिल कभी सकते नहीं॥

[४]

दिन में लड़े पितु पुत्र सम्मुख रात को फिर मेल है,
देखो महाभारत अलौकिक युद्ध का क्या खेल है!
राजा बड़ा निज कार्य में था, शूद्र था निज काम में,
था भेद केवल काम में पर आजकल है चाम में॥

[५]

हम हैं इन्हीं निज भेद भावों से गिरे, गिरते गये,
हम हैं परस्पर द्वेष से मारे फिरे, फिरते गये।
यदि ऐक्य होता, तो हमारा जोड़ क्या होता कहीं,
यदि प्रेम होता एक तो, मिल कार्य क्या करते नहीं?

[६]

दो चार नर होवें जहां पर देख लो! मत भेद हैं,
घर की दशा यह है अहो! इससे अधिक क्या खेद है!
यदि पैर चलना छोड़दें, निज काम कर भी छोड़दें,
कान या आंखें सभी निज कार्य्य से मुँह मोड़दें॥

[७]

मुँह छोड़ दें खाना भला फिर देह की क्या आश है?
फिर एक मत क्या२ करेगा? देख लो सब नाश है॥
जिस भांति अंग सभी परस्पर बद्ध औ संबद्ध हैं,
उस भांति ही हम मानुषों का भी यही सम्बन्ध है॥

[८]

इस हेतु अय प्रिय बन्धुगण! तुम द्वैषता को त्यागदो
"दुर दुर" मचाकर छूतपन को दुर दुराना छोड़दो॥
'ऋषि' आज्ञा सन्मुख सभी तुम शिर झुकाओ प्रेम से
निरदया विदेशी जातियों के मार-चाहक मटकलो॥

हमारे सूक्ष्म दर्शियों के सिद्धान्त

लेखक—श्रीयुत् इन्द्र शर्मा 'अच्छेद्य'

भारतीय सूक्ष्मदर्शियों ने जगदुत्पत्ति के विषय में अबतक तीन सिद्धान्तों की खोजकर ली है। वे यही हैं:—

१ आरम्भवाद २ परिणामवाद ३ विवर्तवाद

न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमान्सा का मत आरम्भवाद है, साँख्य, योग, का मत परिणामवाद है और वेदान्त का सिद्धान्त विवर्तवाद है।

१—आरम्भवाद जैसे पंचभौतिक गोलक रूप के नष्ट हो जाने पर उसके एकर तत्व पृथके हो जाते हैं, और पुनः उन्हीं के तारतम्य से गोलक की उत्पत्ति हो जाती है। उसी तरह जगत् के नष्ट होने पर उसके पंचतत्वों के परमाणु भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। फिर जब कभी जगदुत्पत्ति का प्रारम्भ होता है तो ये परमाणु फिर आपस में मिलकर वस्तुओं के रूप में आजाते हैं। इसे कार्य-कारण-वाद सिद्धान्त भी कहते हैं। क्योंकि इस मत में कार्य-कारण भाव माना गया है। अर्थात् कार्य से कारण पृथक् है। जगदुत्पत्ति का उपादान कारण परमाणु अर्थात् प्रकृति है, और निमित्त कारण ईश्वर है। अबतक परमाणु का रूप कोई नहीं बता सके हैं। पर लोगों का अनुमान है कि जल के भीतर सूर्य के किरणों के जाने से जो सूक्ष्म रज दिखलाई देती है उस रज के छठे हिस्से का नाम परमाणु है। उसके खंड नहीं हो सकते। और अपने रूप में परमाणु नित्य हैं। जब परमाणु के कुछ पुंज आपस में मिल कर एक पदार्थ में परिणत हो जाते हैं, तब तो उनके अवगत स्वरूप अनित्य और नाशवान हो जाते हैं। दृश्य-जगत (आउटर-वर्ल्ड) की सभी चीज़ें इसी से निर्मित हैं। ये सर्वत्र व्यापक हैं, हमेशा एक दूसरी चीज़ से मिलने की इच्छा रखते हैं। इनकी इच्छा ईश्वर प्रदत्त होती है। प्रथम मूलशक्ति ही की इच्छा से परमाणु आपस में मिलते हैं। फिर दो से चार हो जाते हैं तो दृष्टि गोचर होने लगते हैं। इसी प्रकार कुछ कालान्तर में मिलते जुलते संसार के गण्य मानों में से हो जाते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जगत् की उत्पत्ति का आरम्भ परमाणुओं के क्रमशः मिलने से हुआ। इसीलिये इस सिद्धान्त को आरम्भवाद कहते हैं। यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन काल का माना गया है। सम्प्रति इस सिद्धान्त का प्राबल्य नहीं है। अब इस में कुछ लोगों का मत है कि परमाणु कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो उस में आकार और विस्तार अवश्य रहेंगे, जिस में आकार और विस्तार है, उसके खण्ड अवश्य होंगे, क्योंकि आकारवाली वस्तु का अखण्ड होना कल्पना से परे है। इस दोषारोपण से इस सिद्धान्त को उच्च कोटि का नहीं मानते।

२—परिणामवाद—परिणाम का अर्थ रूपान्तर होना है, जैसे दुग्ध का परिणाम दही है। एक ही वस्तु रूपान्तर होने से दूसरी दिखाई

देने लगे तो वह परिणत हुई कहलाती है। साँख्यमत में जगत् प्रकृति का परिणाम वैसे ही है, जैसे दुग्ध का परिणाम दहीहै। साँख्यमत मेंप्रकृति का परिणाम इस प्रकार है। प्रकृति में सत्व, रज, तम, तीन गुण हैं। इन तीनों का व्यापार प्रकृति में हमेशा होता रहता है।

कभी सत्व गुण रज, तम गुणों को दवाकर प्रधान होजाता है। कभी रजोगुण सत्व, तम को दवाकर वाजीमार जाता है और कभी तमोगुण ही प्रधान हो जाता है। इन गुणों की विषमता के कारण ही सृष्टि बनती, बिगड़ती, रहती है। जब तीनों गुण साम्यावस्था को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् तीनों का प्रावल्याप्रावल्य बराबर २ हो जाता है तो सृष्टि का कार्य बन्द हो जाता है। इस रूप में प्रकृति को प्रधान कहते हैं। इस साम्यावस्था में जब किसी प्रकार क्षोभ होता है चाहे ईश्वर की इच्छा से हो वा पुरुष के संयोग से—तब प्रकृति का विकास होने लगता है।

इस अवस्था में प्रकृति में सत्व गुण प्रधान होने से बुद्धि का विकास होता है, बुद्धि का परिणाम अहंकार है, और अहंकार से पंचतान्मत्राएं अर्थात्, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, इनके सूक्ष्म तत्व उत्पन्न होते हैं। यही प्राकृतिक तत्व हैं। अर्थात् ऐसे तत्व जो दूसरे तत्वों को उत्पन्न करें। १६ विकार ऐसे हैं जो दूसरे तत्वों को उत्पन्न नहीं कर सकते। वे यह हैं :—

पंच "ज्ञानेन्द्रिय"। पंच "कर्मेन्द्रिय" मन, पंच महाभूतादि। यह विकास पुरुष के सामने होता है। इसी सिद्धान्त को कुछ वैष्णवाचार्य मानते हैं। इस में भी कई एक मत हैं। पर यहाँ पर उन सब की विवेचना नहीं हो सकती।

३ विवर्तवाद—विवर्त का अर्थ कल्पित कार्य है। जो वस्तु वास्तव में हो नहीं, परन्तु दृष्टि-गोचर हो जैसे, अंधेरे में रज्जु को देख कर सर्प का भान होता है। वास्तव में रज्जु सर्प नहीं है। परन्तु अज्ञान से सर्प रूप दिखलाई देने लगती है। यह सर्प रज्जु का विवर्त है। अर्थात् कल्पित रूप है। इसी प्रकार ब्रह्म अधिष्ठान से विषम-सत्ता वाला अन्यथा रूप जगत दिखाई देता है, वास्तव में कुछ नहीं है, कल्पना मात्र है।

यह कल्पना अज्ञान के कारण होती है। वास्तव में ब्रह्म तत्व ही एक वस्तु है। प्रपञ्च अर्थात् जगत इसका विवर्त होनेसे मिथ्याहै। यह प्रपञ्च हुआ कैसे ? इसका उत्तर यही है कि इस प्रपञ्च जगत का आरोप ब्रह्म में अज्ञान से हुआ। जब अज्ञान का नाश होता है तब प्रपञ्च का भी लोप होताहै। अनादि, शुद्ध, ब्रह्म के साथ अनादि कल्पित प्रकृति का अनादि कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है जो कल्पित भेदसहित है, पर वास्तव में अभेदरूप सम्बन्ध है। प्रकृति के कई रूप हैं, माया, अविद्या आदि। माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को ईश्वर कहते हैं जो सर्वत्र व्यापक है, यही सर्व कर्ता है, शुद्ध ब्रह्म नहीं। अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है जो अल्पज्ञ है। इसी के द्वारा कुम्भकार की तरह जगत का निमित्त कारण है।

हमारे सभी सूक्ष्मदर्शियों ने सृष्टि को अनादि माना है। मतलब यह कि अनादि काल से वह लुप्त प्रकट होती चली आई है। इसीलिये सृष्टि के पूर्व जीवों की उपाधि अविद्या जीवों के कर्म सहित माया में लीन होकर रहती है जैसे-सुषुप्ति में अविद्या जीव से भिन्न नहीं होती वैसे ही

माया ब्रह्म से भिन्न प्रतीत नहीं होती।

सृष्टि के पूर्व सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित एकही सच्चिदानन्द स्वरूप रहजाता है। सृष्टि के आरम्भ से जीवों के परिपक्क हुए कर्म रूप निमित्त से ब्रह्म की ऐसी इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक हूं। इस इच्छा से ब्रह्म की उपाधि माया में क्षोभ हुआ और इससे पंच महाभूतादि उत्पन्न हुए। इन्ही पंचभूतों से सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई। फिर ईश्वर की इच्छा से इन पंच भूतों का पंचीकरण हुआ। अर्थात् प्रत्येक भूत का ऐसा रूप हो गया कि उसमें अर्धांश तो उस भूत का रहा और बाकी अर्धांश में चारों तत्वों के बराबर २ के एक एक अंश आगये। ऐसे पंचीकृत तत्वों से स्थूल सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टि में कारण, सूक्ष्म और स्थूल ये तीन शरीर हैं, और अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाँच कोश हैं। यही प्रपञ्च विकाश का क्रम है। ब्रह्म में इस प्रपञ्च रूप जगत का आरोप वैसे ही है जैसे रस्सी में सर्प का, दर्पण में वस्तु प्रतिबिम्ब का। जैसे ये सब भ्रम हैं वैसे ही जगत प्रपञ्च का भी मिथ्या आरोप है। सूक्ष्म दर्शियों के विचार से यह प्रश्न करना कि यह आरोप कब और कैसे हुआ यह निष्प्रयोजन है। इसकी निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। इस की निवृति ब्रह्मज्ञान (यूनिवर्सल-ट्रूथ) से ही हो सकती है। ब्रह्मज्ञान से ही माया और अविद्या की निवृत्ति होगी। इसी निवृत्ति से कार्य सहित प्रकृति की निवृति हो सकती है। जिससे ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है और इस निवृत्ति से जीव भाव और ईश्वर भाव की निवृत्ति होती है। उससे जीव ईश्वर भेद की निवृत्ति होती है। और उससे बन्धन की निवृत्ति होती है और तब मोक्ष होती है। बस, इतना ही कहना अधिक होगा कि इसे ही विवर्त वाद वा अद्वैत वाद कहते हैं। इस मत की प्रशंसा अनेक पाश्चात्य पण्डितों ने मुक्त कंठ से की है।

इसमें भी कई एक मत हैं। उन सब मतों को फिर कभी बताने की चेष्टा की जायगी।

इस संघ का अन्तिम सिद्धान्त यही है— "एकैवनापरः।"

नोट—यह लेख कुक्स साहब के एक लेख के आधार पर लिखा गया है। (लेखक)

हितोपदेश

इस दुनियाँ में जीना कब तक, आख़िर तो सब को मरना।
आज कल और आगे पीछे, कूच यहाँ से है करना ॥
सोच समझ कर चलना भाई! नहीं यहां रहना होगा।
अन्त भले का भला होयगा, पापी को दुख सहना होगा ॥

धर्मचन्द खेमका चन्द (रंगून)

राष्ट्रीय-गीत

लेखक-श्री० पं० वीरहरि सा० कुलभूषण

[१]
जय २ प्यारे भारत देश!
परमशक्ति-सम्पन्न अनूपम-
जगमें, धिकदाकाश।
धवल रुचिर वह पूर्व रंजिमा,
जिसका रहा प्रकाश॥
दिखलादो अब वह ही वेश!
जय २ प्यारे भारत-देश!

[२]
उच्च-शिखर तव राजत, हिमवर,
उज्वल सतत सुहास।
शत्रु पराक्रम सैन्य नष्ट जब,
प्रसरित तव उच्छ्वास॥
आर्य-जाति के पिता महेश।
जय २ प्यारे भारत देश!

[३]
तेरी सन्तति वही आर्य अब,
पड़ी प्रतीची—पंक।
करो अनुग्रह उत्थित हो जिमि,
रहे न रंच कलंक॥
दया कोर वह हो लवलेश।
जय २ प्यारे भारत देश!

[४]
तेरे अक्षय द्रव्यालय को,
किया विदेशी नाश।
कुछ तो देखो अङ्ग-भुवन तव,
सब विधि हुए निराश॥
तू ही केवल अवलम्बेश।
जय२ प्यारे भारत देश!

[५]
गौएं व्याकुल निराधार हैं,
नहीं सहारा हाथ।
यवन-हतीं, तृण-हीन विभुक्षित,
दिखे न कोई पाथ॥
कर के तू कुछ तो निर्देश।
जय २ प्यारे भारत देश!

[६]
माताओं, बहनों पर डाले,
दुर्जन संकट-भार।
युक्ति, उक्ति उनके कर एक न,
कैसे हो उद्धार॥
मलिन हुए जन-बदन प्रदेश।
जय२ प्यारे भारत देश!

[७]
आर्य चतुर्दिक आवेष्टित हैं,
आपद--विपदा-पाश।
नहीं 'वीर-हरि' उनको दीखे,
कहीं सहारा--आश॥
उनके भारी मोचो क्लेश।
जय२ प्यारे भारत देश!

आर्य्यसमाजी

ले०-श्रीयुत् निरंजन नाथ जी

मंत्री और प्रधान खूब फटकार खाकर आए। गये थे इस भरोसे पर कि यथा शक्ति कुछ न कुछ समाज के लिये लेकर आयेंगे। क्योंकि इन्होंने भी तो उसकी सहायता की थी। और फिर इन बेचारों ने विनीत भाव से कहा भी कि "भाई हम लोग कुछ निजी काम के लिये तो मांगते नहीं समाज के लिये दर दर फिर रहे हैं।" मगर किशनचन्द्र ने एक पैसा भी न दिया, उलटा उनको झाड़ता रहा। उस ने यहांतक कह दिया, कि "तुम लोग बड़े बेइमान हो। पैसे के लालच में सब कुछ करने को तय्यार होजाते हो। तुम लोगों ने दुकानदारी खोल रखी है। तुम्हारी दुकान चलती रहे, यही तुम्हारा उद्देश्य है। कोई कर्म नहीं, कोई धर्म नहीं। सब प्रकार के पाप करते हो और समाज में अधिकार लेकर नाचते फिरते हो। अगर अधिकार लेकर ढोल न बजाओ तो तुम किसी गिनती में नहीं रहते, कोई तुम को जान नहीं सकता। तुम को नाम का चस्का पड़ गया है। उसी धुन में तुम उचितानुचित की कुछ परवाह नहीं करते।" इस प्रकार किशनचन्द्र ने दोनों अधिकारियों की खूब खबर ली। मैं तो उस के इस स्पष्ट कथन पर उस की प्रशंसा करता हूं। मैं समझता हूं उस ने बहुत अच्छा किया। इन लोगों के साथ ऐसा ही होना चाहिये ये, लोग इसी बर्ताव के योग्य थे।

देवव्रत—क्यों महाशय जी! इन अधिकारियों का क्या अपराध था? इन्होंने उसका क्या बिगाड़ा था? मंत्री और प्रधान को अपनी संस्थाओं के लिये हाथ पसारना ही पड़ता है। और इस प्रकार कई बार इन लोगों को उलटी सीधी सुननी ही पड़ती है। मगर जिसे नहीं देना होता उसे कटु वचन बोलना तो कोई सभ्यता नहीं। जिस का मत भेद हो वह स्पष्ट कह देवे। परन्तु अशिष्टाचार और असभ्य व्यवहार करने से कोई स्पष्ट वक्ता कैसे कहा जा सकता है?

मैं—ठीक है। आप को कुछ मालूम नहीं कि ये लोग कैसी अदूर्दशिता से काम करते हैं। जैसे कि कहा है कि "अपने घर लगे तो आग और दूसरे के लगे तो देवता"। यह लोग नाम और संख्या बढ़ाने के पीछे बेतरह पड़े हुये हैं। इन के ढंग आप को मालूम नहीं?

देवव्रत—मालूम होता तो आप को इतनी भूमिका क्यों बांधनी पड़ती। कहिये क्या मामला है?

मैं—किशनचन्द्र एक दफ्तर में बाबू है। बचपन में ही उसके माता पिता मर गये थे। कोई भाई बहिन भी न रहा। किसी प्रकार उस ने पढ़पढ़ा कर नौकरी करली। नौकरी से निश्चिन्त हुये तो विवाह के लिये उत्सुक होगये। विवाह में योग देने वाला कोई नहीं था। जात बिरादरी वाले कोई जानते नहीं थे। क्योंकि माता पिता के मरने के पीछे यह इधर उधर ही फिरते रहे, कोई इन का मकान भी नहीं था। किसी के

साथ मेल मिलाप भी न था। इसलिये कोई क्या जाने कि यह किस परिवार में से है। किसी सोसाइटी में भी यह नहीं आते जाते थे। कुछ सिक्खी मत को बातें कण्ठस्थ कर रखी थीं मगर सिर पर लम्बे केश नहीं थे। इसलिये जब इनकी कहीं दाल न गली तो समाचार पत्रों में " वर की आवश्यकता है " को देखने लगे।

किसी न किसी जगह पत्र लिखते रहे। आखिर एक महाशय के साथ देर तक पत्र व्यवहार रहा। उन को इन की सब बातें पसन्द आगईं। केवल वह यह जानना चाहते थे कि यह आर्य समाजी हैं या नहीं? उन्होंने स्थानीय आर्य समाज के मंत्री और प्रधान को पत्र लिखे। दैवात् यह बाबू किशनचन्द उसी दफ़्तर में नौकर थे और उन से परिचय भी था। इनको मालूम था कि "बाबू साहिब पढ़े लिखे हैं, आज़ाद खयाल हैं, कभी किसी से लड़ते झगड़ते नहीं। आचार व्यवहार भी कुछ बुरा नज़र नहीं आता। वेतन भी अच्छा है। केवल यह कसर है कि समाज के सभासद नहीं। समाज के लिये चन्दा तो दे देते हैं। कभी २ लेक्चरों में भी देखा गया है।" इत्यादि कल्पनाओं की इति भी यों हुई कि बाबू किशनचन्द से समाज की मैम्बरी का फारम भरवा लिया गया और चन्दा लेकर उत्तर लिख दिया कि—"बाबू किशनचन्द समाज के मैम्बर हैं और हमारे दफ्तर में भी नौकर हैं। अच्छे भले आदमी हैं।" उस बेचारे को और क्या चाहिये था? पुत्री का विवाह कर दिया गया और समाचार पत्रों में छप गया कि पूर्ण वैदिक रीति से विवाह हो गया। वधू वरके घर आई तो वर महाशय को न सन्ध्या करते देखा न हवन। न कोई धर्म पुस्तक पढ़ने की आज्ञा देवें। उन्हों ने स्पष्ट कह दिया। "मैं तो आर्यसमाजी नहीं हूं। मुझ से तो जैसा कहा गया वैसे मैंने कर लिया। मुझे कहा फारम भर दो मैंने भर दिया। जितना चन्दा मांगा दे दिया। जितनी विवाह करने वाली सोसाइटियां हैं सब ऐसा ही करती हैं।" लड़की चकित रह गई, और उस के होश गुम हो गये। अस्तु, इतना रहता तो भी कुछ बात नहीं थी। अब दिन रात उस बिचारी की गति बनती है।

उसके विचारों के विरुद्ध उससे काम कराये जाते हैं। इतने पर ही बस नहीं। उसके माता पिता आदि को कोसा जाता है, दिन रात पिटती भी रहती है; बिचारी रो रोकर दिन काट रही है, और मंत्री और प्रधान के लिये न जाने क्या २ भाव रखती है।

देवव्रत—वास्तव में आपने जो कथा सुनाई है वह बड़ी दुख देने वाली है। हर एक बाल बच्चेदार ऐसी बात सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मंत्री और प्रधान ने केवल जान पहिचान होने पर एक आदमी को प्रमाण पत्र दे दिया। इसी को आर्य बनाने में केवल कारण माना और चन्दा देना ही पर्याप्त समझा। अच्छा होता यदि वह कुछ उसको पढ़ाते, समझाते और अपने विचारों से सहमत कराते। मगर हाँ जो स्वयं कुछ नहीं जानते, जो स्वयं व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं पाते, कर्मकाण्ड तो कहां रहा, वह किसी के आर्यत्व और अनार्यत्व के क्या भेद कर सकते हैं? पर भाई साहिब! यह जो आपने कहा था कि बाबू किशनचन्द इनको कोरी २ सुनाता है, इन लोगों के साथ ऐसी होनी

चाहिये थी, इस बात में मैं आपके साथ पूर्णतया सहमत नहीं हूं। और बाबू किशनचन्द को चाहिये था कि इन लोगों के साथ भले ही जो चाहता करता, समाज को कुछ देता या न देता, परन्तु अपने गृहस्थ के सुख को तिलांजली तो न देता। वह अपने विचारों में दृढ़ रहता हुआ अपनी पत्नी की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप न करता और अगर वह चाहता तो स्वतंत्रता और प्रेम से अपनी पत्नी के साथ वार्तालाप करता रहता। कभी न कभी दोनों एक विचार के हो जाते। अपने गृहस्थ को क्लेशमय बना लेने में उसकी बुद्धिमत्ता नहीं। इससे दुख बढ़ेगा। सन्तान नहीं होगी। होगी तो दोषयुक्त होगी। स्त्री का देहान्त होना भी सम्भव है, फिर भी दुखी होगा। स्वयं भी क्लेश के कारण अस्वस्थ रहेगा।

मैं—देवव्रत जी, आप शायद यह विचारते होंगे कि मैं आर्य्य समाजियों के विरुद्ध हूं और इसीलिये मैं उनके साथ इस व्यवहार को देख कर खुश हो रहा हूँ। नहीं, यह बात नहीं है। असल में जिस प्रकार मंत्री और प्रधान ने किशनचन्द को बिना जाने बूझे कि वह आर्य्य धर्म का पालन करता भी है और उसका उसमें विश्वास है या नहीं, झट फार्म भरवा कर उसे आर्य्य समाज का सदस्य बना लिया और अजान में एक लड़की का जीवन नष्ट कर दिया, इसी प्रकार हमारी वर्तमान अधिकांश आर्य्यसमाजें स्थान २ पर ऐसे ही आंख मूंद कर सभासद बनाती जाती हैं। जिस किसी को धनवान या अच्छे ओहदे पर पाया उसे प्रधान, मंत्री आदि बना छोड़ा। दूसरे सदस्य चाहें कुछ कर्त्तव्य परायण भी हों तो उनकी सुनवाई न हुई। यदि किसी ने टोका तो कह दिया कि यदि अमुक महाशय को हम प्रधान न बनाते तो वह आर्य्यसमाज में आते भी नहीं, और हम उनकी आर्य्यसमाज से सहानुभूति भी खो बैठते। ऋषि दयानन्द जिन्होंने-धर्म के आगे बड़े २ महन्तों और धनिकों तथा प्रभुओं की सहानुभूति की परवाह न की—की उत्तराधिकारिणी आर्य्यसमाज एक साधारण व्यक्ति की इतनी परवाह करे कि उसे प्रधान बनाये रखने या सदस्य बनाये रखने पर अपने नियमों के पालन में भी शिथिलता कर दे तो भला वह मान्यस्पद हो सकता है। यदि प्रधान, मंत्री में कुछ भी वास्तविक आर्य्यसमाजीपन होता तो उनके मन में अवश्य विवेक उत्पन्न होता। अतः विवेक शून्य मनुष्य के प्रति ऐसा ही व्यवहार चाहिये था। तभी उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान होगा, अपने रोग का पता लगेगा, और फिर उसके निवारण का उपाय करेंगे।

देवव्रत-कहीं २ पर इन बातों की ओर लोगों का ध्यान खिंच गया है। वहाँ पर आर्य्यत्व फैलाने पर बड़ा बल लगाया जा रहा है और उपाय सोचे जा रहे हैं, साधन उपस्थित किये जा रहे हैं, कि लोगों का जीवन आर्य्य बने, परिवार में आर्य्यत्व हो, सदस्य और अधिकारीवर्ग भी क्रियात्मकरूप से आर्य्य अनुष्ठानों को वर्तें।

मैं—एक किशनचन्द जैसे हमारे आर्य्य कहलाने वाले परिवारों में अनेक हैं। यह हमारा बड़ा दुर्भाग्य है कि आर्य्य बना कर भी हम ऐसे गृहस्थों को सुख धाम न बना कर नर्क धाम बनाने में सहायक बन जाते हैं। परन्तु यह सब बातें तभी सुधरेंगी जब आर्य्य सदस्यों की निर्वाचन पद्धति में सुधार होगा। और सुधार तभी होगा जब आर्य्य समाजियों को दूसरे ऐसे लोगों से व्यवहार पड़ेगा जो कडुवा सत्य सुनाते हों, या उनके कृत्यों को क्षमा न कर सकें। अपने मुंह मियाँमिट्ठू सभी बने रहते हैं। सच्चा आर्य्य समाजी वही है जिसके कृत्यों को दूसरे दूषित न बता सकें चाहे वह उससे विरुद्ध मत वाले भी क्यों न हों। आजकल के बहुतेरे आर्य्य समाजी इस दूषण से परे नहीं हैं अतः यह आक्षेप उचित है।

समस्यापूर्ति

कवियो! अब तो कुछ काम करो।

[१]

अब देश हुआ, वह बात गई, बिगड़े दिन आज उखाड़ धरो।
वह तान मिला अब नूतन गान करो सब को अब आड़ करो।
दिन बीत गये जब उच्च गिरा फहरा कहती-तुम नाम करो॥
अब भी तुम कंठ कुठार गहो, कवियो! अब तो कुछ काम करो॥

अब शक्ति विभक्ति हुई तुम थे पहले, फिर क्यों अब हाथ धरो।
अब छोड़ छबीलि छटा रचना कविता सब राष्ट्र हितार्थ करो॥
कुछ भी लिखते समझो ऋणयुक्त, कभी मत केवल नाम भरो।
यह आश सहित तुमसे कहते कवियो! अब तो कुछ काम करो॥

'जगदीश'

[२]

तुम कौन हो, क्या कर्त्तव्य तुम्हारा है, सोचो जरा कुछ ध्यान धरो।
जिस राह पै राही भरे हुए हों, तुम भी न वही भरी राह भरो।
परित्याग के बाण चला, कुविचार, विषैली प्रथाओं के प्राण हरो।
तज पेट की पूजा की आदत को, कवियो! अब तो कुछ काम करो॥

अब केलि कथाओं से दूषित यों मत मित्र! पवित्र कलाम करो।
कुछ खौफ खुदा से भी खाओ अमूल्य समय का भी हो तो कुछ दाम करो।
परिणाम पै ध्यान दे पापमयी इस निंद्य प्रथा को प्रणाम करो।
निज देश दशा को विलोको उठो, कवियो! अब तो कुछ काम करो॥

'जीवन'

[३]

क्या २ करते धरते कहिए, मरते रस-रूप में राग-भरो॥
देव, बिहारी करी करतूत जो शेखियाँ-छोड़ि के सान—धरो॥
भूषन के कुल-दूषन हो, पुनि हाव में भाव में चित्त—हरो।
छोड़ि के चाल ये सीधी चलो, 'कवियो अब तो कुछ काम करो'॥

गृह-देवियों को रस-पाश में फाँस समाज का काम तमाम करो।
रस-रंग-अनंग की तान में, लेखनी-मार के वार विराम-करो॥
नित सोन तुफान चलाओ नया, पर म्लेच्छों के आगे प्रणाम करो।
मन-भाव-भरो वर, 'वीर हरी' 'कवियो अब तो कुछ काम करो'॥

'वीर-हरि'

मोहिनी के आंसू

लेखक—श्रीयुत सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज

(अप्रेल के अंक से आगे)

“टन, टन, टनन-टनन, टन” घंटी के टनकारे के साथ आवाज़ आईः—

“मलाई वाली लच्छियाँ, अहा मज़ेदार !
रेशम वाले लच्छों में क्या-क्या बहार !!”
बुढ़िया का काता,
डबल में आता !”—सुन, चौबारे की खिड़की खोल मोहिनी पुकार ने लगीः—

“अले (अरे) बुधिया (बुढ़िया) के लच्छे वाले—ले (रे) ।”

“अले (अरे) लेछम (रेशम) के लच्छे वाले—ले (रे) ।”

खोमचे वाला एक अंगुल मोटी जलती हुई बत्ती वाले खोमचे को तख़्ते पर रख, बोला—“क्यों—बीबी ?”

मोहिनी—“जला (ज़रा) थैलना (ठहरना) ।”

खोमचे वाला—“आजाओ, बीबी !”

मोहिनी खिड़की से नीचे उतरना ही चाहती थी कि सामने किसी को देख, सहसा कण्टकित देह हो, भय से कांपने लगी और क्षीण-स्वर से खोमचे वाले को बोली—“अच्छा, जा लच्छे वाले ।”

इस बीच दोनों की दशा चित्र-लिखित-सी थी कि सामने से शीघ्र ही क़रारे स्वर में पुकार पड़ी—“अरे, क्या ख़रीद डाला, बीबी ने ?”

मोहिनी अश्रु-पूरित नेत्रों से: “कुछ नहीं, लालाजी ।” कह, भय से श्वेत हुई, होंठ बाहर निकाल, सुबड़-सुबड़ करती रसोई घर में जा, गंगा की पीठ पीछे हो, चिपट कर छुप गई। गंगा पराँवठे को घी चुपड़ती हुई बोली—“क्या बात, बीबी-क्या बात ?”

मोहिनी—(सिसकती हुई) “लालाजी आते हैं ।”

यह सुन, सरस्वती गङ्गा से पूर्व ही बोल पड़ी—अब भी न आने दे, जली ! नौ बजने को हुए ।”

मोहिनी—(धूमाऽऽकुला, आँखें मलती हुई) “ऊँ, ललेंगे (लड़ेंगे) ।”

गङ्गा—“क्यों ?—”

मोहिनी-(दो-तीन बार सिसक) “मैं बुधिया (बुढ़िया के) लच्छे ले रही थी, वे आगए ।”

पान-दान बंद करती सरस्वती गङ्गा से पूर्व ही बोल उठी—“चुड़ैल नहीं तो, चिपटी है पीछे को । सुबह से छः आने ख़राब कर चुकी ! अब भी जले, रांड बुढ़िया के लच्छे !”

मोहिनी—(ढँके-नेत्रों से सरस्वती की ओर देख, मुँह फुला, गुनगुनाते स्वर से) “कल के दो पैछे (पैसे) थे !”

सरस्वती—(पीक थूक) “हूं,…तभी कुटन्त होगी— न ।”

इतनी ही देर में छज्जों पर से पुकार आई—“बीबी मोहिनी !”

मोहिनी पुकार सुन, और भी सिकुड़ कर गङ्गा के पीछे छुप गई ‘इधर कुन्दन भी चौबारे में कोट उतार रसोई में आ, बोला—अरे, अभी अब में लौंडिया कहां ग़ायब होगई ? ”

सरस्वती—"तुम्हें देख, भय से यमराज भी मूत दे, फिर भला लौंडिया की क्या ताब है जो ठहर सके ?"

कुन्दन—नहीं, तुमने कहीं छिपायी है। अभी तो खोमचे वाले से बातें हो रहीं थीं ?"

सरस्वती—तुमने देखा था ?"

कुन्दन—"हां !"

सरस्वती—"तभी राँड आकर छुपी है।"

कुन्दन—इतनी बार मना किया—फिर वही गाली ?"

सरस्वती—"ओह, जीने तो दो ?"

कुन्दन—"इससे क्या ? कहीं राँड बनाकर जिलाना अच्छा है ?"

सरस्वती—"अच्छा–जी फिर 'राँड' नहीं कहने के"

कुन्दन—"कह तो फिर दिया, और कैसे कहोगी ?"

यह सुन, गङ्गा हँसने लगी। गङ्गा का हँसना देख, कुन्दन बोला—'तुमने छिपा दी है, गङ्गा !' गङ्गा गुरु-जनों को कैसे उत्तर देती ? वह मौन रही। दैव-योग से धूमाऽऽकुला मोहिनी को छींकें आ गईं। तब तो कुन्दन ने कहा—"कैसी छुपी है ?" फिर–'मोहनी ! यहाँ आओ, बीबो ! लो–चीज़ दें।' मोहिनी गङ्गा के पीछे से उठी। वह टेढ़े नेत्र कर, बोली—'ऊँ' मालोगे (मारोगे)

कुन्दन—"नहीं, लल्ली ! देखो—लच्छे हैं।" कह, पुड़िया खोल दिखादी। मोहिनी ने देखा। वह लोभ–पाश बद्ध हुई वहीं धीरे–धीरे आगई और पुड़िया उठाली। कुन्दन ने प्रेम से फिर गोद में ली और प्यार कर इधर उधर टहलने लगा।

अब लज्जा किसकी ? इस घर के ज्ञान वृद्धों, वयो वृद्धों, एवं गृह-नेताओं में कुन्दन और सरस्वती ही हैं। कुछ समय के पश्चात् सरस्वती ने कहा—"आज देवर जी कहाँ हैं ?

कुन्दन—"हमारे, आगे ही आगे आप हैं।"

मोहिनी—(गोद में से बिना बुलाए ही बोल पड़ी) "चाचा जी नीचे टट्टी में हैं, भाभोजी !"

थोड़े समय के पश्चात् माधव के निवृत होने पर, कुन्दन भी निवृत हो, दोनों रसोई घर में उपस्थित हुए। इन्हें देख, गंगा ने बोरियों पर दो आसन बिछा दिए। मोहिनी दो थाल ऊपर नीचे रख, उनमें चार कटोरियाँ रख, उन्हें डालती उठाती हाँफती हुई रसोई-स्थान तक ले आई। दोनों भय्ये अपने २ आसन पर बैठे। माधव मोहिनी का हाथ पकड़ अपने पास घसीट बोला—"आओ, बीबी ! तुम तो खाना खालो।" इधर कुन्दन सरस्वती की ओर देख जल्दी मचाने लगा–"जल्दी करो, बड़ी भूख लगी है।"

सरस्वती—"भूँख ? हमने तो समझा था किसी पुजारी के श्राद्ध जीमने गए हैं, तभी नहीं आए !"

कुन्दन—(स्मित-पूर्व) "क्या खूब ?"

मोहिनी—"भाभोजी, कैछा (कैसा) छलाद (श्राद्ध) ?"

सरस्वती—(कटोरियों में शाक रखती हुई) "बीबी, उस में खीर, हलवा, अच्छी अच्छी चीज़ें बनती हैं"

मोहिनी—"तुम भी क्यों नहीं कलतीं (करतीं) भाभो जी ?"

सरस्वती—(बिगड़ कर) "दुर् पागल !"

मोहिनी भय के मारे माधव के सहारे हो गई। माधव ने हंस कर चिपटा लिया। कुन्दन भी खिलखिला उठा। तदुपरान्त भोजन करते करते माधव से कुन्दन ने कहा—"भय्ये, वैसे तो अबुररहमान ने सब की सब मर्म की बातें कहीं हैं !"

माधव—"हाँ—जी !"

कुन्दन—(कुछ समय के पश्चात्) "जब से हमने होश सम्हाला है, हमें खूब याद है कि हिन्दू-लोग हम से ऐसा ही बरतावा रखते हैं।"

माधव—"सच जी, हमारी क़ौम बड़ी दुर्दशा में है। इस की बातें सुनकर, हमारे ही याद में से बहुत सी बीती बातें सामने आ नाँचती हैं। इन दुःखों के मारे ही यह लोग स्वयं मुसलमान बने हैं !"

कुन्दन—(शीघ्रता से ग्रास ले) "और क्या ? अब मज़े में हैं। करोड़ों लाला और पण्डित अपने मन में मस्त हुए फिरा करें, उन्हें यह क्या समझते हैं ?"

माधव—"ज़रा कोई 'चूं' करे भी तो, मुसलमानों में एका ग़ज़ब का है—हिन्दुओं के नाक में सुतली डाल दें, क्यों ? "

कुन्दन—"और क्या ?" (कुछ देर पश्चात्) "हमारे सामने यह बातें कई बार आईं और सोचा कि एक दिन वह होगा, जिस में यह मोची आदि जितने अस्पृश्य समझे जारहे हैं, एक भी हिन्दू न रहेगा ! और ठीक भी है कि जब हम लोग मुसलमान तो हैं नहीं, और हिन्दुओं से सब तरह लाखों कोस दूर, यानी न हिन्दू हैं न मुसलमान। फिर तो आख़िर किसी धर्म का सहारा लेना ही पड़ेगा ?"

माधव—"और क्या—जी !"

कुन्दन—(पानी का गिलास आधा पी) "देखो—न, लाला रामप्रसाद की पुरानी बातें याद कर, ऐसी जी में आती है कि-हम मुसलमान बनें और तब उन्हें कुत्ते की भाँति देखें और अनादृत करें। और ज़रा चूं करे तो इतने जूते लगाएँ कि हम तो तब बच भी गए थे, पर वे अगर मरें नहीं तो शरीर से बेकार हो, जीवन भर ज़रूर पड़े रहें !

कितने नालायक़..................!"

कुन्दन से न जाने क्यों आगे नहीं बोला गया। परन्तु माधव ने सुनते सुनते देखा—कुन्दन की आँखें खून भरी सुर्ख़ हैं। मस्तक भी तमतमा रहा है। भौंहें धनुषसम तनी हुई सहसा भयावह होगईं। अरुण अधर प्रस्फुरण करते हैं। मुखाऽकृति बाल सूर्य सम तमतमा रही है। उस समय माधव का हृदय धक धक करने लगा। भय के मारे बिचारे ने नेत्र नीचे को कर छिपा लिए ! उस समय क्रोध सम्पन्न कुन्दन की देह में विचित्र विद्युत का समावेश था।

× × ×

जिसके राज्य में वसुन्धरा तप्त हो उठे, जिस राज्य में प्राणिमात्र को सन्ताप पहुँचे, जिस राज्य में सुख-शान्ति विदा होने लगे, जिस के राज्य में दीन-दुखी प्राणियों की आहें महाकाश की वायु को तपादें, जिस राज्य में धनी और निर्धनी सभी शोक-स्वेदावगाहन कर, उच्च स्वर से 'हाय' निकालें, जिस राज्य में दो मनुष्य मिलते ही प्रथम उसी की निन्दा करने लगें,

जिस राज्य में नर-नारियाँ भय और कष्ट के मारे घर से बाहर निकलना न चाहें, क्या दुनियाँ में वह राज्य भी स्थिर रह सकता है ? कभी नहीं। अवश्यमेव कुछ ही काल में नष्ट हो जाता है। अपना विस्तृत साम्राज्य देख, भीष्म-ग्रीष्म भी चाहता था कि संसार को दग्धप्राय करदूँ, किन्तु उसकी मन चीती न हुई। मारने वाले से जिलाने वाला बड़ा बलवान है सचमुच 'संगठित शक्ति क्या नहीं कर सकती ?' जब इस महाकाश में एकत्र हुई उन क्षीण सी आहों का महासंघ हुआ तो उन (प्राणियों की) आहों से स्वयमेव भीषण ग्रीष्म दग्ध होने लगा। फलतः मर मिटा।

अब तो वर्षा का साम्राज्य होने को हुआ। घटाएं घिर घर कर आने लगीं। संसार के दारुण दाह को बुझाने लगीं।

चौबारे के आगे बरामदे में टहलते हुए दम्पतियों के—"ज़रा आकाश की ओर देखो, दुधिया अम्बर हो गया ! यह वर्षा सौ-सौ कोश तक होगी ?"--आदि वाक्य चौबारे के बरामदे में ही रम जाते हैं, धारा-सम्पात के कारण महदाकाश तक नहीं पहुँच पाते। इधर अत्युच्च अट्टालिकाओं ने भी अपने पतनालों की अञ्जलियाँ बना, मृत-ग्रीष्म को जलाञ्जलियाँ देनी आरम्भ कीं ! अहा ! इस महा वृष्टि को देख, नवोढा-ललनाएँ हृदयेश्वर के हृदय से हृदयतल मिलाकर,—

"..............समापो हृदयानि नौ।
.................................ऋ० मं० १०

सू० ८ को हस्तामलकवत् करना चाहती हैं। इस महावृष्टि के समय, सुन्दर सजे हुए कमरे के बरामदे में खड़े हुए, एक दूसरे के गले में हाथ डाले हुए दम्पतियों ने, उससे कम सुख नहीं अनुभव किया,--जितना पूर्ण-ब्रह्मचर्य धारण किए हुए सर्व--गुण--सम्पन्न, तेजस्वी 'विद्वान्' ब्रह्मचारी को देख सर्व, गुण, सम्पन्न अनुपम शील, सौन्दर्य्य-विभूषिता, विदुषी-कन्या, उसके गुण, कर्म, स्वभाव, सौन्दर्य्यादिकों पर मुग्ध हो, हृदय को खो बैठती है और बीच में अनेकाऽनेक विघ्न-बाधाएँ पड़ने पर भी, अन्त में अपने अत्युत्कट मानस-बल से स्वयं वर कर प्रथम-मिलन--निशा में अकथनीय, अगाध सुख प्राप्त करती है।

माधव आकाश की ओर देख बोला—"आज रात भर ऐसे ही वर्षा होगी—क्या ?"

गङ्गा—"परमेश्वर ऐसा ही करें, तो (गम्भीर एवं विशाल चक्षुओं से बरामदे के दोनों स्तम्भों के मध्य देश को बता) यहीं पलंग डालेंगे।"

माधव गम्भीरता से पत्नी के हृदय की थाह लेने को बोला—"हम तो दुकान पर सोएँगे।"

गङ्गा सुनते ही सन्न सी हुई। सहसा उसका प्रसन्न मुखाऽम्भोज म्लान और संकुचित हो गया। वह ज़रा सा मुँह बना, मानो अभी रोपड़ेगी-उनमनी-सी हो, क्षीण-स्वर में बोली—"हूं......"

गङ्गा की यह दशा देख, माधव अपने भाव को अब न छिपा सका। वह हंस पड़ा। और बोला—"अच्छा, यहीं सही। सुस्त होने का क्या काम है ?"

तब तो, माधव का प्रसन्न—भाव देख, तत्क्षण गङ्गा का मुख कमल की भांति खिल उठा कुछ कहना ही चाहती थी कि उसकी असीम प्रसन्नता देख, माधव चट बोल पड़ा—"तुम्हारा

कुछ हर्ज तो था नहीं, दुकान सूनी रहेगी-क्यों ?”

गंगा इस बार सुस्त न हुई। सम्भव है स्वामी के आन्तरिक भाव को पा गई हो? उसने उत्तर में—“फिर वही बात !” कह, लज्जित मुख को स्वामी की छाती में छुपा लिया। माधव ज़रा हंसने ही पाया था कि वह उससे अधिक हंस पड़ी। कुछ देर पश्चात्, गंगा ने गलबय्यां हटा, कहा—“अच्छा, खड़े कब तक रहोगे, कुरसी लाती हूं। बैठ जाइए।” और चौबारे के अंदर को झपटी। परन्तु शीघ्रता से माधव ने झपटती हुई का हाथ पकड़ लिया और कोने की ओर देख, बोला—“ठहरो, इसे खैंच लें।”

गंगा—“यह तो भारी बहुत है, कौन……”

बात समाप्त न करने पाई, कि माधव ने उस आराम कुरसी को खैंच, उसी खम्भे के पास करली। स्वयं उस पर एक ओर झुकड़ कर, बैठा और बराबर की ज़रासी जगह के लिए एक-संकेत कर, कहा “इधर तुम भी बैठ जाओ।”

बरामदे की टीन पर धड़ा धड़ वर्षा का पानी गिरता रहा। ठहर-ठहर कर वे आकाश की ओर देखते रहे परन्तु वर्षा का न्यूनाधिक्य तिल भर न हुआ। इस बीच गंगा बोली “क्यों-जी, इस समय उन दम्पतियों के हृदयों की दशा कैसी होगी, जिनका परस्पर मीलों या देशान्तर का अन्तर है?”

माधव—(सस्मित) “दुकान का नाम सुन, अभी जैसी दशा तुम्हारे मुख की होगई थी !”

गङ्गा सुन, पुनः लज्जित होगई।

× × × × ×

बिलकुल तो नहीं, परन्तु बहुत सा आकाश साफ होगया। आज श्रावण का प्रथम सोमवार है। इस अवसर पर, इस मध्यान्ह की वर्षा ने मानव-मानसों से ग्रीष्म की निर्दयता, क्रूरता, का भली भाँति परिचय करा दिया। विलासियों के अतिरिक्त जल-चर, स्थल-चर और गगन-चर जीव एवं ग्रामीण-नागरिक-जन अपने को शाप-मुक्त हुए से मानने लगे। व्यभ्राकाश होते ही विमल-वात ने भी अपने शैत्य, मंद सञ्चरण, मंद-सौगन्ध्य से क्षुद्र-हृदय दाता की भान्ति, प्रतिष्ठेच्छुक-स्वामी की भान्ति अपने प्रगुण गुण-गान-श्रवण करने का कष्ट से समय पाया। बिजली-जल दोनों ने भी, किञ्चिदुष्णता करने वाले कृतवर्त्मा सूर्यदेव-को ढांप कर निजोपकृति-प्रकटन की, कि कहीं नवयुवक नवोढाओं का बना-बनाया आनन्द न बिगड़ जाए?

माधव इस स्वर्गीय-सुख से क्यों वञ्चित होता? वह अपना हल्का सा हारमोनियम ले, गङ्गा से कुछ कह, चौबारे के खरे-ऊपर चढ़ गया। पीछे ही पीछे गंगा भी दाएँ हाथ में एक सुन्दर सुनहरी-जिल्द वाली पुस्तक ले, बाएं में लिपटी हुई चटाई ले, आ-पहुँची। उसे बिछा, दोनों टांगें पसार, माधव ने बाजा बजाना आरम्भ किया। ऐसे सुहावने समय में गङ्गा अपना शिर स्वामी की जांघ पर रख, चित्त लेट, पुस्तक देखने लगी। ज्यों-ज्यों स्वरबद्ध बाजे की तान और कमनीयता बढ़ने लगी, त्यों-त्यों गङ्गा के हृतन्त्री के तार हिलने लगे। वह कुछ कुछ गुनगुनाने लगी। यह देख उसके मञ्जु-मुख-

मयंक पर माधव ने प्रेम-घुले नेत्र डाले । वह प्रेमावेग उसे सहन न हुआ ।

शान्त—गम्भीर माधव के मुख से तब निकल ही गया—"कहो, कुछ कहो ।"

इधर गंगा के हृदय को ठंढी छत, सुरीले बाजे, सुखद वायु-सञ्चार ने पहले ही मूढ़ किया था फिर तो वह अव्यक्त गुनगुनाहट को पुस्तक आगे कर, प्रकट करने लगीः—

"नमामि भक्त-वत्सलं कृपालु-शील-कोमलम् ।
भजामि ते पदाम्बुजं अकामिनां स्वधाम-दम् ॥

× × × × ×

निकाम-श्याम-सुन्दरं भवाम्बुनाथ-मन्दिरम् ।
......................................"

[चुप हुई]

माधव— (बाजा बन्द कर) "चुप क्यों हुई हो ?"

गंगा—(दोनों होठों पर अरुण-रसना फेर) "अब तुम कहो ।"

माधव—"तो होंठ चाटने का क्या मतलब ?"

गंगा—"आज पहला 'सोमवार' है-न ? व्रत किया है-शिवजी महाराज का ।"

इस प्रकार पारस्परिक-प्रेमालाप हो रहा था । सहसा कुछ पुकार सी सुन, दोनों चौकन्ने हुए । वे निश्चल हो, सुनने लगे ! कुछ भी मिनटें न बीतने पाईं कि पुकार व्यक्त सुनाई दी—"क्यों जी ?"

सुनते ही गंगा झट उठ बैठी । माधव मुँडेरके सहारे हो, नीचे को झुक, बोला—"क्या मुझे कुछ कह रही हो, भाभी जी !"

सरस्वती—"अजी-हाँ ? कौन सुनता है, इस वक्त हमारी ? चाहे गला फाड़ लें पुकार पुकार कर !"

माधव—"नहीं-सच, सुनाही नहीं था । क्या कहती हो-कहो ?"

सरस्वती—"क्या हमारे भाग्य में यहीं पड़े, उबलना लिखा है ?"

माधव—"ऊपर क्यों नहीं आजाती हो ?"

सरस्वती—"ऊपर तो हमारा ही है, चाहे कभी आजाएं !"

माधव—"तो—"

सरस्वती—आज तो एडवर्ड-बाग़ चलें ।"

गंगा—(यह सम्बाद सुन, प्रसन्न हो उठी और धीरे से बोली) "अच्छा-जी, अच्छा ! चलो—ज़रूर ले चलो ?"

माधव—(धीरे से) "अच्छी बात" (कह, सरस्वती से फिर बोला—) "तो भय्ये कहाँ हैं ?"

इसका उत्तर सुतीक्ष्ण-कंठ की पुकार से मोहिनी ने दियाः—

"ताँगा लेने...गए...हैं ।"

माधव—"अच्छा !"

सरस्वती—"अच्छा क्या" नीचे आजाओ । कपड़े पहन लो ।

माधव—"आए" ।

बस, बाजा बन्द कर, माधवने कहा—"लो कपड़े पहनलो ताँगा आने वाला है ।"

गंगा—"चलिए" कह, चटाई लपेट, पुस्तक ले, खड़ी हुई । माधव किञ्चिद्-व्यक्त एवं मधुर स्वर से ज़ीने में उतरता हुआ गाने लगाः—

"कौमारपन में थी रही मद में मदन के चूर जो;
करती न थी कुछ भी कभी परतन्त्रता मंजूर जो;

भूली हुई थी विश्व, यौवन के अनूठे रंग में;
जिस मानिनी के मत्त क्या मातंग था पासङ्ग में ?

* * * *

"बालाङ्गना वह प्रिय-प्रणय-परिबद्ध क्या होती न है
रो रो पयोधर प्राण-पति बिन क्या वही धोती न है?
सच, 'प्रेम-बन्धन'-सा न बन्धन और है संसार में;
हा ! है पड़ा यों मुक्ति-वञ्चित जीव कारागार में!"

* * * *

गंगा—"यह पद्य तो बहुत ही मुँह चढ़ गए ! दिन-रात इन्हें छोड़ते ही नहीं !'

माधव—"सच गौने पहले तुम्हें क्या किसी की परवाह थी ? अब तो दुकान पर भी एक दिन को नहीं सोने देती हो !"

गंगा—(मिथ्या उत्तेजित हो) "फिर वही बात !"

इस बार दोनों हँस पड़े।

× × × ×

यद्यपि एड्वर्ड वाटिका घने वृक्षों से घिरी नहीं है तथापि आज गङ्गा और सरस्वती के संग अधिक ही काल में यहां आये हैं, इस लिए इन्हें बड़ी सुहावनी मन-भावनी प्रतीत होती है। वर्षा ने कदली दलों को धोकर, कुछ विशेष आभासम्पन्न कर दिया। हरी दूर्वा भी वर्षा से धुलकर, विशेष शोभामयी होगई आज की यह प्रथम वृष्टि निदाघ के सन्ताप का नितान्त अन्त कर चुकी, एतदर्थ यहाँ आज, और दिनों से कहीं अधिक लोगों की उपस्थिति है। उस निकृन्तित, विस्तृत, हरित, दूर्वा की, पारसी-रेशमी गुलाबी साड़ी पहने बीर बहूटियों के सदृश गंगा और सरस्वती भी स्वतन्त्र शोभा वृद्धि करने लगीं। उनकी साड़ियों के चारों ओर की छः छः उंगल की कामदार कढ़ी हुई हरी कन्नियों ने, शिर पर की घनी चौड़ी बेल ने, बेल के दोनों ओर के सलमे सितारे के काम ने, एवं साड़ी के मध्य-देश के सितारों ने इन बाल-सूर्य सम प्रभावाली दोनों ललनाओं के भी गुलाबी गात्र को जगमगा दिया !!

यह दोनों ललित ललनाएं रेशमी काली जुर्राबों के ऊपर पम्पस्यू (Pump shoe) पहने एक युरोपियन बालक को जो चैना-सिल्क का सूट डटाये एक हाथ में बड़ा सा बबुआ (खिलौना) लिए है, टहला रही थीं। यह देख दर्शक आश्चर्य ग्रस्त हुए। परञ्च उसी क्षण माधव ने सच्चे सलमे सितारों की—जो न्यून से न्यून पन्द्रह रुपयों की होगी—टोपी पहना दी, जिसका काला सा फ़ीता ठोढ़ीसे नीचे होकर आया हुआ सहसा दर्शकों का विस्मयकारी होगया कि रूप रंग भारतीय बालकों जैसा नहीं तो क्या है, इस प्रकार की टोपियां अंगरेज़ों में तो नहीं पहनाई जातीं !" वाह ! खूब धोखे में रहे ! जाननेवाली भी अब जाने यह तो मोहिनी है। चार जनों का खिलौना है। तभी यह पाँच मिनट भी एक के पास नहीं रहने पाती। कभी कोई छीन झपट लेता है, कभी कोई। पर कुछ हो, मोहिनी का खिलौना मोहिनी के पास है, उसे कोई छू नहीं सकता !

यह खिलौगा बिलायती है। है ऐसा जैसे षाण्मासिक यूरोपियन नग्न बालक ! मोहिनी ने इसे अपना 'भय्या' बनाया हुआ है। तभी मोहिनी इस की टाङ्गों से सफेद तौलिया लपेटे प्रेम से इसे चिपटाए रहती है। कई बार सरस्वती कह भी देती है—"बीबी अपने भय्ये

को न छोड़ना, नहीं तो आदत छूट जायगी। तेरी चाची के जो (बालक) होगा, उसे तुझे ही ऐसे रक्खे रखना होगा।" परन्तु ऐसी बातों से माधव और गंगा दोनों लज्जित हो, कुछ मुसकरा कर पीछा छुड़ाते।

इस समय मोहिनी की आयु ५॥ वर्षकी है। परन्तु बोलने, चलने, फिरने में सप्त वर्षीय बालक को दूर बिठा देती है। टहलते टहलते सरस्वती ने सहसा अपना बायाँ हाथ साड़ी से बाहर निकाल, उलटा कर, देखा और कहा "ओफ़! पौने सात हुए चलोगे नहीं, क्या?"

कुन्दन—"और क्या? चलो।"

सरस्वती उस हाथ को फिर से अन्दर करना ही चाहती थी कि ब्रेसलेट चूड़ियों की चमक ने मोहिनी को खैंचा। वह झट ही पास जा, उसके उसी हाथ की उँगली पकड़ चलने लगी, जिस की कलाई पर सुनहरी चमकीली वह घड़ी बँधी हुई थी।

गेट से बाहर हो सब ताँगे पर सवार हुए। जिस समय ताँगा क़िले के दरवाजे के सामने चान्दनी चौक रोड़ पर आया तो एक व्यक्ति को देख, शीघ्रता से कुन्दन नीचे उतरा। साधारण शिष्टाचार के अनन्तर साहिब ने कुन्दन से हाथ मिलाया कुन्दन के चिरपरिचित यह पादरी साहिब देखने में बड़े प्रतिष्ठित प्रतिभा सम्पन्न प्रतीत होते हैं। कुन्दन और आप कुछ बातें करते, धीरे-धीरे ताँगे के पीछे होलिये। ताँगा गौरीशंकर के मन्दिर के पास जा खड़ा हुआ। वहाँ वे भी सब उतरे। गंगा ने वह डलिया उठाई जिस में फलादि पूजन सामग्री सब रक्खी थी। उसी में से एक छोटी सी छुन्नी (तश्तरी) निकाल, उस में यथावत् सब सामग्री लगा ली।

आज भीड़ बड़ी भारी है। मन्दिर के नीचे बड़ा मेला लगा हुआ है। मन्दिर के भीतर से हारमोनियम एवं सरङ्गी के स्वर के साथ तबले का ठेका तथा घूंघरूवाले पैरों की ठुमकियाँ बाहर खड़े यवन युवकों के मनों को भी बाँधे हुए थीं। विदित हुआ रासधारियों द्वारा ऊषाचरित्र दिखाया जा रहा है। हिन्दी प्रेम सागर ने गङ्गा और सरस्वती को ऊषा चरित्र से अपरिचित नहीं रक्खा था। वे उसी समय समझ गईं कि बाणासुर की (कन्या) ऊषा सुन्दरी का 'स्वयंवर प्राप्त करना' यहां आज दिखाया जा रहा है। चरित्र (लीला=खेल) अति मनोहर दर्शनीय है सब कुछ है। परन्तु मजाल; किसकी जो ज़ीने की एक भी सीढ़ी चढ़ सकें। अन्त में हाथ जोड़, पूजा नीचे की सीढ़ी के ओर रख, फिर पूर्ववत् ताँगे में सवार हुए। ताँगा उस भीड़ से धीरे--धीरे निकल परेट के मैदान की सड़क की ओर चला। इधर कुन्दन और पादरी साहिब भी बातें करते, ताँगे के पीछे हो लिए। दोनों में कुछ इधर उधर की बातें होने के पश्चात् इस भांति सम्वाद छिड़ा—

पादरी—"आज तो सभी चले आए। कहीं दावत थी?"

कुन्दन—"जी! नहीं, गरमी ने उबाल दिया था, आज ज़रा ठंढ हो गई थी तो सब चले आए।"

पादरी—"तो मालूम हुआ, यह बिचारी भर-गरमी मकान में क़ैद रही हैं!"

कुन्दन—"जी-हाँ, यह पड़दे की कुछ रिवाज है जिससे सभी............।

पादरी बीच में ही बात काट कर बोले—"इन सब हिन्दुओं और मुसलमानों का एक ही दिन बेड़ा ग़रक होगा! कितना औरतों पर ज़ुल्म करते हैं। ओफ़!.........

"लेकिन आप भी क्या कम ज़ुल्म करते हैं? वाह-साहिब! जब तक गरमी पड़ी तब तक तो घर में ही उबलने दिया। जब वहाँ कुछ ठंढ़ हुई तो आप भी ठंढी हवा खिलाने बाहर घुमाने लाए हैं!

कुन्दन—"क्या बताएँ, जी!"

पादरी—"भले आदमी तुम तो हिन्दू नहीं हो तुम तो सुख से रहो। पड़े पड़दा कूए में! क्या इन बिचारी ग़रीबों की आत्माएँ कहती होंगी? वाह-जी, वाह!" (कुछ देर ठहर कर) "अजी-साहिब! एक क्या, हिन्दुओं की सभी बातें ऊट पटाँग! ये उन बेवक़ूफ़ियों को अख़्तियार करते हैं, जिनसे इनका अपना ही नुकसान! मुझे इनकी बातों पर बड़ी ही हँसी आती है! इनकी रिवाज़ों के मुतल्लिक़ एक बात कहता हूं—ज़रा ध्यान से सुनिए। जब हिन्दू लोग सुसराल आएँगे तो इतना थोड़ा खाएँगे कि भूखे रात भर पैर पीटें! फिर दूसरे दिन उसी तरह! क्यों-क्या समझे? ये अपनी जान से आप ही दुश्मनी करते हैं या नहीं? सुसराल क्या हुई, दोज़ख़ हुआ, जहाँ पेट भर सो भी नहीं सकें! ऐसे आराम के घर को अपने आप 'दोज़ख़' बना लेना-सिर्फ झूंठी शरम से, कैसी अक्लमंदी है? जब यह अपनी जान पर ही आफ़त डाले बिना नहीं रहते तो औरतों पर आफ़त कैसे न डालें? और यही इनकी औरतों की हालत है। जब रेल में सफ़र करती हैं, तो जानती हुई भी कि टट्टी यही कमरे (डब्बे) हैं, घर के लोगों से नहीं कहतीं कि पेशाब या टट्टी जाना है और नहीं जाती हैं। मारे शरम के पांच २ घंटे रोके बैठी रहती हैं!"

कुन्दन—"बेशक!"

पादरी—"अच्छा, इस भीड़ में उतरीं थीं, क्यों?"

कुन्दन—"अजी, यह मन्दिर था। ज़रा...... (कहते कहते जिह्वा लड़खड़ा गई)

पादरी—"तो रहे, तुम न हिन्दू न मुसलमान! तुम्हें कौन घुसने देता है! क्या तुम इस बात से ना वाक़िफ़ हो?"

कुन्दन—(बहुत कच्चा हुआ। परन्तु अपनी कातरता को गाम्भीर्य्य से दबा) "जी, आज सोमवार है। औरतों ने व्रत किया था, सो आगईं थीं।"

पादरी—"यों आने का क्या है? मन्दिर के आगे से कुत्ते, गधे वग़ैरह हैवान भी निकल जाते हैं, तुम भी निकल जाते। ठहरने का क्या काम था? यार, तुम्हारे भी अजब दिल हैं! धक्के खाते जाते हो, पिटते जाते हो, क़दमों में फिर भी हिन्दुओं ही के गिरना चाहते हो! वे तुम्हें अपने क़दमों के पास भी नहीं आने देते—दूर से ही मार मार कर, अलग करते रहते हैं। न जाने क्या हुआ? उस मालिक ने तुम्हें अक़्ल भी क्यों नहीं दी या जान-बूझ कर भी तुम 'आदमी' बनने की कोशिश नहीं करते?"

कुन्दन—(अधैर्य्य से विकल एवं विचल हो) "क्या करें, जी! यही है—जो कुछ है, धर्म तो, ईमान तो।"

पादरी—"यही क्यों ? रास्ता तो हम दिखा देंगे। फिर चाहे करना कुछ भी। मालिक ने आँखों वालों को उनका फ़र्ज बताया है कि वे अन्धों को राह बतादें, न जानने वालों का जना दें। बताते बताते भी चाहकर वे गड्ढे या कूप में गिरें, तो लाचारी है।"

कुन्दन—'कुछ अक़ल काम नहीं करती, साहिब !'

इस बार पादरी साहिब भली भाँति समझ गए कि अब लपेटना आसान है। उन्हें यह भी निश्चय होता जाने लगा कि जिस काम के लिये महीनों से तन, मन से श्रम करने में लगे हुए थे वह सिद्ध होने को हुआ। परन्तु आन्तरिक-भाव को छुपा बोले—"इतवार को हम आपकी दुकान की ओर आएँगे, तब बात--चीत होगी। अब तो वक्त नहीं इजाज़त दीजिए। एक फ्रेन्ड के यहाँ पार्टी है, वहाँ पहुँचना है।"

इसके उपरान्त सप्रेम हाथ मिला यह दोनों भय्ये भी अपने उसी ताँगे में सवार हो चल दिए और घन्टाघर की ओर पादरी पधारे।

(शेष फिर)

एलनकी का आशीर्वाद

लें०-श्री० प्रो० कालीदास नाग एम० ए० डी० यल पैरिस

(माडर्न रिव्यू से)

श्रीमती एलनकी अब संसार में नहीं हैं। युरोप के स्त्री-सम्बन्धी-अन्दोलन-इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो गया। यह देवी उसी अंश में एक महान् स्त्री थी जिस वास्तविक अर्थमें इतिहास में हम 'महा-पुरुष' शब्द का प्रयोग करते हैं। इनके जीवन के कार्य्यों से स्त्रियों के अधिकारों के विरुद्ध जो युक्तियां दी जाती हैं उनको हम बडी अच्छी तरह काट सक्ते हैं और इनका जीवन मनुष्य समाज को उठाने और पवित्र करने की स्त्रियों की शक्ति का बड़ा उत्तम उदाहरण है।

उन से अच्छी तरह परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण तथा स्वीडन के अलवस्त्रा स्थान पर उन के आश्रम में आतिथ्य प्राप्त करने के कारण मैं यह अपना कर्तव्य समझता हूं कि एक संक्षिप्त जीवनी देकर इस पवित्र देवी की स्मृति में अपनी कृतज्ञता की कुसुमांजली अर्पित करूं।

मार्च १९२३ का समय था। मैं क्रिश्चियाना के ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट में-जिसमें डाक्टर स्टेन कोनो ने प्रधान बनना था-लेक्चर देने के लिये निमंत्रित था और मुझे नार्वे में थ्रान्भेम की विद्यार्थी-महासभा के सामने भी उपदेश देना था। महाशय रोमन रोलैन्ड-जो कि अपने छोटे शिष्यों और मित्रों की स्वास्थ्य के लिये हमेशः चिन्ता रखते थे-उन सर्दियों में मेरे इस निमन्त्रण स्वीकार करने के विरुद्ध थे, लेकिन जब देखा कि एक भारतीय लड़का मध्य रात्रि के सूर्य्य से प्रकाशित आश्चर्यजनक प्रदेश के लिये उतावला होरहा है तो उन्हे भी मानना

पड़ा। महाशय रोलैन्ड ने बड़ी ताकीद की कि स्कैन्डिनेविया की यात्रा के लिये मैं पूरे साज और सामान के साथ जाऊं और एलन की के नाम एक बड़ा सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा जिस में मुझ अपने भारतीय मित्र का परिचय उन्हे दे दिया।

एलन की को देखना है ! मेरी आशाओं की हद न थी। मैं अपनी पैरिसकी "दादी" सिनेटर क्रुप की धर्मपत्नी मैडम लुईज़ क्रुप के पास दौड़ा गया, उसने स्वीडन की लेखक-महिलाओं पर एक पुस्तक लिखी थी जिस में एलन की के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख था क्योंकि यह उनकी बड़ी भक्त थी। मैंने इस पुस्तक को बहुत जल्द समाप्त करके एलन की के सम्बन्धमें सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया और मैडेम क्रुप से और भी बहुतसी बातें जानलीं। इन्होने भी इस स्वीडन की महान् देवी के नाम एक पत्र लिख दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने मुझे बड़ा दयापूर्ण निमंत्रण भेजा और लिखा कि जब मैं स्वीडन में जाऊं तो उनका आथियत स्वीकार करूं।

जोश से परिपूर्ण होते हुये मैंने सर्दी और वर्फ़ से बन्धे हुये उत्तरीय सागर की कोई परवाह न की। मैं ऐन्टवर्प से नार्वे की किश्ती वियरिट्ज़ में चढ़ कर दो दिन और तीन रातें पृथ्वी के तट की मनोहारि शोभा देखता हुआ कुछ पानी वाली, कुछ ठोस क्यों कि वर्फ़ के टुकड़े तैरते थे—सामुद्रिक सड़क पर चलकर क्रिश्चियाना पहुँचा। मार्च के महीने का बहुत भाग मैंने नार्वे के इव्सनलैन्ड स्थानों में होकर लैकचर-यात्रा करते बिताया। यह भूभाग बड़ा ही शोभा शाली और प्राकृतिक दृश्यों के शुद्ध सौन्दर्य से परिपूर्ण है। अब मैंने नार्वे को जल्दी से पीछे छोड़ कर आगे बढ़ने की कोशिश की क्योंकि मुझे भय लगने लगा कि इस तरह ऐसा न हो कि मैं अपनी स्वीडन की तीर्थ यात्रा के लक्ष्य से रह जाऊं।

मार्च के अन्त में मैं स्वीडन और नार्वे की उस हद को पार कर रहा था जो कि कभी एक थी, लेकिन १९०५ से जो भिन्न राज्य बन गये थे। लम्बे हरे चीलों से ढकी पहाड़ी के किनारे २ रेल धीरे २ चल रही थी। स्वीडन की एक देवी दोनों राज्यों की जो हद हो सकती थी उसे मुझे बताने लगी। उसने कहाः—

"तुम देखते हो वह जो किनारे पर हल्की २ लकीर दिखाई देती है जिस पर काले चीलों के पेड़ों की एक पंक्ति है-वही हमारा समझौता किया हुआ सरहद्दी हिस्सा है........"

मैंने कहा—"लेकिन देवी जी, सरहद कभी समझौते से निश्चय नहीं होती। वह तो छीन झपट कर प्राप्त की जाती है, और लड़ झगड़ कर हाथ में रखी जाती है।"

"हां, लेकिन हद को निश्चय करने के लिये अहिंसात्मक युद्ध का यह एक नमूना है जो कि अन्यत्र अलभ्य कार्य्य है, जिसके लिये हम स्कैन्डेनेविया की महिलायें बड़ा अभिमान करती हैं। हमारी एलन की सरीखी बहुत सी महान महिलाओं ने युद्ध को हटाने का बड़ा यत्न किया और शान्तिमय उपायों द्वारा हद के निश्चय का समझौता कराया।"

मैंने यह अद्वितीय घटना पढ़ी है। यह इसी बात को सिद्ध करती है कि समाज में स्त्री-शक्ति

को स्वतंत्र बनाने से हमारी पुरुषों की बनाई राजनीतियों में पवित्रता का संचार होता है मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि ‘न्यू लीडर” में महाशय जान जैन्सन ने इस देवी की मृत्यु सूचना देते हुये इस पवित्र कार्य्य के कारण उन की बड़ी हृदयग्राही बड़ाई की है। वह लिखते हैं:—

“उस ने दोनों देशों में शांति बनाये रखने के हेतु अपने आप को युद्ध के बीच में डाला, और जब कि सम्पूर्ण सोशिलिस्ट पार्टी बड़ी वीरता से कामकर रही थी और म०व्रैन्टिंग तथा अन्यों को जेल का डर दिलाया जा रहा था यह एलन की का ही साहस था जिसने दो स्कैन्डिनेवियन जातियों में होने वाले युद्ध का रुख बदल डाला।”

जैसे ही मैं स्वीडन पहुंचा मैंने वायु मंडल तथा प्राकृतिक शोभा में फर्क अनुभव किया। जहां नार्वे में हरे भरे मैदानों में कहीं २ पर तलाबों की पंक्तियां शोभित हैं वहां यहां पर आते ही मैं खुश्क चौड़े मैदान पाये जिन पर हरे घने चील के पेड़ों की हरियाली थी-यह दृश्य नेत्रों के आगे स्वीडनवर्ग तथा स्ट्रिन्डवर्ग के प्रसिद्ध शालप्रांशु दो महानुभावों गस्टावस अडुल्फस तथा चार्ल्स १२वें की मूर्त्तियां उपस्थित करने लगा। निस्सन्देह स्वीडन वीर योद्धाओं की भूमि है चाहे वह विचारांगण में हो अथवा समरांगण में। ऐतिहासिक प्राचीन उपसाला शहर उसके बड़े गिरजे और विश्व विद्यालय को देखते हुये मैं स्टाकहोम नगर में पहुँचा जो कि एक बड़ा स्वच्छ और सुंदर शहर है और जिसे लाड़ से उत्तर का वेनिस कहते हैं। (हां, यह सचमुच ऐतिहासिक स्मृतियों, और मशहूर गन्द ! के बिना वेनिस ही कहलाया जा सकता है) मनोहर झील के उसपार से चमकते हुये ऊंचे। नभचुम्बित मकानों की शोभा का दृश्य बड़ा कमाल का है। यहां पर राज दरबार के निरीक्षक डाक्टर वोटिजर की कृपा से मुझे आर्ट गैलिरी (चित्रशाला) ऐतिहासिक इजाइबघर, राजा का महल तथा वहां पर जगह २ से मंगाये हुये बेशकीमती परदे और गलीचे आदि देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिस में मैं कई दिन तक लगा रहा और इस अर्से में अपनी इस यात्रा के अन्तिम लक्ष्य एलन की के एकान्त आश्रम के पता लगाने में यत्नवान रहा।

“क्लैरालार्सन” के एक प्रशान्त होटल में मेरी एक मित्र, मेरी प्रथम स्वीडन-निवासी मित्र मैडेम बुटन्शन रहती थीं, जिन्हों ने कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जली का अनुवाद किया है। मेरी सम्पूर्ण स्कैन्डिनेवियन यात्रा में क्रिश्चियाना से स्टाकहोम तक वही हमेशा मेरी सहायक मित्र, दार्शनिक तथा प्रदर्शक रहीं। जब मैं अलवस्ट्रा की भविष्य यात्रा का प्रोग्राम इन देवी के साथ ठीक कर रहा था तो कुंडा खड़का, और एक नौकरानी स्वीडिश अकेडिमी और नोबुल इन्स्टीटयूट के सदस्य मिस्टर पीर हालस्ट्रयूम को लिये हुये दाखिल हुई। मुझे पता था कि यह वर्त्तमान स्वीडन का एक बड़ा भारी लेखक है, और इसी की सर्कारी रिपोर्ट पर गीताञ्जली पर नोबुल प्राईज़ दिया गया था। अतः स्वीडन के एक एकान्त होटल में मुझे गीताञ्जली की अनुवादिका तथा उसको नोबुल अकेडिमी में प्रविष्ट कराके साहित्यिक जन्म दाता दोनों को एक साथ मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

पीर हालस्ट्रुम की बाबत यह मशहूर है कि

यह लोगों की दृष्टि से दूर रहकर पढ़ता लिखता रहता है और स्टाकहोम की हद के बाहर बने अपने बंगले से बहुत कम बाहर दीख पड़ता है, और जब राजधानी में आता भी है तो भी वहां की सभा, समाज में नहीं सम्मिलित होता। राजसी प्रकृति के कारण अलग रहना, तीव्र वाक-पटुता, सूक्ष्मदर्शिता, जिन में कुछ २ सभ्यतापूर्ण कटाक्षेप करने की प्रकृति भी सम्मिलित हो, ऐसा पीर हालस्ट्रम का स्वभाव था। मैं नहीं जानता मुझपर किन पुण्य नक्षत्रों का प्रभाव था कि उन्हों ने मुझ पर कृपा दृष्टि डाली और वर्तमान स्वीडन का सारा इतिहास आदि से अन्त तक समझाया। इस प्रकार एलन की की जीवनी के नैतिक और आत्मिक कार्यों के वास्तविक रूप को समझने के लिये मुझे सहायता मिल गई।

मैं स्टाकहोम के ऐतिहासिक इजाइबघर में लेक्चर देने की तैयारी कर रहा था कि डाक से मुझे परिचित लेख में लिखा पत्र मिला। एलन की ने बड़ा दयापूर्ण पत्र लिखा था जिस में जाने की रेलें, बदलने के स्थान, किराया आदि का विस्तृत वर्णन देकर अलवस्ट्रा में अपने घर में मुझे आमंत्रित किया था। यह स्थान बहुत मशहूर नहीं और मैं भूल भुलैया में न पड़ूं इस का ध्यान दिलाया गया था। मैं स्टाकहोम से सवेरे की ट्रेन से चला और केटनहोम जंक्शन पर रेल बदल कर दोपहर को अलवस्ट्रा पहुंचा। उससे पहिले स्टेशन पर मेरे डब्बे में एक महाशय आये और बड़ी नम्रता से पूछने लगे कि क्या एलन की को मिलने जाने वाले "भारतीय सज्जन" आप ही हैं? इस तरह मेरा पता लगा कर उन्हों ने मुझे कहा कि वह महान देवी बड़ी चिन्ता में थी कि आप कहीं रास्ता न भूल जावें, अतः मुझे भेजा है कि मैं आपको भारत के स्वप्नों से जगाता रहूं। हम दोनों खूब हंसे, क्योंकि मैं अपने आपको निमग्न योगी की भांति जिसका कि उन को खयाल हो रहा था, बिल्कुल नहीं मालूम पड़ता था। अलवस्ट्रा पर गाड़ी रूकी, और मैं अपने सूटकेस को जो कि बहुत छोटा नहीं था-हाथ में लिये डब्बे से बाहर निकला तो मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक वृद्धा देवी हाथ फैलाये हुये मुझे ट्रंक उतारने में मदद दे रही हैं। मैंने सन्दूक छोड़ दी और सन्दिग्ध भाव से एक क्षण देखा। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुस्कुराते हुये कहा—"कालिदास नाग तुम्हारा स्वागत हो। मैं एलन की हूं। क्या तुम्हें स्टाकहोम में मेरा पत्र मिल गया था?" मैंने जल्दी में दो चार शब्द धन्यवाद और उत्तर में कह दिये परन्तु मेरा सारा ध्यान उस मूर्त्ति की ओर लग गया था। एक मझौले क़द की महिला जिसके सारे बाल सफेद थे (क्योंकि वह ७३ वर्ष की हो चुकी थी) बिल्कुल सीधी खड़ी हुई और किसान स्त्रियों की भांति शान से सादे वस्त्र पहिने हुये थीं, लेकिन उन के नेत्रों से अपूर्व प्रतिभा और करुणा झलक रही थी। यही हमारे ज़माने की महिला—विचारकों में प्रमुख देवी एलन की हैं!..................।

"देखिये मिस्टर नाग हमें अपने घर पहुँचने के लिये इन खेतों को पार करना होगा......।"

इस तरह हंसते हुये उसने मेरे दिवा-स्वप्न को भंग कर दिया। साथ २ क़दम रखते हुये हम दोनों चल पड़े। आह! उनके क़दमों में

कितना बल था। मानों ७३ वर्ष उन के लिये कोई बुढ़ापा नहीं होता। वह मुझसे स्कैन्डेनेविया का प्रभाव मुझ पर क्या पड़ा, तथा हमारे दोनों के फ्राँस के मित्रों महाशय रोलेन्ड, मैडेम क्रूप तथा अन्यों के सम्बन्ध में बहुतेरे प्रश्न पूंछ रही थीं। हम वैटर्न झील के किनारों पर पहुंच गये और उस के तट पर एक सुन्दर दुमंझला सफेद सादा घर दिखाई पड़ा, जिस के छोटे से फाटक पर लिखा था Memento Vivere.

जैसे ही हम भीतर गये तो उन्हों ने मुझे ज़रा आराम करने को बाधित करके स्वयं एक छोटी सी मेज़ सजाकर हमारे लिये तीसरे पहर की चाय तैयार करने लगीं। वह कार्य्य-परायण थीं। उन के कोई नौकर नहीं था। उन्हों ने एक अनाथ लड़की पाली थी जो कि उन के पास रहती थी और घरेलु धंधों में हाथ बंटाती थी, जब कभी कोई अतिथि आदि आ जाते। आतिथ्य सत्कार में एलन की बड़ा ध्यान रखती थीं। कुछ ही देर बाद वह मुझ से बच्चों जैसा व्यवहार करने लगीं। मुझे ऐसा भान होने लगा कि मानों यह जन्म से ही "दादी" स्वरूप हैं। शायद इसीलिये इन्होंने बीच की मातापन की परीक्षा को देना स्वीकार नहीं किया और डबल प्रमोशन लेकर स्त्री जाति की अन्तिम शोभा को एक दम पहुँच गईं! कैसी सरलता से वह लोगों को अपनी ओर खींच लेती हैं! उन की आवाज़ में एक जादू भरा हुआ है। सार्वजनिक सभाओं में वह हजारों लोगों को जड़ीभूत कर देती हैं, और इष्ट मित्रों के साथ वाक-चातुरी में उन की बराबरी करने वाले थोड़े ही होंगे।

वह मुझे अपनी स्वाध्याय की कोठरी में लेगईं। यह एक बड़ा सा कमरा था जिस में शीशे की खिड़कियां थीं जिनमें से प्रत्येक व्यक्ति हमेशः झील की श्यामल जल शोभा को देख सकता था। इस कमरे में कुछ तस्वीरें ता प्राकृतिक शोभा की थीं और कुछ योरप के बड़े २ महान व्यक्तियों की अर्थात् सेन्ट फ्रैंसिस, शेक्सपीयर, गेटे, क्रोपाटकिन, इत्यादि २। जो इस बात की सूचना देरही थीं कि उनकी रुचि कितनी विशाल है और उनका मानसिक दृष्टिकोण कितना विस्तृत है। मैंने अब समझा कि कैसे अपनी सारी ऐतिहासिक लड़ाइयों में जो कि स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में उन्हें करनी पड़ीं एलन की ने हमेशा केवल मानसिक शस्त्रों का ही प्रयोग किया और प्रकृति ने स्त्री जाति को जो कवच दी है उसे धारण करना उसे पसन्द न हुआ। जैसे वह स्त्री-अधिकार-आन्दोलन के विरोधियों के प्रत्युत्तरों को बड़ी प्रबल युक्तियों से खंडन करतीं थीं वैसे ही अपनी स्त्री-जाति के अन्दर यदि चुपके २ खप मचाने वाली या असहिष्णुता के कारण पागल हुई स्त्री-अधिकार की पक्षपाती स्त्रियां होतीं तो उनको भी ललकारती थीं। बड़ी वीरतायुक्त न्याय तथा ओज के साथ यह वीरललना घोषणा करती थी कि "विचारों के युद्ध में दोनों पक्षों की अवस्थायें एकसी होनी चाहियें, मानसिक युद्ध केवल मानसिक साधनों द्वारा ही लड़ने चाहिये।"

उस शान्त कमरे में बैठकर हम दोनों ने अनेकों प्रश्नों पर वाद विवाद किया। एलन की की बातचीत को लेख बद्ध करना असम्भव था। मैंने इस असम्भव कार्य्य को करने की

चेष्टा नहीं की, मैं इस अधिकार के लिये ही बड़ा कृतज्ञ हूं कि मुझे इस महान जीवात्मा—जो कि अनेकों विचारों तथा मनोवेगों का रणक्षेत्र था–की साधारण बातें सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तव में यदि एलनकी अपने बहुत से ग्रन्थों में केवल अपनी मानसिक योग्यता का ही परिचय देती है तो उस मानसिक योग्यता के भीतर मनोवेगों का बड़ा भारी संसार छिपा हुआ है। कभी २ वह अपनी आत्मकहानी बतलाने के ध्यान में होती थी अतः मुझे उनके जीवन की मुख्य २ घटनाओं का भी ज्ञान कुछ प्राप्त हुआ। यह १८४९ ईस्वी के दिसम्बर में पैदा हुई थीं। न के पिता का नाम प्रोफेसर एमिल की और ाता का नाम काउन्टेस सोफी पोज़ी था। एलन ने इन दोनों से (कल्चर और रिफाइन्मेन्ट) साधारण ज्ञान और लावण्यप्रियता हद्द से ज्यादा ग्रहण की थी। जब वह केवल बीस वर्ष की ही थीं तो इन्होंने स्वतन्त्र विचार दल के पक्ष के समर्थन में लेख लिखने प्रारम्भ किये थे। इन के पिता इस दल के बड़े भारी पोषक थे। इनके पिता की सम्पत्ति के नाश से धन की तंगी भी इन को निरुत्तेजित न कर सकी और यद्यपि स्वभाव तथा शिक्षा से भी कुलीनता का भाव रखने वाली थीं तथापि १८८०में एलन ने एक दम स्टाकहोम में शिक्षिका का कार्य्य करना स्वीकार कर लिया।

यहां जनसाधारणके साथ सीधो व्यवहार पड़ने से उनके हृदय में करुणा के भाव उत्पन्न हुये और उन्होंने श्रमजीवियों में अपना महान कार्य्य करना प्रारम्भ कर दिया। श्रमजीवियों की संस्थाओं में व्याख्यान देने से उन्हें अपनी दुर्लभ वाक शक्ति का ज्ञान हो गया। १८८९ ईस्वी में ४० वर्ष की आयु में उन्हें अपनी बुद्धि और प्रतिभा का पूर्ण विकास अनुभव होने लगा तब वह विचारों में तथा कार्य्य द्वारा सार्वजनिक सेवा में लग गईं। उन्होंने टिकाऊ, स्वतन्त्र विचार दल से अपना सम्बन्ध तोड़ डाला और सोशिलिस्ट दल के साथ नियम पूर्वक सम्बन्ध जोड़ लिया। वह विचारों के क्षेत्र में जन्म से ही नेत्री थीं, और जैसा कि प्रत्येक दृढ़ नेता के साथ हुआ करता है एलन की पर हर प्रकार के कटाक्षेप और गालियां पड़ने लगीं। लेकिन वह पहाड़ की भान्ति अचल रहीं और अन्त में उन पर विजय प्राप्त की। इस युद्ध का इतिहास असम्पूर्ण रूप से कुछ तो उनके अविस्पष्ट रिपोर्ट किये गये लेकचरों और उपदेशों में मिलता है और कुछ उनकी जल्दी में लिखी हुई (क्योंकि वह इतनी काम में लगी हुई थीं कि ध्यान से लिखने का समय नहीं होता था) पुस्तकों—"प्रेम और विवाह", "स्त्रियों का सतीत्व", 'मातृत्व शक्ति का पुनुरुत्थान', 'स्त्रियों की शक्तियों का झूंठा प्रयोग'—से चलता है। यह पुस्तकें १८९५ ईस्वी में जब प्रकाशित हुईं तो उनकी निजी स्त्री जाति के साथ ही बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ गई और १९१० में इसका कुछ समाधान हुआ जब कि एलन की ने अपनी स्पष्ट-भाषिता द्वारा इस सच्चाई को स्वीकार कर लिया कि स्त्री-आन्दोलन-पक्षपातियों ने केवल खंडनात्मक कार्य्य ही नहीं किया वरन् मंडनात्मक कार्य्य की ओर भी लोगों को लगाया है।

इसलिये हमारे ज़माने में अपने स्त्री आन्दो-

लन के कार्य्य को बुद्धि पूर्वक चलाने, साम्यवाद और शान्तिवाद के आन्दोलनों को प्रवर्द्धित करने में भाग लेने द्वारा एलन की स्त्री आन्दोलन के इतिहास में एक अनुपम, अपूर्व, पद को धारण करती है। प्रतिनिधि स्त्रियों मे उनका क्या पद होना चाहिये यह समय ही निरधारित करेगा, लेकिन हम इतना ही बतलाना चाहते हैं कि डाक्टर जार्ज ब्रैन्डेज़ ने-जो कि बड़े सूक्ष्म समालोचक और बड़े दार्शनिक हैं-कोपन हेगन की एक सार्वजनिक सभा में इस देवी को यह कह कर अलंकृत किया था कि 'यह स्वीडन की सब से बढ़कर मानसिक शक्तिशाली स्त्री हैं, नहीं योरप की, अथवा सारे संसार की हैं।'

लेकिन उनकी जीवन घटना एक दूसरी दृष्टि से बड़े महत्व की है। यह एक ज्वलन्त और विश्वास दायक साक्षी इस बात की भी हैं कि यथार्थ मनः शक्ति के लिये यह आवश्यक भी नहीं और वह करती भी नहीं कि स्त्रियों के मनोवेगों के आवेगों को कमज़ोर करे अथवा सौन्दर्य्य प्रियता के भाव को विनष्ट करे। मैं अपने इस पक्ष को सिद्ध करने के हेतु केवल दो उदाहरण दूंगा। एलन की ने-जो कि प्रकृति की शोभा की बड़ी उपासक थी-वर्तमान योरुप के के सब से बड़े प्रकृति और पशु के बड़े भारी चित्रकार Bruns Liljefors को अध्ययन किया था। उनके वचन स्वयं ही यह बतलाते हैं।

लेकिन एलन की ने जो सार्वजनिक सेविका व्याख्यातृ, दलनेतृ विचारिका, चित्रकार, आदि कार्यों द्वारा ख्याति लाभ की है वह तो केवल अपनी स्त्री जाति का दहेज मातृत्वभाव द्वारा-ही की है। यद्यपि उन्होंने अपना सारा जीवन अकेले ही ब्रह्मचर्य्य अवस्था में बिताया और हमेशः सत्य और प्रेम की ज्योति को जगाती रहीं, लेकिन उनके हृदय में देवमाता का भाव हमेश जागृत रहता था। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बच्चों की शताब्द' में वह लिखती हैं:—'

"केवल पुस्तकें रटाने से यह हानि है कि बच्चे की अन्तरात्मा पर दूसरों के भार का बोझ बहुत आ पड़ता है। अध्यापक यह नहीं अनुभव करता कि उसके सन्मुख नया जीवात्मा है, एक अलग व्यक्तित्व रखने वाला व्यक्ति है, जिस को अपने आप स्वयं भी विचार करने का अधिकार है। अध्यापक इस नये जीव में कोई नयापन नहीं देखता है, वरन उस को यह उसी पुरानी मानव जाति का नया प्रादुर्भाव ही दीख पड़ता है। पिता माता भी बड़ी कोशिश करके यह देखना चाहते हैं कि उनके बच्चे समाज द्वारा निर्धारित गुणों के आदर्श बने रहें। इसी लिये एक ही टाइप के लोग बनते जाते हैं; ठोस लड़के, प्रिय लगने वाली लड़कियां; कुदाचारी राजपुरुष इत्यादि।

लेकिन अज्ञात मार्ग के नवीन टाइप के लोग, अज्ञात विचारों के विचारक, यह लोग तो सुशिक्षित बालकों में से नहीं बनते। हमें अपने बच्चों को अन्तरात्मा की शान्ति देना चाहिये, उन्हें माने हुये विचारों को-स्वाभाविक रीतियों तथा सुबीते के मन के भावों को त्याग करने की स्वतन्त्रता देनी चाहिये, तभी समष्टिरूप से अन्तरात्मा के भावों के स्थान में व्यक्तिगत अन्तरात्मा का भाव प्रगट होगा और यही मनुष्य जीवन की सर्वोच्च चमक है।"

यदि हम इस नये टाइप की अन्तरात्मा

के प्रगट होने को देखना चाहते हैं तो हमें अनुत्पन्न पीढी की ब्रह्मचारिणी माता एलन की को कृतज्ञता पूर्वक स्मर्ण रखना चाहिये।

मेरे चलने से पहिले उन्होंने बड़े बल से यह बताया मेरा भविष्य में बड़ा भारी विश्वास है और मैं "जगत् विजयी युवास्था" नामक पुस्तक लिखने में लगी हूँ। यह उन की जीवनी का रहस्य था क्योंकि मैंने यह कभी अनुभव नहीं किया में एक ७३ वर्ष की महिला से बात चीत कर रहा हूं। उनकी बुद्धि और सहानुभूति जगत् व्यापिनी थी। उन्होंने मुझ से भारतवर्ष और उसकी देवियों के सम्बन्ध में असंख्य प्रश्न पूछे और जब मैंने यह बतलाया कि उनकी पुस्तकें हमारे शिक्षित बालक और बालिकाओं के हाथ में पहुंच गई हैं और वह उन्हें कौतूहल से पढ़ते हैं, तो उनकी आखों से आँसू टपक पड़े। तब मैंने पहिली दफा यह अनुभव किया कि भारत के लिये उनके दिल में कितनी गहरी सहानुभूति थी। जिस समय मैं उनकी मित्र-पञ्जिका में-जिसमें अलवस्ट्रा में गये हुये बहुतेरे यात्रियों के हस्ताक्षर थे—कुछ पंक्तियां लिख रहा था उसी समय एलन की ने एक कार्ड पर कुछ पंक्तियां लिखीं और मुझे मधुर शब्दों में सुनाने लगी :—

"प्रिय भारत! जब से मैं ८ वर्ष की थी मैं उससे प्रेम करती थी, और जब २ मैं भारत के पुत्रों में से किसी को देखती हूं मैं आशा करती हूं। तुम्हारी मातृभूमि भारत वही बन जावेगी जो कि उसके सर्वोत्तम लड़के लड़कियां आशा करते हैं, यत्न करते हैं और जिसके लिये कष्ट उठाते हैं।"

यह बहुमूल्य बूटी लेकर मैं चल पड़ा। उनका देवी स्वरूप मुख, अस्ताचल गामी सूर्य्य की लालिमा से चमकता हुआ मुझे विदाई दे रहा था। परमात्मा करे उसकी महान आत्मा को शान्ति मिले और इस महान देवी का आशीर्वाद भारत के पुत्र, पुत्रियों को प्राप्त हो।

आवागमन

लेखिका—श्रीमती राजकुमारी जी दिल्ली

आवागमन के तत्वों का विचार करना पूर्ण मनुष्यता है। इस सिद्धान्त को मान लेना सरल है पर उसका परीक्षण अति कठिन है, यद्यपि इस विषय में अनेक वाद हैं पर प्रस्तुत निबन्ध में केवल दोही वादों पर विचार करना है। पहला विकास पक्ष दूसरा, उत्क्रान्ति पक्ष। अगर हम आत्मविकास पक्ष मानते हैं तो हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि विकास क्या वस्तु है? यदि 'अविष्कृत एक का अनेक मार्गों से एक तरफ़ जाना' यह विकास स्वरूप बतलाया जावे तो ठीक नहीं क्योंकि पहले तो एक, अनेक मार्गों से जा नहीं सकता। दूसरी एक तरफ जाने में कारण भेद नहीं बन सकता और उसके अस्वीकार करने पर मार्ग

भेद का कथन अयुक्त होगा। 'अविष्कृत अनेक का अनेक मार्गों से अनेक तरफ जाना' यह भी विकास का लक्षण गुण दोषों के उद्भव और विनाश को सिद्ध करता है न कि विकाश को। 'आदि अन्त में एक और मध्य में अनेक होना' इस लक्षण में दृष्टान्त न होने से मान्य नहीं। इसी प्रकार 'ससीमका निःसीम की तरफ जाना' 'निःसीम का ससीम की तरफ जाना' 'अभिन्न को भिन्न होना' 'भिन्न को अभिन्न होना' इत्यादि कोई भी विकल्प तर्क की कसौटी पर खरा नहीं साबित होता।

उत्क्रान्तिवाद का मतलब है आत्मा अजर अमर नित्य अविकृत अपरिणत है, वही धर्माधर्म कारणों से अनेक योनियों में भ्रमण करती है और मनुष्य योनि में आकर यदि पूर्ण मनुष्यता प्राप्ति में सफल हो जाती है तो नियत काल तक उसका सुख प्राप्त कर फिर पूर्ववत् चक्कर काटने लगती है। अब प्रश्न यह है कि तिर्यग् योनिसे सम्बन्ध रखने वाली आत्मा मनुष्य शरीर को किस प्रकार ग्रहण कर सकती है। पशु शरीर के साथ सम्बद्ध आत्मा में मनुष्य शरीर को उत्पन्न कराने वाला, तथा उसके साथ सम्बन्ध कराने वाला कारण अवश्य मानना होगा, फिर पशुदेह के साथ सम्बद्ध आत्मा में रहने वाला कारण मनुष्यदेह को कैसे उत्पन्न कर सकता है क्यों कि कारण भिन्न प्रदेश में रह कर कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि यह कल्पना करें कि आत्मा पूर्व शरीर को त्यागकर उत्तर शरीर को उत्पन्न करती है तोभी पशु शरीर के साथ सम्बद्ध आत्मामें मनुष्य शरीरोत्पादक कारण पशु शरीर को मनुष्य शरीर में परिवर्तित क्यों नहीं कर देता? । यदि यह कहा जाय कि पशु शरीर में मनुष्य शरीरोत्पादक कारण केवल सञ्चित होता है उसका स्वरूप बतलाना होगा।

धर्माधर्म को कारण बतलाने पर प्रश्न होगा कि धर्म स्वरूप से कारण होगा अथवा धर्म का ज्ञान या उस का अनुष्ठान। स्वरूप से कोई वस्तु कारण नहीं होती और धर्म ज्ञान पशु को हो नहीं सकता क्योंकि धर्म ज्ञान के लिए कार्य कारण की श्रृङ्खलाएं जोड़नी पड़ती हैं और पशु कार्य कारण भाव को स्थिर नहीं कर सकता अनेक समता का अवधारण कार्य कारण है और पशु केवल अनुभवात्मक ज्ञान रखता है यदि स्मरणात्मक ज्ञान भी रखता होगा तो अति मन्द, किन्तु बिना उत्कट स्मृति के व्याप्ति का निश्चय असम्भव है। अब एक ही प्रश्न अवशिष्ट रहता है कि पशु धर्मानुष्ठान कर सकता है या नहीं इसमें भी दो प्रश्न उठ सकते हैं कि धर्म किसे कहते हैं? धर्मानुष्ठान और धर्म ज्ञान में कौनसी वस्तु श्रेष्ठ है? यदि धर्मानुष्ठान का अर्थ कर्तव्य पालन कर लें तो सिद्ध करना होगा कि पशु कर्तव्य पालन के द्वारा आत्मोन्नति कर सकता है या नहीं? इसका उत्तर हां में देना होगा। उदाहरणार्थ क और ख दो समान शक्ति वाले बैलों को देवदत्त ने बराबर भोजन दिया क प्रसन्नता से खेत जोतता है और स्वस्थ भी रहता है जब स्वामी के बच्चे उस के सामने आते हैं तो बड़े प्रेम से उनको अपनी जीभ से चाटने लगता है और ख! ख महाशय की बात ही मत पूछिए, भोजन के समय दशमुख, कार्य के समय पैर फैला कर चित लेट जाते हैं। स्वामी के बालकों को अपनी

तीखी सींग से सत्कार करते हैं। इस उदाहरण से तो यही सिद्ध होता है क कर्तव्य ज्ञान से रहित कर्तव्यानुष्ठान से आत्मोन्नति कर रहा है। अब केवल एक ही परीक्षण के बाद मैं अपना कार्य समाप्त कर दूंगी। मनुष्य पूर्ण मनुष्यता के साथ उत्पन्न होता है या अपूर्ण ? जबतक मनुष्यता पूर्ण न होगी तब तक मनुष्य कभी भी मनुष्य नहीं होसकता। आशङ्का होती है यदि मनुष्य उत्पन्न काल में ही पूर्ण मनुष्य होता है तो सारी शिक्षायें किस लिए ? क्योंकि सारी शिक्षावों का आशय सिवा मनुष्यता की पूर्णता करने के और कुछ नहीं कहा जा सकता। इस का उत्तर यह है कि हमारी शिक्षायें अप्रकटित मनुष्यता को प्रकट करती हैं, संस्कृत करती हैं तथा अलङ्कृत करती हैं उसे उत्पन्न नहीं करतीं। धर्म ज्ञान, शब्दों द्वारा अपना आशय व्यक्त करना, और कार्य कारण भाव प्रधान कार्य करना ये तीन बातें मनुष्य के सिवा अन्यत्र नहीं होसकतीं। धर्मज्ञान की पूर्णता ऋषित्व में है, शब्दों की पूर्णता कवित्व में, कार्य कारण की पूर्णता दर्शन में अतः सिद्ध है मनुष्यता की पूर्णता ऋषित्व, कवित्व और दार्शनिकत्व में है।

स्त्रियों के अधिकार

लेखक—स्नातक यशःपाल सिद्धान्तालंकार वैदिकमिशनरी

सतारहवीं सदी में योरुप में दास प्रथा का प्रचार था। अफ्रीका के जंगली लोगों का व्यापार तथा क्रयविक्रय होता था। बहुत देरतक योरुप तथा अमरीका में यह प्रथा प्रचलित रही। जब इब्राहिम लिङ्कन अमरीका का प्रेसिडैन्ट बना तब उसने इस बात का यत्न किया कि अमेरिका से दास प्रथा को दूर किया जाये, परन्तु उसको बड़ा भारी यत्न इस बात के लिये करना पड़ा और कई सालों तक युद्ध भी लड़ना पड़ा। उसने कानून द्वारा दासप्रथा को बन्द करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की, परन्तु पूर्णतया इस प्रथा को दूर करने में उसे पूर्ण-सफलता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु धीरे २ योरुप तथा अमरिका के लोगों ने मनुष्यों के जन्म-सिद्ध-अधिकारों को समझा और १९वीं सदी में योरुप में मनुष्य के अधिकार (Rights of man) का नाद गूंजा। और दास प्रथा बहुत हद तक दूर होगई। जब इस प्रकार नर-समाज में जागृति पैदा होगई तब नारी-समाज में भी जागृति का पैदा होना अवश्यम्भावी था। आज बीसवीं सदी में न केवल योरुप में अपितु भारतवर्ष में भी देवियों में जागृति के चिन्ह दिखाई देते हैं। मानव जाति के लिये यह बड़ा शुभ लक्षण है। अबतक मनुष्यों ने देवियों के अधिकारों को कुचला था, पद-दलित किया था, और उन्हें गृहदासी, विषयभोग तथा ऐन्द्रिय इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र समझा था। स्त्रियों की स्थिति इससे अधिक न थी कि वे भोजन आदि कार्य करने तथा बच्चे पैदा करने और पुरुषों के अत्याचारों को सहने

और उनकी पैशाचिक इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये ही विधाता ने निर्मित की हैं। पारवारिक कर्तव्यों में उनकी सलाह का लेना आवश्यक नहीं समझा जाता था। पतियों की जो इच्छा हो चाहे वह अनुचित हो, या उचित, उसके सामने शिर झुकाना ही स्त्रियोंका एक मात्र कर्त्तव्य था। पति मांसाहारी हो, शराबी हो, व्यभिचारी हो, स्त्री के लिये वह देवता स्वरूप ही है। पति रात और दिन घर से बाहर बितादें परन्तु स्त्री का उसको रोकने या विनाश से बचाने के लिये सलाह देने का कोई अधिकार नहीं है। आजकल यद्यपि जागृति के चिन्ह दिखाई देते हैं तथापि करोड़ों हिन्दू घरानों में आज भी देवियां अपने अधिकारों से वञ्चित होकर पशुवत जीवन व्यतीत कर रही हैं। विवाह में कन्या की कोई सम्मति नहीं। माता पिता अपनी प्यारी कन्याओं का विवाह धन लोभ से आचरण रहित, व्यभचारी पुरुषों के साथ करने में भी तनिक सङ्कोच नहीं करते। षोडशवर्षीया कन्यायों को ५० साल के मरणासन्न बूढ़े पतियों के हाथ में बेचकर कन्या की मृत्यु का पाप अपने शिर पर चढ़ाते हुए माता पिताओं को तनिक भी शर्म नहीं आती। माता पिता सदा इसी बात का यत्न करते हैं कि किसी तरह लड़की को व्याह के घर से बला टाल दी जाये। इस तरह का विचार तक नहीं करते कि योग्य कन्या का विवाह किसी योग्य सदाचारी पुरुष के साथ किया जाये ताकि कन्या का जन्म सुखी हो। लड़के को कन्या की योग्यता, रूपरंग के देखने का पूरा अधिकार है। विवाह से पूर्व लड़का कन्या के विषय में पूरी जांच पड़ताल करने का अधिकार रखता है परन्तु कन्या को अपने भावी पति के विषयमें कुछ भी जानने का अधिकार इस नृशंस हिन्दू जाति में नहीं है। माता पिता जहां चाहते हैं अपनी कन्या को फेंक देते हैं, और उन विचारी अभागिनी स्त्रियों को सारा जन्म नरक की घोर यातना में व्यतीत करना पड़ता है। लेखक को पंजाब तथा पंजाब से बाहिर भी भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ है और उसने अपनी आंखों से नारी समाज की दुर्गति का अवलोकन किया है और देखा है कि किस तरह अबलाओं के अधिकारों को पद्दलित किया जाता है। फ्रान्टियर के इलाके में अबतक भी ऊंचे घरानों में भी कन्याओं के सट्टे की रीति प्रचलित है। एक बूढ़ा आदमी अपनो कन्या के बदले दूसरे आदमी की कन्या या बहिन से विवाह करलेता है और इस प्रकार कबर की ओर टांग पसारे हुये बूढ़े पुरुष लाखों विधवाओं और बाराङ्गनाओं की उत्पत्ति के कारण बनकर हिन्दू जाति को तबाह करने पर तुले हुये हैं। क्या बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल विवाह और कन्याओं के सट्टे की रीति स्त्रियों के अधिकारों का स्पष्टता तथा निर्लज्जता से पददलन नहीं है? क्या अपने जीवन के साथी को निश्चित करने में कन्याओं का कोई भी हाथ न होना उन पर अत्याचार नहीं है? मनुष्यों को सदा याद रखना चाहिये कि उनके अत्याचारों से पीड़ित नारी-समाज की आहें संसार में वह आक्रान्ति पैदा करेंगी जिसका रोकना मनुष्यों के लिये नितान्त असम्भव हो जायेगा। आज टर्की में देवियों में कुछ जागृति पैदा हुई है और इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही अर्से

में टर्की से बहु विवाह तथा पर्दे की रस्म बहुत कुछ दूर हो गई। थेकिरे ने एक स्थान पर लिखा है कि 'A, women's heart is like a lithographers stone, what is once written upon it can not be rubbed out" अर्थात् देवियों के हृदय पर एकबार जो बात जमजाये उसका मिटाना नितान्त कठिन है। यदि देवियों में जागृति पैदा हो गई और उसका पैदा होना आवश्यक है और स्त्रियों ने अपने अधिकारों को समझ लिया, तो बड़ी भारी प्रतिक्रिया होगी जिसका रोकना असम्भव हो जायगा।

गृहस्थ में देवियों का उतना ही अधिकार है जितना पुरुष का। कर्त्तव्यों में भेद है। अधिकारों में कोई भेद नहीं। यदि पुरुष का काम अर्जीविका कमाना है, तो देवी का कर्त्तव्य गृहस्थ को स्वर्गीय बनाना है। कर्त्तव्य की भिन्नता में अधिकारों की भिन्नता का होना आवश्यक नहीं। गृहस्थी का कोई भी ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये जिसमें गृहपत्नी की सम्मति न हो। इसी प्रकार से पति चुनाव में कन्याओं को वे ही अधिकार होने चाहिये जोकि पुरुषों के हैं। माता पिता का यह कोई अधिकार नहीं है कि वे कन्या की इच्छा के विरुद्ध या उसे बिना जताये उसका विवाह करें। विबाह में माता पता की अध्यक्षता में कन्या का पतिवरण में पूरा अधिकार होना चाहिये। यदि माता पिता कन्याओं के अधिकार का ध्यान रक्खें तो एक दम बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल विवाह तथा कन्याओं के सट्टे की रीति सर्वथा बन्द हो जाये और विधवाओं तथा वारवनिताओं की संख्या में भी अनिर्वचनीय न्यूनता हो जाये। साथ ही गृहस्थ सच्चे अर्थों में सुखधाम बन जायें। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जातीय उत्थान (National awakening) में देवियों का बड़ा भारी हिस्सा है। बिना देवियों की सहायता के कोई भी जाति उन्नति नहीं कर सकती। मध्यकाल में यदि आर्य धर्मको इस्लाम के आक्रमण से बचाकर आर्य धर्म तथा आर्य संस्कृति की रक्षा किसी ने की है तो देवियों ने। इन्हीं देवियों की गोद से राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानन्द जैसे महात्मा और प्रतापसिंह, नैपोलियन, शिवाजी जैसे महावीर पैदा हुये हैं। इस समय हमारा सब से अधिक तथा मुख्य कर्त्तव्य यही है कि हम स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करें और यह न समझें कि पुरुषों के अधिकार देवियों से ज्यादा हैं। इटली के भाग्यविधाता मेज़िनी ने बहुत ठीक कहा है :—

Cancel from your minds every idea of superiority over women. You have none whatsoever. consider woman, they are the partner and companion, not merely of your joys and sorrows but of yonr thoughts, your aspirations and your endeavours after social amelioration. Consider her your equal in your civil and political life. Be the two human wings that lift the Soul towards the ideal we are destined to attain.

अर्थात् इस बात को अपने हृदयों से निकाल दो कि तुम स्त्रियों से बड़े हो। स्त्रियां तुम्हारी सारी इच्छाओं और महत्त्वाकाङ्क्षाओं की साथिन हैं। तुम्हारे सुख दुःख में भी तुम्हारी सहायक हैं। अपने सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों में स्त्रियों को अपने बराबर समझो मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में भी स्त्री और पुरुष दोनों को मिलकर यत्न करना चाहिये।"

* * *

हिन्दी साहित्य में काव्य की दुर्दशा

लेखक–श्री रामकृष्ण मिश्र साहित्याचार्य

आज कल हिन्दी संसार में पद्य के नये २ निर्मातागण, वर्षाऋतु के कीटक-समूह बन जन्म धारण करके साहित्यक्षेत्र में अति त्वरित-गति से बढ़ रहे हैं। छोटी सी छोटी पुस्तिका की रचना की गई कि उसकी प्रशंसा में उसकी दूनी भूमिका लिखने में ही अपनी सम्पूर्ण योग्यता व्यय कर डाली जाती है। इस महत्वपूर्ण कार्य–सम्पादनार्थ किसी इष्ट मित्र से अनुनय विनय द्वारा आग्रह किया जाता है। यदि इष्ट मित्र न हुआ तो फिर क्या स्वयं ही स्वात्मश्लाघा करने में यत्किंचित् भी नहीं हिचकते हैं। पद्य चाहे भ्रष्ट नीरस तथा काव्य दोष से ही ओत प्रोत क्यों न हो, पर किसी समाज या वर्तमान नीति के विषय पर होना चाहिए। फिर देखिए, पद्यकारों को कहीं से कविराज, तो कहीं से कविवर, कहीं से कवीश, कहीं से भारत–प्रज्ञेन्दु, कहीं से काव्य-दिवाकर आदि उपाधियाँ धड़ाधड़ मिलने लगती हैं। इस उपाधियों की वितरण प्रणाली को लक्ष्य में रखते हुए कुछ सज्जनों के अन्तःकरण में यह विचार उठने लगता है कि यदि इस समय सूर–तुलसी होते तो न मालूम उनके लिये किन उपाधियों की नई सृष्टि करनी पड़ती, क्योंकि, शायद ब्रह्माण्ड में उनके लिये उपयुक्त उपाधि न मिलती। ख़ैर उस समय देखा जाता। उसे जानेदें। अब विचारणीय विषय यह है कि हिन्दी में उपर्युक्त दशा क्यों हो रही है? चारों ओर से काव्यक्षेत्र में यह अनयपूर्ण दुःसाहस, क्रांति, और विप्लव, क्यों हो रहा है? क्या इसका नियंत्रण करता कोई है ही नहीं?

वर्तमान काल में विज्ञापनों का बाज़ार खूब ही गर्म हो रहा है। देखिए, कहीं कामवटिका राममूर्त्ति ही राममूर्त्ति भारतवर्ष भर में बनाने पर उतारू हो रही है, तो कहीं मस्तिष्क शक्ति-वर्द्धक अमूल्य बूटी लाखों जगदीशचन्द्र और प्रफुल्लराय बनाने का दम भर रही है। कहीं कोकशास्त्र का साम्राज्य–प्रभाव जमाया जा रहा है, कहीं औद्योगिक–शास्त्र हिन्दुओं को सातवें स्वर्ग पर ले जाने के लिये कटिबद्ध है। कहाँतक लिखा जाय, यह तो विज्ञापन बाजी का ही ज़माना है। आजकल भारत के उद्धार के लिये सभी उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गये हैं। जिधर देखो उधर ही सुनाई पड़ेगा, हम तन, मन, धन से भारत के हितैषी हैं, इसी कारण मैंने यह सम्पूर्ण ऐश्वर्यप्रद वस्तु कड़े परिश्रम से आपके सम्मुख रखी है, आपके सुख समृद्धिवान होने से भारत की उन्नति है। इस से लाभ उठाना न उठाना आपका का काम है। इन विज्ञापनों में कितना तथ्यातथ्य है वह पाठकों से अविदित नही है। इसी हेतु मैं ज़ोर देकर कह सकता हूं कि इन झूठे विज्ञापनों से, चरित्र–भ्रष्ट होने की सम्भावना है और सर्व साधारण को कुछ लाभ नहीं है। यह बात इसी अभागे देश के लिये कही जा सकती है, अन्य

देशों में विज्ञापनों के लिये ही नहीं, क्योंकि अन्य देश के लोग स्वार्थ के साथ ही सर्व साधारणोपयोगी वस्तु का ही विज्ञापन देते हैं, एतद्देशीय जन तो स्वार्थ के आगे किसी की परवाह नहीं करता।

अभी तक तो धनलोलुपों ने अन्य उपायों द्वारा ही भारत के नाम को बदनाम किया था। अब ऐसे विज्ञापनों का प्रचार देख साहित्य द्वारा धन पैदा करना सरल और सीधा मार्ग दिखलाई पड़ा। उस पथ के दिखावटी पथी बन कर उसके निर्माता बनने का दावा करने लगे। ऐसे लोगों ने देखा कि अन्य भाषाओं में काव्य का ही विशेष आदर है। हिन्दी राष्ट्र-भाषा है और इसे दिन प्रतिदिन अधिक प्रेम के साथ अन्य भाषाभाषी भारतवासी अपनाने जा रहे हैं। इसलिये इसके काव्यानंद लूटने के लिये सभी इच्छा करेंगे। व्रजभाषा के समझने में सभी को बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा, इसलिये खड़ी बोली ही का आदर होगा। यह विचार कर इसी भाषा में काव्य निर्माण के कार्यालय खुलने लगे। प्राचीन पिङ्गल ग्रन्थों को लेकर, दो चार नया उदाहरण दे और भूमिका लिख नये २ पिङ्गल-शास्त्र बनने लगे। यह महाग्रन्थ कोई तो ४० कोई ६० पेज के हैं। अनेकों ऐसे पिङ्गल महाग्रन्थ हिन्दी संसार में निकल चुके हैं। ये ग्रन्थ निकल तो चुके पर बिकें कैसे ? इस समस्या को हल करने में लगे। विचरते २ यह ध्यान में आया कि किसी परीक्षा में रखवा देने से अवश्य बिकेंगे। ऐसा विचार आते ही चार २ पुस्तकों के साथ प्रार्थना की जाने लगी कि आप की परीक्षाओं में इस महाग्रन्थ को रख कर अनुगृहीत करें। अपने इष्ट मित्रों से सिफारिश करवाई गई। परीक्षा में होजाने पर मौज़ होगई। कइयों ने सोचा कि विज्ञापन का जमाना है। चलो इसी की शरण में चलें, फिर क्या इन के लम्बे, चौड़े, चमकीले, भड़कीले विज्ञापनों में से किसी के भूषण तो किसी के विहारी और किसी के तुलसी, सूर आदि बनाने की गारंटी लेनी आरम्भ की। ऐसी सुगमता से थोड़े मूल्य में कौन अभागा होगा जो भूषण, सूर और तुलसी न बनना चाहेगा ? इन विज्ञापनों ने नवयुवकों को उत्साहित किया। वे इन पुस्तकों के सहारे परिश्रम करने लगे। परिश्रम का फल मिलता है, व्यर्थ नहीं जाता। अवश्य मिलता है। तुक बन्दियाँ करने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इन तुकबन्दियों पर कवि धराधर, काव्य-धुरंधर इत्यादि उपाधियाँ कई कविता पत्रों से मिलने लगीं। ऐसे सुगम और थोड़े परिश्रम से तुक्कड़ लोग स्वयं ही कवि, सुकवि और महाकवि बन गये। पत्र सम्पादकों के पिङ्गल ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण इन की संख्या दिन प्रतिदिन बर्साती मेंढकों की तरह बढ़ती जारही है। ये कीटक कविता रूपी सुन्दर वस्त्र में चिपट कर उसके तन्तुओं को काटते चले जारहे हैं। यदि किसी समालोचक ने इन की वृद्धि रोकने की चेष्टा की तो इन के हिमायती उस के पीछे पड़जाते हैं कि विचारे समालोचक को अपने प्राण छुड़ाने दुस्तर हो जाते हैं। इसलिये इन को और भी स्वतंत्रता मिलती चली जारही है। जिससे इनकी उच्छृङ्खलता और भी बढ़ती चली जारही है। यही कारण है कि हिन्दी पद्य-विभाग की ऐसी

दशा है। इन तुकबन्दियों को देख कर कोई विद्वानों की सम्मति है कि हिन्दी अच्छे कवियों से शून्य है।

आज मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यदि हिन्दी संसार में तुक-बन्दियों का प्रचार न होता तो लोगों को यह कहने का साहस कदापि न होता। लोगों के विचार-प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी संसार में एक से एक अच्छे रत्न इस समय भी मौजूद हैं और अन्य किसी भाषा के कवियों से किसी प्रकार कम नहीं कहे जा सकते हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिये फिर कभी निज कथन और उदाहरण उपस्थित करूंगा।

उपर्युक्त हिन्दी में जो विप्लव दशा हो रही है उस के लिये कई पत्रों में समालोचना अच्छी तरह की जाती है, फिर भी पिङ्गलशास्त्र और भाषा से अनभिज्ञ लोग अपने हठ को नहीं छोड़ रहे हैं। आशा करता हूँ कि समालोचकगण इनके दुराग्रह से न डर कर यथोचित कड़ी से कड़ी समालोचना करते रहेंगे जिससे हिन्दी साहित्य में कूड़ा कचरा न भरने पावे। साथ ही उन महानुभवों से प्रार्थना है जो अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ते हैं कि आप लोग पहले अध्ययन शक्ति तथा प्रतिभा शक्ति बढ़ाइए। पीछे आप हिन्दी की सेवा कीजिए। आप का खूब मान होगा और नाम होगा। आशा है कि इस ओर ध्यान देंगे।

गुजरात का हृदय विदारक दुर्दशा

लेखक—श्रीयुत विद्याव्रत शास्त्री गुजरात निवासी

प्राचीन समय में भारतवर्ष देश सब देशों में अग्रगण्य गिना जाता था। जिसकी महिमा उस समय सब देशों के कोने २ तक फैली हुई थी। क्या यह बात किसी से छिपी हुई है? उस ज़माने में इस देश में अगाध विद्या का प्रचार था, जिसके लिए यह पहिले से ही विख्यात है कि:—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं २ चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः। मनु.

अर्थात् सकल भूमण्डल जन अपने २ जीवन को सफल करने के लिए, इस देश के पैदा हुए भूदेवों से ही शिक्षा लेते थे। तबतक वे अपने आप को कृतकृत्य नहीं मानते थे जबतक यहाँ के ब्राह्मणों से शिक्षा नहीं ग्रहण कर लेते थे। वे आदमी अपने आप को तथा दूसरों को भी विद्या में अधूरा समझते थे जबतक कि वे भारतीय ब्राह्मणों से नहीं शिक्षा लेते थे। उस समय प्रत्येक देश निवासी क्या यूरोप क्या एशिया, चाहे कहीं के भी क्यों न हों भारत की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे। ऐसी स्थिति में 'बाल विवाहादि प्रथाएँ जो आजकल भारत में प्रचलित हैं, उनका नामों निशान तक नहीं था।

यह अल्प भूमिका मैंने आपके सामने इस लिए उपस्थित की थी, कि मैं यह उचित समझता हूँ कि आधुनिक स्थिति को दर्शाने से

पहिले प्राचीन अवस्था को यत् किञ्चित् आप के सामने समर्पण करदूँ, जिससे आप लोगों को पता चले कि पूर्व की अपेक्षा अब कितना अज्ञान रूपी अंधकार फैलता जा रहा है। अस्तु,

भारत वर्ष देश स्वाभाविक ५ हिस्सों में बांटा गया है, साथ ही १५ सूबों में विभक्त है। जिन प्रान्तों में एक समुद्रप्रान्त—स्थित बम्बई प्रान्त भी है, जिसमें काठियावाड़ गुजरात एक रम्य स्थान है, जिसमें महर्षि दयानन्द स्वरस्वती जी से अलौकिक, संसार के सुधारक, हुए हैं।

मैं यद्यपि गुजरात देश का निवासी हूँ किन्तु मेरा सौभाग्य समझिये कि मुझे नीचे लिखित अवस्थाएँ नहीं भुगतनी पड़ी. अतः मैं अपने पूज्यपाद पिता जी श्री० जयसिंह भाई जी तथा श्रीमती माता जी को अनेकशः धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। ईश्वर ने उन को सुबुद्धि प्रदान की, जिससे उन्होंने बचपन से ही श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी संस्थापित कांगड़ी गुरुकुल में मुझे प्रविष्ट कराया। रमणीय गुरुकुल भूमि में मैंने ७ वर्ष अध्ययन किया। उसके बाद मुझे अपनी जन्म भूमि को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस को देखकर मेरे हृदयमें विचित्र २ अनेक प्रकार की भावनाओं की तरंग उठने लगीं। इसक हृदय विदारक अवस्था को देख कर मेरा हृदय कंपायमानहोगया। हृदय फट सा गया। यद्यपि शिष्टाचार से सर्वथा यह विरुद्ध है कि अपनी जन्मभूमि की निन्दा कीजाय, क्योंकि किसी ने ठीक कहा है कि:—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

अर्थात् अपनी माता तथा जन्मभूमि यह दोनों के दोनों स्वर्ग से भी प्रशंसनीय हैं। किन्तु "यथार्थ वक्ता न वञ्चकः" इस नियमानुसार इसको मैं निन्दा न समझता हुआ, अपनी लेखनी से कुछ "गुजरात की दुर्दशा" का चरित्र चित्रण करने का यथाशक्ति संक्षेप से प्रयत्न करूँगा।

प्रथम शारीरिक अवस्था को ही ले लीजियेः-

अखिल भारत में आपको कहीं दुबले पतले और कमज़ोर मनुष्य देखने हों तो आप गुजरात में जाकर इस का अवलोकन कर सकते हैं। इसके क्या कारण हैं?

(१) वहाँ पर इतनी सफ़ाई का प्रबन्ध अच्छा नहीं जितना होना चाहिये। शुद्धता के अभाव से पानी तथा कूड़ादि सड़कों पर पड़ा रहता है, अतः सड़ जाता है। इसका फल स्वरूप कीड़े मकोड़े स्वाभाविक ही उत्पन्न हो जाते हैं।

यह डाक्टरी रूल (नियम) है कि मलीन जल तथा किसी प्रकार का कूड़ादि किसी स्थान पर एकत्रित न किया जाय, जिससे कीड़े उत्पन्न होकर मलेरिया, प्लेगादि फैलावें। किन्तु वहाँ तो इसके विपरीत दिखलाई देता है। ऐसी अवस्था में कोई भी स्थान, क्यों न रोग का गृह बने?

(२) गर्मियों के दिनों में भी गर्म पानी से स्नान करना, साथ ही ग्रीष्म ऋतु के गर्म दिनों में तीन या चार समय चाय का पीनो, क्या यह काम बुद्धिमत्ता के हैं?

प्रथम तो गर्मी के दिवस स्वाभाविक ही गरम, द्वितीय उन पर गरमा गरम चाय का दिन भर पीना क्या यह कार्य 'प्रमेह' रोग की उत्त्पत्ति के हेतु नहीं हैं? जो व्यक्ति, समाज, जाति, और

देश बचपन से ही इस रोग से ग्रसित हों, वह इस अज्ञान रूपी भवसागर में से कैसे अपनी जीवन रूपी नौका को पार कर सकते हैं ? हाय ! इस रोग में भारतीय निवासियों के फंस जाने पर ही, यह अकथनीय दुर्दशा सहनी पड़ रही है। ऐसी स्थिति में भी क्या आप इस चाय को गर्मी के दिनों में पीना नहीं छोड़ सकते ?

(३) मिलः—आप सब जानते हैं कि गुजरात की तरफ़ मिलें प्रायः बहु संख्या में है। अन्दर से मिल (Mill) के मार्ग बहुतही कमचौड़े पगदंडी की न्याईं हैं। जिससे स्वास्थ्य विशेष कर अधिक खराबहो जाताहै। एक तो भूमध्य रेखा में स्थित होने के कारण स्वभाविक गर्मी अधिक पड़ती है दूसरे ऐसी अवस्था में १० या १२ घण्टा प्रति दिन कार्य करना मौत को आह्वान करना है या नहीं ? यद्यपि यह बात ठीक है कि वहाँ की जनता की जीविका का भार मिलों (Mills)ही पर हैं। किन्तु अफ़सरों द्वारा (Mills) मिलों के भीतरी मार्ग आगे से फ़ासले पर बनवा सकते हैं यदि वे चाहें तो। साथ ही इस तरफ़ मिलों के अधिकारी वर्गों का भी ध्यान हो तो शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।

बुद्धिः—

ऐसी शरिरिक अवस्था होने पर भी वहाँ से आजकल के दिनों में V.G. Patel और महात्मा गान्धी जी जैसे महाविद्वान्, नीति-निष्णात (चतुर) पुरुष हुए हैं तथा महर्षि दयानन्द जी जैसे हो चुके। इसका कारण सादा भोजन करना है। जो भात दाल खाते हैं उनकी बुद्धि अच्छी होती है। क्योंकि यह भोजन सतोगुणी है। यदि पूर्वोक्त घटनाओं का सुधार हो जाय तो निश्चय से यह जानिये कि जहाँ आज तो अंगुलियों की गिनती पर गिने जाते हैं वहाँ उस दशा में हजारहा महाविद्वान् अलौकिक सुधारक, पुरुष पैदा हो सकते हैं।

प्रचलित प्रथायें

वहाँ के बड़े २ सभ्य पुरुषों से मुझे मालूम हुआ है कि प्रत्येक बालक और बालिका का १० या १२ साल में एक बार लग्न का समय आया करता है । लग्न के आने के बाद ही विवाह होजाता है।

जैसे उदाहरण के तौर पर एक क नामक पुरुष के एक लकड़ी हुई, उसकी शादी १२ साल में हो गई। उसके बाद पुनः १२ साल में लग्न आने वाला है तब यदि उसके उस की शादी के १० साल बाद यदि लड़का उत्पन्न हो जाय तो दो साल की अवस्था में इस लड़के की शादी हो जायगी। क्योंकि उनकी यह चाल ढाल है, १० या १२ साल में लग्न जिसका हो उसका विवाह हो जाना चाहिये चाहे वह बच्चा, बच्ची क्यों न हो; अथवा वह ३५ सालका, बुड्ढा, बुड्ढी क्यों न हो। क्या यह घोर अन्धकार तथा घोर अन्धेर ख़ाता नहीं है ? इसका फल स्वरूप क्या होगा क्या वह इससे अपरिचित हैं ? क्या बह नहीं जानते कि सामाजिक जीवन तथा जाति पर इस का क्या असर पड़ेगा ? साथ ही इनका यह भी नियम है कि निश्चित १० या १५ ग्राम में और स्वजाति में ही लड़के या लड़की का विवाह हो चाहे वर पसन्द आवे या न आवे। यदि लड़की को वर तथा लड़के को कन्या योग्य नहीं मिले तो वे फूलों के साथ शादी कराके, तत्पश्चात्

फूल माला को तोड़कर कूप में फेंक देते हैं। इस का परिणाम यह होता है कि सैकड़ों लड़कियाँ विधवाएँ और हजारहा लड़के रंडुवे होकर ईसाई और मुसलमान बन जाते हैं।

और अपनी जीवन यात्रा को यूंहि वृथा पशु की न्याई गवाते हैं। अब मैं आप से पूंछता हूँ कि अब वे क्या करें। अल्पावस्था में शादी करना वैद्यों ने तथा हमारे पूर्वजों ने बड़ा ही हानिकारक बतलाया है। परन्तु यह कुछ भी नहीं विचारते चाहे लड़की छोटी और लड़के की आयु बड़ी भी क्यों न हो किन्तु सम्बन्ध जोड़ ही देते हैं जिस का परिणाम क्या हो सकता है यह किसी से छिपा हुआ नहीं है? इस के सम्बन्ध में मैं और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझता, तब भी एक दृष्टान्त लिखना उचित समझता हूँ, जिस से ये अपनी अज्ञान रूपी आंखों को खोलें। एक समय एक ख नामक का बालक (England) इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पासकर के आया, यहां आते ही दो एक साल में उसकी १२ वर्ष वाली लड़की के साथ बड़ी धूमधाम से (Pomp and Show) माता पिता ने शादी कर दी। बालक की अवस्था ३० वर्ष के लगभग थी। विवाह के बाद वे दोनों बड़े प्रेम पूर्वक गार्हस्थ जीवन को व्यतीत करने लगे। उसकी औरत को दो साल में गर्भ हुआ। किन्तु बच्चा उदर में ही बिगड़ गया। इसका क्या कारण है इसके परिचय कराने की कोई आवश्यकता नहीं? तब पुरुष इस दारुण दृश्य को देखकर उस के कष्ट को न सह सका और उसने अपनी मृत्यु स्वयं करली। स्त्री भी थोड़े ही दिनों में यमलोक सिधार गई अर्थात् मर गई। यद्यपि उस पाप के भागी जातीय मनुष्य थे उस निरपराधी लड़के को भी मौत का ग्रास होना पड़ा। ऐसे २ उदाहरणों को सुनकर किसका पाषाण जैसा कठोर हृदय होगा जो कि मोम की न्याईं पिघल न जाता हो? ऐसी अवस्था जहाँ गुजरात काठियावाड़ की है वहाँ क्या जाति तथा देश की कभी उन्नति हो सकती है? नहीं—नहीं—कदापि नहीं? पहिले तो यह नियम था कि १६ साल की बालिका और २५ साल का पुरुष विवाह तथा गर्भाधान करने के योग्य हो सकता था।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि उत्तम उत्पन्न होते हैं। वैसे ही उत्तम बलवान् स्त्री पुरुषों से उत्तम सन्तति पैदा होती है। इससे पूर्ण युवावस्था में, यथावत् ब्रह्मचर्य्य का पालन करके, विद्याभ्यास करके न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या तथा २५ वर्ष का पुरुष अवश्य हो तब विवाह करे। इससे अधिक के हों तो और भी अच्छा है। क्योंकि बिना १६वें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिए अवकाश और गर्भ धारण करने वा पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता, और २५ वर्ष से पहिले पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इसमें सुश्रुत के प्रमाणः—

पंञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥१॥
ऊन षोडष वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भः कुक्षिस्थ स विपद्यते॥२॥
जातो वा न चिरंजीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त वालायाँ गर्भाधानं न कारयेत्॥३॥

अर्थात् जितना सामर्थ्य २५ वें वर्ष वाले पुरुष के शरीर में होता है, उतना ही १६ वर्ष वाली कन्या के शरीर में होता है। अतः वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समान वीर्य अर्थात् तुल्य बल वाले जानें। १६ वर्ष की अवस्था से न्यून स्त्री में, २५ वर्ष से कम उमर वाला पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है। और जो उत्पन्न भी हो तो वह अधिक न जीवे। अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर तथा इन्द्रिय हों। इसलिये अत्यन्त वाला अर्थात् १६ वर्ष से कम अवस्था वाली लड़की में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

कहाँ तो यह ऋषियों का आदर्श जीवन और कहाँ यह बच्चों का खेल!

अतः यदि गुजराती अपना कल्याण चाहते हैं तो इस बाल विवाह की प्रथा को तोड़ना पड़ेगा।

जातीय बन्धनता।

यदि आप जाति या देश की उन्नति करना चाहते हो तो आपको जाति बन्धनता तोड़नी पड़ेगी। किन्तु मुझे गुजरात में जाने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, और वहाँ की परिस्थिति का अवलोकन करने का जो मौका मिला उसको देखकर मुझे अत्यन्त शोक से लिखना पड़ता है कि गुजरात में जितनी 'जातीय बन्धनता' है उतनी मेरी समझ में अन्य किसी स्थान पर नहीं है। प्राचीन तो कोई वर्णों का भेद नहीं था। जैसेः— महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि :—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतः॥
महाभारत शान्ति पर्व

अर्थात् वर्णों में कोई विशेष भेद नहीं, सब जगत् ब्रह्म का रचा हुआ है। ब्रह्माण्ड रचा जाने के पश्चात् कर्मों के भेद से भिन्न २ वर्णों को प्राप्त हुए। साथ ही कृष्ण महात्मा ने भी गीता में लिखा है कि:—"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः"। किन्तु आजकल तो ब्राह्मण में औदिच्य, सारस्वत, कान्यकुब्ज, नागर, श्रीमाली, पुष्पकरणे, गौड़ादि। गौड़ में भी सम्प्रदाय आदि गौड़, पंच गौड़, श्री गौड़ादि, । क्षत्रियों में-सूर्यवंशी चन्द्रवंशी। वैश्य में-अग्रवाल, जैनी। जैनियों में भी सम्प्रदाय बीसा, दसा, पाँचा, ढाईयादि। यह सब आपस में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं करते। गौड़ ब्राह्मण एक दूसरे सारस्वत को ऐसी घृणित दृष्टि से अवलोकन करते हैं जैसे यह कोई नीच कौम में नीच वृत्ति का आदमी हो। किन्तु इन्हें तब घृणा नहीं आती जब कि यह सब जातियाँ शादी के समय गलियाँ तथा बाज़ारों में भोजन करती हैं। तब तो यह सब शुद्ध हैं किन्तु कोई दूसरा ब्राह्मण या अन्य जाति का आदमी शुद्ध कपड़े वाला आजाय तो पशु की तरह चूं चूं करने लगते हैं। क्या यह मनुष्यता से बहार की बात नहीं? किसी ने ठीक कहा है कि:

"ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा श्वाम् वत् घुरघुरायते"

यह वाक्य वहाँ पर चरितार्थ हो जाता है। इस प्रकार जहाँ जातीय बन्धनता होती है वहाँ सदा ही कलह ही होता रहता है। अतः मेरी सम्पूर्ण जनता से, विशेष कर गुजरात निवासी

जनता से सविनय प्रार्थना है कि वे इस जातीय बन्धनता, बालविवाहादि प्रथाओं को न अपनावें। यदि इन प्रथाओं को अपनावेंगे तो वह समझें कि हिन्दू जाति थोड़े अवसर के लिए ही भारत में अतिथि के तौर पर ही है। इस प्रकार की अवस्था होने पर भी किसी का भी उधर दृग पात नहीं होता। अतः इस देश को अपने देश का अंग समझते हुए उधर भी प्रचारक जाकर प्रचार करें जिससे उनका कल्याण हो, साथ ही सारे भारत का भी कल्याण हो। क्योंकि यह नियम है अंगी तभी जीवित जागृत हो सकता है जब कि अंग भी जीवित हों। अतः भारत अंगी है और सब प्रान्त अंग हैं जबतक प्रान्त उन्नत नहीं होते तबतक भारत उन्नत होगया यह हम नहीं कह सकते ? जैसे अंग हाथादि से रहित को हम अंगी शरीर नहीं कह सकते उसी प्रकार यह भी जानो।

अन्त में परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि उनकी बुद्धियों को निर्मल बनावे। जिससे इन भ्रम जाल से छूटकर वे अपने जीवन को सफल करते हुए इस अज्ञान रूपी भवसागर से पार लेवें।

वैज्ञानिक संसार

(१)

लोहे के बीच में से देखना

बर्लिन के फिज़िकल ट्यकनिकल शिक्षणालय के डाक्टर कार्ल म्यूलर ने फौलाद की चादरों को इतनी पतली करने का तरीक़ा निकाला है जितनी आगे कभी नहीं हुईं। यह तिज़ारती तथा वैज्ञानिक दोनों ही कार्य्यों के लिये बड़ा उपयोगी प्रतीत होता है।

उन्होंने लोहे की इतनी पतली चादर बनाने में सफलता पाई है कि जिससे साफ से साफ शीशे की तरह इधर उधर दिखाई दे। इनके बीच में से परमाणु बिना किसी रोक टोक के इधर से उधर जा सकेंगे। रेडियम धातु से जो घन-विद्युत की रश्मियाँ निकलती हैं वह कागज़ को पार नहीं कर सकतीं, परन्तु फौलाद की इन चादरों में से यह बड़ी सुगमता से निकल जाती हैं, और इससे इनकी शक्ति भी कुछ कम नहीं होती। इनके घनत्व द्वारा हिसाब लगाया है कि एक चादर की मोटाई केवल ३० परमाणु भर है।

(२)

परमाणु-एन्जिन

एक डच सज्जन ने परमाणु के वेग से एन्जिन चलाने की कला में सफलता प्राप्त की है। उसने अनुभव किया है कि धातुमय बालुका जिसमें कि टिटैनियम हो-यदि १७०० centigrad ताप तक गरम की जाय तो परमाणु छिन्न भिन्न हो जाते हैं और बड़ा भारी हिस्सा ताप का निकलता है।

रेत को एक छोटे बिजली के चूल्हे में तपाते

हैं, और जो उत्ताप कणों के छिन्न भिन्न होने से उत्पन्न होता है वह पम्प द्वारा नलकियों में पहुंचाया जाता है। यह नलकियां बायलर के पानी को गरम करती हैं और एन्जिन व 'पन-चक्की' को चलाने की शक्ति प्रदान करती हैं। यह पेटेन्ट पेटेन्ट आफ़िस में प्रायः बिना ध्यान के पास हो गई, परन्तु वास्तव में यह अणु से निकली हुई शक्ति की प्रथम सोपान है। संसार इस महाशक्ति के आगमन की प्रतीक्षा में टकटकी लगाये हुवे है। देखो यह क्या २ अद्भुत तमाशा दिखाती है।

(२)

जीवों के शरीर और बेतार द्वारा समाचार पहुंचाने का यन्त्र

कुछ जीव-जैसे कि टिड्डे-शब्द करते हैं, अन्य जुगनू की भान्ति प्रकाश की 'चिंगारियां' छोड़ते हैं, कई प्रकार की मक्खियां एक सुगन्ध छोड़ती हैं और कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो कि बिजली उत्पन्न कर सक्ती हैं। क्या कोई ऐसे भी जीव हैं, जो कि निज शरीरिक यन्त्रों द्वारा बेतार के समाचार भेज और ग्रहण कर सकें?

क्या कभी तुमने पक्षियों को उड़ते हुये देखा है? क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि कबूतर मीलों परे छोड़े जाने पर भी अपनी छतरी पर सीधे जा पहुँचते हैं, चिमगादड़ की आंखें बहुत ही प्रारम्भिक बनावट की सूचना देती हैं जिनसे कि कुछ अधिक देखने की बहुत संभावना नहीं, परन्तु रात्रि के समय वह कितनी सरलता से कीड़े मकौड़ों को पकड़ता है। लैंनिंग नाम की एक छोटी सी चिड़िया के झुण्ड नार्वे के आकाश भेदी पर्वतों को छोड़, एक बड़ी लम्बी समुद्र यात्रा पर अग्रसर होते हैं और सब प्रकार की विघ्न बाधाओं को उलांघते हुये तीर की भान्ति सीधे उड़कर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाते हैं।

कबूतर एक दम अपने घर की ओर उड़ना आरम्भ नहीं कर देते। वह वायु में ऊपर को उठते हैं, और वायु के झोंके की ओर अपनी चोंच को घुमाकर कुछ सोचते हैं और फिर उड़ना आरम्भ कर देते हैं। चिमगादड़ अपनी श्रवणेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय की तीव्रता के आधार पर अपना शिकार नहीं खेलता। इसका और ही कोई कारण हमें ढूंढ़ना चाहिये। क्या लैंनिग भी सैंकड़ों अथवा सहस्रों मील की दूरी से इतने शोरगुल और भिन्न २ प्रकार की सुगन्ध के बीच से अपने ध्येय स्थान से सम्बन्ध रखने वाले शब्द और गन्ध को पहिचान सकते हैं? फिर और कौन उपाय से वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाते हैं?

जीव-विद्या-विशारदों ने पता लगाया है कि कितने ही कीड़े ऐसे हैं जिनके माथे में उभरे बाल antennae होते हैं जिनका कोई प्रयोजन अभी तक ज्ञात नहीं। दूसरी ओर बहुत से प्राणियों के कान के भीतर ऐसे अंग हैं, जिन का काम अभी तक पता नहीं चला। इसमें एक दूसरे पर खड़ी हुई, तीन अर्ध-गोलाकार नन्हीं नालियां हैं जिनमें एक ऐसा तरल पदार्थ चलता रहता है जिस पर बिजली का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इन बातों से अनुमान होता है कि इन नालियों में शब्द को इसी प्रकार ग्रहण करने का सामर्थ्य है जिस प्रकार बेतार की खबर को

ग्रहण करने का यन्त्र होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से जीवों में विद्युत की लहरें उत्पन्न करने की शक्ति है, और दूसरे जीवों में इन लहरों को पकड़ लेने की। यही लहर कबूतर, चिमगादड़, तथा फलेमिंग को अपने ध्येय स्थान का मार्ग बतलाती हैं।

(४)

मनुष्य का चेहरा और रोग निदान

सादे से सादे स्त्री पुरुष इतने सादे नहीं होते जितना कि वह दीख पड़ते हैं। उनका शरीर इतने भिन्न २ तत्वों से बना है कि जब कभी इस में कोई खराबी आ जाती है तो उसे दूर करना बड़ा ही कठिन हो जाता है।

हम शारीरिक बनावट या गठन के विषय में सुनते आये हैं परन्तु इसका वास्तविक अभिप्राय क्या है यह बहुत कम जानते हैं। आजकल न्यूयार्क के डा० जार्ज ड्रेपर इस बात की खोज कर रहे हैं कि किसी मनुष्य की शारीरिक गठन और उसके स्वभाव की विशेषताओं में कोई सम्बन्ध है।

केवल शरीर के भिन्न २ अवयवों को ठीक ठीक नाप लेने से डाक्टर महोदय यह बतला सक्ते हैं—यदि वह व्यक्ति शुद्ध रक्त का है-कि वह किस जाति से सम्बन्ध रखता है। केवल इतना ही नहीं। जातीय शारीरिक गठन की समानता के अतिरिक्त, शारीरिक तथा मानसिक गुणों के सूचक स्पष्ट जातीय विशेषतायें हैं जो भिन्न २ जातियों की रोग विशेष सम्बन्धी झुकावट के सूचक हैं।

इस अन्तिम विचार से हमें वैयक्तिक शारीरिक बनावट का बहुत कुछ रहस्य पता लग सका है। जिस प्रकार कि आजकल हम जातियों को गौरांग, पीत तथा श्याम वर्णों में विभक्त करते हैं उसी प्रकार सम्भवतया हम कण्ठमाला, गुरदे के रोग सम्बन्ध वाली, या तपेदिक वाली जातियों में बाँट सक्ते हैं।

कोई ८०० रोगियों के इस प्रकार नाप और अध्ययन से डाक्टर ड्रेपर ने कुछ एक बड़े विचित्र परिणाम पर पबुँचे हैं। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि छोटा चेहरा जिसमें आँखोंके बीचका अन्तर अधिक हो गायन तथा अभिनय सम्बन्धी योग्यता का सूचक है।

रोगों के सम्बन्ध में डाक्टर साहब का कथन है कि काले बालों वाले को यदमा अधिक होता है। आँख और भौंहों के पारस्परिक स्थान का बड़ा महत्व है। जोड़ों के दर्द ऐसे व्यक्ति को जिसकी आँखें भौंहें कोटि सम्बन्ध में अधिक ऊपर को उठी होती हैं जोड़ों के दर्द होने की अधिक सम्भावना है। इन दोनों के स्थान में एक और भेद है जो कि कण्ठमाला का सूचक है। गोल चेहरा, पास २ आँखें, और मुटापा गुरदे सम्बन्धी बीमारियों के लिये अधिक उपयुक्त है, लम्बा, नोकदार चेहरा और दुबला शरीर कण्ठमाला की सम्भावना का सूचक है।

(५)

आकाश से धन वृष्टि

अमरीका के सारजानो प्रान्त के कूनबूट स्थान पर आजकल बड़े ज़ोर शोर से खुदाई हो रही है। लोगों का अनुमान है कि किसी समय में आकाश से एक सितारा टूटकर गिरा

था और वह कुनबूट के नीचे दबा हुआ है। यह टूटे हुए सितारों में सब से बड़ा समझा जाता है। खुदाई से बहुत सा लोहा प्राप्त हुआ है।

इस सितारे की उप-धातु का रसायनिक विश्लेषण करने पर इस में से प्रति टन अथवा २८ मन पीछे कई एक नन्हे २ हीरे और आधा तोला प्राप्त हुआ है। प्लैटिनम की यह मात्रा उस से तीन गुना अधिक है जोकि हमें प्लैटिनम की उप-धातु में से आज तक कभी प्राप्त हुई है।

यह अनुमान किया गया है कि इस दबे हुये सितारे का बोझ २८, ०००, ००00 मन है। इस हिसाब से इस में लगभग ७५०००,000,००० रुपये के मोल की प्लैटिनम है। यदि प्लैटिनम का भाव गिर भी जाय और वह इतनी सस्ती हो जाय कि सोने के भाव बिकने लगे तब भी इस सितारे से खुदाई करने वाली कम्पनी को १२00000००० रुपये की प्राप्ति की सम्भावना है।

(६)

५००० वर्ष पूर्व बिना जंग लगने वाला फौलाद और लचकदार काँच

प्रोफैसर जेम्ज़ गार्डनर "नेचर" में लिखते हैं ...१८८३ ईस्वी सम्वत् में "प्राचीन संसार में काँच" शीर्षक एक पुस्तक छपी थी, उस में गिज़ा के पहिले और दूसरे मीनार के खोलने का वृतान्त दिया है।

यह माना जाता है कि यह मीनार ईसा से ३६६६ और ३८४५ वर्ष पहिले के बीच किसी समय में बने थे में यह परिणाम निकालना अनुचित न होगा कि उन मीनारों के भीतर जो चीज़ें मिलीं वह सब आज से ५००० वर्ष पूर्व की बनी हैं।

बिन अब्दुर रहमान के कथनानुसार सं८२९ में हारूं रशीद के पुत्र अलमामून ने पहिले पहिल च्योपकी कबर को खोला था और उसे बादशाह की सुरक्षित मृत देह जिसे Mummy कहते हैं मिली थी, और वह पश्चमी मीनार में भी घुसा था और वहां—तीस खज़ाने धन और बर्तनों से भरे हुये, बहुमूल्य जवाहरात में खुदे हुये हस्ताक्षर, लोहे के यन्त्र, मिट्टी के बर्तन और लोहे के ऐसे शस्त्र जिन पर जंग कभी न लगता था और काँच जो कि बिना टूटे इच्छानुसार झुकाया जा सका था मिले थे।

इस पर गार्डनर साहिब की टिप्पणी है कि यह पूर्वज इस प्रकार हमारे आधुनिक विचारों का अनुमान कर सके थे कि विचार कर हमें बड़ी झुंझलाहट सी आती है।

क्यों प्रोफेसर महोदय झुंझलाहट क्यों? इसीलिये न कि आप विकासवाद के भक्त होते हुए प्राचीन मनुष्यों को अपने से अधिक बुद्धिमान क्यों मान लें!

(७)

हमें साँस कैसे लेना चाहिये ?

दस मनुष्यों में से एक को भी ठीक २ ज्ञात नहीं कि श्वास किस तरह लेने चाहिये।

पूर्णतया सांस लेने की विधि यह है कि फेफड़ों को गहरा कर और लम्बा सास लेकर हवा से खूब भर लिया जाय जिस से कि फेफड़ों के निचले भाग में जो हानि कारक द्रव्य एकत्र हो गये हैं उनका नाश हो जाय। जल्दी२

साँस लेने अर्थात् थोड़ी सी हवा फेफड़ों में भरने से यह कार्य नहीं हो सक्ता।

एक डाक्टर लिखता है:—

मैं ने सिर दर्द, सिर में चक्कर आना और दिल घबराना, नीन्द न आना, और इस से भी अधिक कठिन रोगों को केवल श्वास-व्यायाम से ठीककर लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मैं अपने फेफड़ों के निचले भाग से दिन भर की ज्वर उत्पादक वायु को जो फेफड़ों में समा गयी है बल पूर्वक लम्बे और गहरे साँस शनैः २ लेकर बाहर निकाल देता हूँ। इस विधि की रातको सोने से पहिले परीक्षा करनी चाहिये उस स्थान पर खड़े होकर साँस लो जहाँ कि तुम्हें स्वच्छ, पवित्र वायु मिल सके और फिर सोने वाले कमरे में सर्वथा अन्धेरा करदो। हम रात्रि को बिजुली की चकाचौन्ध करने वाली रोशनी में बहुत अधिक रहते हैं।

यह प्राणायाम की महिमा नहीं तो और क्या है? परन्तु हम भारतीय ही ऐसे नीच हैं कि आधुनिक विज्ञान की गति से विह्वल होकर अपने पूर्वजों को अशिक्षित और अर्ध शिक्षित समझने में कोई आपत्ति नहीं मानते।

हमारी मंजूषा

भूल सुधार

हमे शोक है कि मई मास की ज्योति में हमारी मंजूषा (पुस्तक समालोचना) में कुछ एक अशुद्धियां रह गई हैं जिस के लिये हम पुस्तक भेजने वाले महोदयों से क्षमा चाहते हैं। कृपया पाठक इस प्रकार ठीक करलें:—

(१) पृष्ट ३३ कालम १ पंक्ति २६ मूल्य के आगे-सादी ३) रेशमी जिल्द ३॥)

(२) पृष्ट ३५ कालम २ पंक्ति ५ 'गपोड़ों' के स्थान में 'निजमत प्रचार'। (सम्पादिका)

भारत के प्राचीन राजवशं—(तृतीय भाग)—लेखक पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, एम० आर० ए० स०, प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय बम्बई, मूल्य, साधारण संस्करण ३) तथा राज संस्करण ४), पृष्ठ ४८२।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई एक ऐसी संस्था है जिसने स्वतन्त्र रूप से हिन्दी भाषा में उच्च कोटि के ग्रन्थों का नियमपूर्वक और क्रमबद्ध प्रकाशन आरम्भ किया था। इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थमाला का अनुकरण करते हुये आजकल तो कितनी ही माला प्रकाशित हो रही हैं जो कि विचार पूर्ण, उच्च कोटि के स्थायी साहित्य से हिन्दी भाषा के भण्डार की पूर्त्ति कर रही हैं, परन्तु इस ओर ध्यान आकर्षित करने का श्रेय निसन्देह उपरोक्त कार्यालय को ही मिलना चाहिये।

भारत के प्राचीन राजवंश आर्यभाषा में इतिहास विषयक एक उच्च कोटि की पुस्तक है जिसके लेखक ने अपने कार्य को सम्पादन करने में योग्यता, अध्ययन, स्वतन्त्र विचार तथा तुलनात्मक निर्णय का असाधारण परिचय दिया है। हम पर विदेशी लेखकों द्वारा यह

आक्षेप किया जाता है कि भारतीय विद्वान् निर्दल अध्यवसाय तथा अनुशीलन द्वारा किसी सिद्धान्त पर पहुंचने में अशक्य हैं, उनकी बुद्धि परिमार्जित नहीं, उसमें इतनी विवेकशक्ति नहीं कि वह अपने पूर्व कल्पित विचारों की उपेक्षा करके भी किसी निर्भ्रान्त सत्य पर पहुंच सकें। परन्तु हमें यह कहते हुये हर्ष होता है कि उपरोक्त पुस्तक इस आक्षेप की निर्मूलता का अकाट्य प्रमाण है। श्रीयुत रेड जी ने इस ग्रन्थ की रचना में जिस स्वतन्त्र-विचार-क्षमता का परिचय दिया है वह किसी भी इतिहास लेखक के लिये गौरव की बात है।

इस पुस्तक के पहिले दो भागों में लेखक ने महाभारत काल से लेकर भारत पर राज करने वाले अनेक वंशों का–शिशुनाग, ग्रीक, मौर्य, कण्व, आन्ध्र, शक, कुशान, गुप्त, हूण, लिच्छुती, ठाकुरी, पाल, सैने, चौहान इत्यादि का क्रमबद्ध इतिहास दिया है। इस तीसरे भाग में राष्ट्रकूर अथवा राठौर वंश का उस की उत्पत्ति से लेकर आज तक का सम्पूर्ण इतिहास है। इस ग्रन्थ के लिखने में लेखक ने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों, शिला लेखों, ताम्र पत्रों, सिक्कों, फारसी तवारीखों इत्यादि का पूरा २ अध्ययन और विचार किया है। इस प्रकार के अमूल्य इतिहास ग्रन्थ जो कि भारतीय पंडितों ने लिखे हैं अब तक आंग्ल भाषा में ही प्रकाशित होते रहे हैं। श्रीयुत रेड जी ने मातृभाषा हिन्दी में इस ग्रन्थ की रचना कर देश भाषा की अपूर्व सेवा की है। प्रत्येक इतिहास सेवी भारत प्रेमी के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ का होना आवश्यक है।

बौद्ध कालीन भारत—लेखक श्री पंडित जनार्दन भट्ट एम० ए० प्रकाशक श्रीरामचन्द्र वर्मा साहित्य-रत्न माला कार्यालय काशी, पृष्ठ संख्या लगभग ४०० । मूल्य सजिल्द पुस्तक का ३), साधारण संस्करण २)

यह पुस्तक भी उपरोक्त पुस्तक की भान्ति हमारे मातृभाषा कोश में एक अनुपम वृद्धि है। जब हम अपनी भाषा में इस प्रकार के विद्वत्ता पूर्ण ग्रन्थ देखते हैं तो हमरा मन इन के लेखक तथा प्रकाशक के लिये कृतज्ञता के भावों से भर जाता है। इन ग्रन्थों के लेखन और प्रकाशन में जितना समय, श्रम और व्यय लगता है उस के बहुत थोड़े भाग से साधारण-जन-प्रिय पुस्तकों को प्रकाशित कर बहुत सा धन कमाया जा सकता है। परन्तु साहित्य की वास्तविक सेवा इन्हीं ग्रन्थों द्वारा होती है। साहित्य के हृदय में शुद्ध रुधिर संचार इन्हीं से होता है। यह हमारी भाषा की स्थायी, मूल्यवान विभूति है जो कि हमारा मस्तिष्क ऊंचा करती है।

'बौद्धकालीन भारत' में बुद्ध जन्म से लेकर गुप्त साम्राज्यके उदय तक भारत का राजनैतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक इतिहास है। इसके सुयोग्य लेखक ने इस इतिहास की सामग्री जैसे कि पाली, प्राकृत और संस्कृत ग्रंथ, जातक, विदेशी इतिहासकारों और यात्रियों के ग्रंथों में भारत सम्बन्धी उल्लेख, शिलालेख, सिक्के इत्यादि का सराहनीय वैज्ञानिक उपयोग किया है। इस प्रकार के ग्रंथ यद्यपि समयान्तर में किसी भी जाति के दार्शनिक विचारों और क्रियात्मक जीवन को ढालने और परिपक्व बनाने के बड़े भारी साधन होते हैं, परन्तु अपने विषय की गम्भीरता, के कारण अधिक

सर्व प्रिय नहीं होसक्ते। परन्तु हमें यह कहते हुये हर्ष होता है कि यह ग्रन्थ इतना विचार पूर्ण और सारगर्भित होने पर भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। पारखी पाठकों के लिये उपन्यास से बढ़कर आनन्द प्रद है। इस के पढ़ने से जी नहीं ऊबता। इस ग्रन्थ की एक और बड़ी विशेषता है कि इस में वैयक्तिक जीवन पर अधिक बल न देकर सामाजिक जीवन का इतिहास ही अधिक विस्तार से हमारे सामने पेश किया है। सम्राट आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु प्रजा का सामाजिक जीवन सदा निरंतर प्रवाह से बहता रहता है। वही वास्तविक इतिहास है। भारतवर्ष के इतिहास में बौद्ध काल हमारे जातीय विकास और समृद्धि का सूचक, गौरवपूर्ण और देदीप्यमान युग है। इस समय में, धर्म, आचार, साहित्य, कला, व्यापार, राजनैतिक संगठन सभी दिशाओं में हमने आश्चर्य जनक उन्नति की थी। इन सब का वर्णन इस पुस्तक में है। क्या कारण है कि कभी इतने उन्नत रहते हुये हमारा आज इतना गहरा पतन हो गया है ? इस प्रश्न पर ग्रन्थ के पाठ से बड़ा प्रकाश पड़ता है।

पुस्तक सर्वथा सुपाठ्य, संग्रहणीय तथा आदरणीय है।

बीसलदेव रासो—सम्पादक-सत्य जीवन वर्मा एम० ए० प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी। पृष्ठ संख्या १२०। मूल्य ॥।) सजिल्द।

इस पुस्तक में कवि नरपति नाल्हा द्वारा रचित बीसलदेव राजा अजमेर की जीविनी है। नरपति एक भाट था जो कि इधर उधर तुकबन्दियां कर के गाता फिरता था, उन्हीं का यह संग्रह है। इस ग्रंथ की विशेषता इसी में है कि यह हिन्दी साहित्य का एक प्राचीन ग्रंथ है और संपादक के शब्दों में इस "ग्रंथ का यदि किसी प्रकार अमूल्य उपयोग हो सक्ता है तो भाषा विज्ञान की दृष्टि से।" इस पुस्तक को विद्यार्थियों के लिये लाभदायक बनाने के। लिये सम्पादक ने कठिन शब्दों पर टिप्पणी दे दी है। आरम्भ में ४६ पृष्ठ की भूमिका में ग्रन्थ की कथा, भाषा, विषय, ऐतिहासिक आधार, व्याकरण इत्यादि पर भी विचार किया है। हिन्दी भाषा के विद्यार्थियों के काम की चीज़ है।

आकाशतत्व बोध—लेखक श्री० शंकर लाल एम० ए० एल० एल बी० प्रकाशक पं० शिवदयाल मन्त्री, आर्य-संघ, मेरठ सदर, पृष्ट ११२ मूल्य ॥)

इस छोटी सी पुस्तक में गणित ज्योतिष सम्बन्धी मोटी २ बातों को सरल भाषा रीति द्वारा समझाने का यत्न किया है। ग्रहण, सितारे सय्यारे, सूर्य, चन्द्र इनके लाभ, सम्वत पञ्चाङ्ग, भिन्न २ तारागणों की उत्पत्ति और उनका वर्ण इत्यादि विषयों पर-प्रश्न उत्तर पद्धति द्वारा जो आजकल का ज्योषित ज्ञान है उस के ही अनुसार विवेचन किया गया है। पुस्तक सर्वसाधारण के लिये लिखी गई है। परन्तु हमें सन्देह है कि वह इसे भली प्रकार समझ सकेंगे। ज्योतिष शास्त्र का विषय गणित से सम्बन्ध रखता है, या यों कहिये कि गणित की उत्पत्ति ही ज्योतिष से हुई और गणित एक ऐसा विषय है जो क्रमबद्ध ज्ञान के बिना समझना कठिन है।

यह हर्ष का विषय है कि अब हमारी भाषा में केवल उपन्यास और किस्से कहानियां

ही नहीं लिखे जाते, वरन् अन्य उपयोगी ज्ञान वर्धक विषयों पर भी ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं।

अधिकार—(मासिक पत्रिका) सम्पादक श्रीयुत वेदव्रत विशारद, प्रकाशक मैनेजर—" अधिकार " दिल्ली, पृष्ठ संख्या ४०। वार्षिक मूल्य ३) रु०

यह भारतवर्षीय अछूतोद्धार कमेटी का मुख पत्र है जो कि श्रीयुत लाला लाजपतरायजी की संरक्षिता में गत मई मास से दिल्ली से प्रकाशित होने लगा है। इस का उद्देश इस के नाम से ही प्रकट है। आज यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी जाति के सन्मुख अछूतों की समस्या कितनी भयानक और महत्वपूर्ण है। परमात्मा के इन अमृत पुत्रों को पद दलित और तिरस्कृत करके हमरी कितनी क्षति हुई है यह किसी से छुपा नहीं। कहते हैं कि अत्याचारी जिस पर अन्याय करता है अधिकांश तो उस के केवल शरीर का ही नाश कर सकता है परन्तु इस हत्या द्वारा वह अपने शरीर और आत्मा दोनों का ही नाश करता है। इस बिचार की सत्यता आज हमें हिन्दू जाति की अवस्था देखने से भली प्रकार पता लग जाती है। अछूतों, विधवाओं और अपने अन्य बन्धुजनों पर अन्याय कर हम आज स्वयं रसातल में पहुंच गये हैं। अतः यदि अब हम ऊपर उठना चाहते हैं तो अपने इन अन्याय-दलित भाई बहिनों के आशीर्वाद और सहायता ही से जिनको हम ने गिराया वही हमें उठा सकते हैं। हमें अपने व्यक्तिगत और जातीय अधिकार तभी प्राप्त हो सक्ते हैं। यदि हम उनके अधिकार उनको दें और सहर्ष दें।

इसी अन्याय के कलंक को दूर करने के लिये "अधिकार" का जन्म हुआ है। हमारे पास इस का दूसरा अंक है। इस के सभी लेख विचार-पूर्ण और जातीयहित की मंगल कामना से प्रेरित होकर लिखे गये हैं। श्रीयुत रामप्रसाद जी द्वारा लिखित 'वर्तमान जागृति और हमारा उद्देश, श्रीयुत बालकृष्णजी का हिन्दू जाति और अछूतोद्धार शीर्षक लेख बड़े महत्व के हैं। सम्पादकीय टिप्पणियां ओजस्वी और विचार पूर्ण हैं। "हमारा कार्यक्षेत्र" शीर्षक में भारत वर्षीय अछूतोद्धार कमेटी द्वारा भिन्न २ स्थानों पर किये हुये कार्यों की मासिक रिपोर्ट रहती है। पत्र का संचालन बड़े सुचारू रूप से हुआ है। हमें आशा है कि "अधिकार" दिनों दिन और शीघ्रातिशीघ्र अपने उद्देश्य को प्राप्त होगा, जिस से कि इस आनन्दोत्सव सम्बन्धी यज्ञ में निज आहुति दे यह अपने को कृतकृत्य बना सके।

जैन महिलादर्श—मासिक पत्रिका सम्पादिका श्रीमती पंडिता चन्दाबाई आरा, तथा प्रकाशक श्रीमूलचन्द किसनदास कापडिया चन्दा बाडी सुरत, पृष्ठ संख्या ५६, वार्षिक मूल २=)।

यह मासिक पत्रिका गत चार वर्ष से हमारी बहिन श्रीमती चन्दाबाई के सम्पादकत्व में जैन महिलाओं के हितार्थ निकल रही है। इस अवसर में इसने जैन बहिनों को उनका कर्तव्य पथ दिखलाने में बड़ी चुपचाप परन्तु शान्त और दृढ़ सेवा की है। जैन धर्म के तत्वों को बड़ी सरल भाषा और ढंग से उनको समझाने का यत्न किया है। इस में अनेक ऐसे उपदेश रहते हैं जिन से जैन बहिनों के अतिरिक्त हमारी

अन्य बहिने भी लाभ उठा सकती हैं। "जैन महिलादर्श" के पाँचवें वर्षका पहला अंक हमारे सामने है। इसमें छोटे बड़े कुल मिलाकर २५लेख और ५चित्र है, सत्य महिमा, वियोगनी, प्रसूतिगृह, इत्यादि लेख शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक हुये हैं। हम हृदय से अपनी सहयोगिनी का पंचम वर्ष में स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि इसी प्रकार यह जैन बहिनों की सेवा करती रहेगी।

रामजीनरायण

गोराचाम-कालेकाम—लेखक श्रीबाल मुकुन्द वाजपेयी, प्रकाशक प्रताप पुस्तकालय कानपुर। मूल्य १)रु० पृष्ठसं० २२६। यह पुस्तक क्रमशः आठ विभागों में विभक्त है। लेखक के शब्दों में "पहले अध्याय में गुलाम व्यापार का अत्यन्त ही संक्षिप्त वर्णन है। इस अध्याय को अफ्रीका के प्रति यूरोप के व्यवहार की जन्म कुण्डली, यूरोप की सभ्य और संस्कृत जातियों की विवेक बुद्धि की बानगी, गोरों के समागम का पहला फूल और उनके सौजन्य का सत समझना चाहिये। दूसरे अध्यायमें जर्मन दक्षिण पश्चिम अफ्रीका में जर्मनों के कृत्यों का उल्लेख है। चौथे और सातवें अध्यायों में मोरक्को और फ्रेंच कांगो के वृत्तान्त हैं। पाँचवें अध्याय में त्रिपोली सम्बन्धी इटली की करतूत की चर्चा है। छटे अध्याय में कांगो फ्रोस्टेट में यूरोप के एक छोटे से देश बेलजियम के विकट विक्रम का वर्णन है। और अन्तिम आठवें में अंगोला विषयक पुर्तगाल के पराक्रम का परिचय है।" वास्तव में ग्रन्थकर्त्ता ने परिचय—लिखित बातों को सप्रमाण सिद्ध किया है। यह पुस्तक प्रत्येक को पढ़नी चाहिये, हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि एकबार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

गृहलक्ष्मी—सचित्र मासिक पत्रिका। संपादक पंडित सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० तथा श्रीमती गोपाल देवी। सुदर्शन प्रेस प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित। आकार प्रकार ज्योति का सा। वार्षिक मूल्य ३) इस अंक का ॥=) कागज़ बढ़िया और छपाई सफाई अच्छी।

गृहलक्ष्मी का 'सती दर्शन' हमारे सामने है। इस अंकसे इस ने अपने सत्रहवें वर्ष में पदार्पण किया है। लगभग १६ पद्य और २० गद्य लेख हैं। प्रायः सारी पठनीय और संक्षिप्त हैं। पं० रामचरित उपाध्याय की 'सती' शीर्षक कविता हमें गंधहीन पुष्प की तरह मालूम हुई। उपाध्याय जी शब्दों को सजाना खूब जानते हैं परन्तु यहां अंत में कुछ उखड़ से गये हैं। एक नमूना देखिए 'सतीपन-साधना क्या है? चराचर पर विजय करना। यहां 'पर' के बदले 'को' चाहिये। और यदि कवि जी को 'पर' से ही प्रेम था तो उन्हें 'करना' न लिखकर पाना लिखना चाहिये था। क्योंकि हिन्दी में अबतक प्रायः ऐसा ही लिखा जाता है, यहां 'पाना' लिखने पर तुक मिलाने में कुछ परिश्रम करना पड़ता परन्तु उपाध्याय जी इस काम में खूब बहादुर हैं। शेष पद्य और गद्य लेख भी स्त्रियों के काम के हैं। चित्रों से पत्रिका की शोभा खूब बढ़ गई है। हम पाठिकाओं से अनुरोध करते हैं कि वे कम से कम इस अंक को तो अवश्य पढ़ें।

श्रृंगार—यह सचित्र मासिक पत्र गत जनवरी से 'भारत शुभचिंतक प्रेस, वैद्यनाथ धाम, (विहार) से निकलने लगा है। सम्पादक हैं पंडित देवकीनन्दन शर्म्मा ब्रह्मभट्ट अनंग।

आकार ज्योति सा और पृष्ठ ५३६। चौथा अंक हमारे सामने है। प्रायः ४० गद्य और पद्य लेख हैं। पद्यों में अधिकांश भाव और भाषा दोनों दृष्टि से दूषित हैं। सौन्दर्य और सदाचार शीर्षक लेख हमें बहुत पसन्द आया। हम विहार वालों से अनुरोध करते हैं कि वे इस के ग्राहक बनकर प्रकाशक का उत्साह बढ़ावें क्योंकि विहार में मासिक पत्रों का बहुत टोटा है। वार्षिक मूल्य ३) और एक अंक का ।=) है।

विषोपचार पद्धति—लेखक पं महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर'। प्रकाशक, क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुखसंचारक प्रेस मथुरा। पृष्ठ संख्या ६० मूल्य ।=)

इस पुस्तक में सर्प-विष चिकित्सा, विच्छू के विष की चिकित्सा एवं मधुमक्षिका, व्याघ्र आदि के विषों की चिकित्सा सरल भाषा में लिखी गई है। पुस्तक से सर्व साधारण का बड़ा उपकार हुआ है और झूंठे, लोगों को बहकाने वाले नीम हकीमों को भी विषोपचार का नुस्खा हाथ लग गया है। हम लेखक के तन्त्र मन्त्र विषयक चिकित्सा से सहमत नहीं तथापि वह आयुर्वेद के सिद्धान्त से हेय नहीं। हम इस पुस्तक का घर घर प्रचार चाहते हैं।

भक्तिप्रकाश—सम्पादक श्री श्रुतिकान्त शर्मा शास्त्री प्रकाशक आर्य्यसमाज सदर शाहपुर (पंजाब) पृष्ठ संख्या १८१। मूल्य ।=)

इस पुस्तक में प्रातः उठने के मन्त्र से लेकर पंच महायज्ञों के मन्त्रों को अर्थ सहित उद्धृत किया गया है। पुस्तक अशुद्धियों से भरी पड़ी है, साथ में एक लम्बा चौड़ा शुद्धिपत्र लगा हुआ है, परन्तु ऐसी अशुद्धियों की भी कमी नहीं जो शुद्धिपत्र से भी बाहर हैं। उदाहरणार्थ "नमो ब्रह्मणे नमस्ते०" मन्त्र में लाइन ही गायब है। अन्त में कुछ भजन भी हैं जो कि वही पुराने ढर्रे के हैं और जो आर्यसमाज में बाबा आदम के ज़माने से ग्रामीण भजनीकों एवं साहित्य ज्ञानशून्य लोगों से गाये जाते हैं। हम नहीं समझते कि आर्यसमाज में "शङ्कर सदृश कवियों के होते भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट पद्यों का शिक्षित समाज द्वारा क्यों प्रचार किया जाता है? हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह ऐसे संग्रहों से सदा बचने का प्रयत्न करें।

"जगदीशचन्द्र शास्त्री"

कुसुमोद्यान

१ बंगाल में स्त्रियों पर अत्याचार

बंगाल में स्त्रियों पर अत्याचार दिन पर दिन बढ़ रहा है। इधर तीन चार वर्षों में तो इसकी मात्रा अत्याधिक हो गई है। कोई सप्ताह खाली नहीं जाता जब कि पूर्वी या उत्तरीय बंगाल में कोई अत्याचार की खबर न हो। 'संजीवनी' नामक बंगला के सप्ताहिक ने हिसाब लगाकर बताया है कि इधर तीन वर्षों में अत्याचार की संख्या ५०० से कम नहीं होगी तो भी बंगाल की जनता ने अथवा सर्कार ने इस दशा

पर कोई व्याकुलता प्रगट नहीं की।

राजनीतिक क्षेत्र में अशान्ति और अराजकता को दबाने के लिये सर्कार ने खुले तौर पर धारा ३, १८१८ अथवा भारतीय दण्ड विधान की उन धाराओं का जो राजनैतिक अपराधों से सम्बन्ध रखती हैं, प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त सर्कार ने समय समय पर दमन करने वाले क़ानूनों और धाराओं को लगाया है। व्यक्तियों तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में अपराध करने वालों के दमन करने के लिये "गुण्डा कानून" 'प्रान्तीय-भूमि-रक्षा विधान' आदि पास किये ाये। लेकिन स्त्रियों पर कायरता पूर्ण और शाचिक अत्याचारों को। जो कि उनके जीवन को नष्ट कर रहे हैं, और असंख्य कुटुम्बों की इज़्ज़त, सुख और शान्ति का भी नाश कर रहे हैं—सर्कार ने कानून द्वारा अथवा कानूनों के प्रयोगों द्वारा दमन करने का कोई विशेष यत्न नहीं किया है। परन्तु सर्कार को कर्तव्य च्युत बतलाने की अपेक्षा यह कहना उचित होगा कि जनता की ओर से ऐसे कानूनों या शक्ति प्रयोगों के लिये कोई ज़बरदस्त और लगातार आन्दोलन ही नहीं हुआ है। लेकिन हालत इतनी बिगड़ी हुई है कि चाहे जनता की ओर से कोई मांग हो या न हो सर्कार को स्वयं स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करनी ही चाहिये। जब सर्कार ने सती प्रथा को रोका था तब समष्टिरूप से जनता की ओर से इसके रोकने की कोई मांग न थी। हाँ जनता के कुछ भाग अवश्य चाहते हैं कि कोई खास प्रबन्ध किया जाय। नारी-रक्षा समिति जिसके कि भारतीय सर्कार के वर्तमान ला-मेम्बर एक प्रमुख सदस्य और पोषक हैं, और जिसके कार्य्य को जनता का एक प्रभावशाली भाग बड़े मान की दृष्टि से पोषण करता रहा है—हमेशः ही विशेष उपायों के लिये प्रार्थना करती रही है और बहुत से समाचार पत्रों ने भी इसी प्रकार की याचना की।

स्त्रियों के लिये-चाहे वह किसी भी जाति, देश, वर्ण या पक्ष की क्यों नहीं—सतीत्व एक अनमोल धन है, और मानव समाज के लिये भी यह गौरव की बात है। जहाँ स्त्रियों के सतीत्व का प्रश्न हो तो केवल पूर्वीय लोगों के दिल ही नहीं भड़क उठते हैं किन्तु बहुत सी पत्थरों से मार डालने की घटनायें-जिनका कि हम समर्थन नहीं करते, केवल स्त्रियों की वास्तविक या कल्पित बेइज़्ज़ती के कारण ही अमरीका में होती हैं। एक महीना हुआ होगा तो दैनिक पत्रों में केनिया के सम्बन्ध में यह तार प्रकाशित हुआ था :—

नैरोबी, ३१ मई

"गवर्नर साहब सर एडवर्ड ग्रिग ने आज व्यवस्थापिका सभा में गोरी स्त्रियों पर हबशियों द्वारा बलात्कार के अत्याचारों के सम्बन्ध में, घोषणा करते हुये कहा कि सर्कार इस प्रकार के अत्याचारों के दण्ड को बहुत सख्त बनाना चाहती है कि जिससे रक्षा का भाव अधिक फैले और इसलिये उन जातियों के उन मुखियाओं और नेताओं को साथ ले रही है जो स्वयं ऐसे घृणित कामों को सहन नहीं कर सकते।"

इसके बाद ही सूचना मिली है कि सर एडवर्ड ग्रिग, जो केनिया के गवर्नर हैं उन्होंने किटेल की एक सभा में घोषणा की है कि स्टेट-सचिव ने उस कानून को बदलने की आज्ञा देदी

है और स्त्रियों तथा बच्चों के ऊपर अत्याचार करने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जा सकता है।

इण्डियन डेली मेल में निम्न लिखित विशेष केबल (सामुद्रिक तार) चीन के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है :—

"चेफू के अंग्रेजी राजपुरुष ने सूचना दी है कि ८ जून को एक अमरीकन महिला मिस मेनली को रिक्षा पर से एक निश्शस्त्र चीनी ने घसीट लिया, शायद उसका गला घोंटना चाहता होगा। लेकिन सड़क पर चलने वालों ने उसे छुड़ा लिया। उसे ज़रा सी चोट लगी थी। आक्रमणकर्ता को पुलिस के हवाले किया। इस राजपुरुष के आवेदन पर अधिकारियों ने यह घोषणा की है कोई चीनी किसी विदेशी को तंग करता हुआ यदि पकड़ा जायगा तो उसे उसी जगह गोली मार दी जायगी।" हाँ इसमें यह बात मान ली गई है कि गोरे विदेशी यदि चीनी स्त्रियों को तंग करते पाये जायंगे तो उन्हें न तो वहीं गोली मार दी जायगी और न कहीं और।

यह सम्भव है कि केनिया में भी कानून बदलने का यही मतलब होगा कि केवल गोरी स्त्रियों को आक्रमण करने वाले अफ्रीकावासी ही दण्डनीय होंगे, काली स्त्रियों पर बलात्कार करने वाले गोरे नहीं दण्डनीय हो सकते। केवल राजनैतिक और अर्थशास्त्र सम्बन्धी आधिपत्य के पोषक ही ऐसे द्विविधात्मक जाति भेदकारी नियम चला सकते हैं। हमारे इन खबरों के उद्धरण करने का मुख्य कारण यह है कि हम अपने विजातीय शासकों को यह अनुभव कराना चाहते हैं कि हम अपनी देवियों को अपने देश में वही रक्षा देने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं जो कि गौरांग लोग अपनी स्त्रियों को देश में और विदेश में देना आवश्यक समझते हैं। लेकिन इस बुराई को दमन करने के लिये मृत्यु दण्ड को छोड़ कर जो भी कड़े से कड़ा दण्ड उचित समझा जाय दिया जाय।

और कानून को सख्त बनाने के साथ २ सर्कार को चाहिये कि मजिस्ट्रेट और पुलिस को हुक्म दे कि ऐसे अभियोगों की उसी समय और पूरी शक्ति से जांच करे, अपराधी को उसी समय क़ैद कर लें और बिना देर किये हुये लड़कियों या स्त्रियों को आवश्यकता पड़ने पर अत्याचारी से छुड़ा लें।

(माडर्न रिव्यू)

२. अन्य देशों में चर्खा

क्युम्बटोर के श्रीयुत बालाजीराव ने Peoples of All Nations नामक पुस्तक में से अन्य पुरानी जातियों में चर्खे का स्थान सम्बन्धी सूचनायें एकत्र कर के उसे छाप कर बांटा है। मैं उसी को थोड़ा संक्षेप करके उद्धृत करता हूं:—

अबिसीनिया:—अबिसीनिया के धनी लोग मैनचेस्टर का सूती कपड़ा और यार्कशायर का ऊनी कपड़ा पसन्द करते हैं। पर वहां का गृहस्थ तो सभी कारखानों से मुकाबला कर सकता है। वह स्वयं अपने खेतों में रुई पैदा करता है—उसे साफ करता है, कातता है और अपने पुराने करघे पर कपड़ा बुन लेता है। वहां के बने हुए नरम, सुन्दर और गर्म कपड़े का ही शम्मा बनता है जो वहां की जातीय पोशाक है।

बेल्जियम:—बूढ़े लोग किसी न किसी अच्छे धन्धे में लगे रहते हैं। घर की सुव्यवस्था करने ही में बेल्जियम की स्त्रियां अपनी बड़ाई मानती हैं। प्रायः प्रत्येक झोपड़े में चर्खा है जिससे गृहस्थ लोग अपने खेतों में उपजाये हुए और घर पर साफ किये हुए पाट को कात कर सूत बना लेते हैं।

बलगेरिया:—टिरनोवो में बाजार के दिन बलगेरिया के लोगों की मितव्ययता और अध्यवसाय को आप देख सकते हैं। शाक खरीदने वाले गाहक के इन्तजार में बैठी हुई स्त्रियां सूत कातती रहती हैं।

जेकोस्लावेकिया:—कपड़ा बनाने की सब विधियों का अर्थात साफ करना, कातना, बुनना और धोना, प्रायः सभी काम गृहस्थों के घरों में ही होते हैं और यह सब घर वाले ही कर लेते हैं।

चीन:—गरीबों के कपड़े के पांच हिस्सों में से चार हिस्से घर में ही तैयार होते हैं। सूत कातना और बुनना आज भी स्त्रियों का काम है क्योंकि कलों ने चीनियों की कपड़े बनाने की पुरानी रीति का स्थान अभी तक नहीं ले लिया है।

एकवेडर:—सूत कातने का सामान स्त्रियों के साथ साथ वे जहां जाती हैं, जाता है और जब वे किसी दूसरे काम में नहीं लगी रहती हैं तब उनकी तेज अंगुलियां सूत कातने और ऐंठने में ही लगी रहती हैं। कल की तरह यों कातने में लगे रहने से उनके किसी दूसरे काम में हर्ज नहीं पड़ता है। बहुत ही सादे करघों पर बहुत सुन्दर सूती और ऊनी कपड़े तैयार किये जाते हैं जिनसे तरह तरह की गर्म पोशाकें बनती हैं।

किचुआ स्त्रियें जहां जाती हैं डंडा और तलकी साथ ले जाती हैं—डंडा एक मोटी लकड़ी का बना रहता है और तकली एक बेंत के टुकड़े को आलू में गूंध कर बना ली जाती है—और जहां उनके हाथों को फुर्सत मिलती है कि वे सूत कातने लग जाती हैं।

इक्वेडर के बने हुए देशी कपड़े सामान और कारीगरी दोनों के लिहाज से बहुत अच्छे होते हैं।

इंगलैण्ड भी:—विल्टशायर के गांव में चर्खों की सुन्दर घनघनाहट सुनाती है। सालिसबरी के समतल के एक कोने में विन्टरस्लो एक गांव है जो वहां के रहने वालों के हाथों से कते और बुने कपड़े के लिए मशहूर है। वह कपड़ा वहां के भेड़ों से निकले हुए सबसे बारीक ऊन का बनता है। इस काम को हैमिल्टन की डचेज़ ने आरम्भ किया था और गांव वाले इसे बड़े उत्साह के साथ करते हैं। छोटी से छोटी लड़कियों को भी यह पाठशाला में सिखला दिया जाता है और वह घर पर अपना अपना सूत कातती हैं।

एस्थोनिया:—एस्थोनिया की स्त्रियों का चरखा चलाना एक कहावत सी हो गयी है। ओसेलद्वीप में जहां बहुत सर्द हवा बहती है ऊनी कपड़े की बहुत जरूरत रहती है। गर्मी के दिनों में वहां की सुन्दर स्त्रियां अपने झोंपड़े के बाहर धूप में बैठ कर ऊन का सूत कातती हुई देखी जाती हैं। अपने और कुटुम्ब के लिए गर्म कपड़े वे तैयार कर लेती हैं।

फ्रान्सः—छिनान के बाहर गांव की बूढ़ी स्त्रियां तकली चलाती रहती हैं और केल्टिक भाषा में चरखा सम्बन्धी गीत अपनी दर्द-भरी आवाज में गाती रहती हैं। ब्रिटेन में आजतक हाथ से सूत काता जाता है और वहां की स्त्रियां अपने देश के कपड़े पर उचित घमंड करती हैं। घर में काता हुआ और बहुत सावधानी से धोया गया वह कपड़ा बहुत टिकता है और बहुत झोपड़ों में ऐसा कपड़ा बहुत जमा किया जाता है। अपनी अनोखी टोपियों को सर और सुन्दर कपड़े देह पर पहनती हुई और तकली हाथ में लेती हुई वहां की स्त्रियां पुरानी दुनियां की मितव्ययता और अध्यवसाय के मानों चित्र सी जान पड़ती हैं। टेढीनाक और ठुड्ढी और टकली ले कर अम्बर्गना की बुढी स्त्रियां परियों की कहानियों के तिलस्म के किले के बाहर की डाइनों की तरह दीखती हैं।

ग्रीसः—"चमत्कार रास्ते की थकावट को मिटा देता है।" दृश्य—डेल्फी पर्वत के नजदीक का एक रास्ता—और कुछ नहीं तो अपने नयापन में ग्रीक स्त्रियों का वह दृश्य जब वह घोड़े पर सवार हो कर भी अपनी पूनी और तकली से सूत निकालती हैं अपना जोड़ नहीं रखती। पर ऊपर की चढ़ाई में अपने घोड़ों के कदमों के ठीक बैठने में और उनकी आज्ञा पालन करने की आदत में उनका ऐसा विश्वास है कि दोपहर के सुनहरे घंटों को वह एक ऐसे धन्धे में लगाती हैं जिसके लिए ग्रीस की स्त्रियां बहुत दिनों से मशहूर हैं।

"जहां घर ही कारखाना है"—जब लैंकाशायर का माल इतने मुलकों में मिलने लगा है यह एक आश्चर्य की बात है कि कोई आदमी ताना तानने और कपड़े बुनने के नाजुक हुनर के सीखने और अभ्यास में बहुत समय लगावे। तथापि ग्रीस में यह एक जीता-जागता धन्धा है और जो माल तैयार होता है वह अनुमान से कहीं अधिक उपयोगी होता है।

हंगेरीः—हाथ में पूनी और तकली के साथ नंगे पैर हंगेरी की लड़कियां वहां की हरी पहाड़ियों पर फिरा करती हैं। उनकी अंगुलियां कभी बेकार नहीं रहतीं। सादे तरीके से हंगेरी ने बहुत पुराने धन्धों को इस प्रकार बचा रखा है।

आयरलैंडः—गावों में पुराना चरखा अभी भी उपयोग में आता है। इन्हीं सादे चरखों पर वहां का देशी हाथ का कता हुआ कपड़ा बनता था जिसे देख कर आज के कारखाने वालों को भी लज्जा आनी चाहिए।

पेलेस्टाइनः—उस रंगबिरंगे जमायत में जो जेरुजलेम में जमा होती है पगड़ी वाला बूढ़ा सरदार भेड़ी की खाल का कोट पहने हुए और चुपचाप डोरा ऐंठते हुए देखने योग्य है।

पैरागुएः—लेंगुआ के आदमी केवल एक कम्बल अपने कमर मे लपेटते हैं। ऊन स्त्रियों द्वारा घर ही पर काता और बुना जाता है और कभी कभी बहुत बारीक होता है। रंगे हुए नमूने भी मिलते हैं। सफेद और काले तो प्राकृतिक रंग के ही; लाल कोचीनियल रंग से बनता है; पीला और खाकी पेड़ों की छाल से बनते हैं। लेंगुआ की स्त्रियां प्रायः घर के काते हुए सूत के घाघरा बनाती हुई देखी जाती हैं।

पेरूः—पेरू के बोला प्रदेश की स्त्रियां चाहे जो कुछ करती हों-जैसे बच्चों की देख भाल करना अथवा अपने भेड़ों और बकरियों की चरवाही करना- पर साथ साथ वे सूत भी कातती रहती हैं। मोटे ऊन की एक गोली लेकर एक छोटी तकली से जिसे वे बराबर नचाती रहती हैं वे सूत निकालती हैं। पहाड़ों के सुदूर प्रदेशों में जहां कपड़े की दूसरी आमद नहीं है। वहां की स्त्रियां इस प्रकार सूत बनाती हैं जिस से उन के प्रायः सभी कपड़े बनते हैं।

पोलैण्ड—वारसा जिले के गृहस्थों के घरों में चरखा और करघे को एक महत्व का स्थान है। घर के बने कपड़े पहनने में वे पक्के हैं और बहुत कम अपने कपड़े को बदलते हैं।

रूमैनिया—रूमैनिया की गोशालाओं की लड़कियां दो काम एक साथ करती हैं। अपनी काम में लगी हुई अंगुलियों से सर्वव्यापी तकली को चलाती हैं और साथ ही गोधुली के समय गौओं को हांक कर घर लाती हैं। रूमैनिया की गृहस्थ स्त्रियां अपनी प्राचीन रीतियों की भक्त हैं; आज भी चरखा चलाना वहां के विशेष धन्धों में है। बेकारी के समय भी शायद ही कोई बिना पूनी के देख पड़ती है।

स्कौटलैण्डः—सुन्दर काम जब अच्छी तरह से अंजाम पाता है तो उससे आनन्द और लाभ दोनों मिलते हैं। नरमी और टिकाऊपन के लिए हैरिस ट्वीड जो हाथ से कात और बुन और रंग कर हेबरेडीज में तैयार किया जाता है दुनिया भर में मशहूर है। शुरू में झोपड़ों के करघों से निकल कर दुनिया के बाजार में पहुंचना और वहां भी एक नफा देने वाला का समझा जाना बहुत मुश्किल से हो सकता पर दूर के हेबरेडीज में यह होता है और हैरि ट्वीड का धन्धा वहां के गरीबों के लिए ए न्यामत है। टारबर्ट में लोगों को धन्धा देने लिए ऊन धुनने के दो कारखाने बनाये गये और एक भण्डार खोला गया है। जहां हैरि ट्वीड जिसे उन्होंने घर पर बुन और रंग क तैयार किया है ले लिया जाता है। लताओं से छुपी हुई ओसरियों के बाहर बैठी हुई शेटलैण की शांत स्त्रियां नरम और गरम ऊन को धुनत और कातती हैं, जिसके लिए वह दूर का टा मशहूर है।

सर्विया:—युगो स्लेविया में सूत कातना और बुनना तथा घर के दूसरे धन्धे विशेष कर जाड़े में किये जाते हैं जब गृहस्थ स्त्रियों के लिए बाहर का काम नहीं रहता है। ओरचिड में बहुत पुराने धन्धे चलते हैं पर स्त्रियां जितना सूत कातना पसन्द करती हैं उतना और कुछ नहीं।"

यदि ऊपर के उद्धृत वाक्यों को हम प्रमाण मान लें तो केवल ऐसे आदमी चरखे की शक्ति का इनकार कर सकते हैं जिनके दिमाग में गलत ख्याल बैठा हुआ है कि चरखा कातने वाली को बहुत कम मजदूरी मिलती है। यदि हम अपने को भूल जायं और भूख से मरते हुए उन करोड़ों लोगों के स्थान में अपने को मान कर विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि जिसे हम बहुत कम समझते हैं वह उन गरीबों के लिए विपुल धन है। यह भी मालूम हो जायगा कि जहां लाखों की बात है, वे केवल कुछ पैसे

ही अपनी रोजाना की आमदनी में जोड़ सकते हैं जो यों देखने से कुछ पैसे मात्र हैं। हद से हद यह साल में ४०) हो सकते हैं अर्थात् रोजाना सात पैसे।

मोहनदास करमचंद गांधी
(हिन्दी नवजीवन)

३. वधू के लिये पाठशाला

सब प्रकार से पूर्णता का दम भरने वाला अमेरीका ही प्रथम देश है जहां विवाहेच्छुक स्त्रियों के लिये, विवाह विषयक एक ख़ास शिक्षा पद्धति तथा पाठशाला की आयोजना हुई है। अमेरिकन कहते हैं कि चूंकि वहाँ प्रतिवर्ष अगणित तलाक होते हैं अतः इससे विवाह करने वालों में इस विषय की शिक्षा की कमी मालूम होती है। उस कमी को पूरा करने के लिये "बोस्टन यूनीवर्सिटी" ने एक वैज्ञानिक विवाह शिक्षा पद्धति बनाने का प्रयास किया है।

ब्रुकलिन की मिस बेर ने सब से पहिले यह शिक्षा लेकर ओहिओ स्टेट यूनीवर्सिटी के मिस्टर बुल्फ़ से विवाह किया है। यह संसार की पहिली, इस शिक्षा में पास होने का सार्टिफ़िकेट प्राप्त रमणी हैं।

बास्टन यूनीवर्सिटी के स्त्रियों के कलिज के प्रोफ़ेसर लारेन्स डोन के मस्तिष्क में यह विचार आया और उन्होंने मिस्येज़ एलिज़बेथ मिकडानल्ड को इस विद्या की शिक्षा के लिये नियुक्त किया।

इस पद्धति में पति कैसे चुनना चाहिये, आय व्यय का हिस्सा किस प्रकार होना चाहिये, विवाह क्यों असफल होते हैं, प्रस्तुत जीवन की कई अन्य कठिनाइयां का हल करना जैसे यदि अपने पति के आचरण के विषय में कोई बात अपने किसी पक्के मित्र से ही सुनी हो तो क्या बर्ताव करना चाहिये, इत्यादि विषयों की शिक्षा दी जाती है।

यद्यपि लड़कियों को खाना बनाना, शिशु-पालन, अन्य गृह-प्रबन्ध की शिक्षा आगे भी मिलती थी परन्तु असल बात अबतक हल नहीं हुई और तलाक की कचेहरियां वैसी ही दिन प्रति दिन भरी रहती हैं। १९२३ में १६५००० डाइवोर्स दिये गये और अगले वर्षों में बढ़ती ही होती जाती है।

किस प्रकार पुरुष को आकर्षित करना, कैसे उसको अपने अनुकूल रखना, कैसे विवाह को सफल बनाना, यह इस नये स्वांग का मुख्य उद्देश्य है। परमात्मा ऐसे शिक्षणालयों तथा उद्देशों से बचावे।

क्या यही नवीन से नवीन पाश्चात्य सभ्यता है?

४. तम्बाकू से हानि

आजकल सिग्रेट के स्थान में सिगार का रिवाज अधिक होता जा रहा है। कहा जाता है कि सिग्रेट की अपेक्षा सिगार कम हानिकारक है यद्यपि यह है सर्वथा विपरीत। परन्तु सिगार पीना अधिक फैशनेबल है अतः इसी की ओर अधिक झुकाव हो रहा है। सब प्रकार के तम्बाकू में निकोटीन नाम का एक द्रव्य रहता है जो कि विष होता है और जिसका मनुष्य शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

तम्बाकू के विषय में डाक्टरों की क्या सम्मति है वह "पब्लिक ओपीनियन" इस तरह लिखता है:—

"जिस सिरे से सिगार जल रहा हो उसके पास गीले स्थान में निकोटीन एकत्र हो जाती है और यदि यह पूर्णतया जल न जाय तो गरम धुयें के साथ मुंह में पहुंच जाती है। इसलिये एक मोटा अथवा गीला हरा सिगार पतले सूखे सिगार से कहीं अधिक हानि करता है। नीचे का कड़वा सिरा या आधा पीकर छोड़ा हुआ सिगार अधिक विषैला होता है। यह कहा जाता है कि अधजले हुये सिगार या तम्बाकू को पीने वाले १० सिग्रेट से अधिक विष को भीतर खेंचते हैं। डिकसन के कथनानुसार एक सिगार में १२ से १८ सिग्रेट के बराबर निकोटीन रहता है।

"मनुष्य के दिमाग़ पर तम्बाकू पीने का क्या प्रभाव पड़ता है यह एक विचारणीय प्रश्न है। आरम्भिक क्षणिक उत्तेजक प्रभाव के पश्चात् तम्बाकू का मानसिक शक्तियों को शिथिल करने वाला प्रभाव आरम्भ हो जाता है। अमरीका में २००० व्यक्तियों की परीक्षा का यह परिणाम निकला है कि तम्बाकू के सेवन से १० से २३ प्रतिशतक मानसिक शक्ति कम पड़ जाती है।

"राडोल्फ इब्राहिम यह मानते हुये भी कि यह परीक्षा इस विषय पर अन्तिम शब्द नहीं यह मानने पर विवश है कि तम्बाकू के सेवन से कार्य करने की साधारण शक्ति कम पड़ जाती है, नाम याद नहीं रहते और नींद घट जाती है और टर्नें जो कि स्वयं बहुत अधिक तम्बाकू का सेवन नहीं करता कहता है कि सुस्ती, शिथिलता शीघ्र बुढ़ापा आ जाना जो कि तम्बाकू पी वालों में देखा जाता है इसी व्यसन का परिणा है।

५. बकर ईद ! रक्तपातका त्योहा

कुर्बानी ! । सचमुच !!

परमात्मा-दया का भण्डार और प्रेम का पुंज प्रभु-पहिले किसी युग में करता हो तो करता हो परन्तु आज इन रक्त की नदियों या निरापराध जीवों की चीख पुकार की कुछ परवाह नहीं करता। प्रायश्चित ! अपने पापों के लिये हमें कुर्बानी से प्रायश्चित की अब कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि परमात्मा और मनुष्य के समय के साथ बदल गये हैं वास्तव में उस कुर्बानी का कौड़ी भर भी मूल्य नहीं जिसका आधार छोटे से छोटे जीव को पीड़ा देना हो। वास्तविक प्रायश्चित तो वही है जो कि हमारे हृदय में उत्पन्न हो, जीवों की ओर हमारे वर्ताव में परिवर्तन जिसका आधार हो। भविष्य के धर्म में कुर्बानी के इन क्रूर और भद्दे तरीकों को कोई स्थान नहीं रहेगा। वह उस समय था जब कि कुर्बानी का अभिप्राय अपने को छोड़ कर दूसरों को क़ुर्बान करना था। प्रायश्चित का मार्ग मन और हृदय का पश्चात्तप होगा, क्योंकि क्या वास्तविक प्रायश्चित शरीर को पवित्र नहीं करती, मन को निर्मल नहीं बनाता ? और पापी को शनैः २ उस उद्देश्य की ओर नहीं ले जाता है जिधर कि संसार बड़े कष्टमय साधनों से पहुंच रहा है—अर्थात मनुष्य की आत्मिक पूर्णतः।

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

विदेशी समाचार

१९२५ में समस्त जर्मनी में म्यूनिसिपल कमेटियों तथा अन्य कमेटियों में १०३८ स्त्रियां काम करती थीं।

—:※:—

आयर्लैण्ड में उन जेलखानों के लिये जहां कि स्त्रियां कैद रहती हैं इस वर्ष सब से पहिले स्त्री-निरीक्षिका नियुक्त हुयी है।

—:※:—

अमरीका में ८५ लाख स्त्रियाँ अपने घरों से बाहर आजीविका कमाने के लिये कार्य करती हैं। १८८० और १९२० के बीच यह संख्या २८ लाख थी।

—:※:—

केवल लन्डन की म्युनिसिपल कमेटियों में १५० स्त्री सदस्य हैं। देश के भिन्न भागों में ६ स्त्रियाँ इन कमेटियों की प्रधाना हैं।

मिस विल्कनसन पोर्लियामेन्ट की सभासदा हैं। आप बड़े २ नगरों में स्त्रियों को पुलिस विभाग में भरती करने के सम्बन्ध में एक बिल पेश करने वाली हैं।

—:※:—

अमरीका के सैन्ट लूईस नगर में वहाँ की स्त्रियों ने सारे नगर को साफ सुथरा करवा दिया। उन्होंने एक कमेटी बनाई है जिसने कि नगर की सारी दुकानों का निरीक्षण किया और एक ऐसी सूची बनाई जिसमें बतलाया गया कि अमुक २ दुकानें १०० प्रतिशतक साफ और शुद्ध हैं, अमुक ८० प्रतिक शतक और अमुक ६०, इत्यादि। तब उन्होंने केवल उन दुकानों से ही सौदा खरीदने की सिफारिश की जो कि १०० प्रतिशतक शुद्ध थीं। इस का प्रभाव यह हुआ कि नगर की अन्य दुकानों को १०० प्रति शतक शुद्ध कर दिया गया।

हम अपनी हिंदुस्तानी बहिनों से तो भला इस प्रकार की आशा क्या कर सकते हैं जिनके कि अपने नीचे घर ८० प्रति शतक और १०० प्रति शतक गन्दे रहते हैं।

—:※:—

परदे के कारण अब तक मिश्र देश में कन्याओं और स्त्रियों की शिक्षा का बहुत कम प्रचार था। बहुत सी समझदार महिलायें अभीतक चार-दीवारी में रहना पसन्द करती हैं। उनके विचार में सुधार की गति बहुत तेज़ न होनी चाहिये। अमीरों और रईसों की लड़कियां अपनी योरोपीय बहिनों जैसी ही विद्या प्राप्त कर रही हैं। अंग्रेजी और फ्रान्सीसी उस्तानियां उन्हें घरों पर पढ़ाती हैं और इसके पश्चात् वह किसी योरोपीय स्कूल में भरती होकर अपनी शिक्षा समाप्त करती हैं।

मिश्र की परदानशीन महिलाओं ने वह की आधुनिक चित्रकला की बड़ी उन्नति की है। कैरो में उनके उद्योग से चित्रकला सम्बन्धी एक वार्षिक प्रदर्शनी होती है। मित्रों से मिलने जाना, बग्घी स्वयं हाँकना, थियेटर तमाशे में जाना,

आजकल की परदानशीन महिलाओं के दिल बहलाव के विशेष सामान हैं। यह सब काम वह बुरक़ा ओढ़ कर करती हैं, यद्यपि यह बुरक़ा अब नाम मात्र का ही रह गया है।

मध्यम श्रेणी की बालिकायें सरकारी पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त करती हैं। यहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त अध्यापकायें पढ़ाती हैं। पाठ्य बिषयों में गृह प्रबन्ध पर अधिक ज़ोर दिया जाता है अतः स्वास्थ, शारीरिक व्यायाम, मितव्ययता, शिशुपालन और प्रकृति के अध्ययन पर शिक्षा दी जाती है। कन्यायें बड़ी सुन्दर, तेज़ और हंसमुख होती हैं। ज़िमीन्दारों में अभी बहु स्त्री विवाह का रिवाज है परन्तु नगरों से यह अब प्रायः उठ गया है। मिश्र स्त्री जाति के प्रति अपने कर्तव्य से विमुख नहीं।

—:*:—

योरोप के पूर्व-दक्षिण में अलबानिया नाम का एक छोटा सा देश है जहाँ पर स्त्रियों की दशा पुरुषों की अपेक्षा किसी अवस्था में हीन नहीं। अतः वहां कभी भी स्त्री सुधारक संस्थाओं की आवश्यकता नहीं हुई।

बाल काल पीछे-जब कि वह माता पिता के आधीन होती हैं। वहाँ की स्त्रियाँ सर्वथा स्वतन्त्र हैं। विवाह से पहिले और पीछे वह सम्पत्ति की स्वयं अपने नाम से मालिक होती हैं और अपनी इच्छानुसार उसे व्यय कर सकती है। कानून की दृष्टि में उनके अधिकार पर विवाह से कोई अन्तर नहीं पड़ता। विधवा हो जाने की अवस्था में यदि उसके बाल बच्चे हैं तो अपने छोटे बच्चों की संरक्षक समझी जाती हैं और उनका सब काम इच्छानुसार करती हैं।

वहाँ की स्त्रियाँ अपनी स्वतन्त्रता के साथर अपने पवित्र आचरण के लिये भी प्रसिद्ध है। निर्जन स्थानों में भ्रमण करते समय स्त्रियों की एक टोली सिपाहियों की अपेक्षा रक्षा का अधिक उत्तम साधन है।

यदि कोई जान बूझ कर स्त्रियों पर चोट करे तो उसके लिये बड़े बड़े दण्ड का विधान है अतः वहाँ पर स्त्री हत्याका सर्वथा अभाव है

वहाँ का विवाह का आदर्श इतना ऊँचा है कि तलाक़ का वहाँ नाम भी नहीं।

अलबानियन पत्नी अपने पति की वास्तविक सहायक और सखा है। वह सदा पुरुषोचित कार्य करते रहने के कारण एक गूढ़ नीतिज्ञ है। वहाँ के पुरुष युद्ध के यन्त्र हैं, परन्तु स्त्रियाँ बड़ी कुशल और दृढ़ कार्यकर्त्ता हैं और अपने घरों में-जो कि बहुत ही शुद्ध और शान्तिप्रद हैं पूरा राज्य करती हैं।

—:*:—

साइन्टिफिक अमरीकन लिखता है कि टर्की में एक कानून बना है जिसके अनुसार विवाह इच्छुक स्त्री पुरुषों को पहिले डाक्टर से योग्यता का सार्टीफिकेट प्राप्त योग्य व्यक्ति के स्थान में अयोग्य व्यक्ति न बदल दिया जाय, उसकी बाँह पर निशान बना दिया जाता है।

अबतक हम पास किया हुआ दूध पास किये हुये अन्डे, पास किये हुये तमस्सुक तो सुनते आये थे परन्तु अब पास किये पति और पास की हुई पत्नियें भी सुनने में आने लगी हैं।

भारतीय

इन्दौर में अनिवार्य शिक्षा जारी करदी गई है और इसमें कन्याओंको भुला नहीं दिया गया।

लड़कियों को भी आवश्यक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी। आशा है इस कानून के जारी होने से वहाँ कन्याओं के बहुत से स्कूल खुल जायेंगे।

—:*:—

बम्बई में प्रति वर्ष १८०० बालक छोटे २ अपराध करने के लिये पुलिस से दण्ड पाते हैं और एक वार दण्ड पाकर पुनः गलियों में आवारा फिरते हैं। इन बच्चों के लिये कोई सुधारक पाठशालायें या व्यवसायिक स्कूल नहीं। बम्बई जैसे बड़े नगर के लिये क्या यह अपमान की बात नहीं ?

—:❀:—

हर्ष है कि कुमारी अम्बादेवी विदुषी विशारद और कुमारी सरलादेवी विदुषी विशारद ने प्रयाग महिला विद्यापीठ की सर्वोच्च परीक्षा 'सरस्वती' हिन्दी साहित्य में उत्तीर्ण कर ली है। आप पहिली आर्य्य कन्यायें हैं जिन्होंने यह गौरव प्राप्त किया है, हम इन्हें तथा इनके गुरु और परिवार को बधाई देते हैं।

—:*:—

पटना विश्वविद्यालय से अधिकारी परीक्षा पास करने पर जो २०) मासिक की विशेष छात्रवृत्ति थी वह कुमारी नवनलिनी घोष तथा १५) और १०) की छात्रवृत्तियां कु० विमलादेवी और कु० मायादेवी को मिली हैं। यह तीनों बाँकीपुर की कन्यापाठशाला की छात्रा हैं।

अपनी बहिनों को सन्देश

लेखिका—ऐन मार्ग्रेट होगग्रेन

(गतांक से आगे)

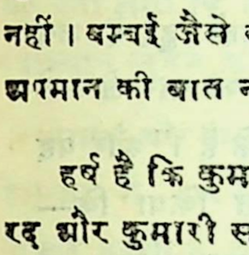

मैं ने बड़ी मेहनत से एक ऐसा लेकचर तैयार किया जिसे मैंने विचारा कि शिक्षाप्रद भी होगा और लोगोंको उत्साहित भी करेगा, फिर मैंने गान विद्यामें जिस प्रकार छोटी उम्र में पाठ पाठलिया करती थी उसी ढंग पर अपनी आवाज़ को भी ट्रेन किया। कुछ महीने बाद मुझे प्रतीत होने लगा कि अब मैं अपने कार्य्य के योग्य बन गई हूँ, तब मैंने परिचित तथा अपरिचित दोनों प्रकार के भिन्न २ शहरों के लोगों को लिखा कि मुझे बुलावें और मेरे लेकचर कराने का प्रबन्ध करें। उत्तर जो बहुधा मुझे मिला करते थे वह इस प्रकार के होते थे कि—"आपको यहाँ आने का कष्ट उठाने की कुछ ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमारे जिले या शहर में ऐसे प्रश्नों पर लोगों की ज़रा भी रुचि नहीं है।" लेकिन मैं ऐसी बातों से निराश होने वाली न थी और उत्तर में लिखती कि—"यदि सचमुच यह दशा है और स्त्रियों में बिलकुल भी रुचि नहीं है तब तो मेरे आने की और भी बड़ी भारी आवश्यकता है।" और इसका परिणाम यह यह होता था कि ऐसे स्थानों में मेरे आने का प्रबन्ध हो जाया करता था।

इस प्रकार स्वीडन में मैं स्त्रियों के वोट अधिकार की प्रवर्तिका बन गई। मुझे यात्रा भी

कम से कम जितना व्यय हो सकता था करना पड़ता था क्योंकि समिति से किसी प्रकार की धनकी सहायता की आशा न थी, अतः आरम्भ से ही निर्बल मेरो स्वास्थ्य को धीरे २ यह खराब करने लगी। कुछ वर्षों तक तो मैं लम्बी २ और दुर्गम यात्राओं को करती रही, और मैंने बड़ी तकलीफें उठाईं। परन्तु सर्वत्र मेरा स्वागत हुआ। कभी २ मैं बड़े धनवान घर में अतिथि बनती थी, तो कभी २ बड़े गरीब घर की अकेली स्त्री के घर मुझे आतिथ्य स्वीकार करना पड़ता था। इस प्रकार मैं बहुतेरी अमीर गरीब तथा भिन्न पेशे और स्थिति वाली स्त्रियों से मिली और जाना कि किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना उन्हें करना पड़ता है? कैसे उन्हें उबारा जाय? इस बात से मुझे अपने कार्य में और भी अधिक दृढ़ता हो गई। मेरे लेक्चर को सभी जगह श्रोतालोग तथा समालोचक लोग भी बड़े ध्यान से सुनते थे। अपरिवर्तनवादी पत्र जो कि हम लोगों के विरुद्ध थे—वह भी बड़े भक्त थे और किसी ने एक भी शत्रुता का शब्द उच्चारण न किया। मैं इन वाक्य को बड़े ध्यान से हटाती रहती थी जिन से आक्रमण या हिंसा का भाव निकल सके। मैं इस बात पर बल पूर्वक भाषण करती थी कि स्त्रियों को वोटाधिकार दो वह सब के लिये लाभदायक और आवश्यक होगा। मुझे बहुत से सहयोगी प्राप्त करने में सफलता मिली और भिन्न भिन्न ६० स्थानों में समितियाँ बन गयीं।

१९०३ में-जबकि मैं स्वीडन के अत्यन्त उत्तरीय-भाग में लेक्चर यात्रा का विचार कर रही थी—मैं रेल के सब से बड़े अधिकारी से अपने सफर के विषय में सलाह लेने के लिये मिली।

जब उसको पता लगा कि मैं उस सर्दी के महीने में उत्तरी ध्रुव से भी ऊपर यात्रा करने को सोच रही हूं तो वह बड़ा भयभीत हो गया और उसने मुझ से पूछा कि-क्या तुम इस बात को समझती भी हो कि इसमें तुम्हें कई दिन तक लगातार बर्फ से निर्जन बन में घिर जाने का भय भी है? उसने मुझे यह भी याद दिलाई कि कुछ बहुत देर नहीं हुई है जब कि शराब में मस्त जल सेनाओं को पार ले जाने के समय बड़े भयंकर दंगे हो चुके हैं।" और यह कहकर अपनी बात को समाप्त किया कि— "इस ऋतु में ऐसी यात्रा करने का साहस तो स्वयं शैतान भी न करेगा।"

लेकिन इस समय राजनैतिक अवस्था ऐसी थी कि जल्दी में जो कुछ भी किया जा सके करना ही आवश्यक था। उस समय कोई भी पेशगोई नहीं कर सकता था कि अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये हमें १८ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

हमें सिर से पैर तक ढकने के लिये समूर (बालों वाला कोट) मगाने पड़े और टोकरी भर के खाने की चीजें रखने पड़ीं ताकि यदि हम बरफ से घिर जाँये तो गुजारा कर सकें। हमारी रेल चल पड़ी और कोई दुर्घटना विशेष नहीं हुई। सिर्फ एक बात यह हुई कि हमारी रेल की पटड़ी पर मृगों का एक झुंड आ गया। अतः एक घंटा रेल को खड़ी रखना पड़ा। लेकिन १२ घंटे की तीव्र सर्दी और उदासी अंधकार में सफर करना तो अच्छा नहीं

नहीं लग सक्ता था तथापि स्त्रियों के के आन्दोलन के पवित्र कार्य के लिये जलती हुई मेरी आत्मा को इसकी क्या परवाह थी ? किन्तु अंत में इधर उधर मारे २ फिरते मेरी स्वास्थ्य बिगड़ गई और मैं ऐसी कठिन यात्रायें करने के लिये सर्वथा असमर्थ हो गई ।

इन वर्षों में बहुत सी व्याख्यान दाताएं आगे आचुकीं थीं । पीछे मुझे कई सुबूतों से यह पता लगा कि लोगों को मुझ को देखने और व्याख्यान सुनने की प्रबल इच्छा रहती थी ।

समय और मनुष्य कैसी जल्दी २ बदलते हैं ! जब मैं अपने उन मेहनत के दिनों पर विचार करती हूं तो मेरा हृदय अपने देशीय उन नर और नारियों के प्रति कृतज्ञता से भर जाता है जिन्होंने मेरे प्रति प्रेम और उत्साह दिखलाया । मेरे साथ काम करने वालों को भी मेरी बहुत सी बातें बर्दाश्त करनी पड़ती थीं । मुझे यह तो मानना ही चाहिये कि जो लोग मेरे जैसे विचार के नहीं थे उनके साथ काम करने में तो मुझे कुछ कठिनता पड़ती ही थी । यदि मैं किसी प्रकार बंधी हुई अनुभव करूं तो मैं लज्जित और रूखी बन जाती हूं । केवल मैं अपनी शक्ति को सफलता पूर्वक तभी लगा सकती हूं जब कि मुझे बे रोक टोक अपने आप कार्य्य करने दिया जावे ।

स्वाधीनता और धर्मपरायणता मेरे लिये आवश्यकी वस्तुयें हैं । इसलिये मैं इन दोनों का बड़ा आदर करती हूं चाहे यह जातिगत हो या व्यक्तिगत । मैं अब भी स्त्रियों के अधिकारों तथा पुरुषों के समान अधिकारों के लिये बड़े उत्साहपूर्वक काम करती हूं, परन्तु हमें अभी उसकी प्राप्ति के लिये बड़ी मेहनत करनी होगी, और स्त्रियों के सुधार में भी इससे कम मेहनत करनी नहीं होगी ।

मैं चाहती तो थी कि स्त्रियों के वोटाधिकार का आन्दोलन सभी पक्ष की स्त्रियों की संस्था बनी रहती, लेकिन दूसरों को इस विषय में विश्वास मैं नहीं दिला सकी । अतः यह सब केन्द्र धीरे २ मिट गये जिसका कि जबतक जीवन रहेगा मुझे दुख रहेगा । जबतक स्त्रियाँ सुदृढ़ संगठन करके मेल रखने की कदर न करेंगी तबतक कोई भी आवश्यक कार्य्य न कर सकेंगी; वह दुनियां के दिलों को बदलने रूप बड़े भारी कार्य्य जो कि मनुष्य जीवन के दो बड़े भारी लाञ्छन-युद्ध और बलात्कार-को नष्ट करने की ओर ले जाते हैं—कभी न कर सकेंगी ।

किन्तु यदि समग्र संसार की स्त्रियां प्रेम और सद्भाव का सहेलपन बनाकर शान्ति और सुस्वभाव कायम रखने के लिये प्रयत्न करें तो मातृत्व से भी बढ़कर बड़े महत्व का मिशन हम पूरा करेंगी ।

स्वतन्त्रता के प्रचार के तुम्हारे काम में तुम्हें सफलता प्राप्त हो यही मेरी हार्दिक इच्छा है ।

बनिता-बसन्त

दुहिता न पढ़ावत हो तुम तो, वह मूढ़ बनीं मुख जोवति हैं।
घरभीतर कैद पड़ीं दुखिया, निज जीवन हा! वह खोवति हैं॥
बहु, बाल विवाह न दूर करो, बन के विधवा नित रोवति हैं।
तुम रंग बसन्त मनावत हो, वह दूह कुरंग के ढोवति हैं॥१॥

जहां थी हुईं नारियां धर्म धारी, रहीं आतरेयी जहां ब्रह्मचारी॥
सुता शैल ने दानवी मान घाला, अहिल्या, भवानी, भला राज्य पाला॥२॥
वहाँ बाल-उद्वाह ही धर्म माना, मिटा है सभी वीरता का सुबाना॥
महा गीत गन्दे वहीं आज गाती; वसन्तोपना वे इसी में दिखातीं॥३॥

अम्बादेवी विदुषी "विशारदा"

परोपकार

ले०—शिवराम "विद्यार्थी हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग"

परोपकार का अर्थ है दूसरों की सहायता करना। यह नहीं कहा जा सकता कि किस विषय में और कब करना चाहिये। हमेशा जिस किसी आदमी को, चाहे वह ग़रीब हो या अमीर, जब किसी बात की कमी हो, दुःख हो अथवा किसी पीड़ा से व्यथित हो तो तन मन धन से उसकी सहायता करना ही परोपकार है। परोपकार कई प्रकार से हो सकता है। यथा, प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को अन्न देना, नंगे को वस्त्र पहनाना, रोग पीड़ित ग़रीबों को मुफ़्त में दवा देना, नदी नालों में डूबते हुओं को अपनी जान की परवाह न करके उन को बचाना, किसी के घर में आग लग जाने से उस को बुझा कर उस का दुःख दूर करना, बाढ, अकाल से जनता की रक्षा करना, इस प्रकार से अनेकानेक कार्य परोपकार में शामिल हैं। वही मनुष्य परोपकारी हो सक्ता है जिस के मन में जीव मात्र पर असीम प्रेम हो, हृदय में धैर्य हो, निर्भीकता, और भगवान में अटल भक्ति तथा विश्वास हो, एवं भगवान् के सिवाय अन्य किसी से न डरता हो, उसी का जन्म संसार में धन्य है। परोपकारी मनुष्य इस लोक में मान, प्रतिष्ठा और परलोक में सुख प्राप्त

करता है। ऐसे पुरुष केवल अपना ही जीवन सफल नहीं करते, परन्तु अपने जीवन के उदाहरण से अनेकों को परोपकारी बना कर उन को सत्पथ पर ले जाते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों के हृदय को स्वार्थ छू तक नहीं सकता। जैसे पुष्प के खिलते ही उसका सुगंध चारों ओर फैल जाता है और संसार उसकी तरफ आकर्षित हो जाता है उसी प्रकार परोपकारी के सद्गुण बाल्यावस्था से ही संसार को विमोहित कर देते हैं तथा उन के द्वारा मनुष्य चुम्बक पत्थर के समान आकर्षित हो कर उनके जीवन का अनुकरण करने में अपने उत्साह को बढाते हैं।

मनुष्य परोपकार से ही अपनी काया को परिशुद्ध कर सकता है। जिस मनुष्य का शरीर परोपकार के द्वारा परिपक्व नहीं होता वह कभी आत्मोन्नति कहीं कर सकता है। जो आदमी निःस्वार्थी होकर अपने शरीर पर अनेकों कष्ट सहते हुए भी दूसरों की भलाई से विमुख नहीं होता वह भगवान् को बड़ा प्यारा होता है और दयामय भगवान् भी ऐसे अपने भक्तों की सहायतार्थ सदैव प्रस्तुत रहता है। जब मनुष्य अपने किये कार्यों की फलापेक्षा न करते हुए निःष्काम कर्म करता है तो इस में तनिक भी संदेह नहीं कि उसका जीवन पवित्र एवं अमर होता है। इस दुर्लभ मानव-देह को पाकर जो मनुष्य इससे उचित कार्य नहीं करता है उसका जीवन इस संसार के लिये व्यर्थ बोझ मात्र है। "परोपकारार्थमिदं शरीरम्" इस आर्योक्ति को ध्यान में रखते हुए अपने जीवन की समाप्ति करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

व्यतीत तथा वर्तमान भारत

लेखक-माता प्रसाद द्विवेदी

जब हम आर्य ग्रन्थों तथा प्राचीन इतिहासों का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं, और अपने देश की व्यतीत तथा वर्तमान दशा की तुलना (Comparision) करते हैं, तो एकपरिणाम को पहुँचाते हैं, जिस से ज्ञात होता है कि इस काल और उस काल में ज़मीन आसमान का अन्तर है, वही देश जो एक समय में ऋषि मुनियों से सुशोभित, सच्चे वीर योधाओं से अलंकृत, वेदादि ईश्वरीय ज्ञानों से युक्त, बल, धन, पौरुषादि से भूषित, सत्यता, धर्मिकतादि श्रेष्ठ गुणों से शोभायमान और सभ्यता की खान था आजकल धूर्त, लम्पट, फसली साधुओं से दूषित, बनावटी (artificial) वीरता के चोले में शेर की खाल में ढके हुये गदहे के तुल्य कायरों से कलंकित, उपन्यासादि आचरणों (Character) को नष्ट भ्रष्ट करने वाले ग्रन्थों से प्लावित, कायरता, निर्धनतादि से ग्रथित असत्यता, अधर्मिकतादि अवगुणों से आच्छादित, आर असभ्यता की खान बना हुआ है। और उत्तरोत्तर अवनति का ग्रास होता हुआ अन्धकार की ओर द्रुत गति से जा रहा है।

यह वही देश है जहाँ के ढाका आदि अनेक शहरों से अन्य देशों को ऐसी २ वस्तुएँ बनकर जाती थीं जिनको देखकर विदेशी दान्तों तले उंगली दाबकर रह जाते थे। इतना ही नहीं वरन् यहां की बनी हुई दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओं पर ही अन्य देश वासियों का निर्वाह अवलम्बित था। आजकल वही दियासलाई, सुई आदि छोटी २ वस्तुओं के लिये दूसरों के आधीन हो रहा है। यदि दियासलाई का विदेश से आना बन्द हो जावे तो शायद सब लोग अन्धकार का ही सेवन करते रहें।

जिस देश में एक अखण्ड सनातन वैदिक मत चला आरहा था उसी घर में आजकल इतने मत मतान्तरों के स्रोत वह निकलें कि जिनका गिनना तक कठिन होगया है, और सब लोग उनके प्रवाह में प्रवाहित हुये अनिश्चित स्थान की ओर बढ़े चले जा रहे हैं।

जिस देश के निवासी इस असार संसार को तुच्छ समझ कर त्याग दिया करते थे, और धर्म को ही सर्व श्रेष्ठ मानते थे आजकल वहाँ के वासियों में से बहुतों को यह भी ज्ञात नहीं है कि धर्म किस चिड़िया का नाम है? और यह कहां पर बसेरा लेती है, अथवा धर्म कोई खाने का फल है अथवा ओढ़ने का कोई वस्त्र है? जिस देश के निवासी विद्यादि सद्गुणों के कारण "आर्य्य" कहलाते थे, आजकल उसी देश के रहने वाले कुली, असभ्य (uncivilized) काला कुत्सित चोर, डाकू, हिन्दू, नीम वहशी आदि गन्दे नामों से पुकारे जाते हैं। विद्या जिसके कारण यह सब देशों में नक्षत्रों में चन्द्रमा की तरह शोभा पाता था और सब का मुकुटमणि था और जिसके लिये यह प्रसिद्ध था कि:—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

(अर्थात्) इसी देश के ब्राह्मणों से सब देश वालों ने अपनी विद्या सीखी। परन्तु दुर्भाग्य वश अब उन्हीं देश के द्विजों में लाखों ऐसे हैं जो विद्या के नाम को एक काला अक्षर भैंस बराबर भी नहीं समझते और खर, बबर्ची, भिश्ती आदि की जीविका से अपना निर्वाह करते हैं, अर्थात् दूसरों का बोझ ढोना, रोटी पकाना, पानी भरना तथा सेठों के बच्चों को खिलाना ही अपना परम धर्म माने, बैठे हैं। शोक है कि वह ब्राह्मण जो वेदों को पढ़कर उत्तम शिक्षा देते थे, वह ऋषि मुनि जो सत्योपदेश करके हमको धर्म पर आरूढ़ करते थे, वह शूर वीर सुभट जो तन, मन, धन से स्वदेश रक्षा में तत्पर रहते थे, वह तत्व ज्ञानी ऋषि वह विद्या और बुद्धि के अवतार जिन्हों ने इस देश को सब देशों का शिरोमणि बना रखा था, कहां गये? हा दैव! कहाँ वह उन्नति कहाँ यह दुर्दशा!! परन्तु क्या किया जावे? किसी कवि ने सत्य कहा है:—

सर्वे क्षयन्ता नियमाः पतन्तः समुच्छ्रया
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।

अर्थ—संचय समस्त क्षय पर्यन्त हैं, संयोग वियोग पर्यन्त है, और जीवन मरण पर्यन्त है अर्थात् जिस वस्तु का संचय है, उसका क्षय अवश्यं भावी है, जो वस्तु अत्यन्त ऊँचाई को पहुँची हुई है उसका अवश्यमेव पतन होगा, जिसका संयोग है उसका वियोग, जिसका

जन्म हुआ है, वह अवश्यमेव काल का ग्रास बनेगा। इसी प्रकार से हमारा देश जो अत्युच्च पदवी आसीन था, सब देशों का शिरोमणि गिना जाता था जिसके दबदबे के आगे समस्त संसार सिर झुकाता था यदि अब इस शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया है तो क्या इसके भले दिन न आवेंगे? क्या फिर हमारे देश में विद्या उसी अपने उन्नत शिखर पर विराजमान न होगी? अथवा पूर्वकाल वत् ऋषि मुनि और सत्योपदेशक न जन्म लेंगे? क्यों नहीं? अवश्यमेव दिन फिरेंगे यह भारत भूमि बाँझ नहीं हुई है जिसकी कोख में अब भी स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे जन्मते हैं। परमेश्वर को कोटानिकोट धन्यवाद देना चाहिये जिसकी कृपा से परमपद प्राप्त श्रीमत्परमहंस श्रीपरिव्राजकाचार्य, भारतोद्धारक, सनातन वेदमत प्रचारक, महर्षि जी ने जन्म लेकर वेदों का भाष्य, और पुनः सत्य का प्रकाश कर दिया है। तथा नगर २ और ग्राम २ में भ्रमण करके जहां तहाँ समाजें स्थापित कर दी हैं, जिससे अब हर ओर वेदध्वनि और धर्म चर्चा सुनाई देती है, जिससे लाखों भटके हुये मनुष्य अपने अधोगत् देश के उद्धारार्थ अनेक उपाय सोचने लगे हैं।

परन्तु शोक तो यह है कि अब भी हमारे बहुत से स्वदेशी भाई ऐसी घोर निद्रा के वशीभूत हो रहे हैं, कि हमारा देश क्या था और क्या होगया है इसका "बिलकुल पता नहीं है, अशिक्षित, विद्या हीन लोगों को जाने दीजिये विद्वान और सुशिक्षित भी देशोन्नति में ऐसे कटिबद्ध नहीं दीखते जैसे होने चाहिये, संस्कृत का तो प्रचार ही नहीं है। और अंग्रेज़ी के विद्वान जिन पर हमारे देश वासी अपने सुधार का भरोसा रखते हैं संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण अपने पूर्वजों को मूर्ख जान, और स्वदेश, विद्या तथा धर्म को असत्य समझ बहुधा धर्म भ्रष्ट हो जाते हैं। फिर बताइये कि सुधार की इनसे क्या आशा की जाय।

परन्तु उनको मालूम होना चाहिये कि प्राचीन समय में इसी देश से सब संसार में विद्या फैली, यहां के विद्वान और उपदेशक लोग देशान्तरों में जाकर सत्योपदेश करते थे, प्राचीन इतिहासों से सिद्ध हो चुका है, कि यहां से मिस्र, (Egypt) मिस्र से अरब, और यूनान, और और यूनान से योरप भर के सारे देशों में यहाँ की विद्या और सभ्यता का प्रचार हुआ।

यदि पिथगोरस (Pythagoras) साक्रेटीज़ (Socrates) एरिस टाटल (Arestotle) प्लैटो (Plato) आदि यूनान देश के तत्वज्ञों के मत और विचार को, कपिल गौतम, पतञ्जलि, जैमुनि, कणाद, वेदव्यास आदि शास्त्रकारों के मत और सिद्धान्तों से मिलाइये, तो उनमें गूढ़ समता से यह स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा कि यहाँ की ही विद्या धीरे २ पश्चिम की ओर गई।

* * * *

कलाकौशल

बच्चे का दुरंगा जम्पर "नवीन प्रतिछाया"

लेखिका—श्रीमती ओ३म्वती देवी

इस जम्पर की लम्बाई २०। २२. व २४इञ्च लम्बी आवश्यक्तानुसार रक्खी जासक्ती है।

सामग्री—५ छटांक २०इञ्च लम्बे के लिये। ५॥ छटांक २२ इञ्च वाले के वास्ते, और ६ छटांक २४ इञ्च रखना हो तो मुलायम बारीक चार तार का ऊन। और १ छटांक बुरदार ऊन जिसको टीज़लबुत कहते हैं, कालर और कफ़ के लिये। २ सलाइयां १० नम्बर की और तीन बटन।

इसकी ऊन और सलाई से बिनावट डालीगई तो एक इञ्च में सात फन्दे डले और ९ पंक्तियां हुईं। इसलिये पहिले अपने ऊन और सलाई से फन्दे डाल कर हिसाब लगालो अगर इतने ही आजायें तो यही हिसाब रक्खो नहीं तो कुछ कम ज्यादा करलो।

पीठ के लिये—२२ फ़न्दे चढ़ाओ (चाहे जो नाप हो)

१ पंक्ति—सीधी बीनो केवल शुरू से तीसरे फन्दे में दो बीनो और अन्त से ४ थे फ़न्दे में दो बीनो।

२ पंक्ति—१ सादा १ सीधा। अगले फन्दे में दो बीनो। सारी पंक्ति उल्टी बीनो जबतक ४ फन्दे रह जांय, ४थे में दो बनाओ, ३ सीधे बीनो।

इन लकीरों को क्रमानुसार दोहराओ जब तक कि ५८ फ़न्दे न बन जांय।

फिर पहिले की तरह हर दूसरी पंक्ति में बढ़ाओ जबतक कि १०४ फ़न्दे न हो जांय, बीस इन्च नाप के १०८ फ़न्दे, २२ इंच नाप वाले ११२ फ़न्दे, २४ इंच वाले के लिये २१६ फन्दे हों। अगली दोनों पंक्तियों के अन्त में काट दो।

इसी प्रकार बनाते हुवे बिना घटाये बढ़ाये ३ इंच बीनो फिर इसके बाद पहिले की तरह हर एक ८वीं लकीर के अन्त में एक२ घर बढ़ाओ जबतक कि कार्य्य १७ इंच लम्बा न हो जाय, २०॥ वाले के लिये, १९ इंच हो जाय २२॥ वाले के लिये और २१ इंच हो २४॥ वाले का अब तीन इंच सीधी पंक्तियां बिना घटाये बढ़ाये जिससे किनारा आजाय, बन्द करदो।

सामने का टुकड़ा—२ फ़न्दे चढ़ाओ।

६ सीधी पंक्तियां बीनो जिनके शुरू के दूसरे फन्दे में दो बीनते जाओ।

७ पंक्तिः—३ सीधे, बीक़ी सब उल्टे, अन्त वाले ४ थे फन्दे में ६ बीनों, ३ सीधे।

८ पंक्तिः—१ सादा, १ सीधा, अगले में एक बढ़ा दो, सारी पंक्ति अन्त तक सीधी।

पिछली दोनों पंक्ति दो की तरह बीनो जब तक २० घर न बन जांय।

*अब इसी प्रकार बीनो और हर दूसरी पंक्ति में एक दफ़ा बढ़ाओ बांह की काट की ओर दूसरे गले की तरफ़ हर जगह और उसके आगे,

सीधे किनारे पर फन्दे बढ़ाओ ६ठी पंक्तिमें, जबतक कि क्रमानुसार ५२, ५४, ५६ फ़न्दे न हो जांय (यहां पर गले की तरफ़ ९ बार बढ़ाया जा चुका है)※ इनको उसी सलाई पर एक तरफ या कहीं अलग पिन पर जैसे सहूलियत हो रखलो और "दूसरा सामना" शुरू करलो।

२ फ़न्दे चढ़ाओ, ६ पंक्तियां सीधी बीनो हरएक पंक्ति के दूसरे फ़न्दे में दो बीन कर बढ़ाते जाओ।

७ पंक्ति—१ सादा उतार लो, १ सीधा अगले में, १ बढ़ाओ; सारे उल्टे बीनो, अन्त के तीन छोड़ कर पिछले ३ फ़न्दे सीधे बीनो।

८ पंक्ति—सारी सीधी बीनो, जब अन्त से चार फ़न्दे रह जांय तब ४ थे में २ दफ़ा बीनो। पिछली दो पंक्तियों की तरह बढ़ाते जाओ जब तक २७ फ़न्दे न हो जायें।

ऊपर बताये हुवे ※ चिन्ह से ※ चिन्ह तक की विधि के अनुसार इधर भी बीनो।

अब दोनों टुकड़ों को बराबर २ गले के सिरे को एक दूसरे के पास जोड़ कर रक्खो (V की शकल बन जायगी) और एक पंक्ति में बीन डालो।

अगली दो पंक्तियों के अन्त में इधर उधर सिरे पर ४ फ़न्दे और बढ़ालो और पीठ की तरफ आगे की भी समाप्त करदो।

बांहें—६ फ़न्दे चढ़ाओ। अब नमूने की तरह बीनते हुवे हर दूसरी पंक्ति में दोनों सिरों पर एक २ फ़न्दा बढ़ाते जाओ जबतक कि क्रम से ७२, ७४, ७६ फ़न्दे बड़े छोटे के लिये न हो जांय। अगली २ पंक्तियों के अन्त में ४ फ़न्दे नये चढ़ाओ, फिर बांह की निचली सिलाई की काट बनाने के लिये सिरों पर एक बार घटाओ (साफ़ बिनावट के अन्दर के किनारे की तरफ़) हर छठी पंक्ति में जबतक कि ५० फ़न्दे रह जांय।

अब बिना घटाये सीधी चपटी बिनावट से दूसरे ऊन से कफ़ तक बीनो जबतक कि सिलाई की लकीर १३॥—१४॥—१५॥ क्रम से लम्बी न हो जाय बन्द करदो और दूसरी बांह इसी तरह बीन कर तैयार करो।

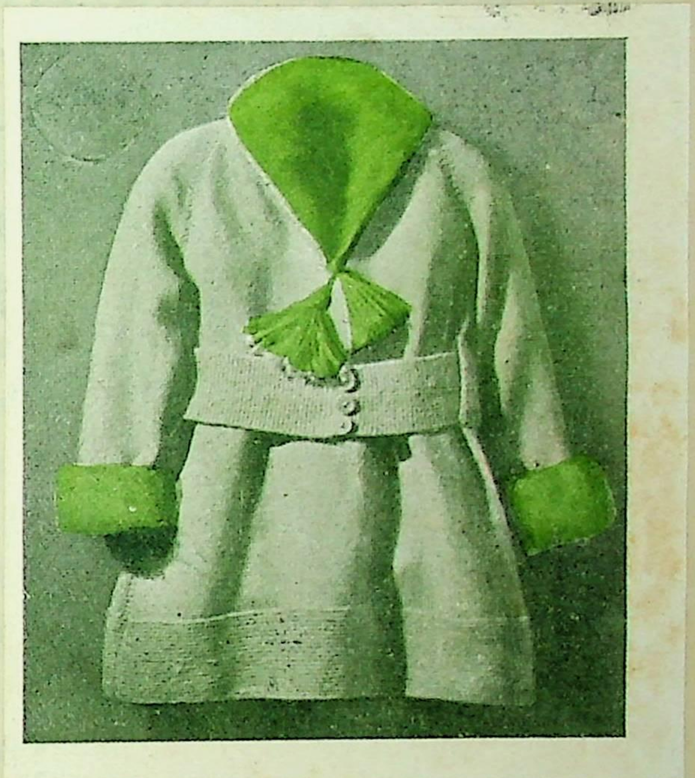

कालर—२ फ़न्दे चढ़ाओ दूसरे ऊन से, चपटी बिनावट से बीनो और हर दूसरी पंक्ति में दूसरे फ़न्दे में दो दफ़ा बीन कर बढ़ाते जाओ जबतक कि २० फन्दे न हो जांय। अब उसी तरफ ४थी पंक्ति में बढ़ाते जाओ जबतक कि २६ फ़न्दे न हो जांय।

अब बिना बढ़ाये घटाये बीनो जबतक कि गले के घुमाव तक बन न जाय (जो बना था

उस में १६४ पंक्ति थीं जहां तक कि फिर घुमाव शुरू हो जाय)। अब दूसरी तरफ की शकल भी ऐसी ही बनाओ केवल जहां यहां बढ़ाया था उधर घटाते जाओ जबतक सब फ़न्दे बिनजांयें।

पेटी:—२० फ़न्दे चढ़ाओ और सीधी बिनावट से २७ इन्च बीनकर बन्द कर दो।

पेटी डालने के फीते:—२३ फ़न्दे चढ़ाओ। एक इन्च तक सीधी बीनों और बन्द कर दो। ऐसे दोनों तरफ़ के लिये बनाओ।

अब सब तैय्यार करना:—सब टुकड़ों को किसी कपड़े से ढंक कर हलकी इस्त्री कर लो और बांह की ओर बगल की सिलाई ठीक २ करके बांह घर में अच्छी तरह सिलाई की सीध में सिलाई रखकर सींदो, फिर कालर लगादो। यह अगर छलेदार फूले ऊन का हो तो इस्त्री न करो। पेटी के फ़ीते बग़ल के नीचे सींदो, पेटी पिरोकर उसमें बटन टांक दो, घर बना दो और गले में रंगीन दो गुच्छे डोरी के साथ बांधकर लटकादो।

रसीले भोजन

ले०--श्रीमती ओ३मूवती देवी

बूंदी के लड्डू बनाने की विधि

यद्यपि लड्डू की प्रथा भारतवर्ष में बहुत है और हर त्योहार वार में काम काज में अवश्य बनते हैं और कई तरह के होते हैं परन्तु घर में अच्छे बनाना किसी को ही आता है। यह अनुभव की हुई विधि आशा है पाक प्रिय बहिनों को रुचिकर होगी।

सामग्री:—आध सेर बेसन हो तो डेढ़ सेर खाँड, और ३पाव घी, जरा सा रंग और टार्टरिक ऐसिड, थोड़ासा दूध।

बेसन को किसी बाटी या पतीली में घोलो न बहुत पतला हो न गाढ़ा। जिस झरनी में से बूंदी निकालनी हो उसमें डाल कर किसी चीज पर ठक २ करने से झार कर देख लेना चाहिये। ज़रासा खाने का पीला रंग पानी में डाल लेना। एक कढ़ाई में मीठा चढ़ा कर डेढ़ पाव पानी डालो। मीठे को दूध डाल कर साफ कर के ज़रा रंग देदो और टार्टरी डाल दो। जब ज़रा तार निकले उतार कर जरा सी भौक में रख दो।

अब दूसरी जरा भारी पेंदे की कढाई में घी चढ़ाओ, थोड़ा घी अलग रख लेना, आवश्यकता पड़ने पर पीछे काम आ सकता है। जब घी खूब गरम हो जाय तो चूल्हेके ऊपर कड़ाई से जुड़ी हुई ज़रा ऊंची एक ईंट या ऐसी ही कोई और चीज़ रख लो जिस पर झरनी बूंदी झारने के लिये ठोंकी जाय। किसी कटोरी से झरनी पर बेसन डालो और झरनी ईंट पर ठक २ करते रहो जब थोड़ा सा झड़ जाय झरनी हटालो और दूसरी झरनी से बूंदी चला कर, निकालकर तीसरी झरनी पर रख कर ज़रा घी निचुड़ जाय तो चाशनी में डाल दो। अब बूंदी झाड़ने वाली झरनी को दोनों तरफ खूब पोंछ लो नहीं तो बूंदी गोल और बारीक नहीं होंगी। फिर पहिले

तरह कटोरी से बेसन डालो और ठक २ कर के बूँदी झाड़ो और निकाल कर चाशनी में डालो। यह कार्य बड़ी फुर्ती से करना होता है क्योंकि कड़ाई तेज़ रखनी होती है और बूंदी बारीक बहुत जल्दी पक जाती है अगर दो जने हों तो एक डाले दूसरा निकाले और रसे में पड़ी हुई बूंदो को उलटता पलटता जाय। जब जितना बेसन बनाना हो पकजाय, तब घी को उतार कर चाशनी वाली कड़ाई पर जाय, अगर पतली मालूम होती हो तो ज़रा आँच दिखावे नहीं तो मेवा इलायची दाना डाल कर हाथ में पानी लगा २ कर लड्डू बाँध ले। अगर मोटी बूंदी हो तो सुखा कर खाली रख ले। पंजाब में बहुत बारीक बूंदी के और हलके मीठेके बहुत खूबसूरत लड्डू बनते हैं। यू० पी० में मोटी बूंदी बना कर मल डालते हैं। अपनी २ रिवाज़ है, विधि एक ही है। कई बार अनुभव करने के बाद अन्दाज़ से मीठा, घी, घटाया बढ़ाया जा सकता है।

२ मलाई की कुलफी बनाने की विधि

आवश्यक वस्तुएँः—कुलफियों के छोटे बड़े सांचे ढकने सहित, दूध, खोआ, मीठा, पिश्ता इलायची, बादाम, बरफ, मैदा १ बड़ी हाँडी में छटाँक भर शोरा, आध सेर नमक ६ सेर बरफ। अगर बीच के मेल की तीस कुलफियाँ जमानी हों तो खूब पके हुए २ सेर दूधमें आध सेर खोया डाल कर खूब मिलाओ फिर डेढ़ पाव मीठा मिला दो। चार पैसे का पिश्ता खूब बारीक काट कर, चार बड़ी इलायची के दाने कूट कर थोड़े बादाम छील बारीक काट कर डालदो।

अब थोड़ासा मैदा मुलाइम गूँधकर दूध को कुलफियों के ढाँचों में कलछी से भरो और ढक्कन बन्द कर दो और थोड़े से मैदे की लम्बी लकीर बनाकर मुँह पर चिपका दो और पानी लगा कर हाथसे अच्छी तरह फैला दो जिसमें दूध न गिरे, इस तरह बन्द करके एक बड़े से पटड़े पर जितने गोल२ कुलफियों के निशान हों टिकादो। या पटड़ा न हो तो किसी और चीज़के सहारे रखते जाओ जब सब कुलफियों का मुंह बन्द हो जाय तब एक चौथाई बरफ़ के टुकड़े हांडी के नीचे बिछाओ उस पर कुटा हुवा शोरा और निमक मिलाकर थोड़ा सा बुरकाओ ऊपर से कुलफियां बिछादो। अब फिर बर्फ़ के टुकड़े से इनको ढाको और निमक शोरा बुरकाओ। फिर कुलफियों की एक तह रक्खो। किनारे २ बर्फ अच्छी तरह रक्खो जिसमें कुलफियां खुली न रहें। इस प्रकार सब कुलफियों को रख कर ऊपर से बरफ ढंक कर जो निमक शोरा हो सब डाल दो और बर्तन का मूंढक दो। ऊपर से दो कम्बल लपेट दो। पौने घन्टे वा घंटे बाद खोलो और हिला कर एक दो कुलफियों को जांच लो कि जमीं वा नहीं कभी वे सब चीज़ें अनुकूल होने से जल्दी ही जम जाती हैं या दूध खूब खोए वाला गाढ़ा न हो तो बहुत कड़ी हो जाती हैं जिसमें खुरचन मलाई के खूब लच्छे हों और मीठा अधिक हो वह बहुत अच्छी होती है। जब जम जाय ज़रा बाहर निकाल कर रख लो फिर चाकू से मैदा हटा कर हाथ से कुलफी को चारों तरफ से दबा-निकाल कर खिलाओ और खाओ।

* * *

दक्षिण अफ्रिका की महिलाओं की अवस्था

लेखक—रूपनारायण शर्मा

आज पाठकों के सामने मैं चन्द शब्दों में प्रवासी महिलाओं की अवस्था का उल्लेख करने को उद्यत हुआ हूं। मुझे यह दुःख से लिखना पड़ता है कि उपनिवेशों में शिक्षा का प्रचार न होने से महिलाओं की अवस्था अत्यन्त शोचनीय होगई है।

वहां से शर्त बन्दियों के साथ जो पहिले महिलायें गई थीं उन में तथा प्रवास में उत्पन्न हुई आधुनिक महिलाओं में पृथ्वी और आकाश का अन्तर हो गया है। उन में यह विशेषता है, कि ये पढ़ी-लिखी तो नहीं होती परन्तु परम्परागत अपने रीति-रिवाज़ आदि में बड़ी दृढ़ रहती हैं और अपनी सन्तानों को भी अपने देश की रीति-रिवाज़ों से परिचित कराती हैं। शिक्षा का कोई उचित प्रबन्ध न होने से वहां की महिलाओं को एक दूसरे पर रीति-रिवाज़ के जानने को अवलम्बित होना पड़ा है। कई पाश्चात्य रीति-रिवाजें आकर मिल गई हैं। जिनका निकालना असम्भव नहीं, तो कम से कम कठिन अवश्य है। कितनी ही अपनी जाति और धर्म को शिक्षा के अभाव से तिलाञ्जली दे कर ईसाई मत की शरण में चली गई हैं, अब भी जारही हैं। वहां पर बालिकाओं के पढ़ने के लिये एक भी योग्य पाठशाला या विद्यालय नहीं जिससे कि वे अपने भविष्य की उन्नति के लिये कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें। कुछ जनता की ओर से पाठशालायें खुली भी हैं कि किन्तु उनमें पढ़ाने के लिये अध्यापिकाओं की कमी है।

वे आर्य्य भाषा की शिक्षा न पा सकने के कारण वहां की प्रचलित अंग्रेजी भाषा की अनुरागिणी हो गई हैं। पाश्चात्य सभ्यता को अनभिज्ञता वश अपने जीवन का आधार बना लिया है। यहांतक कि कई गृहों की महिलायें स्वगृह में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करती हैं तथा छोटे २ आचार व्यवहार भी पाश्चात्य ढंग से करने लगी हैं।

वहां की महिलायें अशिक्षित होने से किसी प्रकार की सभा आदि नहीं कर सकती हैं जिससे वे अपना संगठन कर सकें तथा साथ ही समाज में कुछ सुधार कर सकें।

हमारी बहनों को इस ओर ध्यान देना चाहिये तथा उपनिवेशों में जो सुयोग्य तथा विदुषी हैं, जाकर महिलाओं में वेश-भूषा और आचार-विचार का प्रचार करें इस से उनको बड़ा श्रेय होगा क्योंकि अवस्था ऐसी ही है।

भविष्य-दर्शन और भविष्य वाणी

कई बार यह देखा गया है कि किसी २ नर या नारी में भविष्यत् में होने वाली घटनाओं को पहिले से ही प्रत्यक्ष रूप में देखने की अलौकिक शक्ति होती है और वह बतला देती है कि यह दुर्घटना होने वाली है। ऐसे उदाहरण अन्य देशों में तो बहुत पाये गये हैं परन्तु भारत में भी कम नहीं हैं। उन की सत्यता भी प्रमाणित हो चुकी है। 'डेली मेल' लिखता है कि ऐसी अलौकिक अति-मानुषी शक्ति रखने वाली स्त्रियों से मेरा उन स्त्रियों से मतलब नहीं जो रुपये कमाने की दृष्टि से लोगों के हाथ देख कर विश्वासी जनता को ठगती रहती हैं किन्तु उन भविष्य दर्शी स्त्रियों से मतलब है जिन में ५ ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त एक छठी ज्ञानेन्द्रिय और भी होती है जिसे हम द्वितीय-दृष्टि के नाम से पुकारते हैं। एक सज्जन लिखते हैं कि अपनी यात्रा में जो मुझे ऐसी स्त्रियों के साथ वास्ता पड़ा है उस के अनुभव से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि जिस प्रकार हमारी इन्द्रियों के सामने यह भौतिक संसार है इसी प्रकार सूक्ष्म तत्वों का एक ज्ञानमय जगत है जिसे अलौकिक पारदर्शी ही देख सकते हैं।

जिन को मैं मिला उन में से कई ऐसे थे कि जिन्हें अपने इष्ट, मित्र, प्रिय जनों की मृत्यु का ज्ञान घटना से बहुत पहिले हो चुका था, कई ऐसी थीं जिन्होंने मिलने से वर्षों पूर्व अपने पतियों को ज्ञानचक्षु द्वारा देख लिया था। किन्तु बड़ी अलौकिक स्त्री जिसे यह शक्ति जन्म-सिद्ध थी मुझे इंग्लैण्ड के दक्षिणी प्रदेश में एक जगह दावत में यूरोप के महाभारत युद्ध से एक या दो वर्ष पूर्व मिली थी। उस महान रात्रि-सभा में भविष्य-दर्शन विषय पर बात चल पड़ी। बहुत से निमंत्रित पुरुष नौ-सेना और स्थल सेना के थे जो कि स्त्रियों की ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों की हंसी उड़ाने लग पड़े। वाद विवाद में बढ़ा बढ़ी होगई, इतने में एक शान्त स्वर में आवाज़ आई—'भद्र पुरुषों ! मैं शान्ति के लिये प्रार्थना करती हूं। तुम लोग चाहे हंसना चाहो तो हंस कर उड़ा देना पर मेरी बात सुन लो।"

सारी सभा में सनसनी फैल गई क्योंकि बोलने वाली देवी अपनी भविष्य-वाणी के लिये बहुत मशहूर थी। वह फिर कहने लगी—"यह अगस्त १९१० का पहिला हफ्ता है। आज से चार वर्ष बाद इंग्लैण्ड इतिहास में विख्यात रहने वाले महायुद्ध में लगेगा। मैं देख रही हूँ कि इस धर्म युद्ध में और जातियां भी उसका साथ दे रही हैं और युनियन जैक विजयी होगया है।" वहां चारों ओर सन्नाटा छा गया। विपक्षियों के मुख पर हास्य रेखा दीख पड़तीथी। इस सन्नाटे को हटाते हुये गुप चुप लोग कहने लगे "झूंठ" "वह पागल है" इत्यादि। इतने में एक सफेद बालों वाले कर्नल ने कहाकि अधिक समालोचना करने की जरूरत नहीं है, इस तारीख को नोट करलो, देखो क्या होता है। "लेकिन परमात्मा न करे कि ऐसी दुर्घटना घटे" यह शब्द उसने अन्त में कहे।

यह घटना मेरी स्मृति से दूर हो चुकी थी कि १९१४ की वह याद रखने वाली ग्रीष्म ऋतु आई जब कि संसार इस खबर की प्रतीक्षा में था कि शान्ति होती है या युद्ध। उसके बाद मैं इस अति-मानुषी प्रकृति की देवी से फिर मिला-उस के पास सभी जल, स्थल सेना के अधिकारी जो उस दिन उस दावत में थे पहुंच चुके थे। वे बड़े आश्चर्य में थे लेकिन उस की अलौकिक शक्ति पर अभी विश्वास नहीं करते थे अतः उस से कहने लगे कि युद्ध में हमारी क्या गति होगी यह बतादो। यह बतलाने से उस ने इन्कार कर दिया। लेकिन उस वृद्ध कर्नल ने उस के मन की बात भांप ली और उस से बोले कि "मैं जान गया हूं कि तुम प्रत्यक्ष देख रही हो कि मैं हैम्प शायर पल्टन का नेता बन कर जाने पर घायल हो कर मर गया हूँ" और एक सप्ताह बाद जो मृत-पुरुषों की सूची निकली तो उस में उस का भी नाम था।

अप्रेल १९१६ में एक देवी ओसबर्न में अपने घायल पुत्र को देखने जा रही थी। उसे सबसे बड़े अस्पताल के चलते जहाज़ पर जाने का निमंत्रण था लेकिन जैसे ही वह जहाज़ से उतरी वह कहने लगी—आहा कैसा बड़ा भारी जहाज़ यह है! लेकिन यह अपनी अन्तिम यात्रा करने जा रहा है; वहां से लौटेगा नहीं।" उस जहाज पर जितनी मेट्रन, नर्सें, डाक्टर और अफसर थे सब अविश्वास से हंस पड़े और उस से इस का विवरण करने का आग्रह करने लगे। उसने उत्तर दिया—"मैं फिर कहती हूँ कि यह इस की अन्तिम यात्रा है जिससे यह वापस नहीं आयेगा। यहां खड़े २ ही मैं इस बात को देख रही हूँ।" जब मैंने नवम्बर १९१६ में ब्रिटैनिक के डूबने का सम्वाद सुना तो मुझे इतना भय हुआ कि वर्णन नहीं कर सकता। क्या मैं इस बात को विश्वास करने से इन्कार कर सकता था जब कि पीछे उसने मुझे यह बतलाया कि उसने जहाज़ को डूबते हुये देखा और डाक्टरों और नर्सों की बचा लेने का आग्रह करने की आवाज़ें सुनीं?

एक दिन यह विचित्र स्त्री इंग्लैण्ड के उत्तरीय भाग में उस होटल में आई जिसमें मैं रहता था। उस के आने का कारण यह था कि वह मुझे यह कहने आई थी कि मिडलैण्ड नगर में जो मेरा तबादला हुआ है उसे मैं स्वीकार कर लूं। स्वभावतः मुझे यह सुन बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि उसे मेरी बदली की खबर कैसे लग गई क्योंकि वह उसी दिन प्रातः मुझे आई थी। उसने फिर आग्रह किया कि "अभी स्वीकार कर लो क्योंकि उस फैक्टरी में बड़ी भारी दुर्घटना होने वाली है।" मैंने उत्तर दिया—"क्या बेवकूफी की बात है? यह फैक्टरी तो सारे इंग्लैण्ड में सबसे बड़ी और सब से सुरक्षित फैक्टरी है।" लेकिन अन्त में मैंने उसका कहना मान लिया और बदली स्वीकार करली। तीन सप्ताह बाद उसी फैक्टरी में बड़ी भारी आग लग गई जिस से अनेक प्राणी नष्ट हो गये और यह वही विभाग था जिस का मैं अध्यक्ष रहा था।

तीन महीने के बाद इस शक्तिशाली ज्ञान चक्षु ने फिर अपने मित्रों को आश्चर्य्य में डाला। स्त्रियों की सभा थी अतः स्वभावतः हम लोग ड्रेस तथा कपड़ों के उत्तम रंगों की बाबत बात चीत कर रहे थे। इस देवी की सम्मति ली गई

तो इस ने कहा—"मेरे प्रिय बन्धुओं तुम्हें प्रत्येक रंग सज जाता है लेकिन सब से बढ़ कर रंग के सम्बन्ध में—(उस ने कुछ संकोच करके कहा)—काला हां काला रंग अच्छा रहेगा क्योंकि शीघ्र ही दर्बार में शोक मनाया जायगा।" इस के बाद ही राज घराने में मृत्यु हुई और शोक मनाया गया। यह विचित्र स्त्री जानवरों से बड़ा प्रेम करती है। उसे एक कुत्ते से प्रेम था, परन्तु उसकी मृत्यु उसने तीन महीने पहिले देख ली थी, जब कि अभी वह बीमार भी न था।

उसे यह शक्ति बचपन से थी। उस का पिता उसे शैतान की मित्र कहा करता था, लेकिन आज विचार शील पुरुष उसे यह पदवी कभी न देंगे।

(संग्रहीत)

प्राचीन आदर्श किस शिक्षा में है?

लेखिका-अंजनादेवी आर्य्य

आजकल स्त्री शिक्षा का प्रचार उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त कर रहा है। प्रायः स्त्रियां बी० ए० और एम०ए० पास करती हैं, नवीन शिक्षा प्रणालीके पढ़े हुये युवक भी इस शिक्षा को अच्छा समझते हैं किन्तु हमे विचारना चाहिये, कि जिस विद्या के पढ़ने की आज्ञा हमे अनेक प्रयत्न करने पर प्राप्त हुई है उस विद्या को पढ़कर हमे क्या बनेगें? हमारा सच्चा लक्ष्य क्या है? हमने संसार के सन्मुख क्या आदर्श शिक्षित होकर रखना है? क्या हमने विद्या पढ़ के योरुप का आदर्श बनना है, या प्राचीन आदर्श सीता सावित्री का रखना है, हम ने विद्या पढ़ कर राम और कृष्ण को बनाना है, कि नकली अंग्रेज़ युवक?

हमारा देश प्राचीन आदर्श चाहता है हमारा देश राम और कृष्ण चाहता है, हमारा देश सीता सावित्री चाहता है, न की पश्चिमी आदर्श?

हम भारतीय हैं, हमें भारत का सच्चा आदर्श, प्राचीन सच्ची देवियों का आदर्श चाहिये। उसी से हमारा पुनरुत्थान हो सकता है। पश्चिमी शिक्षा का परिणाम जो निकल रहा है, वह देश के सन्मुख है। हमारा देश प्राचीन देवियां चाहता है, इसलिये स्त्री शिक्षा दे रहा है, किन्तु इस शिक्षा का परिणाम हमारी इच्छा के अनुकूल नहीं हो रहा है, इसका क्या कारण है? कारण साफ है, कि जिसका नमूना बनना हो उसी प्रकार के ढंग रंग से (जिस प्रकार वह हो) रहना योग्य है?

यदि हमें सीता सावित्री बनना है, तो योग्य है, कि हम भी उसी भांति अपना रहन सहन पठन, पाठन, रखें, उन्हीं पुस्तकों का अध्ययन करें। हमें अपने आर्य ग्रन्थ पढ़ने चाहिये।

हम नित्य भजन गाते हैं, कि—

"भारत के दिन वह पहले जगदीश फिर से लादे।"

किन्तु जबतक हम यत्न स्वयम् न करेंगे, तबतक कैसे भारत के दिन पहले आसकते हैं? हम बीज तो बबूर के बोते हैं, किन्तु इच्छा करते

हैं आमों की, यह कैसे हो सकता है ?

हमें योग्य है, कि हमको जो समय प्राप्त हुआ है, बड़े यत्न करने पर जो विद्या पढ़ने का अमूल्य समय प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ न खोवें, नहीं तो पश्चमी शिक्षा हमें अपने सच्चे लक्ष्य से कोसों दूर फेंक देगी जहां से लौटना कठिन हो जावेगा।

सिर्फ कहने से कुछ नहीं हो सकता जब तक यत्न न किया जावे, ऐसा कोई कार्य्य नहीं जो यत्न करने पर सुफल न हो, यदि हम यथा शक्ति यत्न करें तो सफलता हमारे साथ है।

कन्या गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य

गत मास के बाद कुल में सब प्रकार शान्ति है। यद्यपि गर्मी बहुत सख्त पड़ती रही है तथापि कन्याओं को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ रोगी गृह सब खाली रहे हैं। अब गर्मी का जोर कुछ कम हो रहा है और रात्रि को ठंढी हवा भी प्रायः चल पड़ती है। अतः ब्रह्मचारिणियों की नींद में कुछ बाधा नहीं पड़ती। गर्मी की तेज़ी से मच्छड़ तो बिल्कुल नष्ट हो गये हैं। किन्तु लैम्प के सामने बैठकर रात्रि को कुछ लिखना पढ़ना सर्वथा असम्भव है क्योंकि ज़मीन में मोटे २ चींटे निकल रहे हैं और लैम्प की रोशनी के कारण कीड़े मकौड़े बहुत घेर लेते हैं। यद्यपि साधारणतया स्वास्थ्य सभी का अच्छा है तथापि गर्मी के अत्युत्कट होने के कारण तथा धूप देरतक क्रीड़ा क्षेत्र में रहने से खेल न सकने से कइयों के भार में कुछ कमी हो गई है। आशा है कि अब वर्षा के आगमन पर ऋतु अनुकूल होने से यह कमी शीघ्र ही पूर्ण हो जायगी।

परीक्षा परिणाम

षाण्मासिक परीक्षा परिणाम निकल गया है। उस की रिपोर्ट भी सब संरक्षकों को भेजदी गई है। कुछ पीछे आई हुई, या रुग्ण या असावधान कन्याओं को छोड़ कर सभी ने अच्छी उन्नति की हुई प्रतीत होती हैं।

ग्रीष्मावकाश

इस वर्ष छुट्टियों में कन्यायें देहरादून न जाकर यहीं दिल्ली में ही रहेंगी, और यहीं पर उनके भ्रमण आदि का कुछ प्रबन्ध किया जायगा। किन्तु कई संरक्षक महोदय पत्र भेज रहे हैं कि उनकी कन्याओं को घर में जाने की आज्ञा दी जाय। अतः यह उचित प्रतीत होता है कि सब के लाभ के लिये यह बतला दिया जाय कि घरों में भेजने का गुरुकुल का नियम नहीं है। और ऋषि दयानन्दजी का मुख्य उद्देश्य इन नियमों के बताने में यह भी था कि संसारिक चिन्ता तथा घरेलू झंझटों से प्रथक रहकर, शान्त चित्त और सावधान मन से विद्यार्थी लोग विद्याध्यन कर करा सकें, अतः उनकी कन्यायें घर नहीं भेजी जा सकेंगी। जिन बुरी आदतों और अनियमितता आदि दोषों को हटाने का तथा नियम पालन कराने का यहां उत्कट प्रयत्न हो रहा है, घर पर जाने से वह सब कुछ नष्ट हो जायगा और पुनः वही कुप्रवृत्तियां कुलमें आवेंगी

जिनकी जड़ उखेड़ी जा रही है। अतः ब्रह्मचारियों के चरित्र संगठन के लिये अत्यावश्यक है कि माता पिता उन्हें घर बुलाने का आग्रह न करके उनके चरित्र को संगठित होने दें। तभी उनको अपनी कन्याओं को अपने से पृथक रखने का लाभ भी होगा। ग्रीष्मावकाश में घर ले जा कर अत्यनुचित लाड करके खिलाने, पिलाने, पहिराने से बच्चों का दिल अध्ययन जैसे कठिन और चरित्र संगठन जैसे तलवार की धार पर चलने वाले कार्य्यों की ओर से हट जायगा तो फिर माता पिता के कहने पर भी वह इधर न झुकेंगी फिर उन्हें पछतावा होगा। अतः संरक्षकों को पहिले से ही होशियार हो जाना चाहिये वरना "समय चूकि पुनि का पछिताने"।

खादी विभाग

खादी विभाग खूब संगठित हो रहा है। चर्खा सीखने और कातने का कार्य्य नियम पूर्वक चल रहा है। सत्याग्रह आश्रम साबरमती से श्री मगनलाल गान्धी जी की कृपा से खादी-शिक्षका भी आगई हैं। वह लडकियों को क्रमानुसार रुई धुनुकना, पूनी बनाना आदि सिखा रही हैं। दो तीन खड्डियां भी लग गई हैं लेकिन चूंकि यह एक तो जापानी खड्डी हैं जिन के चलाने में झंझट भी बहुत रहता है, कभी कुछ विगड़ा कभी कुछ, दूसरे यह दान में कन्या गुरुकुल को मिली हैं और हमारे यहां दान की यह कहावत मशहूर ही है कि "मरी वछिया वाम्हन के नाम" अतः इनसे कार्य्य ठीक चला नहीं था। अब चल पड़ा है। और देशी खड्डी भी मंगाई गई है जिस के आने की शीघ्र ही सम्भावना है। आने पर कपड़े बुनने का काम सिखाना शुरू हो जायगा।

कन्या गुरुकुल से धन सहायता की अपीलें

कन्या गुरुकुल में प्रत्येक डाक से एक दो पत्र ऐसे आजाते हैं जिनमें कन्याओं को गुरुकुल में प्रविष्ट करने की प्रार्थना के साथ यह भी प्रार्थना की जाती है कि उन की कन्या को विना-शुल्क या अर्धशुल्क पर प्रविष्ट कर लिया जाय। किन्तु जब यहां से यह लिखा जाता है कि इस प्रकार की रियायत देना हमारी सामर्थ्य में नहीं है क्यों कि यहां पर कोई ऐसा फण्ड नहीं है जिस में से धन की सहायता दी जाय तो लोग बहुत सी बातें बनाते हैं। कि "अमीरों के लिये गुरुकुल खोला है। सब लोग तो धन की कदर करते ही थे, आर्य्यसमाज का गुरुकुल भी खुला तो उस में भी पक्षपात होता है कि अमीरों की लड़कियां ली जाती हैं, गरीबों की सुनवाई नहीं होती।" कई लोग लिखते हैं कि हम अमुक समाज के अधिकारी रह चुके हैं, या हैं, और हमने समाज का बड़ा काम किया है अतः हमारी कन्याओं को मुफ़्त में जरूर ले लेना चाहिये। हमारी आमदनी कम है, बच्चे बहुत हैं इत्यादि।" हमें आश्चर्य्य होता है कि लोग कन्या गुरुकुल को न मालूम क्या समझ रहे हैं ? उन्हे १५) भी बहुत मालूम होते हैं परन्तु उच्च शिक्षा और उत्तम निरीक्षण और सदाचार की शिक्षा आदि जो कुछ गुरुकुल देरहा है और उस को भी विना किसी शुल्क के—क्यों कि १५) रु० मासिक तो भोजन, वस्त्र, पुस्तकें, धुलाई, तेल आदि में ही

व्यय हो जाते हैं-वह किसी गिनती में ही नहीं आती है। वास्तव में यही तो बड़ी भारी चीज है जो अन्यत्र दुर्लभ है। और इसमें गरीब, अमीर का भेद है ही नहीं। अतः जो लोग गुरुकुल से मुफ़्त में कन्या पढ़ाना चाहते हैं उन्हें सोचना चाहिये कि इतना तो गुरुकुल मुफ़्त में दे रहा है। अब उनका भी तो कुछ कर्तव्य है? उन्हों ने सन्तान उत्पन्न की है, तो उनके भरण पोषण का भार उन्हें उठाना ही चाहिये। यदि वह नही उठा सक्के तो स्थानीय समाज से या अन्य दानी सम्बन्धियों से धन की सहायता लें, परन्तु कन्या गुरुकुल से इस प्रकार की सहायता की इच्छा रखना और न मिलने पर रोष प्रगट करना कहां तक युक्ति युक्त है।

दूसरी ओर हम दानशील देवियां तथा सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि जहां हमारे देश में पण्डों और महन्तों तथा मन्दिरों को हज़ारों और लाखों रुपये का दान दिया जाता है वहां उसका कुछ भी अंश कन्याओं को छात्र वृत्ति के रूप में देने की ओर रूचि करें या करावें।तो ऐसे लोगों की सन्तान का कल्याण हो सक्ता है जो स्वयं १५) व्यय करके गुरुकुल में कन्या नहीं पढ़ा सक्के। कन्यायें ही हमारे देश की भावी जाति की मातायें बनेंगी, जैसी उत्तम यह होंगी उतनी ही उत्तम सन्तान होगी उतना ही देश व जाति का उत्थान होगा। अतः इस से बढ़कर पवित्र कार्य्य और क्या हो सक्ता है? कन्याओं को गुरुकुल की शिक्षा दिलाना ही शिक्षा प्रचार के कार्य्य को दृढ़ करना है और देश व जाति का उत्थान करना है अतः जितना भी इस में सहयोग दिया जाय थोड़ा है। हरएक व्यक्ति और समाज को इस यज्ञ में आहुती डालनी ही चाहिये।

गुरुकुल का स्थायी भवन

तीन वर्ष हो गये हैं परन्तु कन्यागुरुकुल के स्थायी भवन बनाने का निश्चय ही नहीं हो रहा है। भवन तो क्या जमीन भी नही ली गई, कहां पर ली जायगी यह भी निश्चय नहीं हुआ है। मालूम होता है कि कन्या बिचारियों के लिये लोगों का ध्यान ही नहीं है? वरना ऐसे शुभ काम को इस प्रकार नष्ट करने का क्या मतलब? कोई भी संस्था स्थायी-जगत् की दृष्टि से क्योंकि वैसे तो यह संसार ही स्थायी नहीं है-नहीं बन सक्ती जबतक कि उसका भवन न हो। परन्तु स्थायीपन की बात जाने दीजिये यहां तो स्थानाभाव का भी बड़ा भारी प्रश्न है। वर्तमान कोठी में तो जितनी कन्यायें हैं उनका ही गुजारा बड़ी मुश्किल से हो रहा है। इस समय यहां पर चर्खे और खड्डी का भी काम शुरू हो गया है, कन्याओं की संख्या भी ११६ है, काम करने वालियां भी बहुतेरी हैं। सभी को स्थान की तकलीफ हो रही है। जिन वराण्डों में भोजन करना होता है तो वहीं सफाई कराके फिर खाने के वास्ते वर्त जाते हैं।

जिन कमरों में सोते हैं उन्हीं में दिन को क्लास लगाने पड़ते हैं क्योंकि वर्षा प्रारम्भ होगई है, टीन शेड सब पानी चूने से बैठने लायक नहीं रहते हैं, भोजन करने वाले स्थान में पानी भरें जाता है। इत्यादि कई आपदायें आती हैं जिन्हें यहाँ के रहने वाले ही अनुभव कर रहे हैं।

आर्य्य जनता से कई वार अपील की जा चुकी है कि वह स्थायी भवन निर्माण करने में

सहायता देवे किन्तु अभी तक किसी ने उत्साह बर्धक उत्तर नहीं दिया। तीन चार महीने और रहते हैं फिर वार्षिक उत्सव होगा, और कन्यायें प्रविष्ट होंगी। अतः स्थान की तगी दिन पर दिन बढ़ती ही जारही है। यदि यह शीघ्र हल न की गई तो कन्याओं का प्रवेश करना बन्द करना पड़ेगा। अतः जनता तथा संरक्षकों को चाहिये कि स्थायीभवन के लिये जहाँ तक हो सके जल्दी करें ताकि अधिक से अधिक संख्या में कन्यायें प्रविष्ट की जा सकें और स्त्री शिक्षा का प्रचार खूब फैले।

ज्योति

ज्योति का यह ७ वें वर्ष का २ रा और ३ रा अंक एक साथ निकाला गया है ताकि एक मास जो वह पिछड़ गई थी वह पूरा हो जाय। इस मास इसको मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद बनाने का विशेष प्रयत्न किया है इस के कई लेख बड़े लाभकारी और स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी हैं अतः प्रत्येक संरक्षक तथा पाठक पाठिका को चाहिये कि उसे दिखा २ कर ग्राहक बनाकर इसकी सहयता करें ताकि यह स्थायी बनी रहे और समाज की सेवा करती रहे। आर्य्य समाजों के मन्त्री महोदयों से भी प्रार्थना है कि वह भी इसे मंगाकर सप्ताहिक अधिवेशन में दिखा कर ग्राहक बनाने का यत्न करके हमारी सहायता करें।

विचार प्रवाह

२५ जुलाई

आर्य-धर्म-संरक्षिणी सभा की ओर से घोषणा प्रकाशित हुई है कि, आगामी २५ जुलाई को प्रत्येक आर्यसमाज, सरकार की आर्यसमाज के प्रति जो इस समय नीति है, यदि उस को नीति कहा जा सकता हो—उसके विरोध में सभायें कर, भावी कार्यक्रम की घोषणा करे। नगर कीर्तनों को रोक कर सरकार ने एक शान्त नागरिक के जन्मसिद्ध अधिकार को कुचला है। अतः इस के विरुद्ध प्रत्येक आर्य समाजी को ही नहीं, अपितु, प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी नागरिक को रोष प्रगट करना चाहिए। पर वर्तमान सरकार शाब्दिक शोर से डिगने वाली नहीं है। इस आवाज़ के पीछे कोई बल भी होना चाहिए। सरकार शक्ति के सामने ही घुटने टेकती है। अतः इस दिन पवित्र मन से, शुद्ध अन्तःकरण से, परमात्मा को साक्षी कर घोषणा करनी चाहिए कि, यदि सरकार अपनी नीति को आगे भी इसी तरह ज़ारी रखेगी तो हम लोग अपने स्वतः सिद्ध अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह को उद्यत हैं। सार्वदेशिक सभा द्वारा सत्याग्रह संग्राम की घोषणा करने पर हमारी समाज सर्व प्रथम आहुति देने को उद्यत है, और अपनी समाज में हम सर्व प्रथम

आगे बढ़ कर वैदिक धर्म की ध्वजा को उठाकर चलने को तय्यार हैं, ऐसे दृढ़ निश्चय द्योतक भावों का प्रकाश होना चाहिए।

हमें पूरा विश्वास है कि, जो महत्व भारत के इतिहास में ६ अप्रेल को है वही महत्व और गौरव २५ जुलाई को आर्यसमाजिक जगत् में दिया जायगा। जिस प्रकार ६ अप्रेल के बाद सम्पूर्ण भारत में नागरिक अधिकार रक्षा के लिए व्यवस्थितरूप से युद्ध प्रारम्भ होगया था, उसी प्रकार २५ जुलाई से आर्यसमाज उस से भी अधिक व्यवस्थितरूप से और तथा अधिक दृढ़ निश्चय के साथ अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जूझ पड़ेगा। पर हम यहाँ उनसे-जिनकी धमनियों खून खौल रहा है, जिन की आत्मा संग्राम में जाने को उतावली होरही है, जिनके दिल वैदिक-धर्म-ध्वजा को धूल में लोटते देख तड़प रहे हैं, और जो बार बार के अपमान से क्षुब्ध हो उठे हैं तथा वे तरह चिढ़ गए, बड़ी कठिनता से धीर धर रहे हैं-प्रार्थना करते हैं कि, संग्राम छिड़ने पर पीछे पग मत रखिएगा, स्वार्थ के जालों में पड़िएगा बस आगे ही चलते जाइयेगा और क़िले के फाटक में पैर रख कर ही दम लीजिएगा। संग्राम में जाने से पहिले सब कुछ धर्म-वलि-वेदि पर चढ़ा जाइये। जौहर-व्रत-धारी राजपूतों के समान इस निश्चयके साथ "कार्य्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयं" रंग स्थली की ओर पग रखिये तभी आपके रक्ताञ्जलि दान से वैदिक धर्म रूपी सूर्य्य का ग्रहण दूर होगा, तभी सफलता का ताज आपके सिर पर होगा। वरना वही अवस्था होगी जो आज म० गान्धी की असहयोग सेना की है।

आशा का स्थान

वर्तमान जातीय और साम्प्रदायिक झगड़ों को प्रतिदिन बढ़ते देखकर कट्टर से कट्टर राष्ट्रीयवादी का दिल भी अस्थिर हो जाता है, और समझने लगता है कि भारत में राष्ट्रीयता का फूलना फलना आकाश कुसुम के समान है, यह कुछ विचारकों की निरी कल्पना है, इस का आधार कुछ भी नहीं है। पर इस घनघोर अन्धकार में भी राष्ट्रीयता के प्रदीप पूर्णप्रकाश से जहां तहां जल रहे हैं। इन दीपकों को साम्प्रदायिक आँधी के प्रबल थपेड़े नहीं बुझा सके हैं। इन दीप-शिखाओं का आलोक ही इस समय हमको विश्वास दिलाता है कि भारत में एक राष्ट्रीयता की स्थापना, महान्-भारत-राष्ट्र का विचार केवल कल्पना मात्र नहीं है, प्रत्युत एक यथार्थ वस्तु है। मैसूर राज्य के दीवान पद पर वहीं के निवासी अमीनउलमुल्क मिर्ज़ा एम० इसमाइल, सी० आई० ई०, ओ० बी० ई० नामक मुसलमान सज्जन को मैसूर नरेश द्वारा नियुक्त होते देख बहुत से हिन्दू घबड़ाये थे। उनका ख़्याल था कि, मैसूर राज्य में भी अब हिन्दुओं पर अत्याचार प्रारम्भ होजायंगे जैसा कि हैदराबाद और भूपाल की रियासतों में हो रहा है। पर हमें विश्वास था कि, मैसूर नरेश इन भावों से ऊपर है। राज्य के पदों पर सर्व प्रथम अधिकार वहीं के निवासियों का है। इस कारण मिर्ज़ा एम० इसमाइल की दीवान पद पर नियुक्ति देखकर हम चकित नहीं हुए थे, पर हमने समझ लिया था कि, मैसूर राष्ट्रीयता की ओर पग बढ़ा रहा है। हैदराबाद के निज़ाम जब हिन्दू अधिकारियों को बर्ख़ास्त कर रहे हैं तब मैसूर नरेश का

जातिगत भावो से प्रभावित न होना, और कट्टर हिन्दू होते हुए भी विभिन्न धर्मावलम्बी की योग्यता और सेवा का मान करना सचमुच इस समय एक साहस का कार्य । प्रसन्नता है को बात है कि, मिर्ज़ा इस्माइल महोदय ने भी अपने आपको उस पद के उपयुक्त सिद्ध कर दिया है । मैसूर की प्रतिनिधि सभा में बोलते हुए श्री मिर्ज़ा इस्माइल ने कहा है कि, "मैं अनुभव करता हूं कि मुझे भी शामिल करके हम में से ऐसा कोई न होगा जो इस एसेम्बली का उपयोग राज्यकी सार्वभौमिक सेवाओंकी अपेक्षा संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए कर अपने पद को लाँच्छित करे । अगर हम, एक राज्य के तौर पर वास्तविक उन्नति करें और वाह्य संसार से प्रशंसा और मान को प्राप्त करें तो हमारे लिए आवश्यकता है कि, हम अपने कामों को राष्ट्रीय दृष्टि से देखें ।" यह सिर्फ विचार ही नहीं है पर क्रियायें भी प्रगट होने लगी हैं । एक प्रश्न के उत्तर में दीवान ने कहा कि, 'यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है कि, बेकारी के सम्बन्ध में जाने वाले एक ही जहाज़ में सब जातियों के लोग भेजे जायंगे । ब्राह्मण और अब्राह्मण का भेद न किया जायगा नौकरियों में आदमियों की नई भर्ती के सम्बन्ध में केवल योग्यता पर ही विचार होगा ।' ब्रटिश भारत से मैसूर राज्य कई बातों में पीछे है पर राष्ट्रीयता के क्षेत्र में आगे बढ़ा हुआ है । ऐसम्बली में कानून द्वारा गोवध निषेध करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित किया गया । इसकी उपस्थिति ऐसम्बली के सभ्यों की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता को सूचित करती है । प्रस्तावक एक ब्राह्मण सज्जन थे; आपने इसको आर्थिक दृष्टि से उपस्थित किया था । समूचा विवाद प्रतिनिधियों की योग्यता को दिखाता है कि किस वे उत्तरदायित्व के भाव से इन बातों की ओर देखते हैं । मैसूर का यह नया पग रखना निराश आत्माओं के लिए जादूका काम देगा । हमें विश्वास है कि, इस से साम्प्रदायिकता को गहरी ठेस पहुंचेगी और राष्ट्रीयता के स्वप्न देखने वालों का बल बढ़ेगा ।

समस्या का हल

हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य बढ़ता ही जाता है । जितने उपाय किये जाते हैं उतना ज़्यादा यह उग्ररूप पकड़ता जा रहा है । गोस्वामी तुलसी दास की यह पंक्ति चरितार्थ हो रही है कि "जस जस सुरसा बदन बड़ावा, तासु दुगुण कपि रूप दिखावा" । कलकत्ते को दंगे की चिनगारियां बुझ भी न पाईं थीं रावलपिण्डी, दिल्ली, और पवना से दंगों के समाचार आने लगे । प्रति दिन कहीं न कहीं से ऐसे समाचार आही जाते हैं । पवना जहाँ से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की पवित्र धारा निकल रही थी वहाँ से भी अनबन होने का समाचार मिला है । एकता-परिषद के प्रस्ताव ताक पर धरे हैं, उनकी ओर किसी जाति का और समुदाय का ध्यान नहीं है । काँग्रेस की कार्य-कारिणी-समिति ने एकता परिषद् के प्रस्तावों के प्रचार के लिए श्रीमती सरोजनी नायडू, मौलाना अब्दुल कलाम अजाद और पण्डित मोतीलाल नेहरू की एक समिति की योजना की है । इस के लिए प्रारम्भिक व्यय भी स्वीकार किया गया है । भावी कार्यक्रम इस सम्बन्ध में

क्या हो और उस पर क्या खर्च पड़ेगा, इसका लेखा लगाने के लिए भी कहा गया है। कांग्रेस इस अवस्था में इससे ज्यादा और कुछ कर भी नहीं सकती थी। जो कुछ करने को निश्चय किया है वह स्तुत्य है। शिक्षकों की परिषद् में बोलते हुए हैदराबाद राज्य के अर्थ सचिव ने वर्तमान जाति गत झगड़ों की उग्रता का कारण बताया कि, शिक्षाणालयों में भी जातिगत और साम्प्रदायिक तथा मजहबी भावों को स्थान दिया गया है। निस्सन्देह यह कड़वी सचाई है। हमें मानना होगा कि, शिक्षित लोग ही इन झगड़ों के कारण हैं। इन शिक्षितों को पैदा करने वाले वर्तमान शिक्षणालय हैं। टर्की के समान हमको भी सब मकतब, पाठशालायें और ऐसी शालायें जहाँ राष्ट्रीय भावों के घातक भावों की और जाति-गत साम्प्रदायिक भावों की शिक्षा दी जाती है, सर्व प्रथम नष्ट करना होगा। मुल्लाओं और पण्डितों का समाज पर प्रभुत्व ही इस सारी खुराफन का कारण है। इनको नष्ट करना हमारा प्रथम उद्देश्य होना चाहिए। डा० किचलू ने माना है कि, ये झगड़े धार्मिक नहीं राजनैतिक हैं। इन झगड़ों को बढ़ाने वाली सरकार नहीं है तो उसकी स्वीकृत नीति अवश्य है। हम इण्डियन सोशल रिफारमर के निम्न वाक्यों से पूर्णतः सहमत हैं—The steady pressure of British rule previous to the intrusion of communal considerations kept the Indian communities from antagonism. When that rule began to differentiate between Hindu and Mehomedan and Anglo Indian and Sikh, its foundations became loosened and its force as a unifying agent began to relax. It has now to shape its course in constant fear of offending the susceptibilities of this or that community. It can no longer say as it could in the last century in the words of Oliver Cromwell 'The state takes no note of men's beliefs. It has become involved in a communal maze where it can please none and must offend all. It is not essy to suggest the means by which it can extricate itself from its present invidious position But it must extricate itself somehow or other. For otherwise it would be compassing its own certain ruin," ये शब्द स्पष्ट हैं, कोई टिप्पणी नहीं चाहते। जब तक विदेशी राज्य रहेगा तबतक यह आशा करना कि जातिगत वैमनस्य के भावों को बढ़ाने वाले उपायों को रोका जायगा आकाश के फूल के समान है। वर्तमान अवस्था को दूर करने का उपाय केवल एक यही है कि स्वातन्त्र्य भावना को उद्दीप्त किया जाय। देश के ध्यान को, लोगों की शक्तियों को, स्वतन्त्रता की ओर केन्द्रित किया जाय। प्रत्येक भारतवासी के हृदय में में एक महान-संयुक्त भारतीय-राष्ट्र की कल्पना चित्रित की जाय तभी यह समस्या हल होगी। पैक्ट और समझौता-सभायें दोनों जातियों को मिलाने में असमर्थ हैं। यह रोग को नष्ट न करेंगी केवल ऊपरी उपचार मात्र करेंगी। रोग थोड़ी देर के लिए शान्त हो जायगा। जब प्रगट होगा तो दुगने वेग से। इसलिए इन प्रयत्नों को छोड़ कर हमें स्वाधीनता के विचारों

का प्रसार करना चाहिए। स्वाधीनता की तड़प, स्वतन्त्रता की प्रबल लालसा, संयुक्त भारतराष्ट्र के दर्शनों की उत्कट उत्सुकता और स्वराज्य की लगन ही इन अवस्थाओं को दूर करने में समर्थ हैं।

गो हत्या

हमारे शास्त्रों ने "अहिंसा परमो धर्मः" माना है। प्रायः सभी सभ्य जातियां इसे धर्म मानते हैं लेकिन जब क्रियात्मकरूप से इसके प्रयोग का समय आता है तो बहुतेरे इस से खसक जाते हैं। वही लोग जो अहिंसा परमो धर्मः का नाम लेकर धर्म की पुकार करते हैं जब स्वार्थ के वशीभूत होते हैं या ज़िद पर चढ़ जाते हैं तो हिंसा की कोई परवाह नहीं करते। हिंसा के सूक्ष्म रूप की ओर तो कोई ही खयाल करता होगा, लेकिन हिंसा के मोटे अर्थ अर्थात् "हत्या करने" पर ही ध्यान नहीं देते। यह बात उन हिन्दू भाइयों पर लागू है जो पल्टनों के लिये सैकड़ों गायों के वध को भी चुपके २ सहन कर लेते हैं, अथवा उन गो-हत्यारों के साथ सहयोग भी करते हैं किन्तु बकरीद आदि मुसल्मानी त्यौहार पर एक गौ की कुर्बानी—और उसे भी वह बचा तो सकते ही नहीं-पर सैकड़ों मनुष्यों की हिंसा करा लेते हैं। हम गौ को "अघ्न्या" मानते हैं और गौ हत्या को महापाप समझते हैं किन्तु "अल्पस्य हेतो र्बहुहातु मिच्छन् विचार मूढ़ः प्रति भासि" थोड़े लाभ के लिये बहुत हानि उठाना कहां की बुद्धिमत्ता है? एक गऊ को बचाने के लिये झगड़ा उठा कर अनेकों गौओं का जिह्म जिद्दा वध करा देना और बहुतेरे हिन्दू मुसल्मानों का सिर फटना, मरना, धन की हानि आदि क्या अहिंसा है? हमारा यह मत तो अवश्य है कि सभी न्यायपूर्ण और अहिंसात्मक आन्दोलनों द्वारा गोवध शीघ्रातिशीघ्र रोकने का प्रयत्न किया जाय ताकि जहां संसार से हत्या कम हो, वहां हम भारतीयों की आर्थिक दशा भी उन्नत हो। क्योंकि जो गोहत्यारे लोग गौमाता की हत्या कर रहे हैं वह न केवल एक पशु को ही मारते हैं वरन् सहस्त्रों और हजारों लोगों को भूखे मारते हैं। इन्ही पापों से तो देश में दुःख और अशान्ति का राज्य हो रहा है। घी, दूध, मखन, की कौन कहे पेट भर चने भी मिलना दूभर हो गया है। खेती का भी नाश, ईंधन की हानि, और अमृत मय दूध, घी आदि का अभाव क्या थोड़ी हानि है? हम इस विषय में 'माडर्न' रिव्यू' के विचारों से बिल्कुल सहमत हैं। उस का कहना है कि-यदि वर्तमान कालीन हिन्दू गो हत्या के विरुद्ध न भी होते तोभी हमारा विचार इस बात में इतना ही दृढ़ था क्योंकि हम गो-हत्या को आर्थिक तथा-परोपकार की दृष्टि बुरा समझते हैं। चाहे यह भाव बहुत उच्च न हो तथापि हम यह नहीं चाहते कि वह परोपकारी पशु जो हमारे बचपन में हमें हमारा एक मात्र भोजन प्रदान करता है, जब हम बड़े होते हैं तो हमारे भोजन की मुख्य चीज़ देता है, जो हमारे कृषि कार्य्य, व्यापार तथा गांव की यात्रा में सहायता देता है उसकी हत्या की जाय। जिन घरों में गौवें रहती हैं वह घर वालों के साथ ऐसा प्रेम दिखलाती हैं, और इतना लाड़ करती हैं कि मनुष्य क्या करेगा। उनकी कृतज्ञता देखकर तो उन लोगों का दिल भी जो गौ-का देवता नहीं मानते हैं-पसीज जाता है और वह इस की हत्या के विरुद्ध हैं

तथापि हम गौ हत्या को रोकने के लिये इतनी दूर तो नहीं जांयगे जितनी कि कट्टर हिन्दू चले जाते हैं: गो हत्यारे की हिंसा या हत्या न करेंगे। कट्टर हिन्दुओं को सोचना चाहिये कि असंख्य गायें जो कटती हैं वह वलि नहीं वल्कि भोजन के लिये। लेकिन जब हिन्दू न तो इतनी घोर हत्या को रोक सकते ही हैं न रोकने का यत्न करते हैं तो फिर इस में क्या बुद्धिमत्ता है कि मुसल्मानी त्यौहारों बकरीद आदि में जो पूर्व की अपेक्षा बहुत कम वध है उसे रोक कर प्रायः दंगे करने का अवसर देवें।

यदि मुसलमान वलि-पशु को जलूस निकाल कर लेजाने पर उतारू ही रहें तो हिन्दुओं को चाहिये कि वह वे समझी न करें। क्योंकि इस से गो हत्या तो रुक सकती ही नहीं। कभी २ ऐसा अवश्य होता है कि जितना ही हिन्दू लोग उतारू होते हैं कि गौ की वलि न चढ़े उतना ही मुसल्मान अधिक वध कर डालते हैं। ज़िद का जवाव ज़िद होता है..................।"

आशा है कि हिन्दू इस प्रश्न पर शान्त चित्त से विचार करेंगे और ऐसा तरीका स्वीकार करेंगे जिस से दंगे फिसाद भी न हों और गो वध भी वन्द हो। वकरीद तो निकल गई परन्तु दंगे अभी तक चले जा रहे हैं। प्रतिहिंसा के भाव एक वार जागृत होने पर दूर मुश्किल से होते ह। अब मुसल्मानों का दूसरा त्यौवहार मुहर्रम भी पास आ रहा है। कुछ उपाय ऐसा होना चाहिये कि प्रति हिंसा का भाव दूर हो कर भ्रातृ भाव फैले। वरना गो हत्या हटाते २ नर हत्यायें करना कहां तक धर्मानुकूल होगा? मुसलमान भाइयों को भी सोचना चाहिये कि त्यौहार आनन्द मंगल के लिये मनाये जाते हैं। परन्तु जिन त्यौवहार में ऐसे कार्य्य जानकर किये जांय कि दंगे फिसाद बढ़ें वह कहां तक त्यौहार कहे जा सकते हैं, और उनका लाभ क्या? आनन्द तो होता नहीं उल्टे शोक और हानि होती है। धर्म के नाम पर अधर्म होता है। यदि हिन्दुओं के सिर फटते हैं, वह घायल होते हैं, उन का व्यापार खराब होता है तो मुसल्मानों की भी तो इसी प्रकार हानि होती है। फिर भला ऐसी ज़िद रख कर हिंसा का प्रचार करना क्या धर्म है? कभी नहीं।

बाजा ध्यान हटाता है या दंगे?

मस्जिदों के सामने वाजा बजने का प्रश्न गोहत्या से भी जटिल हो रहा है यद्यपि इस में गोहत्या की भांति ज़रा भी हानि नही है। यदि मस्जिदों के सामने बाजा बजने से मुसलमान भाइयों की नमाज़ में बाधा पड़ती है और उनका ध्यान बढ़ता है तो बाजा रोकने के लिये दंगे संगठित करने और मारकाट करने में क्या ध्यान समाधिस्थ होता है? यदि जलूस निकाल कर हिन्दू, आर्य्य समाजी या सिक्ख अपने कीर्तन करते समय बाजा मस्जिद के सामने से बजाते हुये निकल भी जांय तो यदि निवाज़ में विघ्न पड़ेगा भी तो ५, १० मिन्ट के लिये, परन्तु यह जो मस्जिदों में इकट्ठा होकर मुसलमान भाई जलूस को रोकने के लिये ईंटें पत्थर फेंकते हैं, मार काट करते हैं, लूट मचाते हैं यह क्या सावधान चित्त होने के लिये? कभी नहीं। वही प्रतिहिंसा का भाव उन में प्रवल हो रहा है।

कलकत्ते से अभी फिर दंगे की दुखदायी

खबरें आरही हैं। वहां राजेश्वरी के जलूस को पहिले तो रोक ही दिया गया था किन्तु अब निर्दिष्ट पथ से निकालने पर भी मुसल्मान भाइयों ने फिसाद मचाया है। अभी तक जो रिपोर्ट है उस से पता लगता है कि चार की मृत्यु हो गई है और ७० घायल हो चुके हैं। इन घातक दंगों का कारण ? कारण क्या बताया जा सक्ता है सिवा इस के कि धार्मिक नगर कीर्तन में बाजा बजता निकला। ऐसा मालूम होता है कि मुसलमान लोग स्वेच्छा चरिता पर तुले हुए हैं। सर्कार ने पहिले जो दंगे की आशंका से राजराजेश्वरी के जलूस को रोक दिया था, वह बड़ी भारी भूल थी। क्यों कि उस से उसने अजान में या जान में मुसलमानों को प्रोत्साहित ही किया कि वह जलूस न निकालने देने की अपनी मांगपर डटे रहें। ऐसा मालूम होता है कि हमारे मुसलमान भाई मस्जिद के सामने वाजा लाने के प्रश्न को लेकर पागल हो गये हैं। वह यह समझते ही नहीं कि जो वह चाहते हैं वह कभी भी, किसी ने नहीं मांगा और न किसी को मिला ही। निष्पक्षपाती और बुद्धिमान पुरुष चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान सभी इस आन्दोलन को पागलपन कह रहे हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हिन्दू तथा सर्कार इस मांग को पूरा करेंगे अथवा न्याय और शान्ति और प्रजा के अधिकारों की रक्षा होगी ? और यदि अधिकारों की रक्षा होगी, मुसल्मान भी असहिष्णु रहेंगे, तो क्या हिन्दू मुस्लिमऐक्य की कभी आशा होगी ? कभी नहीं ! जब एक दल अपने अन्याय पूर्ण अधिकारों पर डटा रहे तो दूसरा दल कैसे मेल कर सक्ता है ? यह तभी हो सक्ता है जब कि आक्रमणकारी दल का आधिपत्य दूसरा दल स्वीकार करले। क्या हिन्दू इतने कायर हैं ? नहीं ! राजनीतिज्ञों को चाहिये कि वह इस बात को ध्यान से सोचें कि जबतक इन दोनों दलों में मेल न हो तब तक चुनाव और सुधार व्यर्थ हैं। इन से तो केवल इन दोनों का मन मुटाव ही बढ़ेगा। इन राजनितिज्ञों को चाहिये कि कौंसिल और चुनाव के झगड़ों को छोड़कर अपने समय, शक्ति और ध्यान को हिन्दू मुसलिम झगड़ों के कारण हटाने में लगावें और या तो इस प्रश्न पर दो चार महीने प्रयत्न करके इसे हल करलें अथवा इसे अशक्य समझ कर हमेशः के लिये त्याग दें। कौंसिल न तो शान्ति फैला सक्ती हैं, न स्वराज्य ला सक्ती हैं, जबतक कि ऐसी जहालत मौजूद है। अतः पहिले इन मूर्खतापूर्ण भावों को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिये और वह तभी हो सकेगा जब स्वराजिस्ट, नैशनलिस्ट, प्रतिसहयोगी, असहयोगी, नर्म और गर्म हिन्दू और मुसलमान हृदय से इस प्रश्न को हल करने पर लगेंगे। मनुष्य के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है ? एक वह भी तो समय ही था जब कि हिन्दुओं की राम नौमी आई थी और हिन्दू मुसलमानों ने रल मिल कर मनाई थी। वह बहुत दूर सतयुग का दृश्य तो नहीं है। मन की भावनाओं का ही तो खेल है। भावनाओं को शुद्ध करो, विश्वप्रेम से पूरित हो तो यह एक क्षण का कार्य्य है। इसकी महत्ता को अनुभव करना चाहिये।

अब्दुलकरीम

ज्योति के गतांक में पाठकों ने अब्दुलकरीम

के आत्म समर्पणको पढ़ा है, अब साम्राज्यवाद ने अपने विस्तृत जाल में एक और नरवीर को पकड़ पाया है । यह है रिफ़ का नेता वही अब्दुलकरीम ! इसे देश निकाला देकर मैडेगस्कर के पास एक छोटे द्वीप रुनियन में रखा गया है । जिस किसी ने मरोको युद्ध का हाल पढ़ा होगा उसे पता होगा कि यद्यपि अन्त में विजय तो मित्र राष्ट्रों की ही हुई थी क्योंकि उनकी शक्ति ही अधिक थी तथापि मान, यश, और न्याय सभी अब्दुल करीम की तरफ थे । पांच वर्ष तक दश हजार रिफ लोग जिनके मित्र भी मिलालें तो भी ५० हजार से अधिक संख्या में नहीं होते—५० हजार फ्रांस वालों तथा एकलाख १० हज़ार स्पेन वालों, द्वारा हवाई जहाजों, ज़हरीली गैसों और अन्य युद्ध सामग्री की सहायता से तथा असंख्य धन की मदद से आक्रान्त होते रहे हैं, और पीछा किये जा रहे हैं ।

अन्त में यह 'बाग़ी' अर्थात् राजविद्रोही लोग जो कि इतने हठी थे कि अपने घर और चूल्हे विदेशियों को देने को तैयार न थे परास्त कर लिये गये हैं और साम्राज्य—सत्ता बाद के इतिहास में एक और सफलता का उदाहरण अंकित हुआ है । युरुप को यदि ऐसे और विजय प्राप्त होंगे तो उसे खर्च भी बहुत ज्ञात हुआ करेगा यह सरल काम नहीं, और सच तो यह है कि चाहे विजय प्राप्त हो गया है तथापि साम्राज्य सत्ता का वहाव तो घट गया ही है । जो साम्राज्य-सत्ता-वादी थे भी उन्होंने भी अपने अत्याचारियों के जादू से तो छूट गये हैं और अपने इस भाव के प्रगट करने का मौका ही देखते हैं । अब्दुल करीम महावीर ने यद्यपि वह अन्त में परास्त हो गया है तथापि-एशिया और अफ्रीका को यह दिखलाने में कि साम्राज्य सत्ता को हटाने का विजय प्राप्ति तक यत्न करना ही चाहिये—कम भाग नहीं लिया है ।

शिमले के रजवाड़ों का सम्मेलन,

पहाड़ी जातियों में कई कुप्रथायें फैली हुई हैं, जिनके हटाने का यत्न अभी तक नहीं हुआ था । हर्ष का विषय है कि अब इन छोटे छोटे राजाओं का ध्यान इस ओर खिंचा है । आज कल शिमला एसेम्बली-भवन में इन रजवाड़ों की सभायें हो रही हैं जिस में यह प्रस्ताव रखे गये हैं कि (१) 'रीति' को हटाया जाय । रीति क्या है ? इसे बहुतेरे सभ्य जन जानते न होंगे । पहाड़ी जातियों में धनवान पुरुष कई कई विवाह कर लेते हैं फिर उन में से जिस किसी की इच्छा हुई उस स्त्री को दूसरे के हाथ बेंच देते हैं । जो एक पुरुष दूसरे पुरुष की स्त्री को लेने की इच्छा से स्त्री के पति को धन देता है, इस को रीति कहते हैं । (२) दूसरा प्रस्ताव यह है कि आज कल एक अपराधी एक रियासत में यदि कोई अपराध कर लेता है तो दण्ड से बचने के लिये दूसरी रियासत में भाग जाता है जहाँ से उसको दण्ड नहीं दिया जा सकता । इस प्रकार अपराधों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है । इसको हटाने के लिये इन राजवाड़ों ने एक ऐसा कानून बनाने का प्रस्ताव किया है कि जिससे रियासतें परस्पर के अपराधियों को उसी प्रकार अपनी रियासतों से निकाल कर दूसरी रियासत के सुपुर्द कर सकेंगी जैसे कि Extraditin Act के द्वारा बृटिश भारत और देशी राज्यों के परस्पर

अपराधियों को निकाल कर सुपुर्द कर देने का कानून है। आशा है कि यह रियासतें इस कार्य में सफल होंगी।

क्या विधवा विवाह सचमुच एक आवश्यकता है?

इसी जुलाई मास के १५ तारीख़ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' दैनिक पत्र में एक विधवा बहिन ने एक रोष पूर्ण लेख छपाया है जिस का संक्षिप्त आशय यह है कि यद्यपि विधवाओं की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है, और उनकी तकलीफें भी बढ़ गई हैं फिर भी उनके कान नहीं होते। उनकी ओर से कोई आन्दोलन नहीं होता, क्यों? इस लिये कि यद्यपि इनका जीवन बहुत ही संकटमय होता है तथापि इनके सहायक भी कोई न कोई सम्बन्धी होते ही हैं। परन्तु अब ज़माना पल्टा खा रहा है। सम्बन्धी पास नहीं फटकते। अतः उन्हें अपने आप सामने आना पड़ा है। यह बहिन विधवा विवाह की पक्षपाती मालूम पड़ती हैं और माथुर कायस्थ कुल में एक विधवा विवाह होते २ रोक दिये जाने पर रूष्ट हुई हैं। आप का कहना है कि हमारे निर्दयी भाइयों के ऐसे अनुचित व्यवहार से हमारी सारी आशाओं पर पानी पड़ गया है और हम समझते हैं हमारी किस्मत फूटी हुई है। लेकिन अपने देश भाइयों को सुझाते हुये यह कहती हैं कि अब वह ज़माना आया है जब कि बिधवा विवाह केवल सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ही नहीं वरन आचार की दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक बन गया है। अतः वह अपने देश भाइयों और सम्बन्धियों को प्रोत्साहित करती हैं कि वह आंखें खोलें और इन के भाग्य को सुधारें वरना विधवायें अपना काम अपने आप करेंगी।

हम अपनी विधवा बहिनों की तकलीफ़ों का ख्याल करके बहुत दुखित हैं और हमारी इन से पूर्ण सहानुभूति है। लेकिन हम इन बहिन के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि विधवा विवाह का प्रचार देश के आचार सुधार के लिये आवश्यक है। हमारा मत तो इस के बिलकुल उल्ट है। पाश्चात्य देशों में विधवा विवाह प्रचलित है, विवाह-विच्छेद भी न्याय युक्त समझा जाता है और कौमारपन भी बहुत है तथापि वहाँ पर आचार की पवित्रता यदि कही है तो शिक्षित, ब्रह्मचर्य्य जीवन व्यतीत करने वाली आजन्म कुमारी या विधवा देवियों में। इन देबियों का जीवन दुःखमय नहीं रहता बल्कि सारे संसार को सुखी बनाकर यह अपने जीवनको सुखमय बनाती हैं। दूर न जाकर स्वीडन की देवी एलनकी का हाल पढ़ो तथा दक्षिण अफरीका की मिस यमली हाव हाउस का हाल पढ़ो यह देवियां भारत को बहिनों को बहुत कुछ संदेशा दे गई हैं—तो आप को पता लगेगा कि परोपकार में कितना सुख है, कितना मान है? भारत की बिधवाओं के लिये विवाह में सुख नहीं है, यह तो मृग मरीचिका की भान्ति प्रलोभन ही दीखता है। भला विचारो तो सही जिस देश में प्रथम-विवाह किये हुये गृहस्थ सुखी नहीं हैं वही पुनर्विवाह की क्या दशा होगी? यह तो सिर्फ यह बात है कि जिस प्रकार मांस की लोभी मछली व्याधे से डाली मांस लिप्त लोहशलाका का ख्याल नहीं करती और पकड़ी जाती है वही भांति सुख की इच्छा रखने वाली हमारी विधवा बहिनें विवाह सुख की इच्छा

करती हुई, विधवा विवाह रूपी लोहशंकु में पकड़ी जाकर ऐहिक तथा परमार्थिक दोनों प्रकार के सुखों से वंचित हो जाती हैं। इस समय भारत को सेविका दल की बड़ी आवश्यक्ता है। यह विधवा बहिनें बड़ी उत्तम सेविकायें बन सक्ती हैं। केवल वह अपनी प्रवृत्तियों को मोड़ें भर। जिन बहिनों को यह शिकायत है कि विधवाओं को आर्थिक कष्ट है उन्हें यह भी तो सोचना चाहिये कि क्या वह संयम भी करने को तैय्यार हैं ? आर्थिक संकट तो समस्त देश के सन्मुख है क्या विधवा क्या सौभाग्यवती ! क्या कमाई वाले क्या बेकार ! कोई जमाना होगा तो सही परन्तु अब उत्तरीय भारत में जहां तक हमारा अनुभव है और हमने बहुत देखा भी है विधवायें फैशन में और बेकार रहने में सधवाओं को भी मात करती हैं। कोई काम उन्हे कहो तो होता नहीं। शतरंज, ताश खेलना, मिलना जुलना, घूमना यही काम रहता है। हमारे पास कन्यागुरुकुल में ५, ६ छात्र वृत्तियां विधवाओं को अध्यापिका ट्रेन करने के लिये हैं। हमने नोटिस निकाली, बहुतेरी बहिनों ने इच्छा प्रगट की और कई आईं। परन्तु जब उन्हें पता लगा कि यहां ब्रह्मचर्य्य पूर्वक संयम् से पठन पाठन करना होगा, खद्दर पहिना होगा, ४ बजे प्रातः उठना होगा इत्यादि २ तब सब रफू चक्कर। वह तो पढ़ना भी इस लिये चाहती हैं कि सरकारी स्कूलों में रहकर ६०) ७०) या अधिक तनख्वाह लें, थोड़ा काम कर दें फिर फैशन करें मौजें उडावें। भला जिस देश में स्त्री जाति में यह भाव आजायं वह कभी जल्दी उठ सक्ता है ?

यदि यही अवस्था हमारी बहिनों की रही तो ५, १० वर्षों में जब कि पुनर्विवाह के विरुद्ध भाव और जागृत होंगे और ब्रह्मचर्य्य का प्रचार अधिक होगा तो हमारी स्त्री जाति को और भी दुःख उठाने होंगे। अतः बहिनों को चाहिये कि विवाह के लोभ को छोडकर ब्रह्मचर्य्य की ओर झुकें, संयम् से रहना सीखे, तभी सुख और शान्ति मिलेगी।

मनोहर कार्ड !
कन्याओं को इनाम देने की अपूर्व वस्तु
हिन्दी में ऐसे कार्ड अभी तक नहीं छपे
कला कौशल के सरल, सस्ते और उत्तम नमूने !!!
जल्दी आर्डर देकर मंगाओ
आठों पत्रावली केवल १।=)॥ में
मिलने का पताः—ज्योति कार्य्यालय
कोठी नं० ४ दर्यागंज, दिल्ली।

सावधान

सब आर्य सज्जनों एवं देवियों को सूचित किया जाता है कि वह संस्कार चन्द्रिका का अवैदिक नकली संस्करण कम दाम देकर न खरीदें। परन्तु हमेशा खरीदते समय याद रखें कि **"संस्कार चन्द्रिका का वैदिक संस्करण"** श्रीमान् राज्य-रत्न आत्माराम जी अमृतसरी ने लिखा है। वह वैदिक प्रेस अजमेर तथा बड़ौदा का छपा देखें और पृष्ठ संख्या भी उसकी ८५० से अधिक है। मूल्य उसका ३॥) था परन्तु अब २॥।) कर दिया है। इस में प्रत्येक आर्य को शास्त्रोक्त १६ संस्कार करने की विधि तथा विज्ञानपूर्ण तर्कयुक्त व्याख्यान मिलेगा। इसमें आधुनिक नए से नये युरोप अमेरिका के आविष्कार कर्त्ताओं के प्रमाणों से बताया गया है कि किस प्रकार एक दम्पति पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। किन नियमों इत्यादि का पालन आवश्यक है। विस्तृत विषयसूची मुफ़ मंगवालें,

पृष्ठ सं० ८५० वज़न एक सेर पक्का। मूल्य २॥।)रु. डाक व्यय ।॥) बढिया जिल्द वालों का मूल्य ४)।

वैदिक साहित्य के उच्चकोटि के ग्रन्थ

ले०-श्री राजरत्न आत्माराम जी अमृतसरी

संस्कारचन्द्रिका

शताब्दी संस्करण महर्षि दयानन्दप्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या। संस्कृत का अर्थ व्याख्या तथा आधुनिक युरोपीय एवं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा वैदिक संस्कारों की फिलसोफी का अपूर्व दिग्दर्शन मूल्य २॥।)

सृष्टिविज्ञान २)

इसमें सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी जो वर्णन पुरुषसूक्त में दिया गया है वही यथार्थ और वैज्ञानिक है। इसमें डारविन मत आलोचना तथा सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों का मंडन है। अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है। मू० २)

दिग्विज्ञान १॥)

मनसा परिक्रमा मंत्रों की अपूर्व वैज्ञानिक सुसंगत अनुसन्धानपूर्ण व्याख्या सचित्र पुस्तक, अपने ढंग की अनूठी है। प्रताप उर्दू की सम्मति "महर्षि दयानन्द का दावा था कि वेदमन्त्रों के अर्थ तीन तरह के होते हैं। मास्टर आत्माराम जी ने इस किताब में संध्या के मनसापरिक्रमा के छ मन्त्रों के वैज्ञानिक (Scientific) अर्थ किए हैं। किताब निहायत दिलचस्प और सरल है। इसमें दिखाया कि किस तरह संध्या के इन छः मन्त्रों के अन्दर सायंस कूट कूट कर भरी है। इस किताब को पढ़ कर सचमुच इन्सान समझने लगता है कि दरिया कूजे में बन्द है। स्वाध्याय के लिये यह किताब निहायत ही उपयोगी साबित हुई होगी। पृ० सं० २५० मूल्य १॥) अन्य पुस्तकों के लिए 'विज्ञापन' मंगाइए मुफ्त मिलेगा।

मिलने का पता :—

जयदेव ब्रादर्स बड़ोदा

स्त्रियों और बच्चों के लिये सुन्दर वस्त्र

हमारे यहां स्त्रियों और बालकों के उपयोगी साड़ियाँ जाकटें और कुरते बहुत ही खूबसूरत फ़ैंसी बनावट के मिलते हैं। एक बार मंगाकर देखिये नापसन्द हों या महंगे जचें तो फौरन वापिस भेज कर कीमत वापिस मंगा लीजिये। की० साड़ी बेल रेशम की किनारी दार ७) ८) ९) १०) १२) जरी किनारी १५)

बाल बढ़ाने वाला तैल—इसके लगाने से बाल बढ़ते हैं, काले रहते है, और बालों का उखड़ २ कर गिरना बन्द होता है की०॥)

बच्चों के गले के लाकिट—ये लाकिट दांत सुगमता से निकलने के लिये प्रसिद्ध हैं की०॥।)

बालसुधा-गोद के बच्चों को मोटा ताज़ा और तन्दुरुस्त बनाने की मीठी दवा कीमत फी शी० ।॥)

महासुगंधित तैल—माथे को सुगंधित और ठंढा करने वाला तैल कीमत १)

ब्रासलेट वाच।

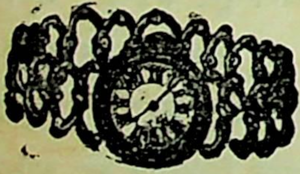

नं० ३२ यह बिल्कुल ही नई फैशन की चीज़ है, इसके बीच में एक छोटी सी जेबघड़ी है। और इधर उधर चूड़ियां ऐसी तर्ज से बनाई गई हैं कि चाहे जैसे बड़े हाथ में पहिना लीजिये ठीक नाप की हो जावेगी। हिन्दुस्तानी बड़े घरों की स्त्रियां भी इसे बहुत पसन्द करती हैं क्योंकि घड़ी की घड़ी और गहने का गहना है पीतल पर सोने की गिलट वाली का दाम ८) जिसके चारों तरफ नग जड़े हैं दाम १०) रु०।

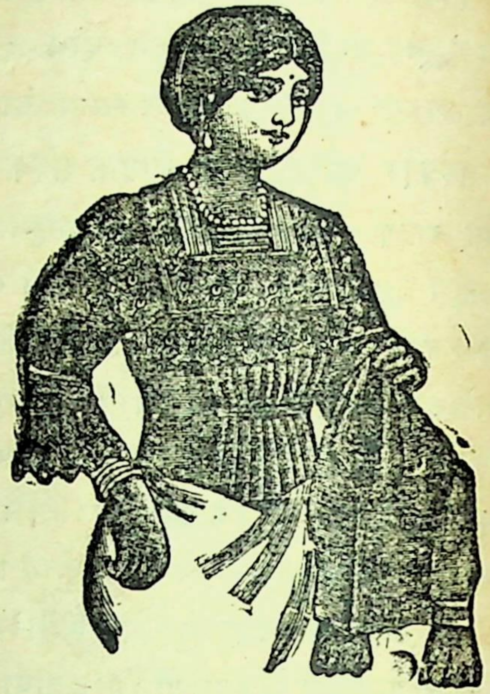

बालकों के फैंसी कुरते—इनकी सुन्दरता देखने ही से सम्बन्ध रखती है, हर एक रङ्ग के क़ीमत ४) ५) ६) ७) ९) १०) यही जरी के १५) २०) २५)

बोडी या जाकेट—जनानी चाहे जिस नाप की क़ीमत ४) ५) ६) यही जिस में सुनहरी काम हो रहा है ८) १०) १४) २०) २५) ३०)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूची पत्र मंगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—

सुख-संचारक कम्पनी
मथुरा

Any Shape Design Number is Given for

Rs. 7 Only.

22 Ct. Rolled gold wrist watches.

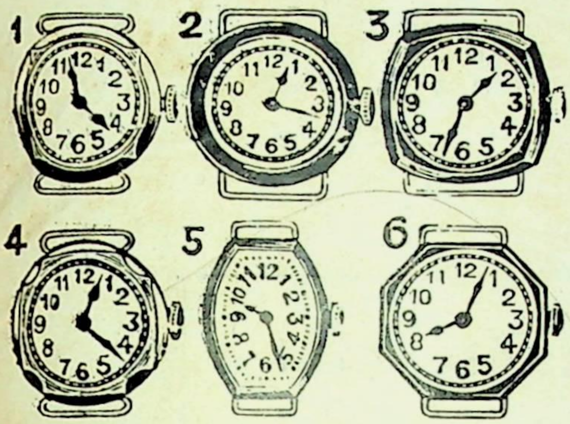

Original Price Rs. 14

Half Price Rs. 7

Only for one month. We are giving this offer for the New Year. All watches are, given at half Prices. The best movement and with perfect mechanism, looks beautiful to wear and handy. All wrist watches are guaranteed. Any Shape, Design or any Number is given with superior Silk strap free.

Sale Price Rs. 7 only. Guaranteed for ten years.

ONLY A FEW MORE. WRITE NOW.

Apply to:—**SWAN HOUSE, P. B. 508, P. T. MARAS.**

FREE! FREE!!

"C" Regd. TIME PIECE given FREE

TO ANY ONE

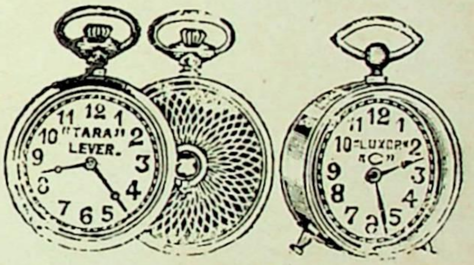

ordering for our "Tara Lever" 18 caret Rolled gold Pocket Watch with beautiful engravings on the back and guaranteed for five years, duly stamped on the dial, by the manufacturers, costing **RUPEES FIVE**,

We give as a **Free Offer,** our "C" Regd. Time Piece.

Write now. This Offer is Limited.

Can be had from—

CAPTAIN WATCH CO., P. B. 265, MADRAS.

अपने बच्चे को फुटबाल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताज़ा और खुश मिज़ाज होगा यदि तुम हम से उसके लिये फुटबाल ख़रीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे यहाँ है। जल्द आर्डर भेजिये।

बी० डी० गुप्ता, एन्ड को०

पच कुई रोड,

दिल्ली।

महारथी प्रेस, कृष्णा बिल्डिङ्ग, देहली में छपा और बा० रमेशचन्द्र प्रिंटर व पब्लिशर ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया।

Re

श्रावण, १९८३—अगस्त, १९२६

वर्ष ७]

ज्योति

ओ३म् व्यवात्ते

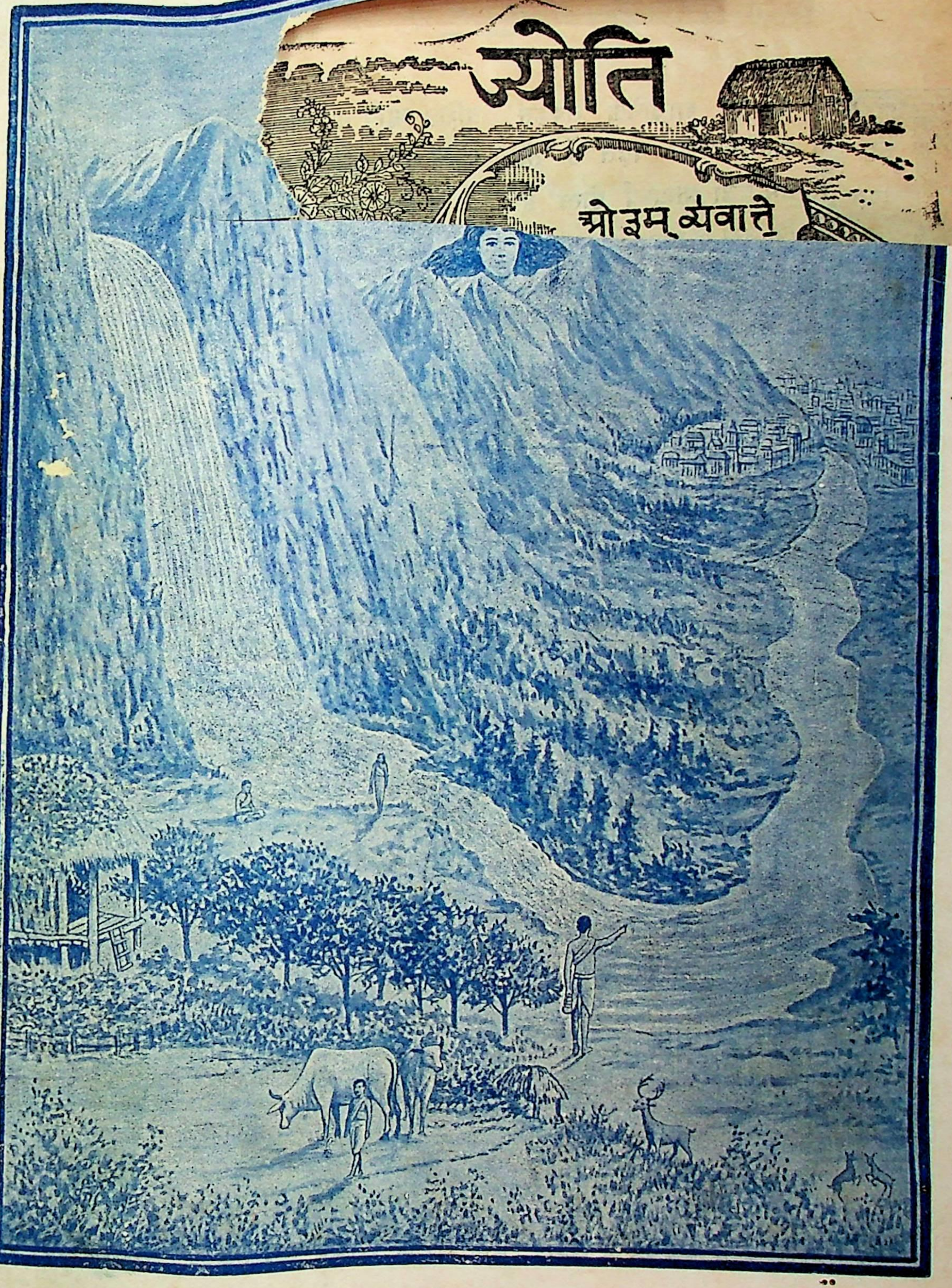

वार्षिक मूल्य ४॥
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी० ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

ची

अपने बच्चे को
खिलाओ

३—कामना—ले०-आयुर्वेदाचार्य श्री पं० सन्तलाल जी वैद्यराज १६१
४—गूंगोंका ज्ञान—ले०-श्रीमती राजकुमारी देवी जी १६२
५—सुभद्रा कुमारी चौहान और उनकी कवितायें-ले०-श्रीयुत रामजीवन शर्मा १६२
६—मोहिना के आंसू—ले०-श्रीयुत सन्तलाल जी वैद्यराज १६७
७—युरोप में साधुओं के अखाड़े—ले०-एक इतिहासज्ञ १७२
८—प्रकाश का आवरण—ले०-श्रीमती सीतादेवी १७५
९—वैज्ञानिक संसार १८२
१०—कुसुमोद्यान १८५
११—हमारी मंजूषा १८९
१२—वनिताविनोद १९१
१३ कन्यागुरुकुल समाचार १९९
१४—विचार प्रवाह २०१

———

ग्राहकों के लिये:—

ज़ी मास की १५ ता० को ग्राहकों को

ा० व्यय सहित इसका वा० मूल्य-
४॥) है।
२॥) है।
ये इसका डा० व्यय सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है। पुरानी प्रतियां सब नहीं मिलतीं जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रैल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियां दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहकों को और हमें दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति विना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र

मैनेजर,

'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली

के पते पर आने चाहियें।

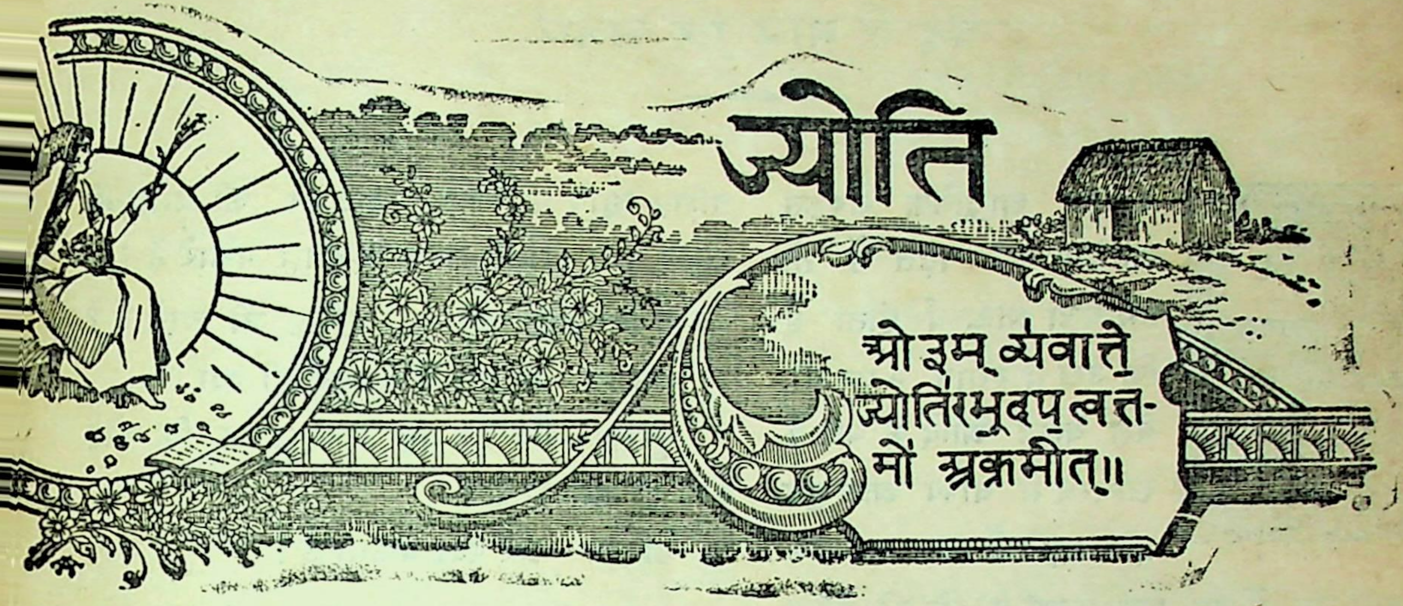
ज्योति
ओ३म् व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत्॥

वर्ष ७ | श्रावण १९८३—अगस्त १९२६ | संख्या ४

बालिका विनय

ले०—श्रीयुत साहित्याचार्य्य पं० गयाप्रसाद 'श्रीहरि'

हे नाथ ! विपदा सम्पदा में एक सी ही हम रहें ।
पड़ कर विकट भी संकटों में, सत्यपथ को हम गहें ॥
हम नारियां सुकुमारियां हों, धर्म की बस क्यारियां !
निज पुण्य-जीवन से सजादें, प्रेम की फुलवारियां ॥

× + × ×

मृदुता, सरलता, शान्ति, करुणा हों हमारी आलियां ।
त्यों धर्म-प्रियता, धीरता की हों मुखों पर लालियां ॥
शुचि सत्यता से हों मधुर, प्यारी हमारी बानियां ।
हम प्राण दे रक्खें सदा, गुण खानियां कुल कानियां ॥

वेद के नाम पर अनर्थ

जब हम आधुनिक संस्कृत साहित्य को पढ़ते हैं तो हमें बड़ा आश्चर्य्य होता है कि उस में स्थान २ पर गौ, बैल बछड़े आदि के बध के सम्बन्ध में वाक्य आते हुए दीख पड़ते हैं अतः स्वभावतया मन में यह प्रश्न उठता है कि जो हिन्दू आज भी गाय को इतनी पूजा की दृष्टि से देखते हैं कि उस के बचाने के प्रश्न पर हज़ारों जाने कुर्बान करने पर भी तुल जाते हैं उन्हीं के पवित्र ग्रन्थों में तथा साहित्य ग्रन्थों में इसके वध का विधान कैसे पाया जाता है ? इतना ही नहीं बल्कि "गोघ्नोऽतिथिः" यह बचन भी मिलता है और इस की पुष्टि हम "उत्तर राम चरित्र" जैसे अत्यन्त शुद्ध और मानव मनोविज्ञान से परिपूर्ण ग्रन्थ में भी देखते हैं कि जहां पर राजा जनक, वशिष्ट, कौशल्या देवी आदि का ऋषि-वाल्मीकि के आश्रम पर आगमन दिखाया गयाहै वहाँ वशिष्ट के लिये स्वागत में बछिया का बध किया गया यह दर्शाया गया है। पाठक जरा उन ब्रह्मचारियों की बातचीत के वाक्यों को ध्यान से पढ़ें। वह यह हैं कि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में अतिथियों के आगमन में बड़ा स्वागत का सामान हो रहा है, और अनध्याय होने के कारण ब्रह्मचारी लोग परस्पर कौतूहल पूर्वक बात चीत कर रहे हैं और पूछते हैं कि कौन २ अतिथि आये हैं ? एक ने उत्तर दिया कि वशिष्ठ ऋषि महाराज दशरथ जी की धर्मपत्नी समेत तथा राजर्षि जनक के साथ पधारे हैं !

दूसरा ब्रह्मचारी—हां वसिष्ठ जी आये हैं ?

पहिला—तो इस में आश्चर्य ही क्या ?

दूसरा—मैंने तो यह समझा था कि कोई बाघ ही आगया है ?

पहिला—अरे क्या बकता है !

दूसरा—देखो तो उसके आते ही वह विचारी कपिला बछिया जबरदस्ती काट डाली गई।

पहिला—'समाँसो मधुपर्क' इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिनः तंहि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

अर्थात्—मांस सहित मधुपर्क होना चाहिये इस वेद आज्ञा को सर्वोपरि मानने वाले लोग आये हुये श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये बछिया या बड़े बैल को पकाते हैं। इस धर्म को धर्म सूत्र बनाने वाले शास्त्रकार भी मानते हैं।

दूसरा—अरे तुम तो पकड़े गये! अब हार गये हो।

पहिला—किस तरह ?

दूसरा—तुमने यह कहा कि पूज्य वशिष्ठ के आने पर बछिया मारी गई। तो देखो आजही जब राजर्षि जनक आये तब तो भगवान वाल्मीकि ने दही और शहद मिलाकर ही मधुपर्क दिया था। बछिया तो नहीं मारी गई थी ?

पहिला—जो मांस से निवृत्त नहीं हुये हैं उनके लिये किसी २ का मत ऐसा है। जनक ने तो मांस खाना छोड़ा हुआ है। इत्यादि २

और भी कई साहित्य ग्रन्थों तथा स्मृतियों और सूत्रों में यही भाव पाये जातेहैं। परन्तु इन ऊपरोक्त वाक्यों से यह तो स्पष्ट है कि भवभूति के समय में यह भाव बहुत जोरों पर होगा कि गोबध में पाप नहीं है। किन्तु भवभूति म्लेच्छ नहीं था, और यवन राज्य में भी नहीं रहता था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि भवभूति यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का मानने वाला था, विदर्भ नगर जिस को अब विहार कहते हैं वहां का रहने वाला था और राजा यशोवर्धन–जो कन्नौज का राजा था–वह इस का (Patron) भक्तथा। मांस भक्षण के समर्थक लोग कहते हैं कि देखो शतपथ ब्राह्मण में भी अतिथि सत्कार के लिये यह वाक्य आते हैं अतः साहित्य में इसका आना युक्तियुक्त ही है। यथाः—

अथ यस्मादातिथ्यं नाम । अतिथिर्वाऽएष एतस्या गच्छति यत्सोमः क्रीतस्तस्मा एतद्यथा राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षं वा महोजं पचेत्त दह मानुषँ हविर्देवाना मव मसा एतदातिथ्यं करोति ।

इस वाक्य को देखकर, वैदिक शब्दों के अर्थ वैदिक व्याकरण और वैदिक कोष के अनुसार न करते हुए, अर्वाचीन प्रणाली द्वारा अर्थ करके न केवल युरोपीय विद्वान् अपितु उनके पक्षपाती भारतीय इस में महोक्ष और महाज शब्दों के अर्थ बड़ा बैल और बड़ा बकरा निकाल कर कहते हैं कि प्राचीन समय में जब किसी के घर ब्राह्मण या राजा अतिथि बनकर आते थे तो गृहपति उनके लिये बड़ा बैल और बड़ा बकरा पकाया करते थे। परन्तु यह सब उनका भ्रममात्र है। उक्त वाक्यों का अर्थ यदि आर्षशैली द्वारा करना हो तो यह होगा—महोक्ष दो शब्दों का बना हुआ है महा+उक्ष। महा=महत्=उत्तम; और उक्ष एक औषधि का नाम है जो कि बहुत ताकत देने वाली होती है। उक्ष को वाचस्पत्य बृहदभिधान में "ऋषभौषधिः" जिसका प्रमाण यह भी है कि "उक्षा" भद्रो वलीवर्द ऋषभो, वृषः, अनड्वान, सौरभेयोगौः। शृङ्गीतु ऋषभो वृषः। (अमरं)

अर्थात्—उक्ष शृंगी वा काकड़शृंगी नामक औषधि का नाम है। अब रहा महाज शब्द। उस में भी महा=महत और अज यह दो शब्द हैं अज के अर्थ महाभारत शान्ति पर्व में इस प्रकार किये हैं:-

वीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वा वैदिकी श्रुतिः ।
अज संज्ञानि वीजानि छांग नो हन्तुमर्हथ ॥

अर्थात् अन्न के बीजों से यज्ञ किया जाय यही वैदिकी श्रुति है। अज नाम बीज का है। अतः बकरे को मारना योग्य नहीं। अतः इस ब्राह्मण वाक्य का शुद्ध अर्थ यह है कि जब ब्राह्मण व राजा अतिथि रूप में घर पर आवें तब उन्हें बलकारक औषधिरूप भोजन देना चाहिये और उत्तमोत्तम अन्न खिलाना चाहिये।

ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत के समय से लेकर जब आर्य्यों का अधः पतन होने लगा और जनता का अधिकांश भाग वैदिक साहित्य को भूलने लगा और वाममार्ग का प्रचार खूब फैला तो मांस मद्य प्रचारकों ने बहुत से मान्य ग्रन्थों में प्रक्षिप्त वाक्य मिला दिये और वैदिक

शब्दों के अर्थ अपने पक्ष की पुष्टि के अनुसार निकाल कर लोगों के दिलों को उधर फेरने की भरसक चेष्टा की और सफल प्रयत्न भी हुये। यद्यपि ब्राह्मणों का अधिकांश भाग हृदय से ऐसी बातों का समर्थक नहीं हो सक्ता था तथापि इन उल्टे अर्थों के फन्दे में पड़कर जो कि न केवल वेद, शास्त्र, लोकोक्ति, और भारतीय मनावेश के ही विरुद्ध हैं प्रत्युत जिसे साधारण बुद्धि भी स्वीकार नहीं करती, उन्होने अपने मन को इस प्रकार के वाक्यों से सन्तुष्ट करने की चेष्टा की थी कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"। अर्थात् यज्ञ के लिये वध करना हिंसा नहीं है। अतः यज्ञ के अतिरिक्त वध न करना चाहिये। इस प्रकार उन्हों ने गोहत्या को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु मांस प्रेमी युरोपीय विद्वान तथा उनके अनुयायी म० राजेन्द्र लाल मित्र सरीखे विद्वान भारतीय भी गोवध के पक्ष में "गोघ्नो अतिथिः" यह एक और प्रमाण पेश करते हैं और कहते हैं कि प्राचीन काल में गोघ्न वह अतिथि होता था जिस के लिये गाय मारी जाय। अतः प्राचीन आर्य गो मांस भक्षक थे। यदि इस को मान लिया जाय तो फिर हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि "अघ्न्या गौः" यह भी तो वेद वाक्य है। इस के क्या अर्थ हैं ? एक ही वेद की दो आज्ञा कैसे ? एक जगह गौ का हनन दूसरी जगह यह कि गौ का हनन कभी नहीं हो सकता ! अतः यह स्पष्ट है कि "गोघ्नो अतिथिः" के कोई अर्थ दूसरे ही हैं। "गोघ्न" शब्द=गो+हन से बना है। "गो" के अर्थ अनेक हैं यथा वाणी, पृथ्वी, जल, स्वर्ग, माता, इन्द्रिय, नेत्र, सूर्य्य, चन्द्र। हन के अर्थ हैं हन् हिंसा गत्योः। और गति के अर्थ तीन होते हैं :—

ज्ञान, गमन और प्राप्ति। इस लिये "गोघ्न" शब्द के अर्थ यह होते हैं कि वह अतिथिः—

(क) जिस के लिये जल प्राप्त किया जाय।
(ख) जिस के लिये सुख की सामग्री उपस्थित की जाय।
(ग) जिसका वाणी से सत्कार किया जाय
(घ) जिस की ओर आंखें लगी हों।

इन अर्थों को साधारण बुद्धि भी स्वीकार करती है। क्योंकि प्रायः सभी सभ्य देशों में जब कोई किसी के घर आता है तो गृहपति उसे कुछ चल कर लिवा लाता है, मीठी वाणी बोलता है, जल देता है इत्यादि २। बड़े शोक की बात है कि हमारे देश में अब भी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो कि यज्ञ में पशु वध का समर्थन करते हैं। उनका कथन है कि प्राचीन आर्य्य मेध्य पशु को जिला भी देते थे, अतः हिंसा का पाप नहीं लगता था। परन्तु कलियुग में वह जिला नहीं सक्ते अतः अतिथि के लिये गौ मारने की प्रथा हटा दी गई है। परन्तु यज्ञ में पशु वध का विधान है। इन लोगों को यज्ञ के अर्थ अध्वर हैं, यह भी ज्ञात है और अध्वर माने हैं जिसमें हिंसा न हो। तथापि वहस में वह अपने पक्ष की पुष्टि करने की चेष्टा में रहते हैं। ऐसे दुराग्रही लोगों को कोई समझा नहीं सकता है। परन्तु जो निष्पक्षपात भाव से, ज्ञान द्वारा इस सारी समस्या का हल करना चाहें तो उन्हे केवल शब्दों पर ही जाना नहीं होगा वल्कि सारे वैदिक साहित्य, प्राचीन आर्य्य पद्धति तथा भारतीयों के मनावेशों का भी अध्ययन करना होगा।

भारतीय पद्धति में हिंसा को सर्वत्र बुरा माना है और हिन्दू जाति गौ को इतनी पूजा की दृष्टि से आज भी देख रही है कि एक गौ के बचाने के हेतु सैकड़ों का खून हो जाता है। हिन्दुओं की मनोवृत्ति ही ऐसी है कि सिद्धान्तरूप से यज्ञ में गोवध का खण्डन न कर सकने पर भी—क्योंकि वह वैदिक शब्दों के शुद्ध अर्थ ही भूल चुके थे—क्रियात्मक रूप से इसे व्यवहार में नहीं लाते। इतना ही नहीं गौ शब्द को खाने के साथ मिलाते ही नहीं हैं। दिवाली पर खांड के खिलौनों में पशु पक्षी सभी बनते हैं पर गौ कोई नहीं बनाता वाम मार्ग के प्रचार के समय एक संस्कृत शब्द "आलम्भ" के अर्थ वध के लिये गये हैं, जिससे यह सारा अर्थ का अनर्थ हो गया। आलम्य=आ+लभ धातु, इस का अर्थ है स्पर्श करना। डिक्शनरी में महाशय आपटे ने भी इस का अर्थ किया है To touch, to get, to obtain चूंकि इसका वध अर्थ प्रचलित हो चुका था अतः उन्हों ने भी इस का अर्थ (To kill) भी लिखा है। परन्तु आपने उदाहरण दिया है शतपथ ब्राह्मण का "प्रातर्यैपशूनालंभते" जिस में वध का अर्थ ही नहीं है।

प्राचीन आर्य्य गौ को बड़ी ही पूजा की दृष्टि से देखते थे और गो रक्षा को ब्राह्मण ग्रन्थों तथा सूत्र ग्रन्थों में इतना बड़ा पुण्य बताया गया है और गोमांस भक्षण का इतना निषेध तथा गौ हत्या को इतना पाप बताया है कि यही समझना चाहिये कि इन ग्रन्थों में जहां कहीं भी गोहत्या या मांस भक्षण के समर्थक वाक्य दृष्टि गोचर होते हों वह या तो वाममार्गियों के द्वारा मिलाये गये हैं अथवा उनके अर्थ हम लोग समझते नहीं हैं। वेद का कोई भी वाक्य नहीं मिलेगा जिससे गोवध या मांस भक्षण का समर्थन हो सके। वेद में एक स्थान पर नहीं वरन स्थान २ पर गौ को अघ्न्या कहा गया है, और गौ का महत्व दर्शाया गया है। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र में ही यह शब्द आये हैं—"अघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा……" अर्थात् यज्ञ के लिये अघ्न्या=न मारने योग्य बच्छेड़ों सहित, व्याधि विशेषों रहित, तपेदिक आदि रोगों से शून्य गौवें सम्पादन करो। ऋग्वेद में एक मंत्र आता है :—

> ओ३म् सूय वसाद् भगवति हि
> भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम
> अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं
> पिव शुद्ध मुदकमाचरन्ती ॥

अर्थ—हे (अघ्न्ये) न हनन करने योग्य गौ के समान वर्त्तमान विदुषी तू (सूयवसात्) सुन्दर सुखों की भोगने वाली (भगवती) बहुत ऐश्वर्य्यवती (भूयाः) हो कि (हि) जिस कारण (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) बहुत ऐश्वर्य्य युक्त (स्याम) हों। जैसे गौ (तृणम्) तृण को खा (शुद्धम) शुद्ध (उदकम्) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है वैसे (विश्व दानीम्) समस्त दान जिस में हों उस क्रिया को (आचरन्ती) सत्य आचरण करती हुई (अथो) इस के अनन्तर सुख को (अद्धि) भोग और विद्यारस को (पिव) पियो।

भावार्थ—जबतक माता [illegible] वेदवित् न हों तबतक उन के सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं। जो विदुषी हो स्वयंबर विवाह करके सन्तानों

को उत्पन्न कर और उन को अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान करती हैं वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं।

ऋग्वेद। मं० १। सूक्त ७६४।। ४०।

इस में गौ की उपमा से विदुषी स्त्री के कर्तव्यों का वर्णन कैसी उत्तम रीति से किया गया है। स्त्री को भी गौ के समान अघ्न्या माना है। इसी एक शब्द से समझ लेना चाहिये कि वेदों में गौ का कितना महत्व है और गोरक्षा का कितना भारी पुण्य है। हम लोग नित्य प्रति के जीवन में तीन बातों का प्रयोग करते रहते हैं (१) माता अपनी जननी (२) जन्म भूमि अर्थात् धरती माता (३) गौ माता। क्योंकि इन तीनों द्वारा ही हमारी प्राण रक्षा और लालन पालन होता है। यही ऐश्वर्य की वृद्धि के हेतु हैं इन तीन माताओं के बिना हमारा जीवन निस्सार है, तब भला क्या यह सम्भव है कि प्राचीन आर्य कभी गोबध के पक्ष में हों? यह तो एक दृढ़ सिद्धान्त है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या स्वरूप हैं अतः उनके अर्थ आर्ष प्रणाली के अनुसार ही करने होंगे और चूंकि वेदों में गौ के लिये 'अघ्न्या' शब्द आया है अतः जहाँ कहीं भी इसके विपरीत अर्थ दृष्टि गोचर हो वहाँ यह समझ लेना होगा कि जरूर समझ की भूल है या ऊपर से माँसाहारियों ने कुछ मिलावट की है। वेद में अनेक स्थलों पर गौ को 'अघ्न्या' कहा गया है। एक और प्रमाण इसी पुष्टि का लीजियेः—

ऋग्वेद। मं० १। सूत्र १६३। मं० २७।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूना वत्समिच्छन्ती
मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्द्धतां महते
सौभगाय॥

अर्थ—जैसे (हिङ्कृण्वन्ती) हुँकारती हुई और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) न मारने योग्य गौ (अभि, आ, अगात्) सब ओर से आती व जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल व दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्तमान पृथ्वी है (सो) वह (वसूनां) अग्नि आदि वसु संज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं को पालन करने वाली (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्द्धताम्) उन्नति को प्राप्त हो।

भावार्थ—जैसे पृथ्वी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे ही गायें अत्यन्त सुख देती हैं इस से गायें कभी किसी को मारनी नहीं चाहिये। आशा है केवल आधुनिक साहित्य पढ़कर जिन के मन में गो वध के विषय में तरह २ के संशय उत्पन्न हो जाते हैं वह लोग इन उपरोक्त वेद मंत्रों को ध्यान से मनन करेंगे और वाममार्गियों की कृपा से जो दूषण हमारे ग्रन्थों में लग गये हैं तथा विदेशी वैदिक कालीन प्रथाओं के अध्ययन कर्ताओं की अंग्रेजी पुस्तकों में जो गो वध की पुष्टि में बातें पाई जाती हैं उन्हें निराधार समझ कर स्वतंत्र स्वाध्याय करके वैदिक सिद्धान्त का ही देश और विदेश में प्रचार करेंगे

* * *

कामना

लें०—श्रीयुत आयुर्वेदाचार्य पं० सन्तलाल वैद्यराज

समय समय के सभी भाव हृदय-ग्राही हैं;
क्यों ?—वे सब हैं स्वादु-पाक, अति-सुख ग्राही हैं।
शैशव-कालिक ललित-चरित सब के मन मोहत;
बिन उन्माद न प्रौढ़-दशा में ते सब सोहत !

ज्वरित-मनोभव[*] मन-भवन बीच होइ जे शान्त,
राज-रोग[†] यमराज-सम तो किमि होइ दुर्दान्त !

केवल मन-प्राबल्य ईश ! हो दमन हमारा;
समयोचित सब भाव करे मन सहन हमारा;
हमें दम्य हो हिम-ऋतु में हिम-पवन हमारा;
सह्य हमें हो ज्येष्ठ-रोहिणी-तपन हमारा;

बहु वारिद वारि-द रहैं, चातुर्मासिक नाथ।
तेहि पर वर्षण-सहनता करहुँ दयामय ! साथ॥

* * * *

सहैं न प्राकृत घर्म[‡]-तपन जिमि ललित-लताएँ;
शुक्र[**]-घर्म से विकल-मना ज्यों नव-ललनाएँ;
जाति-कुप्रथा दलित व्यथातुर अरजस्काएँ—
भोली-भाली शैशवपन की जिमि विधवाएँ !—

त्यों असमय की रूढ़ियाँ, हानिद व्यर्थ नितान्त;
देख आर्य-जन हों सभी सर्वेश्वर ! अशान्त !

* * * *

देश-दशा ने अहो ! चारु चक्कर खाया है,
भारत में संगठन रूप-वैभव छाया है,
अन्धकार मिट चला, ज्ञान-रवि चढ़ आया है,
किन्तु जाति-तम ईश ! नहीं जाने पाया है;

हम ऐसे वैसे नहीं, हम नासा के बाल !
आह पैशाचिक-उक्तियाँ अब प्रभु ! देउ निकाल !!

ज्येष्ठ-ताप-सम तप्त-हृदय जो आर्य हमारे—
हा ! "अछूत" कर गिने गए हैं दीन बिचारे,
प्रेम सहित हम उन सब को अब गले लगावें;
ईश ! उदार-विचारवती-धी अब हम पावें;

उक्त रोग [illegible] मिट चुके, नाथ ! सहस्त्रों वंश।
दुरातङ्क अब ईश ! यह, हो अशेष विध्वंस !

* * * *

---

[*] मनोभव—काम, [†] राज रोग—यक्ष्मा, [‡] घर्म—प्रताप-धूपकी ताप; [**] शुक्र—ऐन्द्रिय और ज्येष्ठ मास।

गूंगों का ज्ञान

ले०—श्रीमती राजकुमारी देवी जी

सुना जाता है यूरोप में अन्धे और गूंगों को ज्ञानदान के अनेक साधन आविष्कृत हो रहे हैं पर मैं समझती हूँ जिन गूंगों के विषय में मैं लिखने चली हूँ वे वागिन्द्रिय के सहित और पठित कहलाने वाले गूंगे कहीं पूर्वोक्त वर्णित गूंगों से अधिक विचित्र हैं। ऐसे मनुष्य हज़ारों की संख्या में प्रति वर्ष निकल कर पण्डित के नाम से धर्मोद्धारक के वेष में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। ये अपने को अध्यापक समझते हैं। उस टकसाल में विद्यार्थियों की योग्यता की कोई परख नहीं, कैसा भी मनुष्य जिस के धड़ पर मनुष्य का शिर हो, चला आवे एक लघुकौमुदी खरीदने की व्यवस्था देदी जावेगी। "नत्वा सरस्वतीं देवीम्" इस पहले श्लोक की सव्युत्पत्ति ससमास व्याख्या लिखवा दी जायेगी और वह विद्यार्थी-रूपी मशीन अविश्रान्त कई दिनों की यात्रा के बाद उस कठिन मंज़िल को पार करेगा। समाचार पत्रों की हवा से वह ऐसा बचाया जायगा जिस तरह बीमार मनुष्य स्वास्थ्यनाशक वस्तुओं से बचाया जाता है। संस्कृत भाषा विषयक ज्ञान उसको कुछ होने भी न पायेगा कि उसी समय पाणिनि भगवान का अनुभव उसके हाथ में दे दिया जायेगा। बहुत दिनों तक तो वह यह भी नहीं जान सकेगा कि मैं क्या पढ़ता हूं और वह किस मर्ज़ की दवा है। गणित, इतिहास, भूगोल का ज्ञान उसे इतना ही होता है जितना कि संस्कृत भाषा के पण्डितों के नाम को डुबोने के लिए काफी हो सके। संस्कृत व्याकरण में वाक्य योजना का कोई नियम नहीं, वह तो पदशास्त्र है, और विना भाषा ज्ञान के रटा हुआ आजकल का व्याकरणाभास कभी भी अन्य ज्ञान का सहायक नहीं हो सकता। आजकल व्याकरण के पढ़ने की जो पद्धति है, उस पद्धति से यदि स्वयं भगवान् पणिनि आजावें तो सारे जन्म कोरे ही रह जावें। नव्यान्याय और व्याकरण की खिचड़ी पकाते हुए लोग भूलजाते हैं कि हमारा व्याकरण ज्ञान दूसरे ज्ञानों का साधक है, स्वयं साध्य नहीं। दर्शन शास्त्रकी उड़ाई हुई दो चार बातें शब्दखण्ड के प्रतिपादन शैली से कह देना महान् वैयाकरण होने का प्रमाण है। भला बतलावे तो कोई वैयाकरण कि "वैयाकरण भूषणसार" और "मंजूषा" व्याकरण ज्ञान में ये पुस्तकें क्यों उपयोग देती हैं? "शब्देन्दुशेखर" और "परिभाषेन्दुशेखर" क्या इस लिए कठिन नहीं हैं? कि शब्द खण्ड विना पढ़े ही इन ग्रन्थों को पढ़ने लगते हैं, जिन पुस्तकों में सारे विचार उसी पर अवलम्बित हैं। और शब्द खण्ड अलग ही अनुमान खण्ड से पिसा जा रहा है इसलिए विना अनुमान खण्ड पढ़े शब्द खण्ड का पढ़ना घोटना मात्र है। अब एक प्रश्न उठता है कि क्यों न पहले अनुमान खण्ड पढ़ के सब रोग दूर कर लिया जावे? हां यह मार्ग तो उत्तम है पर अन्त में तो जिसे व्याकरण कहते हैं वह ज्ञान तो न प्राप्त हो सकेगा। मैं बहुत दूर बढ़ आई। अच्छा सुनिए एक बहुतही

मज़ेदार बात। इस समय व्याकरणाचार्य परीक्षा पास कर लेना महावैयाकरण होना लोग बतलाते हैं। कौन व्याकरणाचार्य परीक्षा ? जिस में "निरुक्त" ही नहीं। इस के उत्तर में लोग कह देते हैं "लगजावेगा" पर सुनने वाले और कहने वाले भले मानुषो ! लग कब जावेगा जब यमराज के घर पहुंच जावोगे। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि जो व्याकरणाचार्य गुरुकुलों में न रह चुका हो अथवा शास्त्रियों के पढ़ाने के बहाने कुछ आदमियों को बहका न चुका हो यदि उस के घर पर बिना सूचना के कोई मनुष्य चला जावे तो उसकी पुस्तकों में निरुक्त की पुस्तक कभी भी नहीं मिलेगी। कैफियत तलब करने पर वह कुछ न कुछ बहाना अवश्य बना देगा। धैर्य धारण कर जरा और सुनिये। उसी परीक्षा में पाणिनि महाराज का लिङ्गानुशासन भी नहीं। इसके दो तरह के उत्तर मिलेंगे। पहला थोड़े अक्षरों का सूत्र 'लग जावेगा' कब ? मरने के बाद। और दूसरा 'व्यवहार से ही वह ज्ञान होजावेगा, अरे बाप रे बाप ! व्यवहार क्या बला है ? ज्योति के पाठक ! और पाठिकाओं ! एक व्याकरणाचार्य के व्यवहार ज्ञान का नमूना ज़रा देखिए। एक दिन मैं अपनी किसी सखी के पिता के घर पर उससे मिलने गई, उनको कोई व्याकरणाचार्य पढ़ाने आया करते थे दैव योग से उस दिन उनके यहां एक स्नातक जी पधारे। बात चीत के सिल सिले में स्नातक जी ने पण्डित जी से प्रश्न किया कि 'अपने जीवन में आपने अनुवाद करने अथवा 'इति सूत्रेण इति कृते' के अतिरिक्त जिसमें आपके विचार अङ्कित हों कितने पृष्ठ संस्कृत लिखे होंगे ? उन्हों ने कहा ऐसा तो मैंने कभी भी नहीं किया। स्नातक जी ने फिर कहा—'व्याकरण तो इसलिए पढ़ना चाहिए कि किसी भाषा का शुद्ध प्रयोग किया जासके, पर जब आपको कभी भी संस्कृत भाषा का प्रयोग ही नहीं करना है तब उसके पढ़ने से ही क्या लाभ ?, बहुत कुछ बाद विवाद हुआ जिससे मैं तो इसी परिणाम पर पहुंची कि अज्ञान होना भयङ्कर तो जरूर है पर अज्ञानी होकर ज्ञानवान समझना बहुत ही भयंकर है। ऐसे ही भाषा ज्ञान शून्य संस्कृत भाषा की जड़ कुरेद रहे हैं। जिस किसी शास्त्र के विषय में प्रश्न करो लो तुरन्त सरल उत्तर 'लग ज़ावेगा'। ईश्वर ही बचावे ऐसों से जिन को 'लगन' ज्वर हुआ है। इसी ज्ञान को गूंगों का ज्ञान कहते हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान और उनकी कविताएँ

ले०—श्रीयुत रामजीवन शर्मा

उस दिन स्वराज्य पुरी में बड़ी चहल पहल थी। पंडित मोती लाल नेहरू तथा स्वामी सत्यदेव तक को लोग 'चुप रहिए बैठ जाइए।' कहने से बाज नहीं आते थे। एक ओर स्वराज्य दल के कार्य्यकर्त्ता अपना प्रचार कर रहे हैं, तो उसी जगह दूसरी ओर शान के साथ श्री राजगोपालाचार्य्य का भाषण कौंसिल-प्रवेश के विरोध में हो रहा है। श्रीमती सरोजनी नायडू जहां व्याख्यान

देती थीं, वहां तिल रखने की भी गुंजाइश नहीं रहती थी। सारांश यह है कि हरएक दल 'कल पंडाल में मेरी विजय हो' इस के लिए जी जान से कोशिश कर रहा था।

संध्या का समय था। उधर पंडाल में सब्जेक्ट कमेटी की बैठक हो रही थी और इधर फल्गू तीर पर एक विशाल जन-समूह बड़े प्रेम से, अपरिवर्त्तनवादी नेताओं के व्याख्यान सुन रहा था। मौलाना मोहम्मद अली की धर्म्मपत्नी सिंहनी की तरह बोल रही थीं। और भी कितने ो सज्जनों के व्याख्यान कई घन्टे तक हुए। भा विसर्जित होने ही वाली थी कि अकस्मात् मंच पर एक क्षीणकाय रमणी कूदकर चढ़ आई और बोली—"सज्जनों! आप सुन कर प्रसन्न होंगे कि अभी अभी सब्जेक्ट कमेटी में कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव रद्द हो कर गिर गया।" कितनी फुर्ती थी! वाक्य के एक २ शब्दों में मिठास और आवेश का कितना विचित्र संमिश्रण था। श्रोता समूह मुग्ध सा रह गया। लोग पूछने लगे 'भाई ये देवी कौन हैं'? पास बैठे हुए एक साहित्यिक मित्र ने मुझ से कहा, 'स्वदेश' में प्रकाशित जिस 'राखी' शीर्षक कविता पर तुम लट्टू हो गए थे, उस की लेखिका श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान यही हैं।

सन्न! मैं सुन कर सन्न रह गया। एक बालिका के कोमल मानस पटल में, इस बीसवीं सदी में जबर्दस्त भाव! 'मुख में राम बगल में छूरी' वाले जमाने में आदेश और पालन का ऐसा उत्तम संयोग।

वह कविता मुझे स्मरण नहीं। हाँ विषय याद है। पुराने जमाने में सुनता हूं, राजपूत रमणियां स्वजनों को बड़े उत्साह से युद्ध भूमि में भेजती थीं। और आप घर में बैठ कर यही मनाती थीं कि या तो वे विजयी हो कर लौटें अथवा स्वर्ग को ही अपने चरणों से पवित्र करें। राजपूती इतिहास ऐसी अनेक माताओं, बहिनों और पत्नियों के वृत्तान्तों से भरा पड़ा है। उस कविता के भाव भी कुछ इसी प्रकार के थे। 'एक भारतीय आत्मा' के जेल प्रवास पर वह लिखी गयी थी।

गया कांग्रेस के बाद मैं चौहान जी की कविताओं को बड़े प्रेम और आदर से पढ़ने लगा। इसलिए नहीं कि उन में भाव थे, कविताएँ राष्ट्रीय थीं। वरन् इसलिए कि उन को निर्माण करने वाली एक ऐसी पवित्र आत्मा है जो कहना करना दोनों जानती है। राष्ट्रीय कविताओं की उन दिनों भरमार रहती थी। कल के छोकड़े भी भारत को ले कर अंट संट लिखने का साहस कर लेते थे। 'जी हुजूरी' में ही जिन की उम्र कट गई है, वे भी उन दिनों जागो भारत! जागो भारत! कहने लगे थे। पर माखनलाल चतुर्वेदी की तरह कितने ऐसे माई के लाल कवि थे जिन का जीवन स्वदेश के लिए हो। ढूंढने पर लाख में एक ऐसी आत्मा मिलेगी और चौहान जी उन्हीं कतिपय आत्माओं में से एक हैं। आप की जन्मभूमि कहलाने का सौभाग्य तीर्थराज प्रयाग को है। सं० १९६१ की श्रावण शु० ५ को आप का जन्म ठाकुर रामनाथ सिंहजी की धर्म्म पत्नी की पवित्र कोख से हुआ था। शिक्षा आप को वहीं के क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में मिली। कविता की ओर आप की रुचि बचपन ही से थी। स्कूल के प्रत्येक

वार्षिकोत्सव के समय कविता सुनाना आप का कर्तव्य सा हो गया था। जब आप की अवस्था पन्द्रह साल की हुई तो आपका विवाह खँडवा निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी चौहान बी० ए० एल० एल० बी० के साथ हुआ। इस समय आप के एक कन्या भी है।

१९२० का अंतिम मास था। असहयोग अभी आरंभ ही हुआ था। उस समय उस आंदोलन में गिने चुने लोग ही भाग लेते थे। कितने वकीलों ने स्पेशल कांग्रेस में हाथ उठा कर भी कोर्ट जाना बंद नहीं किया था। ऐसे नाज़ुक समय में चौहान जी ने न सिर्फ़ स्वयं असहयोग में भाग लिया बल्कि अपने नवयुवक-पति महोदय को भी जिन्होंने उसी साल वकालत पास की थी, वकालत न कर देश सेवा में लगा दिया।

आप दो बार झंडा आंदोलन के सम्बन्ध में जेल को भी पवित्र कर चुकी हैं।

यह तो आप का संक्षिप्त जीवन-चरित्र हुआ। मालूम नहीं 'कविता कौमुदी' के संग्रह कर्त्ता ने क्या सोच कर आप की कविताओं को कुंज में डाल दिया। आप तो विहार की न हो कर खास वहाँ की हैं जहाँ से कौमुदी का प्रकाशन आरंभ हुआ है। आशा है, विचारवान पंडित जी तृतीय संस्करण में कम से कम आप के साथ अवश्य यथायोग्य वर्त्ताव करेंगे।

अब हम आप की कुछ चुनी हुई कविताएँ देकर यह निबंध समाप्त करते हैं।

लगे आने, हृदय-धन से,
कहा मैंने कि मत आओ।
कहीं हो प्रेम में पागल,
न पथ में ही मचल जाओ॥
कठिन है मार्ग, मुझ को,
मंज़िलें वे पार करनी हैं।
उमंगों की तरंगे बढ़ पड़ें,
शायद फिसल जाओ॥
तुम्हें कुछ चोट आजाए,
कहीं लाचार लौटूं मैं।
हठीले प्यार से व्रतभंग
की घड़ियाँ निकट लाओ॥

भाव स्पष्ट है। टिप्पणी की जरूरत नहीं। जो लोग कहते हैं कि खड़ी बोली में मिठास नहीं होता वे चौहान जी की कविताओं को जाँच कर अपना भ्रम दूर कर लें।

तुम मुझे पूँछते हो "जाऊँ,
मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो।
"जा" कहते रुकती है जबान,
किस मुँह से तुम से कहूँ रहो।
सेवा करना था जहाँ मुझे कुछ,
भक्ति भाव दरशाना था।
उन कृपा कटाक्षों का बदला,
बलि हो कर जहाँ चुकाना था॥
मैं सदा रूठती ही आई प्रिय!
तुम्हें न मैंने पहिचाना।
वह मान बाण चुभता है,
अब तो देख तुम्हारा यह जाना॥

वही पुरानी बातें हैं, पर स्वरूप कितना सुन्दर और अप टू डेट है? पढ़ कर, हृदय मुग्ध हो जाता है॥

अभी कुछ दिन हुए 'माधुरी' में 'मेरा नया बचपन' शीर्षक आपकी एक कविता निकली

थी। कविता क्या थी लड़कपन का जीता जगाता चित्र था। स्थान की कमी के कारण हम उसे यहाँ देने में असमर्थ हैं।

इस का रोना

तुम कहते हो मुझको इसका रोना नहीं सुहाता है,
मैं कहती हूं इस रोने से अनुपम सुख छा जाता है।
सच कहती हूं इस रोने की छविको जरा निहारोगे,
बड़ी बड़ी आंसू की बूंदों पर मुक्तावलि वारोगे।

२

ये नन्हेंसे ओंठ और यह लम्बी सी सिसकी देखो,
यह छोटा सा गला और गहरी सी हिचकी देखो।
कैसी करुणाजनक दृष्टि है, हृदय उमड़कर आया है,
छिपे हुए आत्मीय-भावको यह उभाड़कर लाया है।

३

सो बाहरी चहल पहल को ही बहुधा दरसाती है,
र रोनेमें अन्तरतम तक की हलचल मच जाती है।
जिससे सोई हुई आत्मा जगती है, अकुलाती है,
छूटे हुए किसी साथी को, अपने पास बुलाती है।

४

मैं सुनती हूं कोई मेरा मुझको अहा बुलाता है,
जिसकी करुणापूर्ण चीख से केवल मेरा नाता है।
मेरे ऊपर वह निर्भर है, खाने पीने सोने में,
जीवन की प्रत्येक क्रिया में हंसने में त्यों रोने में।

५

मैं हूं उसकी प्रकृतिसंगनी, उसकी जन्म प्रदाता हूँ,
वह मेरी प्यारी बिटिया है, मैंही उसकी माता हूँ।
तुमको झुलकर खिढ़ आती है, मुझको होता है अभिमान,
जैसे भक्तोंकी पुकार सुन, गर्वित होते हैं भगवान।

'पर रोने में अंतरतम तक की हलचल मच जाती है,' जगतके इस निष्कपट सिद्धान्त को कौन नहीं जानता ? पर उसका वर्णन इस ढंग से एक सच्चे से कवि हृदय के अतिरिक्त कौन कर सकता है ? और 'छूटे हुए किसी साथी को अपने पास बुलाती है।' पद्य में किस साथी की ओर इशारा किया किया गया है ? इसे समझना पाठक ! आपके ऊपर निर्भर है। शिशु का क्रन्दन आज इस भारत के लिये मामूली सी बात है। एक एक माताएं. ऐसी वैसी माताएं नहीं बल्कि बिल्कुल अप टु डेट के रंगमें रंगी हुई माताएं, आज एक साथ ही दो २ तीन तीन शिशुओं के क्रन्दन हमेशा सुनती रहती हैं किन्तु उनको कभी किसी साथी की याद आती है ? और यदि याद आ ही जाती तो फिर एक साधारण व्यक्ति और कवि में अन्तर ही क्या रह जाता ? उसकी उपमा ब्रह्मासे क्यों दी जाती ?

हम उपर 'नया बचपन' शीर्षक कविता का जिक्र कर चुके हैं और यहाँ 'साथी से मतलब, मेरी सम्मति में उसी बचपन से है।

इसी प्रकार प्रताप के गत काँग्रेस अङ्क में 'झाँसीकी रानी" महारानी लक्ष्मीबाई पर आप की एक लम्बी कविता प्रकाशित हुई थी। उसका एक पद्य उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सके।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसके तलवारोंके वार।
नकली युद्ध व्यूहकी रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रियखिलवार।
महाराष्ट्र कुलदेवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी,

* * *

ये एक सच्ची क्षत्रिया के विषय में एक सच्ची क्षत्रिया के हृदयोद्गार हैं। कृपाण और कलम का कैसा सामंजस्य है। एक तलवार के जोर से बड़े बड़े विकट योद्धाओं का मान मर्दन कर गई तो दूसरी लेखनी के बलपर आज भी काम कर रही है, जो लक्ष्मीबाई की तरह उसको अजर अमर बनाए रहेंगे।

* * *

मोहनी के आंसू

—:◌:o:◌:—

ले०--श्री० पं० सम्बलाल वैद्यराज

(गताँक से आगे)

आज दिन के ग्यारह बजे से जिधर दोनों भइये काम पर डटे हैं, आँखें न उठा सके। नौकर लोग भी बराबर का काम दिखाते जारहे हैं। लो, अँगड़ाई तोड़ कुन्दन श्रमअनुभव करने लगा। ऊपर से घड़ी ने भी टनकारे के साथ छः सुना दिये। अब तो काम पर से कुन्दन का चित्त हट गया। घर की सूझी, उठे, कोट पहना कि पीछे से—"जनाब !" कह, एक के पीछे एक--२० स्त्री पुरुष आ, प्राप्त हुये। ओः ! यह तो पादरी साहब ही, क्या ख़बर निज परिवार के साथ–क्या जाने इष्ट-मित्रों के सहित–आये हैं। इनमें छोटे नन्हे बच्चे दो, बारह से लेकर बाईस वर्ष की आयु की पाँच लड़कियाँ—जिन का स्तनान्त–देश साढ़े चौदह आने भर बाहर दीख पड़ता है—कसी–तनी खड़ी हैं। ऐसेही पच्चीस से बत्तीस वर्ष वाली तीन स्त्रियाँ, एक वृद्धा तथा सोलह, बीस व चौबीस वर्ष की आयु के तीन नव-युवक, एक स्वयं पादरी महाशय! इन्हीं के सम आयु के तीन, जिनकी गोद में दो छोटे बालक। इन्हें देख लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कुन्दन ने कहा—"आइयेजी···आपकी······"

पादरी—"नहीं शरमिन्दा होने की कुछ बात नहीं। हम बैठना नहीं चाहते, जिससे आपको कुरसी वगैरः की दिक़्क़त उठानी पड़े।"

जिससे संकोच था, जिससे कुन्दन लज्जित हो सिटपिटा गया था, वही बात धूर्त ने कह डाली। किन्तु तिसपर भी कुन्दन ने स्थैर्य्य से उत्तर दिया—"वाह, अभी कुरसियाँ मँगवाता हूँ। वैसे हम बहुत देर से आपकी राह देखते थे, तय्यार थे। ज़रा ठहरिए, पान आते हैं।"

पादरी—"इस वक्त नहीं। फिर आयँगे, तो खायँगे। अब तो चलिएगा।"

कुन्दन सुन, तुरन्त सङ्ग हो लिया। मार्ग में उन्हीं में से एक साहब ने जिनका नाम था मिस्टर एच. एम. चन्दू (H. M. Chandu) पादरी महाशय से कुन्दन की ओर संकेत कर, प्रश्न किया–"आपकी तारीफ़ ?"

पादरी—"आपका मुबारिक नाम है—ला० कुन्दनलाल, यह जनरल बूट-मर्चेन्टस—जहाँ से आप संग हुए हैं—आपही का है। आप दो भाई हैं, क़ौम मोची हैं; आप··········

मिस्टर चन्दू बीच में ही बात काट कर बोले—"मोची······? ओः ! इन तीन महीनों में जो १५०० इधर इसाई हुए हैं, उनमें शायद आपकी क़ौम के ही ज़्यादह हैं ?"

पादरी—(शिर संकेत से) "जी—हाँ !"

मि० चन्दू—वे भी तो शायद मोची ही थे, जो अभी पुलिस दारोगा होकर, पञ्जाब-अम्बाला की तरफ गए हैं ?

पादरी—(दो तीन वार शिर हिला कर) "जी, जी, हाँ ! मालिक मेहरबान होने पर अच्छा दरज़ा पाना कुछ मुश्किल नहीं। आज हमने

इधर आने के लिए इन्हें इसलिये तकलीफ़ दी है कि हिन्दुओं की बातें तो आप जन्म से देखही रहे हैं, एक बार ज़रा इधर भी सैर करलें !"

मि० चन्दू—(नाक-भौंह सिकोड़कर) "अजी, हिन्दुओं का तो सुबह मुँह देखना भी गुनाह में दाख़िल हैं ! जिस ग़रीब कौम का भी इनसे पाला पड़ा हुआ है, उसी पर ज़ुल्म-दर ज़ुल्म उतारते हैं !!"

पादरी—(कुन्दन की ओर देख) "वह जो पुलिस दारोगा होकर अभी पञ्जाब को गये हैं—जिनका ज़िक्र अभी आपने (मि० चन्दू की ओर छतरी की मूंठ कर) किया है—आपकी लड़की से उनकी शादी अरसा दो माह तक होने वाली है। (एक निहायत सुन्दरी युवती कन्या की ओर—जो बराबर साथ चली आरही थी, पादरी साहिब ने संकेत कर, कहा)—"वह यह हैं" (फिर उस लड़की की ओर देख) "क्यों शायद दो महीने तक ही लौटेंगे—न ?" कहा, परन्तु वहाँ उत्तर की अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। उसी समय उसने ज़रा दृष्टि स्थिर कर कहा, "नो-नो, एक महीना और······तेईस दिन में"

अनन्तर उस युवती कन्या से कुनन्द को एक-संकेत द्वारा बता, कहा,—"कल आप लोगों ने जूतों के बारे में ज़िक्र किया था, आप लोग कल सब आपकी दुकान पर जायँ और देख-भाल ले लें। हर तरह विचारे लायक़ और नेक दिल हैं। अच्छी तरह मुलाकात होने पर आपके मिज़ाज का आप लोगों को पता लगेगा।" यों अपने साथ वाली पार्टी में कुन्दन का परिचय करा, चुप रहा।

लो, कुछही काल में सब गिरजाघर (Church) को प्राप्त हुए। ओह ! आज तो बड़ी भीड़ है। सैकड़ों यूरोपियन-लेडियाँ प्रिय हृदय नायकों के कर में कर डाले, इधर उध चक्कर काट रही हैं। इधरये सब भी एक बड़ी खाली बेंच के पास जा खड़े हुये। वहाँ छतरि रख कुछ एक बैठे, परन्तु जब कुन्दन बैठने लगा तब पादरी साहब ने उन दो लड़कियों से जो आयु में सोलह अठ्ठारह वर्ष की होंगी, कहा:—

"क्या इन्हें संग ले, इधर-उधर टहलाकर, मुलाकात कराकर, लासकती हो ?"

मिस सूज़न-"जी-हाँ, आसानी से" (कुन्दन से फिर बोली) "चलिए !"

कुन्दन वहाँ से वहाँ तक चुप ही चला आया था। अब किं-कर्तव्य-विमूढ़ सा हो, पादरी साहिब की ओर देखने लगा। पादरी ने भी मूढ़ धी-सा समझ, कहा—"जाइयेगा"। अब कुन्दन कुछ न बोल सका। लाचार सा हो उनके सं हो लिया। वैसे तो यहाँ सबसे ही विशेषतया ऐसी एकाकिनी युवती योषाओं के साथ सम्भाषण एवं विचरण करने का तो उसके लिये प्रथमावसर ही था, इस लिये विचारे को लज्जा और संकोच से मल्ल-युद्ध करना पड़ा। वह इस समय-मलीहमत की तीव्रगा तरंगिणी के भैरव-भँवर में न डूबता ही है, न तैरता ! इस समय कुन्दन का चित्त एवं विचारणा उसके वस मे नहीं रही। एक से एक नई बातें उसके आ आने के कारण, उसकी विचार-शक्ति उस बिल्कुल प्रथक् हुई। वहाँ कई एक यूरोपिय युवतियाँ जैसे अपने मनोहर-माणवकों, प्रि प्राण-पतियों का कर करतल में लिये भ्रम कर रहीं थीं, तैसेही वे भी कुन्दन को लेक निस्संकोच घूमने लगीं। परतन्त्र कुन्दन उ

समय गाम्भीर्य्य धारण किये, इधर-उधर के दृश्य देखते अथ च उनके प्रश्नों को संक्षिप्त उत्तर देते टहल रहे थे। उनका पारस्परिक-परिचय निम्न प्रश्नोत्तरावलि से हुआ:—

कुन्दन—"आप दोनों का आपस में क्या तअल्लुक़ है ? मालुम तो ऐसा होता है कि आप बहिन-बहिन हैं।"

मिस सूज़न—"हमारे नक़्शो नवास, सूरत-शक्ल, क़द वगैरह से अनजान सब ऐसाही समझते हैं। लेकिन यह भी ठीक है कि यह मुझ से बहिनों से कहीं ज़्यादह मोहब्बत करती हैं !"

कुन्दन—"पादरी साहिब ?"

मि० सूज़न—"मेरे वालिद हैं"

कुन्दन—"यह छोटे सब आपही के बच्चे हैं ?"

मि० सूज़न—"जी-नहीं, इनमें से दो छोटे और एक बड़े यों सिर्फ़ तीन हैं ?"

कुन्दन—"यह दो और हैं, सो ?"

मि० सूज़न—"एक हमारे मामा के लड़के हैं। और जो बड़े मालूम होते हैं, वह मेरे दोस्त हैं। आम तौर पर·········

मि० जेन—(बीच में बात काट कर)-"वाह, क्या खूब ! क्या दो महीने बाद भी ऐसे ही कहोगी ?" फिर कुन्दन की ओर मुँह कर, मि० सूज़न को उँगली से बता) "वह इन के उम्मेदवार हैं। जो छुट्टी पर इन्हीं के मिलने के वास्ते सिर्फ़ तीन रोज़ के लिये आये हैं। कोई साढ़े पाँच महीने बाक़ी हैं, थानेदारी का इमतिहान देंगे और फिर शादी करेंगे।" इसके उत्तर में मि० सूज़न ने हँसने के अतिरिक्त, कुछ कहा नहीं। कुछ देर के पश्चात्, फिर मिस सूज़न बातें करने लगी—"आपका मकान किधर है ?"

कुन्दन—"दुकान के नज़दीक़ ही है।"

सूज़न—"क्या आप (With Family) विद्-फेमली=सपरिवार हैं ?"

कुन्दन—"जी !"

सूज़न—"कल हम लोग दुपहर को ३ बजे आयेंगी। कई एक हमारी सहेलियों ने जूता भी पहनना है। ख़ास कर·····हिन्दुओं में Wife (वाइफ़) को क्या कहते हैं—इस्तरी ?"

कुन्दन—"स्त्री"

सूज़न—"·····हाँ-हाँ,···स्तरी से मुलाक़ात करनी है।"

कुंदन—ज़रूर तशरीफ़ लाइयेगा"

मि० जेन—"अगर वह अपने मकान में न घुसने देंगी, तो ?"

कुंदन—(कुछ लज्जित सा हो, कुछ हँस) "अजी, वाह ! अच्छा ख़याल·········"

बात समाप्त न होने देकर, पहलेही दोनों खिल खिला हँस पड़ीं जिनके साथ कुंदन को फिर हँसना पड़ा। इस प्रकार बातें करते, एक ऐसे स्त्री-पुरुषों के समुदाय में पहुँचे जहाँ बहुत से नव-युवक नव-युवतियाँ सभ्यता (?) सहित मन्द-हास्य, कटाक्षों, एवं प्रेम-मत्त नयनों से एक दूसरे को तृप्त कर, बातें कर रहे थे। वहाँ तीनों ने प्राप्त हो, How do you do (हाउ डू-यू-डू)" के संग किञ्चित् कोलाहल उत्पन्न किया। तदुपरान्त एक युवती कन्या ने स्वल्पाक्षरों में इंग्लिश में मिस जेन से बातें करनी आरम्भ कीं, जिसे वे सुन, सब संशय-सा मिटाने लगीं। ज्ञात हुआ—वहाँ उन सब से इनका परिचय हो रहा है। इसही भाँति चार-पाँच

टोलियों में पहुँचे और वहाँ ऐसा हुआ।

इस अन्तर में एक विशेष बात और हुई। वह यह कि कुंदन स्वयं अपने आपको भूल गया कि "मैं कौन हूं? क्या हूं?" कई प्रेम मृदु विमल-मञ्जुल पाणि-पल्लवों से पाणि-सम्पर्क कर, स्वयं अपने को नर-देहधारियों में प्राप्त हुआ, सा समझने लगा। उनके प्रेम-व्यवहार ने उसका मानस-मन्दिर अपने अधिकार में कर लिया। या यों कहसकते हैं कि उनके अनोखे तथा औदार्य्य-पूर्ण प्रेम-भाव ने स्वबल से उसके हृदय-धन को गिरजा घर (Church) में घुसने से पूर्वही पहुंचा दिया! अर्थात् मसीहमत की विस्तृत-वेदिका पर सहर्ष श्रद्धा से भेंट चढ़वा दिया! कुन्दन यह सोच-सोच इस समय हैरान था कि:—

"जो न कठिन शस्त्रों से भी वश में आता है।
वही 'प्रीति' से हृदय हाय क्यों बँध जाता है?"

कुन्दन इन दोनों कोमलाङ्गी ललित—ललनाओं के संग इधर उधर चक्कर खा, फिर वहीं नितान्त दुर्दान्त महाग्राह के पास लौट आया। उसका प्रसन्न-मुख, अपूर्व-हृदय-हर्ष एवं अदृष्ट पूर्व प्रसन्न बदन देख, प्रवीण-पादरी तुरन्त ताड़ गए! उन्होंने चाहा भी-कुछ ज़िक्र चलादें परन्तु फिर कुछ सोच-समझ मौन ही रहे। जब अत्यन्त निकट आए तो स्वागतार्थ बेंच से ज़रा उठने लगे। तब कुन्दन "नहीं-नहीं"। कह, रोकने लगा। तिस पर भी, "अजी, यहाँ तशरीफ़ रखिए।" कह, प्रेम से पास बिठाल लिया।

कुन्दन अपनी शान-ओ-शौक़त का अच्छा था। वह रुचिर वस्त्र-विभूषणों से सुसज्जित, अलङ्कृत रहता था। सुन्दर डील-डौल ने, बाहे-सँवारे बालों पर की स्वच्छ दूधिया Felt Cap (फ़िल्ट-कैप) ने, चढ़ी हुई छोटी २ मूछों ने उसे गौरव पुञ्ज एवं प्रभाव-शाली बनाया हुआ था। बढ़िया चायना सिल्क की कमीज़ में लगे पीले चमकीले तीन ज़ंजीर वाले सोने के बटन एवं सुन्दर पीली चमकीली तिलड़ी-हुई गले की सोने की जंज़ीर, जो सुन्दर सब्ज़ सरज़ के खुले बटन वाले कोट के नीचे की मख़मली किनारों वाली वासकट के ऊपर पड़ी, उरोदेश को अलंकृत कर रही थी—स्वयमेव देखने वाली ललित-ललनाओं के हृदयों को स्पर्श के लिए आकर्षित करती थी। उस के सुख-स्पर्श दोनों हाथों की अनामिकाओं की-गहरे-गुलाबी, हरे-इमीटेशन वाली पीली-चमकीली अँगूठियाँ नवयुवक नव-युवतियों के वृन्द में प्राथमिक पाणि-स्पर्शन-काल में उनके हृदयों पर-शत्रु सेना में वीर-वर के सुतीक्ष्ण-खड्ग की भाँति-गहरी चोट पहुंचाने का काम करती थी। उस के गोरे होठों पर ताम्बूल-राग ने अपना ऐसा रङ्ग जमाया हुआ था, जैसे द्विरागमन-प्राप्ता नवोढ़ा का प्रतिबिम्ब-सहित-अनोखा-अनुराग हृदय-पटल पर दृढ़ता से अङ्कित होता है। सस्मित-संभाषण में कुन्दन के राग-रक्त ओष्ठों का मञ्जु मन्द-स्फुरण सहृदया-ललनाओं का यदि चित्ताकर्षक था, तो पुरुषों के हृदय क्षेत्रों में प्रभावोत्पादक, सहराग-संवर्द्धक एवं गौरव-विस्तारक था। इस लिए भी कुछ एक नव-युवक नव-युवतियों ने विशेष सह-राग दिखाया।

कुन्दन के हृदय-भावों का परिवर्तन प्रलय और सृष्टि की तुलना से न्यून न हुआ। उसके

मनोमन्दिर एवं जीवन-मंदिर में न जाने किन-किन भावों की आगृति हुई, जिस से उसका हृदय-हर्ष इतना बढ़ गया कि मुख-प्रसन्नता पल-विपल बढ़ती ही जाने लगी। हम नहीं कह सकते, उसे क्या हुआ? वह दिन भर इधर उधर टक्करें मारने पर सन्ध्या को यथा-स्थान पहुंचने वाले की भाँति व्याधि-युक्त हुए, शाप-युक्त हुए, अज्ञान-युक्त हुए मोक्षार्थी की भान्ति परमानन्द का अनुभव करने लगा।

कुन्दन विचारशील था। अपने आन्तरिक भावों को छुपा कर, गम्भीरता से कार्य-साधन में प्रयत्न-पर हुआ। वह वहाँ से आवास-स्थान पर पहुँचा। वहाँ घर में किसी प्रकार की भी चर्चा न की। सन्ध्या-समय होचुका था। प्रकाश-वती विजुली के रंग-बिरंगे लट्टुओं ने स्वच्छ-प्रकाश फैलाया हुआ था। उस समय भोजन कर, पान खा, कुन्दन अपने कमनीय-कमरे में जा, विस्तृत-पर्य्यङ्क पर लेट गया। देखते ही देखते मोहिनी को कंधे लगाये हुए सरस्वती आई, और पास-बिछे छोटे से पंलग पर धीरे से उसे सुला थपेड़ने लगी। लो. वह कुछ तो हिली थी पर सो गई। अब सरस्वती स्वामी के पैरों के पास बैठ गई। और बोली।

"क्यों-जी! कहीं लौंडिया भारी हो गई, क्या?"

कुन्दन—(कुछ बिगड़ कर) "वाह, भारी क्यों हो जाती? तुम्हारी सब बातें ऊट-पटांग!"

सरस्वती-"मुझे तो यही वहम हुआ कि कहीं इसी की चिन्ता शिर पर चढ़ गई? देखो, न—कैसे होरहे हो?"

कुन्दन—"तुम्हारा सारा वक्त़ बे-शिर-पैर की बातें सोचने में जाता है!"

सरस्वती—"अच्छा तो कुछ तो सोच-विचार में फँसे-हुए तो हो, ही! मेरा दिल क्या आपके दिल में मिला हुआ नहीं? तिल-भर विकार तुम्हारे चित्त का क्या मैं न समझ सकती हूँ? इस हृदय में यह हृदय समाया हुआ है। नस-नस की तली को पहचानती हूँ। लो, मेरा निश्चय है कि आज बड़ी ही उलझन में पड़े हुए हो, परन्तु उस में रंज नहीं!—यह सूर्यसम मुख मुझे बता रहा है!!" कह, ज़रा आगे बढ़, आप भी चित्त बाईं ओर लेट गई। अपना दक्षिण हाथ अनुमान से स्वामी की ठोड़ी के पास लेजा, बोली—"क्यों-जी, बताते नहीं। क्या बात—?

कुन्दन—"बताऊँ?"

सरस्वती—(अधिक उत्कण्ठा से) "हाँ!"

कुन्दन—"कल कुछ सब्ज़ी मँगा छोड़ना।"

सरस्वती—"किस वास्ते?"

कुन्दन—"कल तुम से मिलने के लिए कुछ ईसाइयों की लड़कियाँ आएँगी।"

सरस्वती—"नाँ—सच! नौंत आप हो?"

कुन्दन—"सच हो"

सरस्वती—(पुलकित हो) "अच्छा, हम भी देखेंगे।"

(शेष फिर)

* * *

युरोप में साधुओं के अखाड़े

लेखक--'इतिहासज्ञ'

ज्योति के बहुत से पाठक और पाठिकाओं ने कान्वेन्ट स्कूलों का नाम सुना होगा और हमारे पंजाबी पाठक 'दि सेक्रेड हार्ट स्कूल' से परिचित भी होंगे। इन स्कूलों में काम करने वाले पुरुष और देवियों का एक विशेष प्रकार का भेष रहता है जो साधारणतया और युरोप वासी नहीं रखते हैं! इन में देवियों के सिर पर एक विशेष टोपी सी भी रहती है जिसे 'हुड' कहते हैं और ऊपर से लम्बा चोगा सा रहता है। प्रायः इनके वस्त्र या तो बिल्कुल काले या बिल्कुल सफेद ही दृष्टि गोचर होते हैं। इनमें जो बराबर आयु की होती हैं वह तो सिस्टर्स कहलाती हैं परन्तु जो अधिक आयु की होती हैं उन्हें 'मदर' अर्थात् माता कहते हैं। ईसाइयों में कई पन्थ हैं उनमें से एक पन्थ रोमन कैथोलिक भी है। इस पन्थ के अनुयायी रोम के पोप या बिशप को अपना प्रधान गुरु मानते हैं; इन्ही लोगों में से एक शाख के लोग 'मांक' और 'नन्स' कहलाते हैं। यह एक प्रकार से वैसे ही हैं जैसे कि हमारे भारत में साधु और साधुनी होते हैं। इन के निवास स्थान भी विशेष प्रकार के होते हैं और इन्हें आजन्म कुँवारे रहना होता है। युरोप में इस साधु आश्रम प्रथाका प्रचार अति प्राचीन है। कहा जाता है कि साधु आश्रम प्रथा पहिले मिश्र देश में रही फिर वहां से युनानियों ने ली, फिर रोम ने; इस प्रकार सारे युरोप में फैल गई। प्रायः सभी बातें अच्छी या बुरी जो भी संसार के कोने २ फैली हैं वह सब इसी क्रम से भारत से अन्य देशों में फैली हैं यह ऐतिहासिक लोग निकालते हैं, अतः इस में आश्चर्य की कुछ बात नहीं। परन्तु इस प्रथा का इतिहास बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद है अतः यहाँ पर इसका संक्षिप्त वर्णन युरोपीय ऐतिहासिकों के आधार पर दिया जाता है।

इन ऐतिहासिकों का कथन है कि इस साधु-प्रथा का दार्शनिक आधार तो यह विश्वास है कि प्रकृति माया जाल है अतः इस प्रकृति के कार्य्य रूप जगत् से संपर्क रखना गिरावट है। बुराई का यह स्वरूप न तो यहूदियों के मन में पैदा हुआ, न ईसाइयों के; इस का स्रोत तो हिन्दू-धर्म है। ईसा ने स्वयं ही संसार की सारी उत्तम वस्तुओं का व्यवहार किया और यह सिखाया था कि पाप किसी बाह्य वस्तु में नहीं है, बल्कि हमारे हृदय में इसका आविर्भाव होता है। संसार पापात्मक है यह भाव तो किन्हीं हिन्दू दार्शनिकों की शिक्षा से निकला है। परन्तु यह भाव केवल दार्शनिक विचारों में ही नहीं रहा, अर्थात् ईसा की दूसरी शताब्दि में जनता का साधारण-मत यही था। इस भाव ने इतनी दृढ़ जड़ पकड़ ली थी कि जब उनमें ईसाई मत भी फैल गया फिर भी उनके हृदय से यह भाव दूर न हुये। लोग अब भी साधुओं के कर्तव्यों को धर्म की दृष्टि से देखते थे और धर्म-भाव के आवेग में आकर ईसाई बनते हुये भी वह अपने साधु के

कर्तव्यों पर और दृढ़ रूप से आचरण करने का उद्योग करने लगे। अतः साधुप्रथा ने ईसाई मत में रहते हुये लोगों के लिये जो रूप धारण किया वही 'मोनेस्टिसिज़्म' अर्थात् एकान्त-वास-आश्रम कहलाता है।

रोमन साम्राज्य का ह्रास इसी ज़माने में शुरू हो चुका था और जंगली जातियों के भयंकर आक्रमणों के परिणाम से लोगों का दिल जीवन-क्षेत्र से विरक्त होने लगा था। सर्वोत्तम मानव-हृदय भी निराशा के अन्धकार से आच्छादित होने लगे थे और दिन प्रति दिन बढ़ते हुये कलह और क्लेशों से अपने आपको दूर रखने की चिन्ता में ग्रस्त हो रहे थे। १७५ ईस्वी के बाद ही ईसाई मत में सांसारिक भोग लिप्सा खूब बढ़ गई थी, और जैसे २ यह मत जनता का ध्येय बनने लगा असंख्य लोग नाम मात्र के ईसाई बनने लगे, परन्तु दिल से तथा व्यवहार में वह अनीश्वर वादी ही थे। बिशप लोग प्रायः बड़े घमंडी और उद्धत होते थे और बड़े भोग और ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते थे। अतः जो लोग वास्तव में मुक्ति का मार्ग खोज रहे थे वह इस भोग लिप्सा से असन्तुष्ट होकर ईसाई धर्म के अपवित्र व्यवहारों से भाग निकले और जंगलों में जाकर बसने की ठानी और बिना ईसाई-धर्म की सहायता के ही परमात्म-प्राप्ति का उद्योग करने लगे। दूसरे साधारण लोग ईसाई धर्म में ही रहे। इस प्रकार ईसाई धर्म के दो मुख्य खण्ड होगये।

एकान्त वास-आश्रम प्रथा का प्रारम्भ का इतिहास मिलता नहीं है। शायद यह प्रथा ईसा की तीसरी शताब्दि में प्रारम्भ हुई होगी। शुरू २ के 'मोंक'=महन्त तो साधु थे। वह एकान्त में रहते थे और झोपड़े खोह, या पहाड़ या वृक्ष की गुफा में आश्रय लेते थे। यह आन्दोलन शुरू तो उन देशों से हुआ जिन में ऐसे एकांत जीवन के लिये पर्याप्त सुगमतायें थीं, परन्तु धीरे २ सारे पूर्वीय युरोप में फैल गया। फिर दम्भियों और दुष्टों से अपनी रक्षा करने के हेतु यह साधु अपने २ झोपड़े पास २ बनाने लग पड़े और धीरे २ इनके चारों ओर दीवार खींच कर रक्षा का प्रबन्ध भी करने लगे। यह लोग प्रार्थना के लिए एक ही उपासना-भवन को बर्तते थे, किसी २ पर्व पर सम्मिलित प्रार्थनायें करते थे, और सहभोज भी करते थे। यद्यपि इनके बहुत थोड़े नियम थे तथापि इस नवीन बस्ती के ऊपर शासन करने के लिये एक अध्यक्ष भी अपने में से चुन लेते थे। धीरे २ वह लोग ऐसे घरों में रहने लग पड़े जिसमें प्रत्येक साधु के पास अपना एक कमरा या कोठरी रहती जिस में वह स्वच्छन्द था। इस प्रकार साधु जीवन एक प्रकार से अर्ध-समाजिक आधार पर संगठित होगया। जंगलों में जाने से प्रत्येक साधु को स्वभावतया अपनी सम्पत्ति और सम्बन्धिजन त्यागने ही होते थे, अतः धीरे २ यह नियम ही बन गया कि जो साधु बने वह ग़रीबी और पवित्र आचरण का व्रत धारण करे और जब वह एकही अखाड़े में रहने लगे तो एक और नियम भी लागू हुआ कि प्रत्येक जन उस अखाड़े की आज्ञा पालन करे और उसके आधीन रहे। इस प्रकार इस मत के तीन मुख्य व्रत यह बातें बन गई।

दिन पर दिन यह असंगठित जीवन जन-

साधारण को प्रिय लगने लगा अत: यद्यपि साधु लोग अब इकट्ठा भी रहने लगे थे फिर भी इसका नाम एकान्त-सेवन ही रहा। यहूदियों के ईसाई धर्म में इस साधु आश्रम का यही रूप था, वहां अब भी सन्त रहते हैं और यह समझा जाता है कि यह लोग अन्यों की अपेक्षा अधिक पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। इस पन्थ के सन्त लोग सचमुच जीवन का अधिकांश भाग संसार से विरक्त होकर बिताते थे। प्रायः इनका राज्य पर बड़ा अधिपत्य रहा और चतुर्थ से लेकर ईसा की अष्टम शताब्दि तक राजकीय दर्बार में उन्हा ने बड़ा भाग लिया। उसके पश्चात् उनके जीवन का सर्व लोप होगया और उनका इतिहास भी अज्ञात हो गया।

युरोप के पश्चिमी भागों में सन्तों का प्रादुर्भाव ३४० ईस्वी में हुआ जब राजा अथेनीसियस दो महन्तों को रोम में लाया। उनको देख कर रोमन लोगों में कौतूहल तथा घृणा के भाव पैदा हुये। लेकिन जब सन्त अगस्टाइन और जीरोम ने अपनी प्रभावशाली लेखनी उठाई और अपने सन्त जीवन का पवित्र आदर्श रक्खा तो यह प्रथा सारे युरोप में फैल गई। यह आन्दोलन और बहुत लोक प्रिय बन रहा था। और डेढ़सौ वर्षों के अन्दर ही अन्दर पश्चिम में सैकड़ों तो 'सन्त निवास' बन गये और हज़ारों सन्त उसमें वास करने लगे।

एक समय तो ऐसा भान होने लगा कि पूर्वीय देशों की भांति पश्चिम में भी यह सन्त प्रथा वही रूप धारण करेगी अतः न तो इसका कोई इतिहास होगा और न ईसाई धर्म में इसका मुख्य भाग होगा।

परन्तु पश्चिम के धर्म भाव ने इस पर आधिपत्य जमाया, इसे संगठित किया, और पोप के तथा सम्राटों के हाथों की यह बड़ी प्रभावशाली शाखा बनकर जंगली जातियों को ईसाई बनाकर सभ्य बनाने में तथा ईसाई मत और साम्राज्य के फैलाने में बड़ी सहायक हुई। रोमन लोगों में जो संगठन की शक्ति, विजय की इच्छा, और कार्य्य परायणता थी उसने प्रारम्भिक आदर्शों को फैलने न दिया। निदान जो साधु संसार से भागे हुये थे वही विजेता और शासक बन कर संसार लिप्त हुये।

प्रारम्भ में प्रत्येक साधु के अखाड़े ने अपने निजी नियम बनाये, प्रत्येक साधु जो जी में आता था कर लेता था। फिर इन नियमों को एकत्र कर सबके लाभार्थ एक साधारण शास्त्र बनाया गया। इनमें से नर्सिया का एक सन्त बेनीडिक्ट नामक था ४८०-५४३ ईस्वी में इसका ही अखाड़ा सफल हुआ था। यह सन्त बहुत वर्ष तक साधु जीवन व्यतीत करके नेपल्स के पास एक स्थान मान्टी कसीनों में ५२८ ईस्वी में गया था और वहां अपने साथ बहुत से सन्तों को ले जा कर-जिन्हों ने अन्यत्र भी इसका साथ दिया था-मशहूर मान्टी कसीनों का अखाड़ा स्थापित किया, जिसके लिये इसने नियम भी बनाये। उसने महन्तों का एक संघ बना दिया, और अध्यक्ष-महन्त की आज्ञा बिना किसी सन्त का अखाड़े से बाहर जाना बर्जित कर दिया। शीघ्र ही इनके और संसार के बीच में एक बड़ी भारी रुकावट पैदा होगई। रात दिन के प्रत्येक घंटे के लिये सन्तों का कार्य्यक्रम भी उसने बना दिया। इस प्रकार प्रार्थना और स्वाध्याय

के घंटों और कार्य्य के घंटों का क्रम बन गया, नियम पालन पर बड़ा बल लगाया गया और प्रत्येक सन्त को गरीबी, पवित्रता, और आज्ञा पालन के यह तीन व्रत लेने पड़ते थे।

सन्त बेनीडिक्ट के इन नियमों के प्रचार में परिस्थिति ने बड़ी सहायता दी और क्रमशः अन्य अखाड़ों ने वे भी यही नियम स्वीकार कर लिये। मशहूर ईसाई पादरी ग्रिगोरी ने (५९०-६०४) में इटली, सिसली और इंग्लैंड में बहुतेरे स्थानों पर अखाड़े बनाये। सातवीं सदी में इनका बिचार बहुत रहा और आठवीं सदी में गाल और जर्मनी में महन्त बेनीफेस की अध्यक्षता में यही धर्म फैला हुआ था। नवीं सदी में अनेन के महन्त बेनोडिक्ट नामक ने इसके नियम और भी सख्त बना दिये जोकि एकान्त वास के कट्टर नियम समझे जाने लगे, और किसी ज़माने में ४० हजार अखाड़ों पर लागू थे। बेनीडिक्ट की इच्छा यह न थी कि अपने सन्तों को अध्यापक या प्रचारक बनावें लेकिन रोम के बिशप लोगों ने उन्हें प्रचार के काम में लगाया और धीरे २ यह भाव पैदा हो गया कि सन्तों का उद्देश्य ही एक मात्र धर्म प्रचार है।

(अपूर्ण)

प्रकाश का आवरण

लेखिका—श्रीमती सीता देवी जी

(माडर्न रिव्यू से अनुवादित)

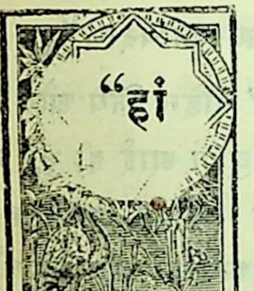

“हाँ खोखा बाबू ज़रा अपनी दीदी को तो बुलाओ!”—किन्तु खोखा बाबू के बुलाने आने से पूर्व ही मैं कौन आया है यह देखने के लिये उठ पड़ी। दोपहर को मुझे कुछ छुट्टी रहती थी अतः इस समय को बिताने के लिये मैं उपन्यास पढ़ रही थी। लेकिन मैंने इसे चुनने में अकलमन्दी नहीं की थी, क्योंकि मेरे तो यह बात जानने के लिये प्राण कण्ठ में आरहे थे कि नायक और नायिका का भाग्य निर्माण क्या हुआ, लेकिन पुस्तक का लेखक उन के हृदय-गत भावों के स्पष्टी करण में मस्त था। उस का यह मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण मुझे मौत सा लगता था अतः ज्योंही मैं खिड़की के बाहर पुस्तक फेंकने ही को थी कि खोखा बाबू ने प्रवेश किया। उस के मुँह में एक सारा पूरा केला भरा हुआ था और वह बोल रहा था कि—“दीदी सुखी बुआ तुम्हें बुला रही हैं?”।

ज्योंही मैं यह देखने के लिये निकली कि बुआ क्या कहना चाहती है त्यों हीं अम्माजी भी अपने कमरे से बाहर निकल आईं और बोलीं कि—“अरे दोपहर के समय वह तुम्हें किस काम के लिये बुलाने आई हैं? (सुखी की ओर (देख कर) अच्छा सुखी दीदी आई हैं!”

सुखी बुआ हमारे पास आगईं। वास्तव में इनका हमारे साथ कोई रिश्ता तो था नहीं लेकिन

आदर भाव से सभी इन्हें (बुआ सुखी) कहकर पुकारा करते थे। यह विधवा थीं, और यद्यपि इन की आयु छोटी न थी तथापि खूब हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ थीं। वह अपने मुँह मे भरे हुये पान का स्वाद ठीक करने के लिये चुटकी भर तमाकू मुँह में डाल कर धीरे से बोलीं—अरे मैं मलिन को बुलाने आई थी क्योंकि मेरी भौजाई बोली कि—"दीदी जा मलिन को कनक का सिर गूंधने के लिये जरा बुलाला, क्योंकि मलिन की तरह सुन्दर सिर और कोई नही गूंध सक्ता। तुम जानती ही हो कि कनक को देखने के लिये वर पक्ष के लोग आ रहे हैं। रनिहाट के रहने वाले इन लोगों को तो तुम जानती हो। अरे बाप रे बाप! इनको कितना मिजाज़ है। यह बड़ी सुन्दर बहू चाहते हैं और केवल इस लिये सारे हिन्दुस्तान को खोज रहे हैं। रुपये की तो इन्हें कुछ परवाह नहीं है, परन्तु बहू सचमुच खूब सूरत चाहिये। यह लोग बड़े तालुक दार भी हैं और करोड़ पति हैं। इनके घर में दो ही लड़के हैं और बड़े लड़के के लिये बहू ढूंढ़ते हैं। अगर कनक को वह चुनलें तो हमारा बड़ा भाग है। मलिन बच्चा! जल्दी कर वख्त बहुत कम रह गया है। अच्छा मैं तो अब भागती ही हूं क्योंकि घर में वे इन्तिहा काम पड़ा है।"

अम्मा अभी तक तो उसकी बातें चुपचाप सुन रहीं थीं लेकिन जैसे ही सुखी बुआ पिछवाड़े के दरवाजे से बाहर हुई त्योंही लगी बड़बड़ाने—"मेरा दिल तो होता है कि उस बुड़बुड़ी बुढ़िया का सिर तोड़ दूं! ।वह क्यों अपनी लड़की का सिर गुंथाने के लिये मेरी लड़की को बुलाने आवे? क्या कहना, मानो किसी के घर में कभी सुन्दर लड़की पैदा थोड़े ही हुई? और क्यों ऐगैरा कोई भी हो मेरे घर आकर मेरा इस लिये अपमान करे चूंकि मेरी लड़की बदसूरत है। और तू मूर्ख लड़की! क्या तुझ में कुछ भी आत्मसम्मान नही रह गया? तू हमेशः सभी के बुलाने पर तैयार रहती है? क्या तुझे जरा भी लज्जा छू नहीं गई, जरा अपनी शकल तो देख। तू १८ वर्ष की हो चली और अभी तक तेरे अपने विवाह का कोई ढंग ही नहीं। तू तो दूसरों की लड़कियों को जिनकी शादी होने वाली ही है सजाने के लिये क्यों दौड़ती रहती है?"।

मेरे पिताजी कमरे में बैठे थे, वहीं से बोल उठे—"अरे चुप भी तो करो। क्यों व्यर्थ पड़ोसियों को अपनी लड़की की ठीक २ उम्र की सूचना दे रही हो? वह लोग वैसेही बहुत पता रखते हैं। मलिन बच्ची! तू जा व्यर्थ में लोगों को दुश्मन बना लेने से क्या फायदा?"

मैंने और साफ कपड़े पहिन लिये और चल पड़ी। जब पहिले सुखी बुआ आई ही थीं तब मैं बहुत फूल रही थी क्योंकि अपने हस्त कौशल को दिखलाने का अवसर प्राप्त कर कौन नहीं फूलता? इसके अतिरिक्त कनक सचमुच ही सुन्दरी थी, उसे सजाने और पहिनाने में आनन्द भी आता था। किसी अंश में मैं अपने आप को विधाता की सहयोगी समझा करती थी क्योंकि जिस प्राणी को उसने सुन्दर बनाया था उसे मैं और भी सुन्दर बना देती थी। हां, लेकिन यदि मुझे कोई यह कहता कि अपने समान बदसूरत डरावनी प्रकृति को सजाओ तो मेरी

माता का गुस्सा करना या अपमानित होना समझना युक्ति युक्त होता। सौभाग्य से ऐसे परीक्षण का तो कोई अनुभव ही नहीं हुआ। मैं ने अपनी माता के मुंह से यह सुना हुआ था कि एक वार जब माताजी ने पिताजी से यह प्रार्थना की थी कि लड़की के लिये सोने के कड़े बनवा दो तो मेरी दादी ने यह जवाब दिया था कि 'तू उसे सोना पहिनाने के लिये उत्सुक न हो सम्भव है कि वह तुझे लोहे की जंजीर ही पहिनावे।'

सचमुच मैंने बहुत से बदसूरत लोग देखे थे किन्तु मेरे समान भयानक शकल वाला शायद ही कोई होगा। मैं शरीरधारी शाप ही मालूम पडती थी। मैं नहीं जानती कि लोग मुझे देख भी कैसे सकते थे। बचपन में एक दफा मुझे यह चाव आया कि मैं देखूं तो सही कि कैसी लगती हूं, इसलिये मैं अम्माजी के बड़े शीशे के सामने जा खड़ी हुई। यही मेरा प्रथम और अन्तिम वार शीशा देखना था।

मुझे यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी सूरत की लड़की को हिन्दू माता पिता किस नज़र से देखते हैं। और यह भी बात थी कि मैं १८ वर्ष की हो चली थी फिर भी मुझे शादी करके विदा कर देने की भी कोई सम्भावना न थी। मेरे माता पिता तो यही जिद करते थे कि मैं केवल १४ वर्ष की हूं लेकिन लोग तो हमेशः यही नहीं मान सकते। इसके अतिरिक्त मेरा छोटा भाई उपेन्द्र इस वर्ष मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा में बैठने वाला था, और उसे तो सार्टिफिकेट दिखाना पड़ेगा कि वह सोलह वर्ष का हो चुका। और चूंकि वह मेरा बड़ा भाई कहा ही नहीं सकता था अतः मझे १४ वर्ष की कहते रहना मुश्किल था। इस बात से मेरे माता पिता का स्वभाव पहिले की अपेक्षा और भी बुरा हो गया था और मुझे ही सारा कठोर पन सहना पड़ता था। अम्माजी अब कभी मुझ से प्यार से नहीं बोलतीं और पिताजीने बोलना छोड़ दिया था।

कनक के पिता का घर मेरे घर से बहुत ही थोड़ी दूर पर था। इतनी बातें सुन कर तो मेरा सारा उत्साह काफूर हो चुका था, और मेरे दिल में उदासी छा रही थी। ऐसा मालूम होता था कि सुन्दरता ही स्त्रियों का एक मात्र धन है। चाहे और अच्छी बातें उसे आयें या न आयें, कुछ भी हो प्रारम्भ में उनका उस पर कुछ असर नहीं पड़ता, परन्तु रूप तो उस के पास होना ही चाहिये; अन्यथा वह विवाह के योग्य ही नहीं समझी जायगी। ऐसी दशा में रूप की कमी चाँदी देकर की जा सकती थी लेकिन मेरे माता पिता को सुन्दरता और लक्ष्मी दोनों ने ही अनुगृहीत नहीं किया था। यतः मैं ही उनकी सारी लज्जा का कारण थी इस हेतु यदि वह मुझ पर सारा क्रोध निकालते तो मैं उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकती थी। उन्हों ने बड़ी कोशिशें कीं और अब भी बड़ी ही कोशिश कर हो रहे थे लेकिन लोगों की आखों को झुठियाना मुश्किल था। क़ीमती २ साड़ियां, सोने के और जड़ाऊ गहने, गुलाबी पाउडर और रोशनी को इस प्रकार रखना कि मेरे मुंह पर न पड़े यह सब तरीके किये गये, परन्तु इन्हों ने मुझे और भी अधिक बदसूरत बना दिया। यह परीक्षण प्रायः किये जाते थे। एक हिन्दू लड़की की शादी

अवश्य होनी ही चाहिये तथापि कोई हिन्दू मुझ से विवाह ही नहीं करता था। मेरे माता पिता के लिये यह समस्या बड़ी जटिल हो रही थी।

जब मैं कनक के घर पहुंची तो सारे घर में शोर गुल मच रहा था। उस मुहल्ले की सभी स्त्रियाँ बूढ़ी और जवान वहां झुण्ड बनाये बैठी थीं। बुढ़ियाँ तो बैठी २ बातें कर रही थीं, और अधवयस्‌ स्त्रियां वर पक्ष के लोगों के लिये उचित भोजन तैयार करने में लगी हुई थीं। युवा कन्यायें कनक के चारों ओर घेरे हुये बैठी २ उसे सजाने में लग रही थीं। उनका उद्देश्य यह था कि किसी न किसी प्रकार यह उस धनी आदमी के लड़के को जीत अवश्य ले। वह कनक की माता के सोने के कमरे में बैठी थीं और वह ठसाठस भर रहा था। एक बड़ी भारी काठ की खाट पर बनारसी साड़ियों, क्रोप की साड़ियों, हलकी जर्मन सिल्क की साड़ियों तथा अन्य हर प्रकार की और हर रंग की साड़ियों का बड़ा ढेर लगा हुआ था। और इन साड़ियों के बीच में कुछ गुलाबी रंग के रेशमी, काली रेशमी ट्रिमिंग लगे हुये ब्लाऊज़ तथा दो एक लाल मख़मल की जाकटें चमक रही थीं। मेज़ पर तीन या चार आभूषणों के डब्बे रखे हुवे थे। जब मैंने कमरे में पैर रक्खा तो बालों के सजाने के ढंग पर बड़ी गर्मागर्म बहस हो रही थी। कुछ स्त्रियाँ तो कहती थीं कि सारा जूड़ा सुनहरे गोटे के रिबन से ढंक दिया जाय, दूसरी कहती थी कि नहीं बालों के ढकने के लिये मोतियों का जाल सा बनाया जावे। मैंने सोचा कि यदि इन स्त्रियों ने इस के बाल सजाये और उसी वेश में यह घर के सामने आई तो कनक के लिये अमीर आदमी की बहू बनने की कोई आशा नहीं है। क्योंकि यदि वर की रुचि ज़रा भी वर्त्तमान फ़ैशन की ओर हुई तो निश्चय ही वह इसे नहीं चुनेगा।

जैसे ही मैंने कमरे में पैर रखा तो जो युवा स्त्री कनक का सिर गूंथ रही थी वह एक दम ठहर गई और बोली, "अब सचमुच का चित्रकार आगया है, हम तो बिल्कुल ही नवसिखिया हैं, अतः उन्हें आने दो। क्यों कि हमें न तो अभ्यास ही है और न ढंग ही आता है। हे देवी तुम्हें नये से नया फ़ैशन आता है अतः कृपा करके नव वधू को सजा तो दो। वर महाशय आज कल के फ़ैशन के नवयुवक हैं अतः आधुनिक फैशन की सजावट देख कर वह अवश्य झुक पड़ेंगे।"

मैं जानती थी कि यह लोग भी मेरे काम को पसन्द करती हैं लेकिन हर एक ऐसा मानने से साफ इन्कार करती थी। इसके विपरीत वह यही बहाना कर देती थीं कि बालों की सजावट के रहस्य को हम क्या जानें क्योंकि हमें तो बनावटी खूब सूरती की जरूरत ही नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि उन में से सभी सुन्दरी भी न थीं लेकिन मैं यह कैसे कह सकती थी। अतः मैंने ऊपरी भाव से मुस्करा दिया और कनक के पास जाकर देखने लगी कि उसे किस प्रकार सजाऊँ।

लड़की सचमुच सुन्दर गुड़िया थी लेकिन वह एक बड़े भारी घर की मालकिन पद के योग्य नहीं लगती थी। उसका क़द छोटा और दुबली भी थी और उसके आकृति गोल मोल थी। उस के घुंघर वाले बाल काले और घने

थे, आंखें काली और बड़ी २ थीं और नाक साधी और दबी हुई थी। उस का रंग सफेद तो था परन्तु धूप और हवा में घूमने करके काफी गेहुआँ होगया था उस गाँव में तो वह परी ही समझी जाती थी लेकिन मुझे इस बात का शक ही था कि वह अमीर आदमी की रुचि और आशाओं के निकट पहुँचेगी भी।

मेरे आने से पहिले जो स्त्री बाल बना रही थी उसने तो उसका छोटा सा मत्था बिल्कुल ही ढक दिया था किन्तु मैंने बालों को कुछ ऊपर हटाकर सजाया था। इतने में मुझे अपने पीछे कुछ काना फूंसीं सुनाई दी" आहा! कैसी सुन्दर यह लड़की लग रही है! मैं जानती ही थी कि मलिन को तब तक सन्तोष होगा ही नहीं जब तक वह कनक यथाशक्ति अपने सदृश ही देखने योग्य न बना लेगी।

मुझे यह सुनकर इतनी घृणा हुई कि एक दम वहाँ से भाग निकलूं। परन्तु क्रोध करने का मुझे क्या अधिकार था? ताने और अपमान मेरे जन्म सिद्ध अधिकार थे और मैं चाहे जितना भागूं मैं उन से बच तो सकती न थी।

इसलिये मैं चुपचाप बैठी रही और कनक का सिर गूंथती रही, फिर मैंने उसे आस्मानी रंग की जाकट पहिनाई और उसके साथ अच्छी लगने वाली सुनहरे रंग की साड़ी पहिनाई। मेरी इच्छा थी कि उसके काले बालों में लाल-गुलाब का फूल लगा कर उसके गुलाबी होठों के साथ जोड़ में तोड़ मिला दूं परन्तु वहाँ गुलाब था ही नहीं। मैंने जेबर के बाक्स देख डाले कि कहीं लाल, चुन्नी जड़ा हुआ कोई जेबर मिल जाय परन्तु वहाँ तो सोने के डले ही थे। हाँ कुछ चुन्नियाँ थीं परन्तु वह भी मोतियों नीलम और पुखराज के साथ जड़ी हुई थीं अतः मैंने निराश होकर यह विचार छोड़ ही दिया। लेकिन और जो थीं वह इतनी सहज रीति से चुप करने वाली न थीं इस लिये थोड़ी ही देर में वह बिलकुल बदले हुये रूप में मेरे सन्मुख आखड़ी हुई। उसके छोटे २ कानों से भारी २ कुण्डल लटक रहे थे और सोने के हार और गुलूबन्द की ज़ञ्जीरें छाती तक लटक रहीं थीं और जब वह चलती थी तो पैरों में पायजेब की झनकार होती थी। चूंकि उसकी आदर योग्य भूआ ही स्वयं उसे यह सब कुछ पहिना रही थी अतः किसी को आपत्ति उठाने का साहस भी न होता था।

इस प्रकार बधू की सजावट समाप्त हुई, और समय भी बहुत लगा। इतने में ही वर पक्ष के लोग भी आ पहुँचे। बैठक में बड़ी चहल पहल थी और बहुत सी आवाज़ों की बलबलाहट भी सुनाई पड़ती थी क्योंकि अमीर अतिथि आवें तो उसका उचित स्वागत तबतक होता ही नहीं जबतक कि खूब शोर गुल न पड़े। उनके लिये चाँदी की रकाबियों में मिठाई तथा फल सजाकर भेजे जा रहे थे. यह रकाबियाँ पडोसियों से माँगी गई थी! हर एक आदमी तमाकू और पीने का पानी के लिये चिल्लागुहार मचा रहा था। निदान बधू को बुलावा आया। मैंने कनक की ओर नज़र मारी तो ऐसा मालूम पड़ा मानो कोमल पुष्प दोपहर की धूप में कुम्हला रहा हो। उसकी माँ ने चिल्लाकर कहा, "देखो तो कैसी मूर्ख लड़की है! सूजी हुई आँखें और लाल २ नाक करके जायगी तो बिल-

कुल भी सुन्दर न लगेगी।"

एक दासी कनक के साथ बैठक तक गई, उसके पीछे २ लड़कियों का सारा झुण्ड भागा क्योंकि वह चाहती थीं कि दर्वाज़े और खिड़कियों की सन्धों और छेदों के द्वारा वह सारा तमाशा जरूर देखें। पुरुषों को तो प्रत्येक दर्शनीय चीज़ को चारों ओर से खुल्लम खुल्ला देखने का अधिकार है, हमें यह अधिकार प्राप्त न था, परन्तु इच्छा उनकी ही भाँति हम में भी थी। अतः हमें अपनी इच्छा छिपकर पूर्ण करनी पड़ी और शासक पुरुष जाति को अध खुली खिड़कियों से झाँक कर देखना पड़ा।

कमरे में घर के आदमियों को छोड़कर लगभग एक दर्जन आदमी और थे। जिन में से कुछ तो पड़ोसी ही थे शेष वर पक्ष के लोग थे। लड़कियाँ आपस में कानाफूंसी करने लगीं "तुम नहीं जानती दुलहा स्वयं आया है? क्या तुम बतला सकती हो कौन है? वह जिसने धुवें के रंग की ऐनक पहिनी हुई है या वह जिसने सोने की घड़ी कलाई में पहिनी हुई है?

मैं भी देख रही थी। हां वह इतना सुन्दर था कि उसे खूबसूरत बधू ढूंढने का पूरा अधिकार था। उसकी यह इच्छा एक अमीर आदमी का चोचला न था बल्कि यह भावपूर्ण थी कि उस की पत्नी उसकी सखा बन सके। सुन्दरता में देवता के समान वह नवयुवक धुवें की रंग की ऐनक लगाये, कुछ लज्जाशील सा हो, सबसे पीछे बैठा था इससे मैंने अनुमान कर लिया कि यही वर महाशय हैं; दूसरा शायद उसका भाई होगा। क्योंकि दोनों बहुत कुछ मिलते जुलते थे। दोनों का रंग गोरा था, परन्तु बड़े भाई का रंग कुछ फीका सा था। यदि किसी ने जन्म लेना ही हो तो उसे सुन्दर तो कम से कम अवश्य होना चाहिये, लोगों की निगाहें इन नवयुवकों की ओर से हटती न थीं! और मैं! अरे राम। मैं पैदा ही क्यों हुई थी?

शायद मैं अतिथियों को बड़े ग़ौर से देख रही होऊंगी। एकाएक मुझे कनक की बड़ी बहिन के यह शब्द सुनाई पड़े "अरे मलिन की ओर तो देखो, ऐसा न मालूम होता है वह नवयुवक के प्रेमपाश में बंध गई ही है। यदि इसे लेजाकर उसके सामने खड़ा करके कहें कि यही वधू है तो वह क्या करे?

अगर शब्दों में मारने की शक्ति होती तो मैं उसी समय वहीं मर जाती, लेकिन मुझे मरने से ज्यादः तकलीफ हो रही थी। ऐसा मालूम पड़ता था मानो कोई तपे हुये मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है, परन्तु कानून की दृष्टि में यह कोई अपराध ही नहीं है। यदि तुम किसी आदमी को नाखून से आघात पहुंचाओ तो तुम्हें दण्ड मिल जाता है परन्तु चाहे तुम दूसरे के हृदय को वेधने के लिये कैसे ही विषैले वाण क्यों न चलाओ इसके लिये तुम्हें कोई दण्ड नहीं मिल सक्ता।

मुझे अच्छी तरह पता है कि यदि मुझे कोई उस के सन्मुख भावी-वधू के रूप में पेश करता तो क्या नतीजा निकलता! उसकी नील कमल के समान श्याम, सुन्दर आंखों से उस घृणा विकास होता जिसका मुझे काफी तजुरबा है, और चाहे वह कितना ही छिपाने का प्रयत्न करता उसके होंठों पर घृणा की मुस्कराहट अवश्य आती। मैंने यह बातें प्रत्येक से सहन कीं

किन्तु किसी अज्ञातरूप से मुझे यही भाव होने लगा कि यही बातें मैं इस से सहन नहीं कर सकी, अतः मैं चुपके से भाग गई। लोग इतने काम में मस्त थे कि किसी ने देखा भी नहीं।

शाम को मैं सोने के कमरे में चारपाइयां बिछा रही थी, माता जी बराण्डे में बैठ कर छोटी बच्ची को दूध पिला रहीं थीं, और बच्ची पीने से इन्कार करती हुई चिल्ला रही थी और जितना दूध पीती न थी उस से अधिक गिरा देती थी और चीखें मार कर यह बतलाना चाहती थी मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध लाभ नहीं उठा सकती। इसी समय सुखी बुआ फिर आ पहुंची। वह दर्वाजे पर से चिल्लाती आई कि "भाभी तुम्हारी चांदी की रकाबियां यह हैं।" उनके स्वर में कुछ खिजावट सी थी।

मां ने बच्ची को बैठाल कर रकाबियां लेलीं फिर पूंछने लगी कि—"कनक को देखने के उपरान्त वर पक्ष के लोगों ने क्या कहा ?"

"अरे उन शक्ति सम्पन्न कुलीनों के इच्छानुकूल वह नहीं निकली। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि में हमारी लड़की का रंग यथेष्ट गोरा नहीं है। उन्हें बंगाली घर में मेम साहिबा चाहिये, शायद उन्हें कोई मिल जावे। परमात्मा का धन्यवाद है कि हमें किसी अमीर आदमी की कृपा की परवाह नहीं है। जबतक मेरा भाई अपने कुटुम्ब का पेटपालन के लिये कमा सकता है तबतक हमें किसी के नाक सिकोड़ने का डर ही नहीं।" इतना कर वह चम्पत हुई।

मुझे खुशी तो नहीं होनी चाहिये थी परन्तु ईर्षा से प्रेरित आनन्द अवश्य हुआ है। उनकी लड़की की सुन्दरता भी उसे अपमान से न बचा सकी। दुरभिमान से उन्होंने बिचारी कुरूपा लड़की के भावों पर आघात किया था, सो दण्डरूप में वही बात उनके भाग्य में आई। जिस व्यक्ति ने अजान में ही मेरा बदला चुकाया उसके लिये मन ही मन मैंने प्रणाम किया। उसने मुझे कनक के साथ एकही श्रेणीमें रखा। शायद तुम तो मेरी भावनाओं को समझ नहीं सकीं परन्तु यदि तुम में से कोई ऐसी हो जिन्हें मेरी भांति सदैव घृणा की दृष्टि सहनी पड़ी हो वह समझेगी कि मैंने क्यों उसे कृतज्ञता से प्रणाम किया।

लेकिन सुखी बुआ का अभिमान ठीक था क्यों कि उससे थोड़े ही दिन पीछे कनक का विवाह होगया। लेकिन विवाह वाले दिन वर महाशय के स्वरूप पर मुझे भी हंसी आती रही इससे तुम समझ ही सकी हो कि उसकी आकृति कैसी होगी। लेकिन मुझे रोना भी आया। मुझे पता नहीं कि विचारी कनक के ऊपर परमात्मा को दया आई या नहीं। परन्तु मुझे उसका विवाह एक जंगली सुअर की आकृति वाले विदूषक समान पुरुष से होजाने पर बड़ा ही दुःख हुआ।

परन्तु सुखी बुआ उस दिन बड़ी प्रसन्न थीं, वह अपने हाथ मटकाकर कह रही थीं कि—"अगर इसका चेहरा कुछ नमकीन है तो क्या ? पुरुषों की आकृति तो नहीं देखी जाती। तुम कहते हो वह बहुत बुढ्ढा है ? नहीं तो बहुत से लोग तो इसी उमर के पहिली शादी भी नहीं करते। हां कनक छोटी बहुत है। परन्तु इस उमर में लड़कियाँ ताड़ के पेंड की तरह बढ़ जाती हैं। शीघ्र ही वह बढ़ जायगी और

फिर कोवौं बेजोड़ नहीं लगेंगे। आखिर हमारी लड़की की शादी अमीर घराने में हो ही गई। उनके धन दौलत बेहद हैं वह अशर्फियों पर लोटते हैं, उनके फाटकों पर हाथी बंधे हुये हैं।

मुझे पता लग गया कि वर बहुत अमीर है पर दुहाजू है। मुझे पता नहीं कैसे मेरे दिलमें यह बात पैदा हुई, लेकिन मुझे विश्वास था कि कनक दूसरे पुरुष को ही चाहती थी, जो स्थान उसके लिये था।उसमें यह भयंकर मूर्ति बैठ गई। मालूम होता था कि वृत्रहासुर ने स्वर्ग के राजा इंद्र का स्थान लेलिया हो।

दूसरे दिन करुणापूर्ण रोदन करती हुई कनक को पतिगृह के लिये प्रस्थान करना पड़ा।

[शेषफिर]

वैज्ञानिक संसार

रिकट्स

रिकट्स एक प्रकार का रोग है जो कि प्राय: बड़े २ नगरों की तंग गलियों में रहने वाले बालकों को अधिक होता है। इस से उन के कोमल शरीर की हड्डियां ठीक २ नहीं बढ़तीं, कभी २ वह बोझ के कारण मुड़ जाती हैं, जिस का परिणाम यह होता है कि बालकों की टांग टेढ़ी और दुर्बल हो जाती है। हड्डियां कैल्सिम और फास फोरस नाम के मूल तत्व से बनती हैं। पहिले यह समझा जाता था कि ऐसा भोजन करने से जिस में कैलसिम और फास फोरस कम हो यह रोग उत्पन्न होता है, किन्तु अब पता लगा है कि इस रोग का कारण इन खाद्य पदार्थों में इन मूल तत्वों की कमी नहीं, वरन् शरीर में इन तत्वों को गृहण करने वाली शक्ति का अभाव है, जो कि सूर्य्य प्रकाश रहित अंधेरी कोठरियों में रहने से सुकुमार बालकों के शरीर से निकल जातीहै। सूर्य के प्रकाश में सात रंग की किरणें होती हैं जो कि हमें इन्द्रधनुष में दीख पड़ती हैं। इन्द्रधनुष के एक ओर लाल और दूसरे सिरे पर बैंजनी रंग होता है और बीच में अन्य ५ रंग होते हैं। बैंजनी से परे भी एक प्रकार का प्रकाश होता हो जिस को हमारी यह आंखें देख नहीं सकतीं। तो भी यह बैंजनी-इतर-प्रकाश हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकाश में ही वह शक्ति है जो कि रिकट्स रोग का नाश करती है। हमारे भोज्य पदार्थों में एक ऐसा द्रव्य है जिस के स्वरूप के विषय में तो हमें बहुत कुछ ज्ञात नहीं परन्तु मनुष्य शरीर पर इस का क्या परिणाम होता है यह हम जानते हैं। वैज्ञानिकों नेइस का नाम वाईटेमिन डी० रखा है। वास्तव में वाइटेमिन डी० ही वह शक्ति है जिस का अभाव शरीर को कैलसियम और फास फोरस को ग्रहण करने से रोक रिकटस का शिकार बनाता है। बैंजनी से परे की प्रकाश रश्मी जब वनस्पति पर पड़ती है तो उस में वाइटेमिन डी० उत्पन्न कर देती है। यदि हम ऐसे पदार्थों को खायें जिन में वाईटेमिन डी० की पर्य्याप्त मात्रा हो तो रिकटस से बच सकते हैं, और

यदि हम बैंजनी से परे वाली प्रकाश क अच्छे शरीर पर पड़ने दें तब भी यही होता है

काड मछली के तेल का प्रयोग रिक्टस का इलाज समझा जाता था । सूर्य की किरणें समुद्र में होने वाली वनस्पति पर पड़ती हैं और उसे वाईटेमिन डी० प्रदान करती हैं । काड मछली यह वनस्पति खाती है और उस के शरीर में वाईटेमिन डी० पहुंच कर जिगर में रहने वाले तेल में एकत्र हो जाती हैं । यही कारण है कि काड लिवर आयल रिकटस में लाभकारी है ।

परन्तु बैंजनी से-परे प्रकाश रश्मियों द्वारा उत्पन्न वाइटेमिन डी० को अपने भोज्य पदार्थों द्वारा शरीर में लेने के स्थान में यदि इन रश्मियों को अपने शरीर पर पड़ने दें तो भी हम इस रोग से बच सकते हैं । यह रश्मियां हमें सूर्य्य के प्रकाश से भी मिल सकती हैं, और एक विशेष प्रकार की बिजली के लैम्प की रोशनी से भी । सूर्य्य के प्रकाश में यह इतनी बलवती नहीं होतीं अतः रोगी को बिजली के लैम्प के प्रकाश में विधि पूर्वक रखने से शीघ्र लाभ होता है । अब शाकाहारी मनुष्यों को काड लिवर तेल पीने की आवश्यकता नहीं । इन रश्मियों के शरीर पर पड़ने से रिकटस को किस प्रकार लाभ पहुंचता है यह अभी नहीं कहा जा सका ।

सूर्य का प्रकाश परमात्मा के भण्डार से दिया हुआ रोग नाशक महाऔषिध है। परमात्मा की दी हुई इन सम्पत्तियों को उपभोग न करने से मनुष्य कितना दुख उठाता है ?

थरमो फ्लास्क

हमारे बहुत से पाठक पाठिकाओं ने शीशे की दोहरी टीन मढ़ी हुई बोतलें देखी होंगी जिन में २४ घन्टे तक गरम दूध वैसा ही गरम, और ठंढ़ा जल वैसा ही ठंढ़ा रखा जा सकता है जैसा उस में भरते समय हो । आजकल इन बोतलों का बहुत रिवाज है । श्रीयुत ग्रम ने इंगलैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र Discovery में इन बोतलों के विषय में एक बड़ा उत्तम लेख लिखा है जिस का सारांश हम नीचे देते हैं ।

यह बोतलें दोहरी बनी हुई होती हैं, और इन की दोनों दीवारों के बीच के स्थान से वायु निकाल दी जाती है । परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये की वायु का सर्वथा निकाल देना असम्भव है ।

पर वायु में एक वर्ग सैन्टीमीटर (१ इन्च २॥ सैन्टीमीटर के बराबर होता है) में ३००००००००००००००००० अणु होते हैं । यदि हम किसी स्थान से यहां तक हवा को निकालते जायें कि उस में केवल ३०००००००००००० अणु रह जायें तो समझा जाता है कि हमने बड़ा उत्तम कार्य उत्पन्न कर लिया । यह संख्या संसार की समस्त जन संख्या से कई हज़ार गुणो अधिक है ।

वायु में ताप एक स्थान से दूसरे स्थान तक अणुओं की गति द्वारा ही पहुंचता है, अर्थात् यह अणु ही हैं जो कि ताप को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं । किसी वस्तु में विशेषकर गैस की अवस्था में यह अणु १५००

फुट प्रति सेकेण्ड अथवा बन्दूक से निकली गोली की गति से चलते हैं। यह इतने नन्हें होते हैं कि अनुमान से भी परे हैं, परन्तु इतने बहु संख्यक हैं कि उसका भी अनुमान करना कठिन है और इसी कारण यह आपसमें एक दूसरे से टकराते रहते हैं। हिसाब लगाया गया है कि किसी एक अणु को एक इञ्च का ढाई लाखवाँ हिस्सा चलने पर दूसरे अणुकी टक्कर लग जाती है और उसे फिर वापिस लौटना पड़ता है। इस प्रकार टकराते हुये एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने के लिये उसे बड़े उल्टे सीधे मार्ग पर चलना पड़ता है और एक सैकेण्ड में ४,५००,०००,००० बार उसका मार्ग परिवर्तन होता है।

यदि हमारी बोतल में आरम्भ में वायु का निश्चित् दबाव (Normal pressure) है और हमने उस में से वायु निकालकर केवल इसका पाँचवां भाग कर दिया तो अणुओं की संख्या भी इसी मात्रा में कम हो जायगी, और उनको वह अन्तर जिसके पीछे वह आपस में टकराते हैं पाँच गुना अधिक हो जायगा अर्थात् एक इञ्च का ५० हज़ारवाँ भाग। जहाँ हमने इन ताप-वाहकों की संख्या ५ गुणा घटा दी, वहाँ हमने इनको ५ गुणा अधिक घूमने की स्वतन्त्रता भी दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस मात्रा में ताप एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था उस में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया दूसरे शब्दों में दबाव में बहुत अधिक अन्तर पड़ जाने पर भी गैस की ताप-वाहक शक्ति पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

'यदि यह बात सत्य है तो प्रश्न होता है कि इन थरमो फ्लास्क में उत्पन्न किया हुआ निर्वात ताप को भीतर जाने अथवा बाहर निकलने से रोकता है। हमें विचार करना चाहिये कि उस समय क्या अवस्था होती है जब कि हम दबाव को घटाकर पांचवाँ हिस्सा करने के स्थान में दस लाखवाँ हिस्सा कर देते हैं अथवा उनके स्वतन्त्र मार्ग को ४ इञ्च लम्बा बना देते हैं। बोतल की भीतरी और बाहरी दीवार का अन्तर एक इञ्च से कहीं कम होता है। अब अणु बिना टकराने के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा कूदेंगे। यदि दबाव को और भी कम कर दिया जाय तो जहाँ अणुओं की संख्या कम हो जायगी वहाँ इनका स्वतन्त्र मार्ग ४ इञ्च से भी अधिक हो जायगा, परन्तु क्योंकि हमारी बोतल की दीवारों का अन्तर एक इञ्च से भी कम है, इस लिये स्वतन्त्र मार्ग के ४ इञ्च से अधिक बढ़ने पर इस में कोई भेद न आयगा। दूसरे शब्दों में बहुत न्यून दबाव पर किसी गैस की ताप-वाहक शक्ति दबाव के अनुकूल ही रहती है। बस इसी नियम पर थरमो बोतलें बनाई गयी हैं।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। सूर्य की किरणें वायु-मण्डल में से होकर हमारी पृथ्वी पर आने तक वायु मण्डल को नहीं तपातीं वरन् हमारी पृथ्वी से टकरा कर वह पुनः लौटती हैं और तब वायु को गरम करती हैं। यह ताप ईथर अथवा आकाश तरङ्गों द्वारा हमारी पृथ्वी से ऊपर को जाता है। जितना ताप कम होता है उतना ही इन आकाश तरङ्गों की गति कम होती है। अतः विसर्जन द्वारा इन बोतलों के वायु रहित भाग में ताप एक ओर से दूसरी ओर अवश्य जायगा। परन्तु हम ऐसा परावर्तक

पृष्ठ (reflecting surfaces) बनाकर जो कि ताप को उल्टा न लौटाये इस ताप परिवर्तन को बहुत कम कर सके हैं। अभी इन बोतलों की भीतरी दीवारों को दर्पण की भाँति चमकदार बना दिया जाय तो यह कार्य हो सका है। यह काम बड़ा कठिन है। दर्पण बनाते समय हम पारे की तह के उस भाग को चमकदार बनाते हैं, जो कि शीशे को छूती है। परन्तु उसकी पीठ न तो चमकदार ही होती है और न समतल ही। परन्तु थरमो बोतलों में हमें इस पीठ को ही चमकदार बनाना है जो कि बोतल की दीवारों का अदृश्य भाग है क्योंकि यह भीतरी अदृश्य भाग ही ताप परिवर्तन में भाग लेता है। जितनी बड़ी यह बोतलें बनायी जायेंगी उससे चार गुणा अधिक आसानी से इन में या इन से ताप जा सकेगा।

यह निर्वात-वर्तन पहिले पहल सरजेम्ज़-डेविड ने उन गैसों को रखने के लिये बनाये थे जिन्हें हम ने तरलरूप दे दिया हो। इस काम के लिये और भी अधिक निर्वात की आवश्यकता है जो एक बड़ी सरल रीति से प्राप्त हो सक्ता है। यदि कोयले को बहुत ठण्ढा कर दिया जाय तो इस में गैस को अपने छिद्रों में समा लेने की बड़ी शक्ति आजाती है। तरल गैस बड़ी ठण्ढी होती है। अतः यदि बोतल की दोनों दीवारों के बीच कोयला डाल दिया जाय तो वह भी ठण्ढा हो जायगा और दीवारों के बीच रही सही वायु को चूस लेगा।

आशा है हमारे पाठकों के लिये उपरोक्त वर्णन रोचक और शिक्षाप्रद होगा।

कुसुमोद्यान

१–स्त्री जाति में दो व्यक्ति एक से नहीं मिलते

इस बात पर अभी तक किसी ने आलोचना नहीं की कि यद्यपि पुरुषों में एक आकृति वाले कई पुरुष मिल जाने के असंख्य उदाहरण मिलते हैं किन्तु स्त्रियों में शायद ही कोई दो स्त्रियां एकसी आकृति की मिलेंगी।

वास्तव में स्त्रियों की आकृतियां असंख्य प्रकार की होती हैं। युरोप में स्त्रियों के सम्बन्ध में दो प्रकार विशेषरूप से बताये जाते हैं। एक blonde-गोरा चमड़ा, हलके सुनहरे बाल और नीली आखें, दूसरा brunette निमकीन चेहरा लेकिन वास्तव में स्त्रियों की आकृति में कोई ढंग ही नहीं है, केवल बालों के रंग में ही कुछ २ ढंग होता है।

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रकृति जहां पुरुष जाति में तो नक़ल करना जानती है वहां प्रत्येक स्त्री की आकृति अलग २ बनाती है। केवल जीवित स्त्रियों में ही उनकी समान आकृति वाली स्त्री नहीं दीख पड़ती यही नहीं है, बलिक हम देखते हैं कि भूत-कालीन मशहूर स्त्रियों के बिलकुल

अनुरूप स्त्री कभी नहीं मिली।

यदि किसी कारण से हम प्राचीन समय की लावण्यमयी या वीर रमणी की जीवित जागृति मूर्त्ति देखना चाहें तो हमें वह ज़िन्दा स्त्रियों में बिल्कुल वैसी आकृति में नहीं मिलेगी, आजकल की देवियाँ उसको नाट्य करने के लिये सजावट ही करेंगी। लेकिन पुरुषों में यह बात कितनी भिन्न है? विलायत में कुछ अरसा हुआ जब लोगों ने खेलों और तमाशों में 'सर फ्रैंसिस ड्रेक' बनाना चाहा तो २७ जन जीवित ऐसे मिले जो सूरत शक्ल में बिल्कुल सर फ्रैंसिस ड्रेक थे। गत वर्ष ५० आदमी ऐसे पाये गये जो भूतपूर्व लंडन के लार्ड मेयर्स के बिल्कुल अनुरूप थे।

पांच आदमी ऐसे निकले जिन्हों ने खेलों में राजा एल्फ्रेड का भाग नाट्य किया क्योंकि उनकी आकृति आदि उस अच्छे राजा के अनुरूप थी।

सुविख्यात कवि दान्ते की प्रेयसी वियट्रिस की मूर्त्ति यदि हम देखना चाहें तो उसके मशहूर चित्र को ही देख सकते हैं क्योंकि उस जैसी कोई स्त्री दूसरी दीखती ही नहीं। एक बार एक खेल खेला गया, जिस में प्राचीन सुन्दर स्त्रियों की मूर्त्ति दिखानी थी जिस में वियट्रिस का भी नाम था। हज़ारों सुन्दर स्त्रियों ने इस की मूर्त्ति बनने के लिये अपने २ चित्र भेजे लेकिन एक की भी शकल वियट्रिस की भांति न थी।

कुछ वर्ष हुये सारे इंगलैंड से प्रार्थना की गई कि कोई स्त्री ऐसी आवे जो वोडीशिया की मूर्त्ति बन कर दिखावे। चूंकि इस में सड़कों पर दिन दुपहर सब के सामने रथ हाँक कर दिखलाना पड़ता था, यह आवश्यक ही था कि जो स्त्री यह बन कर दिखावे, वह वोडीशिया की बिल्कुल प्रति मूर्त्ति हो। सज धज के द्वारा न नक़ल करने की चेष्टा करे। इस खेल के प्रबन्धकर्त्ताओं के पास तस्वीरों पर तस्वीरें आईं लेकिन एक भी उसकी प्रतिमूर्त्ति न निकली। फिर समुद्र पार युरोप के देशों से भी स्त्रियों ने चित्र भेजे, परन्तु फिर भी यह जटिल समस्या हल न हुई, आख़िरकार खेल के प्रबन्धकर्त्ताओं ने बनावटी तरीक़ों से एक स्त्री को जो कि डील डौल में वोडीशिया सी लगती थी उसकी मूर्त्ति बनाकर काम चलाया।

क्या रानी एलीज़ावेथ सुन्दर थी? इस पर लोगों की भिन्न २ सम्मतियां हैं, फिर भी उसकी प्रतिमूर्ति नहीं मिलती।

आजकल की स्त्रियां राजसी ठाठ करके रानी सी दीख सकती हैं, लेकिन कपड़े पहिरने मात्र से वह उस स्त्री की प्रतिमूर्ति नहीं बन सकतीं, जिस की वह नक़ल चाहती हैं। गत वर्ष गर्मियों में समुद्रपार अंग्रेज़ स्त्रियों में से ३० प्रार्थना पत्र उन के थे जो कि समझती थीं कि हम रानी एलीज़ावेथ की प्रतिमूर्ति हैं लेकिन उनमें से जब चुनाव में आई हुई देवी सामने आई तो पता लगा कि चित्र देखकर भ्रम होगया था। जहां तक हम विलायत वालों का परीक्षण चला तहां तक तो कोई स्त्री उस महारानी की प्रति मूर्ति नहीं है। इस लिये हम लोगों की सहानुभूति उस मशहूर फ्रेंच (आर्टिस्ट) चित्रकार के साथ है जिसने निराश होकर यह घोषणा दी थी कि ट्राय की हेलन की प्रतिमूर्ति बनने योग्य जो स्त्री सिद्ध होगी उसे पांच हज़ार फ्रैंक और

जो व्यक्ति उसे ढूंढ लावेगा उस को एक हज़ार फ्रैंक इनाम दिया जायगा। कई महीनों तक व्यर्थ खोज होती रही परन्तु इसका परिणाम वही हुआ जो जोन आफ़ आर्क की प्रतिमूर्ति की खोज में एक बड़ी भारी चित्र-कम्पनी के परिश्रम का हुआ था। उन्हों ने इनाम बहुत ही भारी रक्खा था। अतः जो भी इसकी प्रतिमूर्ति बन सकती थीं उनकी रिपोर्ट अमरीका, फ्रांस और इंग्लैण्ड से आई परन्तु ठीक प्रतिमूर्ति कोई भी न निकली।

इसलिये यह अनुमान कर लेना कि कोई दो स्त्रियां बिल्कुल अनुरूप नहीं होतीं न्याययुक्त ही है, लेकिन पुरुष प्रायः होते हैं। केवल जब किसी महा पुरुष में कोई गुण बड़ा ही स्फुट हो तो उसकी प्रतिमूर्ति मिलने में कठिनता हुई है।

खेलों और नाटकों के करने वालों का कथन है कि डयूक आफ़ वेलिंगटन एक ऐसा पात्र है जिसे नाट्य करना हमारे लिये बड़ा ही मुश्किल रहा है तथापि इस देश में कम से कम तीन व्यक्ति ऐसे मिल चुके हैं जो बिना किसी सजावट के इस की प्रतिमूर्ति कहे जा सकते हैं। किन्तु इतिहास में कोई महान स्त्री या सुन्दर स्त्री ऐसी नहीं है जिस की बाबत यह कहा जा सके।

अतः स्त्री जाति निश्चय से असंख्य बनावट की है। जब प्रकृति एक स्त्री बना लेती है तो अपना ढांचा तोड़ डालती है इसीलिये स्त्री जाति में न तो एक ढांचा है न एक मूर्ति। कुलीन अथवा नीच कुल की, अमीर या ग़रीब: हर एक स्त्री भिन्न है। इतना होते हुये भी मशहूर फ्रेंच कहावत स्त्री जाति पर घट जाती है कि "जितना ही वह बदलती है उतना ही वह एक सी रहती है।"

२—प्रेम का मूल्य

"एक ही चीज़ जो हमें 'बिना मूल्य' मिलती है वह प्रेम है।" अभी हाल ही में यह शब्द एक अनुभव पूर्ण व्यक्ति द्वारा उच्चरित किये गये हैं। हम उसे जीवन की बड़ी कीमती इस आवश्यक वस्तु को मुफ्त में मिल जाने पर बधाई देते हैं क्योंकि हममें से बहुतेरे ऐसे लोग होंगे जिन्हें प्रेम एक असाधारण भोग से भी कहीं बढ़कर है, हमारे जीवन धारण का एक मात्र उपाय है। परन्तु प्रेम के मूल्य का वर्णन करते समय मेरा अभिप्राय सगाई या विवाह में जो व्यय होता है उस से नहीं है। प्रेम को पौण्ड, शिलिंग, पेन्स के रूप में वर्णन करना देवता को दूषण लगाना है तथापि यदि हम मानव-हृदय को ढूंढें और समाचार पत्रों को पढ़ें तो हम अनुभव करेंगे कि कामदेव अपने छोड़े गये प्रत्येक बाण का मूल्य किसी न किसी रूप में मांग ही लेता है। दुर्भाग्य की बात है कि जन साधारण इस बात के रहस्य को समझते नहीं हैं वरन् यह समझते हैं कि वह "जीवन रूपी दूकान की खिड़की से एक स्वेच्छा से दी गई भेंट ले रहे हैं" जो कि ऊपर २ से बड़ी ही चित्ता कर्षक मालूम होती है।

हृदयतन्त्री की झन्कार वाले और बिजली के छूने से जैसी सन्सनाहट से पूर्ण लोक में पहुँचने की इतनी प्रबल इच्छा होती है कि हम यात्रा में जो व्यय, जो कष्ट होते हैं उसे भी नहीं गिनते। हाँ यदि कोई सद्भाव से भी प्रेरित होकर यह कहे कि प्रेम का मूल्य चुकाना होगा तो हम हंस पड़ते हैं क्योंकि हमें यह आशा ही कभी नहीं होती कि मूल्य के लिये मांग होगी।

परन्तु प्रेम के व्यवहार यद्यपि बड़े ही सहज रीति से चल रहे हों तथापि चाहें स्त्री हो या पुरुष उनसे मूल्य मांगते ही हैं। पुरुष को बहुत कुछ अपने को संयत करना पड़ेगा, और स्त्री को त्याग भाव दिखाना पड़ेगा।

यदि कोई पत्नी अपने पति से प्रेम करती है तो उसे अपने प्रेम के सुख का मूल्य प्रति दिन या कभी २ प्रति घंटे देना होता है। हम में से जो लोग तो प्रेम-मन्दिर के बाहर ही रहते हैं उन्हें तो केवल अपने ही कष्टों को सहन करना होता है, परन्तु जब एक हृदय दूसरे के हृत्तन्त्री की झंकार के साथ २ ही स्वर निकालता है तो प्रत्येक की फिकरें और चिन्तायें और कष्ट दोनों को सहने होते हैं। हम प्रेम का कर्ज़ा भी लेलेते हैं।

यह सच बात है कि कभी २ जब हिसाब करते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि हम से बहुत बढ़ाकर मूल्य लिया जा रहा है परन्तु तथापि हम में से बहुतेरे बड़ी खुशी २ उस को चुकाते हैं। हम नीचे एक उदाहरण पेश करते हैं जिस से यह स्पष्ट पता लग जायगा कि वास्तविक प्रेम में शक्ति और बल कितना है तथापि प्रायः वर्त्तमान कालीन कन्यायें जब उन्हें एक बार यह विश्वास हो जाय कि प्रेम मिल गया है तो फिर उसका मूल्य चुकाने से विमुख ही रहती हैं।

एक कुटुम्ब में तीन बहिनें थीं। दो का विवाह हो चुका था किन्तु एक बिलकुल सीधी सादी थी अतः सब समझते थे कि यह हमेशः अविवाहिता ही रहेगी।

परन्तु दैवयोग से उसको एक प्रिय पति मिल गया। उसी दिन से उसकी आकृति बदल गई। उसकी आंखों में अपूर्व सौन्दर्य्य छागया उसकी मुस्कयान में मधुरता दीखने लगी और लोग आश्चर्य्य करने लगे कि उस के सौन्दर्य्य को उन्होंने अबतक देखा क्यों नहीं? एक दो महीने के बाद उसे रोते देखा और वह गुस्से से भरी थी। कारण यह था कि पति महाशय क्रिकेट के मैच में चले गये थे परन्तु इस खेल से इसे नफरत थी अतः यह गई ही नहीं।

यह देवी इस बात को समझ ही नहीं सकी कि एक दो घंटे के लिये सहर्ष अपनी अन्तरात्मा को दबा देना ही मूल्य था जो कि उस से प्रेम के आनन्द के बदले मांगा गया था। वैसे तो वह हमेशः कहा करती थी कि यदि मुझे अपने प्रिय पति के प्रेम के बदले में सारा संसार छोड़ना पड़े तो मैं त्यागने को तैयार हूं परन्तु जब मौक़ा पड़ा तो पता चला कि वह प्रेम के बदले कुछ भी, एक छोटी सी चीज़ भी देने को तैय्यार नहीं थी।

हमारी मंजूषा

नारी-विज्ञान—अनुवादक पं० विष्णुदत्त शुक्ल, प्रकाशक सरस्वती सदन ७३ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट कलकत्ता, पृष्ठ संख्या २६६, मूल्य सादी २) रेशमी जिल्द २॥)

डाक्टर हैनरी चेवेसी कृत 'Advice to a wife on the management of her own health" अंग्रेज़ी भाषा की अपने विषय की एक प्रसिद्ध पुस्तक है। नारी विज्ञान इसी अंग्रेज़ी पुस्तक ही अनुवाद है। इस पुस्तक में साधारण अनुभव, मासिक धर्म, गर्भाधान, प्रसव, दुग्धपान शीर्षक पाँच अध्याय हैं। इन सब अध्याय के विषय के दृष्टि कोण से स्त्रियों के स्वास्थ्य को निर्मल और दृढ़ रखने के लिये किन २ बातों की आवश्यकता है इसी का प्रतिपादन किया गया है। हमारी अनेक बहिने कुछ स्वभाविक लज्जा के वश, कुछ झूंठी रीति रिवाज के कारण यौवनारम्भ के समय अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने वाले नियमों की अवहेलना करजाती हैं। मासिक धर्म के विषय में यह बात विशेष रूप से देखी जाती है। इन दिनों में वह अपनी अवस्था को छिपाने का भर सक बल करती हैं और इस निमित्त एक स्थान में शान्ति पूर्वक बैठने की बजाय नियमानुकूल स्नान, भोजन, चलना, फिरना सभी करती रहती हैं। मानो यह धर्म कोई परमेश्वर कृत सृष्टि-नियम नहीं वरन् एक प्रकार का पाप है जो कि सब प्रकार से छुपाना चाहिये। शोक तो इस बात का है कि बूढ़ी तजुरबेकार मातायें भी अपनी लड़कियों को इस अवस्था को छुपाने में सम्मति और सहायता देती हैं। अतः इस प्रकार की पुस्तकें जिनमें स्त्रियों की प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य को ठीक २ रखने के लिये किन नियमों की आवश्यकता है हमारी नारी समाज के लिये युवती और प्रौढ़ा, बाला और वृद्धा, सभी के लिये परम आवश्यक है। पुस्तक में सामान्य स्त्रियों और विशेषकर गर्भिणी और प्रसूता स्त्रियों को किस प्रकार अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिये, किन नियमों से पालने से अपना और बच्चों का स्वास्थ्य ठीक रखा जासकता है, प्रसव के समय किन बातों का ध्यान रक्खा जाना चाहिये इन सब ही आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक की एक विशेषता यह है कि अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद रहने पर भी इसकी लेखन शैली का ढंग हमारी भारतीय स्त्रियों की अवस्था और सामाजिक प्रथायों के अनुकूल ही रखा गया है। पुस्तक सर्वथा उपयोगी है और हम नारी समाज में इस का प्रचार चाहते हैं। इसी कारण से हमें शोक से कहता पड़ता है कि पुस्तक का मूल्य अधिक है। इस प्रकार की पुस्तकों का जितना भी प्रचार हो अच्छा है और यह तभी हो सकता है जब कि मूल्य इतना हो कि सर्व साधारण इन्हें बिना कठिनता के खरीद सकें। क्या प्रकाशक महोदय दूसरा संस्करण छपवाते समय इस बात का ध्यान रक्खेंगे? 'रामजीनारायण'

हृदय—संपादक श्रीयुत महेशानन्द थपल्याल। पृष्ठ संख्या २० और वार्षिक मूल्य २॥) मिलने का पता—प्रबन्धक 'हृदय' मेरठ।

गत होली से यह साप्ताहिक पत्र मेरठ से निकल रहा है। इस समय १९ वाँ अङ्क हमारे सामने है। इसमें 'साहित्य-समीक्षा' 'कथा-गाथा' 'तीर्थ-यात्रा' एवं 'टटकी टिप्पणियों' आदि स्थायी शीर्षकों के अतिरिक्त तीन लेख हैं जो विद्वानों के द्वारा लिखे गये हैं। रङ्ग ढङ्ग एवं आकार प्रकार से यह पत्र मासिक का मज़ा देता है। अग्रलेख सामयिक विषयों पर' एवं गम्भीर होते हैं। कवितायें भावपूर्ण हैं' किंतु उन का 'क्रम' स्तुत्य नहीं कहा जा सकता।

'हृदय' बहुत शीघ्र सहृदय साहित्य रसिकों के हृदय-मन्दिर में उत्तम स्थान प्राप्त करलेगा, यह हमारा विश्वास है।

आलोक—मासिक-पत्र। सम्पादक पं० कालीप्रसाद शास्त्री। प्रकाशक, शुक्ल प्रेस, एलनगञ्ज प्रयाग। पृष्ठ संख्या ४० और वार्षिक मूल्य ३)

तीसरे अङ्क में १० पद्य एवं गद्य लेख हैं, जिनमें दो एक महत्वपूर्ण भी हैं। 'सम्पादकीय' जिसके बिना किसी पत्र को 'पत्र' संज्ञा नहीं दी जा सकती, इसमें नदारद है। हाँ, 'आलोक' पर सम्मतियाँ, अवश्य वर्तमान हैं। आशा है, संपादक महोदय स्वयं भी कुछ कष्ट उठाने की कोशिश करेंगे। पत्र साधारणतः अच्छा है।

शौंडिक मित्र—यह शौंडिक (सूरी) जाति का मुख-पत्र है और मासिक रूप से इसी श्रावण से प्रकाशित होने लगा है। लेख अधिकांश जातीय हैं। मुख पृष्ठ पर एक सुन्दर तिरङ्गा और तीन सादे चित्र हैं। वार्षिक मू० २) और ग़रीब संस्थाओं को मुफ्त। पता—मैनेजर 'शौंडिक-मित्र' रोसड़ा, जिला दरभंगा (विहार)।

वैश्य-मार्त्तण्ड—संपादक, लाला मुन्शीराम। वा० मू० २) पृ० सं० ३८। "प्रकाशक 'वैश्य-मार्त्तण्ड', दिल्ली" के पते से प्राप्य।

यह देशवंशीय अग्रवाल महासभा का मासिक मुख-पत्र गत जुलाई से निकलने लगा है। इस के लेख प्रायः सामयिक विषयों को लेकर लिखे गये हैं।

देशवंशीय अग्रवालों के लिये इसकी किरणों का स्वागत एवं सेवन हितकर है।

विज्ञापक—यह मासिक पत्र, अंग्रेज़ी हिंदी गुजराती एवं मराठी भाषाओं में दो वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि इसके अधिकां पृष्ठ विज्ञापनों से भरे रहते हैं, फिर भी दो चार लेख अन्यान्य विषयों पर भी निकल ही जाते हैं। संपादक का नाम पत्र में नहीं है। प्रकाशक हैं 'जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा। पत्र, विषय के लिहाज़ से, पठनीय है। वार्षिक मू० २) और एक अङ्क का ।) है।

मार्तण्ड—सम्पादक व्याख्यान वाचस्पति राजरत्न आत्माराम जी अमृतसरी। प्रकाशक-वेद भाष्य कार्य्यालय, कारेली बाग बड़ौदा। यह पत्र स्वयं अपने शब्दों में "एक लिपि और भाषा का अनन्यभक्त एवं वर्तमान सनातनी आर्य्य, बौद्ध, सिक्ख तथा जैन आन्दोलन का प्रबल समर्थक होगा"। अभी सिर्फ नमूना निकल रहा है! काफी ग्राहक संख्या होने पर सजधज के साथ प्रकाशित होगा। वा० मू० २॥) है।

राजरत्न जी जैसे योग्य व्यक्ति के सम्पादक होते हुये भी हमें संदेह है कि पत्र 'आर्य्य, बौद्ध, सिक्ख तथा जैन, सभी आन्दोलनों का प्रबल समर्थक हो सकेगा।

नूतन शिशु पालन—लेखक डाक्टर महेंद्र-लाल जी गर्ग। प्रकाशक सुखसंचारक कम्पनी मथुरा। कीमत =)

इस छोटी सी पुस्तिका में विद्वान् लेखक ने स्त्रियों की गर्भावस्था से लेकर प्रसव के बाद तक की मुख्य बातों का उल्लेख किया है एवं इन अवस्थाओं में होने वाली बीमारियों का उपचार भी लिख दिया है। एवं शिशु-पालन के

तरीके बखूबी के साथ बतलाये गये हैं पुस्तक संग्रहणीय है ।

हिन्दू-पंच—यह सचित्र साप्ताहिक पत्र गत २१ जून से निकल रहा है । अब तक इसके सात अङ्क निकल चुके हैं, और सातों एक से एक बढ़कर हैं । व्यर्थ का हो हल्ला न मचाकर हँसते हँसाते हिन्दु समाज का संगठन करना इसका उद्देश है । 'मुख में राम बगल में छुरी' का यह बड़े क्रूर शब्दों में विरोध करता है । इसके सम्पादक हैं भूतपूर्व मनोरञ्जन सम्पादक पं० ईश्वरीप्रसाद जी शर्म्मा उर्फ बाबा बाल्टीदास । हम हिन्दू मात्र से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने इस नवीन पंच का भली भाँति सत्कार करें । वार्षिक मूल्य २) और मिलने का पताः—'मैनेजर 'हिन्दू-पंच' बर्म्मन प्रेस, ८४ अपर-चीतपुर रोड कलकत्ता' है ।

'रामजीवन शर्म्मा'

वनिता विनोद

स्त्री जगत् ।

कुमारी ज़किया सुलेमान ।

लगभग एक मास से मिश्र देश की एक सुशिक्षता देवी ज़किया बेगम भारतवर्ष में इस हेतु पधारी हैं कि वह शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को देखभाल कर यहां से भी अनुभव प्राप्त करें । आपने किंडरगार्टन पद्धति की नींव भी अपने देश में डाली है, और यहां पर भी इसका प्रचार चाहती हैं । आप मिश्र देश में सर्कार की ओर से किंडर गार्टन विभाग की अध्यक्षा नियुक्त की गई हैं । आपका कहना है कि मिश्र सर्कार प्रतिवर्ष विद्यार्थियों को जो विदेश भेजती है उस पर १५००० पौण्ड व्यय करती है और विद्यार्थी भिन्न २ विषयों की शिक्षा प्राप्त करके स्वदेश में जब लौट कर आते हैं तो उसका प्रचार आधुनिक रीति द्वारा स्वदेश में करते जिस से मिश्र वासियों को बड़ा लाभ पहुँचता है । मिश्र देश में स्त्रियों में पर्दा भी नहीं है अतः वहां बहुत उन्नत हैं ।

संस्कृत परीक्षा में आर्य्य देवियां ।

हर्ष है कि इस वर्ष प्राज्ञ, विशारद तथा शास्त्री परीक्षा में कई देवियां उत्तीर्ण हुई हैं जिन में से हमारी परिचिता कुमारी सुमित्रा देवी जी डेरा इस्माइल खां से शास्त्री की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है, श्रीमती ज्योत्स्ना देवी 'प्रभात' के महिला संसार की सम्पादिका विशारद में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुई हैं और कुमारी राज किशोरी सप्रू प्राज्ञ में प्रथम कोटी से उत्तीर्ण हुई हैं । हम इन देवियों को उनको सफलता पर बधाई देते हैं ।

वाद्य शास्त्र में प्रथम भारतीय ग्रैजुयेट ।

भारतीय महिला विश्वविद्यालय का दीक्षान्त संस्कार तथा सिनेट-सभा इस बर्ष विशेष गौरव के पात्र बन रहे हैं क्योंकि भारतीय इतिहास में यह पहिला ही अवसर है जब किसी भारतीय महिला ने वाद्य विद्या में डिग्री ली हो ।

श्रीमती मंजीलाबाई मेहता एक विधवा देवी हैं जिन्होंने इस वर्ष वाद्यविद्या में डिग्री ली है। यह विश्वविद्यालय दूसरे सर्कारी विद्यालयों के सन्मुख ललित कलाओं को भी कालिज कोर्स में प्रविष्ट करलेने का अपूर्व उदाहरण रखता है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि भारत में ललित कलाओं का पुनरुद्धार हो रहा है। भारत अब जागृत हो रहा है। यह प्रचार महिला विश्वविद्यालय के आदर्श के अनुकूल ही है।

श्रीमती मेहता जी की माता श्रीमती सुलोचना देसाई जी बड़ौदा राज्य में सामाजिक सुधार और समाज सेवा का बड़ा कार्य्य कर रही है और वहां उनका बड़ा मान्य है।

पैरिस महिला महासभा में भारतीय देवियां।

गत जून मास में पैरिस में मताभिलाषिणी देवियों की जो दसवीं महासभा की ओर से हुई थी उसमें ९ भारतीय महिला भी सम्मिलित हुई थीं भारत की शिक्षिता देवियों को यह चाहिये ही कि अन्य देशीय शिक्षिता महिलाओं के साथ मिल जुल कर विचार परिवर्तन करें ताकि परस्पर के विचार उन्नत हों।

* * *

कुमारी शकुन्तला देवी परांजपे जिन्हों ने अभी प्रथम कक्षा में गणित में बी. यस. सी की मे सफलता प्राप्त की है—अब इंग्लैंड जा रही हैं। उन्हें तीन वर्ष के लिये २०० पौण्ड की सर्कारी छात्रवृत्ति मिली है। वह गणित शास्त्र का और उन्नत ज्ञान प्राप्त करेंगी।

* * *

उस की स्मृति में

अहा! देख इस हरियाली को कैसी हम को भाती है।
मल मल कर यह हाथ मल दिये पर यह अभी न जाती है॥
किसने गाढ़ा रंग चढ़ाया कैसी उस की छाती है।
बार बार छवि देख रहे हैं तौ भी बढ़ती जाती है॥
अहा! देख इन फूलों को वह फूली नहीं समाती है।
कलीं, अधखिली, कुसुम दशा लख मानों वह मदमाती है॥
क्या शैशव, क्या है किशोर, क्या तरुण अभी यह गाती है।
आख़िर पतन पतन को लखकर अजब दशा दिखलाती है॥
क्या सचमुच सब व्यर्थ व्यर्थ है हम को सदा जनाती है।
या केवल नट-नागर-क्रीड़ा सदा नाच नचवाती है॥
इतने अभिनय पटु उसका वह अभिनय हमें दिखाती है!
या मुझ को, तुझ को, सब को वह उसकी याद दिलाती है॥

जगदीशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुलीय कन्याओं के लिये प्रेम-पुष्प

लेखिका—श्रीमती कौशल्या देवी विशारदा

नम्बर—१

प्रिय देवियो ! मैं दूर बैठे हुए तुम्हारे साथ किस रूप में प्रेम प्रकट करूं, यह विचार कर अपने मन का विचार रूपी प्रेम-पुष्प तुम्हारी भेंट करती हूं आशा है स्वीकार करोगी ।

देवियो ! सब से प्रथम मैं मनुष्य जीवन का थोड़ा सा महत्त्व तुम्हारे सामने रखती हूं-देखो ! परमात्मा की बड़ी कृपा से हमें यह मानव-योनि प्राप्त हुई है । ज्यों ज्यों मनुष्य की बुद्धि बढ़ती जाएगी त्यों त्यों इस जीवन की उत्कृष्टता उस को प्रतीत होती जाएगी । प्राणिवर्ग में से मनुष्य इसलिये सर्वश्रेष्ठ है कि परमात्मा ने इसे बुद्धि प्रदान की है और कर्म करने में स्वतन्त्र बनाया है ।

बुद्धि बल से ही मनुष्य बड़े से बड़े जानवर हाथी को वश में कर लेता है और अपने संकेत से उस से कार्य लेता रहता है, और शेरों जैसे भयंकर जीवों को भी बन में से ले आता है । क्या तुम ने कभी चिड़ियाघर देखा है ? उस में शेर, रीछ, बानर, आदि सभी प्राणी एकत्रित किये होते हैं । मनुष्य ही तो विषैले सांपों को पकड़ लाते हैं । गलियों में सपेरों को तुम ने बहुत बार अजगर आदि सांप दिखलाते हुए देखा होगा । यह तो बुद्धि द्वारा अन्य प्राणियों को वश में करने की शक्ति है ।

अन्य अनेक शक्तियाँ ईश्वर ने हमें अर्पण की हुई हैं उन को विकसित करने के लिये, उन्नत करने के लिये विद्या प्राप्त करने की परम आवश्यकता है । विद्या द्वारा ही मनुष्य, मनुष्यता ग्रहण कर सकता है । क्योंकि कहा गया है-"बुद्धि ज्ञानेन शुद्धयति" बुद्धि की शुद्धि ज्ञान अर्थात् विद्या द्वारा होती है ।

जबतक कोई वस्तु शुद्ध न हो उस से लाभ नहीं हो सकता । दर्पण को ही देखो यदि वह साफ़ न हो तो उस में से मुख का प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दिखाई देगा । इसी प्रकार अन्य किसी वस्तु को ले लें । यदि वस्त्र स्वच्छ न हो तो उस पर रंग चढ़ाना हो तो अच्छा नहीं चढ़ेगा । जल पाने का पात्र शुद्ध नहीं हो तो उस में जल भी मलिन हो जाएगा ।

अब तुम शुद्धि की आवश्यकता समझ गई होगी और साथ ही साधनों को भी । जैसे वस्त्र को स्वच्छ करने के लिये साबुन की आवश्यकता होती है । साबुन और जल उस की शुद्धि के साधन हैं इसी प्रकार बुद्धि की शुद्धि, विद्या और कर्म रूपी साधनों की अपेक्षा रखती है ।

जब बुद्धि को शुद्ध कर लिया जावे फिर सब कर्तव्य, अकर्तव्य हानि, लाभ, सत्य, असत्य, सम्पूर्ण द्वन्द्वों की पहिचान हो जाती है और ज्ञानोदय हो जाता है कि इस अमूल्य जीवन को किस प्रकार सफल कर सकते हैं ? इस का उद्देश्य हमें क्या रखना चाहिये । कौन से कर्म हमें पवित्र करते हुए उन्नत करेंगे ?

"दुर्लभ मानुष जन्म है मिले न बारम्बार"

इस दुर्लभ जन्म को सार्थक करने के लिये और भी सर्वोत्तम साधन हैं जिस से पूर्ण बल, पूर्ण विद्याएं और पूर्ण शक्तियाँ विकसित होती हैं, वह है परम पिता परमात्मा का भजन। इसी के अवलम्बन से दुःखों से पार हो सकते हैं, हैं, पापियों का उद्धार कर सकते हैं, अपने जीवन को सुधार सकते हैं, परोपकार परायण बना सकते हैं। सर्व शक्तिमान परमात्मा की प्रदान की हुई शक्तियों द्वारा ही प्रेम का प्रसार कर सकते हैं। अपनी डूबती हुई जाति की नैय्या को पार लगा सकते हैं। यह सब उत्तमोत्तम कर्म मनुष्य में तभी प्रविष्ट होते हैं जब वह इस जीवन के महत्व को अनुभव कर के उस को सफल करने का प्रयत्न करता है।

बड़े २ योगी भी योग करते हुए जब परमात्मा की महिमा का चिन्तन करते हुए मानुषी सृष्टि का विचार करते हैं तो विस्मित होकर कहते हैं "नेति" "नेति"। परमात्मा की महिमा अपरम्पार है जानी नहीं जाती, जानी नहीं जाती। इसी जीवन की महत्ता को समझ कर योगी योग करता है, तपस्वी तप करता है, मनुष्य धर्म्म कृत्यों का अनुष्ठान करता है।

जब मैं योरपीय लोगों की अन्य अनेक उन्नति समाचारों के साथ २ यह समाचार पढ़ती हूँ कि एक मनुष्य कहता है कि मेरी आयु अब तो अस्सी वर्ष की है पर क्या मजाल है कि मैं १२० वर्ष से पहिले मरूं—वे लोग दावे करते हैं कि हम इतने वर्ष तक और जीएंगे—तो इस प्रकार के उन के ब्योरे पढ़ कर मुझे निश्चय होता है कि मनुष्य जीवन की महत्ता के वास्तविक अभिप्राय को उन्हों ने पालिया है। ठीक इस के विपरीत हमारे देश की हालत है कि अभी चालीस वर्ष के होने नहीं पाते, कहते हैं हम बूढ़े होगये। और जो पचास साठ से अधिक के हो जावें तो दिन रात यही जाप जपते हैं कि इस संसार से शीघ्र छुटकारा हो।

योरपीय लोग न केवल आयु को दीर्घ करने की उन्नति कर रहे हैं किन्तु साथ २ अन्य भी अनेक प्रकार की उन्नतियों द्वारा उन के जीवन उन्नत दिखाई देते हैं। दिन प्रति दिन नवीन २ आविष्कारों का प्रादुर्भाव करते चले जा रहे हैं। कभी वायुयान बना रहे हैं, कभी अन्य अनेक प्रकार की कलों की रचना कर रहे हैं। मैंने समाचार पढ़ा है कि एक ऐसी नई कल निकली है जिस से बहिरे भी सुन सकेंगे।

पूर्वाविष्कृत बहुत सी कलें तो तुम ने देखीं होगी। टेलीफ़ून को देखा हज़ारों मील दूर बैठे हुए परस्पर वार्त्तालाप करते हैं। वायरलैस (बेतार की तार) का नाम तुम ने सुना होगा। कि उस से कितना भारी कार्य लेते हैं।

इस में सन्देह नहीं कभी हमारा देश भी उन्नत था पर अब तो सब से पीछे पड़ा हुआ है। हमारे दादा के बाग़ में इतने २ बड़े आम थे इस प्रकार की बातों से तो हमारा गौरव नहीं बढ़ता। हमारी बड़ाई तो इस बात में है कि स्वयं उन्नत होकर दिखाएं। तभी हम मनुष्य जीवन की महत्ता को जान सक्ते हैं और यह तभी हो सकता है जब हम सब प्रकार की विद्याओं को सीख कर ब्रह्मचर्य बल से उन्नति करके अपने जीवन को उपयोगी बनावें।

पर्दे की प्रथा

लेखक--श्रीविद्याव्रत पटेल गुजरात निवासी

आज कल भारतवर्ष में पर्दे की प्रथा कन्याकुमारी से कश्मीर तक तथा अटक से कटक तक फैली हुई है, अर्थात् भारत का कोई ऐसा प्रान्त शेष नहीं जहाँ पर्दे की कुपथा रूप रोग का सञ्चार न हो। यह प्रथा कहाँ से प्रादुर्भूत हुई? इसका पता लगाना कठिन है, तो भी इतिहास के अनुशीलन से असली बात तो ज्ञात होही जाती है। महात्मा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के काल में पर्दे की प्रथा न थी, यदि होती तो महारानी सीता किस प्रकार पति के साथ बन में जाती? रानी कैकेई किस प्रकार पति (महाराजा दशरथ) के साथ युद्ध सहगामिनी होती!

महाभारतकालीन इतिहास के स्वाध्याय करने से भी पता चलता है, कि यदि पर्दे की प्रथा (रीति) होती; तो द्रौपदी किस तरह स्वयम्बर विवाह कर सकतीं?।

यहीं तक बात नहीं, अपि तु आगे चलकर बौद्धकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों को देखते हैं, तो मालूम होता है कि उस समय भी इस प्रथा का प्रचार भारत वर्ष में न था। स्त्रियाँ अपने पतिओं के कामों में हाथ बटाती थीं, तथा बाहर आया जाया करती थीं। देखिये; अशोक-राज्य में बौद्ध धर्म की पता का दूर २ तक फैल गई। अशोक के राज्य-काल में जो बौद्ध महासभा हुई, उसके दूसरे ही साल अशोक का छोटा भाई "महेन्द्र" भिक्षुक बनकर अपनी बौद्ध धर्म-पताका लंका में लेगया। तत्पश्चात् शीघ्र ही उसकी पुत्री तथा भगिनी "संघमित्रा" भी उस श्रेणी (Class) में प्रविष्ट होकर और कुछ भिक्षुकनियाँ साथ लेकर वहां जा पहुंची। पाँच सौ साल बाद लंका के उपदेशकों ने ब्रह्मा के लोगों को अनुयायी बनाया। तदनन्तर स्याम, जावा और सुमात्रा आदि द्वीपों के अन्दर भारतवर्ष के प्रचारक पहुँचे। इधर उत्तर-मध्य एशिया से होते हुए चीन में भी बौद्धधर्म के उपदेशक पहुँचे। प्रथम शताब्दि में बौद्ध धर्म कोरिया (Koria) और कोरिया (Koria) में से जापान (Japan) में ५ वीं या ६ ठी शताब्दि में अच्छी तरह प्रचलित हो गया; साथ ही समस्त संसार में घूम २ कर खूब प्रचार किया। आप स्वयं बतला सके हैं, कि यदि देश में पर्दे की प्रथा प्रचलित होती तो क्या राजपुत्री तथा राज भगिनी पर्दे से च्युत हो सक्ती थीं? नहीं—नहीं—कदापि नहीं? आगे इतिहास के अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है, कि जब से इस देशमें मुसलमानों का आवागमन हुआ, उन्हों ने जब से राज्य बागडोर को अपने हाथ में लिया और अपनी वेष, भाषा और रीति रिवाज़ का प्रचार भारत में जब करते हैं दरसल (वास्तविक) में यह प्रथा (चाल) तभी मुसलमानों के साथ इस देश में "बुरके" के साथ आई। लोगों ने भी जब उस समय देखा कि मुसलमानों के अत्याचार से हमारी बहू बेटिआँ अपना सतीत्व-धर्म नहीं बचा सकतीं

तब उन्हों ने मुसलमानी प्रथा (रीति) का अवलम्बन कर घर के अन्दर पर्दे में अपनी बहू-बेटियों को रखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रथा का अवलम्लेन तथा घर में ही स्त्रियों को बन्द रखना क्या था? मानो देश के ऊपर वज्र गिरना तथा गिराना था।

शनैः २ स्त्रियों की शारीरिक मानसिक, तथा आध्यात्मिक शक्तियों का ह्रास हो चला। वंश परम्परा के अनुयायी लोग इस पर्दे की कुप्रथा को सुप्रथा समझने लगे। अपनी बहू-बेटिओं को इस प्रकार पर्दे में रखने लगे कि ताज़ी (स्वच्छ) हवा का मिलना भी कठिन हो गया। इस कुप्रथा के कारण ही, मारे भय के पढ़ना छुड़ा दिया गया। शिक्षा-बल का अभाव पीढ़ी-दर पीढ़ी कम ही होता गया। फलस्वरूप यह हुआ कि स्त्रियाँ मूर्खा तथा अबला हो गईं। यहीं तक नहीं उनकी सुन्दर होनेहार छोटी २ सन्तति भी विद्यारूपी जीवन के अभाव से अधिकांश मूर्खा तथा निर्बल होने लगीं। देश को अवनति-कूप में डालने में इससे क्या सहायता मिली? यह कहना आवश्यक नहीं; इससे ही स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।

अन्य मुसलमानी देश इस कुप्रथा को अपने देश से दूर कर रहे हैं। एशिया कोचक के "कमाल-पाशा" ने इस प्रथा को अपने देश से उत्पाटन कर दिया है। शोक है! भारत अभी तक इस में पीछे है। यह प्रथा जिस देश की "थाती" है अर्थात् निक्षेपभूत है उसने तो उसे बुरा समझ कर त्याग दिया है और भारतीय अपनी "थाती" समझ त्यागते हुए यत्किञ्चित् शरमाते हैं? इसे बड़ा भारी कीमती आभूषण समझते हैं। स्त्रियाँ भी इसके बिना नहीं रह सकतीं। वे अन्य भूषणों की तरह इसे भी एक आवश्यक आभूषण समझती हैं।

हर्ष है कि इस पर्दे की कुप्रथा रूपी रोग से अखिल भारत वर्ष देश के प्रायः ग्रसित हो जाने पर भी आजतक बहु संख्या में गुजरात-समाज इस रोग से ग्रसित नहीं हुई। इसका कारण, वहाँ मुसलमानी अत्याचार का अभाव है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, गुजरात-समाज को कोटिशः धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। क्यों कि अधिकतर वहाँ के लोग ही धन्यवाद के पात्र हैं। अस्तु,

पाश्चात्य सभ्यता की हवा लगने से और आर्य-समाज के प्रचार से इस कुप्रथा का त्याग हो चला है; पर अभी दश फी सदी की संख्या भी नहीं? इसके हटाने के मूलभूत कारण, महार्षि दयानन्द जी इस श्रेय के भागी हैं।

अतः आज मेरी सभी से प्रार्थना है कि वे अपनी बहू-बेटियों को पर्दे रूपी पाश से मुक्त करें, तथा उन्हें यथोचित शिक्षा देकर शिक्षिता बनावें।

ग़ुलामी का रहस्य

लेखिका—श्रीमती सरलादेवी हरयाना

वह भारत वर्ष जिसने संसार को सभ्यता का पाठ पढ़ाया और कला कौशल का आविष्कार करके संसार की आँखें खोलीं आज परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा मौत के साँस पूरे कर रहा है। जिस भारत के दर्शनों को विदेशी वर्षों भटकते रहे पर नाम सुनते २ ही मर गये और एक बार भी दर्शन की झाँकी नसीब न हुई। आज उन्हीं की सन्तान उस वृद्ध भारत को हाँ—उस पूज्य गुरू को पैरों से ठुकरा रही है। क्या यह सब समय का फेर कहकर ही हमें सन्तोष कर लेना चाहिए? या कुछ हाथ पैर हिलाकर इसके विशेष कारणों को खोजकर हमें अपनी कमी दूर करनी चाहिए।

यद्यपि किसी देश या जाति के पतन के अनेक कारण होते हैं, उसकी जड़ में अनेक प्रकार के घुन लगते हैं, मगर फिर भी उसकी अधोगति के मुख्य कारण किसी से नहीं छिपने; थोड़ा बहुत सभी जानते हैं। मिश्र, रोम यूनान, काबुल और दूसरे प्राचीन देशों की अधोगति के कारण क्या किसी से छिपे हुए हैं? नहीं।

भारतवर्ष का इतिहास मनन करने पर अनेक रहस्य खुलते हैं। जहाँ ग़ुलामी के अनेक कारण मिलते हैं वहाँ एक कारण स्त्री समाज को अवहेलना की दृष्टि से देखना भी है। रामायण, महाभारत और भागवत इत्यादि पुराणों से हमारी प्राचीन स्थिति का भली प्रकार पता चल जाता है। यह हमारे अतीत इतिहास की झलक झलकाते हैं। रामायण में सीता देवी पतिव्रत-धर्म की जीती जागती मूर्ति हैं, उनमें पति का अगाध प्रेम है। रावण प्रपंच रचकर उनका हरण करता है। उसे सती के शाप से अपना ऐश्वर्य, राजपाट ही नहीं अपितु सर्वस्व गँवाना पड़ता है। और अन्त में कुटुम्ब सहित अपनी जीवन लीला भी समाप्त करनी पड़ती है। आगे चलकर स्वयं उनके पतिदेव उसको अपमानित कर व्यर्थ का दोष लगाकर परित्याग करते हैं। पर सती के तेज़ का कवच उसकी रक्षा करता है। हृदय से निकली हुई सती की आहें राम को निस्तेज और इतना अकर्मण्य बना देती हैं कि छोटे छोटे बालक लव कुश के सामने उनका गर्व खर्व हो जाता है। और अन्त में उनको अपने किये पर पश्चात्ताप के आँसू बहाने पड़ते हैं।

महाभारत में द्रौपदी सती महिला हैं। काल-चक्र के प्रभाव से युधिष्ठिर उनको जुए में हार बैठते हैं। वह दुर्योधन के हाथों अपने को सौंपने पर मजबूर होती हैं। मगर वह पापिष्ठ और दुरात्मा भरी सभा में उसको अपमानित करना चाहता है। सती का अपमान देखकर पाण्डवों का खून खौल उठता है। कौरवों का मन मत्त-मयूर की भाँति नाचने लगता है। जिसके कारण कौरवों और पाण्डवों में धर्म-अधर्म युद्ध छिड़ता है। सती का शाप देखते ही देखते कौरवों का जीवन प्रदीप बुझा देता है। उन्हें इस प्रकार युद्ध-

स्थल में अपने प्राण विसर्जन कर प्रायश्चित्त करना होता है जो क्षत्रियों की शान के ख़िलाफ़ है।

भागवत में कंस बड़ा प्रतापशाली राजा है, उसकी बहिन देवकी बड़ी सुशीला और पतिव्रता है। कंस को ज्योतिषियों से पता चलता है कि तेरा भानजा तेरा सर्वनाश करेगा।

इससे क्रुद्ध होकर वह देवकी पर नाना प्रकार के अत्याचार करता है। वह बिचारी गर्भावस्था में ही कारागार की कठिन असह्य यातनायें सहने पर मज़बूर होती है। जिसके कारण सती की निकली हुई आहें उसका सर्वस्व भस्मी भूत करती हैं और उस नारकी कीड़े को किस तरह अपने किये का दण्ड भोगना पड़ता है।

यहाँ तक हमारे प्राचीन उल्लेखों से पता चलता है कि स्त्री समाज को गिराने से मनुष्य ने अपने को स्वयं ही गिरा लिया। यदि ऐसा न होता तो क्या मनु० भगवान् व्यर्थ में ही यह श्लोक लिखकर क़ाग़ज़ काला करते:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रियाः॥

अर्थात्-जहाँ स्त्रियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है। और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वहाँ सब क्रियायें निष्फल होती हैं।

अब हमारे सुधारकों, उपदेष्टाओं और नेताओं के विचारों को देखिये! उन्होंने तो जहाँ स्त्रियों के दूसरे स्वत्व दबा कर अनधिकार चेष्टा की है वहाँ अपने संकीर्ण हृदय में वेद सुनने के अधिकार तक की भी कुञ्जी लगाकर बन्द करना चाहा है।

उन्होंने कहा है:—

स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा।

वेद के मन्त्र सुनने का भी स्त्री को अधिकार नहीं। भला वे ऐसा विधान क्यों न बनायें? फिर उन्हें पूछेगा कौन? यदि स्त्रियाँ उनसे आगे बढ़ गयीं तो फिर उनको मारे शर्म के गले में फाँसी लगाकर मरना पड़ेगा या किसी नदी कुएँ बावड़ी में डूबकर प्राण खोना। इसलिए उन्होंने यही उचित समझा कि संस्कृत में ऐसा वाक्य गढ़ लेना चाहिए जिसका उदाहरण देते ही किसी स्त्री को कुछ कहने का साहस ही न पड़े। बलिहारी है ऐसी बुद्धि पर! पता नहीं इस बुद्धि का कहाँ दिवाला निकालकर चौपट कर बैठे। क्या श्रीमान् जी की ऐसी अकारथ युक्तियाँ स्त्रियों पर ही चलेंगी? व्याकरण और न्याय का उनके लिए ही खून किया जायगा। इससे अधिक कोरी भूल और क्या हो सकती है?

श्रीमान् जी! जिस वेद भगवान् को आप अपनी पुस्तक मानते हैं ब्रह्मा का वाक्य समझ कर ही जिसकी अप्रतिष्ठा पर आप खून बहाने को तैयार रहते हैं, क्या उनके अनेक सूक्त स्त्रियों द्वारा रचे हुए नहीं हैं? ऋग्वेद को आद्योपान्त देखने पर पता चलता है कि अनेक आर्य्य विदुषी नारियों ने उस का भाष्य करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जिनमें से कुछ नाम जो वेद भगवान् में मिलते हैं ये हैं। विश्व वारा, इन्द्र मातृका, वाक्, अपाला, लोप मुद्रा, अदिति, यमी, शश्वती उर्वशी, घोषा,

सूर्या, जुहू, इन्द्राणी, शची, गोधा श्रद्धा और रोमशा-इत्यादि ।

इन नारियों ने अनेक सूक्त की व्याख्या रची है । इसी से अनुमान किया जा सकता है । यदि पहले समय में वेद विद्या सुनने और पढ़ने का स्त्रियों को अधिकार नहीं होता तो क्या वे बिना पढ़े लिखे ही असाधारण योग्यता का परिचय दे सकतीं ? कभी नहीं ।

इसलिए हमें भली प्रकार यह विचार करना चाहिए कि क्या भारत की अधोगति का मुख्य कारण स्त्रियों के स्वत्व दबाने की अनधिकार चेष्टा नहीं है ? मनुष्य स्त्रियों को गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं और देखते हैं स्वतन्त्रता का स्वप्न । कोई प्राणी स्वतन्त्रता का उपभोग कर सका है जबतक उसने दूसरों को स्वतन्त्र रखने का पाठ सीख न लिया हो । अमरीका के स्वर्गवासी प्रेसीडेन्ट अब्राहिम लिंकन ने एक स्थान पर गुलामी के सम्बन्ध में लिखा है ।

“ अगर गुलामी पाप नहीं, तो पाप नहीं ” सबसे अधिक पाप दूसरों को गुलाम बनाकर रखने का है । इस मूल कारण को हमें आंखों के सामने रख कर स्वराज्य का आन्दोलन करना चाहिए तभी हमें सफलता मिल सक्ती है । नहीं तो स्वाधीनता का स्वप्न और शेखचिल्ली का फिसाना मात्र ही हमारा सारा प्रयत्न सिद्ध होगा ।

कन्या गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा है किन्तु मलेरिया ज्वर कभी २ दो चार पर आक्रमण कर ही लेता है । यह प्रथम ही अवसर है जब कि इस वर्षा की मौसिम में ब्रह्मचारिणियां इस कोठी में रही हैं । अभी तक परमात्मा की दया से देहरादून आदि में इन दिनों जो स्वास्थ्य बिगड़ती थी उस दशा से बची हुई हैं परमात्मा अपनी कृपा दृष्टि ही रक्खें ।

अवकाश

१५ अगस्त से अवकाश शुरू होगया है । कन्यायें प्रातः ४॥ बजे अध्यापिकाओं के साथ तथा रक्षा का उचित प्रबन्ध करके कुछ संख्या में वायु सेवनार्थ चली जाती हैं, कुछ कन्यायें ड्रिल तथा व्यायाम की क्रियायें और गतका, लाठी आदि का खेल, पैंतरे आदि सीख रही हैं । आज कल क्रीड़ा क्षेत्र में खूब चहल पहल रहती है, कोई झूला झूलती हैं, कोई कई प्रकार के खेल खेल कर छुट्टी का आनन्द लेती हैं ।

पठन पाठन

जिन श्रेणियों का पाठ पिछले दिनों ठीक न होसका था अथवा जो कई विषयों में कमजोर थीं, या अस्वस्थ रहने के कारण पीछे रह गई थीं वह इन दिनों क्रम बद्ध पढ़ाई भी करती हैं, और छुट्टी भी मनाती हैं ।

चर्खे और खड्डी तथा सिलाई आदि का कार्य्य भी ज़ोरों पर है ।

संरक्षकों को चेतावनी

कई संरक्षकों के पास शुल्क बहुत एकत्र हो जाता है तो उन्हें कई २ पत्र भेजकर याद दिलाया जाता है फिर भी वह ध्यान नहीं देते तो नियमानुकूल उन के पास वी. पी. भेजी जाती है। गत मास इसी प्रकार बहुत सी वी. पी. शुल्क सम्बन्धी धन लेने के लिये भेजनी पड़ीं, परन्तु खेद है कि स्वयं ही समय पर धन भेज देने का अपना कर्तव्य पालन करने के स्थान में कई संरक्षक महोदयों ने वी. पी. को-भी या तो इन्कार कर दिया या छुड़ाया नहीं, वापस आगई। यह बड़ी ही शोचनीय बात है क्योंकि धन बिना कोई कार्य्य चलता नहीं और जब शुल्क का थोड़ा धन नहीं दिया जासकता तो फिर और अधिक बढ़ जाने पर कैसे वसूल होगा? वी. पी. लौट आने पर हमारे लिये सिर्फ एक ही नियम और रह जाता है कि ब्रह्मचारिणी को घर भेजकर धन वसूल कर लिया जाय।

हमने अभी तक यह नियम चलाया नहीं है, परन्तु यदि संरक्षक महोदय यही व्यवहार रखेंगे तो वह समय दूर नहीं है जब कि उपरोक्त नियम का क्रियात्मक उपयोग शुरू होजायगा और फिर उन को शुल्क धन के अतिरिक्त ब्रह्मचारिणी के आने जाने और उस के साथ जो व्यक्ति जायगा उसका भी आने जाने का व्यय भी देना पड़ेगा, और ब्रह्मचारिणी की पढ़ाई भी खराब होगी। अतः उन सब संरक्षकों से कि जिनके पास शुल्क का कुछ भी शेष है-प्रार्थना है कि वह धन शीघ्र भेज देवें अन्यथा नियम चालू होने पर उनके साथ रियायत न की जा सकेगी।

कुल मे श्रावणी

श्रावणी के दिन ब्रह्मचारिणियों ने बड़ा यज्ञ किया और सभा की जिसमें उन्हें इस यज्ञ के सम्बन्ध में प्राचीन तथा राजपूती समय के व्यवहार के शिक्षाप्रद का व्याख्यान सुनाये गये और इसका महत्व बताया गया।

ऐतिहासिक स्थानों का दर्शन

छुट्टियों में ब्रह्मचारिणियां दिल्ली तथा आगरे के ऐतिहासिक स्थानों को देखेंगी। यहां पर किले के भीतर के मुसलमानी बादशाहत के समय के दृश्य, कुतुब की लाट, तथा अन्य दर्शनीय स्थान सभी श्रेणी देखेंगी किन्तु ७ म, ६ ष्ठ, ५ म श्रेणी की ब्रह्मचारिणियों को ताजमहल फतेपुरी सीकरी आदि स्थान भी दिखाये जाने का प्रस्ताव है। जहां यह उनकी ऐतिहासिक शिक्षा को उन्नत करेगा वहां चित्त का रंजन भी होजायगा।

विशेष में गये भाइयों का देश व धर्मानुराग

गत कई मासों से हम ज्योति के लिये तथा कन्या गुरुकुल के लिये ज्योति में अपील कर रहे हैं जिनको पढ़ कर हमारे भारत में रहने वाले आर्य्य सज्जन और देवियों के हृदय में कोई भाव उत्पन्न हुए हों इसका हमें प्रमाण नहीं मिला परन्तु पूर्वी अफ्रीका से एक भाई ने जो पत्र भेजा है उस से पता लगता है कि कुछ प्रवासी भाइयों के हृदय में अवश्य प्रभाव पड़ा है। हम उस पत्र के दो चार शब्द यहां उद्धृत करते हैं। वह भाई लिखित हैं:—

"......हमारा ज्योति और कन्या गुरुकुल से प्रेम है। प्रेम है इतना ही नहीं ये ही

गुरुकुल हमारा प्राण है, हमारा जीवन है, हमारी जायदाद है, हमारी जाति का, हमारे धर्म का इस से ही उद्धार है। आप जो दुनियां के खण्डों में बैठ कर काम करते हो सारे संसार में उस के तेज की किरण दिखाई देती हैं। तुम को अपने काम को सदैव दृढ़ करते जाना चाहिये। हमारा धर्म है कि हम लोग आपकी तन, मन, और धन से सहायता दें। आपकी ज्योति में हमने अपील पढ़ी है. एक दो महानुभाव से बात किया है और समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में बात करूंगा फिर जो परिणाम होगा आपको निवेदन करूंगा।" इत्यादि २।

यदि हमारे स्वदेश में रहने वाले आर्य्य भाई और बहिनों के दिलों में भी हमारी अपील कोई प्रभाव डालती तो कैसा होता! आज ही कन्या गुरुकुल और ज्योति की नीव पक्की हो जाती। परन्तु हमारी आर्य्य समाजें और आर्य्य भाई तो इतने उदासीन हैं कि कुम्भकर्णी नींद में पड़े इधर करवट ही नहीं बदलते। कन्या विचारियों के लिये इन के टके बाहर ही नहीं निकलते! हे प्रभो! इन्हें शीघ्र ही इस घोर निद्रा से जगादो और वह भी प्रवासी भाई की तरह सुबुद्धि धारण कर उनका अनुकरण करने लगें।

विचार प्रवाह

राजकीय मुद्रा कमीशन रिपोर्ट

राजकीय मुद्रा कमीशन-रिपोर्ट प्रकाशित हुई। दो दिन बाद ही भारत सरकार ने उसे बिल के रूप में उद्घोषित कर दिया और अब शिमला की चोटियों पर भारतीय-नियामक-सभा में पेश होचुकी है। स्वराज्य-दल वाले तथा अन्य सदस्य कुछ भी करें सरकार इसे पास कराने पर तुली हुई है। हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसे महत्व पूर्ण विषय पर इतनी शीघ्रता की क्या ज़रूरत है। यह ठीक है कि मुद्रा की समस्या दिन प्रति दिन पेचीदा और जटिल रूप धारण कर रही है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि एक साधारण नागरिक का इस विषय पर सम्मति प्रकट करना अनधिकार चेष्टा करना है। चाहे इन गूढ़ विषयों को भली प्रकार जानने के लिये उसके पास आवश्यक सामग्री हो या न हो तो भी मुद्रा-पद्धति के परिवर्तनों का व्यवहारिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव होने के कारण उसे अपनी सम्मति बनानी ही पड़ती है। लोक विश्वास किसी भी मुद्रा-पद्धति का एक आवश्यक स्तम्भ है, इसलिये कोई मुद्रा-सुधारक लोकमत की उपेक्षा नहीं कर सकता।

वर्तमान मुद्रा-पद्धति के अनुसार रुपयों और नोटों के बदले में विनिमय तथा निर्यात के लिये सरकार स्वर्ण-मुद्रा देने पर बाधित है, इसलिये इस पद्धति को स्वर्ण-विनिमय-पद्धति कहते हैं। इस कमीशन ने इस पद्धति को अक्रियात्मक और हानिकर ठहरा कर उसके स्थान पर स्वर्ण-धातु पद्धति (Gold Bullion

Standard) की सिफारिश की है। जिसके अनुसार रुपया तथा अन्य चिह्न-मुद्रा (Token currency) के बदले में स्वर्ण मुद्रा या सोने की मोहरें नहीं मिला करेंगी। अब प्रत्येक मनुष्य नोटों के बदले में मुद्रा दफ्तर से रुपये अथवा मोहरें ले आता है इस रिपोर्ट के अनुसार २३००० से कम के नोटों के बदले में रुपया लेने वाले के लिये मुद्रा-दफ्तर के दरवाजे बन्द होंगे। इससे अधिक वाले को नोट के बदले में सोने के डेले मिलेंगे, किन्तु स्वर्ण-मुद्रा उसे भी नहीं मिल सकेगी।

एक रुपये का नोट जो महायुद्ध काल में प्रारम्भ किया गया था और कुछ देर बाद देश की अवस्थाओं के प्रतिकूल समझकर बन्द कर दिया गया था अब फिर चलाया जायगा, और प्रजा को कम से कम चाँदी की मुद्रा और अधिक से अधिक नोटों का प्रयोग करने के लिये उत्साहना दी जायगी। इस विषय पर हम कलकत्ते के स्टेट्समैन की निम्नलिखित सम्मति के साथ सहमत हैं:—"जो लोग कुछ मास अर्ध-जल जीवन-व्यतीत करते हों उनके लिये पत्र-मुद्रा क्रियात्मक मुद्रा नहीं है। अपनी धोती के अञ्चल में जो कभी वर्षा से कभी पसीने से भीगती रहती है नोट बाँध रखने से वह नोट बहुत शीघ्र ख़राब हो जाते हैं। अतः ग्रामों के लिये धातु का सिक्का परमावश्यक है। उनको पत्र-मुद्रा के लिए बाधित करना एक प्रकार की डकैती होगी। क्योंकि उन नोटों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अवश्य ख़राब हो जाया करेगा और मुद्रा दफ्तर में वह कभी नहीं लौटेगा।"

विनिमय दर

कमीशन के बहुमत से एक रुपये ने लेवद एक शिलिङ्ग छै पैन्स विनिमय दर की सिफ़ारिश की है। प्रायः सब भारतीय--अर्थ-शास्त्रज्ञ सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के साथ सहमत हैं कि विनिमय दर यदि १ शि० ४ पैं० हो तो उसी में भारत का हित है। १ शि० ६ पैं० या १८ पैं० दर निश्चित् होने से हमारी आयात बढ़ जायगी अन्य देशों वाले अपने लोहे, कपड़े, तथा अन्य पक्के मालों को यहाँ सस्ते दाम पर बेचेंगे, जिसे हमारे देश के इन सब व्यवसायों को बहुत हानि पहुंचना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त ऊँचे विनिमय दर के कारण हमारी निर्यात कम हो जायगी। किसानों को—जो कुल आबादी का ८० % है—अवश्य हानि पहुंचेगी। विनिमय दर कम होने की अवस्था में यह ठीक है कि विदेशी माल का दर मँहगा होजायगा, किन्तु सामूहिक दृष्टि से यह निर्विवाद है कि भारत का हित १६ पैंस के विनिमय दर में है न कि १८ पैंस के।

इस निर्णय में कमीशन के सन्मुख दो उद्देश्य थे, एक तो भारतवर्ष को स्वर्ण-मुद्रा से इसलिये बंचित रखना चाहते हैं ताकि संसार के स्वर्ण के बाजार को नुकसान न पहुंचे। दूसरा उद्देश्य चीन तथा अन्य चाँदी मुद्रा वाले देशों के हितों की रक्षा है। यदि यहाँ स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित होजायँ तो बहुतसी चाँदी बाहिर देशों को बेचनी पड़ेगी। चाँदी सस्ती हो जायगी और इससे न्यूयार्क और चीन को हानि होने की सँभावना है। आश्चर्य की बात है कि भारत की मुद्रा पद्धति के निर्णय करने में अन्य देशों के हितों के लिये भारत के हित को कुचला जाता है।

लार्ड अर्विङ्ग की वक्तृता

लार्ड अर्विङ्ग हमारे नये बड़े लाट एक बड़े कुलीन, सुशिक्षित, और सज्जन अंग्रेज हैं। आप ने इस समय तक दो ही महत्व पूर्ण वक्तृतायें दी हैं। एक तो चैमस्फोर्ड क्लब में, और दूसरी भारतीय व्यवस्थापिका सभा की शिमले की प्रारम्भिक बैठक में। दोनों वक्तृताओं में आपने इस बात पर वल दिया कि हिन्दू मुसलमानों के झगड़े देश का सत्यानाश कर रहे हैं और उस की राजनैतिक उन्नति के रास्ते में बाधायें डाल रहे हैं। आपने यह भी कहा कि सरकार इन झगड़ों को बड़े दुःख से देखती है और वह निष्पक्ष रह कर और किसी जाति की धमकी में न आकर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी और पुरातन संस्था के प्रतिकूल किसी नई रीति को पकड़ कर किसी जाति पर अत्याचार करने का साधन न बनेगी। इसका आशय स्पष्ट शब्दों में यह है कि लार्ड अर्विङ्ग नौकरशाही की लाड़ली मुसल्मान जाति की खातिर दूसरी जातियों को उन के जन्म सिद्ध अधिकारों से सदा के लिये वंचित करने के लिये कोई नये राज नियम बनाने को उद्यत नहीं हैं।

बड़े लाट महोदय का आशय तो स्पष्ट है। और उनका हृदय भी शुद्ध है, और इस में कोई सन्देह नहीं कि उन जैसे सज्जनों के लिये जो पाशविक दृश्य भारत में दीखते हैं वह दुख दायक भी हैं; किन्तु यह स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि नौकर शाही—जिसके हाथ में वास्तविक अधिकार हैं, और जो अधिकार हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की अवस्था में संकट में पड़ जायंगे—के सारे सदस्य इतने धर्मात्मा हैं कि उनमें से कतिपय को यह देखकर विशेष आनन्द नहीं होता कि जबतक हिन्दू-मुस्लिम झगड़े रहेंगे उनकी स्थिति खतरे में न पड़ेगी। ऐसे भद्र पुरुष मुसलमानों का अनुचित पक्ष लेते हैं इसलिये नहीं कि उनको हमारे मुसलमान भाइयों से कुछ विशेष प्रेम है. अपितु इसलिये कि वह यह जानते हैं कि उन्हों ने अपने देश को अपनाया नहीं है, और उन में अज्ञान अधिक है इस कारण वह थोड़ी सी रियायत से ही वशीभूत हो बड़े स्वार्थों का वलिदान क्षणभंगुर स्वार्थ के लिये कर सक्ते हैं। यह सब कुछ सच है किन्तु यह स्वाभाविक है। दोष तो अपना है फिर दूसरों का गिला करने से क्या लाभ ?

मुस्लिम नेताओं को ईश्वर कब सुमति देंगे और वह कब समझेंगे कि छोटी २ नौकरियां और कौन्सिलों में दो चार सीट अधिक प्राप्त करने के लिये धर्म जैसी पवित्र वस्तु का दुरुपयोग करना पाप है, और यह कि हज़रत मुहम्मद साहब का कदापि यह मत न था कि खुदा दो हैं एक मुसलमानों का और दूसरा काफिरों का; और मुसल्मानों की नमाज़ तभी स्वीकार होगी यदि सब के मालिक खुदाबन्द ताला की संगीत के साथ स्तुति करने वाले हिंदुओं के सिर को वह तोड़ेंगे। हजरत ने स्वयं मस्जिद में बाजा बजवाया। मुसल्मानों की बरातें बाजा बजाती हुई मस्जिदों के पास से गुजरती हैं, मुहर्रम के जलूस मस्जिदों के पास से निमाज के समय पर भी गुजरते हैं, ढोल भी बजते हैं, और पीटने का भी शोर होता है, मोटरकारें गुजरती हैं, फौजी बाजा बजता है, बाजारों में नाच रंग होते हैं, मस्जिदों के पास

वेश्याओं के गृह भी हैं जहां से अश्लील गीतों की ध्वनि निमाजियों के कानों तक पहुंचती है। यदि यह सब कुछ ध्यानावस्थित मुसलमानों की समाधि को भंग नहीं करते तो आर्य्यों, सनातनियों, और सिक्खों के हरि-भजन में ही कौन सी विशेष खराबी है कि वह हमारे भाइयों के लिये असह्य है। धर्म के आदेशों पर न चलना घोर पाप नहीं जितना कि धर्म को संसारिक बीच स्वार्थ की सीढ़ी बनाना।

२५ जुलाई

२५ जुलाई का दिन आया और चला गया, किन्तु शासक-मण्डल और प्रजा के लिये एक चिरस्मरणीय शिक्षा छोड़ गया है। २५ जुलाई ने सिद्ध कर दिया कि आर्य्यसमाजी लोग यद्यपि शान्ति प्रिय 'नियम और व्यवस्था' के पोषक हैं, विनम्र हैं, तथापि यह किसी को न समझना चाहिये कि वे कायर, दब्बू और जी हुजूर हैं।

आर्य्यसामाजी किसी के अधिकारों पर हस्ताक्षेप नहीं करते, और किसी को दबाना नहीं चाहते किन्तु वह अपने जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षा करना भी जानते हैं और किसी से दबकर रहने का पाठ भी उनको कभी पढ़ाया नहीं गया। यह बात मुसलमानों को नोट कर लेनी चाहिये, क्योंकि उनमें से कतिपय यह समझ बैठे हैं कि हमारे गुण्डे सब को भयभीत कर रहे हैं।

२५ जुलाई के दिन भारत भर में सैकड़ों जलसे हुए जिन में हज़ारों आर्य, हिन्दू, सिक्ख, और जैनी एकत्रित हुए और सबने सम्मिलित शब्द उठाया कि नगरकीर्तन आर्य्यों के उत्सवों का आवश्यक अङ्ग है और यदि सरकार मुसलमानों से दबकर आर्य्यसमाज के धार्मिक उत्सवों को बन्द करेगी तो प्रजा उनको बन्द न होने देगी, और गवर्न्मेन्ट को यह न समझना चाहिए कि आर्य्यों के नगरकीर्तन का प्रश्न केवल १० लाख आर्य्यों से सम्बन्ध रखता है, अर्थात् उसको नोट कर लेना चाहिये कि इसका सम्बन्ध ७ करोड़ कम ३२ करोड़ से है। सरकार को चेतावनी मिल गई है, और शासकवर्ग और प्रजा के पारस्परिक प्रेमयुक्त सम्बन्धों के न बिगड़ने का एकही उपाय है और वह यह कि यह मुआमला प्रतिवाद के दर्जे से आगे न बढ़ने पावें, और नौकर शाही के कतिपय सदस्यों ने मुसलमानों से दबकर व उनकी अनुचित खुशामद के भाव से प्रेरित हो आर्य्य-समाज के साथ जो अन्याय की नीति ग्रहण की है उसको त्यागने के लिये उन्हें बाधित किया जावे। यदि ऐसा न हुआ तो प्रजा और सरकार का संघर्ष बढ़ेगा और भारतवर्ष के इतिहास का एक भयावह अध्याय लिखा जायगा। यद्यपि रक्त का एक बिन्दु भी न बहेगा, तथापि धर्म के लिये कष्ट सहने, बन्दिगृह में सड़ने, और बिना किसी पर हाथ उठाये के अपनी जान पर खेल जाने वाले सहस्रों युवक और युवतियाँ जेल में उतरेंगी और यह बलिदान जारी रहेगा जबतक कि सत्य और न्याय की पूर्ण विजय न हो जावेगी और धर्म की पताका फिर से लहराने न लगेगी।

आसाम कांग्रेस

अब यह निश्चय ही समझना चाहिये कि आगामी आसाम कांग्रेस के सभापतित्व के आसन को महाशय श्री निवास आयंगर सुशोभित करेंगे। आयंगर महाशय विद्वान हैं, वीर हैं, पराक्रमी हैं,

त्यागी हैं, स्वराज्यपार्टी की नैय्या के सहायक-कर्णधार हैं। उन में गुण तो बहुत हैं परन्तु कहीं कुदृष्टि इन गुणों को न लग जावे इस कारण विधाता ने उन की प्रकृति में एक दोष भी जड़ दिया है, और वह दोष है बुद्धि की अस्थिरता। किन्तु यह दोष ऐसा नहीं जिस को वर्त्तमान काल में भारी दोष कहा जा सके। जब से कांग्रेस ने महात्मा गांधी का प्रोग्राम त्यागा है तब से महासभा में स्थिर बुद्धि रही ही नहीं। महासभा त्रिशंकु की न्याईं गान्धी और तिलक के बीच में लटकती है। कभी उस का झुकाव गान्धी की ओर हो जाता है और कभी तिलक की। परिणाम यह हुआ है कि महासभा का कुछ भाग लटकता लटकता तंग आकर सीधा तिलक कैम्प में चला गया है और कुछ भाग लटका ही नहीं, और गान्धी कैम्प से बाहर निकला ही नहीं। महाशय आयंगर उस भाग के उपनेता हैं जो अभी लटक रहा है और जिस की लटक क्रियाओं को देखकर सभ्य संसार के पेट में बल पड़ रहे हैं। जब कांग्रेस का शासन ही अस्थिर बुद्धि वालों के हाथ में है तो फिर ऐसा प्रधान क्या बनाता जिसकी बुद्धि किसी एक पक्ष में हो गई होती!

गुरुकुल रजत जयन्ती

आर्यसमाज के विगत ५० सालों की क्रिया शक्ति का केन्द्र, आर्यसमाज के विगत २५ वर्षों का तीर्थ, आर्यसमाज की विगत चौथाई शताब्दी का एक उज्ज्वल आलोक की प्रभा से देदीप्यमान इतिहास, आर्यसमाज की मानस भावना लहरियों का स्रोत, और आर्यसमाज के विगत २५ वर्षों के जीवन, उत्साह, साहस और आशा का मूर्तरूप गुरुकुल विश्वविद्यालय-कांगड़ी रहा है और है। 'उद्धरेदात्मना त्मानम्' इस सचाई को मूर्तरूप देकर सम्पूर्ण भारत को मार्ग दिखाने वाला सर्व प्रथम गुरुकुल है। जाति का उद्धार स्वावलम्बन और जातीय शिक्षा के अन्दर है इसको गुरुकुल २५ वर्ष से कह रहा है। प्रतिदिन दिन दूनी और रात चौगनी वेग से जाति का शरीरिक ह्रास हो रहा है उसको रोकने के लिए एक मात्र साधन ब्रह्मचर्य्य है इसकी क्रियात्मक शिक्षा गुरुकुल पच्चीस वर्ष से दे रहा है। भारत से मौलिकता नष्ट हो रही है। बृटिश छाप के बिना न माल आदर पाता है, न विचार मान पाते हैं। इस गुलामी को नष्ट करने के लिए भारतीय बच्चों को भारतीय भाषाओं में शिक्षा देनी चाहिए। इस सच्चाई का जीता जागता नमूना गुरुकुल है। हमारी परम्परा, हमारी सभ्यता का स्रोत, संस्कृति की क्रमागत धारा और हमारे पूर्वजों की निधि संस्कृत के अगाध-ज्ञान-भण्डार में निहित है। पर उस पर एक बड़ी भारी शिला पड़ी हुई है, उस शिला को बगैर हटाये अमृत जल चखा नहीं जा सकता! योरोपियन विद्वानों ने प्रयत्न किया है पर वह प्रयत्न प्रो० मैकसमूलर के शब्दों में—"In fact there is still plenty of work left for those who come after us, for with all that has been achieved, we are on the threshold of a truly historical study of Indian philosophy and literature. Here also, we are still like children playing on the sea-shore and finding now a bi-pebble or a shell, what the great ocean of that ancient literature lies before us undiscovered and unexplored!—अर्थात्-वस्तुत: अगली सन्तति के लिए संस्कृत साहित्य और दर्शन के वास्तविक ऐतिहासिक अध्ययन के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र शेष पड़ा हुआ है क्योंकि हम लोग इसकी देहली पर भी नहीं पहुंचे हैं। यहां हमारी स्थिति वैसी ही है जैसे उस बच्चे की होती है जो रस्ता करके किनारे कंकड़ों और लिप्पियों से खेल रहा होता है। भारतीय साहित्य अभी तक अदृश्य और अन्वेषणीय बना हुआ है।"

गुरुकुल इस महत्वकार्य को विगत २५ साल से कर रहा है। आज गुरुकुल आर्य्यसमाज का मेरुदण्ड बना हुआ है। इस साल की समाप्ति पर उस आर्य्यसमाज का प्राणप्यारा गुरुकुल एक शताब्दी का प्रथम युग समाप्त कर देगा। इस अवसर पर गुरुकुल के योग्य स्नातकों ने रजतजयन्ती मानने का प्रस्ताव किया और इसको गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने स्वीकार कर लिया। रजत-जयन्ती को सफल बनाने के लिए रजत-जयन्ती समिति बन गई है जिसके मन्त्री प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तलङ्कार हैं। इस समिति के नीचे ५ उपसमितियां कार्य कर रही हैं। गुरुकुल के वर्तमान अधिकारी और कार्यकर्ता तथा ब्रह्मचारी रजतजयन्ती को सफल करने में कुछ न उठा रखेंगे, उन्हों ने अभी से तय्यारी करदी है। इनकी प्रत्येक क्रिया और हरकत इस समय रजत-जयन्ती को सफल करने के उद्देश्य से हो रही है। इस अवसर पर हम भारत सन्तान और विशेषतः आर्यसमाज से पूछना चाहते हैं कि, आपका भी कोई फर्ज गुरुकुल के प्रति है या नहीं? यह स्मरण रखियेगा कि यदि इस राष्ट्रीय यज्ञ जिसकी ज्वाला प्रतिदिन अभी तक प्रचण्ड ही हो रही है-की ज्वालाओं के अलोक में एक दिन के लिए भी आपकी उदासीनता के कारण भेद हुआ या उसकी शिखायें धूसर हुईं तो समझ लीजिए कि विविध प्रान्तों में प्रतिष्ठित राष्ट्रीय यज्ञ भी बन्द हो जायेंगे। यदि यह २५ वर्षों से निरन्तर जलती हुई स्वावलम्बन और आत्मविश्वास की टार्च का प्रकाश एक क्षण के लिए भी आपके सहयोग अभाव में बुझा या फीका पड़ा तो जान लो कि आपके हजार प्रयत्न भी जाति के अन्दर अगामी अधीशता की तह, स्वावलम्बन, आत्मविश्वास की लुप्त भावना को जागृत न कर सकेंगे। यदि आपकी उपेक्षा से मातृभाषा की उठी विजय वैजयन्ती झुक गई तो समझ लीजिए कि आपका अगामीं ५० वर्षों का अनवरत उद्योग भी इस अपमान कालिमा को न धो सकेगा। गुरुकुल को स्थिर तथा आर्थिक चिन्ता से मुक्त करने के लिये १० लाख की अपील श्री मुख्याधिष्ठाता जी ने की है। हमें विश्वास है कि समाज श्री मुख्यधिष्ठाता जी का यथा युक्त उत्तर देगा। शताब्दी के समय कोई निश्चित कार्य्य क्रम नहीं था। पर इस समय मजबूत नीव पर इमारत खड़ी हुई आपके सामने है। इसको अधिक कार्य क्षम, वर्षा की बौछारों और आंधी की थपेड़ों को जो हज़ारों वर्षों तक सह सके ऐसा स्थायी भव्य भवन बनाने के लिए, तथा इसके विस्तार के लिए और इसको सजाने तथा इस पर पच्चीकारी करने के लिये ताकि दूर २ से विद्वान

यहां आकर अपनी ज्ञान पिपासा शान्त कर सकें जैसा प्राचीन जमाने में चीनी विद्वान् नालन्दा में आकर किया करते थे, १० लाख रुपया कुछ भी नहीं है। हमें भरोसा है कि भारतीय जनता अपने इस गौरव पूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए कुछ उठा न रखेगी। यदि समाज ने गुरुकुल को उसके आदर्श तक पहुंचने में जितनी चाहिए उतनी मदद दी तो हमें विश्वास है कि वह समय दूर नहीं है जब कि भारत-प्रहरी हिमालय के सूर्य अरुणिमा से रञ्जित बर्फीली शुभ्र चोटियां और माता के कण्ठ में विहार करने वाली कण्ठा भरण समान गंगा की अभंग तरंग माला फिर एक बार पुकारेंगीः—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वे मानवाः॥

इस स्वप्न को सत्य सिद्ध करना आप के हाथ में है। मंगलमय भगवान आप के इस महान् कार्य में सहायक हों।

प्रकृति का प्रकोप--

डेन्मार्क झील के किनारे अमेरिकन नेवी का सब से बड़ा शस्त्रागार है। इसके बारूद खाने में बिजली गिरने से आग लग गई। इन अग्नि-ज्वालाओं ने ८ करोड़ डालर का माल हड़प लिया। कितने मनुष्य मरे और कितने घायल हुए इसकी निश्चित संख्या अभी ज्ञात नहीं हो सकी है। अग्निकाण्ड इतना भयानक था कि २५ मील तक इसकी आवाज आरही थी। आध मीलपर स्थित एक और शस्त्रागार था इसमें भी उस के कारण आग लग गई। कहा जाता है कि बिजली गिरने से इतनी बड़ी आग का लगना संसार के इतिहास में पहिली घटना है। बारूद खाने की आग की कल्पना कर जी थर२ कांपता है। मनुष्य जाति को नाश करने के लिये यहां सामग्री इकट्ठी की गई थी पर प्रकृति मनुष्य से भी प्रबल है, एक क्षण में ही उसने सारे मन्सूबों को धूल में मिला दिया। प्रकृति के इस भयंकर कोप से डर कर मानव समाज क्या इस मार्ग को छोड़ देगा? क्या विनाशक यन्त्रों का बनाना और संहारक सामग्री का इकट्ठा किया जाना बंद हो जायगा? क्या मानव समाज इससे कोई शिक्षा लेगा? नही, मानव समाज पुरानी लीक पर चलता जायगा। कमसे कम समय में अधिक से अधिक संख्या में संहार करने वाली मशीनों के आविष्कार में बुद्धि लगी ही रहेगी। प्रकृति का भयंकर-रूप-प्रदर्शन मानव-समाज को अपने निश्चित पथ से विचलित नहीं कर सकता। मानव समाज पागल हुआ हुआ विनाश के मार्ग पर चला जा रहा है और समझ रहा है कि प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करने जा रहा हूँ।

अमरीका की सम्पत्ति—

अमरीका इस समय सब राष्ट्रों से उन्नत देश कहा जाता है। इसका राष्ट्रीय वैभव दूसरों के लिए ईर्षा की चीज़ हो रही है। संसार का महाजन आज अमरीका है। पहिले अमेरिका से योरप की ओर धन का प्रवाह प्रवाहित होता था पर अब प्रवाह का रुख बदल गया है। आज अमेरिका दूसरों का कर्ज़दार नहीं है। पर योरोपियन राष्ट्र उससे अपने कर्ज़ को कम करने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। अभी 'फेडरल ट्रेड कमीशन' ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है

जिससे पता चलता है कि अमेरिका का राष्ट्रीय धन सन् १९२२ में ३५३,०००,०००,०००, डालर—३॥ खर्व डालर से ऊपर अमेरिका की सम्पति है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका निवासियों की संख्या ११ करोड़ है। अर्थात् प्रत्येक अमरिकन के पास १९२२ में ३,२०० डालर थे। अमेरिकन पत्र गर्व से कहते हैं कि संसार के इतिहास में इससे पूर्व और किसी देश के एक आदमी को औसतन सम्पत्ति नहीं हुई। संसार में दूसरे नम्बर पर धनाढ्य देश वृटिश साम्राज्य है, पर इसकी सम्पत्ति का अनुमान १३०,०००,००० डालर किया गया है जो अमेरिका की सम्पत्ति से आधे से भी कम है। हिसाब लगाया गया है कि इस हिसाब से जब कि १९२२ में ३५३,०००,०००,००० डालर है तो १९२३ में ७०,०००,०००,००० डालर सम्पत्ति का अनुमान किया गया है। १९१२ से १९२२ तक राष्ट्रीय सम्पत्ति की आय वृद्धि ७२% हुई है। यदि डालर की क्रय शक्ति बदलती रही है इस कारण वास्तविक वृद्धि १६% हुई है। और जन संख्या की वृद्धि इस काल में १५% हुई है। १९२२ की ३५३,०००,०००,०००, डालर सम्पत्ति को आधार मानकर हिसाब लगाया गया कि १९२५ में अमेरिका की राष्ट्रीय सम्पति ५५०,०००,०००,०००, डालर होगी।

यह भी हिसाब लगाया गया है कि यह धन किस स्रोत से किस मात्रा में प्राप्त हुआ है। रिपोर्ट कहती है कि कृषि से १८% कारखाने और खानों से १४%, रेल और सार्वजनिक कार्यों से १२%। आय की स्रोतों पर स्वामित्व किस प्रकार है? इस पर रिपोर्ट कहती है कि १९२२ में उन्नतजल शक्ति के १/३ भाग पर ६ कम्पनियों का प्रभुत्व था। बिटुमन्स कोल चौथाई भाग पर आम कम्पनियों का स्वामित्व था। निस्कालिन एन्थेसाइट कोल के पौन भाग पर ३० कम्पनियों का अधिकार था। कच्ची लोहे की धातु के आधे भाग पर दो कम्पनियों का, ताम्बे के लगभग चौथाई भाग पर चार कम्पनियों का स्वामित्व था। पेट्रोलियम के लगभग एक बटा आठ भाग पर ३० कम्पनियों का सन् १९२२ में स्वामित्व था।

हम पहिले कह चुके हैं कि १९२३ सन् के लिए अमेरिका की राष्ट्रीय सम्पत्ति का अनुमान ७०,०००,०००,०००, डालर के लगभग किया गया है। इस की प्राप्ति के स्रोत इस प्रकार है। ४२% कारखनों और खानों से, तथा रचनात्मक व्यवसायों से, १४% के लगभग खेती से और १२% व्यापार से अनुमान किया गया है। शेष ३२% के लिए न्यूयार्क का न्यूज़ अखबार कहता है, कि यह हम लोगों में बांट दो।

पाठक इस पर के वर्णन से अमरीका की राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक स्थूल चित्र बना सकते हैं। और इससे अपनी तुलना कर देख सकते हैं कि क्या कारण है कि सोने की चिड़िया आज दाने दाने के लिए मोहताज है।

सावधान

सब आर्य सज्जनों एवं देवियों को सूचित किया जाता है कि वह संस्कार चन्द्रिका का अवैदिक नकली संस्करण कम दाम देकर न खरीदें। परन्तु हमेशा खरीदते समय याद रखें कि "संस्कार चन्द्रिका का वैदिक संस्करण" श्रीमान् राज्य-रत्न आत्मारामजी अमृतसरी ने लिखा है। वह वैदिक प्रेस अजमेर तथा बड़ौदा का छपा देखें और पृष्ठ संख्या भी उसकी ८५० से अधिक है। मूल्य उसका ३॥) था परन्तु अब २॥) कर दिया है। इस में प्रत्येक आर्य को शास्त्रोक्त १६ संस्कार करने की विधि तथा विज्ञानपूर्ण तर्कयुक्त व्याख्यान मिलेगा। इसमें आधुनिक नव से नये युरोप, अमरीका के आविष्कार कर्त्ताओं के प्रमाणों से बताया गया है कि किस प्रकार एक दम्पति पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। किन नियमों इत्यादि का पालन आवश्यक है। विस्तृत विषय सूची मुफ़्त मंगवालें।

पृष्ठ सं० ८५० वज़न एक सेर पक्का। मूल्य २॥) रु. डाक व्यय ।॥) बढ़िया जिल्द वाली का मूल्य ४)।

वैदिक साहित्य के उच्चकोटि के ग्रंथ

ले०—श्री राजरत्न आत्माराम जी अमृतसरी

संस्कार चन्द्रिका

शताब्दी संस्करण महर्षि दयानन्दप्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या। संस्कृत का अर्थ व्याख्या तथा आधुनिक युरोपीय एवं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा वैदिक संस्कारों की फिलासोफी का अपूर्व दिग्दर्शन मूल्य २॥)

सृष्टिविज्ञान २)

इसमें सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी जो वर्णन पुरुषसूक्त में दिया गया है वही यथार्थ और वैज्ञानिक है। इसमें डारविन मत आलोचना तथा सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों का मंडन है। अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है। मू० २)

दिग्विज्ञान

मनसा परिक्रमा मंत्रों की अपूर्व वैज्ञानिक सुसंगत अनुसन्धानपूर्ण व्याख्या सचित्र पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। प्रताप उर्दू की सम्मति महर्षि दयानन्द का दावा था कि वेदमन्त्रों के अर्थ तीन तरह के होते हैं। मास्टर आत्माराम जी ने इस किताब में संध्या के मनसा परिक्रमा के छ मन्त्रों के वैज्ञानिक (Scientific) अर्थ किए हैं। किताब निहायत दिलचस्प और सरल है। इसमें दिखाया कि किस तरह संध्या के इन छः मन्त्रों के अन्दर सायंस कूट कूट कर भरी है। इस किताब को पढ़कर सचमुच इन्सान समझने लगता है कि दरिया कूजे में बन्द है। स्वाध्याय के लिये यह किताब निहायत ही उपयोगी साबित हुई होगी। पृ० सं० २५० मूल्य १॥) अन्य पुस्तकों के लिये 'विज्ञापन' मंगवाइए मुफ्त मिलेगा।

मिलने का पता:—
जयदेव ब्रादर्स बड़ौदा

स्त्रियों और बच्चों के लिये सुन्दर वस्त्र

हमारे यहां स्त्रियों और बालकों के उपयोगी साड़ियाँ जाकटें और कुरते बहुत ही खूबसूरत फैंसी बनावट के मिलते हैं। एक बार मंगाकर देखिये नापसन्द हों या महंगे जचें तो फौरन वापिस भेज कर कीमत वापिस मंगा लीजिये। की० साड़ी बेल रेशम की किनारीदार ७) ८) ९) १०) १२) जरी किनारी १५)

बाल बढ़ाने वाला तैल—इसके लगाने से बाल बढ़ते हैं, काले रहते हैं, और बालों का उखड़ २ कर गिरना बन्द होता है की०॥)

बच्चों के गले के लाकिट-ये लाकिट दांत सुगमता से निकलने के लिये प्रसिद्ध हैं की०॥।)

बालसुधा-गोद के बच्चों को मोटा ताज़ा और तन्दुरुस्त बनाने की मीठी दवा कीमत फी शी० ।॥)

महासुगंधित तैल—माथे को सुगंधित और ठंढा करने वाला तैल कीमत १)

ब्रासलेट वाच।

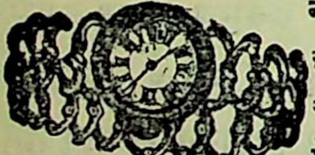

नं० ३२ यह बिल्कुल ही नई फैशन की चीज़ है, इसके बीच में एक छोटी सी जेबघड़ी है। और इधर उधर चूड़ियां ऐसी तर्ज से बनाई गई हैं कि चाहे जैसे बड़े हाथ में पहिना लीजिये ठीक नाप की हो जावेगी। हिन्दुस्तानी बड़े घरों की स्त्रियां भी इसे बहुत पसन्द करती हैं क्योंकि घड़ी की घड़ी और गहने का गहना है पीतल पर सोने की गिलट वाली का दाम ८) जिसके चारों तरफ नग जड़े हैं दाम १०) रु०।

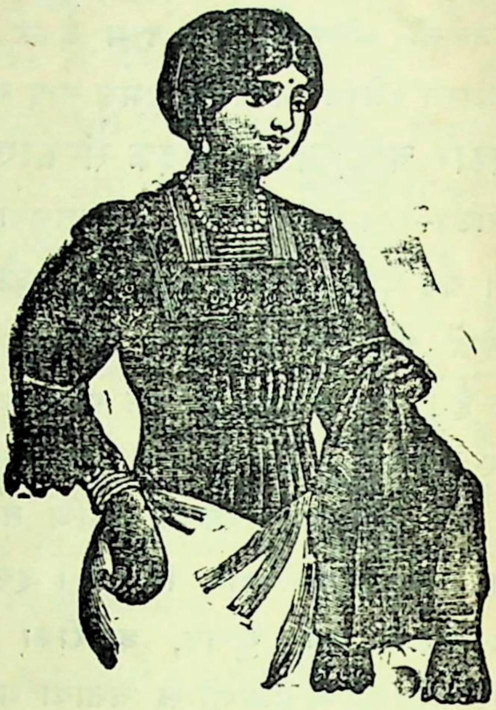

बालकों के फैंसी कुरते—इनकी सुन्दरता देखने ही से सम्बन्ध रखती है, हर एक रङ्ग के क़ीमत ४) ५) ६) ७) ९) १०) यही जरी के १५) २०) २५)

बोडी या जाकेट—जनानी चाहे जिस नाप की क़ीमत ४) ५) ६) यही जिस में सुनहरी काम हो रहा है ८) १०) १४) २०) २५) ३०)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूची पत्र मंगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—

सुख-संचारक कम्पनी
मथुरा

Any Shape Design Number **is Given for**

Rs. 7 Only.

22 Ct. Rolled gold wrist watches.

Original Price Rs 14

Half Price Rs. 7

Only for one month. We are giving this offer for the New Year. All watches are, given at half Prices. The best movement and with perfect mechanism, looks beautiful to wear and handy. All wrist watches are guaranteed. Any Shape, Design or any Number is given with superior Silk strap free.

Sale Price Rs. 7 only. Guaranteed for ten years.

ONLY A FEW MORE. WRITE NOW.

Apply to:—**SWAN HOUSE, P. B. 508, P. T. MADRAS.**

FREE! FREE!!

"C" Regd. TIME PIECE given FREE

TO ANY ONE

ordering for our "Tara Lever" 18 caret Rolled gold Pocket Watch with beautiful engravings on the back and guaranteed for five years, duly stamped on the dial, by the manufacturers, costing **RUPEES FIVE,**

We give as a **Free Offer,** our "C" Regd. Time Piece.

Write now. This Offer is Limited.

Can be had from—

CAPTAIN WATCH CO., P. B. 265, MADRAS.

अपने बच्चे को फुटबाल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताज़ा और खुश मिज़ाज होगा यदि तुम हम से उसके लिये फुटबाल ख़रीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे यहाँ है। जल्द आर्डर भेजिये।

बी० डी० गुप्ता, एन्ड को०

पच कुई रोड,
दिल्ली।

महारथी प्रेस, कृष्णा बिल्डिङ्ग, देहली में छपा और बा० रमेशचन्द्र प्रिन्टर व पब्लिशर ज्योति कार्यालय दिल्ली ने प्रकाशित किया।

Regd, no. L. 1240

वर्ष ७] मार्गशीर्ष पौष १९८३ दिसम्बर, जनवरी, १९२६-२७ [खण्ड ७; संख्या ८-९

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी० ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची

क्रम सं० लेखक पृष्ठ
१ प्रार्थनापंचक (कविता) ले० जगन्नारायण देव शर्मा कविपुष्कर रामनगर ३३९
२ वैदिक यज्ञोंका अहिंसामय स्वरूप ले० पँ० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार ३४०
३ हिन्दुओं के देशानुराग (ऐतिहासिक विवेचन) ले० श्री इन्द्र विद्यालङ्कार ३४३
४ पद्मिनी (कविता) ले० कु० पद्मावती देवी ३४७
५ अपराधी-सँकलनकर्त्ता श्रीकृष्ण पांडे ३४८
६ स्त्रियों में स्वाधीनताका आन्दोलन-ले० श्री भीमसेन विद्यालङ्कार सम्पादक आर्य ३५५
७ देवसमाज की शिक्षा-ले० श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आचार्य उपदेशक महाविद्यालय लाहौर ३५९
८ आर्तनाद (कविता) ले० पँ० जगन्नारायण देव शर्मा "कविपुष्कर" ३६४
९ मैं क्या दुखी हूं ? ले० श्री सिद्धगोपाल जी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ ३६४
१० स्वास्थ्यरक्षा-ले० श्री हरिशरण जी विद्यालङ्कार ३६५
११ आत्मिक उन्नति के साधन-ले० श्री० जगदीशचन्द्र शास्त्री ३७१
१२ वाँसुरी (कविता) ले० श्री चमूपति जी एम० ए० आर्य सेवक ३७६
१३ आर्यसमाज की अवनति-श्री हरिशरण जी मराल मेरठ। ३७६
१४ प्रकाशका आवरण ले० श्रीमती सीतादेवी ३८०
१५ मोहिनी के आँसू-ले० श्रीयुत सन्तलाल जी दधिमथ वैद्यराज ३८८
१६ वैज्ञानिक संसार ३९६
१७ हमारी मंजूषा ४००
१८ वनिताविनोद (स्त्रीजगत) ४०२
१९ संस्कृत साहित्य में स्त्रियों का स्थान अनुवादिका कु० सुशीलादेवी अष्टम श्रेणी कन्यागुरुकुल इन्द्रप्रस्थ ४०४
२० कलाकौशल्य ४०८
२१ गृहप्रबन्ध ४०९
२२ दुराचार का घोर परिणाम (गल्प) ले० श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी मेरठ ४११
२३ विचार प्रवाह ४१५

ग्राहकों के लियेः—

(१) ज्योति प्रति अँग्रेजी मास की १५ तारीख ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारतके लिये डाक व्यय सहित इसका वार्षि
मूल्य १ वर्ष के लिये ४॥) है
६ मास के लिये २॥) है।
विदेश के लिये इसका डा. व्यय सहित वार्षि मूल्य ६) है।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है

(३) एक प्रति का मूल्य ॥ है। पुरानी प्रतियां सब नहीं मिलतीं जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥ से कम नहीं होता। नमू मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रैल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियां दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर ग्राहक नम्बर न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कारड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनीआरडर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहकों को और हमें दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी ग्राहकगण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाकघर से जो उत्तर आये उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अङ्क के निकलने से १५ दि पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्र बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार
मैनेजर—
ज्योति' कोठी नं. ४ दरियागंज देहली
के पते पर होने चाहियें।

ज्योति
ओ३म् व्यवात्
ज्योतिरभूदप त्वत्त-
मों अक्रमीत्॥

वर्ष ७ } मार्गशीर्ष तथा पौष १९८३
दिसम्बर, जनवरी १९२६, १९२७ई० { संख्या ८,९

प्रार्थना-पंचक

(ज्योति के लिये लिखित)

लेखक—पं० जगन्नरायण देव शर्मा कवि पुष्कर, विशारद-साहित्य शास्त्री रामनगर।

१

आर्य कुलों का फिर जय हो !
सब कुरीतियों का क्षय हो ॥
प्रभो ! विनय पर ध्यान करो !
सत्साहस—वर-दान करो ॥

२

अरि—समाज का मान कषे !
ऋषियों का परिवार बचे ॥
सतियों का सद्धर्म रहे !
वैदिकता—सत्कर्म रहे ॥

३

बाल द्वेषियों के न बनें !
आदर्शों के तत्व सनें ॥
युवकों में शुभचाह बढ़े।
वृद्धों का आलस्य कढ़े ॥

४

सब वर्णोंमें प्रेम रहे !
प्रति दिन कुशल-क्षेम रहे ॥
सदाचार का मान करें !
विविध वस्तु का ज्ञान करें॥

५

एक सूत्र में सदा बंधें !
स्वत्व—ध्येय में युक्ति सधें॥
करो दयामय! यही दया !
और न कोई कथन नया ॥

वैदिक यज्ञों का अहिंसामय स्वरूप ।

लेखक—पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी

वैदिक नामपद सार्थक हैं, निरर्थक नहीं। वेदों में भिन्न २ वस्तुओं के जो नाम मिलते हैं वे अपने धात्वर्थों का त्याग नहीं करते। उदाहरण के लिये पाठक पङ्कज शब्द पर विचार करें। पङ्कज शब्द का अर्थ है-कमल। यह पङ्कज शब्द दो हिस्सों से बना है। एक "पङ्क" और दूसरा "ज"। "पङ्क" का अर्थ है "कीचड़" और "ज" का अर्थ है "पैदा हुआ"। अतः पङ्कज का अर्थ है-कीचड़ से पैदा हुआ पदार्थ। कमल यदि कीचड़ से पैदा न हुआ तो उसे पङ्कज शब्द से कहना वैदिक शब्द-शास्त्रकी दृष्टि में सर्वथा अनुचित होगा। वैदिक दृष्टि में कमल तो तभी पङ्कज शब्द से कहा जा सकता है जब कि कमल में "पङ्क से पैदा होना" रूपी धर्म विद्यमान हो। लोक में निर्धन को धनीराम, अन्धे को नयनसुख तथा नीचदास को भी जगन्नाथ के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु वैदिक दृष्टि में वस्तुओं के नामकरण का यह ढङ्ग किसी प्रकार भी स्वीकृत नहीं। वैदिक दृष्टि में धनी का नाम धनीराम, आँखों वाले का नाम नयनसुख तथा मुख्यरूप से परमात्मा का और गौणरूप से राजा का नाम जगन्नाथ सम्भव है।

उपरि लिखित सिद्धान्त के अनुसार अब हमें देखना चाहिये कि वेदों में यज्ञ के जो २ पर्याय वाची शब्द आते हैं, उनके धात्वार्थों द्वारा "पशुयज्ञ" विषय पर कोई प्रकाश पड़ता है या नहीं। यज्ञ के पर्याय वाची नाम निम्न लिखित हैं, जोकि निघण्टु में पठित हैं। यथाः—

यज्ञः, वेनः, अध्वरः, मेघः, विदथः, नार्यः, सवनम्, होत्रा, इष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः, इन्दुः, प्रजापतिः, धर्मः ॥ निघं० अ० ३।खं०१७॥

इनमें से "अध्वर, देवताता और प्रजापति" इन नामों पर विचार करना अत्यावश्यक है।

अध्वर-अध्वर शब्द की निरुक्ति (derivation) में निरुक्तकार यास्क मुनि लिखते हैं कि-"अध्वर इति यज्ञ नाम। ध्वरतिहिंसा कर्मा, तत्प्रतिषेधः" ॥ निरु० अ० १ ॥ ख० ८ ॥

निरुक्तकार के इन शब्दों की व्याख्या श्री देवराज यज्वा अपने निघण्टु भाष्य में निम्न लिखित वाक्य द्वारा करते हैं। तथाः-

"ध्वरतेर्वध कर्मणः, 'पुंसि संज्ञायांघः"
(अष्टाध्या० ३।४।११८)
नञ्पूर्वः। ध्वराहिंसा, तदभावो यत्र"
॥ निघं० १।१७॥

इस व्याख्या का अभिप्राय यह है कि "अध्वर" शब्द दो हिस्सों से बना है। एक "अ" और दूसरा "ध्वर"। "अ" का अर्थ है-निषेध, और "ध्वर" का अर्थ है-हिंसा करना या वध करना। अतः अध्वर का अर्थ हुआ कि जिसमें हिंसा या बध न किया जाय। इस प्रकार यज्ञ का नाम "अध्वर" होना ही इस सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है कि यज्ञ में हिंसा कदापि न होनी चाहिये। जिसमें हिंसा है वह यज्ञ ही नहीं। इसलिये अध्वर शब्द, अपने निर्वचन द्वारा, स्पष्टरूपसे निर्देश कर रहा है कि यज्ञ में पशुवध सर्वथा निषिद्ध है। यदि यज्ञ में पशु का बध करना वेदों को अभीष्ट होता तो वैदिक साहित्य में

यज्ञ का नाम अध्वर कभी भी न होता। यज्ञ में पशुवध की विधि की अवस्था में तो यज्ञ का नाम "ध्वर" अथवा "सध्वर" होना चाहिये था नकि "अध्वर"।

अध्वर शब्द के निर्वचन में यास्कमुनि के शब्द नितान्त सरल और स्पष्ट हैं। उनमें हेरफेर अथवा वाद विवाद की कोई गुञ्जायश नहीं। यास्कमुनि के निर्वचन के अनुसार अध्वर शब्द स्पष्ट आज्ञा देरहा है कि यज्ञ में कदापि पशुवध न करो। तोभी देवराज यज्वा का, यज्ञ में पशुवध-विषयक परम्परागत पौराणिक निरुढ़भाव, इस स्थल में, उसे एक नई कल्पना के करने में बल पूर्वक प्रेरणा करता है। वह कल्पना यह कि यद्यपि अध्वर शब्द स्पष्ट दर्शा रहा है कि यज्ञ में हिंसा न करनी चाहिये, तोभी इससे यज्ञ में पशु बध का निषेध नही होता। क्योंकि यज्ञ में पशुओं के बध करने से पशु सीधे स्वर्ग में जाते हैं। अतः यज्ञ में पशुओं का बध हिंसारूप नहीं,अपितु यज्ञ में उनका बध उन्हें स्वर्ग पहुंचाने वाला है। अतः याज्ञिक लोग, यज्ञ में पशुओं के बध द्वारा पशुओं पर परम उपकार करते हैं, नकि उनकी हिंसा। चूंकि वे लोग पशुवध द्वारा, पशुओं को नीच गति से उठाकर उच्चगति पर पहुंचाते हैं। इसी सम्बन्ध में वह एक श्लोक का भी प्रमाण देता है, जो कि निम्न लिखित है। यथाः—

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्य्यञ्चः पक्षिणास्तथा।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताःप्राप्नुवन्त्युच्छ्रितां गतिम्॥

इसका अभिप्राय यह है कि ओषधियाँ, पशु, वृक्ष, तिर्यक प्राणी तथा पक्षी यदि यज्ञके लिये मारे जांय तो ये उच्चगति को प्राप्तहोते हैं। न जाने देवराज यज्वा भारी पंडित होते हुए भी यास्क मुनि के असन्दिग्ध तथा अतिस्पष्ट शब्द, परम्परागत पशुबध विषयक निरूढ़ भाव का मूलोच्छेद क्यों नहीं कर सके? सत्य है कि परम्परा से प्राप्त दृढ़ संस्कार अति प्रबल होते हैं। युक्ति और बुद्धि का तेज़ कुठार भी दृढ़ संस्कार की चट्टान पर आकर कुण्ठित हो जाता है। देवराज यज्वा की इस नई कल्पना की आलोचना मैं अपने शब्दों में करता हुआ, यहां केवल चार वाक्यों के एक उस प्रसिद्ध श्लोक को पाठकों के सन्मुख रख देना आवश्यक समझता हूं, जिसमें इस कल्पना का उत्तर बहुत संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित शब्दों में दिया है। वह श्लोक निम्न लिखित हैं। यथाः—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्नहिंस्यते॥

इसका अभिप्राय यह है कि यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग में जा सकता है, तो यजमान (यज्ञ करने वाला), उस यज्ञ में अपने पिता का ही बध क्यों नहीं करता, ताकि वह स्वर्ग में चला जाय।

इस प्रकार देवराज यज्वा की, यज्ञ में पशुविषयक कल्पना, सर्वथा युक्ति शून्य प्रतीत होती है।

देवताता-यज्ञ का दूसरा नाम "देवताता" भी है। देवताता शब्द दो हिस्सों से बना प्रतीत होता है—देव और ताता। देव का अर्थ है देवता। ताता शब्द "तन" धातु से बना हुआ प्रतीत होता है। तन् धातु का अर्थ है—विस्तार। यथाः—'तनु विस्तारे।" अतः देवताता का अर्थ है—"देवों के लिये विस्तृत किया गया"। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यज्ञ केवल देवताओं के ही उद्देश से किया जाता है, न कि असुर और राक्षसों के उद्देश से। अर्थात् यज्ञ में जो घी आदि सामग्री होती है, उसकी आहुति देवताओं के नाम से दी जाती है, न कि असुरों और राक्षसों के नाम से। अग्नये स्वाहा, सोमायस्वाहा, प्रजापतये स्वाहा—इत्यादि वचनों में अग्नि, सोम तथा

प्रजापति आदि देवताओं के नामों से ही अग्नि में आहुति दी जाती है। वेदों में "असुराय स्वाहा, राक्षसाय स्वाहा—ऐसे वाक्य नहीं हैं। इससे प्रतीत होता है कि यज्ञीय आहुतियों के अधिकारी केवल देव ही हैं न कि असुर तथा राक्षस।

अब देखना चाहिये कि वेदों में देवताओं के भोजन के सम्बन्ध में क्या लिखा है। यदि तो वेदों में लिखा हो कि देव मांस भी खाते हैं, तब तो यह भी सिद्ध हो सकेगा कि यज्ञ में मांस की आहुति देना भी वेदोक्त ही है। परन्तु वेद में यह कहीं नहीं लिखा कि देव मांसभक्षक भी हैं। वेद में देवों के भोजन के सम्बन्ध में लिखा है कि "देवा आज्यपाः"१ इसका अभिप्राय यह है कि देव घी के पीने वाले हैं इसी लिये वैदिक सिद्धान्तमें घृताहुती२ पर ही अधिक बल दिया गया है। यदि यज्ञ में मांसाहुति वेद को अभीष्ट होती, तो चूंकि यंज्ञ देवताओं के लिये विस्तृत किया जाता है, तब देवों के भोजन में मांस का गिनाना भी वेद के लिये आवश्यक होता। चूंकि वेदोंमें देवताओं के भोजन में मांस कहीं भी गिनाया नहीं गया, इससे प्रतीत होता है कि वेद को यज्ञ में मांसाहुति अभीष्ट नहीं। वेदों में मांस और रुधिर आदि अन्य राक्षसोंके भोज्य पदार्थों में तो अवश्य गिनाये हैं। वेदों में "रक्तपाः""मांसादः"'पिशाचाः "क्रव्यादाः—आदि नाम राक्षसों के लिये पठित हैं। रक्तपाः = रक्त अर्थात् खून के पीने वाले। मांसादाः = मांस के खाने वाले। पिशाचाः—पिश अर्थात् शरीर के अवयवों के खाने वाले। क्रव्यादाः(३)·हिंसा द्वारा प्राप्त मांस के खाने वाले। यतः "देवताता" शब्द यह सूचित कर रहा है कि यज्ञ देवताओं के लिये विस्तृत होता है न कि राक्षसों के लिये, अतः यज्ञ में देवताओं के ही भोजन की आहुति होनी चाहिये नकि राक्षसों के भोजन की। अतः देवताता शब्द से भी यही सूचित होता है कि यज्ञ में पशु बध न होना चाहिये।

प्रजापति—यज्ञ का तीसरा नाम है, प्रजा·पति का अर्थ है—उत्पन्न प्राणी। और पति का अर्थ है—रक्षक। संस्कृत में राजा का नाम राष्ट्रपति भी है। वह राजा जो कि राष्ट्र पर अत्याचार करता है राष्ट्रपति के नाम से पुकारे जानेके योग्य नहीं। वही राजा राष्ट्रपति के नाम से पुकारा जाना चाहिये जो कि राष्ट्र की रक्षा सम्यक् प्रकार से करता हो। इसी प्रकार यज्ञ का नाम प्रजापति है। यज्ञ यदि स्वयं ही पशु-प्रजा का भक्षक हो तो यज्ञ का प्रजापति नाम ही निरर्थक हो जाय। अतः यज्ञ का नाम प्रजापति होना ही सिद्ध कर रहा है कि यज्ञ में पशुबध न करना चाहिये।

---

(१) यजुर्वेद २१।४०५८ ॥

(२) शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि "चरुर्वै देवानामन्नम्"। अर्थात् चरु देवताओं का अन्न है। चरु का अर्थ है चावल। इसलिये यज्ञ में चावल की भी आहुति होनीचाहिये।

(३) क्रव्य शब्द "क्रुवि" धातु से बना है, जिस का अर्थ है—हिंसा।

(४) वेदों में परमात्मा का नाम पशुपति भी हैं। जिस का अर्थ है—पशुओं की रक्षा करने वाला। वेद परमात्मा की वाणी हैं। परमात्मा वेदों में यदि यज्ञीय पशुबध की आज्ञा दे तो वह पशुपति के नाम से कैसे पुकारा जाय।

हिन्दुओं के देशानुराग

ऐतिहासिक विवेचन

लेखक-श्रीयुत इन्द्र विद्यालङ्कार

जातीयता का सब से प्रथम तत्व देशानुराग है। जिस देशके व्यक्तियों में अपने देश से प्रेम नहीं, वह कभी एक सङ्गठित जाति नहीं कही जा सकती। मिलने इसी तत्व पर जातीयता निर्माण में सब से अधिक बल दिया है। यह प्राय: पाश्चात्य लेखकों से सन्देह प्रगट किया जाता है कि क्या हिन्दुओं में सच्ची जातीयता का कभी आविर्भाव हुआ था? क्या वे अपने को एक जाति अनुभव करते थे? संक्षेप में क्या वृटिशराज्य से पूर्व अथवा मुस्लिम शासन से पूर्व हिन्दू एक भारतीयता के सूत्र में बद्ध थे या नहीं?

इन सब का सन्तोषप्रद उत्तर तभी मिल सकता हैं जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से इस तत्व पर कुछ प्रकाश डालें कि क्या हिन्दुओं में स्वदेशानुराग था? क्या वे अपनी संकुचित राष्ट्रीयता अथवा प्रान्तीयता से अधिक प्रेम करते थे या उदार भारतीयता से?

हम महाभारत या महाभारत से पूर्व हिन्दूभारत के विषय में कुछ नहीं लिखना चाहते। रामायण या महाभारत के उद्धरण इतनी अनिश्चितता को पैदा करने वाले हैं कि हम किसी भी परिणाम पर नहीं पहुंच सके हैं। गान्धार, द्रुपद, कुरु, अदि भिन्न २ राष्ट्रों को नाम व लिपी हमे किसी भी प्रकार से यह सिद्ध करने मे सहायता नहीं देती कि महाभारत कालीन भारत मे एकता या जातीयता थी। और इस काल का इतिहास भी इतना अपर्य्याप्त है कि हम स्थिर ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर विचार नहीं कर सकते हैं।

बौद्ध समय के साथ, विशेषतः अशोक के राज्य से हिन्दू जातीयता का अथवा भारतीयता का क्रमिक विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ। परन्तु यह स्पष्ट है कि इस समय धार्मिक एकता एक बहुत बड़ी प्रयोजक हेतु थी। न केवल भारत परन्तु सीलोन भी भारतीयता के कोटि मे रक्खा जा सकता था। सीलोन की सभ्यता तथा धर्म विस्तार पर यहां उल्लेख करने का अवसर नहीं परन्तु इतना कथन पर्याप्त है कि हिन्दू जातीयता के भावों ने बौद्ध काल मे सीलोन तथा भारतवर्ष को एक कर दिया था। उस समय हिन्दुओं का देशानुराग न केवल हिमालय से विन्ध्याटवी तक विस्तीर्ण था, परन्तु दक्षिण देश लाङ्घ कर समुद्र के उस पार भी पहुंच चुकाथा। हम फिर भी स्पष्टकर देते हैं कि यह जातीयता या देशानुराग राजनीतिक कारणोँ से कम प्रेरित था। अपेक्षा धार्मिक कारणोँ से। परन्तु यह भी कथन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वह युग ही धर्म प्रधान युग था। योरुप में बौद्ध समकालीन कान्स्टेन्टाईन प्रभृति राजा ईसाई मत के आश्रय पर ही योरोप तथा संसार मे एक विस्तृत साम्राज्य बनाने की कल्पना कर रहे थे। अशोक ने यदि धर्म के सहारे इतने विराट आधिपत्य का निर्माण किया तो कोई आश्चर्य्य जनक बात नहीं।

संघों की रचना ही इस बात की व्याख्या करती है कि क्यों बौद्ध युग मे इतना सङ्गठन था। इतनी जातीयता या देशानुराग था। अशोक ने स्वयं अपनी एक घोषणा से धार्मिक स्वतन्त्रता की अपने देश मे स्थापना

की थी। यवन, कम्बोज सब विधर्मी बौद्ध युग मे स्वाधीन थे इस सभ्यता ने भारतीय जातीयता के निर्माण मे बहुत सहायता की। हम उस ऐतिहासिक घोषणा के कुछ भाग को पाठकों के परिज्ञानार्थ दिये देते हैं:—

" देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है कि कल्याण करना कठिन है। जो कल्याण करता है कठिन काम करता है। सो मैंने बहुत कल्याण किया। इस लिये मेरे पुत्र पौत्र तथा उनसे आगे जो बन्शज होंगे वे कल्पान्त तक वैसा करेंगे तो सुकृत करेंगे। जो इस आज्ञा के अंन्शमात्र में भी हानि करेगा वह बुरा करेगा-क्योंकि पाप सहज मे फैलता है। बहुत काल बीता कि धर्ममात्रा नही नियत हुए। इसलिये मैंने अभिषिक्त होने के तेरहवें वर्ष धर्ममहामात्रा नियत किये। वे सब धर्मों के लिये नियत हैं। वे यवनों—राष्ट्रिकों मैठीनकों गान्धारों 'कम्बोजे।' तथ पश्चिमी प्रान्त पर रहने वाले दूसरे लोगों के-वेतनोपभोगी नौकरों, बृह्मणों और धनवानों अनाथों और बूढ़ों के हित और सुख तथा अधीनस्थ धर्माधिकारियों से बाधा न पहुंचाने के लिये नियूक्त हैं।"

इस उल्लेख मे स्पष्टता से यवन, कम्बोज पैठनिक, प्रभृति धर्मावलम्बियों के लिये धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है। किसी से अन्याय करने को नही कहा गया। जिस देश मे धार्मिक एकता . है उसमें जातीय एकता तथा स्वदेशानुराग का होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

बौद्धों की सभ्यता का हमारे देश की राजनीतिक प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ा, हमारे जातीय निर्माण में क्या असर पड़ा इस पर विस्तार में जाने का हमारे पास अवकाश नही परन्तु इतना लेखक का दृढ़ मन्तव्य है कि बौद्ध धर्म ने योग्य नेताओं तथा सभ्य प्रवर्तकों के नीचे हमारे देश के जातीय जीवन में बहुत बड़ा हिस्सा लिया। बुद्धि स्वयं एक प्रजासत्तात्मक संस्था की उपज थे, उन्हों ने अपने भाषणों मे प्रजा सत्तात्मक सभाओं तथा परिषदों का पोषण किया, राजनीतिक क्षेत्र में उनका अवश्य अनल्प प्रभाव था।

परन्तु बौद्ध धर्म के बिकृत स्वरूप ने ही हिन्दुओं की जातीयता को नष्ट किया। मुसलमान आक्रान्ताओं के सम्मुख अहिंसा—नही कायरता के ढकोसले से अपने देश को दूसरे के हाथ में बेच दिया। कूट नीतिज्ञता का स्थान सीधेपन तथा मूर्खता ने लिया, और हमारे देश को तबाह कर दिया। उस गिरे समय मे देश की व्यक्तियों में जहां स्वदेशानुराग न थां वही सच्चा धर्म भी न बच गया था मुसलमानों ने। हिन्दुओं की स्वदेशानुराग की शून्यता का लाभ उठा कर हमारे देश पर बड़ी सरलता से विजय प्राप्त कर लिया रोम में प्लीबियन तथा पेट्रीशियन समान जातीय सङ्कट के अवसर पर एक हो जाते थे, अतः उन पर किसी विदेशी आक्रान्ता ने शीघ्रता से विजय नहीं पाया। हमारे देश का ही दुर्भाग्य था कि हिन्दुओं ने अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भुला दिया और अपने देश को विदेशियों के हाथ में सौंप दिया। अवश्य जातीयता का प्रथम तत्व स्वदेशानुराग तत्कालीन हिन्दुओं में न था, अन्यथा ये अपमान जनक घटनाएँ भारत वर्ष के इतिहास में कभी न लिखी गई होती।

परन्तु आपत्ति सब से बड़ी शिक्षक है। शोक सब से बड़ा सहायक है। दुःख तथा उद्वेग सब से बड़ा उन्नति का हेतु है। भारत वर्ष का गिरती हुई शोचनीय अवस्था में किन्ही क्षत्रिय स्वदेशानुरागी वीरों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सब से पूर्व पृथ्वीराज ने विदेशी आक्रान्ताओं का मुकाबला किया उसका स्वदेशानुराग संसार में विदित है

अपने प्यारे भारत की रक्षाके लिये नर केसरी ने किस प्रकार अन्तिम दम तक शहाबुद्दीन का साम्मुख किया, और किस प्रकार अन्त में अपने भाइयों के विश्वास घात से ही अपने जीवन को मातृभूमि की बलि वेदी पर चढ़ा दिया, यह सब इतिहास प्रसिद्ध है। हम वेन कवि के निम्न पद्य के साथ, यह विचार प्रकाशित किये देते हैं, कि हिन्दुओं ने इस समय एक समस्त जाति की द्रुष्टि से स्वदेशानुराग के दिखाने में बहुत बड़ी कमज़ोरी दिखाईः—

"धनि हिन्दू प्रथिराज, जिने रजवट्ट उजारिय।
धनि हिन्दू प्रथिरांज, बोल कलिमझ्झ उगारिय॥
धनि हिन्दू प्रथिराज, जेन सुविदान हसँध्यो।
बार बारह ग्रहि मुक्कि, अन्त काल सर बंध्यो॥"

यह मुसलमान शासन के प्रारम्भ में।

मुसलमान शासन के मध्यकाल में जब प्रतापी अकबर का शासन भारत वर्ष के एक कोने तक फैल चुका था, उस समय जिस वीर जाति ने—समूहित रूप में अपने स्वदेशानुराग की तीव्र ज्वाला मे बड़े विदेशी शासन को भस्म किया, उस वीर जाति के लिये आज भी हम हिन्दुओं मे सन्मान तथा श्रद्धा है। यदि उस जातिने हिन्दूओं की इस भयावह कमजोरी को दूरन किया होता तो हिन्दू धर्म, हिन्दू सभ्यता का सर्वथा विलोप होगया होता। 'राजपूत' नाम लेते ही विक्षुब्ध चित्त में शान्ति का उदय होता है नपुंसक हृदय में वीरता का सञ्चार होता है। राणा प्रताप ! यह वीर शिरोमणि भारत रत्न देशोद्धारक क्षत्रिय किस प्रकार से अपने जीवन में सब सांसारिक भोगों को छोड़ कर एक विदेशी शासन से भिड़ता रहा, अपने भाइयोँ के विश्वास घात (पुनः हमारे जातीय अपमान का अवसर) के होने पर भी किस प्रकार घोर दारुण यातनाओं को झेलते हुए अपने देश के सन्मान को रखने का उस वीर ने भगीरथ प्रयत्न किया यह सब संसार जानता है। वस्तुतः राजपूत जातिने ही हमारी लाज रखी। उनके स्वदेशानुराग की प्रशंसा के लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं है। हम राजपूताना के इतिहास के विशेषज्ञ कोलोनल टाड के ही शब्दों में उस हिन्दु जाति के स्वदेशानुराग पर अपने भावों को प्रकाशित करते हैः—

"There is not a petty state in Rajputana that has not had its own Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas. But the mantle of ages has shrouded from view that the magic pen of the historians might have consecrated to endless admiration. Soma-Nath might have rivalled Delphos; the spoils of Hind might have vied with the wealth of lybion king, and compared with the army of Pandavas the army of Xerxes would have dwindled into insignificance."

प्रताप की वीरता, उसका स्वदेशानुराग, हिन्दुओं की नैसर्गिक कमज़ोरी से उसकी सन्तानों में नही जासका यह आग उसने अपने शरीर की हवि से प्रदीप्तकी थी एक अन्यत्र स्थान पर भस्मावशेष से पुनः प्रज्वलित हुई। मराठा राष्ट्र ने औरंगजेब के अत्याचारोंके विरुद्ध घोर साम्मुख्य उपस्थित करने का निश्चय किया। उस आदर्श क्षत्री

शिवाजी की स्मृति का और अधिक आदर क्या हो सकता है कि अंग्रेज़ लेखकों ने उसे पहाड़ी चूहा, चोर या डाकू कहा। ग्रान्ड डफ ने उदारता से मराठा उत्कर्ष पर आन्तरिक रोष तथा आवेग प्रगट किया। हमें इनसब विशेषणों तथा उल्लेखों का अभिमान है हम इन्हीं से शिवाजी के अद्वितीय स्वदेशानुराग, कार्य्यक्षमता, नीति कुशलता तथा योग्यता का अनुमान करते हैं-और उनके लिए गौरव प्रगट करते हैं।

परन्तु राजपूत तथा मराठा जाति के देशानुराग में कुछ ऐकान्तिकता की गन्ध आसकती है। लेखक इसको स्वीकार करता है। परन्तु पेशवाओं का देश प्रेम व्यापी तथा उदार है। वह केवल अपने प्रान्तों या उपराष्ट्रों के लिये ही नहीं परन्तु समस्त हिन्दुस्तान के लिये है। यह अनुशीलन का विषय है कि किस प्रकार सिन्धिया तथा होल्कर के समय भारतीय जातीयता का वास्तविक विकास हुआ, किस प्रकार राष्ट्रीय एकता का उदय हुआ। हम अग्रणी पेशवाओं के पारस्परिक पत्रों के कुछ अन्शों को नीचे उद्धृत करते हैं, जिससे यह स्पष्ट होगा कि पेशवाओं के समय वास्तव में जातीय तथा राष्ट्रीय एक जीवन का प्रारम्भ होगया था। गोविन्दराय काले का नाना फरनवीस के पास निम्नपत्र उपर्युक्त तथ्यको सिद्ध करेगा:—

"पत्र पाहतोच, रोमांच उभे राहिले, अति सन्तोष झाला विस्तारपत्री किती लिहूं ग्रन्थचे, मनीत आले अटक नदीचे अलिकड़े दक्षिण समुद्रा यावेतों हिन्दूचे स्थान--तुरक स्थान नव्हे हे आपली सिमा पाण्डवापासून विक्रमाजित पावेतो त्यानी राखून उपभोभ घेतला त्यां मागे राज्यकर्त्ते नादान निघाले, यवनीचे प्रायत्य झाले, चक त्यानी हस्तिनापुरचे राज्य घेतले, शेवरी अलमगिराचे, कारकी दींत यज्ञोपवीतास साड़ेतीन रुपया जेजिया वसूल ओले अन्न विकत घ्यावे अशी नौबत गुजरली।"

समस्त हिन्दुस्तान में विदेशियों के विरुद्ध समवेत प्रयत्न करने की अभिलाषा एक जातीयता को सूचित नहीं करती तो और क्या? निस्सन्देह स्वदेशानुराग का बीज पेशवा के समय में अंकुरित होकर दृढ़ भी होचुका था। हिन्दू-पद पादशाही (Hindu sovereignty) का विचार बीजराअ, ब्रह्मेन्द्र स्वामी गोविन्द दीक्षित तथा अन्य तत्कालीन भारत सूत्र कर्णधारों में इतना प्रबल होगया था कि वे एकदम देश में एक जातीयता (एक हिन्दुत्व) के पक्षपाती थे। स्वदेशानुरागके भाव देशके एक २ कोनेमें घर करगए थे। यही कारण है कि उनको पर्याप्त सफलता भी प्राप्तहुई।

वर्त्तमान समयमें लोकमान्य तिलक की देशभक्तिको पेशवाओं तथा मराठोंकी देशभक्ति का प्रतिरूप ही कहा जा सकता है। लोकमान्य स्वदेशानुराग उसके वन्शागत जातीय गुणोंकी व्याख्या मात्र हैं। हमें अब अधिक उल्लेखनीय नहीं। हिन्दुओं में नैसर्गिक कमजोरियोंके होते हुएभी एक ऐसे उदात्त तत्व का स्थान है जो उन्हे कभी उन्नत जाति बना सकता है। उसके ऐतिहासिक रत्न, अतीत का उत्तराधिकारिता से प्राप्त जातीय अभिमान कभी भी उसको वर्त्तमान शोचनीय अवस्था से उठाकर अभ्युदय के शिखर पर पहुंचा सकता है। हम इन्ही शब्दों के साथ प्रस्तुत लेखको समाप्त करते हैं कि हिन्दुओं को 'अपने देश' की सत्ता से भी अभिज्ञता प्राप्त करनी चाहिए, और उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को भी ठीक तरह समझना चाहिये।

पद्मिनी

लेखिका कुमारी पद्मावती देवी

(१)

देवि ! तुम्हारे गुण गौरव की,
कीर्त्तिध्वजा फहराती है ।
जिसे देखकर प्रमदा मन में,
फूली नहीं समाती है ॥

(२)

तुमने दिव्य ज्योतिकी उज्वल,
सुन्दर झलक दिखाई है ।
सती धर्म का पथ दिखलाकर,
जीवन ज्योति जगाई है ॥

(३)

पूर्व काल में औरों ने भी,
कर कौशल दिखलाया था ।
रण-चण्डी बन म्लेच्छ दलों के,
छक्के खूब छुड़ाया था ॥

(४)

पर रणाग्रिणी बन कर तुमने,
देश जाति उत्थान किया ।
अग्नि समर्पण किया सखीयुत,
जीते जी नहीं मान दिया ॥

(५)

दुष्ट यवनको लज्जित कर वर,
अपना यश फैलाया था ।
अबला सबकुछ करसकती हैं,
सत्य तत्व बतलाया था ॥

(६)

उसी भूमि की ललनायें हा !
धर्म मार्ग को भूल रहीं ।
विषय वासनाओं में रत हो,
सुख के झूले झूल रहीं ॥

(७)

नारी तुमसी क्या भारत में,
दर्शन देने आवेंगी ?
रमणी जग की डूबी नौका,
फिर तट पर पहुंचावेंगी ॥

(८)

किस अनन्तके पथपर निर्भय,
अम्बे ! विचरण करती हो ?
स्वर्ग-देश बालाओं में क्या,
शक्ति सुधा को भरती हो ॥

(९)

तव कल्पित प्रतिमा का मैं भी
सादर स्वागत करती हूँ ।
धूप दीप नैवेद्य आदि से,
पूजन पुलकित करती हूँ ॥

(१०)

भारत के रमणी मण्डल में,
सुन्दर भाव जगा देना ।
वीर भाव के सुमधुर रस में,
मानस प्रवर पगा देना ॥

अपराधी

—०—

संकलनकर्त्ता-श्री कृष्ण पाण्डे ।

"डाक्टर बाबू !"

"क्यों ?"

"ज़रा मेरी नाड़ी देखिये न ।"

डाक्टर साहब ने रोगिणी का जीर्ण हाथ उठाकर परीक्षा की और चुप चाप मुंह फेर कर बैठ गये ।

रोगिणी ने फिर क्षीण स्वर से कहा "डाक्टर बाबू बचने की कोई आशा है"

डाक्टर साहब ने गम्भीर होकर कहा "हां, हो सकती है,पर तुम जिस तरह अधीर हो रही हो उससे तो—"

रोगिणी बीच ही में बात काट कर बोल उठी—"मेरा मरना ही अच्छा है डाक्टर बाबू ! पर न मालूम यमराज मुझे क्यों भूल गए हैं ? थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा—"अच्छा आप तो डाक्टर हैं, तरह २ की दवाइयां जानते हैं ऐसी कोई दवा दीजिये न जिससे जल्दी मर जाऊं ।"

डाक्टर बाबू ने रुष्ट और गम्भीर होकर हा "देखो यदि तुम इसी तरह पागलपन की बातें करोगी तो मुझे बाध्य होकर तुम्हारा बात चीत करना बन्द करना पड़ेगा। "नहीं नहीं, जितने दिन तक बचूं मेरी जबान बन्द मत कीजिये । बात चीत किये बिना मैं क्षण भर भी न जी सकूंगी ।"इतना कह कर रोगिणी कातर दृष्टि से डाक्टर साहब के मुंह की तरफ देखने लगी।

डाक्टर साहब चुपचाप बैठे २ कुछ सोचने लगे । यह पतिता है, जीवन भर न मालूम कितने पाप किये हैं, पहले नहीं सोचा कि ईश्वर का धोका नहीं दिया जा सकता, उसका कठिन विचारदण्ड इच्छा न रहते हुए भी सिर झुका कर स्वीकार करना पड़ेगा । आह ! हो सकता है बिचारी उच्च वंश की कुल वधु हो । उसके क्या नहीं था ? मान, सम्मान, सुख सम्पति सभी कुछ थी, लेकिन संयम की कमी थी । उसी कमी के कारण यौवन की अस्थाई चञ्चलता के वश होकर क्षणिक सुख की लालसा से उसने अपने स्त्री धर्म की बली दे दी जिस समय ज्ञान हुआ भले बुरे की पहचानने की शक्ति हुई उस समय देखा, पाप के चिकने पथ से नीचे गिरना सहज है पर उससे उद्धार पाना बड़ा ही कठिन है ।

डाक्टर साहब इसी उधेड़ बुन में थे कि इतने में ही 'करवट मत बदलो'की आवाज़ उनके कानों में पड़ी । उन्हों ने मुंह फेर कर देखा कि नर्स करवट बदलने के लिये रोगिणी को मना कर रही है । उन्हों ने रोगिणी को मना करते हुए कहा "तुम्हें क्या हुआ हैं' ? इतनी उछल कूद क्योंकर रही हो ऐसा करने से बड़ा नुकसान होगा ।

रोगिणी चुपचाप सो गई । क्षण भर बाद ही उसने पूछा "क्या लड़की अभी तक बची हुई है ?"

डाक्टर साहब ने माथा हिलाते हुए कहा नहीं । "

रोगिणी ने एक लम्बी सांस लेकर कहा आह ! अच्छा हुआ । नहीं तो बिचारी निर्दोष बालिका को मेरे पाप पूर्ण कार्यो का जन्म भर तक फल भोगना पड़ता । उससे तो मेरी

तरह पाप नहीं किया जो उसे इस तरह जल २ कर मरना होता वह निर्दोष थी इसी से यन्त्रणा से छुटकारा पाकर परम धामको चली गई। ओह! कितनी जलन है पाप की कैसी यन्त्रणा है आगे यदि यह समझ सकती पर किसी ने भी मुझे नहीं समझाया। रोगिणी की आंखों से गरम गरम आंसू निकल पड़े।

डाक्टर बाबू ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा अजी इन सब बातों को छोड़ कर चुप चाप सो जाओ।

रोगिणी ने एक रूखी हंसी हंस कर कहा "सोने को कहते हैं? आंखोंमें नींद कहां है जो सोऊं? यदि नींद आगई तो फिर मुझे कोई भी नहीं उठा सकेगा।

इतने में ही एक नर्स ने आकर कहा "४ नं० वार्ड में जल्दी चलिये एक रोगी की अवस्था ज्यादा खराब हो गई।"

टेबिल पर से अपना स्टेथीस-कोप उठा कर डाक्टर साहब नर्स के साथ चले गये।

(२)

आज के पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। जब कि हार्डिंज हस्पताल के ऐसिस्टेण्ट डाक्टर मि० B.D.Arya M.DI.M.S. उस समय M.D. परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए दिन रात परिश्रम करते थे। उस समय उनका पूरा नाम श्री बद्रीदास आर्य्य था वे उस समय तरुण युवक थे।

बद्री बाबू के पिता लड़कपन में ही उन्हें छोड़ कर परम धाम को प्रस्थान कर गये थे। इनका लालन पालन इनकी स्नेहमयी जननी कौशल्या देवी ने किया था। हिन्दू घरों की प्रथा के अनुसार कौशल्या देवी ने बद्री बाबू को युवा अवस्था के प्रवेश द्वार पर पहुंचते ही विवाह बन्धन में बांध दिया। पठन पाठन में दत्तचित्त स्वतन्त्र प्रकृति एकान्त प्रिय युवक बद्री दास ने माता को कष्ट न हो इस ख्याल से M. B. पास करने के पहले ही अपने आप को इस जाल में फंसा दिया। किन्तु विवाह के बाद कौशल्या देवी और अधिक दिन तक जीवित नहीं रही। एक वर्ष बीतते न बीतते वे पौत्र को गोद में खिलाने की सद् इच्छा मन में लेकर महा प्रस्थान कर गई।

माता की मृत्यु के बाद बद्री बाबू बड़ी ही मुश्किल में पड़े। तरुणी पत्नी लीला को घर गृहस्थी का ज्ञान नहीं था अतः एक रसोई बनाने वाली मिश्रानी और एक दाई के ऊपर गृहस्थी का समस्त भार सौंप कर आप अपनी M. D. परीक्षा की तैयारी करने लगे। यहाँ तक रुपयों के सन्दूक की चाबी भी लीला को उन्हों ने दे दी, क्योंकि ऐसा न करने से रोज़ रोज़ खर्च देने और हिसाब समझने का झंझट भी उन्हीं पर रहता। इस प्रकार जब गृहस्थी का सारा प्रबन्ध करके बद्री बाबू अपने पढ़ने के कमरे में पुस्तकों से ही अपना समय बिताते थे, उस समय किवाड़ों की आड़ से दो प्यासी आंखें एक टक होकर उनकी ओर देखती रहतीं। वे प्यासी आंखें उनकी धर्मपत्नी युवती लीला की थी।

विवाह के पहले कल्पना के सहारे लीला ने जिस सुख की आशा की थी, विवाह के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते ही उस की वह सब आशा कपूर की तरह उड़ गई। लीला ने देखा कि पति देवता का प्रेम उस की अपेक्षा बड़ी बड़ी पुस्तकों पर अधिक है, वह अपने अधिकार से वञ्चित कर दी गई है। उसे स्वामी पर, उससे भी अधिक निगोड़ी पुस्तकों पर बड़ा क्रोध आता—वह इनको फूटी आंख से भी नहीं देख सकती थी। उसका विश्वास था कि इन्हीं पुस्तकों

ने उसको स्वामी के साथ से वंचित कर दिया है, अगर यह नहीं होती तो वही एक मात्र स्वामी के अक्षय प्रेम की अधिकारिणी होती । अतः कभी २ उसकी इच्छा होती कि इन सब पुस्तकों को अग्नि देवता की भेंट चढ़ादूं किन्तु हिम्मत नहीं पड़ती, स्वामी के कमरे में मनुष्य कङ्काल को देख कर कमरेके भीतर जानेका साहस तक नहीं होता । वह अपना दिल मसोसकर रह जाती ।

दिन रात अकेले रहने के कारण लीला का चित्त उदास रहने लगा । कभी २ रात को उपन्यास पढ़ते समय किसी के गृहस्थ जीवन का प्रेम मय वर्णन पढ़ कर लीला उपन्यास फेंक कर स्वामी के पास दो चार प्रेम पूर्ण बातें सुनने की आशा से अधीर होकर उनके पाठय गृह में जाती, परन्तु बद्री बाबू लीला के साथ हंसी मज़ाक या प्रेम सम्भाषण करना कुछ प्रयोजनीय नहीं समझते । बहुत हुआ तो केवल एक बार नज़र उठा कर हंसते हुए पूछ लिया "हैं ! यह क्या तुम इस समय यहां कैसे आई । कहीं रास्ता तो नहीं भूल गई हो ?" इसके बाद फिर पढ़ने में लग जाते । थोड़ी देर तक चुप चाप खड़ी रह कर आँखों से आँसू बहाती हुई निराश हृदया लीला अपने कमरे में लौट आती और सारी रात रोती रहती । इसी तरह इस मानसिक दुःख के कारण वह दिनों दिन सूखी जाती थी । एक दिन संयोग वश बद्री बाबू ने उसकी यह अवस्था देख कर आश्चर्य पूर्वक पूछा "यह क्या ! तुम दिनों दिन दुबली क्यों होती जारही हो ? कुछ तकलीफ़ तो नहीं है ? ज़रा नाड़ी तो देखूं"।

नाड़ी देख कर मन की बात नहीं जानी जा सकती, यह बद्री बाबू को मालूम नहीं था । नाड़ी देख कर उन्होंने चिन्तित होकर कहा "कहां नाड़ी तो साफ़ है । कोई रोग नज़र नहीं आता ! तब फिर क्यों सूखी जा रही हो । क्या खाने पीने का प्रबन्ध ठीक नहीं है" ?

विषादपूर्ण नेत्रों से पति के मुंह की ओर देख कर एक सूखी हंसी हंसते हुए लीला ने कहा—"कहां ? सब ठीक तो है । मैं तो दोनों वक्त खूब पेट भर कर खाती हूं" ।

स्त्री के उत्तर से सन्तुष्ट होकर बद्री बाबू फिर अपने काम में लग जाते । शरीर की तरह मन की भी एक खुराक है और उसके अभाव में मन के साथ ही साथ शरीर भी सूख सकता है यह बात बद्री बाबू की डाक्टरी विद्या से परे थी । उन्हें क्या मालूम:-

"उनके देखे से जो आजाती है रौनक मुंह पर।
वो समझते हैं बीमार का हाल अच्छा है ॥"

बद्री बाबू लीला को कष्ट देते हों, या उससे उनको प्रेम न हो यह बात नहीं है । लीला पर उनका पूरा प्रेम था, उसके सुख दुःख का भी पूरा खयाल था । कभी २ वह लीला को इस बात के लिये कहा करते थे, "देखो मैंने रुपया पैसा सब कुछ तुम्हें सौंप दिया है । तुम अपनी इच्छानुसार जिस तरह चाहो अपनी साध पूरी करलो, कपड़े-लत्ते गहने गांठी, जिस चीज़ की ज़रूरत हो बनवा लो इसमें किसी बात का संकोच मत करो । तुम्हें जितने रुपयों की आवश्यकता हो बैंक से मंगवा लो । मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है" ।

सिर झुका कर मूक अभिनय द्वारा लीला यह बात उन्हें बता देती कि वह वैसा ही करती है । पर इन सब चीजों के अलावा भी लीला और एक वस्तु की उनसे आशा करती है । एवं वही चीज उसके स्त्री जीवन की सब से अधिक आकांक्षा की

चीज़ है, इस बात को बद्री बाबू नहीं समझते थे। अथवा समझ कर भी उसकी उपेक्षा करते थे यह कहना कठिन है। किन्तु इतना ज़रूर है कि उन्होंने इस समय पहले M. D. पास करना ही अपना सर्व प्रधान कर्तव्य समझ लिया था। अस्तु!

अच्छे अच्छे कपड़े, गहने आदि जो कुछ थे वह सब लीला ने अलमारी में बन्द करके रख दिये। क्योंकि इन सब चीजों को वह जिसके वास्ते पहनती है जब वही उस से कोसों दूर भागते हैं, तब फिर इस अनावश्यक विलासिता की क्या आवश्यकता है।

इसी तरह जब उसकी यौवनावस्था के थोडे से दिन रो रो कर बीत रहे थे, उस समय उसको इस अन्धकार में एक टिम टिमाता दिया दीख पड़ा--डूबते को तिनके का सहारा मिला—उसका तरुण हृदय आह्लादित हो गया, उसने आज से नवीन जीवन में प्रवेश किया।

---

(३)

बद्री बाबू के एक दूर के रिश्तेके भाई मदनमोहन ने उनके यहां आकर आश्रय मांगा। सरल चित्त बद्री बाबू ने इस में कोई आपत्ति न समझी जब तक वह अपना प्रबन्ध कहीं अन्यत्र न करले तब तक के लिये उसे अपने यहां रहने की इज़ाज़त देदी।

चालाक मदन ने एक हफ्ता बीतते न बीतते बद्री बाबू की राई रत्ती का पता लगा लिया। डाक्टर साहब की स्त्री के प्रति उदासीनता एवं लीला का विषाद भरा मुंह उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं छिप सका उसे इस बात को समझते अधिक देर न लगी कि उसके धनवान आश्रय दाता ने अपनी सम्पत्ति का समस्त भार लीला पर छोड़ दिया है, वह उसका कोई हिसाब पत्र नहीं देखते। दिन रात अपनी डाक्टरी पुस्तकों से माथा लड़ाने में ही व्यस्त रहते हैं। इसी से लीला की मानसिक दुर्बलता एवं मानव चरित्र की अनभिज्ञता के सुसमय से लाभ उठा कर दूसरे के धन से धनी होकर अपनी विलास-वासना को चरितार्थ करने की लालसा उसके मन में प्रबल हो उठी। युवक मदन इस प्रलोभनसे अपनेको नहीं रोक सका

पहले पहले लीला मदन के पास नहीं आती, उससे बात चीत नहीं करती। किन्तु उसकी सरस बातें, "भाभी जी" सम्बोधन, एवं अपने दुःख में गम्भीर सहानुभूति आदि ने लीला को अपने वश में कर लिया। लीला सोचती कि ऐसे हंसमुख देवर के साथ एक मकान में रहकर बातें न करना; उससे एक अपरिचित की तरह व्यवहार करना यह बड़ी भारी असभ्यता है। अतः एक दिन वह मदन के सामने हो गई और उससे बात चीत भी शुरू करदी। इतने दिनों के बाद अपने सुख दुःख की बातें करने वाले साथी के मिल जाने से लीला के हृदय की अशान्ति धीरे २ दूर होने लगी। एक दिन पति की उपेक्षा को खींच कर लीला अपने कमरे में बैठी आंसू बहा रही थी। अपने भाग्य को कोश रही थी, कि बाहर से मदन ने पुकारा—"भाभी जी"।

लीला जल्दी से आंसू पोंछ कर अपने को संयत करने की चेष्टा करने लगी, इतने में ही मदन ने कमरे में प्रवेश करके हंसते २ कहा—"वाह! तुम भी खूब हो। मैं तुम्हें एक घंटे से खोजते २ हैरान होगया और तुम यहां बैठ कर—एका एक मदन की दृष्टि लीला के अश्रुपूर्ण नेत्रों पर पड़ गई। उसने चकित होकर कहा —"यह क्या भाभी जी! तुम रोरही थी?"

लीला ने विषाद भरी हंसी हंसते हुये कहा-वाह, रोऊंगी क्यों ? तुम भी खूब हो।"

हां रोती नहीं थी ! मेरे साथ चालाकी नहीं चल सकती। यह देखो अभी तक तुम्हारी आखें डब डबा रही हैं।

लीला चुपचाप मुंह फिरा कर स्वामी के चित्र को देखने लगी।

मदन थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। इस प्रकार एकान्त में पराई स्त्री का अङ्ग स्पर्श करना बड़ा अन्याय-पाप पूर्ण कार्य्य है यह वह जानता था पर लीला और बद्री बाबू के व्यवहार को देख कर उसका साहस बढ़ गया था। जेब से रूमाल निकाल कर लीला के आंसू पोंछते २ उसने कहा-"छीः। रोओ मत। भाभी जी, तुम क्यों रोरही हो यह मुझ से छिपा नहीं है, लेकिन क्या करोगी, तकदीर में जो दुःख लिखा कर लाई हो उसे तो भोगनाही पड़ेगा। भैया ऐसा क्यों करते हैं यह समझ में नहीं आता। जो हो इस के लिये नाहक अपना मन ख़राब मत करो। यहां अकेली बैठी २ तुम रोओगी, चलो थियेटर देख आओ इस से मन का दुःख कुछ कम होजायगा।"

मदन के कर स्पर्श से लीला कांप गई। पर उसने कुछ भी आपत्ति नहीं की। क्योंकि भाभी के साथ देवर का यह व्यवहार अनुचित नहीं है। और वह यदि इसे अनुचित भी समझती तो उस में इस कार्य्य में बाधा देने की शक्ति नहीं थी। थोड़ी देर के बाद लीला ने कहा —'थियेटर! यह कैसे हो सकता है भाई ?। मैं इस समय नहीं जा सकती। जाओ तुम्हीं देख आओ।"

मदन ने रूखे स्वर से कहा—मैं अकेला कभी नहीं जाऊंगा तुम्हें भी चलना होगा। तुम क्यों नहीं जाओगी ?"

"उनके बिना कहे"।

मदन ने बीच हीं में बात काट कर कहा—"ओह ! समझ गया। अच्छी बात है तुम भैया से पूछ आओ, तब तक मैं यहीं बैठा हूँ।"

लीला बिना कुछ आपत्ति किये कमरे से बाहर चली गई। जब वह लौट कर आई तब मदन ने हंसते हुए पुछा—

"क्यों भाभी हुकुम मिल गया ?"

लीला ने लज्जा की हंसी हंस कर कहा—"जाओ तुम्हें हर समय हंसी ही सूझती है।"

"अच्छा, जल्दी २ कपड़े बदल कर तैयार होजाओ। तब तक मैं टैक्सी ले आता हूं।" इतना कह कर मदन कमरे के बाहर चला गया।

बहुत देर के बाद लीला सुसज्जित होकर आज मदन के साथ थियेटर देखने गई।

(४)

यौवन की उत्ताल-तरंग से लीला को मदन के साथ मैत्री की नवीनता धीरे धीरे बड़ी ही मधुर और उन्मादमय जान पड़ी। जिस भेष भूषा को, विलासिता को उसने एक दिन विकृत हो अनावश्यक समझकर त्याग दिया था, अब वही सब उसे अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुईं। उसका प्यासा हृदय एक दिन जिस बात के लिये अपेक्षा कर रहा था, जिस वस्तु की खोज में उसने आकाश पाताल एक करके अपने हृदय में घना अन्धकार पाया था वही सुमधुर स्पर्श उसके हृदय में नाचने लगा। लीला इस प्रबल वेग में बहने लगी। किन्तु वह कहां जारही है इस बात का पता उसको नहीं था। उसने इसको जानने की कोशिश भी नहीं की और न किसी ने उसकी आंखों में ऊंगली देकर उसको बताया ही।

मदन के साथ थियेटर, बायस्कोप, म्युजियम आदि कहीं न कहीं जाना उस का नियमित कार्य होगया। इसके लिये स्वामी की आज्ञा की आवश्यकता भी न रही। भोले भाले डाक्टर साहब भी इसमें कोई आपत्ति नहीं करते थे क्योंकि उन्होंने लीला के स्वास्थ्य में एवं मन में बहुत परिवर्तन देखा, उन्होंने सोचा यदि इस तरह थोड़ा बहुत घुमने फिरने से लीला प्रफुल्लित रहे और उसका स्वास्थ्य अच्छा रहे तो इस में क्या बुराई है। वह दिन रात अपनी डाक्टरी के खोज में लगे रहते थे, अतः लीला और मदन के पारस्परिक व्यवहार पर अच्छी तरह नज़र रखने का समय उनको नहीं था। यदि अकस्मात कभी कदास उन दोनों का कुछ कार्य उनके दृष्टिगोचर होता तो उसमें वह आपत्तिजनक कुछ नहीं देखते अतः उनके मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ। उन्होंने मदन और लीला की हंसी दिल्लगी को "देवर भौजाई" का साधारण व्यवहार समझा जो प्रायः हुआ करता है अतः वह इन दोनों की तरफ़ से निश्चिंत थे। बल्कि उन्होंने एक दिन मदन को बुलाकर कहा "तुम यहीं रहो। क्योंकि तुम्हारे रहने से लीला का मन बहला रहता है। और मैं भी निश्चिंत होकर अपनी परीक्षा की तैयारी कर सकूंगा।"

"अंधे को क्या चाहिये? दो आंखें।" के अनुसार मदन ने प्रफुल्लित चित्त से डाक्टर बाबू की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए कहा—"भैया, आप निश्चिंत रहें। मैं अपने भरसक भाभी को प्रसन्न रखने में कोई बात उठा नहीं रक्खूंगा।"

इधर मदन का यौवन परिपूर्ण सुन्दर मुख लीला को बड़ा ही मनोहर मालूम होने लगा। वह लीलाके हृदयमें नित्य नई मादकता का संचार करने लगा। मदन भी मौका देख कर उसे लोभ देने लगा। उसकी नज़र लीला की बनिस्वत उसके ज़ेवर के ऊपर ही अधिक थी पर फिर भी वह यौवन की स्वभाविक चपलता के प्रभाव से अपने को बचा नहीं सका। दोनों की विलास वासना को परिपूर्ण करने के लिये धन की कोई कमी न रही। नित-नया आमोद प्रमोद होने लगा। किन्तु इसतरह के अभेद परिणाम का जो फल निकलता है, वह प्रकट होगया। थोड़े दिनोंमें ही मदन ने समझ लिया कि डाक्टर बाबू के घर में रह कर इस तरह की असमसाहसिकता दिखाना निरापद और निर्भय नहीं है। अस्तु! एक दिन थियेटर जाने के बहाने बहुत सी धन सम्पत्ति लेकर दोनों जने गायब होगये, फिर लौट कर नहीं आये।

इस घटना से बद्री बाबू के हृदय में बड़ा आघात लगा। उन्होंने स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं की थी, मन की आग को मन ही में दबा कर बिचारे चुप होकर बैठ गये। और देश में इस बात का प्रचार कर दिया कि एकाएक हैज़ा होने के कारण लीला मर गई।

डाक्टर आर्य अपने ख़ास कमरे में बैठे हुए "मेडिकल रिसार्चेस" नामक पुस्तक पढ़र इतने में ही किसी ने पुकारा।

"डाक्टर बाबू! भीतर आसकती हूं क्या?

डाक्टर बाबू ने पुस्तक बन्द करके कहा—"हां आजाओ।" आज्ञा पाते ही एक नर्स उनके सामने आकर बोली—"फीमेल-वार्ड की वह स्त्री आपके साथ भेंट करना चाहती है।"

डाक्टर साहब ने आश्चर्य से पूछा, "मेरे साथ? क्यों?"

'‚यह उसने कुछ नहीं कहा। वह आप से कुछ कहना चाहती है। उसकी अवस्था बहुत ख़राब होगई है''

"चलो, चलता हूँ।" कह कर डाक्टर साहब अपना 'स्टेथीसकोप' लेकर नर्स के साथ चल दिये।

रोगिणी की शय्या के पास जाकर डाक्टर साहब ने जो कुछ देखा उससे उनके विस्मय की सीमा न रही। सचमुच रोगिणी की हालत ख़राब होगई। उन्हें देख कर वह कुछ कहना चाहती थी, पर बोल न सकी, केवल उसके दोनों होठ हिल कर रह गये। डाक्टर साहब ने उसी समय उसे एक उत्तेजक दवा खिलादी। थोड़ी देर में ही रोगिणी की हालत बदल गई। डाक्टर साहब ने पूछा—

"क्यों अब कैसी तबियत है? मुझे पहचानती हो? रोगिणी के मुंह पर हंसी की क्षीण रेखा देख पड़ी—उसने कहा—"अच्छी तरह पहचानती हूँ।"

"मुझ से कुछ कहना चाहती हो?"

"हाँ मैं समझती हूं और अधिक समय तक मैं नहीं बचूंगी। इसी से एक 'बिल" करना चाहती हूँ।"

"डाक्टर बाबू ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"विल?"

"हां विल। आप ताज्जुब करते हैं? इम्पीरियल बैंक में मेरे बहुत रुपये जमा हैं, इसके अलावा एक बहुत बड़ा मकान भी है।"

"ताज्जुब की बात है। तब फिर तुम हस्पताल में क्यों आई?"

रोगिणी ने हंसकर कहा—"वहाँ मेरी देख भाल करने वाला कोई नहीं था। हमारी जैसी पतिताओं को सुख के संगी तो बहुत मिल जाते हैं पर दुःख में सहायक कोई नहीं मिलता। पैसे के लालच से एक दो आदमी सहानुभूति दिखाने आये थे, पर मुझे उनसे घृणा होगई इसी से हस्पताल में चली आई।"

थोड़ी देर तक सोचने के बाद डाक्टर साहब ने कहा—"अच्छा मैं अभी आपका "विल" कर देता हूँ। पर उसमें क्या होगा।"

"मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि अब मेरा अपना कोई नहीं है। इस से मेरी इच्छा है कि मैं अपनी समस्त सम्पत्ति इस हस्पताल को दान करजाऊं जिससे मेरी जैसी अभागिनी रमणी यहां आकर शान्ति से रह सकें इसके बाद आप जो उचित समझें वही कीजियेगा मैं आपही को एक्जीक्यूटर बनाऊंगी।"

एक प्रसिद्ध वकील को बुलाकर उसके सामने "विल" बनाया गया। रोगिणी जी ने अपना नाम सही करने के लिये कलम उठाई किन्तु उसी समय फिर उसीका अवस्था खराब होगई। उसके हाथ के कलम गिर पड़ी डाक्टर साहब ने उसी समय एक उत्तेजक दवा का "इंजेक्शन" दिया इससे थोड़ीदेर में ही फिर रोगिणी की अवस्था बदल गई।

रोगिणी ने "विल" पर अपनी सही करदी। वकील की सही के बाद जब डाक्टर साहब अपनी सही करने लगे तो उन्होंने देखा "विल" कर्ता ने अपनी सही-श्री० लीलावती आर्य ', की है। डाक्टर साहब चौंक पड़े। एक बहुत दिनों की पुरानी बातें याद आगई-उन्होंने अस्फुट स्वर से पूछा —"तुम—तुम्हारा नाम लीला?"

लीला ने शान्त स्वर से कहा—"हां, मैं ही वह अभागिनीहूं आप मुझे नही पहचान सके लेकिन मैने आपको देखते ही पहचान लिया था, किन्तु कहा नही। क्योंकि मुझे डर था कि पीछे तुम गुस्सा होकर मेरे पास न आओ! तुम्हें देखते २ सुख पूर्वक न मर सकूं पीछे कहीं जन्म जन्मान्तर का यह पुण्य फल खो बैठूं-इसी डर से मैंने अपना परिचय नही दिया था।"

"लेकिन तुम इस तरहसे गायब क्यों होगई, थी, क्या तुम्हें किसी बात का अभाव था?। "क्यों भागी थी इस में बहुत सी बातें हैं मुझे क्या अभाव था, यह नहीं मालूम-पर कुछ न कुछ अभाव ज़रूर था। और उसी अभाव को पुरा करने के लिये ही पाप पथ पर चली गई थी। ओह! पाप की ज्वाला इतनी है, यह पहले नहीं जानती थी, यदि यह जानती तो आज मेरी यह अवस्था नही होती। फिर तुमने भी तो मुझे कुछ नहीं कहा? यदि ज़रा भी सावधान करते तो आज मुझे इस तरह पाप की भयङ्कर यन्त्रणा में जल २ कर मरना न पड़ता ओह! बड़ी ज्वाला है-बड़ी यन्त्रणा है।

क्षमा… क्षमा… क्षमा…,

रोगिणी फिर अचेत होगई। डाक्टर साहबने नाड़ी देखी पर कुछ पता नहीं लगा, हृदय देखा, उसकी चाल सदा के लिये बन्द होगई थी। हताश होकर वह कुर्सी पर बैठ गये। बहुत दिनों के बाद उनके मन में आया—कि "क्या लीला के इस पतन के लिये वह अपराधी नहीं हैं?

वकील और नर्स पाषाण मूर्ति की तरह (खडे २ डाक्टर साहब को देखते रहें।

बंगला से संकलित

स्त्रियों में स्वाधीनता का आन्दोलन

लेखक— श्रीयुत भीमसेन विद्यालङ्कार सम्पादक आर्य

१८ वीं सदी से पहिले संसार के साहित्य में धर्म (Religion) शब्द का विशेष महत्व था। राजनीति, समाज नीति, पारिवारिक जीवन सब का केन्द्र धर्म शब्द माना जाता था। प्राचीन संसार का सब तरह का साहित्य-इसी शब्द के भाव में ओत प्रोत था। ग्रीस तथा रोम के काव्य देवी देवताओं के वर्णनों से भरपूर थे। ग्रीस मिश्र, बैबिलोन, फारस सब जगह राजनीतिक तथा ललित साहित्य को बनाने वाले-कविधर्म सम्बन्धी देवी देवताओं से ही Inspiration लेकर, काव्य रचना करते थे। भारत के ब्राह्मण उपनिषद् स्मृति तथा काव्य ग्रन्थ हमारी इस स्थापना के समर्थक हैं। संस्कृत साहित्य के काव्य नाटक—कर्ता—"नटनागर 'भगवान्'" की भिन्न २ रूपों में आराधना करके अपने रसिक पाठकों को तृप्त करते थे। मनुष्य समाज के पारिवारिक जीवन में स्त्रियां भी "धर्म" शब्द के प्रभाव से प्रभावित थीं।

राजाओं और महत्वाकांक्षी सांसारिक आदमियों ने-इसी शब्द के सहारे खून की नदियाँ बहाईं, मुहम्मद ने धर्म के नाम पर

अरब वालों को उत्तेजित कर, संसार में तूफान पैदा कर दिया। युरोपके १६वों, १७वों तथा १८ वीं सदी के इतिहास को पढ़िए। जितने भी युद्ध हुए सब धर्म की रक्षाके लिए किए गए। धर्म की रक्षा के लिए लोगों को जेलों में डाला गया अग्नि में जलाया गया। धर्म ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा स्त्री जाति को अधिकारों से वञ्चित किया। स्त्रियों ने कैदी गुलाम की तरह धर्म समझ कर अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करना उचित नहीं समझा अपने अधिकारो की तिलाञ्जलि दी। "वुमन क्वेश्चन" पुस्तक के लेखक ने प्राचीन रोम तथा ग्रीसके इतिहासके स्पष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है कि प्राचीन समय की धर्म भावनाओं के अनुसार स्त्रियों को किसी प्रकार भी स्वाधीनता नहीं दी जाती थी।

उस समय कुछेक स्त्रियों ने स्वाधीनता के लिए आन्दोलन किया और कहा कि हम लोग एक वार सन्तान पैदा करने के दुःख को सहने की अपेक्षा वीसियों बार युद्ध में जाना पसन्द करेंगी। साधारण स्त्री जाति पुरुषों की तरह धर्म के नाम से अपने पैरों में बेड़िया डालकर घरों में बैठी रही।

धर्म का घातक जादू-अपने भयंकर रूप में उस समय प्रकट हुआ ज़ब रोम के पोप ने पुर्तगाल और स्पेन को सारा युरोप बांट दिया। रोम के पोप की आज्ञा के विरोध में इंगलैण्ड आदि देशों ने आवाज उठाई। सेनाएं सजाईं। और इस धर्म के ढोंग को नष्ट करने का आन्दोलन शुरू किया। १८ वीं सदी तक धर्म शब्द (नर धर्म का भाव) संसार के दिल और दिमाग का शासन करता रहा। स्त्री, पुरुष, कवि, राजा, सेनाएं सबके दिमागों में इसी की छाप थी। इस लिए धर्म के ठेकेदार पादरियों का अधिकार बढ़ा चढ़ा था। वह सबके नेता और आप्त बने हुए थे।

परन्तु आज अवस्था बदल गई। भारतवर्ष जैसे पराधीन देशों को छोड़ कर स्वतन्त्र देशों में धर्म शब्द का स्थान 'स्वाधीनता' Freedom या Liberty ने लिया है। अमेरिका वाले अपनी विशेषता बताते हुये यही कहते हैं कि हमारे राष्ट्र ने संसार को Freedom स्वाधीनता का विचार दिया है। अमेरिका में विज्ञान, राजनीति, साहित्य व्यापार सब क्षेत्रों में Freedom शब्द की ध्वनि सुनाई देती है। वैज्ञानिक लोग स्त्री पुरुषों को एक दूसरे की आधीनता से मुक्त करने के लिये ऐसे २ उपकरण आविष्कार कर रहे हैं जिन से दोनों स्वतन्त्र रूप से रह सकें। विज्ञानों की उन्नति ने होटलों की प्रथा ने, अमेरिका की स्त्रिओं को घर की ड्यूटी से मुक्त करदिया है। इसी प्रकार अमेरिका के पुरुष भी जीवन निर्वाह के लिये स्वतन्त्र होगये हैं। भारतवर्ष में कई लोग भोजन के आराम के लिये विवाह करते हैं। परन्तु अमेरिका में यह बात नहीं है। वहां गृहस्थी भी होटलों में भोजन करते हैं। वहां के होटलों का प्रबन्ध अच्छा होता है। युरोप में भी फ्रेंच राज्य क्रान्ति के बाद ही धर्म शब्द की जगह Liberty शब्द का प्रयोग बहुत होने लगा है। Liberty, Equality Fraternity के शब्दों ने युरोप के धर्माचार्यों को लाचार कर दिया है। अब वह भी अपने धार्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या इन्हीं शब्दों में करने लगते हैं। युरोपियन स्त्रियों ने भी "स्वाधीनता" शब्द को अपना लिया है।

आज कल साधारण जनता को जब कभी किसी आन्दोलन के लिये तय्यार करना होता है तो यही कहा जाता है कि तुम्हारी स्वाधीनता खतरे में है। तुम्हें यह

करना न चाहिये वह करना चाहिये।" मजदूर किसान सब स्वाधीनता शब्द की मधुर ध्वनि को सुन कर मतवाले होजाते हैं। वर्तमान समय के साहित्य में, बड़े २ कवि नाटककर्ता, उपन्यास लेखक, इसी शब्द को लेकर अपना २ रचना करते हैं। जिस ग्रन्थ में Freedom शब्द की गूंज नही वह पुस्तक आम जनता में लोक प्रिय नहीं हो सकती। स्त्री जाति भी इस समय इस शब्द से प्रभावित होरही है। युरोप की नकल में हमारी माताएं तथा बहिनें युरोपियन महिलाओं की तरह स्वाधीन होने का यत्न कर रही हैं। स्वाधीन होने का यत्न सराहनीय है। परन्तु भारतवर्ष की स्वाधीन स्त्रियां भारतवर्ष के लिये उतनी लाभ दायक सिद्ध नहीं होरहीं जितनी युरोप की स्वाधीन स्त्रियां अपने २ देशों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई हैं। यहां की स्वाधीन स्त्रियां स्वाधीनता का अर्थ काम न करना या अंगरेजी पढ़ लेना समझती हैं। उनकी स्वाधीनता की उपमा किसी ऊंचे आदर्श को सिद्ध करने में नहीं लगती। वह स्वाधीनता का उद्देश्य घर की जिम्मेवारियों से बचना समझती हैं। वह स्वाधीन होकर राष्ट्र निर्माण के किसी रचनात्मक कार्य्य को पूरा करने में नहीं जुटती।

इसका कारण यह है कि युरोप की स्वाधीन स्त्रियों की स्वाधीनता का जन्म उनकी मातृ भूमि में हुआ था। स्वतन्त्र होते समय उनके सामने स्वतन्त्र विशुद्ध देश प्रेम का ऊंचा आदर्श मातृ भूमि के स्वतन्त्र वातावरण में स्वतन्त्र हुई थीं। इसलिये उन्होंने स्वतन्त्र होकर देश के वातवरण को पहले से अधिक स्वतन्त्र कर दिया। परन्तु भारतीय महिलाओं की यह अवस्था नहीं है। भारत के पराधीनता पूर्ण वातावरण में स्वतन्त्रता का जीवन विताने वाली महिलाओं की अवस्था उस पुरुष की सी है जो गन्दी विषैली हवा वाले बन्द मकान में रह कर शुद्ध वायु सेवन करने का यत्न करें। गन्दी वायु में रहने वाला कितना भी व्यायाम करे, स्वाथ्य के नियमों का पालन करे, उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता। भारतीय महिलाओं की यही दशा है। भारत वर्ष के पुरुष भी युरोप वालें का अनुकरण कर, स्वाधीनता की कविताओं द्वारा काव्य रस लेकर आनन्द लेते हैं। देश के वातावरण को स्वाधीन करने का यत्न नहीं करते। इसीलिये ऐसे वाणी-वीर देशभक्त मातृभूमि को वदनाम करने का साधन होरहे हैं।

पुरुषों की देखादेखी स्त्रियों में भी "स्वाधीनता" शब्द घर कर रहा है। इसी स्वाधीनता शब्द को ऊंची आवाज में दुहराने के लिये हमारी माताएं कान्फ्रेंसें करके भारतीय स्त्री जाति की स्वाधीनता के लिये आन्दोलन कर रही हैं। हमारी सम्मति में यह आन्दोलन देश के लिये लाभ दायक नहीं है। जिस प्रकार असहयोग आन्दोलन से पहले अंग्रेजी पढ़े लिखे देशभक्तों ने भारत को अधिक गुलाम और कमजोर बना दिया थां—उसी प्रकार स्वाधीनता शब्द की रट लगाने वाली, अङ्गरेजी पढ़ कर अपने आप को स्वाधीन समझने वाली माताएं भी देश को अधिक परतन्त्र बना रही हैं। वह फैशन के प्रवाह में अङ्गरेजी को मातृ भाषा का स्थान देने लगी हैं।

छोटे पाँच साल के बच्चों को घरों में अंङ्गरेजी पढ़ाने लगती हैं। अङ्गरेज़ी के साथ २ अङ्गरेजी फैशन उनका घरू फैशन बन जायगा। घरू फैशन नहीं :-घर तो रहेंगे ही नहीं घरोंकी जगह होटल लेलेंगे। भारतीय सभ्यता की आधार शिला रूप घर मिट जायेंगे। जो होटल बनेंगे वह भी निकम्मे और अधूरे होंगे। इन में न घर का आराम होगा न अमेरिकन अच्छे होटलों की सहूलियतें होंगी। क्योंकि परतन्त्र भारतकी विदेशी सरकार होटलों का प्रबन्ध करना उनका निरीक्षण तथा सुधार करना अपना कर्तव्य नहीं समझेगी।

कहने का अभिप्राय यह है कि आजकल धर्म' शब्द की तरह स्वाधीनता शब्द भावपूर्ण तथा आकर्षक बन गया है। पिछली सदियों में अधार्मिक स्वार्थपूर्ण वातावरण में धर्म शब्दने अनर्था पैदा किये थे, यदि हमने भी उसी तरह पराधीन देश के पराधीन वातावरता में रहते हुए, स्वाधीनता शब्द का प्रयोग फैसन के लिये किया तो यह स्वाधीनता शब्द भी हमारे लिए हानिकारक होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि देश को स्वाधीन करने के लिये किसी रचनात्मक कार्य को पूर्ण करने का संकल्प किया जाय, फिर उस संकल्प या आदर्श को पूरा करनेके लिये घर तथा समाजके बन्धनोंको काटनेका आन्दोलन करना चाहिये। यदि भारत की महिलाओं ने इन अर्थों में अपने दायित्व को समझ कर, स्त्री जाति की स्वाधीनता के लिये आन्दोलन चलाया तो यह आन्दोलन सबके लिए लाभकारक हो सकेगा।

हमें आशा है हमारी माताएं तथा बहिनें स्वाधीनता शब्द के असली भाव तथा अर्थ को समझती हुई, इस आन्दोलन को सफल बनाने का यत्न करेंगी।

इस आन्दोलन की नींव उच्च आदर्शों के पवित्र संकल्पों तथा रचनात्मक कार्य पर रक्खी जायगी।

स्वदेशी वस्त्र आन्दोलन हिन्दी भाषा प्रचार शिशु शिक्षण आदि अनेक रचनात्मक कार्य हैं जिनको माताएं बड़ी आसानी से कर सकती हैं।

देवसमाज की शिक्षा।

लेखक—श्रीयुत स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी आचार्य उपदेशक महाविद्यालय लाहौर

(गताङ्क से आगे)

तीसरे यज्ञ का नाम देवसमाज यज्ञ है इसमें समाज संगठन का विधान है और देवसमाज के उद्देश्यों में "जहां तक संभव हो मनुष्य मात्र में देव धर्म विषयक सत्यज्ञान का प्रचार" लिखा है और साधनों में लिखा है जैसे शरीर के अनेक अंग हैं और मिल कर शरीर होता है, इसी भांति मनुष्यों को मिल कर काम करना चाहिये और सामाजिक कामों के लिये यथा शक्तिधन देना चाहिये अथवा जैसी सहायता कर सकता हो तन वा मन से वही करे इत्यादि।

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त समाज संगठन का ही वर्णन करता है और अथर्व वेद कांड ६ सूक्त ६४ में भी यही है यथा—

समानो मंत्रः समितिः समानी,
समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि,
समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥

भावार्थ—मंत्र, समिति, व्रत, चित्त सम हो मिल कर यज्ञ, दान करो सर्व कार्य मिल कर करो ।

देव समाज का तीसरा यज्ञ इसी मन्त्र के अर्थों को बताता है ।

चैाथा यज्ञ पति पत्नी है । इस मे प्रथम पत्नी कर्तव्य और पश्चात् पति के कर्तव्यों का वर्णन है सामान्य सम्बन्धी और व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा है इस प्रकरण में स्त्री को पतिके लिये धनकमानेकी आज्ञा भी दीगई है और गृह में सम्बन्धियों के साथ मिल कर रहने का विधान है इत्यादि ।

अथर्व वेद कांड ३ सूक्त ३० मन्त्र २ में
जाया पत्ये मधुमति वाचं वदतु शांतिवान् ।

स्त्री पति को मीठे और शांतिदायक वचन बोले । तथा विवाह प्रकरणके (अथर्व०

कांड १४ सूक्त २ मन्त्र २७

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषा भव॥

भावार्थ—श्वशुर पति अन्य संबंधी जो है । तू सर्व को सुखदात्री हो । इन मन्त्रों का भावार्थ ही लिखा गया है ।

पांचवां उद्भिद यज्ञ है । जिसमें वृक्षों को अकारण न काटा जाय आर नये वृक्ष लगाए जावें वृक्षों की सरसतादि से शिक्षा गृहण की जाय इत्यादि बातों का विधान है।

यह भाव मनुस्मृति के प्रायश्चत्त प्रकरण में "हिंसैाषधीनाम्" वनस्पतियों को काटने वाले को उपपातकी माना है उसी आधार पर कल्पना की गई है ।

छठा स्वामी भृत्य यज्ञ है जिसमें भृत्य के सद्व्यवहार का विधान है । आर ७ वां देव शास्त्र यज्ञ है, इसमें इस पुस्तक का पाठ करना चाहिये और पुस्तक को सुन्दर वस्त्र में लपेटना चाहिये और अच्छे स्थान में रखना चाहिये इत्यादि बातों का वर्णन है ।

अष्टम स्वदेश यज्ञ है इसमें स्वदेश भक्तिका वर्णन है स्वदेशको अन्यदेशों की अपेक्षा अधिक सम्बन्ध का पात्र लिखा है भूगोल का ज्ञान प्राप्त करे और यथा शक्ति, कला कैाशल से उन्नति करें विद्रोह के निवारण में सहायक हो राजा की उचित सहायता करे ।

नवां सेवक यज्ञ है जिसमें सेव्य सेवक से किस भांति का व्यवहार करे इसका वर्णन है यह समाज यज्ञ में ही आजाता है । भिन्न कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती है ।

दशम स्वास्तित्व यज्ञ है इसमें दो अध्याय हैं प्रथममें आत्मा और दूसरेमें शरीरका वर्णन है । आत्माका वर्णन करते हुए लेखक महाशय निम्न प्रकार से आत्मा का वर्णन करते है ।

"इस सत्य को पूर्ण रूप से उप लब्ध करे कि जो जीवनी शक्ति भैातिक जगत में विकसित होकर उद्भिद और पशु जगत के नाना आकारोंमें प्रकाशित हुई है वही मनुष्य जगत में पहुंच कर आत्मा कहलाती है । "

लेखक महाशय आत्मा को भैातिक स्वीकार करते हैं । पुराने दर्शन शास्त्रमें बैाद्ध संप्रदाय में रूप, विज्ञान, वेदना और संज्ञा तथा संस्कार नाम से पाँच स्कन्ध स्वीकार किये हैं और अल्प विज्ञान धारा और प्रवृति विज्ञान धारा रूपसे वर्णन किया है जैसे उन्हों ने आत्मा को नित्य नहीं माना वैसे देव समाज भी नहीं मानता है ।

इस पक्ष में अनेक दोष हैं जिनमें से इस समय दो का उल्लेख करता हूँ।

(१) भूत जड़ हैं उनमें चेतनता कैसे आई यदि कारण में गुण न हो तो कार्य में भी नही होते। भूत जड़ हैं शरीर आत्मा में चेतनता कहां से आई कोई जड़ द्रव्य चेतनता को प्राप्त नही होता यथा घट पटादि।

(२) कृतनाश और अकृताभ्यागम, अर्थात् किये का नाश और विना किये के प्राप्ति जब आत्मा उत्पन्न हुआ उस समय जो सुख वा दुःख हुआ वह बिना कुछ किये ही हुआ और जब अचानक मृत्यु को प्राप्त हुआ तो जो कर्म पूर्व किये थे जिनका फल अभी न मिलाथा वह निष्फल ही गए इत्यादि

बुरे कर्म करने से आत्मा का नाश होजाता है और अच्छे करने से अधिक समय तक ठहर जाता है यह देव समाज का सिद्धांत है इस पर पश्चात् लिखा जायगा।

दूसरे अध्याय में शरीर के सम्बन्ध में स्नान वस्त्र, तैलादि लगाना, सोना, उठना, खाना, पीनादि का वर्णन है और शरीर को भली भांति रखने का वर्णन है।

ग्यारवां पशु यज्ञ है इसमें पशुओं से शिक्षा लेने का विधान है जैसे मछली से निर्दोष क्रीड़ा। बन्दर में फुरती। व्याघ्र से साहस पिपीलिका से परिश्रम, मधु मक्षिका से संचय, चिउंटियों से दल बद्धता, और दूर दर्शिता, कपोत से एक विवाह, वक से चित्त एकाग्रता कूकर से कृतज्ञतादि सीखे।

पशुओं को भली रीति से रखे अनुचित कष्ट न दे और कभी अण्डे और मांस न खावे और नहीं किसी अन्य पशु वा पक्षी के लिये मांस दे।

यह अहिंसा परक जितना लेख है अथर्व वेद कांड ३ सूक्त २८ मन्त्र ५ की प्रतीक "मा हिंसीत् पुरुषान् पशुंश्च" के आधार पर है आचार्य दयानन्दजीका आदेश है किकिसी की हिंसा न की जाये और वेद में कहीं भी पशु मार कर खाने की आज्ञा नहीं है यह जिह्वा के रिसये व्यक्तियों ने संसार को बूचड़ खाना बना रक्खा है।

१२ वां परलोक यज्ञ है। इसमें मृत आत्माओं के विषय में लेख है यथा स्थूल देह त्यागी और जीवित अपने प्रत्येक निकट के सम्बन्धी को यथा साध्य किसी नीच गति से निकालने अथवा उसकी उच्च गति में सहायक होने की आवश्यकता को भली भांति अनुभव करे"।

"अपनी स्थूल देह के त्याग करने और योग्यता रखने और अनुकूल वेष्ठनी के प्राप्त होने पर अपने लिये नीच वा उच्च श्रेणी का भौतिक सूक्ष्म शरीर निर्माण करता है"

"अपने आप अथवा किसी अन्य योग्य सम्बन्धियों के द्वारा अपने विशेष २ मृत सम्बन्धियों के साथ समय समय में मेल मिलाप और बात चीत करनेकी चेष्टा करे"।

"उसकी (परलोक वासी की) यदि कोई छवि वा मूर्त्ति वर्तमान हो अथवा उस की कोई और वस्तुएं वर्तमान हों तो उन सबको (अथवा कुछ को) साधन स्थान में सजा कर रखना चाहिये"

"उनकी (मृत आत्मा की) छवि के सम्मुख खड़े होकर पुष्पहार के द्वारा उनका अर्चन करना चाहिये"

मृत्यु के पीछे शरीर निर्माण।

"यही आत्मा स्थूल शरीर की मृत्यु के पश्चात् अपने भीतर सूक्ष्म शरीर निर्माण

विषयक आवश्यक शक्ति रखने और अपनी देह में से आवश्यक मात्रा में सूक्ष्म परमाणुओं के प्राप्त होने पर अपने पहले शरीर के अनुरूप एक नया शरीर निर्माण करता है और फिर पहले की न्याईं पूर्ण मनुष्य बन जाता है" परलोक तत्त्व ।

प्रश्न । किस प्रकार की प्रतिकूल घटनाओं के उपस्थित होने पर मनुष्यात्मा अपमृत्यु को प्राप्त हो कर नष्ट हो जाता है ?

उत्तर—(१) शरीर सहित आग में पूर्णतः भस्म हो जाने से । (२) शरीर सहित किसी मट्टी आदि के ऐसे ढेर के नीचे बहुत देर तक दबे रहने से कि जहां शरीर के लिये श्वास लेना असम्भव हो ।

(३) बहुत ऊंचाई से गिरकर शरीर की जीवनी क्रिया के हठात बन्द हो जाने से अथवा बिजली के गिरने से ।

(४) बारूद, तोप के गोले, आदि के द्वारा इत्यादि" ।

प्रश्न—स्थूल शरीर की मृत्युके अनन्तर कितनी देरमें यह सूक्ष्म शरीर बन जाता है,

उत्तर ! प्रायः आध घंटे से लेकर पांच छः घंटे तक बन कर चेतन अवस्था में पहुंच जाता है ।

परलोक ।

प्रश्न—परलोक कहां है ?

उत्तर—जिस प्रकार हमारे स्थूल सौर जगत के साथ हमारी इस पृथिवी का सम्बन्ध है । और वह पृथिवी उसका एक अंग है । उसी प्रकार इस सौर जगत के सूक्ष्म परमाणुओं से जो एक और सूक्ष्म सौर जगत् बना है उसके साथ हमारी इस पृथिवीका सम्बन्ध है । उसे परलोक कहते हैं ।

परलोक के भेद

प्रश्न—क्या परलोक सम्बन्धी पृथिवी में कई लोक हैं । उत्तर-हां..........

जो अधिकांश रूप से वृक्षों से ही भरा हुआ है वह वहां का उद्भिद लोक कहा जाता है । फिर उससे आगेका भाग जिस में अधिकांश पशु ही रहते हैं पशु लोक कहलाता है, फिर उससे आगेका भाग जिस में अधिकांश रूप से मनुष्यों के बच्चे ही रहते हैं शिशु लोक कहलाता है । फिर उस से आगे के विभाग में प्रथम श्रेणी के मनुष्य आत्मा रहते हैं और वह पहला लोक कहलाता है । फिर उससे आगे का लोक जो दूसरे श्रेणी के मनुष्य आत्माओं के वास के योग्य है दूसरा लोक कहलाता है......तीसरा लोक......चौथा लोक .....पांचवांलोक.... छठा लोक कहलाता है और इसी प्रकार यह क्रम आगे भी है ।

यह है संक्षेप से देव समाज की परलोक के विषय में शिक्षा, यदि विचार दृष्टि से इसे देखें तो इसका सिद्ध होना असम्भव है । जैसे प्रथम इस सौर जगत से भिन्न एक और सूक्ष्म सौर जगत है इस में प्रमाण क्या है । क्योंकि प्रत्यक्ष तो वह नहीं है । यदि अनुमान है तो व्याप्ति हो तो साध्य सिद्ध हो । देव शास्त्र में किसी व्याप्ति का वर्णन ही नहीं है और यदि शब्द प्रमाण कहें तो प्रष्टव्य यह है, आप किसी शास्त्र को तो मानते ही नहीं जिसका कोई वाक्य कहदो शेष रहा आप का देव शास्त्र उस में यह सारी कथा लिखी गई है, परन्तु देव शास्त्र तो देव समाज के भक्तों का मान्य पुस्तक है न कि सर्व जनों का और देव शास्त्र के लेखक महोदयजी जिस समय तक इसे किसी प्रमाण से सिद्ध न करें उस समय तक यह विषय साध्य कोटि में रहेगा ।

उपमान प्रमाणके लिये भी प्रथम किसी की आवश्यकता है जिस से वह सिद्ध हो और जब तक प्रत्यक्ष न हो उस समय तक उपमान की सफलता न होगी और अर्थापत्ति प्रमाण भी इस में नहीं घट सकता है।

उपरोक्त युक्तियें से इस प्रकार का परलोक ही अमान्य है। अब रहा यह पक्ष कि प्रत्येक आत्मा मृत्यु के पश्चात उस शरीर के समीप जिसे उसने छोड़ा है उस शव से परमाणु संग्रह करके तदनुसार एक सूक्ष्म शरीर रच लेता है। मृतात्मा सूक्ष्म शरीर अपनी इच्छा से रचता है अथवा शरीर रचने के लिये विवश होती है यदि प्रथम पक्ष है तो प्रष्टव्य यह है। यदि न रचना चाहे तो क्या होगा। और यदि विवश है तो वह कौन सी शक्ति है जो उसे उस काम के लिये विवश कर देती है क्यों कि आप ने कोई अन्य सत्ता मानी ही नहा है। इस लये आप निश्चय से यह नहीं कह सकते कि मनुष्य उत्तम काम करे। क्योंकि कर्मों के फल की आप ने कोई व्यवस्था नहीं की है। और आप बिजली के आघात से मरने वाले का सूक्ष्म शरीर नहीं मानते हैं। जब उसके कर्मों का नाश फल दिये बिना होजाता है तो जो आत्मा शरीर न बनावे उस मे कर्मों का नाश भी वैसे ही होजायगा।

इसी लिये देव समाज का परलोक यज्ञ युक्ति शून्य है विशेष विचार कभी फिर किया जायगा।

१३ वां यज्ञ स्वजाति यज्ञ है इस में मनुष्य अपनी जाति की उन्नति करे यदि अपनी जाति मे कोई कुरीति आगई हो तो उसके दूर करने का यत्न करे अपनी जाति के उन व्यक्तियें पर जिन्हों ने जाति सेवा का काम किया है अभिमान रखे उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखे और यथा शक्ति अपनी जाति के दल बना कर भिन्न २ काम करने का यत्न करे यथाविज्ञानका अनुशीलन विज्ञानकी उन्नति, शिल्प की वृद्धि वाणिज्य का विस्तार साहित्यकी रचना, साधारण शिक्षा का प्रसार, अनाथों और दरिद्रों की रक्षादि का प्रबन्ध करें महाजनों की स्मृति और कीर्तिकी रक्षा के निमित्त प्रबन्ध करे जिससे स्वजाति जनता के सामने रहे और स्वजाति के मनुष्यें द्वारा रचित वस्तुओं को ही व्यवहार में लावे।

स्वजाति भक्त को ध्यान रखना चाहिये वह कही अपनी स्वार्थता से जाति के किसी कार्य को कभी न बिगाड़े इत्यादि

यह सब उत्तम बाते हैं आचार्य दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश मे स्वदेश स्वजाति के विषय मे अनेक स्थानों पर उपदेश दिया है इस समय भारतवर्ष मे इसका मौखिक प्रचार तो पर्याप्त है किन्तु इन बातों को जीवन मे लाने की अत्यन्त आवश्यकता है और मैं भी ईश्वर से प्रार्थना करता हूं वह भारतवासियों को सुबुद्धि दे जिससे वह अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकें।

१५ वां भौतिक यज्ञ है इस प्रकरण मे देवशास्त्र में विशेषतया गृह प्रबन्ध पर बल दिया है प्रथमादेश है भूतों के गुणोंको समझे और उन्हें जान कर अनुकूल गुणों से लाभ उठावे और प्रतिकूल से बचने का यत्न करे और आगे चल कर लिखा है।

गृह प्रशस्त और शुद्ध हो, खिड़कियां वायु के लिये हों उनसे उचित रूप से व्यवहार ले

और गृह में प्रत्येक वस्तु अपने २ स्थान पर नियम पूर्वक रखा करें, गृह को तथा अन्य वस्तुओं को शुद्ध रखे, आंगन में कीचड़ादि न हो, कूड़ा करकटादि का स्थान नियत हो, वहां ही उसे फेंका जाय। अनुचित मोह में फंसकर कुछ खराब न करे इत्यादि।

गृह निर्माण अथर्व वेद कांड ६ सूक्त के मन्त्रों में है जिसका उल्लेख आचार्य्य ने संस्कार विधि में किया है भौतिक यज्ञ में व्यवहार सम्बन्धी उत्तम शिक्षा है।

१५ वाँ यज्ञ मनुष्यमात्र यज्ञ है। इसमें प्रत्येक मनुष्य के साथ अपना सम्बन्ध अनुभव करे और सब से मेल मिलाप रखे और यथा योग्य सम्मान करे तथा बात चीत में सावधान रहे। सत्य और प्रिय बोले। यदि अतिथि बने तो गृही को कष्ट न दे, जैसी उसकी शक्ति हो उसी के अनुकूल रहने का यत्न करे और व्यवहार में जिससे जो प्रण करे उसे पूरा करने का यत्न करे जैसे अमुक वस्तु अमुक समय दूँगा ऐसा कहके उसी समय वह वस्तु दे। कभी विश्वासघात न करे जिसमें उत्तम गुण हों वह यथा शक्ति अन्यों को सिखावे, यदि दूसरे में उत्तम गुण हों तो उसका अनुकरण करे। अपना समाज, जाति देश, राष्ट्र के लिये त्याग भी करे, पक्षपाती न हो, दान शील हो। यथाशक्ति, निराश्रय, दुर्बल, रोगी, पीड़ितादि व्यक्तियों की सेवा सहायता करें।

मेल मिलाप, बात चीत, कामना, भय मैथुन, अनुकरण, हस्तक्षेप, प्रशंसा, विलम्ब खेल संकोच, दान, वास, परिहास, अभियोग और अपवादादि अनुचितरूप से कभी न करे इत्यादि वर्णन इस प्रकरण में किया गया है।

इस यज्ञ में मनुष्य के साथ सद्व्यवहार का विधान है यह संपूर्ण शिक्षा वेद में इस प्रकार दीगई है :—

दृते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षंताम् मित्रस्याहँ चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजुः ३६, १८

भावार्थ—हे परमात्मन्, सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं सब को मित्रता की दृष्टि से देखूं हम परस्पर मित्र दृष्टि से देखने वाले हो।

"माहिर्भूर्मा पृदाकुः॥ यजु ६. १२

ईश्वर उपदेश देते हैं मनुष्यो सर्पवत् दुःखदायी न हो और अपनी शक्ति से अन्यों को विवश करके उनकी कमाई से अपना पेट भरने वाले पृदाकुवत् भी न हो।

इत्यादि अनेक मन्त्रों में इस उपदेश का वर्णन है। वेद की इन प्रतीकों से पाठक जान जावेंगे कि वेद में यह पाठ कितना उत्तम मिलता है। इस समय कठिनाई यही है कि लोग वेद को न पढ़कर तथा सुनकर इधर उधर भटक रहे हैं जगत में यावत उत्तम बातें हैं। उन सबका स्रोत वेद भगवान् ही है, भेद केवल इतना है कि ऋषि मुनि उसी उपदेश को कहते और लिखते समय कह और लिख देते है कियह वेदोपदेश है। न जानने वाले उन्हीं बातों को लिखते समय ऐसा नहीं करते हैं।

आगे १६ वाँ देव गुरु यज्ञ वा महायज्ञ है उस का उल्लेख अगले लेख में होगा। यही मुख्य यज्ञ है यही यज्ञ देव समाज का जीवन है अतः पाठक उसे अवश्य पढ़ें।

आर्त्त—नाद

ले०—पं० जगन्नारायण देव शर्मा, कवि-पुष्कर, विशारद—साहित्य शास्त्री रामनगर

(१)
अब न हृदय में प्रभो ! हमारे शक्ति है !
किसी देव में नहीं भाव या भक्ति है ॥
इसका कारण है अपनी बस हीनता !
पीछे लगी हमारे दुष्टा दीनता ॥

(२)
अभ्याओं का हम पर होता घात है ।
पराधीनता में सारी ही बात है ॥
व्यथा नहीं सुनने वाला कोई कहीं !
शान्ति हमें मिलती है क्षण भर भी नहीं ॥

(३)
शिर पर अत्याचारों का ही भार है ।
कटु व्यवहारों का हम पर भर मार है ॥
कुचल दिया जाता पद से उत्साह है ।
मानवता का बड़ा कठोर प्रवाह है ॥

(४)
हम विपत्ति में पड़े न कुछ अधिकार है ।
सभी ओर से होता अति अपकार है ॥
हाय हाय ! करना ही अपने हाथ हैं ।
और सहायक कौन ? हमारे साथ है ॥

(५)
आर्त्त—नाद तुम सदा हमारा सुन रहे ।
क्या ? उद्धार विचार युक्ति से गुन रहे ॥
त्राहि त्राहि ! अब नहीं सहा जाता हमें !
अब न अधिक मौन रहा जाता हमें ॥

मैं क्या दुखी हूं

ले०---श्रीयुत सिद्धगोपाल जी अध्यापक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

एक दिन एक हरिणी एक सिरस के वृक्ष की छाया में बैठी थी, उसका छोटा बच्चा उसके पास बैठा हुआ उसका दूध पी रहा था। गर्मी का मौसम था, मध्याह्न का समय था और बड़ी सख्त धूप पड़ रही थी। उसी समय धूप से बचाव के लिये एक चिड़िया वृक्ष की डालियों पर आकर बैठ गई और मधुर गान करने लगी।

उसको देख कर हरिणी बोली—ओ सौभाग्यशालिनी चिड़िया ! तू धन्य है। वायुमण्डल में तेरा निवास है, वायु से भी तेज़ तेरी गति है। तू जब चाहे तब पृथ्वी पर उतर आती है और जब चाहे तब आकाशमण्डल में विहार करने लगती है, मेघों के साथ दौड़ लगाती है, तथा दूर, देशान्तरों में समुद्रों के पार यथेष्ट घूमती है। किन्तु मैं बेचारी इस पृथ्वी पर ही कैद रहती हूँ, और अपना सारा जीवन मुझको इस पर ही रेंगते रेंगते बिताना पड़ेगा।

यह सुन कर चिड़िया ने उत्तर दिया—आकाश में विहार करने में, पर्वतों घाटियों तथा समुद्रों को पार करके द्वीप द्वीपान्तरों की सैर करने में बड़ा आनन्द आता है, किन्तु जब मैं यहाँ ऊपर शाखाओं के बीच बैठी हुई तेरे छोटे बच्चे को अपने छोटे २ सुन्दर होठों से तेरा स्तनपान करते तथा इस प्रकार

तेरे ऊपर अपने प्राण धारण करते हुए देखती हूं, तब इस अनोखे मधुर दृश्य को देख कर मेरे जी में आता है कि मेरे ये सब पंख उखाड़ दिये जाते, मेरे डैने तोड़ दिये जाते और अपनी जिंदगी भर में सिर्फ एक बार ऐसा स्वर्गीय सुख प्राप्त करने के लिये मैं सारी जिंदगी पृथ्वी पर ही बिता देती।"

वृक्ष की शाखाओं में से वायु का एक झोंका आया और खड़खड़ाती हुई पत्तियों में से काँपती हुई आवाज़ आई यदि,,—"हरिणी अपने को अधन्य समझती है और अपनी दशा पर शोक करती है, तो बेचारे सिरस के पेड़ को क्या समझना चाहिये। तू सब जन्तुओं में सब से तेज़ दौड़ती है। तू प्रातः एक जगह उठती है, भूमि तेरे पैरों के नीचे उड़ने लगती है और सायंकाल को तू पचासों मील दूर जा पहुंचती है किन्तु सिरस का पेड़ उसी ज़मीन पर अपना बुढ़ापा बिता रहा है जहाँ सदियों पहले उसका बीज अंकुरित हुआ था। वायु मेरी शाखाओं को कँपाती है, मानो वह मुझको साथ उड़ा ले जाना चाहती है, किन्तु वह उड़ी चली जाती है और मुझको वहीं का वहीं छोड़ जाती है। पक्षी मधुरगान करते हुए मेरे पास से उड़े चले जाते हैं, सायं समय पशु मेरे पास होकर सुन्दर सरोवरकी ओर जल पानार्थ चले जाते हैं। गर्मी आती है, बरसात आती है, फिर जाड़े आते हैं, फिर गर्मी फिर बरसात और फिर जाड़े आते हैं, और यही क्रम लगातार चलता है और इस प्रकार सैकड़ों बार वस्तुएं मेरे सामने गुज़र गईं, किन्तु मैं टस से मस भी नहीं हुआ। मेरा पालना ही मेरी क़ब्र बन जायगा।"

तदनन्तर वृक्ष की जड़ में से एक ध्वनि आई जो कि न तो हरिणी, न चिड़िया, और न वृक्ष ने ही कभी सुनी क्योंकि नीचे की पत्थर की चट्टान के एक बालुका कण ने कारागार में से कहा :—

"क्या तुम सब दुखी हो ? यदि तुम सब अपने को दुखी समझते हो तो मैं किस कोटि में रक्खा जाऊं ? तुम सब जीवित चेतन हो। ओ वृक्ष ! तुझ पर हरेक साल सुन्दर सुगन्धित, चित्त को मस्त कर देने वाले फूल आते हैं, तू मलयानिल से क्रीड़ा करता है। पक्षियों को आश्रय देने के लिये तेरी छाती खुली हुई है। अब मेरी ओर देख और लज्जित हो। वस्तुतः मैं ही अधन्य हूँ(सच्चा दुखी हूँ)

वृक्ष ने उत्तर दिया—"यह सच है कि हम में जीवन है और तुझ में नहीं है। किन्तु जीवन की छाया स्वरूप मृत्यु का भी हमको ही सामना करना पड़ता है तुम को नहीं। मेरी सन्तान वे सुन्दर सुन्दर फूल हरेक वर्ष सिर्फ मुरझाने के लिए ही पैदा होते हैं। जहाँ वे चले गए वहीं मुझको भी शीघ्र ही जाना पड़ेगा। किन्तु तुम संसारमें जो अन्तिम सूर्योदय होगा उसके प्रकाश में चमकते रहोगे

स्वास्थ्यरक्षा

लेखक—श्रीयुत हरिशरण जी विद्यालङ्कार

१. नानाविध कामनायें

इस संसार में मनुष्य भिन्न भिन्न कामनाओं से प्रेरित होकर कार्य करते दिखाई देतेहैं। सबकी कामनायें भिन्न२ होती हैं। 'ये भी वस्तु मुझे मिलजाय" येभी भोग मुझे प्राप्त हो जायं ' इस प्रकार काम-

नायें करता हुवा मनुष्य सम्पूर्ण जन्म को समाप्त कर देता है। एक विद्वान् इसी भाव को "इति मे मे कुर्षाणं कालवृको हन्ति पुरुषाजम्" इन शब्दों में रखता हुआ कहता है कि 'मे' 'मे' अर्थात् मेरी, मेरी यह भी चीज़ मेरी होजाय, यह भी चीज़ मेरी होजाय–इस प्रकार बकरी की तरह 'मे' 'मे' करती हुई पुरुष रूपी बकरी को काल-समय-रूपी भेड़िया मारलेता है। एवं मनुष्य कामनायें करता रहता है, करते२ उसका जन्म समाप्त होजाता है।

यदि इन कामनाओं की विविधता की ओर कोई मनुष्य ध्यान दे; और नाना विध कामनाओं को अङ्कित करना चाहे तो उसे कई जन्मों की आवश्यकता होगी, एक जन्म में इस काम का होना अत्यन्त दुष्कर ही नहीं प्रत्युत असम्भव है। वस्तुतः जितने मनुष्य हैं उतनी ही कामनायें हैं। किन्हा दो मनुष्यों की कामनायें आपस में मिलती नहीं। एवं लगभग दो अरब की जनसंख्या वाले इस संसार की कामनाओं को अङ्कित करने के लिये १३ करोड़ फुलस्केप कागजों की आवश्यकता होगी। वस्तुतः यह संख्या बड़ी भयानक है।

परन्तु यदि इन नानाविध कामनाओं का हम वर्गीकरण करना चाहें, तो सब कामनाओं को हम चार शीर्षकों के अन्दर लासकते हैं। वे चार शीर्षक हैंः—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं को वैदिक साहित्य में 'चतुर्विध--पुरुषार्थ' ये नाम दिया जाता है। कई मनुष्य यज्ञ दान इत्यादि द्वारा उत्तम कर्मों को करके धर्म--पार्जन करते हैं और उससे स्वर्ग को पाने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे अपने जीवन का उद्देश्य अर्थ (धन) को ही बना लेते हैं; सत्यानृत (संस्कृत में यह वाणिज्य का नाम है--सत्य और अनृत) के द्वारा धन कमाना यही उनका लक्ष्य होता है; उनकी सब क्रियायें धनोपार्जन में ही केन्द्रित होती है। इनके अतिरिक्त एक तृतीय प्रकृति के भी मनुष्य होते हैं उनका परम उद्देश्य कामोपभोग होता है "खाओ, पीवो उड़ावो" 'अथवा 'कोई जीवो कोई मरो, सुथरा घोल पतासा पीवो' यही उनके जीवन का motto होता है। पशुओं की तरह खाने की इच्छा होने पर वे खाने लगते हैं, सोने की इच्छा होने पर सो जाते हैं। वस्तुतः ये भोगयोनि में होते हैं, पशुओं से इन का नाम मात्र ही भेद होता है। इनको क्रमशः हम सत्व रज और तम प्रकृति वाले कह सकते हैं। इन तीनों गुणों से ऊपर उठे हुए 'त्रिगुणातीत' पुरुष भी हुवा करते हैं। ये बिरले ही होते हैं एकान्त में, शान्त जङ्गलों में श्रद्धा और तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए उस परमपिता की उपासना में ये निमग्न रहते हैं। इनकी एकमात्र कामना 'इस संसार से मुक्त होकर उस परमेश्वर से मिलने की होती है। इन्हें और किसी चीज़ की चाह नहीं होती।

एवं हम नानाविध कामनाओं को 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' इन चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

२ स्वास्थ्य रक्षा की आवश्यक्ता

१ इन चतुर्विध पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये स्वास्थ्यरक्षा आवश्यक है। स्वास्थ्य के न होने पर यज्ञ योगादि का करना सम्भव नहीं; धन कमाने के लिये देश देशान्तर में जाना हो नहीं सकता, कामोपभोग की तो कथा ही क्या है। स्वास्थ्य के न होने पर स्वादु से स्वादु वस्तु जिह्वा को आनन्द देने में समर्थ नहीं होती, नींद नहीं आती, अच्छे

अच्छे स्थानों में जाने को जी नहीं करता मित्रों की आनन्दमयी बातें, अस्वास्थ्य में, कानों को कर्कश मालूम देती हैं। एवम् स्वास्थ्य के न होने पर धर्म अर्थ काम की सिद्धि नहीं हो सकती।

मोक्ष भी शारीरिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। इसको समझने के लिये कठोपनिषद् में शरीर को दी गई रथ की उपमा का ध्यान कीजिये।

" आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
कठ १।३।३.

इस शरीर रूपी रथ में (इन्द्रियाणि हयान्याहुः) दश वेगवान् घोड़े जुते हुए हैं। ये रथ हमें इस लिये मिला है कि 'इसके द्वारा संसार के विस्तृतमार्ग से पार होकर हम मुक्ति के मन्दिर में प्रविष्ट हो सकें। यदि ये रथ हमेशा ही बिगड़ा रहा, हमेशा इसे मरम्मत की अपेक्षा रही, तो हम यात्रा किस दिन करेंगे? इस रथ के द्वारा यात्रा पूर्ण न होने पर फिर और रथ लेना पड़ेगा और एवं संसार से मोक्ष न होगा। इसी बातको आप प्रकारान्तर से इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि उस मालिक--मकान परमेश्वर से यह मकान हमें १०० साल के पट्टे पर मिला है। किरायेदार की हैसियत से भी हमारा यह कर्तव्य है कि हम १०० वर्ष के अनन्तर मकान को उसी रूप में लौटायें जिस रूप में कि हमें यह मिला था। इस दृष्टि से भी स्वास्थ्यरक्षा आवश्यक हो जाती है। यदि हमने इस मकान को १०० वर्ष से पूर्व ही गिरा दिया, तो हमें नया मकान बनाकर अपने मालिक को देना होगा। दूसरे शब्दों में इस संसार से हमारी मुक्ति न होगी, हमें फिर जन्म धारण करना पड़ेगा।

एवम् 'धर्मार्थ काम' के साथ २ 'मोक्ष' के लिये भी स्वास्थ्यरक्षा की आवश्यकता स्पष्ट है। यही भाव कविके द्वारा 'धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्" इन शब्दों में कहा गया है।

साथ ही इस बात का भी आप ध्यान रखिये कि वेद में इस शरीर को "अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या" इन शब्दों में देवपुरी कहा गया है। हमारा कर्तव्य है कि हम रोगादि के द्वारा इसे अपवित्र न होने दें अन्यथा यह राक्षस नगरी होजायगी।

३ व्यायाम

एवम् स्वास्थ्यरक्षाके अत्यन्त आवश्यक, होने पर, यह विचारणीय होजाता है कि 'इसकी रक्षा के क्या उपाय हैं? (क) स्वास्थ्य रक्षाके लिये सबसे मुख्य साधन व्यायाम है। व्यायामसे शरीरके अन्दरका विष पसीने के रूप में रोमकूपों के द्वारा बाहिर निकल जाता है। यही विष शरीर के अन्दर रहजाय तो मनुष्य में सुस्ती को, आलस्य को उत्पन्न करता है (सर्पदंश होने पर मनुष्य को विषाधिक्य के कारण ही अतिशय तन्द्रा उत्पन्न होती है। इसी लिये साधारणतया व्यायामशील मनुष्य हलका फुलका होता है; वह अपने को भारी, अनुभव नहीं करता; मृगवत् वह कूदफांद सकता है। इसके विपरीत व्यायाम न करने वाला क्रियाशील नहीं होता, वह अपने को हर समय भारी सा मालूम करता है और विषों के अधिकाधिक सञ्चित होते जाने के कारण वह रोगों का शिकार होजाता है। परन्तु व्यायामी मनुष्यसे रोग इस प्रकार दूर भाग जाते हैं जैसेकि शेर से हरिण। इसपर बुढ़ापे का भी शीघ्र आक्रमण नहीं होता, देह में शिथिलता नहीं आती मुटापा (corpulence) उत्पन्न नहीं होता, और साधारणतया विरुद्ध भोजन भी

विकार को न पैदा करके पच जाता है। व्यायाम के इन गुणों का आयुर्वेद के ग्रन्थ भावप्रकाशमें निम्न श्लोकोंमें उल्लेख हुवाहैः-

"लाघवं कर्म सामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता।
दोषक्षयो ऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुप जायते॥
व्यायाम दृढ़गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन।५७
विरुद्धंवा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते।
भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः। ५८
न वैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति
न चास्तिसदृशंतेनकिञ्चित्स्थौल्यापकर्षकम्५९

उपरोक्त श्लोक भावप्रकाश में पूर्वखण्ड के ४६ प्रकरण के हैं। उनमें व्यायाम से रोगों का न होना स्पष्ट लिखा है। इस विषयमें यह बातभी ध्यान देने योग्य है कि 'सब दूधों की अपेक्षा बकरी का दूध श्रेष्ठ है, यह सब रोगों का दूर करने वाला है। क्षयरोगी कोभी इस का दूध गुणकर होने से दिया जाता है।' बकरी के दूध की इस श्रेष्ठता के जहां अन्य कारण हैं वहां साथ २ ही उसका व्यायाम शील होना भी उसके दूध को रोगनाशक बनाता है।

"अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवणात्।
स्तोकाम्बुपानाद व्यायामात् सर्वरोगहरं पयः। भा. पू०, दू० १९

अब व्यायाम बकरी के दूध को भी रोग नाशक बनाने में कारण है तो क्यों नहीं व्यायाम से हमारे शरीर के रोग भी नष्ट होजांयगे ?

वेद के कोष निघन्टु में 'पृतना' यह शब्द मनुष्यवाचक आया है। वहां 'प्र-व्यायामे' इसधातु से इस शब्द की निष्पत्ति होती है। और एवं सूचना मिलती है कि मनुष्य के लिये व्यायाम आवश्यक है।

" यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं बलमाददे "

अथर्व। ६। १३५। १

इस अथर्व के मन्त्र में व्यायाम को बल प्राप्ति का साधन बतलाया है।

"देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धंसर्वारक्षांसि व्यायामे सहामहे
अ० २। ४। ४

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि व्यायाम के होनेपर'जङ्गिडमणि'इस औषधि की सहायता से हम रोगों पर विजय पाते है।

एवं वेदकी दृष्टिमें व्यायाम आवश्यक है। स्मृतियोंमें राज प्रकरणमें राजा की दिनचर्या के उल्लेख के समय अन्य कार्यों के अनन्तर

" व्यायम्याप्लुत्य मध्यान्हे भोक्तुमन्तः पुरं विशेत् "

इस श्लोक में स्पष्ट व्यायाम का विधान हुवा। है ब्रह्मचारी के लिये बहुत सम्भव समिधाहरण, द्विकालभिक्षा, तथा गोचरणादि कार्यों में पर्याप्त व्यायाम होजाने मे कारण अन्य व्यायाम की आवश्यकता नही समझी गयी।

श्री स्वामी दयानन्द जी भी आदि सत्यार्थ प्रकाश में पृ० ६० पर व्यायाम की शिक्षा देते हुएलिखते हैं कि "जब १६ वर्ष का पुरुष होय तब से लेके जब तक वृद्धावस्था न आवे तब तक व्यायाम करे।"'४० बैठक करे और ३०, वा ४० दण्ड करे। कुछ भीत खम्भे वा पुरुषसे बल करे,फिर लौट कर करे।'

एवं व्यायाम करना आवश्यक है।

४ व्यायामाधिक्यंहेय है

परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्यायाम अधिक न हो जाय। व्यायाम को

बिलकुल न करने की तरह अधिक व्यायाम भी नुकसानदेह है। श्री स्वामी जी व्यायमा शिक्षा में व्यायाम के लाभों को बतलाने के अनन्तर लिखते हैं कि "परन्तु अधिक न करना। अधिक के करने से उतने गुण न होंगे क्योंकि सब धातु शुष्क और रूक्ष होजाते हैं उससे बुद्धि भी वैसी रूक्ष होजाती है और क्रोधादिक भा बढ़ते हैं, इससे अधिक न करना चाहिये।" आ० स० पृ० ६१ भाव प्रकाश में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि:—

"अति व्यायामतः कासोज्वरश्छर्दिःश्रमक्लमः
तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं चजायते।'
पू० ४र्थ प्र० ६४

एवं अधिक व्यायाम से शरीर क्षीण हो जाता है। उसमें Consumption होजाता है। इसी लिये आयुर्वेद की आज्ञा है कि:—

"प्राक् श्रमात् व्यायामवर्जी स्यात्"

अर्थात् मनुष्य श्रम (थकावट) होने से पूर्व ही व्यायाम को छोड़ दे। साधारणतया आधे बल से व्यायाम करे। आधे बल से अभिप्राय यह है कि;—जब हृदयस्थवायु शीघ्र मुख में प्राप्त होने लगे, मुख में कुछ शुष्कता उत्पन्न होजाय। उस समय व्यायाम समाप्त करदे। (आ० पू० ४४ प्र० ६१)

एवं व्यायाम करना आवश्यक है, उसे अधिक न करना चाहिये। परन्तु उसके साथ

५. पौष्टिक भोजन।

भी आवश्यक है। इसके न होने पर शरीर अवश्य क्षीण हो जायगा। व्यय होगा, आय न होगी, परिणाम क्षय (Consumption) के अतिरिक्त क्या होगा? इसी लिए व्यायाम से लाभ उन्हीं को हो सकता है जो पौष्टिक भोजन करें। "स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम्" भा० पृ० ४र्थ५९ यहां 'स्निग्धभोजिनां' यह शब्द पौष्टिक भोजन की आवश्यकता को स्पष्ट कर रहा है। इसके अभाव में व्यायाम का परिणाम हितकर न होगा।

वेद में 'यदश्नाति' इन शब्दों को बलं कुर्वे' इन शब्दों से पूर्व रख कर भोजन को व्यायाम से भी अधिक महत्त्व दे दिया है। इसी सूक्त में यह भी कहा है कि 'खूब खाना चाहिए तथा बहुत सारा दूध पीना चाहिए' थोड़े भोजन से काम न होगा।

यद्गिरामि संगिरामि समुद्र इव संगिरः ६।१३५।३। यत्पिबामि संपिबामि समुद्र इव संपिबः ६।१३५।३।

समुद्र वत् खाना चाहिए तथा समुद्र की तरह पीना चाहिये। तभी बल की वृद्धि होगी। थोड़े भोजन से काम न चलेगा।

स्मृतियों में भी जहां भोजन की मात्रा का विचार हुआ है वहां ब्रह्मचारी के लिए पर्याप्त्तु भोजन करनेका उल्लेख है।

"अष्टौ ग्रासामुनेर्भक्ष्याः, वानप्रस्थस्य षोड़श द्वात्रिंशतु गृहस्थस्य, अमितं ब्रह्मचारिणः"

अर्थात् सन्यासी ८, वानप्रस्थ १६, और गृहस्थ साधारणतया ३२ ग्रास खाये परन्तु ब्रह्मचारी 'अमित' बिना मपा हुवा बहुत भोजन करे। उसको भ्रमण में पर्याप्त व्यायाम होता है सो थोड़ा भोजन करते हुए उसका शरीर ठीक न रह सकेगा।

ब्रह्मचारी को उपवास भी न करना चाहिए। उसका उपवास यही है कि वह (उप) गुरु के समीप (वासः) निवास करता है।

६. भोजन विषयक एक दो अन्य बातें

भोजन पैाष्टिक तथा पर्याप्त होना चाहिये यह हम देखचुके। इसके अतिरिक्त हमें निम्न बातें का भी ध्यान करना चाहिए:

१ आज कल साधारणतया सभ्य संसार में भोजनान्तर फल खाने को परिपाटी है। इंगलिश में सफल भोजन को Dessert यह नाम देते हैं। परन्तु आयुवद में फलें को भोजन से पूर्व खाने का विधान है।

"फलान्यादैा समाश्रीयाद्धाडिमादीनिबुद्धिमान्
विना मोच फलं तद्वद् वर्जनीया च ककंटी।
भा० पृ० १३२

मृणाल बिसशालूक कन्देक्षु प्रभृतीन्यपि।
पूवमेव हि भोज्यानि न तु भुक्त्वा कदाचन।
१३३

यहां स्पष्ट लिखा है कि 'केला' और 'ककड़ी' को छोड़ कर शेष सब फल भोजन से पूर्व ही खाने चाहिए भोजन के पीछे नहीं।

२ दूसरी बात यह है कि दही को यदि खाना हो तो उसे मीठा व नमक बिना मिलाए न खाया जाया "

न रात्रौं दधि भुञ्जीतनच निर्लावणं तथा।
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नचाप्यघृत शर्करम्। २५२

अर्थात् दही रात में न खाय। नमक, मूंग का दाल, मधु तथा घी और खांड के बिना भी इसका प्रयोग न करे। साधारणतया इस बात का भी ध्यान रखे कि 'कुर्यात् क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्त कदाचन" १६२

अर्थात् भोजन के अन्त में कभी दही न खाये। सदा भोजन को दुग्धपान के साथ समाप्त करे। भोजन के अन्त में पिया हुआ दूध सब प्रकार की विषमताओं को दूर करके समता ले आता है।

३ तीसरे इस बात की ओर ध्यान दिलाना है कि भोजन के बाद धीमे २ टहलना वा लेटना ठीक है। दौड़ना वा बैठना ठीक नहीं। भोजन के बाद बैठने से सुस्ती उत्पन्न होती है इधर उधर भागने से आयु को क्षीणता होती है। इसके विपरीत लेटनेसे शरीर की पुष्टि और धीमे २ टहलने से आयु वृद्धि होतो है। इग्लिश में एक कहावत है:—

"After dinner rest a while;
After supper walk a mile

एवं प्रातः काल के भोजन के अनन्तर थोड़ा लेटना तथा सायं के भोजन के बाद थोड़ा घूमना श्रेयस्कर है।

इस प्रकार इन तीन बातों की ओर ध्यान दिला कर हम अपना विषय समाप्त करते हैं। परन्तु समाप्त करने से पूर्व एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक है।

७. सब से श्रेष्ठ व्यायाम (भ्रमण) है

हम ऊपर वेद के प्रमाणों द्वारा देख चुके हैं कि मनुष्य के लिये व्यायाम आवश्यक है। उन मन्त्रों के साथ निम्न मन्त्र भी विचारणीय है।

"यद्धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्
ततस्त्वं पुनरायासि पुत्राणां नो असः पिता"
अ० ६। १३१। ३।

अर्थात् यदि तू एक दिन में (३ कोश ५ योजन=८ योजन × ४=३२ कोस + १६॥= ४८ मील) ४८ मील जाकर फिर लैाट आता है तब तुझे पिता बनने का अधिकार है। एवं शक्ति का प्रमाण भ्रमण को लिया गया है। और साथ ही प्रति दिन भ्रमण करने वाला व्यक्ति ही एक दिन में इतने मील चल सकता है। इस वेद मन्त्र से इस बात की सूचना मिलती है कि 'भ्रमण' ही मनुष्य के लिये श्रेष्ठ व्यायाम है, यही स्वभाविक है।

संक्षेपतः हमने यह देख लिया कि:-

१. नाना विध कामनाओं को 'धर्मार्थ काम मोक्ष' इन चार भागों में बांट सकते हैं।

२. इन सब की पूर्ति के लिये स्वास्थ्य-रक्षा आवश्यक है।

३. स्वास्थ्य रक्षा के लिये व्यायाम आवश्यक है,परन्तु वहअधिक न करना चाहिये।

४. व्यायाम के साथ पौष्टिक भोजन भी करना चाहिये, अन्यथा शरीर में क्षीणता उत्पन्न होजायगी।

५. भोजन से फलों को पहले खालेना चाहिये। दही का मठे के साथ प्रयोग करना श्रेष्ठ है, भोजनान्तर धीमे २ टहलना वा लेटना ठीक है।

६. भ्रमण सब से श्रेष्ठ व्यायाम है।

आत्मिक उन्नति के साधन

ले० —श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति।

(छन्दोग्योपनिषद्)

आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यःमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। (बृहदारण्यक)

लोकेऽस्मिन् द्विधा निष्ठा पुराप्रोक्तामयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(गीता)

उपनिषद् के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से सिद्ध है कि जीवात्मा के लिये आत्मिक उन्नति की चरम सीमा आत्मा की प्राप्ति है किन्तु उन्नीसवीं सदी में जब रोटी के न मिलने से चोटी का बचाना भी कठिन हो गया है उस समय केवल उपनिषदों के वचनानुसार आत्मिक उन्नति का एक मात्र ध्येय ब्रह्मप्राप्ति को मान उस ग्रन्थि को सुलझाने में जीवन संग्राम में जान माल की परवा न करके बड़ी, निर्भीकता से मरने मारने पर उतारू श्रोतागणों को शायद इस सदी के व्याख्याताओं के व्याख्यान तथा लेखकों की लेखनी में अकर्मण्यता की गन्ध मालूम पड़े। पर हम भी इस नवीन युग के नवयुवक हैं, संसार सागरके वासी|कच्छ मच्छोंमें से एकहैं, फिर हम केवल वही ब्रह्म का रोना नहीं रोयेंगे इसी लिये प्रथम ही उद्धरणों में गीता का "ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।" उद्धृत कर दिया है। आज की कान्फ्रेन्स का काम आत्मिक उन्नति के साधनों पर विचार करना है। आत्मिक उन्नति का अर्थ सब काम छोड़ कर घोर वन में किसी नदी के किनारे बैठ कर केवल जीव ब्रह्म की गुत्थी को सुलझाना नहीं किन्तु जीवन साँग्राम में सैकड़ों गोलियों और तलवारों को खाकर अपने देश और जाति की उन्नति के लिये मरना भी है। जो संसार से उदासीन होकर केवल ब्रह्मप्राप्ति के काम में लग जाता है उसे हम आदर की दृष्टि से देखते हैं, निन्दा नहीं करते। आत्मा की प्यास भगवान् कृष्ण के कथनानुसार कर्म और ज्ञान के जल से शान्त होती है। अच्छा होगा यदि हम कर्मवाद की चटपटी चटनी को ज्ञानवाद की कड़वी औषध के बाद चटावें। प्रकृति का नियम है प्रत्येक मनुष्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति चाहता है। यह विषय विवा-

दास्पद नहीं कि सुख से मनुष्य का पेट कभी नहीं भरता। यह सुख का खाजा ऐसा नहीं जिस को खाकर पेट भर जाता है परन्तु यह खीर के उस स्वाद की तरह है जिस से पेटभर जाने पर मन नहीं भरता। आशय यहहै कि पारलौकिक सुखके सामने सांसारिक सुख कुछ नहीं। और क्या ही अच्छा हो कि मनुष्य को पारलौकिक सर्वोत्कृष्ट सुख मिल जावे। हमारी समझ में मनुष्य की सारी शक्तियाँ उस को आखिरी मंजिल पर पहुँचा हुआ देख लौट आवेंगी और "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" यह यजुर्वेद का वचन चरितार्थ होजायगा। परन्तु महर्षि गौतम हम लोगों को इतना सस्ता छोड़ने वाले नहीं, जो पैड़ियों को पार करनेके बिना ही कोठे पर पहुंचा दें। "प्रमाणप्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलं जातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निःश्रेयमाधिगमः" के नियमानुसार हमें प्रमाण प्रमेयादि के सीढ़ी चढ़नी पड़ेगी। सारांश यह है कि मिथ्याज्ञान शिकारी के समान है जो पक्षी रूपी मनुष्यों को रागद्वेष रूपी चावल दिखा कर फँसाते हैं। और प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति की संभावना नहीं। इस लिये मिथ्याज्ञान को दूर करने के लिये १६ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है और जिस ज्ञान के बाद मनुष्य मोक्ष के परमसुख को प्राप्त करता है, गौतम मुनि के मतानुसार तो यही ऐसी अलभ्य वस्तु है जिसको पाकर मानवजीवन सफल हो जाता है। वैशेषिककार कणाद मुनि भी गौतम के रास्ते पर हैं। "यतोऽभ्युदनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" के अनुसार धर्म को अभ्युदय और निःश्रेयस् का कारण मानते हैं। अर्थात् जिससे ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख हो वह धर्म है। और इन की सिद्धि भी द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय के तत्वज्ञान से ही होती है। इन के ज्ञान का साधन सीधा नहीं। किन्तु संसार को पार कर के ही मानव जीवन के उद्देश्य भूत ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। सांख्यदर्शनकार कपिलमुनि ने भी "अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" सूत्र में जीव का परमकर्त्तव्य आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को बतलाया है। और इन की निवृत्ति का कारण २५ तत्वों का यथार्थ ज्ञान है।

मतलब यह है कि जब तक मनुष्य को प्रत्येक तत्त्व का अभ्रान्ति ज्ञान नहीं होगा वह ईश्वर की सत्ता को निश्चय पूर्वक स्वीकार नहीं कर सकेगा और प्रकृति के प्रपंच में फंसा रहेगा। योगदर्शनकार पतंजलि के मत में भी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश से छुटकारा पाने से ही मोक्ष की प्राप्ति होता है। इन दुःखों से छुटकारा योग से मिलता है। योग क्या है? बतलाते हुए आचार्य्य ने लिखा है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् योग चित्तवृत्ति की एकाग्रता का नाम है। चित्तवृत्तिनिरोध का उपाय भी उन्होंने अभ्यास और वैराग्य बतलाया है। वास्तव में सब रंगबिरंगी चीज़ों को देख कर आंख मूंद लेना, वंशी की मधुर आवाज़ सुनकर कान मूंद लेना, एवं स्वादिष्ट भोजनों को देख कर जिह्वा थाम लेना ही कठिन है। संसार के सैकड़ों प्रलोभन मनुष्य को पद पद पर आकर्षित करते हैं जहाँ वह ज़रा सा फिसला मानो गहरे गह्वर मे चला गया। योगदर्शन मे योग का वर्णन जिस प्रकार किया गया है उस मे कट्टरता की संकीर्णता या उदारता का विस्तार नहीं। ईश्वरप्राप्ति

के साधन किसी मजहब या पुस्तक के नाम पर नहीं गढ़े गए हैं। योग के ८ अङ्ग हैं योगदर्शन में यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि का ब्यौरेवार वर्णन है। इसमें कहीं भी पक्षपात की गन्ध नही है। इस में कुरान की तरह कुरानी को मुक्ति मिलने का निर्देश नहीं ।

अस्तु ! हमने दर्शनों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव जीवन का ध्येय क्या है ? और दर्शनकार आत्मिक उन्नति का कौन सा रूप हमारे सम्मुख रखते हैं। सारांश यह है कि वैदिक धर्म में आत्मिक उन्नति के साधन स्पष्ट हैं। प्रत्येक वस्तु का याथातथ्य ज्ञान हो आत्मिक उन्नति की पराकाष्ठा है। मानवजीवन के सिद्धान्तों के विषय में उद्धृत दर्शनों पर कोई किसी मत के आधार पर पक्षपात का दोषारोपण नही कर सकता। इस विषय में दर्शनों को प्रामाणिक मानने वाले किसी भी मतवालों का मतभेद सम्भव नहीं। हमारे सिद्धान्तों से वह सर्वथा सहमत हैं। कम से कम इस आत्मिक उन्नति के साधनों को हिन्दू धर्म के सम्प्रदायों से उत्कृष्टता दिखाने की आवश्यकता नह ं जान पड़ती। मुसलमान या ईसाई धर्म वाले भी आत्मिक उन्नति की पराकाष्ठा मुक्ति को ही मानेंगे किन्तु वह स्वयं ही हमारे इतने उदार साधनों की अपने संकीर्ण साधनों से तुलना करेंगे तो स्वयं लज्जित होंगे क्योंकि मुसलमानों के अनुसार मुसलमानी धर्म को अङ्गीकार किये बिना मुक्ति नहीं मिल सकती ईसाई मत में भी प्रविष्ट हो कर पाप को बिना क्षमा कराये मुक्ति नहीं मिल सकती इसलिए वह भी विशाल वैदिकधर्म के आगे क्षुद्र है और इसलिए सूर्य्य के सामने दीपक की भाँति उसके आगे नहीं ठहर सकता।

हम पहले कह चुके हैं कि मोक्षप्राप्ति आत्मा के लिए सर्वोत्कृष्ट सुख है परन्तु आत्मिक उन्नति के लिए जो साधन हमने दर्शनों के आधार पर बतलाए हैं उन के लिए संसार को पार करना पड़ता है। दर्शनों ने भी मोक्षप्राप्ति के लिए पदार्थों या तत्वों का ज्ञान आवश्यक माना है। सार्वजनिक उन्नति से मनुष्य को सुख मिलता है। वैदिक धर्म में जीवन का कार्य्यक्रम ही ऐसा बनाया गया है। चार आश्रमों का विभाग ही बड़ी खूबी से किया गया है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ में तत्वज्ञान की प्राप्ति और मनन एवं शारीरिक और सामाजिक उन्नति का अवकाश देकर अन्तिम वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम में आत्मिक उन्नति एवम् मोक्ष साधन का समय नियत किया गया है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि आत्मिक उन्नति करने के लिए हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना जरूरी है। कुछ न करने का नाम योग नहीं, उस को गीता में 'मिथ्याचार' कहा गया है। "कर्मेन्द्रियैः कर्म योगमसक्तः स विशिष्यते" अर्थात् वह पुरुष बहुत बढ़ा हुआ है जो काम करता है पर फसता नहीं। वेद के सैकड़ो मन्त्रों मे परमात्मा से धन बलादि की प्रार्थना का निर्देश है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" इत्यादि स्थलों में साँसारिक वस्तुओं को वैराग्यभाव से भोगने की खुली आज्ञा है।

इस का अभिप्राय स्पष्ट है कि संसार मिथ्या नहीं। इस में रहना पाप नहीं पर पुण्य है। अब विचारणीय विषय यह है कि संसार में क्या कर्म करें। क्या पेट परस्ती में जीवन के इने गिने दिनों को काटकर कीड़े मकोड़े की भांति मर जाना कर्मवाद है? कभी नहीं। कर्मवाद का सच्चा आदर्श आर्यसमाज के छठे नियम—"संसार का

उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, सामाजिक तथा आत्मिक उन्नति करना"। चाहे कोई इस नियम से सहमत इस लिये न हो कि यह आर्यसमाज का है किन्तु इस परोपकार के सिद्धान्त से कोई इन्कार नहीं कर सकता। कर्मवाद का आधार परोपकार माना जाय तो कोई हानि नहीं। राम; कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, दयानन्द आदि जितने कर्मयोगी संसार में हुए उनकी जीवनी परोपकार से परिपूर्ण है। अब इस तरह की आत्मिक उन्नति का आधार बतलाते हुए अन्य मतमतान्तरों से वैदिक धर्म की विशेषता की चेष्टा करेंगे। इस प्रकार की उन्नति के लिये हम चार बातों को आवश्यक समझते हैं। एकेश्वरवाद, सत्य, बुद्धिवाद और विश्वप्रेम। इन चारों में से यदि एक भी हटा दिया जावे तो हम आत्मिक उन्नति में पिछड़ जावेंगे। एक से अधिक ईश्वर की कल्पना से मिथ्या भय और अन्धभक्ति उत्पन्न होती है। सत्य को निकाल देना मिथ्या ज्ञान से असत्य को सत्य मानने वाले के लिये असत्य को सत्य से विशेषता देना है। बुद्धिवाद न होने से लोग, पंडा पुरोहित और मौलवी, मुल्लाओं के पीछे आंख मूंद के जावेंगे और विश्वप्रेम के बिना मनुष्य मनुष्य से घृणा करने लगेगा। आशय यह है कि इन चार ईटों ही से आत्मिक उन्नति की दीवार चुनी गई है और जिस धर्म में जितनी ईटें निकलती जाती हैं उसकी दीवार नीची होती जाती है। हिन्दू हमारे हैं। उनकी और हमारी प्रायः सभी बातें मिलती जुलती हैं परन्तु बुद्धिवाद और विश्वप्रेम की ईटों का छोटा सा भी टुकड़ा उनकी दीवार में नहीं रह गया है इसी लिये सनातनधर्म सांसारिक उन्नति में पिछड़ गया है। बुद्धिवाद के लोप से उनकी मति ऐसी हो गई है कि उनके यहाँ जो जो कहदे उसके पीछे हो लेंगे। छोटी २ किस्से कहानियों का भी खंडन करने में वह हिचकते हैं क्योंकि उस को भाषा संस्कृत है। मुझे एक दिन शास्त्रार्थ की बात याद है जब दो प्रसिद्ध पंडितों का श्राद्ध पर शास्त्रार्थ हो रहा था। आर्यसमाजी पंडित ने ऋषिपंचमी की कथा पेश कर श्राद्ध में भोजन खिलाने पर भी तृप्ति नहीं होती सिद्ध करना चाहा। उस में एक पद था "श्राद्ध कृत्वा विधानतः" अर्थात विधान पूर्वक श्राद्ध किया। बार २ इस पद को दिखलाकर उत्तर माँगा जा रहा था किंतु विद्वान पंडित उस कथा की सत्यता पर ही झगड़ते रहे और अन्त में एक मजेदार समाधान दिया गया। अर्थात् विधानतः का अविधानतः संधिच्छेद कर दिया गया। यह दिल्लगी के लिये नहीं लिखा गया है मगर इसके द्वारा यह सिद्ध किया जा रहा है कि वर्तमान सनातनधर्म में बुद्धिवाद नाम लेना पूर्वजों की कीर्ति मिटाने के समान समझा जाता है। वहां विश्वप्रेम की तो और अधिक दुर्दशा है। हम वर्णव्यवस्था को वैदिक मानते हैं पर मनुष्य को मनुष्य समझते हैं। हमारे सम्मुख वेदों का ऐसा कोई मन्त्र आज तक नहीं आया जिस में लिखा हो कि अमुक वर्ण नीच है और अमुक उच्च। अब मुसलमानों को लीजिये वहाँ भी तो बुद्धिवाद और विश्वप्रेम की ओर अधिक दुर्दशा है। बुद्धिवाद देखना हो तो एक परदा—प्रथा का ही उदाहरण ले लीजिये। मुसलमान जानते हैं परदा सैकड़ों दोषों की ख़ान है। अभी मिश्रदेश की एक प्रसिद्ध महिला इस बात पर खुले जलसों में खूब कह गई है। उसने बुर्का का खूब खण्डन किया है। अभी पूने की अखिल भारतवर्षीय महिला सम्मेलन में जो कि महारानी बड़ोदा के सभापतित्व में हुआ

थी परदे का खूब खंडन किया मगर शिक्षित मुसलमान भी अपने घरों पर इस प्रथा को हटाने में हिचकते हैं। तात्पर्य्य यह है कि बड़े २ मौलवी भी निर्भीकता से किसी बात का जिसे लोग धार्मिक समझते हैं—बुद्धिवाद के नामसे खंडन नहीं कर सकते। अब विश्वप्रेम को लीजिये। जो कुरानी नहीं वह काफ़िर हैं और उसका दंड उसे जान से मार डालना है। हमें याद है कि कभी कहीं विदेश में एक मुसलमान का संगसार इस लिये कर दिया गया था कि वह किसी दूसरे फ़िरके का था और अपने फ़िरके का प्रचार वहाँ करना चाहता था। ईसाइयों का इतिहास और ही तरह का है। 'हाथी के दांत दिखाने के और और खाने के और" की कहावत के अनुसार उनके कहने और करने सदासे विषमता चली आती है। यद्यपि ईसा ने अपने अनुयायियों को क्षमा का पाठ पढ़ाया किन्तु ईसाइयों का इतिहास, रक्त-रंजित है। इसीलिए वहाँ विश्वप्रेम की खूब मट्टी पलीद है। विजयाभिलाषा, सीमातीत सुखाभिलाषा ने ईसाइयों के हृदयों पर ऐसा साम्राज्य जमा लिया है कि वह दूसरे के अधिकारों को छीनने के लिए सर्वदा उद्यत रहते हैं और आज कल की दशा से प्रत्यक्ष सिद्ध है कि यदि संसार में सब से अधिक अशान्ति किसी ने मचा रक्खी है तो वह ईसा के अनुयायी हैं। अब हमें दिखाना है कि वैदिकधर्म इन सब बातों से परिपूर्ण है और आर्य्यसमाज के नियमादि भी उसी आधार पर बनाए गए हैं। यदि किसी कारण वर्तमान आर्य्यसमाज में कोई त्रुटि आगई हो तो भी उस के नियम अधूरे नहीं। पहले के दोनों नियम एकेश्वरवाद की नींव रखते हैं। अर्थात जगत का एक कारण केवल परमात्मा है सत्य को ग्रहण करना और असत्य को छोड़ने के लिए चौथा नियम बताया गया है। बुद्धिवाद भी आर्यसमाजके इसी नियम से सिद्ध है क्योंकि सत्य को ग्रहण और असत्य को छोड़ने के लिये तर्ककी आवश्यकता होगी और यही बुद्धिवाद का स्पष्ट रूप है। विश्वप्रेम भी सातवें नियम से सिद्ध है। शत्रु से भी मनुष्यता का व्यवहार करना चाहिये। आर्य्यसमाज उदार है और वैदिक धर्म उससे भी कहीं उदार है। हमारा धर्म वैशेषिकाचार्य्य के वचनानुसार ऐहलौकिक, पारलौकिक सुख का कारण है बाधक नहीं। हमने कुछ बातों को आधार मान कर मतों का विहङ्गावलोकन सच्चे हृदय से किया है। ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति पर अपने सिद्धान्तानुसार प्रकाश डालने का यत्न किया है आशा है मत के श्रोतागण आत्मिक उन्नति के साधनों को पक्षपात रहित होकर इन युक्तियों को प्रेम पूर्वक ठंढे दिल से विचारेंगे तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

नोट—यह लेख दिल्ली आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव पर सर्व-धर्म-सम्मेलन में पढ़ने के लिए लिखा गया था था।

(सम्पादिका)

बांसुरी

लेखक—श्रीयुत चमूपति एम० ए० आर्य्यसेवक

मैं बन-बासिन जोगिन दीन ।
राग रंग की गति क्या जानूं ।
भोली अलबेली मति—हीन ॥
एक सांवले के मुंह लग कर ।
कहलाई सुर ताल प्रवीण ॥
दाह वंश की घुट्टी में था ।
बची न होकर वंश-विहीन ॥
इन होटों में आग भरी हैं ।
लाल लाल अंगारे तीन ॥
मोहन! शपथ मुग्ध नयनों की ।
लो हूं वहीं मुग्ध ग्रामीण ॥
छाती छिदी निहार पसीजो ।
सांवरा! तुम सागर मैं मीन ॥

आर्यसमाज की अवनति

(गताङ्क से आगे)

लेखक—श्रीयुत 'मराल' मेरठ

ज्योति के गताङ्क में तीन बातों पर विचार किया था। पार्थिव पूजा का प्रारम्भ, श्रद्धा और विश्वास की न्यूनता तथा वेदविमुखता। अब इस श्रेष्ठ समाज की अन्य न्यूनताओं पर दृष्टिपात करना है जिनके कि कारण इसका वैयक्तिक तथा समष्टिगत जीवन दिनोदिन शिथिल होता जा रहा है।

अधिकार-लिप्सा

समय था जबकि आर्य्य समाजी होना श्रेष्ठता का प्रमाण था। अमुक व्यक्ति आर्य समाजी है, तो वह झूठ नहीं बोल सका, बेईमानी नहीं कर सकता ये बात साधारण जनता में स्वयं सिद्ध सी समझी जाती थी। साधु शब्द के समान आर्य्यत्व में साधुता

का समावेश था । परन्तु, उसी शब्द के समान अब इसका बाना बिगड़ चला है। जिस प्रकार की आजकल हर एक गेरुवे-वस्त्र धारी साधु-नाम-वाला सच्चा सन्यासी नहीं होता, यही हाल आर्य्यसमाजियों का है। कारण प्रत्यक्ष है, पहले हम में लगन थी, धार्मिक निष्ठा थी, श्रद्धा पूर्वक नित्य नैमित्तिक नियमों का हम पालन करते थे; किन्तु अब हम में दिखावट है, वातुलताकी बखेर है, निष्ठा तथा श्रद्धा से शून्य होने के साथ ही साथ कर्त्तव्य कर्मों की अवहेलना करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है । स्वार्थ सिद्धि हमारे सिरपर भयानक भूत की भांति सवार है। सामाजिक सेवामें यदि हमें कोई वस्तु प्रेरित करती है तो वह यशो लाभ करने की कामना, नाम की भूख हमें दिन रात लगी रहती है। काम कुछ हो या न हो,परन्तु नाम हो जावे इसी की खोज है।

आर्यसमाज इस देश में एक जीवित तथा जागृत संस्था समझी जाती है, अतएव ऐसे समाज के पदाधिकारी बनने की आकांक्षा उपेक्षणीय कदापि नहीं कही जा सकती अपितु, स्पृहणीय है परन्तु, हमें उन अधिकारों को उसके योग्य बनकर प्राप्त करना चाहिये। न कि येन केन प्रकारेण, चाणक्यवत् कूट नीतिज्ञ बनकर, आर्य सभासदों की स्वतन्त्र सम्मति को पक्षपात के शिकञ्जे में कसकर हस्तगत करें। यह बात संसार में, सदैव सत्य है कि गुण का मान होता है, बिना गुण के कोई नहीं पूछता यदि आप सदाचारी हैं, कर्म करने की आपके शुद्ध हृदय में सच्ची लगन है, धर्मानुकूल आचरण करना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं तो कोई कारण नहीं लोक में आपका मान न हो। किन्तु, अब अवस्था दूसरी ही है आर्य समाजियों का दृष्टि कोण बदल गया है। अधिकार प्राप्ति की योग्यता और ही बातों पर अवलम्बित है।

जिस मनुष्य ने भी आर्य सभासद की श्रेणी में अपना नाम लिखा लिया वह बिना इस बात के सोचे हुये कि अभी तो यहां मेरा प्रारम्भिक पदार्पण है, आगे चलने की चेष्टा करता है। सिद्धान्तों का समझना, साहित्य का अनुशीलन, वेदादि सदग्रन्थों का पाठ, तथा धर्मिक कृत्यों का करना तो दूर रहा, अभिलाषा यह कि मैं भी नाम पैदा करलूं। और न सही तो ' लगा के खून शहीदों में नाम करलेंगे, वाली उक्ति को वह चरितार्थ करने लगतेहैं। भला आर्य धर्म की वर्ण माला सीखने वालों की श्रीगणेश होते ही समाज के नियन्त्रण करने की वाञ्छा उपहासास्पद नही तो क्या है। बात अन्तर्हित नहीं है। वर्त्तमान समय में एक दिखावट की नई लहर चल निकली है। सच्चे हृदय से काम करने वाले तो कम हैं (और जो ऐसे भी वह चुपचाप ' नेकी कर और दरिया में डाल ' को मानते हुये आगे नहीं आते) परन्तु लम्बी लन्तरानी हांकने वालों की प्रचुरता है। कहलवालो सब कुछ परन्तु करने के नाम'ऊ हूँ' ।'प्रायःदेखा जाता है कि दो दो घन्टे लेकचर बघारने वालों का जीवन अकार्मिक होता है। इन सब बातों केपीछे एक ही लालसा काम करती है और वह है अधिकार लिप्सा हर एक अगुआ बनना चाहता है।

बड़ों की अवस्था इस से बुरी है। बड़ों से तात्पर्य पढ़े लिखे, धनी, मानी तथा तथा आर्यसमाज के क्षेत्र में अनुभव प्राप्त महानुभावों से है। प्राचीन काल में, अपने जीवन के अतीत युग में जो कुछ भी सेवा उन्होंने आर्यसमाज की की हैं उन्हीं के कारण वह सुदृढ़ बने रहना चाहते हैं। अब तो पौरुष नहीं रहा। हाथ पैर

नही चलते, तबियत ख़राब रहती है, हमारा तो वृद्ध शरीर है, हम तो भाई कर चुके, मन को निकाल चुके, जो कष्ट हम लोगों ने सहे हैं वह तुम क्या सह सकोगे आदि उनके सफाई के बयान होते हैं। बात भी ठीक है। अन्ततः गवर्मेण्ट भी तो पेन्शन देती है। पहिली को हुई सर्विस से (सेवाओं) के उपलक्ष्य में उन्हें क्या इतना भी न मिलना चाहिये। मूल चाहे कितना ही कम हो, परन्तु! भाई इतने वर्षों में ब्याज चक्र वृद्धि रूपमें बढ़ते बढ़ते कितना होजायगा' विचारिये तो। ये तो हुई बूढ़ा की बात, अब अधेड़ों की सुनिये। यदि किसी कुमार ने टोक दिया कि 'बाबू जी! आप तो समाज में नहीं आते।' अरे भाई! क्या करें अवकाश नहीं मिलता, पेट का धन्धा पीछा नहीं छोड़ता, हर समय नोन तैल लकड़ी की चिन्ता रहती है, हम जब तुम्हारी उमरों के थे तब हम ने बहुत कुछ किया, अमुक स्थानों में समाजें स्थापित की, अमुक महाशयों को समाजी बनाया, अमुक अछूतों को, विधर्मियों की शुद्धि की इत्यादि० इत्यादि अपने गुड़ डीडस (शुभकर्मों) की लिस्ट (तालिका) पेश कर देते हैं। भला फिर यह बतलाइये कि इसके आगे और कहा ही क्या जावे? जिनका केरेक्टर रोल (चरित्र चित्रण) इतना सुन्दर है वह समाज का नियन्त्रण क्यों न करें। पद—प्रतिष्ठा हस्त आमलकवत उनके पास है। यदि किसी ने कुछ टोकने की धृष्टता की भी तो उसे दो एक पङ्क्तियां इस प्रकार सुनादीं। "जनाब! आप को कुछ खबर भी है, जिस समय आप को होश भी न था उस समय का मैं आर्य्यसमाजी हूँ; मेरा तो नस नस में आर्य्यसमाज प्रविष्ट है, डी० ए० वी० कालिज में पढ़ा हूं।" सत्य बचन महाराज! कहते हुए शङ्का करने वाला नत मस्तक होजाता है। सारांश यह निकलता है कि बुड्ढे और अधेड़ों के निमित्त तो कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा, जो कुछ समाज उत्थान का बीड़ा उठावें तो बिचारे कुमार ही उठावें।

सच पूछो तो ये बातें वास्तविकता से बहुत परे हैं। अकर्मण्यता ही इन बहानों का कारण है। अधिकारोंको तो इस कारण अपने हाथ में रखना चाहते हैं कि उन में नाम है, प्रसिद्धि है, बड़प्पन है और कुछ २ स्वार्थ की सिद्धि भी है। यदि तुम बूढ़े हो तो क्या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा। माना कि तुम दौड़ धूप नहीं कर सकते। किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा काम करने की है तो वानप्रस्थी बनो, सन्यास लो, वेदाध्ययन करके आर्य्यसमाज के साहित्य को समृद्धिशाली बनाओ। स्वयं ज्ञान प्राप्त करके औरों को उपदेश दो। जो अधेड़ हैं उन्हें उत्साह पूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्मों का पालन करते हुए अपने जीवन को आदर्श रूप बनाना चाहिये।

समय का न होना, अवकाश का अभाव एक व्यर्थ का बहाना है। जिस कार्य को कि मनुष्य करना चाहता है, उसके लिये वह अवश्य समय निकाल सकता है। विचार केवल इस बात का होता है कि किस काम को मनुष्य कितना आवश्यक समझता है। खाने पीने सोने के लिये सारे काम होते हुये भी समय निकल आना अनिवार्य है व्यायामप्रिय मनुष्य अपने व्यायाम के लिये निश्चित रूप में समय निकाल लेता है। कारण वह उसे इतना आवश्यक समझता है कि अन्य कामों को वह इस के लिये

स्थगित कर देता है। भला संसार के अन्य कार्य्यों के निमित्त क्यों समय निकाला जाता है इसीलिये न कि आप उनके किये बिना नहीं रह सकते। शादी ब्याह में जाना ही होगा, टेनिस खेलना ही है, सिनेमा में अमुक चित्रपट निस्सन्देह देखना है इत्यादि अतः ज्ञात हुआ कि अवकाश का होना या न होना हमारी इच्छा अथवा अनिच्छा पर निर्भर है। मुसलमानों को देखिये अधिक से अधिक कार्य्यव्यग्र व्यक्ति तक जुमे के दिन नुमाज़ पढ़ने को समय निकाल लेता है। क्यों? क्योंकि उस दिन के कार्य्यक्रम में वह उस का प्रधान कर्म है। परन्तु, हम साप्ताहिक सत्सङ्ग के लिये अवकाश से वंचित रह जाते हैं। कारण? हम उस में सम्मिलित होना आवश्यक नहीं समझते, अन्यथा कोई हेतु नहीं कि हम उस समय के लिये अपने अन्य कार्य्यों को न रोक सकें। कमाई का प्रश्न भी निमूंल है उतने काल की की हुई कमाई से ही किसी को न तो कोई विशेष लाभ पहुंचता है और न होने की अवस्था में न कोई घाटा ही होता है। आप से कार्य्य लेने वाले मनुष्य यह जान कर कि आप अमुक समय अमुक स्थान पर जाते हैं वह समय छोड़ कर और समय आप के पास आया करेंगे।

इन बातों पर विचार करते हुये कुछ अंश में प्रसङ्ग से बाहर पहुंच जाते हैं। अधिकार लिप्सा के ही विषय में दो एक बातें और विचारणीय हैं।

पद-प्राप्ति अथवा अधिकार प्रदान करते समय वर्तमान काल में आचरण की अपेक्षा सम्पत्ति तथा मान-मर्य्यादा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। आर्य्य समाज का प्रधान तथा मन्त्री कोई धनी व्यक्ति होना चाहिये क्योंकि धनो से ही धन का प्राप्ति हो सकती है। बी०ए० या एम०ए० होकर, वकील की श्रेणी में सम्मिलित होने वाले पुरुषों की प्रायः इस विषय में बहुत पूंछ होती है। वकील महोदय चाहें कितने ही कार्य्य-व्यग्र रहते हो, परन्तु अधिकार प्राप्त करके समाज शासन करने की उपेक्षा कदापि नहीं कर सकते। क्योंकि पद-प्रतिष्ठा से बहुधा वकालत का विस्तार बढ़ जाता है। धन और अङ्गरेज़ी योग्यता के विचार के कारण धार्मिकता, सच्चरित्रता तथा सिद्धान्त दृढ़ता इत्यादि गुण परे पड़ जाते हैं इसी हेतु आजकल बहुत सी समाजों के अधिकारी चरित्र हीन, कलहप्रिय, तथा स्वार्थान्ध पाये जाते हैं। सामाजिक कार्य्यों पर नियन्त्रण रखना वे अपना जन्म सिद्ध स्वत्व समझ बैठते हैं। तत्सम्बन्धी संस्थायें उनकी बपौती बन जाती हैं। जिन्हें छोड़ते हुये उन्हें आन्तरिक कलेश होता है। स्वकीय निर्वाचन के लिये यत्र तत्र षड़यन्त्र रचना, कुटिल क्रियायें करना उनका स्वभाव बन जाता है। आर्य्य-समाजों के अतिरिक्त प्रतिनिधि सभायें तक इस दोष से विमुक्त नहीं हैं। विचारिये सभाओं का कार्य सञ्चालन कितने उत्तरदायित्व का काम है परन्तु वह ऐसे अनभ्यस्त हाथों में सौंप दिया जाता है, जिन्हें न तो उस बड़े कर्त्तव्य के पूर्ण करने की योग्यता ही होती है और न समय ही होता है। परिणाम प्रत्यक्ष है। सभाओं के भाग्य विधाता पर सभासदों का उच्च व नीच बनाना अधिकतर अवलम्बित होता है। जैसे देवता वैसे ही पुजारी ये लोकोक्ति संसार में प्रसिद्ध है ही। इसी अधिकार प्राप्ति के निमित्त उठी हुई विद्वेषाग्नि के कारण बहुत सी समाजों में महीनों के लिये ताले पड़ जाते हैं। आपस की तू तू मैं मैं खूब होती है और इस पारस्परिक तुक्का फ़ज़ीती में समाजों का काम खराब होता है।

६

इसी के साथ २ एक बात और जो मनन करने योग्य है वह स्वार्थ सिद्धि है। बहुत से महानुभाव इस अधिकार प्राप्ति की कामना इस लिये भी करते हैं कि उन्हें वैयक्तिक लाभ होने की भी आशा होती है। किसी का नाम हो जाता है, तो किसी की पुस्तकें बिक जाती हैं। किसी के लेख आदर के साथ पढ़े जाते हैं, तो किसी का आवभगत होने लगती है। किसी को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड व चुन्गी के चुनाव में आने में सहायता मिलती है, तो कोई कौंउन्सिल के इलेकशन में आर्य्य समाज की दुहाई देता है कोई अपने काम चलाने की चिन्ता में होता है तो कोई वकालत की वृद्धि में इस से लाभ उठाना चाहता है अस्तु, संक्षेपतया आर्य्यसमाज की अधोगति का एक मूल कारण यह स्वार्थ-साधना-संयुक्त अधिकार लालसा भी है।

(क्रमशः)

प्रकाश का आवरण

(माडर्न रिव्यू से अनुवादित)

लेखिका—श्रीमती सीतादेवी

[सितम्बर के अङ्क से आगे]

नये घर में जाकर मेरे कुछ दिन तो बड़ी बेचैनी से कटे। जब मैंने पहिला ही पग गृहस्थ में रखा तो सब से प्रधान भाव जो मेरे मन में उठता था वह भय का था। मैं एक गरीब ग्राम वास की कन्या थी, अतः इस घर में चारों ओर लक्ष्मी का फैलाव देख कर आश्चर्य से मेरी आंखों में चकाचौंध आ जाना स्वाभाविक और क्षम्य था। किन्तु जब कभी मुझे यह ख्याल होता कि मुझे सारे जीवन यहीं रहना पड़ेगा और इस घर के सब लोगों को स्वजन बनाना पड़ेगा तो उसी क्षण मेरे ऊपर एक प्रकार का आतंक छा जाता। यहां की प्रत्येक वस्तु मेरे पितृगृह की अभ्यसित वस्तुओं से बिल्कुल भिन्न थी।

यह राज महल सा बड़ा मकान, तीन चार भवनों के समूहों में बटा हुआ था। वहां पर सेवकों के झुण्ड के झुण्ड रहते थे और एक पग भी यदि कोई चले तो छै सात नौकरों के दर्शन होजाते थे। यदि मैं कभी एक गिलास पानी भी लेने उठती तो तो तीन तीन नौकरानियां उसे उठा लेने के लिये मेरे पीछे दौड़तीं। चारों ओर शोर गुल मचा रहता और आधी रात से पहले कहीं भी शान्त स्थान न मिलता।

इस कुटम्ब में तो बहुत ही थोड़े जन थे किन्तु दास दासियों और सम्बन्धिजनों के झुण्ड इतने थे कि यह इतना बड़ा घर भी उनके लिये थोड़ा प्रतीत होता था। मेरे पति की माता जी का देहान्त तो उसी समय होगया था जब कि अभी वह बालक ही थे। और उनकी विधवा विमाता का अब शासन घर में था। यह मेरे देवर मेदनीमोहन की माता थीं। मेरे एक नन्द भी थीं और यह मेरे पति की सगी बहिन थीं। यह भी विधवा थीं। इनके एक बच्चा

था जिसका नाम कमल था। इनके अतिरिक्त और बहुतेरे निकट और दूर के सम्बन्धी थे। जो इसी घर में रहते और यहीं पर पलते थे।

पहिली चीज जिस पर घर में पैर रखते ही मेरा ध्यान गया वह थी इस घर के सभी लोगों का अपूर्व रूपलावण्य। मैंने अपने पति और देवर के दर्शन तो पहिले ही कर लिये थे अब मैंने अपनी सास और नन्द के दर्शन किये। यद्यपि यह दोनों ही विधवा थीं, और एक तो बहुत ही अधिक आयु वाली थीं परन्तु तो भी उनका रूपलावण्य कैसा आश्चर्य जनक था! अपनी सफेद पोशाक में वह दोनों तेज की पुञ्ज मालूम होती थीं और शिशु कमल सचमुच ही कमल की कली के समान था। अथवा उससे भी कहीं बढ़ कर सुन्दर था। जब नव वधू का वरपक्ष के लोग स्वागत कर रहे थे तो मेरे मन में यह भावनायें उठ रही थीं कि इन लोगों के बीच में मैं कैसी भूतनी सी लगा करूंगी।

कदाचित मेरी भूतनी शकल से सभी चकित और स्तम्भित हुये होंगे क्योंकि किसी ने बात तक न की। मेरे देवर ने अपनी माता की ओर एक तिरछी नजर डाली और उसके होठों पर क्षण भरको घृणा की मंद हँसी छा गई लेकिन जब किसी ने उसका समर्थन न किया तो फिर उस ने यत्न भी न किया। मेरी नन्द ने तो अस्वाभाविक रूपसे मौन व्रत धारण रक्खा। केवल शिशु कमल मेरे चारों ओर घूमता फिरता और हंसता रहा और मेरी लाल विवाह की पोशाक को देख २ कर शोर मचा कर कहता था कि मेरे पास भी लाल जाकट है मैं भी उसे पहिनूंगा।

बहुत देर तक रीति रिवाज कर चुकने के बाद वधू को उसके पति के कमरे में लाया गया। बड़े २ सुसज्जित कमरे थे लेकिन सब ओर से बिल्कुल निर्जन थे। हम दोनों ही उस में निवास करने वाले थे और दोनों सारे कमरों को तो भर ही नहीं सकते थे। मैं बहुत ही उदास होने लगी लेकिन तत्क्षण ही मेरी दृष्टि अपने पति पर आ पड़ी और तब मुझे यह ज्ञान हुआ कि मुझे कभी भी निरुत्साहित नहीं होना चाहिये। मुझे इन के हेतु ही वीरत्व धारण करना चाहिये क्योंकि मैं उनकी दृष्टि हीनता की क्षति को पूर्ण करने के हेतु ही यहाँ आई हूँ।

सन्ध्या समय होगया था, सूर्य्य भगवान अस्ताचल की ओर पदार्पण कर चुके थे। मेरे पति ने पूंछा—"क्या तुम बहुत उदास और पितृगृह के जाने को उत्सुक होरही हो?"

"बिल्कुल नहीं" मैंने उत्तर दिया। 'मैं घर के लिये क्यों उदास होऊं? यही तो तो मेरा घर है।" क्या किसी ने नवोढ़ा वधू के मुख से यह शब्द कभी सुने हैं? परन्तु अवस्था ही ऐसी थी कि मुझे कभी नवोढा वधू की तरह व्यवहार करने और नख़रे करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सका। मुझे यहां इसलिये लाया गया था कि मैं एक ऐसे व्यक्ति की चिरसंगिनी बन कर रहूँ जिसके चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था, वाह्य जगत तथा अन्तरात्मा दोनों में प्रकाश की रेखा न थी, अतः नवोढ़ा के नख़रों के लिये एक क्षण भी व्यर्थ खोने के लिये न था।

पहिले पहिल कुछ दिन तो रात्रि के दुःखद स्वप्न की भांति बीते। जितनी ही भूतनी सदृश्य मेरी शकल थी, उतनी ही मात्रा में और अधिक सुन्दर आभूषणों

पोशाकों को पहन कर नवोढ़ा वधू बनकर मुझे इस कुटुम्ब के सब सम्बन्धी जन तथा मित्रवर्गों के सम्मुख प्रगट होना पड़ता था और मुझे उनकी खुली समालोचना हास्यजनक दबी ज़बान किये गये मखौल सुनने पड़ते थे। अपने पिता के घर में तो यह बात थी कि मैं सुबह से रात तक काम करती रहती थी फिर भी मुझे झिड़कियां पड़ती रहती थीं और उन्हें मैं चुपचाप सहन करती किन्तु यहां पर दशा थी कि यदि मैं ज़मीन पर पड़ा एक कागज़ का टुकड़ा भी उठा लेती तो सब चीख़ पड़ते थे और हैरान होते थे। अतः मेरा यदि कोई अवलम्ब था तो एक मात्र मेरा पति ही था परन्तु वह भी इन दिनों बहुत कम आते रहे। आधी रात से पहिले तो मैंने उन्हें कभी देखा भी नहीं तथापि मैं उन्हीं के हेतु अपनी इस आपत्ति को सहर्ष सहन करती रही।

परन्तु गुड़ी के पाउडर आदि लगा कर सजा २ कर रखने के सदृश इस नकली जीवन को मैं सहन न कर सकी। मैं उसके लिये सर्वथा अयोग्य थी। धीरे २ मुझे यह पता लगा कि मुझे अपने पति को दण्ड देने का साधन मात्र ही बनाया गया है। एक दिन घर की किसी देवी ने बात करते २ मुझे यह बतलाया कि मेरी सास अपनी अति सुन्दर भतीजी से मेरे पति का विवाह करना चाहती थी किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया सो मेरी सास ने इसका बदला उतारने के लिये मुझ जैसी कुरूपा स्त्री से उस का विवाह करा दिया मेरे देवर ने एक दिन हसी में कहा—"मेरे भाई की रुचि प्रायः हमेशा सुन्दरता की ओर रहती थी किन्तु जैसे साधारण नियम के अपवाद भी हुआ हो करते हैं इसी भांति वह केवल एक अपनी रुचि में एक बार ही चूके हैं।

मेरे पति सचमुच ही अभाग्यवान थे। उनका एक मात्र भाई भी उन पर मखौल कर सकता था। और मैं अपने दुर्भाग्य के विषय में जितना कह सकूं उतना ही अच्छा है।

जैसे २ दिन बीतने लगे वैसे २ मुझे समझ में आता गया कि मैं इस घर में नवोढ़ा बहू के रूप में नहीं लाई गई हूं बल्कि दण्ड की मूर्ति स्वरूप हूँ। मेरे पति को कई प्रकार से अपराधी ठहराया गया था। वह देवता तुल्य सुन्दर थे उनका जन्म कुलीन और बड़े धनाढ्य घराने में हुआ था तोभी वह बड़े नेक और सच्चरित्र पुरुष थे और व्यवहार में किसी भी निर्धन व्यक्ति की सन्तति से कम ईमानदार न थे। उनका बड़ा भारी दोष तो यह था कि यद्यपि वह और उनके भाई मेदिनी एक ही पिता के पुत्र थे किन्तु इनके पास बहुत अधिक सम्पत्ति थी। इनकी अपनी माता एक बड़े भारी जिमींदार की एक मात्र पुत्री थी अतः उनकी सारी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी यही थे। दूसरी ओर इनकी विमाता एक महागरीब की लड़की थी और इस घराने में उनका विवाह एक मात्र केवल उनकी सुन्दरता के कारण ही हुआ था इसलिये मेरे पति को दण्ड देने के लिए सभी कटिबद्ध होरहे थे अतः मैं भी उस की पत्नी बन कर आई। परन्तु धीरे २ मैंने भी अपने पति को दण्ड देने वालों को दण्ड देने का विचार धारण किया।

एक प्रकार से इस बड़े घराने की मैं ही तो अधिष्ठात्री थी। यह सच है कि मेरी सास भी थी परन्तु वह मेरे कमरों में आने का कभी कष्ट भी न उठाती थी। अतः मैं जो कुछ चाहती कर सकती थी अथवा मैं वैसा करना शुरू करसकती थी और फिर देखा जाता यदि कोई आपत्ति उठाता। अतः मैंने अपने पति का सारा काम स्वयं करना

प्रारम्भ कर दिया। मैं उनके लिये खाना बनाती, बर्तन साफ़ करती. उनके कमरों में झाड़ू लगाती। मैं उनके वस्त्र भी साफ करने लगी और मैंने सब नौकरों को अपने सोने के कमरे में आना रोक दिया। पहिले दिन तो वह चकित होकर मूढ़वत रहे, दूसरे दिन वह मखौल में इठलाते रहे और ग़रीब की लड़की है बड़े घराने के नौकरों को क्या जाने इत्यादि, यह कह उपहास करते रहे उन्होंने मेरे ऊपर बड़े करुणोत्पादक शब्द प्रहार करने का व्यर्थ प्रयास किया। उन्होंने मुझे उत्तम उपदेश देने का भी यत्न किया किन्तु जब देखा कि ग़रीब घर की लड़की अपने उल्टे तरीकों को छोड़ने से सर्वथा इन्कार करती है तब उन्होंने मेरी सास के दर्बार में जाकर दुहाई दी।

प्रातःकाल ज्योंही मैं भोजन बनाने लगी ही थी कि मुझे द्वारपर किसी की आहट आई, मैंने आँखें उठाई तो अपने देवर को सामने खड़े पाया। उसने मुस्कुराकर पूंछा—" भाभी जी क्या मैं अन्दर आजाऊं ? अथवा मेरे आने से तुम्हें बहुत अधिक बाधा होगी ?

मैंने कहा—" बाधा बिल्कुल नहीं। आप अवश्य भीतर आजाइये।" मेरे देवर ने फिर उसी प्रकार घृणा पूर्णक मुस्कराहट करके कहा भावी! मैं जानता तो नहीं परन्तु मैंने सुना है कि तुम बड़ी भारी भक्तनी बन गई हो और हमारे नीच कुलोत्पन्न नौकरों से किसी प्रकार की सेवा नहीं करातीं। चूंकि हम लोग भी उन्हीं के हाथ के भोजन कर चुके हैं तो शायद तुम्हारे विचार में हम लोग भी जाति भ्रष्ट होगये होंगे।"

मैं चुप रही और अपना काम करती रही मैं जानता थी कि लड़ाई शुरू करने आये हैं और मैं उनके इस भाव को सफल बनाना नहीं चाहती थी। वह दर्वाजे पर थोड़ी देर तक खड़े २ देखते रहे फिर बोले—" भाभी मैं भी तुम्हारा बनाया भोजन एक बार करूंगा। उसमें जरूर कोई आश्चर्य्य जनक चमत्कार होगा जिसने मेरे भाई को वश में कर लिया है। वह हमेशा वशीकरण मन्त्र के काबू आजाया करते थे।

इस संसार में कई लोग ऐसे हैं कि वह जब कभी भी गाय को देखते हैं तो उस पर पत्थर फेंकने से नहीं चूकते। मेदनी की भी यही दशा थी। उसका यह स्वभाव था कि वह जहां कहीं भी मुझे देख लेता था तो वाक्य बाणों से बेधे विना नहीं रह सका थो। चूंकि मैं बहुत से व्यक्तियों पर उसी प्रकार का प्रभाव डालती थी इस लिये मैं उसको दोष नहीं देती। उसने मुझे गुस्सा दिलाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु जब देखा कि उसका यह प्रयत्न बिल्कुल व्यर्थ गया है तो अपने लाल मखमली स्लीपरों को फट फटाता हुआ जोर से भाग गया।

उसके बाद ही सास देवी जी पधारीं। वह हमेशा ही बहुत गम्भीर रहती थीं किन्तु आज तो गम्भीरता की हद ही होगई। उन्हों ने कहना शुरू किया—देखो बहू तुम बच्चा नहीं हो और बातों को स्पष्ट समझने की तुममें शक्ति भी है तुमने तो हद करदी। चाहे जो कुछ ही कोई कहे और करे किन्तु आखिरकार तुम इस घराने की तो हो ही गई अतः यदि तुम मूर्खों जैसा वर्त्ताव करोगी तो लोगों के सामने हमारी ही तो हंसी होगी परन्तु यद्यपि तुम्हें हमारा ख्याल न भी हो तो भी अपने पति का तो होना चाहिये उनकी हंसी तो न कराओ।"

वह कुछ देर तक यों ही बोल बाल कर चली गईं। मैंने उन लोगों के इस नीच षडयन्त्र को निष्फल बनाने का निश्चय ही किया हुआ था ! अतः ज्योंही सास जी चली गईं त्योंही मैंने अपना काम फिर आरम्भ कर दिया। मैं जानती थी कि वह इस से अधिक और प्रयत्न न करेंगी वह ऊपर २ का भाव रखने के लिये कुछ तो करेंगी ही सो उन्होंने आकर एक वक्तृता दे दी। यदि मेरे पति की हंसाई हो तो उसकी उनको जरा भी परवाह न थी अपितु उन्हें आनन्द ही होना था। अतः यद्यपि सनातन हिन्दू गृहस्थ धर्म की रीति के अनुसार उन्हें मुझे बाल पकड़कर घसीट कर रसोई घर से बांहर निकाल देने का भी अधिकार था किन्तु उन्होंने अपने इस अधिकार को वर्ताव में लाने की इच्छा को रोका ही रखा और अपने घरको चली गईं।

उस दिन मुझे रसोई बनाने में बड़ी देर लग गई। जब मैं बना चुकी तो सब रकावियों को पीतल के बड़े थाल में सावधानी से सजाकर भोजनशाला के लिये चल पड़ी। सारे घरमें संग मरमर जड़ा हुआ था, पौड़ियों पर भी था। मैंने उनके लिये स्थान ठीक किया और प्रत्येक वस्तु ठीक करके उन्हें बुलाने गई, सारे नौकर एक पंक्ति में खड़े ऐसे घूर रहे थे मानों ऐसा दृश्य उन्होंने कभी देखा ही न हो।

जब मेरे पति जी भोजन कर चुके तो मैं करने बैठी। फिरमैं सारे वर्त्तन इत्यादि साफ़ करके विश्राम करने अपने गृहमें गई, वह एक नीची कुर्सी पर बैठे हुये अपना सितार टुन टुना रहे थे। मैंने यह सुन रखा था कि यह बड़े भारी गायनाचार्य्य हैं किन्तु आज तक मुझे इस का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिला था, हां मैंने दीवाल पर लटका हुआ फूलेंदार कपड़े से ढका हुआ देखा तो था। आंखों के फूट जाने पर उन्होंने अपने सभी प्रिय पदार्थ परित्याग कर दिये थे मानो उन्हें संसार से गुस्सा हो रहा था। आज मैंने देखा कि सितार दीवार से नीचे उतरा है। मेरे हृदय में हर्ष की एक छटा चमक उठी। मुझे ऐसा भान हुआ कि अब वह संसार के साथ अधिक अनुराग प्रगट करने लगे हैं अतः एक एक करके अपने प्राचीन सुख के साथियों का स्मर्ण करने लगे हैं।

ज्यों ही उन्होंने मेरे पैरों की आहट पाई त्यों ही उन्होने मुंह फेरा और बोले "मलिन ! सुनो ।"

मैं जाकर उनके पास खड़ी होगई। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लेलिया फिर कुछ देर मौन रहे। वस्तुतः उन्हें यह नहीं सूझता था कि कैसे बात प्रारम्भ करें। कुछ देर बाद उन्होंने पूछाः-"क्या नौकर ठीक तरह काम नहीं कर सकते ?"

मुझे तब यह पता लगा कि मेरे पति के उदारचित्त सम्बन्धी सीधे उनके पास भी पहुंचे हैं। परन्तु क्या वह मुझसे अत्यन्त क्रुद्ध हैं ? तो फिर मेरे इस सब करने का लाभ भी क्या है ? क्या मैं अज्ञान में अपने शत्रुओं के हाथ में खेलती रही हूँ ? मेरे मुख से सांसें निकलने लगीं परन्तु मैने उन्हें जबरदस्ती दबाया फिर कुछ ठहर कर मैंने कहा— "मैं यह नहीं पसन्द करती कि आपका सारा काम नौकर करें।"

उन्होंने मुझे एक बांह से जफी डालकर अपने पास बिठा कर कहा—"लेकिन लोग इसकी बड़ी चर्चा करते हैं। क्या यह तुम्हारे लिये परमावश्यक है ? क्या तुम जैसे पहिले काम होता था वैसे चलते नहीं देख सक्ती ?

अब मैं अपने आँसुओं को अधिक न रोक सकी। मैंने अस्खलित शब्द में कहा "तब क्या मैं आपको कोई लाभ न पहुंचा सकूं? तब मैं कैसे जीवित रहूँगी? इस संसार में मेरा अन्य कुछ कर्तव्य ही नहीं है।

जब उन्होंने मेरा सिसकना सुना तो मुझे गाढ़ालिंगन करके मेरे गालों को थपथपाते हुए कहा "तुम कितनी पगली लड़की हो! तुम इन छोटी २ बातों पर रोती क्यों है? क्या मैं यह नहीं जानता कि तुम मेरे लिए सब कुछ करना चाहती हो? और मेरी सारी आवश्यकताओं को पूर्ण करना चाहती हो? परन्तु केवल तुम मेरे शरीर की सेवा करने ही से मेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकती। मेरे मस्तिष्क के भी तुम पर हजारों अधिकार हैं वह संसार का सौन्दर्य्य अपनी प्रत्येक धारा से गृहण करना चाहता है। परमात्मा ने मुझे दृष्टि रहित कर दिया अतः मैंने गुस्से से वह सारे द्वार बन्द कर दिये जिनके द्वारा संसार मुझ में प्रविष्ट हो सकता था। मैं अब भूखा हूँ। मलिन! मैं अकाल पीड़ित हूँ। तुम मुझे नहीं बचा सकती? स्त्रियां पुरुष जाति की पालन कर्त्री हैं, परन्तु क्या मेरा यह शरीर ही तुम्हारी सेवा से लाभ उठायेगा, किन्तु मेरा मस्तिष्क शुष्क रह कर जीवन शक्ति विहीन ही रहेगा?

मैंने अपनी आंखें पोंछ कर कहा—"लेकिन मुझे केवल घरेलू धंधे ही आते हैं और कुछ नहीं आता।"

उन्होंने उत्तर दिया—"तुम बहुत शीघ्र सीख जाओगी क्योंकि तुम में सीखने की इच्छा का अभाव नहीं है। मैं स्वयं भी तुम्हें सिखाऊंगा और अध्यापक भी रखदूंगा।"

इस प्रकार नौकर लोग अपने खोये हुये राज्य पर पुनः आरूढ़ होगए। परन्तु आश्चर्य के लिए अब भी पर्य्याप्त सामग्री थी। प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है और वह भी जानते थे कि स्त्रियां खाना बनातीं, घरों में झाड़ू लगाती और बर्तन साफ़ किया ही करती हैं किन्तु चूंकि मैं एक धनाढय की स्त्री थी अतः मेरे इन्हीं कामों के करने में उन्हें कुछ असाधारणपन मालूम होता था। परन्तु उन्हें स्वप्न में भी ख्याल न था कि स्त्रियां अध्यापकों से अंग्रेज़ी भी पढ़ सकती थीं, और दर्वाज़े खुले रख कर दिन दहाड़े बाजा बजा और गा सकती थीं। अरे रामरे राम! और स्वयं अपने पति के द्वारा! घोर अन्धेर! परन्तु इस विषय में तो स्वयं मेरे पति देव मेरे सहायक थे, अतः किसी को मुझे भला बुरा कहने का साहस भी न हुआ। मेरी सास ने तो फिर आने का कष्ट ही नहीं उठाया। मेरी नन्द न कभी पहिले आई थीं और न अब आईं। वह बड़े धनाढय पिता की एकमात्र पुत्री थीं और बड़े उदार चरित्र और धनाढय सज्जन की परम प्रिय और बड़े प्रेम से पालित धर्मपत्नी थीं। अतः जब एक ही वर्ष के अन्दर उनके पिता और पति दोनों का देहान्त होगया तो उन्हें बहुत ही दुःख और क्लेश हुआ और वह संसार से इतनी क्रुद्ध होगईं कि सारे सांसारिक सम्बन्ध से विरक्त होगईं। यहां तक कि अपने बच्चे के साथ भी उनका व्यवहार बड़ा शुष्क और नीरस था, उन में अभिमान और दुराग्रह स्वभावतया बहुत था और अपने सौभाग्य के ज़माने में उन्हों ने सब पर शासन किया हुआ था। अब जब उनको पता लग गया कि उनके निजी वाक्यों में अन्य कुटुम्बियों के कथन की अपेक्षा कोई बल नहीं है। उन्होंने इस आघात को अपने अभिमान से इस प्रकार स्वीकार किया कि मुझ से बातचीत करना बिल्कुल ही छोड़ दिया। मैं उसके सहोदर भाई की स्त्री थी

परन्तु अब तक उन्हों ने मुझ से तीन चार शब्द से अधिक नहीं बोले होंगे अतः इस में कोई आश्चर्य नहीं कि वह इन घरेलू झगड़ों से अलग रहीं।

केवल मेरे देवर ने ही हमारे साथ अन्त तक सम्बन्ध कायम रखा। कोई दिन शायद ही खाली जाता हो कि उनके दर्शन न मिलें और वह कुछ न कुछ कांटा चुभो जांय। मैं इँग्रेज़ी प्रातःकाल पढ़ा करती थी। एक वहीं के स्कूलके मास्टर बूढ़े मुझे पढ़ाया करते थे। ज्योंही मैं पढ़ चुकती और पुस्तकें रखती त्यों ही मेदिनी सामने आकर खड़े होजाते और खिल्ली उड़ा कर आश्चर्यसे आँखें तरेड़ तरेड़ कर कहते—"अरे भगवन स्वयं सरस्वती देवी भी ऐसी अनुपम विदुषी के सामने स्पर्धा से आत्म हत्या करने का विचार करती होगी। हम लोग तो उसे बहुत तंग नहीं करते थे इस लिए वह यहाँ रहने से सन्तुष्ट थी, परन्तु भाभी! तुमने तो उसे बिल्कुल ही घर बाहर कर दिया। लक्ष्मी और श्री तो पहिले ही भयभीत होकर भागी थी। मैं देखता हूँ कि उन्हें इतनी हलचल थी कि उन्होंने अपना वाहन उलूक यहीं पीछे ही छोड़ दिया है।" परन्तु चूंकि मैंने ऐसे भद्दे मखौलों का कोई उत्तर नहीं दिया करती अतः उन्होंने मेरी पढ़ाई और मेरे रूप रङ्ग के सम्बन्ध में मखौल करना छोड़ दिया।

एक दिन मैं अपने पति के साथ गाना सीख रही थी। शुरू २ में तो मुझे इतनी शर्म आती थी कि मैं उनके सामने अपने होठ भी नहीं खोल सकती थी लेकिन कुछ दिनों बाद मेरी शर्म कुछ कम होगई और मैंने गाना शुरू किया। वह मुझे इतना उत्साह दिलाते थे कि यदि मेरे स्थान में और लड़की होती तो वह अपने को स्वर्ग की अप्सरा ही गिनती। लेकिन चूँकि गर्व के कीटाणु मुझ में से पहिले ही निकाल दिये गये थे मैं विश्वास ही नहीं कर सकती थी कि मुझे भी गाना अच्छा आता है।

मैं इतनी रत थी कि मुझे पता भी नहीं चला कि मेदिनी कमरे के अन्दर आया और मेरे पीछे खड़ा होगया है। ज्यों ही मैंने समाप्त किया त्यों ही वह ताली बजा कर जोर से बोल उठा—"भैइया भाभी हमारी बिल्कुल कोयल की तरह कूकती है। क्यों यह सच नहीं है?"

उसके भाई ने मुस्कराकर कहा—"हां अगर तुम इन की वाणी का ही केवल विवेचन करो तो तुम्हारा कहना सर्वथा उपयुक्त है।"

मेरे देवर ने कहा—"हां केवल वाणी ही तो! "तब मुंह चिढ़ा कर बाहर चला गया। मेरे पतिदेव कुछ देर चुपचाप रहे, फिर बोले—"मलिन! जब से तुम आई हो तब से मेरे सारे क्लेश दूर हो गये हैं, परन्तु यह दुख कभी नहीं जायगा कि मैं तुम्हें अपनी आंखों से देखने के योग्य नहीं हूँ।"

हरे भगवन्! उन्हें इस बात का दुख है कि वह मुझे देख नहीं सकते! किसी प्रकार मैंने उत्तर दिया "यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप मुझे देख नहीं सकते, मैं देखने में सुन्दर नहीं हूं।" उन्होंने मुझे अपना भुजाओं के पाश में बांध कर कहा ''नहीं मलिन! जो कुछ तुम सब कहती हो उसे मैं बिल्कुल विश्वास नहीं करता। मैं अपने दृष्टि बिहीन नेत्रों द्वारा देख सकता हूँ कि तुम आनन्द स्वरूप हो अन्धकार मयी भयङ्कर रात्रि के अन्त पर उषा के समान लावण्यमयी हो, और अन्धकार मय आकाश में तारों की तरह हो। तुम कुरूपा तो हो ही नहीं सकती। तुम ने तो मेरे दुर्भाग्य को भी सुन्दर बना दिया है।"

किसी प्रकार उन से मेरा बचाव होगया मैं अपने विवाह की रात्रि लेकर अबतक इसी क्षण की प्रतीक्षा में ही थी, उस क्षण की जब कि वह स्वयं अपने मुख से यह स्वीकार करें कि मैं उनके जीवन में आनन्द लाने वाली हूँ। परन्तु उनके इस प्रकार स्वीकार कर लेने पर भी मुझे आनन्द का अनुभव नहीं हुआ। मुझे आशा तो यह थी कि मैं बेहद सुखी और हर्षित होऊंगी क्योंकि मेरी आकांक्षा यह थी कि मेरा संसार सुख से परिपूर्ण होगा लेकिन वह कहां था? मैं जमीन पर लेट कर रोने लगी। क्या सचमुच इतनी मात्रामें स्वामी का प्रेम जो केवल अशुद्ध धारणा पर स्थित था मेरे लिये अनन्त सुख का श्रोत था? अब तक मुझे पता लग चुका था कि वह मुझ से इसलिये प्रेम करते थे कि वह मुझे सुन्दरी समझ रहे थे। तब क्या मेरा इस प्रेम पर कोई अधिकार था? मैं तो इसे ग्रहण कर एक प्रकार से चोर थी क्योंकि मैंने वह पदार्थ ग्रहण कर लिया जो वास्तव में मेरा न था। सौन्दर्य प्रतिमा जिसे मेरे पतिदेव हृदय में धारण किये हुये थे मेरी सपत्नी बन गई।

लेकिन मुझे रोने को बहुत अवकाश ही न मिला। मुझे सुनाई पड़ा कि वह मुझे बुला रहे हैं अतः आंखें पोंछकर मैं झट उनके पास भाग गई।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। मैं उनके पीछे छाया की तरह फिरने और उनकी सभी इच्छाओं और आवश्यकताओं को सब प्रकार से पूर्ण करने लगी। उन्हें बाजे से प्रेम था अतः मैंने गाना बजाना सीखा; उन्हें फूलों से प्रेम था अतः हम दोनों ने एक छोटा सा बग़ीचा स्वयं अपने आप बनाया जिसमें वेतन वाले नौकर कोई भी काम करने वाले न थे। यद्यपि वह फूलोँ के मनोहर रंगोँको देखकर आनन्द नहीं ले सकते थे। तथापि उनकी सुगन्ध उन्हे अवश्य आनन्दित करती थी। सायं प्रातः मैं उन्हें पुस्तकें पढ़ २ कर सुनाती थी। उन्हें लिखने का बड़ा शौक़ था, वह मुझे बोल दिया करते थे, और मैं उसे लिखती जाती थी फिर उसको शुद्धकर सुलिपी में लिख उन की कहानियों और कविताओं को मासिक पत्र और पत्रिकाओं में छपने के लिये भेज देती! उनका चेहरा दिन प्रति दिन खिलता जारहा था, उनकी उङ्गलियां सितार पर नाचा करती थीं और उनके गले से जो स्वर निकलता वह आह्हाद के आगमन की सूचना देता था। परन्तु जब मैं यह ख़याल करती थी कि इन्हें जो सुख हो रहा है उसका आधार उनकी वास्तविक परिस्थिति की अज्ञानता है तो मेरा हृदय खून के आंसुओं से रोता था। परन्तु क्या मैं उन्हें धोखा दे रही थी? नहीं मैंने तो उनसे कुछ छिपाया हुआ न था। यदि उन्हों ने मेरी बातों पर विश्वास नहीं किया तो इसमें मेरा क्या दोष? मैंने तो अपने आराध्य देव पर सर्वस्व निछावर कर दिया था और पूर्ण विश्वास के साथ। परन्तु यदि आराधना करने वाला आराध्य देव के अनुरूप नहीं तो उसका बनाना मेरी शक्ति में तो था ही नहीं। परमात्मा जानते थे कि मैंने पाप नहीं किया, परन्तु मेरे पति देव को मेरी बात पर विश्वास ही नहीं हुआ।

(क्रमशः)

मोहिनी के आंसू

ले०— श्रीयुत सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज

(गतांक से आगे)

ओ! अब तो इधर उधर से दर्शकों की भीड़ आलगी! पीछे के लम्बे लोगों ने तो उस भीड़ के पीछे से उकस कर ही उस अद्भुत हास्य-रस का आस्वादन कर लिया परन्तु बिचारे नाटे तरसते ही रहे!

पागल हुई-सी मोहिनी उन गुड़ते सेवों को ला, इधर उधर से एकत्र करने लगी। अन्त में पादरी साहब के समझाने पर, अपनी कमीज़ की झोली में २—२ सेव रख अपनी चाची को—जो वहाँ से २० कदम पर बैठी थी और अधखुले घूंघटों में से निर्निमेष-नयनों से उस आनन्द—सुधा को पीती हुई बे सुध होरही थी—देकर आने लगी। निदान बिचारी ने कई चक्कर काटे परन्तु सब सेव समेटने में न आए! यह तो उन रुपयों वाली बात से भी कहीं अधिक बढ़ गई! हंसते—हंसते लोगों की पसलियां चढ़ गईं! सैकड़ों मनुष्यों की हंसी ने तूफ़ान मचा दिया!!!

मोहिनी बिचारी पागल की तरह, दौड़ उन सेवों को अपनी चाची के समीप डाल आती थी। चिर—काल तक उस उत्कट हास्य से दर्शकों की भीड़ भी अपने आपे को भूली रही! अन्त में हांफती हुई को पादरी साहब ने गोद में उठा, प्यार कर कहा:—"बीबी तुम्हें एक टोकरी अपने संग लानी चाहिये थी"

तब मोहिनी हांफती-हुई बोली—"भाभो जी ने·:···चाची ने···किसी ने···भी नहीं ····· कहा!"

पादरी साहिब सुन, हंसे। दो-चार अपने मित्रों को संग ले; कुछ एक प्रगल्भा-कन्यकाओं को भी संग ले, मोहिनी को गोद में उठाए, उधर बढ़े, जहां गङ्गा और सरस्वती उन एक दो युवति योषाओं के संग बैठी, हंस--हंस बावली--सी होरही थीं। वहाँ जा, अपनी पुत्री से कहा—"देखिये—बिचारी मोहिनी को जो परेशानी उठानी पड़ी है, वह सब इसकी अम्मां और चाची साहिबा की बदौलत!"

मिस सूसन—"यह कैसे?"

पादरी—"यह खुद बतलाती है! देखो (कह, मोहिनी की ठोढी को प्रेम के साथ ज़रा हिला, बोले—) "क्यों—बीबी, तुम तंग हुईं, अपने सँग वह क्यों न ले आईं?"

मोहिनी—"क्या टोकली (टोकरी)?"

पादरी—"हां!"

मोहिनी—(उसी भांति हांफती) "भाभो जी ने भी···चाची ने भी···नहीं कहा,······ किसी ने भी···नहीं कहा!"

पादरी—"यह देखो!" कह, प्यार कर, तुरन्त ही लौट गए और वहीं गोष्ठी में जा, फिर वही मज़ाक उड़ाने लगे! इधर सरस्वती और गङ्गा भी हंसी के मारे लोटती लोटती बचीं।

तदुपरान्त और—और बातें छिड़ीं। और फिर धीरे-धीरे सब गेट से बाहर हो, खड़े हुए। माधव इन्हें तांगे में बिठाल घर की ओर ले चला।

इस बीच गङ्गा और सरस्वती भी वैसी नहीं रहीं, जैसी कि घर से आई थीं। अब तक अपनी जातीय-हीनता, जातीय-दुर्दशा पर वे आप लज्जित होरहीं थी किन्तु आज की ईसाइयों की सहराग—घूंटी से इनके मनोभावों ने सहसा अपना परिवर्तन किया। वह 'संकोच' जो अभी तक जातीय-हीनता के कारण नस—नस में धंसा मनोमस्तिष्क को निर्जीव-सा किए देरहा था, सहसा अब आज 'धृष्टता' 'कर्मण्यता' एवं 'विकास' में परिणित होगया ! इन दोनों महिलाओं ने गिरजा घर देखा नहीं, उसकी सड़क तक को जानती नहीं कि किधर से घूम कर गई होगी किन्तु उनके हृदय-युगल वायु-वेग-धारण कर सहसा वहीं प्रयाण कर गए, ! सहसा इनको अपनी जातीय हीनता पर, अपने 'हिन्दू' कहलाने पर और 'हिंदू—जाति पर' घृणा हुई । इनके अन्दर अब वे वे भाव जागृत होगए, जो दबाए दबने वाले नहीं ! ' अधिक क्या—सारे परिवार के मसीहमत बहुमान्य होगया ! अतीव श्रद्धा, अविचल विश्वास एवं उस में दृढ-राग होगया ! न जाने क्या होगा ?

इधर यह सब भी चांदनी-चौक रोड तक (किले के दरवाजे के सामने) आए। अनन्तर तीन जन तो चांदनी-चौक की ओर ही चले। शेष परेड के मैदान की सड़क को हो लिये । इन तीनों में से कुन्दन, पादरी साहिब और इनके एक मित्र ईसाई, जो प्रतिष्ठित विदित होते हैं, थे। जिस समय यह धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे तब एक रम्य फ़िटन सामने से आई । जब पादरी साहिब उस के बराबर से निकले, तो उस में से एक अङ्गरेज़ ने इन्हें देखा । इधर से इन्होंने भी उन्हे देखा । दोनों की चार आंखें हुई। पारस्परिक—'गुड्इवनींग' (Good Evening) के पश्चात्, उसने संकेत कर, इन्हें अपने पास बुलाया और सहर्ष पादरी साहिब अपने दोनों मित्रों के साथ फ़िटन पर पहुंचे । हाथ मिलाने के पश्चात्, अङ्गरेज के बराबर पादरी साहिब और सामने की सीट पर कुन्दन और तृतीय मिस्टर विराज गए । कुछ काल पर्य्यन्त अङ्गरेज़ और पादरी महोदय की सम्मिलित इङ्गलिश में बातें होती रहीं । कुन्दन भी साधारण तया अङ्गरेजी बोल और समझ सकता था। इस कारण उसने इनकी गाढ़-मैत्री का भली भाँति अनुभव कर लिया। और यह भी इन के कतिपय शब्दों से निश्चय कर लिया कि अङ्गरेज़-बहादुर साधारण गोरे नहीं हैं, आप जनरल-पुलिस-इन्स्पैक्टर (General Police Inspector) हैं। प्रसन्न-चित्त इन्स्पैक्टर महोदय के महत्व—पूर्ण औदार्य्य से भी वह तब मुग्ध हो गया—जब उस ने स्वीय परिचय—सम्बन्धिनी चर्चा प्रथम उन्हें ही स्वयं करते एवं एकाग्रता से प्रसन्नता के साथ सुनते देखा। इन्स्पैक्टर महोदय हिंदी-भाषा के भी वेत्ता थे। उन्होंने पादरी साहिब से अभिज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर कुन्दन से, विशेष परिचय प्राप्त होने के निमित्त, हिंदी भाषा में प्रसन्नता सहित बातें करनी आरम्भ कीं । अब तक तो कुन्दन पाषाणमयी—प्रतिमा की तरह निश्चल निर्वाक् होरहा था, परञ्च समाहित हो, उत्तर देने में प्रवृत्त हुआ। किसी प्रकार भी मनोविकार न पाकर गौराङ्ग-जाति की जातीयता पर मुग्ध होगया। इतनी देर में फ़िटन घण्टाघर और नई सड़क के बीच में आगई । यह देख, कुन्दन तो निश्चेष्ट हुआ ही बैठा रहा, परन्तु पादरी प्रवीण थे उन्होंने नईसड़क को ओर ही फ़िटन मुड़वा दी । बात की बात में गाड़ी दुकान के सामने आई। अब कुन्दन ने पादरी साहिब की ओर देखा । वह तुरन्त

उस के मनोभाव को ताड़ गए। और वहां ही गाड़ी खड़ी करवा, उतर गए। इन्स्पैक्टर महाशय ने पादरी साहिब और कुन्दन से सहर्ष हाथ मिलाए। तदुपरान्त गाड़ी आगे बढ़ी। इधर पादरी कुन्दन के साथ दुकान में प्रविष्ट हुए।

उपरोक्त साहिब ऐसे न थे जिन से यह बाज़ार अपरिचित हो? आज बाज़ार के लोग तेज-पुञ्ज—इन्स्पैक्टर की गाड़ी में पादरी साहिब के संग कुन्दन को बैठा देख, विशेषतया समीप के दुकानदार कुन्दन से हाथ मिलाते समय का उत्कृष्ट-व्यवहार देख, दंग हो गए! इस अन्तर में पड़ोसी-दुकानदार एवं जिन्होंने ऐसे देखा वे भी कुन्दन को कुछ अन्य दृष्टि से ही देखने लगे। कहीं-कहीं कुन्दन के काम ने दुकानदारों के चित्त में—नेत्र के कांटे के तुल्य खटक पैदा कर दी।

आज छः मास व्यतीत हो लिए, सपरिजन कुन्दन के वेष ने ही नहीं, मनोभावों ने, आचार ने, व्यवहार ने, धर्म ने कर्म ने सर्वथा, अपना कलेवर बदल लिया। हां, जन्म से अब तक के सारे संस्कार सहसा बदल गए! विशेष कर नाम परिवर्तन तो अल्पज्ञों की समझ से विलकुल बाहर हो गया। जैसेः—

महाशय कुन्दन……….मिस्टर के०एल० कैरी
(Mr. K L. Cari;)
,, माधव…… ,, मि० एम०पी० मारटिन
(Mr. M. P. Martin;)
,, मोहिनी…मिस ऐलन (M. Ellin;)
माधव-पुत्र…मिस्टर बटलर(Batlar)

भारत के दुर्दैव ने इन सब का नामकरण—संस्कार द्वितीयबार पादरी-पुरोहितों द्वारा करा दिया, पर करा ही दिया! पत-विषयक-चर्चा पार्श्व-देश-वासियों(पड़ोसियों) ने कुछ चलानी चाही थी किन्तु हा, उन की निर्बलता के कारण 'विधवा-स्त्री-स्तनाविव" वह वहीं हृदय लीन हुई!

इस अन्तर में मिस्टर कैरी, अपनी गत-जीवनी की घटनाएं याद कर, कभी क्रोध से तथा कभी घृणा से व्याकुल हो उठते थे! देश प्रेम एवं जाति-रागसे वे बिलकुल मुक्त होगये! अधिकतर एक प्रचण्डानल ने उनके हृदय को विशेष दग्ध करना आरम्भ किया। यदि कुछ वश की बात होती, तो वह हृदयाऽनल सम्भव है भारतीय जातियों को भस्म कर डालता! जब से आर्यावर्त के सपूतों ने उक्त-व्यक्ति को बप्तिस्म (Baptism) प्राप्त करने के लिए बाध्य किया, तब से उस के मनोवन में भयंकर दावानल धधकने लगी। इसी कारण अब कुन्दन की दुकान पर बहुत ही कम बैठक हो गई। अधिक-समय साहब-लोगों के बंगलों पर चक्कर काटने में व्यतीत होने लगा। उस ने अपने हृदय की शान्ति के निमित्त, कई मन (मण) चर्म के जूते बनाकर, भाग्य-विधाताओं को दान किया, जिस के प्रतिफल में, कई एक शिफ़ारसों के रगड़ों से जेनरल महोदय ने कुछ वचन दिया है। इसी लिए मिस्टर कैरी गृहस्थ छोड़, टाई के लिए विदेश-वासी हुए!

दो वर्ष हुए तब से परिवार का नेतृत्व मिस्टर मार्टिन के शिर पर है। मि० कैरी के आदेशाऽनुसार जूतों के कलेवर में कई मन चर्म अनेक साहब-बहादुरों के यहां प्रदान किया गया तथा किया जा रहा है। देखिए-इन की मनो कामना कैसे पूर्ण होगी? इस महद्दान का क्या फल होगा? हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार यह कौन कह सकता है कि—कलिन्द-नन्दिनी के परम-पुनीत प्रतार

पर की पुण्य-पुरी में किया हुआ यह महद्दान निष्फल हो जाए? मि० मार्टिन का जन्म-देश (ग्राम) अधिक-दूरी पर नहीं। फिर भला यह समाचार क्यों न वहांतक पहुंचता? कुछ औत्सुक्य-भरे कुछ अनुराग-भरे जातीय-जन मि० के कैरी के वृहद्बूट भण्डार " General Boot Merchants में प्रति दिन आते तथा धन-सम्पत्ति-प्राचुर्य्य देख, जितने प्रसन्न होते, उतने ही पतलून कोट पहने, लम्बा-चौड़ा टोप लगाए, आधी से-अधिक मूछें मुंडाए, पितृ पैतामही वृत्ति त्यागे मि० मार्टिन को देख, आश्चर्य-पोत में डगमगाने लगते! कोई-कोई साहस कर, पूंछता भी कि—"सच्चे परमात्मा करे, तुम्हारी-सी धन-सम्पत्ति सब के हो! परन्तु विस्मय यह है कि शिरपर टोप रखनेको तुम्हारे बुद्धि कैसे हुई?" तब मि० मार्टिन उत्तर देते और समझाते—"इस टोप में बड़ी करामात है! तुम से लोग इतनी घिन [नफ़रत] करते हैं, जितनी टट्टी (पुरीष) से! अगर तुम भी पहन लो तो यह टोप बड़े बड़े पण्डितों के, बड़े-बड़े चन्दन, माला, मनके, और पोथी धारियों के, बनिये-बक्कालों के जो लाला बने फूले नहीं समाते, दिलों को थर्रा देगा। तब से घिन करना तो दूर रहा, बातें करने को तुम से लोग तरसेंगे! फिर किसी की ताक़त यह न होगी कि—'छूए क्यों जाते हो, परे रहो!' यों कह दे! यह टोप आदमी बना देताहै!!"-आदि उलटी-सीधी बातें समझा कर, दो वर्ष में १ हज़ार मोची और चूहड़े-भंगी ईसाई कर डाले! विशेषतया गाँवों के अनाथ-बालक एवं जो भी क़ाबू आसका, अपनी सेना में सम्मिलित किया!!

× × ×

मिस्टर कैरी के यहां पार्टियां दी जाने लगीं। नगरान्तरों से सब्ज़ी के डल्ले के डल्ले आते हैं और ख़ाली कर, एक ओर धरे जाते हैं। डालियां भर भर कर मेहरबानों के यहां भेजी जा रही हैं।

एक दिन की बात है। मिस्टर कैरी अपने कमनीय-कमरे पर झूलना-कुरसी पर झूलते "ट्रीब्यून" पढ़ रहे थे कि शनैः शनैः एक पुलिस-मैन ने आ कर, नम्र हो, सलाम की अनन्तर एक चिट्ठी दी। जिसे पढ़ तुरन्त "अच्छा" कह, नीचे के कमरे में आए। कुछ देर पश्चात् निकले तब उनकी ख़ाकी वरदी पर गले से नीचे को आई हुई कृष्ण-चर्म-पेटिका, उन के पेट को कस; उन के डील डौल की विशालता से दर्शकों को प्रभावित करने लगी। उनके जूतों की "खट, खट चचर-मचर" से लोग चौ-कन्ने होने लगे। आप मकान से कुछ दूर आगे जा, विशाल घोड़े पर—जो पहले ही कसा हुआ, तयार था—सवार हो, पोलिस-औफ़िस (Police office) की ओर रवाना हुए। जिस दिन से आप पोलिस--इन्सपैक्टर (Police Inspector) हुए हैं उससे बहुत पहले ही नागरिकों को व्यक्ताऽव्यक्ततया ज्ञात होगया था। परंच अब आप पर बरसने वाली "बन्दगी" की वर्षा कौन तूफ़ान रोक सकता था? अब वही मार्ग में जनता की ओर से बरसने लगी! जिसके प्रतिकार में आपको उलटा हाथ हिलाना पड़रहा है! इस अवसर पर मिस्टर कैरी अपनी प्राचीन-दशा से "वर्तमान-दशा" की उतनी ही उत्तमता अनुभव करने लगे जितनी दुःख की अपेक्षा सुखमें, हानि की अपेक्षा लाभ में, पराजय की अपेक्षा जय में होती है! अस्तु! आपकी दया से अनेकों मोची—जो ईसाई हो गए थे—योग्यता और दैवानुकूल इतस्ततः लग गये।

इसी भान्ति काम करते २ कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन की बात है, मि. कैरी अपने कमरे में 'ट्रीब्यून' पढ़ रहे थे। एक व्यक्तिने धीरे से आकर झुककर, सलाम किया और फिर वह धीरे—धीरे कुछ कहता रहा पश्चात् आज्ञा पा, तत्काल लौट चला। उस की मुख-- प्रसन्नता से उसके हृदय-हर्ष के पारावार की बाढ़ का स्पष्ट आभास हो रहा था। उसके वेष-चेष्टादिकों से अनुमान होता था कि—यह गुप्त-चर है। अस्तु! मि. कैरी वर्दी पहन, अश्वारूढ़ हो, आफिस (Office) पहुंचे। वहां उस सूचना के आधार पर एक दर्जन पुलिसमैनों को उसी गुप्तचर के संग—जो इन से पहले आफिस आ पहुंचा था-रवाना किया। और एक मुन्शी भी पीछे से भेज दिया और स्वयं किसी की प्रतीक्षा करते बैठे रहे। बहुत समय न गया कि एक पोलिसमैन ने आकर एक दीर्घ लिफ़ाफ़ा--सा दिया। आप उसेपढ़ समाप्त ही करने वाले थे कि टेलीफून की घन्टी ने बोलना आरम्भ किया—"टुन-टुन-टुन···टुन-टुन···" जिसे सुन, सिपाही ने तुरन्त आकर नम्र--निवेदन किया—"टेली फून आया है, हुजूर!"

मि० कैरीने उस पत्र को पढ़ जेबमें डाल, टेलीफ़ून सुना। तदनुसार थानेदार संगले, घोड़े पर सवार हो, एक गांव की राहली। जैसे—जैसे मार्ग कटने लगा, वैसे--वैसे मि० कैरी का उत्कण्ठा से हृदय उछल--उछल ऊपर के कण्ठ तक आने लगा। वह वृक्ष जिसके शैशवपन में स्कूल आते जाते अनेकधा विश्राम ले, शीत- वात की सहायता से श्रममिटाया, सुखद-छाया का गुणगान गाया—देख, मि० कैरी के मनोभावों ने सहसा पलटा खाया। अतीत--जीवनी को सन्मुख ला, उपस्थित किया। इधर वायु-वेग अश्वोंने भी बातकी बातमें उन टूटे फूटे छोटे बड़े मकानों के पास ला—पहुंचाया, जहां शङ्कर और सरला के सुख-स्पर्श हाथों ने नग्न-दशा में कई बार कुरता पहना-पहना, धोती बांध-बांध, अन्तमें इन्हीं 'मिस्टर' महोदय को निर्लज्जता से 'लज्जा' का अन्तर समझाया था! शीतोष्ण वर्षा से बचाया! पढ़ाया, बढ़ाया, काम में कुशल बनाया था!! अन्त में यहीं से शँकर ने अपनी अस्थियाँ एक छोटी-सी थैलियोंमें भरवा, इन्हीं के द्वारा श्री गंगाजी पर्यन्त पहुंचवाईं थीं। यहीं से स्नेहमयी माता ने अनाथता देख, प्रलयंकरी-महामारीके कराल-मुख की ज्वाला से बचाने के निमित्त, मातुल कुल को प्रयाण कराया था! यह सब सोच मि० कैरी के दोनों नयन-नलिनों से चिरसञ्चित अश्रु-धारा बह निकली!! हा कहां वह सुख-बहुल समय और कहां यह आग्न्यागार-सम सांसारिक—क्लेशमय तप्त-जीवन? आज एकाकी मि० कैरी इन स्थावर पदार्थों को उसी तरह—जैसे शैशवपन में देखते थे—देख, मोह-ग्रस्त से होने लगे। क्यों?—इस लिए कि नवे हृदय से लालन-पालन करने वाले पिता हैं, न यशस्विनी स्नेहमयी अब यहां वह माता है, नेत्र-तारकों की भांति रक्षणीय समझ, जरासे दुःख में दोनों भ्राताओं को हृदय से ढक लेती थी!!

इस प्रकार मोह-तरङ्गिणी में डुबकियां लगाते, मि० कैरी ने अपने तरल तरगों को ग्राम में घुसते पाया। वहां झरोखों से, छतों पर से, अट्टालिकाओं की चिकों में से, अध-खुले घूंघटों में से रमणीकी नयन-मणि मालाएं— मानों स्वागत करतीं, भेंट में रख रही हों—देखीं। छोटे २ बालक-बालिकाएं इन

१—महामारी—प्लेग,

पन्द्रह वर्षों में कुमारपन छोड़ प्रौढ़ता धारण करलेने के कारण पहिचान में न आते देखे। निज वयस्यों को किसी के दाढ़ी, किसी के मूछें, किसी के अयथोचित बाल बढ़ जाने से विरूप हुए, एवं कृशों को पुष्ट, पुष्टों को कृश देखे। कई बातों में नवीनता एवं विशेषता देखी। तीस-पैंतीस वर्षीय जो थे उन्हें वृद्ध हुए श्वेत केशों वाले देखे। वृद्धों को जर्जरित देखे। टूटों को नये, पिछले नयों को टूटे, कहीं बिल्कुल मिटे, कहीं सर्वथा नये बने मकानों को देखा। दर्शकों की आँखों में धूल झोंक किञ्चित्तिर्यग् दृष्टि से अपने मकानों की दुर्दशा देखी। ऊंचे-नीचे नूतन बाड़े देखे। फलतः ग्रामदशा परिवर्तित देख, 'मिस्टर' महोदय को हर्ष-विषाद से घिरना पड़ा! जिन को मिस्टर कैरी पहिचान सके, वे इन को अधमुंडो-मूछों वाले सोलह आने सहाब—बहादुर होने से न पहिचान सके! कुछ एक ग्रामीण इन की धम से, पिशाचों से सपना भी करने लगे! कुछ एक कहते थे कि—"क्या जाने—लाला शिवप्रसाद की कैसी दुर्दशा होगी?"

इन को प्राप्त हुए सुन, एक दर्जन पोलिस मैन, जो पहले ही आ-पहुंचे थे, सावधानी से बिलकुल सीधे, क़वायद के अनुसार, चौपाल के कुछ आगे, कूएं की लम्बी शिला पर, भीगे वस्त्र से आच्छादित एक स्त्री शव के इधर उधर, यथोचित स्थानों पर खड़े होगए। इधर से आगे पीछे दौड़ते हुए छः सिपाहियों एवं थानेदार के संग मि० कैरी भी आ पहुंचे। इन्हें देख, सबने कवायद के अनुसार सलाम किया। दोनों घोड़ों से उतरे। इधर तुरन्त सिपाहियों ने घोड़े पकड़े और तुरन्त थपकी लगा, घुमाना शुरू किया।

यह दोनों उस स्त्री शव को इधर उधर से देख कुएमें झाँक चौपाल पर पहुंचे। वहां पहले से ही दो निवार के पलंग ला० शिवप्रसाद जी ने बिछाये हुये थे। दोनों पृथक् २ बैठ गये। मुन्शी नीचे एक छोटी सी दरी पर बैठ गये। अब तक मि० कैरी अनेकानेक चिरंतन भावों का, घटनाओं का स्मरण कर हर्ष-विषाद की अभङ्ग-तरंगा-गंगा में बह रहे थे, किन्तु जिस समय लाला शिवप्रसाद को देखा, तत्क्षण उनके अशेष—गात्र में, रोम रोम में एक एक विचित्र-विद्युत् दौड़ गई। वे कोपाऽकुल हो आक्रान्त से होगये। उनका प्राकृत अरुण—वदन उस समय अत्यधिक तमतमा उठा। नेत्र राग उनके हार्दिक भावों को व्यक्त करने लगा। परन्तु अपने प्रज्ञा बल से गाम्भीर्य्य धारण कर, सहसा अपने हृद्गत भावों को दबा लिया।

तदुपरान्त, मुन्शी ने काग़ज़ात खोल, तरतीबवार लगा कर, यथानियम लिखा पढ़ी आरम्भ की। ला० शिवप्रसाद मिस्टर कैरी के, और ला० रामप्रसाद जी थानेदार के बड़ी जोर से पंखा झल रहे थे। थानेदार साहिब पास पड़ोसके लोगों को बुला बुला, घेर रहे थे। वे बिचारे बैठे कांप रहे थे और उनके प्रश्नों का उत्तर देरहे थे।

इस समय लाला शिवप्रसाद की भय के मारे पिंडलियां थरथरा रहीं थीं। वे पंखा करते करते अपने पुत्र से बोलेः—

"अरे, हरप्रसाद, यहाँ आ, जरा पंखा करना।"

मि० कैरी--(जरा टोप ऊंचा कर, भ्रकुटी चढ़ा, तेज़ी से) "नहीं......सिपाही करेगा!"

लाला शिवप्रसाद ने भयानक तेजोमय मुख वर्ण देख, काँपते हुये।

"नहीं जी, मैं अभी आया" कह, उधर लड़के से कहा, "जल्दी आ, रे।" परन्तु

उसके आने से पहले ही मि० कैरी की भर्त्सना से ५-७ बूंदें मूत्र की निकल चुकीं थीं। त्रस्त पाद हरप्रसाद ने आकर, पंखा लिया। लाला शिवप्रसाद अभी ५-७ कदम भी न चल पाये थे, हा! विचारे अपनी सारी शक्तियां लगा कर भी मूत्र वेग रोकने में असमर्थ हुये। फलतः मूत्र धारा से धोती और जूते तर होने लगे। क्षण के उपरान्त ही पृथिवी पर भी गिरती 'धारा' सब को स्पष्ट दीख पड़ने लगी। बिचारे वृद्ध लाला जी इन प्रताप-शाली महानुभावों की बेअदबी भी न कर सके कि कहीं वहीं बैठ मूत्र त्याग करते। फलतः घर जाते हुओं का सारा मूत्र धोती से निकल, पृथिवी पर घर तक गिरता गया।

इस ओर पीठ होने से थानेदार साहिब तो नहीं, हाँ मिस्टर कैरी ने और प्रायः सभी पोलिस सेवकों ने एवं उपस्थित ग्रामीणों ने अवश्य देख लिया। यह दृश्य तो ऐसा न था कि जिसे देख सहज ही में हंसी रुक सके। प्रवीण मि० कैरी ने अपने हृदय में क्रौध समुत्पन्न कर, उस हास्य का समूलोत्मूलन किया। परन्तु पोलिसमैन एवं ग्रामीण बिचारे चक्की के गाले में आगए। वे उस क्रिया को न कर सके। तेजस्वी मि० कैरी के तेज के आगे कैसे हँस सकते थे? यद्वा तद्वा सभी हास्य वेग का निवारण करने में लगे परन्तु सफलता कम मिली। यह गुदगुदी दिल में हुई थी अतः कुछ एक इधर उधर मुंह कर, हंसे भी। इधर ला० रामप्रसाद हरप्रसाद जी भी इस वृत्त को साधन देख रहे थे, विचारे दोनों इस बेइज़्ज़ती से मृतप्राय होगये। ठीक है भय बुरा।

ला० शिवप्रसाद इस समय कहाँ स्नान कर सकते थे। वे धोती बदल, पानी के हाथ से ज़रा पैर पूछ, जल्दी ही घर से वहाँ लौट आये। और झट हरप्रसाद से पंखा ले झलने लगे ही थे कि मि० कैरी ने तेज़ी के मारे सुर्ख मुह किये एक सिपाही को हुक्म दिया "यह नापाक है, इसे अलग हटाओ।"

सिपाही—"बहुत अच्छा, हजूर।" कह, लाला शिवप्रसाद को एक ओर का इशारा कर; बोला "वहां बैठो।"

शिव० [कम्पित-कर जोड़] "जो हुक्म हुज़ूर का।"

इस अन्तर में जो प्रश्न मि० कैरी करने गये, थानेदार साहब आस पास वालों से पूंछ पूंछ उनका उत्तर लेने गये। बाकायदा सब लिखा पढ़ी समाप्त करा, अन्त में मि० कैरी उठे और इस विषय में कुछ गवाहों को इधर उधर के लोगों को कल सुबह पोलिस आफिस में उपस्थित होने के लिये आज्ञा दी और उस लाश को सिविल सर्जन के पास ले जाने का हुक्म दिया। उस पर चार सिपाहियों की ड्यूटी लगा, स्वयं घोड़े पर सवार हो, चले। कुछ ही कदम चले थे कि ला० शिवप्रसाद पीछे दौड़े और कोई २०० कदम पर जा पुकार, कहने लगे "एक अर्ज़ करनी है, हुज़ूर। एक अर्ज़ करनी है!!"—यह सुन, मि० कैरी ने पीठ मोड़ कर देखा और घोड़ा रोका। और लाला शिवप्रसाद जी के ज़रा पास आने पर, कड़क कर "क्यों क्या है?"

शिव० —(विनीत हो दीनता से) "यह मिट्टी ठिकाने लग जाये तो अच्छा है ग़रीब परवर कह मि० कैरी के जूतों पर पगड़ी टेक, दीन हो, मुख की और ऊपर को देखने लगा।

मिस्टर कैरी हिनहिनाते घोड़े की जरा लगाम सहार, दो तीन बार शिर हिला, बोले

" नो नो पहले होस्पिटल (Hospital) जाना होगा।"

शिव०—(झट जेब से सौ सौ के पन्द्रह नोट और दूसरी जेब से रूमाल निकाल, जिस में १०० अठमासियां होंगी, इन सबको कम्पायमान अञ्जलि में कर, दीन मुख हो। "ग़रीब परवर ! मेरे बुढ़ापे की लाज आप के हाथ रह सकती है।"

मि० कैरी एक बार तो लालायित हुए। परन्तु कुछ समझ कर, तत्क्षण क्रोध से भयंकरी मुखाकृति कर, बोले "डेम, फूल! मारा जायगा, हट और घोड़े के एंड लगाई, जिस से वह हवा से बातें करने लगा। बिचारे शिवप्रसाद अपना सा मुंह ले लौट आए ।

गांव भर में घर-घर के अन्दर यही चर्चा है कि—लाला शिवप्रसाद की स्त्री की बड़ी दुर्दशा होगी ! पेट-चाक होगा ! कैसी किरकिरी हुई !!!

इसी प्रकार जितने मुख, उतनी बातें यत्र—तत्र होरहीं थीं। एक स्थान पर निम्नलिखित संवाद था :—

ठाकुर—(पहले दिल खोल कर, हंसे फिर—) "चौधरी जी ! देखा भी—बना फिरे था रुस्तमखाँ का साला ! ज़रा सी धमकी से ऐसा धोती में पेशाब किया—चौपाल से घर तक छिड़काव हुये ही गया !!

चौधरी—"ठाकुर साहिब ! आन पड़ी पर सब चातुरी चम्पत होजाती है ! पर यह समझे भी—बड़ा साहब कौन है ? यह है-शंकर मोची का बड़ा लड़का ! आः! कैसा प्रतापी हुआ है ? हमने तो ऐसे घर का कहीं नज़दीक ऐसा देखा—सुना नहीं ? चौदह पन्द्रह वर्ष हुये जब प्लेग पड़ी थी, तब के यह निकले हुये हैं ! ओः ! आज शँकर कहीं होता तो कहां समाता ? अब तो साहिब, इसके भय के आगे भूत भी कांपता है !!! ”

ठाकुर—"हां साहिब ! पिछले पुण्य कहीं आगे आगए ? देखो—न, रूप रंग सभी और के-और होगए ! मोची तो क्या, कोई भी यह नहीं कह सकता कि-यह हिंदुस्तानी है या अङ्गरेज़ ?

चौधरी—"पर साहिब, यह ध्यान रखने की बात है कि—सब के साथ यह ऐसा नहीं होगा। सुना गया है, ग़रीबों के साथ तो बड़ा ही नेक रहता है ! ”

मिस्टर कैरी के वर्तमान सिविल-सर्जन चिरकालीन मित्र हैं। यह पादरी साहिब के संग इनके यहां दूसरे-तीसरे दिन अवश्य आते-जाते रहते हैं। जब से मिस्टर कैरी इस पद पर नियुक्त हुए हैं, तब से तो कार्य्य-प्राचुर्य्य के कारण थोड़ा मिलना-जुलना होता है । परन्तु मैत्री उसी मात्रा में है। यदि मि० कैरी के यहां बे-मौके किसी को छींक भी आजाए तो डाक्टर साहिब को तत्काल मोटर पर आ, सम्हालते हैं। जब जब इनके यहां पार्टी होती है, डाक्टर साहिब अवश्य उपस्थित होते रहते हैं। यदा—कदा वायु—सेवनार्थ भी संग जाया करते हैं। आज भी डाक्टर साहिब अपनी मोटर में मि० कैरी के संग जारहे थे। जिस समय मोटर परेट के मैदान की सड़क की ओर जारही थी तब उस में, उक्त दोनों महात्माओं को लाला शिवप्रसाद के मुनीम ने देखा। उस समय वह अपने लाला के पीछे-पीछे—जो लाश को लिये अभी आगे ही आगे गए हैं—जा, रहा था।

वहां ला० शिवप्रसाद को बैठे हुए, शाम के सात बज चुके। इसलिए अस्पताल पहुंचते ही डाक्टर साहिब ने कह दिया—"कल

देखेंगे" इसलिए उस लाश को चीर घर में रख, रात भर सब बिचारे बाहर बैठे रहे।

दूसरे दिन मध्यान्ह के एक बजने का समय आया। डाक्टर साहिब और-और कामों से निपट अपने दो कम्पोन्डरों को संग ले, शवगृह में प्रविष्ट हुए। कुछ ही देर के पश्चात, एक कम्पोन्डर किसी काम बाहर गया तब लाला शिवप्रसाद को बुला कहने लगे:—"इसकी शक्ल से ऐसा पता लगता है कि पहले दम घोटा गया हो और फिर कूप में डाल दिया गया हो?

शिव०—(कांपते हुए कर—जोड़) जी, ऐसा तो नहीं हुआ?।"

डाक्टर—"नहीं कैसे—अब साफ़ पता लग जाता है। अच्छा बाहर जाओ!"

यह सुन शिवप्रसाद चौंक उठा, बाहर निकल आए और रामप्रसाद से फक हुए कहने लगे—"क्या करें? अभी से डाक्टर कहता है—'दम घोटा गया है।' आगे की ख़बर क्या—कुछ और कहने लगे?"

इस समय रामप्रसाद से पहले ही मुनीम बोल पड़ा—"एक बात तो मैं कहूं, लाला जी! कल संझा को इन्सपैक्टर साहिब और सिविल-सर्जन दोनों एक ही मोटर में जारहे थे।" (शेष फिर)

वैज्ञानिक संसार

संसार में रेडियम की मात्रा

२८ वर्ष हुए जब कि श्रीमती क्योरी ने रेडियम की खोज की थी, परन्तु इस समय तक समस्त संसार में एक पाव भर भी रेडियम इकट्ठा नहीं किया जा सका।

भविष्यवक्ता चन्द्र

चन्द्रमा कभी २ झूंठ तो बोल देता है परन्तु तो भी मौसिमों के सम्बन्ध में इसके द्वारा कही गई भविष्यद्बाणी पर बहुत कुछ विश्वास किया जा सका है। जबकि इसका रङ्ग पीला और प्रकाश मध्यम हो वर्षा की आशा रखनी चाहिये, जब कि उसका रङ्ग लाल हो तो आन्धी आवेगी, जब कि यह रङ्ग और आकृति में साधारण हो तो सुन्दर स्वच्छ मौसम की आशा रखो।

जलाभेद्य दियासलाई

एक फ्रांसीसी ने ऐसी दियासलाई बनाई है जो कि पानी से भीग कर खराब नहीं होती। जलने वाले मसाले में रबड़ मिलाकर उसको पकाया जाता है और फिर उसे दियासलाई के सिरों पर चढ़ाया जाता है। कहाजाता है कि जितनी भी दियासलाइयों को जल में भिगोकर परीक्षा की गई वह सब ठीक २ जल गईं।

उड़ने वाली नाव

जर्मनी ने एक इस प्रकार की कश्ती बनाई है जो कि हवा में उड़ सकी है और समुद्र पर तैर सक्ती है। यह बिना कहीं ठहरे के एक दम ६०० मील उड़ चुकी है। इसको बनाने केलिये नकशा डाक्टर राहरबैक ने बनाया था और यह डैन्मार्क में ज़ङ्ग न लगने वाली धातु से बनाई गई है। कहा जाता है कि यह समुद्र में भी सदा के लिये अन्य किश्तियों की तरह रह सक्ती है। इसके पोत (Sails) कोई एक हजार वर्ग फुट होंगे और इन में ऐसे ऊंचे बल्लम लगे हैं जिनमें दूरबीनें जड़ीहुई हैं। यदि अन्जन टूट जाय

या किसी कारण से खराब हो जाये तो यह नाव इन पोतों के सहारे समुद्र पर चल सकती है।

गगन स्पर्शी अट्टालिका

ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाईबल में बावल के दीवार का वर्णन आया है जो कि मनुष्यों ने आकाश में खुदा तक पहुंचने के लिये बनाया था और जिस प्रयास से खुदा ने डर कर उन मनुष्यों की भाषा भिन्न भिन्न करदी जिससे कि वह एक दूसरे की बात न समझ सकें और मीनार का काम बीच में ही रह जाय। अमरीका भी आज कल ऊंचे २ मकान बनाने में इसी उद्देश्य के पीछे चलता मालूम देता है। न्युयार्क में आजकल एक नई अट्टालिका के बनाने का निश्चय हुआ है। वह ६५ मञ्जल का होगी, उसमें ५५०० कमरे होंगे और वह ८०० फुट ऊंची होगी आजकल बोस्टेन में संसार की सब से ऊंची इमारत है जो कि इस नई इमारत से ८ फुट कम ऊंची है। उसमें एक सर्व धर्म मतावलम्बियों के लिये गिरजा रहेगा। सार्वभौमिक बैंक होगा और सबसे ऊपर की मंजल पर हस्पताल होगा। भूमि के मूल्य के अतिरिक्त सवा चार क्रोड़ रुपया इस पर लागत आयेगी।

चतुर माली समय२ पर वृक्षों और पौदों की डालियों को क्यों काटता रहता है?

किसी भी वृक्ष में परिमित मात्रा में ही रस अथवा शक्ति रहती है; इसकी डालियों को काटने का एकमात्र लक्ष्य इस रस अथवा शक्ति का उचित उपयोग करना ही है।

हमारा प्रयोजन यही है कि वृक्ष इस प्रकार बढ़ें कि इसमें उत्तम फल फूल लग सकें और किसी भी उद्यान में वह भद्दा न दीख पड़े। डालियों की उचित कटाई के बिना उत्तम से उत्तम उद्यान भी जङ्गल बन जायगा। अना वृद्धि, हरी और सूखी टहनियां छोटे २ अन्य वृक्ष और इसी वृक्ष के छोटे वृक्ष के रूप में अपनी नसल को बढ़ाने के उद्योग सब मिलकर मनोहर वाटिका के नाशकारी सिद्ध होंगे।

इस लिये हम उन टहनियों और डालियों को काट देते हैं जोकि अपने उत्तम फल दे चुकी हैं और अब उस रस और शक्ति को चूस रही हैं जिस की अन्य डालियों के लिये अधिक आवश्यक्ता है अथवा यदि उन्हें न काटा जाय तो वह इस प्रकार बढ़ेंगी कि वृक्ष के शेष भाग पर धूप, प्रकाश और वायु न पहुंचने देंगी। डालियां काटने से हम इस को वृक्ष के उस भाग के लिये सुरक्षित रखते हैं जिस से हमें उत्तम से उत्तम फल और फूल प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार हम समस्त वृक्ष को शक्तिशालि बनाते हैं।

समुद्र जल अथवा नमकीन पानी में स्नान करने से जुकाम क्यों नहीं होता?

जुकाम ठंढ लगने से होता है और ठंढ शरीर के ताप के एक दम और अधिक कम होजाने का परिणाम होती है।

ठंढ उसी गति से लगती है जिससे कि जल हमारे शरीर में से—जब कि हम जल में डूबे हुये हों और जल से निकलने के पीछे भी जबतक कि हमारा शरीर बिलकुल सूख न जाय—ताप को कम करता है, क्योंकि जब जल हमारे शरीर पर सूखता है तो यह अपने साथ हमारे शारीरिक तापको भी कुछ कुछ ले जाता है।

परन्तु समुद्र जल अथवा नमकीन पानीमें इतना उत्तम ताप बाहकत्व नहीं जितना कि शुद्ध जलमें इसलिये समुद्र में रहते हुये नहीं को

अपेक्षा हमारे शरीर का तप काम गति से घटता है। और जब हम जल से बाहर निकल आते हैं तो जलके सूखने पर हमारे शरीर पर एक प्रकार की नमक की पतली तह सी जम जाती है जिसके कारण हमारे शरीर का ताप इतनी शीघ्रता से नहीं घटता; अतः हमें अपने शरीर को वाह्य वायुमण्डल के साथ समीकरण करने के लिये अधिक समय मिल जाता है और हममें शरीर का ताप एक दम कम नहीं होता।

इन कारणों से समुद्र जल में स्नान करने से जुकाम हो तो सक्ता है परन्तु नदी अथवा कुयें के शुद्ध जल में नहाने की अपेक्षा इसकी सम्भावना बहुत कम है।

ज्वालामुखी पर्वत से निकलने वाले अग्न्योद्गार का ताप।

जब ज्वालामुखी पर्वत फटता है तो इसमें से जो पिघला हुआ मसाला निकलता है वह इतना गरम होता है कि जिस चीज़ पर भी पडे उसे तुरन्त भस्म कर देता है। इसका वास्तविक ताप किस मात्रा का होता है यह जानने के लिये एक इटलियन वैज्ञानिक ने एटना के गरम २ अग्न्योद्गार का जोकि १९२३ की जून में उगला गया था ताप मापने के लिये इसके मुँह पर कई स्थान पर ताप मापक यन्त्र लगाकर जाँच की थी। उसके यन्त्र ने ९५ डिग्री सैन्टी ग्रेड ताप दर्शाया था जिस थर्मामेटर से शरीर का ताप, ज्वर इत्यादि देखते हैं वैसे थर्मामेटर में यह ताप १८२३ दर्जे का बनता है। लावा ज्वालामुखी के मुख से तुरन्त निकलने पर इससे कहीं अधिक गरम होगा क्योंकि उपरोक्त ताप का माफ लावा निकलने के बहुत देर पीछे लिया गया था। १९१० में जो लावा निकला था उसका ताप कुछ ही घन्टों के भीतर २ मापा गया था और १६५२ दर्जे निकला था।

रश्मीजो कि रोग कीटाणुओं का नाश कर देती है।

कई ऐसे रासायनिक द्रव्यहैं जो कि जल में डालने से उस में रहने वाले कीटाणुओं को मारकर उसे शुद्ध करते हैं। दो वैज्ञानिकों से अकस्मात एक बोतल जिस में कि ऐसा रसायनिक पदार्थ था जल में गिर पड़ा बोतल का कार्क खूब कस कर लगा हुआ था जिस से कि जल उस में आ जा नहीं सकता था। तो भी २४ घन्टे पीछे परीक्षा करने पर पता चला कि जल में एक चौथाई कीटाणु मर गये हैं। जिस बोतल में इस द्रव्य (Chloride of lime) का पतला सा घोल quarty (रेते) को बनी हुई थी। इस का अभिप्राय यही मालूम होता है कि द्रव्य में से ऐसी किरणें या रश्मियां निकलती हैं। जो कि quarty को पार कर सकतीहै और जल के भी कीटाणुओं को मार देती हैं। इस परीक्षा के परिणाम बड़े महान हो सकते हैं। क्योंकि जल में बिना कुछ मिलाये उस को पवित्र करने की यह विधि बहुत ही कम खर्च और किसी भी प्रकार की हानि न पहुंचाने वाली हो सकती है

चोर पकड़ने का बेतार का यन्त्र

कानों और कारखानों से बाहर निकलते समय मज़दूर लोग कई बार भीतर का सामान चुराकर अपने साथ ले आते हैं जो कि कितनी बार तलाशी लेने पर भी नहीं निकलता और एक चोर की खातिर सैकड़ों और की तलासी लेना भी न तो उचित ही है और न प्रत्येक समय सम्भव ही होता है। इस कष्ट को अनुभव करते हुये एक योजक ने एक चोर पकड़ने का यन्त्र बनाया

है जिसका कि नाम उसने 'बेतार का चोर पकड़' रखा है। कानों और कारखानों के मुख्य द्वार पर बिजली की तारों से मढ़ा दरवाज़ा लगाया गया है और दर्बान के सिर पर इस प्रकार की टोपी रखी जाती है जिस में छोटे से छोटे शब्द को सुनने योग्य यन्त्र लगा रहता है। जब कोई आदमी दरवाजे में से निकलता है तो उस के पांव की आहट से जो शब्द होता है वह दर्बान तुरन्त सुन लेता है। यदि किसी आदमी के पास साधारण से अधिक बोझ हो तो इस यन्त्र में शब्द सुनाई देता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार भीतर काम करने वाले बहुमूल्य धातु या औज़ार इत्यादि चुरा कर नहीं ले जासके। यन्त्र इस प्रकार से बनाया गयाहै कि कुछ उचित मात्रा का बोझ रुपया, पैसे चक्कू, घी इत्यादि जेब में रहने से कोई शब्द नहीं होता।

विज्ञान की सहायता के लिये कांपना

वैज्ञानिक अनुसन्धान के दो भाग करुणा,शील तथा विनोदशील हैं बहुत समय नहीं बीता कि एक ऐसे आदमी की आवश्यकता हुई जो कि कांपने को तैय्यार हो। इस बात की परीक्षा करनी थी कि जहाज़ के टूट जाने या जल जाने से जो आदमी समुद्र में तैर कर अपना जीवन बचाने पर बाधित होते हैं उनको भीगे कपड़े पहिने हुये वायु लगने से जो सरदी लगती है उस के दुष्परिणाम से कैसे बचाया जा सके? इस के लिये यह आवश्यक था कि किसी व्यक्ति को यदि भिन्न २ मात्रा की वायु के झोकों में—भीगने के पीछे—रखा जाय तो उसकी कंपकंपी लगने की कौन सीमा होगी ?

एक मनुष्य ने इस कार्य के लिये स्वयं अपनी सेवा अर्पण की। ठंढ का मुकाबला करने की उस की शक्ति की जांच के लिये उस को गुन गुने पानी में बिठा दिया गया, जहां कि वह एक बार भी काँपे बिना कुछ समय के लिये बैठा रहा।

अब सच मुच उसे कंपाने का यत्न किया गया। उसे एक हवादार सुरंग में रखा गया, यह ऐसा स्थान था जहां कि इच्छानुसार जोर की हवा पहुंचाई जा सकती थी।

यहां भी स्वयं सेवक नितान्त नंगा खड़ा रहा जब कि हवा के झोकों का बेग मन्द समीर से ७ गुणा अधिक था। यन्त्र द्वारा उस की कंप कंपी को नापा जाता था।

स्वयं सेवक को एक और परीक्षा में डाला गया। उसे निचुड़ते हुये गीले कपड़े पहिना कर एक चटान पर खुले में बैठाया गया और परीक्षकगण उस की कंपकंपी को रोकने को भिन्न २ उपायों की परीक्षा करते थे।

ग्यारह भिन्न प्रकार की विधि का प्रयोग किया गया और अन्त में यह निश्चय किया गया कि जहाज़ से गिरे हुये व्यक्तिओं को ठंढ से बचाने का सब से उत्तम यह उपाय निकाला गया कि इन व्यक्तियों को समुद्र से बचाने वाली किश्तियों में बारीक रबड़ के कपड़े रहने चाहिये जो कि उन के गीले कपड़ों के ऊपर पहनाये जा सकें।

हमारी मंजूषा

तरंगितहृदय—अथवा विचार तरंग माला लेखक—श्रीयुत पण्डित देवशर्मा, उपाचार्य गुरुकुल कांगड़ी, प्रकाशक सस्ता साहित्य-प्रकाशक मंडल अजमेर, पृष्ठ संख्या १९०मज़बूत सुन्दर खद्दर की जिल्द मूल्य ॥)

सस्ती पुस्तक माला की यह ९ वीं पुस्तक है और इसके रचयिता श्री देव शर्म्मा जी गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक हैं। जैसा कि लेखक का अपना जीवन सरल, सैाम्य और पवित्र है पुस्तक की रचना भी उसके अनुकूल ही हुई है। इनके स्वभाव की निर्मलता, इनकी सचाई और शील, शान्ति और विश्वास की इस विचार तरंग में पूरी २ छाप है। इस पुस्तक में अध्यात्मिक और देश भक्ति, समाज सेवा इत्यादि विषयोँ पर २१ प्रबन्ध हैं। इनके एक बार पाठ से मन शान्त सरोवर में गोते खाने लगता है, विचारों की स्वच्छता और सरलता पर मन मुग्ध होजाता है। हिंदी भाषा भाषियों को इस अमृत का अवश्य पान करना चाहिये, इसके एक एक घूंट से उनके उत्पीड़ित तप्त हृदयों को अवश्य शान्ति मिलेगी।

निर्वाचन-नियम—लेखक श्री दयाशङ्कर दुवे और श्रीयुत भगवानदास केला, प्रकाशक व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन, पृष्ठ १३० मूल्य ॥-)

इस पुस्तक के लेखक दुवे जी हिंदू विश्वविद्यालय में अर्थ शास्त्र के अध्यापक हैं और श्रीयुत केला जी के इस विषय सम्बन्धी ज्ञान से हिंदी संसार भली भांति परिचित है। ऐसे सुयोग्य लेखकों द्वारा लिखी गई यह पुस्तक हिंदी भाषा में अपने विषय की प्रमाणिक रचना है। जब से भारत को उत्तरदायी शासन सम्बन्धी कुछ अधिकार मिले हैं तब से इस ओर जनता का कुछ ध्यान खिंचने लगा। हमारी कैांसिलें और एसेम्बली किस प्रकार कार्य्य करती हैं, इनके सदस्य किस प्रकार निर्वाचित होते हैं, इस निर्वाचन का किनको मताधिकार है, मत किस प्रकार दिया जाता है। भिन्न २ प्रान्तों की कैाँसिलों के कितने सदस्य हैं, किस प्रकार वह प्रस्ताव इत्यादि पेश कर सकते हैं इत्यादि समस्त जानने योग्य विषयोँ की इस पुस्तक में पूरी २ जानकारी कराई गई है। प्रत्येक शिक्षित भारतीय नर और नारी को जिसे अपने देश की अवस्था जानने की इच्छा है इस विषय का ज्ञान प्राप्त करना बड़ा आवश्यक है और इसके लिये हिंदी भाषा में इस से अच्छी और कोई पुस्तक नहीं।

नीचे की पुस्तकें नवलकिशोर प्रेस से हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं :—

वासुदेव—श्री कृष्णचन्द्र, लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा पृष्ठ संख्या १७० मूल्य ॥।)

हिंदी भाषा में इस ग्रन्थ की स्वतन्त्ररूप से रचना हुई है, यद्यपि इसके लिखने में लेखक ने आज तक लिखे हुये श्रीकृष्ण जी के कितने ही जीवनचरित्रों से सहायता ली है। इसकी शैली विचार पूर्ण और आलोचनात्मक है यथा सम्भव प्राचीन इतिहास को उसके वास्तविक रूप में प्रगट करने का यत्न किया गया है। पैाराणिक ग्रन्थों और दूसरे इतिहासकारों के प्राचीन ग्रन्थोँ के आधार पर इसकी रचना की गई है पुस्तक की बड़ी विशेषता यह है कि—कहीं २ कुछ एक विशेषणों को छोड़

कर—इसके नायक को परमात्मा के रूप में पेश न करके महापुरुष के ही रूप में पेश किया है। पुस्तक विद्वत्ता पूर्ण और सार गर्भित है।

वीरांगना तारा—लेखक श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी, पृष्ठ संख्या २६, मूल्य।)

यह एक शूरबीर राजपूत रमणी का पद्यात्मक जीवन चरित्र है जिस के पाठ से हमारी कन्यायें और मातायें प्राचीन समय की राजपूत कन्या के दृढ़ संकल्प, आत्मभिमान, बाहुबल, चातुर्य और पिता तथा पति भक्ति का बड़ा जाज्वलन्त और उत्साह वर्धक चरित पाठ का रस ले सकती हैं। पुस्तक कन्याओं को उपहार देने योग्य है।

रहीम-कवितावली—लेखक श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ तिवारी, पृष्ठ सँख्या ६८ मूल्य ।≤)

ऐसा कौन सा हिंदी भाषा भाषी होगा कि जो रहीम के दोहों से अपरिचित हो। इनकी कविता में कितना रस है, यह कितनी भाव पूर्ण है और इनकी उक्तियां कितनी नुकीली हैं यह कुछ वही जानते हैं जिन्होंने कि अब्दुलरहीम खानखाना 'रहीम' की कविता का आनन्द लिया है। मुसलमान होकर भी आप ने हिन्दी में ऐसी रचना की है जो कि सदा अमर रहेगी और इनके नाम को भी अमर रखेगी। प्रस्तुत पुस्तक अब तक प्रकाशित सभी पुस्तकों से अधिक उपयोगी है। इस में विद्यार्थियों के हितार्थ दोहों की टिप्पणियों के अतिरिक्त कवि के जीवन और उस कविता पर बड़ी सुन्दर आलोचना की गई है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

महिला-हितैषिणी—संग्रहकर्ता श्रीयुत द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या २१७ मूल्य १)

यह स्त्री शिक्षा सम्बन्धी पुस्तक है जो कि कितनी ही बङ्गला पुस्तकों—विशेष कर श्रीयुत सतीशचन्द्र चक्रवर्ती की पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। इसमें स्त्रियों के जानने योग्य सभी विषयों पर कुछ न कुछ लिखा गया है। इनके गुण दोष, गृहणी और माता के कर्तव्य, उनके धर्म तथा उनके जानने योग्य उपदेशों का संग्रह है। भाषा भी सरल है और बीच में हमारी प्राचीन देवियों के जीवन चरित्र देकर इसको मनोरंजक बना दिया गया है। इसकी बड़ी खूबी यह है कि हमारी देवियों के सन्मुख उस हमारे प्राचीन धर्म और इतिहास अवलम्बित लक्ष्य को रखा गया है सादा जीवन और उच्च विचार जिसका उद्देश्य था।

अपना और पराया-अनुवादक ठाकुर युगलनरायण सिंह, पृष्ठ सख्या ४५ मूल्य, ।)

यह बङ्ग भाषा के प्रसिद्ध उपन्यास "आपन और पर" का हिन्दी अनुवाद है। उपन्यास मनोरंजक और शिक्षाप्रद है किन कारणों से गृहस्थ जीवन का सर्व सुख नष्ट हो जाता उनमें से इसमें एक का उदाहरण है। किस प्रकार अविश्वास से अपने पराये बन जाते हैं और किस प्रकार सद्व्यवहार से पराये अपने बन जाते हैं यही इस कथा का आधार है।

हृदय-श्मशान—अनुवादक पण्डित कात्यायनी दत्त त्रिवेदी, पृष्ठ ८०, मूल्य ।≤)

यह भी बङ्गला के उसी लेखक की पुस्तक का अनुवाद है। पुस्तक बड़ी ही मनोरंजक और मनोहर है। यद्यपि यह एक दुखान्त कहानी है। किस प्रकार पति और पत्नी एक दूसरे को अपना अभिन्न हृदय मित्र न बनाकर वरन दूसरों के मनको कष्ट न पहुंचाने के विचार से कुछ कष्टप्रद बातों

को दूसरे से छुपाने हैं और इस कारण अपने दाम्पत्य सुख का सर्वथा नाश करदेते हैं इसी रहस्य को इस पुस्तक में कहानी के रूप में मनोवैज्ञानिक विवेचना की है। पुस्तक अति भावपूर्ण। शिक्षाप्रद और मनोरंजक है।

वनिता-विनोद

(स्त्री जगत्)

स्त्री सम्बन्धी आवश्यक्तायें

श्रीमती शुभ लक्ष्मी अम्मल बी०ए० स्त्री धर्म में लिखती हैं कि शारीरिक वृद्धि, जनना विज्ञान, बाल्य विवाह का हटाना और मातृत्व के कर्तव्यों को शिक्षा देना यही प्रश्न आज कल विचारणीय हो रहे हैं। बाल्यविवाह ही हिन्दू जाति की उन्नति का विशेष रूप से बाधक और शिक्षा का द्रोही है। जब कि अभी लड़के लड़कियों की आयु पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त करने की ही होती है, जब कि उन के दिमाग़ और शरीर अभी सम्पूर्णता को प्राप्त करते ही होते हैं ऐसी दशा में जब कि उन को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के नाशकारी चिन्ताओं और तकलीफों से सर्वथा प्रथक् रहना चाहिये ऐसी दशा में जब कि उनके मन पवित्र, सांसारिक विषयों से प्रथक् और भोले भाले होने चाहियें—वह विचारे बच्चों और बच्चिय विवाह बन्धन में जकड़े जा कर वैवाहिक जीवन के रहस्य में जबरदस्ती प्रविष्ट किये जाते हैं और सन्तानोत्पत्ति, पालन, रक्षण आदि की तकलीफों और चिन्ताओं को सहने पर बाध्य होते हैं। विचारो कि एक १२ वर्ष की बच्ची को एक छोटे से बच्चे की माता बनकर रातों जगाना पड़े और बहुतेरे घरों में साथही सारा घर का काम भी करना पड़े! तो वह दीर्घायु रहे और हृष्ट पुष्ट रहकर आनन्द पूर्वक जीवन कैसे बितासकती है? और ऐसी बच्ची का बच्चा कैसे हृष्ट पुष्ट हो सकता है? फिर विचारो कि एक १५ वर्ष का लड़का एक वैवाहिक बन्धन में जकड़ा हुआ है, न वह अपनी माता का सहारा ही बनता है न युवा पत्नी का ही पथ दर्शक और उस पर भी पाठशाला के पाठों को याद करने और अध्यापकों को प्रसन्न रखने की चिन्ता का भार है! जब तक वह अपनी शिक्षा पूरी करता है तब तक उसके ऊपर कई बच्चों के पालन पोषण का भी भार आ पड़ता है!

बेगम भूपाल का मुसलमानों को उपदेश।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के दीक्षान्त संस्कार पर बेगम साहिबाने मुसलमान विद्यार्थियों को जो उत्तम उपदेश दिया है उस का सार यह है:—उन्होंने कहा कि याद रक्खो कि तुम उस धर्म इस्लाम के पुत्र हो जिस ने संसार में शान्ति का सन्देश फैलाया इस्लाम मुसलमानों गैर मुस्लिम जातियों के प्रति तथा परमात्मा की विशाल सृष्टि में सब के साथ सहिष्णुता रखना सिखाता है। तुम उस देश में रहते हो जहां पर भिन्न सम्प्रदाय हैं, तुम्हारा और उनका लक्ष्य एक है, इस देश का उत्थान और पतन तुम सब का आदर्श है। तुम शसित जाति का के ही… इस लिये तुम्हें मेल से रहना और सहिष्णुता दिखलानी चाहिये और कुरान जिनी उदत

रता उतनी दिखलानी चाहिये? तुम्हें जातिगत झगड़ों के विषैले वातावरण से पृथक रहना चाहिये। तुम्हारी शिक्षा का आदेश और तुम्हारे धर्म का उपदेश यही है कि तुम शान्ति पूर्वक मेल से रहो और प्रीति का झन्डा फहराओ और जहां २ झगड़े और मुटभेड़ हों वहां २ मेल और प्रीति फैलाना तुम्हारा अनथक परिश्रम होना चाहिये।

आविष्कर्तृ स्त्रियां

स्त्रियों का एक नया संघ बड़े साहस पूर्ण और विघ्नयुक्त कार्य्यों के करने के लिये बनाया गया है जिसका नाम है भूगोल ज्ञाता स्त्रियों का मण्डल। इसका उद्देश्य स्त्रियों को नये २ स्थानों का पता लगाने तथा विज्ञान के आविष्कार करने में उत्तेजना देना है। अभी इस की ३९ सदस्यायें हैं। यह सब बड़ी शिकार खेलने वालियां और लेखिकायें हैं।

दिल्ली में शिशुरक्षा-आन्दोलन

शिशु सप्ताह के अवसर पर जो भाषण सम्बन्ध में हुये हैं उनमें से कुछ मोटी २ बातें ज्योति की पाठिकाओं के ध्यान देने के लिये यहाँ दी जाती हैं वह यह हैं:—कि भारतीय माता पिताओं की असावधानता से भारत में २० लाख बच्चे तो प्रतिवर्ष मर ही जाते हैं और जो बचते भी हैं वह चूंकि अच्छे जल वायु में नहीं पलते अतः भार रूप ही रहते हैं। दिल्ली में ५० हजार स्त्रियां १५ से ४० वर्ष तक की सन्तानोत्पत्ति करने की आयुवाली हैं और १९२५ ईस्वी में यहां पर प्रति सहस्र बच्चों में से २४८·५६ बच्चे मरे हैं। यह बड़ी भयंकर संख्या है इसका कारण अशुद्ध जल वायु और अयोग्य मातायें और ठीक उपचार न होना है।

स्त्रियां और स्वराज्य

नेशनल लीग आफ वुमन वोटर्स की सदस्य अमरीकन महिला कुमारी गर्ट्रूड इली ने बम्बई में कहा कि "किसीभी देश में स्त्रियाँ जो कुछ कर दिखलाना चाहे तो वह अवश्य कर दिखाती हैं।" यह बात यद्यपि अत्युक्ति पूर्ण है तथापि सत्य है परन्तु उन्हें यह जानकर दुःख होगा कि भारत के उत्थान में स्त्रियों ने-यद्यपि उनका यह दोष नहीं हैं—बहुत मामूली भाग लिया है। उनके पीछे रहने का एक मात्र कारण शिक्षा का अभाव स्त्री जाति को इधर आकर्षित करने के अवसरों की कमी है। यदि स्त्रियां भाग लेतीं तो अस्पृश्यता का नाश, स्वदेशी का प्रचार विदेशी कपड़ों का वहिष्कार, हिन्दू मुसलमानों का ऐक्य जादूगर की छड़ी के हिलाने मात्र से होकर स्वराज्य प्राप्ति होती।

मद्रासी देवियों का प्रस्ताव

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु के उपलक्ष्य में शोक प्रगट करते हुए वहां की देवियों ने पूज्य स्वामी जी की स्मृति में एक कन्याओं का अनाथालय स्थापित करने का निश्चय किया है। उसके लिये धन संग्रह होरहा है।

स्त्रियों के लिये छात्रवृत्ति।

पंजाब सर्कार ने ३०० पौण्ड की एक स्टेट छात्र वृत्ति निकाली है कि जो कोई भारतीय महिला विलायत में जाकर डाक्टरी या और शिक्षा या कार्य्य सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करे उसे तीन वष तक यह द्रव्य मिलेगा।

जागो !

"ले०—श्री० केदारनाथ मिश्र गौड़ प्रभात"

जागो ऐ व्यथा मनोहर
अज्ञात-प्रेम की मारी,
मैं कब से तुम्हें जगाता
नीरव हो सुध खो सारी।
मेरे जीवन का प्याला
अपनी मदिरा से भरदो,
हा ! मौन पड़ी है वीणा
तारों को झंकृत कर दो।
मेरी 'आहों' की तानों से
अपनी तान मिलाना,
जिससे प्रियतम को दुख हो
मत ऐसा गान सुनाना।

संस्कृत साहित्य में स्त्रियों का स्थान

गुजराती से अनुवादित

अनुवादिका—कुमारी सुशीला देवी ८म श्रेणी कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ।

संस्कृत साहित्य में स्त्री की निन्दा तथा प्रशंसा दोनों एक ही परिमाण में आती हैं। स्त्री को एक पक्ष में बिलकुल माथे पर चढ़ा दिया गया है और दूसरे पक्ष में उसकी निन्दा व अवहेलना भी कम नहीं की। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में दोनों तरफ से ढोलकी बजाई है। अनृत, साहस, माया, मूर्खत्व, अतिलोभ करना, फुहड़ता, निर्दयता आदि ये सब स्त्रियों के स्वाभाविक दोष गिनाए गये हैं। इसलिये स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता देते हुए शास्त्रकार अटक गये हैं। "नास्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" ऐसा मनु महा-

राज ने स्पष्टतया कहा है। "स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति" ऐसा नीतिशास्त्र में कहा है। उसमें भी यही मतलब है। स्त्री के जो षड् दोष बताए गये हैं उसमें भी यही दोष सर्व प्रथम बताया गया है। कितने लेखकों ने बिना बिचारे ही स्त्रियों की निन्दा करने में ही अपने जन्म के कर्मों को सार्थक मान कर "नारी नाम विषाङ्कुरैर खिलता दोषैः समन्वद्धिता" इस प्रकार केवल अनुचित निन्दा ही की है। अनेक कमियों से भरपूर विष की लता मानों स्त्री हैं ऐसा वर्णन करने वालों की कुशाग्र बुद्धि को नौ गज़ की नमस्ते है। मतलब दूर से नमस्ते है। धर्म शास्त्रों ने जहां स्त्री का निंदा की है वह सहेतुक होने से केवल वैराग्य का ही समर्थन और प्रतिपादन करने का आशयमात्र है। उनकी निन्दा व्यर्थ निन्दा करने के आनन्द की पूर्त्ति के लिये नहीं है। किंतु विधेयप्रतिपाद्य विषय का महत्व तथा गौरव असर करने की रीति से दिमागों मे भरने के लिये महत्वाकांक्षा उदार आदर्श आदियों को प्रगट करने के हेतु पूर्ण निंदा है। "स्त्रियो हिमूलं नरकस्य पुंसांस्त्रियोहिमूलंव्यसनस्यपुंसां। स्त्रियोहिमूलं नरकस्य-पुंसां स्त्रियोहिमूलं कलहस्य पुंसां" स्त्रियाँ पुरुष के लिये नरक की खान के समान हैं; विपत्तियों की आफत के कारण रूप हैं, पुरुषों के कलह की काल बूटी के समान हैं। इतने पर भी यहाँ केवल वैराग्य का महत्व अविशेष रूपमें आगे लाने का एकमात्र आशय है। अन्यथा सँस्कृतभाषा के कुलगुरु कवि कालिदास इनके लिये "गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ" ऐसे उद्गार कैसे निकाल सकते हैं? पत्नी तो घर की मालकिन है, मुख्य सलाह करने वाली प्रधान है, आनन्ददायी मित्र है और ललितकला प्रियतमसे प्रियतम शिष्य है। और दूसरे स्थान कालिदास ने फिर कहा है कि "क्रियाणाँ खलु धर्माणाँ स्त्रियोहि मूल कारणम्"। धर्म और कर्मों में सहाय करने वाली चीज़ है तो पत्नी ही है। इसलिये हमारे शास्त्रकारों ने स्त्री को सहचरी, सहचारिणी धर्मपत्नी आदि ऐसी उत्तमोत्तम संज्ञाओं से सम्बोधित किया है। निंदा का हेतु वैराग्य का महत्व बढ़ाने के उपरान्त शील सच्चरित्र की महिमा को वृद्धिगत करने का हेतु भी हो सकता है इसी से "कामश्चाष्ट गुणाः स्मृतः"। "यद दर्शनात् हरतिचित्तं" आदि कह कर पुरुष को "नारी प्रत्यक्ष राक्षसी"। कह कर बहकाया है। इससे परस्त्रीगमन से दूर रह सके ऐसे वचनों से चरित्र हीनता प्रगट नहीं होती वरन उसकी सम्भाल करने के लिए यह उदार उपदेश दिया गया है। स्त्रियों के महत्व, श्रेष्ठत्व और गौरव पर कोई कम भार नहीं है। "स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन' इस वचन में मनु ने स्त्री को साक्षात् लक्ष्मी की प्रतिकृति रूप बतलाया है तथा उसको घर में उजाले की तरह पहचान कर तथा सम्मान करके पूजा करने का भी पूर्ण आदेश दिया है। स्त्रियों के सम्मान में ही देव प्रसन्न रहते हैं ऐसा कह कर पतिपत्नी का परस्पर अनुकूल संतुष्ट चित्त पूर्वक प्रेममय बर्ताव का अनिवार्य महत्व सिद्ध किया है, स्त्री रहित को स्वर्ग का अधिकार नहीं है ऐसा स्पष्ट दर्शाते हुए धर्मशास्त्र कहते हैं कि "दाराधीनस्तस्था स्वर्गं पितृणामात्मनहंश्च" स्त्री हो तो ही पुरुष स्वर्ग की प्राप्ति कर सक्ता है तथा अपने पितरों को उसकी प्राप्ति करा सक्ता है। "पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते इति पुत्रः" ऐसी पुत्र शब्द की व्याख्या भी इसी आशयका समर्थन करती है "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच" ऐसा स्पष्ट शास्त्रकार कहतेहैं, इसमें कौनसा दूसरा आशय हो सक्ता है। परन्तु वैराग्य का समर्थन करते हुए यही देवी तुल्य स्त्री फिर कीमत में घट

जाये इसमें क्या आश्चर्य है? यह तो धर्मशास्त्र की बात हुई किन्तु साहित्य क्या कहता है यह हम देखें। "गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न चलिंगं नचवयः" ऐसा भवभूति कहते हैं, गुणवानों का उदात्त अर्थात् उत्कृष्ट गुण पूजने योग्य हो जाते हैं स्त्री पुरुषादि जाति में वय के भेद को लक्ष्य में नहीं लाना चाहिये। संस्कार की सात्विक विशुद्धि को लेकर स्त्रीको सुन्दरी कहा है,क्योंकि जिस में गुण सुन्दर होते हैं वही सचमुच सुन्दर है। सती शब्द का अर्थ भी इसी भाव का समर्थन किए बिना नहीं रहता। उपर्युक्त सुन्दरी और सती अर्थात् अच्छी सुन्दरी और दूसरा अर्थ जिसका अस्तित्व स्थिर हो सके ऐसी इस प्रकार संज्ञा दी गई है। पति जिसका एक मात्र व्रत और उपास्य देव है ऐसी 'पति व्रता'। इस प्रकार पतिव्रता की व्युत्पत्ति भी उपर्युक्त भावों का ही प्रतिपादन करती है। गृहणी शब्द की व्याख्या भी इसी प्रकार की है कि केवल लकड़ी और मिट्टी का घर ही वास्तविक घर नहीं है किन्तु गृहणी, गृहपत्नी यही सचमुच का घर है अर्थात घर की शोभा रूप है। गृहस्थाश्रम की शोभा सारी शोभा स्त्री से ही है, यह पद भी इसी का सूचक है। पति को लाड़ प्यार से खुशी रक्खे वह 'ललना' और खेल करा सके वह 'रमा' संसार यात्रा को सफल करने वाली सुयोग्य नौका के समान होने से इसे भार्या कहते हैं। "भार्या समं नास्ति शरीर पोषणम्" ऐसा कहने से यही आशय है। कमनीय होने से 'कान्ता' तथा दयावती होने से 'दायता' ऐसी संज्ञा भी दी है, अर्थात स्त्री 'शब्द के सब पर्यायवाची शब्द अच्छे अर्थों में प्रयोग किये जाते हैं। ' 'सा स्त्री यानुविधायनी " अर्थात आज्ञा परायण होने से स्त्री का ऐसा नाम दिया गया है। "प्रियो मित्रं बन्धु तान्याः समग्राः" ऐसा कहकर कालिदास ने स्त्री को पुरुष की सच्ची सखी और सम्बन्ध में सब तरह से पहचान करने वाली कहा है। भवभूति के शब्दों में कहें तो पति के लिये स्त्री अपने जीवन के समान है? दूसरे हृदय के समान है? नेत्रों को शान्त करने वाली शीतल चन्द्रिका है और लोचनों को सुधा के समान आह्लादित करने वाली दिव्य औषधि है। फिर कभी कालिदास समस्त स्त्री जातिकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि पुरुषों से स्त्रियां अधिक नैसर्गिक बुद्धिवाली, प्रतिभाशाली और चालाक होती हैं। "स्त्रीणाम शिक्षित पटुत्व ममानुषीषु संदृश्यते किमुतया प्रतिबोधवत्या।" अमानुषी (मानव जाति से भिन्न) पशु पक्षी की स्त्रियों में भी बिना सिखाई हुई निपुणता देखने में आती है। तो समझ और ज्ञान बुद्धि रखने वाली मानव जाति में कितना निपुणता होनी चाहिये। सुभाषित में कहा है कि पण्डितों का पाण्डित्य पुस्तकों से आता है किन्तु स्त्रियें बिना पढ़े ही बड़े २ पढ़े हुओं को भी धूल में डाल देती हैं। "इदंतरम व्युत्पन्न मति स्त्रैणंतदुच्यते ' कालिदास कहते हैं कि स्त्रीत्व ही जवानी और समय सूचकता की मूर्त्ति है। स्त्री ही मूर्त्ति मति स्त्री ही बुद्धि वैभव है तो भी 'स्त्री बुद्धि प्रलयावहाम्' स्त्री की मन्त्रणा के अनुसार चलने से नाश को प्राप्त होता है ऐसी कहावत है। स्त्रियों की बुद्धि पैर की एड़ी तक है ऐसा प्रसिद्ध है। किन्तु ये लोग तो स्त्रियों पर अक्षम्य अन्याय करते हैं। सरस्टोक कहता है कि मध्ययुग के 'नाइट एरन्ड' वीर पुरुष अपनी प्रणय प्रतिमा का प्रेम प्राप्त करने के ही चरितार्थ की सफलता करने वाले महान् कार्यों को करने के लिये उत्तेजित हुए थे। 'कपालिभूतेषो भजति जगदी शैक पदवीं', भवानि-स्वत्पाणि ग्रहण परिपाटी फलमिदम् ' श्मशान में रह कर भूतनाथ शङ्कर पार्वती का पाणि-ग्रहण करके जगदीश की पदवी को प्राप्त

करने के लिये समर्थन हुए। शङ्कराचार्यजीने उपरि उक्त आशय का ही अत्यन्त समर्थन भी इस स्थान पर .अंगरेज कवि स्टोक के किया है।

वसन्त-ऋतु-स्वागत

रचयिता—'पं०श्रीहरि' विद्यार्थी

(१)
स्वागत तव ऋतुराज महोदय;
दल—–बल सहित पधारो ।
भली भांति सब—साज सजायो;
जो तुम को अति प्यारो ॥

× ×

(२)
कई मास से आशा लागी;
नहीं सफल हो पायी ।
शीत-संघाती—सखा शिशिर वश,
नहीं सामने आयी ॥

+ +

(३)
प्रिय कार्य्यों में व्यस्त भवन में;
अटपट लटपट थी जब ।
कोकिल की कल कूक कान में;
सरस सुनाई दी तब ॥

+ +

(४)
उठ कर झट पट बाहिर आई;
देखा तुम को आते ।
गान-तान की धूम—धाम में;
रति—गति में मदमाते ॥

(५)
नव-नव—उज्जल ठाठ—बाट सब;
जरा न मैला तेरा ।
हुआ आगमन एक वर्ष में;
मरा जिया जी मेरा ॥

+ +

(६)
प्रेम—भरा यह हृदय हर्ष से;
खूब फूलता जाता ।
जरा रंग—रस मिला रसासवः
छूकर उसे पिलाता

(७)
सदन, शरीर' स्नेह—सामग्री;
सभी समर्पित करती ।
प्रियतम, मन—मन्दिर-ईश्वर मम;
तुम पर श्वासें मरती ॥

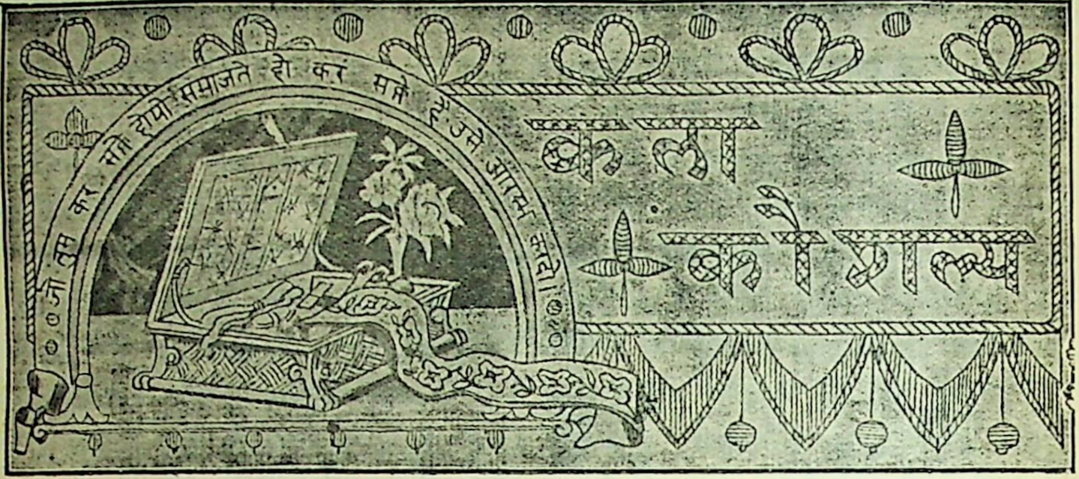
जो तुम कर सके होगे समझते हो कर सके हैं उसे आरम्भ करो
कला कौशल्य

पुष्प-डोलची

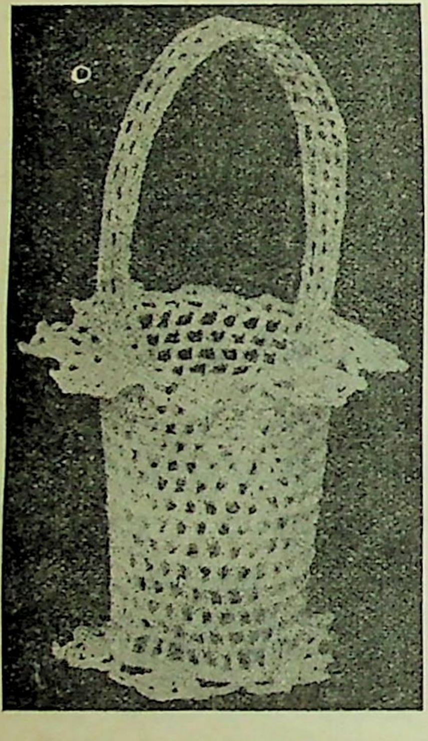

आवश्यक वस्तु :—खूब मोटा चमकदार करारा धागा और उसके अनुसार ऐसा क्रोशिया जिस में कि धागा आसानी से चल सके और काम बराबर २ बना सके।

आरम्भ में ८ चेन बना कर जोड़ो।

१ पंक्ति :—४ चेन, (१ तेहरा छल्ले में, १ चेन) ९ दफा; ४ चेन में की तीसरी चेन से जोड़ दो। यह १० खाने बन गये।

२ पंक्ति :—५ चेन (१ ते. खाने में २ चे०) १० दफा; ५ चेन में की तीसरी चेन से जोड़ दो।

३ पंक्ति :—५ चेन, १ ते. अगले खा. में, *२ चे. १ ते. अगले खाने में, २ चे. १ ते. उसी खाने में * से चारों तरफ, अन्त की २ चेन को ५ वीं चेन की तीसरी चेन में जोड़ दो।

४ पंक्ति :—५ चे., १ ते. अगले खाने में *२ चे., १ खा. छोड़ कर अगले मे १ ते., २ चे. १ ते. उसी में;* से चारों तरफ, अन्त की २ चे. को ५ वीं चेन की तीसरी चेन में जोड़ दो।

यदि चाहो तो टोकरी का तला पास २ बिना खानों का निरे तहरे से बनाया जा सक्ता है, इस प्रकार बढ़ाया जाकर कि न तो गोल ही होने पाये और न सिकुड़े ही पड़ें वरन चपटी रकाबी की तरह रहे। यह चित्र ३ इंच चौड़े तल्ले टोकरा का है

किन्तु बड़ी टोकरी के लिये बड़ा तल्ला सहज में ही बनाया जा सक्ता है।

टोकरी के ऊपर वाले घेरे के लिये इतनी लम्बी चेन बनाओ जो कि आसानी से तल्ले के घेरे के गिर्द आसके। जोड़ो

१ पंक्ति :—५ चे., * २ छोड़ो, १ ते. अगले में, २ चे. * से फिर बनाओ, पिछली २ चे. को ५ चे. की तीसरी २ चे. से जोड़ दो।

२—१३ पंक्ति :—५ चे. * १ ते. अगले खाने मे, २ चे., * से फिर बनाओ, अन्त की २ चे. को ५ चे. की तीसरी चे. से जोड़ दो।

१४—१५ पंक्ति :—६ चे. * १ ते. अगले खाने मे, ३ चे., * से चारों तरफ फिर बनाओ, अन्त की २ चेन को ६ चे. मे की तीसरी चे. से जोड़ दो।

१६ पंक्ति :—पहिले खाने के बीच में को सादा फन्दा, * ५ चे. अगला खाना छोड़ दो, ३ ते. अगले में इस प्रकार कि तीनों तेहरों के पिछले फन्दे क्रोशिये पर ही रहें और एक दम इकट्ठे निकाल कर घुन्डी को कसने के लिये एक कस कर चेन बना दो; ३ चे, उसी खाने में २ घुन्डी और बनाओ ५ चे., १ खा. छोड़ कर १ दोहरा अगले में *से फिर बनाओ। अन्त की ५ चेन को वहां जोड़ दो जहां पहिली शुरू हुई थी, बन्द कर तोड़ लो।

निचले घेरे के लिये-टोकरी का मुंह अपनी तरफ करके और तल्ले को बरांबर साथ रख कर टोकरी की आरम्भ की चैन और तल्ले के घेरे की बाहर वाली चेन मे दोनों को इकट्ठा करके एक ही दफा बराबर दोहरे बीनते जाओ।

२ पंक्ति :—५ चे., ६ दोहरे छोडो, ३ घुन्डियों का एक झुण्ड (जैसा ऊपर बनाया था) अगले में ५ चे. ६ छोड़ कर अगले में जोड़ दो और उसी प्रकार बनाओ। टोकरी के तल्ले के चारों ओर ५ झुण्ड बने खतम करदो।

हैन्डल के लिये १२५ चेन बनाओ

१ पंक्ति :—१ ते. ८ वीं चे. मे * २ चे., २ छोड़ो, १ ते., इसी प्रकार ४० खाने बनाओ

२—३ पंक्ति :—४० खाने ५ चे. पहिले के लिये टोकरी के दोनों तरफ कस कर सीं दो।

गृह--प्रबन्ध

——०——

खिड़कियों के शीशों को धोने के लिये थोड़े से पानी में ज़रासा निशास्ता घोलकर इन पर लगादो। सूखने पर इसे झट पट एक मुलायम कपड़े से रगड़ कर पोंछ दो। इस से यह खूब साफ हो जायेंगे और चमकने लगेंगे।

* * *

नीबू का रस गोरा बनने के लिये एक बड़ी उपयोगी वस्तु है दूध के साथ मिला कर लगाने से यह धूप से काले हुये रंग को गोरा कर देता है। एक प्याले में नीबू का आधा टुकडा रखकर ऊपर से कोई पाव भर गरम दूध डालो। आधे घन्टे तक उसे पड़ा रहने दो और फिर छानलो। दही फेंक दो

और नीचे के शुद्ध जल को काम में लाओ।

* *

किसी कांच या चीनी के बर्तन में गरम पानी डालने से पहिले उसमें एक चम्मच रखदो। यह चम्मच ताप को खैंच लेगा और बर्तन को टूटने से बचायगा।

* *

पतीली जिस के नीचे मोटी कालख की तह जम गई हो देर में गरम होती है अतः कोयलों या लकड़ी का भी अधिक नुकसान करती है। इसको चूल्हे या अङ्गीठी के साथ खड़ा करदो जहां कि गरम तो होजाय परन्तु जले नहीं। अब किसी लकड़ी से आहिस्ता २ पीटने से, कालख जो कि सेंक से नरम होगई थी, झड़ जायगी। यह ध्यान रहे कि इस में जल भरने से पहिले पतीली बिलकुल ठंढ़ी हो जाय।

* *

लकड़ी के सफैद काम को धोने केलिये जलमें थोड़ा सा तारपीन डालना बड़ा उपयोगी रहता है।

* *

जब बच्चों को नये जूते पहनाओ तो उनके तलुओं को रेगमाल से रगड़ दो। इस से उनके पांव न फिसलेंगे और वह चोट लगने से बचे रहेंगे।

* *

बांस और बैंत की कुरसियों, टोकरियों इत्यादि से यदि बाहर खुले में काम लिया जायतो वह शीघ्र मैली होजाती हैं। परन्तु यह बड़ी जल्दी साफ हो जाती है यदि इन को पहिले गरम पानी में भिगोकर एक छोटे से ब्रुश से रगड़ा जाय और फिर बारीक पिसे हुये नमक से अब गीले कपड़े से पोंछ दो और सूखने के लिये धूप में रखदो।

* *

लकड़ी पर से धुंये या कालख के चिन्हों को मिटाने के लिये अमोनिया मिला भट्टी का तेल बड़ा उपयोगी है।

* *

सूती रंगदार कपड़ों को धोने और उनके रंगको पक्का करने केलिये जब कि वह पहली बार धुलें बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। धोने वाले २ सेर पानी में एक बड़ा चम्मच नमक का डालदो और साबुन लगाने के पीछे जिस साफ पानी में धोना हो उसमें उतना ही सिरका।

* *

बीमारी के दिनों में कमरों की वायु को शुद्ध करने के लिये तपे हुये तवे पर थोड़ा २ सिरका डालते जाओ।

* *

जब धोने पीछे कपड़ों को नील देने लगो और यदि पानी सख्त हो (ऐसा पानी जिस में साबुन की झाग बहुत देर से बने) तो इस में नील घोलने से पहिले एक बालटी पीछे एक छटांक दूध घोल दो ऐसा करने से कपड़ों पर नील की धारियां धब्बे न बनेंगे बरन यह सब जगह एक सा चढ़ेगा।

* *

मुरब्बा बनाते समय जब कि चाशनी और उस चीज के टुकड़े जिसका मुरब्बा बनाना हो आग पर चढ़े हों तो बर्तन में एक पत्थर का टुकड़ा डाल देनेसे इसको चलाते रहने की आवश्यक्ता नहीं रहती।

* *

गहनों को धोने के लिये दूध का प्रयोग करो।

* *

चाय को सदा खूब कस कर बन्द होने वाले बर्तन में रखना चाहिये जिसमें कि हवा न पहुँच सके।

दुराचार का घोर परिणाम

(गल्प)

लेखक—विश्वम्भरसहाय प्रेमी

१

शरद ऋतु की रात्रि है। गगन में अष्टमीका अर्द्धचन्द्र अभी प्रगट नहीं हुआ है। मन्द २ शीतल वायु प्राणियों को जीवन प्रदान कर रही है। चहुं ओर सन्नाटा है। सौन्दर्य उपासक एक दो नहीं अनेक—अधखिले पुष्पों की मालायें धारण करके—विश्व की वास्तविकता नष्ट करने के लिये ताम्बूल भक्षण करते हुये न जाने कहां विचार कर रहे होंगे। परन्तु संगीत प्रिय मित्र अवश्य इधर उधर अट्टालिकायें झांकते फिरते होंगे हां! गंगादत्त जैसे महानुभाव इस समय अवश्य कहीं न कहीं धुआं उड़ा रहे होंगे। कुछ भी हो रहा हो—हमें इस समय अपने मित्र नवीनचन्द्र से ही काम है। चलो उन्हीं की छोटी सी कोठरी का अवलोकन करें।

(२)

हां अब इस से उत्तम समय प्राप्त न होगा मेरा काम बन गया। मेरी लालसा, मेरी धारणा, मेरी कामना इस समय तीनों त्रिवेणी बन गई हैं। मेरे हृदय का कम्पन इस समय इस आनन्द रात्रि में प्रायः लुप्त हो चुका है हृदय सबल है, धारणा प्रबल है। अब भय करने से क्या लाभ?

क्यों! क्या कोई और उत्तम अवसर प्राप्त होगा? नहीं दुर्लभ है। इस युवक के मृदुल मुख पर कितनी कोमलता है। कितना गंभीर भाव है। माधुर्य्य तथा लावण्यता का इस काल कैसा सम्मिश्रण हो रहा है। हृदय कठोर बन जा। अवकाश अधिक नहीं है।

यह कह कर मैं अधिक समय तक अपने विचारों में निमग्न न होकर अपने कार्य में जुट गई। धीरे से नवयुवक का सिर उठाया और अपने निश्चित ध्येय को पूर्ण करके चली गई।

(३)

इस निस्सार जगत में अनेक ऐसे प्राणी हैं जो लोभ और मत्सरता में लिप्त हुये विलासिता में पड़ कर इस नाट्य—भूमि पर कुत्सित जीवन की कुछ घड़ियां व्यतीत कर के ही सदैव को विदा हो जाते हैं। अपने प्रभुत्व को बिना प्रयास ही गुप्त रीति से मनुष्यों पर प्रगट करना अपना गौरव समझते हैं। नहीं! नहीं!! इतना ही नहीं किन्तु वाराङ्गनाओं के कृत्रिम अरुण-मुख का चुम्बन करते हुये सुरापान कर अबोध बालक की नाई कोमल शैया पर पड़े रहते हैं। जो भीषण स्वार्थ का वह भयंकर शर छोड़ते हैं उस के कारण एक नहीं किन्तु अनेक जीव सदैव के लिये बद्ध हो जाते हैं।

पंडित गंगादत्त भी इन्हीं व्यक्तियों में से एक हैं। आप के विचार-बाण शरीर वेधते हैं परन्तु छिद्र नहीं कर पाते। आप की कार्य—कुशलता प्रसिद्ध है परन्तु कार्य कुछ नहीं कर पाते। आप मादक द्रव्यों से घृणा करते हैं परन्तु सुरा का आवाहन, सिगार का प्रेम नहीं छुट पाता।

आप उच्च कोटि के भ्रमर हैं। आप गुञ्जारते हैं परन्तु दर्शन नहीं देते। इस समय आप अनुराग—राग के साथ हृदय

वीणा बजा २ कर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

ऐसे निस्तब्ध समय किसी ने आप के साथ उपहास करते हुये मधुर स्वर से कहा "काम बन गया"।

आशा अभिलाषा की कल २ ध्वनि कुछ समय के लिये हृदय गगन में टकराती हुई कहती रही "काम बन गया" परन्तु वारुणी का तीव्र वेग सहन न करके आप शैया पर पड़े २ गाढ़ निद्रा में निमग्न हो गये।

(४)

हमारे मित्र नवीनचन्द्र रात्रि की गाढ़ निद्रा से प्रातः जिस समय जागे तो उन्हें रात्रि का स्वप्न व्याकुल करने लगा। स्वप्न क्या था मानो बन्दीग्रह का सँदेश था। स्तब्ध होकर रात्रि के स्वप्न को विचारते हैं। मानों उन्हें असुरों ने चहुं ओर से परिवेष्ठित कर लिया हैं परन्तु आप उत्साही हैं युवक हैं अतः तनिक देर के पश्चात् ही आप बिस्तरे से उठ कर नैतिक कामों में लग गये।

यद्यपि नवीनचन्द्र जी की परमेश में अवसर श्रद्धा है परन्तु आप मित्र २ कपटताओं में लिप्त होकर उसे प्रगट नहीं करते। न आप मस्तक पर विराट तिलक हो लगाते और न आप घंटा घड़ियाल के चक्र ही में पड़ते हैं। हां कुछ देर को प्रभु की आराधना में प्रेम झकोरे ले लेते हैं।

अपने प्रत्येक कार्यो से निवृत हो कर भोजन करने लगे। दस बजने का समय हो गया बैंक जाने की तैयारी कर दी। नौकर के सिर पर संदूक़चा लेकर उनके साथ प्रस्थान कर दिया।

५

समय का चक्र विश्राम नहीं पाता। प्रेम की मृदुल अथवा कठोर धारा सदैव प्रवाहित होती रहती है। समय २ पर प्रेम निज सिद्धि के हेतु मनुष्य को भयंकर स्वार्थ की गहरी पंक में फाँस देता है। समय भी स्वयं अमर बनकर परन्तु साँसार के प्राणियों का विनाश कर के बिना शब्द किये ही भाग जाता हैं।

पंडित गंगादत्त के साथ यौवन मद से इठलाकर बातें करनेवाली मनोरमा अब केवल शुष्क तर्क करके ही रह जाती है। कुछ समय से मनोरमा ने स्वार्थ की चासनी का चाटना बन्द कर दिया इस कारण गंगादत्त पश्चात्ताप के विकट जाल में फंस चले हैं। प्रेम के विदा होते ही आनन्द भी लुप्त हो जाता है। हां कभी २ प्रेम-चन्द्र की शीतल किरणों के द्वारा उस मनोमोहनी मूर्ति के दर्शन हो जाते हैं परन्तु धन हीन होने से गँगादत्त की प्रबल वासनायें मर्माघात हो कर नष्ट होती जाती हैं परन्तु फिर भी उत्सुकता चैन नहीं लेने देती।

नवीनचन्द्र तथा गंगादत्त में बाल्यकाल से ही मैत्री थी परन्तु काल के कुटिल चक्र ने उन की उस मित्रता को नष्ट कर दिया था। मनोमालिन्य दोनों हृदयों में था अथवा केवल एक स्थान से ही उस हृदय को पीड़ित करता था यह कोई नहीं कह सकता। इतना अवश्य है कि गंगादत्त का कपटी हृदय सदैव घातक बन कर घात लगये रहता था। पण्डित गंगादत्त यद्यपि अकेले नवीनचन्द्र पर ही कुचक्र प्रहार करते थे किन्तु अन्य नागरिकों पर भी उनकी दृष्टि थी। हां समर्थ्य न होने से अब तक उनके द्वारा कोई विशेष क्षति न हुई थी। उनकी धारणा थी कि किसी न किसी प्रकार से ये नवीनचन्द्र को कपट के पाटों में पीस डालें। दया भाव हृदय से निकल चुका था। वे अपने प्रबल वेग में बेचारे नवीन को बहा देना चाहते हैं। उन्हें विश्वास भी है कि वे अपनी इच्छा को पूर्ण कर लेंगे।

इस कुटिल वासना को उन्होने मनोरमा पर पहिले ही प्रगट कर दिया था, उसने नवीन चन्द्र को सारी गृह—सूचनांये उसे दे दी थी। इसी हेतु नवीन चन्द्र को नीचा दिखाने का भार उसने मनोरमा को ही सौंप रक्खा था।

(७)

बैंक के कार्यालय का काम प्रारम्भ हो गया। अपने २ काम पर सब कर्मचारी लग गये। नवीनचन्द्र ने भी अपने कर्मचारियों पर दृष्टि डाल कर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। प्रति दिन की भांति नवींनचन्द्र ने अपनी डाक खोली। आवश्यक्तानुसार उत्तर दिये जाने के लिये अन्य कर्मचारियों के पास भेज दिये। ज्योंही उन्हो ने संदूकचा खोला त्योंही वे अवाक् रह गये। उन के हृदय की अनन्त विभूती नष्ट हो गई शान्ति भी व्यंग-परिहास करती हुई लुप्त हो गई। मानो भाग्य ने उन्हें दुःख के दो पाटोंके मध्य पीस डाला। संदूकचा बन्द किया और भली प्रकार से उसे इधर उधर से देखा। ऊपर के अक्षर N. C. R. A. भली प्रकार साफ़ प्रतीत होते थे! उन को आकृति में भेद न था।

कर्मचारियों से क्या कहें ? स्वामी के पास किस मुख से जावें ? उनकी समझ में इस चोरी का भेद न आया।

मन व्याकुल हो गया। कपट-पूर्ण रहस्य समझने में असमर्थ हो गये। वे निश्चय न कर सके कि पच्चीस हज़ार की चोरी किस मार्ग से हुई। ताले पर भी मुहर लगी हुई थी। उन्हें यह विश्वास न हुआ कि किसी ने ताला खोल कर चोरी की होगी। बड़े असमंजस में पड़ गये। नवीन की मुखाकृति बदल गई।

थोड़ी देर में बैंक के स्वामी को भी इस चोरी का समाचार मिल गया। दाैड़ते हुवे नवीनचन्द्र के पास आये और सारे समाचार पूछे। नवीनचन्द्र के मुख से उत्तर न बन पड़ा। उनकी गम्भीरता नष्ट होगई। उनकी आकृति अपराधियों के समान प्रतीत होने लगी। अनेक कर्मचारी उस संदूकचे को उठाकर भली प्रकार देखने लगे परन्तु किसी को भी यह विश्वास न हुआ कि चोरी की गई है।

बैंक के स्वामी ने नवीनचन्द्र से पूछा क्या मोहर लगा हुआ बक्स अन्य दिवस की नाई तुम ने आज भी खोला था ?

नवीनचन्द्र ने कहा" हाँ, मैंने प्रतिदिन की नांईं ही खोला था।'

ऐसी दशा में वहाँ नवीनचन्द्र पर दया करने वाला कोई न था। बैंक के स्वामी ने पुलिस को सूचना दे दी और उसे अपराधी ठहराकर पुलिस की सुपुर्दगी में देदिया।

(८)

पुलिस अधिकारी भी पच्चीस हज़ार की इस अनोखी चोरी का समाचार सुनकर चकित हो गया। सारे नगर में इस घटना का समाचार फैलगया।

पुलिस का काम कितनाही हितकर है ? कितना पवित्र है ? कितना लाभकारी है ? इसका अनुमान वेही लगा सकते हैं जिन्होंने कभी पुलिस के चक्र में पड़कर अपना धन लुटाया हो अथवा क्रूरदृष्टि की कठोरता सहन की हो।

पुलिस कर्मचारियों ने नवीनचन्द्र के घर की तलाशी ली परन्तु कुछ पता न चला। जिस प्रकार भी हो सकता नवीनचन्द्र से पूछा परन्तु भेद ज्ञात न हुआ।

बहुत दिन बीत गये। चोरी का कुछ भी पता न चला। नवीन चन्द्र कभी अपने साथ कार्यालय से नोट न लाये थे। उसी दिन ऐसा हो गया था कि किसी मनुष्य ने रुपये

के पश्चात् आने पर उन्हें सौंप दिये थे। वह कुटिल दिन उन के लिये भाग्य का निपटेरा करने वाला बन गया।

आज न्यायाधीश के न्यायालय से मैं नवीन महाशय के भाग्य का संदेशा सुनाया जायगा। चारों ओर से न्यायाधीश का कमरा मनुष्यों से भर रहा था।

नवीन महाशय की दृष्टि उन मनुष्यों की भीड़ में केवल एक व्यक्ति पर विशेषतया पड़ती थी वह उनका पूर्ण परिचित मित्र गंगादत्त था। नवीन के मुख से सत्यता, गम्भीरता टपक रही थी।

भाग्य की नवीन और अद्भुत प्रतिमा के अवलोकन करनेके लिये सभी उत्सुक हो रहे थे इस बड़ी घटना के रहस्य को जानने की सभी की इच्छा थी।

विश्व वैचित्र्य का अनोखा ही चक्र है। न्यायाधीश न्याय के नाम पर लेखनी उठाता है परन्तु वार २ हाथरुक जाता है। चोरी का सत्य २ पता न चलने पर भी निर्दयता का न्याय करता है।

यद्यपि मनुष्य पापी पेट के लिये कुत्सित जीवन की लालसा के लिये सभी कुछ करता है परन्तु अन्त में नैराश्य सागर में विलीन हो जाता है।

१०

मनोरमा नित्य की भांति अपने शैयनागार में पड़ी है। परन्तु उसे अशान्ति की तीव्र अग्नि भस्मी भूत कर रही है। उस मृदुल हास्य का उस के मुख पर चिन्ह भी नहीं जिसके द्वारा वह अपना कार्य्य सिद्ध करती थी। उसके आनन्द सागर की चंचल धारा मन्द पड़ रही है। उसके कुत्सित विचारों का पुञ्ज आज स्वच्छ जल की धारा में परिमार्जित हो चुका है। हास्य, विलास, आमोद की भावनायें नष्ट हो चुकी हैं। ऐसी अवस्था में सहसा किसी ने पुकार कर कहा "सचेत हो, जीवन सुधार, समय नष्ट करके पश्चात्ताप की कड़ी यातनायें भोगनी पड़ेंगी। मनोरमा चौंक उठी और पवित्र विचारों की धारामें स्नान करने लगी।

११

न्यायाधीश ने पूर्ण विचार के पश्चात न्याय समाचार सुनाने की घोषणा कर दी। अनेक जन उत्सुकताके साथ टकटकी लगाये उसी ओर देखने लगे।

ऐसे निस्तब्ध अवसर पर ज्योंही न्यायधीश ने " दो वर्ष का नवीनचन्द्र को दंड " कहा त्यों ही एक अनुपम सुन्दरी दृष्टि पड़ी। सौन्दर्य-प्रतिमा अपने माधुर्य्य, रूप लावण्य को मोटे पीन वस्त्रों में न ढांप सकी। उस ने कड़क कर न्यायाधीश से कहा "मैं ही अपराधनी हूं। लो ये संदूकचा खोलो। पच्चीस हज़ार इसमें हैं। नवीन! निर्दोष नवीन बाबू!! तुम्हारा गौरव दुष्ट गंगादत्त कभी नष्ट नहीं कर सकता। अपराधी गंगादत्त! क्षमा मांगो। इस दंड के तुम भी अधिकारी

१२

न्यायाधीश अचम्भे में पड़ गया। जिस रहस्य को पुलिस कर्मचारी समझ न पाये थे वह क्षण मात्र मे सब पर प्रगट हो गया न्यायाधीश ने गंगादत्त को अपराधी ठहराकर दो वर्ष का कठोर दंड दिया। चारों ओरसे यही सुनाई पड़ने लगा गंगाराम दुराचार का घोर परिणाम तुम्हें भुगतना पड़ेगा।

तुमने अपने किये का उचित फल पाया। नवीन चन्द्र जी का यश बात की बात में नगर भरमें फैल गया। उससे भी अधिक यश की भागिनी मनोरमा बन गई। उसके जीवन में अनोखा परिवर्तन हो गया।

विचार प्रवाह

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान

२३ दिसम्बर १९२६ को लगभग पांच बजे सायंकाल का समय था कि हमारे कन्या गुरुकुल में टेलीफोन कि घन्टी हुई। उठाते पता लगा कि कोई व्यक्ति किसी से कहरहा रहा है कि "स्वामी जी के गोली लग गई है। उनके नौकर के भी गोली लग गई है और वह अस्पताल भेजा जा रहा है"। फिर हमने पूंछा—किस स्वामी जी को गोली लगी है? उत्तर मिला कि "स्वामी श्रद्धानन्द महराज जी को"। पुनः हमने पूंछा उनका "क्या हाल क्या है?" उत्तर मिला कि "उनके चार गोलियां लगी थीं उनके लगते ही उन्होंने उसी समय इस असार संसार से कूच कर दिया।"

हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी २ बजे के लगभग तो हम लोग उनके दर्शन करके आये हैं। उनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था। उस दिन वह बहुत स्वस्थ थे किन्तु तकिये के सहारे बैठे भी थे परन्तु कहा बाहर जाने की उनकी सामर्थ्य अभी नहीं हुई थी। तो गोली उन्हें कैसे लगी? शहर में इन दिनों कोई विशेष झगड़े भी न होरहे थे और यदि झगड़े भी होते हों तो एक बीमार वृद्ध, गण्य मान्य नेता को बिस्तर पर पड़े हुये गोली कैसे लगी जब कि उनके कमरे में बाहर से कोई वस्तु फेंकने से पहुंच भी नहीं सकी थी।

हमने अपने क्लर्क को कहा। वह भी बाइसिकल उठा दौड़ा और कुछ देर बाद सम्बाद लाया कि एक मुसलमान लगभग चार बजे श्री पूज्य स्वामीजी से मिलने आया परन्तु नौकर ने रोकदिया। उसने मिलने पर आग्रह प्रगट किया तो स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी कि अन्दर आने दो। आते ही उसने कहा कि मैं आपसे शंका समाधान करने आया हूं। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं अभी अस्वस्थ्य हूँ अच्छे होने पर बात करूंगा। इतने में उसने पानी मांगा। स्वामी जी का नौकर उसे बाहर नलपर पानी पिलाने लेगया। पानी पी वह व्यक्ति फिर स्वामी जी के समीप पहुंचा और अभी नौकर बाहर ही था कि गोली चलादी। गोली की आवाज से नौकर दौड़ा आया, अपने स्वामीको बचानेका यत्न किया, किन्तु सब निष्फल! एक दो नहीं लगातार चार फायर हुये और स्वामीजी के प्राण पखेरू पहिले ही उड़ चुके थे।

बचाने की चेष्टा में नौकर भी घायल हुआ और उसकी पुकार सुनकर स्नातक धर्मपाल जी भी वहाँ दौड़ आये, उन्हें भी घायल करने की चेष्टा की गई, परन्तु उस वीर युवक ने एक हाथ में रिवालवर वाला घातक का हाथ पकड़ा और दूसरे से घातक को दबाये रहे जब तक कि पुलिस आदि सब वहां एकत्र न होगये। पुलीस के आने पर तहकीकात शुरू हुई। घातक का पता लिया गया उनका नाम अब्दुलरशीद पता लगा। उससे इस प्रकार रोगी शैया पड़े हुये निरपराध और वृद्ध आर्यनेता पर गोली और बध करने का तात्पर्य पूछा तो कहा जाता है कि उसने कहा कि स्वामी जी मेरे धर्म के दुशमन थे अतः मैंने उनका घात कर बड़ा पुण्य शील कार्य किया है।

दूसरे दिन पोस्टमार्टम (मृत्यु के बाद मृत शरीर की परीक्षा) हुई। लोग बलि वेदी पर चढ़े स्वामी महाराज के अन्तिम दर्शनों के लिये लालायित और विक्षुब्ध हो रहे थे। पुलिस के कड़े पहरे के कारण

उनकी इच्छा पूर्त्ति नहीं हो रही थी। जनता में बड़ी उत्तेजना एवं अधीरता थी। अतः दूसरे दिन २४ दिसम्बर को ११ बजे के पश्चात् उन्हें नीचे के कमरे में फूलों से आच्छादित करके सर्व साधारण के दर्शनार्थ रखा गया। रात्रि तक हज़ारों की संख्या में नरनारी उनके दर्शनार्थ आते जाते थे। सभी उनकी सौम्य आकृति और शान्त प्रकृति को देख कर घातक की क्रूरता को धिक्कारते थे। २५ दिसम्बर को उनके शवको जलूस के साथ श्मशान में ले जाया गया। इस जलूस को शान और गम्भीर्य तथा सुदृढ़ संगठन देखकर बड़े २ राजाओं और बादशाहों के जलूस भी ईर्षा करते होंगे। चान्दनी चौक का इतना बड़ा बाज़ार एक सिरे से दूसरे तक जन समूह से ही भरा था। अटारियों और छत्तों पर भी नर नारी, बाल, वृद्ध असंख्यात रूप से उपस्थित हो उन पर फूलों की बर्षा करते और उन महानुभाव का यशोगान कर रहे थे।

बलिदान का फल

आर्य्य जाति का सब से बड़ा वर्तमान काल का लाल, भारत जननी का सुपूत और सर्व प्रिय नेता इस प्रकार असहाय दशा में ऐसे कायर और क्रूर पुरुष से ऐसी सुगमता से गोलियों का शिकार बनाया जा सके। यह भावना लोगों को पीड़ित करने लगी। विचार शील सोचते थे कि इतने बड़े समूह में इतनी कम शक्ति! क्या इसी हमारी जाति की निर्बलता को देखकर ही स्वर्गवासी स्वामी ने हमारे संगठन को सुदृढ़ करने का पुरुषार्थ किया था? क्या उनकी वीरोचित मृत्यु इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कि आर्य्य जाति में जीवन का संचार हो रहा है?

हायरे घातक! तूने महापुरुष की महत्ता को न समझते हुये अज्ञान और धर्मान्धता के वशीभूत हो आर्य्य जाति के दीपक को बुझाने मिष से प्रदीप्त किया है! शुद्धि और संगठन के आन्दोलन को एक दम दबा देने के भाव से प्रेरित हो हिंदू जाति के प्रिय नेता को बलि की वेदी पर चढ़ा कर इस आन्दोलन की अग्नि को और अत्यधिक जाज्वल्यमान ही किया है! आज आर्य्य जाति ने अपना सब से बड़ा रत्न खोकर सुपथ का अवलम्बन किया है! हज़ारों की संख्या में अछूतों और नव मुस्लिम लोगों की शुद्धि हो रही है और संगठन कार्य्य जड़ पकड़ रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द के स्मारक बन रहे हैं। लाखों की अपील की जा रही है और प्रत्येक नर नारी बाल, युवा, वृद्ध का हृदय स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति को स्थिर बनाने की प्रेरणा से द्विगुणा उत्साहित होकर कार्य्य कर रहा है।

इस दशा में जब कि प्रत्येक भारत के लाल के हृदय में स्वामी जी की स्मृति जागृत है जबकि स्वामी जी की आत्मा हमारे अन्तःकरण में प्रति क्षण बिद्यमान हो हमें कार्य्य सम्पादन में उत्साहित कर रही है कौन कहेगा कि बलिदान निष्फल हुआ? अदूरदर्शी, क्रूर, घातक की दृष्टि चाहे परिणामदर्शी न हो किंतु प्रत्येक विचारशील व्यक्ति हिंदू या मुसलमान अवश्य मानेगा कि एक स्वामी श्रद्धानन्द के बलि चढ़ने से हजारों और लाखों स्वामी श्रद्धानन्द बन गये हैं और शुद्धि और संगठन का कार्य्य खूब जोर शोर से चल रहा है।

मुसलमान भाइयों की विचार संकीर्णता

कहा जाता है कि अब्दुल रशीद ने कहा कि मैंने यह ऐसा काम किया है जिससे मुझे स्वर्ग मिलेगा क्योंकि मैंने इस्लाम के सब से बड़े शत्रु मार डाला है! क्या यह विचार उसके निजी दिल के थे या कि कुरान शरीफ के रोज़ पाठ करते २ पुराने ढर्रे के अर्बी

लोगों के जांगली व्यवहारों की स्मृति द्वारा बन गये थे ? अथवा यह पठित मुसलमान मुल्लाओंके विजातीय धर्मके प्रति असहिष्णुता के भावों से प्रेरित हुये थे ? भारत में आजकल जो नया रूप इस्लाम का वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर फैल रहा है। जिसका स्वरूप यह है कि बीसवीं सदी के सब धर्मों के साथ सहनशील रहना चाहिये। वह तो राज नीतिक क्षेत्र में बहुत थोड़ी संख्या में दीख पड़ेगा या उन मुसलमान सुधारकों मे जिन्हें कट्टर मुसलमान धर्म द्रोही कहते हैं।

जमायत उल—उलमा और देव बन्द का या इस्लाम तो बहुत कट्टर भावयुक्त है और यही आज कल भारत में प्रचलित हो रहा है। इन्होंने ही अपने फतवे से अमीर कावुल एक मुसलमान को जो कि धर्म में विश्वास नहीं करता था पत्थरों से मार डालने के घृणित कार्य्य का समर्थन किया। मौलाना जब जीवित थे तो उन्होंने फतवा निकाला था कि जो इस्लाम धर्म को छोड़दे उसे तीन दिन से अधिक जीता नहीं छोड़ना चाहिये इत्यादि २। इस प्रकार की बातों से मुसलमान भाइयों के हृदयों में असहिष्णुता की आग सुलग रही थी और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा शुद्धि प्रचार से उनके हृदय दावा नलने बड़ा भयंकर रूपधारण कर लिया। अतः जो परिणाम निकला उसमें आश्चर्य्य की बात नहीं। यह तो इस्लाम धर्मकी इस परिभाषा कि मुसलमानों को ही विधर्मियों को अपने धर्म में लाने की स्वाधीनता है दूसरों को नहीं की स्पष्ट रूप से अर्थापत्ति है। अब देश के सम्मुख यह प्रश्न है कि क्या यह दशा बदलेगी ?

* * *

ज्योति का बलिदान अङ्क

मनुष्य कुछ सोचता है होता कुछऔर है। हमने सोचा था कि डबल अङ्क निकाल कर रोग के कारण ४ मॉस तक ज्योति जो समय पर नहीं निकल सकी थी उसे समय पर ले आयेंगे। किन्तु शोक ! कि कई अनिवार्य्य बाधाओं के कारण जिन में से प्रेस की शिथिलता भी एक प्रधान कारण है तथा कन्यागुरुकुल के कई आवश्यकीय कार्य आ पड़ने से हम इस डबल अङ्क को भी समय पर न निकाल सके और बलिदान अङ्क के लेखों के तैय्यार होते हुए भी वह तय्यार न हो सका। आशा है कि दयाशील पाठक लोग तथा ग्राहक हमारी इस असमर्थता पर रुष्ट न होंगे।

ज्योति का बलिदान अङ्क प्रेस में आ रहा है उसमें बड़े २ उत्तम लेख और कवितायें निकलेंगी। इनके अतिरिक्त कई चित्र भी होंगे यह अङ्क शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इसका मूल्य भी बढ़ाकर नहीं रखा गया है ताकि प्रत्येक इसे मंगा सके। यह एक संग्रहणीय वस्तु होगी। आशा है कि पढ़ने की रुचि रखने वाले नर और नारी श्री स्वर्गवासी स्वामी जी की स्मृति के रूप में इस अङ्क को अवश्य मंगा कर अपने पास रखेंगे।

कला कौमुदी

छप कर

तैयार होगई,

है

जल्दी मंगाइये

पाठशालाओं में सिखाने के लिये

अति

उपयोगी है।

एक साथ बहुत सी कापियां ख़रीदने

वालों को

विशेष रियायत से मिलेगी।

रजत-जयन्ती पर लेने वालों को भी

बहुत सस्ती मिलेगी।

आर्डर शीघ्र भेजिए

मैनेजर

ज्योति

सं० ४ दरियागञ्ज देहली।

सावधान ?

सब आर्य्य सज्जनों एवं देवियों को सूचित किया जाता है कि वह संस्कार चन्द्रिका का अवैदिक नकली संस्करण कम दाम देकर न ख़रीदें। परन्तु हमेशा ख़रीदते समय याद रखें कि "संस्कार चन्द्रिका वैदिक संस्करण" श्रीमान् राज्य-रत्न आत्मारामजी अमृतसरी ने लिखा है वह वैदिक प्रेस अजमेर तथा बड़ौदा का छपा देखें और पृष्ठसंख्या भी उसकी ८५० से अधिक है। मूल्य उसका ३॥) था परन्तु अब २॥।) कर दिया है। इसमें प्रत्येक आर्य को शास्त्रोक्त १६ संस्कार करने की विधि तथा विज्ञानपूर्ण तर्कयुक्त व्याख्यान मिलेगा। इसमें आधुनिक नये से नये युरोप अमरीका के आविष्कार कर्ताओं के प्रमाणों से बताया गया है कि किस प्रकार एक दम्पति पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। किन नियमों इत्यादि का पालन आवश्यक है। विस्तृत विषय सूची मुफ्त मंगवा लें।

पृष्ठ सं० ८५० वजन एक सेर पक्का। मूल्य २॥।)रु. डांक व्यय ॥।) बढिया जिल्द वाली का मूल्य ४)।

वैदिक साहित्य के उच्चकोटि के ग्रंथ

ले० श्री राजरत्न आत्मारामजी अमृतसरी

संस्कार चन्द्रिका

शताब्दी संस्करण महर्षि दयानन्दप्रणीत संस्कारविधि की विस्तृत व्याख्या संस्कृत का अर्थ व्याख्या तथा आधुनिक युरोपीय एवं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा वैदिक संस्करों की फिलासोफी का अपूर्व दिग्दर्शन मूल्य २॥।)

मिलने का पताः—

जयदेव ब्रादर्स बड़ौदा

Any Shape Design Number is Given for Rs. 7 Only.

22 Ct. Rolled gold wrist watches.

Original Price Rs. 14
Half Price Rs. 7

1

2
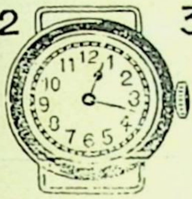
3
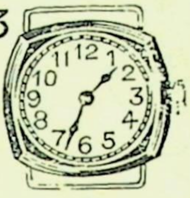
4
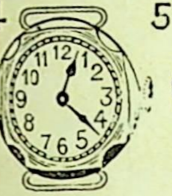
5
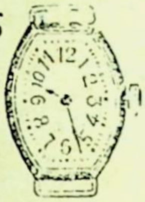
6
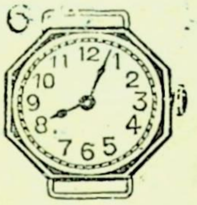

Only for cne month. We are giving this offer for the New Year. All watches are given at half Prices. The best movement and with perfect machenism, looka beautiful to wear and handy. All wrist watches are guaranteed. Any Shape, Design or any Number is given with superior Silk strap free.

Sale Price Rs. 7 only. Guaranteed for ten years.

ONLY A FEW MORE WRITE NOW.

Apply to:—**SWAN HOUSE, P. B. 508, P. T. MADRAS.**

FREE ! FREE !!

"C" Regd. TIME PIECE given FREE TO ANY ONE

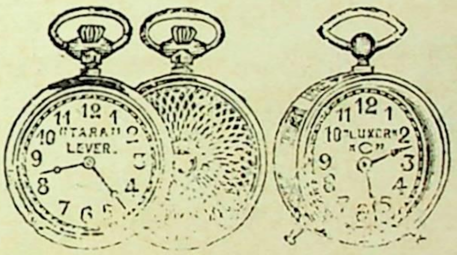

ordering for our "Tara Lever" 18 caret Rolled gold Pocket Watch with beautiful engravings on the back and guaranteed for five years, duly stamped on the dial, by the manufacturers, costing **RUPEES FIVE,** We give as a **Free Offer**, our "C", Regd. Time Piece.

Write now. This Offer is Limited.

Can be had from :—

CAPTAIN WATCH CO., P. B. 265, MADRAS.

अपने बच्चे को फुटबाल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताजा और खुश मिज़ाज होगा यदि तुम हम से उसके लिए फुठबाल खरीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे यहां है। जल्द आर्डर भेजिये।

बी० डी० गुप्ता एण्ड को०
पंच कुई रोड
दिल्ली।

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध से सद्धर्म प्रचारक प्रेस देहली में छपा।
पं० रमेशचन्द्र बहुखण्डी प्रिन्टर तथा पब्लिशर ज्योति कार्यालय से प्रकाशित किया।

ालदानाङ्क

Regd. No. L. 1240

वर्ष ७, खंड ७]   फरवरी, मार्च १९२७   [संख्या १०, ११

वार्षिक मूल्य ४।)
प्रति संख्या ।।)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी. ए.

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय — पृष्ठ से

(१) 'शोकाञ्जलि' (कविता)—[श्री पं० गयाप्रसाद 'श्री हरि' — — ४१९
(२) धर्मवीर के जीवन का एक पृष्ठ [श्री कृष्ण बी. ए. संपादक प्रताप व प्रकाश लाहौर ... ४२०
(३) 'श्रद्धाञ्जलि' [श्री स्वामी विचारानन्द सरस्वती] — ... ४२४
(४) 'अद्भुत अवसान (कविता)— [श्री हरिशरण जी 'मराल' बी. ए. एल. एल. बी. वकील, मेरठ] — ... ४२९
(५) राष्ट्र निर्माता स्वामी श्रद्धानन्द [श्रीयुत सत्यकाम विद्यालङ्कार] — — ४३०
(६) शहीद श्रद्धानन्द (कविता)— [सुमन] — — ... ४३२
(७) धर्मवीर श्रद्धेय स्वामी जी का महान बलिदान और अन्तिम सन्देश [श्री स्वामी चिदानन्द, संपादक—शुद्धिसमाचार] ४३३
(८) इस कमी को कौन पूरा करेगा ? [श्रीयुत पं. धर्मपाल सिद्धान्तालङ्कार ... — ४३६
(९) भक्त भावना (कविता) [श्रीमती शान्तिदेवी] ४३८
(१०) आर्यजाति में वीर पूजा [श्रीयुत पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालङ्कार] — ४३९
(११) राष्ट्रभाषा हिन्दी [श्री आचार्य रामदेव जी गुरुकुल काँगड़ी] ... ... — ४४३
(१२) बलि का फल [शान्त स्वामी अनुभवानन्द, दिल्ली] — — ४५४
(१३) त्यागमूर्ति श्रद्धानन्द [श्री चौधरी मुख्त्यारसिंह एम. एल. C.] — — ४१
(१४) ब्रह्मर्षि स्वामी श्रद्धानन्द [श्री डाक्टर केशवदेवजी, एम डी.] ४५
(१५) श्रद्धेय श्रद्धानन्द [श्रीयुत विश्वम्भर सहाय प्रेमी] ४५
(१६) बलिदान का [illegible] [श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति संपादक— 'अर्जुन' ... ४१
(१७) प्रभु ज्योति आई है ! (कविता) [सुधाकर दीक्षित– 'सुधा'] — ... ४६१
(१८) [illegible] [श्री कृष्ण पाँडे] — ... ४६१
(१९) वीरो ! (कविता) [श्रीयुत पं० लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी 'मधु' शाँति कुटीर] ४६३
(२०) बलिवेदि पर [श्रीयुत नतु सेन शास्त्री वैद्य] ४६३
(२१) वैज्ञानिक संसार ४६४
(२२) कुसुमोद्यान ... — ... ४६९
(२३) हमारा मंजूषा ४७
(२४) वनिता विनोद ४७
(२५) गृह–प्रबन्ध ४७
(२६) देवी दर्शन ... ... — ४८३
(२७) महिला विज्ञापन कला — ... ४८५
(२८) सती [कुमारी पुरुषार्थवती आर्या] — ४८६
(२९) वेद में सूर्य विज्ञान [प्रियरत्न विद्यार्थी ४८८
(३०) विचार प्रवाह — — — ४९
(३१) पाठकों से निवेदन — ... ४९

'ज्योति' सम्बन्धी पत्र व्यवहार

आचार्या "कन्या गुरुकुल" देहरादून

के पते पर कीजिये।

“ वीरबलिदान ”

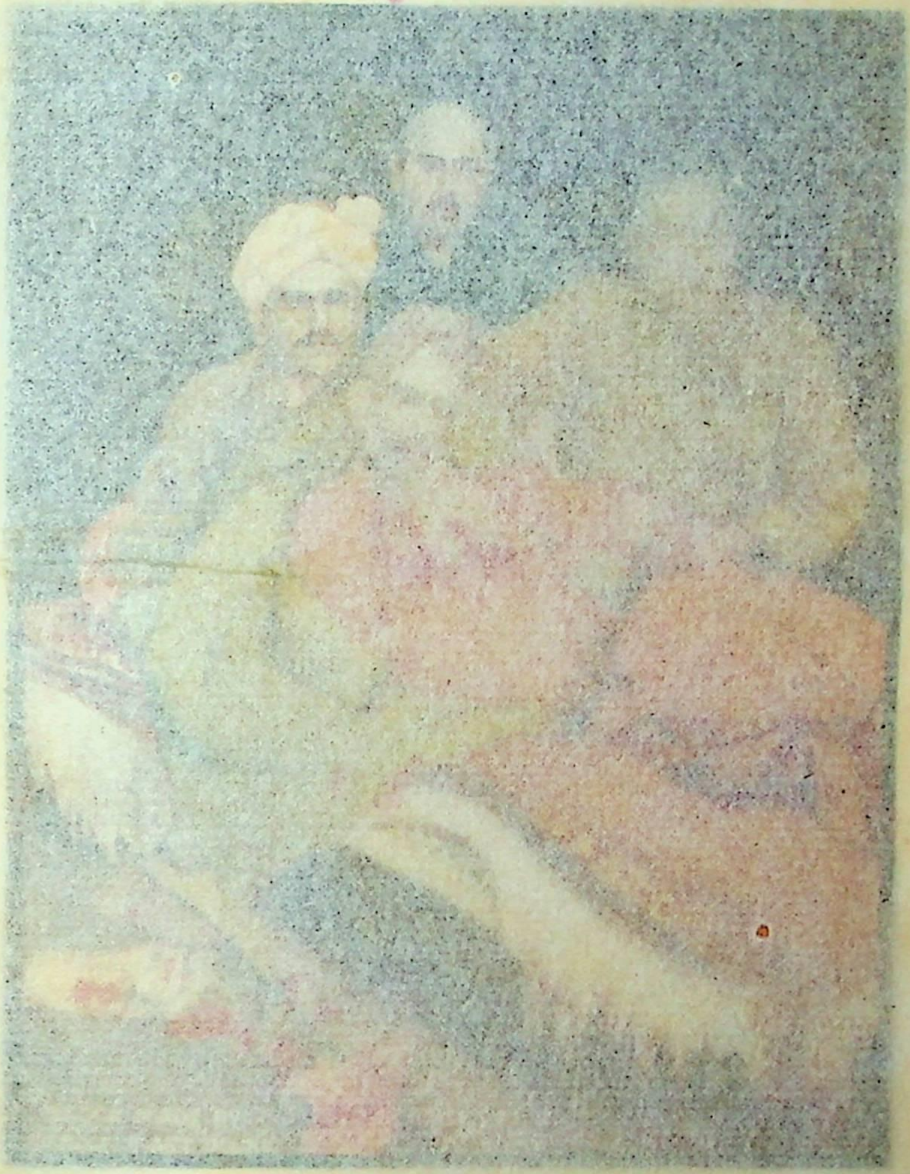

चार गोलियाँ [illegible]
चार वर्ण में सभी आर्यों, [illegible]

Block made and Printed by
Murari Fine Art Works, DELHI

विषय सूची ।

विषय ... पृष्ठ से
(१) 'शोकाञ्जलि' (कविता)—[श्री पं० गयाप्रसाद 'श्री हरि' ४१९
(२) धर्मवीर के जीवन का एक पृष्ठ [श्री कृष्ण बी. ए. संपादक प्रताप व प्रकाश लाहौर ... ४२०
(३) 'श्रद्धाञ्जलि' [श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती] ४२४
(४) 'श्रद्धेय अवसान (कविता)—[श्री हरिशरण जी 'मराल' बी. ए. एल. एल.' बी. वकील, मेरठ] ४२९
(५) राष्ट्र निर्माता स्वामी श्रद्धानन्द [श्रीयुत सत्यकाम विद्यालङ्कार] ४३०
(६) शहीद श्रद्धानन्द (कविता)— [सुमन] ४३२
(७) धर्मवीर श्रद्धेय स्वामी जी का महान बलिदान और अन्तिम सन्देश [श्री स्वामी चिदानन्द, संपादक—शुद्धिसमाचार] ४३३
(८) इस कमी को कौन पूरा करेगा ? [श्रीयुत पं. धर्मपाल सिद्धान्तालङ्कार ४३६
(९) भक्त भावना (कविता) [श्रीमती शान्तिदेवी] ४३८
(१०) आर्यजाति में वीर पूजा [श्रीयुत पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालङ्कार] ... ४३९
(११) राष्ट्रभाषा हिन्दी [श्री आचार्य रामदेवजी गुरुकुल काँगड़ी] ४४३
(१२) बलि का फल [शान्त स्वामी अनुभवानन्द, दिल्ली] ४५४
(१३) त्यागमूर्ति श्रद्धानन्द [श्री चौधरी मुख्त्यार सिंह एम. एल. C.] ... ... [illegible]
(१४) क्रान्तिकारी स्वामी श्रद्धानन्द [श्री बाबू केशवदेवजी, एम. डी.] ... [illegible]
(१५) श्रद्धेय श्रद्धानन्द [श्रीयुत विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी'] ... ... [illegible]
(१६) बलिदान का [illegible] [श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति संपादक— 'अर्जुन'] ... [illegible]
(१७) आज ज्योति आई है ! (कविता) [सुधाकर दीक्षित— 'सुधा'] ... ... [illegible]
(१८) कुर्बानी [श्री कृष्ण पाँडे] ... ... [illegible]
(१९) रोवो ! (कविता) [श्रीयुत पं० लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी 'मधु' शान्ति कुटीर] [illegible]
(२०) बलिवेदि पर [श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री वैद्य] ... ... [illegible]
(२१) वैज्ञानिक संसार ... ... [illegible]
(२२) कुसुमोद्यान ... ... [illegible]
(२३) हमारी मञ्जूषा ... ... [illegible]
(२४) वनिता विनोद ... ... [illegible]
(२५) गृह-प्रबन्ध ... ... [illegible]
(२६) देवी दर्शन ... ... [illegible]
(२७) महिला विज्ञापन कला ... ... [illegible]
(२८) सती [कुमारी पुरुषार्थवति आर्य] ... [illegible]
(२९) वेद में सूर्य विज्ञान [प्रियरत्न जी आर्ष] [illegible]
(३०) विचार प्रवाह ... ... [illegible]
(३१) पाठकों से निवेदन ... ... [illegible]

* * *

'ज्योति' सम्बन्धी सब व्यवहार

आचार्या "कन्या गुरुकुल" देहरादून

के पते पर कीजिये।

“ वीरबलिदान ”

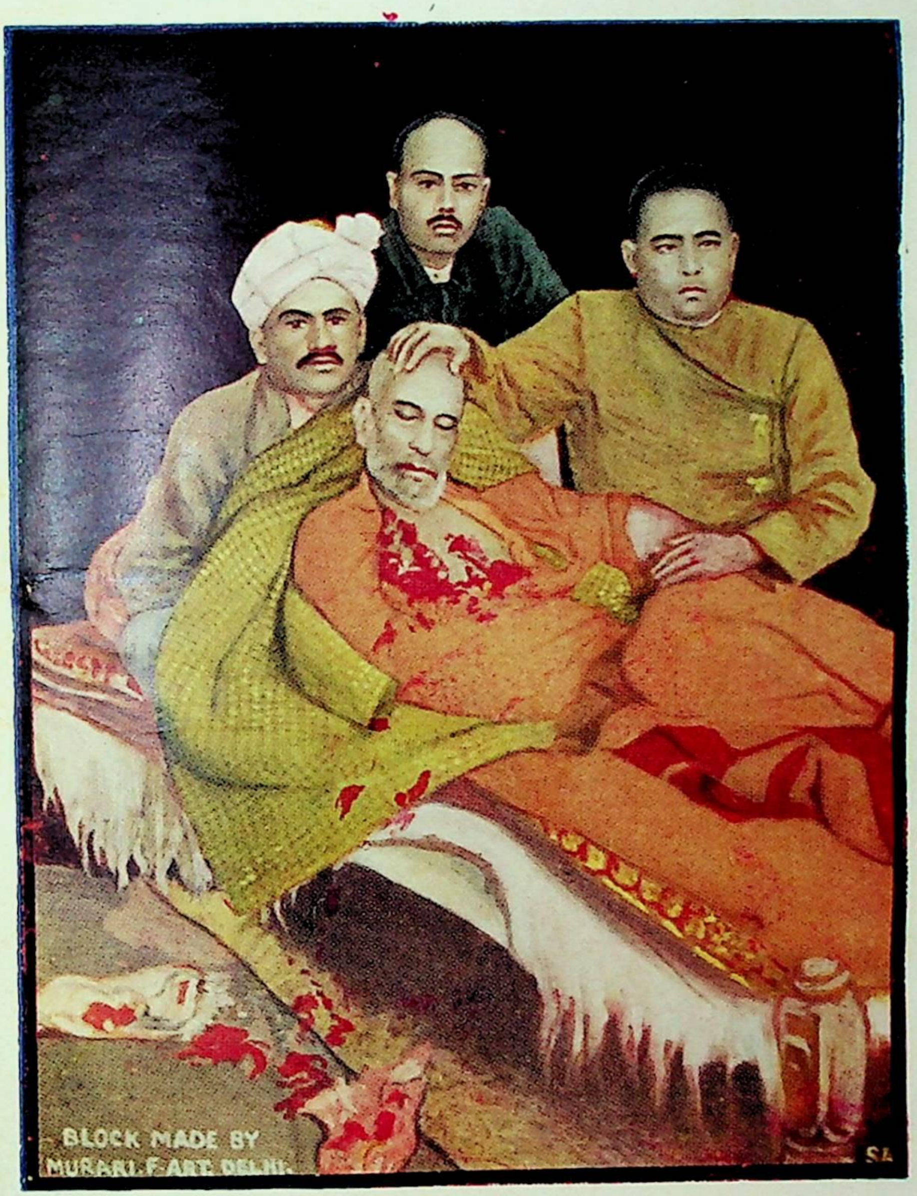

BLOCK MADE BY
MURARI F. ART DELHI.
SA

चार गोलियाँ तेरा लोहा, चारों ओर बिठायेंगी।
चार वर्ण में सभी जातियां, परिणत अब हो जायेंगी॥

Block made and Printed by
Murari Fine Art Works, DELHI.

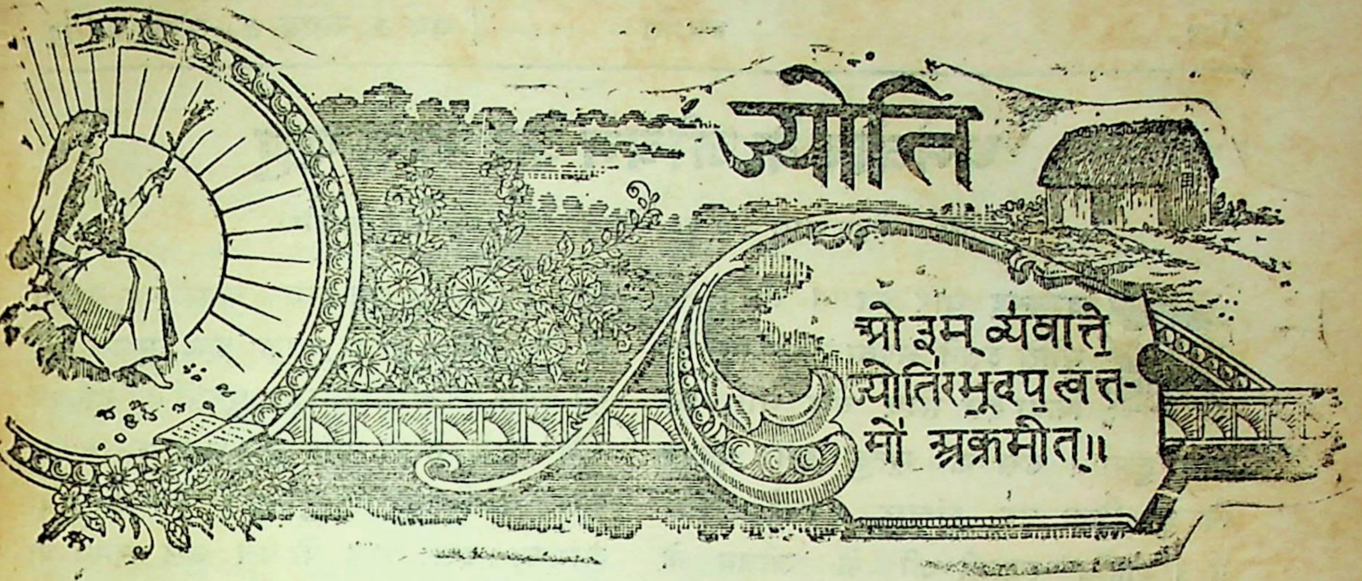

वर्ष ७
माघ तथा फाल्गुन १९८३
फरवरी, मार्च १९२७ ई०
संख्या १०, ११

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के श्री चरणों में

"शोकाञ्जलि"

(साहित्याचार्य गयाप्रसाद जी शास्त्री 'श्री हरि')

(१)

निज मातृभूके भक्त थे, तुम दीन जन के बन्धु थे।
थे नाथ ! नाथ अनाथ के, श्रद्धा-सुधा के सिन्धु थे॥
कुल भूमि के कुल देव थे, देवत्व की वर पूर्ति थे।
मृत-जाति-जीवन स्फूर्ति थे, करुणा क्षमा की मूर्ति थे॥

(२)

आलोक थे इस लोक के, तुम आर्य जनता-प्रान थे।
परतन्त्र भारत के सदा ही, मूर्तिमय अभिमान थे॥
निज धर्म-धन के थे धनी, धृति-सिन्धु के शुभपोतथे।
अशरन-शरन थे पुण्य पावन, प्रेम गङ्गा-स्रोत थे॥

(३)

इस आर्त हिन्दू जाति के, तुम एक ही आधार थे।
रणधीर थे, नरवीर थे, वर-आत्म-बल आगार थे॥
आपत्ति से हो भीत, देश-द्रोह तुम करते न थे।
कर्त्तव्य-पालन में कभी, हा ! मृत्यु से डरते न थे॥

(४)

हे वीर ! तुम तो वीरगति को पाचले इस लोक से।
क्यों रो रही है आज हिन्दू-जाति फिर इस शोक से॥
बलिदान की विधि धर्म पर, इस मृत्यु ने सिखलादिया।
होते अमर मरकरके कैसे, दृश्य यह दिखला दिया॥

(५)

हे देव ! तुमने गोलियों को इस हृदय पर सह लिया।
हो मूक केवल ईश से, मृत-जाति का हित कहलिया॥
हे वीर ! जाओ शान्ति से, इस लोक से जो जारहे।
पर देखना इस पुण्य-पथपर, वीर कितने आरहे॥

धर्मवीर के जीवन का एक पृष्ठ

(ले० — श्रीयुत कृष्ण बी० ए० सम्पादक प्रताप व प्रकाश लाहौर)

श्रद्धानन्द वीर था । वीरों के भांति उसने अपना जीवन व्यतीत किया इस लिए वीर गति को प्राप्त हुआ । उस की मृत्यु इस प्रकार से हुई जिस पर संसार स्पर्धा करता है । शहीद स्वामी जी के जीवन के २५ वर्ष मेरे सामने हैं । उन के जीवन की एक एक घटना मेरे आँखों के सामने हैं । मैं कह सकता हूं कि भय तो उन के पास तक न फटकता था । यदि कोई उन्हें भय दिखला कर दबाना चाहे तो उन की गर्दन और भी अकड़ जाती थी । मुसलमान हों या सरकार, किसी के आगे वह झुकने को तय्यार न थे । धर्मवीर पं० लेखराम से वीर श्रद्धानन्द की बड़ी मैत्री थी । मानों भाई २ थे । पण्डित जी जालन्धर जाकर उन के पास ही उतरा करते थे । ६ मार्च सन् १८९७ ई० को जब वह एक हत्यारे मुसलमान के हाथों वैदिक-धर्म के लिये बलिदान हुए तो महात्मा मुन्शीराम ने उन के वियोग को अत्यन्त अनुभव किया । आर्यसमाज के वह नेता तो थे ही, उस में नया जीवन का संचार करने और वीर के बलिदान से लाभ उठाने के लिए महात्मा जी ने आर्यसमाजों का दौरा किया । पण्डित जी की पुस्तकों का सम्पादन करके उन्हें प्रकाशित किया । लेखराम-स्मारक निधि के लिए, जो धर्मवीर की स्मृति के रूप में जारी किया गया था, धन एकत्र किया । परन्तु इन बातों का मेरे इस लेख से विशेष सम्बन्ध नहीं । मुझे तो इस समय केवल यह दर्शाना है कि जिस तरह आज कल मुसलमानों की तरफ़ से आर्यसमाजी पुरुषों को गुप्त पत्र भेजे जाते हैं कि यदि तुम आर्य समाज का काम न छोड़ोगे तो तुम्हारा बध कर दिया जायगा । इसी तरह के पत्र उस समय भी आते थे । सिर्फ़ पत्र ही न आते थे प्रत्युत आर्यसमाज के नेताओं के बध के लिए विशेष पुरुष नियत किये गए । ऐसा समझा जाता था, महात्मा मुन्शीराम जी प्रायः जालन्धर से लाहौर आते रहते थे । कई बार उन्हें रात को लाहौर आना पड़ता था । कतिपय पुरुषों ने यह उचित समझा कि उन की रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए । जहाँ आर्यसमाज के अन्य नेताओं की रक्षा के लिये स्वयँ सेवक नियत किये गए वहां उनके लिए भी किए गए । जब उन्हें इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने कह दिया कि मुझे किसी मनुष्य की सहायता नहीं चाहिए । मुझे परमात्मा पर भरोसा है वही मेरी रक्षा करेगा ।” कितना उच्च भाव था जो इस समय वीर ने प्रकट किया ।

[२] महात्मा मुन्शीराम जी की दूसरी परीक्षा सन् १९०७ ई० में हुई । यह समस्त आर्यसमाज के लिए परीक्षा का समय था । सभायें अपने नेताओं के सहारे उठती तथा गिरती हैं । इस समय यदि आर्यसमाज को महात्मा मुन्शीराम जी का नेतृत्व प्राप्त न होता

तो सम्भव है कि आर्यसमाज अपने पैर पर कायम न रहता। आर्यसमाज के लिए वह घोर परीक्षा का समय था। सरकार ने ला० लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को नज़र बन्द करके माण्डले भेज दिया था। लाला लाजपतराय का तो आर्य-समाज से विशेष सम्बन्ध था ही; वह दयानन्द कालिज की भारी सेवा किया करते थे। अजीतसिंह जी भी विचारों में आर्यसमाजी थे। इस समय पंजाब में क्या, देश के अन्य प्रान्तों में फिर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन हो रहा था। एक तरफ़ बंग-विच्छेद के कारण आन्दोलन हो रहा था और बंगाली सरकार को आंखें दिखा रहे थे, दूसरी ओर सरकार ने भूमि के सम्बन्ध में एक ऐसा कानून स्वीकार किया जो भूमिहारों को स्वीकार न था। भारत सरकार को यह कानून वापिस भी लेना पड़ा। परन्तु पञ्जाब में घोर आन्दोलन प्रारंभ होगया। सरदार अजीतसिंह ने इस सम्बन्ध में बहुत काम किया। लाला लाजपतराय रहते तो इस आन्दोलन से दूर २ थे परन्तु वह धर लिये गए। "पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा" उस समय की कविता थी। सरकार के विरुद्ध सभाएं होती थीं और उस में सहस्रों पुरुष सम्मिलित होते थे। जोश की यह अवस्था थी कि लोग अपनी अज्ञानता से यह भी समझने लगे थे अब स्वराज्य मिल जायगा सरदार अजीतसिंह आँधी सा सारे प्रान्त में फिर गए उन्होंने जाटों को सरकार के इस कानून के विरुद्ध खड़ा कर दिया। प्रेरणा की गई कि वह पानी का कर देने से इन्कार कर दें।

[३] यह एक विशुद्ध राजनैतिक समस्या थी जिसे ठीक तरह से हल न कर सकने के कारण सरकार को घोर विरोध का सामना करना पड़ा। आर्य समाज का इससे कोई सम्बन्ध न था। परन्तु आपत्ति आर्यसमाज के ही सिर पर आई। सारा दोष इस का समझा गया। कहा गया कि यह सारी आफ़त आर्यसमाज की पैदा की हुई है। जब आर्यसमाज के चार पांच सभासदों का एक डेपुटेशन कालका में उस समय के लैफ़टीनेन्ट गर्वनर सर डैन्ज़िल इबिट्सन की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने प्रार्थना की कि आर्यसमाज का वर्तमान आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं। सर डैन्जिल ने उत्तर में कहा कि मैं तुम्हारी बात कैसे मान लूं। डिप्टी कमिश्नरों की रिपोर्ट यह है कि जहां कहीं आर्यसमाज है वहां वह विद्रोह का केन्द्र है। मुसलमानों की उस समय चढ़ आई। उन्होंने उत्तम अवसर देखा। झट आर्यसमाज को एक विद्रोही संस्था जतलाना आरम्भ कर दिया। भय हुआ कि सरकार आर्य समाज को एक खिलाफ़—कानून संस्था उद्घोषित कर देगी। उस समय आर्यसमाज के कई नेता भी काँप उठे। कई कायर आर्यसमाजियों ने अपने नाम भी कटवा लिए परन्तु वीर श्रद्धानन्द चट्टान की तरह अचल रहे। इस समय उसने जिस वीरता और निर्भयता का परिचय दिया उस पर न्यौछावर होने को दिल चाहता है। उसने अपने नाम के साथ 'आर्य' लगाना शुरू कर दिया। सिविल एण्ड मिलीटरी गज़ट ने एक लेखमाला आरम्भ की। जिस में दर्शाया गया कि आर्यसमाज का वर्तमान राजनैतिक आन्दो-

लन से कोई सम्बन्ध नहीं । राजनीति तो निस्सन्देह वैदिकधर्म का एक अङ्ग है परन्तु प्रचलित राजनैतिक आन्दोलन में आर्यसमाज का कोई भाग नहीं, न वह ले सकता है। कई कायर आर्यसमाजस्थ पुरुषों ने यह भी कहा कि सत्यार्थप्रकाश से वह शब्द उड़ा दिये जायें जिन पर सरकार को आक्षेप है। परन्तु उनकी सुनी न गई।

[४] श्रद्धानन्द ने इस समय आर्यसमाज को बचाया। आर्यसमाज परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। यदि इस समय श्रद्धानन्द इस का नेता न होता तो कौन कह सकता है कि अन्त क्या होता। आर्यसमाज के ऐसे भी नेता थे जो अपने घर में बैठे ही कांप रहे थे। परन्तु वीरों की परीक्षा कठिन समय में ही होती है। सन् १९०७ ई० के संघर्ष ने श्रद्धानन्द को सोने से कुन्दन बना कर संसार के समक्ष पेश कर दिया।

[५] उन्हीं दिनों एक ऐसा अवसर आया जब कि मुझे स्वयं श्रद्धानन्द की सज्जनता, वीरता और निर्भयता की परीक्षा का समय मिला। मई १९०७ ई० में लाला लाजपतराय को नज़र बन्द करके ब्रह्म देश को भेज दिया तो मैंने अपने साप्ताहिक पत्र 'प्रकाश' में एक लेख लिखा। जिस का शीर्षक था 'आजमाइश का वक्त आगया'। अर्थात् परीक्षा का समय आगया। इस लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद लण्डन के एक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। इस के आरम्भ में उस पत्र के सम्पादक ने यह शब्द अपनी ओर से मढ़ दिये—

A fiery editor of Lahore writes—

लाहौर का एक अग्निसिद्ध सम्पादक लिखता है। 'अगस्त के अन्त में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि पंजाब सरकार ने 'प्रकाश' पर विद्रोह का अभियोग चलाने का निश्चय किया है। यह समाचार सारे भारतवर्ष के समाचार पत्रों में छप गया। सी.आई.डी. ने मेरे मकान को घेर लिया जिस से यह सन्देह और भी अधिक दृढ़ हो गया। मैं सितम्बर मास काटने के लिए शिमला जाने की तय्यारी कर रहा था। यह समाचार पाकर मैंने वहां जाने का विचार छोड़ दिया और गुरुकुल चला गया। वहां स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जिस सज्जनता का परिचय दिया और जो प्रेम और सहानुभूति उन्होंने दर्शाई उसे मैं कभी भुला नहीं सकता। उन्होंने देहली के वैरिस्टर मि० कर्क पैट्रिक से पत्र व्यवहार करके निश्चय किया कि यदि यह मुकदमा चले तो वह इस की पैरवी करें। मुझे वह लगातार ढाढस देते रहे और मुकदमे की तय्यारी में इसी तरह लगे रहे मानों यह अभियोग इन पर था। सितम्बर के अन्त में मैं गुरुकुल से चलने लगा और उन से आज्ञा लेने के लिए गया तो उन्होंने यह शब्द कहे कि जिस समय गिरफ़तारी हो उस समय मुझे तार दे देना मैं लाहौर पहुंच जाऊंगा।

[६] इस के बाद आर्यसमाज में एक और परीक्षा का समय था। सन् १९०९ ई० में पटियाला दरबार ने रियासत के समस्त आर्यों को गिरफ्तार कर दिया। उन पर विद्रोह का मुकद्दमा चला दिया। मिस्टर

बैरिस्टर एटला ने, जो पटियाला दरबार की तरफ़ से मुकद्दमा की पैरवी कर रहे थे, अपनी प्रारम्भिक वक्तृता में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि 'सत्यार्थ प्रकाश' शिक्षा ही विद्रोह की देता है और आर्यसमाजी होना (Ipso facto) विद्रोही होता है। वीर श्रद्धानन्द की यह विशेषता थी कि जब आर्यसमाज के लिए कठिन समय आया था तो छाती ठोक कर मैदान में कूद पड़ता था। उन्होंने गुरुकुल से रवाना होकर पटियाला में डेरा आ लगाया। प्रैक्टिस का लाइसन्स ले लिया और पैरवी भी करने लगे। जब दरबार ने मुकद्दमा वापिस ले लिया तो वह गुरुकुल गए।

[७] उन के जीवन की और घटना पेश करके मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ। यह मार्च १६१६ का दिन था जब महात्मा मुन्शीराम संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द बन चुके थे, गुरुकुल को छोड़ कर देहली में डेरा लगा चुके थे। सरकार ने बड़ी व्यवस्थापक सभा में रौलटबिल पेश किया और समस्त भारत के घोर विरोध के होने पर भी इसे पास कर दिया। महात्मा गाँधी ने इस के विरोध में सत्याग्रह की आज्ञा दी। स्वामी श्रद्धानन्द जी भी महात्मा गान्धी जी के साथ मिल गए। देहली का नेतृत्व इन्होंने अपने हाथ में लिया। ३० मार्च को देहली में दयानन्द हाई स्कूल आर्यसमाज की तरफ़ से खुलने वाला था। मैं इस सम्बन्ध में देहली गया। जहां भारत के दूसरे नगरों में ६ अप्रैल को हड़ताल हुई वहां देहली में ३० मार्च को हुई। इस दिन गोली चली। कुछ मनुष्य मर गए और कुछ घायल हुए। स्वामी श्रद्धानन्द के लिए अपनी वीरता का परिचय देने का वह समय था। जहां देहली के नेता अपने घरों से बाहर तक न निकले वहां श्रद्धानन्द छाती ठोक कर मैदान में कूद पड़ा। देहली के नगरनिवासियों की एक विराट सभा की। इस में वक्तृता की, और सरकार की इस नीति के विरुद्ध प्रतिरोध किया। जिस का परिणाम यह था कि कुछ भारतीय मारे गए और कुछ घायल हुये। वह समय भी देखने से सम्बन्ध रखता था। सहस्रों लोग बैठे हुए हैं, चारों ओर पुलिस और सेना ने घेरा डाल रखा है, मशीनगन लगी हुई है और श्रद्धानन्द केसरी की न्याई गर्ज रहा है। इसी समय चीफ़ कमिश्नर भी आया। और उस के तथा संन्यासी के बीच में जो बातचीत हुई उसने वीर श्रद्धानन्द की कीर्ति उज्वल कर दिया। श्रद्धानन्द देहली के हिन्दू मुसलमानों का एक मात्र ही नेता माना गया।

[८] सभा समाप्त हो गई। हिन्दू और मुसलमान सैकड़ों की संख्या में चाँदनीचौक से चले जारहे थे। श्रद्धानन्द इनके आगे था। "स्वामी श्रद्धानन्द की जय" और "हिन्दु मुसलमान की जय" के नारे लगाये जा रहे थे। घण्टाघर के नीचे एक गोरखा सिपाही बन्दूक ताने पहरा लगा रहा था। वह हिन्दुस्तानियों की भाषा से अनभिज्ञ था। उस ने समझा कि लोग आक्रमण करने के लिए आरहे हैं। इतने में स्वामी श्रद्धानन्द अपनी शान्तिमयी सेना लिये हुए आपहुंचे। गोरखा सिपाही

ने कुछ कदम पीछे हट कर बन्दूक तान ली और इन लोगों पर जो स्वामी जी के साथ आरहे थे निशाना लगा लिया। यह अवस्था देख कर श्रद्धानन्द ने अपने कोट के बटन खोल दिये और छाती आगे करके कहा, 'चलादे' देर क्या है। जब लोगों ने यह देखा तो सहसा सैकड़ों जवानों के मुंह से निकल पड़ा "स्वामी जी की जय। स्वामी जी के भाग्य में तो शहीद होना लिखा था कोई आश्चर्य न था कि गोरखा सिपाही उस समय अपनी बन्दूक चला देता और आज से आठ वर्ष पहले शहादत का मुकुट पहन लेते। परन्तु इतने में अंग्रेज आफिसर आगया और उसने गोरखे को रोक दिया।

[६] परमात्मा को यही अभीष्ट था कि श्रद्धानन्द को वीरगति प्राप्त हो। जिस यश और कीर्ति के साथ वह इस संसार से सिधारे हैं, परमात्मा करे कि सब सिधारें परन्तु सब को यह गौरव प्राप्त नहीं हो सकता। इनकी अर्थी का दृश्य आंखों से ओझल नहीं हो सकता और देहली के इतिहास में एक अमिट पृष्ठ का काम देगा।

* * *

श्रद्धाञ्जलि

(ले०—स्वामी विचारानन्द सरस्वत)

यह सुन कर किसका हृदय दुःख से हिल न उठा होगा कि सन्यासियों का सम्राट, हिन्दू मात्र का गौरवस्तम्भ, शुद्धि का अवतार, भारत माता का वीर पुत्र, वैदिक धर्म का रत्न पूज्य श्री १०८ श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को एक हत्यारा मुसलमान उन के स्थान पर (दिल्ली) जा कर रोगग्रस्त दशा में जब कि आप को उठने बैठने की शक्ति न थी और आप दीर्घायु भी थे। ऐसी अवस्था में उन पर उस नर पिशाच ने मनुष्यत्व के धर्म को पैरों तले रौंदते हुये हमारे महारथी पर गोलियां चला कर अपनी मज़हबी संकुचता और नीचता का पूर्ण परिचय दिया।

हत्यारे का घृणित विचार

हत्यारे ने पुलिस के सामने बयान देते हुए कहा है, कि मैंने गोली मारी इस लिये कि काफ़िर को मारना मेरा मज़हबी फ़र्ज़ था। अब मैं बहिश्त में जाऊंगा।

सुना गया है कि हत्यारे की मन्शा पूज्य श्रीमान् पं० मदन मोहन मालवीय जी और पञ्जाब केसरी श्रीमान् ला० लाजपतराय जी को भी मारने की थी। अस्तु

हत्या का षडयन्त्र

(१) बात तो यह है, कि मि० हसन निजामी के पत्र में जो वह चित्र (कार्टोन) प्रकाशित हुआ था। जिसमें शुद्धि का रावण और मि० हसन निज़ामी ने स्वयं राम रूप धारण किया था।

(२) बात यह है कि स्वामी जी की मृत्यु से एक दिन पहले निम्न लिखित नज़्म (कविता) जो निज़ामी के ग़रीबों के अख़बार नामक पत्र में छापी गई थी।

अशुद्धी की अर्थी

हुये लाजपत मालवीय में इशारे ।
खड़े आसमान में खिलाफ़त के तारे ॥
कहा लाजपत ने अजी मालवी जी ।
यह कृपा है उसकी फिरे दिन हमारे ॥
नसीबा स्वामी का जागा हुआ है ।
यही वक्त है कि बढ़ के अब पालाह मारे ॥
अगर कुछ दिनों और चलती रही यों ।
तो बन जायेंगे काम सारे के सारे ॥
मुहम्मदअली हैं अगर्चे मुसल्माँ ।
मगर काम यह आ रहे हैं हमारे ॥
मुहम्मदअली को है ख्वाजा पै यूरश ।
मगर पिस रहे हैं मुसल्मान सारे ॥
बहुत मालवी जी ने बगलें बजाईं ।
बहुत लाजपत ने बजाये दुतारे ॥
मगर होश में आयेंगे जब यह दोनों ।
नज़र आयेंगे मालवी दिन को तारे ॥
अशुद्धि मिटा कर के छोडेंगे हम भी ।
अगर बाजुओं में है कुछ दम हमारे ॥
बना कर अशुद्धि की अर्थी को स्वामी ।
डुबा आना चुपके से जमुना किनारे ॥

तेज के स्पेशलाङ्क २५ दिसम्बर सन् १९२६ से उदधृत

(३) बात यह थी कि हत्यारे के साथ कुछ और गुण्डे मुसल्मान स्वामी जी के मकान के नीचे खड़े थे जब कि हत्यारा हत्या के अभिप्राय से स्वामी जी के पास उन के कमरे में गया। बाद में गुण्डे भाग गये।

(४) बात यह है कि जब स्वर्गीय स्वामी जी के शव दर्शनार्थ हिन्दू जनता उनके अन्तिम दर्शन को आ रही थी। उस भीड़ में घुस कर कुछ मुसल्मान हत्यारे को छुटाने के विचार से जा रहे थे। और रास्ते में उन लोगों ने दर्शकों को भी मारा पीटा किन्तु वे सफल मनोरथ न हो सके।

(५) बाद ता० २५ दिसम्बर को जब स्वामी जी की अरथी श्मशान में जा रही थी तब गुण्डे मुसल्मानों ने लाल कुआं और चांदनी चौक से अरथी पर पत्थर बरसाये।

(६) बात यह है कि स्वामी जी की मृत्यु पर मुसल्मानों ने मेरठादि में रोशनियाँ कर खुशियां मनाईं।

(७) शुद्धि आन्दोलन आरम्भ होने के सन् १९२३ और २४ को ओर पाठकों का ध्यान दिलाते हैं। उस समय भी स्वामी जी को मार डालने की घोषणा कुछ मुसल्मानों की ओर से की गई थी। यह सब बातें सिद्ध करती हैं कि स्वामी जी की हत्या में अनेकों लोगों का हाथ था एक व्यक्ति का नहीं। मि० आसफ़अली का कांग्रेस से अस्तीफ़ा इन बातों की पुष्टि करता है। ता० २९ दि० सन् १९२६ के उर्दू (प्रताप) से अस्तीफ़ा की पूरी तफ़सील पाठक मंगा कर पढ़ सकते हैं।

सफ़ाई

अब बहुत से मुसल्मान यह कहते फिरते हैं कि स्वामी जी की हत्या में मुसल्मान समुदाय का हाथ नहीं है। कोई पढ़ा लिखा मुसल्मान इस बात को अच्छा नहीं मानता यह तो एक व्यक्ति का काम है। मारने वाला महज़ पागल था। अस्तु हम थोड़ी देर के

---

१. मि० हसन निजामी ने कार्टून में अपने आप को राम स्वरूप दिखाकर अपनी कुलीनता का परिचय दियाहै

लिये यह बात मान लें कि स्वामी जी की हत्या करने वाला व्यक्ति महज़ पागल ही था तो लीडर सिप देवता की बातें सुनिये। अभी थोड़े दिन भी नहीं हुये जब मुसलमानो के सब से बड़े लीडर मौ० मुहम्मद अली ने अपने व्याख्यानों में कई मर्तबा कहा कि गिरे से गिरा दुश्चरित्र एक मुसलमान मेरी निगाह में वह महात्मा गांधी से अच्छा है। और सुनिये जब कोई हिन्दू कभी किसी से औरंगज़ेब के ज़ालिमयाना और वहशियाना व्यवहार की आलोचना इतिहासों से करता है, तो हमारे बहुत से मुसलमान चिढ़ जाते हैं। और कहते हैं कि बादशाहों से मज़हब का सम्बन्ध नहीं। जो कुछ उन्होंने किया उसके जुम्मेवार वही हैं जिन्होंने किया मुसलमान फ़िर्क़ा नहीं। इस प्रकार से इतिहास की बात को वर्तमान युग के मुसलमान नहीं मानते। और हिन्दुओं से अपने पूर्वज गुरु गोविन्दसिंह, फ़तेसिंह, जोरावर सिंह, गुरुतेग़ बहादुर,वीर वन्दा वैरागी इत्यादि के बलिदान को भुला देने की चेष्टा कराई जाती है। पाठक शाही, लीडरी और निचले दर्जे के व्यक्तियों की कर्तूत सुन चुके अब हम पाठकों का ध्याम हकीक़तराय के बलिदान की ओर दिलाते है। जिसके कत्ल के लिये मज़हब के ज़ुम्मेदार मुल्लाओं ने फतवा दिया था। इसपर भी हमारे देशी मुसलमान कायल होने को तैयार नहीं।

किसके किसके लेवें नाम, कमली ओढ़ें सगरे गाम

कहां तक गिनायें मालावार, मुलतान, सहारनपुर, पानीपत, इलाहाबाद, लखनऊ, कलकत्ता, अलीगढ़, आगरा, कोहाट आदि को हम भूले नहीं हैं। हम नहीं समझते कि यह सब नर पैशाचिक कृत करने वाले मुसलमान नहीं हैं केवल गुण्डे और बदमाश हैं। तो वह सभ्यता के अवतार, उदारता की मूर्ति, इस्लाम का पैरोकार कौन सा मुसलमान है जो उपरोक्त अधर्मियों का विरोध करने को तैयार है। ज़बानी जमा खर्च से काम नहीं चलता। यदि न्याय का प्रकाश किञ्चित भी हृदय में है तो न्यायप्रिय मुसलमानों को शुद्ध होकर शीघ्र हिन्दू बन जाना चाहिये। सुना है कि स्वामी जी की हत्या होते ही मुसलमान नेता डा० अनसारी ने अपने एक और मुसलमान मित्र के साथ स्वामी जी के स्थान पर पहुँच कर धर्मसिंह जो स्वामी जी का सेवक था उस की मरहम पट्टी की। और स्वामी जी के साथ होने वाली घटना पर अफ़सोस ज़ाहिर किया। किन्तु यह अफ़सोस वैसे है जैसे एक शाइर अपनी शाइरी में बतला रहा है।

क्या बाइस है बेरहम की
आंखों से आँसू निकलने का।
ग़ैर के जलने का आँखों
में धुंआ लगता है॥

पाठकों को हम, बतला चुके, कि सब फ़िर्के के मुसलमान हिन्दुओं को हर प्रकार से मिटा देने के लिए नाजाइज़ व्यवहार काम में लाते हैं। अब हमें सोचना है, कि इस स्वेच्छा चरिता, संकुचिता और मूर्खता के साथ मित्रता करने में लाभ है या हानि। यदि लाभ है, तो हमें विवेक, मनुष्यत्व को तिलाञ्जली दे दें सब हिन्दू एकत्रित हो जलती हुई भटी में कूद कर भस्म हो जायें। या किसी नदी में डूब कर मर जायें। हिन्दुओं अब तुम्हें स्वाभिमान से संसार में जीने का

नहीं। यदि अपने जन्म सिद्ध अधिकारों के अधिकार का तुम् कुछ भी मूल्य समझते हो, तो इस अद्वितीय एक सन्यासी की बलि से शिक्षा ग्रहण करो। स्वार्थ को तिलाञ्जली दे दो। संगठन की वेदी पर एक हो जाओ आँखे खोलो, उठो; गोली के जवाब में गोली चलाने की आवश्यकता नहीं शत्रुओं की ओर से गोलियों का वार होने दो तुम अपने सीने को खोल दो, भेद भाव को मिटा दो, शुद्धि का शंख बजा दो, दुनियां को बता दो कि हम भी मनुष्य हैं ओर मनुष्यत्व के साथ दुनियां में रहेंगे। हिन्दुओं यदि तुम में तुम्हारे पूर्वजों का कुछ भी रक्त का अंश बाक़ी है। तो कह दो कि:—

जहां हम डट जाते हैं,
कदम मैदां से भी मर्दों के हट जाते हैं।
अरे तेग़ क्या चीज़ है,
हम तोप से भिड़ जाते॥
फिरता है सैले हवादिस से कहीं मर्दों का मुंह
शेर सीधा तैरता है वक्त रफ्तन आब में॥
तड़पती किस लिए बुलबुल,
कमाल इतना तो कर पैदा।
गिरे जिस जाँ तेरे आँसू,
गुले गुलज़ार हों पैदा॥

हे हिन्दू जाति पर बलि होने वालों! आप समझ गये होंगे, कि स्वामी जी के स्मारक में हम कौन सा कार्य करें जिस से उन का नाम संसार में अमर हो जायें। वह है शुद्धि, शुद्धि ही गौरक्षा का उपाय है, शुद्धि ही स्वाभिमान का मार्ग हैं, शुद्धि ही स्वराज्य है, शुद्धि ही स्वामी जी का एक मात्र स्मारक (यादगार) है।

हिन्दुओ! अब भी तो आँखे खोलो!

देखो जब से तुमने शुद्धि का कार्य विशेष रूप से आरम्भ किया है तब से मुसलमान सब प्रकार से तुम्हारा बायकाट कर रहे हैं। उन्होंने अपनी हलवाई, पनवाड़ी, पंसारी, आड़ती (अनाज) सुनारी, बज़ाजी आदि सब प्रकार की व्योपारिक दुकानें कर लीं हैं और जहाँ तक उनका वश चलता है वह अपने ही सहधर्मियों से उपरोक्त वस्तुयें ख़रीदते हैं। वे अपने लाभ की बातों में आप से अलग नहीं होते किन्तु तुम्हारे लाभ पर वे कुठाराघात करते ही जा रहे हैं। हमें सन्देह है, कि अब जो द्वेषाग्नि उनकी ओर से बढ़ रही है, कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन वो तुम्हारे सब कामों को छोड़ बैठे। इस लिये तुम्हें अपने कामों को करने के लिये तैयार रहना चाहिये। वर्षा होने से पहिले ही मकान को छा लेना बुद्धिमत्ता हैं। अब हमें निम्नलिखित बातों को शीघ्राति शीघ्र कर लेना आवश्यक है। प्रेस के कामों के लिये क़ातिब, प्रेसमैन, दफ्तरी हिन्दू तैयार करने होंगे। व्यापार में फल मेवा बेचने वाले, जूते की दुकान, सब प्रकार के काम रंगने के लिये रङ्गरेज, हुक्का के नैचा [निगाली] बनाने वाले, तम्बाकू बेचने वाले अत्तार दवा बेचने वाले, इत्र, बेचने वाले, बिसाती, मनिहार चूड़ी बेचने वाले, तेल के लिये तेली, गायों के शुद्ध दूध के लिये ग्वाले, अन्न भूंजने के लिये भड़भूंजे यद्यपि मांस खाना बुरा है, तथापि जो हिन्दू मांस खाते हैं उनको मांस बेचने वालों मुसलमानों से माँस न लेकर मांस बेचने वाले हिन्दू

तैयार करने चाहियें। दूसरे का मारा हुआ खाना कुत्ता, बिल्ली और गीदड़ का काम है। तांगा, इक्का घोड़ा गाड़ी वाले, हाथी के लिये पीलवान (महावत) और चर्कटे गाने बजाने वाले, कुश्ती, डंडा, गतका, पट्टा लड़ने खेलने वाले, चिलत चढ़ाने वाले, द्वार की रक्षा करने वाले, दुकान पर काम करने वाले बच्चों के लिये काग़ज़ादि के खिलौना आदि बनाने वाले रामलीला आदि उत्सवों में रावणादि की काग़ज़ादि की मूर्त्ति बनाने वाले, ढोल ताशा बैण्ड आदि बाजा बजाने वाले, कागज़ की फुलवाड़ी, आतशबाज़ी बनाने वाले, बर्तन बनाने वाले, कपड़े पर बेल बूटे निकालने वाले सीने पिरोने वाले, बाल बनाने वाले नाई, कपड़ा धोने वाले धोबी आदि सब कामों के लिये हमें हिन्दुओं में सब प्रकार के मनुष्य तैयार करने चाहिये हमारे दिल में नफ़रत और बायकाट का खयाल बिलकुल न होना चाहिये । किन्तु अपनी रक्षा और दिक़्क़तों को दूर करने का उपाय हर समय सोचना चाहिये । हिन्दुओं तुम्हारा भविष्य ख़तरे में है । इस लिये उसके निवारण का विचार सोचने में किञ्चित भी विलम्बन करना चाहिये । हल्ला गुल्ला करने व लेक्चर बाज़ी को छोड़ कर ठोस काम करने की आवश्यकता है । इन कामों के प्रचार के लिये हिन्दू साधु सन्यासी ब्राह्मण पुरोहित, तीर्थ के पण्डे, मठों के महन्त, मन्दिरों के पुजारी, कथा बांचने वाले पौराणिक, घर में फिरने वाली नाईन, बारिन, महारिन, धोबिन, ब्राह्मणी आदि सब स्त्री पुरुषों को अग्रसर होना चाहिये । पुरुष पुरुषों में और स्त्री स्त्रियों में काम करें । यदि कुछ लोगों को इकट्ठा करके कुछ सुनाने, बतलाने व्याख्यान देने की आवश्यकता हो तो इस काम के लिये हिन्दू मन्दिर उपयुक्त स्थान हो सकता है । उपदेश का कार्य ऐसे ही धार्मिक स्थानों में होना चाहिये । पढ़ी लिखी देवियों को चाहिये, कि वे भी अपनी स्त्री जाति में इस बात का प्रचार करें कि कब्र पूजना मसजिदों पर जाकर बच्चों का झाड़ फूक कराना, विधर्म्मी साईं फकीरों को भिक्षा देना महान् पाप है । मैं आशा करता हूँ कि मेरे उपरोक्त विचारों से सभी धर्मात्मा हिन्दू सहमत होंगे । उपरोक्त बातों को गुरु मंत्र की भांति एक दूसरे के कानों तक पहुँचा देना चाहिये, हिन्दू जनता जो विवेक शून्य है, उनको हिन्दू धर्म में श्रद्धा-भक्ति अटल करके अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये ।

अद्भुत अवसान

(श्री हरिशरण जी वास्तव्य 'मराल' बी. ए. एल. एल. बी. वकील, मेरठ)

(१)

प्रभू प्रतिभा के पुण्य-धाम !
हा ! जागृत-जीवन के आनन्द !
आर्य-सभ्यता के सरसीरुह !
वेद-धर्म्म की ज्योति-अमन्द !
निर्भय वीरों के सेनानी !
देश, जाति की गति स्वच्छन्द ।
शुद्धि गगन के प्रखर-दिवाकर !
अस्त हो गये श्रद्धानन्द !

(२)

कौन, देव ! बतलाओ अब तो
'अभयं-नाद' सिखायेगा ?
मित्र-दृष्टि से सब को देखें',
मेल-मन्त्र यह गायेगा ?
एक धर्म-धारा हिलमिल कर,
गङ्गा रूप बहायेगा ?
जीवन दे मृत-प्राय जाति को,
अमर-धाम में जायेगा ?

(३)

त्याग-मूर्त्ति सन्यासी ! तेरे
युग युग में गुण गायेंगे ।
धवल कीर्त्ति को लेकर सारे,
जीवन बिमल बनायेंगे ।
भक्त तुम्हारे सरल-स्नेह से,
ऐसी ज्योति जगायेंगे ।
तीस कोटि अपने अन्तस्थल,
में तेरा यश पायेंगे ।

(४)

चार गोलियाँ तेरा लोहा,
चारों ओर बिठायेंगी ।
चार वर्ण में सभी जातियाँ,
परिणत अब हो जायेंगी ।
चार वेद पढ़ना ही अपना,
बस कर्तव्य बनायेंगी ।
चार सुफल जीवन के पाने,
आर्य्य-धर्म्म में आयेंगी ।

(५)

सत्य-धर्म की निश्चय जग में,
बलिदानों से बढ़ती बेल ।
मरने से जीवन मिलता है,
सृष्टि का साधारण खेल ।
उषा-रक्त-रञ्जित निकली है,
उदय भानु होगा तत्काल ।
चकित देख संसार कहेगा,
"गया कहाँ वह जड़ता-जाल!"

* * *

राष्ट्र निर्माता स्वामी श्रद्धानन्द

(ले०— श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार)

स्वामी जी उच्चकोटि के राष्ट्र निर्माता थे। भारत के राष्ट्रीय भवन का निर्माण जिन आधार शिलाओं पर वह करना चाहते थे वह वास्तव में बहुत सच्ची और बहुत मज़बूत थीं। उनके सार्वजनिक जीवन का प्रथम भाग राष्ट्रीय शिक्षा के विचार को क्रियात्मक रूप देने और उसे सफल बनाने में व्यतीत हुआ। राष्ट्रनिर्माण में राष्ट्रीय शिक्षा का जो महत्त्व पूर्ण भाग है उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, अतः इस सर्वसम्मत बात पर बिना कुछ कहे हम उन बातों पर आते हैं जो विवाद ग्रस्त हैं। हिन्दू संगठन और शुद्धि उनके सार्वजनिक जीवन के उत्तरार्द्ध को बताते हैं। जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दू संगठन अपने आप में उद्देश्य है वह भूलते हैं और इसके संस्थापक के वास्तविक अभिप्राय को समझने में ग़लती करते हैं। इसी प्रकार जो यह ख्याल करते हैं कि शुद्धि द्वारा स्वामी जी समस्त संसार को हिन्दू बना लेना चाहते थे वह शुद्धि के वास्तविक रूप को नहीं समझते। वस्तुतः हिन्दू संगठन और शुद्धि अपने आपमें कोई उद्देश्य नहीं हैं यह केवल भारत को स्वाधीन राष्ट्र बनाने में सहायक कहे जा सकते हैं चाहे और कोई हिन्दू-संगठन और शुद्धि का कुछ अर्थ ले भगा स्वामी जी ने इन्हें राष्ट्र निर्माण में उपयोगी साधन बनाने के लिये ही स्थापित किया था। उनका विश्वास था। कि बिना हिन्दुजाति के संगठित हुए प्रथम तो स्वाधीनता मिल ही नहीं सकती और यदि मिल भी जाये तो क़ायम नहीं रह सकती। स्वामी जी के जीवन में उनके कार्यों के महत्त्व को कोई समझ न पाया, परन्तु अब जबकि उन्होंने उसपर ख़ून की मुहर लगादी तो उनके विरोधी भी शतमुख से उनकी प्रशंसा करने में नहीं अटकते। दुर्भाग्य है कि देश के नेताओं ने उनके पवित्र कार्य में हाथ नहीं बटाया और उनकी इच्छा उनके जीवन में पूरी न होसकी। हाथ बटाते भी कैसे? उन्होंने तो स्वामी जी के कार्यों के महत्त्व को समझा ही नहीं और जो थोड़ा बहुत समझे भी वह लोकापवाद व विरोधी समुदाय के भय से उनको सहायता नहीं दे सके। यही नहीं कि सहायता नहीं देसके अपितु प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से विरोध भी करते रहे। उनके इस विरोध से स्वामी जी के पुण्य कार्यों में जो बाधा पहुंची उसकी उत्तरदायिता इन्हीं अदूरदर्शी नेताओं पर आती है। आवश्यकता है कि वह इस उत्तरदायिता को समझें और अपनी अकर्मण्यता का प्रायश्चित करें।

हिन्दुस्तान के असली बाशिन्दे हिन्दू हैं। हमारा विश्वास है कि उनकी दृढ़ता से ही हिन्दुस्तान की नींव पक्की हो सकती है। और उनके सुधार। से ही इस देश का राष्ट्री

जीवन सुधर सकता है। हिन्दू सभ्यता हमारे लिये और बड़ा चिन्ह हैं। हम अपने प्राचीन रस्मरिवाजों को अभिमान से स्मरण करते हैं और अपनी पुरानी संस्थाओं को ही अपने भविष्य के राष्ट्र निर्माण में आधार बनाना चाहते हैं। इसके लिये हिंदू संगठन एक आवश्यक साधन है।

यह निश्चित है कि हमारे भविष्य का आधार हमारा प्राचीन इतिहास ही होगा। और यह भी निःस्सन्देह कहा जासकता है कि हमारी समस्त राष्ट्रीय संस्थाओंका आधार हमारी प्राचीन संस्थाएँ होंगी। और होंगी क्यूं न? जबकि हम उन्हें गौरव की दृष्टि से देखते हैं और मानते हैं कि यह सर्वोत्कृष्ट संस्थाएँ हैं। परन्तु उनकी सत्यता को मानना ही उनकी संस्थापना के लिए पर्याप्त नहीं है। दौर्भाग्य से इस समय भारतवर्ष में अनेक धर्म और अनेक सभ्यताओं की विद्यमानता है। हरेक अपने प्रभुत्व को क़ायम करने पर तुला हुआ है। इस कठिन समय में हमारी प्राचीनता की विजय उसी हालत में हो सकती है यदि हम सचमुच उसकी रक्षा में बद्ध परिकर होजावें। और यह काम केवल हिन्दू संठगन द्वारा हो सकता है।

इसके अतिरिक्त हिन्दू संगठन का राष्ट्र निर्माण में जो सर्बतोपरि भाग है वह है "हिन्दू मुसलिम एकता की सच्ची आधार शिला का रखना"। हमारा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू मुस्लिम एकता हिन्दू संगठन द्वारा ही हो सकती है बिना हिन्दू संगठन के और किसी प्रकार भी नहीं हो सकती। इसके साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि वह एकता धर्म के नहीं अपितु संस्कृति(Culture) के आधार पर ही होसकती है। स्वामीजी आर्य संस्कृति के कट्टर पक्षपाती थे और हिन्दू संगठन के मुख्य उद्देश्यों में से वह आर्य संस्कृति को भी बतलाते थे। संस्कृति के आधार पर किस तरह दो धर्मों का व जातियों में एकता हो सकती है यदि इसका क्रियात्मक उदाहरण देखना हो तो टर्की के वर्तमान इतिहास को देखिये। टर्की में भी सब धर्मों के अनुयायियों का निवास है मगर वहाँ Culture (संस्कृति) एक ही है इसलिए कोई झगड़ा पैदा नहीं हो सकता। सारे यूरोप में ही कोई एक ही धर्मावलम्बी नहीं बसते मगर क्योंकि वहाँ संस्कृति-व्यावहारिक जीवन में एकता है इसलिए कोई झगड़ा पैदा नहीं होता।

सब देशों में धर्म तो अनेक हैं मगर सभ्यता एकही है। यह केवल भारत के ही फूटे भाग्य हैं कि यहाँ धर्मविभेद के साथ सभ्यताओं में भिन्नता विद्यमान् है। मुसलमान इस्लामकि सभ्यता को लिए बैठे हैं और हिन्दू अपनी सभ्यता का ढोल पीट रहे हैं और इस बन्दर बाँट में योरप की सभ्यता अपना रास्ता निकाले चली जारही है। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि जब तक सभ्यताओं की कशमकश विद्यमान् है तब तक एकता और शान्ति दूर की चीज़ है। शान्ति और एकता के लिए आवश्यक है कि सभ्यता-रस्मोरिवाज़ इन सब में समानता हो। यह समानता तभी हो सकती है जबकि एक सभ्यता अपने प्रभुत्व से औरों के अस्तित्व को मिटा दे। टर्की में यही हुआ और भातवर्ष में भी यही होगा। फ़र्क केवल यही है कि टर्की योरप के नज़दीक है वहाँ

योरप का खासा प्रभाव है इसीलिए टर्की में योरप की पाश्चात्य सभ्यता ने अपना एकाधिकार कायम कर लिया है और क्यों कि हिन्दुस्तान, पूर्वीय देश है और यही पूर्व की सभ्यता का जन्मस्थान है इसलिए यहाँ पूर्वीय सभ्यता अपना प्रभुत्व कायम किये बिना नहीं रह सकती। और क्योंकि एक देश में दो सभ्यताओं का अस्तित्व नहीं रह सकता इसलिए ज़बरदस्त के सामने कमज़ोर को सिर झुकाना पड़ेगा। और जिस तरह पाश्चात्य सभ्यता के सामने टर्की में सबको सिर झुकाना पड़ा है उसी तरह भारत में पूर्वीय सभ्यता के सामने सब को सिर झुकाना पड़ेगा। और हमारा दृढ़ निश्चय है कि इस प्रकार सब सभ्यता में समानता हो जायगी तो एकता स्वयं स्थापित हो जायगी और तो तभी सच्ची राष्ट्रीयता का अभ्युदय होगा। भारत एक सच्चा राष्ट्र बनेगा और स्वाधीन राष्ट्र होने का आनन्द भोग सकेगा।

हम फिर अपने कथन को दोहराते हैं कि स्वामी जी हिन्दू संगठन और शुद्धि द्वारा भारतीय राष्ट्र के निर्माण में सर्वतोपयोगी सेवा कर रहे थे। हमें हर्ष है कि अन्य राष्ट्रीय नेता भी उनके इस कार्य के महत्व को समझने लग गये हैं और अपनी अकर्मण्यता का प्रायश्चित करने को उद्यत होगये हैं। वह प्रायश्चित तभी हो सकता है जबकि वह स्वामी जी के कार्यों पर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ादें। इस प्रकार वह किसी पर एहसान नहीं करेंगे अपितु अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

*

शहीद श्रद्धानन्द

(लेखक—"सुमन")

तेरा वीरोचित बलिदान ॥
आर्येन्दु सविता-सम-शाली, गुण गण ज्ञान निधान।
कुटिल काल का क्रूर राज था, द्रोह-दैन्य का दुरित साज था॥
मृतप्राय उस आर्यदेश को, दे दी अनुपम जान।
तज यौवन-लीला उद्दाम, किया जाति हित अद्भुत काम,
दीन-हीन-दुखिया-रक्षा-रत, दिया देह धन प्रान।
उषाकाल के अरुण-पटल में, हृदय कमल के अन्तस्तल में,
होवे "सुमन" कीर्ति यह अङ्कित अद्भुत पूत महान।
तेरा वीरोचित बलिदान।

*

धर्मवीर श्रद्धेय स्वामीजी

का

सच्चा बलिदान

और

अन्तिम सन्देश

(लेखक— स्वामी चिदानन्द संन्यासी, (जरनल सेक्रेटरी, भारतीय हिन्दू शुद्धिसभा तथा सम्पादक—शुद्धि-समाचार देहली)

आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व मोहम्मदी आक्रमणकारियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। जो २ अन्याय और अत्याचार उन्होंने आर्य जाति के साथ किये हैं, उन्हें सभी इतिहास वेत्ता जानते हैं। उन अत्याचारों और अन्यायों का सान्मुख्य करने के लिये ही आर्य जाति ने, राणा प्रताप और क्षत्रपति शिवाजी से नररत्न, समर्थ गुरु रामदास और गुरु नानक से साधु, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्द से धर्म तथा राजनीति के शूरवीर उत्पन्न किये। जिन्होंने आर्यवर्त में इस्लाम के राजकीय शासन का तख़्त हिला कर डामाडोल और निर्बल कर दिया।

परन्तु हिन्दू समाज जहाँ क्षात्र शक्ति के अस्त्रों से स्वधर्म रक्षा के यत्न में लगा हुआ था, वहाँ साथही साथ जातीय वैमनस्य ने पारस्परिक शत्रुता का रूप पकड़ लिया—जो आगे आकर हमारा ही घातक बन गया और अब तक भी बना हुआ है।

यद्यपि सिक्ख गुरुओं ने आर्यजाति की रक्षा के लिये मुसल्मानफौजी मज़हब का सान्मुख्य करने के लिये क्षात्रशक्ति और तदनुसार कृपाण को हाथ में पकड़ कर अपने सुगम धर्म (सिक्ख) की स्थापना की। जो सबको मिलाता और ग्रहण करता जाता था। किन्तु वह सम्प्रदाय इस्लाम की कट्टर धर्मान्धता के दाँत खट्टे करके भी आप जाति के पारस्परिक वैमनस्य और छुआछूत के दुर्ग को भेदन न कर सका। समय ने पलटा खाया और इस्लाम की क्षात्रशक्तियाँ छिन्न भिन्न होगईं। जब तलवार की शक्ति जाती रही और बाह्य तीसरी शक्ति ने भारतवर्ष में आकर हिन्दू मुस्लिम दोनों ही जातियों को अपने हाथों में दबोच लिया। जिसका भयंकर परिणाम यह हुआ, कि इस्लाम तथा उस के साथ २ नवागत ईसाई मत ने भी आर्य जाति की इस निर्वलता; पृथकता, वैमनस्यता और मूर्खता का अनुभव कर पूरा पूरा लाभ उठाने का संकल्प किया। हर जगह और हर प्रकार से अनाथ बच्चों को, विधवाओं को, तथा हिन्दू धर्म के विशेष ज्ञान से अपरिचित आँगल प्रदेशों में रहने वाले हिंदू-स्त्री,-पुरुषों और दलित जातियों को अपने माया फरेब से निरन्तर अपने गल्ले में लाने और मिलाने का क्रम जारी रक्खा।

जिसका दुष्परिणाम यह हुआ, कि आठ सौ वर्ष के भीतर २ पौने सात करोड़ हिन्दुओं को इस्लाम में, और अनुमानतः ४६ लाख हिंदुओं को इसाई गल्ले के अन्दर समेट लिया।

आर्यजाति के इस भयंकर धर्मसंकट को देखकर एक तेजस्वी और महात्मा का आर्यजाति में प्रादुर्भाव हुआ। जिसका ध्यान सहसा इस दुर्दशा की ओर आकर्षित हुआ और उसने अपनी तपस्या, विद्वत्ता तथा तेज आर्यजाति की सेवा के लिये अर्पण कर उसे बचाने के लिये श्रुति-स्मृति से विमुख 'किं कर्तव्य विमूंढ़' जाति के लिये "शुद्धि = ब्रह्माण्ड के द्वारा आर्यजाति की रक्षा हो सकती है। ऐसा निश्चय करके उसके सामने रक्षा का उद्देश्य रख दिया। परन्तु रूढ़ियों को छुड़ाने और पार्थक्य पन की ग्रन्थियों को खोलने के लिये भीषण प्रयास और बड़े बलिदान की आवश्यकता हुआ करती है उसको भी उसने पूरा किया।

उस प्रादुर्भूत स्वामी के अनथक प्रयास से जहाँ स्वकीय समाज अप्रसन्नसा था, वहाँ विधर्मियों का समाज भी उससे कुछ कम क्षुब्ध और कुपित नहीं था, परिणाम स्वरूप महान स्वामी जी मुसलमानों इसाईयों और कुछ अदूरदर्शी अपने लोगों की आँखों में खटकते रहे, और उनका अन्तिम जीवनोत्सर्ग भी बुराईयों के प्रतिकार में हुआ। -

आर्य्यजाति के रक्षक आर्य्यसमाज के दूसरे मनस्वी और महान स्तम्भ श्री पण्डित लेखराम जी ने अपने गुरु के आदेश-आर्यधर्म प्रचार के कारण ही एक मुसलमान के छुरे से घायल होकर अपने जीवन का पवित्र बलिदान किया, यद्यपि अभी तक आर्य जाति ने पूर्ण रूपेण "शुद्धि" को अपनाया नहीं था, और न आर्य्यजाति की रक्षा के लिये इस ब्रह्मास्त्र की शक्ति को ही अनुभव किया था, कि सहसा मालाबार और मुलतान की दुर्घटनाओं से व्यथित और घायल हिंदुओं के प्राणों में नवजीवन सञ्चार के लिए आवश्यक घटना हुई। संयुक्त प्रदेश मालाबार पञ्जाब आदि प्रान्तों के गांवोंके हज़ारों मलकाने अर्धमर्य नौमुसलिम राजपूत जो धार्मिक आचार विचार में प्रायः हिन्दू ही थे, और जिन्होंने अनेक बार आर्य्य जाति में सम्मलित होने के लिये राजपूत महासभा से प्रार्थना की थी। अन्ततः उन्हें राजपूत महासभा ने शुद्धि करने का विचार निश्चय किया और इसको पूरा करने के लिये भारतीय हिन्दू शुद्धिसभा की स्थापना हुई, जिसका सभापतित्व स्वर्गीय श्री पूज्य श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज से ग्रहण करने को निवेदन किया गया और स्वामी जी ने उसे स्वीकार कर वीरता; धीरता के साथ कार्य आरम्भ कर दिया, बस वहीं से शुद्धि का व्यापक झण्डा खड़ा होता है, जिनसे मुल्ला मौलवियों के कान खड़े हुए और उन्होंने घबड़ाकर गुलशने मोहम्मद उजड़ने लगा, लुटने लगा, इस्लाम तबाह होने लगा, इत्यादि २ शोरोगुल मचाना शुरू कर दिया।

हज़ारों बरस से कई करोड़ हिन्दुओं को लोभ, मोह, छल, कपट, नीति कुनीति और दुर्नीति से मुसलमान बनाते हुए इन मुल्ला-मौलवियों को ज़रा भी हिचक न थी, उन्हीं

धर्मान्ध मुल्लाओं का हिन्दुओं को अपने ही अंग प्रतिअंग मलकानादि नौमुस्लिम नाम धारियों को अपने में मिलाते हुए देखकर मानों उनका सर्वस्व लुट गया। हाहाकार मचगया, कोहराम पड़गया और इस्लामी संसार का स्तम्भ डगमगाने लगा, इसे कहते हैं धर्मान्धता, असहिष्णुता अन्याय परिता, और कट्टरता, आश्चर्य है कि इस प्रकार बीसवीं शताब्दि की इस सभ्यता सहिष्णुता के प्रसार युग में एक मज़हब के भीतर से ऐसे २ कट्टर और धर्मान्ध लोग उत्पन्न हो सकते हैं।

शुद्धि से ही श्री श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी मुसलमानों की द्वेश को अग्नि भड़कती है जिसने अन्त में अपना वह पैशाचिक रूप प्रगट करही दिया, भारत के उद्धार और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिये सिर को हथेली पर रखने वाले, दिल्ली की सब से बड़ी उस जामामसजिद ।के मँवर पर जहाँ कभी कोई हिंदू नहीं बैठा था, वहीं से बैठकर हिंदू मुसलिम दोनों ही को उपदेश करने वाले स्वामी जी इसलिये मुल्ला मौलवियों और पढ़ेलिखे तथा अनपढ़ मुसलमानों की आँखों में चुभने लगे और उनके शत्रु होगये, क्यों कि स्वामी ने शुद्धि का झण्डा ऊँचा उठाकर आर्यजाति को मरने से बचाने का संकल्प किया था, किन्तु अन्य मुसलमान इसाईयों की भाँति आर्य्येतर धर्मान्याईयों को अपने में मिलाने का नहीं किन्तु अपने ही चिरकालीन बिछुड़े हुये भाइयों को वापस लेने का कार्य आरम्भ किया था अस्तु—

स्वामी जी पर मुसलमानी अखबारों ने, मुसलमान मुल्ला मौलवियों ने, पढ़े लिखे मज़हबी मुसलमानों ने गवर्नमेन्ट का पक्ष लेने वाले सर रहीम से लेकर राष्ट्रीयता का दम भरने वाले मौ० मोहम्मद अली, मौ० शौकत अली, किचलू तथा इस्लामी मज़हब के नाम पर आग भड़का कर पैसा कमाने वाले हसन निजामी आदि अनेक मुस्लिम नेताओं ने लेखों और अपने भाषणों द्वारा निरन्तर विषोद्गार और प्रहार उनके अन्तिम समय तक प्रचलित रक्खा।

धर्मवीर स्वामीजी ने १३ फरवरी १९२३ ई० को शुद्धि का झण्डा उठाकर सारे आर्य-जगत में हलचल और नई चेतना पैदा कर दी। परिणाम स्वरूप लाखों धर्म विचलित हिन्दू फिर से आर्यजाति में सम्मलित हुये, करोड़ों हिन्दुओं के पैर फिसलते २ बच गये और सोई हुई आर्य्यजाति जग पड़ी और एकबार उठकर बैठ गई। तीन वर्ष दस मास और आठ दिन के भीतर इस तपस्वी आर्य पुङ्गव सन्यासी आर्य कुल शिरोमणि ने दिखला दिया कि सोये हुये सिंह जागते हैं तो किस प्रकार शृंगालों के झुण्ड में अवलंभ अपना प्रभुत्व स्थापित कर बैठते हैं ऐसा विचित्र कर्मवीर निर्भय महापुरुष भला कब नीच शत्रुओं की आखों में न खटकता शुद्धि का कार्य आरम्भ करते २ भी आत्त ई हत्यारों की छुरियों का संकेत पहुँचा, धमकियों के पत्र पर पत्र आये, परन्तु अमर आत्मा आर्य सभ्यता के आदर्शवीर आत्मा क्या कुंठित छुरियों और पत्थरों से भयभीय होने वाला था, जिस वीर योधा ने गोरखों

की अनेक संगीनों के सामने अपनी छाती खोल दी थी, क्या वह नीच हत्यारे छिप २ कर धोके से घात करने वाले मज़हबी कायरों छुरियों से भय खा सकता था ? कदापि नहीं।

ऐ हिन्दुओ ! मत समझो कि स्वामी जी मर मर गये। उनकी आत्मा हमारे में शामिल है। और उनके अग्नि द्वारा भस्म किये त्वचा, अस्ति और मज्जा की राख से जमना के तीर दिल्ली नगर में विशाल वृक्ष उत्पन्न होगा जिसकी जड़ें पाताल में पहुँच कर नये २ वीर उत्पन्न करेंगीं। जमना का पवित्र शुद्धि के उस वृक्ष को सींच कर दृढ़ और स्थिर बनायेगा और उस शुद्धि के वृक्ष की शाखायें भारतवर्ष से बाहर समस्त देशों में फैल कर आदर्श की स्थापना करेगा और विक्षुब्ध, अज्ञानान्धकार, आत्माओं की आर्य ज्योति से जगमगायेगा।

आर्य्य वीरों ! उठो और इस सन्देश को सुनो और अपने कर्तव्य को समझ कर कार्य क्षेत्र में कूद पड़ो। ज्योति के पाठको आज का मेरा यही शुभ सन्देश है।

इस कमी को कौन पूरा करेगा ?

(ले०— पं० धर्मपाल सिद्धान्तालङ्कार)

ज्योति की 'सम्पादिका' जी ने जब मुझसे स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंद 'बलिदान-अङ्क' के लिये लेख देने का अनुरोध किया तब मैंने सोचा कि स्वामीजी के विषय में क्या लिखूं ? उनका जीवन एक ऐसा सार्वजनिक धन था जिसका सभी उपभोग करते थे और जिसका प्रत्येक अंश देश के सामने खुला था। सोचा —दिनचर्य्या लिखदूँ। इससे ज्यादह उपयोगी और कुछ नहीं।

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी का जीवन न केवल आर्यसमाज के इतिहास का एक ऐसा विस्तृत अध्याय है जिसको अलग निकाल कर रख देनेसे आर्यसमाज का इतिहास अधूरा रह जाता है अपितु हिन्दूजाति के अभ्युत्थान का एक आवश्यक परिच्छेद है। जिस अन्वरत परिश्रम, एकग्रता, सच्चाई और त्याग से स्वामीजी ने ४० वर्ष तक लगातार समाज सेवा, धर्म सेवा और देश सेवा की है, उसका उदाहरण ढूढे न मिलेगा। स्वामीजी का जीवन आदर्श वैदिक-जीवन था किसी भी क्षेत्र में जाइये—स्वामीजी की छाप अलग ही लगी मिलेगी। समाज सुधार के क्षेत्र में, गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था को क्रियात्मक रूपमें लाने वालोंमें सबसे पहिला नाम महात्मा मुन्शीराम जी (स्वा० श्रद्धानन्द) का है। राष्ट्रभाषा के लिये सद्धर्मप्रचारक द्वारा तथा राष्ट्रीय शिक्षणालयों द्वारा किया हुआ कार्य बहुत ऊँचा स्थान रखता है। दलितोद्धार का सबसे अधिक और ठोस कार्य करने वालोंमें स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सबसे आगे आता है—और वास्तव में स्वामीजी ने ही राष्ट्र का का ध्यान दलितोद्धार की ओर खेंचा।

विधवा विवाह तथा स्त्रियों के दुःख निवारणार्थ स्वामीजी का प्रयत्न प्रसिद्ध ही है। शिक्षा-क्षेत्रमें विश्वविद्यालय गुरुकुल काँगड़ी उनका प्रसिद्ध स्मारक है; कन्या गुरुकुल देहली तथा कन्या महाविद्यालय जालन्धर स्वामीजी के विचारों का ही परिणाम है। उनकी विशुद्ध देशभक्ति देशसेवा के अन्दर अपना अलग स्थान रखती है। भारतीय हिंदू शुद्धिसभा द्वारा जो कार्य स्वामीजी ने हिंदू-जाति के लिये किया है वह विख्यात ही है—आपका ४० वर्ष का सार्वजनिकजीवन बड़ा शानदार है—कुर्बानी, त्यागकी एक लड़ी है।

मुझे स्वामीजी के चरणों में साधारण तौर से २२ वर्ष रहने का और विशेष रूपसे लगातार ५ वर्षों तक चौबीसों घण्टे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है इसलिये मैं निस्संकोच होकर कह सकता हूं कि उनके सारे कार्यों और जीवन का रहस्य—त्याग, सदाचार, अनथक कार्य करने की शक्ति सत्य और विश्वप्रेम था। उनका त्याग शानदार वकालत की एक बहुत बड़ी आमदनीके त्याग से आरम्भ होकर रुपया, जायदाद, प्रेस, कोठी और पुत्रादि परिवार के सार्वजनिक कार्यार्थ समर्पण करने की पूर्णाहुति के साथ समाप्त हुआ। उनके कार्यक्रम से सहमत न होने वाले विरोधियों को भी उनके सदाचार पर उंगली उठाने का कभी साहस नहीं हुआ। ७१ वर्ष की इस वृद्धावस्था में उनके कार्य करने की शक्ति को देख अच्छे २ नौजवान कार्यकर्त्ता लज्जित होजाते और सर्वसाधारण आश्चर्य चकित होते थे। प्रातः ३ बजे नियमपूर्वक उठकर शौचादि से निवृत्त हो २५ मिनट दण्डबैठकादि व्यायाम अवश्य करते। कुछ देर ठहर स्नानकर सन्ध्या हवन से निवृत्त हो ४, ४½ बजे तक अपने कार्य करने की मेज़ पर आ बैठते और १० बजे तक बराबर कार्य करते रहते। इन ५-६ घण्टों में प्रायः बाही का कार्य—यथा लेख, संदेश आदि समाप्त कर देते। ½ घण्टा भोजन में व्यय होता—भोजन बिल्कुल सात्विक, सिवाय एक खुश्क भाजी और एक रसेदार तरकारी के अन्य कुछ नहीं। मिर्च मसाला भोजन में सर्वथा न होता था। प्रायः अभ्यागत सज्जनों को जीभ का स्वाद पूरा करने के लिए बाज़ार की शरण लेनी पड़ती। ११ बजे मेज़पर फिर कार्य के लिये आजाते थे और सायं ६ बजेतक बराबर प्रातः तथा सायं दोनों समय की डाक तथा बाह्य शुद्धि दलितोद्धार सम्बन्धी कार्य करते। ६ से ७½ तक नित्यकर्म तथा भोजनादि से निवृत्त हो फिर स्थानीय संस्थाओं के कार्यों को करते अथवा लेखादि का कार्य करते। इस प्रकार प्रातः ४ से रात्रि के १० बजेतक बिना विश्राम लिये कार्य करने के तथा नियमित जीवन के कारण ही वे धर्म, समाज, देश की इतनी सेवा कर सके हैं और यही कारण था इस वृद्धावस्था में भी उनका शरीर, स्वास्थ्य, तथा कार्यक्षमता इतनी असाधारण थी।

उनके संसर्ग में आने वाले व्यक्तियों को यदि कोई चीज़ स्पष्ट रूपसे सबसे अधिक प्रभावित करती थी तो वह उनका समुद्र समान गम्भीर, अथाह-प्रेमपूर्ण तथा सहज ही में आकर्षक और क्षमाशील हृदय। आज हज़ारों विद्यार्थी तथा विधवायें स्वामीजी

की अनुपस्थिति में अपने आप को अनाथ समझ रही है।

श्री स्वामीजी की कमी हिन्दूसमाज में एक ऐसी कमी है जिसका पूरा होना मुश्किल मालूम होता है। ऐसा ठोस कार्य करने वाला एकनिष्ट, कार्यकुशल नेता अब कहाँ उत्पन्न होगा?

आवश्यकता है ऐसे त्यागी कार्यकर्ताओं की जो स्वामीजी के कार्य को चलाने के लिये राष्ट्र की प्रत्येक आवश्यकता जो पूरा करने के लिये हिम्मत से खड़े होजाँय—समझलें कि देश, जाति तथा धर्म की सेवा करते २ बलिदान होना है। गोली और कटार का निशाना बनना होगा—तभी आर्यसंस्कृति की रक्षा होसकेगी।

*

भक्त भावना

श्रीमती शान्तिदेवी (असग़री बेगम)

पायेगा आह क्यों कर ये दिल करार अपना, तेरी जुदाई से है सीना फिगार अपना।
खूने जिगर निकल कर आँखों से वह रहा है, फिर भी नहीं निकलता दिल का गुबार अपना॥
ज़ालिम ने छेद डाला गोली से पाक सीना, करता है गाज़ियों में फिर ओ शुमार अपना॥
पर हम बुराई के भी बदले भला करेंगे, नफ़रत करो मगर हम देंगे पियार अपना॥
स्वामी के हैं दुलारे भाई दलित हमारे, कहते हैं कौन हैं अब उ ग़म गुसार अपना॥
अब तो उन्हें उठा कर अपने गले लगालो, देखा नहीं है जाता अब इन्तिशार अपना॥
आयेगा एक दिन वोह शुद्धि की धूम होगी, उस दिन को मुन्तज़िर है दिल वे करार अपना॥
वेदों का जाके डंका संसार में बजा दो, पैग़ाम दे रहा है वो बार बार अपना॥
दरियाये ग़म में ग़ोते खाने पड़े हैं हम को, शुद्धि करेगी लेकिन वेग ये पार अपना॥
“ज्योति” वे धर्म की तू परवाना नार होकर, इस पर ही “शान्ति” कर तनमन निसार अपना॥

*

आर्य जाति में वीरपूजा

(ले० — श्री हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार इन्द्रप्रस्थ)

वीर पूजा यह सब जातियों में उपलब्ध होती है। प्रत्येक जाति अपने २ विगत वीरों का गुण गान किया करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विगत वीर पितरों का स्मरण करती है; तदनुसार प्रत्येक जाति अपने जातीय वीरों का, वस्तुतः यह मानवीय स्वभाव का एक अंश बन गई है। किसी भी विद्वान् व्याख्याता व सुधारक के लिये यह सम्भव नहीं कि वह वीर पूजा को किसी समाज से पृथक् कर दे। यदि कल्पना के लिये ऐसा मान लिया जाय कि किसी जाति में किन्हीं कारणों से वीर पूजा का समूलोन्मूलन कर दिया गया है। तो आप यह भी निश्चय रखिये तो उस जाति का समुच्छेद दूर नहीं।

"इति+ह+आस" प्राचीन समय में यह था, ऐसा था, हमारे में एक बड़ा वीर था जिसने कि धर्म के लिये, स्वातन्त्र्य के लिये, व किसी अन्य उत्तम कर्म के लिये अपने प्राणों का बलिदान किया था" यह कहना प्रत्येक व्यक्ति तथा जाति के लिये स्वभाविक है। अवसर २ पर (Tonic Dose) उत्साह वर्धक औषध-माला का काम करता है। इसको पीकर वह प्रगुणित गति के द्वारा प्रगति (Progress) करती है। तथा इस के अभाव में उसकी गति शान्त हो कर वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

* * *

वीर पूजा पर सांख्य योग की दृष्टि से विचार

एवं वीर पूजा स्वाभाविक है। परन्तु यही वीर पूजा धीरे२ मूर्तिपूजा के रूप में परिवर्तित हो जाया करती है। आज हम सब आर्य अपने आचार्य की प्रतिमा को अपने मन्दिरों (अगारों) में विलम्बित करते हुए उपरोक्त कथन की सत्यता को दर्शा रहे हैं। श्रद्धा के आवेश में सम्भव है कि हमारे कतिपय श्रद्धालु भाई मालाओं से भी उस के कण्ठ सुशोभित कर देते हों। और यह तो निश्चित है कि यदि कोई विभिन्न धर्मी अथवा सधर्मी भी उस कर्गलाङ्कित प्रतिमा का किसी रूप में निरादर करे, तो हम मरने मारने के लिये भी सन्नद्ध हो जायेगें। (इसी प्रकार अन्य जातियों से भी हुवा करता है) 'क्या यह मूर्ति-पूजा नहीं है ?' 'क्या सुधारक लोग इसी को दूर करने के लिये नितान्त-प्रयत्न नहीं किया करते ?' 'क्या आज हमारा आर्चाय हमारी इस मूर्ति पूजा से अप्रसन्न न होता होगा ?; ऐसे प्रश्न हैं। जिन का कि न चाहते हुए भी हमें 'हाँ' में उत्तर देना ही पड़ता है। सो इस प्रकार विचार करके तो यही आया कि मूर्ति पूजा ही नहीं अपितु उसकी जननी 'विगत वीर पूजा' भी हमें करनी न चाहिये।

परन्तु यह हम पूर्व ही देख चुके हैं। कि वीर पूजा प्रत्येक जाति के लिये स्वाभाविक

है, यह उस से दूर नहीं की जासक्ती। वस्तुतः वीर पूजा के अन्दर स्वतः दोष भी नहीं। यह दूषित इस लिये होती है कि इस से उत्पन्न हुई २ मूर्ति पूजा दूषित है। जिस प्रकार एक उत्तम फल सड़ कर रद्दी हो जाता है, उसी प्रकार वीर पूजा का विकृत-रूप मूर्ति पूजा है। सो हमें चाहिये कि हम वीर पूजा को करें। परन्तु साथ ही पूर्ण प्रयत्न से इसे मूर्ति पूजा में (Degraded) पतित न होने दें। वीर पूजा एक शुद्ध रत्न है। यह प्रत्येक जाति को अन्धकार के समय प्रकाश देता है, और वह जाति अपने अन्धकार मयी तमिस्रा में पुनः इस ज्योति से अग्रसर होती है। इस शुद्ध रत्न के इर्द गर्दा के जम जाने से वह ज्योति नहीं निकलती जो कि पहले एक जातिय नौका के लिये अन्धकार मय समुद्र में प्रकाश स्तम्भ का काम करती थी। वस्तुतः यह अब वीर पूजा का देदीप्यमान रत्न नहीं रहा, यह मूर्ति पूजा के पत्थर के रूप में परिवर्तित हो चुका है।

यह मलावृत रत्न प्रकाश का काम नहीं देता। थोड़ी बहुत मैल को ही फैलाता है। इस मैल के कारण दुर्गुण रूपी मच्छरों की उत्पत्ति होती है। जिन से विद्ध होने पर वह जाति मलेरिया से बीमार हो जाती है। निर्वल होती जाती है अन्ततः उस की मृत्यु हो जाती है। सो हमें चाहिये कि इस वीर पूजा रूपी रत्न को मलावृत न होंने दें। आइये, इस बात को ध्यान में रखते हुए हम वीर पूजा को प्रारम्भ करें।

* * *

एक वीर की विशेषता

प्रत्येक वीर का यह विशेष गुण (Characteristic) होता है कि उस के अन्दर त्याग भाव होता है। वह स्वार्थ त्याग कर तन+मन+धन से परोपकार करता है स्वार्थ का अंश वहाँ उपलभ्य नहीं, त्याग की वह मूर्ति होता है। वस्तुतः उसी त्याग के कारण हम उस का नाम स्मरण करते हैं।

उदाहरणार्थ—आर्य जाति में प्राचीन काल में 'श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि अनेक वीर हो चुके हैं। त्याग इन सब वीरों का विशेष गुण था। यदि इन्होंने सांसारिक सुख भोगो का त्याग न किया होता तो आज हम इनका नाम स्मरण न करते होते। इनके नाम हमारे अन्दर एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति को उत्पन्न न करते।

अपने नवीन वीरों को लीजिये 'श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज हमारे आदर्श (Hero) हैं—उन्होने त्याग किया। श्री लेखराम जी ने भी त्याग किया। त्याग मूर्ति श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज में भी यह गुण अद्भुत रूप में मौजूद था। तीनों वीर हमें त्याग का पाठ सिखाते हैं। वस्तुतः प्रत्येक वीर यही पाठ सिखाया करता है। इस से भिन्न कोई दूसरा पाठ वे हमें पढ़ाते नहीं।

यही त्याग हमारी उन्नति का मुख्य साधन है। यदि हमारे अन्दर त्याग हो तो हम उन्नत होते जायेंगे। "यन् अध्वानमपवृक्ते चरित्रैः" एक पथिक अपने पुराने स्थान के मोह को त्याग कर ही कदमों को भरता

हुआ अगले मार्ग पर आक्रमण करता है। यदि वो पिछले स्थान के मोह को न छोड़ कर वहीं खड़ा रहे तो वह अग्रसर न हो सकेगा। इसी प्रकार हम त्याग करेंगें तो उन्नत हो सकेगें। अन्यथा नहीं। 'त्याग करो त्याग करो !! त्याग करो !!!' यही उपदेश है जिसे कि एक वीर अपनी क्रिया द्वारा अथवा क्रिया के साथ शब्दों द्वारा भी दिया करता है। न आज तक किसी वीर ने कोई और पाठ पढ़ाया, और नहीं पढ़ायेगा। सो प्रत्येक वीर पूजा के दिन हमने जो निश्चय करना है जो व्रत धारण करना है, वो 'त्याग' का ही है।

* * *

त्याग का स्वरूप

त्याग उन्नति के लिये होता है। सो यह स्पष्ट है। कि हमने हीन अवस्था को त्यागना है। हीन अवस्था को त्याग कर उन्नत अवस्था की ओर जाना है। दोषों को छोड़ कर गुणों को लेना है। वस्तुतः त्याग हीन अवस्था का ही हुआ करता है। उन्नत अवस्था से नीची अवस्था में आने के द्योतन के लिये 'पतन' शब्द प्रयुक्त होता है। आइये त्याग के स्वरूप को समझने के लिये हम एक दो उदाहरण देखें। प्रथम उदाहरण पारमार्थिक होगा। द्वितीय व्यावहारिक।

* * *

त्याग का प्रथम उदाहरण

ब्रह्माण्ड में तीन पदार्थ हैं। 'परमेश्वर-जीव-प्रकृति। हम जीवों ने प्रकृति व परमेश्वर से मेल करना है। 'मेल' आवश्यक है- चूंकि आनन्द की उत्पत्ति संयोग से ही होती है।

परमेश्वर उच्च स्थान में है। प्रकृति नीची level (पृष्ठ) पर है। हमारा प्रेम स्वभावतः प्रकृति से होता है। चूंकि प्रेम जल की तरह स्वभावतः निम्न गतिवाला होता है। (live like water, naturally flows down)

हमने इस प्रकृति के प्रेम को त्याग कर परमेश्वर से प्रेम करना है। तभी हमें परम आनन्द की प्राप्ति होगी। प्रकृति के मोह को त्यागेगें नहीं तो प्रभु से मेल कैसे होगा ?

त्याग की आवश्यकता है। प्रकृति-प्रेम को परे फेंककर इन्द्रिय-संयम-रूप जल पम्प के द्वारा निज-प्रेमा-मृत के प्रवाह को ऊर्ध्व गति कीजिये। यही त्याग का पारमार्थिक उदाहरण है।

* * *

त्याग का उदाहरण

यह व्यावहारिक है। वर्तमान में हम भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये युद्ध कर रहे हैं। स्वतन्त्रता के इस युद्ध में विजय श्री प्राप्त करने के लिये प्रत्येक भारतीय को त्याग करना है। त्याग के बिना विजय सम्भव नहीं। आपको स्मरण होगा रूस-जापान युद्ध में प्रत्येक जापानी ने त्याग किया था। वो स्त्रियां जिनके कि पास कुछ और देने को न था उन्होंने अपने बालों को काट कर एक रस्सा तैयार किया था। यह रस्सा (Navy- Department) (नौ विभाग) को जहाजी रस्से के रूप में प्रयुक्त

करने को दिया गया था । परिणामतः जापान की विजय हुई आज हमें भी विजय प्राप्ति के लिये त्याग अवश्य करना होगा ।

उस त्याग के स्वरूप के निश्चय के लिये हमें अपने गति देने वाले नेताओं का अनुगामी होना चाहिये । उनके आदेशानुसार खद्दर पहिनने का व्रत धारण करना चाहिये इस व्रत के धारण करने से हमें थोड़े बहुत कष्ट अनुभव होगें । 'कपड़ों का उतना मुलायम न होना 'उसका भारी होना' 'उसके धोने निचोड़ने में दिक्कत होनी' । इत्यादि ऐसी छोटी २ वा बड़ी २ बाधायें हैं, जो हमें खटकेंगी । परन्तु हमारे वीर हमें वीरता का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं 'इन बाधाओं से घबराओ मत । सहर्ष इनको स्वीकार करो तभी स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकोगे । कायरों के भालपट्टपर स्वतन्त्रता का उल्लेख नहीं हुआ' । यहाँ एक छोटा सा प्रश्न हमारे दिलों में उत्पन्न होता है वह यह कि 'ये बातें ठीक हैं । परन्तु ।) गज के बदले ।=) गज का कपड़ा हम क्यों खरीदें ? हमारे वीर नायक इस का स्पष्ट उत्तर देते हैं । 'दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वम्' इन वसिष्ट के शब्दों को हमारे सामने रखते हुए वे कहते हैं । कि दूर दृष्टि वणों संकुचित दृष्टि वाले मत होवो । तुम्हारे =) अधिक खर्च नहीं हो रहे, अपितु इन दो आने के =) अधिक प्रतीत होने वाले व्यय के द्वारा तुम प्रति वर्ष २) प्रति व्यक्ति अपनी आय बढ़ारहे हो । तुम्हारे देश की समृद्धि में ६० करोड रुपये (६००००००००) प्रति बर्ष की वृद्धि हो रहीं है । वस्तुतः जिसे तुम लाभ समझ रहे हो वह बड़ी हानि है । तुम्हें प्रतीत होने वाली हानि वस्तुतः तुम्हारा लाभ है । हमारा देश अधिकाधिक समृद्ध होता जायेगा । उस समृद्धि के कारण हमारी विजय अवश्य होगी ।

वैदिक धर्म तथा स्वातन्त्र्य

स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर ही हम धर्म का आचरण कर सकेंगे । पराधीन अवस्थामें धर्म नहीं हुआ करता । अध्यात्म में आप देखिये जब तक आत्मा मन इत्यादि के आधीन रहता है, अर्थात् परतन्त्र रहता है तब तक अधर्म में फँसा रहता है । स्वतन्त्र होनेपर ही धर्म में इसकी प्रगति होती है । उसी प्रकार एक जाति भी पराधीन अवस्था में धर्म पर आरूढ़ नहीं हो सकती । वस्तुतः पराजित जातिका कोई धर्म नहीं हुवा करता । यदि हम धर्मों को अपने आचरण में लाना चाहते हैं । तथा उस वैदिक धर्म का क्रिया तथा शब्दों द्वारा प्रसार करना चाहते हैं तो हमें स्वातन्त्र प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये 'अदीनाः स्याम शरद. शतम्' इसका हम प्रति दिन पाठ करते हैं । इसका अनवरत पाठ करने का कोई लाभ नहीं । हमें चाहिए कि हम 'अदीम' बनने के लिये आकाश पाताल एक करदें । जो भी आपत्तियाँ आयें उनको सहें । अपने वीरों का आदर्श अपने सामने रखते हुए हिम्मत न हारें । आगे बढ़ते जायँ पीछे कदम न रक्खें । 'अप्रतीतो जयति' इस वचन के अनुसार हमारा विजय अवश्य होगा । [अ + (Not) प्रति (back) + इतः (Gone) = पराङ् मुख न होने बाला]

सो हमें चाहिये कि इस स्वातन्त्र्य के युद्ध से पराङ् मुख है।

स्वातन्त्र्य प्राप्ति का उपाय

वेदमन्त्र कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात का ध्यान रक्खे कि 'अहमिन्द्रः' मैं अश्वर्यशाली हूँ 'धनमि तुन पराजिग्ये' मैं अपने ऐश्वर्य के कारण पराजित न होऊँगा। यहाँ वेदमन्त्र में आपाततः (Indisectly) इस बात का संकेत हुआ है कि यदि तुम पराजित होना नहीं चाहते तो तुम अपने ऐश्वर्य को बढ़ाओ। विदेशी वस्त्रों को पहिन कर दिन ब दिन अपने देश को दरिद्र न करो, इसके ऐश्वर्य की समाप्ति न करते जाओ अपितु 'वर्ष निर्णिक (स्वदेशी वस्त्र धारण करने वाले) बनते हुए, अपने देश का ऐश्वर्य बढ़ाओ, अपने को पराजित न होने दो।

आओ! हम सब एकत्रित होकर 'शुद्ध स्वदेशी वस्त्र धारण करने का व्रत लें।

अन्त में परमेश्वर से प्रार्थना है कि—

(१)

"सदोन्नयन्त्विमे वीरास्त्यागशीलान् विधायनः।
अन्धकारा वृत्तेकाले, दिव्यां दधतु नो द्युतिम्" ॥

(२)

कुर्वीमहि वयं त्यागं, सहे महि तथा पदः।
दधीमही सदा धर्मं, स्वातन्त्र्यञ्च लभेमहि ॥

* * *

राष्ट्र भाषा हिन्दी

(युक्तप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री आचार्य रामदेव जी का प्रारम्भिक भाषण)

उपस्थित प्रतिनिधि भाइयों!

आज इस तपोमय भूमि में हम आप का किस भाँति स्वागत करें। समझ नहीं आता कि सुख दुःख की मिली घड़ी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की खुशियाँ मनाई जाय या उस पूज्य श्रद्धेय साहित्यसेवी दिवंगत महान् पुरुष की अमर आत्मा के प्रति योग्य कर्तव्य की याद दिलाई जाय। जिन महान् आत्मा के कर कमलों से यह वाटिका लगाई गई थी, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन इसके लिए दे दिया था, जिसके प्रभाव से ही यह वाटिका अब तक इतनी फूली-फली है आज वह हमारे से छीन लिया गया है। जिस महान् पुरुष की दिव्य देह से सदा यह मञ्च विभूषित हुआ करता था आज वह हमारे बीच नज़र नहीं आता। हम तो उसकी प्रतिक्षा में थे कि वह दिन (गुरुकुल–जयन्ती दिवस) आयगा जब हमारे पूज्य कुलपति की लगाई हुई वाटिका की सफलता को देखकर आर्यजाति अपनी श्रद्धा की भेंट उस महान् व्यक्ति के चरणों में रक्खेगी और उस से दिव्य सन्देश लेकर जायगी। परन्तु कौन जानता था 'मोरा मन कछु और है विधिना के कछु और।' कुलभूमि का ज़र्रा २ उसकी पुण्य स्मृति की यादगार है। दिल नहीं चाहता कि अब भी उनके देहावसान पर विश्वास करूँ परन्तु क्या किया जाय यहाँ तो साक्षियाँ इतनी ज़बरदस्त

हैं कि विश्वास करना ही पड़ता है। इस से अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या होगी कि यह 'कुल' अपने हर्षोत्सव के समय भी अपने पूज्य पिता को अपने बीच नहीं रख सका।

अभी उस महान् पुरुष के वियोग के दुःख से विह्वल हुए हम 'किंकर्तव्य विमूढ़' थे कि सहसा निष्ठुर विधाता ने एक और कठोर वज्रपात किया। दानवीर निस्पृह श्री मुंशी अमनसिंह जी के देहावसान का दुःखदायी समाचार मिला। आपने अपनी सकल संपत्ति गुरुकुल तथा आर्यसमाज के लिये न्यौछावर करदी थी। आपकी प्रदान की गई ही पुण्य-भूमि पर हम सब एकत्र हुए हैं। इन से पूर्व हुई २ सेठ रघुमल जी की मृत्यु की याद करके सहसा यही स्मरण हो आता है 'छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति'। इन प्रतिकूल अवस्थाओं के होते हुए भी सबसे पूर्व मैं दूर दूर स्थानों से आये हुए आर्यसज्जनों का हार्दिक स्वागत करता हूँ जिन्होंने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर इस सम्मेलन की शोभा को बढ़ाया है और सम्मेलन के अधिकारीवर्ग विशेषतः धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर पच्चीसी के शुभावसर पर हमें अपनी प्रिय मातृभाषा आर्यभाषा के लिये श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने का उत्तम अवसर प्रदान किया है।

सभ्यगण! आज जिस पुनीत स्थान पर हम सब एकत्र हुए हैं, उस का भारतवर्ष के इतिहास में तथा आर्यसभ्यता को विकसित करने में एक उच्च एवं महत्त्व पूर्ण स्थान है। यह पञ्चपुरी मातृभूमि की प्राचीन स्मृतियों में से एक वैभवयुक्त प्रतिष्ठाप्राप्त पुण्यभूमि है। भारतवर्षीय आर्यसंस्कृति के साथ इस का अमिट तथा अभिन्न सम्बन्ध है। भारतीय सभ्यता का इतिहास इस पुरी के बिना अपूर्ण ही है। यह वही पुण्यभूमि है जहाँ पर ऋषि मुनिगण गङ्गा के तटपर अविक्षुब्ध समाधि में लीन हुए २ सच्चिदानन्दस्वरूप परमब्रह्म का साक्षात्कार किया करते थे। यह वही पुण्यभूमि है जिसके चरणों में निरन्तर बहती हुई भागीरथी के शीतल जल ने सहस्रों सन्तप्त आत्माओं को शान्त किया है। राजा भर्तृहरि भी संसार के विक्षुब्ध वातावरण से परे इसी शान्ति के साम्राज्य में, संसार से विरक्त हुए २ सच्चे आनन्द का अनुभव करते हैं—

गङ्गातीरे हिमगिरि शिला बद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसन विधिना योगनिद्रांगतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैः यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमंगे मदीये॥

(वैराग्य शतकम्)

यह वही पुण्यभूमि है जहाँ अज्ञात समय से आर्यजाति ने नाना प्रकार के कष्ट सहन करके अपनी तीर्थयात्रा को सफल समझा और अन्य धर्मों की बढ़ती हुई अभिवृद्धि ने हिन्दूधर्म की शरण ली है। इस महत्वपूर्ण स्थान का प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्सांग ने भी भली भाँति वर्णन किया है। कविकुल शिरोमणि कालिदास भी कनखल का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैवराजावतीर्णां
जन्होः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान पंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभृकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दु लग्नोर्मिहस्ता॥

इन्हीं बन लताओं, कुञ्जों तथा सघन बनों की सुरम्य शोभा ने कवि कालिदास की प्रसुप्त अनुपम काव्य प्रतिभा को जागृत कर आर्यावर्त का नाम उज्ज्वल रखा है। कुमारसम्भव के निम्न श्लोक भी इसी पुण्यभूमि का वर्णन करते हुए प्रतीत होते हैं—

भागीरथी निर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्न शिखण्डिवहः ॥
स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षित देव दारुः ।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धं किञ्चित्क्वणत्किन्नरमध्युवास॥
मृगाः प्रियाकाद्रुममञ्जरीणां रजः कणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः ।
मदोद्धुता प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थली मर्मरपत्रमोक्षाः ॥
बालेन्दुवक्राण्यविकाशभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि
सद्यो बसन्तेन समागतानां नखक्षतीनीय वनस्थलीनाम् ॥

इसी भूमि की पुण्य रज में कवि कालिदास ने अपना शैशव बिताया है। इन हिमाच्छादित पर्वत शिखरों तथा भागीरथी के शीतल प्रवाह के अपूर्व संयोग को देखकर सहसा वेद भगवान की ऋचा स्मरण हो आता है—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जहाँ निरन्तर कलकल करती हुई जान्हवी अविरल राग में प्रातःकालीन शीतल मन्द सुगन्ध समीर के झोंकों से डोलती हुई पुष्पित शाखाओं पर चहचहाते हुए पक्षीगण ताल देते हुए परिश्रान्त पथिक के हृदय में नवजीवन का सञ्चार कर रहे हैं; हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ गौरव के साथ सिर ऊँचा किये हुए बालरवि की सुनहरी किरणों में मन्द-मन्द मुस्कान कर रही हैं और सघन वन निस्तब्ध नीरव के साम्राज्य में जङ्गली जानवरों की आकस्मिक चीत्कारों व दहाड़ों से गूंज उठते हैं; उसी पुण्य भूमि के किनारे, हिमाचल की आँचल में, आरण्यक पशुओं की समरस्थली में आज से २५ वर्ष पूर्व श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस कुल की स्थापना की थी। उसी तपोमय भूमि में आज आप का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।

इस 'कुल' को इस बात का अभिमान तथा गौरव प्राप्त है कि यही प्रथम संस्था है, जिसने आर्यसमाज को ही राष्ट्रभाषा बनाने में अग्रसर क़दम लिया है और आर्यभाषा को ही शिक्षा का माध्यम रखकर संसार के सन्मुख यह ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया है कि प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त उच्च शिक्षा भी आर्यभाषा माध्यम द्वारा दी जा सकती है। इस से पूर्व विदेशियों के विचारों में रँगे हुए हम में से कोई कल्पना भी न कर सकता था कि आर्यभाषा भी उच्च शिक्षा का माध्यम बन सकती है और मानसिक विकास के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। सन् १८३५ ईस्वी की शिक्षा समिति (Public Instruction Committee) के अध्यक्ष श्रीयुत लार्ड मैकाले आँगलभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम करने के पक्ष में भाषण करते हुए कहते हैं—We have to educate a people who can not at present be educated by means of their mother tongue. We must teach them some foreign language. इसी सम्बन्ध में वह आगे चलकर कहते हैं "जिस प्रकार १५ वीं और १६ वीं सदी में इङ्गलैंड में आँगलभाषा को छोड़ कर लेटिन तथा ग्रीक भाषा का प्रचार

आवश्यक था, रूस में आँग्लभाषा का होना ज़रूरी था, उसी प्रकार इस समय भारतवर्ष में हमारी भाषा (आँग्लभाषा) का होना आवश्यक है।”

यदि बिना किसी तरह की परीक्षा के इस कथन को स्वीकार कर लिया जाय—यद्यपि चीन तथा जापान का इतिहास इस के विरुद्ध साक्षी दे रहा है। इन देशों में विदेशी भाषा का माध्यम न होते हुए भी शिक्षा सम्बन्धी किसी तरह की न्यूनता नहीं तथापि यह हमारा कर्तव्य तथा अधिकार है कि इङ्गलैण्ड तथा रूस की भांति इस समय भारतवर्ष में आर्यभाषा को राष्ट्र भाषा स्वीकार करें और उसी में उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न करें। सन् १८३७ ईसवी में जब यह प्रश्न उठा कि कुछ विद्वानों को प्रान्तीय भाषाओं में उच्च साहित्य पैदा करने के लिये नियुक्त किया जाय उस समय श्रीयुत लार्ड मैकाले ने भी स्वीकार किया कि प्रान्तीय भाषाओं में उच्च साहित्य पैदा करना चाहिए। परन्तु उन्हों ने सरल और पीछे मार्ग को छोड़ कर टेढ़े और लम्बे रास्ते को पसन्द किया। वह लिखते हैं-We are now following the slow but sure course on which above we can depend for a supply of good books in the vernacular languages of India. We are attempting to rise up a large class of enlightened natives. I hope that twenty years hence, there will be hundreds, nay, thousands of natives familiar with the best models of composition and well acquainted with western science. Among them some persons will be found who will have the inclination and the ability to exhibit European knowledge in the vernacular dialects. यदि प्रारम्भ में ही प्रान्तीय भाषाओं में अनुवादित पुस्तकें भारतीय शिक्षणालयों में स्थान प्राप्त कर लेतीं तो आज हमें इस से अधिक संख्या में शिक्षित बालक दृष्टि गोचर होते और उनका मानसिक विकास भी किसी सीमा तक इस मात्रा से अधिक उपलब्ध हो सकता। जापान ने इसी सरल और सीधे मार्ग का अनुसरण किया। जापान के राजा नीतिज्ञ तथा शिक्षा विशारद इस बात को भली भांति समझते थे कि विदेशी भाषा के साथ मानसिक तथा राजनीतिक दोनों प्रकार की पराधीनता का नित्य सम्बन्ध है। परिणामतः उस जाति के बालक अधिक शिक्षित तथा उन्नत हैं। संसार के वैज्ञानिक आविष्कारकों में जापान के विद्वान् अनुपातत पर्याप्त मात्रा में हैं। इस बात के लिये भारत माता को भी प्रतिष्ठा प्राप्त है कि जगदीश चन्द्र बसु, प्रफुल्लचन्द्रराय तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर प्रभृति विश्वप्रतिष्ठित विद्वानों को इस ने जन्म दिया है। परन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यदि मातृ भाषा आर्यभाषा में उच्च शिक्षा दी जाती और भारतीयों को शिक्षा के लिये उत्तम अवसर प्रदान किया जाता तो भारतवर्ष भी अन्य सभ्य देशों से किसी अवस्था में हीन दिखाई न देता। वस्तुतः विदेशी भाषा को उच्च

शिक्षा का माध्यम बनाने का वह कारण न था जो उपर्युक्त शब्दों में प्रतीत होता है। आर्यजाति की भलाई को दृष्टि में रख कर स्नेहार्द्र विदेशी शासकों ने आंगलभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं रखा; प्रत्युत लार्ड मैकाले स्वयं अपना तात्पर्य स्पष्ट कर देते हैं जब वह कहते हैं—The languages of western Europe have civilised Russia I can not doubt that what they can do for the Hindoo what they have done for the Tartar पश्चिमीय सभ्यता के प्रचार की उत्कट अभिलाषा ने ही विदेशी शासकों को हमारी भलाई के लिये आंगलभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये प्रेरित किया है। अपनी इच्छा को पूर्ण होते देख कर लार्ड मैकाले बड़े प्रसन्न होते हैं और १८३८ ई० में अपने पिता के पास पत्र लिखते हैं, जिस का कुछ अंश इस प्रकार है— Our English schools are flourishing wonderfully.........The effect of this education is prodigious. No Hindoo, who has received English education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but others profess themseles pure Deistic and some embrace Christianity. अपने कथन को यदि और अधिक पुष्ट करने के लिये मैं आप के सम्मुख उक्त महोदय का एक और उदाहरण प्रस्तुत कर दूँ तो आप को मेरे कथन में किसी प्रकार का सन्देह न रहेगा। वह लिखते हैं— We desire to form a class who may be interpreters between us and the millions we govern, a class of persons, Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals and in intellect.”

वस्तुतः प्रत्येक भाषा का किसी विशेष सभ्यता, देवमाला (Mythology) वा इतिवृत्त से सम्बन्ध होता है। युरोपीय भाषाओं का सम्बन्ध राम कृष्ण से नहीं, प्रत्युत क्राइस्ट व सेन्ट पीटर से है। उस में भीम वा अर्जुन का नाम नहीं अपितु नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिंसबिस्मार्क और नैल्सन प्रभृति शूरों का नाम यत्र तत्र उपलब्ध होता है। इसी प्रकार फ़ारसी साहित्य में कहीं भी आपको राम, कृष्ण या भीम और अर्जुन का नाम दृष्टिगोचर न होगा, वहां हज़रत मुहम्मद, अली, उमर, हसन और रुस्तम प्रभृति के नाम ही दिखाई देंगे। अतः यदि हम अपने पूर्वजों का नाम अमर रखना चाहते हैं, यदि हमें अपनी सभ्यता या इतिवृत्त को चिरस्थायी रखने की अभिलाषा है, अगर हमें राम, कृष्ण या भीम और अर्जुन से प्रेम है तो हमें संस्कृत तथा हिन्दी को अपनाना होगा। यही कारण है कि जब से हम ने विदेशी भाषाओं को अपनी मातृ भाषा से अधिक महत्ता दी है तब से अपने साहित्य से उपेक्षा करली है। जब से कवि कालिदास, भवभूति, सूरदास और तुलसी दास आदि उत्तम २ कवियों के काव्यों को भुला दिया और मिल्टन, शेक्सपीयर, वर्ड्स

वर्थ, शैले प्रभृति आंगलभाषा के कवियों के नाटकों तथा काव्यों में रुचि की है तभी से हमारे समाज में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का भाव घटता जा रहा है। शोक से यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि जहां पहले आबालवृद्ध को राम और कृष्ण के जीवन कण्ठस्थ होते थे, घर २ में रामायण तथा महाभारत का नित्य प्रति पाठ होता था, उन्ही ऋषि मुनियों की सन्ततियां उन का नाम तक नहीं जानती । इसके स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का सन्देह न करना चाहिए कि जब से विदेशी भाषा का इस पुण्य भूमि में प्रवेश हुआ है उस समय से हमारे भारतीय भाइयों ने अपनी प्राचीन गौरव पूर्ण सभ्यता से अरुचि दर्शाई है । यदि आंगलभाषा के प्रवेश में लार्ड मैकाले का बड़ा हिस्सा है, तो फ़ारसी को भारत वर्ष में राजकीय भाषा करवाने में हमारे आर्य भाई भी कम दोषी नहीं हैं । यदि टोडरमल फ़ारसी को राजकीय भाषा करवा कर हिन्दी साहित्य में बाधा न डालता तो हिन्दू कवियों के अतिरिक्त न जाने रहीम, मुहम्मद जायसी, रसखान, उसमान, मुबारिक आदि कितने ही मुसलमाम कवि आर्यभाषा साहित्य की वृद्धि में सहायक एवं आर्य सभ्यता के संरक्षक दृष्टि गोचर होते । मुसलमान कवि रसखान भी तात्कालिक हिन्दूसभ्यता के प्रभाव से न बच सका और श्री कृष्ण के अनन्य भक्तों में अपना नाम गिनाया उसकी निम्न कविता किस सुन्दरता से उन के मनोगत भावों को प्रकट कर रही है—

'मानस हौं तो वही रस खानि
बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
'जो पशु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो
धरयो कर पुरन्दर धारन।
'जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि
कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥
'या लकुटी अरु कामरिया पर
राज तिहूं तिन को तजि डारौं।
'आठहुँ सिद्धि नवौनिधि को
सुखनन्द की गाय चराई बिसारौं॥
'रसखानि कबौं इन आंखन सों
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
'कोटिन हूं कलधौत के धाम
करील के कुञ्जन ऊपर वारौं॥

इसी प्रकार रहीम कवि का दोहा है—

"जिहि रहीम चित आपनों,
कीन्हो चतुर चकोर।
निशिवासर लागो रहे,
कृष्णचन्द्र की ओर॥

इसी भांति अन्य मुसलमान कवियों की कविताएं भी इस प्रकरण में उद्धृत की जा सकती हैं। परन्तु आज कल तो मुसलमान भाई क्या, हिन्दु लोग भी इस ओर से उपेक्षा किये हुए हैं। उन्हें अपनी भाषा नीरस तथा अप्रीतिकर प्रतीत होती है और विदेशी भाषाओं में विशेष माधुर्य, आल्हाद तथा प्रसाद अनुभव होता है । इसी प्रकार दिन प्रति दिन विदेशी भाषाओं के कारण प्राचीन सभ्यता का लोप होते देखकर महर्षि

दयानन्द सरस्वती के आदेशानुसार प्राचीन सभ्यता की जागृति के लिए, मातृभाषा संस्कृत तथा आर्य भाषा के पुनरुद्धार के लिये इस 'कुल' की स्थापना हुई। मातृ-भूमि के धार्मिक सुधार के अतिरिक्त आर्य भाषा के प्रचार में भी श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ही अग्रगण्य हैं। गुजरात प्रान्त के होते हुए भी उन्होंने प्रान्तीयता के मोहवश गुजराती को नहीं अपनाया, प्रत्युत पुण्य भूमि आर्यावर्त को संगठित करने तथा प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए आर्यभाषा को ही स्वीकार किया। स्वामी जी ने अपनी सर्वोच्च पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' किसी अन्य भाषा में न लिख कर आर्यभाषा में ही लिखी। आप की सब पुस्तकें आर्य-भाषा या संस्कृत में ही पाई जाती हैं। इसी प्रकार आर्यसमाज के उपनियमों में भी आर्यभाषा के अध्ययन को आवश्यक बनाया। उन्हीं पूज्य श्रद्धेय आचार्य स्वामी दयानन्द जी के आदेशानुसार पंजाब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से संस्थापित हुई २ भी इस संस्था ने पञ्जाबी व आंग्लभाषा आदि अन्य किसी भाषा को उच्च स्थान नहीं दिया। मद्रास, बंगाल, महाराष्ट्र तथा गुज-रात आदि प्रान्तों के बालक यहां आर्य भाषा में शिक्षा पाते हैं। क्योंकि इस के संस्थापक को अपने आचार्य के वचनों पर पूर्ण विश्वास था कि आर्यभाषा ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, इसी भाषा के द्वारा ही आर्यजाति को भारतीयता के सूत्र में ग्रथित किया जा सकता है, इसी के आधार पर समाज संगठन का विशाल भव्य प्रासाद दृढ़ तथा चिरस्थायी बनाया जा सकता है। उसी महापुरुष के विचारों का क्रियात्मक रूप यह गुरुकुल है। यही संस्था है कि जिस ने भारतवर्ष में सब से प्रथम आर्य भाषा को फिर से राष्ट्र भाषा बनाने के लिए क्रियात्मक कार्य किया है। जिस समय शिक्षित समाज पर लार्ड मैकाले के कथन का पूरा असर पड़ चुका था, प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि हिन्दी उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकती, उस समय गुरुकुल के संचालकों ने अपने आचार्य के बचनों पर पूर्ण विश्वास रखते हुए इस संस्था में आर्य भाषा को ही मुख्य भाषा स्वीकार किया तथा आर्य भाषा में ही उच्च शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। इस समय यह अच्छी तरह सिद्ध हो चुका है कि आर्यभाषा भी उच्च शिक्षा का माध्यम हो सकती है और भारतवर्ष के विद्यालयों में अधिक उपयोगी है। मान-नीय श्री निवास शास्त्री जी ने जिन को पूर्ण विश्वास था कि आर्यभाषा अथवा अन्य कोई देशी भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती, जब १९१४ ई० में गुरुकुल में पधारे और यहां का भलीभांति निरीक्षण किया तो तो बड़े कौतूहल के साथ' पूर्व विचारों के विरोध में होते हुए भी स्वीकार किया—

"आज तक मुझे यह बात कभी सम्भव मालूम नहीं हुई थी कि अन्त तक किस प्रकार देशभाषा में शिक्षा दी जा सकती है ? मेरा विचार था कि मध्य विभाग में शिक्षा का माध्यम देश भाषा हो सक्ती है; किन्तु कालिज में इङ्गलिश ही शिक्षा का माध्यम बन सकती है। मैंने यह कहा है कि मेरा

ऐसा विचार था किन्तु अब मैं इस से ऊपर उठ रहा हूं।"

इसी प्रकार डा० एन. ई. सेडलर जो कुछ दिन के लिए यहां वास कर चुके हैं, गुरुकुल के विषय में सम्मति देते हुए लिखते हैं—Nor less do I share your belief that every student boy or girl should be trained skilfully in the study or use of another tongue. इन के अतिरिक्त प्रो० राधाकृष्ण मुकरजी प्रोफ़ेसर विनय कुमार सरकार, डा० नाग, डा० प्रभुदत्त जी शास्त्री तथा डा० महेन्द्र लाल प्रभृति भारतीय विद्वान जो इस गुरुकुल की स्नातक परीक्षा के परीक्षक हैं, जिन के बनाये प्रश्न पत्रों का उत्तर यहां के विद्यार्थी आर्यभाषा में ही देते हैं, उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार जो अन्य बड़े २ विद्वान् तथा नेतागण इस भूमि में पधारे हैं उन पर यहां की संस्कृति और आर्य भाषा में छिपे हुए गुह्य रत्नों तथा गुह्य शक्तियों का चामत्कारिक प्रभाव पड़ा। इस लिए इस कुल को इस बात के लिए अभिमान है कि आर्य भाषा के प्रति की गई सेवाओं में इस संस्था की सेवायें सब से पुरातन तथा महत्व पूर्ण हैं। इस संस्था द्वारा मातृभाषा आर्य भाषा के लिये भारतीय तथा विदेशीय दर्शकों के हृदयों में आदर का भाव उत्पन्न हुआ है और यह अच्छी तरह से सिद्ध हो चुका है कि आर्यभाषा के उच्च शिक्षा का माध्यम होने से ज्ञान में किसी प्रकार शिथिलता नहीं आसकती। अतः प्रत्येक आर्य भाषा प्रेमी सज्जन का इस संस्था से विशेष सम्बन्ध हो जाता है। हमें इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि ऐसे प्रसन्नता के अवसर आप लोगों ने हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया है। इस शुभावसर पर प्रत्येक आर्य-भाषा प्रेमी सज्जन के हृदय में अपनी प्रिय संस्था के लिए, जब कि वह अपनी पचीसी की खुशियां मना रही है, प्रेम पूर्ण उल्लास होगा और इस संस्था को अपनी ही संस्था समझ कर कर इस महोत्सव में खुले हृदय से सम्मिलित होगा।

सभ्यगण ! यदि इस अवसर पर आप को इस संस्था की ओर से आर्यभाषा के प्रति की गई सेवाओं का परिचय करादूँ तो सम्भवतः अनुचित न होगा। इस संस्था का कार्य आर्यभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाकर ही समाप्त नहीं हो जाता; प्रत्युत अन्य भी कुछ ऐसे कार्य हैं जिन से आर्य भाषा प्रचार में बड़ी सहायता मिली है। आर्यभाषा के प्रचार के लिए अन्य साधनों के अतिरिक्त आर्यभाषा-पत्र पत्रिकाओं द्वारा भी मातृभूमि की सेवा करना प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी सज्जन का कर्तव्य को भी इस संस्था ने अपनी तरफ़ से अच्छी तरह से निभाया है। पञ्जाब प्रान्त में जो सब से पूर्व हिन्दी पत्र प्रकाशित हुआ है वह 'सद्धर्म प्रचारक' है जो इस संस्था के संस्थापक की ओर से प्रकाशित होता रहा है। इस के पश्चात् सप्ताहिक पत्र 'श्रद्धा' का जन्म हुआ, जिस ने धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों

क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। आज कल भी यहां से एक उच्च कोटि का मासिक पत्र 'अलंकार तथा गुरुकुल समाचार' गुरुकुल के स्नातकों की ओर से प्रकाशित होता है। जिस में धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा अन्यान्य विषय सम्बन्धी योग्यतापूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। इस पत्र का "गुरुकुलांक" आप के सन्मुख ही है। इसी भांति यहां के शिक्षित स्नातकों ने आर्यभाषा पत्रों द्वारा आर्य जनता की सेवा में अपने को समर्पित किया है।

दिल्ली से 'विजय' तथा 'अर्जुन' पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की सम्पादकता में प्रकाशित हुआ और हो रहा है। नागपुर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र 'प्रणवीर' के सम्पादकों में पं० रामगोपाल जी विद्यालंकार भी एक हैं। इसी प्रकार इस समय नागपुर से 'मारवाड़ी' पत्र पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार के सम्पादकत्व में निकल रहा है और पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने पञ्जाब में, आर्यभाषा का प्रचार न होते हुए भी आर्यभाषा में लग्न होने के कारण सब प्रकार घाटा सहन करते हुए भी उत्साह से 'साप्ताहिक सत्यवादी' का सम्पादन तथा प्रकाशन किया। इस समय भी वह पञ्जाब प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि की ओर से प्रकाशित होने वाले 'आर्य' पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी कुछ स्नातक इस क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। समय आयगा जब वह अपने को सुयोग्य सम्पादक सिद्ध कर मातृभूमि की सेवा में अपने जीवन को सफल बनायेंगे। इसके अतिरिक्त जहाँ इस संस्था ने आर्यभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया है वहाँ शिक्षकों के कई वर्षों के अनुभवों से उच्च कक्षा के योग्य आर्यभाषा के ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। 'भारतवर्ष का इतिहास' नामक पुस्तक के प्रथम खण्ड की तीन आवृत्तियाँ हो चुकी हैं इसका दूसरा खण्ड भी इस वर्ष प्रकाशित हुआ है। इसका लेखक मैं स्वयं हूँ, इसके विषय में कुछ कहना नहीं चाहता इसे आपके विवेचन पर ही रहने देता हूं। इसके अतिरिक्त 'भौतिकी', 'रसायन' तथा 'गुणात्मकविश्लेषण' प्रभृति वैज्ञानिक पुस्तकें भी यहाँ से प्रकाशित हो चुकी हैं जो शिक्षणालयों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई हैं। यदि भारतवर्षीय हिन्दी साहित्यसम्मेलन के अधिकारी इस ओर ध्यान दें तो यह पुस्तकें आर्यभाषा के प्रचार में उत्तम सहायक हो सकती हैं। इसी संस्था के परिणाम का फल है कि साहित्य के लेखकों में यहाँ के शिक्षित स्नातकों ने उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रत्येक ७ स्नातकों में से एक लेखक है और प्रायः सबने मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित की हैं। पण्डित इन्द्रजी विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित 'नैपोलियन बोनापार्ट' 'प्रिन्स बिस्मार्क' तथा 'महावीर गेरीबाल्डी' अपनी श्रेणी के अद्वितीय ग्रन्थ हैं। पण्डित प्राणनाथ विद्यालङ्कार के इतिहास तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रथों के नामों को दुहराने की आवश्यकता नहीं। आप उन ग्रंथों से सुपरिचित ही हैं। इस के अतिरिक्त गुरुकुल के उपाध्याय पण्डित विश्वनाथजी विद्यालं-

कार की वेद सम्बन्धी पुस्तकों ने आर्यभाषा साहित्य को उन्नत करने में पर्याप्त हिस्सा लिया है।

सभ्यगण! इस संस्था की स्थिरता तथा वृद्धि के साथ राष्ट्रभाषा आर्यभाषा का विशेष घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि किसी शिक्षा सम्बन्धी (Educational Institutions) ने आर्यभाषा के लिये बड़े २ विद्वानों तथा साधारण जनता में आदर वा प्रेम का भाव उत्पन्न किया है और साहित्यसेवी विद्वान् पैदा किये हैं तो उनमें इस संस्था का नाम भी मुख्य होगा। अब यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि आर्यभाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है। सर टौ. मूर भी इस बात को अच्छी तरह समझते थे। वह लिखते हैं—Would you, then, make. English knowledge a wholesome food–would you present its speedily becoming innutrive or poisonous to the people of India, give it a vernacular organ for by such an organ only can it acquire and preserve those vital principal of accessibility, and of proneness to identification with household experiments upon which it must wholly depend, whether that knowledge shall ever be a blessing, and shall not presently be a curse, to this land, प्रत्येक देश प्रेमी ने इस बात को अच्छी तरह अनुभव कर लिया है। यहाँ हम अपने मद्रास प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सभासद् महोदयों के प्रयत्न की सराहना किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने आर्यभाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान देना अपना कर्तव्य समझा है और मद्रास प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में वहाँ के प्राथमिक शिक्षणालयों में आर्यभाषा को माध्यम बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया है। सब राष्ट्रीय सरकारी शिक्षणालयों के सञ्चालकों से हमारा यही अनुरोध है कि वे अपने शिक्षणालयों में आर्यभाषा को ही माध्यम स्वीकार करें, आर्यभाषा में ही उच्चशिक्षा देने का प्रयत्न करें। प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों को और विशेषतः कन्याओं को आर्यभाषा में ही शिक्षा दें जिससे वह सच्चे भारतीय नागरिक होकर राष्ट्रीयता के आधार स्तम्भ बन सकें। मुझे निश्चय है कि आप सब उपस्थित सज्जन यदि इस पुण्यकार्य की पूर्ति के लिये अपने कर्तव्य का पालन करेंगे और अपने पुत्रों को सच्चा भारतीय नागरिक बनाने के लिए आर्यभाषा ही में इन्हें शिक्षा देने का प्रबन्ध करेंगे और हर तरह से आर्यभाषा की उन्नति में सहायक ही होंगे, बाधक नहीं। इसके बाद सब विद्वानों से मेरा सानुनय निवेदन है कि वह जो मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित करें, वह आर्यभाषा में ही प्रकाशित करें। किसी भाषा का उत्कृष्ट तथा सम्मानित होना उसके साहित्य पर निर्भर है। आर्यभाषा निकृष्ट है यह कह कर इससे उपेक्षा कर लेना और अन्य भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करना आर्यभाषा को स्वयं निकृष्ट बनाना है। एक बार एक सज्जन ने आंग्लभाषा के कवि मिल्टन से प्रार्थना की कि आप अपने काव्य को ग्रीक या लेटिन

में लिखें क्योंकि वह उत्कृष्ट भाषाएं हैं, आंग्लभाषा नहीं। उस समय उस दूरदर्शी कवि ने जो उत्तर दिया वह ध्यान देने योग्य है। उसने कहा मैं एक ऐसी पुस्तक लिख रहा हूँ जिस से आंग्ल साहित्य समृद्ध तथा सम्मानित हो जाएगा। वस्तुतः ऐसा ही हुआ, मिल्टन का 'Paradise lost' आंग्ल भाषा का समुज्वल रत्न है और इसके कारण आंग्लभाषा का स्थान बहुत उच्च हो गया है। इस लिये यदि हमें आर्यभाषा के प्रचार की उत्कट अभिलाषा है तो उच्च कोटि के मौलिक ग्रन्थ आंग्लभाषा आदि किसी विदेशी भाषा में न लिख कर आर्यभाषा में ही लिखें इसी तरह से आर्यभाषा का साहित्य उत्कृष्ट होगा। फ़ारसी में काव्य लिखने से इकबाल की कीर्ति में क्षति नहीं पहुँची प्रत्युत फ़ारसी साहित्य अधिक उच्च होगया है। इसी प्रकार बंग-साहित्य का उत्कर्ष कवीन्द्र रवीन्द्र तुल्य उच्च कवियों के मौलिक ग्रन्थ बंगलाभाषा में निकलने से हुआ है। अतः प्रत्येक देश प्रेमी विद्वान् से बार २ हमारा यह नम्र निवेदन है कि वह अपने मौलिक ग्रन्थ पहले आर्य भाषा में लिखे। उस से अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाय। श्रीयुत् प्रेमचन्द के उपन्यासों से आर्यभाषा साहित्य की वास्तविक उन्नति हुई है और वह उज्ज्वल हुआ है। राष्ट्रभाषा आर्यभाषा के प्रति की गई सेवा के लिये श्रीयुत प्रेमचन्द जी का प्रयत्न सराहनीय है और प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी के लिये अनुकरणीय है। आशा है कि सब देश हितैषी सज्जन इस ओर विशेष ध्यान देंगे और आगे से अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिख कर प्रकाशित करेंगे।

अन्त में मैं स्वागतसमिति की ओर से आप सब दूर २ देशों से आये हुए प्रतिनिधि महोदयों तथा अन्य उपस्थित सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिन्होंने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार किया है और आर्यभाषा के लिए प्रेम प्रदर्शित किया है। संभव है कि हमारी ओर से किसी भूल के कारण आपको कोई कष्ट हुआ हो या आपके आतिथ्य सत्कार में हम अपने को सुयोग्य सिद्ध न कर सके हों। आशा है कि आप इन बातों पर ध्यान न देंगे और हमारी भूलचूक के लिए क्षमा करेंगे। मुझे आप से पूर्ण आशा है कि यहाँ से वापिस जाकर आप सब आर्यभाषा प्रेमी सज्जन आर्यभाषा के प्रचार में हर प्रकार की सहायता देंगे और आर्यभाषा की इस सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था को अपनाकर दिल से इसकी वृद्धि के लिए शुभकामना करेंगे।

ओम् शम्

बलि का फल

"इतिहास बतलाता है कि शहीदों का ख़ून व्यर्थ नहीं जाया करता। यह मत समझो कि शुद्धि, संगठन और अछूतोद्धार का काम बन्द हो जायगा।

(ले०— शान्त स्वामी अनुभवानन्द, दिल्ली)

गुरुतेग़ बहादुर के बाद इसी दिल्ली में इस्लामी सभ्यताने अब्दुल रशीद के हाथों से एक और वीरहिन्दु नेता पर वार किया है। पंडित लेखराम के ठीक ३३ साल बाद आर्यसमाज की छाती पर छुरी का घाव लगाया गया है मानो भारतीय मुसलमानों ने अपने बीते हुए; मगर ख़ूनी इतिहास की स्मृति एक बार फिर ताज़ा करदी है। हसन बिन सब्बाह के भारतीय फ़िदाइयों ने ११ सौ बरस की पुरानी कबरों को खोद निकाला है और हिन्दुओं पर एक बार फिर प्रगट कर दिया है कि, इस्लामी तलवार के टुकड़े २ होजाने पर भी फ़िदायी संस्कृति अभी जीती है और हिन्दुओं को उसे भूल नहीं जाना चाहिये।

जातियों की उन्नति उन वीरता पूर्ण नर बलियों की संख्या पर निर्भर होती है, जो अपने धर्म, विश्वास तथा विचारों के फैलाने में जातिमाता के वीर पुत्र अपना जीवन विसर्जन करके किया करते हैं। उनके दुश्मनों और विरोधियों द्वारा किये हुए अत्याचार उनकी कीर्त्ति के स्तम्भ होते हैं और उनकी मौत उनके जीवन से कहीं बढ़कर कीमती हुआ करती हैं। उनकी मौत उनके विचारों को फैलाने में बिजली से बढ़कर काम देती है और उनके कामों में किसी भी कारण से आई हुई शिथिलता सदा के लिये दूर होकर जाति में नये जोश, नये उत्साह तथा नवजीवन का सञ्चार किया करती है।

कौन नहीं जानता कि यहूदियों ने मसीह को फाँसी पर लटका कर उसके विचारों को तेज़ी के साथ फैला दिया है, सुकरात को ज़हर देकर यूनानियों ने उसके विचारों को सदा के लिए अमर कर दिया है, सिक्खों के साथ अत्याचार करके मुसलमानों ने उन्हें और भी उन्नत होने का मौका दिया है। पंडित लेखराम को क़त्ल करके आर्यसमाज के काम को चार चाँद लगाये गये थे और अब स्वामी श्रद्धानन्द के प्राण लेकर भी मुसलमान देखेंगे कि, उन के रक्त के एक एक बिन्दु के कितने श्रद्धानन्द पैदा होते हैं और शुद्धि, संगठन का काम कितनी तेज़ी से होने लगता है।

मैं स्वामी श्रद्धानन्द को मरा नहीं समझता। जो महापुरुष अपने विश्वास पर जीवन विसर्जन किया करते हैं, उन्हें कोई भी मरा नहीं समझ सकता। मेरा विश्वास है कि भव्यभारत के भावी निर्माण में स्वामी श्रद्धानन्द का दर्जा बहुत ऊँचा होगा; क्योंकि उनकी मौत ने उनके उद्देश्य पर ऐसी

महात्मा मुन्शीरामजी, वानप्रस्थाश्रम में।

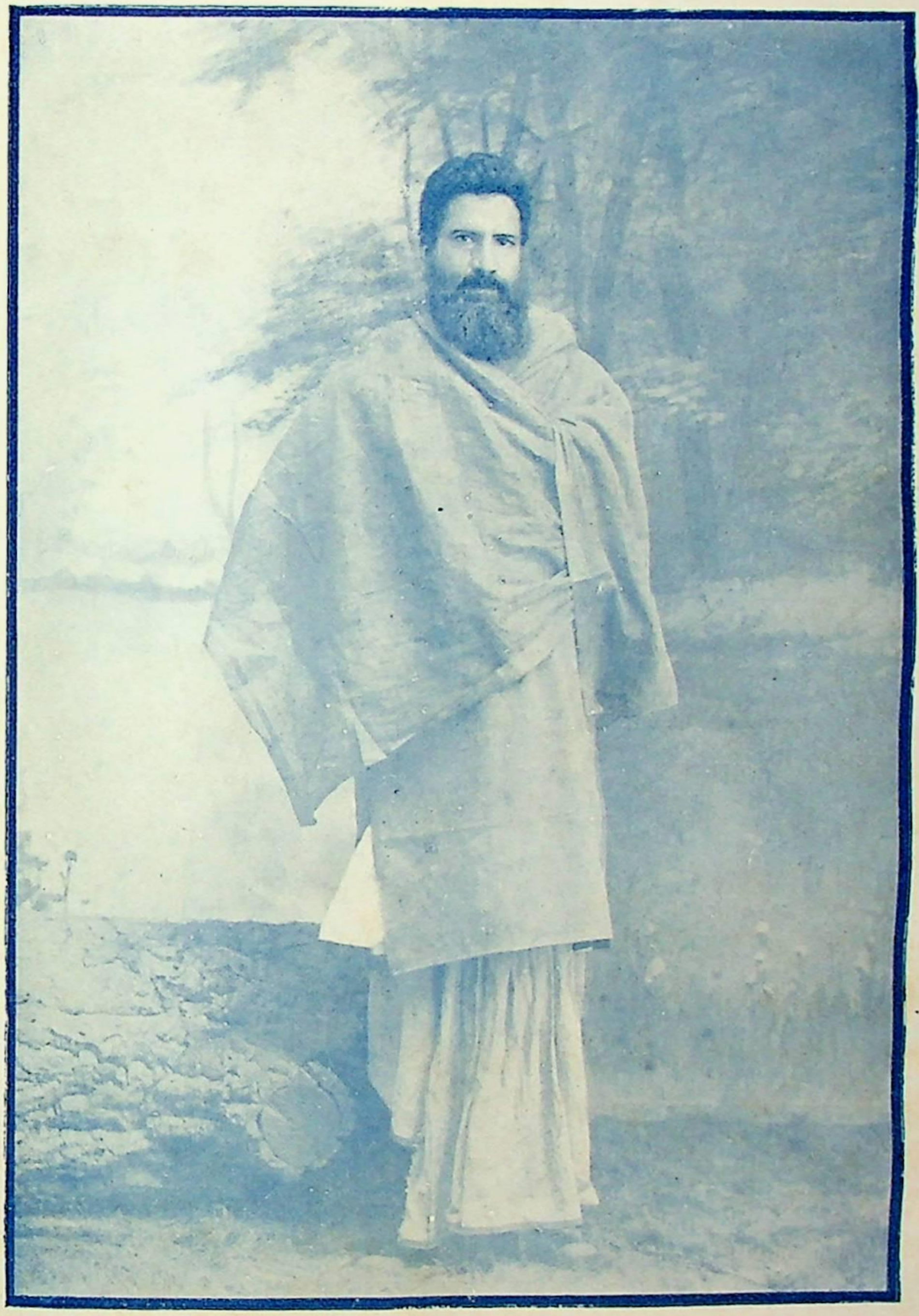

कौन देव ! बतलाओ अबतो, 'अभयम्-नाद' सिखायेगा ?
मित्र-दृष्टि से सबको देखें, मेल मन्त्र यह गायेगा ?

Block made and Printed by
Murari Fine Art Works, DELHI.

छाप लगादी है, जिससे उनका काम और नाम-दोनों ही अमर होगये हैं, अमिट हो गये हैं। स्वामी जैसे वृद्ध जीवन का समाप्त होना निकट भविष्य में अवश्यम्भावि था। वे अधिक से अधिक कुछ वर्ष और जीते रहते; पर इस मौत ने उनकी कीर्त्ति और कृति-दोनों को जितना उज्वल एवं महत्त्वपूर्ण बना दिया है, उतना दूसरे प्रकार से न होता। स्वामीजी ने अपनी मौत से हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित किया है, जिसे ध्यान में रखते हुए हम जाति के भविष्य को अधिक-से-अधिक सुन्दर, सरस और सफल बना सकेंगे।

त्यागमूर्ति श्रद्धानन्द

(ले०—श्री चौधरी मुख़्त्यारसिंह जी एम. एल. ए)

गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव है स्थान २ से लाखों मनुष्य उत्सव देखने के लिये पधारे हैं और अपनी २ शक्ति के अनुसार इस आर्य जाति की सब से महान यज्ञ में आहुति देना चाहते हैं। कोई इस कुल को नूतनता की दृष्टि से कौतूहल समझ कर निरीक्षण कर रहा है, कोई इस कुल को आर्य जाति के भविष्य के साथ संबधित समझ कर गहरी दृष्टि से विचार कर रहा है। कोई कुल को विद्योन्नति के क्षेत्र में नया परीक्षण समझ कर उस के अध्ययन तथा अध्यापन के विषय पर विचार कर रहा है। कोई जाति उन्नति के उपाय की दृष्टि से विचार कर रहा है। कोई आर्य समाज का महान कार्य समझ उस से प्रेम कर रहा है। वस्तुतः लक्षों मनुष्य लक्षों विचार से इस भूमि में विचार करते विचर रहे हैं। एक स्थान पर बैठा हुवा श्रद्धानन्द जो अपने दोनों पुत्रों को कुल की गोद में बुरा या भला बनाने को सौंप चुका है जो वकालत छोड़ कुल की रक्षा का भार अपने कन्धों पर उठा चुका है, जो अपना सारा का सारा धन और सम्पत्ति कुल की भेंट कर चुका हैं, जो दिन रात कुल की उन्नति की चिन्ता में पागल हो चुका है केवल इस बात की चिन्ता में पड़ा है कि वह सब कुछ इस कुल की भेंट कर चुका आज इस उत्सव के समय किस बात की आहुति दे जिस से कि यह यज्ञ सम्पूर्ण हो सके। वह सोच विचार कर एक दस्तावेज़ का कागज़ लेकर उस पर कुछ मज़मून लिख रहा है। वह देखो मज़मून लिख कर दस्तावेज पूर्ण हो गई। श्रद्धानन्द अपने दोनों पुत्रों को कुल से बुलाता है और दोनों पुत्रों को इस दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने की आज्ञा देता है। पुत्र दस्तावेज़ को आद्योपांत पढ़ते हैं स्तब्ध हो देखते हैं और पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर कर देते हैं।

उत्सव का समय होगया। श्रद्धानन्द

कमरे से उठ पंडाल में आता है और कुल के लिए धन की अपील करता है । अपील के अन्त वह दस्तावेज़ गुरुकुल की भेंट कर देता है। देखा इस दस्तावेज़ मेंक्या लिखा है ! श्रद्धानन्द सर्वस्व आर्य जाति के लिए दे चुका है परन्तु उस के पास इस समय केवल एक मकान रहने का बाक़ी है आज वह भी गुरुकुल की भेंट कर दिया जाता है।

परन्तु हिन्दू शास्त्र के अनुसार इस सम्पत्ति में कुछ अड़चन लगावें दोनों पुत्रों के भी हस्ताक्षर कराकर इस प्रकार मानो सर्वमेध का परिचय देता है। आर्य तू नहीं जानती तेरे लिए श्रद्धानन्द ने क्या कुछ नहीं दिया, तेरे प्रति उस का हृदय कितना विशाल था, तेरे साथ उसे कितना प्रेम था, श्रद्धानन्द ने अन्तिम आहुति से बता दिया कि श्रद्धानन्द क्या धन और सम्पत्ति और पुत्र ही आर्य जाति की सम्पत्ति नहीं हैं । प्रत्युत उस का जीवन भी आर्य जाति की सम्पत्ति है।

क्या अब भी आर्य जाति जीवित न होगी, क्या अब भी उस में सचेत जीवन के चिन्ह न दिखाई देंगे? सन्यासी का सर्वमेध संस्कार निष्फल नहीं जायगा। आओ इस मूर्ति की स्मृति में अपनी जाति तथा देश की उन्नति में यथाशक्ति योग दे कर अपना जीवन सफल करें और इस संन्यासी के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करें।

* * *

व्रतपति स्वामी श्रद्धानन्द

(लेखक— डा० केशवदेव शास्त्री एम. डी. मन्त्री आर्य सार्वदेशिक सभा देहली)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की कलेश दायक मृत्यु ने आर्य जाति के प्रत्येक नर नारी को शोक सागर में डाल दिया है, आज सभी ओर से उन को उपयोगी संस्थाओं से सहानुभूति के भाव प्रगट किये जा रहे हैं, उदार और संकुचित दोनों दलों के नेता उन के नाम पर स्मारक खड़े कर रहे हैं' संघटन, शुद्धि और दलितोद्धार पर हिन्दु जनता दिल खोलकर दान दे रही है ऐसी अवस्था में हमें त्रास होता है कि कहीं जोश में आकर आर्य्य जनता उन की स्पिर्ट को ही भूल न जावे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महर्षि दयानन्द जी के अनुयायी थे, आर्य्य समाज की शिक्षा उन के रग २ में भरी थी, शुद्धि और दलितोद्धार का कार्य्य वह आर्य्य समाज की spirit में ही कर रहे थे, हिन्दू महासभा में सम्मिलित होते हुए उन्हों ने वैदिक सिद्धान्तों को सर्वथा अपने सामने रखा, जब हिन्दू महासभा के नेताओं ने अपने निश्चित प्रस्तावों के विरुद्ध कौंसलों के चुनाव में भाग लेना आरम्भ कर दिया तो स्वामी जी महाराज ने हिन्दू महासभा से त्यागपत्र दे अपने व्रत का पालन किया, कांग्रेस और असहयोग की संस्थाओं से भी इसी प्रकार आपने किनारा

कशी की थी, स्वामी जी अपने व्रत के पक्के थे इसी लिये उन के जीवन में आकर्षण शक्ति थी

आज हिन्दु जनता को जो प्रेम और श्रद्धा है उस का कारण एक मात्र उन की दृढ़ता और धर्म परायणता थी वह लोग भूल रहे हैं जो श्रद्धानन्द के नाम से धन संग्रह कर उसे उन की स्पिर्ट के विरुद्ध संस्थाओं पर व्यय करने की कल्पना कर रहे हैं। श्रद्धानन्द के नाम पर ,वही संस्थाएं चल सकी और चलनी चाहियें जो उदार भावों को धारण किये हों जिन में जात पात छूत छात के संकुचित भावों को कुचल दिया गया हो, जहां आर्य्य सभ्यता के उच्च आदर्शों को दृष्टि के सामने रखा गया है।

यह अत्यन्त प्रसन्नता के विषय है कि इस समय उदार और संकुचित दोनों दलों के हिन्दू नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र स्मृति को हरा भरा रखने के लिये एकत्रित हो गये हैं। यह और भी सौभाग्य की बात है कि सभी आर्य्य संस्कृति के मानने वाले उक्त स्वामी जी की कार्य्य प्रणाली को बुद्धि पूर्वक और अत्युपयोगी मानते हैं। ऐसी अवस्था में यह हमारा कर्तव्य है कि हम उन के कार्यों को उसी स्पिर्ट और उसी उत्साह के साथ चलायें जैसे वह स्वयं चला रहे थे।

हमने प्रस्तावों द्वारा, सम्राट सभाओं द्वारा, व्याख्यानों और लेखों द्वारा अपने जोश को निकाल दिया है। रहा सहा जोश धन संग्रह करने पर जाता रहेगा, स्वामी जी महाराज की स्मृति उन व्रतों को धारण करने द्वारा ही पूर्ण होगी जो उन के जीवन का रहस्य थे। आर्य जनता को ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी स्थिति में यदि हमने Compromise की स्पिर्ट से काम किया और उस व्रतपति के नाम से असली उद्देश्य को छोड़ दिया तो यह कृतघ्नता होगी और आने वाली सन्तानें हमें दोष का भागी और उन्नति के बाधक होने का कारण समझेंगी।

श्रद्धेय श्रद्धानन्द

(ले० श्री विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी')

श्रद्धेय श्रद्धानन्द ! आप की यही इच्छा थी। आप हमारे मध्य से गये परन्तु वीरों की नाईं गये। वैदिक धर्म की वेदी पर आप बलिदान होगये परन्तु मृतकों को बल-दान दे गये। आर्य जाति का मुख उज्ज्वल कर गये।

श्रद्धेय श्रद्धानन्द ! आज हम लोलुप आप के लिये रोते हैं। रोयें भी क्यों नहीं। हमें आपके तुल्य कोई निर्भीक, आदर्श सन्यासी सीना खोल कर गोलियां खाने वाला दृष्टि नहीं पड़ता। आपके अपूर्व त्याग का स्मरण करके कौन नेत्र भर कर न रोयेगा परन्तु आपके अपूर्व प्रोत्साहन के आधार पर कौन

आर्य उत्साह से आपके चरण चिन्हों पर पग न रक्खेगा ?

नवयुग-प्रवर्तक श्रद्धानन्द ! आपकी इच्छा बड़ी प्रवल थी । आप नवीनता के लिये जीर्ण शीर्ण शरीर को परित्याग करने के लिये उत्सुक थे । आपका मन उन उलझनों के सुलझाने के लिये उत्सुक हो रहा था जिनके पूर्ण करने के लिये आप नवीन शरीर की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे । परमात्मा भी आपके पक्ष में था । आपको चमत्कारिक साधनों द्वारा हम तुच्छ जनों के मध्य से चुन लिया और इस समय उसी का अपूर्व चमत्कार प्रगट हो रहा है ।

वृद्ध श्रद्धानन्द ! आपकी **नवीन जीवन** ज्योति की झलक भला कब दृष्टि पड़ेगी ? क्या हमारे यह अपवित्र नेत्र ही उस ज्योति को अवलोकन नहीं कर रहे हैं या आपने अभी अपना प्रकाश ही नहीं फैलाया है । भला श्रद्धेय ! हम कैसे मान लें कि आपकी **जीवन-सुरभि** गगन मण्डल में न फैलेगी जब कि आप वचन दे गये हैं कि मैं नवीन शरीर धारण “करूँगा” । मैं फिर भारत में जन्म लेकर शुद्धि द्वारा जाति व देश की सेवा करूँगा” । दयाधन दया करके दयानन्द की भांति शीघ्र उस विशाल ज्योति को प्रकाशित कीजिये जिसके लिये हमारे ये चर्म-नेत्र उत्सुक हो रहे हैं ।

श्रद्धेय स्वामी ! आपने वैदिक धर्म का संदेश इस पराधीन देश को सुनाया, हम नीच अयोग्य व्यक्तियों के सत्यमार्ग पर लाने का पूर्ण उद्योग किया, परन्तु हम नहीं सुधरे । क्या आप इसी से रुष्ट होकर हमारे मध्य से विचर गये । नहीं श्रद्धेय ! आप फिर परीक्षा लीजीये । हमें आशा है कि हम आपके गुरू दयानन्द का कार्य पूर्ण करने का उद्योग करेंगे ।

श्रद्धेय श्रद्धानन्द ! हम समझ गये । आपकी इच्छा थी अपने गुरू दयानन्द के दर्शनों की । आप दयानन्द के दर्शनों को उत्सुक होरहे होंगे । सम्भवतः यही मर्म था आप हमें छोड़ते भी क्यों नहीं । हम आपकी शिक्षाओं को भूल रहे थे । आपके चरण चिन्हों पर चलते हुये ठोकरें खाते थे । हमें वह मार्ग जिस पर चलने से कल्याण प्राप्त होना-कठिन प्रतीत होता था इसी लिये आप हम अनार्यों को परित्याग कर गये ?

श्रद्धेय श्रद्धानन्द ! कौन कहता है कि आप गोलियों से मरे ? घातक ने गोलियों को चला कर आपका महान्-महत्व प्रगट कर दिया । चारों गोलियां आप के चारों आश्रमों की श्रेष्ठता प्रगट कर गईं । और अन्त समय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्ध करने वाली चिर-संगनी बन गईं । आप का अन्तिम स्वर्गारोहण हमें जो चेतावनी देगया है उसे हम नहीं भूलेंगे ।

श्रद्धेय श्रद्धानन्द ! आपने आर्य-जाति में जीवन संचार किया । आप ने अपने तपस्या के जीवन द्वारा भारत को जागृत किया । आपने अछूतों को अपने विशाल हृदय से से लगाया । आर्य-जाति की पवित्र महिलाओं को विधर्मी-जनों से सुरक्षित किया ।

आपने अपने बिछुड़े हुए भाइयों को शुद्धि द्वारा फिर से वैदिक धर्म में मिलाया। आपने अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को परित्याग करके सम्पूर्ण जीवन धर्म हेतु लगाया।

श्रद्धेय श्रद्धानन्द! आपकी कीर्ति-ध्वजा आज गुरुकुल कांगड़ी की पवित्र भूमि तक ही सीमित नहीं है किन्तु आज उसे चहुं ओर सभी अवलोक कर रहे हैं। आप हमें कर्मण्य बना गये हैं। आप अपनी वैदिक धर्म-प्रकाशक ज्योति को नवीन रूप से प्रकाशित कीजिये।

बलिदान का जीवित रूप

हिन्दू महिला

(ले० श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति, सम्पादक 'अर्जुन')

ज्योति के बलिदान अङ्क के लिये लेखनी उठाते ही हृदय में जो भाव उठता है वह यह है कि संसार में आत्म-बलिदान का यदि कोई शरीरधारी रूप देखता हो तो वह हिन्दू महिला है। हिन्दू महिला ने सदियों से आत्मसमर्पण कर छोड़ा है। उसने अपनी शक्तियों का, और शक्तियों का ऐश्वर्य पुरुष जाति की भेंट चढ़ा छोड़ा है। यदि कोई जाति बलिदान का दृष्टान्त देखना चाहती है तो वह आये भारतवर्ष में, और आर्यजाति की कुल ललनाओं को देखे। उसका मस्तक आदर और सत्कार से झुक जायगा।

आत्मसमर्पण में क्या सन्देह है, और क्या न्यूनता है? 'सती प्रथा' अपने लाल धब्बे भारतीय इतिहास के दामन पर छोड़ गई है, परन्तु साथ ही वह संसार के सामने हमेशा के लिये इस बात का दृष्टान्त छोड़ गई है कि महिला कहां तक बलिदान कर सकती है? आज भी पश्चिम के तार्किक वातावरण से प्रभावित हुआ दिमाग़ सती दाह और मेवाड़ के साकों के इतिहास को पढ़ कर आश्चर्यित होता और पूछता है कि क्या यह सम्भव है। आज भी कवि भक्ति की पराकाष्ठा को तलाश करने के लिये झोली ले कर घूमता है तो उसे हिन्दू ललनाओं के द्वार पर ही भीख मिलती है। इस गये गुज़रे जमाने में वर्ण संकर द्वारा भ्रष्ट हुई जाति में भी यदि कहीं 'धर्म की मर्यादा और आत्मविस्मरण की आभा दिखाई देती है तो वह हिन्दू स्त्री है।

यह उत्तम और स्वर्गीय बलिदान किस की ख़ातिर होता रहा, और उसका क्या परिणाम हुआ? हिन्दू स्त्री का बलिदान पतिव्रतधर्म की वेदी पर होता रहा, और उसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दूधर्म और हिन्दू मर्यादा के नष्ट होने पर भी हिन्दू जाति की स्थिति विद्यमान है। एक प्रकार से पुरुषों की ख़ातिर स्त्रियों ने अपने आप को स्वाहा

कर दिया। पुरुष मनमानी करते रहे, अपने कर्तव्य से च्युत होते रहे, 'पत्नी व्रत' नाम का कोई शब्द ही उन के कोष में नहीं था, तो भी स्त्रियों में पतिव्रत धर्म को निभाया और आर्य जाति की रक्षा की।

जहां स्त्रियों के आत्म बलिदान ने हिन्दू-जाति की स्थिति की रक्षा की वहां यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि उन्हों ने अपने आप को बिलकुल मटिया मेट कर दिया। पुरुषो ने 'बलिदान का बदला पटा दिया कि उनको न पढ़ने लिखने का अधिकारी रखा और न जीवन स्वतन्त्रय का। अपने बल और उनके विजय से लाभ उठा कर पुरुषों ने स्त्रियों को अधिकारहीन और निर्बल बना दिया! जिसका परिणाम यह है कि स्त्रीजाति के बल पर आर्यजाति का भवन खड़ा है—वह दुष्टों का शिकार और उच्छृङ्खलता का औजार बन रही है।

यह कौन चाहेगा कि आर्यमहिला अपने ऊँचे पतिव्रतधर्म का त्याग करें। उस धर्म ने आज तक जाति की रक्षा की है, और आगे भी करेगा परन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि यदि स्त्री जाति पहले की भांति अपने आप को स्वाहा करके पुरुषों के धर्म की रक्षा करती रही तो वह इतना निर्बल हो जायगी कि धर्म की रक्षा भी न कर सकेगी। अपने आप को कितनी दूर तक क़ुर्बान किया जा सकता है, यह आज की हिन्दू स्त्रियों की दुर्दशा से मालूम हो सकता है।

मैं आर्य देवियों के सामने यह विचार रखना चाहता हूं कि वह आत्मबलिदान के आदर्श में कुछ परिवर्तन करें। पुरुषों को कामी बनने की छुट्टी देकर कोई स्त्री स्वयं पतिव्रता रहना चाहे तो शायद वह ऐसा कर सके पर उसे पुण्य न होगा। यदि वह पुण्य कमाना चाहती है तो उसे पतिव्रता बन कर पुरुष को पत्नीव्रत भी बनाना चाहिये। उसे अपनी शारीरिक मानसिक और आत्मिक स्थिति की ओर से उदासीन रहने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह अपनी उन्नति को भुलाकर अपने आप को सर्वथा पुरुषों के अर्पण कर देगी, तो परिणाम वही होगा जो आज हो रहा है। पुरुष रक्षा करे तो उसकी रक्षा हो, पुरुष अत्याचार करें तो वह सहन करे। या तो वह अत्याचार से बचने के लिये आग में कूद जाय और या पापियों के पँजे में आकर दर २ की भिखारिन बने, यह आत्म बलिदान की पराकाष्ठा है।

हमें आत्मबलिदान की नई व्याख्या करनी चाहिये। वही बलिदान उपयोगी और ईश्वर का प्यारा हो सकता है जो आत्मा और मन को बलिष्ठ करता है। हिन्दू महिलाओं को अपनी शक्तियों की रक्षा और उन्नति करते हुए ही आत्म बलिदान करना चाहिये, अपने आप को मिट्टी बना कर नहीं।

भानु—ज्योति आई है !

(सुधाकर दीक्षित—'सुधा')

चार गोलियों ने किये चार छेद छाती में कि,
चार दिशाओं में वेद-चरचा समाई है ।
घातक ने पिसतौल स्वामी पर दाग़ दी कि,
दीन ही के पाँव पे कुठार ये चलाई है ॥
यों ही घनघटा शोक व्योम में गरजती कि,
जाति को जिलाने बरसाने 'सुधा' लाई है ।
स्वामी जी के हृदय से रक्तधार बही है कि,
पाप—तम नाशी लाल भानु-ज्योति आई है ॥

सूर्यास्त

(ले०—श्रीकृष्ण पाण्डे)

इस समय संध्या होने में अधिक विलम्ब नहीं था । भगवान् दिनमणी दिन भर तक समस्त जगत में प्रकाश फैलाते रहने के कारण शिथिल बदन रथ बैठे थे, मानों किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों । घोड़े पसीने से तर बतर विश्राम के लिये छटपटा रहे थे ।

* * *

दिल्ली में एक मकान के दरवाजे पर आकर एक व्यक्तिने किवाड़ खट खटाये । भीतर से किसी ने पूछा—"कौन हैं" ?

बाहर से उत्तर मिला—"मैं स्वामी जी से मिलना चाहता हूं ।"

नौकर ने कहा—"वह अभी रोग सैय्या पर हैं, डाक्टरों ने उन से मुलाक़ात करने की मनाई करदी है । अतः अभी भेंट नहीं हो सकती ।"

आगन्तुक ने फिर आग्रह से मिलने की इच्छा प्रगट की।

भीतर से क्षीण आवाज आई "कौन है? आने दो।"

नौकर ने किवाड़ खोल दिये। और आगन्तुक को लेकर कमरे में प्रवेश किया। आगन्तुक ने देखा सामने ही पलंग पर एक वृद्ध सन्यासी शान्त भाव से बैठा है। सन्यासी ने आगन्तुक को इशारे से सामने बैठने का इशारा किया। वह चुप चाप बैठ गया। उसकी आंखें रक्तवर्ण थीं, मुख पर चंचलता और भय था। उसे देख कर मालूम होता था कि मानो हत्या स्वयं मनुष्य रूप धारण कर के आई हो।

वृद्ध ने मधुर स्वर में पूछा—"आने का प्रयोजन आगन्तुक ने कम्पित स्वर में उत्तर दिया—"धर्म चर्चा।" वृद्ध ने मधुर मुस्कराहट के साथ कहा—भला इस समय रूग्ण अवस्था में चार पाई पर पड़े २ कैसे धर्म चर्चा कर सकता हूं। फिर किसी समय आना तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा।"

इतना कह कर वृद्ध शान्त भाव से लेट गया। आगन्तुक चुप चाप बैठा २ उस के मुख को देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा—"मुझे प्यास लगी है।"

कमरे के बाहर नौकर खड़ा था, वृद्ध ने जल पिलाने का आदेश दिया।

नौकर ने आज्ञा पालन की।

आगन्तुक की प्यास कोई साधारण प्यास न थी वह खूनी प्यासा था—वह हिन्दुओं के दिल का खून पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहता था। पानी पीकर फिर कमरे में आते ही उसने अपने जेब से पिस्तौल निकाल कर फायर करने शुरु किये। लगातार चार गोलियां छोड़ी—सन्यासी के वक्षस्थल से रक्त बहने लगा। अस्फुट स्वर में वृद्ध ने कहा "परमात्मा तुझे क्षमा करे।

* * *

दिनमणी ने देखा कि हत्यारा और एक खून करके रंगे हाथों भागने की चेष्टा कर रहा है—

दिन कर का मुख लाल हो गया उनके चारों ओर रक्त की नदी बहने लगी उन्होंने अपनी अन्तिम किरण वृद्धात्मा पर डाली और उसे अपने साथ २ रथ पर बैठा लिया।

धीरे २ संध्या देवी के आगमन के साथ ही साथ सारे शहर में अन्धकार छा गया। जगह जगह मातम के चिन्ह दीख पड़े। बाल वृद्ध वनिता शोकाकुल हृदय से जिधर देखो उधर यही कहते नजर आ रहे थे कि सूर्यास्त गया हो।"

वीरो !

(श्री पं० लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी "मधु" शान्ति कुटीर")

आँखों से देखकर भी ऐसे भयंकर दृश्य,
टूक टूक होता न कलेजा क्या समाज का ?
होकर निलज्ज अब चूड़ियाँ पहिन लीं क्या ?
बैठे या नाक पर बगीचा लगा लाज का !!
लवा पक्षियों को देख शीश पर भी नाचते,
खौलता नहीं क्या ख़ून बिल्कुल ही बाज का ?
होने को वीरो ! बलिदान वीर-वेदिका पर,
क्यों नहीं बजाते हो डंका समर साज का ?

* * *

बलि वेदी पर

(लेखक— श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री वैद्य)

सौम्य गेरुये वस्त्रों पर गहरा लाल रंग कहाँ से आया ? त्याग के सौम्य मनोरथों पर क्रान्ति के लाल छींटे किसने डाले ???

ओ ! महाराज्यों की प्राचीन राजधानी ! इस उम्र में यह उतावली ! अभी फागुन कहाँ था ? ये अनन्त शैशव और कौमार्य क्या इस जीर्ण पन्थ के भिखारी की अपेक्षा सुन्दर न थे ?? अब तुम काली साड़ी पर जगमगाती जोत को लिये इसे सोता देखने आई हो ?

स्वागत ! ओ अक्षय यौवना ! स्वागत ! देखो, इस बूढ़े का सौन्दर्य, देखो-इस रक्त और गेरुये का मिश्रण ! और देखो अपना यह उल्लास ! पर इसे जगाओ मत ! ठहरो ! इस प्रशान्त मुख मण्डल को देखो-यह अनन्त

लोक में एक स्वप्न देख रहा है, वह देखता है-मथुरा का वह खण्डहर—जो हिन्दुत्व के विध्वंस की तरह वह ढहा पड़ा है, केवल ईंट और मिट्टी का ढेर। परन्तु वह द्वार-जिस पर खड़े होकर उस उन्नीसवीं सदी के अवतार ने उस अन्ध तपस्वी को आवाज़ दी थी, किसी तरह खड़ा है। तीन लाख आर्य वहाँ क्षणभर खड़े रहकर कुछ देख गये हैं। दो तीन श्वेत केश-पत्थर की तरह अचल खड़े-मानो उस वातावरण में एक विकल हाय सुन रहे हैं। दो ऊर्ध्वरेता तपस्वियों की सूक्ष्म छाया उन्हें संकेत से कुछ कह रही है। उस खण्डहर की धूल मिट्टी से ध्वनित होरहा है—वज्र सन्यासी !! वज्र सन्यासी !!! और वही वज्र सन्यासी-उसी प्राचीन द्वार पर खड़ा होकर वज्रध्वनि से पुकार रहा है— 'द्वार खोलो !' और २२ करोड़ हिन्दू द्वार खोले खड़े कह रहे हैं आओ ! हे वज्र सन्यासी ! आओ !! आज तुम्हारे लिए हमारे द्वार खुले पड़े हैं।

* * *

पुश्चली ! महाराज्यों की अभागी विधवा ! अपनी यह चमक, यह शृङ्गार, यह ठसक दिखाके-अब इस सुख स्वप्न से-सन्यासी को मत जगा और अगर तुझे प्राचीन गौरव पर कुछ गर्व हो-तो इस नींद में सो और यह सुख स्वरूप देख।

वैज्ञानिक संसार

१. बालों द्वारा पहिचान

अनपढ़ आदमियों से रसीद लेते समय अथवा किसी कारखाने इत्यादि में भरती करते समय कागज़ पर अंगूठा लगवाया जाता है। पुलिस वाले अपराधियों से पहिचान के लिये अंगूठा लगवाते हैं। कारण कि अंगूठे पर जो रेखाओं के चिन्ह हैं वह प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न २ प्रकार के होते हैं अतः इन चिन्हों द्वारा वह पहचाना जाता है। परन्तु अब वैज्ञानिकों ने व्यत्रिल सूचक एक और चिन्ह की खोज की है और वह सिर का कोई भी बाल है। इस से कोई व्यक्ति इतनी ही सुगमता और विश्वास से पहचाना जाता है जितना कि अंगूठे के चिन्हों से। वैज्ञानिकों का कथन है कि जिस प्रकार मछली के फनों पर छोटी २ चमकदार एक दूसरे के ऊपर चढ़ती हुई पंखड़ियां रहती हैं इसी प्रकार की पंखड़ियां बालों पर होती हैं और यह सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र द्वारा भली प्रकार से दिखलाई देती है। बाल के बीचों बीच एक खोखली नाली होती है जिस में रङ्ग भरा रहता है।

किसी भी दो व्यक्तियों के बालों की बनावट एक सी नहीं होती। बाल का माप, बीच की नाली का माप, चमकदार पंखड़ियों का माप और बालों के ऊपर का तल प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न २ होती है और इसी लिये बालों द्वारा उसका पहचानना बड़ा सुगम है।

२. दीमक से हानि

जब कि हम निश्चित भाव से अपने गृहों में आराम कर रहे होते हैं, हो सक्ता है कि सफेद रङ्ग का एक नन्हा सा जानवर जो कि दीमक के नाम से प्रसिद्ध है हमारे घरों की नींव को खोखला कर रहा हो। छतों की कड़ियों और शहतीरों को अथवा फर्श को यह जानवर इतना खोखला कर देते हैं कि थोड़े ही समय में यह भुरभुरे होकर मट्टी में मिल जाते हैं। एक बार की बात है कि इन्हों ने छत को इतना खोखला कर दिया कि ऊपर रखा हुआ पयानोबाजा धड़ाम से नीचे गिर पड़ा, एक और मकान में इसी तरह छत में से एक पलङ्ग गिर पड़ा। इस प्रकार सैंकड़ों रुपये की हानि हो जाती है।

इन विनाशकारी श्वेतांग शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इसका एक मात्र उपाय यही है कि मकानों के उन भागों को जो कि ज़मीन से छूते हैं इन चींटियों से बचाया जावे और यह ऐसी लकड़ी प्रयोग में लाने से हो सक्ता है जो कि क्रयोसोर नामक एक रसायनिक पदार्थ में भीगी रही हो और मकान की नींव के वह सब भाग जो कि मट्टी से छूते हैं सीमन्ट के लेप से ढांप दिये जायें।

३. केला

कितने ही अन्य फलों की अपेक्षा केला में पानी की मात्रा कम और पौष्टिक पदार्थ अधिक होता है; इन में खांड और निशास्ता जो कि दोनों ही शक्ति वर्धक द्रव्य है—खूब रहते हैं। जब कि केला हरा होता है तो इस में सौ भाग पीछे लगभग १२ भाग निशास्ता रहता है, जो कि ज्यो २ फल पकता है खांड में बदलता रहता है। इस लिये अधपके केले न खाने चाहियें। जब कि उस के छिलके पर से हरा रंग सब दूर हो जाय तब यह कच्चे खाये जा सक्ते हैं क्यों कि अब इस में निशास्ता बहुत थोड़ी मात्रा में रह गया है। वास्तव में तो केला उस समय खाने योग्य होता है जब कि उस का छिलका पीला पड़ जाय और उस पर भूरी धारियां या धब्बे बन जायें। उस समय इसका गूदा सर्वथा परिपक्व अवस्था में होता है और इसका स्वाद भी खूब बढ़िया होता है, न केवल इतना ही वरन इस अवस्था में यह हज़म बड़ी जल्दी हो जाता है।

खांड के अतिरिक्ति केले बहुत से अन्य फलों की अपेक्षा प्रोटीन–पट्ठे और मांस बनाने वाले द्रव्य भी अधिक रहते हैं। वैद्यक अनुसन्धान समिति की गत रिपोर्ट से पता चलता है कि इस में वाईटेमिन, ए और सी–वह द्रव्य जो कि किसी भी भोज्य पदार्थ को वास्तविक में पुष्टि कारक और हज़म होने योग्य बनाते हैं–भी इस में रहते हैं अतः संतरों के साथ केले तीनों प्रकार की वाईटेमिन प्राप्ति का बड़ा उत्तम साधन है।

४. क्या स्त्रियां पुरुष बन सक्ती है

अनेक लड़कियां चाहती है कि वह लड़का क्यूं न उत्पन्न हुईं। एक अङ्गरेज़ी साप्ताहिक

के कथनानुसार रूस के एक डाक्टर ने इस समस्या को हल कर लिया है। भास्को के डायस्टोई विस्ती हस्पताल के सर्जरी विभाग के प्रमुख डाक्टर गोलैन्येट्रिस्की का यह दावा है कि उन्होंने एक नवीन प्रकार के गिल्टियों के परिवर्तन में सफलता प्राप्त की है जिस के द्वारा वह साधारण स्त्री और पुरुष के मुख्य २ शारीरक और वैयक्तिक लक्षणों और स्वभाव को बदल सके हैं।

डाक्टर महोदय ने १९२६ में कोई आधा दर्जन व्यक्तियों पर इस प्रकार के आप्रेशन किये और उन से निकले परिणाम की यथार्तया को जांचने के लिए यह एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक समिति के सुपर्द कर दिया गया है।

ऐनाड़ौड नाम की एक १९ वर्षीय बाला पुरुष बनना चाहती थी। उस के शारीरक लक्षण और मानसिक प्रवृत्तियां पहिले से बहुत कुछ पुरुष सदृश थे। डाक्टर ने उसपर नौ वार आप्रेशन किया और उस के समस्त गिल्टी व्यूह को बदल दिया। डाक्टर के शब्दों में इस का यह परिणाम हुआ कि उस का व्यैक्तितत्व बिल्कुल बदल गया और उस में पुरुषों के सब गुण आगये। अब वह विक्टर नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरी घटना जिस का वर्णन किया गया है हदीरजा ऐम नाम की छब्बीस वर्ष आयु वाली एक अध्यापिका से सम्बन्ध रखता है और अब उस एक रूपवती युवती से विवाह हो गया है।

तीसरा उदाहरण एक पुरुष का है जो कि स्त्री बना चाहता था। डाक्टर का कथन है कि उस को इस में सफलता हुई और अब उस का नाम मेरी है।

मेरी ऐल नाम की २३ वर्ष की एक और स्त्री थी जिस के सब लक्षण और प्रकृतियां तो स्त्रीयों की थीं परन्तु उस के मानसिक भाव पुरुषों तुल्य थे। वह अपने मन के अनुकूल ही बनना चाहती थी। डाकृर गोलैन्येटस का दावा है कि उस की इच्छा अनुसार उस का शरीर मानसिक भावों के अनुकूल पुरुषों का सा कर दिया गया। अब वलैडियर नाम रख कर वह सेना में भरती हो गया है। उसके गुलाबी गाल और लम्बा मुलायम चेहरा ही उस के पुराने लक्षणों को प्रगट करते हैं।

वैज्ञानिक का यह दावा नहीं कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बना सक्ता है। उसका कथन इतना ही है कि जिन स्त्री या पुरुषों में लिंग सम्बन्धी लक्षण अनिश्चित से हैं उन को वह इच्छित निश्चित रूप दे सक्ता है

५. निद्रा रोग

हमारे पाठकों ने निद्रा रोग का नाम सुना होगा। यह अफ्रीका में अधिक कर के पाया जाता है। इस का रोगी कई २ महीनों और कभी २ वर्षों तक सोया रहता है। इस का जो दुष्परिणाम होता है वह सहज में ही विचार में आ सक्ता है। अफ्रीका के उस भाग में जो कि भूकक्षा के निकट बसा हुआ है। आज कल इस रोग का बड़ा ज़ोर है। यह भारत के प्लेग और हैजे की तरह फैला हुआ है। फ्रैञ्च सरकार इस के आक्रमण को रोकने का भरसक यत्न कर रही है। कुछ

एक जिलों में तो यह इतना फैला कि ९५ से लेकर १०० प्रति सैकड़ा तक जन संख्या इस से बीमार पड़ी है। कारखाने बन्द हो गये हैं गांव उजड़ गये हैं। एक फ्रैन्च डाक्टर का मत है कि निद्रा रोग के बड़े २ आक्रमण समाजिक और राजनैतिक उथल पुथल का परिणाम होते हैं। जब जाती के सरदार अपने अनुयाईयों से अधिक कर बसूल करते हैं, जातियों की आपस में प्रति द्वन्दता बढ़ जाती है, और जातियों का अपना झगड़ालू स्वभाव अधिक ज़ोरों पर होता है तो एक अराजकता छा जाती है। इस का फल स्वरूप खेती बाड़ी बन्द हो जाती है, नियमत ग्रामीण जीवन नष्ट हो जाता है और मनुष्य अपने वैरियों के डर से मारे २ जंगलों में छुपते फिरते हैं ऐसी अवस्था में उनकी रोग रोकने की शक्ति का ह्रास हो जाता है। टज़ी-टज़ी नास की मक्खी— जो कि निद्रा रोग के कीटाणु लिये फिरती है— के काटने का मुकाबला करने की शक्ति से वञ्चित हो जाते हैं और इस रोग का तुरन्त शिकार हो जाते हैं। फ़ान्सीसियों ने १९२६ में इस रोग के बिरुद्ध बड़े ज़ोर से काम किया था इस का इलाज अटाक्सल नाम के रसायनिक द्रव्य का इन्जैकशन बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। रोग का आक्रमण रोकने के लिये सब झाड़ियों को काट कर जला देना, टाँगों पट्टियों द्वारा सुरक्षित रखना, मसहरी का उपयोग और नदियों में चलने वाली नौकाओं को चारों ओर से जाली से ढापे देना उचित है। शासन सम्बन्धी उपायों में शासकों ने गांवों को अधिक स्वास्थप्रद स्थान पर बदल दिया, बीमारों को ऐसे स्थान पर एकत्र कर लिया जहां कि सुगमता से उनका इलाज हो सके, मज़दूरों की ठीक प्रकार जांच भाल की गई और आने जाने के कड़े नियम बनाये गये थे। अब भी इन तीन प्रकार के उपायों का सहारा लिया जा रहा है।

६. त्वचा-रहस्य

स्नान से हमें क्यों शक्ति मिलती है

बहुत से व्यक्ति केवल स्वभाव वश स्नान करते हैं अथवा उस आराम और आनन्द के लिये जो इस से प्राप्त होता हैं स्नान करते हैं। यह बहुत कम को ज्ञान है कि स्नान और हमारे व्यक्तिक स्वास्थ का आपस में क्या सम्बन्ध है।

हमारे शरीर पर जो त्वचा अथवा चमड़ा है इस का कार्य केवल मांस और मज्जा की रक्षा करना ही नहीं है बस, यह शरीर का ताप-नियामक यन्त्र भी है। स्वास्थ की अवस्था में शरीर का ताप एकसा रहता है चाहे गरमी हो या सरदी, चाहे कोई व्यक्ति नङ्गा रहे चाहे ढेरों कपड़ों में अपने को छिपा रखे। त्वचा अपने रोम कूप (Pores) तथा मज्जा तन्तुओं द्वारा स्वयमेव शारीरिक ताप का ध्यान रखती है।

कोई व्यक्ति दौड़ता है अथवा धूप में बाहर रहता है। शरीर तप जाता है। मज्जा तन्तु इस की सूचना त्वचा को जा देते हैं, और इस के छोटे २ रक्त पात्र फैल जाते हैं जिस का परिणाम यह होता है कि जल— पसीने के रूप में— बाहिर निकल आता है।

त्वचा पर से यह जल शारीरिक ताप द्वारा भाप बन कर उड़ जाता है और त्वचा के साथ रहने वाले खून की गरमी कम हो जाती है अतः अब वह ठंडा होकर भीतर को चला जाता है। और इस प्रकार शरीर का ताप फिर क्रमवत हो जाता है।

दूसरे समय वही व्यक्ति एक सरद् कमरे में चुप चाप बैठा रहता है। उस के शरीर से कुछ ताप निकल कर समीप वर्ती वायु को जा मिलता है। यदि त्वचा में ताप नियामक शक्ति विद्यमान न होती तो इस प्रकार शारीरिक ताप निकलते निकलते शरीर सर्वथा ठंडा पड़ जाता। परन्तु इस घटना की सूचना त्वचा को देते हैं और नन्हें २ रक्तपात्र सुकड़ने लगते है उस का परिणाम यह होता है कि जब शरीर के ऊपरी भाग पर ठण्डा होने के लिये एक की मात्रा न्यून हो गई। तन्तु स्नायु-जाल को भी इस की सूचना देते हैं और वह कांपने और हिलने लग पढ़ते हैं, इस से भी और गरमी पैदा होती है।

यदि त्वचा के रोम कूप बिलकुल बन्द कर दिये जायें जैसा कि तजरुबे के लिये वारनिश द्वारा एक बालक के कर दिये गये थे, तो व्यक्ति थोड़े ही समय में मृत्यु को प्राप्त हो जाय और इस का एक मात्र कारण ताप नियामक यन्त्र में बाधा पड़ना है।

साधारणतया हमारे शरीरों से पसीना सदैव निकलता रहता है जिस का हमें पता नहीं होता। परन्तु यदि हम रबड़ का कोट पहन लें अथवा बड़े मोटे और भारी मोजे और जूते पहन लें तब हमारे वस्त्र और मोजे गीले हो जाते हैं।

सो हम इस लिये स्नान करते हैं कि इस अज्ञात पसीने का शेष हमारे शरीर से हटा दिया जाय, (२) रोम कूप का मुंह खुला रहे; और (३) अपने आराम के लिये शरीर के साथ २ चहुं ओर एक विशेष आनन्ददायक ताप बनी रहे—गरम जल का स्नान शरीर में ताप अधिक करने के लिये और शीत जल का उस को कम करने के लिये। गरम जल से किया हुआ स्नान श्रम से थके हुये व्यक्ति को बड़ा आराम पहुंचाता है और ठंडे जल से किया हुआ स्नान बहुधा हलके २ ज्वर से पीड़ित प्राणि को निद्रा लाने में सहायक होता है।

जितना शरीर छोटा होता है अपेक्षया उस से अधिक ताप बाहर निकलता है, इसी लिये हम सुकुमार नन्हे बच्चों को अधिक ठंड अथवा हवा से जो कि अज्ञात पसीने को बड़ी जल्दी उड़ा देती है बचाते हैं; और और हम उस को इतने ठंडे जल से नहीं न्हलाते जिस का ताप उस के शारीरक ताप से बहुत कम हो।

कोमल व्यक्ति बहुधा ठंडे जल से स्नान करके कष्ट पाते हैं, उस के लिये या तो उन्हें तुरन्त पर्याप्त वस्त्र पहन लेने चाहिये या भली प्रकार कंप कंपी द्वारा शारीरक ताप को ठीक कर लेना चाहिये। सुदृढ़ शरीर पहलवान इस के विपरीत ठंडे जल से स्नान कर निज शरीर की ताप कम करने की आवश्यकता

को सहायता देता है आगे इस प्रकार स्वच्छ और स्वस्थ रहने का यत्न करता है।

स्नान के लिये कोई विशेष नियम नहीं। परन्तु समाज चाहता है कि पसीने की दुर्गन्ध से उस के नाक को गन्दा न किया जाय, अन्यथा पसीने से भीगा हुआ व्यक्ति अपने शरीर को केवल पोंछ कर ही काम चला सकता है।

कुसुमोद्यान

१. धर्म और राजनीति

प्रत्येक देश में जो कि आज कल स्वाधीन है राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये उद्योग के साथ साथ वरन उससे पहले धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये उद्योग होता रहा है। इङ्गलेण्ड में Reformation (धार्मिक सुधार) और Renaissance (राजनैतिक उद्धार) आपस में पर्यायवाची शब्द बन गये थे। राजनैतिक पराधीनता तो एक बाह्य लक्षण है, रोग का बीज तो सामाजिक परिपाटी के अन्तरीय कार्यक्रम में है। समाज के विचारों में उन्नति की आवश्यकता है, जिससे कि उसके प्रत्येक विभाग को वर्णाश्रम व्यवस्था में उचित स्थान मिल सके। दलित जातियों को उनका उचित स्थान दिये बिना कोई अनभ्यस्त ही स्वराज्य प्राप्ति की इच्छा कर सकता है। एक विचारवान राजनैतिक उन्नति की इच्छा रखने वाले के लिये, उसके सबको बराबरी के अधिकार दिलवाने के संग्राम में विधवाओं की दुरावस्था और उस बालका की विचारणीय दशा जोकि या तो अपने पिता के किसी सांसारिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए या अपनी माता के झूठे धार्मिक असंयत चपलता की बालविवाह रूपी वेदी पर बलिदान कर दी जाती है, कोई कम महत्व का प्रश्न नहीं है। जनता को ब्राह्मणों और मुल्लानों की आधीनता से निकाले बिना —जोकि उनको झूठ मूठ विश्वास में जकड़े हुये, कभी भी स्वाधीनता के मार्ग पर नहीं चल सकी। दुराचार एक ऐसा भयानक घुन है जोकि समाज की जड़ों को खोखला कर रहा है। उन कुरीतियों के अतिरिक्त जिनका कि पराधीन जातीयों में विद्यमान होना आवश्यक है। ऐसी अनेक कुप्रथायें और घरेलू कुरीतियाँ हैं जिनके लिए जनता स्वयं उत्तरदायी है।

पंडित चमूपति जी यह नहीं कहते कि देश तभी राजनैतिक अधिकार प्राप्ति के योग्य होगा जबकि वह अपनी धार्मिक और सामाजिक अवस्था को सर्वथा उन्नति के शिखर पर पहुँचा लेगा। कोई भी स्वाधीन देश धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों से सर्वथा मुक्त नहीं है। वह केवल उसी बात पर बल देते हैं कि क्योंकि पराधीन जाति

गिरी हुई राजनैतिक अवस्था के कारण जिस से कि उसने उठना है उसको इस घोर संग्राम में अधिक आत्मिक बल की आवश्यकता है। स्वाधीन देशों में ऐसे व्यक्ति भी राजनैतिक नेता रह सकते हैं जिनका आचार सर्वथा दोष रहित न हो; परन्तु पराधीन देशों में नेता के लिये उच्चतम सदाचार ही परमावश्यक गुण है। यदि धर्म नहीं तो वह कौनसी शक्ति है जो कि जाति को धार्मिक और सामाजिक असमनाता को दूर कर सकती है।

(वैदिक मैगज़ीन)

२. जातीय हीनता का मिथ्यावाद

डाकृर फ्रैंज़ बोआज़ कोलम्बया विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान के प्रोफैसर हैं, "जातीय अपकर्षता का मिथ्यावाद" शीर्षक लेख में जो कि 'Current History' में छपा है इस प्रकार लिखते हैं—

वह सब कल्पनायें त्याज्य हैं जिनका आधार योरोप और ऐशिया की कुछ एक जातियों को हीन बतलाया है। इस विचार का कोई आधार नहीं कि अमेरिका में योरोप के सब तथा ऐशिया के कतिपय भागों से मनुष्यों के आने के कारण सब प्रकार के एक-मिश्रण द्वारा अमेरिकन जाती हीन होती जायेगी। सब ऐतिहासिक, प्राणिभाग सम्बन्धी तथा सामाजिक विचार हमें इसी परिणाम पर पहुँचाते हैं कि अमेरिका में आजकल संमिश्रण का बली कार्य अधिक विस्तार से हो रहा है जिसका फल स्वरूप योरोप की आधुनिक जातियाँ हैं।

३. कैनाडा और चीनीयुद्ध

कैनाडा के प्रधान सचिव ने यह घोषणा की है कि इङ्गलैंड और चीन के युद्ध में कैनाडा अपनी सेना भेजेगा। प्रधान सचिव ने बड़े ही मार्के की घोषणा की है, उन्होंने कहा है कि, "किसी भी देश में विदेशियों की या स्वदेशियों के जान माल की रक्षा करना प्रथमतः उस देश में प्रतिष्ठित सरकार का कर्तव्य है। चीन में गृह कलह कई वर्षों से जारी है किन्तु यह सब को स्वीकार करना होगा कि इतने दिनों में विदेशियों की हत्या की संख्या अगण्य सी है। जहाँ तक मालूम है अब तक में एक विदेशी ही मारा गया है और इस हत्या के सम्बन्ध में यह नहीं सिद्ध किया जा सका कि उद्देश्य राजनैतिक था। इतना होते भी हत्याकारी एक चीनी सैनिक द्वारा मार दिया गया था" सबसे मार्के की बात जो कैनाडा के प्रधान सचिव ने कही है यह है कि "वर्तमान चीनी राष्ट्रीयदल विदेशी नागरिकों या उनके स्वत्वों के लिए खडगहस्त नहीं हैं, वह है विरोधी विदेशियों के विशेष अधिकारों और स्वत्वों का, वह चाहता है कि चीनी भूमि और चीनी प्रबन्ध पर जोकि विदेशियों ने अधिकार जमा रखा है वह दूर किया जाय। चीनियों के इस ध्येय से कैनाडा को पूर्ण सहानुभूति है। ऐसी दशा में कैनाडा की सरकार सेना भेजना मुनासिब नहीं समझती, और अगर कभी भेजना आवश्यक प्रतीत हुआ तो इस सम्बन्ध में पार्लीमेंट की आज्ञा ली जायगी।"

४. अमरीका में अन्याय पूर्वक बलात् जलाना

१९२६ में अमरीका संयुक्त राज्य में ३४ मनुष्यों को जबरदस्ती जलाया गया। इस घृणित व्यवहार में फ़्लारीडा प्राँत का नम्बर सबसे प्रथम है जहाँ कि ९ आदमी जलाये गये; टैकसिस और मिससिस सभी उससे उतर कर हैं जहाँ कि क्रमशः चार और तीन जलाए गये; अर्कीनसस, कैरोलीना और जार्जिया प्रत्येक में तीन; लूइसाना और टैनैसी प्रत्येक में दो और कैन्टुकी, न्यूमैसीको और वर्जीनीया प्रत्येक में एक। साधारणतया यह समझा जाता है कि जनता केवल उन हबशियों को ही इस प्रकार जलाती है जोकि गोरी स्त्रियों को किसी प्रकार तंग करने का अपराधी हों। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इन ३४ में से ३ गोरे थे, १ हिन्दुस्तानी और २ हबशी स्त्रियाँ। तीन आदमियों को एक वर्ष पुरानी नरहत्या के अपराध में जलाया गया इनमें से एक को न्यायधीश ने निरअपराध ठहरा कर छोड़ दिया था और दो का अभी पुनः विचार होना था; तीन को ऐसे अपराध के बदले में मारा गया जोकि उन्होंने किया ही नहीं था और एक को गोरे अफ़सरों ने ऐसी अवस्था में गोली से मार दिया जब कि उस के बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं।

यह है अमरीका की सभ्यता जिसका उसे इतना गर्व है। यह जानने योग्य है कि वहाँ की सरकार ने इन पाशविक अत्याचारों के कर्त्ताओं को क्या दण्ड दिया।

५. चीन की वर्तमान परिस्थिति और भावी महायुद्ध

“चीनी विद्यार्थी मासिक” के सम्पादक श्रीयुत थामएमिङ्ग-हेङ्ग चाङ्ग, इङ्गलैंड और और चीन के विरुद्ध युद्ध मार्ग पर” शीर्षक लेख में एक स्थल पर लिखते हैं—

इङ्गलैंड अपना जहाज़ी बेड़ा और २१ सहस्र सिपाही शङ्घाई में भेज रहा है, और अमरीका इसको पसन्द करता है क्योंकि उस ने इसके विरुद्ध किसी प्रकार की आवाज़ नहीं उठाई परन्तु यदि जापान मञ्चोरिया में इसी प्रकार अपनी सेना भेजने का निश्चय करता तो अमरीका का व्यवहार इसके विपरीत होता। और यह भी न भूलना चाहिए कि यदि एकबार ब्रिटिश बेड़ा और सेना चीन में पहुँचे पीछे इङ्गलैंड कभी भी अपनी इच्छा से उन्हें न हटायगा। यह वहाँ पर कुछ देर अवश्य ठहरेंगे। बाक्सर विद्रोह के पीछे यही अवस्था हुई थी और रूस की सेना ने मञ्चूरिया खाली करने से इन्कार कर दिया था चीनी स्थल पर एक बड़ी भारी ब्रिटिश सेनाओं के चीनी समुद्रों में एक बड़ा भारी ब्रिटिश बेड़ा जापान के लिये भीषण भयप्रद है। रूस भी इसको पसन्द नहीं करेगा। फ्राँस किसी ऐसे कार्य का समर्थन न करेगा जो कि प्रशान्त महासागर में ब्रिटेन को अधिक बलशाली बना दे। अमरीका को भी पीछे पता लग जायगा कि पूर्व भूभाग में इङ्गलैंड का अनुचर होकर रहने में उसे कोई लाभ नहीं। पूर्व में यह अन्तर जातीय ईर्षा और अविश्वास कहीं एक और महायुद्ध को

उत्पन्न करने के साधन न हों जोकि संसार की शान्ति और सभ्यता के लिये गत महायुद्ध से कहीं अधिक भयंकर न सिद्ध हों।

(माडरन रिव्यू)

६. भारत की जन शक्ति

किसी भी राष्ट्र की सब से बड़ी पूंजी उसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष हैं जिनकी रक्षा और प्रयोग शीलता पर ही उसकी उन्नति और वैभव का आधार है। जन-शक्ति मानुषी साधनों का वह भाग है जिसके द्वारा परोक्ष अथवा अपरोक्ष में सामाजिक उत्कर्ष की रचना होती है। इसमें आचार, धर्म, कला और अर्थ सम्बन्धी सब प्रकार की उन्नति आजाती है। कभी २ जन-शक्ति से केवल उस शक्ति का ही अभिप्राय लिया जाता है जो कि राष्ट्रीय धन को बढ़ाने से ही व्यय होती है और इस अर्थ में जन-शक्ति और मज़दूर प्रायः समानार्थक शब्द बन जाते हैं। निस्सःन्देह मज़दूरी की इस अंश में जितनी अधिक महत्ता है वह कहने की आवश्यकता नहीं। परन्तु अन्य सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में लगी हुई जन-शक्ति का कार्य भी कम महत्व का नहीं। मनुष्य की शारीरिक और आत्मिक शक्तियों का बिकास और उनका उपजाऊ शक्ति में परिवर्तन करना ही समाज का ध्येय है।

इन विचारों से श्रीयुत रजनी कान्त दास माडरन रिव्यू में अपने लेख को आरम्भ करते हैं। इस महत्वपूर्ण लेख में अनेक तालिका इत्यादि देकर इसको सरल और मनोरञ्जक बना दिया है। १९२१ में संसार की जनसंख्या १ अर्ब और ८५ क्रोड़ थी और भारत की ३१ क्रोड़ और ८० लाख अथवा १७ प्रति शतक। १५ और ६० वर्ष के बीच का आयुभाग ही सामाजिक निर्माण में में अधिक उपयोगी होता हैं। इस विचार से भारत की जन-शक्ति केवल १७ क्रोड़ ८० लाख की जनसंख्या पर आ ठहरती है। यह समस्त जन-शक्ति का ५६ प्रतिशतक है जिसमें ९ क्रोड़ २० लाख पुरुष और ८ क्रोड़ ६० लाख स्त्रियाँ हैं। यह ठीक है कि देश के विस्तार को ध्यान में रखते हुए हमारी जन-शक्ति चीन को छोड़ कर अन्य सब देशों से बहुसंख्यक है, परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से फ्राँस, इङ्गलैंड अमरीका, बैलजियम; स्पेन जर्मनी, जापान, इटली सब हम से बढ़कर हैं, केवल रूस ही हमारे पीछे आता है। लेखक ने इसके कारणों पर बड़ी योग्यता से विवेचना की है।

इनमें से एक कारण हमारी आयु की दीर्घता की कमी है। यदि इसकी औसत ५० वर्ष मान ली जाय तो जहाँ इङ्गलैंड, अमरीका, नार्व इत्यादि मैं यह १०० से १११ वर्ष तक और जापान, इटली, जर्मनी; फ्राँस में ८८ से ९७ वर्ष होती है वहाँ भारत में केवल ४५ वर्ष ही होती है।

योरोपीय देशों में औसत जन्म और मृत्यु संख्या १९२१ में २·५३ और १-६६ प्रति शतक थी वहाँ भारत ३-२२ और ३-०६ है इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ अन्य देशों में जीवित मनुष्यों की औसत संख्या ८६ है

वहाँ भारत में यह केवल ·१६ है। दूसरे शब्दों में वहाँ अधिक मनुष्य पैदा होते है और मात्रा से अधिक मरते भी हैं। हमारे देश की ५० लाख मातायें अनावश्यक प्रसव वेदना और बालकों के पालन-पोषण का व्यर्थ भार उठाती हैं। यदि हमारे देश में भी मृत्यु संख्या की औसत ३. ०६ से घटाकर १. ६७ होसके तो बिना जन संख्या को घटाने के जन्म संख्या में ३. २२ प्रतिशतक से १. ६७ तक कमी की जा सकती है और ४६ प्रतिशतक स्त्रियों का माता बनने के कष्ट और उत्तरदायित्व से बचाया जा सकता है।

हमारे देश में वृद्ध और पेन्शन प्राप्त मनुष्यों की प्रतिशतक संख्या केवल ३.६ है अन्य देशों में यह कहीं अधिक ४. ३ से लेकर ७. ७ तक है। अतः हम अपने को नयोवृद्ध हित चिन्तकों की विद्या, बुद्धि, तजुरबे से लाभ उठाने से वञ्चित रहते हैं।

हमारी जन-शक्ति के ह्रास का एक बड़ा भारी करण बालमृत्यु की औसत मात्रा की अधिकता है। भारत में १५ वर्ष से कम आयु के मनुष्य समस्त जनसंख्या के मुकाबले में ३६ प्रतिशतक है और अन्य देशों में यह मात्रा ३३ के लगभग है। अतः हमारे देश में उन मनुष्यों की संख्या बहुत है जिनकी मृत्यु की अधिक सम्भावना है। जहाँ इङ्गलैंड में १०० पैदा हुये बालकों के पीछे केवल ७. ५ मृत्यु को प्राप्त होते हैं, जापान में १६. ६ वहाँ भारत में यह संख्या १८. ४ है। पुनः हमारे देश में बच्चों की पढ़ाई का भी समुचित प्रबन्ध नहीं। हमारे देश में ५ से १० वर्ष के बच्चों की संख्या ४ क्रोड़ ७ लाख है परन्तु केवल ६० लाख ही शिक्षा पाते हैं अथवा १२ प्रतिशतक इसके मुकाबले में इङ्गलैंड और स्काटलैंड में यह संख्या ८७ प्रतिशतक डैन्मार्क में ६१, स्वीडन में ६६ और आस्ट्या में ८३ हैं।

हमारे देश में काम की कमी है इसलिये अधिकांश मनुष्य निकम्मे रहने पर बाधित होते हैं। पञ्जाब में ज़िमीदार ७ महीने बिना काम के रहते हैं। अन्य प्रान्तों को मिलाकर यह निकम्मा रहने का समय ६ से ७ मास तक बनता है। औसत से वर्ष में प्रत्येक भारतीय के सालभर में ४ मास मारे जाते हैं अथवा ३ क्रोड़ पुरुष और १ क्रोड़ ६० लाख स्त्रियें निकम्मी रहती हैं।

बीमारी, अविद्या और नातजुरबेकारी हमारी जन-शक्ति के ह्रास के अन्य कारण है। लेखन के हिसाब से १७ क्रोड़ ८० लाख की संख्या में जन-शक्ति में से भारत का प्रतिवर्ष का नुकसान इस प्रकार है—

नुकसान के कारण	पुरुष संख्या	स्त्री संख्या	योग
कार्य की कमी	३ क्रो. ६ ला.	१ क्रो. ५३ ला.	४ क्रो. ५९
रोग और बीमारी	१ " ५३ "	१ " ७६ "	३ " २९ "
अविद्या, अशिक्षा और नातजुरबेकारी	१ " ५३ "	१ " ७६ "	३ " २९ "
व्यर्थ मातृत्व		२५ लाख	२५ "
योग	६ " १२ "	५ " ३१ "	११ " ४२ "

लेख का साराँश यह है कि भारतवर्ष अपने जन साधनों में जहाँ अतुल सम्पत्ति का स्वामी है, वहाँ भर संसार में यह सब से निकम्मा,, अशिक्षित और असहाय देश है। सामाजिक, राजनैतिक और व्यवसायिक

क्षेत्र में इसके पीछे रहने का मुख्य कारण अपनी जनशक्ति का उचित उपयोग करने की अयोग्यता है इसकी सन्तानों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को मुख्य भाग अविकसित ही और उसकी दो तिहाई जन-शक्ति से कोई काम नहीं लिया जाता। अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा यहाँ के स्त्री पुरुषों के जीवन का उपजाऊ भाग केवल ३० प्रतिशतक है। इसकी मानुषी सम्पत्ति का ह्रास ही इसकी अध्यात्मक, धार्मिक तथा आर्थिक अधोगति का कारण है।

परोक्ष में भारत का संसार में उच्च स्थान है इसके तीन कारण हैं— (१) इसकी प्राचीन सभ्यता की कीर्त्ति अब भी कुछ मान रखती है; इसके क्षेत्रफल और जनसंख्या का अधिक होने के कारण यह कच्चे माल की खरीद और तैय्यार वस्तुओं की खपत के लिये खत्तम पात्र है और (३) इसके शासन व्यवसाय और शिक्षा का एक उच्च और सम्पत्तिशाली जाति के आधीन होना।

परन्तु प्राचीन सभ्यता के गीत कब तक साथ देंगे। इसके स्त्री पुरुषों को आधुनिक जीवन संग्राम में साथ देने में वह असमर्थ हैं। इसके कच्चे माल की बहुतायत से जहाँ अन्य देशी वासियों को ही लाभ होता है, भारत-वासियों की तो इससे समृद्धि नहीं होती। विदेशी राज देश के विकास में न तो सहायक हो सका है और न यह कोई गर्व कीबात है।

भारत के लिए जन-शक्ति की रक्षा और उसका उपयोग ही बड़े महत्व का प्रश्न है। इस देश के निवासियों की शारीरिक और मानसिक उन्नति पर ही जातीय समृद्धि, राजनैतिक उन्नति और सामाजिक उत्कर्ष निर्भर है।

७६ किसान और चर्खा

श्रीयुत रामगोपालाचार्य मैसूर इकोनामिक जर्नल में लिखते हैं।

कृषि रायल कमीशन इस बात की भी खोज में है कि हमारे किसानों के लिये किसी ऐसे व्यवसाय का अनुसन्धान करे जो कि उस के खाली समय में किया जा सके। इस काम के लिये चर्खे के सम्बन्ध में जो भी दावे किये गये हैं तजरुबा उन सब की पुष्टि करता है। ग्राम वासियों की दरिद्रता को दूर करने के लिये इस से बढ़ कर कोई उपाय नही कि उन के सामने से शराब पीने की तृष्णा को हटाया जाय और चर्खे द्वारा कातने का पुनः उद्धार किया जाय

इस प्रान्त के उन स्थानों में जहां कि वर्षा कम होती है हाथ से कातना ही एक मात्र व्यवसाय है जिस से कि बहु संख्यक कृषक अपनी आमदनी को बढ़ा सके हैं। अन्य व्यवसाय जिन की ओर संकेत किया जा सका है विशेष २ स्थानों पर परिमित मात्रा में ही चल सके हैं उन में से कितने ही इस लिये नहीं चलाये जा सके कि उन के द्वारा बने हुई वस्तुओं की बिक्री के लिये कोई निकट वर्ती उपयुक्त मांग अथवा स्थान नहीं है। पुनः वह ज्यादा किसानों में आवश्यक दक्षता के अभाव, विशेष सीखने के लिये विशेष प्रबन्ध की शिक्षा, इच्छा,

और प्रारम्भिक व्यय के कारण भी अपनाये नहीं जा सक्ते। चरखा ही एक ऐसा व्यवसाय है जो की ग्राम वासियों को खाली समय में काम आ सक्ता हैं क्यों कि यह उन की परिमित दक्षता और अवस्था के अनुकूल है और उन के खाली समय की दशा के सर्वथा अनुकूल है क्यों कि यह सरल है; सहज में सीखा जा सक्ता है और जब चाहो इसे उठा कर रख सक्ते हैं इस लिये मुख्य व्यवसाय में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता।

इस प्रत्येक वर्षा हीन स्थान पर जहां कि उत्तम प्रबन्ध हो सका है इस का अधिक प्रचार हो रहा है यह इस बात का प्रमाण है कि यह हमारे ग्रामीण जीवन की आर्थिक अवस्था के सर्वथा अनुकूल है यद्यपि उस से आमदनी इतनी नहीं होती जितनी कि अन्य व्यवसाय से होने कि सम्भावना है।

हमारी मंजूषा

प्रेम द्वादशी—लेखक श्री प्रेमचन्द जी, प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय २९-३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ। पृष्ठ संख्या २०६ मूल्य १।)

श्री प्रेमचन्द जी हिन्दी के उच्च कोटि के लेखक हैं। हिन्दी संसार आप से भली भांति परिचित है। आप ने अनेक मनोरञ्जक कहानियां लिखी हैं। उन में से ही सर्वोत्तम बारह कहानियों का यह संग्रह है। सभी कहानियां सरल है सरस हैं मानसिक जीवन के अङ्गों पर प्रकाश डालती हैं; सामाजिक प्रथाओं की आलोचना करती हैं और भारतीय आदर्श के अनुसार सद्भावों पर दृढ़ विश्वास पैदा करती हैं। अतएव इन की उपयोगिता सर्व साधारण के लिये बहुत बढ़ जाती है।

लिखाई छपाई सुन्दर है और साथ ही तीन मनोहर चित्र भी हैं।

२. **निबन्ध निचय**—लेखक श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय २९. ३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ। पृष्ठ संख्या २०८। मूल्य १।)

चतुर्वेदी जी हिन्दी के प्रसिद्ध गद्य पद्य लेखक हैं। समय २ पर आप के लेख पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। 'निचय' सात निबन्धों का संग्रह है। प्रायः सभी निबन्ध हिन्दीभाषा विषयक हैं जिन में हिन्दी भाषा की वर्तमान अवस्था, उस का राष्ट्रीय भाषा होने का अधिकार और सर्वोत्कृष्टता की भली भांति विवेचना की गई है। निबन्ध को पढ़ने से निश्चय हो जाता है कि यदि हिन्दी भाषा इस दीन हीन अवस्था में है तो इस का कारण वह स्वयं नहीं प्रत्युत हमारी भ्रामात्मक उदासीनता है।

हिन्दी हितैषियों को इस 'निचय' का खूब मनन करना चाहिये।

३. गुप्त संदेश— लेखक डा० युद्धवीर सिंह जी पी० ई० एच०, ऐम० आई०एम०पी० प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय २६.३० अमीना बाद पार्क लखनऊ। पृष्ठ संख्या ८४। मूल्य ॥≤)

आज कल स्त्रियों को जितने रोग होते हैं उन में से बहुत से रोगों का कारण रजस्वला काल के प्रारम्भ समय में आहार विहार का अनियमित होना है। किस किस प्रकार की बेपरवाही करने से कौन कौन से भयानक रोग आक्रमण करते हैं और उन का होमियोपैथिक विधि से क्या २ इलाज है इस विषय पर शास्त्रोक्त रीति से विचार किया गया है कम से कम हमारी माताओं को इस विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

४. लड़कियों का खेल— लेखक श्री गिरिजाकुमार घोष। प्रकाशक गङ्गा पुस्तक माला कार्य्यालय २६-३० अमीनाबाद पार्क लखनऊ। पृष्ठ संख्या ७७। मूल्य ॥)

यह पुस्तक जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है लड़कियों के लिये अत्यन्त मनोरञ्जक एवं शिक्षाप्रद हैं। विषय रोचक हैं और लेख शैली हृदय ग्राहिणी। बालिकाएँ स्वयं ही पढ़ २ कर स्मरण कर लेगीं।

५. इतिहास की कहानियाँ—ले० जहूर बख़श जी। प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय २६.३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ। पृष्ठ संख्या ८२। मूल्य ॥≤)

बहुत छोटी २ कहानियों का यह एक संग्रह है। संग्रह शिक्षाप्रद अवश्य है परन्तु एक बात स्थान स्थान पर खटकती है कि कहानियां चुनते समय भारतीय इतिहास की उपेक्षा की गई है। बालकों की अवस्था में यह त्रुटि कुछ असह्य सी हो जाती है। कहीं २ चित्र भी हैं।

६. वनिता विलास— लेखक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी भूतपूर्व सरस्वती सम्पादक। प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय २६-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ। पृष्ठ संख्या ६०। मूल्य ॥।)

इस लेख संग्रह में तीन विदेशीय और सात स्वदेशीय देवियों के जीवन चरित है परिश्रम और धैर्य्य से देवियां भी जीवन के प्रत्येक अङ्ग में कितनी उन्नति कर सकती हैं यह खूब मनोरञ्जक रूप से दिखाया गया है।

तीन चित्र भी दिये गए हैं।

७. ठाकुर ठसक— सम्पादक प्रोफेसर भगवानदीन जी हिन्दू विश्वविद्यालय काशी। प्रकाशक साहित्य सेवक कार्यालय काशी। पृष्ठ संख्या ४८। मूल्य ।≤)

ठाकुर उपनाम धारी कई एक कवि हो चुके हैं। जिन में से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। एक असनी ज़िला फ़तेहपुर निवासी, दूसरे नर हरिवंशी असनी निवासी ठाकुर जिन के पिता का नाम ऋषि नाथ था और तीसरे बुन्देल खण्डान्तर्गत जैतपुर निवासी। इस पुस्तक में जैतपुर निवासी ठाकुर के जीवन चरित्र और कविता का यथा शक्ति विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

आप की कविता में उत्तम कविता के सभी गुण पाये जाते हैं । कविता अनेक विषयों पर की गई है और यत्र तत्र भाव मौलिकता, भाषा माधुर्य और अलङ्कार बाहुल्य दिखाई देते हैं । भाषा कुछ क्लिष्ट अवश्य है परन्तु अन्त में शब्द कोष देकर यह न्यूनता बहुत कुछ दूर कर दी गई है ।

काव्य प्रेमियों के बड़े काम की पुस्तक है

८. संध्या प्रदीपका— लेखक प्रकाशक मास्टर नत्थन लाल अध्यापक गवर्नमेन्ट हाईस्कूल शिमला, पृष्ठ २०० मूल्य ॥≈), सजिल्द का १)

अध्यात्मक आनन्द के जिज्ञासुओं के लिये यह संध्या प्रदीपका पुस्तक लिख कर लेखक ने बड़ा उपकार किया है । आज कल हमारे बहुत से भाई बहिनें तोते की तरह रट कर पांच मिन्ट संध्या करते हैं और फिर शिकायत करते है कि हमें संध्या में न तो कोई आनन्द ही आता है और न इस से कोई लाभ ही होता है और यह हो कैसे जब तक कि संध्या के मंत्रों के अर्थ, अभिप्राय और आशय को ठीक ठीक समझ कर उस के रहस्य को न जाना जाय । हमारी इस त्रुटि को दूर करने के लिये यह पुस्तक बड़ी सहायता देगी । मास्टर जी ने संध्या के मन्त्रों का शब्दार्थ तथा उनकी व्याख्या करके, इन के प्रत्येक शब्द की महत्ता, सौन्दर्य तथा रहस्य को प्रगट कर संध्या की उपयोगिता को बहुत ही अधिक बढ़ा दिया है । संध्या के मंत्रों तथा उनके क्रम, विधि और शब्दों पर एक जिज्ञासु के मन में जो २ शंकायें उत्पन्न होती हैं उन सब का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है और प्रत्येक मन्त्र के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ देकर मंत्रार्थ को हृदयगम कराने का यत्न किया गया है । पुस्तक की शैली सरल और सरस है । हम अध्यात्म ज्ञान प्रेमियों से चाहे वह आर्यसमाजी हो अथवा न हों बड़े बलपूर्वक इस संध्या को प्रदीपका के पाठ की सिफ़ारिश करते हैं, इस से उन्हें अवश्य एक आनन्द और लाभ प्राप्त होगा ।

९. हिन्दी काव्य में नव रस— लेखक श्री बाबूराम बित्थरिया, 'साहित्य रत्न' प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग । पृष्ठ ४८४ सजिल्द पुस्तक का मूल्य २)

यह अपने विषय का किञ्चित पहिला ही विस्तृत विवेचना पूर्ण ग्रन्थ है । लेखक ने इसे १९७८ वि० की उत्तमा परीक्षा के लिये निबन्ध के रूप में लिखा था । यह विषय हिन्दी काव्य में कितना महत्व का है यह कहने की आवश्यकता नहीं । लेखक ने इस को बड़ी मनोरञ्जक रीति से प्रसिद्ध २ हिन्दी कवियों के उदाहरण देकर इस विषय के प्रत्येक अङ्ग को प्रतिपादन करने की चेष्टा की है । विषय को रस की परिभाषा, रस और काव्य का सम्बन्ध, रस सामिग्री, रस भेद, शृङ्गार रस की प्रधानता, रसों पर पुषलका का आरोप, रसों का वर्णन, साहित्य-वृत्तियां, रसों की अनुकूलता प्रतिकूलता, रस दोष इत्यादि शाखाओं में बांट कर उन पर विचार किया गया है । लेखक का प्रयास सराहनीय है, हिन्दी प्रेमी पाठकों और

विशेष कर विद्यार्थियों के लिये पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

१०. मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई का पद्य संग्रह,—सम्पादक श्री वियोगीहरि प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग पृष्ठ ५३ मूल्य ।~)

इस पुस्तक में इन तीन भक्त शिरोमणि हरि प्रेम रत बाइयों के कोमल मधुर और भक्ति भाव से भरपूर भजनों का संग्रह है। यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है जिस से इस की उपयोगता सिद्ध होती है। पुस्तक में इन तीनों बाईयों की संक्षिप्त जीवनी तथा काव्य परिचय और कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया गया है।

११. राजेश्वरी—लेखक तथा प्रकाशक श्रीयुत विद्याधर विद्यालंकार बालेन, पृष्ठ ११२ मूल्य ॥~) पं० अर्जुनदेव विद्यालंकार रवि वर्मा स्टील वर्क्स अम्बाला छावनी से प्राप्त।

इस पुस्तक में लेखक की लिखी हुई आठ कहानियों का संग्रह है। कहानियां मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है और मनुष्य जीवन के भिन्न २ अंगों पर प्रकाश डालती है। अन्तिम दो कहानियों का आर्यसमाज के इतिहास से विशेष सम्बन्ध है। वर्णन की शैली उत्तम है परन्तु भाषा का प्रवाह कहीं २ रुक जाता है। लेखक ने अपनी भावी योग्यता का परिचय दिया है, यदि वह इस ओर लगे रहे तो समय पाकर एक उत्तम गल्प लेखक बन सकेंगे।

सति निर्मला—लेखक श्री विश्वम्भर सहाय "प्रेमी" प्रकाशक प्रेम साहित्य भंडार मेरठ शहर, पृष्ठ १२८ मूल्य ॥।)

इस पुस्तक में एक सदाचारी पुरुष के पतन और उस की धर्म परायण पत्नी का जो कि अनेक यातनाओं में पड़ने पर भी पति प्रेम में ही रही और दृढ़ता से उनको सहन किया यही वर्णन है। साथ ही मित्र को निष्कलंक, निस्वार्थ और अचल मित्रता का चित्र भी खींचा गया है। पुस्तक मनोरञ्जक है, यद्यपि कहीं २ अस्वभाविकता आगई है। कागज़ और छपाई साधारण।

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

आज कल मद्रास विश्वविद्यालय की प्रधान सभा में ५ स्त्री सदस्या हैं। कुमारी सरीना जकारियस जिनको कि वहां के स्नातकों ने चुना, कुमारी कौशल्या बी. ए. एल., टी. जिन्हें एकेडेमिक कौन्सल ने चुना और कुमारी लो एम. ए., एम. एस सी. श्रीमती पाल अप्पा स्वामी बी.ए., और श्रीमती लक्ष्मीपति बी.ए. जिन्हें गर्वनर ने नियुक्त किया।

——:०:——

भारत में जो कुछ भी ललित कला रह गई वह हमारी देवियों की श्रद्धा और भक्ति का ही परिणाम है। यह बड़े हर्ष की बात है कि वह पुनः कला के प्रभाव को फैलाने में कार्य कर रही हैं। इसी मास कालीकट में कला समिति तथा प्रदर्शनी हुई जो कि सर्वदा भारतीय नारी परिषद् द्वारा रची गई थी। मद्रास में एक स्त्री सेवाश्रम है जहां कि स्त्रियों को दस्तकारी की शिक्षा दी जाती है उन्हें एक नवयुवकों की कान्फ्रैन्स से दो पदक प्राप्त हुआ। थोड़े ही दिन हुये इंग्लैण्ड में भारतीय महिलाओं ने लाईट आफ एशिया, नामक नाटक बड़ी सफलता से दिखलाया

——:०:——

इस वर्ष के आरम्भ में पूना में महारानी बड़ौदा की अध्यक्षता में भारतवर्षीय महिला परिषद् की बैठक हुई जिस में कि भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियों ने भाग लिया। कई मुसलमान महिलाओं के परदे के बिना सम्मलित होना, पूना की स्त्रियों की सादगी और उनका उत्साह देखने योग्य था। कितने ही उपयोगी प्रस्ताव पास हुये, जैसा कि लड़कियों की शिक्षा के लिये लड़कों से भिन्न पाठविधि की मांग, पाठविधि में ऐसी पुस्तकों को सम्मलित करना जिनमें धार्मिक शिक्षा और भारतीय ललित कला, दस्तकारी इत्यादि ऐतिहासिक गौरव का पूरा २ समावेश हो, गृह प्रबन्ध की शिक्षा, पत्नि सहवास आयु को बढ़ाना, आरम्भिक शिक्षा का अनिवार्य बनाना, प्राईमरी की अध्यापिकाओं की वेतन वृद्धि, मातृ भाषा की शिक्षा को माध्यम बनाना, स्त्रीयों के लिए कालजों की स्थापना, इत्यादि।

——:०:——

म० गांधी के पुत्र श्री मणिलाल गांधी का विवाह श्रीमती सुशीला देवी से होगया। विवाह में सभी सामाजिक रस्मों का बहिष्कार किया गया और विवाह सम्बन्धी सिर्फ धार्मिक कृत्य सम्पादित हुए। वर और वधू शुद्ध खद्दर धारण किये हुए थे। वधू के चचा ने उसे धार्मिक पुस्तकें और चर्खे के सूत की माल भेंट की और महात्मा जी ने एक गीता एक आश्रम भजनावली, एक तकली और हाथ से कते सूत की दो मालाएं भेंट की। श्री मणिलाल गांधी अपनी स्त्री के साथ ३०

मार्च को दक्षिण अफ्रिका के लिए प्रस्थान करना था।

——:०:——

फरवरी मास में देहली में गर्भनी स्त्रियों और बाल रक्षा सम्बन्धी सम्मेलन श्रीमती आर्विन (वाईसराय की धर्म पत्नी) के सभापतित्व में बड़े सफलता से हुआ। इस में देश के सभी भागों से २०० के लगभग स्त्री और पुरुष कार्य कर्ता सम्मलित हुये। यह निश्चय हुआ कि देश में नवीन और अधिक व्यय करने वाले तरीकों के स्थान में, पुराने देशी सस्ते और उपयोगी सभी तरीकों की भली प्रकार जांच की जाय और मैडिकल कालजों और स्कूलों में माता और शिशु की सेवा और रक्षा सम्बन्धी पाठ सम्मलित किये जायं। कान्फ्रेन्स में दो और भी प्रस्ताव पास हुआ ! (१) पति सहवास की आयु बढ़ादी जाय, और (२) कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों को प्रसव समय पूरी २ सुबिधा पहुंचाई जाय।

——:०:——

भारतीय रियासतों में कई समाज सुधार के कार्य हुये हैं। भरतपुर में बालविहाह कानूनी तौर से बन्द कर दिया गया है, ट्रावन्कोर और कोचीन में एक स्त्री को शासक विभाग का सदस्य बनाया गया है। बड़ौदा में बाल विवाह को रोकने का जो कानून २० वर्ष से प्रचलित था उसकी सफलता की जांच के लिये एक कमेटी नियुक्त की गई है, मैसूर में स्त्रियों को कौंसिल और असैम्बली दोनों के लिये मताधिकार मिल गया है और श्रीमती पार्वती अमल की नियुक्ति की पूरी आशा है। आज कल भी वहां कि डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में कितनी ही स्त्रियां हैं।

अमरीका की जातीय कला तथा साहित्य सभा ने पहली बार स्त्रियों को अपना सदस्य बनाया है—चार स्त्रियां सभासद बनी है।

——:*:——

विक्टोरिया (आस्ट्रेलिया) कि बड़ी व्यवस्थापक सभा ने एक बिल पास किया है जिस के अनुसार सरकारी नौकरियों तथा अन्य सब पेशों में जाने के लिए स्त्रियों के मार्ग में जो रुकावट थी वह दूर कर दी गई है।

——:०:——

शान्टुंगं (चीन) के गर्वनर ने बाल-विवाह सर्वथा बन्द कर दिया है और इस कानून की सूचना प्रत्येक मेजिस्ट्रेट को देदी है। कोई भी लड़का १८ और लड़की १६ वर्ष की आयु से कम में विवाह न कर सकेंगे।

——:०:——

कुमारी माहयवाहमी पहली स्त्री हैं जिन्हों ने बेरिस्टरी की परीक्षा पास कर बर्मा की हाई कोर्ट के वकीलों में अपना नाम लिखवाया है। आप रंगून में अपनी वकालत आरम्भ करेंगी।

——:*:——

जावा की महिलाओं ने मताधिकार प्राप्ति के लिए पुनः आन्दोलन आरम्भ कर दिया है।

——:*:——

बुकारैस्ट (रुमानिया) की म्युन्सिपल कमेटी ने राजकुमारी कैन्टयुकेज़ीन और

श्रीमती राओमी सियान्नु को अपना सदस्य बना देश की अन्य संस्थाओं के लिए अनुकरणीय कार्य किया है।

* * *

टर्किश सरकार ने श्रीमती वेदरी हानु को अपने स्वास्थ विभाग का अध्यक्ष नियत किया है। यह सब से उच्च पद है जो कि सरकार ने किसी स्त्री को अभी तक दिया है।

* * *

डैन्मार्क में कुमारी कैरिलजैप एक बड़ी कार्य कुशल महिला कमिश्नर हैं। जब आप अलैपो में थी तो वहां १४०० स्त्रियां और बच्चे थे जो कि तुर्की महलसराओं से निकाले गये थे। आपने उन की रक्षा और शिक्षा का बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया। स्त्रियों को कसीदा काढ़ने का काम सिखाया और बच्चों के लिये स्कूल और आश्रम खोले।

* * *

फ्रान्स की स्त्रियों को अब वायुयान वाहक बनने की आज्ञा मिल गई है। चार स्त्रियां आज कल वाहक का काम करती हैं।

* * *

इङ्गलैण्ड में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय पुराने अन्ध विश्वासों का गढ़ है। वहाँ के कालिजों में कुछ वर्ष हुये स्त्रियों को भरती होने की आज्ञा न थी। गतमास पहिला ही अवसर था कि एक स्त्री को वादविवाद समिति में बोलने का अधिकार दिया गया

* * *

इङ्गलैण्ड की लार्ड सभा में कुमारी करैन्ट को कोस्टिगं और अकाउंट विभाग का अध्यक्ष बनाया गया है। इस सभा में इतना उच्च पद पाने वाली आप पहिली ही महिला हैं।

जर्मनी में आर्थिक समिति एक सरकारी महकमा है जिस का मुख्य कार्य सरकार और पार्ल्यामैन्ट को आर्थिक, व्यापारिक सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर परामर्ष देना है। इसका यह नियम है कि गृहणियां इस की सभासद् होंगी।

गृह-प्रबन्ध

जिन बर्तनों पर बहुत कालस जम गई हो उन्हें साफ करने की सब से अच्छी विधि यह है कि उन्हें कोई २ घन्टे तक सोडे के पानी में उबाला जाय, फिर रेत से रगड़ कर साबुन से धो दिया जाय।

* * *

किसी ऐसे बर्तन को जिस में दूध, मैदा या कोई अन्य ऐसी वस्तु जो कि आंच पर रखने से गाढ़ी पड़ जाती हो, लगी हो गरम पानी में नहीं रखना चाहिये इस से उस का साफ करना कठिन हो जाता है।

* * *

गरम २ भोजन, मिठाई इत्यादि को किसी ठण्डी कोठरी अथवा बक्स इत्यादि में न रखो वरन उसे रसोई में ही ठंडा होने दो।

* * *

मुरब्बे में जो समाप्त होने पर खांड बच रहे उसे मीठे चावल बनाने के काम में लाओ।

* * *

बारीक रेशम वा अन्य इसी प्रकार के कपड़े को जिस के तार निकल जाने का भय हो काटने की सब से उत्तम विधि यह है कि उस के नीचे कागज़ रखकर काटो।

* * *

टिड्डियों का सब से अच्छा इलाज यह है कि जिन स्थानों पर वह अधिक होती हों, वहां बारीक पिसा हुआ सुहागा भली प्रकार से छिड़क दो।

* * *

सावुन से कपड़े धोने पीछे छोटे २ टुकड़े रह जाते हैं जो कि भली प्रकार कपड़े पर रगड़े नहीं जा सकते। इनके प्रायः छोटे २ टुकड़े काटकर गरम पानी में उबाल कर उस पानी से कपड़े धोते हैं, परन्तु इस से भी अच्छी विधि यह है कि इन्हें एक छोटे से ऐसे टीन के डिब्बे में भरकर जिस के नीचे ऊपर और चारो तरफ छोटे छेद हों पानी के टब में खूब घुमाओ। इस से पानी में सावुन की बड़ी अच्छी झाग पैदा हो जायगी जिस में कि कपड़े भली प्रकार धोये जा सकते हैं।

* * *

मुंह देखने के शीशों को साफ करने के लिये उन्हें स्पिरिट डालकर पीछे सूखे कपड़े से चमका दो।

* * *

यदि दांत में दर्द हो तो नमक की पोटली द्वारा बाहर से सेक करने से लाभ होता है।

* * *

यदि किसी बर्तन में से दूध, चाय, छाछ या और कोई तरल पदार्थ दूसरे बर्तन में डालना हो तो पहिले बर्तन के सिरे पर बाहर की तरफ थोड़ा से घी या मक्खन मल दो, इस से बर्तन के साथ २ लग कर नहीं गिरेगा।

* * *

बारीक मलमल के पर्दों को धोने के लिये यदि पानी में फिटकड़ी डाल कर धोया जाय तो इससे उनका रंग खराब नहीं होता आग से जलने का भय भी कम हो जाता है।

* * *

किसी बर्तन में से चूल्हे से उतारते ही खीर कढ़ी इत्यादि को तुरन्त दूसरे बर्तन में न उलटो। दो चार मिनट रखकर उलटने से वह साथ बहुत कम चिपटी रहती है।

* * *

चाँदी के ऐसे बर्तनों को जिन पर लकीरें पड़ गई हों साफ करने के लिये लकड़ी में शीशे जोड़ ने वाला थोड़ा सा सूखा मसाला लेकर और उस को जैतून के तेल से लेई सी बना लो और अन्त में इसे किसी नरम से फ़लालैन के टुकड़े से बर्तन पर डालो। अब मखमल से चमकाने पर सब खरोंचे दूर हो जायेंगे।

* * *

सिर के बाल धोने के पीछे एक लोटा भी पानी में आधे नींबू का रस डालकर धो डालने से वह चमकदार बन जाते हैं।

* * *

हाथ के धब्बे मिटाने के लिये नींबू के टुकड़े और नमक से रगड़ कर धोना चाहिये

*   *   *

चीने किये हुये लोहे के बर्तनों में जब कि वह गरम ही हो ठंडा पानी न डालना चाहिये, इस से चीनी कड़क जाती है।

*   *   *

किसी लकड़ी पर से रोगन के निशान मिटाने के लिये पहिले एक साफ चीथड़े को तारपीन में भिगोकर खूब मलो और फिर अच्छी तरह पोंछ डालो।

*   *   *

कई बार दूध को उबालते समय उस में जलान्ध आ जाती है। यदि जिस बर्तन में उसे उबालना हो डालने से पहिले थोड़ा सा ताज़ा घी मल दो तो यह कभी न होगा।

*   *   *

कपड़े पर से चाय के धब्बे हटाने के लिये उसे खूब कस कर किसी चौड़े मुँह वाले बर्तन पर तान दो और सेर भर गरम २ पानी में २ तोले सुहागा घोल कर धब्बों के ऊपर धार बाँध कर डालो और उँगली से मलते जाओ गरम पानी से धोने से सब धब्बे जाते रहेंगे।

देवी-दर्शन

श्रीमती मिथुलक्ष्मी अमल

सब से पहले मद्रास में स्त्रियों को कौंसिल के लिये वोट देने का अधिकार मिला था। मद्रास की ही कौंसिल में सबसे पहिले सरकार द्वारा एक स्त्री-सदस्या की नियुक्ति हुई थी। मद्रास में ही (और पञ्जाब में भी) खुले चुनाव के लिये पहिले पहल एक स्त्री खड़ी हुई थी। अब समाचार आया है कि यह देवी-श्रीमती मिथुलक्ष्मी अमल मद्रास कौंसिल की उपप्रधाना चुनी गई हैं, अतः यहाँ भी मद्रास बाज़ी ले गया। उप-प्रधान का कार्य जिसे कि प्रधान की अनुपस्थिति में सब काम करना पड़ता है—कोई सहज काम नहीं, परन्तु आशा है कि श्रीमती मिथुलक्ष्मी इसे पूर्ण योग्यता से निबाहेंगी। यहाँ पर हम संक्षेप में उनकी जीवनी देते हैं और आशा करते हैं कि हमारी बहिनों के लिए यह शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक होगी।

आपका जन्म १८८६ में पदुकोरा के एक मध्यम श्रेणी के परिवार में हुआ। अभी आपकी आयु ७ या ८ वर्ष की ही थी कि आपने शिक्षाप्राप्ति के लिये विशेष रुचि का परिचय दिया और सौभाग्य से इनके पिता ने इसको पूरा करने में इनको पूरी सहायता दी। इन्हीं की अध्यक्षता में वह घर पर ही पढ़ती रहीं और मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास करली। तदुपरान्त आप राजा कालिज में एफ़. ए. में भरती होगईं। कालिज में

किसी स्त्री के छात्रारूप में प्रवेश होने के लिये महाराजा की विशेष आज्ञा की आवश्यकता थी जो कि उसी समय मिल गई। श्रीयुत सत्यमूर्त्ति आपके सहपाठी हैं। आप अपनी श्रेणी में दुबली-पतली होने पर भी सब से प्रथम रहती थीं। और आपने कितने ही पारितोषक और पदक प्राप्त किये।

एफ. ए. पास करने पर इन्हें रियासत की ओर से एक छात्रवृत्ति मिली जिससे कि १९०७ में यह मद्रास मैडिकल कालिज में प्रविष्ट होगईं। इन्होंने M. B. I. C. M. की पाँच वर्ष की कठिन पढ़ाई पाँच ही वर्ष में पूरी करली। यहाँ भी कितने ही सुनहरी पदक और विशेष प्रशंसापत्र प्राप्त किये। आपने कुछ समय तक सरकारी प्रसव-हस्पताल में सर्जन के पद पर रहकर मद्रास में निजी डाक्टरी करना आरम्भ कर दिया। अपनी प्रशंसनीय योग्यता के बल पर यहाँ पर इन्होंने बड़ा नाम पाया। यहाँ ही आप कई प्रकार लोकोपयोगी कार्यों में -विशेष कर समाज सुधार में आपने विशेष ध्यान देना आरम्भ किया। अब आपने श्रीयुत डाक्टर सुब्ररेडी से जो कि आजकल मद्रास मैडिकल कालिज में प्रोफेसर हैं विवाह कर लिया। एक धर्मनिष्ठ हिन्दूपत्नी और पुराने तरीके की माता होते हुये भी आप अपनी विस्तृत प्रैक्टिस और उतनी ही विस्तृत समाज सेवा के लिए न केवल समय ही निकाल लेती रहीं हैं वरन दोनों कार्यों का बड़ी योग्यता से सम्पादन करती रही हैं।

१९२५ में मद्रास सरकार ने आप को इङ्गलैंड में जाकर स्त्रियों और बच्चों के रोगों के सम्बन्ध में विशेष प्रकार को आधुनिक तरीकों द्वारा इन को रोकने और इन का ज्ञान फैलाने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक छात्रवृति दी। वहां से लौटते समय आप भारत की प्रतिनिधि के रूप में पैरिस अन्तर जातीय महिला कांग्रेस में सम्मिलित हुईं। वहां संसार की प्रथम श्रेणी की विदुषी और योग्य देवियों के संपर्क से आपने भारत के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में कार्य करने का उत्साह प्राप्त किया। इसी लिए जब से आप भारत में लौटी हैं आप भारतीय स्त्रियों की मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि सब प्रकार की उन्नति में बड़ी यत्नशील हैं। मद्रास की महलाओं के एक डेपूटेशन ने मद्रास गवर्नर से मिल कर जहां इनकी कौन्सिल में नियुक्ति की बड़ी बल पूर्वक सिफारिश की वहां घर पर इनको उसे स्वीकार कर लेने की भी बड़े ज़ोर से सलाह दी। कौन्सिल में पथ-प्रदर्शक के रूप में आप का स्वागत किया गया और शीघ्र इन्हें उपप्रधाना चुना गया। इस प्रकार दक्षिण भारत की उच्च डाक्टरी उपाधि प्राप्त महिला हैं, भारत में व्यवस्थापक सभा में प्रविष्ट होने वाली और किञ्चित संसार की किसी भी व्यवस्थापक सभा के प्रधान पद को सुशोभित करने वाली पहली महिला हैं।

कौन्सल में आप जो कार्य करना चाहती हैं उसको आप ने अपने पहिले ही भाषण

में इस प्रकार वर्णन किया था—कन्याओं की उत्तम शिक्षा, गर्भिणी स्त्रियों और सन्तानों की रक्षा, बाल विवाह का निषेध, तथा कन्याओं के अत्याचार इत्यादि घृणित जातियें रोगों का प्रतिरोध ! आप मज़दूरों के कष्टों से भी भली प्रकार परिचित हैं और उनके दूर करने के लिए बड़ी उत्सुक हैं। डाक्टर मिथु लक्ष्मी अमल का उदाहरण, निसन्देह हमारी बहुत सी अन्य बहिनों को भी सार्वजनिक जीवन में उत्साह पूर्वक भाग लेने के लिए प्रेरित करेगा और अन्य प्रान्तीय शासकों को भी स्त्रियों को जन सेवा के लिए उचित उत्साह देने के लिए विश्वास दिलायेगा।

महिला विज्ञापन कला

लन्डन में विज्ञापन देने की एक स्त्रियों की क्लब है जिसका नाम महिला विज्ञापन समिति है। उस के एक उत्सव इङ्गलैण्ड में भूतपूर्व महामन्त्री श्रीयुत लायड जार्ज ने उपस्थित महिलाओं को सम्बोधन करके कहा:—"देश के शासन में सब से योग्य अन्तर्राष्ट्रीय मन्त्री एक महिला थी जिसका कि नाम एलिज़िबैथ था। एक दिन आयेगा जब कि महिलायें अर्थ सचिव का आसन बड़ी योग्यता से ग्रहण करेंगी। इस कार्य के लिये इन्हें घरों में बड़ी उत्तम शिक्षा मिलती है।

"पारलयामैन्ट में, राज प्रबन्ध में, और समाचार पत्रों के सम्पादन में, तुम्हारी जाति का प्रभाव बढ़ रहा है। मुझे इस से बड़ी प्रसन्नता है क्योंकि मैं इसे भविष्य में शान्ति का सूचक समझता हूं। वाणिज्य में भी स्त्रियों के कार्य क्षेत्र की सीमा बढ़ रही है और बिना रोक टोक बढ़ रही है।

"मेरा जन्म एक किसान परिवार में हुआ था। मेरे दादा के पास खेती की बहुत सी भूमि थी। दादा की मृत्यु पीछे मेरी दादी ने इस की देख रेख का कार्य संभाला और इस के प्रबन्ध में किसी ने भी कोई भेद अनुभव न किया। मैं बतलाऊं क्यों? कारण यही कि कोई भेद न था। (हंसी) इस प्रकार की घटनाएं बहुधा होती रहती हैं। वकील की हैसियत से मुझे पता है कि पति देवता एक ऐसा ऋण है जिस की कोई ज़मानत नहीं (हंसी) और कितने ही व्योपारों में उस दिन से उन्नति होनी आरम्भ हुई जब कि उसकी स्वामिनी विधवा होगई (हंसी)।

श्री लायड जार्ज ने विज्ञापन कला की आश्चर्य जनक उन्नति के दो कारण बतलाये (१) सब विज्ञापन अब स्त्रियों के लिये हितार्थ दिये जाते हैं और (२) देश के विज्ञापन व्योपार में स्त्रियों का बड़ा भारी हाथ है। इसी कारण से आज कल के विज्ञापन अधिक आकर्षक होते हैं और प्रति वर्ष यह एक ललित कला का रूप धारण करते जाते हैं।

* * *

"सती"

ले० कुमारी पुरुषार्थ वती आर्य्या

१

सरला ने पीछे की ओर मुड़ कर देखा, रमेश घोड़े पर न थे। वह किसी अज्ञात भय से चिहुक उठी। शीघ्रता से उसने घोड़े की लगाम खींच लीं, और पृथ्वी पर आ गई इधर उधर ढूढ़ने लगी कि अभी तो वह मेरे साथ आरहे थे, गये कहां। बहुत खोजने पर भी जब रमेश का पता न चला तो उसे निश्चय हो गया कि वह किसी गहरे खड्डे में गिर गये हैं। उसने तब नौकरों को और बच्चों को भी आवाजें दी पर वह बहुल पीछे रह गए थे। अन्त में उसने निराश होकर आंखों पर पट्टी बांध ली, और क्षीण स्वर में धैर्य्य पूर्वक बोली— स्वामिन्! बहुत आगे न जाइये, ठहरिये मैं भी आप के साथ २ आती हूँ। परम पिता जगदीश्वर! अब मेरे मातृ पितृ विहीन पुत्रों के तुम्हीं सहायक हो। इतना कह कर पास वाले एक गहरे खड्डे में कूद पड़ी।

२

कर्त्तारपुर गांव में सुरेश चन्द्र नामक बड़े भारी रईस रहते हैं। आप कुलीन क्षत्री हैं। घर में नौकर चाकर तथा अन्यान्य सुख सामग्रियां प्रस्तुत रहती हैं। बड़े २ मकान हैं, परन्तु दुर्भाग्य से सभी शून्य हैं ' सुरेश बाबू के सन्तान नही है। अतः दम्पत्ति इसी चिन्ता में घुले जाते हैं। हाय! इन मकानों का तथा और वस्तुओं का अन्त में क्या होगा! वह दोनों एक पुत्र के लिये अपना सर्वस्व लुटाने को तय्यार थे। सहस्त्रों सन्दान किये देवताओं को बलिये दीं। कई वार तीर्थों पर जा २ कर मनौति मनाई पर दैव रुष्ट ही था। अन्त पुत्र-प्राप्ति की आशा को छोड़ बैठे लोगों ने सलाहें दीं कि कोई लड़का गोद ले लो। अब सिवाय इसके और कोई चारा न था। इनके छोटे भाई हरीश बाबू के तीन ३ सन्तानें थीं। सब से छोटी बालिका सरला थी। इस समय उसकी आयु केवल एक वर्ष की थी। सुरेश बाबू तथा उनकी स्त्री लक्ष्मी देवी ने उसे ही अपनी दत्तका बनाया। सरला अब माता पिता के हृदय-गगन का सितारा थी। शिशु जीवन शुक्ल पक्ष के जीवन कीं न्यांई होता है। वह बालिका सरला भी शनैः २ बिकसित होने लगी।

३

दिसम्बर का महीना है। ठण्डी २ वायु वह रही है। ऐसे समय में कर्त्तारपुर के एक आलीशान मकान के एक सुसज्जित कमरे में सरला बैठी है। अब वह छोटी सी बच्ची नहीं है, इस समय उसकी आयु लगभग तेईस वर्ष की है। पास ही उसके पति रमेश बैठे हैं और कुछ दूर पर दो बच्चे भी खेल रहे हैं।

सुरेश बाबू ने सरला के पति को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया है, अतः रमेश भी कर्त्तारपुर गाँव में ही रहते हैं। आप सुशिक्षित हैं। और ज़मींदारी का काम सीखा करते हैं। एकाएक रमेश ने कहा—सरला!

सरला मुंह नीचा किये कुछ सोच रही थी, वैसे ही उसने उत्तर दिया— क्या है नाथ!

रमेश— मेरा जी चाहता है कि कुछ दिन बाहिर भ्रमणार्थ जाऊँ। क्या तुमभी चलोगी!

सरला ने प्रसन्न होकर कहा— मैं तो स्वयं ही यह कहने लगी थी, पर मेरा जी तो तीर्थयात्रा करने को चाहता है।

रमेश ने मान लिया और आज से तीसरे दिन वहाँ से चलना निश्चित हुआ।

४

कई एक तीर्थों पर होते हुए रमेश बाबू सपरिवार हिमालय पार्श्ववर्त्ती प्रदेश में अश्वारूढ़ होकर यात्रा करने लगे। एक दिन एक पड़ाव पर ठहर कर, फिर चले, बच्चों को नौकरों के सपुर्द कर दम्पत्ति ने घोड़े तेज़ कर दिये। कुछ क्षणोपरान्त सरला का घोड़ा दो-चार गज़ आगे बढ़ गया तो उसे पीछे से धम्माकेकी आवाज़ आई, ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई जीव पानी में डूब रहा हो। इसके उपरान्त जो घटना घटित हुई वह उपर्युक्त है। दूरसे नौकरों ने सरला को गिरते देख लिया था। यह लोग दौड़े दौड़े वहाँ पहुँचे। आकर इन दोनों को ढूंढने लगे, ढूंढते २ एक नौकर की दृष्टि ज़रा नीचे की ओर पड़ी। उसको मालूम हुआ कि एक गठरी सी पत्थर की आड़ में पड़ी है। नीचे उतर कर जो उसने देखा तो रमेश बेसुध पड़े थे। रमेश को ऊपर लाया गया। उन्हें होश में लाने का प्रयत्न किया गया। उन्हें थोड़ी सी चोट आई थी। अतः कुछ देर में वह उठ बैठे उन्होंने कहा कि कुछ असावधानता के कारण मैं घोड़े से नीचे ढुलकता हुआ पानी में गिर गया। बहते २ इस पत्थर के सहारे में लग गया। इसकी आड़ के कारण ही तुम लोग मुझे कठिनता से देख सके। सरला का मुझे कुछ पता नहीं। अब पुनः सरला की खोज प्रारम्भ हुई। बहुत खोजने पर वह भी बेहोश दशा में पाई गई। उसका सिर फट चुका था, सारा शरीर रक्त-पूर्ण होगया था। उसे इस दशा में देख कर रमेश का धैर्य टूट गया, वह सिसक २ कर रोने लगे।

बहुत देर शुश्रुषा करने से सरला को अन्तिम चेतना हुई, वह बड़े कष्ट से बोली —मेरा सौभाग्य है जो आपको अन्तिम समय में सकुशल देख रही हूँ। मैं बहुत प्रसन्न हूं जो आप बच गये। मैं आपको न देखने के कारण, अशुभ चिन्तन कर ही कूदी थी। अस्तु मेरे बच्चों का ध्यान रखियेगा। इतना कहने के पश्चात् देवी सरला के प्राण पखेरू सती-धाम को परिधावित होगये। रमेश वहीं से कर्त्तारपुर लौट गये।

५

सरला को मरे ६ छः वर्ष होगये। रमेश बाबू की नई बहू सरला के अभाव को पूरा कर रही है। सब लोग यहाँ तक की रमेश भी सरला को भूल चुके हैं। परन्तु रात्रि की निस्तब्धता में घर की दीवारों से एक मूक ध्वनि हुआ करती है— "देवी सरला! सती सरला!! तुम धन्य थीं।"

यह कल्पित कहानी नहीं है एक अक्षरशः सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है।

"वेद में सूर्य विज्ञान"

(ले० प्रियरत्न जी विद्यार्थी)

भ्रातृवृन्द ! वेदों में वस्तुज्ञान की अनन्त चर्चाएं हैं किन्तु पृथिवी स्थान अग्नि, अन्तरिक्षस्थान वायु और द्युस्थान सूर्य्य के सम्बन्ध में बारम्बार वर्णन है, वस्तुगत्या इस सम्पूर्ण सृष्टि में इन तीनों देवों का राज्य इतना प्रबल है जैसे जीवित शरीर में आत्मा का, इसी लिये, इनका पूर्ण परिचय करना मानव जाति का एक विशेष ध्येय है। अतएव आज मैं केवल "वेद का सूर्य्यविज्ञान" आप के सम्मुख रखूंगा। यों तो वेद में अनेक स्थलों पर सूर्य्य-विज्ञान की चर्चा है किन्तु इस समय दो ही मन्त्रों के आधार पर सूर्य्यविज्ञान दर्शाऊंगा। ऋग्वेद का एक मन्त्र है "यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते। उर्वीरायो न काकुदः" (ऋ१।८।७) इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और सूर्य्य का इस में वर्णन है "अथ सूर्य्यस्य गुणा उपदिश्यन्ते" (ऋ० १।८।७) यह ऋषि दयानन्द का वचन भी है। मन्त्र में सूर्य के दो गुणों का वर्णन है और वह इस प्रकार (यः) जो सूर्य्य है वह (कुक्षिः) कुष्णाति-आकर्षति पदार्थानिति कुक्षिः=अर्थात् आकर्षण धर्म वाला तथा (सोमपातमः) सोमान् पदार्थान् स्वकिरणैरतिशयेय याति सः=निज किरणों से पदार्थों का विशेष पालन करता है। एवं आकर्षण करने वाला और प्रकाश दाता सूर्य्य है, अतएव प्रकाश दान करना ये सूर्य्य के दो धर्म हैं। इन दोनों धर्मों से युक्त हुआ सूर्य्य (उर्वीः) अनेक पृथवियों के साथ (समुद्र इव) समुद्र की न्याईं (पिन्वते) "सिञ्चति सेवते वा "पिवि, मिवि, निवि-सेवने सेचने च भ्वा०" सेचने और सेवन धर्म से वर्तमान है। मंत्र में "समुद्र इव" जाति में एक वचन है अतः अन्तरिक्षस्थ और पृथिवीस्थ समुद्र रूप दोनों व्यक्तियां गृहीत हैं। ऋषि दयानन्द ने भी "ऋतञ्च सत्यञ्चभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः" के ऊपर "पृथिवीस्थोऽन्तरिक्षस्थ समुद्रः" अर्थ किया है। अतएव एक पृथिवी के साथ सम्बन्ध रखने वाला समुद्र दूसरा अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाला, ये दो समुद्र हैं जिनका एकाङ्ग आकार इस प्रकार है कि:—

मध्य में पृथिवी के साथ सम्बन्ध रखने वाला समुद्र है जो पृथिवी के जलों को (सेवते) अपनी ओर आकर्षण करता है और अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाला समुद्र पृथिवी को (सिञ्चति) वर्षा का दान करता है इस समुद्रोपमानुसार ही सूर्य्य का स्वरूप भी इसी प्रकार है अर्थात्:—
(चित्र संख्या १)

मध्य में पृथिवी के साथ सम्बन्ध रखने वाला सौर भाग जो प्रकाश का दान किया करता है। मध्यसौर भाग पार्थिव अंशयुक्त कृष्णरूप और दूसरा सौर-भाग प्रकाश रूप

है, मध्यस्थ कृष्ण पार्थिव वस्तु प्राकृतिक अग्नि को तेजोमय सूर्य्यरूप में पिण्डी भूत स्थिति का निमित्त है जैसे लौकिक (पृथिवीस्थ) अग्नि पिण्ड की स्थिति का निमित्त घृत तैलादि पार्थिव वस्तु है एवं सूर्य्य में पार्थिव सूक्ष्म भाग तेजोमय सूर्य्य पिण्ड की स्थिति का हेतु है इसी को 'असितो रक्षिता' भी अन्यत्र वेद में कहा है; सूर्य्य पार्थिव पदार्थ है इस में निम्न प्रमाण और युक्ति देखिये:—

वैशेषिक के प्रशस्तपाद में लिखा है "आदित्यलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्चोपभोग समर्थम्" अर्थात् पार्थिव अंश के सहारे से सूर्य्यलोक में जीवों के उपभोग का समर्थ होना सम्भव है। इस वचन से सूर्य्य में पार्थिव वस्तु का होना सिद्ध हुआ, तथा युक्ति इस प्रकार समझें कि हम लोगों के उपयोगी भूगोलस्थ स्थूल अग्नि में पार्थिव स्थूल भाग का सम्बंध है। किन्तु सूर्य्यरूपी सूक्ष्म अग्नि में सूक्ष्म पार्थिव वस्तु, जिसको इसी पृथिवी का एक प्रकार से कारण भी कह सकते हैं, यही भाग सूर्य्य में स्थिर हुआ इस हमारे पृथिवी-गोल के आकर्षण का हेतु है क्योंकि विकार-रूप कार्य्यवस्तु अपने कारण की ओर आकृष्ट होता है। व्याकरण महाभाष्य में लिखा है "लोष्ट क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्य्यग्गच्छति नोर्ध्वमारोहति पृथिवो बिकारः पृथिवीमेव गच्छति" (अ० १। पाद। १ आ) जैसे मिट्टी का ढेला ऊपर वेग से फैंका हुआ वेग की समाप्ति के अनन्तर न इधर उधर टेढ़ा होता है न ऊपर की ओर आगे चढ़ता है किन्तु पृथिवी का विकार होने से पृथिवी पर ही आता है इसी प्रकार यह पृथिवी गोल सूर्य्यान्तर्गत पार्थिव वस्तु का विकार होने से न इधर उधर टेढ़ा होता है नहीं कहीं दूर आगे गति कर सकता है किन्तु सूर्य्यान्तर्गत असित (कृष्ण) भाग की ओर ही आकृष्ट रहता है इस आकर्षण धर्म से भी यही सिद्ध होता है कि विकृतरूप आकृष्ट होने वाली पृथिवी का कारण मध्यगत कृष्णरूप सौर-भाग है। यद्यपि पृथिवीगोल सूर्य्य की ओर आकृष्ट होता है तथापि अन्तरिक्ष के सम्बन्ध रखने वाले तेजोमय सौर भाग इसको रश्मियों की एकतानता से ढकेल रहा है इस सम्बन्ध को इस प्रकार समझें कि:—

तेजोमय सौर भाग एक तानता से टकराता है इस लिये पृथिवी गोल दूरी पर नियत अवधि में स्थिर है सूर्य्य के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकता तथा मध्यगत कृष्ण-भाग इसका आकर्षण करता है इसी लिये अधिक दूरी पर आगे नहीं जा सकता और नाहीं इधर उधर टेढ़ा होता है क्योंकि आकर्षण समसूत्र में वर्तमान होता है। जैसा कि किसी पोली नालिका के ऊपर हलका सा गोल दाना रख देवें और नीचे फूंक मारें तो दाना ऊपर उड़ेगा और यदि वायु का फुंकार एक रस लगता रहेगा तो दाना ठीक एक स्थान पर ही ठहरा रहेगा यहां पर आकर्षण और दाना दोनों ही कारण हैं स्वभावि रोकता है आकर्षण के कारण दाना फुंकार से बिलकुल दूर नहीं होता और नाहीं इधर उधर टेढ़ा होता है, वायु प्रदान की टक्कर दाने को समसूत्र में

नालिका तक नहीं आने देती । ठीक यही पृथिवी और सूर्य्य के सम्बन्ध में समझें। सूर्य्य अपनी किरणों से पृथिवी को धारणा करता है इस विषय में एक और मंत्र 'अयातु मित्र ऋतुभिः कल्पमातः संवेशयन् पृथिवी-मुस्त्रियाभिः" (अथ० ३ । ८ । १) एवं सूर्य्य में एक शुक्लरूप प्रकाशमान भाग और दूसरा अप्रकाश (कृष्णरूप) यों तो सूर्य्य को वेद में "सहस्ररश्मिः शतधावर्तमानः" भी कहा है क्यों कि वायु द्वारा सूर्य्य प्रकाश की असंख्यात धाराओं का सञ्चार (फैलाव) होता है किन्तु रङ्गो के भेद से सप्त-रश्मि ही कहा है "सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षम्" (अथ० १३ । २ । २३) उक्त सात रश्मियां विशेष विज्ञान के साथ सम्बन्ध रखती हैं । प्रत्युत इन में भी दो किरणों की प्रधानता है जिनका वर्णन वेद में अनेक स्थलों पर मिलता है ‡ यथा "यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत" (ऋ० १ । ५ । ४) जिस सूर्य्य की दो किरणों निज वृताकर सूर्य्यमण्डल में ऐसी वर्तमान हैं जिनको संग्रामों में शत्रुजन नहीं सह सक्ते हैं। उस ऐसे सूर्य्य को उपदेश और अनुष्ठान से जानो अर्थात् यथोचित लाभ उठाओ । उक्त दो किरणें कौन सी हैं सुनिये "ऋकसामे वा इन्द्रस्य हरी" (ऐ० । अ० ८ । ख० ६) सूर्य्य की दो किरणें ऋक् और साम है। आधिदैविक दृष्टि से ऋक् और साम किरणों की छान्दोग्योपनिषद् में चर्चा है "अथ यदेतदादित्यस्य शुल्कं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम" (छा० १ । ६ । ५) इस प्रकार शुक्लभाः एक किरण और दूसरी नीली रूप कृष्ण किरण है इन दोनों किरणों के मेल से संग्रामों में शत्रुजनों पर विजय प्राप्त होता है। एवं सूर्य्य की इन दो किरणों से युक्ति विशेष द्वारा सौर अस्त्र बन सक्ता है यह एक रहस्य प्रतीत होता है । ऋषि दयानन्द ने भी एक स्थान पर लिखा है कि "सूर्य्य किरणैराग्नेयास्त्रादीनि,शास्त्राणि"

आग्नेय कांच से तभी आग लगती है जब प्रतिबिम्ब में शुक्लभाः और नीलीरूप कृष्ण किरण मिल जाती हैं । अन्य पांच गौण हैं इन्ही दोनों किरणों की बहुधा सहायक हैं जहां शुक्लभाः नहीं और कृष्ण भी शेष किरण हैं वहां प्रकाश नहीं और जहां नीली रूप कृष्ण नहीं और शेष शुक्लभाः आदि किरण हैं वहां तैजस (जलाने का) धर्म नहीं होता खद्योत आदि उदाहरणें समझें अग्नि में भी शुक्लभाः और नीलीरूप कृष्ण किरण की सङ्गति ही कार्य्य करती क्योंकि वहां पर ये सात किरणें हैं मुण्डकोपनिषद में ऐसा ही लिखा है "काली कराली चमनोजवा च सुलोहिता या च सूधूम्र वर्णा वरर्य स्फुलिङ्गिनी विश्व रूपी च लेलस्य मानेति सप्त जिह्वा।"

वस्तु अग्नि मातृ में सात रङ्ग हैं चाहे लौकिक अग्नि वा वैद्युत प्रत्यक्ष भी विद्युत भिन्न २ रङ्ग की दिखलाई पड़ती है अनुमान शास्त्र भी कहता है "वाताय कपिला विद्युदातपायाति लोहिनी" इत्यादि ॥

शुक्लभाः किरण का सम्बन्ध प्रकाशमान सौर भाग और नीलीरूप कृष्ण किरण का अप्रकाशमान कृष्णरूप सौर भाग के साथ

है। इन्हीं मन्त्रों के आधार पर मेरे मन में यह एक सिद्धान्त स्थिर हुआ कि सूर्य्य में एक शुक्लदीप्ति युक्त भाग है और नीलरूप कृष्ण भाग है इन दोनों भागों की प्रधानता है, पिछले वर्ष श्री नगर काश्मीर में मैंने किसी विशेष अभ्यास से परिचय प्राप्त करना चाहा एवं कुछ दिनों के अभ्यास से सूर्य्य में मुझे पांच छ काले धब्बे दिखलाई पड़े। उसी समय मैं अपने परिचित प्रो० गिरधारी लाल प्रताप कौलिज के पास गया और कहा कि टेलिस्कोप (दूरवीक्षण यंत्र) से सूर्य को देखना चाहता हूं उन्होंने पूछा किस लिये, मैंने उत्तर दिया कि मुझे सूर्य्य में पाँच छ काले धब्बे दिखलाई पड़ते हैं अतः इस विषय में विशेष जानना चाहता हूं। फिर उन्होंने कहा कि हां सूर्य्य में सन्स्पाट्स (Sun spots) हैं । और आजकल अंग्रेज़ी अखबारों में खबरें निकल रही हैं। आप कौलिज में आवें आप को टेलिस्कोप से सूर्य्य दिखलावेंगे । किन्तु शोक कि महाराज का देहान्त हो जाने से सब कार्य्य बन्द होगया और मैं न देख सका अस्तु। अन्य ज्योतिष दृष्टि तथा वैद्यक दृष्टि से भी सूर्य्य विज्ञान वेदों में अनेक स्थानों पर है सूक्तों के सूक्त सूर्य्य की चर्चा करते हैं। स्यात् ज्ञान भण्डार वेद में से यह एक थोड़ा सा सूर्य्य विज्ञान आप के सन्मुख रख जब तक आर्य्य समाज के विद्वान् निश्चिन्त और साधन सम्पन्न होकर वेदों का स्वाध्याय न करेंगे तब तक आर्य्य समाज की ओर से वेद का प्रचार कथन मात्र ही है। मैं चाहता हूं कि मनु आदि प्राचीन महानुभावों और ऋषि दयानन्द तथा तदनुसार ही आर्य्य समाज की ओर यह प्रतिज्ञा है कि वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक तथा सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार है। इस ऐसे भण्डार को उपयोग में लाया जावे और संसार में वेद का लाभ पहुंचाने का यत्न किया जावे। अलम्बुद्धिमद्वर्य्येषु किम्बहुना।

विचार-प्रवाह

गुरुकुल रजत-जयन्ती— जिस के आगमन की आँखें चिरकाल से बाट जोह रही थीं वह जयन्ती आई और गुजर गई और सफलता के साथ समाप्त हो गई। जयन्ती का नज़ारा आर्य समाज के इतिहास में एक अपूर्व था । सप्ताह भर के लिए गुरुकुल ५० हजार से ऊपर की विराट् जन संख्या को धारण करने वाला एक नगर बना हुआ था। चारों ओर जिधर नजर उठती थी उधर नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दीखते थे। जनता के इस प्रबल प्रवाह को थामने की शक्ति उत्सव के प्रबन्धकर्ताओं में न थी यदि स्वयं जनता अपना प्रबन्ध आप न कर लेती। भारत के वर्तमान राष्ट्रपति श्री निवास आयङ्गर, भारत की सूत्र आत्मा म० गांधी, सनातन हिन्दू धर्म की उज्वल मूर्ति महामना

मालवीय जी, सादगी और सरलता की मूर्ति श्रीराजेन्द्र प्रसाद, भारतीय प्राचीन सभ्यता के प्रेमी साधु वास्वानी, मारवाड़ियों में आदर्श स्वरूप श्री सेठ जमनालाल बजाज, नागपुर के डा० मुञ्जे, काशी विश्वविद्यालय के प्रो० चांसलर आचार्य ध्रुव, वैदिक विद्वान् डा० अविनाशचन्द्र, भक्त प्रवर स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, आदि विद्वान् नेता साधु महात्मा और व्याख्याता आये हुए थे। पर उस के अभाव की पूर्त्ति नहीं कर रहे थे। सम्मेलनों की धूम थो। विशद आकाश में खिली चांदनी के नीचे तम्बूटिओं और छोलदारियों की पंक्तियां, दूर तक फैली हुई झोंपड़ियां, अपूर्व शोभा धारण कर रहीं। सब कुछ था पर एक नहीं था जिस को सब की आंखें ढूंढ रहीं थीं। हवा के झोंके से कांपते हुए वृक्षों के पत्ते, सिहर के उठती हुई घास, गंगा की उठती तरंगे, पक्षियों और गायकों के कण्ठ से निकला संगीत, व्याख्यानों की ओजस्वी वाणियें सब उसी गैरिक वस्त्र धारी महाकाय दिव्य मूर्ति को याद कर रही थीं। चण्डी पहाड़ी इस वार उस की गर्जना की प्रतिध्वनि कर पण्डाल के शोर को चुप नहीं कर रही थी, सब के जबानों पर उस का नाम था, सब की छाती पर उस का चित्र था, पर श्रद्धानन्द की पार्थिव आकर्षक दिव्य मूर्ति नहीं थी। वह सब के दिल और दिमाग में प्रतिष्ठित था, उसके रहने का बंगला आर्य नरनारी के लिए तीर्थ स्थान बना हुआ था। उस का तैल चित्र मूक वाणी से ही प्रत्येक आर्य बाल वृद्ध बनिता को प्राचीन भारतीय सभ्यता और गुरुकुल को अपनाने की प्रेरणा कर रहा था। प्रत्येक भक्त में नव जीवन, नूतन शक्ति, और नई स्फूर्ति का संचार कर रहा था। प्रत्येक यात्री अपनी श्रद्धाञ्जलि उस के चरणों में चढ़ाने के लिए होड़ कर रहा था। यह एक अलौकिक दृश्य था। दीक्षान्त संस्कार के दिन नीले चोले धारी स्नातकों के आगे उस कुलपिता श्रद्धानन्द की मूर्ति को न देख कर सब की आंखों से दो बून्द आंसू टपक पड़े। दीक्षान्त संस्कार में विराट् जन समूह के शोर को बन्द करने में भारत के नेताओं को असमर्थ देख कर उस की सिंह गर्जना और उसके हाथ की संकेत की शक्ति का प्रभाव सब को स्मरण हो आया। उस समय उस की महत्ता और उसका अभाव तीव्रता से सब को अनुभव हुआ।

इस बर्ष वेद सम्मेलन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्रद्धानन्द स्मृति सभा, युवक कान्फरेन्स, शुद्धिसम्मेलन, जातपात तोड़क सम्मेलन, अछूतोद्धार सम्मेलन, राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आदि सम्मेलन हुए।

अपने पीछे ये सम्मेलन क्या छोड़ गए इसका उत्तर एकत्रित जन समूह के सालभर का कार्य देगा। आचार्य रामदेव जी, और म० गान्धी की अपील पर तीन लाख रुपया आया। इस प्रकार सर्वतोभावेन जयन्ती सफल हुई।

जयन्ती का सन्देश— गुरुकुल आर्यपुरुषों के निकट ही नहीं अपितु हिन्दु मात्र के निकट एक तीर्थ बन गया है। गुरुकुल को

आर्यजनता अब ज्यादा प्यार करने लगगई है, यह जयन्ती में आई आर्यजनता और अपील के उत्तर में आई धन राशी ने सिद्ध कर दिया । पर जयन्ती ने हजारों यात्रियों को क्या सन्देश दिया ? हमारी सम्मति में श्रद्धानन्द के जीवन से दिया गया सन्देश ही जयन्ती का संदेश है । क्या आर्यजनता स्वर्गीय नेता के बताये पथ पर चलेगी ? क्या भारतीय प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को अपनायगी ? क्या भोगवाद पर त्यागवाद को अपने जीवनों में प्रतिष्ठा करेगी, वाणी को अपेक्षा कर्म को श्रेष्ठता देगी ? सामाजिक जीवन की पवित्रता, समाज के बल और प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता को फिर से लाने में प्रयत्नशील गुरुकुल के लिए जीवन का एक भाग प्रत्येक आर्य नरनारी अर्पण करने को उद्यत है या केवल जबान से ही श्रद्धानन्द का कीर्तन कर ही सन्तुष्ट होकर आर्य पुरुष बैठ जाना चाहते हैं ? इसका उत्तर अगले साल का वार्षिकोत्सव देगा।

श्री राजेन्द्र बाबू का दीक्षान्त अभिभाषण—गुरुकुल के दीक्षान्त संस्कार में इस वर्ष श्री राजेन्द्र बाबू ने दीक्षान्त भाषण दिया था । आप का भाषण मनन करने योग्य है। राष्ट्रीय शिक्षा क्या है उस का क्या उद्देश्य है, वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षणालयों को किस ओर चलना चाहिए, पाश्चात्य और पूर्वीय लोगों के स्वभाव में क्या अन्तर है इत्यादि बातों का आपने बहुत ही स्पष्ट रूप से विश्लेषण किया है । वर्तमान भारतीय मनोवृत्ति की निन्दा करते हुए आप कहते हैं-“हम भारतीयों की मनोवृत्ति अङ्ग्रेजी शिक्षा के फल स्वरूप कुछ पश्चिमीय रोशनी में ही देखना चाहते हैं । मैं यह नहीं कहता कि उस पश्चिमीय सभ्यता में कुछ सार अथवा सत्य नहीं है पर मैं यह भी नहीं कहता कि जो कुछ है उसी में है और सारा जगत् मिथ्या है । उस सभ्यता और परिपाटी की नींव प्रवृत्ति में है और हमारी निवृति में है । हम यदि किसी विषय में विशेष प्रवृति भी रखते हैं तो वह निवृत्ति के भाव से ही, हम कर्म भी करते हैं तो उसी भाव से ।”

वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षणालयों की उत्पत्ति का कारण बताते हुए आप कहते हैं— “जहां तक भारत वर्ष का सवाल है, असन्तोष के दो कारण कहे जा सकते हैं, एक तो यह कि वर्तमान युग की सारी शिक्षा दीक्षा योरोपीय सांचे में ढली हुई हैं, भारतवर्ष के अस्थिमज्जागत आदर्शों के, उस के अन्तःकरण के उसकी आत्मा के सर्वथा विपरीत है……दूसरा एक कारण यह भी है कि वर्तमान प्रचलित प्रणाली हमारे बाह्य जीवन के, हमारी परिस्थितियों के, हमारी शुद्ध सांसारिक आवश्यकताओं के भी सर्वथा प्रतिकूल है । इन द्विविध दोषों को दूर करते हुए भारतवर्ष के योग्य उसकी भीतरी आत्मा और बाहरी परिस्थिति के अनुकूल शिक्षण शैली का यदि ये विद्यालय पुनर्निर्माण कर सकें तभी इनका अस्तित्व न्यायोचित और लाभदायक समझा जा सकता है ।”

राष्ट्रीय शिक्षणालयों का उद्देश्य बताते हुए आप कहते हैं—

"इस कारण हमारी आवश्यकता ज्ञान विज्ञान का वर्जन नहीं बल्कि उन्हें लोक हितकर रखने और सदा लोकहित रखने योग्य मनोवृत्ति अर्जन करना है। पर यह तब तक सम्भव नहीं जब तक हमारी भोग और विलास की प्रवृत्ति उचित सीमा के अन्दर बद्ध न की जाय, जब तक यम और नियम की कड़ी साधना से हम अपनी इन्द्रियों को वश में न लासकें, जब तक त्याग और सेवा से हम अपनी आत्मा को पुष्ट न करलें। हमारे गुरुकुलों तथा अन्य राष्ट्रीय विद्यालयों का इसी लिए यह उद्देश्य होना चाहिए कि आवश्यक ज्ञान विज्ञान की चर्चा और सम्प्रदान करते हुए भी वे हमें आत्म निग्रह त्याग तथा सेवा की दीक्षा दें।"

आगे चल कर आप कहते हैं—"यदि प्राचीन आध्यात्मिकता और आधुनिक ज्ञान विज्ञान का समन्वय हमारे विद्यालयों का मूल है तो देश का उद्धार, समाज का सुधार, दुःख दरिद्रता से लोगों का निस्तार, उनका एक मधुर फल है, उनकी चरम परिणति है। हम चाहते हैं कि हमारे सब राष्ट्रीय विद्यालय इस ओर अपना ध्यान दें और इसी को अपना ध्येय, अपना लक्ष्य बना कर इसी ओर अपने विद्यार्थियों को प्रवृत्त करावें इसी की उन्हें दीक्षा दें और इसी की उपयुक्त शिक्षा देने में अपनी सारी शक्तियों को लगावें।"

राष्ट्रीय शिक्षणालयों के कर्तव्य पथ का निर्देश करते हुए आपने कहा—

"अतएव ज्ञान विज्ञान, धर्म संहिता, चाहे विषय या कला के शिक्षण का हम प्रबन्ध करें हमें सदा ध्यान रखना होगा कि ग्राम्य जीवन का सुदृढ़ संस्कृत भित्ति पर पुनः संगठन ही हमारा मुख्य कार्य होगा। यदि हम वास्तव में भारत का कल्याण और उस के संपादन में योग्य उचित भाग लेना चाहते हैं तो उसी में हमारी विद्या बुद्धि का सदुपयोग होगा, उसी में इन को प्रयुक्त करना होगा, उसी ओर इन के मुख को मोड़ना पड़ेगा, इन के शक्ति केन्द्र को झुकाना होगा।"

रोजी की समस्या का हल बताते हुए तथा राष्ट्रीय विद्यालयों की उत्कृष्टता प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—"यदि रोटी का प्रश्न दोनों जगह एकसा ही है तो राष्ट्रीय विद्यालयों को ही लोग क्यों न अपनावें, क्यों कि इन में तो कम से कम देश सेवा, राष्ट्र समाज सेवा का अवसर मिलेगा, जो सरकारी विद्यालयों की मार्फत नहीं मिल सकता। वहां तो केवल सरकारी चक्रों को चलाना है, सरकार को अपना राज्य कायम रखने में मदद करना है। उसका शासन हमारे गले में गुलामी के तौक की तरह बांधे रखने में अनजाने उपकरण बनना है, अपनी ही विद्या बुद्धि को अपने विरुद्ध और दूसरों के हित लगाना है।"

परिवर्तन—श्री पं० विश्वम्भर नाथ जी ने निरन्तर ५३ साल तक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के मुख्याधिष्ठातृत्व के गुरुतर कार्य भार को सम्भाला। आप आर्य समाज के पुराने पर मूक सेवक हैं। आप के काल में गुरुकुल विश्वविद्यालय एक मे

स्थान में तीन महाविद्यालयों में परिणत हो गया। गुरुकुल की शिक्षा सम्बन्धी कामों के लिये शिक्षा-पटल की योजना की गई। परीक्षा पद्धति बदली। गुरुकुल का व्यय बिना स्थिर कोष की सहायता के होने लगा। आर्थिक दृष्टि से गुरुकुल को मजबूत पैरों पर आपने खड़ा किया। ब्रह्मचारियों के जीवन को उन्नत और अधिक संयमी बनाने के लिए व्रताभ्यास की नूतन पद्धति आपके समय में प्रारम्भ हुई। गुरुकुल का प्रबन्ध जिस समय शिथिल हो रहा था और अस्थिर हाथों में घूम रहा था उस समय आपने इस की बागडोर सम्भाली। आज आप इस को सुव्यवस्थित और सुसंगठित कर के अपने उत्तराधिकारियों के हाथ में छोड़े जा रहे हैं। बाढ़ और संस्थापक की मृत्यु की महान विपत्तियों का आप को मुकाबिला करना पड़ा पर आप विचलित नहीं हुए, धैर्य नहीं छोड़ा। जयन्ती की सफलता आप के इसी अटूट धैर्य का परिणाम है। आपने कभी यश की इच्छा नहीं की। प्रशंसा और जयघोषों से सदा आप दूर रहें हैं। आज भी आप चुप चाप गुरुकुल से गए हैं, अखबारों में महीनों पहले अपने जाने को आपने नहीं छंदाया, न इस पर आपने कुछ आन्दोलन होने दिया। गुरुकुल को नई जमीन पर अपने हाथों से संस्थापित न कर सके जिस के लिए आप इतने व्यस्त और चिन्ताशील रहते थे। यह सचमुच दुःख की बात है; सम्भवतः आप के दिल को भी यह बात चुभती रहेगी। आर्यसमाज में निष्काम और निस्वार्थ सेवा का जो आदर्श आपने स्थापित किया वह समाज के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा और नवयुवकों के लिए अनुकरणीय रहेगा।

नवीन मुख्याधिष्ठाता श्री आचार्य रामदेव जी ही नियुक्त हुए हैं। आप से समाज ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत परिचित है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपयुक्त उत्तराधिकारी आप ही हैं। आप की रोम रोम में गुरुकुल के प्रति प्रेम भरा हुआ है। गुरुकुल के वर्तमान स्वरूप के निर्माताओं में आपका बड़ा भाग है। कन्या गुरुकुल के भी आप ही मुख्याधिष्ठाता होंगे। गुरुकुल और सभा दोनों श्री आचार्य जी की प्राप्ति पर गर्व कर सकते हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन— हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १७ वां अधिवेशन टलते टलते अन्त में भरतपुर में हो गया। सम्मेलनों के आयोजनों की धूम में और नेताओं के जमाव में तथा राजसी ठाट बाट में कोई कमी नहीं थी, पर साहित्यक छटा का अभाव था, और हिन्दी साहित्य के सेवक भरतपुर से निराश हो कर लौटे हैं, यह भी उतना ही सत्य है। कवीन्द्र रवीन्द्र के आगमन से कितने बंगाली हिन्दी प्रेमी बनते हैं यह तो समय बतायगा पर राजस्थान में हिन्दी की जड़ की जो आशा भरतपुर से की गई थी वह निष्फल हो गई यह निस्सन्देह है। मा० मालवीय जी सेठ गोविन्ददास और श्री टण्डन जी के आगमन ने इसके अखिल नाम को सार्थक तो अवश्य कर दिया पर वस्तुतः लकीर को पीटने के सिवाय कोई काम नहीं किया।

सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों में संग्रहालय की स्थापना का काम वस्तुतः सर्वाधिक उपयोगी है जो अभी से प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

ओझा जी का भाषण— भरतपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी थे। आप गुजराती होकर राष्ट्र भाषा की जो सेवा कर रहे हैं, हिन्दी भाषा में जिस प्रकार गवेषणात्मक ऐतिहासिक साहित्य को उत्पन्न कर रहे हैं उसके फलस्वरूप आप को सम्मेलन ने पहिले मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान कर अपने आपको गौवान्वित किया था। इस वर्ष आपको सभापति बना कर सम्मेलन ने आपके हिन्दी-भक्ति का उचित सन्मान कर निःसंशय सम्मेलन ने अपने आपको गौरवान्वित किया है। आपके भाषण में दो तीन बातें विचारणीय हैं। मद्रास आदि देशों में हिन्दी प्रचार तद्देशीय वासियों की भक्ति और निष्ठा की प्रशंसा करते हुए हिन्दी भाषा-भाषी भारतीय प्रान्तों में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता जतलाते हुए आप कहते हैं-"पर हिन्दी भाषा भाषी भारतीय प्रान्तों में हिंदी प्रचारकी जितनी प्रगति होनी चाहिए, उतनी शायद हो नहीं रही। सम्मेलन उधर इतना ध्यान भी नहीं दे सका है। पर आवश्यकता है कि हम इन प्रान्तों को हिन्दी के सुदृढ़ दुर्ग बनावें और हृदय में एक बार लगन पैदा हो जाने पर सफलता पूर्वक किया भी जा सकता है। सम्मेलन की ओर से इस बात का जोरों से प्रचार हो कि जहां कहीं १०-१५ हिंदी प्रेमी हों, वहां एक हिन्दी प्रचारिणी संस्था स्थापित की जाय।......और ऐसी संस्थाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह वर्ष में कम से कम एक व्यक्ति को हिन्दी प्रेमी बनावें, उन्हें हिंदी सिखावें, और जो हिन्दी जानते हैं उन्हें हिंदी साहित्य का रसास्वादन करा कर उन के प्रेम की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करें। यदि हिंदी के हितैषियों में हिंदी के प्रचार की सच्ची लगन पैदा हो जाय, और कम से कम एक स्त्री अथवा एक पुरुष को हिंदी सिखाना अपना धार्मिक कर्तव्य समझने लग जाँय तो यह महान् प्रश्न बड़ी शीघ्रता से हल हो जाय और दो चार वर्ष में ही हम देखेंगे कि हिन्दी की जड़ बहुत मज़बूत हो गयी है और हिंदी साहित्य के विस्तार और विकास पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा है। क्या मैं आशा करूं कि हिंदी प्रेमी इस ओर ध्यान देंगे।" क्या पञ्जाबी भाई इस संदेश को सुनेंगे?

प्राचीन शोध के व्यापक कार्य का निदर्शन कराते हुए आप कहते हैं—"शोध के द्वारा न केवल हम हिन्दी साहित्य की ही अभिवृद्धि कर सकेंगे बल्कि मेरा विश्वास है कि हम संसार के साहित्य और ज्ञान में भी वृद्धि करने में समर्थ होंगे। भारत का इतिहास स्वयं एक स्वतन्त्र महान विषय है जो न केवल हमारे देश वासियों के ही लिए बहुमूल्य और परमोपयोगी है पर उस के महानतत्व भारत की अज्ञात कन्दराओं में पड़े हुए हैं। इतिहास को अन्धकार के हाथ से छीन कर प्रकाश में लाने के लिए अपनी जान खपा देने वाले दीवानों के एक दल की जरूरत होगी, जो मर जीवा की भांति बरा-

बर व्यर्थ डुबकी लगाने पर कभो कोई मोती प्राप्त कर अपने को धन्य मानें । सम्मेलन को चाहिए कि इस प्राचीन शोध के कार्य को उत्तेजना दे और प्राचीन ताम्र लेख, शिला लेख और सिक्कों के उद्धार तथा प्रकाशन का यथोचित प्रबन्ध करे, जिससे भारत की आत्मा को प्रबुद्ध करने वाले और जातीय जीवन की ज्योति जगाने वाले इतिहास के निर्माण में सहायता मिले ।" तथास्तु ।

युवक लेखकों तथा नवीन लेखकों को सम्बोधन करते हुए आप कहते हैं "हमें जिस विषय से प्रेम हो, उस विषय पर भिन्न भिन्न भाषाओं तथा विभिन्न कालीन महात्माओं तथा विद्वानों द्वारा जो विचार प्रकट हुए हैं, उन से पर्याप्त परिचय प्राप्त कर हम स्वयं मनन और विमर्षण करें और तब अधिकारी बन कर हृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेने वाली सुन्दर भाषा में अपने विचारों को प्रकट करें ।.........ऐ मेरे देश के होनहार नवयुवक लेखको ! देखो तो सही तुम्हारी लेखनी की नोक में एक नवजीवन सञ्चारिणी शुभ स्फुर्ति दायिनी विद्युच्छाक्ति न जाने कब से तुम्हारे हृदय की गति की राह देख रही है । युद्धों और क्रान्तियों से भी जो काम नहीं हो सकते उन्हें तुम्हारी लेखनी अनायास सम्पन्न कर सकती है । क्या अब हम अपनी उदासीनता छोड़ कर विधि पूर्वक इस काम में लगेंगे ।" इन पँक्तियों में मनन के लिये पर्याप्त सामग्री वर्तमान है । नवीन लेखकों को वृद्ध अनुभवी के शब्दों पर अमल करना चाहिए ।

प्रकाशकों को कर्तव्य का बोध कराते हुए आपने कहा—"प्रकाशक साहित्य और साथ ही लेखकों को भी बना और बिगाड़ सकते हैं । इस लिए प्रकाशकों को चाहिए कि वह देश और समाज के प्रति अपने कर्तव्य को समझें । केवल व्यापारी दृष्टि से जनता की किसी ऐसी रुचि का अनुसरण न करें जो उन्हें हीनता की ओर ले जाने वाली हो । प्रत्येक प्रकाशक के हृदय में यह भाव होना चाहिए, कि वह युग परिवर्तन के लिए कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है । गंदे और हानि कर साहित्य को रोक कर अच्छे और सच्चे लेखक को प्राणपण से सेवा करना, सच्चे प्रकाशक का कर्तव्य होना चाहिए । जमींदार और रैयत, मालिक और मजदूर के बीच में जो संघर्ष चल रहा है, यदि प्रकाशकों और लेखकों के अन्दर वही बात आयी तो यह बड़ी अवाञ्छनीय स्थिति होगी । प्रकाशकों का यह कर्तव्य है कि वह अपने लेखकों को हर तरह की सुविधा देकर यथा संभव उन्हें निश्चित कर दें । 'बीसवीं सदी' नामक गुजरातो पत्रिका के तंत्री हाजी मुहम्मद अपनी पत्रिका को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की धुन में अपने को एकदम बरबाद करके साहित्य संसार में अपने नाम को आदरणीय बना गए हैं । मैं चाहता हूं कि हिंदी के प्रकाशक भी लेखकों के साथ स्निग्ध और औदार्य पूर्ण व्यवहार करें । प्रत्येक प्रकाशक का ध्येय हो, कि वह अपने जीवन-काल में कम से कम एक सच्चे और ऊंचे लेखक को पैदा कर जाय ।" ये पंक्तियां टिप्पणी नहीं चाहती, ये तो क्रिया रूप में परिणत होना मांग रही हैं; क्या हिन्दी के प्रकाशक साहस करेंगे ?

आगे ओझा जी ने पुष्ट प्रमाणों से देव नागरी को राष्ट्र लिपि सिद्ध किया है और आपने परामर्श दिया है कि प्रान्तीय भाषाओं के ग्रन्थ भी हिंदी भाषा में ही प्रकाशित हुआ करें। देश के श्रेष्ठ ग्रन्थकारों और कवियों से अनुरोध करते हुए आप कहते हैं—"यदि आप चाहते हैं कि आप के सुललित और प्राणपद काव्य सारे देश में पढ़े जायें और आपके विचार भारत के कोने कोने में फैल जायें तो आप को जोर देकर अपने प्रकाशकों को इस के लिए तैयार करना चाहिए कि वह आपकी कृतियों को देशव्यापी नागरी लिपि में ही प्रकाशित करें।" क्या अन्य प्रान्त वाले ग्रन्थकार और प्रकाशक तथा हमारे अंग्रेजीदां-नवयुवक राष्ट्र की इस पुकार को सुनेंगे ?

शिवाजी की त्रिशत जयन्ती— ३ मई को श्री छत्रपति शिवाजी महाराज को हुए ३०० साल हो जायंगे। हिंदू-पादशाही के संस्थापक की जयन्ती जितने भी अधिक उत्साह से मनाई जायगी वह कम ही होगा। इस वीर पुंगव का जीवन देश के तरुणों को स्वाधीनता की अमर-बेलि वेदी पर अपने आप को भेंट करने को तत्पर करेगा, निराश और अकर्मण्यों को आशा और कर्मण्यता का पाठ पढ़ायगा। इस दीन पतित अवस्था में ३ मई के दिन गर्व से माथा ऊंचा कर हम कहेंगे भारत माता ने ही ऐसे उत्तम शासक, राजनीतिज्ञ, वीर साम्राज्य संस्थापक पैदा किए हैं, जिनकी तुलना में संसार का कोई भी आदमी नहीं खड़ा हो सकता। शिवाजी का जीवन गुलामी और दासता के भावों को काफूर कर स्वाधीनता, स्वावलम्बन और आत्माभिमान की प्रतिष्ठा करेगा। स्वाधीनता के मार्ग में अग्रसर होने के लिए साहस प्रदान करेगा। शिवाजी वीर की गौरवमय वीरता की कहानियां निर्बल हृदयों को नवजीवन और नई स्फूर्ति से बलवान बनायगा। चतुर राजनीतिज्ञ की राजनीतिज्ञता अन्धेरे में भटकने वाले राजनीतिज्ञों को स्वतन्त्रता का मार्ग सुझायगी। उदार हृदय शिवाजी की उदारता हिंदू और मुसलमानों की कायरता और पक्षपात को दूर करेगा और दोनों को सिखायगा एक दूसरे के मनों भावों का आदर करना और मातृ शक्ति का सन्मान करना।

पाठकों से निवेदन——

'ज्योति' का यह अङ्क भी पाठकों की सेवा में विलम्ब से जारहा है। हम इस के लिए स्वयं लज्जित और दुःखी हैं। पर हम लाचार थे। पाठकों से छिपा न होगा कि दिल्ली की आबहवा और परिस्थितियाँ विपरीत होने के कारण कन्या गुरुकुल दिल्ली से देहरादून चला आया है। इस के साथ ही ज्योति भी 'सद्धर्म-प्रचारक' प्रेस से 'गुरुकुल यन्त्रालय' कांगड़ी में आगई है। आशा है पाठक इस आवश्यक परिवर्तन के कारण हुए विलम्ब को क्षमा करेंगे। हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि आगे से 'ज्योति' नियमित समय पर पाठकों की सेवा प्रतिमास उपस्थित होगी।

Shape
Any Design **Is Giver For**
Number

Rs. 7 Only.

22 Ct. Rolled gold wrist watches.

1
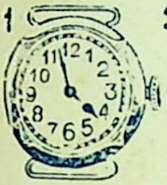
2
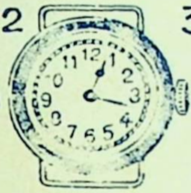
3
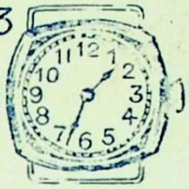
4
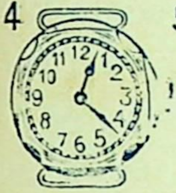
5
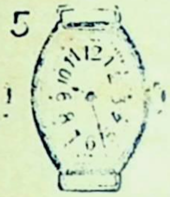
6
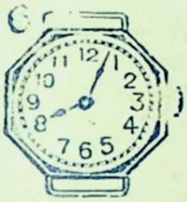

Original Price Rs. 14
Half Price Rs. 7

Only for One month. We are giving this offer for the New Year. All watches are given at half Prices. The best movement and with perfect machanism, looka beautiful to wear and handy. All wrist watches are guaranteed Any Shape, Design or any Number is given with superior Silk strap free.

Sale Price Rs. 7 only. Guranteed for ten years.

ONLY A FEW MORE WRITE NOW.

Apply to :—**SWAN HOUSE. P. B. 508. P. T. MADRAS**

FREE ! FREE !!

"C" Regd. TIME/PIECE **Given Free**

TO ANY ONE

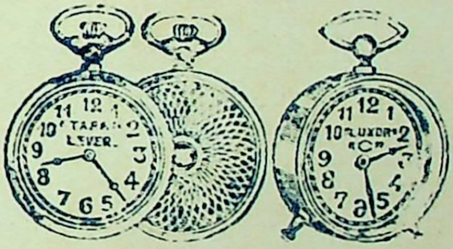

Ordering for our "Tara Lever" 18 caret Rolled gold pocket Watch with beautiful engravings on the back and guaranteed for five years, duly stamped on the dial, by the manufacturers, costing RUPEES FIVE, We give as a Free Offer, our "C" Regd. Time piece.

Write now. This Offer is Limited.

Can be had from:—

CAPTAIN WATCH CO., P. B. 265, MADRAS.

अपने बच्चे को फुटवाल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताजा
और खुश मिज़ाज होगा यदि
तुम हम से उस के लिए फुटवाल
खरीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे
यहां है । जल्द आर्डर भेजिये ।

बी० डी० गुप्ता एण्ड को०
पंच कुई रोड
दिल्ली ।

चौधरी हुलासराय प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिए गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित ।

Regd. NO. A. 171.

वर्ष ८, खंड ८] मई, जून, जौलाई १९२७ [संख्या १, २, ३

ज्योति

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ।)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी. ए.

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

॥ ओ३म् ॥

* विषय सूची *

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. दिव्य ज्योति (कविता)	—पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार	१
२. वेद में ज्योतिः सिद्धान्त	—प्रो० विश्वनाथ जी	२
३. अम्बे ! (कविता)	—श्री केदारनाथ जी	९
४. वैदिकेश्वरवाद	—श्री पं० लोकनाथ जी	१०
५. मेरा यह उपदेश कभी तुम भूल न जाना (कविता)	श्री सन्तलाल जी	२२
६. शिवसंकल्प का विजय	—श्री हरिशरण जी	२६
७. प्रभात प्रताप (कविता)	—श्री हरिदत्त मिश्र	३३
८. अनोखा परिवर्तन (गल्प)	विश्वम्भर सहाय प्रेमी	३४
९. कौन ? (कविता)	श्री रामजीवन शर्मा—	३९
१० व्यापारे वसते लक्ष्मीः (गल्प)	भोलानाथ जी	४०
११ अनुरोध (कविता)	श्रीहरि	४२
१२ प्राचीन तथा असली श्री मद्भगवद्गीता	—श्रीवीरहरि	४३
१३ ओ कंगले तू क्या पीवेगा ! (कविता)—	श्री पं० बुद्धदेव जी	४६
१४. देवसमाज की शिक्षा—	श्री स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी	४७
१५. प्रेमोपहार (कविता)	—श्री श्यामसुन्दर जी	५२
१६ आर्यसमाज के नियमों का महत्व —	श्री कृष्णानन्द जी	५३
१७. अन्योक्तियाँ (कविता)	—श्रीवीरहरि	५४
१८. वैद्यनाथ धाम की यात्रा	—श्रीरामजीवन शर्मा	४५
१९. कुसुम-कामना (कविता)	—वनमाली	५८
२०. अन्ध विश्वासों को त्यागिये—	श्री कृष्णानन्द जी	५९
२१. आकाङ्क्षा (कविता)	लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी	६२
२२. अद्भुतयन्त्र	—पं० कृष्णदत्त जी—	६३
२३. तुम्हें मोहनिद्रा बड़ी आ रही है (कविता)	पं० भूरालाल कथाव्यास	६६
२४. जीवन संग्राम	—श्री डा० रामकृष्ण जी	६७
२५. निद्रा (कविता)	—श्री पं रामशंकर जी मिश्र	८७
२६. विचित्र बुद्धि (गल्प)	श्री पं० वागीश्वर जी	८८
२७. देशभक्तकी कामना (कविता)	—वनमाली	९९
दिखादिया (कविता)	—वनमाली	९९
२८. सुदूरपूर्व की समस्या	—गुरुकुल का ब्रह्मचारी	१००
२९. वैज्ञानिक संसार		१०५
३०. कलाकौशल		१११
३१. स्त्री जगत्		११५
३२. कुसुमोद्यान		११९
३३. विचार प्रवाह		१२४—१२८

ज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार—

आचार्या कन्या गुरुकुल

२१, राजपुर रोड
देहरादून

ज्योति
ओ३म् व्यवात्ते
ज्योतिरभूदप त्वत्त-
मो अक्रमीत्॥

वर्ष ८ | वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ १९८४
मई, जून, जुलाई १९२७ ई० | संख्या १, २, ३

"दिव्य ज्योति"

(श्री पं. वागीश्वर जी विद्यालंकार)

देखूं वही ज्योति इकवार ॥
जिसकी दिव्य छटा से पूरित है यह सब संसार ।
जिसे देख कर खुल जाता है बन्द हृदय का द्वार ॥
जिसकी सुन्दरता के आगे सब सौन्दर्य असार ।
जिसे देख कुछ और देखने का रहता न विचार ॥
वह आ जावे इन नयनों में तुरत पलक दूँ डार ।
बाहर जाने फिर न उसे दूँ मैं बस किसी प्रकार ॥
आँधी उठे, घिरे घनमाला, छा जावे अँधियार ।
किन्तु उसी पर दृष्टि किये मैं जा पहुंचूं उस पार ॥

वेद और ज्योतिः सिद्धान्त

(ले०-प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालंकार)

सामान्य ज्योति के स्थूल दृष्ट्या वेद में चार विभाग किये हैं।

(१) प्रथम ज्योति तो इस पृथिवी पर रहने वाली है। जाठराग्नि, ओषधि आदिमें रहने वाली अग्नि, वाडवानल (जो समुद्र में रहती है) तथा पृथिवी के गर्भ में रहने वाली अग्नि इसी ज्योति के भिन्न २ रूप हैं। इन में सर्वजन प्रत्यक्ष ज्योति आग ही है। इन्हें वेद में "पार्थिवाग्नि" शब्द से कहा है।

(२) द्वितीय ज्योति अन्तरिक्ष में रहने वाली है। जिस का विशेषतया प्रत्यक्ष वर्षा ऋतु में होता है। इस का निवास स्थान अन्तरिक्ष में रहने वाले जल कण हैं, ऐसा ही वेद में वर्णन आता है। यह भाव (१) अपां मित्रम् (२) अप्सु ते सधिः (३) अप्सु अग्निः (४) अपां नपात् इत्यादिक वैदिक नामों तथा अन्य वर्णनों से प्रतीत होता है। अन्तरिक्ष की इस अग्नि को "वैद्युताग्नि" कहते हैं। जिसका भाव है "विद्युत्रूपी आग"।

(३) तृतीय ज्योति सूर्य है, जो प्रतिदिन प्रातः काल पूर्व दिशा में दर्शन देता है।

(४) चतुर्थ ज्योति से वेद में रात्रि की ज्योति का वर्णन किया है। इस ज्योति में चन्द्र, नक्षत्र तथा तारागण सम्मिलित हैं।

इन सब ज्योतियों का वर्णन ऋग्वेद ३ अष्टक, १ अध्याय, २२ वर्ग, द्वितीय मन्त्र में एक साथ पाया गया है, वह मन्त्र निम्नलिखित है।

"अग्ने ! यत्ते दिवि वर्चः, पृथिव्यां, यदोषधीष्वप्स्वा, यजत्र। येनान्तरिक्ष मुर्वाततन्थ, त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥

इस मन्त्र में दिवि वर्चः से (१) सूर्य रूप ज्योति का ग्रहण है, यत् पृथिव्यां से (२)पार्थिव अग्नि का, यत् ओषधीषु से भी उसी पार्थिव अग्नि का ग्रहण है, जो कि रूपान्तर से ओषधियों में रहती है, तथा जिन ओषधियों के जलाने से यह पार्थिव अग्नि का रूप धारण कर लेती है। यत् अप्सु अर्थात् जो जलों में निवास करती है, इस से (३) अन्तरिक्ष की विद्युत् का ग्रहण किया है।

"येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ" इस से(४)र्थ ज्योति का ग्रहण है जो कि ज्योति विस्तृत अन्तरिक्ष में चारों ओर व्याप्त है, और रात्रि को जब हम अपनी चक्षु को अन्तरिक्ष में फैंकते हैं, तो बड़ा भारी अन्तरिक्ष जिस चन्द्र, नक्षत्र, तथा तारा मण्डल रूपी ज्योति से सर्वतो व्याप्त प्रतीत होता है।

अर्णवः शब्द से समुद्र में रहने वाली ज्योति का ग्रहण किया है, जिसे संस्कृत में वाडवानल कहते हैं।

इन उपरोक्त ज्योतियों में से पृथिवी, ओषधी और समुद्र में रहने वाली ज्योतियों का ग्रहण पार्थिवाग्नि शब्द से हो सकता

हैं। क्योंकि पार्थिव अग्नि ही इन तीनों में सर्वजन प्रत्यक्ष होने से प्रधान है। बहुत सम्भव है कि उपरोक्त मन्त्र में यत् पृथिव्यां से पृथिवी के गर्भ में रहने वाली अग्नि का भी ग्रहण हो, जो कि कभी २ ज्वालामुखी पर्वतों के रूप में भी प्रत्यक्ष होती है, जिसे अंग्रेज़ी में "सबटैरेनियन हीट" कहते हैं। किन्तु इस विषय में, यतः कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला, अतः यह बात विवादास्पद अवश्य है।

इस प्रकार हमने देख लिया कि वेद में ज्योति के चार मुख्य भाग किये गये हैं। इन चारों में चन्द्र, नक्षत्र तथा तारा गण की ज्योति को भी द्युलोक की ज्योति में शामिल कर लेते हैं। इस लिये वेद में बहुत स्थानों पर त्रिज्योति का ही वर्णन है।

तीनों ज्योतियों का सामान्य कारण

इस प्रकार द्युलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूलोक की ज्योतियों के वर्णन के पश्चात् हम इस प्रश्न पर आते हैं कि "क्या ये तीनों ज्योतियां एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न हैं या सामान्यकारण रूप से अत्यन्त भिन्न नहीं। जिस प्रकार जल, भाप और बर्फ़ यद्यपि नाम रूप से भिन्न हैं, किन्तु जल रूप से सब अभिन्न हैं। या घड़ा, मटका, कसोरा, दीवा ये नाम रूपसे तो एक दूसरे से भिन्न हैं, किन्तु मट्टी रूपसे सब एक हैं। इसी प्रकार क्या द्युज्योति, अन्तरिक्षज्योति तथा भूज्योति केवल नाम रूप से भिन्न होती हुई भी, किसी सामान्यकारण के रूप से एक हैं? या लोहा चाँदी और कोयले की तरह सर्वथा ही एक दूसरे से भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में हम इस प्रश्न को इस रूप में भी रख सकते हैं कि "क्या अनादि काल से ही ये तीनों ज्योतियां एक दूसरे से नितान्त विलक्षण हैं, या ये तीनों किसी एक सामान्यकारण के कार्य हैं।

वेद और इस प्रश्न का हल

(१) ऋ० ३।१।२२।२ में कहा गया है कि द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा भूलोक की ज्योतियों का कारण एक है और उस सामान्य कारण का नाम अग्नि है।

(२) ऋ० ७।८।२८।१ मन्त्र निम्नलिखित है:—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः, अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः। तृतीय मप्सु नृमणा अजस्रमिन्धानः एनं जरते स्वाधीः॥

इस का अभिप्राय यह है कि अग्नि ने प्रथम द्युलोक में आदित्य का रूप धारण किया। तदनन्तर पार्थिव अग्नि तथा वैद्युत अग्नि का। इस वर्णन में भी तीनों ज्योतियों का एक सामान्य कारण बताया गया है, जिस को अग्नि शब्द से कहा है।

(३) दुर्गाचार्य, नैगम काण्ड, अध्याय ४, खंड २४, शब्द ५२ में लिखते हैं यथाः—

"अयमेक एव त्रिषु स्थानेषु जायते"

इस का अर्थ यह है कि यह सामान्यकारण अपने रूप से एक ही हैं, किन्तु तीन ज्योतियों में परिणत होता है।

(४) ऋ० ६।३।३८।१६ का मन्त्र निम्न लिखित है:—

"अग्निर्मूर्धा, दिवः ककुत्, पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति"

अर्थात् अग्नि सब से श्रेष्ठ है। द्युलोक में सूर्यरूप से बढ़ा हुआ भाग अग्नि ही है। तथा

पृथिवी का पति जो आग है, वह भी अग्नि ही है। तथा अन्तरिक्ष में जलों का सारभूत जो विद्युत् है वह भी अग्नि का रूपान्तर ही है। इस वर्णन से भी उपरोक्त बात ही सिद्ध होती है।

(५) दुर्गाचार्य निरुक्त, दैवतकाण्ड, अध्याय ७, खंड २६ में लिखते हैं:—

> "एक मेवेदं ज्योतिः ज्योतिष्ट्वाविशेषात्।
> तत्पुनरेत ज्जगदयात्रासिद्धये त्रिधा विभक्तं
> पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च। विभक्ताभिधानं
> सम्पद्यते अग्निर्विद्युदादित्य इति॥

अर्थात्-ज्योति वास्तव में एक ही है। वही तीन रूपों में परिणत हो कर, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में रहती है। उन परिणत रूपों का नाम अग्नि, विद्युत् और सूर्य है।

(६) ऋ० २। ३। १४ में निम्न लिखित मन्त्र आया है:—

> "अस्य वामस्य पलितस्य होतुः, तस्य भ्राता
> मध्यमोऽस्त्यश्नः, तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो
> अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥

इस मन्त्र में सूर्य, विद्युत्, और अग्नि को एक दूसरे का भाई कहा है। यह भाई शब्द इन के एक सामान्यकारण को सूचित करता है, जिस के कि ये तीनों पुत्रस्थानापन्न हैं।

इस प्रकार हमें ज्ञात हुआ कि वेद में इन तीनों ज्योतियों को एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं माना, किन्तु वेद के मन्तव्य के अनुसार इन सब में एक सामान्यरूप अनुस्यूत है, जो वास्तव में इन तीनों रूपों का कारण है। और इस सामान्यकारण को वेद में अग्नि शब्द से पुकारा गया है।

सामान्य कारण का स्वरूप

अब हम इस प्रश्न पर आते हैं कि इस सामान्य कारण का स्वरूप क्या है। क्या यह सामान्य कारण शक्तिस्वरूप है या द्रव्य स्वरूप?। इस प्रश्न का उत्तर लेनेके लिये हमें वेद में से ऐसे मन्त्रों को ढूंढना चाहिये जिन में इन तीन ज्योतियों की उत्पत्ति बताई गई हो। निम्न मन्त्रों में इस पार्थिव अग्नि के विशेषण निम्नलिखित हैं—

(i) सहसः पुत्रः। ऋ० २। ५। २८। ६
(ii) सहसः सूनो। ऋ० ६। ५। २४। ३
(iii) सहसो यहो। ऋ० १। ५। २७। ४
(iv) सहस्कृत। ऋ० ६। ३। ३८। ११
(v) ऊर्जोनपात्। ऋ० ६। ३। ३९। १३
(vi) सहसा जायमानः। ऋ० १।१५।९६।१
(vii) ऊर्जः पुत्रम्। ऋ० १। १५। ९६। ३

इन सब विशेषणों का अर्थ है "बल से पैदा हुआ, या बल का पुत्र"। कई मन्त्रों में यह भी वर्णन आता है कि यह पार्थिव अग्नि मंथन करने से या एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ पर रगड़ने से पैदा होती है। अतः वेद के मन्तव्य के अनुसार पार्थिव अग्नि का कारण बल अर्थात् शक्ति है।

विद्युत् का कारण

अब हम यह देखना चाहते हैं कि विद्युत् का कारण वेदानुसार द्रव्य है या शक्ति।

ऋ० ८। ३। ४। ५ वाँ मन्त्र निम्न लिखित है, जो कि विद्युत् का वर्णन करता है।

> अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसोजात मुतमन्य एनम्।
> मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद"

इस मन्त्र में विद्युत् के विषय में कहा है ओजसो जातम्"। इस का अर्थ है बल से पैदा हुआ। इस पर दुर्गाचार्य लिखते हैं।

कुतश्चिदति महतो बलराशेः जातम्।"

इसका अर्थ यह है कि विद्युत् (जो अन्तरिक्ष में है) बड़ी बल की राशि से पैदा हुई है। इस वर्णन से भी प्रतीत होता है कि विद्युत् के पैदा करने का कारण भी शक्तिरूप है न कि द्रव्य रूप।

सूर्य की उत्पत्ति का कारण

ऋ० ३।१।१७।५ में विद्युत् के वर्णन में निम्नलिखित शब्द आए हैं "द्विताच सत्ता"। इस पर निरुक्त, नैगम कांड, अध्याय ५, खंड ३, शब्द १६ पर यास्काचार्य लिखते हैं–

"द्वैधं सत्ता, मध्यमे च स्थाने, उत्तमे च"

अर्थात् विद्युत् की सत्ता दो स्थानों में है, एक अन्तरिक्ष में तथा द्वितीय द्युलोक में। इस पर दुर्गाचार्य लिखते हैं–

"मध्यमे च स्थाने विद्युद्भावेन, उत्तमे च स्थाने सूर्य भावेन" अर्थात् अन्तरिक्ष लोक में तो विद्युत् विद्युत् रूप से ही रहती है, परन्तु द्युलोक में सूर्य रूप से रहती है। इस वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर्य के तेज का कारण विद्युत् ही है। जब विद्युत् का कारण शक्ति है तो सूर्य का कारण शक्ति स्वतः सिद्ध है। अतः वेद द्वारा यह सिद्धान्त अत्यन्त पुष्ट है कि तीनों ज्योतियों का सामान्य कारण शक्ति रूप है, न कि द्रव्य रूप, और वेद में इस सामान्य शक्ति को भी अग्नि शब्द से सूचित किया है।

परस्परोत्पाद्योत्पादकभाव

ज्योतिः सिद्धान्त का सबसे आवश्यक प्रश्न अभी अवशिष्ट है। वह यह कि इन ज्योतियों में प्रत्येक ज्योति, अन्य ज्योति के रूप में परिणत होसकती है या नहीं ?। अर्थात् क्या सूर्य-ज्योति से पार्थिव-ज्योति-और वैद्युत्-ज्योति; या वैद्युत्-ज्योति से पार्थिव-और सूर्य-ज्योति; या पार्थिव ज्योति से अन्य ज्योतियाँ पैदा हो सकती हैं या नहीं ?। यह प्रश्न बहुत महत्व का है। अब हमें देखना चाहिए कि वेद इस प्रश्न के बारे में क्या सम्मति रखते हैं।

विद्युत से पार्थिव ज्योति की उत्पत्ति

निरुक्त दैवतकाण्ड, अध्याय ८, खण्ड २ में द्रविणोदा शब्द पर विचार करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं—

"तत्को द्रविणोदा इन्द्र इति क्रौष्टुकिः अया प्यग्निं द्राविणोदस माह, एष पुनरेतस्मात जायत इति"।

इसका अर्थ यह है कि क्रौष्टुकि आचार्य के मत में द्रविणोदा शब्द से विद्युत् लेनी चाहिये। क्रौष्टुकि आचार्य द्रविणोदा पद से विद्युत् अर्थ लेने में कारण यह देते हैं कि इस पार्थिव अग्नि के लिये वेद में "द्राविणोदस" शब्द आया है। और द्राविणोदस का अर्थ है, "द्रविणोदा से पैदा हुआ"। यतः पार्थिव अग्नि, विद्युत् से पैदा होती है, अतः विद्युत् का नाम ही द्रविणोदा होना चाहिए। इस प्रकार क्रौष्टुकि आचार्य के मतानुसार हमें यह प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्यों को यह ज्ञात था कि पार्थिव-अग्नि विद्युत् से भी पैदा हो सकती है। क्रौष्टुकि आचार्य अपने मत की पुष्टि में एक वेद मन्त्र भी पेश करते हैं, जो कि निम्नलिखित है—

"यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्यो गा उदाजदपधा बलस्य। यो अश्मनोरन्त रग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः"। ऋ. २। ६। ७। ३॥

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जो अन्तरिक्ष के मेघ को काट कर, उसमें से जलों को नीचे की ओर बहाता है, वह विस्तृत द्यावापृथिवी में अग्नि को भी पैदा करता है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि विद्युत् को ही यहाँ पार्थिव अग्नि का कारण बताया गया है। क्योंकि वही अन्तरिक्ष में मेघों को छिन्न भिन्न कर वर्षा का कारण होता है। दुर्गाचार्य भी इसपर लिखते हैं—

"एष पुनः अग्निः एतस्मादिन्द्रात् जायत इति"।

अर्थात् यह पार्थिव अग्नि इस विद्युत् से पैदा होती है।

(२) इसी प्रकार यजुर्वेद अ॰ १२, मन्त्र ३६ भी इसी बात की पुष्टि करता है। वह मन्त्र निम्नलिखित है—

"अप्सु अग्ने! सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे, गर्भे सन् जायसे पुनः"।

इस पर महीधर लिखता है—

"अप्सु जलेषु तव सधिः स्थानं; स त्वमोषधीः यवाद्याः अनुरुध्यसे, ओषधि परिणाम मनु परिणमसे किञ्च गर्भे अरण्ययोर्मध्ये स्थितः सन् पुनर्जायसे"।

इस वेद मन्त्र का तथा महीधर का अभिप्राय यह है कि अग्नि जिसका कि स्थान जल है वह अर्थात् विद्युत् रूप अग्नि ही ओषधियों में रूपान्तर से विद्यमान है। तथा वही विद्युत् जो कि रूप बदल कर ओषधियों में रहती है ओषधियों के जलाने पर पार्थिव अग्नि का रूप धारण कर लेती है। इस वर्णन से भी यह प्रतीत होता है कि वेदानुसार पार्थिव अग्नि का कारण विद्युत् है। हां पूर्व मन्त्र में तो विद्युत् को पार्थिव अग्नि का साक्षात् कारण कहा था, परन्तु इस मन्त्र में साक्षात् नहीं प्रत्युत परम्परया विद्युत् को पार्थिव अग्नि का कारण बताया है।

पार्थिव अग्नि का कारण सूर्य

निरुक्त दैवतकाण्ड में वैश्वानर शब्द पर यास्काचार्य ब्राह्मण ग्रन्थों में से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करते हैं।

"देव सवितरेतं त्वा वृणते ऽग्निहोत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण"।

इस पर यास्काचार्य टिप्पणी चढ़ाते हैं

"इममेवाग्निं सवितार माह सर्वस्य प्रसवितारं मध्यमं वोत्तमं वा पितरम्"।

अर्थात् पार्थिव अग्नि को सविता शब्द से कहा है। विद्युत् तथा सूर्य को इस पार्थिव अग्नि का उत्पादक कहा है। इस से यह बात स्पष्ट है कि पार्थिव अग्नि का उत्पादक सूर्य भी वेदाद्यभिमत है।

इस प्रकार हमें ज्ञात हुआ कि वेद में पार्थिव अग्नि की उत्पत्ति विद्युत् से बताई गई है, और सूर्य्य से भी। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये यास्काचार्य ने निरुक्त में निम्नलिखित शब्दों में एक बहुत रोचक परीक्षण भी दिया है।

अयमेवाग्निः वैश्वानर इति शाकपूणिः। विश्वानरावेते उत्तरे ज्योतिषी, वैश्वानरोऽयं यत्ताभ्यां जायते। कथंन्वेताभ्यां जायतेः—यत्र वैद्युतःशरणमभि

हन्ति यावदनुपत्तो भवति मध्यमधर्मैव तावद्भवति, उदकेन्धनः शरीरोपशमनः, उपादीयमान एवायं सम्पद्यते उदकोपशमनः शरीरदीप्तिः। "अथादित्यादुदीचोप्रथमसमावृत्ते आदित्ये कंसं वा मणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयमसंस्पृशन् धारयति तत् प्रदीप्यते, सोऽयमेव सम्पद्यते"

इस संस्कृत का भाषानुवाद न करते हुए, इसका केवल भाव मात्र उपस्थित करता हूं। इन वाक्यों में प्रथम तो यास्काचार्य ने यह सिद्ध किया है कि पृथिवी पर रहने वाली विद्युत् तथा अन्तरिक्ष में रहने वाली विद्युत् में कई समानताएँ हैं। यह परीक्षण बेन्जमिन फ्रैंङ्कलिन ने भी किया था। उसके बाद यास्काचार्य कहते हैं कि जब यह सिद्ध होगया कि पृथिवी की विद्युत् तथा अन्तरिक्ष की विद्युत् समान कार्य करती है, तो चूंकि पृथिवी की विद्युत् का जब हम उपादान करते हैं अर्थात् इसे अपने कार्यों में प्रयुक्त करते हैं तो यह आग का रूप धारण कर लेती है, इससे हम अनुमान करते हैं कि अन्तरिक्ष की विद्युत् भी इस पार्थिव अग्नि का रूप धारण कर सकती है। इस परीक्षण द्वारा बहुत बुद्धिमत्ता से यास्काचार्य ने विद्युत् को पार्थिव अग्नि का कारण सिद्ध किया है। द्वितीय परीक्षण में यास्काचार्य इस पार्थिव अग्नि का सूर्य से भी पैदा होना सिद्ध करते हैं। मैं यहाँ उनके इस परीक्षण का आशय मात्र उपस्थित करता हूँ। वे कहते हैं— "जब सूर्य अपनी प्रखर किरणों के साथ विद्यमान हो, या अन्तरिक्ष में बादल या कोहरा न हो। उस समय यदि बिल्कुल साफ़ कांसी के पात्र को लेकर सूर्य की किरणों के सामने रखें और उस कांसी के पात्र के Focus या केन्द्र में जहाँ पर किरणें आकर इकट्ठी हों सूखा गोबर रखें, तो गोबर में आग लग जायगी। इस परीक्षण में कांसी के पात्र द्वारा सूर्य की किरणें एक बिन्दु पर इकट्ठी होजाती हैं, और इस प्रकार उनमें ताकत बढ़ जाती है, और इस लिए सूखा गोबर या सरकण्डा जल उठता है। क्या ही बुद्धिमत्ता से यास्काचार्य ने इस वैदिकसिद्धान्त की पुष्टिकी है कि यह पार्थिव अग्नि सूर्य से भी पैदा हो सकती है।

नोट्— इस परीक्षण में विचार यह उपस्थित है कि कांसी का बर्तन किस आकार का होना चाहिये। जिन्होंने आजकल के विज्ञान में कुछ भी प्रवेश किया है, वे जानते हैं कि यदि घड़े के ऊपर के भाग तथा पार्श्व के भागों को तोड़ दिया जाय, तो जो निचला भाग (जिसके कि पार्श्व चारों ओर से कुछ ऊपर उठे हुए हों) रह जावेगा, ठीक उसकी शकल का यह कांसी का पात्र होना चाहिये, नहीं तो किरणें इकट्ठी एक केन्द्र में नहीं हो सकतीं, और न परीक्षण ही सिद्ध हो सकता है।

२. इसी उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि यास्काचार्य ने एक और परीक्षण से भी की है। उस परीक्षण में कांसी के बर्तन के स्थान में "मणि" का प्रयोग किया है। "कांस्यं वा मणिं वा"। यह मणि वह है, जिसमें से सूर्य की किरणें आर-पार गुज़र कर मणि के दूसरे ओर एक केन्द्र में इकट्ठी होजाती हैं, और इस प्रकार किरणों के इकट्ठे हो जाने से उनमें ताकत बढ़ जाती है, और दूसरी ओर पड़ी हुई दाह्य वस्तु जल उठती है।

इस मणि की रचना पर यदि हम विचार करना चाहें तो हमारी कल्पना में यह आज कल के पाश्चात्य विज्ञान में Lens का प्रतिरूप है। और उन Lenses में से भी यह यास्काचार्य का Lens वह है जो मध्य में मोटा तथा पार्श्वों में पतला होता है जिसे संस्कृत में उन्नतोदर और अँग्रेजी में Convex कहते हैं। इन Lenses का वर्णन अन्य संस्कृत साहित्य में भी आता है, पर स्थान के पर्याप्त न होने से मैं उनका वर्णन यहाँ नहीं कर सकता। परन्तु न्यायदर्शन का प्रमाण उद्धृत कर देना आवश्यक समझता हूँ। इस सम्बन्ध में न्यायदर्शन अ० ३, आन्हिक १, सूत्र ४७ निम्नलिखित है—

स्फटिकान्तरितेऽप्यादित्यरश्मेः दाह्येऽविघातात् ॥

इसमें भी यही बताया है कि सूर्य की किरणें स्फटिक में से गुज़र कर दूसरी ओर पड़ी दाह्य वस्तु को जला देती हैं। यह स्फटिक भी Lens के सिवाय अन्य कोई वस्तु नहीं।

विद्युत् सूर्य्य से पैदा होती है

इस सम्बन्ध में एक भाग शेष रह गया वह यह कि विद्युत् का कारण वेद में क्या बताया है। वेद के आलोचन से विद्युत् के तीन कारण प्रतीत होते हैं—

१. जल के कणों की परस्पर रगड़।

२. जल के कणों की वायु के साथ रगड़।

३. सूर्य की किरणों की वायु के साथ रगड़।

विद्युत् के इन तीन कारणों में से पहले दो कारणों को पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता भी मानते हैं, परन्तु तीसरे कारण पर अभी तक पर्याप्त परीक्षण नहीं हुए। स्थान अल्प होने की वजह से मैं प्रथम दो कारणों को वेद द्वारा प्रमाणित नहीं करना चाहता। किन्तु अन्तिम कारण के विषय में कुछेक प्रमाण आपके सन्मुख उपस्थित करता हूं।

१. ऋ० ४। ८। २५। १ का निम्नलिखित मन्त्र स्मरणीय हैं—

"वड़ित्था महिमा वा मिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ समानो वां जनिता युवं यमा विहेह मातरा"

इस पर दुर्गाचार्य जी लिखते हैं—

"वां समानो जनिता, जनयिता सूर्यः। तौ युवा मेवं कृत्वा, एक पितृकौ, एक जन्मानौ "यमौ भ्रातरौ।" "इह २ मातरा" इह च पृथिवी लोके, इह च अन्तरिक्षलोके अवस्थितौ 'मातरौ' सर्वस्य लोकस्य निर्माण कर्त्र्यौ। एवमिह मंत्रे पितृत्वेन सूर्यो व्यपदिष्टः। इन्द्राग्नी यमौ इति यम शब्देन मध्यम स्थानपृथिवी स्थानयो ग्रहणम्।

इसका अभिप्राय यह है कि पार्थिव अग्नि तथा मध्यम अग्नि अर्थात् विद्युत्, ये दोनों सूर्य की किरणों से पैदा होते हैं।

२. दूसरा मन्त्र ऋ० ४। ५। १०। ४ का है। यथाः—

"अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थु ऋग्मियम्। आदूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः।

इसका भाव यह है कि अन्तरिक्ष लोक में जहाँ कि जल उपस्थित हो, वायु द्वारा सूर्य की किरणें विद्युत् का रूप धारण कर लेती हैं।

३. महर्षि दयानन्द ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र पर भाष्य करते हुए भी इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। वह मन्त्र निम्नलिखित है—

"त्वामग्ने! पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत, मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।"

इस मन्त्र का भाव ऋषि निम्नलिखित शब्दों में बताते हैं।

"जैसे पदार्थ विद्या के जानने वाले जन सूर्य आदि के समीप से, बिजुली को ग्रहण करके कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे ही आप लोग भी सिद्ध करो"।

इस प्रकार इस लेख * में वेद में ज्योति के सम्बन्ध में कुछेक सिद्धान्त मैंने उपस्थित किये हैं। अवसर मिलने पर और सिद्धान्त भी उपस्थित किये जायँगे।

---

* यह लेख गुरुकुलीय साहित्य परिषद् की ओर से सन् १९१५ के गुरुकुलोत्सव के समय पर पढ़ा गया था।

अम्बे!

श्री केदारनाथ मिश्र गौड़ "प्रभात"

अम्बे! तेरे चरणों की–
शीतल-छाया में शयन करूँ।
तेरी तन्त्री के तारों में,
स्वीय मूक-संगीत भरूं ॥१॥

दिनभर घूम-घूम कर वन-वन,
कर संकलित सुमन सुन्दर।
सन्ध्या को तेरे चल-अंचल में
सादर सस्नेह धरूँ ॥२॥

लीन अनवरत विश्व-खेल में,
धूलि-धूसरित होने पर।
तेरे मृदु-मुस्कान-मयूखों से,
अपनी विश्रान्ति हरूं ॥३॥

मैं तो एक अकिञ्चन हूँ माँ!
तेरी इच्छा पर निर्भर।
ज़रा सहारा दे दे तो,
माया-सागर से शीघ्र तरूँ ॥४॥

वैदिकेश्वरवाद

(ले०-श्री पं० लोकनाथ जी आर्योपदेशक, पिण्डदादनखाँ)

जब से संसार के मनुष्य समुदाय ने इस सृष्टि के आरम्भ काल में प्राणिमात्र के कल्याणार्थ अग्नि-वायु-आदित्य तथा अङ्गिरः नामक आदि-ऋषियों के द्वारा वितरण किए गये ऋग्-यजुः-साम-अथर्वन्-रूप ईश्वरीय ज्ञान वेद में वर्णित परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को भूल कर मनोविनोद के लिए महाप्रभु के कल्पित नानारूप तथा व्यवहार मानने प्रारम्भ कर दिए हैं, तब से ही जगतीतल पर साम्प्रदायिक संग्राम का अभिनय खेला चला जारहा है, । विस्पष्ट शब्दों में यह कह देना सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि विभिन्न मत मतान्तरों में जो धार्मिक संघर्ष हो रहा है, उस का मूल कारण परमेश्वर ही है। इन शब्दों को कर्ण कटु तथा उच्छृंखलता पूर्ण भले ही कहा जाय किन्तु इन की सत्यता में सन्देह नहीं किया जा सकता। क्यों? इस लिए कि यदि ईश्वर वादी आस्तिकों के साथ अनीश्वरवादी नास्तिकों का विवाद चलता है जो उस में भी ईश्वर का होना-न होना तथा सृष्टि का कर्त्तृत्व-अकर्त्तृत्व ही विवाद के कारण भूत हैं। ईश्वर वादियों की भी जो अनेक शाखायें हैं, उन में से एक का यह विचार है कि एक ही अद्वितीय ब्रह्म है उसी से ऊर्णनाभ कृमि के तन्तु जाल की भाँति निखिल जगज्जाल उत्पन्न होकर पुनः उसी ही ब्रह्म में लय हो जाया करता है, यही सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश है, इस के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। एक शाखा विशिष्टाद्वैत अर्थात् प्रकृति रूप विशेषण वाले ब्रह्म के अद्वयत्व का प्रतिपादन करती एक है। शाखा द्वैतवाद के द्वारा ब्रह्म से जीवात्मा का पृथक्त्व स्वीकार करती है। इसी प्रकार विशुद्धाद्वैत तथा द्वैताद्वैत आदि विचारों को मानने वाली ईश्वर वादियों की अनेक शाखायें हैं। इस अनेकता के अतिरिक्त अन्य भी अवान्तर बहुत्व उपस्थित है, कुछ लोग प्रकृति पूजा से ब्रह्म प्राप्ति मानते हैं तो कुछ लोग हृदयाकाश में ब्रह्म का साक्षात्कार करना ठीक समझते हैं, इत्यादि सब विवाद ईश्वर विषयक ही हैं। इस विस्तृत जगड्वाल को छोड़ कर केवल इतना कह देना ही पर्याप्त प्रतीत होता है, कि यह समग्र विवाद उस अन्ध समुदाय की भाँति है, जो चक्षु रहित होने से हस्ति के वास्तविक स्वरूप को न देखते हुए पारस्परिक विवाद बढ़ा कर एक दूसरे पर लांच्छन लगा रहे थे। इसी प्रकार वैदिकेश्वर वाद के वास्तविक स्वरूप को न जान कर जनता में पारस्परिक धार्मिक विद्वेष बढ़ रहा है।

ईश्वर का बहिष्कार

आज कल के जैन विचारक परमात्मा के अस्तित्व को तो स्वीकार करने लग पड़े हैं, किन्तु उसका सृष्टिकर्तृत्व अभी तक स्वीकार नहीं करते। पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान् तथा पूर्वीय अनीश्वर वादी पंडित समुदाय अभीतक ईश्वर का अस्तित्व भी

स्वीकार नहीं करते। उन लोगों का यह कथन है कि निखिल जगत् प्राकृतिक नियमों से अपना नैत्यिक व्यवहार चला रहा है, इस को नियम में रखने के लिए जगत् से भिन्न किसी अन्य चेतन शक्ति के मानने की आवश्यकता नहीं है। उन का यह भी कथन है कि प्राकृतिक परमाणु जब स्वयं विकृत हो जाते हैं तब सृष्टि का लय काल होता है, और जब पुनः वही विकृत परमाणु स्वयं संयुक्त होकर नानाप्रकार के रूप धारण कर लेते हैं, तब सृष्टि का वर्त्तमान स्वरूप हमारे सामने आजाता है, इत्यादि। अब इस पर यह विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि क्या वस्तुतः परमाणु पुञ्ज में यह शक्ति विद्यमान है कि वे स्वयं बनें और बिगड़ जावें ? जहां तक विज्ञान का सम्बन्ध है जड़ पदार्थों में स्वभावतः एक ही व्यवहार हो सकता है, या तो विकृतावस्था से संयुक्त होने की शक्ति, अथवा संयुक्तावस्था से छिन्नभिन्न हो जाने की शक्ति, बस यही एक परमाणु पुञ्ज का नियम हो सकता है। इस प्रकार एक शक्ति के स्वीकार कर लेने पर अवश्यमेव इस प्रकृति से भिन्न किसी अन्य चेतन शक्ति का स्वीकार करना अवश्यं भावी हो जायगा उसी प्रकृति से भिन्न चेतन शक्ति का नाम हम ईश्वर रखते हैं। अनीश्वर वादियों का यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता है कि प्रकृति ही सब कुछ स्वयं करती कराती है। यदि प्रकृति में दोनों प्रकार के परस्पर विरोधी गुण स्वाभाविक माने जायें तो वर्त्तमान दृश्य जगत् कभी भी इस अवस्था में दिखलाई न दे जैसा कि अब विचार करने के लिए उपस्थित है, इस पर यह लोकोक्ति ठीक चरितार्थ हो जाय कि "न हो बांस न बजे बांसुरी"। क्योंकि जब हम यह स्वीकार कर लेंगे कि परमाणुवों का स्वभाव से परस्पर मिलना व्यवहृत हो रहा होगा वहां उसी क्षण में उसी प्रकार स्वाभाविक समशक्ति से परमाणुवों का भिन्न होना भी उसी प्रकार से अपना कार्य कर रहा होगा; इस लिए यह जगत् इस अवस्था में न देखा जा सकेगा। और यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि परमाणुवों में परस्पर मिलने की स्वभाविक शक्ति तो अधिक मात्रा में है और पृथक् होने की शक्ति अल्पमात्रा में तब यह जगत् एक समय ऐसा परिपक्व हो जायगा कि उस के परमाणु किसी प्रकार से भी पृथक् न हो सकेंगे, क्योंकि उन की सांयौगिकी स्वाभाविक शक्ति उन्हें पूर्ण रूपेण सम्बद्ध कर देगी। उदाहरणार्थ हम स्वीकार कर लेते हैं कि परमाणु पुञ्ज का भार १५ सेर है उस में प्रतिवर्ष अर्द्ध रत्ती संयुक्त होने की शक्ति अपना प्रभाव उत्पन्न करती है और चौथाई रत्ती स्वाभाविक रूप से प्रति वर्ष वियुक्त होने का कार्य करती है तो प्रति वर्ष की सांयौगिकी शक्ति की चौथाई रत्ती की मात्रा सारे परमाणु पुञ्ज को चार लाख साठ हजार आठ सौ वर्षों में ऐसा सुसंगठित करेगी कि फिर उस का विभिन्न होना असम्भव हो जायगा। और यदि परमाणु पुञ्ज में विपरीत नियम से रत्ती के चतुर्थ भाग की मात्रा संयुक्त होने की हो और आधी रत्ती की मात्रा वियुक्त होने की

हो तो उतने ही (४६०८००) वर्षों में परमाणु पुञ्ज सर्वदा के लिये वियुक्त हो जायगा पुनः उसका संयुक्त होना संभवातीत हो जायगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है न यह जगत् इस दशा में होगा न हम होंगे और न ईश्वर सिद्धि के लिये हमारा समुदाय इकट्ठा हो सकेगा दोनों अवस्थाओं में एक स्वाभाविक शक्ति का लय मानना पड़ेगा, अर्थात् यदि परमाणु पुञ्ज संयुक्त हो जायगा तो उस अवस्था में भिन्न होने की शक्ति विनष्ट हो जायगी और यदि विभिन्न करने की शक्ति केआधिक्य से परमाणु पुञ्ज विकृतावस्था में सिद्ध हो जायगा तो संयुक्त करने की शक्ति सर्वथा विलुप्त हो जायगी, इन दोनों अवस्थाओं में किसी भी एक शक्ति के विलुप्त होने पर वह शक्ति स्वाभाविक नहीं कही जासकेगी, क्योंकि स्वाभाविक गुण सर्वदा अपने गुणी के साथ रहेगा यह एक सर्वतंत्र सिद्धान्त है। भेदक शक्ति के आधिक्य मानने पर यह दृश्य जगत् फिर नहीं बन सकेगा अतः अनीश्वर वादियों का यह विचार कि बिना परमात्मा के वर्त्तमान सृष्टि स्वयं बनती और बिगड़ती है युक्ति शून्य तथा असम्भव प्रतीत होता है। जड़ परमाणुवों में स्वयं बनने और बिगड़ने की परस्पर विरोधिनी स्वाभाविक शक्तियां सिद्ध नहीं हो सकतीं तो उनका उपरोक्त सिद्धान्त असत्य ही प्रामणित होता है। परमेश्वर के स्वीकार करने के बिना जगत् का सब का सब वर्त्तमान व्यवहार ही नहीं चल सकता इस लिये परमात्मा का मानना अत्यावश्यक है जो सृष्टि को अपने नियम में रख सके, इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए वेद में निम्नलिखित मंत्र है:—

पुरुष एवेद ꣳ सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम्
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

य० ३१—२ ॥

अर्थात् जो उत्पन्न हुआ, जो उत्पन्न होने वाला है, और जो पृथिवी आदि के सम्बन्ध से अत्यन्त बढ़ता है, उस प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप समस्त जगत् को, अविनाशी-मोक्ष सुख या कारण का अधिष्ठाता सत्यगुण कर्मस्वभाव से परिपूर्ण परमात्मा ही रचता है। इस मंत्र का भावार्थ वर्तमान युग के सब से बड़े वैदिक विद्वान् महर्षि दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद भाष्य में निम्न लिखित प्रकार से किया है-हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने जब जब सृष्टि हुई तब २ रची, इस समय धारण करता है फिर विनाश करके रचेग, जिस के आधार से सब वर्त्तमान है और बढ़ता है, उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इस से भिन्न की नहीं। अन्य वेद मंत्रों में भी परमात्मा के सृष्टि कर्त्तृत्व सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन है:—

(१) चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

यजु० ३१·१२

(२) नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ २ अकल्पयन्

य० ३१–१३

(१) अर्थात् इस पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान स्वरूप सामर्थ्य से चन्द्रलोक उत्पन्न हुआ, ज्योति स्वरूप सामर्थ्य से सूर्य मण्डल उत्पन्न हुवा, श्रोत्र नाम अवकाश रूप सामर्थ्य से वायु

तथा आकाश प्रदेश, और जीवन के निमित्त प्राण-और मुख्य ज्योतिर्मय भक्षण स्वरूप सामर्थ्य से अग्नि उत्पन्न हुआ।

(२) इस पुरुष परमेश्वर के, अवकाश रूप मध्यम सामर्थ्य से लोकों के बीच का आकाश हुवा, शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से प्रकाश युक्त लोक, पृथिवी के कारण रूप सामर्थ्य से भूमि-सम्यक् वर्त्तमान हुई, और अवकाश रूप सामर्थ्य से पूर्वादि दिशाओं की कल्पना होती है, ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य लोकों को भी जानो।

यदि इन वेद मंत्रों के आधार पर प्रकृति से पृथक् चेतन परमात्मा को सृष्टि का नियामक कर्त्ता-धर्त्ता-और संहर्त्ता न माना जाय तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का सिद्ध करना असम्भव है इस लिए जगद्भिन्न सच्चिदानन्द परमात्मा का मानना अत्यन्तावश्यक है, ।

कल्पित ईश्वरवाद

ईश्वर वादी लोग ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता और पालयिता मान कर अपने विचारों के आधार पर वेद में आये हुवे राम कृष्णादि शब्दों से यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि ईश्वर समय २ पर अपने भक्तों की सहायता और पापियों के विनाश के लिए देह धारण करते हैं तथा संसार को फिर से नियम में चला कर धर्म का प्रचार करते हैं। वस्तुतः वेद में ऐसा कोई भी विचार नहीं पाया जाता जिस से यह सिद्ध हो सके कि परमात्मा किसी प्रकार का कोई ससीम देह धारण करता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का प्रमाण वेद के अनेक मंत्रों में मिलता है, । अलङ्कार रूप से परमात्मा के विराट् स्वरूप का वर्णन भी यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में आया है और उस परमात्मा के ही सामर्थ्य से सारे देह धारियों का निज कर्म फल भोगने के लिये शरीर धारण करना सिद्ध होता है। ब्रह्माण्ड की भौतिक भावना से परमात्मा के विराट् स्वरूप का वर्णन इस बात का प्रमाण नहीं होसकता कि परमात्मा पाञ्च भौतिक देह धारण करता है। परमेश्वर के देहधारी होने की कल्पना करना वेद विरुद्ध है अवतार वादी लोग जिस प्रकार अपनी मनः कल्पना से ईश्वर के देह धारण करने के सिद्धान्त को मानते हैं वह निम्नलिखित प्रकार से है;—

भद्रोभद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिरभिराम मस्थात् ॥

इस मंत्र का यह तात्पर्य है कि सीता के साथ व्यवहार करता हुवा राम लङ्का में गया इत्यादि। इस मंत्र में न कहीं रामावतार का वर्णन है और न ही वेद के किसी अन्य मंत्र से ईश्वर का अवतार लेना सिद्ध होता है। इस वेद मंत्र का अर्थ सायणाचार्य जी ने अपने भाष्य में, अवतार वादियों के मन माने अर्थ के अनुकूल नहीं किया है उन्होंने राम शब्द का अर्थ अन्धकार किया है उनका भाष्य इस प्रकार से है—

(भद्रः) भजनीयः कल्याणः (भद्रया) भजनीयया सचमानः (आगात्) आगच्छति, ततः पश्चात् (जारः) जरयिता शत्रूणां सो अग्निः स्वसारं स्वयं सारिणीं भगिनीं वा आगता मुषसं अभ्येति, अभिगच्छति,

तथा सुप्रकेतैः सुप्रज्ञानैः द्युभिः तेजोभिः .... रामं कृष्णं शार्वरंतमः अभ्यस्थात् सायं होम काले अभिभूय तिष्ठति ॥

अर्थात् प्रकाश उषा के साथ२ आता है और रात्रि के काले अन्धकार को सायं कालीन होम काल में तिरस्कार करके स्थित होता है। इस के अतिरिक्त अवतार वादी लोग

'इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदम् ।
समूलमस्य पांसुरे ॥ य०—५—१५

इस मंत्र से ईश्वर का वामनावतार सिद्ध करते हैं। सायणाचार्य ने भी इस मन्त्र से वामनावतार को सिद्ध किया है और महीधर ने भी इस मंत्र से ईश्वर का त्रिविक्रमाव धारण करना स्वीकार किया है महीधरने निजभाष्य में लिखा है "विष्णु स्त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदं विश्व विचक्रमे विभज्य क्रमतेस्म' अर्थात् व्यापक ईश्वर ने त्रिविक्रमावतार धारण करके सारे संसार को तीन पदों से मापा था। उक्त मंत्र का अर्थ महीधर से पूर्व भाष्यकर्त्ता उबटाचार्य ने वामनावतार परक नहीं किया उन्होंने इस मंत्र को यज्ञ पर पर लगाया है वे लिखते हैं 'त्रेधानिदधेपदं । पद्यते ज्ञायतेऽनेनेतिपदं । भूम्यन्तरिक्षद्युलोकेषु-अग्नि-वायु-सूर्य रूपेण त्रिधानिहितवान् पदम् ॥

अर्थात् संसार का उपकारक यज्ञ पृथिवी पर अग्नि रूप से, अन्तरिक्ष में वायुरूप से, द्युलोक में सूर्य रूप से विद्यमान होता है। ऐसा ही अर्थ शाकपूणि के मत को लेकर यास्काचार्य और दुर्गाचार्य जी ने निरुक्त और निरुक्त के भाष्य में किया है इस मंत्र में वामनावतार का गन्ध तक भी नहीं पाया जाता। ऋषिदयानन्द जी ने इस मंत्र का अर्थ ईश्वरपरक किया है वे लिखते हैं। (विष्णुः) सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उसको तीन प्रकार का धारण करता है प्रकाशवान्, प्रकाश रहित और अदृश्य, तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप अच्छे प्रकार देखने और दिखाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ इस अच्छे प्रकार विचार करने योग्य अदृश्य जगत् को अन्तरिक्ष में स्थापित करता है। इस से ईश्वर के सामर्थ्य का ज्ञान होता है न कि उस के अवतार धारण करने का इन मंत्रों के अतिरिक्त

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर—
जायमानो बहुधा विजायते ।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ य० ३१-१९॥

इस वेद मंत्र को भी उपस्थित कर के ईश्वरावतार सिद्ध करने का यत्न करते हैं। इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि प्रजापति जो परमात्मा है उत्पन्न न होता हुआ भी गर्भ में जाता है और रूप धारण करता है उसके स्वरूप को विद्वान् लोग देखते हैं उस में सारे भुवन स्थित हैं। महीधरने भी इस मंत्र का अर्थ अपने भाष्य में ऐसा ही किया है वे लिखते हैं।

"यः सर्वात्मा प्रजापतिः, अन्तर्हृदि स्थितः सन् गर्भे चरति गर्भ मध्ये प्रविशति"

अर्थात् चराचर का आत्मा प्रजापति परमेश्वर हृदय में स्थित होता हुआ गर्भ में प्रवेश करता है। इस पर विचारना यह है कि यदि परमात्मा गर्भ में प्रवेश करता है

तो प्रवेश से पूर्व उसका गर्भ में उपस्थित होना सिद्ध नहीं हो सकता । यदि वहाँ पहले से परमात्मा की उपस्थिति मानी जाय तो प्रवेश करना असङ्गत हो जाता है, क्योंकि निष्क्रमण प्रवेशन यह आकाश के लिङ्ग हैं, अवकाश होने पर ही प्रवेश हो सकता है, और निष्क्रमण होने पर अवकाश मिलता है, आकाश सर्वत्र भौतिक पदार्थों में विद्यमान् रहता है और परमात्मा को वेद में समग्र भूतों से परे माना है, भूतों में आकाश की भी गणना है परमात्मा आकाश से भी परे है ।

'परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च उपस्थाय प्रथमजा मृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ य० ३३-११ ॥

अर्थात् प्राणियों को सब ओर से व्याप्त हो कर, पृथिवी सूर्यादि सब लोकों को व्याप्त हो, ऊपर और नीचे सब आग्नेयादि उपदिशाओं तथा पूर्वादि दिशाओं को सब ओर से व्याप्त हो कर परमात्मा विराजमान है, इत्यादि । शतपथ ब्राह्मण में भी 'विरजः पर आकाशात्' अर्थात परमात्मा आकाश से भी परे है ऐसा वचन मिलता है जिस से उपरोक्त वेद मंत्र का अनुमोदन होता है । यजुर्वेद ४० वें अध्याय के ५ वें मंत्र में "तद्दूरे तद्वन्तिके" परमात्मा को दूर से दूर और समीप से समीप माना है जब परमात्मा की व्यापकता के सम्बन्ध में इन मंत्रों के अतिरिक्त भी अन्यान्य अनेक मंत्र उपस्थित हैं तो फिर 'चरति' शब्द का यह अर्थ कि परमात्मा गर्भ में प्रवेश करता है कैसे संगत हो सकता है । यह वेदार्थ से अनभिज्ञ लोगों की स्वार्थ परावृत्तिका ही परिचायक है । वस्तुतः चरित शब्द का अर्थ यह है कि परमात्मा गर्भ में व्याप्त है क्योंकि धातु गत्यर्थक होने से ज्ञान-गमन-प्राप्ति तीनों अर्थों का बोधक है । इस लिये इस का सत्यार्थ यही है कि परमात्मा न उत्पन्न होता हुवा गर्भ में उपस्थित है । यदि पूर्व वर्णित अर्थ ठीक माना जाय तो इस से परमात्मा का गर्भ में व्यापक होना सिद्ध न होगा, क्यों कि गर्भ में प्रवेश करने से पूर्व परमात्मा की अनुपस्थिति स्वीकार करनी पड़ेगी, तब परमात्मा का प्रवेश करना सिद्ध हो सकेगा ऐसी अवस्था में परमात्मा की सर्वव्यापकता पर आपत्ति आ जायगी । ऋषि दयानन्द जी ने इस मंत्र का सुसङ्गत अर्थ निम्नलिखित प्रकार से किया है "अपने स्वरूप से न उत्पन्न होने वाला प्रजा का रक्षक ईश्वर गर्भस्थ जीवात्मा और सब के हृदय में विचरता है अर्थात् उपस्थित है उस प्रजापति के जिस स्वरूप को ध्यान शील विद्वान् सब ओर से देखते हैं" यह अर्थ सर्व प्रिय और सरलता पूर्ण है, यदि ईश्वर का भौतिक देह स्वीकार किया जाय तो देह होने से उसका सीमाबद्ध होना और एक देशी होना आवश्यक होगा क्योंकि कोई भी पदार्थ जो इन्द्रिय ग्राह्य हो व्यापक नहीं हो सकता इस से परमात्मा की सर्व व्यापकता में बाधा उपस्थित होगी परन्तु वेद परमात्मा की व्यापकता का तथा उसके अतीन्द्रिय होने की साक्षी देता है । यथा—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वादधाति
य० ४०-४

अर्थात् जो एक अद्वितीय परमात्मा है वह कंपायमान नहीं होता, मन के वेग से भी अतिवेगवान् सब के आगे चलता हुवा अर्थात् जहां कोई चल कर जाय वहां प्रथम ही सर्व व्याप्ति से पहुँचा हुवा ब्रह्म है। उस ईश्वर को चक्षु आदि इन्द्रिय प्राप्त नहीं होते वह पर ब्रह्म अपने आप स्थिर हुवा २ अपनी अनन्त व्याप्ति से मन-वाणी आदि इन्द्रियों का उल्लङ्घन कर जाता है और उसी व्यापक ईश्वर में रहने वाला जीव अपने कर्मों को धारण करता है। इस मंत्र का भावार्थ ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार किया है कि ब्रह्म के अनन्त होने से जहां २ मन जाता है वहाँ ब्रह्म वर्त्तमान है, उस का ज्ञान शुद्ध मन से होता है, चक्षु आदि इन्द्रिय और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है, उस के अति सूक्ष्म इन्द्रिय गम्य न होने से धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है, अन्य को नहीं। जब वेद में यह आज्ञा है कि परमात्मा अति सूक्ष्म और व्यापक है तो उस के भौतिक देह की कल्पना कर के स्थूलता में लाना युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता देह नाशवान् होता है इस लिये परमात्मा कदापि देह धारण नहीं कर सकता यदि परमात्मा का देह मानने वाले लोग परमात्मा को मनुष्य देह धारी तक ही रहने देते तो सम्भव है लोगों के चित्ताकर्षण का साधन हो सकता, परन्तु उन लोगों ने तो मत्स्य--कच्छप-वराहादि पशुवों के रूप धारण करने वाला भी परमात्मा को बना डाला है जैसा कि वे कहते हैं—

यस्दालीयत शल्क सीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मंडलम्
दंष्ट्रायां धरणी नखेदितिसुताधीशः पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्र गणः शरेदशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो
ध्याने विश्वमसावधार्मिक कुलं कस्मै चिदस्मै नमः॥

अर्थात् जिस परमात्मा के पीठ के कांटे या पीठ की खाल पर समुद्र विराजमान् है ऐसे मत्स्य भगवान्, जिनकी पीठ पर जगन्मण्डल है ऐसे कूर्म भगवान्, जिनकी दाढ़ पर पृथिवी है ऐसे वराह भगवान, जिनके नखों के आगे हिरण्यकश्यपु है ऐसे नृसिंह भगवान्, जिसने तीन पैरों में त्रिलोकी नाप ली है ऐसे वामन भगवान्, जिनके कुल्हाड़े की धारा से क्षत्रिय समुदाय भाग निकला ऐसे परशुराम भगवान, जिनके तीरों से रावण की मृत्यु हुई ऐसे रामचन्द्र भगवान्, जिन्होंने केशों से पकड़ कर कंस को पछाड़ा ऐसे कृष्ण भगवान्, जिसने ध्यानावस्थित होकर सम्पूर्ण विश्व को देखा ऐसे बुद्ध भगवान्, और जिनकी असि धारा से म्लेच्छ वंश का विध्वंस होगा ऐसे आगे होने वाले कल्कि भगवान् को बारम्बार नमस्कार हो। इस श्लोक में कल्पित परमात्मा को किस विलक्षणता से दर्शाया गया है, परमात्मा की क्रूरता कपटता, पशुता और साधुता को एक ही स्थान पर ढाल कर रख दिया है। इस विचित्रता से पाणिनिमुनि तथा गोप कन्या का वह सम्वाद सहसा स्मरण हो आता है जब पाणिनि मुनि अष्टाध्यायी के प्रचार का परिचय लेने को निकले और एक गोप कन्या को एक ही सूत्र में काचमणि तथा

स्वर्ण को पिरोते देखकर आश्चर्यान्वित हुए और प्रश्न किया—

- 'काचं मणिं काञ्चनमेक सूत्रे
  ग्रथ्नासि बाले ! किमिदं विचित्रं ।,

इस पर गोपबाला ने उत्तर दिया—

'अशेषयित् पाणिनिरेक सूत्रे-
श्वानं-युवानं-मघवानमाह' ।,

अर्थात् मुनि ने पूछा ऐ कन्यके ! क्या विचित्रता है कि तू एक सूत्र में काच-मणि और सुवर्ण पिरो रही है? गोप कन्या बोली महाराज ! मेरा क्या दोष है? जब कि व्याकरणाचार्य पाणिनि मुनि ने एक ही सूत्र में श्वान, युवक और इन्द्र को एकत्र कर दिया है। ठीक यही भाव अवतार वादियों ने इस श्लोक में दर्शाया है मत्स्य कच्छ और वराह से परमात्मा की पशुता -नृसिंहावतार से मनुष्यत्व और पशुता का संमिश्रण—वामन से कपटता परशुरामावतार से अज्ञतापूर्ण क्रूरता, रामचन्द्र से वियोगिता—कृष्णावतार से कुछ और दर्शा कर बुद्ध से सभ्यता का परिचय दिया है और आगे होने वाले कल्कि अवतार को एक सैनिक के रूप में खड़ा कर दिया है। इस निखिल कल्पना का मूल वेद के वास्तविक सत्यार्थ को न समझना तथा वेद में वर्णित परमात्मा के वास्तविक रूप को न पहिचानना ही है।

ऋग्वेद में मंत्र है—

कयानश्चित्र आभुव दूति सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठयावृता ॥ ऋ· ४-३१-१

अर्थात् महान् से महान् तथा आश्चर्य वर्द्धक ईश्वर कल्याणमय रक्षण और कल्याणमयी शक्ति से बारम्बार कर्म कराने के द्वारा हमारा मित्र होता है। वेद के इस मन्त्र से प्रतीत होता है कि परमात्मा हमारा मित्र है और उस से हमारा कल्याण होता है, परन्तु अवतारवाद के अनुसार अवतारों के रूप में अवतरण हुआ २ परमात्मा हमारे ऊपर नाना प्रकार के कटाक्ष करवाता है। इसका स्पष्ट प्रयोजन यही हो सकता है कि अवतार वाद की कल्पना ,निराधार, वेदविरुद्ध और हास्य जनक है। आनन्दमय परमात्मा में क्रूरता, कुटिलता तथा क्षुद्रता तो हो ही नहीं सकती। जो आस्तिक लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं उन सबका यह भी निश्चित सिद्धान्त है कि परमात्मा आनन्दमय है ऐसा स्वीकार कर लेने पर परमात्मा को शारीरिक बन्धन में आने वाला मानना अच्छा नहीं जँचता। इसलिये भौतिक देह धारण करना ईश्वर के लिए संभव नहीं है अपितु कर्मफल भोगने वाले जीवात्माओं के लिए ही है। अब प्रश्न यह होगा कि यदि परमेश्वर के नाना रूप न माने जायें तो अनन्तरूपी तथा अनन्दनामा ये परमात्मा के विशेषण कैसे सार्थक हो सकेंगे? इसका समाधान यह है कि जैसे जल की अपनी कोई आकृति नहीं है परन्तु उसे जिस प्रकार के पात्र में डाल दिया जाय उसकी वैसी आकृति बन जाती है, ठीक इसी प्रकार सर्व व्यापक होने से जितने विभिन्न आकृतियों वाले भौतिक पदार्थ हैं परमात्मा उन सब में व्यापक है इस लिए परमात्मा भी उन २ आकृतियों

वाला है वस्तुतः उसकी अपनी निजू आकृति कोई भी नहीं है, परमात्मा का अपना निजू नाम "ओ३म्" ही है यही परमात्मा का मुख्य नाम है। योग दर्शन में—

"तस्यवाचकः प्रणवः"

ऐसा लिखा है, अर्थात् परमात्मा का निज नाम 'ओ३म्' है, परमात्मा के इसी मुख्य नामको स्मरण करने के लिये यजुर्वेद के ४०वें अध्याय (ओं क्रतो स्मर) अर्थात् हे कर्म करने वाले जीव ! तू ओ३म् इस नाम वाले ईश्वर का स्मरण कर, इस से भिन्न शेष अग्नि—वरुण इन्द्र—आदि जितने भी ईश्वर के नाम हैं सब के सब परमात्मा के तद्गुण विशिष्ट होने से गौण नाम हैं अथवा सर्व गुण सम्पन्न परमात्मा उन २ गुणों का अग्नि-वरुण आदियों में प्रकाश होने से उन के अग्नि-वरुण इन्द्रादि नाम हैं, ये सब के सब अग्नि वायु-चन्द्रमा आदि परमेश्वर के गौण नाम हैं, अग्नि-आदित्य आदि के गुण ईश्वर में हैं इस लिये परमात्मा का नाम अग्नि है, इसी प्रकार शुक्र, जल, चन्द्रमा और प्रजा पति आदि भी नाम हैं । इसका स्पष्ट वर्णन यजुर्वेद ३२ वें अध्याय के प्रथम मंत्र में है।

यथा

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः ।
तदेवशुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ य०३२-१॥

इस मंत्र का अर्थ पौराणिक भाष्यकार उवटाचार्य ने इस प्रकार किया है;

"विज्ञानात्मा परेणात्मना विशिष्टाग्न्यादिषु ओतप्रोतत्वेनोपास्योऽभिधीयते, तदेवकारणमग्निः, तदादित्यः- तद्वायुः-तत्-उ-चन्द्रमाः तदेव शुक्रं जथीलक्षणं तद्ब्रह्म परम् ता आपः स प्रजापतिः"

अर्थात् परमात्मपने से विज्ञानात्मा परमात्मा जो अग्न्यादियों में ओत प्रोत है, वही उपास्य देव है, वही परमात्मा अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु वही चन्द्रमा, वही शुक्र, वही ब्रह्मा, वही जल और वही प्रजापति है। महीधर ने भी किञ्चिन्मात्र विस्तार के साथ इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है। महर्षि दयानन्द जी ने भी इस मंत्र का अर्थ तथा भावार्थ ऐसा ही किया है वह लिखते हैं परमात्मा जगत् का स्रष्टा और सर्वान्तर्यामी होने से तथा ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि है, वही प्रलय समय में सबको ग्रहण करने से आदित्य, अनन्त बलवान् होने से वायु आनन्द स्वरूप होने से चन्द्रमा शीघ्र कारी होने से शुक्र, महान् होने से ब्रह्म, सर्व व्यापक होनेसे चन्द्रमा, शीघ्रकारी होने से आप और वही परमात्मा सब का स्वामी होने से प्रजापति है, भावार्थ-जैसे ईश्वर के अग्नि आदि गौण नाम हैं, वैसे और भी इन्द्रादि नाम है; उसी की उपासना फल वाली होती है। इस मंत्र के अतिरिक्त एक और ऋचा है, जिस में ओ३म् इस मुख्य नाम वाले परमात्मा के गौण नामों का वर्णन है।

यथा

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्
एकं सद्विप्रं बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

इस पर यास्काचार्य लिखते हैं कि "इममेवाग्निं महान्तमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति, मित्रं-वरुणं-अग्निं-दिव्यं-च गरुत्मन्तं, इति"

अर्थात् एक आद्धितीय परमात्मा ही इन्द्र—मित्र—वरुण इत्यादि नामों वाला है परमात्मा के विभिन्न नामों की वास्तविकता वेद मंत्रों में इस प्रकार वर्णित है। इसका यह प्रयोजन कदापि नहीं हो सकता कि परमात्मा भौतिक देह धारण कर के इन नामों वाला शरीर धारी बन जाता है, यही ईश्वर की बहुरूपता तथा बहुनामता है, अवतार वाद कल्पना मात्र ही है।

ईसाई और मुसल्मान

पुराणों में वर्णितईश्वरावतार आदि आख्यानों से प्रभावित हो कर ईसाइयों ने भी ईश्वर को देह धाहरण करने वाला मान कर उसका वार्त्तालाप करना लिखा है, तौरेत में लिखा है कि "जब ईश्वर इब्राहीम से बातें कर चुका तो ऊपर चला गया" और आगे चल कर तौरेत में फिर लिखा है कि "याकूब अपने रास्ते पर गया और ईश्वर का दूत उसे आ मिला याकूब ने देख कर कहा कि यह ईश्वर की फ़ौज है" आगे चल कर योहन्न के प्रकाशित वाक्यों के ७ वें प्रकरण की १५ वीं आयत में लिखा है कि "इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं- उसके मंदिर में रात दिन उसकी सेवा करते हैं, और सिंहासन पर बैठने हारा उनके ऊपर डेरा देगा" इत्यादि अनेक उल्लेख तौरेत और बाइबल में मिलते हैं। जिन से यह परिणाम निकलता है कि ईसाइयों ने भी पौराणिक शिक्षा की भाँति अपने ईश्वर को नरतनुधारी मान कर उसके मानुषो व्यवहारों की कल्पना की है, इस शिक्षा से भी ईश्वर के सत्यस्वरूप को समझने में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, इसी लिये अमेरिका के ग्रेजुएटों को पारितोषक रूप में जो बाइबलका पुस्तक दिया जाता था, उन्होंने यह कह कर कि इस पुस्तक से और ऐसे ईश्वर से हमें शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती चर्च की ओर से दिये जाने वाले बाइबलरूप पारितोषक को लेने से इन्कार कर दिया है। अमेरिकन पादरियों का यह विचार मिट्टी में मिल गया है कि ग्रेजुएट बाइबल को पढ़ कर ईसाई धर्म और ईसाई ईश्वर पर विश्वास करेंगे, ईसाइयों का ईश्वर भी विज्ञान वादी पंडितों को शान्त के स्थान में भ्रान्त ही करता है।

मुसल्मान

मुसलमानी खुदा के माननें से भी यही अवस्था होती है। कुरान मंजिल १, सिपारा १, सूरत १, आयत ६, ७ में लिखा है कि "या खुदा दिखा उन लोगों का रास्ता जिन पर तूने इनायत की और उनको रास्ता मत दिखा कि जिन पर तूने ग़ज़ब किया और न गुमराहों का रास्ता दिखा हमको" और आगे कुरान मंजिल १, सिपारा २, सूरत २, आयत १९७ में लिखा है कि "खुदा जिसको चाहे बेशुमार रिज़क देवे" इत्यादि इससे कुरानी खुदा पक्षपाती सिद्ध होता है, क्योंकि कुरानी विचारों से खुदा सब कुछ स्वयं करने कराने वाला है, फिर उसका किसी पर दया करना और किसी पर क्रोध करना, किसी को कंगाल और किसी को धनी बनाना, पक्षपात का ज्वलन्त प्रमाण है। आगे चलकर कुरान से यह भी पता चलता है कि जब कुरानी खुदा पक्ष-

पात करता है तो उसकी असलियत को जान लेने वाले उसकी आज्ञा मानने से भी विमुख होजाते हैं, जैसा कि कुरान मं० १, सि० १, सू० २, आ० ३२ से ज्ञात होता है। इस में लिखा है खुदा कहता है कि "जब हमने कहा फरिश्तों को कि करो सिजदा आदम को, खेदा किया सिजदा सबने, लेकिन न माना शैतान ने, और अभिमान किया, क्योंकि था वह भी एक काफ़िर," इस से 'जैसा करे वैसा भरे' वाली लोकोक्ति अक्षरशः सिद्ध होती है, यदि कुरानी खुदा पक्षपात न करता तो उस को छकाने वाले मोमिन भी न मिलते। वैदिक ईश्वर का कैसा सुन्दर न्यायनियम है कि कुरानी खुदा को तत्काल ही अपनी करनी का फल दे दिया, उसकी रैय्यत (प्रजा) ही उसकी मुनकिर होगई, यही कारण है कि पढ़े लिखे लोग कुरान से तंग आकर उसे ईश्वरीयज्ञान न मानते हुवे, कुरान और कुरानी खुदा के सम्बन्ध में, स्वतन्त्र सम्मतियाँ प्रगट करने लग पड़े हैं, जैसा कि इस्लामी दुनियाँ के माने हुवे विद्वान कई पुस्तकों के रचयिता मिस्टर खुदाबख़्श एम. ए. ने अपनी पुस्तक 'इलाज़े शोरश' के पृष्ठ ६३ पर लिखा है कि "कुरान रसूल पाक की महज़ एक रफ़ डायरी है जो २ बातें उनकी तबीयत में आईं वह दर्ज करने लगे"। एक और मुसलमान विद्वान् ने लिखा है कि "खुदा का सातवें आसमान में तख़्त पर बैठना एक फ़र्ज़ी बातहै," इत्यादि २। यदि कुरानी खुदा मेरी सम्मति माने तो मैं उसे यह सम्मति दूँ कि आप के बन्दों के विचारानुकूल सन् हिजरी चौदवीं शताब्दि में तो क़यामत आ ही जानी है और टर्की में जो इस्लामी आशाओं का केन्द्र था इस्लामी विचारों की कयामत आनी प्रारम्भ भी हो गई है, वहाँ महम्मद साहब को तथा उसके चचा हमज़ा की कबरें भी उखाड़ डाली गई हैं। इस लिये क्या ही अच्छा हो कि कुरानी खुदा स्वयं यह घोषणा करदें कि ऐ खुदा के बन्दो! मैं तो एक मनुष्य हूँ, ईश्वर के वास्ते मेरे गले में खुदाई का तौक़ मत डालो, वेद में बयान किये गये ईश्वर को ही वास्तविक ईश्वर समझो, महर्षि दयानन्द जी की कृपा से अज्ञता के समय के साथ २ कल्पित परमात्माओं के मानने का समय भी समाप्त हो चुका है, सूर्य के देदीप्यमान प्रकाश के सामने टिमटिमाते हुवे दीपकों की आभा विनष्ट होने को है, इस लिये मैं कुरानी खुदा मुसलमानों को घोषणा करता हूं कि वे सब के सब दाढ़ी के स्थान में सिर पर शिखा धारण करा के आर्य समाज मन्दिर में जाकर और शुद्ध हो कर आर्य बन जावें और शान्ति दायक आनन्दमय वेद प्रतिपाद्य परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को समझें, उसी से संसार का कल्याण हो सकेगा अन्य से नहीं, मैं हूं आपका कुरानी खुदा।

वैदिकेश्वर वाद

वेद में परमात्मा के सत्य स्वरूप का निम्न लिखित प्रकार से वर्णन किया गया है—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथा तथ्यतो-
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ य० ४०-८

इस मंत्र का अर्थ वेदाचार्य महर्षि दया-

नन्द जी ने इस प्रकार से किया है अर्थात् जो ब्रह्म शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान, सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीर से रहित है, छिद्र रहित और छेदन करने योग्य नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और जो पाप युक्त पापकारी पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता उसे सब ओर से व्याप्त है। सर्वत्र सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और अनादि स्वरूप, जिसके संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश, माता-पिता-गर्भ वास, जन्म-वृद्धि-मरण नहीं होते वह परमात्मा सनातन अनादि स्वरूप अपने २ स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित, प्रजाओं के लिये यथार्थ भाव से वेद द्वारा सब पदार्थों को बनाता है, वही परमेश्वर तुम लोगों के उपासना करने योग्य है, इस वेद मंत्र का अर्थ उबटाचार्य तथा महीधर ने भी इसी प्रकार से किया है। इस से अवतारवादियों की सारी कल्पनायें निरर्थक हो जाती हैं। उबट और महीधर जीने 'अकाय' शब्द को भली प्रकार खोल कर परमात्मा के शरीर धारण करने का स्पष्ट खण्डन किया है। पौराणिक सनातनियों के दोनों ही मान्य भाष्यकारों ने लिखा है कि (अकायं) न विद्यतेकायः शरीरं यस्य स तथोक्तः, इस शब्द को और भी विस्पष्ट किया है "अकायत्वादे वा व्रणमक्षतम्"

अर्थात् जिस का शरीर नहीं है ऐसा परमात्मा है, शरीर न होने से उस में कोई व्रण या आघात भी नहीं है। इस वेद मंत्र से ईश्वर के कल्पित नाना रूपों का सर्वथा निराकरण हो जाता है। (शुक्रं) इस शब्द से परशुराम अवतार का खण्डन हो जाता है क्यों कि उनकी रामचन्द्र जी के आगे सर्वशक्तिमत्ता ढीली पड़ गई थी, वहाँ एक ईश्वर का अवतार बढ़िया और एक ईश्वरावतार घटिया साबित हुवा था; (अव्रणं) इस शब्द से कृष्ण महाराज ईश्वरावतार सिद्ध नहीं हो सकते क्योंकि प्रभास क्षेत्र में व्याध के तीक्ष्ण बाण से कृष्ण चन्द्र के चरणारविन्द का छिद जाना और रक्त धारा का बह निकलना वैष्णव भागवत में पाया जाता है। (शुद्धं) इस शब्द से मत्स्य-कच्छप-वराह-नृसिंह-इन अवतारों का खण्डन हो जाता है, क्यों कि विद्याविहीन मनुष्यों को भी पशु कह कर पुकारा जाता है, "विद्याविहीनः पशुः" ये अवतार तो अर्द्धपशु और साक्षात्पशु ही हैं,(अपापविद्धं) इस शब्द से वामनावतार का खण्डन हो जाता है, क्योंकि वामनावतार का पौराणिकविचारानुकूल लघुकलेवर ब्राह्मण का देह धारण कर के बलिराजा को कपट से छलना पुराण सिद्ध है।(कविर्मनीषी) इन शब्दों से रामचन्द्रावतार का खंडन हो जाता है, रामचन्द्र जी का सारे संसार को यथार्थ रूप से जानना तो क्या अपनी धर्म पत्नी जानकी के अन्वेषण करने में भी कठिनताओं का सामना करना पड़ा था। (स्वयंभूः) इस शब्द से मुख्य दशावतारों के अतिरिक्त ऋषभदेव—धन्वंतरि—नारद हंसावतारादि शेष सारे अवतारों का भी सर्वथा खंडन हो जाता है क्योंकि अवतारों

के माता-पिता का होना इतिहास सिद्ध है। 'अकायं' और 'अस्नाविरं' शब्द तो इतने स्पष्ट हैं कि इनसे निखिल २४ अवतारों के खण्डन के साथ २ ईसाइयों के देहधारी परमात्मा का ही खण्डन नहीं होता अपितु अर्शमुअल्ला पर बैठे हुवे कुरानी खुदा का तख़्त भी चकनाचूर हो जाता है। इस लिये अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि परमात्मा सम्बन्धी कल्पित विचारों का सर्वथा परित्याग कर के वैदिक ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझाजाय और आनन्द प्राप्त किया जाय, यह मेरी मनः कामना है। यथार्थ रूप से उस परमात्मा का जानना—अमृतत्वाय कल्पते—मोक्षफल को। देने वाला है।

ओ३म् ॥ खम्ब्रह्म ॥

"मेरा यह उपदेश कभी तुम भूल न जाना"

इस समस्या की पूर्ति में लिखित

[ले०—आयुर्वेदाचार्य सन्तलाल दाधिमथ, वैद्यराज, लुधियाना]

(१)

व्यर्थ न आवश्यकताएँ हे वत्स ! बढ़ाना
चाहे बिन उद्योग तुम्हें मिल जाय ख़जाना,
अधिक खर्च होने से होंगे सङ्कट नाना
मेरा यह उपदेश कभी तुम भूल न जाना

(२)

आता जिस ने विकट विपत् वातूल† न जाना,
जाती जिस से जमी उखड़ती मूल न जाना
जीवन के उस ने कुछ भी प्रतिकूल न जाना
मेरा यह उपदेश कभी तुम भूल न जाना !

---

† वातूल—आँधि

⁂

१. शिव सङ्कल्प का विजय

(ले०— श्री हरिशरण जी सिद्धान्तालङ्कार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ)

सङ्कल्प का कोई महत्त्व है या नहीं ? यह प्रथम प्रश्न है, जिस पर कि हमने कुछ विचार करना है। यहाँ प्रसङ्गवश संस्कृत साहित्य के सौंदर्य का भी दिग्दर्शन होजायगा। सं० साहित्य में प्रत्येक शब्द अपने अर्थ के गुणों का प्रकाशन करता है। उदाहरणार्थ जल वाचक 'वारि शब्द पानी के रोग निवारक गुण का प्रतिपादन कर रहा है। स्वयं जल शब्द 'जल घातने' धातु से सिद्ध होकर पानी को रोगकृमिनाशक बतला रहा है। इसी प्रकार सङ्कल्प के महत्व को देखने के लिये हमें बहुत दूर नहीं जाना, यह संकल्प शब्द ही हमारे प्रश्न का उत्तर देरहा है। सम् उपसर्ग पूर्वक क्लृप् सामर्थ्ये धातु से इसकी निष्पत्ति होती है। सम् का अर्थ है अच्छी प्रकार, और क्लृप् का अर्थ है सामर्थ्य। संकल्प से अच्छा सामर्थ्य पैदा होजाता है। यह भाव संकल्प पद की रचना से सूचित होरहा है। सो संकल्प का महत्त्व यही है कि यह मनुष्य को समर्थ बना देता है। हमारा दृढ़ संकल्प होगा तो यह हो नहीं सकता कि हम अपने कार्य में सिद्धि को प्राप्त न कर सकें। एक रोगी दृढ़ संकल्प द्वारा अपने रोग को दूर कर सकता है। एक निर्बल व्यक्ति अपने अन्दर बल को उत्पन्न कर सकता है। एक निर्धन धनी बन सकता है। शैतान से सताया जाने वाला मनुष्य दृढ़ संकल्प होने पर शैतान को पराजित कर सकता है। एक अबला एक बड़े बलवान् गुण्डे पर विजय पासकती है। एक पराजित जाति स्वातन्त्र्य को प्राप्त कर सकती है। एक मुमुक्षु वृद्धावस्था की जञ्जीरों को तोड़कर मुक्ति लाभ कर सकता है। संक्षेपतः दृढ़ संकल्परूपी तीक्ष्ण तीर के लिये कोई भी अभेद्य लक्ष्य नहीं। लिङ्गार्चन तन्त्र के संकल्प विषयक निम्न शब्द वास्तव में ही सत्य हैं:— "संकल्पं मानसं देवि चतुर्वर्ग प्रदायकम्"। इसमें कहा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि संकल्प से होती है। "संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प संभवाः। व्रतानि यमनियमाश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः"। इस मनु के श्लोक में संकल्प को क्रमशः काम, यज्ञसम्भव अर्थ, तथा धर्म का उत्पादक बतलाया है।

इसके साथ ही यह भी देखना चाहिये कि संकल्प के बिना किया हुआ कर्म पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होता, वस्तुतः सिद्धि सङ्कल्प की समानुपातिनी होती है। जितना अधिक संकल्प होगा उतनी ही अधिक सिद्धि होगी। पद्मपुराण में कहा है कि

संकल्पेन बिना राजन् यत्कर्म कुरुते नरः।
फलमल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत्॥

इसका भावार्थ यही है कि संकल्प के बिना कर्म का फल थोड़ा होता है। धर्म का भी अर्धनाश होजाता है।

(I) एवं सङ्कल्प से सामर्थ्य की वृद्धि

होती है। और परिणामतः कार्यसिद्धि अच्छी प्रकार होती है। (II) संकल्प के न होने पर सामर्थ्य के न बढ़ने से कार्य सिद्धि आधी ही होती है। (III) इससे आगे तृतीत स्थान विकल्प का है। उसके होने पर विद्यमान सामर्थ्य भी नष्ट होजाती है। और कार्य सिद्धि तो दूर रही उसका परिणाम नाश होता है। विकल्प, संशय जिसके अन्दर बहुत उत्पन्न होते हैं वह 'संशयात्मा विनश्यति' इन शब्दों के अनुसार अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

संकल्प और विकल्प ये दोनों विरोधी शक्तियाँ हैं। संकल्प सामर्थ्य को केन्द्रित कर प्रभावोत्पादक बनाता है। इसके विपरीत विकल्प उसको तितर-बितर कर निष्प्रभाव कर देता है। इन दोनों के न होने पर सामान्य प्रभाव उत्पन्न होता है। एवं संकल्प की उपादेयता तथा विकल्प की हेयता अत्यन्त स्पष्ट है। संकल्प से सिद्धि विकल्प से विफलता; संकल्प से मोक्ष' विकल्प से बन्ध; संकल्प से स्वातन्त्र्य, और विकल्प से परतन्त्रता उपजती है।

संकल्प और विकल्प ये दोनों धर्म मन के हैं 'संकल्प विकल्पात्मकं मनः' इससे ये दोनों ही मन के स्वरूप बतलाये गये हैं। इस बात के ध्यान में होनेपर 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस वचन की सत्यता स्पष्ट होजाता है। दैवी प्रवृत्ति संकल्प है। आसुरी प्रवृत्ति विकल्प है। मनरूपी क्षेत्र में इन दोनों का संग्राम ज़ारी है। यही दैवासुर संग्राम है। अँग्रेज़ी में इसे Struggle between 'betterhalf' and' Lower half' यह नाम दिया जाता है। यदि हमारे इस धर्म क्षेत्र में चलने वाले युद्ध में देवों का विजय हुवा तो हमारी उत्तम गति होगी, विपरीतावस्था में गति भी विपरीत ही होगी।

मन (हृदय) क्षेत्र है।

इसमें

देव	तथा	असुर	लड़ रहे हैं।
संकल्प	"	विकल्प	ऊपर नीचे हो रहे हैं।
Better half	"	Lower half	में युद्ध जारी है।
राम	"	रावण	का संग्राम हो रहा है।
युधिष्ठिर	"	दुर्योधन	बुरी तरह से भिड़ रहे हैं।
God	"	Satan	कार्य की उधेड़बुन में लगे हैं।
बुद्ध	"	मार	एक दूसरे को हटाने के प्रयत्न में हैं।
प्रताप	"	मानसिंह	
श्रद्धा	"	कुतर्क	ये सब एक दूसरे के मुकाबले में खड़े हैं।
सत्य	"	अनृत	
अमरता	"	मृत्यु	

देखें देवों का विजय होकर हमें अमरता प्राप्त होती है अथवा असुरों के बोलबालेसे मृत्युका भागी बनना पड़ता है।

२. संकल्प शक्ति का 'सामर्थ्य को केन्द्रित कर सिद्ध्युत्पादकता' का गुण हमने सामन्यतः देख लिया इसके गुणमाहात्म्य को विषय का उपसंहार करते हुए हम पुनः देखेंगे। यहाँ इसके व्यापक प्रभाव को देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने सब स्थूल शरीरावृत्त साधनों का विश्लेषण करें। वे साधन क्रमशः बुद्धि मन तथा इन्द्रियाँ हैं। इनकी स्पष्टता निम्न कोष्टक से होजायगीः—

आत्मा के पास साधन हैं।

१. कारण शरीर

१. अन्तः करण।

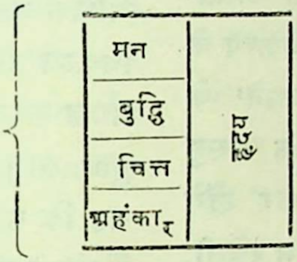

हृदय, मन, बुद्धि चित्त अहंकार।

२. सूक्ष्म शरीर

२. बाह्य करण, । ज्ञानेन्द्रियां।

३. स्थूल शरीर

एवं शरीरों की दृष्टि से भेद करें तो तीन शरीर हैं स्थूल; सूक्ष्म तथा कारण। करणों की दृष्टि से भेद करें तो अन्तःकरण तथा बाह्यकरण। इन में भी अन्तःकरणान्तर्गत ५ उपविभाग हैं हृदय, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार। इन सब पर मानसिक संकल्प का प्रभाव होता है। सङ्कल्प के द्वारा इनको उन्नति तथा विकल्प से अवनति साधी जाती है। ऊपर कह ही चुके हैं कि मानसिक संकल्पों के द्वारा एक रोगी नीरोग तथा नीरोग रोगी बन सकता है। उस से संकल्प का स्थूल शरीर पर प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ एक दो उदाहरण इसी बात के स्पष्टीकरण के लिये और भी देखेंगे।

स्थूल शरीर पर मानसिक संकल्प विकल्प का प्रभाव

१. सब से प्रसिद्ध उदाहरण बेचारे गदर्भ का है जो अपने चारों ओर हरियावल के होने पर भी क्षुधा से पीड़ित हुआ २ दुर्बल हो जाता है। परन्तु शरदृतु में सब शस्यों के शीर्ण होने पर हृष्ट पुष्ट शरीर वाला हो जाया करता है। कारण यह कि वह अपने चारों ओर खाली मैदान देख कर सोचता है कि मैंने तो खाकर सारा मैदान ही खाली कर दिया। संकल्प से ही उसका पेट भर जाता है और वह हृष्ट पुष्ट हो जाता है।

२. द्वितीय उदाहरण भी प्रसिद्ध है।

जिस में कि विद्यार्थियों ने पढ़ाई से अवकाश लेने के लिये अपने अध्यापक महोदय को "मास्टर जी आज तो आप कुछ अस्वस्थ हैं" इस प्रकार वारंवार कथन से, उनके मन में विकल्प उत्पन्न कर के उन्हें सचमुच अस्वस्थ बना दिया।

३ काम क्रोधादि विकल्पों का प्रतिबिम्ब झूठ चेहरे में दीख पड़ता है। भय के विकल्प से चेहरा पीला पड़ जाता है। अंगों में कम्प हो उठता है। और अधिक भय के होने पर बीमारी भी होजाती है। भूत प्रेतों के आक्रमण से बीमार होजाने का रहस्य 'विकल्प के शरीर पर अनिष्ट परिणाम उपजाने' के सिद्धान्त में ही है। एक अवास्तविक वस्तु की भी जब आप मन में कल्पना कर लेंगे तो वह आप पर प्रभाव डाले बिना न रहेगी, यहाँ प्रभाव का कारण वह वस्तु नहीं अपितु उस वस्तु की कल्पना ही है। इसी प्रकार आप के मन में उत्पन्न हुवा क्रोध तथा आप के मन की प्रसन्नता भी आपके चेहरे से पढ़ी जा सकती है। वस्तुतः Face is the index of mind यह लोकोक्ति सत्य है। और मन के शरीर पर प्रभाव को स्पष्ट बतला रही है।

'मानसिक चिकित्सा' द्वारा रोगों की निवृत्ति

यह विषय को स्पष्ट करने के लिये सब से प्रबल प्रमाण है। इसमें मैं स्वस्थ हूं इस संकल्प द्वारा ही रोगों को दूर भगाया जाता है। मानसिक चिकित्सक रोगी के दिल में यही दृढ़ निश्चय उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है कि बस मेरे छूते ही तेरा रोग भग जावेगा। "अयं में हस्तो भगवान् अयं में भगवत्तरः अयं में विश्व भेषजः, अयं शिवाभिमर्षणः" । इन विश्वासात्मक शब्दों का उच्चारण करके वैदिक चिकित्सक रोगों का रोग हस्तस्पर्श द्वारा दूर करता है। इस चिकित्सा का रहस्य भी संकल्प के प्रभाव में ही है।

यद्यपि अभी तक रोगी के दिल में संकल्प को उत्पन्न करके दूर करने का प्रचार अधिक नहीं हुआ तथापि रोगी के दिल में विकल्प उत्पन्न नहो इस बात का तो प्रत्येक प्रयत्न करता है। इसी दृष्टि से ही Indoor games prescribe की जाती हैं। कारण यह कि यदि रोगी यही सोचता रहा कि मैं रोगी हूं, तो रोग दूर कैसे होगा। वह तो बढ़ता ही जायगा।

निद्रा के अनन्तर रोगविश्रान्ति का अनुभव प्रायः सब को होता है। यहाँ भी रहस्य निद्रा की अवस्था में मैं रोगी हूं इस प्रकार संकल्प के न उत्पन्न होने में ही है।

पाँचवाँ उदाहरण फलित ज्योतिष सम्बन्धी है जिस में कि ज्योतिषी महाराज की अपार दया से "मैं ३७ साल की अवस्था में मर जाऊँगा" इस निरन्तर के विकल्प से उस अभागे को मृत्यु का शिकार बनना पड़ता है।

६. शाबाश देने से भी क्या होता है! खिलाड़ी के दिल में विश्वास तथा विजय का सङ्कल्प उत्पन्न हो जाता है। परिणामतः उसके शरीर में एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति

उत्पन्न हो जाती है। घोड़े भी इस शाबाश से प्रोत्साहित होते देखे जाते हैं।

७. अकबर बीरबल के नाम से प्रसिद्ध भेड़िये के पास रहनेवाला उदाहरण भी भयरूप मानसिक विकल्प के शारीरिक प्रभाव को स्पष्ट कर रहा है।

८. वैद्यों द्वारा 'बिना रुधिर बहाये मृत्यु' वाला किया हुआ परीक्षण भी विकल्प के शरीर पर द्योतक परिणाम को बतलाता है।

९. संकल्प विकल्प का शारीरिक प्रभाव इस से भी स्पष्ट है कि विद्यार्थियों का भार यात्रा के दिनों के आस पास बढ़ जाता है। पर परीक्षा के दिनों के आस पास न्यून हो जाता है।

इन सब उदाहरणों से शरीर पर संकल्प विकल्प का प्रभाव स्पष्ट है।

सूक्ष्म शरीर पर मन का प्रभाव

बुद्धि पर

शिव संकल्प के मन्त्रों में मन को 'यत्प्रज्ञानम्' ऐसा कहा है। उसी के भाष्य में श्री स्वामी जी ने 'ऋतम्भरा प्रज्ञा साधनम्' इन शब्दों का उल्लेख किया है। 'प्रजानाति येन तत्प्रज्ञानम्' इस व्युत्पत्ति से मन ही सम्पूर्ण ज्ञान का साधन है। ऐसा स्पष्ट विदित हो रहा है। वस्तुतः मन का यदि संयम करके उसे एक विशेष दिशा में प्रेरित करें तो उस के लिये मार्ग में किसी प्रकार की भी रुकावट नहीं हो सकती। 'अतीतानागत विप्रकृष्ट' सब वस्तुओं का वह ग्रहण कर सकता है। योग विद्या का तत्त्व यही है उस में योगी मन पर पूर्ण काबू पाकर परोक्ष वस्तुओं का भी ज्ञान कर लेता है। उससे कोई बात छिपायी नहीं जा सकती। वेद मन्त्र भी "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्" इन शब्दों द्वारा उपरोक्त कथन को स्पष्ट कर रहा है।

यह बात हुई संकल्प की इसके विपरीत यदि प्रतिक्षण मनुष्य विकल्प Imeginations ही में उड़ता रहे तो वह अन्त में कुछ पागलपन की ओर झुक जाता है। उसकी बुद्धि में विकार उत्पन्न होजाता है। Great wits are sure to madness near allied' यह लोकोक्ति हमारे कथन को पुष्ट कर रही है। वस्तुतः कल्पनाओं को मर्यादा में रखने से जहाँ बुद्धि पर अच्छा परिणाम उत्पन्न होता है, इसके विपरीत अमर्यादित कल्पनायें विकार का कारण हो जाती हैं।

इससे भी बढ़कर मन में काम, क्रोधादि विकल्पों के अधिक होने पर तो बुद्धि का बिलकुल नाश ही होजाता है। 'क्रोधाद्भवति सम्मोहः' इस गीता वचन में मूढ़ता का मूल क्रोध रूप विकल्प को ही बतलाया है। क्रोध में ज्ञान का इतना नाश होजाता है कि पिता अपने पुत्र को भी, तिमञ्जले मकान से गिरा कर नष्ट कर सकता है। युधिष्ठिर वनपर्व में द्रौपदी से कहते हैं—

> "हिंस्यात्क्रोधादवध्याँस्तु वंध्यान्सम्पूजयीत च।
> आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद्यमसदनम्" ॥ २९।१

उसके लिये सब कुछ सम्भव होजाता है जो एक क्रूर अज्ञानी पशु के लिये सम्भव है।

४. मन का चित्त पर प्रभाव

वेद में 'यत्प्रज्ञानम्' के साथ २ 'उतचेत': इन शब्दों का भी प्रयोग हुवा है जो कि मन को चित्त का मूल बतला रहे हैं। 'चेतति स्मरति येन' इस व्युत्पत्ति से उपरोक्त भाव स्पष्ट है। इसी की व्याख्या 'तस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्' यह मन्त्र भाग कररहा है।

यह प्रत्येक विद्यार्थी का अनुभव है कि मन के सहयोग होने पर पाठ अच्छी तरह स्मरण होता है तथा मन के अन्यत्र विचरते हुए होने पर पिछला स्मरण किया हुआ पाठ भी भूल जाता है। इस सामान्य अनुभव से ही मानसिक संकल्प विकल्प का स्मृति-विस्मृति पर प्रभाव स्पष्ट है।

५. अहंकार पर

मन ज्ञानोत्पत्ति के द्वारा 'अहंकार' पर प्रभाव डालता है। मानसिक संकल्प द्वारा उत्तम ज्ञान के होने पर अहम्भाव वा बिलकुल नाश हो जाता है। इसके विपरीत, विकल्प की सत्ता में मिथ्याज्ञान के होनेपर मनुष्य पूर्ण अहंकारी होजाता है। 'अहम्भावो दयाभावः ज्ञानस्य परमावधिः' इस उपनिषन्मन्त्र में अहम्भावाभाव तथा ज्ञान की पराकाष्ठा को पर्याय बतलाया है इसके साथ 'अथाज्ञानमविद्याहंमतिः स्त्रियाम्' इस अमरकोष के वाक्य में अज्ञान तथा अहंकार को भी पर्याय बतलाया है। कहने का अभिप्राय यही है कि उत्तम ज्ञान के उत्पन्न होजाने पर अहम्भाव का बिलकुल नाश होजाता है। गीता के कर्मयोग का आधार भी यही है कि मनुष्य मन के संयम द्वारा उत्तम ज्ञान उत्पन्न करके कर्तृत्व के अहंकार का नाश करदे। बस फिर उसमें कर्मों का लेप न होगा। 'यस्यनाहंकृतोभावः बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' १८। १७। इसके विपरीत 'यदा किञ्चिज्ज्ञोहं द्विप इव मदान्धः समभवम्। तदा सर्वज्ञोऽस्मित्यभवदवलिप्तं मम मनः'॥ इस प्रकार अल्पज्ञान की सत्ता में अहंकार की उत्पत्ति होती है। उस समय मनुष्य 'यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये' "ओ! मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, मुझे बड़ा यश और आनन्द मिलेगा"। 'आढ्योभिजनवानस्मि कोन्योऽस्ति सदृशो मया' अरे! मैं धनी तथा कुलीन हूँ, मेरे जैसा और है कौन? इस प्रकार घमण्ड करता है। इस घमण्ड के कारण उसमें कर्मों का लेप होता है और वह बन्ध को प्राप्त होता है।

इस प्रकार मन ही अहंकार को नष्ट या उत्पन्न करके मोक्ष वा बन्ध का कारण होता है। वस्तुतः "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" यह कथन बिलकुल सत्य है।

६. मन का प्रभाव हृदय पर

मन जिस प्रकार बुद्धि के द्वारा अहंकार पर प्रभाव डलाता है, उसी प्रकार चित्त के द्वारा ये हृदय पर निरन्तर प्रभाव डालता रहता है। चित्त में मृत्यु की स्मृति बनी रहे तो मनुष्य के हृदय में अशुद्ध भावनायें उत्पन्न नहीं होने पातीं। इसके विपरीत परमेश्वर के उग्ररूप वा यम (मृत्यु) की विस्मृति के होने पर हृदय कुभावनाओं (Vicious motions) का घर बन जाता

है, इसलिये यह आवश्यक है कि मनके द्वारा चित्त में मृत्यु की स्मृति हम सदा जाग्रत रक्खें। इसी बात को ध्यान में रखते हुए ही कबीर महाराज प्रत्येक अर्थी के साथ श्मशान तक जाया करते थे।

एवं मन का प्रभाव अवशिष्ट सम्पूर्ण अन्तःकरण पर हम देख चुके। उस सम्पूर्ण विषय को स्मरण रखने के लिये निम्न पट्टिका में रख सकते हैं:—

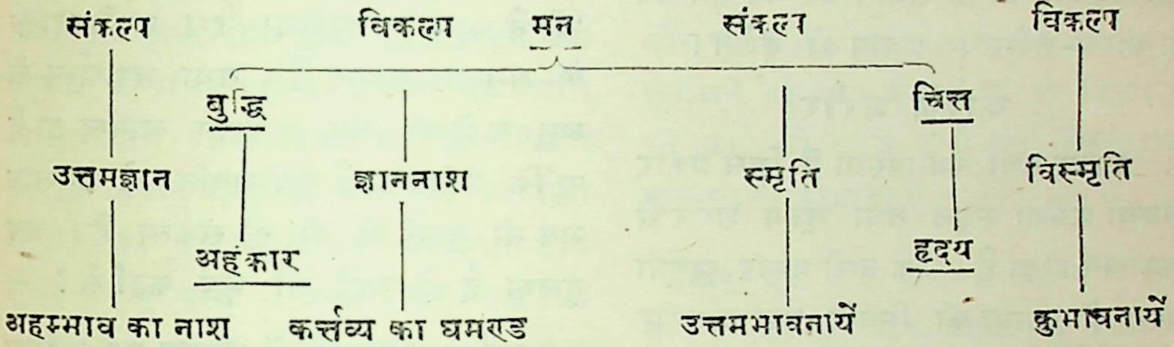

७. मन का प्रभाव बाह्य करणों पर

पहिले की तरह प्रथम हमें यह देखना है कि इस विषय में श्रुति हमें क्या ज्ञान देती है। शिव संकल्प के मन्त्रों में हमें कहा है कि 'येन कर्माण्यपसो मनीषिणः यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः' अर्थात् मन के वश में करने वाले (अपः कर्म तद्वन्तः अपसः) कर्म काण्डी तथा मन के वश में करने वाले (धिया रमन्ते) ज्ञानी जिसके द्वारा कर्म यज्ञ तथा (विदथेषु) ज्ञान यज्ञों में कर्मों को करते है। अर्थात् यह मन ही कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों का अधिष्ठाता है। यही (यक्ष-यज-संगति करण) 'यक्ष' इन्द्रियों का पदार्थों के साथ मेल कराने वाला है। आँख का रूप के साथ, श्रवणों का शब्दों के साथ, नासिका का गन्धों के साथ, मुखस्थ जिह्वा का रस के साथ एवं यह ज्ञानेन्द्रियरूप सप्तहोताओं वाला यज्ञ इसी मन के द्वारा विस्तृत किया जा रहा है। (कर्णा त्रिमौनासिके चक्षणी मुखम्) इसके साथ ही साथ 'यस्मान्न ऋते कश्चन कर्म क्रियते' इन शब्दों के अनुसार कर्मेन्द्रिय रूप होताओं का यज्ञ भी इसी मन के द्वारा सिद्ध होता है।

अनुभव भी श्रुति की यथार्थता को पुष्ट करता है। जैसे कि मुझे रणवीर बुलाये, मेरा ध्यान न हो, कुछ अस्पष्ट सी प्रतीति हो, तो मैं थोड़ी देर बाद कहता हूँ "अपि मित्र किं त्वमाह नाश्रौषम् अन्यत्र मना अभूवम्"। इसी प्रकार 'नापश्यम्' 'नाहं वेद रसं गन्धं वा' 'अन्यत्र मना अभूवम्' ऐसे भी शब्द हमने आपस में एक दूसरे को कहते हुए सुने सुनाये हैं। सो यहाँ स्पष्ट है कि मन ही इन्द्रियों का अर्थों के साथ संयोग कराने वाला है। यदि हम इन्द्रियों को विषयों में जाने से रोकना चाहें तो बस मन काबू करलें तब 'यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतो दशकौ गणौ' इस वचन के अनुसार

यह सब इन्द्रियाँ हमारे काबू में होजावेंगी इसके विपरीत मन को काबू न करने पर, मन हमें इधर उधर भगाकर विषय पंक में गिरा देगा। एवं इस दृष्टि से भी बन्ध और मोक्ष दोनों मन से ही होते हैं। साथ ही यहाँ 'मन का सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव' इस विषय को भी समाप्त कर अब हम मन के कारण-शरीर पर प्रभाव को देखेंगे।

कारण शरीर

जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में जिस प्रकार आत्मा क्रमशः स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में अवस्थित होता है। ठीक उसी प्रकार सुषुप्तावस्था में आत्मा की स्थिति कारण-शरीर में होती है। यह कारण-शरीर सब प्राणी मात्र का एक है। इस अवस्था में व्यक्ति एकत्व के अन्दर बहुत्व के तथा बहुत्व के अन्दर एकत्व के उच्चज्ञान को प्राप्त करके आनन्दित होता है। 'सुषुप्त स्थान एकीभूतः (प्राणिमात्रेण) प्रज्ञानघनएवानन्दमयो ह्यानन्द भुक् चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः' मा. ५. माण्डूक्य के इस मंत्र में आये हुए "एकी भूतः, प्राज्ञः, आनन्द भुक्" इन शब्दों से उपरोक्त भाव स्पष्ट विदित है। इस समय वह प्राणिमात्र को 'मैं हूँ' ऐसा ही अनुभव करता है। जैसा कि हम जाग्रतावस्था में अपने को ही 'मैं' अनुभव करते हैं ; चूँकि इस समय हम स्थूल शरीर में होते हैं ; और स्थूल शरीर हमारा औरों से पृथक् होता है परन्तु ठीक उसी प्रकार सुषुप्तावस्था में कारण शरीर काम करता है। और चूँकि कारण शरीर प्राणिमात्र का एक है इसलिये मैं "प्राणिमात्र में, मैं हूं" ऐसा ध्यान करता हूँ। इस समय 'एकोऽहमेको म आत्मा०' ऐसा न कह करके 'अयुतोहमयुतो म आत्मा अयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणो ऽयुतो मे ऽपानो ऽयुतो मे व्यानोऽयुतोहंसर्वः' अर्थात् मैं अनन्त हूं। अथवा मैं औरों से अपृथक् हूँ। अनन्तता के अनुभव में भी 'यो वै भूमा तत्सुखम्' इस उपनिषद्वाक्य के अनुसार आनन्द है। तथा अपार्थक्य के अनुभव में भी भय न होकर आनन्द ही है चूँकि "द्वितीयाद्वै भयं भवति" के अनुसार भय तो दूसरे से ही हो सकता है। जब दूसरा है ही नहीं तो भय कहाँ से?

एवं सुषुप्तावस्था में आनन्द का अनुभव सब प्राणिमात्र में समान, कारण शरीर की सिद्धि करता है।

इस शरीर की सिद्धि में दूसरा प्रमाण स्वप्न विज्ञान से हमें मिलता है। ऐसा प्रायः हम सबका अनुभव होता है कि कभी २ स्वप्न में हम उन चीज़ों को भी देखते हैं जिनको कि हमने कभी भी देखा नहीं। कदाचित् उन शब्दों को भी सुनते हैं जिन से कि हमारा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। 'दृष्टश्चादृष्टश्च श्रुत्तश्चाश्रुतश्च' इन शब्दों द्वारा छान्दोग्य में उपरोक्त वार्त्ता कही गई है। सो जब हम आश्चर्यित होकर अदृष्ट दर्शन के निमित्त की खोज करते हैं तभी हम कारण शरीर की सत्ता को जान कर अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर लेते हैं। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये हमें निम्न लिखित चित्रपट तैयार करना चाहियेः—

सुषुप्ति— कारण (प्राणिमात्र में समान)
+
स्वप्न— सूक्ष्म
+
जागृत— स्थूल

जागृतावस्था में स्थूल शरीर कार्य करता है। ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था में कार्य करता हुवा दीखता है। शरीर की सूक्ष्मता के कारण ही स्वप्नावस्था के भोग भी सूक्ष्म होते हैं। इतने सूक्ष्म कि दिन में वे भोग पदार्थ दीखते भी नहीं। साधारणतया जिन पदार्थों का दिन में हम निरन्तर ध्यान करते हैं रात में स्वप्नावस्था में उन्हीं को हम भोग कर आनन्दित होते हैं। उदाहरणार्थ— एक रोगी सहभोज वाले दिन चूँकि बूँदी का ही ध्यान करते २ सो जाता है, इसलिये वह रात में सूक्ष्म बूँदी को खाता है। परन्तु प्रातः जागृत होने पर कहता है:—

> "यत्स्वप्नेऽन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
> सर्वं तदस्तु मे शिवं न हितद्दृश्यते दिवा ॥"

ऐसे स्वप्न हुआ ही करते हैं। परन्तु कभी २ उन चीज़ों को स्वप्नों में देखकर जिनका कि हमारे से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं, आश्चर्य हो उठता है। उस आश्चर्य की शान्ति के लिये ऊपर का चित्रपट हमारी सहायता करता है। यह ठीक है कि स्वप्नावस्था में साधारणतया सूक्ष्म शरीर ही काम करता है परन्तु सोते हुए भी मेरे हाथ खाज होने पर खुजाते हैं; मैं करवट ले लेता हूं, कई व्यक्ति सोते २ बोलते हुए भी देखे जाते हैं; कइयों को ऐसी भी बीमारी होती है कि जिसमें वे सोते सोते दो दो मीलों की सैर कर आते हैं। सो यह तो काम स्थूल शरीर का है। यह क्यों? यह इसलिये कि शरीरों की शृङ्खला में सूक्ष्म शरीर बीच की कड़ी है। स्थूल शरीर रूप कड़ी का भी उससे कुछ सम्बन्ध है। उसके हिलने पर यह भी हिल जाती है। ठीक इसी प्रकार कारण शरीर रूप कड़ी भी इससे सम्बद्ध है। इसके गति में होने पर उसमें भी गति उत्पन्न होजाती है। और चूँकि वह शरीर प्राणिमात्र का एक है इसलिये दो अरब मनुष्यों में से किसी ने भी कोई भी चीज़ देखी हो उसका भी मुझे स्वप्न होजाता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि यदि यही बात है तो वह एक व्यक्ति को स्वप्न में क्यों दीखती है? औरों को क्यों नहीं? यह प्रश्न ठीक है। परन्तु कर्म सिद्धान्त को मानने वालों के लिये इसका उत्तर देना कठिन नहीं। श्री हर्ष, नै० च० में 'अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात् करोति सुप्तिर्जन दर्शनातिथिम्' इस श्लोक भाग में धर्माधर्म को ही उपरोक्त बात का कारण बतलाते हैं।

एवं कारण शरीर की सत्ता इस युक्ति से भी सिद्ध है।

यह कारण शरीर Ether के समान सर्वत्र व्यापक है। होसकता है कि यह हो भी Ethereal. मन वे यन्त्र विशेष हैं जिन के द्वारा इस Etherial शरीर पर विशेष प्रकार के प्रहार किये जाते हैं। ठीक Wireless telegraphy के समान यहाँ सारा कार्य होता है। यहाँ दिल्ली में यन्त्रविशेष से वायु मण्डल पर प्रहार किये जाते हैं। लण्डन में ऐसा ही

यंत्र इन प्रहारों को ग्रहण करता है। वायु मण्डल में प्रहार तो सर्वत्र फैल जाते हैं। यंत्र भी लण्डन के सिवाय अन्यत्र कई स्थानों में विद्यमान हैं। प्रहार उन यन्त्रों पर भी होते हैं। परन्तु उनको ग्रहण लण्डन का करता है। ठीक इसी प्रकार एक मन से किये हुए प्रहार सारे कारण-शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। मन भी बहुत हैं, परन्तु एक विशेष मन से किये हुए प्रहारों को एक विशेष मन ही ग्रहण करता है सब मन नहीं। जिन मनों में (receptivity) ग्रहण योग्यता है, वे ही एक दूसरे के किये हुए प्रहारों को समझते हैं। उदाहरणार्थ शान्ति पर्व में जहाँ युधिष्ठिर और व्यास बात चीत कर रहे हैं वहाँ एक दम जब कि शरशय्या गत भीष्म मन द्वारा कारण शरीर पर प्रहार करते हैं तब व्यास उनको समझा कर युधिष्ठिर से कहते हैं "शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः। मां ध्याति पुरुषः व्याघ्रः ततो मे तद्गतं मनः"।

*प्रभाकर पन्त को जिस समय वैरागी मारता है उस समय वह भी मन द्वारा कारण शरीर पर प्रहार करता है। उन प्रहारों को दूरस्थ माता लेलेती है और समझती है। इस प्रकार प्रायः माता पिता वा अन्य प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु रात्रि में स्वप्नावस्था में जान लेते हैं। कारण यही है कि उस समय मन अपेक्षया शान्त होने के कारण प्रहारों को लेने के लिये तय्यार होता है।

एवं मन का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। ऐसे प्रभाव शाली भृत्य को यदि हम अपने वश में रक्खेंगे तो जो हम चाहेगें कर लेगें, पर यदि इस के वश में हो गये तो हमारा कल्याण नहीं, यह हमारी चटनी बना देगा।

इस मन को वश में करके हम उन्नत हो सकते हैं। परन्तु उतने ही उन्नत होंगे जितना कि हमारा सङ्कल्प उच्च २ होगा। नदी अपने उद्गम स्थान से कभी ऊपर नहीं जा सकती ठीक इसी प्रकार हम अपने मानसिक भावों की अपेक्षा कभी अधिक ऊपर नहीं उठ सकते। इस लिये सब से प्रथम आवश्यक बात यह है कि हम "दीनता हीनता" के भावों को परे फेंक कर "अहमिंद्रो न पराजिग्य इद्धनं" इन उच्च भावों को अपने मन में स्थान दें। आत्मसम्मान करना सीखें Optimism को धारण करें। इस बात को भी हम भूल न जाँय कि Like attracts Like का सिद्धान्त यहाँ काम कर रहा है। (जैसे हमारे भाव होंगे वैसे ही हम बन जायेंगे) दीनता का भाव हमारी ओर दीनता को खैंचेगा और हमें दीनता का घर बना देगा। इसके विपरीत विजय का भाव विजय को आकर्षित कर हमें अवश्य विजयी बनायेगा। इस में सन्देह नहीं कि शिव सङ्कल्प विजय होकर ही रहेगा।

---

*शिव संकल्प का विजय २ य अध्याय (श्री पं० सातवलेकर जी कृत)

प्रभात-प्रताप

(श्री हरिदत्त मिश्र "मित्र")

(१)
विपुल-विश्व विदारण कालिमा,
विमल दिव्य प्रकाशन लालिमा।
सुखद-सुन्दर-स्वच्छ-प्रभात है,
अवनि पै प्रकटा रवि साथ में।

(२)
अरुणिमा झलकी गिरि शृंग पै,
लख पड़ीं किरणें मनमोहिनी।
परिमलान्वित शीतल वायु भी,
परम-शान्त प्रवाहित हो चला।

(३)
विहग-वृन्द प्रफुल्लित हो महा,
निकल पादप नीड़ निकुंज से।
सरस गायन गाकर मोद से,
गगन-मंडल में उड़ने लगा।

(४)
मृदुल-मञ्जुल-मालति, मोतिया,
सरस-सौरभवान गुलाब भी।
विविध भाँति प्रसूनन की कली,
विकसिकै हँसने वन में लगी।

(५)
विविध रंगन-रञ्जित-पक्ष की,
नवल कान्तिमयी कलियाँ खिलीं।
मधुर मञ्जुल पी मकरन्द को,
मुदित-हो उड़ने सर में लगे।

(६)
कलित क्रीडन में शुक हैं पगे,
ललित कोकिल राग अलापती।
मधुर-वादन मञ्जु-मयूर भी,
विपिन में करता प्रिय-नृत्य है।

(७)
विकट-मर्कट-यूथप वृक्ष पै,
किलकिला कर के फिरने लगे।
सुघर-कोमल हैं शशकादि भी
विचरते प्रिय कानन भूमि में।

(८)
अति अलौकिक मञ्जु कुरङ्ग की,
सरल चित्तमयी बहुपंक्तियां।
नवल खेतन में चरने लगीं,
प्रमुदिता वह हो कर के महा।

(९)
सकल मानव-वृन्द प्रसन्न हो,
उठ,लगा करने निज कार्य को।
विमल चित्त मुनीशन के हुए,
समुद-भक्त लगे प्रभुध्यान में।

(१०)
नगर, कानन, ग्राम्य, कुटीर में,
विकट-शोर मचा चहुँ ओर से।
विपुल-बालक-वृन्द प्रमोद का,
कल-निनाद सुना पड़ने लगा।

(११)
सुरभि-वृन्द लिये अति मोद में,
विपिन मध्य गया अब ग्वाल है,
कृषक भी करने निज कार्य को
चल पड़े गृह से सब खेत को।

(१२)
सुमन, पत्र, तृणादिक पै गिरी,
कलित-कान्ति मयी मृदु ओस है।
सलिल गर्भ पडीं रवि-रश्मियाँ,
प्रिय 'प्रभात-प्रताप' बता रहीं।

(१३)
नभ-सराङ्कित मंजुल-कंज की,
अरुणिमा मन मोहत प्रात में।
विमल-बुद्धि-विकाशक काम ये,
प्रकृतिका शुभ, सुन्दर-रत्न है।

अनोखा परिवर्तन

(लेखक—विश्वम्भर सहाय प्रेमी वैदिकधर्म विशारद)

पाठको ! तनिक ध्यान से देखिए। लो देखो ! सामने से भोली भंगिन बड़े प्रेम से उस छोटी बालिका को खिला रही है जिसका नामकरण संस्कार अभी तक हमारे लिए नहीं हो पाया है। वह कभी उसको घुटनों पर बिठाकर उसके मुख को निहारती है, कभी उसके कोमल हाथ को उठाकर अपने मुख पर फेरती है, कभी अपने वस्त्र से उसके कान के ज़ख़म को पोंछती है। इस प्रकार वह अपने समय का उपयोग कर रही है।

सामने से एक नवयुवक आता दिखाई पड़ा "भोली" ने बड़े सन्मान के साथ उसको एक मोढ़े पर बैठने को संकेत किया, यह नवयुबक बड़े नम्र भाव से सलाम कहकर भोली भंगिन का मिजाज़ पूछने लगा भोली ने उसको आशीर्वाद दिया उसको अनेक प्रकार की विद्याएँ प्राप्त हों इस प्रकार दुआ माँगी।

(२)

युवक का नाम मिस्टर स्टीफन है आप पहिले फरीदनगर ग्राम के एक उच्चवर्ण में उत्पन्न हुए थे आपकी आयु लगभग १- वर्ष की ही होगी जब कि आपके पिता इस लोक से बिदा होगए माता पर ही आपका सारा बोझ आ पड़ा। आपके रूप गुण की ग्राम में बड़ी प्रतिष्ठा थी। आप लगभग वहाँ के सभी कामों में भाग लेते थे विचार पलटते देर नहीं लगती, आपने माता का सारा भार अपने बड़े भाई हरद्वारी पर सौंप दिया। आपके भाई का विवाह संस्कार हो चुका था इसीलिये उनके भाई को अपनी माता तथा स्त्री का सारा भरण पोषण का भार सम्भालना कठिन होगया।

मिस्टर स्टीफन का थोड़ा सा परिचय ऊपर हमने दे दिया है यहाँ पर उनके पहिले नाम को प्रकट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है, आपके पिता को बड़े पुत्र हरद्वारी की अपेक्षा आप पर विशेष स्नेह था, आपको प्यार में बाबू कह कर पुकारा करते थे इनकी इच्छा थी कि यह पुत्र पढ़ लिख कर बड़ा होने पर यथा नाम तथा गुण वाला हो। बाबू बनकर हमारा गौरव बढ़ावे।

बाबू महाशय का पूरा नाम बाबूराम था। आपके पिताजी ने ग्राम की पाठशाला में पढ़ा कर वहीं पर मिडिल परीक्षा करादी थी परन्तु मृत्यु के पश्चात् अवसर प्राप्त न हुआ जिससे यह और विद्याध्यन करते।

बाबूराम ने ग्राम से जाकर पास ही के नगर में एक अछूत पाठशाला में विद्या पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया दो तीन मास के उपरान्त फ़रीदनगर ग्राम में यह समाचार बिजली की तरह दौड़ गया। समस्त ग्राम वाले महाशय बाबूराम को क्रिस्तानहुआ

मानने लगे। माता ने जिस समय इस प्रकार का समाचार सुना तो वह भी व्याकुल होगई।

दैवयोग से महाशय बाबूराम ग्राम में माता से मिलने चले आए। अनेक प्रकार के ग्राम निवासी प्रश्न करने लगे। बाबूराम को यह तनिक भी ध्यान न था कि अछूत पाठशाला में पढ़ाने से ही हिन्दू-धर्म से भ्रष्ट होने का कलङ्क लग जायगा। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। ग्राम निवासियों ने उसकी माता पर बल दिया, कि तू इस लड़के से यदि अपने बड़े पुत्र के समान व्यवहार करेगी, उसको अपने पात्रों में खिलावेगी तो तू भी हिन्दु-समुदाय से पतित कृष्टान समझी जायगी।

इस प्रकार के भय को सुनकर उसका हृदय काँप उठा। मन दुखी होगया, मातृ-प्रेम से विवश होकर उसने पुत्रवत् उसको खिलाया-पिलाया। साथ ही उसको पाठशाला छोड़कर घर चले आनेपर विवश किया।

महाशय बाबूराम अपने कार्य को अपूर्ण छोड़कर आना पाप समझता था। वापिस जाकर फिर अपने कार्य को दूने उत्साह से करने लगा, परन्तु जिस स्थान पर उसने वह पाठशाला खोल रक्खी थी उस स्थान के रहने वाले हिन्दू समुदाय का बर्ताव भी अपने प्रति अनुचित तथा कठोर समझा तो उसको भिन्न २ विचारों ने घेर लिया—

इन्हीं दिनों हापुड़ में जहाँ महाशय बाबूराम पढ़ाते थे ईसाई मिशन के प्रचारार्थ कई बड़े पादरी आए हुए थे। महाशयबाबूराम से प्रायः मिलते उसके कार्य्य की सराहना करते तथा उसके प्रति सहानुभूति तथा प्रेम प्रदर्शित करते।

बाबूराम भी उनके संसर्ग में आता ही गया बराबर उनके साथ मिलता। अछूतों में शिक्षा-प्रचार करने पर घंटों विचार करता।

मुख्य पादरी जौन स्टाक ने महाशय बाबूराम को ईसाईधर्म ग्रहण करने पर तैय्यार कर लिया। बाबूराम जिसने हिन्दू समुदाय का इस प्रकार कठोर बर्ताव देखा बड़ी प्रसन्नता से उस समुदाय में जिसमें जान देखी, प्रेम देखा, सहानुभूति देखी, सम्मिलित होने पर तत्पर होगया। और बाबूराम से बदल कर वही मिस्टर स्टीफन बन गया जो कि भोली भंगन के पास बैठा हुआ है।

(३)

मिस्टर स्टीफन ने भोली भंगिन द्वारा उस लड़की का भली प्रकार पालन पोषण कराया जिसको एक बड़े रहस्य के साथ उसने प्राप्त किया था जिसका वृतान्त यहाँ पर प्रकट करना असंगत न होगा।

हापुड़ के समीप एक छोटे से ग्राम में लाला शिवदयाल एक प्रतिष्ठित ज़मीदार वैश्य कुल उत्पन्न रहते थे। उनके बड़े भाई की मृत्यु ठीक ऐसे समय हुई जब कि उनकी स्त्री सुशीला पूर्ण युवती थी। पति की मृत्यु के उपरान्त उसको दो वर्ष कठोर तपस्या में व्यतीत करने पड़े। परन्तु फिर उसपर शिवलाल की कुवासनाओं का चक्र चल गया।

ईश्वर की महिमा अपार है कुछ समय के पश्चात् सुशीला के एक लड़की उत्पन्न होगई। मिस्टर स्टीफन को लड़की उत्पन्न होने से पूर्व ही इस घटना का किसी प्रकार समाचार ज्ञात हो चुका था, उसने सुशीला को अपने एक मित्र के यहाँ पन्द्रह दिवस के लिये रखा दिया था। सुशीला, जब वह कन्या दस दिन की होगई थी वहीं झोंपड़ी में छोड़कर फिर अपने ग्राम में शिवलाल के पास चली गई।

मिस्टर स्टीफन ने उसे लेकर भोली भंगिन को दिया और उसके पालन-पोषण का सारा भार भोली पर रखा केवल पाँच रुपये मासिक भोली को देने स्वीकार किए।

(४)

भुवन भास्कर की सुनहरी किरणें पृथ्वी की वनस्पति पर पड़नी ही प्रारम्भ हुई होंगी जबकि हमने उस बालिका को गले में पुस्तकों का बस्ता डाले हुये पाठशाला जाते देखा। इस समय उस बालिका की आयु लगभग दस वर्ष की होगी। बालिका के मुख पर गुलाब के पुष्प के समान लाली है, होंठों पर मन्द२ मुस्कान है। उसको यह तनिक भी चिन्ता नहीं कि संसार में कहाँ क्या होरहा है। इस समय वह चौथी कक्षा में पढ़ रही है। उसका बदन इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि कोई उसका वारिश अवश्य है देखने में स्पष्टतया वह सनाथा प्रतीत होती है।

शनैः २ दो वर्ष और भी बीत गए बालिका की आयु १२ वर्ष की हो चुकी है। इस समय वह बालिका मिस्टर स्टीफन के पास ही रहती है वही स्वयं उस के भरण पोषण का प्रबन्ध करते हैं।

मिस्टर स्टीफन की छोटी झोंपड़ी के सामने प्रायः समीप के रहने वाले भंगी जाति के बच्चे खेलते रहते हैं उन के प्रति उनका बड़ा स्नेह था। वहीं पर स्टीफन ने कुछ फुलवाड़ी लगा रखी थी।

दैव योग से एक दिन वह उस बालिका से वार्तालाप कर रहे थे। स्वयं उसके भाग्य पर विचार करते जाते थे। बालिका ने स्टीफन को इस समय तक पिता समझा था। उस भोली भंगिन को माता मान रखा था। परन्तु इस समय से जब से वह भोली जुदा हुई थी अपनी माता को जानने में उत्सुक थी। वह सोचती थी कि यदि मेरी यही माता होती तो क्यों मैं उस से अलग की जाती।

प्यार २ में उसने स्टीफन से पूछा "मेरी माता कहाँ है" स्टीफन सुन कर चुप हो गया परन्तु उस से फिर पूछा जिस के उत्तर में स्टीफन ने कहा "तुझे आगे चलकर स्वयं पता चल जायगा"।

बालिका उस दिन से कुछ अन्य मनस्क रहने लगी। माता के जानने को उसका मन हर समय उत्सुक रहता।

प्रति सप्ताह रविवार को मिस्टर स्टीफन निकट के ग्रामों में प्रचार करने जाया करते थे कभी २ अपने साथ उस बालिका को भी ले जाया करते थे जिस समय का वृतान्त हम लिख रहे हैं उस समय हिन्दू संप्रदाय में बहुत अन्तर पड़ गया था। साधारण छूत छात को कुछ भी परवाह नहीं रही ग्रामीण

नवयुवक जो नगरों की अंग्रेजी पाठशालाओं में पढ़ रहे हैं, कुछ भी ईसाई लोगों से मिलने में संकोच नहीं करते ।

मिस्टर स्टीफन हापुड़ के निकट वाले ग्राम में प्रचार कर रहे थे दैव योग से उन की दो तीन नई रोशनी में पले हुए नव युवकों से मुठभेड़ हो गई । इनके विचारों को सुन कर मिस्टर स्टीफन बड़े प्रसन्न हुए। नवयुवकों ने इन का पूर्व वृतान्त सुन कर अत्यन्त खेद प्रगट किया और हिन्दू धर्म की महानता को बतलाया । मिस्टर स्टीफन कथन मात्र से सन्तुष्ट न हुए उन्होंने क्रियात्मक रूप में उस धर्म की विशेषता को उनके सन्मुख प्रकट किया जिस में वह हिन्दू धर्म परित्याग करके दीक्षित हो चुके थे।

नव युवकों ने बड़े आदर के साथ उनको अपने स्थान में बिठाया और साथ ही साथ फिर हिन्दू धर्म में वापिस आने की प्रेरणा की

मिस्टर स्टीफन जिसने हिन्दू धर्म की अनेक पुस्तकों का अवलोकन किया था यद्यपि भली प्रकार समझते थे कि हिन्दू धर्म महान है परन्तु वह उन लोगों के व्यवहार से दुखी हो चुके थे, जो धर्म के नाम पर मन माने अत्याचार हिन्दू भाइयों पर कर रहे हैं । उन्होंने उन नवयुवकों को उस बालिका की दुखित कहानी भी कह सुनाई, जो उन के साथ उनकी पुत्री बनी हुई थी ।

नवयुवक सुन कर दंग रह गए । उन्होंने स्टीफन को विश्वास दिलाया कि वह उन दोनों को हिन्दू धर्म में वापिस लेकर दम लेंगे। मिस्टन स्टीफन सायंकाल के ६ बजे लौट कर अपने स्थान पर आगए।

परन्तु

(५)

"सुशीला तुम अपनी कोख से उत्पन्न हुई लड़की को अपने पास रखो। देखो उस को हिन्दू धर्म में वापिस लेने से हमारा एक और भाई हिन्दू हो सकता है" । इतना कह कर वह नवयुवक उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा ।

सुशीला ने कहा, "हाय इस पापमय जीवन से अब छुटकारा मिलने वाला है। उसको क्यों पाप रूपी कीचड़ में फँसाते हो" ?

इतना कह कर वह देवी आंसू टपकाने लगी ।

नवयुवक ने कुछ सन्तावना देते हुए कहा "माता इतनी निराश क्यों होती हो। परमात्मा की कृपा से उस बालिका की रक्षा करो"।

सुशीला ने सँभल कर कहा "इस झूठे हिन्दू धर्म के ढकोसले को कायम करने वाले लोगों से इस का छुटकारा हो चुका है अब क्यों बन्धन में उसे जकड़ते हो।"

नव युवक ने उसे समझाया "माता उस लड़की को वापिस लो हम तुम्हारे रक्षक हैं।"

सुशीला ने फिर लज्जा को परित्याग करके कहा "इस दुष्ट दुराचारी शिवलाल से रक्षा करो उसे बन्धन नें न फँसाओ यह कदापि उसे ग्रहण न करने देगा" । नवयुवक अनेक प्रकार से उसको समझाता बुझाता रहा। अन्त में वह कुछ निश्चय कर के घर चला गया। इस का रहस्य पाठकों को

ईश्वर ज्ञात हो जायगा कि उसने क्या निश्चय किया था।

(६)

मिस्टर स्टीफन उस बालिका के हठ को बार २ सान्त्वना देकर रोकता परन्तु वह बड़ी समझदार हो चुकी थी। इस कारण विवश हो मिस्टर स्टीफन ने उस का पूर्व परिचय सुना दिया। वह बालिका इस समय युवावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। यौवन के तमाम चिन्ह उसके मुख पर झलकते थे। स्टीफन उसको बचपन से ही बिटिया कह कर पुकारा करते थे।

बिटिया अपनी माता के सम्बन्ध में सुन कर आंसू टपकाने लगी। स्टीफन ने उस के पिता के सम्बन्ध में एक अक्षर भी न कहा।

रविवार के तीन बजे होंगे परमात्मा की ओर से कुछ संयोग का समय उपस्थित हो गया। स्टीफन ने उसी ग्राम में जाकर प्रचार करना प्रारम्भ किया ही था कि आँधी मेंह जोर से आगया, ऐसी दशा में स्टीफन तथा बिटिया दोनों पास के एक टूटे हुए झोंपडे में जिस में एक चर्मकार अपने परिवार के पालनार्थ बैठा जूते बना रहा था। झपट गए, वहां जाकर वर्षा से अपने को बचाया।

उसी झोंपड़ी के पास एक अच्छा पक्का मकान था जिसका पक्का द्वार सामने से दिखाई पड़ रहा था। दैवयोग से स्टीफन ने एक स्त्री को द्वार पर खड़ी देख कर बिटिया को संकेत कर के कहा—"देखो! सामने तुम्हारी जन्म दात्री खड़ी है।"

स्टीफन पूरे तौर से कह भी न पाया था कि समझदार बिटिया झपटती हुई उस स्त्री के पास पहुंची और बिना संकोच उस के चरणों को पकड़ लिया। उस स्त्री ने भी अपनी कोख से उत्पन्न की हुई पुत्री को कुछ पल के लिए पुत्रीवत् प्रेम किया परन्तु ज्योंही हिन्दू समुदाय का भय उसे प्रतीत हुआ त्योंही उसने बिटिया को अलग हट जाने को कहा।

बिटिया रोने लगी आँधी पानी का ज़ोर था। शिवलाल वहाँ पर नहीं था। उस नवयुवकने जिसने सुशीला को समझाया था आँधी पानी के समय ही फिर समझाने की ठानी।

सुशीला के मन पर भारी प्रभाव पड़ा, उसने लोक लाज को परित्याग कर दिया, शिवलाल का झूठा भय भी उसने दूरभगा दिया और सप्रेम बिटिया को गले लगा लिया। उस के मुख को अवलोकन किया। और एक गहरी सांस भर कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। स्त्री जाति की बुद्धि का पता लगाना दुष्कर कार्य होता है। प्राणों को तुच्छ समझने वाली स्त्री साध्वी महिलाएं बड़ी से बड़ी बिपत्ति को सहन कर लेती हैं परन्तु अपनाम सहन करना उन को कठिन होता है। अपमान का ध्यान आते ही मूर्च्छित होकर सुशीला सदैव को ही परमात्मा की गोद में सो गई।

समस्त ग्राम में हाहाकार मच गया कोई जादू समझने लगा कोई कुछ और शंका करने लगा। बिटिया जो बहुत समय से माता के मिलने को, उस की प्रेम मयी गोद में कुछ शेष लड़कपन बिताने को

उत्सुक हो रही थी। निराशा के गम्भीर सागर में निमग्न हो गई।

(७)

शिवलाल को दो तीन दिन पश्चात् सुशीला की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ वह भी अनेक प्रकार की चिन्ताओं में पड़गया। लज्जा के कारण वह जिन दुष्कर्मों को प्रकट न होने देता था। वे सभी सब पर प्रकट हो गए। उस की सारी मान प्रतिष्ठा भंग हो गई नवयुवकों ने मिस्टर स्टीफन तथा बिटिया को पवित्र वैदिक धर्म में फिर से प्रवेश कराया।

मिस्टर स्टीफन के कोमल हृदय पर सुशीला की अकस्मात् मृत्यु से गहरी चोट पहुंची। भारत की महिलाओं ने अनेक कठिनाइयों के पड़ने पर अपमान को सहन न करके अपने प्राण त्याग दिए हैं; परन्तु इस घटना ने स्टीफन के अन्दर नव जीवन का संचारकर दिया।

वही स्टीफन स्वामी मुक्तानन्द बन कर आज ऋषिकेश के पर्वतों में कार्य्य कर रहा है। वह बिटिया सुशीला की कोख से उत्पन्न हुई आज महादेवी के नाम से अपना पवित्र जीवन वैदिक धर्म की सेवा करती हुई व्यतीत कर रही है। दोनों नवयुवक जिन्हों ने इस पवित्र कार्य को पूर्ण कराया था दक्षिण अफ्रीका में वैदिक धर्म-प्रचार कर रहे हैं। पाठको! घर जाकर आप भी क्रियात्मक रूप से अछूतों की उन्नति की ग्रन्थि को सुलझाइये। इस से अनोखा परिवर्तन होगा।

कौन?

(श्री रामजीवन शर्मा "जीवन")

छू के भी अछूतों को अछूती अस्थियाँ जो रहें,
विश्व में कहेगा हा हमें तो "विप्रवर!" कौन?
चार भुजा वाले को चमार पूजने जो लगें,
चर्च की विदेशियों के लेगा तो ख़बर कौन?
जाने दिए जायँ मंदिरों में जो अछूत लोग,
पूजेगा कबारी कूंजरों की तो कबर कौन?
हिन्दू जो गिनाने लगें आज ये अछूत मित्र!
मुल्ला पादरी को तो बँधावेगा सबर कौन?

व्यापारे बसते लक्ष्मीः ।

(ले०—भोलानाथ कपूर, प्रयाग)

आज बी० ए० का गज़ट निकलने वाला है। मोहन बड़ी उत्सुकता में है। कभी बाहर जाता है तो कभी भीतर। इतने में मोहन बाहर देखता है कि उनका एक मित्र गज़ट हाथ में लिये बैठा है। मोहन ने देखा कि बी० ए० का परीक्षा-फल उस में प्रकाशित है। मोहन अव्वल दर्जे में और उनका मित्र कृष्ण दूसरे दर्जे में उत्तीर्ण हुए। मोहन ने पहिले पिता जी के पैर छुए पश्चात् घर जाकर माता जी के चरण छूकर यह खुसंवाद उन्हें सुनाया सब लोग मोहन की प्रशंसा करने लगे किन्तु मोहन फूल कर कुप्पा नहीं बन गए पर उनके सिर पर यह चोट लगी कि अब क्या करना चाहिये। नौकरी करना नहीं तो फिर जीविका का उपाय ढूँढ़ना चाहिये। बहुत सोच विचार के पश्चात् अपने मित्रों की सम्मति से कार्य्य स्थिर किया। उनके एक मित्र ने यह सम्मति दी कि "उत्तम खेती मध्यम बान" इसको मोहन ने कण्ठ कर लिया और कहा कि इसी के अनुसार खेती या व्यापार करूँगा नौकरी का नाम भूल कर भी न लूँगा।

मोहन के पिता A. G. Office में क्लर्क थे उन्होंने मोहन से नौकरी दिला देने के लिये कहा।

मोहन—पिताजी मैं नौकरी न करूँगा।

पिता— तो फिर क्या करोगे ?

मोहन— अपने मित्र की सम्मति के अनुसार खेती या व्यापार करूँगा।

पिता— मोहन बावले मत बनो, बी. ए. होके हल जोतोगे या खेत काटोगे।

मोहन— पिता जी बी. ए. हो के हल जोतना और खेत काटना अपने को काट न खावेगा।

मोहन के पिता के पास इतना धन नहीं कि चार हज़ार रुपये लगा कर कोई व्यापार किया जाय। आप की आय का अधिकांश भाग मोहन के पढ़ाने में व्यय होगया था। अब मोहन के पिता मोहन से रुष्ट रहने लगे। एक दिन उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यदि मैं जानता कि तुम पढ़ कर ऐसे निकम्मे बनोगे तो बी. ए. क्या ए, बी, सी, डी भी न पढ़ाता। इधर मोहन पिता के वाक्यों से चिंतित थे उधर उनकी माँ मोहन से कहा करती हैं कि अब ब्याह करलो।

एक दिन रात्रि में मोहन अपने घर से एक लोटा, एक गिलास और दो एक साधारण कपड़े लेकर चल पड़े। कानपुर पहुँच कर मोहन ने एक सेठ के हिस्से के साथ दुकान खोली। ठीक छः मास पश्चात् हिसाब हुआ २५) रुपये मासिक खर्च खाते में डाल कर बिना एक कौड़ी लगाए मोहन को ६ मास में तीन, या चार सौ के लग भग लाभ के मिले।

अब क्या था कुछ खाते कुछ दुकान में लगाते उन्हें दो तीन हज़ार के लग भग आमदनी होने लगी। अब मोहन ने अपनी दुकान अलग करनी चाही। एक दिन मोहन अपने घर आए।

माता— मोहन, मेरा तो तू कहना नहीं मानता इस से मैं कुछ न कहूंगी ।

मोहन— अब समय है कि मैं आप की आज्ञा का पालन करूँ।।

माता— अच्छा शीघ्र ही ब्याह कर के बहू लादे ।

कुछ दिन घर रहने के बाद मोहन फिर व्यापार करने के लिये कानपुर चले गए।

एक दिन सेठ के मुनीम ने अपनी लड़की की शादी की चर्चा चलाई ।

बात होते मालूम हुआ कि मोहन अविवाहित हैं ।

सेठ—मोहन तुमने अब तक ब्याह क्यों न किया ?

मुनीम— आप अंग्रेजी पढ़े हैं इस से अब तक कुमार हैं ।

सेठ— नहीं, कोई अंग्रेजी पढ़ने से क्या ब्याह नहीं करता अरे कुल में दोष होगा ।

मोहन उस समय तो कुछ भी न बोले पीछे उन्होंने सब हाल मुनीम को बता दिया । दूसरे दिन मुनीम ने मोहन के पिता के पास जाकर मोहन की शादी ठीक कर ली ब्याह हो जाने के पश्चात् मोहन ने सेठ से अलग हो कर अपनी अलग दुकान खोल ली ।

मोहन की दुकान ने छः वर्ष में इतनी उन्नति की कि दूकान की पूंजी डेढ़ लाख रुपये के लगभग हो गई । ५०) रु० मासिक एक नौकर रहने लगा ।

अब एक दिन मोहन का रेल में अपने पुराने मित्र कृष्ण का मिलाप हो गया । मोहन ने दशा पूछी तो ज्ञात हुआ कि ६०) रु० मासिक मिलते हैं और हेडमास्टर छाती पर सवार रहते हैं ।

मोहन— कितना रुपया इतने दिनों में इकट्ठा कर लिया ।

कृष्ण— दो तीन सौ से अधिक मेरे पास नहीं हैं । आपके पास ?

मोहन— आपने बहुत थोड़ा बचाया आप की कृपा से मेरी कोठी में इस समय दो लाख के करीब है और यदि भगवान की कृपा हुई तो कुछ दिन के पश्चात् दूनी हो जायगी ।

कृष्ण— क्यों मुझे चिढ़ाने की कोशिश करते हो ?

मोहन— अच्छा चल कर देख लो । मोहन कृष्ण को कोठी पर ले गये, कृष्ण के होश हवाश जाते रहे ।

मोहन— यदि आप चाहें तो मेरे यहाँ १००) रु० मासिक पर आ जायँ ।

कृष्ण— अजी कौन झगड़े में पड़े ।

मोहन— झगड़ा नहीं "व्यापारे वसते लक्ष्मीः" यदि लक्ष्मी का दर्शन करना चाहते हो यदि स्वतन्त्रता के साथ जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो कुछ महीने की छुट्टी लेकर काम कर देखो, मन भरे तो करना नहीं तो नहीं ।

कृष्ण ने मोहन की बात मान ली । १ वर्ष में खा पी कर ७०० रु० बचे अब तो मोहन

की तरह कृष्ण को भी व्यापार का चसका पड़ गया। धीरे धीरे कृष्ण ने भी एक फर्म खोली जिसकी उन्नति हुई। किन्तु मोहन की तरह इन में अध्यवसाय न था इसी से उस कोठी के सदृश इन्होंने धन न कमा पाया।

मोहन के दो वर्ष का बालक है। मोहन की माता उसे बड़े आनन्द से गोद में लिये दिनभर खिलाती रहती है। मोहन जब बाहर जाते हैं तब पिता की विशेष देख रेख करनी पड़ती है। मोहन के माता पिता कहते हैं कि नौकरी व्यापार के पासंग भर है। तहसीलदारी के वेतन के नौकर मेरे यहाँ हैं। अच्छा हुआ कि मेरा मोहन नौकरी पर न गया।

* अनुरोध *

(श्री पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री साहित्याचार्य "श्रीहरि")

कहते हैं, प्रेमासव पीकर, सुध-बुध सब खो जाती है।
प्रेमी-प्रेमपात्र में केवल, एकवृत्ति हो जाती है॥
मैं पागल हूँ, मतवाला हूँ, जग कहता तो कहने दे।
प्रियतम ! अपनी प्रेमकुटी में, मुझको बैठा रहने दे॥

* * *

ये आँसू मोती हैं मेरे, माला मुझे बनाने दे।
हैं टूटी लड़ियाँ पर इन से, अपना कण्ठ सजाने दे॥
हृदयदेव ! उपहार-हार यह, मेरा बस, अपना लेना।
मेरे तेरे भेदभाव का—अन्त अन्त में कर देना॥ २॥

प्राचीन तथा असली श्रीमद्भगवद् गीता

(ले० श्री वीरहरि विद्यार्थी)

जितने प्राचीन धर्म ग्रन्थ देखे जाते हैं, वे प्रायः स्वार्थी, लोलुप तथा यशोच्छुक लोगों के द्वारा इस प्रकार बिगाड़े गये हैं कि उन्हें पढ़कर कोई भी विद्वान् उनकी सत्यता पर ही नहीं, बल्कि उनके अस्तित्व तक पर भी विश्वास नहीं करता । महाभारत रामायण को ही लीजिए, देखिए कितना मसाला धन-लोभी पोपों ने अपनी गाँठ से मिला दिया है। बात भी ठीक है, यदि वे ऐसा न करते तो उनकी पेट-पूजा कहाँ से होती । भारतवर्ष में प्राचीन ग्रन्थों को तो यह रोग ही है, बिना प्रक्षिप्त-वर्णन के ग्रन्थ पाये ही नहीं जाते ऐसे उदारचेता, उद्भट विद्वानों ने संस्कृत ग्रन्थों में ही कृपा नहीं की, अपितु हिन्दी ग्रन्थों में भी अपना हस्त-लाघव दिखला दिया है । गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरित मानस को देखिए। उस में कितना प्रक्षिप्त वर्णन है ? यह विद्वानों से छिपा नहीं। सप्तमकाण्ड तो, जिस में *भगवान् रामचन्द्र के राज्य-शासन-काल से मरण पर्यन्त वृत्तान्त है, बिलकुल ही प्रक्षिप्त है।

सम्प्रति श्रीमद्भगवद्गीता में ७०० श्लोक तथा अठारह अध्याय पाये जाते हैं । इतने विस्तृत वर्णन पर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता, कि श्रीकृष्ण ने घण्टे दो घण्टे में धनुर्धर-अर्जुन को कर्मयोगमयी गीता के रहस्य को समझाया होगा। यह हो सकता है कि पहिले गीता का आकार छोटा हो जो इतने समय में अच्छीतरह वर्णन किया जा सकता था। महात्मा लोकमान्य तिलक आदि विद्वानों की भी यही सम्मति है।

सुमात्रा जावा के समीप एक बालीद्वीप है। वहाँ हिन्दुओं की आबादी है तथा हिन्दू राजा ही राज्य करते हैं । डाकृर नरहर गोपाल सर देसाई को जब ज्ञात हुआ कि बालीद्वीप में हिन्दू रहते हैं, उनके आचार विचार सब हिन्दुओं के सदृश ही हैं, तब वे उक्त द्वीप को खोजते हुए रवाना हुए । वहाँ पहुंचने पर देशाई जी एक राजा के आतिथ्य-सत्कार में रहे । राजा ने उन्हें भारतवर्ष (स्वदेश) से आया जान अत्यन्त आनन्द मनाया था । बालीद्वीप में जो धार्मिक-ग्रन्थ हैं, वे सभी हैं तो संस्कृत में ही, परन्तु लिपि "कवि" भाषा में है, जो वहाँ की एक प्रधान-भाषा है । कागज़ों के स्थान पर ताड़-पत्रों का काम लिया गया है. देशाई जी ने उक्तद्वीप के एक उद्भट विद्वान् पण्डित पडंडा-वयान-पिडड Padanda Wayan Pidad के द्वारा महाभारत के भगवद्गीता का स्थल पढ़वाया । वहाँ उनको ७०० श्लोकों के स्थान में केवल ७० श्लोक ही मिले। देशाई जी ने उन्हें नोट कर लिया।

---

* ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस्यः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्च चैव सप्तते भग लक्षणम् ॥

और यहाँ सन् १९१४ ई० के जुलाई मास के माडर्न-रिव्यू Modern Review कलकत्ता में The Bkagavad Gita from the Island of Bali शीर्षक एक लेख निकलवाया, जिसके आधार से स्वामी मंगलानन्द पुरी सन्यासी ने हिन्दी में 'प्राचीन भगवद् गीता' के नाम से ७० श्लोकों का एक संग्रह प्रकाशित करवाया। उस में प्रति श्लोक पर महत्वपूर्ण टीका-टिप्पणी भी की है। इसके अतिरिक्त एक विचारणीय भूमिका भी जोड़ दी है।

इस प्राप्त हुई गीता में अध्याय नहीं हैं। हाँ, विषय-क्रम अवश्य है। सनातनधर्मी तथा अवतारवादी इसे देखें और विचार करें। जिन श्लोकों का आश्रय लेकर वे अवतारवाद सिद्ध करते हैं, उन का इसमें नामोनिशान भी नहीं है।

रामायण में सेनापति सुग्रीव सीतान्वेषणार्थ अपने सैनिकों से कहता है—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूपकद्वीपं सुवर्णकर मंडितम्॥"

रामायण किष्किंधा काण्ड

इसमें यवद्वीप, जो उस समय सात राज्यों से अलंकृत था तथा सुवर्ण रूपक द्वीप का वर्णन है। 'यव' शब्द से 'जव' और कुछ काल में उच्चारण बदलते २ जावा पड़ गया। संस्कृत 'य' को अब भी अधिकाँश पंडित 'ज' कहते हैं। प्रमाण देते हैं— "यकारे जकारे च भेदो नास्ति।" इसी प्रकार 'सुवर्ण रूपक' द्वीप का नाम बिगड़ते बिगड़ते सुमात्रा होगया। ये दोनों द्वीप हिन्दमहासागर में स्थित हैं। पूर्वकाल में यहाँ आर्य्य (हिन्दू) रहते थे और वे वैदिक धर्मावलम्बी थे। अरब के मुसलमानों ने इन पर आक्रमण किया और बरज़ोरी से मुसलमान बना लिया। उनके धर्म-ग्रन्थों को जलाकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। एक दो धर्म-प्रेमी पंडितों ने बालीद्वीप भागकर अपनी जान बचायी और बचे-खुचे प्राचीन धर्म-ग्रन्थ सुरक्षित रक्खे। ज्ञात होता है प्राचीनकाल में इन द्वीपों के साथ भारतवर्ष का पूरा सम्बन्ध था। यहाँ से वहाँ, लोग जाया-आया करते थे। समुद्र-यात्रा का वृतान्त तो मिलता ही है। इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि वे लोग नाविक-विद्या नहीं जानते थे।

ब्रह्म-ज्ञान, रसायनं स्वरधरान्वेदाँस्तथा ज्योतिषम्
ह्येवं व्याकरणं धनुर्जलतरङ्गं वैद्यकं स कृषिः।
कोकं वाहन वाजिनृत्यनटनं चेत्येवमेता: कला
विद्यानाम चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम्॥

इस श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहाँ अन्य अन्य विद्याओं में निपुण थे, वहाँ जल-विद्या (नाविक-विद्या) में भी पारंगत थे। पौराणिक समुद्र-मथन-विवरण तथा १४ रत्नों की प्राप्ति, लम्बी सामुद्रिक-यात्रा का तथा उपहार में पायी गयी अनमोल वस्तुओं का सूचक है।

अब कौन आश्चर्य की बात है। यदि महाभारत-रामायण आदि ग्रन्थ यहाँ से उक्त द्वीपों में पण्डितों द्वारा पहुंचाये गये हों अथवा पण्डित लोग ही अपने साथ लेगये हों। कुछ हो, प्राचीन आकार-प्रकार इन ग्रन्थों का उक्त द्वीपों में तो वैसा ही रहा;

परन्तु यहाँ (भारतवर्ष) हज़ारों-लाखों जातीय, धार्मिक, व्यक्तिगत तथा जातिगत आघातों से परिवर्त्तित होगया। पोपों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उन्हें असली आकार से कई गुना बड़ा कर दिया। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि असली गीता यही ७० श्लोकों वाली ही है।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूत विशेष संघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
मृषींश्च सर्वानुरगाँश्च दिव्यान्॥ श्रीमद्० गीता ११ । १५

अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥
भगवद्गीता. ११ । १६

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्
दीप्तानलार्कद्युतिम प्रमेयम्॥
भगवद्गीता. ११ । १७

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्व यक्षासुर सिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥
भगवद्गीता. ११ । २२

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपाल संघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥
भगवद्गीता. ११ । २६

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्रा करालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥
भगवद्गीता. ११ । १८

आदि बहुत से श्लोक इस प्राप्त हुई प्राचीन गीता में नहीं हैं ; जो बिलकुल ही असंगत जान पड़ते हैं।

इतिहास-प्रेमियों तथा विद्वानोंको चाहिए कि वे दूसरे देशों और द्वीपों की भूमि में स्थित (अप्रगट) भारत के समुज्ज्वल-ग्रन्थ-रत्नों की खोज कर निकालें। बालिद्वीप में ही अभी और भी ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनसे आधुनिक विवर्द्धित धर्म-ग्रंथों का असली स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। इस द्वीप में विद्वान् जावें और वहाँ की 'कवि' भाषा कुछ दिनों में सीख कर खोज करें। जावा के Batavia Museum में ही संस्कृत की प्राचीन बहुत सी पुस्तकें रक्खी हैं। विद्वानों को चाहिए, वहाँ जावें और संस्कृत-साहित्य के अमूल्य रत्नों को प्रकाशित करें। भारतवर्षमें ही इस प्रकार से अप्रगट (अप्रकाशित) संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थ थोड़े नहीं; किन्तु कोई खोज करने वाले भी तो हों!

परमात्मा वह समय शीघ्र लावे; जब संस्कृत का साहित्य एकबार पुनः अपनी उज्ज्वल कांति से संसार को देदीप्यमान करदे।

अभी बंगला के 'सुवज-पत्र' नामक एक मासिक पत्र में बाली-द्वीप के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध लेखक का लेख निकला है। उसमें उक्त द्वीप के सम्बन्ध में जो बातें लिखी हैं, उसमें वहाँ की हिन्दू-सभ्यता, आचार-विचार आदि का पता लगता है।

—लेखक

ओ कंगले तू क्या पीवेगा ।

[२]

मांग मांग दो दमड़ी लाया,
इतने पर फिरता इतराया ।
'तेरी' बोतल के संग गई खुमारी,
थैली के सङ्ग दौर ॥

[३]

ऐसी बोतल का क्या लेना,
सवा लाख का एक रहैना ।
बाज चिड़ी से ठोकर खावे,
रख अपना बिल्लौर ॥

[५]

एक पी गया बंसी वाला,
छोड़ गया गीता का प्याला ।
उलग पलट जिसने मुंह लाया,
हुआ और का और ॥

[७]

दो रण हँसकर प्राण गँवाए,
दो दिवार के बीच चिनाए ।
बोले परम पुरुष के दासा,
सङ्गत इन के ठौर ॥

[९]

इस बूटी से जग थर्राया
भोलों ने कुछ भेद न पाया ।
बूंद पड़ी जिस सूखे बन में,
वहीं बसन्ती बौर ॥

[४]

ना भट्टी न खुला मैखाना,
घट ही में भरते पैमाना ।
यों पीते हैं मद के राजा,
बैठ नदी के डौर ॥

[६]

कलगी वाले ने मुंह लाई,
चिड़ी बाज़ सङ्ग लड़ने आई ।
सवा लाख को एक यों खावे,
ज्यों हलवे का कौर,

[८]

नभ मण्डल के मेघ उड़ाए,
पर्व्वत ठोकर मार गिराए ।
ऐसी पी वेदों वाले ने,
अजहूँ जग हिय हौर ॥

[१०]

जोगी ने घट फोड़ उड़ाई,
एक ठीकरी इसने पाई ।
उसे चाट कर बना फिरे है,
पगले का सिर मौर ॥
ओ कंगले तू क्या पीवेगा ॥

देव समाज की शिक्षा

(ले०— श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

शेषांश

१९ वाँ यज्ञ देवगुरु यज्ञ है, इसमें देवगुरु का पूजन और उसके सम्बन्ध में श्रद्धादि का प्रचार तथा जीवन को उनके अनुकूल बनाने का यत्न किया जाता है। इस यज्ञ का मैं अधिक पाठ देवशास्त्र से लिखना चाहता हूँ क्यों कि यह यज्ञ देव समाज में महायज्ञ माना जाता है।

“महायज्ञ साधन कर्ता के लिये आवश्यक है, कि वह देवजीवनप्राप्त श्री देव गुरु भगवान् को अपने आत्मा के रूप और उसके जीवन के विषय में सब प्रकार के अज्ञान विषयक अंधकार से मोक्ष और सत्य ज्ञानदर्शक पूर्णदेव ज्योतिदाता और अन्धकारहर्ता जान कर उन्हें इस विषय में अपना परम शिक्षक, परम गुरु, परम नेता वा जीवन पथ दर्शक और अपने आप को उनका शिक्षार्थी शिष्य समझो” पृ० ५८७

“उन्हें अपना सत्य और पूर्ण उपास्य वा परम पूजनीय परम आदर्श और अपने आप को उनका उपासक और अनुगामी जानो।” पृष्ठ ५८८

“जहाँ तक संभव हो जीवन दायक उच्च भावों में विकसित करने और जीवन नाशक नीच गतियों से मोक्ष देने के लिए देवजीवन प्राप्त श्री गुरुदेव भगवान के जीवनप्रद देव प्रभावों को ग्रहण और जो २ भाव जहाँ तक उनके ग्रहण करने में प्रतिबंधक वा उसके आत्मिक जीवन के लिये हानिकारक हों उनके वहाँ तक त्याग करने की आवश्यकता है।” पृष्ठ ५९१, २

“आवश्यक है कि वह श्रीदेवगुरु भगवान् के देव प्रभावों के लाभ करने की कुछ भी योग्यता रखने पर अपने किसी नीच भाव का साथी बनकर और अपने आत्मा और उसके जीवन के सम्बन्ध में उनकी उच्च वा शुभपथदर्शक देव ज्योति और नीचगति विनाशक और उच्चगतिविकाशक किसी प्रेरणा शक्ति का निरादर करके अपने आत्मा की हानि न करे किन्तु उनका पूर्ण आदर करके और उनका पूर्ण साथ देकर प्रत्येक आवश्यक त्याग के द्वारा उन्हें अपने प्रत्येक नीचगतिदायक भाव पर सदा विजयी करने की चेष्टा करे।” पृष्ठ ५९२, ३

“श्री देवगुरु भगवान के देव प्रभावों के लाभ से बढ़कर और लाभ वा कोई सौभाग्य नहीं और उनके देव प्रभावों से बंचित होने से बढ़कर और कोई हानि वा दुर्भाग्य नहीं।” पृष्ठ ५९२

“श्री गुरुदेव भगवान् के अद्वितीय आविर्भाव, अद्वितीय देवरूप और उनके अद्वितीय जीवन व्रत के सम्बन्ध में जो २ लेख उन्हीं के लिखे हुए हों और जिन्हें वह समझ वा उपलब्ध कर सकता हो उन्हें विचार पूर्वक पाठ करनेका अभ्यास करना।” पृष्ठ १०, ११

"श्री देवगुरु भगवान् ही उसके परम पूजनीय वा परम उपास्य हैं और एक मात्र उन्हीं की सत्य पूजा वा उपासना करने से वह जहाँ तक संभव हो अपने आत्मा को सत्य मोक्ष और उसके अन्य विकाश के लिए उनके मोक्षदायक और विकाशकारी देव प्रभावों को लाभ कर सकता है ।" पृ० ६०५

"श्री देवगुरु भगवान की छवि के आगे खड़े होकर वा बैठ कर उनके देवरूप पर भलीभाँति चिन्तन करके और उन्हें अपने और अपने सब प्रकार के सम्बन्धियों से असंख्य गुना बड़ा उपलब्ध करके उन्हें बारम्बार प्रणाम करना । पृष्ठ ६०६

'श्री देवगुरु भगवान् की छवि उनकी रचित पुस्तकों और उन से सम्बन्ध रखने वाली जो जो वस्तुएँ उस के पास हों उन्हें बहुत सन्मान पूर्वक अच्छी अवस्था में रखना और जहाँ कहीं उनका किसी और के द्वारा निरादर व अपमान होता हो वहाँ उन्हें उस से रक्षा करने के लिए उचित रूप से चेष्टा करना ।' पृष्ठ ६०८,६ ।

"श्री देव गुरु भगवान की अपेक्षा अपने आपको किसी विषय में झूठ मूठ बड़ा जान कर वा उन से ज्योति और बल पाकर उन से अपने किसी शुभ काम में जो कुछ सफलता लाभ की हो उसे झूठ मूठ अपने साथ प्रयोग करके अपने महाहानिकारक घमंड को न बढ़ाना ।" पृष्ठ ६०६, १०

इत्यादि पाठ देव शास्त्र में विस्तार से लिखे हुए हैं इस प्रकरण में श्री देव गुरु भगवान जी को अद्वितीय माना है । प्रष्टव्य यह है कि यह किस बात में अद्वितीय हैं इनका शरीर इनका व्यवहार साधारण लोगों की भांति ही होता है रोगादि भी कष्ट देते हैं संतान का रोग, पुत्र कलत्र का मोह भी साधारण मनुष्यों वत् है इन में तो कोई अद्वितीयता प्रतीत नहीं होती है । यदि कोई अद्वितीयता दुर्जनता दुर्जनतोषन्यायेन माननी हो तो अपने मुंह से अपनी प्रशंसा, धन संग्रह करते हुए भी अद्वितीय त्यागी, साधारण मनुष्यों का धन छल से लूटना, विचारार्थ सम्मुख न आना इत्यदि मानी जासकती हैं ।

और श्री देव गुरु भगवान जी से संबध रखने वाली वस्तुएं भी विशेष आदरणीय हैं यह अज्ञानियों को बहकाकर उन्हें अज्ञानान्धार में धकेलना है ।

श्री देवगुरु भगवान जी अपने आप को उपास्य पूजनीय लिखते हैं और आदेश है कि इन से देव भावों का ग्रहण करें, जो दैवी गुणगीता में लिखे हैं वह तो इन में प्रतीत नहीं होते हैं संभव है अद्वितीयदेव के गुण भी कोई लोकोत्तर ही हों ।

मुझे इस के मानने में कोई संकोच नहीं है । श्री देव गुरु जी मनुष्य पूजा के परम पक्षपाती हैं वह भी अपनी व्यक्ति के । उनके भक्त भी विचित्र हैं जो उन्हें अलौकिक ज्ञानियों का आश्रय मान कर अपने मनुष्य जन्म को निष्फल सिद्ध कर रहे हैं ।

जिस समय श्री देव गुरु भगवान की किसी देव लीला को जो अन्य किसी मनुष्य में न हो, प्रगट न करें उस समय तक देव गुरु जी घर के ही तीस मारखां है विचार

शून्य गाजर पंथियों के अतिरिक्त अन्य इसे कोई मानने को उद्यत न होगा।

अन्य मतावलंबियों के विषय में जो कुछ देव समाज का विचार है वह आगे लिखता हूँ।

(६)

१६ यज्ञों के पश्चात् देव शास्त्र में परिशिष्ट लिखा है। उस भाग में देवसमाज की बातों को संक्षेप से बताने का यत्न किया है उस से पाठकों को कुछ भेंट किया जाता है आशा है पाठकों को रुचि कर होगा।

उस में ईश्वरवादियों पर विशेष कृपा की है जैसे लिखा है:—

“प्रश्न—पापों के परिशोध के सम्बन्ध में ऐसी सत्य शिक्षा तो आज तक पृथिवी में आपके भिन्न किसी ईश्वर वा मनुष्य ने नहीं दी।

उत्तर? ईश्वर तो एक कल्पित अस्तित्व है और कल्पित अस्तित्व के लिए कोई शिक्षा देना असंभव है, परन्तु उसके विश्वासियों ने उस के वा अपने वा किसी अन्य के नाम से इस विषय में भी बहुत झूठी शिक्षाएं दी हैं” पृष्ठ ६४७--६४८

“इस परम सत्य से अन्धे रह कर ईश्वर वादी और अन्य शिक्षकों ने पाप और उस से मुक्ति के विषय में जिस जिस प्रकार की शिक्षाएं दीं हैं उन २ पर विश्वास कर के और पाप और उस के फलों और पाप के परिशोध के विषय में नाना बोधों की देव धर्मप्रवर्तक जो विज्ञानमूलक सत्य शिक्षा देते हैं उस से अज्ञानी वा उदासीन रह कर लाखों और करोड़ों लोग अपने अपने आत्माओं की जैसी कुछ हानि कर रहे हैं उसका भी अनुमान हो सकता है।” पृष्ठ ६५३, ५४

इस लेख में लेखक महोदय ईश्वर को सत्य न मान कर कल्पना मात्र मानते हैं किसी पुस्तक को ईश्वर की ओर से नहीं मानते हैं और ईश्वर के स्थान में स्वयं धर्म के प्रवर्तक बन कर जो उन की कपोल कल्पित बातों को न माने उसे अंधा अज्ञानी आदि शब्दों से प्रकट करते हैं प्रथम इसी पर विचार करना चाहिये।

ईश्वर एक सत्ता है जो इस संसार को नियम में रखता है और उस सत्ता के अभाव से इस संसार में कुछ नहीं हो सकता है वह सत्ता ज्ञान स्वरूप है, इसी कारण जीवों को उन के कर्मानुसार फल भी नहीं देता है। यह सामान्य रूप से ईश्वरविश्वासियों का विश्वास है जिसे देवशास्त्र खण्डन करता है। देव समाज के प्रवर्तक महोदय अपनी शिक्षा को विज्ञान मूलक बतलाते हैं और अपने आप को अद्वितीय मानते हैं, प्रथम प्रष्टव्य तो यह है श्रीदेव गुरु भगवान् जी किस बात में अद्वितीय हैं क्योंकि उन का शरीर अन्य मनुष्यों की भाँति है और उनका जन्म माता पिता से हुआ, किसी असाधारण रीति से उन का जन्म नहीं हुआ है और अब भी अन्य मनुष्यों की भाँति उनका व्यवहार है विद्या में वह अद्वितीय नहीं क्योंकि उन से अधिक विद्वान् इस समय भी मिलते हैं और विवाह करने में वह अद्वितीय नहीं हैं आजीवन ब्रह्मचारी भी मिलते हैं और अनेक विवाह में भी उनको पराजित करने वाले विद्यमान हैं और यदि संतानोत्पत्ति में लें

तो भी उनसे संख्या में अधिक संतानोत्पन्न करने वाले हैं। यदि कहें उनकी संतान रोगी और नीरोग उभय प्रकार की है तो इसी भाँति की संतान और अनेक मनुष्यों की है। इनसे अच्छी संतान और इनसे बुरी संतान वाले भी अनेक मिलते हैं और धन संग्रह करने में भी और धनी मिल जावेंगे। यदि यह कहें इन्होंने जो धन कमाया है वह परिश्रम से नहीं कमाया केवल भक्त जनों को मोहित करके उनके धन के स्वामी बन गए हैं तो इस में भी नीचा दिखाने वाले पादरी, मुल्लां, पुजारी अनेक ठगी करने वाले मिलते हैं जो लोगों का धन लूटते रहते हैं। इस लिये इन में कौन सी अद्वितीयता है जिस के लिये यह मान्य हैं और दूसरे अमान्य हैं।

जब ईश्वर कल्पना मात्र है तो श्री देव गुरु भगवान जी में अद्वितीयता कल्पना मात्र नहीं है इस का क्या प्रमाण है। प्रतीत तो यही होता है अपनी कल्पना मात्र अद्वितीयता की आड़ में सब को खण्डन कर रहे हैं।

आगे चल कर लिखते हैं:—

प्र०—कोई जन अपनी किसी प्रार्थना में सफलकाम कब हो सकता है?

उत्तर—जब वह अपनी प्रार्थना किसी ऐसे अस्तित्व तक पहुंचावे कि जो

१. सच मुच हो और कल्पित न हो।

२. उसकी प्रार्थना को पूर्ण कर देना चाहता हो और

४. जिस तक उसकी प्रार्थना का भाव या उस की लहरें पहुँच सकती हों

इन बातों के बिना कोई जन अपनी सच्ची प्रार्थना में सफलकाम नहीं हो सकता पृष्ठ ६६०।

प्रार्थना पूर्ण होने के लिए जो नियम लगाए हैं वह देव गुरु जी में नहीं घट सकते हैं, क्योंकि उनकी अद्वितीयता कल्पित है और सच्ची अद्वितीयता ईश्वर में ही है। दूसरा नियम सामर्थ्य रखने का है श्री देव गुरु भगवान जी में कौन सा सामर्थ्य है जो प्रार्थनाओं को पूरा करेगा यदि ऐसा होता तो अपने बन्धुओं की मृत्यु पर कष्ट अनुभव न करते और प्रतियोगियों से परास्त न होते जब स्वयं अपनी इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर कर पाए तो औरों की प्रार्थनाओं का तो कहना ही क्या है यदि किसी भोले भाले जन की प्रार्थना पूरी भी हो जाय तो घुणाक्षर न्याय है कोई सामर्थ्य वामर्थ्य नहीं है।

शेष रह गई कथा चाहने की, यदि चाहने से हो जाता है तब तो श्री देव भगवान जी जो चाहें करलें और यदि यह कहें जो प्रार्थना करे उसे श्रीदेव गुरु भगवान जी पूरा करना चाहते हैं तो देव समाजी सज्जन सब को निरीश्वर वादी बनाना चाहते हैं। प्रार्थना भी करते हैं और चाहने वाले उन्हें श्री देव गुरु भगवान् जी मिल गए हैं फिर उन की प्रार्थनाएं क्यों पूर्ण नहीं होती?

इस भाँति इस पुस्तक में दूसरे मतावलंबियों को भूतप्रेतादि योनियों में जाने वाला माना है जिस का उल्लेख अगले लेख में किया जायगा।

(७)

देव समाज की प्रतिज्ञा है कि वह उन सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं जो विज्ञान मूलक हैं फिर चुडैलादि का वर्णन किस विज्ञान के आधार पर है? इस लेख में जो हमने लिखना है उस में यही दिखाना चाहते हैं कि देव समाज में विज्ञान मूलकता कितनी है।

प्रश्न— क्या भूत चुडैल आदि अधम आत्माओं के ही नाम हैं?

उत्तर— हाँ! और यह सब महानीच और अधम जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रश्न— क्या उनमें ऐसे लोग भी होते हैं, कि जो इस पृथिवी में इस वा उस धर्म मत के मानने वाले कहलाते हैं।

उत्तर— हां प्रायः ऐसे ही लोग बहुत से होते हैं अर्थात् लाखों जन जो पहले ईसाई कहलाते थे, लाखों जन जो मुसलमान कहलाते थे; लाखों जन जो हिन्दू अथवा सिख, जैनी, कबीर पंथी, दादूपंथी, शैव, शाक्त, योगी, वैरागी, साधु, सन्यासी और विद्वान् अधिक कहलाते थे, अपने अधम जीवन के कारण उस में वास करते हैं। पृष्ठ २२५-२६।

प्रथम प्रष्टव्य है भूत चुडैल जो अधम योनिएँ हैं यह तो आप मानते नहीं हैं। आप मानते हैं, इन्हीं नामों वाले अपने सूक्ष्म शरीर बनाकर उस लोक में वास करते हैं, और वह सहायता भी करते हैं। इस में प्रमाण क्या है? प्रमाण शून्य बात को कौन मानेगा शास्त्र प्रमाण में तो आप किसी पुस्तक को मानते ही नहीं हैं और आप के देव शास्त्र को दूसरे स्वीकार नही करते हैं, इस लिये शास्त्र से भिन्न कोई अन्य प्रमाण ही देना होगा बतलाइए कौन सा प्रमाण है? प्रत्यक्ष से तो वह प्रतीत नहीं होते हैं। आज कल जो प्रेतात्मा बुलाए जाते हैं वे उसी लोक में आते हैं और आकर अपने समाचार और उपदेश देते हैं। इस बिषय में मेरा यही उत्तर है कि मैंने प्रेत-आत्माओं के बुलाने का दृश्य स्वयं देखा है वह केवल ढोंग है और चालाकी है। भारत वर्ष में प्रसिद्ध व्यक्ति जो यह काम करता है वह बी. डी. ऋषि हैं उन्हों ने लाहौर में स्वयं अपने करकमलों से महाशय नारायणसिंह जी को लिख कर दिया कि यह सब धन कमाने का ढंग है न कोई आता है न जाता है जो पत्रों में नारायणसिंह जी ने छपवा दिया था उस मूल पत्र को भी मैंने देखा है इस अवस्था में इसे कौन सत्य स्वीकार करेगा।

दूसरी बात यह है देव शास्त्र के लेखक महोदय ईसाई मुसलमान, हिन्दुओं को इसी लोक में भेजते हैं क्या देव समाजी इस लोक में नहीं जाते हैं। यदि आप उत्तर दें कि जिनके जीवन उत्तम हैं वही जाते हैं तो क्या देव समाज में सब ही उच्च जीवन वाले हैं और देव समाज से भिन्न कोई उच्च जीवन वाला नहीं है। यह ठीक नहीं है क्योंकि देव समाज की अपनी डायरियाँ इस बात की साक्षी है जो उन में नीच गति वाले प्रधान संख्या में हैं यदि कोई इस बिषय से परिचित होना चाहे तो देव समाज के पुराने कार्य कर्ता

महाशय देवरत्न जी के पत्र 'उच्च जीवन' के पुराने अङ्क पढ़ले।

इसी प्रकरण में इनके भोजन का वर्णन है यथा—

प्रश्न— भला अधर्म आत्माओं को आहार किस प्रकार मिलता है ?

उत्तर— वह हम लोगों के आहार और पृथिवी आदि के फलों आदि से जो सूक्ष्म परमाणु निकलते हैं उन्हें खाते हैं! इनके भिन्न जो पशु मर कर अधर्म लोक में ही रहते हैं, अथवा मनुष्यों के जो छोटे २ बच्चे मरते हैं और जिनका कोई रक्षक नहीं होता उन्हें भी चट कर जाते हैं। पृ० २३२

इस लेख में प्रथम तो मनुष्यों के आहार और फलों में से खाते हैं यह लिखते समय सूक्ष्म परमाणु भी विशेषण दिया है। इन परमाणुओं को वे खाते है, इस में भी केवल देव समाज की श्रद्धा ही प्रमाण है और तो कोई प्रमाण नहीं है। आगे मनुष्यों के बच्चों को चट करने का विधान है वहाँ कोइ विशेषण नहीं है यदि अनुवृत्ति लावें तो "जिनका कोई रक्षक नहीं होता" निर्धन हैं क्योंकि जिनकी रक्षा होती है उनके शरीर से भी सूक्ष्म परमाणु निकलते हैं यदि अनुवृत्ति न करें तो उस शब्द के भक्षक कोई स्थूल होंगे जिनका प्रत्यक्ष होना चाहिये।

इस प्रकार ये विज्ञान मूलक सिद्धान्त हैं जिन पर यह विज्ञान के अद्वितीय नेता हैं और जिस विज्ञान के आधार पर यह चले थे इस समय वह विज्ञान ही बदल गया है इनका उतना ही अन्तर है जितना कि शिव नारायण जी अग्निहोत्री नाम वाले शरीर का सत्यानन्द जी अग्निहोत्री का वा श्री देव गुरु भगवान जी के शरीर का है, उभय कथन तो एक हैं परन्तु वास्तव में प्रथम का दूसरे में अभाव है किन्तु यह विज्ञानी अपनी उसी मंज़िल पर बैठे हुए विज्ञान की डुगडुगी बजा रहे हैं उचित तो यह है अब यह भी आगे बढ़ें और अंध श्रद्धा को छोड़ कर विचार शील हों।

प्रेमोपहार

(श्रीश्यामसुन्दर श्रीवास्तव्य "रमेश" इलाहाबाद)

फलित कुञ्ज से सरस सुमन को चुन २ कर के आई हूं।
प्राण नाथ ! तव पहिनाने को हार बना कर लाई हूँ॥
होता है प्रत्येक पुष्प से सरल मानसिक प्रेम प्रकाश।
प्राण नाथ स्वीकृत कर लेगें है मुझ को हार्दिक विश्वास॥

आर्य समाज के नियमों का महत्व

(लेखक—कृष्णानन्द)

आर्य समाज इस नाम से ही स्वामी दयानन्द की दूरदर्शिता का पता चलता है। साम्प्रदायिक संकीर्णता से बचाने के लिए ही, मत या पन्थ सूचक नाम न रख कर समूहात्मक नाम "आर्य-समाज" रक्खा है। अब नियमों के सम्बन्ध में संक्षेप से लिखता हूं—

१. पहले नियम में पदार्थ विद्या का नाम लेकर साइन्स से अविरोध प्रकट कर दिया है और सब को साइन्स जानने के लिए प्रेरित कर दिया है। साथ ही यह भी बतला दिया है कि चाहे आप बुद्धि कितनी ही दौड़ाइए, सब का मूल परमेश्वर है, उस से परे आप की बुद्धि नहीं जा सकती।

२. दूसरे नियम में यह बतलाया है कि ईश्वर का स्वरूप है और उसका गुण कर्म कैसा है तथा इस बात पर ज़ोर दिया है कि सिवाय ईश्वर के और किसी की उपासना न करनी चाहिए।

३. तीसरे नियम में अपनी सभ्यता के आदि मूल ग्रन्थों को पढ़ना अनिवार्य कर दिया है जिस से जातीय जीवन की ज्योति बराबर बनी रहे और अपनी मूल सभ्यता को भूल न जायँ।

४. चौथे नियम में सच्ची बातों को मानने के लिए बड़ा जोर दिया है। प्रायः सभी मतवादी मतवाद के आग्रह में पड़कर दूसरे की सच बात को नहीं मानते। यह नियम हमें मतवाद के आग्रह से बचाता है।

५. पाँचवें नियम में सत्याचरण पर ज़ोर दिया गया है अर्थात् मिथ्या दम्भ और आडम्बर से एकदम अलग रहने की शिक्षा दी गई है।

६. छठा नियम हमारे लक्ष्य और ध्येय को बतलाकर कर्त्तव्य और कार्यक्षेत्र को निश्चित करता है।

७. सातवां नियम हमें व्यवहार कुशल बनाता है, किस के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए यही हमें सिखलाता है। पहले प्रीति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए, यदि वह इसके अयोग्य हो तो धर्मानुसार अर्थात् शिष्टता-पूर्वक या न्यायपूर्वक व्यवहार करें और यदि वह शिष्टता पूर्ण व्यवहार के भी अयोग्य हो तो उस से यथायोग्य (जैसा उचित हो वैसा) व्यवहार करें। "यथायोग्य" शब्द इसी हेतु है कि संसार में बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जो शिष्टता को नहीं मानते, आप के शिष्टाचार से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। ऐसे अभद्र पुरुषों तथा दुष्टों के साथ चाहे आप कितनी ही न्यायशीलता या भलमनसाहत करें वे अपनी दुष्टता से बाज न आवेंगे। उनके साथ यथायोग्य व्यवहार

"दुष्टे दुष्टं समाचरेत् का सिद्धान्त" ही ठीक है। इस नियम में "यथायोग्य" बड़ा ही महत्वपूर्ण शब्द है।

८. आठवाँ नियम हमें ज्ञान को बढ़ाने के लिए उत्साहित करता और अज्ञान व अन्धविश्वास को दूर करने के लिए प्रेरित करता है।

९. नवाँ नियम हमें विशाल हृदय बनाता है। प्रायः लोग अपनी ही उन्नति व मुक्ति की इच्छा करते हैं, दूसरे लोगों की उन्हें कुछ चिन्ता नहीं होती। यह नियम हमें उस संकीर्ण विचार से बचाकर उदार बनाता है।

१०. दसवाँ नियम समाज संगठनके मूलमंत्र को बतलाता है। आजकल लोग "संगठन संगठन" चिल्ला रहे हैं परन्तु उसके असली नियम को तो भूले बैठे हैं। मैं दावे से कहता हूं कि इसी एक नियम का अच्छी तरह पालन करने से विशाल हिन्दू समाज का संगठन हो सकता है।

"अन्योक्तियाँ"

(श्री पं० 'वीरहरि' विद्यार्थी)

[१]

वि-धवाओं का नाम है, पति-हीना इस लोक।
'वि' के आगे 'धव' लगा, पुनि क्यों इतना शोक॥
पुनि क्यों इतना शोक, 'विशेष' 'वि' पति 'धव नामा।
बुद्धि[1]-विपर्यय यहाँ, न माने अर्थ ललामा[2]॥
पति-हीना जो नारि, अन्य नर से हो स-धवा[3]।
उसको पण्डित, शास्त्र, 'वीरहरि' कहते वि-धवा[4]॥

[२]

बैठा छुताछूत का, भारत में जब भूत।
श्रमजीवी[1] तब सभी, कहने लगे अछूत॥
कहने लगे अछूत, भाव कुछ समझ न पाया।
'अ' का नहीं है छूत' 'अशुद्ध'[2] नार्थ अपनाया॥
लोभी-पण्डितपोंगोंने[3], जनता को ऐंठा[4]।
तभी 'वीरहरि'-अर्थ[5] अनर्थ, हृदय में बैठा॥

---

[१] १ बुद्धि की प्रतिकूलता, उल्टी अक्ल। २-पति सहित स्त्री या पति वाली स्त्री। ४ विशेष है पति जिस का, अर्थात् अन्य (द्वितीय) पति वाली।

(२) १ छोटा काम कर के जीने वाले, अन्य जाति। २ न × अर्थ + ३ आडम्बरी। ४ भुलाया, चक्कर में डाला। ५ अछूत नहीं है अशुद्ध जो (शुरू), इस का अर्थ अशुरू गढ़ लिया। पापा

वैद्यनाथ धाम की यात्रा

(ले०—श्री रामजीवन शर्मा, श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री)

वैद्यनाथ धाम, बिहार प्रान्त के 'संताल परगना' जिले का सबडिवीज़न है। सुप्रसिद्ध ई. आई. आर. रेलवे का एक जंक्शन जसीडीह है। कलकत्ता-दिल्ली लाइन पर ही यह जंक्शन है। जसीडीह से एक ब्रांच लाइन वैद्यनाथ धाम तक गई है। जसीडीह पहुंचते ही अमीर पंडों के गुमाश्ते एवं ग़रीब पंडे स्वयं मुसाफिरों को घेर लेते हैं। भादों एवं बैशाख में तो ये महोदय गण कयूल जंक्शन एवं मोकामा जंक्शन से ही पीछे पड़ जाते हैं। परन्तु साधारण दिनों में जाने के कारण हम इन संकटों से बरी हो गए थे।

गाड़ी से उतरते ही ये पूछ बैठते हैं—"क्यों बाबूजी! आपका मकान कहाँ है?" आप प्रान्त का नाम लीजिए तो ये पूछ बैठेंगे कि 'जिला कौन है?' इसी प्रकार क्रमशः हल्का, परगना, थाना, गाँव तथा नाम, पिता का नाम, दादा का नाम आदि पूछने लगते हैं। अन्त में पूछते हैं कि आप का पंडा कौन है? यदि आगन्तुक ने पंडे का नाम बतला दिया तब तो कुशल है, अन्यथा ये उसका पीछा छोड़ते ही नहीं। आपस में लड़ने लगते हैं और जहाँ जहाँ यात्री जायें, ये दुम की तरह पीछे लगे रहते हैं।

हम अपने पंडा का नाम जानते थे। नाम क्या जानते थे उनसे खासा परिचय भी था। बस, ट्रेन से उतरते ही घोड़ा गाड़ी लिया और पंडा के घर पहुंचे।

पहुँचते ही एक कमरा मिल गया। उन दिनों पंडों का घर प्रायः खाली ही रहता है। फिर भी हमारे पंडा के यहाँ दो तीन का परिवार आया हुआ था। पूछने पर मालूम हुआ कि वे बंगाली हैं।

प्रसंगवश इस बात का भी ज़िक्र हम यहाँ किए देते हैं कि वैद्यनाथ धाम है तो बिहार में, परंतु मालूम होता है, जैसे बंगाल का कोई नगर हो। जहाँ देखिए वहीं बंगाली सभ्यता दीख पड़ती है। पंडा लोग परस्पर बंगला में ही बात करते हैं। शहर की अधिकाँश कोठियाँ बंगालियों की हैं। शहर से बाहर बंगाल प्रदेश के धनी विद्वान् और प्रसिद्ध पुरुषों की कोठियाँ बनी हुई हैं। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध व्यापारी कविराज नगेन्द्रनाथ सेन का भव्य भवन मन को मोह लेता है। जगत्प्रसिद्ध रवीन्द्रबाबू साल में यहाँ (सिमरतला स्टेशन के पास) कुछ दिन रहते हैं। प्रसिद्ध औपन्यासिक शरत्बाबू भी अपने ग्रन्थों में से अधिकांश की रचना यहीं करते हैं। अस्तु, वह दिन आराम करने में बीता। दूसरे दिन के सबेरे ही हम पूरब की ओर जंगलों में गए। शहर के आस पास तो हलके जंगल हैं, किन्तु कुछ ही दूर

निकल जाने पर अत्यधिक घने जंगलों के दर्शन होने लगते हैं। परन्तु हम समीप ही से चले आए। फिर शिवगंगा में स्नान किया। यह एक बड़ा तालाब, महाराज गिद्धौर का बनवाया हुआ नगर के पूर्वीय भाग में स्थित है। सुन्दर पाषाण के घाट बने हुए हैं। स्त्रियों के लिये अलग और पुरुषों के लिये अलग। वैद्यनाथ धाम में आने वाले श्रद्धालु पुरुषों के लिए यहाँ नहाना लाजिमी है। अतः हमने भी वहाँ स्नान किया और गुमाश्ते के साथ (जो पुलिस की तरह हमारे साथ था) मन्दिर की ओर चले। गलियाँ बनारस की तरह हैं, परन्तु दूकानें भद्दी और बेढंगी।

मन्दिर के निकट पहुंचने पर दिल खुश होजाता है। जो मन्दिर आजकल है उसको महाराज गिद्धौर ने बनवाया था। उस मन्दिर में जो महादेव का लिङ्ग स्थापित है उसका नाम रावणेश्वर है। रावणेश्वर नाम पड़ने की कथा पुराणों में इस प्रकार है:—
"लंकानरेश रावण प्रतिदिन शिवजी की पूजा करने कैलासपर्वत पर जाया करता था। एकबार उसकी इच्छा हुई कि यदि लंका ही में मैं इनको लेचलूं तो नित्य के परिश्रम से बचूं। यह सोचकर वह कैलास पर्वत पर जाकर तप करने लगा। यज्ञकुण्ड में शाकल्य के बदले मस्तकों को काटकर चढ़ाने लगा और जब दसवाँ मस्तक भी काटने पर तैयार हुआ तो शिवजी ने दर्शन दिया और वरदान माँगने की आज्ञा दी। रावण ने उनसे लंका में चलने की याचना की। उन्होंने स्वीकार कर लिया और एक पाषाण लिंग देकर बोले—'रास्ते में इसको कहीं भी पृथ्वी पर रक्खोगे तो यह उसी जगह अचल होजायगा। अतएव सावधानी से जाना।' फिर क्या था, रावण खुशी खुशी घर चला। मस्तक पूर्ववत् ही होगए थे। इस स्थान (वैद्यनाथ) पर पहुंचने पर उसको पेशाब लगा। मूर्त्ति को लिए पेशाब कर नहीं सकता था अतएव इधर-उधर नज़र दौड़ाने लगा कि कोई मिल जाय। 'विष्णु' ब्राह्मण रूप धारण कर पहुंच गए। उन्हीं के हाथ में फौरन प्रतिमा देकर वह पेशाब करने लगा। कई घंटे उसको पेशाब करते होगए। इधर विष्णु ने प्रतिमा भूमि पर रख अपने घर की राह ली। विष्णु के हाथ से स्थापित होते ही वह लिंग पाताल तक चला गया और पृथ्वी के ऊपर केवल आठ अंगुल ऊँचा रह गया।"

इस मन्दिर के आस पास बीस पच्चीस और मन्दिर हैं। उनमें भिन्न २ देवताओं की प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर के अहाते में एक कूप है, जहाँ का जल महादेव जी पर चढ़ता है। अन्यान्य किसी भी कूप, किम्वा, तालाब का पानी चढ़ाना मना है।

हाँ, गंगाजल बिकता है। गंगोत्तरी, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, सिमरिया आदि से पंडा लोग मँगाकर उसे बेचते हैं। मूल्य भी स्थान २ के अनुसार जल का अधिक व न्यून है। गंगोत्तरी के जल का मूल्य हमें शायद २५) शीशी बतलाया गया था।

हमने कूप ही से जल लेकर चढ़ाना

उचित समझा। † फिर मन्दिर की परिक्रमा आदि समाप्त कर अपने वासस्थान पर आगए।

सन्ध्या को 'लीला मन्दिर' नामक स्थान देखने चले। लगभग साढ़े सात बजे वहाँ पहुँचे। यह स्थान दुमश रोड़ पर है। एक सुनसान मैदान के बीच बहुत ऊँचा और भव्य भवन बना हुआ है। चारों तरफ़ बाग़ है। वैद्यनाथ धाम शहर में इलेक्ट्रिसिटी अभी नहीं पहुँची है किन्तु इस भवन में इलेक्ट्रिसिटी का स्पेशल प्रबन्ध है। पाठक उत्सुक हो रहे होंगे, यह जानने के लिए कि आख़िर वहाँ होता क्या है? उसका उत्तर इस प्रकार है—

यहाँ पर लगभग साढ़े तीन सौ बंगाली विधवाएँ रहती हैं। नाम इसका; जैसा कि हम कह चुके हैं, 'लीला मन्दिर' है। इसके संस्थापक ठाकुर दयानन्द एक बंगाली ब्रह्मचारी हैं। आप आँग्लभाषा के अच्छे पण्डित और अन्य भारतीय भाषाओं के भी जानकार हैं। इस आश्रम में दस बीस पुरुष भी हैं। जो सब के सब ब्रह्मचारी हैं। सिर और दाढ़ी के बाल वे कभी नहीं कटाते। सन्ध्या को ये सब देवियाँ विविध वाद्यों के साथ कीर्त्तन करती हैं। गोलाकार परिधि स्वयं बनाती हैं और बीच में पुरुष रहते हैं। कोई भी कीर्त्तन-प्रेमी इसमें भाग ले सकता है। जिस दिन हम गए थे उस दिन बहुत कम देवियाँ थीं। फिर भी पंडों के दस बीस लड़के आ ही गए थे।

एक सम्पादक महोदय ने, जो हमारे साथ थे बतलाया कि इनको एशिया, अमेरिका आदि से पर्याप्त सहायता मिलती है। कई एक जगह इस आश्रम के ब्रांच भी हैं। इनकी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध आदि विषयों पर हम किसी स्वतन्त्र लेख में प्रकाश डालेंगे। यहाँपर वैद्यनाथ धाम के दो चार स्थानों का ज़िक्र कर इस यात्रा वृत्तान्त को समाप्त करते हैं।

गुरुकुल—यह सातर नामक ग्राम में है जो वैद्यनाथ धाम के समीप ही है। यह गुरुकुल काँगड़ी आदि से सम्बद्ध न होकर स्वतन्त्र है। बिहारबंग प्रतिनिधि सभा इस का प्रबन्ध करती है।

तपोवन—यहाँ पर एक बहुत सुन्दर झरना है जिसकी झनकार मनको मोह लेती है। यों तो सारे वैद्यनाथ धाम पर ही प्रकृति की दयादृष्टि है परन्तु इस जगह कुछ और ही आनन्द प्राप्त होता है। यहाँ जाने के लिये मोटर लौरियाँ तैयार रहती हैं। अन्य सवारियाँ भी सुभीते के साथ मिलती हैं।

रामकृष्ण मिशन—यह नगर से उत्तर की ओर है। अन्य मिशनों की तरह यहाँ भी शिक्षा, सेवा आदि का प्रबन्ध है।

बालिका विद्यालय—एक भव्य और उच्च भवन में यह विद्यालय स्थित है। बिहार के इने गिने कन्या विद्यालयों से यह सर्वोत्तम

---

† आर्य्यसमाजी होने के कारण इस क्रय विक्रय से हम साफ़ बच गये।

है। यदि काम करने वाले चाहें तो वह रूप दे सकते हैं।

धर्मशालाएँ—कई हैं। परन्तु शिवगंगा के तटपर की उत्तम है। यहाँ सर्वदा लोग भरे रहते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य भी कितने दर्शनीय स्थान हैं। प्राकृतिक शोभा तो हाथ पाँव तोड़कर यहाँ बैठ गई है। छोटी बड़ी पहाड़ियाँ, साखु के कहीं पतले और कहीं घने जंगल, मनोहर झरने भला किस का मन नहीं मोह लेते? यही कारण है कि मूर्त्तिपूजक सनातनियों के अतिरिक्त रवीन्द्र बाबू जैसे ब्राह्मसमाजी भी यहाँ कुछ दिन रहने का कष्ट उठाते हैं।

यहाँ की प्रधान भाषा बँगला ही है। फिर भी दोचार हिन्दी-प्रेमी सज्जन यहाँ मौजूद हैं। हिन्दीभाषा में एक पत्र भी निकलता है जिसका नाम 'शृङ्गार' है। एक 'सार्वजनिक' पुस्तकालय एवं वाचनालय भी है। पुस्तकालय में हिन्दी की छः सात सौ पुस्तकें तथा वाचनालय में बँगला तथा हिन्दी की पत्र पत्रिकाएँ आती हैं। दो एक बँगला पत्र यहाँ से निकलते भी हैं।

इसके अतिरिक्त दुमका ज़िला कांग्रेस कमेटी एवं सबडिविज़नल कांग्रेस कमेटी का दफ़्तर भी यहाँ है।

कुसुम—कामना

होते किसी प्रेमी गल-माला के तरल हम
जाते सींचे आँसुओं की झड़ी के लगाव से।
देवी के मन्दिर के चढ़ावन-सुमन होते
रौंदे जाते चाहे वहाँ पूजकों के पाँव से।
गंध का गुमान भरे सुन्दरताभिमान में
खाये जाते क्यों न किसी सौम्य मृगशाव से।
बस, सूने मसान में मेंहदी के फूल होते
हवा की थपेड़ से झड़ते हम चाव से॥

"वनमाली"

अन्ध विश्वासों को त्यागिये

(ले०— श्री कृष्णानन्द)

हमारी जाति की अवनति वा अधोगति के जितने कारण हैं उन में से भ्रमपूर्ण विश्वासों का अस्तित्व भी एक बड़ा कारण है। यद्यपि अन्य जातियों और अन्य देशों में भी इन का अस्तित्व है पर हिन्दू जाति में हज़ारों प्रकार के भ्रममूलक विश्वास फैले हुए हैं। जिन से बहुत से लोग नैतिक आर्थिक, शारीरिक और मानसिक उन्नति करने में असमर्थ हैं। बहुत से लोगों के सुख और सफलता के मार्ग में ये ही अन्धविश्वास बाधक रूप हैं। इन में फँसकर लोग छोटी से छोटी बातों और तुच्छ से तुच्छ कार्य्यों से बहुत चिन्तित और भयभीत हो जाते हैं। कार्यों की असिद्धि और विपत्ति के असली कारणों को न जानकर वे अहेतु को हेतु मान बैठते हैं। बड़ा आश्चर्य है कि लाभ न होने पर तथा बार २ हानि उठाने पर भी लोगों को चेत नहीं होता और विद्वानों वा बुद्धिमानों के समझाने पर भी लोग भ्रमजाल में फँसे रहना चाहते हैं। यह अविवेक वा दुराग्रह उनकी उन्नति और हित में बड़ा ही विघ्न कारक है। संस्कृत में जो "विवेकभ्रष्टानांभवति विनिपातः शत मुखः" कहा है वह बहुत ही ठीक है। यहाँ पर मेरा तात्पर्य किसी प्रकार की उपासना के सम्बन्ध में नहीं है क्योंकि मन की तृप्ति के लिये बहुदेवोपासना उचित हो सकती है। यहाँ पर मेरा तात्पर्य जिस प्रकार के अन्ध विश्वासों से है उनका उल्लेख नीचे करता हूं—

एकादशी को चावल खाने में पाप मानना। बुध वा सनीचर को कोई नया या शुभ कार्य्य करने में भय करना। बुध का दिन खाली समझना [विचार कीजिए कि मङ्गल के दिन कौन सी वस्तु संसार में भरी रहती है जो बुध का दिन आते ही खाली हो जाती है? जिस भाँति मङ्गल वा शुक्रवार को लाखों मनुष्य जन्मते, मरते, सुख, वा दुख पाते हैं उसी प्रकार बुध वा सनीचर को भी सुखी दुखी रोगी वा स्वस्थ होते हैं। बुधने कोई कसूर नहीं किया लोगों ने बुध को नाहक बदनाम कर रक्खा है] दीपावली को द्यूत न खेलने से छछून्दर का जन्म मानना। दीपावली की रात बीतते ही लड़के घर के कोने कोने में सूप बजाने से दरिद्रता दूर होने का विश्वास यदि सूप बजाकर दरिद्रता को भगा देते हैं तो उसी प्रकार सूप बजाकर बीमारी को क्यों नहीं भगा देते? जिस से वर्ष भर तक कोई बीमार पड़ने ही न पावे। और देखिए लाखों मनुष्य अपनी समझ से दरिद्रता को भगा देते हैं। पर अगले वर्ष भर तक वे ज्यों के त्यों दरिद्र ही बने रहते हैं, मानो दरिद्रता फिर उनके घर में घुस आती है। दिशाशूल के विरुद्ध यात्रा करने में अशुभ वा कार्य्य की असिद्धि मानना। यात्रा में प्रस्थान रखने का ढकोसला करना। जहाँ लड़की ब्याही हो उस ग्राम वा स्थान के कुएँ का पानी पीने में पाप मानना। भादों सुदी चतुर्दशी को चन्द्रमा देखने से कलङ्क मानना। उन्माद रोग को

भूत प्रेत मान लेना। आश्चर्य है कि आजकल कई वैज्ञानिक भी भूत-प्रेत मानने की मूर्खता कर रहे हैं ऐसे लोगों को "सनकी" समझना चाहिए। दूर जाते समय खाली घड़ा देखने, छींकने वा तेल का नाम सुनने को अमङ्गल जनक या विघ्नसूचक मानना। शूद्र की छाया अपने शरीर पर पड़ने से अपने को अपवित्र मानना [मद्रास के ब्राह्मण ऐसा मान कर स्नान करते हैं] हाथ पर नमक रखने से लेने-देने वाले में झगड़े का लक्षण मानना। साही का काँटा छप्पर में खोंसने से उससे हानि मानना। फलित ज्योतिष की साइत वा मुहूर्त्त को कार्य की सिद्धि का हेतु मानना और उस साइत में कार्य न करने को कार्य की असिद्धि का कारण मानना। वर कन्या की आयु, सुख और समृद्धि का हेतु "कुण्डली गणना" को मानना और बिना कुण्डली मिलाए विवाह करने से वर कन्या का अशुभ मानना गुरुमंत्र न लेने को नरक का हेतु मानना। गुरुमंत्र न लिये हुए मनुष्य से घृणा करना वा उसके हाथ का जल अग्राह्य मानना। जन्मभर पाप करके मरते समय राम नाम उच्चारण मात्र से मुक्ति मानना। निर्दयी, अन्यायी वा अत्याचारी पुरुष को गङ्गा स्नान से मुक्ति मिलने का विश्वास करना। मरते समय मुख में तुलसी पड़ने से वा मृतशरीर को गङ्गा में छोड़ने से मुक्ति मिल जाने का विश्वास, अपने सत्कर्मों पर भरोसा न करके पुत्र के भरोसे मुक्ति पाने का विश्वास। महापापी के भी काशी में मरने में मुक्ति मिलने का विश्वास। प्रयाग जाकर मूंड़ न मुड़ाने में दोष मानना। जगन्नाथ पुरी में जाकर जूँठ न खाने में वा अलग भोजन पकाने में पाप वा दोष मानना। कर्मनाशा नदी में स्नान करने से धर्म्म का लोप मानना गोभी तरकारी को अभक्ष्य मानने का यह हेतु बतलाना कि इसमें "गो" शब्द है। मगह में मरने से गधे का जन्म मानना। माघ में प्रयाग और ग्रहण के समय काशी गङ्गास्नान करने से अत्यन्त पुण्य [पापका क्षीण] होना मानना। यमद्वितीया को मथुरा में यमुनास्नान करने से बैकुण्ठ की प्राप्ति मानना। लाल पीली रेखा वा तिलक मस्तक पर लगाने को धर्म्म का अङ्गमानना और न लगाने को अधर्म समझना। सनीचर को तेल वा लोहे के दान को अत्यन्त पुण्यजनक मानना। सिरहाने तकिया के नीचे सोवा नामक साग रखकर सोने पर तुरन्त नींद आने का विश्वास। पूसापाँड़र [पौष के प्रथम दिन] को कोई वस्तु दूसरे को देने से साल भर तक अपने धन अन्न का क्षय मानना [ज़ि० मिर्जापुर वाले ऐसा मानकर उस दिन किसी को कोई पदार्थ नहीं देते और पूड़ी मिठाई आदि खाते हैं, समझते हैं कि सालभर तक बराबर ऐसा ही उत्तम पदार्थ खाने को मिला करेगा]। खर बाँस लगने पर एक मासतक चारपाई बनवाना, लड़की बिदा करना, नए घर में प्रवेश आदि अनेक कार्यों को अशुभ वा अमङ्गल सूचक समझना। तीज को दिनरात निराहार निर्जल व्रत न रहने से पतिका अशुभ मानना। मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र का मुख देखने से माता वा पिता का अशुभ वा

विपत्ति सूचक मानना । बार बार पुत्र उत्पन्न हो कर मर जाने पर वर्त्तमान पुत्र के नाक में नथुनी पहनाने को मृत्यु से रक्षा करने वाला मानना [यदि नथुनी मृत्यु को रोकदे तब तो समस्त वृद्ध युवा और बालक को नथुनी पहन लेना चाहिए]। काशी में किये हुए पाप की निवृत्ति पंच कोशी से मानना । पञ्च कन्या के स्मरण को महापातक का नाशक मानना । दुर्गापाठ मृत्युंजय अथवा दान मात्र से रोग की निवृत्ति मानना । बाप दादा फूस के मकान में रहते आये हों तो स्वयं खपड़ा छवाने में अपना अशुभ मानना । कुण्ड वा तालाब के स्नान से पुण्य मानना । रमल, शकुन और स्वप्नविचार आदि के सम्बन्ध में जो पुस्तक और प्रवाद प्रचलित हैं उन्हें सत्य मानना । फलित ज्योतिष को सत्य मानना इत्यादि ।

इस प्रकार के हज़ारों भ्रमात्मक विश्वास हिन्दू जाति में फैले हुए हैं जिन का प्रचार वा विस्तार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक है । स्त्रियों के हृदय में बिना उत्तम संस्कार पैदा किये इस प्रकार के भीतरी दोष दूर नहीं हो सकते । सत्पुरुषों का कर्त्तव्य होना चाहिए कि ऐसे भ्रमजालों में न स्वयं फँसें और न स्त्रियों को फँसने दें । यदि कहा जाय कि ऐसी बातें कभी कभी सत्य हो जाती हैं तो समाधान यह है कि काकतालीय न्याय से एक बार कोई घटना हो जाय तो उसे नियम वा सिद्धान्त मान लेना ठीक नहीं है । एक बार सवेरे कोई कंजूस का नाम सुन लेवे और संयोग से उस दिन उसे भोजन न मिले तो यह परिणाम निकालना कि "सवेरे कंजूस का नाम लेने वा सुनने से दिन भर भोजन नहीं मिलता" अज्ञानता है । इसी प्रकार एक बार खाली घड़ा देखने से यात्रा में विघ्न पड़े तो यह नियम बनाना कि "खाली घड़ा देखने से यात्रा में अवश्य ही कष्ट वा विघ्न होता है" अनुचित और अन्याय है । यात्रा आरम्भ करने के समय यदि नाक पर मक्खी बैठ जाय या कौआ काँय काँय करने लगे या कुत्ता भूँकने लगे तो ऐसे कार्यों से शुभ वा अशुभ परिणाम निकालना मूर्खता है । शुक्र वार को खिचड़ी पकावे और संयोग वश गिर पड़े तो यह नतीजा निकालना कि "शुक्रवार को खिचड़ी नहीं पकानी चाहिए" बिलकुल भूल और मूर्खता है । नहाने, फाका करने और पवित्र स्थान में मरने से मुक्ति मिलने का सिद्धान्त न्याय विरुद्ध, युक्तिविरुद्ध और शास्त्र विरुद्ध है । शास्त्र का तो अटल सिद्धान्त है—"ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" यह बात सर्वथा न्यायसंगत युक्ति युक्त और अकाट्य है । अतः उपर्युक्त भ्रम जालों में न फँसना ही श्रेयस्कर है । विश्वास ही फल दायक या भावनानुसार सिद्धि मानी जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि जिन लोगों का ऐसी बातों पर विश्वास नहीं है उन्हें ऐसे कार्यों का फल अशुभ नहीं मिल सकता । जब ऐसी बातें हमें पग पग में रुकावटें डालतीं और क्षण क्षण में अशुभ फल देती हैं तब हम इन कुविश्वासों के जाल में क्यों फँसें ? इन की भावना न करना इन पर विश्वास न रखना ही उत्तम और सुखद सिद्ध हुआ है । दूसरी बात यह है कि भावनानुसार सिद्धि या विश्वासानुसार फल

यहीं तक हो सकता है जहाँ तक कि ईश्वरीय वा प्राकृतिक नियमों का अविरोध हो। अर्थात् ये दो बातें ईश्वर या प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकतीं। यही कारण है जिस से पूर्ण विश्वास और दृढ़ भावना होने पर भी बहुत से कार्य्य असिद्ध होते हैं और विश्वास या भावना न होने पर भी बहुत से कार्य्य सिद्ध हो जाते हैं। संसार में ऐसे सहस्रों उदाहरण मिल सकते हैं जिस में लोगों का पूर्ण विश्वास या दृढ भावना थी पर कार्य सिद्ध न हुआ। निष्कर्ष यह कि जो जिस का कारण नहीं उसे उसका कारण मान लेना भारी भ्रम है। निश्चय है कि जब तक लोग उपर्युक्त प्रकार के भ्रमजालों से मुक्त न होंगे तब तक कठिनाइयों से भी पूर्णतया मुक्त न होंगे, एवं पूरा सुख या पूरी सफलता न प्राप्त कर सकेंगे।

आकाङ्क्षा

[लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी "मधु"]

ओ३म् अर्य्यमा अलख आदि अक्षर अविनाशी।
व्यापक ब्रह्म विशुद्ध, विश्व-वर-विभा-विकाशी॥
सत्य सनातन साम, सोम शम शङ्कर स्वामी।
पुरुष प्राण उद्गीथ, प्रेम प्रभु अन्तर्यामी॥
भगवान्! वीरता बुद्धि-बल, हम लोगों को व्याप्त हो।
गत आर्य्य धर्म्म-वैभव विमल, अखिल विश्व में प्राप्त हो॥ १॥

वैदिक-वैभव आर्य्य-अवनि में, फिर विकसित हो।
पूर्व आर्य्य-सभ्यता ईश! फिर से विलसित हो॥
दिव्य हव्य से हवन करें, हम प्रमुदित प्रति दिन।
साम-गान सानन्द पवित्र करैं हम निशिदिन॥
निर्भय हो कर के सदा वेद-धर्म्म पर दृढ़ रहें।
निज उन्नति के हेतु ही, कठिन कर्म्म पर दृढ़ रहें॥ २॥

धर्म्म-पताका उड़ा विश्व में धर्म्म वीर हों।
कर्म्म-मार्ग में विजय प्राप्त कर कर्म्म वीर हों॥
रण-कौशल में कुशल पूर्ण रणवीर कहावैं।
दृढ़ प्रतिज्ञ हो सदा प्रभो! प्रणवीर कहावैं॥
सब प्रकार ही पूर्ववत्, बढ़ै बुद्धि-बल वीरता।
पुरखाओं के तुल्य ही, धरैं-धर्म्म-धुर धीरता॥ ३॥

अद्भुत यन्त्र

(ले०— पं० कृष्णदत्त आयुर्वेदालङ्कार)

पाठक वृन्द ! आपने बहुत से तरह तरह के यन्त्र इस दुनिया में देखे हैं परन्तु आज जिस यंत्र का वर्णन मैं आपके सामने करना चाहता हूँ वह अपने ढंग का ही है वैसा यंत्र आपने अन्यत्र कहीं न देखा होगा । आप प्रतिदिन षड् रसों का भिन्न २ रूपों में उपभोग करते हैं। आप को यह तो पता रहता है कि आपने क्या खाया और उस का स्वाद कैसा था परन्तु आप को यह ज्ञात नहीं होता कि गले से उतरने के बाद वह भोजन कहाँ जाता है ? उस पर कौन सी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं ? और वह किस तरह पच कर आपके शरीर को पुष्ट करता है ? बड़ा आश्चर्य है कि यह यन्त्र हम सब के पास है फिर भी हमें इस की आकृति और कार्य का परिज्ञान नहीं है !

हम जो भी पदार्थ खाते हैं वे सब इन पाँच नामों के अन्तर्गत हो जाते हैं । i. कर्बोज़ [Carbohydrates.] ii. प्रोटीन [Protein] iii. वसा [Fat] iv. लवण [Salts.] v. जल [Water] । हमारे मुख से गुदा तक एक प्रणाली होती है जिस में इन सब भोज्य पदार्थों का पचन होता है इसे महास्रोतम् [Alimentary canal] कहते हैं ।

मैं आपके सम्मुख एक साधारण लगी लगाई Typical थाली लेता हूँ जिस में उल्लिखित पाँचों पदार्थ क्रमशः खांड, गेहूं की रोटी तथा दाल, मक्खन, नमक और ठंडे जल के भरे हुए गिलास के रूप में रक्खे हैं। रोटी की वेला आती है, आप नहा धोकर ठंडे होकर प्रसन्नता पूर्वक इस थाली को समाप्त करने के लिए रसोई में जा पहुंचते हैं । मनुभगवन् के कथनानुसार आप थाली को देख कर "दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।" अर्थात् खूब खुश होते हैं तथा उस प्रसन्नता को अपनी भिन्न २ चेष्टाओं द्वारा प्रकाशित करते हैं । और थाली में विद्यमान चीजों का स्वाद लेते हुए उस परम पिता परमात्मा का हार्दिक धन्यवाद करते हैं जिसकी यह सब माया है, इतने में थाली समाप्त हो जाती है । बस, यहाँ पर आपका काम समाप्त होता है और मेरा कार्य प्रारम्भ होता है ।

मेरा कार्य आपको यह बताना है कि भोजन के पचने की प्रक्रिया हमारे शरीर में किस तरह होती है ? कई यह समझते है कि भोजन पेट में जाकर पचना शुरु होता है इसलिए येनकेन प्रकारेण भोजन को पेट में धकेल देना चाहिए, आगे वह स्वयमेव पच जायगा परन्तु ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है भोजन का पाक वस्तुतः मुख से ही प्रारम्भ होता है । हमारे मुख में एक रस होता है जिसे लाला [Saliva] कहते हैं । जो मनुष्य जितना अधिक भोजन को चबाता है

उस के मुख से उतना ही अधिक लालारस [Saliva] निकल कर भोजन के पचाने में भाग लेता है इसी लिए साधारणतः कहा जाता है कि भोजन को खब चबा कर खाना चाहिए। भोजन में प्रसन्न रहने का जो मनु का आदेश है वह भी इसी लिए कि जब भोजन करते हुए मनुष्य प्रसन्न होता है तो उस के मुख में लालारस अधिक निकलता है और यही कारण है जिस से भोजन का स्वादु होना भी आवश्यक है। क्योंकि जिस भोजन में कुछ स्वाद नहीं या बेस्वाद है उस के खाने पर लाला ग्रन्थियों का रस नहीं निकलता या कम निकलता है। इस के साथ ही यह भी समझना चाहिए कि स्वादु होते हुए भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से हानि कारक न होना चाहिए। इस लाला रस के दो कार्य हैं। पहला तो यह कि यह मुख की श्लेष्मकला [Mucous membrane] को गीला करता है, बोलने में सहायता देता है, भोजन के घुलन शील पदार्थों के घोलने में भाग लेता है तथा इस में विद्यमान म्यूसिन [Mucin] भोजन के ग्रास को चिकनाई से लपेट कर निगलने योग्य बना देती है। दूसरा कार्य लाला रस में विद्यमान टायलिन [Ptyalin] नामक पदार्थ के कारण होता है और वह निशास्ते [Starch] का तोड़ना है, निशास्ता टूट कर पहले डेक्सट्रिन [Daxtrin] और माल्टोज़ [Maltose] के रूप में आती है और फिर डेक्सट्रिन भी माल्टोज़ के रूप में आ जाता है। इस तरह आप की खाई हुई खाँड और रोटी का बड़ा भाग माल्टोज़ के रूप में आ गया।

मुख से चल कर भोजन गले और भोजन प्रणाली में से होता हुआ जिस स्थान पर पहुंचता है उसे आमाशय [Stomach] कहते हैं। आमाशय के पाचक रस का नाम आमाशयिकरस या Gastric-juice है। इस में पेप्सिन [Pepsin] नामक एक ऐन्द्रियिक पदार्थ है, जिसका मुख्य कार्य प्रोटीन का तोड़ना है। यह पाचकरस इस प्रोटीन को तोड़ कर पेप्टोन [Peptone] की शकल में बदल देता है। इस प्रकार आप ने जो दाल और कुछ रोटी खाई थी वह आमाशय में जाकर पेप्टोन में बदल जाती है। आमाशय से निकल कर जब भोजन छोटी आँतों के प्रारम्भिक भाग–जिसे ग्रहणी [Deodenum] कहते हैं—में पहुँचता है तब यहाँ पर जिस पाचक रस की उस पर क्रिया होती है उसे अग्न्याशय-रस [Pancreatic juice] कहते हैं। यह रस अग्न्याशय [Pancreas] नामक एक ग्रन्थि में उत्पन्न होता है। इस रस में बहुत सारे ऐन्द्रियिक पदार्थ होते हैं जिन में सब से आवश्यक तीन हैं १. ट्रिप्सिन [Trypsin] २. अमाइलेज़ [Amylase] ३. लाइपेज़ [Lipase] आप इन नामों से घबड़ायें नहीं क्योंकि मैं अभी इनका मतलब स्पष्ट किए देता हूँ १. ट्रिप्सिन के वही कार्य हैं जो कि आमाशयिक रस में रहने वाले पेप्सिन [Pepsin] के हैं भेद केवल इतना है कि ट्रिप्सिन अधिक शक्ति शाली है। पेप्सिन की क्रिया के बाद जब ट्रिप्सिन की क्रिया प्रोटीन पर होती है तो प्रोटीन के पचन में जो कुछ कमी रही होती है, वह

सब पूर्ण हो जाती है [२] अमाइलेज़ [Amylase] का कार्य अर्थात् निशास्ते का माल्टोज़ में बदलना, जो कि लाला ग्रन्थियों का भी कार्य था, अग्न्याशयिक रस [Pancreatic juice] का सब से मुख्य कार्य है। लाला ग्रन्थियों की अपेक्षा इस में यह शक्ति बहुत अधिक है यहाँ तक कि यह बिना उबले हुए स्टार्च को भी तोड़ देता है। इस तरह कर्बोज का पचन यहाँ पूर्ण हो जाता है। [३] अग्न्याशयिक लाइपेज़ के द्वारा वसा [fat] अर्थात् मक्खन जो कि आपकी थाली में परोसा गया था, ग्लिसरोल [Glycerol] और वसा-अम्लों [Fatty acids] में बदल जाता है तथा वसा-अम्ल क्षारीय भस्मों से मिल कर Saponification प्रक्रिया द्वारा साबुन बनाते हैं। ये तो वसा में रासायनिक परिवर्त्तन हुए। अब यह देखना है कि इसमें भौतिक परिवर्त्तन शरीर के अन्दर क्या होते हैं? भौतिक परिवर्तन यही होता है कि वसा छोटे छोटे कणों [globules.] के रूपमें टूट जाती है जैसा कि प्राकृतिक घोल [emulsion] दूध में दिखाई देता है, इसे emulcification कहते हैं।

छोटी आँतों के पाचक रस का नाम क्षुद्रान्त्रीय रस [Succus Entericus] है Succus = पाचक रस और Entericus = छोटी आँतें। इसका मुख्य कार्य माल्टोज़ को ग्लुकोज़ [glucose] नामक खांड में बदलना है। इस के अतिरिक्त इस का एक आवश्यक कार्य अग्न्याशयिक रस के कार्यों को प्रबल करना भी है, विशेषतः यह प्रोटीन के तोड़ने में उस की सहायता करता है।

यकृत [Liver] में जो पाचक रस बनता है उसे पित्त [Bile] कहते हैं। यह अपने आप भोजन के पचाने में कोई भाग नहीं लेता परन्तु अग्न्याशयिक रस के साथ मिल कर उस की शक्ति को बढ़ा देता है। वसा के पचन में यह उक्त पाचक रस की विशेष सहायता करता है।

इस प्रकार छोटी आँतों के प्रारम्भिक भाग ग्रहणी में अग्न्याशय [Pancreas] का पाचक रस, छोटी आँतों का पाचक रस और यकृत् का पाचक रस इन तीनों की क्रिया होने के बाद कर्बोज, प्रोटीन और वसा का पचन हो जाता है। परन्तु जल और लवणों का पचन बड़ी आँतों में होता है। अन्न का मल भाग बड़ी आँतों में से होता हुआ गुदा [Rectum] में पहुँचता है और गुदा के गुदद्वार से जब बाहर निकलता है तब हमें मलविसर्जन का अनुभव होता है।

इस तरह हमें पता लगा कि हमने जो कुछ खाया था वह किन भिन्न २ रूपों में जा कर पचता है। अब प्रश्न यह है कि कर्बोज, प्रोटीन, वसा, लवण और जल हमारे अन्दर जज़्ब [Absorb] कैसे होते हैं और हमारे शरीर का भाग किस तरह बनते हैं? इस विषय में यहाँ संक्षेप से इतना कहना ही पर्याप्त है कि जल और लवण तो उसी रूप में बड़ी आँतों में जाकर जज़्ब हो जाते हैं तथा प्रोटीन और कर्बोज अपने विश्लिष्ट रूप में रक्त वाहिनी धमनियों तथा शिराओं के द्वारा और वसा लसीकावाहिनियों [Lymphatic channels या Lacteals.] के द्वारा जज़्ब होते हैं। और अन्त में हमारे शरीर का भाग बन जाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन भोजन हमारे अन्दर पचता और रूपता है।

"तुम्हें मोहनिद्रा बड़ी आरही है"

पं० भूरालाल जी कथाव्यास

खड़े चोर हैं और खिड़की खुली है। तुम्हें नींद है खूब आँखें घुली है ॥
डायन पड़ोसिन की दानत डुली है। बहू छोकरे छीनने पर तुली है ॥
उठो जागने की घड़ी जा रही है।
तुम्हें मोह निद्रा बड़ी आरही है ॥ १ ॥

पड़े स्वार्थ में सन्तरी भाग्य फूटे। लफङ्गे लुटेरों ने सब माल लूटे ॥
तिजोरी के ताले तड़ातड़ हैं टूटे। सकल सम्पदायें पड़ीं मार्ग छूटे ॥
ठगों को मज़े में पड़ी पारही है।
तुम्हें मोह निद्रा बड़ी आरही है ॥ २ ॥

जगो! अबतो निद्रा रही दो घड़ी की। अरे गिर चुकी बल्लियाँ झोंपड़ी की ॥
बातें न समझो लला चोपड़ी की। ज़ल्दी हिफ़ाजत करो खोपड़ी की ॥
बिपद गीत सिर पर खड़ी गा रही है।
तुम्हें मोह निद्रा बड़ी आरही है ॥ ३ ॥

सबल बान्धवों को भगाते हो घर से। स्वयं खाट नीचे दुबकते हो डर से ॥
घृणा घोर घर से, बड़ी प्रीति पर से। परस्पर हृदय में महाद्वेष बरसे ॥
वृथा की लड़ाई लड़ी जा रही है।
तुम्हें मोह निद्रा बड़ी आरही है ॥ ४ ॥

जीवन संग्राम

मनुष्य और उसके शत्रु

(ले० श्री० डा. रामकृष्ण पारिख बी. ए; एम.बी.बी.एस.)

प्राणि शास्त्र वेत्ताओं का मत है कि जगत् और जीवन संग्राममय हैं। इस संसार के वनस्पति और पशु जगतों के अनेकानेक वर्गों, जातियों, उपजातियों और व्यक्तियों के बीच घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। इनमें से प्रत्येक जाति और व्यक्ति की समस्त इच्छा शक्ति और कार्य कारिणी शक्ति एकमात्र इसी उद्देश्य की पूर्त्ति में दत्तचित्त है कि अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों को जीवन संग्राम में जड़ मूल से नाश करके अपनी संतति से संसार को भर दें—अपने सजातियों का पृथ्वीमंडल पर एक छत्र आधिपत्य स्थापित करें। एक ओर तो प्रत्येक जाति इस महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो रही है दूसरी ओर इस की पूर्ति के साधन,जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ, परिमित हैं। इस कारण वश उनके बीच जीवन संग्राम अनिवार्य है। और, वनस्पति वर्ग के प्राणियों के लिए तो अहिंसात्मक जीवन व्यतीत करना-संभव है, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु से तत्व ग्रहण करके सूर्य के ताप की सहायता से उन को जीवन की आवश्यक सामग्रियों में परिणत कर डालने की सामर्थ्य उन में मौजूद है, किन्तु पशु वर्ग के प्राणियों के लिए जीवित रहने का एक-मात्र उपाय अन्य प्राणियों— वनस्पतियों अथवा पशुओं का भक्षण करना है, इस लिए उन को अनिवार्य रूप से हिंसात्मक जीवन व्यतीत करना होता है। इस प्रकार से समस्त पशु-जगत् के जीवन का एक मात्र अवलम्ब, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, वनस्पति जगत् ही है, प्रकृति ने ही वनस्पतिओं को पशुओं का शिकार बना रक्खा है। फिर वनस्पतियों के आहार से संतुष्ट न रह कर पशुओं की अनेक जातियां अपने से निर्बल पशुओं का भक्षण करती हैं, और वे अपने से निर्बलों का शिकार करती हैं। इस प्रकार से पशुओं पशुओं में घोर जीवन संग्राम छिड़ा हुआ है। यद्यपि वनस्पतियाँ सिद्धान्त रूप से अहिंसात्मक जीवन व्यतीत कर सकती हैं, किन्तु व्यवहार में जीवन की आवश्यक सामग्रियों की प्राप्ति के लिए वे एक दूसरे से निरन्तर युद्ध में प्रवृत्त हैं। और, वनस्पति वर्ग के कुछ अत्यन्त सूक्ष्म प्राणियों ने, कदाचित् पशुओं के अत्याचारों का बदला लेने के उद्देश से ही, रोगों का रूप धारण करके पशुओं पर धावा बोल दिया है, और घोर हिंसात्मक जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि पशुओं पशुओं के बीच, वनस्पतियों वनस्पतियों के बीच, और पशुओं वनस्पतिओं के बीच अत्यन्त उग्र जीवन संग्राम छिड़ा हुआ है।

उपरोक्त मत से सर्वथा विपरीत मत कवियों, भक्तों और धार्मिक पुरुषों का है। वे

अखिलविश्व में प्रेम का ही साम्राज्य देखते हैं—प्रकृति के समस्त व्यापारों में उनको एक मङ्गलमय विधान स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। निष्पक्ष मत से विचार करने पर पता चलता है कि दोनों ही मतों में सत्यांश मौज़ूद है—यथार्थ में संग्राम और प्रेम, ये दोनों शक्तियां प्रकृति में कार्य कर रही हैं, और इन्हीं के द्वन्द्व से प्रकृति के चक्र इस तीव्र गति से घूम रहे हैं। विशेषतया मनुष्य में तो इन दोनों शक्तियों का कार्य पृथक् पृथक् और स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। एक ओर तो मनुष्य संग्राम के भाव से प्रेरित होकर अन्य मनुष्यों और जातियों के साथ निरंतर अर्थिक युद्ध-जीवन की आवश्यकताओं पर अधिकार जमाने के संघर्ष—में प्रवृत्त रहता है, जो कि इतिहास में अनेकानेक बार वास्तविक युद्ध का रूप भी धारण कर चुका है, और पिछला महायुद्ध जिसका उदाहरण मात्र था; दूसरी ओर परिवार-प्रेम के भाव से प्रेरित होकर अपने निजी स्वार्थों का बलिदान करता हुआ मनुष्य सामान्यतया देखा जाता है, और अनेकानेक मनुष्यों ने स्वदेश और स्वजाति प्रेम से प्रेरित होकर अपने प्राणों की भी आहुति दे दी है। जो कुछ भी हो जीवन-संग्राम एक ऐसा स्पष्ट, ऐसा प्रबल और स्वयं सिद्ध सत्यहै कि इस के माने विना छुटकारा ही नहीं है। मनुष्य भी सदा ही से इस संग्राम में प्रवृत्त रहा है, और मनुष्य ने इस पृथ्वी पर जो एक विशेष गौरव का स्थान प्राप्त कर लिया है वह इस जीवन-संग्राम में सफलता-लाभ का ही परिणाम है। मनुष्यों और अन्य प्राणियों के बीच जो संग्राम चला आ रहा है, उस पर ही विचार करना हमें इस स्थान पर अभीष्ट है। वे सब प्राणी जो मनुष्य को किसी भी प्रकार की हानि अथवा कष्ट, चाहे आर्थिक अथवा शारीरिक, पहुँचाते हैं, मनुष्य के शत्रु हैं। मनुष्य के शत्रु-समुदाय में वनस्पतियों और पशुओं की कौन कौन सी जातियाँ सम्मिलित हैं, वे किन किन प्रकारों से मनुष्य के प्रति शत्रुता का आचरण करती हैं, उनके कारण मनुष्य को क्या २ और कितनी २ हानियां उठानी पड़ती हैं, उन्होंने किस २ प्रकार से मानव जीवन में अत्यन्त विकट समस्याएं, जीवन और मरण के प्रश्न, उपस्थित कर दिए हैं, इन बातों पर—सृष्टि व्यापी जीवन संग्राम के इस पहलू पर—हमें इस स्थान पर विचार करना है।

अत्यन्त प्राचीन काल में, अपने जीवन के प्रारम्भिक युग में, मनुष्य को अपने शत्रुओं के साथ घोर युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ा था, किंतु वह सब इतिहास अतीत के गर्भ में छिपा पड़ा है, और आज कलके सभ्य मनुष्यों को उस को कल्पना द्वारा भी हृदयङ्गम करना कठिन है। उस समय के प्राणियों की जो ठठरियां भूगर्भ में दबी हुई मिली हैं, और उस समय के मनुष्यों के जो अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य चिन्ह प्राप्त हुए हैं, तथा कुछ गुफाओं में पशुओं और शिकार के जो अत्यन्त प्राचीन चित्र अंकित पाये गए हैं उन से हम उससमय का कुछ अन्दाज़ा लगा सकते हैं। उस युग में पृथ्वी बड़े बड़े घने जङ्गलों से ढकी हुई थी, और वे जङ्गल असंख्य पशुओं से भरे पड़े थे। उन पशुओं में से अनेकों

जातियाँ तो कभी की लुप्त हो चुकी हैं। वे इतने बड़े थे कि उनकी गर्दनें ऊँचे २ वृक्षों की चोटियों तक पहुँचती थी। छिपकली के परिवार के इतने बड़े बड़े प्राणी थे कि मनुष्य उनके सामने एक भुनगा- सा था। आज कल जो हिंसक पशु पाये जाते हैं, यथा शेर, गैंडा, चीता इत्यादि, वे सब अथवा उन के पूर्वरूप अगणित संख्या में मौजूद थे। इन भीमकाय और भूधराकार हिंसक पशुओं से मनुष्य घिरा हुआ था। बनों में, नदियों के किनारे, प्राकृतिक आश्रय स्थानों में, अकेले, दुकेले, सदा ही उस की इन भयंकर शत्रुओं से मुठभेड़ होती रही होगी। उस समय जो दृश्य उपस्थित होता होगा उसकी कल्पना से ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आज कल जब कभी कोई चीता लागू हो जाता है तब वह बीसियों मनुष्यों को खा जाता है, और उस के कारण इतना आतङ्क छा जाता है कि गाँव के गाँव ऊजाड़ हो जाते हैं। जब हम इस बात का विचार करते हैं तो हमेंअत्यन्त आश्चर्य होता है कि उस समय के साधन और आश्रय विहीन मनुष्य ने अपने पत्थर और हड्डियों के भद्दे अस्त्रों से, इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच अपनी जाति की रक्षा किस प्रकार की होगी। किन्तु उस समय के मनुष्यों को आजकल के सभ्य मनुष्यों से तुलना करना व्यर्थ है। परंपरागत संस्कारों से उन परिस्थितिओं में अपनी रक्षा करने की क्षमता उनमें मौजूद थी। निदान मनुष्यों और हिंसक पशुओं का संग्राम हजारों-लाखों वर्षों तक चलता रहा, किन्तु अन्त में मनुष्यों की ही विजय हुई। वे हड्डी और मांस के चलते फिरते पहाड़ जीवन संग्राम के सर्वथा अयोग्य थे। उनके विशाल शरीरों के पोषण के लिए भोजन प्राप्त होना असंभव होगया। जिससे उनकी संख्या घटने लगी और कालान्तर में उनके वंश निर्बीज हो गये। इस जीवन संग्राम में अग्नि ने मनुष्य की बड़ी सहायता की होगी। जंगलों को साफ़ करने के उद्देश्य से मनुष्य ने जब उन में आग लगाई होगी तब जंगल के हज़ारों लाखों जीव एक ही बार में जल कर भस्म होगये होंगे, और इस अस्त्र की अत्यन्त सफलता देखकर उसका उपयोग भी ख़ूब हुआ होगा। निदान जैसे २ जंगल सफा होते गए, जंगली जीवों का नाश होता गया, और मनुष्य के बसने के लिए भूमि निकलती आई। इस महासंहार से जो जंगली पशु बाकी बचे उनमें से अनेकों को मनुष्य ने पालतू बना लिया, और अवशिष्ट मनुष्य की बस्तियों से दूर घने जंगलों में जा छिपे और इस पृथ्वी का निर्विवाद और निष्कंटक राज्य मनुष्य के लिए छोड़ते गए।

कालान्तर में मनुष्य को उस जीवन संग्राम की स्मृति भी शेष न रही, अपने जीवन के उस लंबे और अत्यन्त भीषण अध्यायको उसने सर्वथा विस्मरण कर दिया। अब तो कई हज़ार वर्षों से उस की यह दृढ़ धारणा है कि यह पृथ्वी और और उस पर की समस्त वस्तुएँ और प्राणी सनातन से मनुष्य के उपभोग की सामग्री मात्र हैं। अन्य सचेतन प्राणी स्वतन्त्र जीवन तथा सत्ता रखते हैं, और वे पृथ्वी के साम्राज्य

के लिए मनुष्य से युद्ध में प्रवृत होते हैं, उनके द्वारा लाखों करोड़ों मनुष्यों की मृत्यु होती है,ये बातें तो उसकी कल्पना में भी न आती थीं । किस प्राणी में इतनी धृष्टता हो सकती है कि इस अखिल सृष्टि के मुकुट मणि, ईश्वर के प्रिय-पुत्र, पृथ्वी के स्वच्छन्द प्रभु, मनुष्य के साथ शत्रुता करने का दावा भी कर सके। मनुष्य के इस मिथ्या अहंकार को चूर चूर करने, उस की अज्ञान जनित मोह-निद्रा को तोड़ने और परिस्थिति की वास्तविक भयंकरता की ओर उस का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकृति की ओर से अनेकानेक प्रयत्न होते रहे। अनेकों वार महामारी का रुद्ररूप धारण कर के मनुष्यों में रोग फूट निकला और हज़ारों लाखों मनुष्यों को यमराज के यहाँ भेजता गया,सैंकड़ों बार मनुष्य की फसलें खड़े खड़े नष्ट हो गईं, और उस के पालतू पशु लाखों की संख्या में मर गये । किन्तु फिर भी वास्तविक कारण तक मनुष्य की बुद्धि न पहुँची–उसको यह गुमान तक न हुआ कि इन भीषण व्यापारों का मूल कारण मनुष्यों और कुछ प्राणियों का जीवन संघर्ष है । वह इन को दैवी-कोप अथवा प्राकृतिक उत्पात का परिणाम-स्वरूप समझता रहा, और इन को भी भूकंप, तूफान, बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक घटनाओं की भाँति अनिवार्य तथा अवश्यम्भावी समझता रहा। इस प्रकार से जब कि मनुष्य बेख़बर पड़ा हुआ अपने आप को पृथ्वी का स्वामी समझ रहा था, उस के शत्रु भीतर ही भीतर मनुष्य जाति की जड़ें खोखली कर रहे थे,और मृत्यु के रूप में हज़ारों लाखों की भेंट ले रहे थे।

आख़िरकार मनुष्य की मोहनिद्रा तोड़ने और रोगों की प्रकृति के विषय में सृष्टि के प्रारम्भ से ही जो अज्ञान चला आरहा था उसे दूर करके वास्तविकता को सामने रखने का श्रेय आधुनिक विज्ञान को प्राप्त हुआ। कोई पचास वर्ष हुए कि पैस्च्युर नामक फ्रैंच वैज्ञानिक ने यह खोज निकाला कि एन्थ्रैक्स नामक संक्रामक रोग एक अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी के आक्रमण से उत्पन्न होता है। तब से इस विषय में बहुत कुछ खोज बराबर होरही है, और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा यह सिद्ध होचुका है कि प्रायः सभी संक्रामक रोग विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म प्राणियों के आक्रमण से होते हैं। इस थोड़े से ही काल में इस विषय ने इतना महत्व पाया है कि इन सूक्ष्म प्राणियों के अध्ययन में सैंकड़ों वैज्ञानिक लगे हुए हैं। इस विषय की दूसरी बड़ी खोज २५–३० वर्ष पूर्व डाक्टर मेन्सन और रौस ने की। मेलेरिया नामक रोग को मनुष्यों में फैलाने का काम मच्छर का ही है, यह उन्होंने खोज निकाला। तब से सैंकड़ों वैज्ञानिक मच्छरों और अन्य कीट-पतंगों की खोज में लगे हुए हैं, और रोगों के फैलाने में इस वर्ग के प्राणी जो बड़ा भाग लेते हैं उसके विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त होचुका है। इस प्रकार से पिछले ४०–५० वर्षों में वैज्ञानिक खोजों द्वारा जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उन्होंने हमारे चिरकालीन विचारों और धारणाओं में क्रान्ति उत्पन्न करदी है। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि जिन्हें हम रोग कहते हैं वे और कुछ नहीं हैं

केवल नाना प्रकार के प्राणियों के आक्रमण का परिणाम है—जिन्हें हम रोग कहते हैं वे मनुष्यों और अन्य प्राणियों का जीवन संग्राम है। अनेकानेक प्राणियों ने मनुष्य पर चारों ओर से धावा बोल दिया है, और जब कि उनकी अत्यन्त सूक्ष्मता तथा अपने अज्ञान के कारण मनुष्य को उनके अस्तित्व तक का पता न था, वे रोग और मृत्यु के रूप में लाखों-करोड़ों मनुष्यों की बलि ले रहे थे, मनुष्य की फ़सलों और खाद्य सामग्री को नष्ट-भ्रष्ट करके कल्पनातीत आर्थिक हानि पहुँचा रहे थे। ये मनुष्य के शत्रु जितने ही सूक्ष्म हैं उतने ही भयंकर हैं। इनकी संहारकारी शक्ति के सन्मुख प्रागैतिहासिक काल के भूधराकार हिंसक पशु नगण्य हैं। पृथ्वी के कुछ भागों में इस संग्राम ने इतना उग्र रूप धारण किया है कि उन भागों में मनुष्यों के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित होगया है यदि शत्रुओं के प्रतिकार का कोई उपाय न किया गया तो उन स्थानों में मनुष्य का सर्वथा नाश अवश्यम्भावी है। अभी तक यह संग्राम एकतर्फ़ा था—मनुष्य के शत्रु मनमानी कर रहे थे और मनुष्य की ओर से कुछभी नहीं होरहा था। किंतु अब विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने अपने शत्रुओं का प्रतिकार करना प्रारम्भ कर दिया है, जिससे मनुष्यों और अन्य प्राणियों के संघर्ष ने अब वास्तविक युद्ध, दुतर्फ़ा युद्ध, का रूप धारण किया है।

मनुष्य के शत्रु मुख्यतया दो प्रकार की हानि पहुँचाते हैं—एक शारीरिक हानि, दूसरी आर्थिक हानि। शारीरिक हानि के अन्तर्गत एकाध बूँद ख़ून चूस लेना अथवा साधारण सी पीड़ा पहुँचाने से लेकर अत्यन्त भयंकर रोग और मृत्यु तक सम्मिलित हैं। आर्थिक हानि के अन्तर्गत फ़सलों तथा उपयोगी सामग्रियों का नाश तथा पालतू पशुओं के रोग और मृत्यु सम्मिलित हैं। यहाँ पर हमारा विशेष संबन्ध शारीरिक हानि और उसे पहुंचाने वाले प्राणियों से है। किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि शारीरिक हानि और आर्थिक हानि में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शारीरिक हानि के कारण रोग होता है, और जो मनुष्य अथवा जातियाँ रोगी रहती हैं उनकी उत्पादक शक्ति घट जाती है—वे दरिद्र हो जाती हैं। रोग के कारण अथवा आर्थिक शत्रुओं के नुकसान पहुंचाने के कारण जो मनुष्य अथवा जातियाँ दरिद्र होजाती हैं वे पोषक पदार्थों के अभाव के कारण निर्बल पड़ती जाती हैं, और निर्बलता की दशा में वे और अधिक रोग ग्रस्त होती हैं, और शीघ्रता से मृत्यु पाती हैं। इस प्रकार से रोग से दरिद्रता बढ़ती है और दरिद्रता से रोग बढ़ता है। जो जाति रोग और दरिद्रता के कार्य-कारण सम्बन्धी दुष्ट-चक्र (Vicious circle) में फँस जाती है उसका ईश्वर ही मालिक है। मेलेरिया इत्यादि रोग जिन जातियों में फैलते हैं उनको न केवल रोग ही मारते हैं किन्तु दरिद्रता—इस दुधारी तलवार से भी उनकी संहारकारी शक्ति बहुत बढ़ जाती है, और मनुष्य की रोग-प्रतिषेधक शक्ति बहुत घट जाती है।

मनुष्यों और अन्य प्राणियों का जो

जीवन-संग्राम चल रहा है उसको हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं ; पहिला स्थूल जीवन-संग्राम और दूसरा सूक्ष्म जीवन-संग्राम। स्थूल जीवन-संग्राम और उसमें जो प्राणी भाग लेते हैं वे स्थूल दृष्टि को गोचर हैं और मनुष्य उनसे चिरकाल से परिचित है ; इसके विपरीत सूक्ष्म जीवन-संग्राम का और उसमें भाग लेने वाले प्राणियों का पता मनुष्य को पिछले ५०-६० वर्षों में ही लगा है। स्थूल वर्ग के प्राणियों में मुख्य स्थान जंगली हिंसक जन्तुओं का है। हम देख चुके हैं कि मानवी जीवनके प्रारंभिक काल में मनुष्यों और हिंसक पशुओं के बीच अत्यन्त उग्र जीवन-संग्राम चला था, किन्तु जंगली जानवरों के धीरे-धीरे लुप्त-प्राय हो जाने से अब कई हज़ार वर्षों से यह संग्राम समाप्त सा हो चला है। पृथ्वी के जिन भागों में घनी बस्ती हैं वहाँ तो जंगली जानवर सर्वथा लुप्त होगये हैं, किन्तु भारतवर्ष के कुछ भाग, अफ्रीका और ध्रुवों के पास के प्रदेशों में अब भी जंगली जानवर पाये जाते हैं और यह संग्राम न्यूनाधिक परिमाण में ज़ारी है। मनुष्यों की ओर से संग्राम का भाग उनकी शिकार खेलने की इच्छा से प्रकट होता है, और जंगली जानवरों की ओर से मनुष्यों और उसके पालतू पशुओं पर आक्रमण और उनको मार डालने के द्वारा। भारतवर्ष में अभीतक प्रतिवर्ष दो-ढाई हज़ार मनुष्य जंगली जानवरों के शिकार होते हैं। इन पशुओं में से सन् १९१० में चीतों द्वारा ८३५, बघेलों द्वारा ३६०, भेड़ियों द्वारा २७७, रीछों द्वारा १००, मगरमच्छों और घड़ियालों द्वारा २४४, हाथियों द्वारा ७७ और सुअरों द्वारा ५१ और कुल २२१० मनुष्य मारे गये और उसके पूर्व २५ वर्षों में कुल ६८१६६ मनुष्य मारे गये। इस प्रकार से मनुष्यों की एक अच्छी संख्या इस जीवन-संग्राम में प्रतिवर्ष बलिदान होती है। और दूर दूर देशों से लोग भारतवर्ष में शिकार खेलने आते हैं, इस प्रकार से दोनों ओर से यह जीवन-संग्राम चलरहा है।

स्थूल वर्ग के अन्तर्गत एक अन्य प्राणी भी है जो उपरोक्त सब प्राणियों से कहीं अधिक भयंकर है, और उसके द्वारा होने वाली मृत्युओं की संख्या जङ्गली जानवरों द्वारा होने वाली मृत्युओं से कई गुना अधिक है। वह प्राणी साँप है। सन् १९१० में अकेले साँपों द्वारा भारतवर्ष में २१५७१ मनुष्य मारे गये अर्थात् जङ्गली जानवरों की अपेक्षा दस गुने के लगभग, और उससे पूर्व २५ वर्षों में कुल ५४१८१६। इन संख्याओं से इस शत्रु की भयंकरता का पता लगता है। यदि सरकार उद्योग करे और जिन भागों में जंगली जानवरों की संख्या अधिक है वहाँ यह समस्या शीघ्र ही हल की जा सकती है, किन्तु साँपों की समस्या बड़ी टेढ़ी है। इनकी प्रजोत्पादन शक्ति इतनी अधिक है और इनके रहने के ढंग ऐसे हैं कि इनका नाश कर सकना मनुष्य के लिये बहुत कठिन है। जीवन-संग्राम में अभीतक तो यह मनुष्य से बाज़ी ले रहे हैं, संग्राम की दृष्टि से इनका रहन-सहन उनके बहुत उपयोगी है। दूसरे इस प्राणी ने भारतवासियों के हृदय पर एक विशेष प्रभाव जमा लिया है, उनको एक

प्रकार से मेस्मेराइज़ कर लिया है। लाखों मनुष्य इनकी पूजा करते हैं और इनको मारने को कभी भी उद्यत नहीं होते।

शारीरिक हानि के अतिरिक्त जंगली जानवरों द्वारा मनुष्य को आर्थिक हानि भी पहुंचती है। १९१० में जंगली जानवरों द्वारा ९०,००० और साँपों द्वारा १०,००० पालतू पशुओं की मृत्यु हुई, और पिछले २५ वर्षों में इन दोनों के द्वारा २२ लाख से अधिक की। इसके अतिरिक्त जो जंगली जानवर मांस भक्षक नहीं हैं, वे फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं। जो गाँव जंगलों के पास हैं उनमें जंगली ढोरों, नीलगाय, हिरन, सूअर और खरगोश से खेतों की रक्षा करना बहुत कठिन होजाता है। जंगली जानवरों के उत्पात तथा मलेरिया के कारण हिमालय की तराई के अनेक भाग उजाड़ होगये हैं। जीवन संग्राम में मनुष्य वहाँ अयोग्य सिद्ध हुआ है।

स्थूलवर्ग के प्राणियों में कदाचित् मनुष्य का सब से भयंकर शत्रु चूहा है। इसके द्वारा जो आर्थिक हानि होती है उसी ही का ध्यान कीजिये। जिस समय अनाज खेत में होता है उस समस्त 'काल में, खलिहान में, मण्डियों की खत्तियों में, हमारे घरों में, बन्दरगाहों की गोदियों में, जहाज़ों में, समुद्र पार के देशों में, आटा पीसने की चक्कियों में, आटे में, आटे से बने हुए पदार्थों में अर्थात् खेत में आनाज बोने के समय से लेकर हमारे मुंहके अन्दर पहुंचने के समय तक हमारे धान्य की राशि में से चूहे का हिस्सा बराबर लगता रहता है। इसके साथ ही जब हम इसकी अति शीघ्र संख्या वृद्धि को ध्यान में रखते हैं तो हम पर सहज ही प्रकट होजाता है कि इसके बराबर मनुष्य का आर्थिक शत्रु कोई नहीं है, और इस के द्वारा होने वाली अकेले भारतवर्ष की हानि जो २४० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष अनुमान की जाती है, इस अन्दाजेमें कदाचित् अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया गया है। फिर आर्थिक हानि पर ही बस नहीं है, इस प्राणी द्वारा फैलने वाले प्लेग रोग से भारतवर्ष में ही करोड़ से अधिक मनुष्य मृत्यु पाचुके हैं। जब हम असंख्य वर्षों से चली आने वाली कल्पनातीत आर्थिक हानि, और पिछले २५-३० वर्षों की ही महान् जनहानि पर विचार करते हैं, और जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि किस प्रकार से इसके द्वारा उत्पन्न रोग ने एक चिरस्थायी महामारी का रूप धारण करके पिछले २५-३० वर्षों से भारत में आतङ्क जमा रक्खा है और लाखों घरों को तबाह कर दिया है, तब यह क्षुद्र प्राणी हमारी कल्पना में महाभयंकर रूद्र मूर्त्ति धारण करता है-साक्षात् यमराज के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस क्षुद्र प्राणी में अपने आपको अखिल सृष्टि का मुकुटमणि और बुद्धि का एकमात्र अधिकारी मानने वाले मनुष्य के साथ अत्यन्त सफलतापूर्वक जीवन-संग्राम चलाने की असाधारण क्षमता है।

सूक्ष्म जीवन-संग्राम में जो प्राणी भाग लेते हैं उनमें से कुछ पशु वर्ग के हैं और कुछ वनस्पति वर्ग के। इन सबका आकार

छोटा है, और अनेकों तो इतने सूक्ष्म हैं कि जो अणुवीक्षण यन्त्र वस्तुओं को हज़ार से भी अधिक गुना बड़ा कर देते हैं उनके द्वारा भी वे दिखाई नहीं पड़ते, और इनमें से बहुत अधिक स्थूल चक्षुओं को अगोचर हैं। ये प्राणी मनुष्य का आश्रय ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ मनुष्य के शरीर के अन्दर प्रविष्ट होजाते हैं, कुछ त्वचा में घर कर लेते हैं, और कुछ भोजन के लिए मनुष्य के शरीर पर आते हैं। किसी भी प्रकार से हो वे मनुष्य के शरीर में से खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं, और मनुष्य के खर्च पर जीवित रहते हैं और वंश-वृद्धि करते हैं। इस प्रकार के प्राणी पराश्रयी जीव (Parasites) कहलाते हैं, और जिस प्राणी से वे खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं वह उनका यजमान (Host) कहलाता है। पशु जगत के पराश्रयी जीवों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं। प्रथम कीट इत्यादि (Worms), दूसरे पतंग इत्यादि (Insects) और तीसरे निम्नतम श्रेणी के पशु (Protozoa)। वनस्पति जगत के पराश्रयी जीव जीवाणु, कीटाणु या Bacteria कहलाते हैं। इन पराश्रयी जीवों की संख्या इतनी अधिक है, उनके जीवन यापन के रंग-ढंग इतने जुदा-जुदा हैं, उनके आक्रमण की विधियाँ इतने जुदा-जुदा प्रकारों की हैं, उनके द्वारा उत्पन्न शारीरिक विकारों और रोगों के लक्षण इतने भिन्न-भिन्न हैं कि इन सबका वर्णन इस स्थान पर असम्भव है। इनमें से जिन्होंने अपनी भीषणता प्रबलता तथा संहारशक्ति के कारण मनुष्य-जगत में हलचल मचा दी है, जो जीवन-संग्राम की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं, उन्हीं के विषय में, तथा उनके कारण उत्पन्न समस्याओं के विषय में, हम कुछ वक्तव्य करेंगे।

कीटवर्ग की अनेक जातियाँ और उपजातियाँ मनुष्य के अन्दर पराश्रयी जीवों की भाँति रहती हैं। राउन्ड वर्म केंचुए को सब कोई जानना है, जो ६-१२ इञ्च लम्बे और गोल होते हैं, तथा मनुष्य की आँतों में रहते हैं। उनके अण्डे मल के साथ बाहर निकलते हैं, और भोजन के पदार्थों के साथ अन्य मनुष्यों की आँतों में पहुँचते हैं, और वहाँ बढ़ने लगते हैं। टेपवर्म लम्बे और पतले फीते के सदृश होते हैं। उनके बीज रूप गाय, सूअर और मछलियों के दूषित माँस में रहते हैं, और उस दूषित माँस द्वारा मनुष्य की आँतों में पहुँचते हैं, और वहाँ चिपटकर रक्त चूसते हैं और अपरिमित रूप से बढ़ने लगते हैं। उनके अण्डे मल द्वारा बाहर निकलते हैं। जब उस मल को कोई उपयुक्त जानवर खा लेता है, तब अण्डे उसके माँस में पहुँच कर उन्नत होते हैं, और फिर माँस द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं। थ्रेडवर्म $\frac{१}{२}$ इञ्च लम्बे सूत के धागे के से होते हैं और गुदा के आसपास रहते हैं। गिनीवर्म एक २०-३० इञ्च लम्बा पतला कीड़ा होता है जो बहुधा टाँग की त्वचा में छिद्र करके धीरे-धीरे बाहर निकलता है। बिलहार्जिया हीमेटोबिया एक $\frac{१}{२}$ लम्बा कीड़ा होता है जो दूषित पानी द्वारा शरीर में पहुँचता है और जिगर की शिराओं में

रहता है और मूत्राशय की शिराओं में अण्डे देता है, जो मूत्र के साथ बाहर निकलते हैं और फिर पानी को दूषित कर देते हैं। यह मिश्रदेश का जातीय रोग है, कुछ भागों में ६० प्रतिशत लोग इससे पीड़ित हैं। ये तथा अन्य अनेक कीड़े पराश्रयी जीवों की भाँति पृथ्वी के अनेक भागों में पाये जाते हैं, और उनसे पीड़ित रोगी अनेक कष्ट और रोग भुगतता है तथा उसके स्वास्थ्य को बड़ा धक्का पहुँचता है। बहुत से मनुष्य इन कीड़ों से आक्रान्त होते हैं, किंतु जब तक मल-परीक्षा नहीं की जाती तब तक रोग का कारण ज्ञात नहीं होता, और उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला जाता है। कलकत्ते के एक सर्जरी के अस्पताल के रोगियों की मल-परीक्षा की गई तो पता लगा कि उनमें से ५० प्रतिशत के लगभग विविध प्रकार के आँत्र पराश्रयी जीवों से आक्रान्त थे।

कीट वर्ग का एक अन्य प्राणी है। जो जीवन संग्राम की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है। इसने पृथ्वी के बड़े २ भागों में मनुष्यों की समूची जातियों पर बड़ा विकट आक्रमण कर रक्खा है। इसका नाम हुक वर्म है। यह एक १/३ इञ्च से १/२ इञ्च लम्बा बेलानाकार सूत-सदृश कीड़ा होता है जिस के मुख में चार दाँत होते हैं, जिनके द्वारा यह आँतो की श्लेष्मिक कला को पकड़ लेता है और उसको खाता रहता है तथा रक्त चूसता रहता है। इसके अण्डे मल के साथ शरीर से निकलते रहते हैं। जिन मनुष्यों के शरीर में यह कीड़े अच्छी संख्या में होते हैं, उनके प्रत्येक मलमें ४०लाख तक अण्डे बाहर निकलते हैं। बाहर निकल कर अण्डों का विकाश होता है और उन में से लार्वा निकल कर चारों ओर के पदार्थों—पत्तियों, शाखाओं, झाड़ियों, शाक भाजियों इत्यादि पर चढ़ बैठते हैं और किसी मनुष्य के शरीर में प्रवेश पाने की बाट जोहते रहते हैं। मनुष्य के शरीर के अन्दर ये दो मार्गों से प्रवेश पासकते हैं, मुख द्वारा अथवा त्वचा द्वारा। इन कीड़ों से दूषित पदार्थों को मनुष्य खाता है, और रोग ग्रस्त हो जाता है। किन्तु इस रोग के अत्यधिक विस्तार का कारण त्वचा द्वारा इन कीड़ों का प्रवेश पाना है। इन कीड़ों में अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक मनुष्य के शरीर के अन्दर घुस जाने की विलक्षण शक्ति होती है। जिस वस्तु पर यह चढ़े हुए हैं उसके साथ मनुष्य की त्वचा का सम्पर्क-मात्र होने से यह चट त्वचा के अन्दर घुस जाते हैं। त्वचा में प्रविष्ट होकर रक्त वाहिनियों द्वारा हृदय में पहुँचते हैं, वहाँ से फेफड़ों में, फिर श्वास नलियों द्वारा मुख में और फिर थूक के साथ निगले जाकर आँतों में पहुंच जाते हैं, और वहाँ वृद्धि करते हैं। जिन मनुष्यों में यह रोग होता है है वे निरन्तर दुर्बल होते जाते हैं, उनके शरीर का रक्त घटता जाता हैं, और बराबर रक्त के घटने से अन्य रोग घेर लेत हैं। वे चिर रोगी हो जाते हैं। और जीवन संग्राम के सर्वथा अयोग्य, और अन्त में इस के कारण मृत्यु पाते हैं।

यह रोग एक संसार व्यापी समस्या है। यह कीड़ा एशिया अफ्रीका और अमेरिका के समस्त उष्ण और शीतोष्ण

भागों में पाया जाता है, और यूरोप में भी मौजूद है। भारतवर्ष में यह बहुत अधिकता से पाया जाता है। बङ्गाल और आसाम में तो प्रायः समस्त जनता न्यूनाधिक परिमाण में इस कीड़े का शिकार है। अनुमान लगाया गया है कि वहाँ ३½ से ४ करोड़ व्यक्ति इस कीड़े द्वारा आक्रान्त हैं। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि प्रत्येक रोगी के प्रत्येक मल के साथ इसके लाखों अण्डे बाहर निकलते हैं, वहमल बस्तिओं के आसपास खेतों और मैदानों में खुला पड़ा रहता है जिस से अंडे विकसित होकर आसपास के सब पदार्थों पर चढ़ बैठते हैं; और इन कीड़ों द्वारा दूषित स्थानों और पदार्थों के बीच समस्त जनता नङ्गे पाँव और नङ्गे शरीर फिरती है, और अज्ञातरूप से इन कीड़ों को नित प्रति अपने शरीर में ग्रहण करती रहती है। जब मनुष्य के अज्ञान तथा असावधानी से इन कीड़ों के प्रचार में इतनी सुविधा की जाती है तब इस में आश्चर्य ही क्या है कि समूची की समूची जातियाँ इन कीड़ों से आक्रान्त हैं। यह क्षुद्र प्राणी समूची जातियों का रक्त चूस चूस कर उन को निर्बल अशक्त और रक्त हीन बना रहा हैं, उनको जीवन संग्राम के सर्वथा अयोग्य और चिर रोगी बना रहा है, उनको धीरे २ किन्तु निश्चित रूप से मृत्यु की ओर धकेल रहा है। जब हम इन बातों पर विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि जीवन संग्राम में इस तुच्छ प्राणी ने मनुष्य को बुरी तरह से पछाड़ रखा है।

जीवन संग्राम में पतङ्गों का वर्ग एक विशेष स्थान रखता है, क्योंकि इसमें जितनी सफलता इसको प्राप्त हुई है उतनी कदाचित ही किसी अन्य वर्ग को प्राप्त हुई हो। हिसाब लगाया गया है कि पशुओं के निम्नतम वर्ग प्रोटोज़ोआ के अन्तर्गत ४००० जातियाँ हैं, उससे उच्चवर्ग मौलस्क के अन्तर्गत २५०००, पक्षिवर्ग में १००००, स्तन पोषी वर्ग में ३,०००, और पतङ्ग वर्ग के अन्तर्गत २ लाख से १० लाख तक, अर्थात् पशु जगत् के अन्य सब वर्गों की संयुक्त जातियों की अपेक्षा अकेले पतंगों की जातियां दुगनी से पचगुनी है। फिर पतंगों की अनेकानेक जातियों के व्यक्तियों की संख्या इतनी अधिक है कि उसका कोई अन्दाजा ही नहीं हो सकता। गर्मियों के प्रारम्भ होने पर ज़ब मक्खियों का प्रकोप होता है और चारो ओर मक्खियाँ ही मक्खियाँ भिनभनाती फिरती हैं क्या उनकी संख्या का कोई अन्दाज़ा हो सकता है। वर्षा की समाप्ति पर चारों ओर असंख्य ताल-तलैयें भर जाती हैं, और मच्छर उन में अण्डे देता है। प्रत्येक ऐसी ताल तलैया में प्रति दिन कितने मच्छर उत्पन्न होते हैं इसका अन्दाज़ा ही कठीन है। फिर देश भर की तलैयों में प्रतिदिन जितने नये मच्छर उत्पन्न होते हैं उनकी संख्या के आगे तो हमारे गणना-शक्ति हार बैठती है। कभी २ इतना बड़ा टिड्डी दल निकलता है कि उस के कारण आकाश पट जाता है, सूर्य्य छिप जाता है, और दिन में अन्धेरा-सा छा जाता है; उनकी बाढ़को रोकने में आग और पानी असमर्थ रहते हैं उनकी आहुति से आग बुझ जाती है, और पानी पट जाता है,

उनके कारण सैकड़ों मील के भूभाग में एक भी हरी वस्तु शेष नहीं रह जाती–सब सफा चट हो जाता है। क्या उनकी संख्या का कोई अन्दाज़ा हो सकता है। यह सब बातें जीवन संग्राम में पतङ्ग वर्ग की असाधारण सफलता का परिचय देती हैं। आत्म–रक्षण और आक्रमण दोनों की दृष्टि से उनकी स्थिति अत्यन्त प्रबल है।

पतङ्ग वर्ग की अधिकाँश जातियाँ पराश्रयी जीव हैं। वे वनस्पतिओं, पशुओं, और मनुष्यों के शरीर पर आश्रय ग्रहण करती हैं और उनमें से अपने खाद्य पदार्थ संग्रह करती हैं। उन में से अधिकांश से मनुष्य का कोई संबन्ध नहीं है, किन्तु अनेक मनुष्य से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करती हैं। उनके कारण हरे भरे खेत उजाड़ हो जाते हैं, बाग़ बगीचे नष्ट हो जाते हैं, और हरे भरे जङ्गल मरु भूमि बन जाते हैं, और अनेकों प्रकार से हमारी खेती को बड़ा भारी नुक़सान पहुँचता है। हिसाब लगाया गया है कि पतङ्गों के कारण अमेरिका को ३०० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की हानि होती है। अनेक प्रकार के पतङ्ग हमारे पालतू पशुओं को काट काट कर उनका रक्त चूसते रहते हैं और इस प्रकार से उन्हें इतना तङ्ग करते हैं कि उनका जीवन कठिन कर देते हैं। इसके अतिरिक्त वे उन में अनेक भयंकर रोग फैलाते हैं, जिससे हज़ारों पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

कुछ पतंग मनुष्य से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे मनुष्य के शरीर में से रक्त चूसते, अन्य प्रकार से अपने लिये खाद्य पदार्थ संग्रह करते तथा विशेष शारीरिक और मानसिक कष्ट तो देते ही हैं, किन्तु उनकी भयङ्करता इस बात में है कि वे बड़े बड़े भयंकर रोगों को मनुष्य में फैलाने का काम करते हैं। जूं [lice] हमारे शिर और शरीर पर रहती है तथा रक्त चूसती है। शारीरिक कष्ट देने के अतिरिक्त अनेक रोगों यथा टाइफस और रिलेप्सिङ्ग फीवर की फैलाने वाली मानी जाती है। खुजली का जो अत्यन्त दुष्ट रोग होता है वह एक पतंग के कारण होता है जो हमारी त्वचा में घुस कर अपने रहने के लिये स्थान बना लेता है। खटमलों के उपद्रव के कारण जो हमें कष्ट होता है उस से आप भली भाँति परिचित हैं; इसके अतिरिक्त इन पर अनेक रोगों के फैलाने का भी अपराध लगाया गया है, यथा ऐन्थेक्स, काला आज़ार, कोढ़ त्वचा रोग इत्यादि। पिस्सू काट काट कर तो कष्ट देता ही है, किन्तु चूहे का पिस्सू प्लेग फैलाने का मुख्य साधन है। अफ्रीका में एक प्रकार की मक्खी होती है जो एक अत्यन्त भयंकर रोग फैलाती है जिसका नाम निद्रा रोग (Sleeping Siekness) है। मच्छर अपना राग तो हमें सुनाता ही है, इसके अतिरिक्त तीन भयंकर रोगों का फैलाने वाला है, यथा मेलेरिया, येलोफीवर और फाइलेरियासिस। साधारण मक्खी काटती तो नहीं है, किन्तु अनेक रोगों की फैलाने वाली मानी जाती है। यह अशुद्ध से अशुद्ध स्थानों पर बैठती हैं। जिस से उनके पैरों और पङ्खों पर अनेक प्रकार के रोगों के जीवाणु लगजाते हैं और फिर भोजन के

पदार्थों पर बैठ कर उनको दूषित कर देती हैं। जो जीवाणु भोजन द्वारा शरीर में पहुंचते हैं उनके फैलाने में यह बहुत सहायता दे सकती है, यथा हैज़ा, डिसेंटरी, टाइफॉयड, डायरिया, इत्यादि । कुछ मक्खियां घावों में अण्डे दे देती है जहां वे विकसित होकर लार्वा बन जाते हैं और घाव की दशा बहुत खराब कर देते हैं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि पतंग वर्ग के अनेक जीव मनुष्यों और पशुओं में अनेकानेक रोग फैलते हैं । इन सब में तीन विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि उनकी रोग फैलाने की शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी है कि बड़े बड़े महाद्वीपों पर उनका अतङ्क छाया हुआ है। इन में सर्वप्रथम स्थान मच्छर का है। मच्छर के कारण ऐशिया, अफ्रीका, और अमेरिका का अधिक भाग संत्रस्त है । यह तीन भयंकर रोग फैलाता है— मलेरिया, येलो फीवर और फाइलेरियासिस। मलेरिया एक अत्यन्त विस्तृत रोग है, जिसने मनुष्य की अनेकों जातियों को अपने शिकजे में कस रक्खा है। इसके कारण वे निरन्तर रोग ग्रस्त रहती हैं, उनका स्वास्थ बिगड़ता जाता है, वे दरिद्री और जीवन संग्राम के अयोग्य होती जाती हैं। इस रोग का कारण पशुओं के निम्नतम वर्ग का एक अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी है, जो रोग ग्रस्त लोगों के रक्त में रहता है, और जिसे मच्छर रक्त के साथ चूस कर स्वस्थ लोगों में फैलाने का कारण होता है।मलेरिया के कारण भारतवर्ष में १०–११ लाख मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं।

येलो फीवर एक अत्यन्त भयंकर संक्रामक रोग है जो अमेरिका के उष्ण प्रदेश और अफ्रीका में पाया जाता है। पनामा की नहर बनाते समय जितने मज़दूर वहां भेजे गये उनमें से अधिकांश बहुत शीघ्र ही येलोफीवर के शिकार हो गये, और काम बन्द करना पड़ा। जब इसके फैलाने वाले मच्छरों को अनेक उपायों से नष्ट कर डाला गया, तब रोग बन्द हो गया, और काम जारी हो सका। १९०६ में येलो फीवर का अन्तिम केस हुआ। मच्छर फलेरियारिस रोग को भी फैलाता है। इस रोग से पीडितव्यक्ति के लसी कासंस्थान में कीट जाति के लंबे सूत-सदृश प्राणी, फाईलेरिया रहते हैं। इनके कारण वह अत्यन्त अदर्शनीय दशा उत्पन्न होती है जिसे Elephantiasis या फ़ीलपा कहते हैं । रोगाक्रान्त व्यक्ति के प्रान्तस्थ रक्तसंचार में रात्रि के समय इसके लाखों बीज-रूप प्रकट होते हैं । उस समय मच्छर काटता है और कुछ बीज रूपों को भी अपने साथ ले जाता है । वहां वे विकसित होते हैं, और जब मच्छर किसी अन्यव्यक्ति को काटता है तो उसके शरीर में पहुंच कर रोग उत्पन्न कर देते हैं । यह रोग भारतवर्ष और अफ्रीका में अधिकता से पाया जाता है । कुछ दक्षिणी द्वीपों में ३०–४० प्रतिशत व्यक्ति इस से आक्रान्त हैं। इस प्रकार से एक दो नहीं किन्तु पूरे तीन ऐसे भयङ्कर और बहुव्यापी रोगों को फैलाने का उत्तरदायित्व मच्छर पर है । जीवन संग्राम में यह मनुष्य को अकथनीय हानि पहुँचा रहा है।

चूहे का पिस्सू चूहे से मनुष्य में प्लेग के

जीवाणु पहुँचाता है। चूहा, चूहे का पिस्सू और प्लेग का जीवाणु–इस त्रिमूर्ति ने गज़ब ढा रक्खा है। अत्यन्त प्राचीनकाल से पृथ्वी के अनेक देशों में जब तब महामारी का रूप धारण करके प्लेग फूट पड़ा है, और जातियों की जातियों की सफ़ाई कर चुका है। सन् १८९६ से इस शनिश्चर ने भारतवर्ष में प्रवेश किया है, और इसके कारण असंख्य जीवहत्या हुई है। संहारकारी शक्ति में अन्य सब रोगों की अपेक्षा इन्फ्लुएंजा और प्लेग सब से बढ़े चढ़े हैं। १८९७–१९१० तक प्लेग द्वारा भारतवर्ष में ६५ लाख मनुष्य मृत्यु पा चुके थे और उसके बाद अभी तक वह सिलसिला जारी है। और १९१३-१९१८ तक १९ लाख।

अफ्रीका अन्धकार-ग्रस्त महाद्वीप कहलाता है। केवल मिश्र को छोड़ कर, सो भी अत्यन्त प्राचीनकाल में, आजतक अफ्रीका के किसी भी भागमें सभ्यता अपना आसन नहीं जमा सकी है। भारतवर्ष से अफ्रीका का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध है। अपने विलिक्षण विस्तार के काल में बौद्ध धर्म अफ्रीका भी अवश्य पहुंचा होगा, किन्तु वहां रत्ती भर भी अपना प्रभाव न जमा सका। ईसाई और मुसलमान सभ्यता भी पहुंचीं, किन्तु अफ्रीका को अभी तक वे भी सभ्य न बना सकी हैं। कारण स्पष्ट है। अफ्रीका के गरम भागों में वर्षा तथा गर्मी बहुत अधिक होती है, जिससे वनस्पति जीवन और निम्न वर्गों के पशु खूब फलते फूलते है, किन्तु ऊँचेवर्गों के पशु और विशेषतया मनुष्यों का मरण है। वहाँ अन्य प्राणियों और मनुष्य का घोर जीवन संग्राम चल रहा है, और उस संग्राम में मनुष्य की स्पष्ट हार होरही है। इन शत्रुओं में मच्छर मलेरिया और येलोफीवर के जीवाणु इत्यादि अनेक हैं, किन्तु सब से बिकराल निद्रा रोग है। इस रोग का कारण पशु जगत् के निम्नतम वर्ग प्रोटोज़ोआ का एक अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी है जो ट्रायपेनोसोमा कहलाता है और मनुष्यों में इस रोग को फैलाने का काम एक मक्खी करती है जो ग्लौसिना कहलाती है। रोगी मनुष्यों की रक्तधारा में इसके जीव रहते हैं, और यह मक्खी रक्त चूस चूस कर इसे फैलाती है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को बराबर बुख़ार आता रहता है वह दुर्बल होजाता है, वह नशे की सी हालत में रहता है,और निद्रा अधिक आती है। अन्त में उसकी तन्द्रावस्था गहरी होती जाती है, वह बेसुध सा पड़ा रहता है, और इस प्रकार से कुछ महीनों से लेकर दो तीन वर्षों तक घिसट घिसट कर मृत्यु पाता है। अफ्रीका के पूर्वी भागों में विशेषतया यह रोग इतना फैला हुआ है कि पिछले दस वर्षों में पाँच लाख मनुष्य इस से मर चुके हैं। और उन भागों के निवासियों में ३० से ५० प्रति शतक इस रोग द्वारा आक्रान्त हैं और उनकी मृत्यु अवश्यम्भवी है। मृत्यु के कारण तथा रोग के भय से भाग जाने के कारण अफ्रीका के बड़े २ भाग वीरान पड़े हुये हैं। इस रोग तथा अन्य रोगों की दुष्ट छाया अफ्रीका महाद्वीप के ऊपर शताब्दियों से पड़ी हुई है और उस के कारण वहां मनुष्य अभी तक पनपने नहीं पाया है।

पशु जगत् के निम्नतम वर्ग प्रोटोज़ोआ, एक कोष्ठ वाले पशुओं में से भी कुछ मनुष्य

के अत्यन्त भयंकर शत्रु हैं। उन में से मलेरिया और निद्रा रोग के जीवों का वर्णन होचुका है। शेषों में से उपदंश और काला-आज़ार रोगों के प्राणी महत्व के हैं। उपदंश रोग का कारण स्पायरोकीटा नाम का प्राणी है, जो कि लैङ्गिक संबध द्वारा आक्रान्त व्यक्तियों से स्वस्थों में फैलता है। यह रोग समस्त शरीर को विकारयुक्त कर देता है, और इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को जब तक जीवित रहता है कोई न कोई विकार होता रहता है। इस के रोगी की सन्तति जीवित नहीं रहती है, और यदि जीवित रहती है तो विरसे में यह रोग पाती है। यह एक अत्यन्त प्राचीन रोग है, किन्तु इस सभ्यता के युग में इसने विशेष प्रचार पाया है, और बड़े २ शहरों में तो यह बहुत अधिक फैला हुआ है। यह रोग सन्तान पर प्रभाव डालने के कारण जाति को जड़ पर कुल्हाड़ा मारता है। काला आज़ार भयंकर रोग है जो चीन, वर्मा अफ्रीका भारतवर्ष, विशेषतया बंगाल और आसाम में पाया जाता है। यह लीशमेन डोनोवन बौडीज़ (Leishman Denovan Bodies) नाम के प्राणियों से होता है, जो कदाचित् खट्‌मलों द्वारा फैलते हैं। इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों में से ६० प्रतिशत बुखार, रक्त ह्रास, प्लीहा-यकृत वृद्धि इत्यादि के कारण एक दो साल में मर जाते हैं। जो इस के चुंगल में फंस जाता हैं उस का अन्त ही समझो। इसी ही कारण यह काला आज़ार अर्थात् रोग कहलाता है।

अब हम वनस्पति वर्ग के निम्न-तम प्राणी Bacteria अर्थात् जीवाणुओं पर आते हैं। ये एक अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी हैं जिन में से कुछ तो इतने सूक्ष्म हैं कि अच्छे अच्छे अणुवीक्षण यंत्र द्वारा भी नहीं दिखाई पड़ते हैं। ये पृथ्वी के अन्दर, पृथ्वी के तल पर, वायु में, जलमें, हमारे शरीरों पर, हमारे फेफड़े और आंतों में, हमारे भोजन और कपड़ों में, सर्वत्र समान रूप से पाये जाते हैं—सर्व व्यापी हैं। केवल अग्नि से इनका वैर है नहीं तो सब ही जगह इनकी पहुँच है। इस पृथ्वी पर जितने प्राणी हैं इन सब का जीवन इन जीवाणुओं पर अवलम्बित है। यह जो आप शस्य-श्यामला वन-राजि-शोभित असंख्य प्रकार के वनस्पतिओं से हरी भरी, लहलाती वसुन्धरा देखते हैं, यह जो आप असंख्य प्रकारके पशु-पक्षियों से भरी हुई पृथ्वी देखते हैं, यह जो आप मनुष्य की अगणित संतति, सभ्यता का अद्भुत विकास तथा नानाविध व्यापार-उद्योगों से पूरित पृथ्वी देखते हैं, वह इन जीवाणुओं विनाएक शुष्क, जीवनशून्य मरु भूमि होती— उस पर किसी भी प्रकार का जीवन न होता। इसका मुख्य कारण यह है कि जीवन का एक-मात्र आधार जो प्रोटोप्लास्म है, जिस से समस्त सचेतन प्राणी बने हुए हैं, उस की रचना में नाइट्रोजनकी आवश्यकता होती है, और केवल जीवाणुओं में ही यह शक्ति है कि वायु की नाइट्रोजन को ग्रहण करके उसके रसायनिक योग बना सकें, और इस प्रकार से अन्य प्राणियों के लिए उसे सुलभ बना सकें। दूसरे जितने प्राणी मरते हैं उन को जीवाणु विश्लेषण कर के मूल तत्त्वों में परिणत कर देते हैं। इस प्रकार से पृथ्वी की उर्वरा

शक्ति को क़ायम रखते हैं और बढ़ाते भी हैं।

जो जीवाणु जीवन के लिये इस प्रकार से अनिवार्य हैं वही जीवन संग्राम में मनुष्य के सब से भयङ्कर शत्रु हैं। जो एक रूप में विष्णु के समान प्राणीमात्र का पालन पोषण करते हैं, वही दूसरे रूप में शङ्कर के समान सृष्टि का संहार करते हैं। बात यह है कि कुछ जीवाणुओं ने पराश्रयी-जीवन अख्तियार कर लिया है, वे जीवित प्राणियों पर आक्रमण करते हैं। जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों की संख्या बहुत अधिक है, और उन रोगों के कारण होने वाली मृत्युओं की संख्या भी बहुत अधिक है। जीवाणुओं की इस प्रचण्ड संहार-कारिणी शक्ति के दो मुख्य कारण हैं। एक तो उनकी प्रजोत्पादन शक्ति बहुत ही बढ़ी चढ़ी है, जिस के कारण परिस्थिति सम्बन्धी अनुकूलताओं में कुछ ही घंटों के अन्दर एक जीवाणु से असंख्य जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। जीवणुओं का उत्पत्ति काल आध घंटे के लगभग है। प्रति आध घंटे में वे दुगने हो जाते हैं। इस प्रकार से एक जीवाणु के १६ घंटों में ४३० करोड़ जीवाणु हो जाते हैं। दूसरे वे एक प्रकार का विष बनाते हैं जो आक्रान्त व्यक्ति के शरीर की समस्त क्रियाओं पर अपना दूषित प्रभाव डालता है। इस कल्पनातीत संख्या बल, तथा विष निर्माण के कारण इस क्षुद्रातिक्षुद्र प्राणी की संहारकारिणी शक्ति इतनी अधिक होगई है कि इस के कारण जितने रोग और जितनी मृत्युयें होती हैं उन के मुक़ाबिले में अन्य कारण कुछ भी नहीं हैं। ये मनुष्य के सब से बड़े, सब से कट्टर शत्रु हैं।

इन के कारण जो रोग होते हैं उन की यदि सूची बनाई जाय तो बहुत अधिक रोग उस के अन्तर्गत आजांय। मस्तिष्क, आंख, कान, नाक, मुंह, गला, फेफड़े और उनकी नलियां, हृदय और रक्तवाहिनियाँ, आमाशय, आंतें, जिगर, तिल्ली, वृक्ष, मूत्राशय गर्भाशय इत्यादि इत्यादि शिर से लेकर पैर तक शरीर के जितने अङ्ग और अवयव हैं उन सब में इन जीवाणुओं के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। हमारे शरीर के बाहर त्वचा पर सदा ही अनेक प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणु रहते हैं। इसी ही प्रकार से हमारी आँख, कान, नाक, मुंह, श्वास-मार्ग और फेफड़े, भोजन मार्ग—अमाशय और आंतों में भी अनेक प्रकार के जीवाणु रहते हैं, किन्तु साधारणतया इन की उपस्थिति मात्र से कोई रोग नहीं होता। रोग के लिये आवश्यक है कि यह जीवाणु शरीर के रचना-तंतुओं में प्रवेश करें। जीवाणुओं का प्रवेश पाना आक्रमण करना कहलाता है। जीवाणुओं के आक्रमण करने पर उनमें और शरीरके रचना-तंतुओं में संग्राम चलता है। जीवाणु विषैले पदार्थ बनाते हैं, और शरीर के रक्षक अङ्ग उनको मार डालने की चेष्टा करते हैं। यदि जीवाणु जीत जाते हैं तो रोग हो जाता है, और यदि हार जाते हैं तो मनुष्य स्वस्थ रहता है। त्वचा तथा श्लैष्मिक कलाओं के ज़ख्म द्वारा जीवाणु बहुत सुगमता से शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं, और रक्त-संचार के साथ मिलकर सारे शरीर में फैल जाते हैं। बड़ी आँतों के अन्दर असंख्य जीवाणु होते हैं, और वे मल के साथ

निकलते रहते हैं। साधारणतया मल के ठोस भाग में से $\frac{१}{३}$ भाग जीवाणुओं के शरीरों का होता है। इन जीवणुओं की औसत लंबाई $\frac{१}{२५०००}$ इञ्च है, जिस से प्रति मनुष्य के मल में प्रति दिन कम से कम ६ लाख करोड़ जीवाणु निकलते हैं जिसमें से केवल १०००० करोड़, जीवित होते हैं, शेषमृत

B. Tuberculosis एक जीवाणु है जो मनुष्य के कट्टर शत्रुओं में से है। इस की लंबाई $\frac{१}{५०००}$ इञ्च होती है चौड़ाई $\frac{१}{८००००}$ इञ्च। अत्यन्त ठंडे प्रदेशों को छोड़ कर यह पृथ्वी के सब भागों में पाया जाता है। इस के कारण अनेक रोग होते हैं जिन में से मुख्य यक्ष्मा या तपेदिक है। शरीर का कदाचित ही कोई ऐसा अङ्ग अवयव है जिस में इस जीवाणु के कारण रोग उत्पन्न न होता हो। उपदंश और ट्यूबरक्युलोसिस ऐसे रोग हैं जिन से शरीर का कोई भी भाग मुक्त नहीं है। इन दो रोगों का पूर्ण ज्ञान होने से आधी से अधिक मेडिसिन और सर्जरी आजाती है। इस जीवाणु के शरीर में पहुँचने के दो मुख्य मार्ग हैं, एक और मुख्य श्वास द्वारा दूसरा भोजन द्वारा। यक्ष्मा के रोगियों के थूक में इस के हज़ारों कीड़े होते हैं, जो वायु के साथ मिल कर फेफ़ड़ों का ट्युबरक्युलोसिस या यक्ष्मा उत्पन्न करते हैं। यक्ष्मा से पीड़ित गायों के दूध में भी यह कीड़े होते हैं जो शरीर में पहुँच कर, विशेषतया बच्चों में, गर्दन या आंतों की लसीका-ग्रन्थियों में रोग उत्पन्न कर देते हैं। जिन के शरीर में इस के जीवाणुओं ने अड्डा कर लिया है, उस के किसी भी अङ्ग में किसी कारण-वश कमज़ोरी आने से वहाँ ये जीवाणु पहुंच जाते हैं और उस भाग पर आक्रमण कर देते हैं। इस प्रकार से अस्थियों, संधियों मांस-पेशियों, आंतों, आमाशय, मूत्राशय मस्तिष्क इत्यादि शरीर के प्रत्येक भाग में रोग का आक्रमण हो सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में यक्ष्मा यूरोप में बहुत अधिक प्रचलित था और यह श्वेत-प्लेग कहलाता था। उस समय वहां जितने आदमी मरते थे उन में से चौथाई इसी ही जीवाणु के कारण। आजकल यह रोग वहां घट रहा है और २०-२५ वर्ष में आधा रह गया है। अब वहां इस रोग के कारण होने वाली मौतें कुल मृत्युओं की $\frac{१}{७}$ से $\frac{१}{१०}$ हैं, और उन की कुल संख्या ४ लाख के लगभग है। भारतवर्ष में यह रोग बराबर बढ़ रहा है। बड़े बड़े शहरों में इसके बढ़ने के लिए सब सुविधाएं मौजूद हैं। तंग गलियां, ऊँचे ऊँचे मकान, छोटी छोटी कोठरियों में अनेकों मनुष्यों का रहना, प्रकाश और शुद्ध वायु का अभाव, गन्दगी और दरिद्रता और उस पर परदे के कारण स्त्रियों का घर में पड़े रहना, ये सब इस रोग के फलने फूलने के लिए आदर्श दशाएं हैं। आश्चर्य नहीं नहीं है कि इस दशा में स्त्रियों में यह रोग बुरी तरह से फैल रहा हैं। साधारणतया यह रोग मनुष्य के मारने में जल्दी नहीं करता है। फेफड़ों का ट्यूबरक्लि अपने शिकारों को एक दो अथवा अधिक सालों तक घुला घुला कर मारता है। अन्य भागों का ट्युबरक्लि मनुष्यों को

चिर-रोगी और जीवन के प्रतिदिन के व्यापारों के अयोग्य बनाता है। उन में से अनेकों जीवन मृत्यु के मध्य की दशा में वर्षों तक पड़े रहते हैं, तब कहीं मृत्यु के साथ उन का इस रोग से छुटकारा होता है। इस रोग की भीषणता इस के कारण होने वाली मृत्युओं की संख्या से प्रकट नहीं होती। इस की भीषणता उन लाखों मनुष्यों के अस्थि पंजरावशेष-शरीर और आनन्द-शून्य जीवन से प्रकट होती है जो इस के कारण अपने काम-धंधों और अभ्यस्त जीवन से छूट कर, स्वास्थ-लाभ की आशा छोड़ कर चिर-रोगी बन कर जैसे तैसे अपने शेष जीवन के दिवस पूरे करते हैं। इस रोग द्वारा अमेरिका को ६० करोड़ वार्षिक की हानि होती है।

कोढ़ एक अत्यन्त व्यापक रोग है, जिससे पृथ्वी का कोई भी भाग बचा हुआ नहीं है। एक समय यह रोग—११ वीं १२ वीं शताब्दियों में—योरोप में बहुत अधिक प्रचलित था। उस समय वहाँ कोढ़ियों के अलग रहने के लिए आश्रम बना दिये गए थे, और इस प्रकार के १९,००० आश्रम थे। अब योरोप के अनेक देशों में यह रोग लुप्त हो चुका है। अब यह चीन, जापान, भारत, अफ्रीका, दक्षिणी योरोप के कुछ भाग, अमेरिका के कुछ भागों में पाया जाता है। अनुमान है कि सारे संसार में ३० लाख कोढ़ी हैं। जिनमें से २० लाख केवल चीन में हैं और दो लाख भारतवर्ष में। यह रोग लेप्रावेसिल्लस नामक जीवाणु के कारण होता है। यह एक अत्यन्त दुष्ट रोग है। इसके रोगी की जितनी दुर्दशा होती है, उसको जो मानसिक व्यथा और अपमान सहना होता है वह अकथनीय है। अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य इसको संक्रामक मानते आए हैं, जिससे रोग के लक्षण प्रकट होते ही सगे-सम्बन्धी सम्बन्ध-विच्छेद कर देते हैं, जाति के लोग अपने में से च्युत कर देते हैं, समाज के लोग दूर-दूर करते हैं। इस प्रकार से अत्यन्त अपमानित और लाञ्छित होकर, समस्त संसार की घृणा और तिरस्कार का शिकार बनकर, जीवन-निर्वाह के साधन से छूट जाकर, सम्बन्धियों और समाज द्वारा परित्यक्त वह अभागा व्यक्ति मनुष्य समाज के निकृष्टतम अंश में सम्मिलित होकर दूसरों की कृपा-भिक्षा का पात्र बनकर पशुओं से भी कहीं गया गुज़रा जीवन व्यतीत करने के लिए बाधित होता है। फिर मृत्यु द्वारा छुटकारा पाने का भी उन अभागों को सौभाग्य नहीं है। अत्यन्त घृणा उत्पन्न करने वाली आकृति, गले-सड़े अङ्ग, और जीवन लिये सर्वथा अयोग्य शरीर लेकर उनको वर्षों तक जीवित रहना होता है। फिर इस प्रकार के अभागों की संख्या ३० लाख है। इस संसार के विधाता के लिये, मनुष्य समाज के लिये, अपने सम्बन्धियों के लिये, उनके मन में क्या विचार उठते होंगे? इस जीवाणु द्वारा मनुष्य की जितनी दुर्दशा होती है, वह जिस प्रकार से समस्त समाज के घृणा और तिरस्कार का पात्र बन जाता है, उसे जितना नीचा बनना पड़ता है, उसे जितना क्लेश और क्षोभ

होता है, उससे हम यही कर सकते हैं कि इससे अधिक दुष्ट और नीच शत्रु की कल्पना भी नहीं हो सकती।

चेचक एक अत्यन्त भयङ्कर संक्रामक रोग है जो पृथ्वी के समस्त देशों में फैला हुआ है। चेचक का टीका निकलने के पूर्व, इसके बड़े २ आक्रमण होते थे जिनमें लाखों की मृत्यु होती थी। बालकों का यह विशेष शत्रु है। टीका लगने से पूर्व जितने बालक मरते थे उनमें से ५० प्रतिशत की मृत्यु का कारण यह रोग होता था। फिर जो मृत्यु से बच जाते थे, वे जन्म भर के लिये कुरूप, अङ्ग-भङ्ग—विशेषतया काने और अंधे,—होजाते थे। जिन देशों में उचित प्रकार से और अनिवार्य रूप से टीका लगता है, उनमें भावी प्रजा के इस प्रबल शत्रु का प्रायः सर्वथा लोप होगया है। किन्तु बहुत से मनुष्य ऐसे अक़ल के दुश्मन हैं कि वे इस अत्यन्त उपयोगी प्रथा का विरोध करते में, और इस शत्रु के जीवित रहने में सहायता देते हैं। कदाचित् भारतवर्ष में ऐसे लोग अधिकता से हैं, जभी यहाँ लाखों मनुष्य इसका शिकार होते हैं। १८६१-१६१० तक यहाँ चेचक द्वारा लगभग १८½ लाख मृत्युएँ हुईं और १६१३-१६१८ तक ४¾ लाख।

हैज़ा एक संक्रामक रोग है, जो मनुष्य के सबसे भयंकर शत्रुओं में है। अनेकोंबार महामारी का भीषण रूप धारण करके यह फूट निकला है, और अनेकों देशों में फैलता हुआ लाखों की मृत्यु का कारण हुआ है। इसकी तीव्रता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि इसके आक्रमण के आगे मनुष्य को कुछ घंटों तक भी जीवन क़ायम रखना कठिन हो उठता है। जहाँ यह फूट निकलता है, वहाँ बात की बात में हज़ारों की सफ़ाई कर देता है। इसका मूल कारण एक जीवाणु है जो हैज़े का जीवाणु कहलाता है। इसके रोगी को जो दस्त और क़ै होती हैं, उनमें यह अगणित संख्या में निकलता है। फिर उन दूषित पदार्थों के सम्पर्क में जो वस्तु आती है वह दूषित होजाती है। इस प्रकार से बर्तन वगैरह जीवाणु-दूषित होजाते हैं और उनको कुएँ में डालने से पानी दूषित होजाता है। भारतवासियों की आदतें ऐसी हैं कि उनमें हैज़ा फैलते ही उनके पानी के स्थान शीघ्र ही दूषित होजाते हैं, और फिर जो उस पानी को पीते हैं उनमें हैज़ा फैल जाता है। फिर इस रोग से डर कर जब मनुष्य इधर-उधर भागते हैं, तब उन स्थानों के जल को दूषित करके वहाँ भी इस रोग को फैलाते हैं, और इस प्रकार से यह रोग अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक फैलता है। सैंकड़ों वर्षों से भारतवर्ष के किसी न किसी भाग में यह रोग सदा बना रहता है और प्रतिवर्ष इसके कारण ३-४ लाख की मृत्यु होती है। १८६१ से १६१० तक के २० वर्ष के अर्से में ८६½ लाख मनुष्य भारतवर्ष में ही इसकी भेंट चढ़े। और १६१३ से १८ तक २१ लाख।

इन्फ्लुएन्ज़ा संक्रामक रोगों का शिरोमणि है। इसकी विकरालता, इसकी संहार-शक्ति अद्वितीय है। जिस समय यह अपने दलबल

सहित निकलता है, उस समय अन्य रोगों की भांति छोटे-बड़े भूभागों में सीमाबद्ध नहीं रहता है, किन्तु अपनी विजय-वाहिनी द्वारा देश-देशान्तरों को पार करता हुआ समस्त पृथ्वी में अपने दिग्विजय का नाद उद्घोषित कर देता है, और लाखों प्राणों को कर के रूप में ग्रहण करता है। इसी ही प्रकार का एक दिग्विजय १९१८ में स्पेन से प्राम्भ हुआ था, जो यूरोप और ऐशिया के अनेक देशों को पार करता हुआ भारतवर्ष भी पहुँचा था। बम्बई से प्रारम्भ होकर अत्यन्त प्रचण्ड वेग से यह समस्त देश में व्याप्त होगया—जैसे सारे देश में एक साथ ही आग लगगई हो। फिर क्या था बड़े २ नगरों में प्रति दिन सैंकड़ों मनुष्य मरने लगे, और समाचार पत्र इन मृत्यु के समाचारों से भरे रहने लगे, श्मशानों में दिन रात एक प्रचंड ज्वाला जलने लगी, मुर्दों को उठाने के लिये आदमी न मिलते थे और जलाने के लिये लकड़ियाँ मिलना मुश्किल हो गया। गांव के गांव तबाह हो गये, और रोगियों को किसी भी प्रकार की औषधि तथा सेवा-शुश्रूषा प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार से प्लेग द्वारा चौदह वर्षों में जितने मनुष्य मरे उस से कहीं अधिक मनुष्य इन्फ्लुएन्ज़ा के एक ही आक्रमण में खेत रहे। इस रोग ने अपनी दरांती से बात की बात में समस्त संसार में फैली हुई मनुष्य रूपी फसल को काट कर गिरा दिया। इस प्रचण्ड और अत्यन्त उग्रशत्रु के सम्मुख मनुष्य बिलकुल बेबस लाचार था। जब कि वह हक्का-बक्का बना हुआ इस की प्रचण्डता को देख रहा था, यह काम तमाम करके चलता बना। एक ही आक्रमण में ७० लाख से १ करोड़ के बीच मनुष्यों की भेंट अकेले भारतवर्ष से ही लेता गया, और अपने पीछे विरसे में निर्बलता और अन्य रोग छोड़ता गया। १९१८ से पूर्व के वर्षों में समस्त कारणों से भारत में ७० लाख के लगभग मृत्यु होती थी किन्तु इस अकेले वर्ष में १५० लाख के लगभग हुई, अर्थात् ८० लाख बढ़ गई। इससे पूर्व के वर्षों में प्रति १००० व्यक्तियों में से ३० या ३२ मरते थे किन्तु इस वर्ष ६२ मरे। इनसे इनफ्लुएन्ज़ा के कारण जो भीषण नर-संहार हुआ था उसका पता लगता है।

अन्त में हम इस बात का अन्दाज़ा लगाना चाहते हैं कि मनुष्यों और अन्य प्राणियों के इस महा-भयङ्कर संग्राम में प्रति वर्ष कितने मनुष्य अकेले भारतवर्ष में ही मृत्यु पाते हैं। उदाहरण के लिये हम १९१७ का साल लेते हैं। इस में कुल मृत्युएं ७८ लाख हुई जिस में से हैजे द्वारा २,६७,००० चेचक द्वारा ६२,०००, बुखारों द्वारा ४५,५५००० आंव दस्त द्वारा २,१०,०००, प्लेग द्वारा ४, ३७,०००, श्वांस संस्थान के रोगों द्वारा ३,१६,०००। इन में सब से अधिक मृत्युएं ४५,५५,०००। बुख़ार द्वारा हुईं। बताना न होगा कि संक्रामक रोगों का सब से स्पष्ट और मुख्यलक्षण बुख़ार होता है, और प्रायः यह सब मृत्युएँ इस जीवन संग्राम में ही हुई हैं। इसी ही प्रकार से श्वास संस्थान और आंवदस्त के कारण होने वाली प्रायः सब मृत्युएं इसी ही के अन्तर्गत हैं। इस

प्रकार से कुल ७८ लाख मृत्युओं में से ५८,८०,०००, तो अवश्य ही मनुष्य के इन सूक्ष्म शत्रुओं के द्वारा हुई, और अवशिष्ट १९ लाख २० हजार में से भी बहुत अधिक इन्हीं के कारण हुई होंगी। इस प्रकार से अकेले भारत वर्ष में ही प्रति वर्ष कम से कम ६० लाख व्यक्ति मनुष्यों और अन्य प्राणियों के जीवन संग्राम में जान से हाथ धो बैठते हैं, और कुल आहतों की, रोग-ग्रस्त व्यक्तियों की, संख्या तो इस से भी कहीं अधिक है। इस के अतिरिक्त इन के कारण इस अत्यन्त ग़रीब देश को जो आर्थिक हानि होती है उसका तो अन्दाजा ही नहीं हो सकता।

हमने अब तक मनुष्य के अनेकों शत्रुओं को सरसरी तौर पर देख लिया है। उनके स्वभाव और मनुष्यों के प्रति आचरण में बहुत अन्तर है। उनमें से कुछ तो आंधी तूफान की भांति सहसा उपस्थित हो जाते हैं और चटपट अपना भीषण कार्य करके सहसा ही बिलीन हो जाते हैं, फिर उनका कुछ पता ही नहीं चलता, यथा इन्फ्लुएन्ज़ा। कुछ ऐसे हैं जो थोड़े—बहुत किसी न किसी भाग में विद्यमान रहते हैं, किन्तु कभी कभी भीषण रूप धारण करके चारों ओर फैल पड़ते हैं, और फिर शान्त होकर अपनी पूर्व-दशा पर पहुंच जाते हैं। प्लेग और हैज़े ने आजकल यही रूप धारण कर रक्खा है। कुछ देश में अपना अड्डा ही जमा लेते हैं और प्रायः साल भर समान-रूप से अपना कार्य करते रहते हैं। इन में से यक्ष्मा, हुकवर्म कालाआज़ार मलेरिया इत्यादि हैं। फिर कुछ का उद्देश यह होता है कि शीघ्र से शीघ्र मनुष्य को मार कर समाप्त कर दें। जितने व्यक्ति इनके चुंगल में फसते हैं, उनकी जीवन-लीला को यह समाप्त कर देते हैं, अवशिष्ट समाज के स्वास्थ पर इनका कोई प्रभाव नही पड़ता। उदाहरण इनफ्लुयेन्ज़ा, प्लेग, हैजा तथा अन्य संक्रमक रोग हैं। कुछ का उद्देश मारना तो होता है, किन्तु बहुत घिसटा घिसटा कर, महीनों अथवा वर्षों तक धीरे धीरे जीवन को सोखकर। इनके उदाहरण— काला आज़ार, निद्रारोग, यक्ष्मा इत्यादि हैं। इनके कारण देश को आर्थिक हानि बहुत होती है क्योंकि रोगी-जन महीनों अथवा वर्षों तक उपार्जन तो कुछ करते ही नहीं उल्टे उनकी सेवा-शुश्रूषा में बहुत खर्च होता है। तीसरे वे हैं जिनका उद्देश मारना तो नहीं है किन्तु अपने शिकारों को वर्षों तक चिर-रोगी, निर्बल, जीवन संग्राम के अयोग्य, बेकार और लाचार बनाए रखना है, यद्यपि परोक्ष रूप से मृत्युएँ भी होती हैं। इनके उदाहरण मेलेरिया, हुकवर्म उपदंश इत्यादि हैं। इनकी चेष्टा यही रहती है कि सम्पूर्ण जातियों को अपना शिकार बनावें। इनके कारण बहुत ही अधिक दरिद्रता फैलती है। यथार्थ में दरिद्रता को यह अपने अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। इन्फ्लुएन्ज़ा के प्रकार के रोगों से भी ये अधिक भयंकर हैं। ये जातियों की जड़ों को खोखली कर देते हैं और धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूप से उनको मृत्यु के गड्ढे की ओर धकेलते हैं। इनका वैर जातियों के साथ है।

* * *

निद्रा

(श्री पं० रमाशंकर जी मिश्र)

गोद मे किसकी अहो भूले हुये भव-ताप थे।
सान्त्वना पाकर सुखद हा खो चुके सन्ताप थे।
स्वर्ग में क्या सौख्य है इस का न कुछ भी ज्ञान था।
नर्क है दुख पूर्ण इस पर भी न मेरा ध्यान था॥

* * *

पुण्य पाप सुकीर्ति अपयश आदि में क्या भेद है।
धर्म-शास्त्र पुराण क्या कहते किसे हम वेद हैं।
हैं किसे हम शत्रु कहते मित्र अपना कौन है।
बन्धु सेवक शिष्य पत्नी पुत्र अपना कौन है॥

* * *

अग्नि में चिन्ता-चिता की दग्ध थे जो हो रहे।
मोद से तव गोद में आ दुःख सारा खो रहे।
दीन याचक भूप भी तेरी शरण आते अहो।
धीर, वीर, अधीर, कायर त्राण सब पाते अहो॥

* * *

अङ्क में आसीन हो, रहती न कोई कामना।
राज्य वैभव, स्वर्ग अथवा मोक्ष की सद्भावना।
देवि निद्रे! आर्त्त को केवल तुम्हारी आस है।
गोद है तव मोद-मय रहता न कोई त्रास है॥

विचित्र शुद्धि

(ले०—श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

“आनन्द बाबू ! यह ठीक है कि तुम मेरे दोस्त हो। मैं तुम्हारे नज़दीक कितना ही अहसानमन्द हो सकता हूँ मगर तुम्हारी क़ौम के बारे में मेरी जो राय है उसे साफ़ साफ़ कहने से मैं हरगिज़ बाज़ न आऊँगा। ‘हिन्दू’ नाम सुनते ही मेरा जी मिचलाने लगताहै। मेरी राय में हिन्दुओं जैसी अदना, बुज़दिल और ज़ाहिल कौम इस दुनिया के तख़्ते पर दूसरी न होगी। खुदा ने इसे पिटने, लुटने और बेइज़्ज़त होने के लिए ही पैदा किया है। उसके साथ जीती जागती मुसलमानों की क़ौम का क्या मेल मिलाप ?”

“मिस्टर यूसुफ़ ! इतने तैश में क्यों आ गये ? जहाज़ का सफ़र चुपचाप बैठे भारी हो रहा है यह देखकर दिलबहलाव के लिए मैं तुम्हारे पास आबैठा, एक सवाल बातचीत में हिन्दू-मुसलिम युनिटी पर भी कर लिया तुम इसी पर बिगड़ बैठे।”

बाबू आनन्दमोहन मिश्र और मिस्टर यूसुफ़अली बचपन के साथी हैं। दो-एक सालों को छोड़कर शिक्षा के प्रायः सारे साल दोनों के एक साथ ही कटे हैं। दोनों ने इसी साल अलीगढ़ कालेज से उच्चतम परीक्षा प्रथम विभाग में उत्तीर्ण की है। आनन्द बाबू और मिस्टर यूसुफ़ क्रमशः प्रथम और द्वितीय नम्बर पर आये हैं। मिस्टर यूसुफ़ एक अच्छे और धनी ख़ानदान में पैदा हुए हैं। अँग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त किए हुए धनी हिन्दुस्तानियों का प्रायः कोई मज़हब नहीं होता। नीति के लिए वे किसी एक सम्प्रदाय से अपना थोड़ा बहुत संबंध भले ही बनाए रखें। परन्तु मिस्टर यूसुफ़ के विषय में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। शायद इसका कारण कुछ हद तक अलीगढ़ कालेज की शिक्षा हो। मतलब यह कि वे पक्के मुसलमान हैं। क़ाफ़िरों के सम्बन्ध में उनकी सम्मतियाँ कितनी कठोर हैं यह ऊपर की बातचीत से मालूम होसकता है। दूसरी ओर आनन्दबाबू यू० पी० के ब्राह्मण हैं। उन्होंने एक मध्यम श्रेणी के परिवार में जन्म लिया है। किन्तु धर्म के सम्बन्ध में उनकी सम्मतियां बड़ी उदार हैं। वे बड़े प्रतिभाशाली तथा परिश्रमी हैं। उन्होंने प्रायः सारी परिक्षाएँ बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उत्तीर्ण की हैं। मिस्टर यूसुफ़ के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता है। इसीलिए जब मिस्टर यूसुफ़ अली अमेरिका जाने के लिए तैयार हुए तो पहले की तरह अब भी आनन्द बाबू को उनका साथ निभाना पड़ा। वे भी ज्यों त्यों कर कुछ रुपया घर से, कुछ अपने इष्ट मित्रों से उधार लेकर अमेरिका चलने को तैयार होगये। दोनों मित्र एक ही जहाज़ से रवाना हुए। कई दिन से स्थल के दर्शन नहीं हुए, दोनों की ही तबियत परेशान हो उठी। समुद्र की बीमारी में, रह रहकर घर के आरामों की याद आने लगी। और

यात्रा का उत्साह फीका पड़ने लगा। मगर अब क्या होसकता था। ऐसी ही हालत में एक दिन दोनों मित्र इकट्ठे हुए बातचीत कर रहे थे। कितने ही प्रसंग आये, बीच में ही आनन्द बाबू ऊपर वाला सवाल कर बैठे जस का जवाब उन्हें बड़ा मँहगा पड़ा। मगर उन्होंने कुछ बुरा न माना। क्योंकि वे जानते थे कि मिस्टर यूसुफ़ कुछ तुनुक मिज़ाज आदमी हैं। इसीलिये वे कभी २ उनकी उलटी सीधी बातें सुनने के लिये ही उन्हें चिढ़ा दिया करते थे। दोनों दोस्तों में सुलह भी जल्दी ही होजाती थी। ऊपर वाले सिलसिले में ही मिस्टर यूसुफ़ कहने लगे—

"आनन्द बाबू! तुम मेरा स्वभाव ख़ूब जानते हो इसलिये तुमने मुझे बनाने के लिए ही यह सवाल उठाया है। पर यहाँ तो कोई मेरा तमाशा देखने वाला है नहीं। तमाशबीनों में ही बन्दर नचाने से बाज़ीगर को फ़ायदा होता है न कि बन्द कोठरी में।"

"तुम ठीक कह रहे हो मगर बात यह है कि जब तक कोई गरमा-गरम बहस का सवाल न छेड़ा जावे तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने नहीं आता। खूंटी ऐंठने पर ही सितार अच्छी आवाज़ देता है।"

"आनन्द बाबू! दिल्लगी बड़ी अच्छी चीज़ है। मगर बेमौके दिल्लगी कभी २ बड़ा उलटा नतोजा पैदा करती है, क्या यह तुम नहीं जानते? मेरी तबियत ख़राब होरही है, खाया पीया कुछ पचता नहीं, उसपर घर-बार की याद अलग परेशान किए डालती है, ऐसे वक़्त तुम्हें दिल्लगी सूझ रही है।"

"मिस्टर यूसुफ़! इससे बढ़कर दिल्लगी के लिये कोई दूसरा मौक़ा मेरी नाक़िस राय में होही नहीं सकता। तकलीफ़ के वक़्त दिलबहलाव की दो एक बातें होजाने से तबियत ज़रा हरी होजाती है। इसीलिये मरीज़ को ज़्यादह दिलबहलाव की ज़रूरत होती है। हाँ, एक बात तो कहो—तुम्हें घरबार की याद क्यों सता रही है। काले लोगों से तुम्हारा पीछा छूटा यह तो अच्छा ही हुआ। तुम्हें तो इस बात का पछतावा हुआ करता है कि ख़ुदा ने तुम्हें टर्की, योरुप या अमेरिका में पैदा न करके हिन्दुस्तान में क्यों ला पटका। हिन्दुस्तान तो हिन्दू यानि काले चोरों के रहने की जगह का नाम है। मज़ा यह है कि हम लोगों को चिढ़ाने के लिए इस देश का यह नाम तुम्हीं लोगों ने रक्खा था और अब इसके अच्छे या बुरे जो भी माने हैं वे तुम पर ही लग रहे हैं। 'मियाँ की जूती मियाँ की चाँद' वाली मसल सामने आरही है। अगर तुम हमारे देश का नाम न बिगाड़ते तो आज तुम हिन्दू न कहलाकर आर्य कहलाते।"

मिस्टर यूसुफ़ कहने लगे कि हम लोगों को हिन्दू कौन कहता है? हम तो मुसलमान हैं। आनन्द बाबू ने कहा— मियाँ घबराओ मत। बाल अभी सामने आये जाते हैं। हिन्दुस्तान में तुम भले ही अपने आपको मौलाना, मियाँ, ग़ज़नवी, बुख़ारी कहो, पर बाहर तो सब हिन्दुस्तानी हिन्दू ही कहे जाते हैं। हिन्दू नाम से तुम्हारा जी मिचलाता है या नहीं, वे लोग इसकी परवाह

नहीं करते। यकीन न हो तो अब अमेरिका चल कर ही इतमिनान कर लेना।

मिस्टर यूसुफ़ बोले— अच्छा यार ! जाने भी दो इस रगड़े झगड़े को। तुम तो आर्यसमाजियों की तरह बहस करने लगे। मैं आर्यसमाजियों को बहुत बुरा समझता हूँ। ये हिन्दू मुसलमानों को लड़ाकर आप खड़े तमाशा देखा करते हैं। "भुस में चिनगी डाल जमालो दूर खड़ी" वाली कहावत क्या किसी ने इन्हीं के लिये बनाई थी ?

आनन्द बाबू ने कहा— भाई ! कुछ भी हो, इनकी कुछ बातें तो मुझे बहुत पसन्द हैं। मैं तो अमेरिका से लौटते ही आर्यसमाजी होजाऊँगा। गोबर खाने से तो जान बचेगी। एक बात तुम्हें भी कहे देता हूँ। अबतक मैंने तुम्हारा साथ दिया है अब तुम्हें मेरा देना पड़ेगा। तुमहम—दोनों, साथ ही शुद्ध होंगे। इन में शुद्ध हुए लोगों की ख़ातिरदारी भी ख़ूब होती है। कहो कैसी कही ? है पसन्द कि नहीं ?

मिस्टर यूसुफ़ बोले— अभी दिल्ली दूर है। वक्त तो आने दो।

[२]

दिसम्बर का महीना है। जाड़ा पूरे ज़ोरों पर है। कोहरे के कारण दिन रात में फ़र्क करना मुश्किल हो रहा है। सामने पड़ी चीज़ दिखाई नहीं देती। ठण्ड के मारे हाथ पैर जमे जारहे हैं। लोग अँगीठियां बाल २ कर आग सेक रहे हैं। कोई राज़ी ख़ुशी से बाहर निकलना नहीं चाहता है। ऐसे समय में अमेरिका के एक बड़े शहर की एक सड़क पर कोई युवक कदम बढ़ाये चला जारहा है। एकाएक पीछे से मोटर के आने की आहट हुई। जानेवाला एक ओर को बच गया। मगर अचानक एक भारी सी आवाज़ को सुन कर वह चौंक पड़ा। कोहरे के सबब दीखता कुछ भी न था तो भी उसे सन्देह न रहा कि उस से २०-३० क़दम के फ़ासले पर ही वह मोटर किसी बड़ी चीज़ से टकरा गई है। युवक घटना स्थल पर शीघ्रता से जा पहुंचा और आवश्यकता के अनुसार सहायता के लिये उसने अपने आप को प्रस्तुत किया। ड्राइवर से उसे मालूम हुआ कि इसी शहर के एक बड़े प्रतिष्ठित लखपति रईस की कन्या, कुमारी हेलेन, आज सवेरे ही एक दूसरे मुहल्ले में अपने किसी आत्मीय से मिलने गई थीं। बहुत समय आमोद प्रमोद में व्यतीत कर जब वे लौट रही थीं तभी मार्ग में उपर्युक्त दुर्घटना घटित हो गई, अर्थात् बिजली के तार के खम्भे से टकरा कर उनकी मोटर उलट गई। कुमारी हेलेन को ऐसी चोट आई है कि वे अभीतक बेहोश पड़ी हैं। स्वयं मोटरड्राइवर की भी अवस्था अच्छी नहीं है। युवक बड़े चक्कर में पड़ा। कुछ क्षण तक वह निश्चय नहीं कर सका कि एक अपरिचित सभ्य महिला की क्या सहायता वह ऐसी दशा में कर सकता है। मोटर ड्राइवर ने युवक के शिष्टाचार के लिये उस का धन्यवाद किया और कृतज्ञता पूर्वक कहा कि महाशय ! आप स्वयं कोई परदेशी मालूम होते हैं। ऐसी अवस्था में आप हमारी क्या सहायता कर सकते हैं। हमारा स्थान यहां से काफ़ी दूर

पर है। इन्हें अभीतक होश नहीं आया है, मुझ में भी अब इतनी सामर्थ्य नहीं है कि स्वयं मोटर हाँक कर घर पहुँच सकूं।

युवक ने कहा कि तुम कुछ चिन्ता न करो। मैं एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी हूं। यहां बिलकुल पास ही एक किराये के मकान में रहता हूं। तुम चाहो तो कुछ समय वहां आराम कर सकते हो। यदि तुम्हारे स्वामी की कन्या को इस में कुछ आपत्ति न हो तो मैं बड़ा अनुगृहीत होऊँगा। किन्तु यदि तुम्हें घर पहुँचने की ही शीघ्रता हो तो तुम्हारी जगह मैं ही मोटर हाँक कर तुम्हें ठिकाने पर पहुंचा सकता हूं। तुम्हारी जैसी सम्मति हो वैसा ही किया जावे।

ड्राइवर ने प्रसन्नता से कहा कि महाशय! आप को कष्ट देना उचित प्रतीत नहीं होता, तो भी यह आपत्ति का समय है इस लिए मैं यही प्रार्थना करूँगा कि यदि आपका मकान बहुत निकट ही है तो आप कृपा कर कुमारी हेलेन को वहां ले जाकर शीघ्र ही होश में लाने की चेष्टा करें। उनके कुछ स्वस्थ हो जाने पर हमें घर पहुँचने में कुछ भी विलम्ब न होगा।

उक्त निश्चय के अनुसार ही कार्य किया गया। अपने मकान पर पहुँच कर युवक ने ड्राइवर की सहायता से कुमारी हेलेन को एक साफ़ सुथरे पलङ्ग पर लिटा दिया और पास ही रहने वाले अपने एक मित्र डाक्टर को फ़ोन कर दिया। अंगीठी में आग बाली गई। इतने में डाक्टर महाशय भी आ पहुँचे। चोट अधिक होने पर भी भयंकर न थी। डाक्टर महाशय की चिकित्सा से विशेष लाभ हुआ। कुमारी हेलेन ने शीघ्र ही आंखे खोल दीं। ड्राइवर ने संक्षेप में ही उन्हें भली भांति समझा दिया कि वे किस परिस्थिति में हैं। उन्हें यह भी आश्वासन दिया कि अब कोई चिन्ता की बात नहीं है। मालिश और सेक से ड्राइवर को भी बहुत फ़ायदा हुआ। कुछ देर में कुमारी हेलेन उठ बैठीं और ऐसी आपत्ति के समय सहायता करने वाले नवयुवक का बार बार धन्यवाद करने लगीं।

परिचय पूछने पर युवक ने कहा कि वह एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी है। उसका नाम है यूसुफ़ अली। वह लगभग डेढ़ वर्ष से इसी विश्वविद्यालय में इलैक्ट्रिक इंजिनीयरिंग की शिक्षा प्राप्त कर रहा है,इत्यादि। यह सुन कर कुमारी हेलेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगीं कि मैं भी तो कई वर्षों से इसी विश्वविद्यालय में पढ़ रही हूं किन्तु अभी तक आप के दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त न हो सका इस का मुझे दुःख है। इसी प्रकार की इधर उधर की कुछ बातें कर के और अन्त में फिर बारबार धन्यवाद देकर कुमारी हेलेन अपने घर चली गईं। शायद यह लिखने की आवश्यकता ही नहीं कि कुमारी हेलेन जाते हुए अपना पूरा पता देगईं और मिस्टर यूसुफ़ को अपने घर पर आने के लिए बड़े आग्रह के साथ निमंत्रण देगईं।

[३]

आज क्रिसमस की छुट्टी है। सभी घरों में यह त्यौहार बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जा रहा है। लोग मोटरों में सवार होकर

निमंत्रणों में सम्मिलित होने जा रहे हैं। सभी ने नए २ वस्त्र पहिने हैं । सभी प्रेमी अपने प्रेमियों को अच्छी अच्छी भेंटें देने की चिन्ता में हैं।

कुमारी हेलेन के पिता मिस्टर जेम्स ने मिस्टर यूसुफ़ अली को भी विशेष बुलावा भेजा है। इसी लिए वे भी ठीक समय पर निमंत्रण में जा पहुँचे। उचित शिष्टाचार के पश्चात् मिस्टर जेम्स ने उस दिन की घटना का निर्देश करते हुए और उन की सज्जनता को सराहते हुए उनका धन्यवाद किया और सब उपस्थित सज्जनों से उनका परिचय कराया और अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। सभी लोगों ने बड़ी उत्सुकता के साथ उन से हिन्दुस्तान के विषय में बहुत से प्रश्न किये और उत्तर पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उत्सव समाप्त हो चुकने पर जब सब अतिथि विदा होने लगे तब गृहपति महाशय ने मिस्टर यूसुफ़ से प्रार्थना की कि यदि आप को घर पर कुछ विशेष कार्य न हो और आप यहां कुछ अधिक ठहर सकें तो बड़ी कृपा होगी। मिस्टर यूसुफ़ ने कहा कि जेम्स महाशय ! यह मेरे सौभाग्य का विषय है कि आप मुझ से स्नेह करते हैं और मेरे देश की बातों में इतनी रुचि रखते हैं। ग़रीब हिन्दुस्तान की दुर्दशा को मैं आप सरीखे महानुभावों के सामने जितना ही अधिक खोल कर रख सकूं उतना ही अच्छा है। कड़े कानूनों के शिकंजे में जकड़े हुए हम अपने देश में रो भी नहीं सकते । रोना भी वहां राजद्रोह समझा जाता है । इतनी दूर बैठे हुए आप हमारे देश के विषय में क्या जान सकते हैं ?

मिस्टर जेम्स ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि मिस्टर यूसुफ़ ! मेरे हृदय में तो आपके देश के लिए बड़ी श्रद्धा है। मेरा विश्वास है कि अब भी यदि संसार को शान्ति प्राप्त होगी तो वह आपके ही देश से। मैंने स्वामी विवेकानन्द के दर्शन किए हैं और उनके व्याख्यान सुने हैं। मुझे रविबाबू की रचनाओं में अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है मेरी समझ में नहीं आता कि जिस देश की इतनी ऊंची फ़िलासफ़ी, इतना ऊँचा आदर्श और ऐसी ऊंची सभ्यता हो वह कैसे दूसरों के आधीन रह सकता है । मैंने अपनी जवानी में संसार के सब सुख भोग लिए हैं मेरे लिए उन में कुछ भी नवीनता, कुछ भी जादू , कुछ भी चमत्कार नहीं है। पश्चिम के भोगवाद से मुझे घृणा हो गई है। आप देखही रहे हैं कि मिसेज़ जेम्स का भी रहन सहन कितना सादा है । ये आडम्बर को बिलकुल पसन्द नहीं करतीं। हमारे घर में मांस का भी बिलकुल बहिष्कार है।

मिस्टर यूसुफ़ ने आश्चर्य के साथ कहा कि हैं ! आप माँस बिलकुल नहीं खाते ? आप के देश में तो यह बड़ा कठिन कार्य है।

मिस्टर जेम्स ने कहा कि, हां हम लोग मांस बिलकुल नहीं खाते। इस का भी एक इतिहास है। एक दिन हमारा सारा परिवार सैर करता हुआ संयोग से उस बड़े बूचर घर में जा पहुँचा। वहां हेलेन और हम सबने हज़ारों निरपराध पशुओं का एक कतार

में वध होते हुए देखा। उनके गलों से रुधिर के फुहारे छूट रहे थे। सारा फ़र्श रक्तरंजित हो रहा था। जो कर्मचारी वहां कार्य कर रहे थे वे इस लोक के प्राणी नहीं मालूम होते थे। इस कारुणिक, घृणित और भयानक दृश्य को देखकर बालिका हेलेन एक चीख मार कर वहीं मूर्छित होगई। मेरे हृदय में भी यह विचार उठा कि ओह! मनुष्य कितना पापी है। पेट और जिह्वा के लिए यह कितना पाप करता है। मैंने उसी दिन से मांस का एक दम परित्याग कर दिया है। कुमारी हेलेन का हृदय तो बड़ा ही कोमल है। यह किसी भी जीव को दुखी नहीं देख सकती। किसी का चेहरा उदास देखते ही इसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं। किसी को रोते देखकर तो इसका हृदय फटने लगता है। इस ने कहीं से यह सुन लिया है कि आपके देश में ऐसे लोग भी हैं जिन से यदि भूल से कोई कीड़ी भी मर जाय तो वे उस का प्रायश्चित करते हैं। यह बात इसके दिल को लग सी गई है। मेरे पुस्तकालय से चुनचुन कर यह हिन्दुस्तान और हिन्दू सभ्यताके सम्बन्ध में पुस्तकें पढ़ा करती है। रविबाबू के विश्वप्रेम के सिद्धान्त पर यह लट्टू हो रही है। जब से आप के साथ इस की भेंट हुई है यह कई बार आपको बुलाने के लिए हठ कर चुकी है। आज अच्छा अवसर देख कर आप को कष्ट दिया गया है। आशा है आप क्षमा करेंगे। और कभी २ बिना संकोच इधर आकर अपने देश के समाचारों तथा बिचारों से हमें लाभ पहुँचाया करेंगे।

मिस्टर यूसुफ़ अली अपने मन ही मन बड़ी उलझन में पड़ रहे थे। हेलेन-परिवार की सहृदयता सरलता तथा मिलनसारी पर वे मुग्ध थे। उन का चित्त वहां से उठने को न चाहता था किन्तु दूसरी ओर मिस्टर जेम्स तथा कुमारी हेलेन का हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति की ओर झुकाव और इन्हीं के सम्बन्ध में उनकी अपनी विमुखता और अनभिज्ञता उन्हें दुःखित कर रही थी। उन की दशा "भई गति सांप छुछुन्दर केरी" वाली हो रही थी। उन्हें यह स्पष्ट दीख रहा था कि इस्लाम या हेलेन परिवार में से एक को ही वे अपना सकते हैं। या यूं कहिए कि हेलेन के साथ सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उन्हें बहुत अंशों में हिन्दुत्व स्वीकार करना पड़ेगा। अब हिन्दू शब्द से उन्हें उतनी घृणा नहीं रही है जितनी अपने देश में थी क्योंकि इस नए देश में आकर उन्हों ने यह देख लिया है कि हिन्दुस्तान के सभी निवासियों को चाहे वे हिन्दू, मुसलमान या ईसाई कोई भी क्यों न हों दुनिया के लोग हिन्दू नाम से ही पुकारते हैं। हिन्दू एक ख़ास मज़हब का नाम न होकर एक जाति का नाम होगया है। और वह जाति उन लोगों की है जिनको हिन्दुस्तान पर उतना ही हक है जितना हिन्दुस्तान को उन लोगों पर है। यही सब-कुछ सोचते हुए मिस्टर यूसुफ़ वहां से विदा हुए। देखिये अब ऊंट किस करवट बैठता है।

(४)

"अरे यार तुम तो बिल्कुल ही ईद के चाँद होगए। हमारी तुम्हारी दोस्ती जानो

कभी हुई ही नहीं थी। आजकल किधर छनती है ? कभी हमारी भी सुध ले लिया करो। जब कैंची सम्हाली है तो सुई धागा भी लेना चाहिए। लड़ाई में घायल दुश्मनों की मरहम पट्टी करना दुश्मन भी अपना फ़र्ज़ समझते हैं। तुम अजब सूरमा हो कि घायल करना जानते हो मगर मरहम-पट्टी नहीं। अच्छा यह तो कहो कि आज इधर कैसे भूल पड़े ? परिस्तान में सैर करते हुए कबरिस्तान की याद कैसे आई ? मिस्टर यूसुफ़ ! तुम्हारी कसम, तुम तो बहुत ही दुबले होगये।”

“अरे अब बस भी करोगे कि अपनी ही अलापते जाओगे। आनन्द बाबू ! इसीलिए मैं तुम्हारी तरफ़ आने से कतराता हूँ। जानता हूं कि तुम अपना मरसिया लेकर ऐसे हाथ धोकर पीछे पड़ते हो कि दूसरे को तोबा ही करनी पड़ती है। अच्छा कहो तो कैसी कट रही है ?”

“मिस्टर यूसुफ़ ! तुमही कहो। हमारी तो जैसी कट रही है कटती ही जावेगी। आज कैसे इधर आने की तकलीफ़ की है ?”

“भाई ! तुम्हारी ही तलाश में आया था।”

“यह तो मैं पहले ही जानता हूँ ‘लग गई जब भूख तब तन्दूर की सूझी। भरगया जब पेट, बड़ी दूर की सूझी।’ अब यह कहो कि आज अचानक मेरी तलाश की ज़रूरत क्यों आ पड़ी ?”

“आनन्द बाबू ! तुम तो जानते ही हो कि मेरी मुलाकात एक ऐसे ख़ानदान से होगई है जिसे हिन्दू-मज़हब हिन्दू-तहज़ीब में बड़ी दिलचस्पी है। वहाँ मुझसे इन्हीं के मुतल्लिक रोज़ सवाल जवाब होते हैं। मैं भी इधर-उधर से सुनसुनाकर जो कुछ थोड़ा बहुत तुम्हारे मज़हब व तवारीख़ के बारे में जान पाया हूँ वही उनके सामने हाँक आता हूँ। अभी तक तो मेरी बात उनके लिए पत्थर की लकीर रही है मगर अब ज़्यादह देर तक दाल गलने की उम्मीद नहीं है। मिस हेलन को तुमने देखाही है। आहा ! कैसी भोली-भाली लड़की है। वह मुझसे बड़ा प्रेम करती है और बारबार दमयन्ती, सीता और लक्ष्मण वग़ैरह के बारे में सवाल करती है। भाई ! तुम्हीं बताओ कि मैं तुम्हारी दमयन्ती और सीताके बारेमें क्या जानूं ? अगर तुम बरायेमेहरबानी मुझे इनकी कहानी सुना सको या कोई किताब ऐसी दे सको जिसमें इनके बारे में कुछ लिखा हो तो मैं तुम्हारा बड़ा एहसानमन्द रहूंगा।”

आनन्द बाबू ने हँसकर कहा कि भाई ! इतना ग़म क्यों पालते हो ? परमेश्वर ने हम दोनों से ही मज़ाक किया है। मेरी मुलाकात भी एक ऐसे परिवार से होगई है जिसे टर्की और मिश्र से बड़ी दिलचस्पी है। इस्लाम की कितनी ही बातें उसे बहुत पसन्द हैं। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि भाई ! ‘मैं बाज़ आया मुहब्बत से उठालो पानदान अपना।’ मैं तो अब उस घर की ड्योढ़ी न झाँकूंगा। अगर तुम्हें मंज़ूर हो तो मैं एक तज़वीज़ पेश करूँ, वह यह कि हम आपस में अदला-बदली करलें।

मिस्टर यूसुफ़ अब समझे कि आनन्द-बाबू की बात 'अ' से लेकर 'क्ष' तक उनके दिमाग़ की इसी क्षण की उपज थी। वे ज़रा संजीदगी से कहने लगे—"आनन्दबाबू! तुम कभी तो इस दिल्लगी से किनारा किया करो। ज़रा मौक़े-बे मौक़े को ही देख लिया करो। अमेरिका जैसे शिष्टाचार के देश में रहकर भी तुम अनाड़ी ही रहे।

आनन्द बाबू ने कहा—भाई! हमने तो दिल्ली में बारह साल रह कर भाड़ ही झोंका है। हम नाज़, नखरे और नज़ाकतों की बारीकियों को क्या जानें? बाक़ी रही दिल्लगी-यह तो नील का रंग है कपड़े के साथ ही जायगा। मैं देखता हूँ कि मेरी हँसी से तुम्हें तक़लीफ़ पहुँची है। अच्छा, उसके बदले में मैं पुराने ऋषियों की तरह तुम्हें एक वर देता हूं। तुम, जो जी चाहे सो माँग लो।

अब मिस्टर यूसुफ़ का चेहरा खिल उठा। उन्होंने कहा कि भाई! मारो हाथ-पर-हाथ और वादा पक्का हो। देखो अब पीछे न हटना। तुमने अमेरिका आते हुए मुझे शुद्ध करने की बात चलाई थी। इस लामज़हब मुल्क में रहकर मेरा सारा वहम काफ़ूर हो गया। मैं देखता हूं कि मज़हब कुछ चालाक लोगों के हाथ का हथियार है। वे अपने साँसारिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उसकी सहायता लेते रहते हैं। मैं इस्लाम को भी एक ऐसे ही ढोंग के सिवाय कुछ नहीं समझता।

इन शब्दों को सुनकर आनन्द बाबू एका-एक चौंक उठे। उन्हें अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं हुआ। पर जब दुबारा पूछने पर भी मिस्टर यूसुफ़ ने वही बात कही तो उन्हें पता लगा कि उनका मित्र कितनी दूर जा भटका है। उन्होंने हँसते हुए कहा कि मिस्टर यूसुफ़! अगर तुम्हारी बात ठीक है तो इसका मतलब यह है कि अब तुम भी हिन्दू-धर्म से उसी हथियार का काम लेना चाहते हो।

यूसुफ़ ने कहा कि सूत्रकार खुद भाष्य नहीं किया करते। तुम मतलब पीछे निकालते रहना पहले अपना वादा पूरा करो। मैं हेलेन के साथ ज़्यादह धोखा नहीं करना चाहता।

आनन्द बाबू बोले—खुदा के साथ धोखा भले ही हो जावे। क्यों यही बात है न? भाई! मैं तो इस्लाम को बड़ी आदर की दृष्टि से देखता हूँ। मैं उसे छोड़ने की सलाह तुम्हें नहीं दे सकता। हाँ, यदि तुम्हें उस में विश्वास नहीं रहा और हिन्दूपन तुम्हें पसन्द आगया हैं तो तुम खुद ही हिन्दू हो गए क्योंकि धर्म तो विश्वास की चीज़ है वह बाहर के किसी रस्म रिवाज़ में नहीं रहता। तुम समझलो कि आज से तुम हिन्दू हो गए। तुम ने हिन्दुस्तान में जन्म लिया है। दुनियाँ की नज़र में तुम पहिले ही हिन्दू थे सिर्फ़ तुम्हारी अपनी ही राय इस के खिलाफ़ थी जब वह भी बदल गई तो तुम सोलहों आना हिन्दू होगए। गवाह की ज़रूरत हो तो मैं तैयार हूँ।

यूसुफ़ ने कहा कि भाई! इतने ही से छुटकारा नहीं है। अभी तो बहुत सी कवायद बाक़ी है। देखो! एक दिन मेरे घर से ख़त आया। उस वक़्त मैं मिस्टर जेम्स के घर पर ही मौजूद था। ख़त देखते ही कुमारी हेलेन मेरे पास आपहुँचीं और बड़े मधुर-आग्रह से कहने लगीं कि मिस्टर यूसुफ़!

मुझे आप की राष्ट्रभाषा हिन्दी से बड़ा प्रेम है। मैं आशा करती हूँ कि आप का ख़त हिन्दी में ही होगा अगर आप को अनुचित प्रतीत न हो तो क्या आप यह ख़त मुझे दिखाने और सुनाने की कृपा करेंगे? यह सुनते ही मैं पानी पानी हो गया। वह ख़त अंग्रेज़ी में था। पर बचाव का कोई चारा न था। मुझे वह दिखाना ही पड़ा। मैंने कहा-कुमारी हेलेल न! हमारे देश के पढ़े लिखे लोग सब काम अंग्रेज़ी में ही करते हैं। और इसी में गौरव समझते हैं। देश के बड़े २ लीडर भरी सभा में खड़े होकर यह कहने में 'कि मुझे बड़ा शोक है कि मैं हिन्दी नहीं जानता। इसलिए मैं अंग्रेज़ी भाषा में ही आप के सामने भाषण करूँगा' अपनी बड़ी शान समझते हैं। देशी भाषाएँ गँवारू समझी जाती हैं। बदकिस्मती से मैं भी इस मर्ज़ से बचा हुआ नहीं हूँ। यह सुन कर हेलेन को बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगीं कि अब मेरी समझ में आगया कि आप का इतना बड़ा देश क्यों पराधीनता में जकड़ा पड़ा है। जब आप की कोई राष्ट्रभाषा ही नहीं तो आप क्या उन्नति कर सकते हैं? हेलेन के चेहरे की वह विषादपूर्ण रेखा अब भी मेरी आँखों के सामने उतनी ही गहरी बनी हुई है। अब तक तुम्हारी सहायता से मैंने इतनी परीक्षाएँ पासकी हैं। इस परीक्षा में भी मेरा खिवैया तुम्हें ही बनना पड़ेगा मैं आज ही हिन्दी के अक्षर सीखूंगा और हेलेन को भी सिखाऊँगा।

आनन्द बाबू ने कहा— तथास्तु।

(५)

मिस्टर यूसूफ़ और आनन्द बाबु को अमेरिका आये हुए लग भग चार वर्ष हो चुके। दोनों ही अपनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए अब स्वदेश लौटने की चिन्ता में हैं। विलम्ब इस बात का है कि, अगले क्रिसमस पर जेम्स परिवार में एक हिन्दू नाटक खेलने का आयोजन हो रहा है। सावित्री सत्यवान् की कथा को लेकर इङ्गलिश में एक छोटा सा नाटक आनन्द बाबू ने तैयार कर दिया है। उसे ही खेलने की सब की इच्छा है। हमारे पूर्व परिचित दोनों मित्रों को छोड़ कर शेष सभी पात्र जेम्स-परीवार के ही हैं। खूब अभ्यास किया जारहा है। अन्त को निश्चित दिन आपहुंचा। हेलेन ने सावित्री का पार्ट लिया और सत्यवान का पार्ट मिस्टर यूसुफ़ के हिस्से पड़ा। पर्दे और पोशाक भी हिन्दुस्तानी ढंग से तैयार किए गए थे। बनारसी साड़ी पहिन कर कुमारी हेलेन जब स्टेज पर आई तो सब दर्शक चित्र लिखित से रह गए। मिस्टर यूसुफ़ की गौर सुन्दर आकृति की शोभा भी किसी देवकुमार से न्यून न थी। सारा नाटक बड़ी उत्तमता से समाप्त हो गया। सावित्री की कठोर तपस्या को देख कर दर्शक गदगद होगए। सावित्री और सत्यवान का पार्ट इतना अच्छा हुआ कि लोग अपने आप को भूल गए। परन्तु अन्त में एक ग़लती-नहीं नहीं, बड़ी भारी गलती होगई। जब सावित्री यमराज से वर माँग रही थी उस समय– "सत्यवान के सम्बन्ध से मेरे ...... पुत्र हों" इस की जगह "मिस्टर यूसुफ़

के संबन्ध से………" ये शब्द कुमारी हेलेन के मुख से निकल गए। सारी नाट्यशाला में खलबली पड़ गई। स्वयं हेलेन को अपनी भूल पर अत्यन्त आश्चर्य और पश्चात्ताप हुआ। पर अब इसका उपाय ही क्या था। मिस्टर यूसुफ़ को कहीं मुंह छिपाने की जगह न रही। किन्तु वृद्ध मिस्टर जेम्स ने इसी समय स्थिति को सम्भाल लिया। वे एक दम स्टेज पर आगए और उन्होंने दोनों पात्रों का एक एक हाथ अपने एक एक हाथ में पकड़ लिया। वे कहने लगे कि—सज्जनो! दो ढ़ाई वर्ष से मैं इन दोनों प्रेमियों की गति मति का निरीक्षण कर रहा हूं। दोनों का प्रेम शुद्ध है दोनों का स्वभाव भी प्रायः मिलता है। मिस्टर यूसुफ़ भी हमारी ही तरह के एक धनी और उच्च घराने में पैदा हुए हैं। कुमारी हेलेन को हिन्दू सभ्यता से प्रेम है; मुझे आशा है कि मेरी पुत्री इन की पत्नी बन कर दुःखी न होगी। ये सब बातें पहिले से ही सोच कर मैंने इन के रास्ते में कोई रुकावट न खड़ी की। मैं चाहता तो इस का प्रबन्ध पहले ही कर सकता था। मिस्टर यूसुफ़! आज से दो वर्ष पूर्व ठीक इसी उत्सव में आप एक अतिथि की भाँति इस गृह में आये थे और आज हमारे निकटतम होकर भी बहुत दूर चले जाने के लिए तैयार हैं। इस समय मेरा हृदय सुख और दुःख के एक मिश्रण में डुबकियाँ लगा रहा है। अस्तु, मैं अन्त में आशीर्वाद देता हूँ कि आप की यह नई जोड़ी परमेश्वर की कृपाओं की अनन्त वृष्टि में अपनी जीवन यात्रा का मार्ग सकुशल बनाती रहे।

(६)

अमेरिका से लौट कर आनन्द बाबू आज बम्बई पहुँचेंगे इस लिए उनके इष्टमित्र स्वागत के लिए पहिले ही वहाँ जा पहुँचे। मिस्टर यूसुफ़ के रिश्तेदारों को जब आनन्द बाबू के लौटने का समाचार मिला तो वे भी पीछे न रहे। यद्यपि मिस्टर यूसुफ़ के पिता को कोई पत्र अपने पुत्र का नहीं मिला था तो भी उन्हें पूरी आशा थी कि यूसुफ़ अली ज़रूर ही अपने मित्र के साथ आवेगा, यदि न भी आवेगा तो उसके एकाएक ख़तो-किताब बन्द कर बैठने और लौट कर न आने का सबब तो मालूम होगा ही।

जहाज़ आपहुँचा। कितने ही मनुष्य अपने २ बन्धुओं का स्वागत करने के लिए पुष्पमालाएँ हाथ में लिए हुए वहां उपस्थित थे। दोनों ओर से आनन्द सूचक संकेत होने लगे। थोड़ी ही देर में आनन्द बाबू, मिस्टर यूसुफ़ अली और उन की बाँयीं ओर हमारी पूर्व परिचिता कुमारी हेलेन उतरते हुए दिखाई दिए। चिरकाल के बिछुड़े हुए बन्धु दौड़कर गले लग गये। मिस्टर यूसुफ़ से उनके नए साथी का परिचय पाकर उन के सभी रिश्तेदार बहुत प्रसन्न हुए और और कहने लगे कि भाई! तुम ने इस बात की ख़बर हमें पहिले ही क्यों न दी। मिस्टर यूसुफ़ ने कहा कि शायद आप को कुछ तकलीफ़ हो इस लिए पहिले वैसा न किया गया। अब आनन्द बाबू ने संक्षेप में अपने मित्र के शुभविवाह का ब्यौरा सब के सामने रख दिया। किन्हीं को खुशी हुई, कइयों को दुःख हुआ, कितनों को केवल आश्चर्य ही हुआ। कुछ वृद्ध लोग कहने लगे कि हम तो

पहिले ही कहते थे कि ऐसे छोकरों को परदेश नहीं भेजना चाहिए। ये वहाँ जाकर बिगड़ जाते हैं। वृद्ध पिता को बुढ़ापे में इस प्रकार अपने इकलौते बेटे से हाथ धो बैठने का बड़ा दुःख हुआ। पर अब क्या हो सकता था।

आनन्द बाबू ने एकान्त में मिस्टर यूसुफ़ से कहा कि तुम अपने पिता के साथ घर क्यों नहीं जाते? उन्होंने उत्तर दिया कि मेरा उस घर में गुजर होना मुश्किल है। मेरा विश्वास और रहन सहन सब बदल गए हैं। मुझे उस घर का परित्याग करना पड़ेगा।

आनन्द बाबू ने कहा कि नहीं यह सब कुछ न होगा। तुम अब भी पहिले की तरह ही अपने पिता के पुत्र हो। तुम्हारी शुद्धि होगी। वह शुद्धि हिन्दू मुसलमानों में लड़ाई का बीज न बोएगी। चलो हम सब काशी चल कर प्रायश्चित्त करलें।

(७)

आनन्दबाबू सब साथियों सहित काशी में एक विशाल मन्दिर के द्वार पर पहुँचे। मुसलमान सज्जनों को भीतर जाने से संकोच होने लगा। पर आनन्द बाबू के आग्रह से सब को अन्दर जाना पड़ा। यह मन्दिर भी विचित्र है जिस में और मन्दिरों की तरह किसी भी संप्रदाय वालों का जाना निषिद्ध नहीं। उस में सभी अभ्यागतों का स्वागत समान भाव से किया जाता है। मन्दिर में प्रवेश करते ही भारत माता की विशालमूर्ति दृष्टिगोचर हुई। उस सुजला सुफला शस्यश्यामला जननी के चरणों में अनायास ही सब का मस्तक अवनत होगया। प्रवासप्रत्यागत तीनों व्यक्ति वेदी के सामने खड़े होगये। वृद्ध पुजारी गंभीर स्वर में बोले—

मुझे प्रसन्नता है कि आज तुम सम्प्रदायों के क्षुद्र बन्धनों को तोड़कर जातीयता के उस विशाल धर्म में दीक्षित हो रहे हो जिस में सङ्कुचित और अनित्य व्यवस्थाओं की बाधा नहीं है। यह भारत का जातीय-धर्म है। इसमें सब एक होंगे। क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या ईसाई सब की एक हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होगी। सबको एक ही शुद्ध आर्य्यवेश धारण करना होगा। सब के नाम एक ही ढंग के, भारतीय परिपाटी के अनुसार होंगे। भिन्न २ सभी सम्प्रदायों के प्रवर्त्तक सामयिक सत्यताओं के प्रतिनिधि थे। उनका उचित सत्कार करना संसार का कर्त्तव्य है। उनसे उतर कर अपने ही देश के महापुरुष जिन्होंने भारतीय सभ्यता का निर्माण किया वे हमारे आदर्श हैं। भारत का इतिहास ही उसके सब सम्प्रदायों का इतिहास होगा। भारतीय साहित्य ही सबका साहित्य होगा। समुद्र में मिलकर नदियों के अपने अपने विशेष गुण छूट जाते हैं इसी प्रकार तुम लोग किसी भी देश से या किसी भी जाति से यहाँ आये हो इस भारतीय धर्म में दीक्षित होकर भारतीय होगये। इन सिद्धान्तों को मानते हुए कोई भी भारतवासी अपने ईश्वर की पूजा किसी भी ढंग से करता हुआ भारतीय या हिन्दू ही कहलायेगा। भारतीय धर्म की ऐसी विस्तृत व्याख्या सुनकर मिस्टर यूसुफ़ के सब सम्बन्धी भी बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने इस नवीन धर्म में दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार वे भी हिन्दू बना लिये गये। सब उपस्थित लोग कहते थे कि यह भी एक विचित्र किंतु आदर्श शुद्धि है।

देशभक्त की कामना

होते मातृभूमि की पताका-रखवाले हम,
जाते रक्षा करने में हम भर घाव से।
फिर भी झुकाने वाले झण्डे को न हम होते,
सुवीर रणक्षेत्र में होते डटे राव से।
वैरियों की गर्व-घटा के लिए पवन होते,
लोभों के गह्वर को रौंदते हम पाँव से।
मरने पै यदि दो आँसू बहाने वाले होते,
बार बार मरते ले ले जनम "चाव से"॥

वनमाली

दिखा दिया

सुरधुनि-तीर एक मुनि-वीर हीरक ने,
प्रेम-नीर दे करके काव्य पनपा दिया।
आर्य भारती को मेघ दूत का सँदेशा दे के,
कविकुलगुरु कालिदास ने दिखा दिया।
तुलसी से सूरमा ने चूर चूर कर भर,
हिन्दी कविताई को जुन्हाई बरसा दिया।
हाय! भारत की भोरी सभ्यता का नंगा नाच,
नंगे निरे हो कर के नागों ने 'दिखा दिया'॥

वनमाली

सुदूर पूर्व की समस्या

(लेखक गुरुकुल का एक ब्रह्मचारी)

राजनीतिज्ञों के दिमाग को चक्कर खिलाने वाली तीन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में से 'सुदूर पूर्व की समस्या' अन्यतम गहन और जटिल है। भूमध्य सागर और बालकन रियासतों की उथल पुथल और हलचलों से योरप की शक्तियों का ही विशेष सम्बन्ध है। यह एक सुप्त ज्वालामुखी है, आज जो धीरे धीरे जागृत हो रहा है। जब यह ज्वालामुखी फटेगा तब संसार की वही हालत होगी जो आज से चार साल पूर्व जापान की भूकम्प, तूफान और ज्वालामुखी के फटने से हुई थी। सारा संसार इस से निकले लावा से व्याप्त हो जायगा। फिर नए सिरे से नवीन संसार की सृष्टि होगी। यह वह भट्टी है जो सदा सुलगती रहती है, जिस से बहुत क्षीणकाय धूम्र राशि सदा निकलती रहती है। हवा का हल्का सा झोंका दहकते शोलों पर से राख के पर्दे को हटाने में समर्थ रहता है। एक आध सुलगती चिनगारी ही संसार को भयानक अग्निकाण्ड की सूचना देती रहती है। आज फिर संसार की आँखें चीन की ओर फिरी हैं। ४५ करोड़ की जन संख्या वाले देश को अंगड़ाई लेते देख कर संसार के कान खड़े हो गए हैं। रूस सदृश देशों ने 'संसार व्यापी क्रान्ति दीर्घायु हो, (Long live the world revolution) शब्दों में इस का स्वागत गान प्रारम्भ कर दिया है। हम भारतीय बड़ी आशा और उत्सुकता से इस के परिणामों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम लोग अपनी क्रियात्मक सहानुभूति का परिचय देने के लिए भी व्यग्र हैं। बृटैन की डिप्लमेसी आज बगलें झांक रही है। चीन के बन्दरगाह आज संसार की मुख्य शक्तियों के जंगी बेड़ों के अड्डे बन रहे हैं। विस्मयपूर्ण नेत्रों से राजनीतिज्ञ इस महान् क्रान्ति को देख रहे हैं जिस से चीन जन और धन की बहुत कम हानि किए सफलता के साथ अपने उद्देश्य पथ की ओर शीघ्रता से बढ़ रहा है।

इसलिए चीन की समस्या का असली रूप क्या है, उसका किस राष्ट्र के साथ क्या और कितना सम्बन्ध है और कितना प्रभाव पड़ेगा तथा नूतन चीन की वर्तमान हलचल का क्या परिणाम होगा यह जानना हमारे लिए विशेषतः भारतीयों के लिए आवश्यक हो गया है।

समस्या क्या है?— संसार पर प्रभुत्व करने वाली शक्तियों के प्रचारक एजेन्सियों द्वारा भेजे गए समाचारों को समाचार पत्रों में पढ़कर, चीन की वर्तमान हलचल का यह रूप ध्यान में आये बगैर नहीं रह सकता कि चीन का सारा उद्योग विदेशी शक्तियों को चीन से बाहर निकालने का है। पर चीन की वस्तुस्थिति को जानने वाले जानते हैं कि यह बात सत्य से दूर है। यह हलचल चीन के सब क्षेत्रों में व्याप्त हो गई है। क्रान्ति के प्रबल ज्वार ने पुराने संस्कारों और अन्ध विश्वासों तथा श्रद्धा के मन्दिरों और किलों को ढाह दिया है। इस हल चल को हम सुगमता से तीन रूपों में बांट सकते हैं। प्रथम (I) आन्तरिक (II) अन्तर्राष्ट्रिय (III) आर्थिक। हम क्रमशः इन तीनों पर यहां विचार करेंगे।

आन्तरिक समस्या— भौगोलिक दृष्टि से चीन की एकता है राजनैतिक या राष्ट्रीय दृष्टि से चीन की दैशिक एकता नहीं है। चीन में केन्द्रीय राज्य सत्ता की स्थापना ही इस चीनी हलचल का मुख्य उद्देश्य है। यह समस्या आज या कल से उत्पन्न नहीं हुई। पर यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितना चीन का इतिहास पुराना है। सम्पूर्ण चीन में एक शासन विधान की स्थापना करना इस हल चल का प्रथम उद्देश्य है। अतः इस को हम Constitutional कह सकते हैं। चीन का प्रारम्भिक, मध्ययुग और वर्तमान काल का इतिहास साक्षी है कि चीन में कभी भी केन्द्रिय राज्य सत्ता की सुसंगठित आधार पर

स्थापना नहीं हुई । बड़े २ चीनी नैपोलियन, सीजर और सिकन्दर सारे चीन में एक साम्राज्य की स्थापना करने में असमर्थ रहे । हन, यंग,सूप, मंगोल और मांचू राज्यवंश आए और चले गए पर चीन के इतिहास का कोई ऐसा पन्ना नहीं जो ऐसे काल की ओर निर्देश कर रहा हो जब चीन के प्रान्तीय शासक मुकदन या पेकिङ्ग के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा लेकर न खड़े हुए हों । होली रोमन एम्पायर (Holy Poman Empire) के समान चीन के सब प्रान्त केन्द्रीय सरकार से असम्बद्ध , विच्छिन्न और स्वतन्त्र थे ।

चीन का सम्पूर्ण इतिहास प्रान्तीय बलवान सरदारों और पेकिङ्ग सरकार के युद्धों का इतिहास है । जब किसी गवर्नर ने अपनी शक्ति को अनुभव किया तभी मौके बेमौके केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध खड़ा हो गया । इस विशृङ्खलता और अनैक्यता का कारण, हम भारतीयों के लिए और भारत का साधारण इतिहास जानने वालों के लिए जानना कठिन नहीं है ।

प्रथम तो चीन एक उपमहादेश के समान एक विस्तृत प्रदेश है । दूसरा प्राकृतिक बाधायें प्रान्तों के परस्पर सम्बन्ध में बाधक है । व्यवसायिक युग से पहिले ये बाधायें अलंघ्य और अगम्य थीं । इस कारण राजधानी से प्रान्तों का सम्बन्ध निरन्तर जारी रहना अत्यन्त कठिन था । कानून, आय और लगान की एक व्यवस्था सारे देश में प्रचलित करना उस समय कल्पना का विषय था । इस अवस्था में महान् बलवती सेना के कठोर नियन्त्रण के द्वारा भी साम्राज्य में एकता स्थापित करने में उस समय के राजनीतिज्ञ अपने स्वप्न-साम्राज्य में ही सफल हो सके होंगे । तीसरा कारण था जातियों और बोल चाल की भाषा की विभिन्नता । मध्य युग में जो अवस्था विभिन्न जातियों और विभिन्न भाषा के कारण योरप की थी वही चीन की थी । जिस प्रकार यह विभिन्नता योरप में युद्धाग्नि को प्रज्वलित रखती थी, उसी प्रकार चीन में यह समराग्नि को धधकती रखने में सहायक होती थी । अतः चीन का सदा से प्रयत्न रहा है कि सम्पूर्ण चीन में एक राष्ट्रीय शासन विधान की स्थापना की जावे । आज भी चीन बड़े २ ६ सेनापतियों का रङ्गभूमि बना हुआ है । (i) चांग-त्सो-लिन— यह सोविएट रूस का कट्टर शत्रु है । इसकी सेना सब से ज्यादा संगठित और सुशिक्षित है । (ii) चियांग-काई-शेक यह अभी राष्ट्रीय सरकार से अलग हुआ है । (iii) फेंग-यू-हें-सिंग यह शांसी प्रान्त का शासक है । ५०००० इस के पास सैनिक हैं । इस का क्यू मिन टांग के नर्माति-नर्म दल के साथ सम्बन्ध है । (vi) मार्शल वू-पी-फू इसने यांग-टी-सी घाटी में राष्ट्रीय सरकार से हार स्वीकार कर अनिच्छा के साथ चांग-त्सो-लिनकी अधीनता स्वीकार करली है ।

(v) मार्शल सन-चूआन-फेङ्ग यह अभी शंघाई से खदेड़ा गया है ।

(v) चांग-त्संग-चंग शांटुंग का शासक है ।

परन्तु हम भूल करेंगे यदि आज से ४० वर्ष पहिले आरम्भ हुए आन्दोलन की हम उपेक्षा करें, जिस आन्दोलन को वर्तमान रूप देने में डा० सन-यात-सेन ने अपना जीवन अर्पित कर दिया और उन के द्वारा स्थापित 'क्यू-मिन-टांग' नामक संस्था आज तक चीन की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न कर रही है और इस के लिए संसार की शक्तियों से मोर्चा लेने के लिए भी उद्यत है ।

इस आन्दोलन का दूसरा रूप है चीन में जनतन्त्र के भावों का समावेश । यद्यपि जिस साल १८७० के मध्य योरप के युद्ध ने जर्मन साम्राज्य की स्थापना की उसी साल जनतन्त्र की भावना की प्रबल लहर ने चीन में प्रवेश किया, पर वस्तुतः आज से ४० साल पूर्व मांचू शासन के अन्दर कांग-यु-वी ने सुधारों का समावेश किया । १९११ में डा. सन-यात-सेन के प्रयत्नों ने चीनी राज्य क्रान्ति को जन्म दिया और मांचू राज्यवंश भूत काल के इतिहास का विषय हो

गया। पर जनतन्त्र पद्धति की स्थापना न हो पाई। प्रत्युत 'यू आन शिकाई' के रूप में पुराने सैनिक शासन का फिर से उदय हुआ। जिससे चीन आज भी पीड़ित, दुःखी और सन्तप्त तथा त्रस्त है। इस प्रकार इस समय चीन की वर्तमान हलचल की तह में Constitutional और Democracy की प्रबल और वेगवती लहरें काम कर रही हैं जो सैनिक शासन को ढाहने का घोर प्रयत्न कर रही हैं। इस में सन्देह नहीं कि चीन में जनतन्त्र पद्धति के प्रति प्रेम की भावना बहुत ही निर्बल है और इस का वेग बहुत धीमा है। क्योंकि जनता अशिक्षित है। गाँवों में कोई राजनैतिक संस्था नहीं है जो गाँव वालों में राजनैतिक भावना को सदा जीवित और जागृत बनाये रखे। आदि काल की ग्राम्य संस्थायें जनतन्त्र पद्धति के भावों के प्रचार करने में सर्वथा असमर्थ और अयोग्य हैं। व्यापारिक केन्द्र स्थलों में व्यापारियों और व्यवसाइयों की गिल्डस (Guilds) हैं। पर ये सर्वथा आर्थिक ढंग की हैं। इनका आन्तरिक संगठन किसी हद तक जनतन्त्र पद्धति पर है। पर ऐसा कोई भी कानून या शासनविधान का सूत्र नहीं जिस के द्वारा ये संस्थायें देश की राजनैतिक संस्थाओं के साथ अपने आप को सम्बद्ध कर सकें और लोकमत को प्रगट करने वाली संस्थायें बन सकें। चीन में आज से कुछ साल पहिले वर्तमान युग की पार्लियामेण्ट्री राजनैतिक,व्यवसायिक और आर्थिक संस्थाओं का सर्वथा अभाव था।

आज चीन में जनतन्त्र भावना की वेगवती लहर तीव्र प्रवाह से प्रवाहित हो रही है पर यह केवल दस हजार शिक्षितों के अन्दर है। इस के पुरस्कर्ता और प्रारम्भ करने वाले 'सन्धि युक्त बन्दर गाहों' (Treaty ports) के रहने वाले हैं। नवीन चीन की यही लोग सृष्टि कर रहे हैं। इन्हीं लोगों ने डाक्टर सनयात सेन के नेतृत्व में 'क्यूमिनटांग' नामक संस्था की स्थापना की है। जिस की यांग-टी-सी की घाटी की विजयों ने संसार की मदोन्मत्त शक्तियों को चीन के साथ नर्मी और सन्मान के साथ वर्ताव करना सिखाया है। इस संस्था में प्रत्येक प्रान्त से प्रतिनिधि आते हैं। प्रतिनिधियों का निर्वाचन दैशिक आधार और पेशों के आधार (Territoriol basis and vocaticnal basis) पर होता है। इस प्रकार की निर्वाचन पद्धति के कारण प्रत्येक राष्ट्रीय, व्यापारिक व्यावसायिक और शिक्षण संस्थायें इस में बैठने का अधिकार रखती हैं।

चीन की चाह— प्रश्न यह है कि इस राष्ट्रीय विप्लव में चीन किस उद्देश्य से प्रवृत्त हुआ है? उसने इस कठोर व्रत की दीक्षा किस अभीष्ट की सिद्धि के लिए ग्रहण की है? इस महान् साधना के फल रूप चीन चाहता क्या है? आज चीन के दृष्टिकोण में परिवर्तन आगया है। अब वह विदेशी अधिकृत प्रदेशों, और तट कर नियन्त्रण की स्वतन्त्रता पा कर ही सन्तुष्ट होने वाला नहीं। अब वह विदेशियों के बड़प्पन के अहंकार को एक क्षण भर के लिए भी सहने कोतय्यार नहीं है। डा. सनयात के शब्दों में चीन के सामने तीन उद्देश्य हैं। स्वतंत्रता (Independence) जनतन्त्र पद्धति कीस्थापना (Democracy) और आर्थिक उन्नति (Economic Development)। इस प्रकार से चीन जहां विदेशियों के प्रभुत्व से स्वतन्त्रता चाहता है वहां इस के साथ २ आन्तरिक स्वतन्त्रता भी चाहता है। चीन सैनिक प्रभुओं के शासन से तंग आचुका है। चीन गृहयुद्धों से जर्जरित हो चुका है। ये युद्ध निर्जन और मरुभूमि या जंगल में नहीं होते पर आबाद, जनाकीर्ण धनधान्यपरिपूर्ण गांवों, नगरों और उपजाऊ हरे भरे खेतों में होते हैं। १९१२-१४ से लेकर आज तक १५० से कम छोटे मोटे युद्ध और ३७ से कम विराट् संग्राम नहीं हुए। चीनी जनता ने बड़ी आशा से वु-पी-फो और फेंग-यू-शिआन नामक सेना पतियों को क्रमशः अपना रक्षक समझा, पर घटनाओं ने इस के विपरीत सिद्ध किया। अन्त में विवश होकर जनता ने डा० सन यात सेन और उन के

द्वारा स्थापित क्यू-मिन टांग नामक संस्था को अपनाया और अब उनको अपना रक्षक और उद्धारक समझता है। आज चीन इन आन्तरिक युद्धों से सर्वथा और सदा के लिए मुक्ति चाहता है। चीन अपनी इस नवोदित क्रान्ति के मध्य 'चीनी जागृति के पिता डा० हू-शी के शब्दों में चाह रहा है—"हम एक सर्वथा नई क्रान्ति चाहते हैं, यह एक आध्यात्मिक क्रान्ति है। यह ऐसी नई क्रान्ति है जिसका चीन आज स्वागत कर रहा है। हमें आध्यात्मिक आधारभूत तत्वों और वर्तमान काल की सभ्यता की सम्भावित भावनाओं, प्रेरणाओं और आशा की आवश्यकता है। हमें प्राकृतिक उन्नति के नूतन गुणों और अविष्कारों की जरूरत है, धन कमाने के लिये नहीं, प्रत्युत अपने जीवन रक्षा के लिये और शोचनीय युद्धों से छुटकारा पाने के लिए, और अपने जीवन को अधिक उत्कृष्ट बनाने के लिए। हमें गवर्मेन्ट के नवीन भावना और प्रेरणा की आवश्यता है, जो व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाने का ज़रिया न होकर अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक सुख को करने वाली हो। हमें विज्ञान के नवीन विचारों की आवश्यकता है, पर उस की नहीं जिस के ज़रिये बिना धूआँ वाली विषैली गैस, चूर्ण या नाशक जहाज या विनाशक वायुयान बनावें, प्रत्युत उस विज्ञान की जो हमें न्याययुक्त सत्य पथ पर ले जाने वाला हो और मनुष्य की आत्मा और मन को दासता से मुक्त करने वाला हो। हमको अपने विचारों और विश्वासों को राष्ट्रीय बनाना चाहिये। और अपनी संस्थाओं को मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये बनाना चाहिये। सर्वतोधिक हमको आत्म-प्रवञ्चना से बचना चाहिये। और हम को सच्चाई और तत्परता से वर्तमान अवस्थाओं से असन्तुष्ट होना चहिये। हमारे अन्दर दैवीय असन्तोष सदा जागृत रहना चाहिये और हमको नवीन व्यवस्था में पूर्ण विश्वास होना चाहिये, जिस की कि हम सृष्टि कर रहे हैं। हमें नवीन दर्शन और नूतन साहित्य की आवश्यकता है जो हमारे इस नवीन विश्वास का प्रचार करे और फैलाये। इस प्रकार की आमूलचूल परिवर्तनकारी क्रान्ति चीन चाहता है।"

चीनी विप्लव का यह स्पष्ट स्वरूप है। आज चीन पुराने चोले को फेंक कर नए चोले को धारण कर रहा है। अब वो दिन गए जब २५ वर्ष पहिले कोई विदेशी शक्ति चीन के हाथ या पांव को बिना बाधा के काट सकती थी और चीन इस के दुःख दर्द को अनुभव भी न करता था पर अब तो यदि अंगुली के अग्र भाग में पिन भी चुभोई जाय तो-मांस काटने की बात तो दूर की है— इस दुःख दर्द को महसूस करता है और प्रतीकार के लिए सब साधनों का उपयोग किए बगैर शान्त होने का नहीं। चीन राष्ट्रीय ऐक्य, की अक्षुण्णता और अभङ्गता के लिए लड़ रहा है। यह सत्य है कि जब से चीन में मनुष्य जाति ने अपने पैर रखे हैं तभी से उत्तर पर दक्षिण ने चढ़ाई की है। उन युद्धों का कारण दक्षिण और उत्तरीय चीन की कुछ मौलिक भेद और असमानतायें हैं। परन्तु आज उत्तर पर दक्षिण की चढ़ाई अपनी महत्वाकाँक्षा की पूर्ति के लिए या अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण चीन और मानव जाति के स्थिर कल्याण और मङ्गलमय शान्ति स्थापना के लिए है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्या— चीन की घटनाओं को आवश्यकता से ज़्यादा महत्व दिया जारहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अफीम युद्ध और बक्सर युद्ध के बाद से विदेशियों के साथ घृणा की मात्रा बढ़ गई है। परन्तु इस समय जिन राष्ट्रों का स्वार्थ चीन के साथ सम्बद्ध है वे अपनी सैनिक शक्ति—जल, स्थल और आकाशीय शक्ति—का प्रदर्शन करने का मौका ढूंढ रहे हैं। बृटेन विशेषतः इसके लिए प्रयत्न कर रहा है। बृटिश साम्राज्यवाद की सदा से यह नीति चली आरही है कि वह दूसरों को अपने पर आक्रमण करने के लिए बाधित करता है और फिर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा या अपने अपमान के परिशोध के ब्याज से दूसरे देशों पर आक्रमण कर अपना स्वार्थ

सिद्ध करने आता है। उसको इस राजनैतिक कौशल पर अभिमान है। बृटिश लेखक अभिमान से कहते हैं कि इङ्गलैण्ड को बाँध दो, पीस दो, आग में फूंक दो, इसकी राख को समुद्र में फेंक दो, वह बच निकल आयगा, वह पुनर्जीवित हो उठेगा, वह फिर पवित्र बीज के समान उत्पन्न हो जायगा, अब तक जो उत्पन्न नहीं हुए उन जीवनों को स्वर्गीय भावों और अमर चमक से प्रकाशित कर देगा। पर इङ्गलैंड शान्त चीन को अपने विरुद्ध उत्तेजित नहीं कर सका है। चीन ने अपनी शान्त प्रकृति नहीं छोड़ी। बृटिश सैनिक चीनियों को उत्तेजित करने के लिए सब उपायों का उपयोग कर रहे हैं।

चीन के शासक क्या राष्ट्रीय और क्या सेनापति शासक सब एक दूसरे को दबाने के लिए विदेशी शक्ति का आश्रय और सहायता लेने से नहीं चूकते। विदेशी राष्ट्र भी अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए इनको आपस में लड़ाते रहते हैं और एक दूसरे को सहायता देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। विदेशियों के विरुद्ध तीव्र घृणा और विद्वेष के भाव चीन में सर्वत्र फैले हुए हैं। जनता विदेशियों की सत्ता को सहन नहीं कर सकती। उसकी मर्म वेदना डा० समयात सेन के इन शब्दों में प्रगट हुई है—"मुझे कौन बता सकता है कि चीन का कौन राष्ट्र स्वामी है? वह सब सन्धि करने वाली शक्तियों (Treaty poweres) के अधीन है इससे अधिक मैं और नहीं कह सकता। क्या अच्छा है, एक की सेवा करना या बहुतों की? कोरिया हम से कम दुःखी हैं। मैं चीन को एक उप उपनिवेश (By Colony) कहूंगा।" इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि विदेशियों के प्रति चीन की घृणा अकारण नहीं है। विदेशियों के जुल्म और अत्याचार तथा अपमानजनक बर्ताव ही इसके कारण हैं। विदेशियों ने चीनियों को उनके देश में ही विदेशी बना दिया है। चीन की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती में (International Settlement) में केवल ३०,००० विदेशी हैं। जिसमें आधे के लगभग जापानी हैं, ६००० अँग्रेज़, १००० अमेरिकन, और चीनी ११,००,००० और आस पास के शहरों में दो तीन मिलियन के लगभग हैं। परन्तु ये चीनी इस बस्ती में विदेशियों के समान रहते हैं। अँग्रेज़, अमेरिकन, फ्रेंञ्च और जापानी अपने कानूनों को मानते हैं। इनके अपने न्यायालय हैं और डाकखाने हैं। अँग्रेज़, अमेरिकन, जापानी और फ्रेंञ्च जिस प्रकार अपने देश में रहते हैं उसी प्रकार यहाँ रहते हैं। इस अधिकार का नाम Extra-territoriality है। यह ध्यान रखने की बात है कि ये अधिकार इनको बन्दरगाहों में अधिकता से Opened by treaties के कारण प्राप्त हैं। ये जगहें अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती कहाती हैं। इन जगहों में शङ्घाई अन्यतम है। शङ्घाई की चीनी आबादी १ मिलियन है। और ये लोग कर का ७०% देते हैं। परन्तु इनको मताधिकार प्राप्त नहीं है। इससे साफ ज़ाहिर है कि चीनियों की यहाँ क्या अवस्था होगी। यदि दो विदेशी राष्ट्रों के आदमियों में झगड़ा हो तो उनका फैसला उन दोनों देशों द्वारा की गई सन्धि के अनुसार होगा। चीनी कानून और चीनी अधिकार इस विषय में ज़रा भी दखल नहीं दे सकता। चीनी अधिकारी किसी विदेशी की तलाशी नहीं ले सकता। इसके कारण चीनियों में अपने अधिकारियों और कानूनों के प्रति घृणा और अवज्ञा के भाव पैदा हुए अब उनमें विदेशियों के प्रति भय और घृणा के भाव समा गए हैं।

तीसरी शिकायत यह है कि आयात कर और निर्यात कर यानी तट कर लगाने की स्वाधीनता चीन को प्राप्त नहीं है। चीन उसी सीमा तक तट कर बैठा सकता है जिस मात्रा तक की विदेशी शक्तियाँ इजाजत दें। वाशीङ्गटन कान्फ्रेंस के अनुसार इस समय चीन साधारण चीज़ों पर २½% और विलासिता की सामग्री पर ५% तक कर लगा सकता है। चीन विदेशियों की यह गुलामी सहने में असमर्थ है। इस कारण चीन विदेशियों के विरुद्ध खड़ा हुआ है। अवस्था भयानक होगई है। [शेष]

वैज्ञानिक संसार

१. सत्य बुलवाना

स्कोपोलैमिन नाम की एक औषध है जिस के सेवन से अनिच्छित गवाहों से सत्य प्रगट कराया जा सकता है। चाहे कितना भी रोको मुँह से सत्य निकल ही पड़ता है।

मनोविज्ञान विशारदों का मत है कि मनुष्य शरीर में एक शक्ति है जिसको "नीति नायक" का नाम दे सकते हैं यह सदैव सजग रहती है, जो कि प्रत्येक वस्तु को जिसे आप देखते हैं प्रत्येक कार्य को जिसे आप करते हैं, और प्रत्येक विचार को जिसे आप सोचते हैं देखती रहती है। यही शक्ति आपको किसी भी असावधानी के समय में जब कि हमारी जिह्वा से वह बात निकलने ही वाली होती है जो कि आप की मूर्खता की सूचक हो और हमें न कहनी चाहिये रोक देती है। स्कोपोलैमिन इसी नीति नायक को शिथिल और तेज हीन बना देती है और स्वतन्त्रता होने पर जो कुछ मन में होता है जिह्वा से कहा जाता है।

२. संसार के सब से नन्हे शिशु

वैस्ट हैम स्थान में एक वर्ष के लगभग हुआ एक बालिका ने जन्म लिया था। उस समय उस का बोझ केवल १२ छटाँक था। जहां तक पता है यह संसार में सब से अधिक छोटी बालिका है। पाँच मास की आयु तक इस को प्रति दिन जैतून की तेल से मालिश होती थी और इसे रुई में लपेट कर रखा जाता था। अब वह ५ सेर की है।

ग्लासगो में श्रीमती डासन के एक लड़की उत्पन्न हुई थी। जन्म समय उस का बोझ एक सेर था और लम्बाई केवल १० इञ्च, दो मास में यह बोझ में २½ सेर और लम्बाई में १५ इञ्च की हो गई।

आक्लैण्ड की श्रीमती जान्स्टन के एक लड़की है जो कि जन्म के समय एक सेर तोल में और १४½ इंच लम्बी थी। गत दिसम्बर में एक और लड़की उत्पन्न हुई थी जो कि जन्मके समय तोल में १२ छटाँक और लम्बाई में १५ इंच थी। वह भी रुई में लपेट कर गरम पानी की बोतलों से चिमटा कर रखी जाती थी। अब वह दो सेरकी होगई है।

३. अरबों रुपया मूल्यकी जीवन वृद्धि

हमारे देश में मनुष्य आयु घट रही है परन्तु योरोप तथा अमरीका इत्यादि स्वतन्त्र महाद्वीपों के देशों में जनता की सामान्य आयु बढ़ रही है। इस के कारण वहाँ का प्रत्येक पुरुष अधिक प्रतिभा शाली, अधिक सम्पन्न और अधिक सुखी हो रहा है। यदि इस आयु के बढ़ने को केवल अधिक धन कमाने की शक्ति की दृष्टि से ही मापा जाय तो आश्चर्यजनक राशि प्राप्त होती है। अमरीका में केवल पुरुषों को इस एक ही जीवन में ६४०००००००० रुपये प्रति वर्ष की अधिक आमदनी हुई है। स्त्रियों की आमदनी सूचक ठीक २ संख्या का पता नहीं, परन्तु एक इन्श्युरैन्स कम्पनी की गणना के अनुसार १९०१ से लेकर स्त्रियों ने अब तक १०५००००००००) अधिक कमाये हैं।

अधिक धनोपार्जन की शक्ति का कारण केवल सामान्य जीवन की वृद्धि है जो कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों पर अधिक ध्यान देने के कारण हुई है १६०१ में एक लड़के का जन्म के समय रुपयों में २२६५८ मूल्य था और आज यह २७६६६ है। ५३४० की वृद्धि का कारण यही है कि अब आशा की जाती है कि बालक इतने वर्ष की सामान्य आयु को अधिक भोगेगा और इस समय में इतना धन अधिक कमायगा।

साइन्स सर्विस

४. अन्तर्हित जीवन

यह सब जानते हैं कि बीजों में बहुत देर तक अङ्कुरित होने की शक्ति विद्यमान रहती है और कितने ही प्राणियों में बहुत अधिक समय तक सब जीवन क्रिया बन्द होने पर भी जीवन बना रहता है।

शीत रक्त प्राणियों में यथा केंचवा, जल टिड्डा, मेंढक मछली इत्यादि में अन्तर्हित जीवन के कई उदाहरण मिलते हैं। मछलियों के एक समूह को एक बर्फ़ के बड़े भारी टुकड़े में पानी जमने के तापमान से १६ दर्ज़े नीचे के ताप [१६°c.] में जमाया गया बर्फ के हटाने पर ज्यों २ सर्दी दूर होती गई उन में जीवन के लक्षण दिखलाई पड़ते गये और अन्त में उन में पुनः फुरती आगई। इसी प्रकार मेंढक को इस भाँति जमाया जा सकता है कि उसका शरीर इतना अकड़ जाय कि उसे एक टांग से लकड़ी की भाँति पकड़ा जा सके। परन्तु शीत दूर करने पर वह पुनः इस प्रकार फुदकने लगेगा जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

भालू, कांटेदार जङ्गली चूहा, एक विशेष प्रकार का जंगली बन्दर इत्यादि कितने ही प्राणी सरदियों के आगमन से पहिले अपने शरीर पर बहुत सी चरबी धारण कर बहुत मोटे हो जाते हैं और आगामी बसन्त तक संसार से पृथक् हो हिमकन्दराओं में जा छिपते हैं, जहाँ उनकी अवस्था अन्तर्हित जीवन धारी प्राणी की सी हो जाती है। इसी प्रकार हमें कभी कभी ऐसे मनुष्यों के विषय में सुनाई पड़ता है जो कि ऐसी गहरी निद्रा में पड़ जाते हैं कि दिनों और सप्ताहों तक जागने का नाम नहीं लेते।

५. एक विचित्र मछली

समुद्र में एक विचित्र प्रकार की मछली होती है जिसकी पीठ पर एक पतली सी डोरी उठी रहती है। इसका सिरा कुछ फूला सा रहता है और जो कि शिकार को प्रलोभन देने के साधन (आमिष) का काम देता है, इन मछलियों में स्त्री-पुरुष दोनों का एक ही शरीर होता है। पुरुष की लंबाई चार इञ्च होती है और स्त्री की चार फुट। अभी इसका शरीर अपक ही होता है कि पुरुष स्त्री के शरीर के साथ जुड़ जाता है। प्रोफेसर पाईक्राफ़्ट का अनुमान है कि स्त्री के शरीर को भली प्रकार पकड़ने के लिये अल्पकाय पुरुष के निचले जबड़ों में एक प्रकार के बाल से उत्पन्न होजाते हैं जो बहुत ही चिप-चिपे होते हैं। इस उत्तेजनासे स्त्री के शरीर में स्तन मुख की भाँति उभरे हुवे दानों का एक गुच्छा सा बन जाता

है जो कि पुरुष के शरीर को भेदकर रक्त वाहिनियों का समूह बनकर पुरुष का-स्त्री के शरीर में घटने वाली सब जीवन क्रियाओं से सम्बन्ध जोड़ देता है। इस प्रकार पुरुष को स्वतन्त्र रूप से अपना भोजन प्राप्त करने की चिंता-यदि सर्वांश में न भी हो तो भी बहुत कुछ-दूर होजाती है अर्थात् पुरुष का इसी प्रकार पालन पोषण होता है जिस प्रकार रीढ की हड्डी वाले बड़े २ जानवरों के गर्भ स्थित बालक का। यह लघुकाय पुरुष भोजन की खोज में इधर-उधर भटकने की चिंता से रहित होकर, यहाँ तक कि खाने की क्रिया से मुक्त होकर केवल मात्र परिभ्रष्ट बन गया है। उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य मछली के दिये हुए अण्डों को सफल बनाने के लिए वीर्य्य का उत्पन्न करना ही रह जाता है। दूसरे शब्दों में वह एक परपिंडभोजी जीव की अवस्था को प्राप्त होजाता है यद्यपि यह एक परोपकार शील परपिंड भोजी जीव है जिसके अभाव से वंश का नाश अवश्यम्भावी है।

६. जनता के लिये विमान

आजकल मोटरों की ख़ूब वृद्धि होरही है। कोई ऐसा छोटा भी शहर न होगा जहाँ दस-पाँच मोटर गाड़ी न हों। जिनको परमात्मा ने धन दिया है वह जब कभी दस पन्द्रह दिन के लिये कार्य वश किसी बड़े नगर में जाते हैं अपनी मोटर साथ ले जाते हैं और उसी पर विशाल नगरों में इधर-उधर जाकर अपना काम कर लौट आते हैं। क्या यह काम कभी हवाई जहाज़ भी दे सकेंगे?

सर ऐलन कोभम विलायत को प्रसिद्ध वायुयान वाहक है। उसने इङ्गलैंड से आस्ट्रेलिया और वापिस २८००० मील का सफ़र वायुयान में किया था जिस से महाराज जार्ज द्वारा उसका विशेष सम्मान हुआ। आजकल सर ऐलन अमेरिका में वायुयानों का प्रचार कररहे हैं। आप स्थान २ पर व्याख्यान देते फिरते हैं। कहते हैं कि आपके व्याख्यान बड़े मनोरञ्जक और शिक्षा-प्रद होते हैं। आपका कथन है कि वायुयान और बाईसिकल में बहुत कुछ समानता है। कुछ वर्ष हुये बाईसिकल चलाना बड़ी कठिनता से सीखा जाता था, परन्तु आज तो मानों वह लड़कों के ख़ून में ही समाया हुआ है। यही अवस्था वायुयान की होगी और यह विद्या बड़ी साधारण सी बात बन जायेगी। अपने इस कथन की पुष्टि में कोभम महाशय जब और जहाँ चाहते हैं वायुयान द्वारा प्रत्यक्ष दिखलाते हैं। उनके पास "पतंग" नाम का विमान है। इसी में आप अमेरिका पहुँचे थे और इसी में आप तथा श्रीमती लेडी कोभम ने अमेरिका का बहुत बड़ा भाग देख डाला है।

अमेरिकन संयुक्त प्रान्त के प्रधान के निमन्त्रण पर आप कड़ाके की सर्दी में और ४० मील प्रतिघंटा की तेज़ हवा में किसी विशेष तैयारी के बिना केवल विशेष गरम कोट पहिन कर वाशिंगटन पहुँच गये थे।

आप इङ्गलैंड की विमान बनाने वाली 'डी हैवलैंड' कम्पनी के एजण्ट हैं। यह

कम्पनी "पतंग" के विषय में अपने विज्ञापन में इस प्रकार घोषणा करती है— इसका चलाना इतना ही सरल है जितना कि एक छोटी मोटरकार का, उत्तम क्रियात्मिक सवारी है जिसमें सवारियों को सब प्रकार का सुख प्राप्त होगा, सामान रखने के लिये पर्याप्त स्थान है, सुगमता से यह चलाई और रोकी जा सकती है, किसी भी मौसम में ७० से ८० मील प्रति घंटा की चाल से उड़ती है। इसका दैनिक व्यय एक मोटरकार के व्यय से कम होता है। एक बार सब सामान भर लेने पर यह २५० मील तक बिना कहीं ठहरे चली सकती है। मूल्य लगभग १००००)

७. स्वास्थ्य के लिये चूने की आवश्यकता

मनुष्य शरीर में जड़ अथवा अप्राणिज पदार्थों—जैसा कि लोहा, फ़ास्फोरस, नैल इत्यादि-में खटिक अथवा चूने का मूलतत्व जिसे कैलसियम कहते हैं, बड़ी महत्व पूर्ण चीज़ है। एक युवक अथवा युवती के शरीर का यह पचासवाँ भाग होता है। यह सब-का-सब प्रायः हड्डियों और दाँतों में ही मिलता है। रक्त तथा शरीर के सभी भागों में यह थोड़ी बहुत मात्रा में विद्यमान है।

अतः शरीर में इस तत्व की समानता स्थिर रखने के लिये यह आवश्यक है कि यह एक निश्चित भाग में शरीर में नियम पूर्वक पहुँचाया जाय। डाक्टर मैकस्वर का कथन है कि मनुष्य की आयु में तीन अवस्थाएँ ऐसी आती हैं जब कि शरीर को कैलसियम की विशेष आवश्यकता होती है— (१) शरीर की वृद्धि के समय जब कि यह प्रत्येक अंग के बनाने भाग लेता है। (२) गर्भ के समय जब कि माता को गर्भजात बालक की फैलती हुई हड्डियों के बनाने के लिये इसे देना पड़ता है और (३) बालक को दूध पिलाने के दिनों में जब कि माता के द्वारा ही बढ़ते हुए बालक की कैलसियम की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

आधुनिक अनुसन्धान द्वारा पता लगा है कि कैलसियम, फास्फोरस और विटामिन्ज़ शरीर में लवणों के उचित मात्रा में प्रयोग के लिये आवश्यक हैं। शरीर में कई प्रकार की गिल्टियाँ हैं जो कि इनकी मात्रा का नियन्त्रण करती हैं।

डाक्टर मैकस्वर ने चूहों पर कितने ही परीक्षणों द्वारा देखा कि कैलसियम की कमी के कारण कितने ही बच्चे माता के पेट में ही मर जाते हैं। जब कि चुहियाँ अपने अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं तब उनके शरीर में विद्यमान कैलसियम की मात्रा कम पड़ने लगती है और यदि भोजन द्वारा उसे केलसियम न दी जाय तो बच्चे छोटे और अधमुये से हो जाते हैं और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इससे डाक्टर साहब परिणाम निकालते हैं कि गर्भ तथा बच्चों को दूध पिलाने के दिनों में स्त्रियों के भोजन में कैलसियम की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये, अन्यथा

सन्तान की जन्मते ही मृत्यु, उनका दुर्बलेन्द्रिय होना तथा उनके दाँतों को ख़राब और खोखला होजाना इत्यादि स्वभाविक दुष्परिणाम होंगे।

कैलसियम गाय के दूध में विद्यमान है। गर्भिणी स्त्री को और जब जन्म के पश्चात् बालक माता का दूध पीना नहीं छोड़ देता तब तक खूब दूध पीना चाहिये। हम तो यह कहेंगे कि गर्भ के रहने के समय से लेकर स्त्रियों को इतमा दूध पीना चाहिये जितना दो जनों के लिये पर्याप्त हो और जन्म के पीछे बालक जितना २ ऊपर का दूध पीना आरंभ करदे उतना २ माता पीना कम करती जाय। इस अंश में हमारी भारतीय माताएँ बड़ी अपराधिनी हैं। वे वैसे ही बहुत कम दूध पीती हैं परन्तु इन अवस्थाओं में उन्हें अपने लिये नहीं वरन् अपनी सन्तान के लिये ख़ूब दूध पीमा चाहिये। फास्फोरस भी दूध में रहता है और सब्ज़ तरकारियों से मिल सकता है और वाईटेमिन्ज़ जो कि कैलसियम के ठीक २ शरीर में पचने के लिये, आवश्यक है। पत्तेदार और हरी सब्ज़ियों तथा साबुत अनाज और दालों में ख़ूब रहती है।

८. सूर्य्य स्नान और कांच

जब सूर्य्य की किरणें त्रिपार्श्व शीशे के पर्शुक में से गुज़रती हैं तो वे इन्द्रधनुष के सात रंगों में अथवा बैंजनी, नीला, आस्मानी, हरा, पीला, नारंजी और लाल रंगों में विभक्त हो जाती हैं। परन्तु कुछ किरणें ऐसी भी हैं जो कि इस ओर लाल के नीचे और उधर बैंजनी के ऊपर रहती हैं यह अदृश्य प्रकाश की किरणें हैं। हमारी आँखें इन्हें नहीं देख सकतीं परन्तु फोटो के प्लेट अथवा अन्य यन्त्रों द्वारा इनका विद्यमान रहना सिद्ध होता है। यह बैंजनी से ऊपर की किरणें से हमारे स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक हैं। इनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में हम ज्योति के पिछले अङ्कों में लिख चुके हैं। जो मनुष्य बहुधा घरों के भीतर तंग और अन्धेरी गलियों में रहते हैं उनका शरीर दुर्बल और मुख पीला रहता है। इसका कारण उनके शरीर को इन किरणों का न मिलना ही है। इसीलिये आजकल के डाकृर जिस प्रकार स्वास्थ्य के लिये जल-स्नान को अत्यावश्यक बतलाते हैं उसी प्रकार वह सूर्य्य स्नान भी परमावश्यक मानते हैं। उनका मत है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये यह परमाश्यक है कि खुले नंगे शरीर से सूर्य्य के प्रकाश में भली प्रकार से बैठा जाय। जिस किसी भी अंग में कोई रोग अथवा दुर्बलता हो उसे भली प्रकार सूर्य्य के सामने रखकर सेंकना चाहिये। इस सूर्य्य स्नान का पूरा आनन्द तो अफ्रीका के हबशी अथवा अमेरिका के रक्तवर्ण आदम निवासी जिन्हें नंगे घूमने-फिरने में किसी प्रकार का संकोच नहीं, लेते हैं। हम ठहरे सभ्य और शरीर का खुला रखना हुई असभ्यता। इसीलिये तो आजकल की सभ्यता में ऐसे ही वस्त्र धारण किये जाते हैं जिससे अधिक से अधिक अङ्ग ढके जा सकें, हाँ रमणियों की छाती एक अवश्य अपवाद है जो कि दिन प्रति दिन अधिक निर्वस्त्र होती जाती है। फैशन की इस लहर को ध्यान में रखते हुए ही डाकृर लोग सूर्य्य

स्नान की आवश्यकता पर अधिक बल दे रहे हैं। वे कहते हैं कि यदि बाहर नहीं तो घरों में यह स्नान कुछ समय के लिये अवश्य करना चाहिये। घरों अथवा अस्पतालोंमें एक कमरा ऐसा अवश्य होना चाहिये जिसमें सूर्य्य का खुला प्रकाश पहुँच सके। इस प्रकाश और मनुष्य शरीर के बीच काँच की खिड़कियों और दर्वाजों के अतिरिक्त और कुछ न होना चाहिये। शीशों में से प्रकाश छन कर शरीर पर पहुँचे। इसी धारणा के अनुसार यूरोप के कितने ही नगरों में सूर्य्य स्नान के लिये सार्वजनिक स्नानागार बन गये हैं जिनमें जो कोई भी जाय नियत फ़ीस देने पर निस्संकोच स्नान कर सकता है। कितने ही व्यक्तियों ने इस आयोजना से लाभ भी उठाया है। किन्तु अब पता लगा है कि इस लाभ का कारण मानसिक प्रवृत्ति ही थी बैंजनी से परे की स्वास्थ्यप्रद किरणें नहीं क्योंकि वह तो साधारण काँच के शीशों में से निकल ही नहीं सकतीं। जहाँ कि सात रंगों से मिलकर बना हुआ श्वेत प्रकाश साधारण शीशों में से निकल जाता है वहाँ यह परमावश्यक रश्मियें फोक की भाँति काँच के दूसरी ओर बाहर ही हर जाती हैं। तब क्या सूर्य-स्नान के लाभ से हम वञ्चित रहेंगे? यहाँ फिर विज्ञान ने हमारी सहायता की है। एक नवीन प्रकार का काँच जिसको "बाईटाग्लास" का नाम दिया गया है बनाया गया है जिसमें से यह स्वास्थ्यप्रद रश्मियें पार होजाती है और हम अपने घरों में ही दर्वाजों और खिड़कियों में इस काँच के शीशे को लगाकर सूर्य-स्नान का पूरा लाभ उठा सकते हैं। टांगों का टेढ़ापन, हड्डियों का मुड़ना अथवा दुर्बल होना इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों से यह स्नान हमारी रक्षा करता है। अतः हम ज्योति के पाठक पाठिकाओं से बलपूर्वक आग्रह करेंगे कि वे यथासम्भव कुछ समय के लिये अवश्य खुले शरीर सूर्य-स्नान किया करें। अभी हिन्दुस्तानी घरों में आधुनिक सभ्यता इतनी नहीं आई है कि हम इस लाभ से सर्वथा वञ्चित हो जायें।

◆

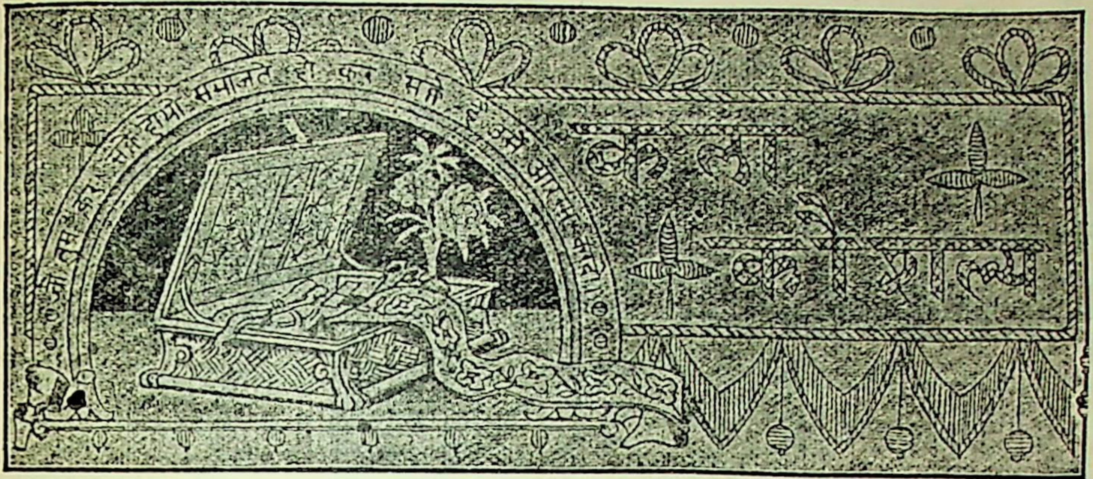

कमल लेस

शुरु में ८६ चेन करो

१ पक्तिः— १ ते. ८ वीं चेन में १और खाना ४ ते. १६ खाने ४ ते. ३ खुला लैसपर (५ चे. ५ छोड़ो १ तेहरा) ४ तेहरा

२ पंक्तिः— ४ ते. [३ चे पहिले के लिये], ३ लैसपर [३ चेन २ छोड़ो१दोहरा ३चेन २ छोड़ो १ तेहरा] ४ तेहरा। *२ खाने ७ तेहरे १३ खाने किनारा [४ खाने तेहरे १ खाने का]

३ पक्तिः— १० चेन ८ वीं चेन में १ तेहरा, २ चेन १ तेहरा पिछली पंक्ति के पिछले तेहरे में ३ तेहरे अगले ३ तेहरों में* १५ खाने ७ तेहरा १ खाना, किनारा [पहिली पंक्ति में *चिन्ह से लेकर]

४ पंक्तिः— किनारा, [दूसरी पंक्ति के *चिन्ह तक १ खाना ४ तेहरा १७ खाने; किनारा [दूसरी पंक्ति की तरह]

५ पंक्तिः—[* चिन्ह तक तीसरी की तरह] १८ खाने ४ तेहरा १खाने किनारा

६ पंक्ति— किनारा; १ खाना ४ तेहरे ४खाने १० तेहरे ४ खाने, ७ तेहरे ६ खाने; किनारा

७ पंक्तिः— किनारा; ७ खाने १० तेहरे २ खाना १६ तेहरे, ३ खाने, ४ तेहरे, १ खाना किनारा

८ पंक्तिः— किनारा; १ खा., ४ ते., ३ खा. ७ ते., [१ खा. १० ते.] दो वार, ८ खाना, किनारा।

९ पंक्तिः— किनारा; ३ खा, १६ ते., [१ खा., १० ते.,] दो वार, २ खाना, ४ ते., ३ खा., ४ ते., १ खा., किनारा

१० पंक्ति—किनारा; १ खा., ७ ते., ५ खा., १० ते., १ खा., ७ ते., १ खा., २२ते. ३ खा., किनारा।

११ पंक्तिः— किनारा ; ३ खा., ७ ते., ४ खा., १६ ते., २ खा., १० ते., ३ खा., १० ते., १ खा, किनारा।

१२ पंक्ति— किनारा, २ खा., २२ ते, २खा. २३ ते., ३ लैसपट १ खा., ७ ते. ३खा., किनारा

१३ पंक्तिः— किनारा ४ खा. १० ते., ३ बार, १ खा., १६ ते., ३ खा.; १० ते., ३ खाना किनारा।

१४ पंक्तिः— किनारा; २ खा., ४ ते., २ खाना., २२ ते., १ खा., ४ लैस्पट, १० ते., १ खा., ४ ते., ३ खाने, किनारा।

१५ पंक्तिः— किनारा; ३खा., १०ते., ३खा. ४बार, ६ खा., १० ते., १ खा., किनारा।

१६ पंक्तिः— १४ पंक्ति की तरह

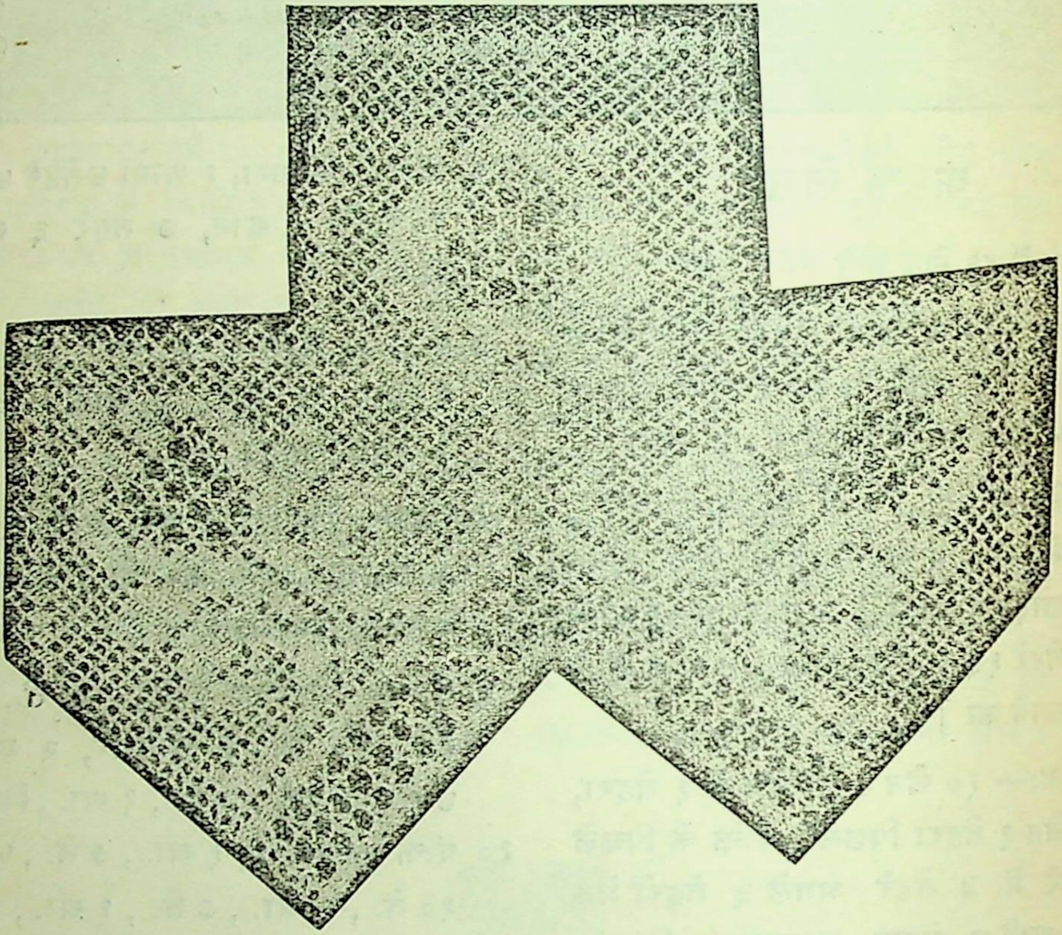

१७ पंक्तिः— किनारा; [२ खा., ४ ते., का किनारा होगा क्यों कि किनारे की तरह किनारा बनाकर १३ पंक्ति की तरह बनाओ। अब नोक में घटाव शुरू हो जाता है] ४ खा., १० ते., ४ बार, १३ ते., ३ खा., १० ते., २ खा., किनारा।*

१८ पंक्तिः— किनारा, २खा., २२ते., २ खा., १० ते., ३ लैस्पट, १ खा., ७ ते., ३खा. किनारा। यदि १७ पंक्ति १३ वीं की तरह बनाई हो तो १८ पंक्ति १२ वीं की तरह बनाओ, जिस में १० ते. और १ खा. की

जगह १३ते. बनाओ। इस से कमल के दोनों तरफ़ एक से हो जायेंगे।

१६ से २८ पंक्तिः— ११ वीं से २ तक के अनुसार अथवा १८ वीं ११ वीं की तरह २० वीं १० वीं की तरह इत्यादि, केवल यह ध्यान रहे कि विषम [१६ १७, १५, इत्यादि पंक्तियों को आरम्भ में जो किनारा बनाया जाय वह १७ वीं पंक्ति की भाँति २ खा. ४ ते. का हो।

२६ पंक्तिः— २ खा., ४ ते., १६ खा., किनारा।

जितनी भी सीधी लेस बनानी हो दूसरी पंक्ति से लेकर २६ तक दोहराते जाओ।

कोना

कोने के लिये लेस की पहली २२ पंक्ति बीन कर इस प्रकार बीनोः—

१ पंक्तिः— २३ पंक्ति की तरह, अन्त में ३ लैस्पट से लौट पड़ो [किनारे के ४ तेहरे छोड दो]।

२ पंक्तिः— ३ बन्द लैस्पट या बार, [८ चेन पहली बार के लिये], ४ ते., २४ वीं पंक्ति में दिये कंगूरे की तरह।

३ पंक्तिः— २५ वीं की तरह, अन्त में ३ लैस्पट।

४ पंक्तिः— ३ बार के बाद २६ पंक्ति की तरह।

५ पंक्तिः— २७ पंक्ति की तरह, अन्त में ३ लैस्पट खुले

६ पंक्तिः— ३ बार [या बन्द लैस्पट] २८ वीं की तरह

७ पंक्तिः— २६ वीं की तरह अन्त में १६खा

८ पंक्तिः— ११ खा. १० ते., ३ खा., किनारा

९ पंक्तिः— किनारा [३ पंक्ति की तरह अब सिरा चौड़ा होता जायगा]; ३खा., १६ ते., १० खा.,

१० पंक्तिः— [४ खा., ७ ते.] २ दफ़ा, २ खा., ४ ते., ४ खा., किनारा।

११ पंक्तिः— किनारा, ८ खा., १० ते., २ खा., १३ ते., ३ खा.,

१२ पंक्तिः— ३ खा., [७ ते., १ खा.,] २ दफ़ा, १० ते., ६ खा. किनारा।

१३ पंक्तिः— किनारा, ४ खा., १६ ते., १खा. १० ते., १खा, १३ ते., ४ खा,।

१४ पंक्तिः— ५ खा., १० ते., १खा., ७ ते; १ खा., १६ ते., ५ खा., किनारा

१५ पंक्तिः— किनारा, ५ खा., ३१ ते.,६खा.

१६ पंक्तिः— ४ खा., २५ ते., ४ खा., १३ते., ५ खा., किनारा

१७ पंक्तिः— किनारा, ६ खा., १० ते., ३ लैस्पट, २८ ते., २ खा.,।

१८ पंक्तिः—१ खा., १६ तं., १ खा., ७ ते. १ खा., ३ बार १ खा., ७ ते., ७ खा., किनारा।

१९ पंक्तिः— किनारा, ८ खा., ७ ते., १ खा. ३ लैस्पट, २ खा; ७ ते., ४ खा., ७ ते., १ खाना,।

२० पंक्तिः— १ खा., ७ ते.; ३ खा;, १० ते., २ खा., ३ बार, १ खा., ७ ते., १ खा. ४ ते., ७ खा., किनारा

२१ पंक्तिः— किनारा, ७ खा., १० ते., ३ खा., ३ लैस्पट, २ खा., १० ते., २ खा., ७ ते., २ खा.,।

२२ पंक्तिः— ७ खा, १० ते., २ खा. , ३ ते. , १ खा., ७ ते. , १ खा., ४ ते. , ७ खा. , किनारा

२३ पंक्तिः— किनारा [१७ वीं पंक्ति की तरह अब सिरा तङ्ग होता जायगा] ८ खा,, ७ ते., १ खा., ३ लैस्यट, १ खा., १३ ते., ६ खा, ।

२४ पंक्तिः— ४ ते., (३चे. पहिले के लिये) ५ खा., १६ ते., ७ खा., ७ ते., ७ खा., किनारा ।

२५ पंक्तिः— किनारा, ६ खा., १६ ते., १ खा. ११ ते., ६ खा., ४ ते., १ खा. ।

२६ पंक्तिः— २ खा., ४ ते., १६ खा., १६ ते., १ खा., १६ ते., ५ खा., किनारा ।

२७ पंक्तिः— किनारा, ६ खा., ४ ते., १०खा, किनारा (४ ते., १ खा. का) ।

२८ पंक्तिः— किनारा, [२ खा., ४ ते., का कोने के इस तरफ भी सिरा तंग होता जायगा] ८ खा., १० ते., ७ खा. ।

२९ पंक्तिः— १ खा., ४ ते., ते. में, ८ खा., ४ ते., ८ खा., किनारा ।

३० पंक्तिः— किनारा, १४ खा., ७ ते., १खा. ।

३१ पंक्तिः— २ खा., ४ ते., १३ खा., किनारा ।

३२ पंक्तिः— किनारा, ११ खा., किनारा ।

३३ पंक्तिः— किनारा, ६ खा., किनारा ।

३४ से ३७ पंक्तिः— ३२ और ३३ की तरह प्रत्येक पंक्ति में २ खा. घटाते जाओ ।

३८ पंक्तिः—२ खा., ४ ते., २ खा. ।

३९ पंक्तिः—सादा फन्दा २ खा. पर, १ खा ।

४० पंक्तिः—१ खा; धागा जोड़ दो । लेस के दूसरी तरफ के कोने से कमल के बिलकुल नीचे कुछ भिन्नता है वह इस लिये हैं कि जिसमें अगली नोक के लिये विषम गिनती के खाने आजांय और आगे से हिसाब ठीक रहे सीधी लेस फिर बनाने के लिये धागे को उन बार तेहरों में से पहिले से जोड़ दो जो कि कोने की ९ पंक्ति के ३ बार के पीछे बने हैं और दूसरी पंक्ति से आरम्भ कर वैसे ही बनाते जाओ ।

२ पंक्तिः—१ खा ; से दूसरी पंक्ति की भांति

३ पंक्तिः—३ पंक्ति की तरह तक अन्त में ३ ते., बार वाले ५ चेन में की तीसरी में से जोड़ दो, उसी बार के बाकी पर सादा फन्दा ।

४ पंक्तिः—३ ते., ३ ते. में (जोड़ का एक तेहरा होगा), चौदी पंक्ति की तरह बनाते जाओ ।

५ पंक्तिः—५ पंक्ति की तरह, से उसी तरह जोड़ दो जैसा कि तीसरी पंक्ति में जोड़ा था ।

६ पंक्तिः—३ ते., ३ ते., में, अब ६ पंक्ति की तरह बनाते जाओ ।

७ पंक्तिः—७ वीं की तरह जोड़ो ।

८ पंक्तिः—३ ते., ३ ते. में; ८ वीं की तरह ।

९ पंक्ति.—९ वीं की तरह, ३ बार अन्त में, तीसरी बार की ५ चेन को २२ वीं पंक्ति की ३ चेन के ऊपर की तरफ़ जोड़ दो, सादा फन्दा चेन के नीचे ।

अब सीधी लेस की १० वीं पंक्ति से बनाते जाओ ।

स्त्री जगत्

श्रीमती नैनादेवी जो कि हिन्दू विश्वविद्यालय काशी की छात्रा हैं उच्च शिक्षा के लिए विलायत जा रही हैं। आप पहली बिहारी महिला हैं जिन्हें सरकार अपने व्यय पर शिक्षा प्राप्ति के लिए बाहर भेज रही है।

* * *

कुमारी अपर्णा दास गुप्ता बी॰ ए॰ जो कि लाहौर के प्रोफ़ेसर एस॰ एन॰ दास गुप्ता की सुपुत्री हैं एक सरकारी वज़ीफ़ा लेकर उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए इंग्लैण्ड जाने वाली हैं।

* * *

कुमारी सीताबाई नारायण अगोन्कर ने १९२३ में बम्बई विश्वविद्यालय की संस्कृत में प्रतिष्ठा सहित बी॰ ए॰ की डिग्री प्राप्त की थी और तदुपरान्त वह आक्सफोर्ड चली गईं। वहाँ १९८४ में उन्होंने D. Litt. की डिग्री प्राप्त की। इस के लिए उन के निबन्ध की प्रोफ़ैसरों ने बड़ी प्रसंशा की थी। गत दिसम्बर मास में उन्हें "महाभारत काल में स्त्री जाति का स्थान" विषयक निबन्ध पर आक्सफोर्ड की डाक्टर आफ फिलासफी की डिग्री मिली। आप भारत की प्रथम और आक्सफोर्ड की तीसरी महिला हैं जिन्होंने यह उच्च पद प्राप्त किया है।

* * *

कुमारी जनक कुमारी जुत्शी इस साल पञ्जाब विश्वविद्यालय से अङ्गरेज़ी की एम॰ ए॰ परीक्षा में प्रथम रही हैं।

* * *

गत बंगाल नारी सम्मेलन बड़ी सफलता पूर्वक समाप्त हुआ। सरकार ने सब कन्या विद्यालयों में एक दिन की छुट्टी कर दी थी जिस से कि सब अध्यापिकाओं और निरीक्षकाओं को सम्मेलन में शामिल होने के लिए सुविधा मिल सके, यहाँ तक कि बाहर के नगरों से कलकत्ते आने वाली अध्यापिकाओं को रेल का किराया भी सरकार ने ही दिया। सम्मेलन के फल स्वरूप श्रीमती लेडीबोस की अध्यक्षता में एक स्थायी कमेटी बनाई गई है जो कि सरकार को शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर सलाह देती रहेगी।

* * *

कलकत्ते में स्त्रियों की दस्तकारी की नुमायश बड़ी सफल रही। दो सहस्र से अधिक मनुष्य उपस्थित थे और यह एक मेला ज्ञात होता था। इस में बालाचरों ने बड़ा काम किया।

* * *

नारी शिक्षा समिति का विधवा सहायक आश्रम बड़ी उन्नति पर है, अब इस में एक दैनिक विभाग और खोल दिया है जिस में २० स्त्रियों की उपस्थिति होती है। श्रीमती बोस इस को बड़ी सहायता कर रही हैं।

* * *

उपरोक्त सम्मेलन के अवसर पर श्रीमती आर॰ एस॰ हुसैन ने मुसलमान लड़कियों की शिक्षा के लिए बड़ी ज़ोरदार वक्तृता दी। उन्होंने अपने शास्त्रों के अनुकूल स्त्रियों के अधिकारों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि मुसलमानों की आजकल की गिरी हुई अवस्था का कारण उन में स्त्री शिक्षा का नितान्त अभाव है। उन्होंने मुसलमानों को अपनी स्त्रियों के प्रति अत्यन्त लापरवाही और अनुदार व्यवहार को छोड़ने के लिये कहा। उन्होंने कहा कि मुसलमान इस-लाम के नाम पर अथवा किसी मसजिद के एक टूटे हुये पत्थर की मानहानि के लिए अपने जीवन न्योछावर करने को तय्यार हैं परन्तु वे अपने रसूल की शिक्षा और उपदेशों पर चलने को इतने तय्यार नहीं। परदा कोयले से निकली विषैली कारबानिक एसिड गैस के समान है, जो कि मनुष्यों को दुःख रहित मृत्यु का द्वार खोल देती है। इसी प्रकार हमारी बहिनें परदे में रहती हुई इस परदा गैस द्वारा दुःख रहित मृत्यु का आश्रय पाती हैं।"

* * *

आगे चलकर श्रीमती हुसैन ने कहा कि मुसलमान स्त्रियों की किसी को तनिक भी चिन्ता नहीं। अछूतों के दुःखों से महात्मा गान्धी द्रवीभूत होते हैं, तीसरे दर्ज़े के रेल के मुसाफ़िरों का दुःख अनुभव करने के लिए वह स्वयं तीसरे दर्जे में सफ़र करते हैं। छोटे २ जानवरों को कष्ट से बचाने के लिए कितनी ही सोसाइटियाँ हैं। आपने देखा होगा की अङ्गरेज़ी अख़बार एक कुत्ते के कुचले जाने पर आँसू बहाते हैं। परन्तु, हा! सारे भारत में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो कि हम अभागी अबलाओं के दुःख पर ज़ो कि परदे में बन्दी हैं, चार आंसू बहाये।

* * *

एक समय था जब कि अरब अपनी लड़कियों को जान से मार देते थे। इसलाम ने यह प्रथा तो रोक दी, परन्तु मुसलमान निर्बल होकर अपनी स्त्रियों के मन और बुद्धि का नाश कर रहे हैं, लड़कियों को अशिक्षित मूर्खा रखना, उन्हें घर की चार दीवारी में बन्द रखना और सब प्रकार की शिक्षा से वंचित रखना बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता है।

* * *

अन्त में श्रीमती हुसैन ने कहा कि "मेरे मुसलमान भाई यह समझते हैं कि वे लड़कों के लिए ढाका अलीगढ़ इत्यादि स्थानों पर मुसलमान विश्वविद्यालय स्थापित करने या कलकत्ते में इसलामिया कालिज खोलने और अपनी लड़कियों और बहिनों को हैन्डबैग में डाल कर साथ ले जाने से बहिश्त में पहुंच जायेंगे। इसी कारण से उन्हें स्त्रीशिक्षा से उपराग है। जब कहीं किसी कन्याविद्यालय के लिए उन से चन्दा माँगा जाता है तब वे अपनी दरिद्रता का आश्रय लेते हैं।"

* * *

मैसूर में महाराजा ने वहाँ की कौंसिल के प्रस्ताव को स्वीकार कर स्त्रियों को प्रतिनिधि सभा तथा लैजिस्लेटिव कौन्सिल के लिए मताधिकार तथा उन को सदस्य बनने की अनुमति दे दी है और यह भी विश्वास दिलाया है कि नई सभा और कौन्सिल में सरकार स्वयं नियुक्त कर के भेजेगी।

* * *

ख़बर आई है कि कुमारी मालिनी बाई पानन्दीकर बी०ए०, बी० टी० नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण कन्या का विवाह श्रीयुक्त गुलाब खाँ बी० ए०, बी० टी० से होने वाला है। यह विवाह सन् १८७२ ईस्वी के स्पेशल मैरेज एक्ट के अनुसार होगा। वधू-वर रजिस्ट्रार के सम्मुख उपस्थित हो कर यह घोषणा करेंगे कि वे हिन्दूमुसलिम धर्म्म के अनुयायी नहीं हैं।

* * *

१९ जून को भारतीय स्त्री विश्वविद्यालय (बंबई) के कनवोकेशन के अवसर पर भाषण देते हुए सर-शंकरन नायर ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम देशी भाषा ही होनी चाहिये। आप ने स्त्रियों से अपील की कि वे देश के बाहर की स्त्रियों के उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करें और सब प्रकार उन्नत और शिक्षित हो उच्च पद प्राप्त करें।

* * *

सिलहट में भी एक खड्गबहादुरसिंह पैदा होगया है। उसका नाम है शशिमोहन दे और उम्र १८वर्ष है। इस ज़िले में फ़ैयाज़ अली नाम का एक ज़मीदार रहता था जो स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया करता था पुलिस का कहना है कि चन्देरचक और राधारचक गाँवों में शायद ही कोई स्त्री इस से अछूती बची हो। कुछ दिनों से फ़ैयाज़ की नज़र पवित्र पत्नी नाम की एक विवाहिता लड़की पर पड़ी। फ़ैयाज़ और उसके दूत उसे कुपथ में ले जाना चाहते थे परन्तु लड़की बार बार इनकार करती थी। फिर भी यह बदमाश उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। जब शशिमोहन को यह मालूम हुआ तब उसने उस लड़की को भरोसा दिया कि अगर दूसरी बार फिर वे बदमाश तेरे पास आवेंगे तो मैं इनका काम तमाम कर दूँगा। जब फ़ैयाज़ उसकी झोंपड़ी में घुसा तब शशिमोहन अपने

तीन साथियों के सहित वहाँ पहुँचे और उसे यमपुर भेज दिया। शशिमोहन और उसके तीनों साथियों पर मुकद्दमा चला। मैजिस्ट्रेट ने दौरा सुपुर्द कर दिया, जूरी ने निर्दोष बतलाया और जज ने उन्हें छोड़ दिया, परमात्मा इस जाति में खड्ग बहादुरसिंह और शशिमोहन सरीखे वीर स्वार्थत्यागी पैदा हों जिस से हिन्दू जाति का सिर ऊँचा हो।

* * *

१७ जून को शिमला आर्य कन्यापाठशाला के नवीन भवन का उद्घाटन पंजाब के गवर्नर सर मालकम हेली महोदय ने किया। उस दिन एक बड़ा उत्सव किया गया, जिस में खूब भीड़ थी और कितने ही अंग्रेज़ तथा मुसलमान सज्जनों और देवियों ने भी भाग लिया था। श्रीयुत मोहनलाल जी एम० एल० सी० ने पाठशाला का इतिवृत्त सुना कर श्रीमान् गवर्नर साहब से भवन-उद्घाटन करने की प्रार्थना की। नये भवन का उद्घाटन करते हुए गवर्नर साहब ने पाठशाला की शुभ कामना पूर्वक उसे शीघ्र ही और भी अधिक उन्नत अवस्था में देखने की अभिलाषा प्रकट की। आर्य कन्यापाठशाला का यह भवन ४५ हज़ार रुपये की लागत से तैय्यार हुआ है। उस में इस समय २७५ कन्यायें पढ़ती हैं। पाठशाला की स्थापना १९०४ ई० में २५ कन्याओं से हुई थी। तब से अब तक उसने निरन्तर निःशुल्क शिक्षा द्वारा देवियों को विदुषी बनाने में बड़ा काम किया है।

भावनगर में पट्टन नाम का एक ऐसा नगर है जहाँ पानी की बड़ी कमी है। उस नगर की श्रीमती मनीबाई धर्मपत्नी स्वर्गवासी सेठ पूनमचन्द ल[illegible] भाई ने सरकार को नगर का सारा का सारा जल का किराया दे दिया है जिस से कि वहाँ के प्रत्येक निवासी को जल मुफ़्त में मिले।

* * *

मद्रासी लम्बोदरी ब्राह्मण श्रीयुत करुणा करम् ने कुमारी यार्वा केर नाम की जर्मन स्त्री से विवाह कर लिया। इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह ही हिन्दु धर्म को उदार बनाएंगे।

* * *

कलकत्ते के स्वतन्त्र दैनिक में एक स्त्री ने लिखा है कि हमारी रक्षा न तो मनुष्य कर सकते हैं और नाहीं सरकार। हमें अपनी रक्षा स्वयं शस्त्र धारण करके करनी चाहिये।

* * *

अभी हाल में कोटा राज में एक विवाह कानून ज़ारी किया गया है, जिसका अमल दरामद १ जुलाई से होगा। इसके अनुसार १२ वर्ष से कम अवस्था के लड़के तथा १८ वर्ष से कम उम्र की लड़की का उस से दुगनी से अधिक उम्र वाले पुरुष के साथ और ४५ वर्ष से अधिक उम्र के पुरुष का कुंवारी लड़की के साथ विवाह नाजायज़ करार दिया गया है। लड़की के लिये रुपया लेना और वर अथवा कन्या के शारीरिक अयोग्यता, संक्रामक रोग, दुराचरण आदि विशेष कारणों के बिना सगाई छोड़ देना भी निषिद्ध कर दिया गया है। एक विशेष बात यह भी रखी गई है कि यदि कोई प्रजाजन राज्य से बाहर जाकर भी कानून भंग करेगा तो वापिस आने पर उसे सजा दी जावेगी। १००० रुपये तक जुर्माना, ६ मास तक कड़ी अथवा सादी सज़ा का दंड रखा गया है।

* * *

यूरोपीय देशों में लड़कों के बदले लड़कियाँ हीं गोद लीजाती हैं।

* * *

स्त्रियों को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भरती होनें की आज्ञा थोड़े समय से ही मिली है। वहाँ एक नाटक मण्डली है जिस में स्त्री छात्रों को नाटक आदि में भाग लेने की आज्ञा नहीं थी। अब पहिले पहल एक स्त्री उपस्नातिका को यहकार्य सौंप कर स्त्रियों के अधिकार की ओर एक और पग उठाया गया है। इस आज्ञा से पहिले पेशाकरने वाली नटियों को बुलाया जाता था।

* * *

विमान द्वारा श्रीमती इलियटलिन्न अब तक सब से अधिक अथवा १९००० फुट ऊँचा उड़ सकी

हैं । उन के साथ श्रीमती बोली नाम की एक और महिला थीं । उड़ने में २ घण्टे और ३३ मिनट लगे ।

* * *

कुमारी सिलम्पा जो कि एक समय साधारण नौकरानी थीं आज फिनलेन्ड की नवीन राज सभा में व्यवसाय विभाग की सहायक मन्त्राणी हैं । उन्होंने छोटी सी आयु में ही सेविका का कार्य आरम्भ किया था और उस समय एक सेवक संघ भी बनाया था । उस के पश्चात् उन्होंने नौकरों के लिए एक विश्रामालय स्थापित किया और उन के हितों की रक्षा के लिये एक पत्र भी निकाला । फिर एक होटलों की मालिक कम्पनी के आधीन वह निरीक्षक नियत हुईं । कुमारी सिलम्पा पहिले फिन्लैण्ड की पार्लियामैण्ट की और फिर वहाँ की म्युनिसिपल कमेटी की सदस्या चुनी गईं ।

* * *

हवाई द्वीप में तरुण नारी ईसाई समिति का भवन सब से अधिक सुन्दर और मनोहर बतलाया जाता है । इस की रचना श्रीमती जूलिया मार्गन की कल्पना के आधार पर हुई और आप की ही देख रेख में यह तय्यार हुआ है ।

* * *

सहस्रों वर्षों से चीन में लड़कियों की सगाई बच पन में ही हो जाती थी । अब जवान होने पर इन लड़कियों को इस प्रथा की बुराई का ज्ञान होने लगा है और उनमें से कितनी बालाओं ने समाचार पत्रों द्वारा बचपन में की गई सगाई को तोड़ देने की घोषणा कर दी है ।

* * *

गत मार्च में नानकिंग में एक अन्तर्जातीय स्त्रीदिवस मनाया गया और बड़े २ जलसे हुए जिन में कि हज़ारों स्त्रियों ने भाग लिया । "स्त्री पुरुषों के अधिकारों की समानता" "बहुत सी स्त्रियों से एक पुरुष के विवाह का निषेध" "बाल विवाह का नाश" "विवाह और तलाक़ की स्वतन्त्रता" और "विधवा विवाह की स्वीकृति" इत्यादि स्त्रियों की मांगें थीं ।

* * *

जापान में स्त्री मताधिकार आन्दोलन के लिए टोकियो के दफ्तरों की ४०० लड़कियों ने एक सभा की ।

* * *

आस्ट्रेलिया में ८ मई को मातृदिवस मनाया जाता है । इस दिन कृतज्ञता पूर्ण उस त्याग को स्मरण किया जाता है जो कि प्रत्येक माता अपनी सन्तान के हितार्थ करती है । हम प्रायः माता की चिन्ता, कष्ट, और आत्मत्याग को जो कि सब से पहिले और पीछे अपनी सन्तान की ख़ातिर सहती है भूल जाते हैं अतः यह एक बड़ा उत्तम भाव है कि मातृ शक्ति की बन्दना के लिये समस्त देश में एक दिवस नियत किया जाये ।

* * *

फिजी में पिता की आज्ञा से पुत्रों को अपनी माता को मारना सिखलाया जाता है जिस से वह कायर न बनजावें । इसी प्रकार नामलेन्ड के हाटन टाट अपने पुत्रों को निज माता के तीर मारना सिखलाते हैं और माता भी इस क्रिया से प्रसन्न होती है ।

कुसुमोद्यान

खिलौना-नगर

कालरैडो अमरीका के एक भुवन निर्माता ने, देखने में केवल मन बहलाव के लिये एक छोटे से खिलौना नगर की रचना की है । यह इतना मनोरञ्जक है कि उस ओर जाने वाला प्रत्येक यात्री उसे देखे बिना अपने भाग्य सफल नहीं मानता । साइन्टिफिक अमरीकन के एक संवाददाता ने इस खिलौने-नगर का निम्नलिखित वृत्तान्त भेजा है—

कालरैडो प्रान्त में, डैनवेर के निकट टर्की क्रीक कैनयान में लखपति इन्जीनियर जार्ज टर्नर ने एक छोटे से नगर की रचना की है और वही इस नगर का स्वामी है। संसार के सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष इस के दर्शन करते हैं ।

इस की पक्के फर्श की सड़कें, मनोरम होटल, गिरजा, वाचनालय और भण्डार गृह से यह नगर दूर से एक छोटा सा पहाड़ी गाँव प्रतीत होता है । इस खिलौना नगर में दो तालाब हैं, जिन में नौकायें चलती हैं और हंस निवास करते हैं, इन झीलों पर कितने ही सुन्दर पुल बने हुये हैं और सुन्दर गलियें और सड़कें नगर में फैली हुई हैं । नगर के मध्य में एक बड़ा सुन्दर उद्यान है ।

एक दो बुर्जों वाला गिरजाघर, वाचनालय, कोयले भरने का स्थान, मोटर रखने की जगह, पंसारी और नाई की दुकानें, म्युनिसिपल हाल, होटल यह इस लघु पहाड़ी गाँव की मुख्य २ इमारतें हैं ।

नगर में एक छोटी सी रेल सब ओर चलती है जिसका कि छोटा परन्तु सब प्रकार से पूरा सुसज्जित स्टेशन है । सड़कों, उद्यानों झील और गलियों में बिजली की रोशनी होती है जो कि रात्रि के समय बड़ा मनोहर दृश्य उपस्थित करती है ।

अन्धों के लिये संसार सुख

न्यूयार्क में अन्धों की सहायतार्थ एक समिति है, जिसने "प्रकाश गृह" नाम की एक संस्था खोली हुई है । इस संस्था का खर्च उनके कोमल हृदय सज्जनों पर है जो

कि यह मानते हैं कि उन लोगों को जो कि आंखों से देख सकते हैं कर्तव्य है कि उनकी सहायता करें, जो अन्धकार में रहने के लिये विवश हैं । प्रकाश गृह में प्रतिवर्ष २७०० अन्धे या अर्ध अन्धे व्यक्तियों को अपने आप सहायता करने योग्य बनाया जाता है। साधारण जनता के अनुसार अमरीका में प्रति सहस्र पीछे एक व्यक्ति अन्धा है । इस हिसाब से न्यूयार्क में ५००० अन्धे हैं और कुल अमरीका में १००००० । परन्तु यह असहाय अवस्था में भी उसी प्रकार काम कर सकते और खेल सकते हैं जैसे कि हम और आप, यद्यपि इस के लिये दृढ़ता, साहस, प्रबल इच्छा, शक्ति, आनन्द और सुख में गूढ विश्वास की आवश्यकता है जो कि हम आंखों वाले भले ही ईर्ष्या से देखें । कितना ही वाणिज्य व्यापार अन्धों और अर्ध अन्धों द्वारा बड़ी सफलता से चल रहा है । क्या कभी आपने अन्धों को ताश खेलते, ७० शब्द प्रति मिनट के हिसाब से शार्टहैन्ड के नोट लेते और फिर उन्हें साधारण भाषा में लिखते, जल में तैरते, नाच करते देखा है । प्रकाश गृह में यह सब कुछ और अन्य कितने ही कार्य जो कि समझा जाता है आँखों वाले ही कर सकते हैं अन्धे बड़ी सुगमता से करते देखे जाते हैं । क्या हमारे दानप्रिय भारत में भी कोई ऐसी संस्था है जहां वास्तविक असहाय और दयापात्र व्यक्तियों को सहायता दी जाती हो।

पाश्चात्य सभ्यता और मानवजाति

श्रीयुत जे. पी. मिल्ज़ Man in India में 'मानव विज्ञान का ध्येय' शीर्षक लेख में लिखते हैं—

पश्चिम [योरोप और अमरीका] का वेश, जब कि वस्त्र नितान्त नवीन हो, सम्भवतः सब से अधिक कुरूप वस्तु है जो कि मनुष्य की बुद्धि ने रची है. जब कि यह फट जाय जैसा कि प्रायः होता है, जब कि असभ्य जंगली इसे पहन लेते हैं यह इतना भयानक हो जाता है कि जिस का वर्णन करना असम्भव है । इस से अधिक बुराई यह है कि गर्म देशों के लिये सर्वथा अनुचित है और रोग तथा मृत्यु का कारण बनता है । सस्ती मीनाकारी की वस्तुओं और भद्दी कमीज़ों के बचेकालरों से बढ़कर विनाश कारी वह सुधारक है जो कि प्रत्येक ऐसी रीति और रिवाज़ का जो कि उसकी अपने से भिन्न है नाश करना आवश्यक समझता है । बहुत से देशों में ऐसे आदमियों ने वहाँ की प्राचीन सभ्यता–जो उस देश में लाखों वर्षों के तजुर्बों का फल थी–को उस समय नाश कर दिया जब कि वहां के निवासियों ने नवीन सभ्यता को अभी समझ भी नहीं पाया था, उसको मन में स्थान देना तो एक ओर रहा, जिन्होंने स्वयं अपनी आंखों से नहीं देखा उनके लिये यह समझना बड़ा कठिन है कि कितने परिश्रम और योग्यता से देशी रस्में और रिवाज़ों को केवल इस लिये कि वह देशी हैं नाश किया जा रहा है और चित्त आकर्षक विभिन्नता के स्थान में एक निर्जीव एकता की स्थापना की जा रही है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सुधारक देश, काल

और पात्र के नियम को सर्वथा तिलाञ्जलि देकर निश्चय कर देते हैं कि यहां अमुक प्रथा प्रचलित होनी चाहिये । श्रीयुत मारिस प्राईस ने "ईसाई धर्मप्रचारक और पूर्वीय सभ्यता" एक पुस्तक लिखी है, उसकी भूमिका में डाकृर पार्क लिखते हैं:—"ईसाई धर्म प्रचारकों का वास्तविक ध्येय एक ऐसी सर्वजातीय सभ्यता की शीघ्रातिशीघ्र स्थापना है जिस में समस्त जातियाँ और समस्त देश भाग ले सकें" । पुनः इसी पुस्तक में हमें लिखा मिलता है:—"समाज रचना के दृष्टिकोण से प्रोटस्टैन्ट ईसाई प्रचारक के उद्देश्य का यही अभिप्राय है कि वह [प्रथम] समाज के प्रचलित नियमों को जो कि उस का मुकाबला करते हैं और उसके आगे दबने से इन्कार करते हैं सर्वथा छिन्न भिन्न करदें मुकाबला और विध्वंस विशेष ध्येय हैं, जिस की पूर्ति के लिये नियम पूर्वक तदबीरें सोची जाती हैं और तय्यार की जाती हैं........." हम, मानव विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि यह सर्वथा अनुचित है। जहाँ यह कहना भी उचित नहीं कि प्रत्येक जाति की प्रत्येक प्रथा सत्य है वहां उस जाति की समस्त सभ्यता का नाश कर देना उस जाति का ही नाश कर देना है। किसी भी जाति को अपने को नवीन विचारों और नवीन सभ्यता के एकदम अनुकूल बना लेने की आशा रखना एक तालाब की मछली बना लेने की आशा करने के समान है। इस की मृत्यु हो जाति है और इसी प्रकार मानव जाति की भी । स्वर्गीय डाकृर रिवज़े ने सिद्ध कर दिया है कि जातियों की अपनी प्राचीन रुचि अनुकूल स्मृति से हटा देना उनके शनैः नाश का कारण होता है।

मुस्लिम भ्रातृभाव

"एक भारतीय मुसलमान" लिखते हैं—

हम भारतीय मुसलमान ऐसे बने हैं कि अपने देश की बड़ी से बड़ी विपत्ति भी हमारे हृदय पर ठेस नहीं पहुँचाती परन्तु टर्की और अफ्रीका में ज़रा सी वृक्ष के पत्तों की सरसराहट भी हमारे दयापूर्ण हृदय को—अस्वभाविक रूप से—दो टूक किये बिना नहीं रहती। हमारे करोड़ों देशवासी बिना वस्त्र और भोजन के मृत्यु का ग्रास हो रहे हैं। हम वस्त्र और भोजन से उनकी सहायता नहीं कर सके क्यों कि हम बड़े ग़रीब हैं; परन्तु हम सहस्रों मील पर लड़े जाने वाले युद्धों की सहायता के लिये लाखों रुपया भेज सकते हैं क्योंकि इन लड़ाइयों का सम्बन्ध ऐसे मनुष्यों से बतलाया जाता है जो अपने को मुसलमान कहते हैं। ग़रीबों और विधवाओं का धन भेजने के लिये हमें कृतज्ञता सूचक दो शब्द भी प्राप्त नहीं होते, परन्तु हम इतने विशाल हृदय हैं कि हमें इस की कुछ भी परवाह नहीं। हमारे सहधर्मियों का हमारे लिये प्रेम इतना गूढ़ और सीधा है कि उन्हें हमारे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिये किसी दिखावट की आवश्यकता नहीं, अतः वे इसे अपने हृदय विचारक व्यापार का सब से अधिक महत्त्व पूर्ण भाग समझते हैं। एक मुसलमान ने बड़े दुःखित हृदय से कहा था:—

"उनको हमारी रत्ती भर भी परवाह नहीं है। वे देखते हैं कि हम मूर्ख और मूढमति हैं अतः इस का लाभ उठाते हैं । परन्तु इस के अतिरिक्त उनके लिये हमारा कोई अस्तित्व नहीं । हम नाक रगड़ते और दुम हिलाते हुए कुत्तों की भाँति उनके पीछे दौड़ते जाते हैं, हम कितने पातकी मूर्ख हैं। शोक कि इच्छा होने पर भी मैं इन वचनों से असहमत नहीं हो सकता । कोई बिना देखे नहीं रह सकता कि यह महान् भ्रातृ-संघ केवल हम भारतीय मुसलमानों के ही लिये है। अन्य किसी को इसका किंचिन्मात्र भी पता नहीं। टर्की रहे चाहे इसका नाश हो जाये, परन्तु इससे इराक़ अथवा मिश्र निवासियों, फारस के रहने वालों अथवा और किसी को कुछ भी दुःख नहीं होता। परन्तु भारतीय मुसलमान बीच में अपनी टाँग घुसेड़ ही देते हैं । और ख़ूब हल्ला मचाते हैं । रिफी योधा अपने जीवन की बाज़ी लगाकर स्वतन्त्रता के लिये लड़ रहे थे। भारतीय मुसलमानों ने कुछ सहानुभूति सूचक घोषणा की, परन्तु मिश्र से लेकर चीन तक के और किसी भी मुसलमान ने अपनी छोटी उँगली तक नहीं उठाई। यदि आज अँग्रेज़ भारत से चले जायें और हम हिन्दुओं से लड़ना आरम्भ करदें तो हमारी सहायता के लिये हमारा एक भी "भाई" आगे नहीं आयेगा जब तक कि इससे उसकी अपनी भी कुछ स्वार्थसिद्धि न होती हो। परन्तु तो भी... मैंने परीक्षा लेने के लिये अपने एक पञ्जाबी मुसलमान दोस्त से प्रश्न किया कि यदि भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हो जाय तो वह क्या करेगा। स्पष्ट उत्तर न देने के असफल यत्न के पश्चात् उसने मान लिया कि वह अफ़गानों का साथ देगा। इस प्रकार का अन्धा धार्मिक उन्माद पुराने मुसलमानों की अपेक्षा नये बने हुए मुसलमानों में अधिक है। यह दृश्य कितना हास्यजनक है जब कि हम एक ऐसे व्यक्ति को जिसका कि पिता मुसलमान हुआ था या जो स्वयं अभी-अभी मुसलमान हुआ हो "हमारी महान् इस्लामी सभ्यता", "हमारे महान् रीति-रिवाज़" और "हमारा महामुसलमान भ्रातृ-संघ" का गर्व करते हुए पाते हैं।

सारी अवस्था नितान्त असत्य और नितान्त असम्भव है।

टर्की, परदा और इसलाम

श्री अतुलहक अपने 'उन्नत इस्लाम' शीर्षक लेख में जो कि मार्डन रिव्यू में छपा है, इस प्रकार उपरोक्त विषय पर अपने विचार प्रगट करते हैं—

जिसने मुसलमानों को सबसे अधिक दुःख पहुँचाया है वह नवीन तुर्किस्तान की धार्मिक संशोधन की इच्छा नहीं, वरन् वह वस्तु है जिसका प्रत्येक मुसलमान के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह टर्की का परदे के विरुद्ध युद्ध, स्त्री जाति का पुनरोद्धार या दूसरे शब्दों में उस अत्याचार का अन्त है जो कि पति और पिता स्त्री-जाति पर करते थे। परदे और इस्लाम का कब और किस प्रकार गठ-जोड़ा हुआ यह पता नहीं, मुसलमानों को स्वयं भी पता

नहीं। परन्तु यह परदा विद्यमान है और समय के साथ अधिक मोटा और रिवाज़ के साथ अधिक पवित्र होता जाता है। अर्धशिक्षित अथवा अशिक्षित प्राचीन समाज में राजनियम स्त्री-जाति की शारीरिक रक्षा करने के लिये पर्याप्त न थे। जब कि मनुष्य कुटुम्ब और परिवार के झगड़ों, आपस की लड़ाइयों और क्रान्तिकारी युद्ध में मग्न थे। स्त्री हरण और उनके सतीत्व पर आक्रमण का दण्ड नहीं दिया जा सकता था। तब सम्भवतया उस समय परदे का रिवाज़ हुआ। स्त्री के शरीर का वह भाग जो कि उसके लिये शोभा और शाप दोनों का कारण है परदे से ढाँप दिया गया जिससे कि यह मनुष्य की विषयवासना के विरुद्ध ढाल का काम दे सके अथवा इसकी उत्पत्ति किसी ऐसे पुराने मत में हुई जो कि प्रेम को पाप मानता था और इसलिए स्त्री की प्राणनाशक क्रान्ति को मलमल के परदे से ढाँप दिया और अजान में चाहे इस आज्ञा ने मनुष्य के हृदय में वर्जित फल के लिए अधिक प्रलोभन ही पैदा किया हो। अथवा यह किसी कामातुर की सूक्ष्म कल्पना का फल स्वरूप है जो कि यह मानता था कि नग्न सौन्दर्य कोई सौन्दर्य नहीं और जिससे मनुष्य अधिक प्रेम करते हैं वह अज्ञेय वस्तु है अथवा अन्तिम कल्पना के अनुसार यह समता का चिन्ह था जिस की उपज के लिये वे ईर्षापीडित स्त्रियें ज़िम्मेवार हैं जिन्होंने कि रोब और कोमलता से वञ्चित होकर परदे की आवश्यकता को पुण्य कार्य का स्थान दिया और अपना मुख छिपा कर परदे को अपने से अधिक सौभाग्यवती परन्तु सुन्दर रमणियों के बराबर लाभ की प्राप्ति का साधन समझा। योरोप के विद्वानों ने इस प्रथा के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कोई खोज नहीं की, परदे में उन्हें कोई मनोरञ्जन न था, यह एक त्याज्य कंटक था। परन्तु मुसलमानों ने इसे वरदान समझ कर इस का आवाहन किया— अब उनकी पत्नियां जो कि हरम या सराय की दीवारों में पहिले ही कम सुरक्षित न थीं और भी सुरक्षित हो गईं। इस का फल यह हुआ कि इस्लाम की पुत्रियों के शरीर और आत्मा दोनों की अवनति हुई और उन्होंने अपने पूर्वजों के अत्याचारों के बदले भावी जाति को दण्ड दिया मुसलमान यह कदापि न मानेंगे कि उनकी मानसिक और शारीरिक अधोगति का कारण उन के धर्म में परिमित स्त्री अधिकारों से है। वे तो यही कहेंगे कि यह तक़दीर में लिखा था परन्तु कुप्रथा को हटाने के लिये उनके पास पुरुषार्थ न था। टर्की से बुर्का और परदा निर्वासित कर दिये गये हैं, परन्तु टर्की में कमाल पाशा था। शेष मुसलमान जगत् अपने भरसक यत्न से उसे पकड़े हुए है।

* * *

विचार-प्रवाह

रँगीला रसूल अभियोग की प्रतिध्वनि.

"रँगीला रसूल" के प्रकाशक श्रीयुत राजपाल पर चलाये हुए अभियोग का निर्णय लाहौर हाईकोर्ट द्वारा दिया जा चुका है। जस्टिस कुंवर दिलीपसिंह की वैयक्तिक सम्मति के अनुसार पुस्तक नितान्त आक्षेप योग्य है परन्तु वर्तमान कानून की कोई धारा इस पुस्तक के लेखक या प्रकाशक को अपराधी निर्धारित नहीं करती। हाईकोर्ट के इस निर्णय के आधार पर यदि महाशय राजपाल चाहते तो वह इस पुस्तक की हज़ारों कापियाँ छपवाकर मुफ़्त बाँट सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने पड़ोसियों का दिल दुखाना उन्हें स्वीकार न था अतः उन्होंने न केवल भावी के लिये ही इस पुस्तक का प्रकाशन स्थगित कर दिया है अपितु पुस्तक की बची हुई कापियाँ बेचना भी बन्द कर दिया है।

अभियोग तो इस प्रकार पूर्णशान्ति के साथ समाप्त होगया। परन्तु उसकी प्रतिध्वनि वास्तविक अभियोग की अपेक्षा भी बहुत अधिक ऊँची हो उठी है। देश भर के मुसलमानों ने हाईकोर्ट के इस निर्णय के विरुद्ध मानों जहाद का झण्डा खड़ा कर दिया है। सब प्रान्तों में विराट् सभाएँ करके सरकार से प्रार्थना की जारही है कि वह जस्टिस दिलीपसिंह को पदच्युत करके रँगीला रसूल के लेखक को भारी दंड दे। विशेष कर पञ्जाब के केन्द्र में तो इस आन्दोलन ने बहुत ही उग्रस्वरूप धारण कर लिया है। मुसलमान लोग इसी मामले को लेकर सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह (?) करने को तैयार होरहे हैं। किसी किसी सभा में तो म० राजपाल को फाँसी की सज़ा देने और चीफ़ जस्टिस सर शादीलाल को पदच्युत करने का अनुरोध भी किया जारहा है। हमें आश्चर्य है कि एक विराट् जनसमुदाय सहसा इतना उतावला क्यों कर हो उठा है। मुसलमानों का वर्तमान उग्र आन्दोलन इस ऐतिहासिक तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है कि धर्मान्धता बड़े-बड़े जनसमुदायों को भी एक साथ नितान्त

विवेक शून्य बना देती है।

यह साधारण सा मामला इतना तूल क्यों पकड़ गया। हमारी सम्मति में इसके दो कारण हैं। पहला कारण-पञ्जाब के वर्तमान गवर्नर मि० हेली की एक भयङ्कर भूल है। हाईकोर्ट के निर्णय के बाद जब मुसलमानों का एक डेपूटेशन मि० हेली के पास पहुँचा तब उन्होंने डेपूटेशन के सदस्यों के साथ स्वयं भी हाईकोर्ट के निर्णय को अपनी वैयक्तिक सम्मति में सन्देहास्पद और भ्रान्ति पूर्ण कहकर ख़ूब कोसा। गवर्नर का साथ पाकर मुसलमान लोगों का उत्साह ख़ूब बढ़ गया। इसमें सन्देह नहीं कि अपने शासन काल के गतवर्षों में मि० हेली अँग्रेज़ी शासन के लिये एक योग्यतम व्यक्ति सिद्ध हुए हैं, परन्तु उनसे यह एक ऐसी भारी भूल होगई है जिसका परिणाम स्वयं अँग्रेज़ी शासन के लिये भी हितकर नहीं है। दूसरा कारण कुछ मुसलमान नेताओं का वैयक्तिक स्वार्थ है। 'मुस्लिम आउट लुक' के भूतपूर्व सम्पादक मि० उपसन अपने जीवन काल में जिन थोड़े से न्यायपूर्ण परिणामों पर पहुँच पाये हैं उनमें से एक यह भी है कि मुसलमानों का यह वर्तमान आन्दोलन कुछ ऐसे मुसलमान वकीलों के दिमाग़ की उपज है जो कि पञ्जाब हाईकोर्ट में जस्टिस के पद को सुशोभित करने के इच्छुक हैं। इन नेता कहलाये जाने वाले स्वार्थपरायण व्यक्तियों को रँगीला रसूल का अभियोग एक आवरण के रूप में मिल गया है। इस समय पञ्जाब के अन्य सब सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में मुसलमान लोग अपनी आबादी के अनुपात से भी अधिक स्थान पाचुके थे परन्तु केवल पञ्जाब हाईकोर्ट में ही उनकी दाल नहीं गलने पाई थी क्योंकि हाईकोर्ट के जस्टिस का पद देना पञ्जाब सरकार के आधीन नहीं अपितु भारत सचिव के अधिकार में है,-जस्टिस बनने के लिये प्रखर प्रतिभा आवश्यक है। इसी कारण ये मुसलमान नेता पञ्जाब हाइकोर्ट को हिन्दूकोर्ट कहने लगे थे। यह सौभाग्य की बात है कि संयोगवश चीफ़ जस्टिस सर शादीलाल इन दिनों विलायत में गये हुए हैं और जस्टिस कुंवर दिलीपसिंह भी हिन्दू न होकर ईसाई हैं। अन्यथा न जाने क्या उपद्रव उठ खड़ा होता।

यह वर्तमान आन्दोलन कुछ स्थानीय मुसलमान नेताओं के वैयक्तिक स्वार्थ का परिणाम है इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि हाईकोर्ट ने रँगीला रसूल का निर्णय मई मास के दूसरे सप्ताह में सुना दिया था परन्तु यह आन्दोलन जून के मध्य में अर्थात् लगभग एक मास के बाद खड़ा हुवा है। ११ जून के मुस्लिम आउट लुकमें "त्यागपत्र दो!" शीर्षक से उग्रतापूर्ण अग्रलेख प्रकाशित हुवा था। अगर अपने पैग़म्बर का प्रेम ही मुसलमानों को इतना उत्तेजित कर रहा है तो वह उत्कट प्रेम एक महीने तक कहाँ सोता रहा। फिर मि० उपसन के कथन से ज्ञात होता है कि "त्यागपत्र दो!" शीर्षक लेख मुस्लिम आउट लुक के सम्पादक ने नहीं अपितु एक और ग़ैर मुसलमान व्यक्ति ने लिखा और लाहौर के कुछ मुसलमान वकीलों द्वारा परिष्कृत और परिवर्धित

किया जाकर ही वह प्रकाशित होने पाया।

स्वयं मुसलमान लोग भी इस मामले में एकमत नहीं हैं। मौ० मुहम्मद अली जैसे कट्टर खिलाफ़ती नेता भी जस्टिस दिलीप सिंह को इस मामले में बिल्कुल निर्दोष समझते हैं। मुस्लिम आउट लुकके सम्पादक और प्रकाशक को दोषी बताने वाले मुसलमानों का भी अभाव नहीं है। जो हो, इस अभियोग की प्रतिध्वनि इस समय बड़ा विकट रूप धारण कर चुकी है। पञ्जाब का वर्तमान वायुमण्डल बहुत अधिक ज़हरीला और सन्देहपूर्ण है। दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे का आर्थिक बायकाट भी कर रहे हैं। स्थिति नितान्त चिन्ताजनक हो उठी है।

सरकार का कर्तव्य

मालूम नहीं इस अन्धे आन्दोलन का परिणाम क्या होगा। मुसलमान लोग आज कल जो मनोवृत्ति प्रदर्शित कर रहे हैं उससे तो यही प्रतीत होता है कि वे लोग अब शान्ति भंग करने पर तुल गये हैं। प्रत्येक सभा में न्याय को अपने हाथ में लेने की धमकी दी जाती है। इसका स्पष्ट अभिप्राय ख़ून-ख़राबी और हत्या का है। मुसलमानी शरह तो बात-बात में ख़ून की सज़ा देता है। हम यह निरन्तर ख़ून-ख़ून की चिल्लाहट सुनकर ज़रा भी विचलित नहीं हुए हैं। हमें विश्वास है कि हिन्दू-जनता अब कायर और डरपोक नहीं रही। वह ख़ून करने वाले को खुद सज़ा देना सीख चुकी है। परन्तु फिर भी इस वर्तमान आन्दोलन ने हमें चिन्तित अवश्य किया है। यह चिंता हमें अपने लिए नहीं है, मुसलमानों के लिये नहीं है। हम चिन्तित हैं कि अब इस अभागे देश का क्या होगा? जिस देश में रहने वाले करोड़ों मनुष्यों का विराट् जनसमुदाय सहसा एक ज़रासी बात पर इतना विवेक शून्य हो उठता है, उस अभागे देश का क्या होगा? संसार भर की दृष्टि में द्वेष और कुत्सित बने रहकर भी हम लोग ज़रा-ज़रा सी बातों में धर्मान्ध हो उठते हैं यही वर्तमान भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि इस आन्दोलन में पञ्जाब के गवर्नर मि० हेली की एक राजनीतिक भूल का भी बहुत बड़ा हाथ है। सरकार आज कल जिस नीति को काम में लारही है वह नीति उस की अपनी दृष्टि से भी बहुत ख़तरनाक है। भारतवर्ष की अल्प संख्या को अपने साथ रखने के लिये उसे इस प्रकार न्याय अन्याय का बिल्कुल ध्यान छोड़ कर, शह देना उन के लिये भी हित कर सिद्ध न होगा। अंग्रेज़ी शासन की नींव भारतवर्ष में उस के तीव्र रोबदार तथा शान्ति रक्षा के आधार पर ही जमी थी। आज जनता को जब यह बात समझ आजायगी कि अंग्रेज़ बहादुर भी इस देश में शान्ति रक्षा करने में कामयाब नहीं हो सकते तो अंग्रेज़ी शासन की पाताल तक गई हुई जड़ें स्वयं आस्मान में उड़ने लगेंगी।

बम्बई का समझौता

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने गत मई मास में हिन्दू मुस्लिम समझौते के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया था उस

पर देश में भिन्न २ दृष्टियों से विचार किया जा चुका है । हमारी सम्मति में यह प्रश्न इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इस पर कभी और लगातार दो वर्षों तक खूब गम्भीरता से विचार करना चाहिए मिण्टो मार्ले सुधार स्कीम के आधार पर जिस विशाल सम्प्रदायगत वैमनस्य की नींव डाली गई थी, उस का दुष्परिणाम आज इस दलित देश को भोगना पड़ रहा है। गत देशभक्ति में काँग्रेस ने ही मौण्ट फोर्ड कमीशन के सन्मुख जो प्रतिनिधित्व का अनुपात प्रस्तावित किया था, वह आज भारतवर्ष की उन्नति में सब से बड़ा बाधक कारण बना हुवा है । अतः वह आवश्यक है कि जातीय महासभा कोई नई आयोजना निर्धारित करने से पूर्व उस पर सब पहलुवों से पूर्ण विचार करले । हमारी तुच्छ सम्मति में बम्बई के समझौते पर अभी और अधिक विचार करने के लिये बहुत अवकाश था; उसे जिस शीघ्रता में स्वीकार किया गया है वह देश के लिये हानिकार भी सिद्ध हो सकता है । बम्बई के निर्णय में जो बात स्वीकार की गई है उस के औचित्य या अनौचित्य के सम्बन्ध में हम अपना कोई विचार प्रगट नहीं करना चाहते परन्तु यह प्रदर्शित करने के लिये कि इस समझौते पर अभी विचार करने के लिये बहुत अधिक गुंज़ाइश है हम एक बात का निर्देश करते हैं। इस प्रस्तावित समझौते में यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है कि हिन्दू मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के लिये उन की जन संख्या के अनुपात से प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में स्थान निश्चित कर दिये जायँ । जिन प्रान्तों में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं उन में उन्हें अनुपात से अधिक स्थान दिया जाय । परन्तु बहुमत प्रत्येक अवस्था में बना रहना चाहिये । बड़ी व्यवस्थापिका सभा में भी मुसलमानों को अनुपात से अधिक स्थान दिये जायँ; सिन्ध जुदा प्रान्त बना दिया जाय और सीमा प्रान्त को सुधार दे दिये जाँय । पर सब शर्तें स्वीकार होने पर संयुक्त निर्वाचन का सिद्धान्त व्यवहार में लाया जाय ।" इस समझौते के आधार पर भारतवर्ष के पाँच प्रान्तों में मुसलमानों की वह संख्या हो जायगी, अन्य प्रान्तों में उन्हें अपने अनुपात से अधिक स्थान प्राप्त हो जायँगे । इस अवस्था में भारतवर्ष के प्रतिनिधि-तन्त्र में जो दोष पैदा हो जायँगे उन की विवेचना छोड़ कर हम केवल एक बात की ओर ही अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं । बंगाल प्रान्त में मुसलमानों की जन संख्या का अनुपात ५५ प्रतिशत है परन्तु ये मुसलमान प्रायः उन दलित जातियों के हैं जो कि समय समय पर विशेष कारणों से हिन्दू धर्म का आश्रम छोड़ कर इस्लाम स्वीकार करती रही हैं। यही कारण है कि बंगाल के मुसलमान संख्या में अधिक होते हुए भी शारीरिकबल, धन, मस्तिष्क, शिक्षा, सभ्यता, आचार आदि सभी बातों में वहाँ के हिन्दुओं से बहुत पिछड़े हुए हैं । इसी बात का यह परिणाम है कि वर्तमान निर्वाचन नियमों के अनुसार बंगाल में मुसलमानों की जन संख्या ५५ प्रति शत होते हुए भी मुसलमान वोटरों की संख्या

केवल ३६ प्रतिशतक ही है। इस अवस्था में वहाँ मुसलमानों के लिये ५५ प्रतिशतक स्थान सुरक्षित कर देना प्रतिनिधि सभा की शर्तों पर भारी कुठाराघात होगा। बम्बई के समझौते पर इसी प्रकार अन्य बहुत से आक्षेप किये जा सकते हैं। सिन्ध का प्रश्न तो विवादास्पद बना हुवा है। हम चाहते हैं कि इस महत्व पूर्ण प्रश्न पर देश को अभी और अधिक विचार करने का अवसर दिया जाय।

क्षमा प्रार्थना

"ज्योति" के वैशाख, ज्येष्ठ, और आषाढ़ मास के ये तीन अङ्क एक साथ प्रकाशित किये जा रहे हैं। श्रीमती सम्पादिका जी के बीमार होने तथा "ज्योति" की छपाई का प्रबन्ध बदलने के कारण ही यह अवस्था उत्पन्न हुई है। आशा है उदार पाठक हमें इस के लिये क्षमा करेंगे। भविष्य में ज्योति ठीक समय पर उन की सेवा में पहुँच जाया करेगी।

स्वर्गीय सर गंगाराम

सर गंगाराम की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सारे देश ने बड़े दुःख के साथ सुना है। सर गंगाराम का सम्पूर्ण जीवन आदर्श सफल जीवन सिद्ध हुवा है। उन्होंने अपने जीवन में ख़ूब धन कमाया और उस का उचित व्यय किया। सर गङ्गाराम जो कुछ थे वह उन के अपने यत्न का परिणाम था। वह एक सच्चे समाज सुधारक थे। समाज की वास्तविक दुर्बलताओं को दूर करने के लिये उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। पञ्जाब के बहुत से समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलन उन्हीं के शुभ प्रयत्नों का फल है। अपने वसीयतनामे में भी आप २९ लाख रु० के मूल्य की जायदाद, जिस की वार्षिक आय १२५००० रुपया वार्षिक है, इन्हीं समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों के लिये अर्पित कर गये हैं। आप की आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी ही। हम आप के परिवार से अपनी हार्दिक समवेदना प्रकाशित करते हैं।

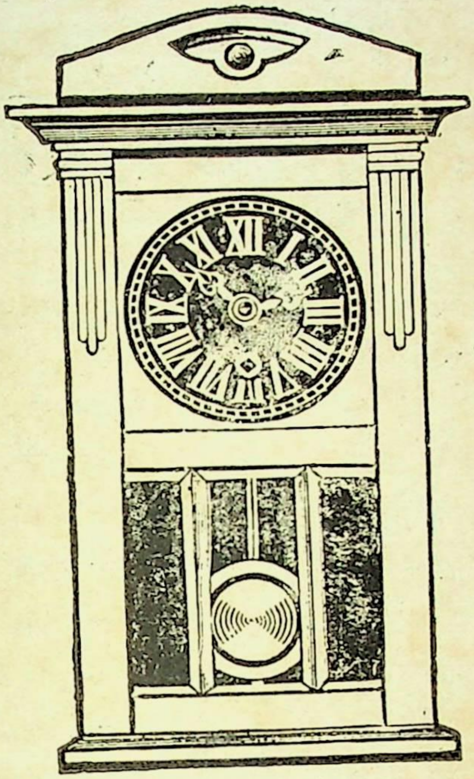

PRICE RS. 3.

Our ... The Best New The Cheapest Model ... and the Clock ... most economical wall Clock gives correct time and guaranteed for three years. Try once and convince yourself.

Price Rs. 3.

V. S. WATCH Co.,
P. B. 105. MADRAS.

मुफ्त ! मुफ्त !!

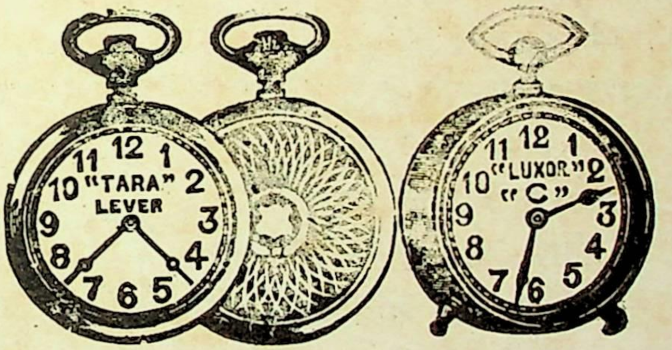

'मा' रजिस्टर्ड टाइमपीस

हर किसी को मुफ्त

हमारी "तारा, लिव्हर १८ करेंट गोल्ड गोल्ड पाकेट वाच" जिसके पीछे उत्तम नक्काशी की गयी है, गारण्टी ५ वर्ष मूल्य ५) रु०, मंगाने वाले को ऊपर की टाइमपीस मुफ़्त दी जायगी।

पताः— केप्टेन वाच कम्पनी, पोस्ट बाक्स ६५ मद्रास।
Captain Watch Co. P. B, 265. Madras.

अपने बच्चे को फुटबॉल खिलाओ।

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताज़ा
और खुश मिज़ाज़ होगा यदि
तुम हम से उस के लिए फुटबॉल
खरीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे
यहां है । जल्द आर्डर भेजिये ।

बी० डी० गुप्ता एण्ड को०

पंच कुईं रोड, दिल्ली।

चौधरी हुलासराय प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिए गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित ।

Regd. NO. A. 1711

वर्ष ८, खंड ८] दिसम्बर, १९२७ [संख्या ७, ८

ज्योति

वार्षिक मूल्य ३) | सम्पादिका | स्त्रियों और विद्यार्थियों से २)
प्रति संख्या ।।) | विद्यावती सेठ बी. ए. | विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय पृष्ठ से

१. अर्तानुनय 'कविता' (श्री वीरहरि जी विद्यार्थी) २६५
२. क्रियामय बनो (श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार) २६६
३. सरकार और हेमन्त 'कविता' (श्री कविवर श्री प्रेमी जी) २७०
४. सती महिमा 'गल्प' (श्री विश्वम्भर सहाय जी) २७१
५. श्री अमरनाथ यात्रा (श्री प्रो. मांझीराम जी) २७७
६. पूज्य प्रभो 'कविता' (श्री जगन्नारायण देव शर्मा) २८५
७. परिवर्तन 'गल्प' (श्री सत्यदेव शर्मा) २८६
८. बलिदान का बोज 'कविता' (श्री जगन्नारायण देव शर्मा) २८८
९. मेरा मिस हज़कैटी से सम्भाषण (श्रीमति अञ्जनादेवी जी) २८९
१०. प्रेम पथिक 'कविता' (श्री पं० जगन्नारायण देव शर्मा) २९१
११. स्त्री जाति और स्वतन्त्रता (श्री कुमारी सीता देवी जी) २९२
१२. पाखण्डी 'गल्प' (श्री बांकेलाल जी कपूर) २९५
१३. असहाय देवियां 'कविता' (श्री पंडित जगन्नारायण देव शर्मा) २९७

विषय पृष्ठ

१४. स्त्रियों के अधिकार (एक देवी) २९८
१५. सन्ध्या की अन्तिम किरण 'कविता' (श्री पं० प्रियहंस) ३०१
१६. आर्यो ! बदला लो !! (श्री चतुरसेन शास्त्री) ३०२
१७. सामाजिक क्रान्ति के इतिहास का एक पृष्ठ (श्री पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार) ३०४
१८. ईश्वर का नाम जपना (श्री कृष्णानन्द जी) ३०६
१९. सुखी जीवन की प्राप्ति, (श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी शास्त्री) ३११
२०. अमर जीवन 'कविता' (श्री श्रीपति) ३१४
२१. मोहिनी के आंसू (गताङ्क से आगे) ३१५
२२. बालकों में अपराध विज्ञान, (श्री रामचन्द्र ऐयर सम्पादक ब्रह्मचर्य) ३२२
२३. कुमोद्यान ३२५
२४. वनिता विनोद ३३५
२५. वैज्ञानिक संसार ३३८
२६. कन्या गुरुकुल समाचार ३४४
२७. हमारी मञ्जुषा ३४६
२८. विचार प्रवाह ३४९

ज्योति सम्बन्धि पत्रव्यवहार—

आचार्य्या कन्या गुरुकुल

कोठी नं० २१, २२, राजपुर रोड़
देहरादून

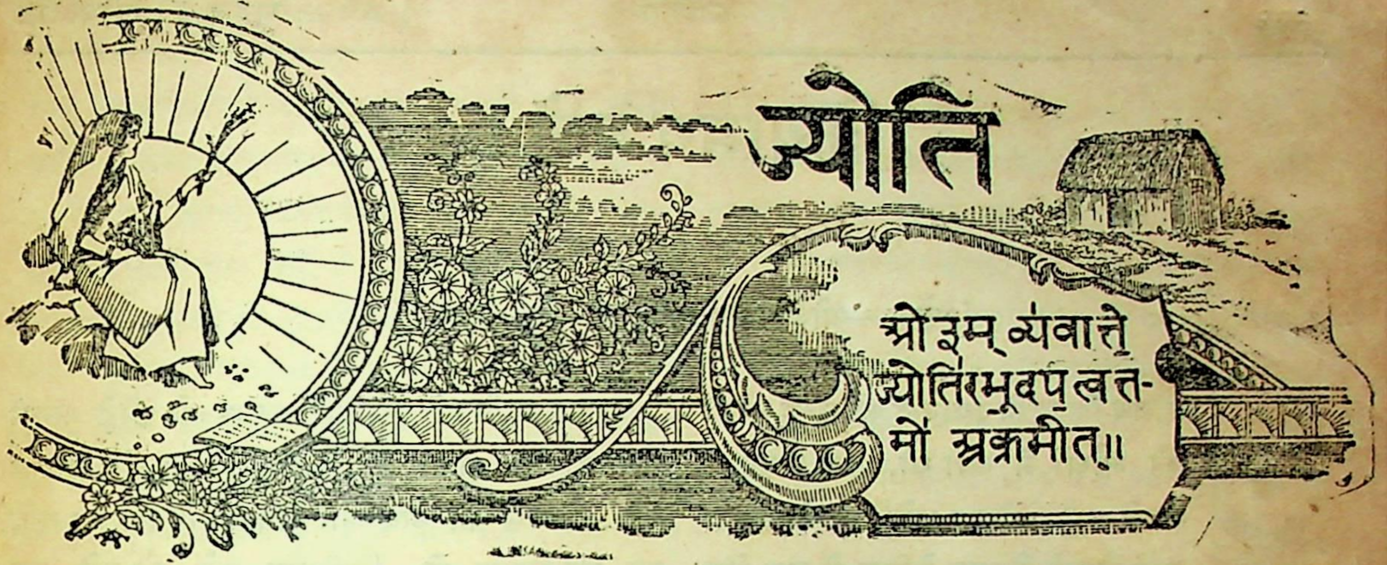

वर्ष ८ } कार्तिक, मार्गशीर्ष सं० १९८४ * नवम्बर, दिसम्बर सन् १९२७ { संख्या ७, ८

आर्त्तानुनय

(श्री 'वीरहरि' विद्यार्थी)

नाथ ! अब दीजे यह वरदान ।

एक-वार, फिरसे प्रितयम को, देख करूँ रस-पान ।
युगपद-पद्म-पराग प्रेम से, सिर धर दे दूँ जान ॥
दुखों का हो जावे अवसान ।
नाथ ! अब दीजे । यह वरदान ॥ १ ॥

सच्चे, सीधे, सभी-मार्ग प्रिय ! हुए कण्टकाकीर्ण।
उल्टी गंगा बहे आजकल, धर्म हुआ संकीर्ण ॥
नाश हो गर्वीलों का मान ।
नाथ ! अब दीजे यह बरदान ॥ २ ॥

सास, जिठानी, जेठ आदि से, पीड़ित हो अत्यन्त ।
आत्मोत्सर्ग हुआ निश्चय सब आशाओं का अन्त ॥
रहे तव दुखी जनों पर ध्यान ।
नाथ ! अब दीजे यह वरदान ॥ ३ ॥

भूख, प्यास सह सकती हूँ पर, प्रियतम का अपमान ।
सहन किसी विध नहीं, भले हो जीवन का वलिदान ॥
सफल हों सु जनों के अरमान ।
नाथ ! अब दीजे यह वरदान ॥ ४ ॥

धर्म, नीति की चाल चलूं पर, तोभी मैं बदनाम ।
'चुट्टनि' 'सुस्तनि,' 'सांपिनि,' 'वेश्या' तानेंहोंअविराम॥
रखो कुछ महिलाओं का मान ।
नाथ ! अब दीजे यह वरदान ॥ ५ ॥

नारि-जाति पर नर–तनु–धारी, करते भारी पाप ।
द्विपद चतुष्पद बने सत्य ही, देते जो संताप ॥
सपदि हो अबलाओं का त्रान ।
नाथ ! अब दीजे यह वरदान ॥ ६ ॥

क्रियामय बनो !

[ले०—श्री० पं० प्रियव्रत जी विद्यालंकार]

अभी जब कि ऋषि दयानन्द की मृत्यु लोगों की आँखों में नयी थी, उस समय के उनके अनुयायीगण अमेरिका के प्रसिद्ध मुनि ऐण्ड्रो जैक्सन डेविस के उस लेख का दीपमाला या आर्य्यसमाज के जन्म-दिन जैसे महत्त्व-पूर्ण अवसरों पर बड़े गर्व के साथ वर्णन किया करते थे जिस में उसने आर्य्यसमाज को लक्ष्य में रखते हुए कहा है कि वह भारत में सुलगायी गयी एक ऐसी आग को देख रहा है जो थोड़े ही समय में सम्पूर्ण विश्व में फैल कर धर्मों, जातियों के और राज्यों की परम्परागत बुराइयों को क्षण-भर में जला कर राख कर देगी और तदनन्तर एक ऐसी मनुष्य जाति को जन्म देगी जिस के साथ कि उस की शुद्ध नैसर्गिक पवित्रता का दृढ़ सम्बन्ध रहेगा। उस समय के ऋषि के अनुयायी डेविस के उक्त लेख को पढ़ कर सचमुच समझा करते थे कि वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब कि आर्य्यसमाज के माथे पर ऐसे उद्भट विजय का सेहरा बांधा जायेगा। आज भी ऐसे आर्य्य पुरुषों की कमी नहीं है जो समझते हैं कि अगर संसार का कभी भला हो सकता है, अगर पृथिवी पर कभी फिर सत्ययुग लाया जा सकता है, तो सिर्फ मनुष्य जाति के बच्चों तक वेदों का पवित्र सन्देश पहुंचाने से। और इस दुःसाध्य काम को कोई कर सकता है तो वह है केवल आर्य्यसमाज।

आज ऋषि को इस धरा-धाम को छोड़े आधी शताब्दी हो चुकी है। वे जिस आग को सुलगा गये थे उस की अब क्या अवस्था है इस का यदि हम गम्भीरता से निरीक्षण करें तो हमें डर लगता है कि कहीं मुनिवर डेविस की भविष्य वाणी और हमारी आशा केवल भविष्य वाणी और आशा ही न रह जायें। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् शुरु शुरु में अवश्य ही आर्य्यसमाज की गति के भीतर जीवन दीखता था। आर्य्य-समाज बड़ी तीव्र गति से फैला। उस के प्रचार और संस्थाओं की देश में धूम मच गई। पर यह सब कुछ थोड़े समय के लिये ही रहा। उस के पश्चात् उस की गति बहुत ही धीमी पड़ गयी। और कहीं-कहीं तो स्थिरता के चिन्ह दीख पड़ने लगे, उस स्थिरता के जो कि अगर आरम्भ में ही सचेष्टता न दिखायी गयी तो वृद्धि की जगह नाश की ओर खींचेगी। हम जिस चाल से आगे बढ़ रहे हैं उस से तो इतनी भी आशा नहीं होती कि आर्यसमाज कभी अपना सन्देश उतने लोगों तक भी पहुंचा सकेगा जितने लोगों तक कि बौद्ध, मुसलमान और ईसाई लोगों ने अपने अपने धर्मों के सन्देशों को पहुँचाया था। आज आधी मनुष्य जाति आवश्यकता पड़ने पर "अहिंसा परमो धर्मः" और "बुद्धं शरणं गच्छामि" के झण्डे के नीचे इकट्ठी हो सकती है। पन्द्रह बीस करोड़ मनुष्य कुरान की शिक्षाओं के लिए सब कुछ करने धरने को तैयार हैं। महात्मा ईसा को

अपना उद्धारकर्त्ता मानने वाले लोगों की संख्या चालीस पचास करोड़ से कम न होगी। तिस पर भी ये धर्म अपने विस्तार के लिए जितनी ज़बरदस्त कोशिश कर रहे हैं उसे जाने ही दीजिये। यह बात ध्यान में रखने की है कि इन धर्मों का इतना व्यापक प्रचार कोई गत दो तीन शताब्दियों की बात नहीं है। इन धर्मों ने अपना यह रूप महात्मा बुद्ध, मुहम्मद और ईसा के देहावसान के कुछ ही शताब्दियों बाद प्राप्त कर लिया था। इस हिसाब से ऋषि की मृत्यु से लेकर अब तक आर्य्यसमाजियों या वेदानुयायियों की जितनी संख्या हो चुकनी चाहिये थी उस का शतांश भी अभी नहीं हुआ है। प्रश्न उठ सकता है कि यदि आर्य्यसमाज जिस वेग से फैलना चाहिये था उस वेग से नहीं फैल रहा है और फैलने के स्थान में स्थान स्थान पर स्थिरता के चिन्ह दृष्टि में आते हैं तो इस का यही अर्थ क्यों न ले लिया जाय कि मनुष्य समाज को आर्य्य समाज की आवश्यकता ही नहीं। लोगों में वे ही सिद्धान्त अधिक से अधिक अनुयायी उत्पन्न कर सकते हैं जिनकी लोगों को ज़रूरत हो। अपने अपने समय में बौद्धधर्म, ईसाइयत और इस्लाम की लोगों को ज़रूरत थी और वे प्रचार पा गये। आर्य्यसमाज की शायद लोगों को ज़रूरत न हो और इसी लिए वह उस तीव्रता से न फैल रहा हो? प्रश्न ऐसा नहीं है जिस के उत्तर में कहा जा सके कि 'ठीक' है। आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। भारत को उस की आवश्यकता है और भारत के बाहर दुनिया को भी उसकी आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द की कोटि के महात्मा संसार को वह पाठ नहीं सिखाया करते जिस का सीखना उस के लिये आवश्यक न हो। आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। भारत की जो अवस्था आज दीख रही है वह जब तक ऐसी ही बनी रहेगी तब तक आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द की कोटि के महात्मा संसार को वह पाठ नहीं सिखाया करते जिस का सीखना उस के लिए आवश्यक न हो। आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। भारत की जो अवस्था आज दीख रही है वह जब तक ऐसी ही बनी रहेगी तब तक आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। आज पवित्र धर्म—वह धर्म जिस के बिना मनुष्य जाति एक क्षण के लिए भी वास्तविक अर्थ में जी नहीं सकती—पाखण्डियों और धर्मध्वजियों की स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना हुआ है। असंख्य धार्मिक और सामाजिक कुरीतियें हिन्दुजाति की जड़ों को खोखला कर रही हैं। उन्हें हटाकर यदि दूर न फेंक दिया गया तो हिन्दु जाति के विशाल वृक्ष के सदैव के लिए गिर जाने में अणु भर सन्देह नहीं है। आज अछूतों, बालविवाह और विधवाओं की समस्या हिन्दु जाति को परेशान कर रही है। जन्मानुसार वर्णव्यवस्था जिस ने हिन्दु-जाति को सैकड़ों भागों में बाँट रखा है उस की उन्नति के राह में हिमालय बन कर खड़ी हुई है। यह सब कुछ जब तक नहीं हट जाता तब तक आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। "सनातनधर्म-महा-मण्डल" या "हिन्दु-महासभा" इस भारी भार को अपने कमज़ोर कन्धों पर नहीं उठा सकते यह वर्षों के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है। हिन्दुओं के अन्दर वह शक्ति नहीं है कि वे अपनी रक्षा आप कर सकें, और जब तक हिन्दु अपने आप को दृढ़ और शक्तिशाली नहीं बना लेते तब क्या सामाजिक और क्या राजनीतिक किसी भी मार्ग में भारतीय आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये भारत को आर्य्यसमाज की परम आवश्यकता है।

भारत के बाहर संसार को भी आर्य्यसमाज की आवश्यकता है। बौद्ध-धर्म, अनुयायियों की दृष्टि से यद्यपि संसार में शायद सब से बढ़ कर है फिर भी उस के सिद्धान्तों में वह नवीनता नहीं रही है कि वह फिर से संसार को अपनी ओर खेंच कर शान्ति दे सके। उस के अपने अनुयायी ही उस के मुख्य और अधारभूत सिद्धान्तों से योजनों पिछड़े हुए हैं। और न ही आजकल का संसार उसके सिद्धान्तों को स रूप में मान सकता है जिस रूप में कि वे भी माने जा चुके हैं। इस्लाम आज अपने ही अनुयायियों से ठुकराया जा रहा है। ईसाइयत योरोप को भूमि-लोलुप जातियों की निन्दित इच्छाओं की पूर्त्ति का एक उत्तम साधन-मात्र होने के सिवा और कुछ रह नहीं गयी है। ऐश्वर्य से मत्त, भोगों में लिप्त और विलासिता से दली हुई मनुष्य समाज की आत्मा प्रकृतिवाद से खिझने लग पड़ी है; जिस के चिन्ह प्रकृतिवाद की मातृभूमि योरोप में ही वहाँ के अनेक विचारकों की प्रकृति-वाद की तीव्र समालोचना और उस से असन्तोष के रूप में प्रकट हो रहे हैं। आज पाश्चात्य सभ्यता से तंग आयी हुई मनुष्य जाति किसी नवीन सन्देश को माँग रही है जो कि उसे वास्तविक शान्ति दे सके। ईसाइयत या इस्लाम के सन्देशों से आज का जगत् संतुष्ट नहीं होना चाहता। तब संसार कहाँ से वह नया सन्देश प्राप्त करेगा? आर्य्यसमाज के पास एक सन्देश है जिसे कि वह संसार को दे सकता है वह सन्देश उतना ही पुराना होने पर भी जितना कि पुराना स्वयं विश्व ब्रह्माण्ड है, नवीन है। क्यों कि लोग उसे बहुत पुराने समय से भूल चुके थे। वह सन्देश है—"फिर वेदों की ओर लौट चलो।" जब तक मनुष्य जाति इस सन्देश को सुन कर, उस पर आचरण कर के, स्वर्ग के देवताओं तुल्य नहीं बन जाती तब तक संसार को आर्य्यसमाज की अवश्यकता है।

तो फिर आर्य्यसमाज उस द्रुत गति से क्यों नहीं बढ़ रहा जिस की ज़रूरत है? इस का उत्तर बहुत ही सुगम है। आर्य्यसमाज अपने आप को एक धार्मिक संस्था कहता है। और सच-मुच उस का काम है भी वैदिकधर्म का प्रचार करना। पर धर्म क्या वस्तु है और उस की चरितार्थता किस में है, इस बात को हम भूल रहे हैं। धर्म क्या वस्तु है इस की मैं यहाँ विवेचना नहीं करना चाहता। एक वैदिकधर्मी के लिये जो कुछ वेदों में करने के लिये कहा गया है, वह सब धर्म है। पर इतना निर्विवाद है कि धर्म की चरितार्थता क्रिया में है। यदि कोई धर्म क्रिया में नहीं आता तो इस के सिद्धान्त चाहे कितने ही उच्च क्यों न हों उस का मानना और न मानना एक जैसा ही है। संसार के किसी धर्म की उच्चता या हीनता उस के अनुयायियों के आचरण को देख कर परखेगा। मेरा धर्म देवदत्त के धर्म से तभी उच्चतर कहा जा सकता है जब कि वह मेरी क्रियाओं में आकर मुझे देवदत्त से ऊंचा बना दे। मुझे अपने से श्रेष्ठ समझ कर ही देवदत्त मेरे सिद्धान्तों को मानने के लिये तैय्यार हो सकता है। आर्यसमाज वैदिकधर्म का प्रचार करना चाहता है, वह चाहता है कि सब मनुष्य उन्हीं सिद्धान्तों को मानने लग जायें जिन्हें कि वह आप मानता है। वैदिकधर्म क्या है—इसके सिद्धान्त क्या हैं, इन सब बातों का सब के समझने योग्य भाषा में ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश आदि में प्रतिपादन किया है। उन सिद्धान्तों को क्रिया में लाने वाला व्यक्ति कहाँ तक ऊँचा उठ सकता है इस का दृष्टान्त-स्वरूप अपना जीवन

उन्होंने आर्य्य जनता के सामने रख दिया है। तो क्या हम वैदिकधर्म को क्रिया में ला रहे हैं ? क्या ऋषि का जीवन सदैव हमारी आँखों में रहता है ? हर साल हम दीपमाला, ऋषि-उत्सव, ऋषि बोधोत्सव, आर्यसमाज के स्थापन दिवस आदि अवसरों पर वैदिक धर्म के तत्वों की आलोचना करते और सुनते हैं, ऋषि-जीवन को कथा करते और कराते हैं। हम तीन-तीन लाख की संख्या में इकट्ठे होकर दयानन्द जन्म-शताब्दि भी मना लेते हैं। पर कभी इस पर भी विचार करते हैं कि हम क्यों संसार को वैदिक-धर्म का सन्देश देना चाहते हैं और वह कौनसा जादू था जिसने ऋषि दयानन्द को ऋषिदयानन्द बना दिया था ? क्या जब हम जन्मानुसारी जात-पात का तीव्र खण्डन कर रहे होते हैं, तब कभी हम सोचते हैं कि संसार हमारे घरों की ओर पहिले देखेगा ? जब हम संस्कारों की फ़िलासफ़ी का पाण्डित्य-पूर्ण मण्डन कर के लोगों से अपील करते हैं कि इन संस्कारों को क्रिया में लाओ, तब क्या कभी हमने सोचा है कि हमारे बच्चे किस तरह पैदा हो रहे और पल रहे हैं ? अनीश्वरवादी और नास्तिकों का खण्डन करते हुए कभी हमने यह भी सोचा है कि हमारा ईश्वर पर विश्वास कितना पक्का और उस में भक्ति कितनी गहरी है ? प्रकृति-वाद का खण्डन तो हम रोज़ करते हैं पर हमने अपने को अध्यात्म-वादी बनाने की चिन्ता भी कभी की है ? किंबहुना, वैदिक धर्म की कोई एक भी ऐसी बात है जिसे हम क्रिया में ला रहे हैं ? सच पूछो तो कहते ही कहते रहते हैं करते कुछ भी नहीं। आर्य्य समाजों का काम सिर्फ़ इतना ही रह गया है कि साल में एक वार्षिक उत्सव मना लिया करें। किसी ने हमारा नाम "जलसा धर्म" रखने में कोई ग़लती नहीं की है। तो फिर लोग हम में क्या देखें, किस बात में हमें अपने से श्रेष्ठ समझ कर उन सिद्धान्तों को मानने लगें जिनने हमें उन से श्रेष्ठ बनाया है ? लोगों को दिखादो कि "देखो, हमने इन सिद्धान्तों को माना था और हमारी अवस्था इतनी उन्नत होगयी है"। लोग आप से आप तुम्हारे सिद्धान्तों को मानने लगेंगे। क्यों कि वे देखेंगे कि "हाँ, सच-मुच ये सिद्धान्त ऐसे हैं जिन्हें मानने वाले का काया पलट हो जाता है। फिर देखिये आर्य्यसमाज किस शीघ्रता से बढ़ने लगता है, कितनी जल्दी संसार वैदिकधर्म के झण्डे के तले आजाता है।

आदमियों के पहाड़-के-पहाड़ क्यों न सिर पर गिरने लग पड़ें, पर फिर भी अपने सिद्धान्तों पर आचरण करने से न रुकना यही एक ऐसी बात है जो किसी सिद्धान्त या धर्म को व्यापक बना सकती है। बौद्धों का एक मुख्य सिद्धान्त था "अहिंसा" या "सर्वभूतरक्षा"। इतिहास बतलाता है कि आरम्भ काल के बौद्धों ने किस तत्परता से इस सिद्धान्त को आचरण में ढाला था। बौद्ध भिक्षुओं ने समुद्र यात्रा करते समय दूसरे यात्रियों की नौकाओं के भग्न हो जाने पर आप समुद्र में मग्न होना स्वीकार करके भी उन लोगों की प्राण रक्षा करके अपने "सर्वभूत हित" के सिद्धान्त को बचाया था। एक बार नहीं अनेकों बार आरम्भ काल का ईसाइयत का इतिहास बतलाता है कि घोर से घोर आपत्ति के समय भी ईसा के अनुयायियों ने अपने सिद्धान्तों को रक्षा की थी। अनेकों उदाहरण हैं जब कि छोटी २ लड़कियों ने आग में जल जाना स्वीकार किया था पर प्रभु, ईसा में विश्वास लाना नहीं छोड़ा और यह बात थी जो बौद्धधर्म और ईसाइयत को इतना फैला

गई। पर हम अपने सिद्धान्तों को क्रिया में लाने के लिये कुछ भी कष्ट सहना स्वीकार करते प्रतीत नहीं होते। स्थान-स्थान पर हमारे उत्सव सरकार द्वारा रोक दिये जाते हैं पर हम अपने अधिकार का रौंदा जाना नपुंसक की भाँति सह लेते हैं। सरकार से लोहा लेना तो दूर की बात है, हम अपने सिद्धान्तों पर इस लिये अमल नहीं करते कि कहीं घर की कुछ औरतें और संबन्धियों में से कुछ व्यक्ति हम से रूठ न जायें। तो आप में कौन सी बात है जिससे आप चाहते हैं कि दुनिया आप के सिद्धान्तों को मानने लग जाये ?

आज हम ऋषि दयानन्द के जीवन पर विचार करने के लिये बैठे हैं। उन का जीवन हमें किस बात की शिक्षा दे रहा है ? उन का जीवन घोषणा दे-दे कर कह रहा है कि जो कहो उसे पूरा करो। वे वैदिक धर्म का सन्देश संसार को सुनाते थे और उस का क्रियात्मक उदाहरण होता था उन का अपना व्यक्तित्व। यही कारण था कि उस महापुरुष-द्वारा प्रतिपादित वैदिक सच्चाइयों को जगत् सिर झुका कर मान लेता था। एक तरफ़ उन का जीवन उठा लीजिये और दूसरी तरफ वेदों को हाथ में ले लीजिये। आप देखेंगे कि सूक्त के सूक्त उन के जीवन में घट रहे हैं। भला जो व्यक्ति अपने सिद्धान्तों का स्वयं जीवित निदर्शन हो, कौन है जो उस के सिद्धान्तों के आगे सिर न झुका देगा ? कैसे हो सकता है कि उसे सफलता न मिले ?

आज ऋषि-उत्सव के दिन अगर हम इस शिक्षा को अपने जीवन का अङ्ग बना लें कि जो मानेंगे उसे पहिले अपने क्रियामय जीवन में ले आयेंगे तब दूसरों से उसे मानने के लिये कहेंगे, तो वह दिन दूर नहीं रहेगा जब वह स्वप्न पूरा होगा जो कि मुनिवर डेविस ने आज से पचास साल पहले आर्य्यसमाज के सम्बन्ध में लिया था। †

सरकार और हेमन्त

[कविवर श्री० 'प्रेमी']

उत जेल बना, जल सर्द महा इत
भोर का, भाप उठें जिस से।
इत काले कानूनों के बाण चले,
उत पाले के बाण बुझे विष से।
खुफिया से खुदा को भी ख़ौफ़ इतै,
उत घेरैं कुहासो दसो दिस से।
सरकार हेमन्त ते होड़ पड़ी,
कि अनीति में कौन बड़ा किससे।

इत है असहाय निहत्थों पै शस्त्र—
प्रहार सुशासन के मिस से।
उत वस्त्र से हीन गरीबों के ऊपर,
वार प्रभंजन के मिस से।
इत घूस की लेते पनाह दुखी,
उत फूस की जान बचै जिस से।
सरकार हेमन्त ते होड़ पड़ी,
कि अनीति में कौन बड़ा किस से।

---

† ऋष्युत्सव के दिन पठित।

सती महिमा

[ले०—श्री० विश्वम्भरसहाय]

(१)

प्रायः छोटे बच्चे सायंकाल होते ही सोने के लिये व्याकुल हो उठते हैं। गाय-भैंस भी जङ्गल से आकर अपने स्थान पर बँध कर खाने-पीने के काम में ही लग जाने पर सुख अनुभव करती हैं। इसी प्रकार पक्षियों को भी अपने घोंसले में पहुँच कर ही आनन्द मिलता है। हाँ, ऐसे भी जीव इस लोक में पाये जाते हैं जो सायंकाल को भ्रमण करते हुवे अपनी उदरपूर्ति में संलग्न हो जाते हैं।

वर्षाकाल बीत चुका है। गहरी अन्धियारी होते हुये तारागण का मन्द-मन्द प्रकाश दृष्टि पड़ रहा है। पूर्णा अपनी दो वर्षीया बालिका को थपक-थपक कर सुला रही है परन्तु वह न जाने क्यों नहीं सो पाती, खाट पर पड़ी हुई मन्द-मन्द रुदन-सा कर रही है। पूर्णा के चूल्हे में आग जल रही है। आटा वैसे ही पड़ा है। अभी तक भोजन भी न बन पाया है।

पूर्णा को प्रतीक्षा करते २ आठ बज गये परन्तु उसका पति अभी तक कार्यालय से लौट कर घर नहीं आया है। घर में केवल पत्नी, पति, पुत्री ३ प्राणी हैं। समय अधिक हुआ जान कर पूर्णा द्वार पर बार-बार आकर अपने पति की प्रतीक्षा करने लगी परन्तु आशा सर्वथा निष्फल ही रही।

जाड़े के समय में प्रायः घर से मनुष्य कम निकलते हैं। मार्ग का चलना बन्द सा हो जाता है। ग्रीष्म के समान गलियों में चहल-पहल नहीं होती। पूर्णा निराश होकर प्रतीक्षा करती-करती बिना भोजन किये ही अपनी प्यारी बिटिया के पास चिन्तित अवस्था में पड़ रही।

(२)

पाठको ! आइये ! सामने देखिये ! सेठ मदन मोहन की एक विशाल कोठी दिखाई पड़ रही है एक दो नहीं किन्तु अनेक कर्मचारी अपने अपने काम में लगे हुये हैं। सेठ जी भी अपने कर्मचारियों के साथ आवश्यक व्यापार सम्बन्धी पूछ-ताछ में लगे हुवे हैं। कोठी के एक कोने वाले कमरे में एक नवयुवक जिसका नाम सुबोध है, पाँच-चार अन्य साथियों के साथ एक प्रकार का वादविवाद करने में लगा हुआ है। वह कह रहा है "आप मुझे इस का कोई प्रमाण दीजीये।"

उस के साथी महेन्द्र ने उत्तर दिया "इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा। लो देखो ! तुम्हारी सती के गले का यह आभूषण मैंने गजेन्द्र से प्राप्त किया है।"

सुबोध ने उस आभूषण को पहिचाना और ठंडी सांस भर कर मस्तक पर हाथ मारा। उसने व्यग्रता के साथ फिर पूछा "क्या आप यह बतलायेंगे कि आपने इसे किस प्रकार गजेन्द्र से पाया है?"

महेन्द्र ने कहा "मैं आप को यह भी बताये देता हूँ। गजेन्द्र ने आज प्रातः मुझे यह दिया था। आप यह तो जानते ही हैं कि वह मद्य, मांस तथा द्यूतक्रिया में किस प्रकार अपना पैसा लुटाता है। अपने पूर्वजों की वर्षों की संचय की हुई सम्पति को नष्ट कर रहा है। आपको यह भी ज्ञात है कि उसका द्वेष आप के प्रति बढ़ता ही जाता है। आप का कथन उसके शरीर में तीर के समान लगता है। उसी ने मुझे देते हुये बताया कि यह आभूषण सुबोध की कुलटा स्त्री का है। मुझ से पचास रुपये ले गया है। कहिये अब आपका सन्देह मिट गया?"

सुबोध निरुतर हो गया। लज्जावश पृथ्वी में धँस गया। शरीर ज्वर से पीड़ित होने लगा। बड़ी कठिनाई से कार्यालय का काम किया। सायङ्काल के ४ बजे कार्यालय के कर्मचारियों की छुट्टी हो जाती है। उस ने चार बजते ही अपने स्वामी के पास एक लिफ़ाफ़ा रख दिया और बिना उत्तर पाये न जानें कहाँ चला गया।

(३)

पाठको! आप को सुबोध से परिचित करा देना आवश्यक प्रतीत होता है। आप ब्राह्मण कुलोत्पन्न पंडित कामेश्वर प्रसाद मिश्र के इकलौते पुत्र हैं। यद्यपि आपके एक भाई और एक बहिन और भी थीं परन्तु वे दोनों अल्पायु में ही मृत्यु-मुख में चले गये थे।

पण्डित कामेश्वर प्रसाद मिश्र ने अपने पुत्र सुबोध को बड़ी मेहनत से पढ़ाया था। एक उच्च-कुल में उसका विवाह किया था। उनका दो-चार सेठ-साहूकारों में ही नहीं किन्तु नगर के प्रायः सभी धनिकजनों में बड़ा मान था। इसी कारण आपको अपने पुत्र को नौकर करा देने में भी कुछ आपत्ति न पड़ी। उन्होंने उसे सेठ मदनमोहन जी के कार्यालय में बड़ी सरलता से ४५) मासिक पर नौकर करा दिया था। परन्तु दुर्भाग्यवश वह अपने पुत्र का कुछ सुख प्राप्त न कर सके और अकस्मात् ज्वर के भीषण प्रकोप में पड़कर केवल ४५ वर्ष की ही आयु में इस लोक से विदा हो गये। सुबोध की माता को मरे हुये कई वर्ष बीत चुके थे। घर में केवल सुबोध तथा इस की पत्नी पूर्णा दो ही शेष रह गये थे। हां, उन के आमोद प्रमोद में कुछ सहायता करने वाली उनकी सात मास की एक छोटी बालिका और थी।

सुबोध जिस समय कार्यालय में नौकर हुआ था उस समय सेठ जी ने गजेन्द्र को उस का कार्य असन्तोषजनक होने के कारण पृथक कर दिया था। इस कारण उसको निश्चय हो गया था कि सुबोध ने ही कार्यालय से पृथक कराया है। गजेन्द्र की प्रकृति बड़ी कुटिल थी उसका हृदय कपटी था। उसने पृथक होते समय यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि प्राण रहते वह सुबोध के मान को चूर करेगा, उस को किसी-न-किसी प्रकार नीचा दिखायेगा। इस कारण वह सदैव सुबोध का सर्वनाश करने को उद्यत रहता था।

कार्यालय से पृथक होकर गजेन्द्र ने अपने अनेक मित्रों से सहायता माँगी, चाटुकारी करके उसने फिर से सेठ मदनमोहन को प्रसन्न कर लिया और फिर उसी कार्यालय में काम करने लगा जिस में पहिले करता था।

(४)

सुबोध कार्यालय से निकल कर अशान्त-मन सांसारिक उलझनों के भिन्न २ विचारों में उलझा हुआ जंगल की ओर चल दिया था। उसने तनिक भी यह नहीं सोचा कि वह कहाँ पहुँचेगा।

सायंकाल हो गई । पक्षीगण अपने घोंसलों में जाते दिखाई पड़ने लगे । अन्धकार भी अपनी तीव्र गति से बढ़ने लगा । परन्तु मातृपितृविहीन सुबोध आगे बढ़ता ही रहा । जिस समय उस के पैरों ने हतोत्साह होकर कार्य करना बन्द कर दिया तो वह सामने के एक वृक्ष से टकराकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । मानसिक वेदना ने उसे मृतक समान बना दिया था । वहां पड़ा २ दुखिया सुबोध एक प्रकार की दुखद निद्रा में निमग्न हो गया ।

पेड़ों में थोड़ी दूर पर कुछ मनुष्य अपना भोजन बना रहे थे । अग्नि जलने से जो प्रकाश उन वृक्षों के मध्य फैला हुआ था, उस में एक मनुष्य को वृक्ष के पास पड़ा हुआ सुबोध दिखाई पड़ा । वह मनुष्य पास आया और विस्मय के साथ थके हुये सुबोध को देखता रहा । उसने सुबोध की बाँह पकड़कर उठाना चाहा और चिल्लाकर पूछा "तू कौन है जो रात्रि में इस जंगल में पड़ा हुआ है ।"

पहिले सुबोध उसकी आवाज़ सुनकर चौंका परन्तु फिर उसने आँखें बन्द कर लीं । पास से उस मनुष्य ने अपने एक और साथी को पुकारा । दोनों ने थके हुये व्यथित सुबोध को देखा । दयावश वे उसे उठाकर अपने स्थान पर ले गये ।

(५)

पूर्णा रात्रिभर व्याकुलता में निमग्न रही । प्रातः होते ही फिर अपने प्राणनाथ की प्रतीक्षा करने लगी । ज्यों ज्यों दिन चढ़ता जाता था त्यों त्यों उस की व्याकुलता तथा चिन्ता बढ़ती जाती थी । उस के पास उसके स्वामी की खोज करने वाला कोई न था । निकट के मनुष्य भी उस दुखद समय उस के सहायक न हुये । कभी वह अबला घर के द्वार पर आकर आँसू बहाती और कभी फिर अन्दर जाकर अश्रुपात करती । उस समय परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी धैर्य बंधाने वाला न था ।

गंगासहाय प्रतिदिन १० बजे सुबोध के मकान के पास से जाया करता था । यह उनका बड़ा शुभचिन्तक था । कार्यालय में सुबोध के पास ही चपरासी था । पूर्णा ने द्वार पर खड़े हुये उसे मकान के सामने से जाते देखा । धैर्य के साथ उस से कहा "बाबू जी कल से घर पर नहीं आये हैं तुम मुझे कार्यालय में देखकर उन की अभी सूचना देना ।"

गंगासहाय कोठी पहुँचा और वहाँ पर सुबोध बाबू को खोजा परन्तु वे कहीं भी दृष्टि न पड़े । अन्य कर्मचारियों को भी उनका कुछ पता नहीं था । अन्त में सेठ जी को भी सुबोध के चले जाने का समाचार ज्ञात हुआ । सेठ जी ने सुबोध का दिया लिफ़ाफ़ा अभी तक नहीं खोला था, इस समय उन्होंने बड़ी व्यग्रता के साथ खोला । ज्ञात हो गया कि वह कार्यालय को छोड़ कर मानसिक वेदना के कारण कहीं चला गया है । यही उस का त्यागपत्र भी था ।

सारे कार्यालय में सनसनी फैल गई । उस के सभी साथी आश्चर्य करने लगे । सभी को खेद था परन्तु गजेन्द्र को किसी प्रकार का भी शोक न था, किन्तु वह अन्य दिनों कि अपेक्षा आज अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहा था ।

गंगासहाय ने दुःखिया पूर्णा को उस के पति के चले जाने का दुखद समाचार सुना दिया । वह बेचारी रात्रि भर चिन्ता में निमग्न रही थी । कोई भी उसको शान्ति देने वाला न था । पति के इस प्रकार बिना कारण चले जाने के समाचार ने उसे मृतक-समान कर दिया । परमात्मा पर विश्वास कर के अपने स्वामी की शुभ कामना करना ही उसका धर्म था ।

(६)

रात्रि के २ बजे होंगे। चन्द्रमा की किरणें नहर गंग के जल में पड़ने लगीं। मल्लाहों ने अपनी अपनी नौकायें खोलीं। अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी।

यद्यपि सुबोध के मन में कार्यालय से चलते समय आत्महत्या कर लेने का विचार था, परन्तु कुछ विचार कर उसने ऐसा करना परित्याग कर दिया था। हाँ, यह उस ने निश्चय किया था कि ऐसी दशा में घर पर वापिस जाना कलंक की बात है, और वह इस अपयश से यह उत्तम समझता था कि उन कष्टों को सहन करे जो उसे साधु जीवन व्यतीत करने में मिलने सम्भव हैं।

मल्लाह उसे अपने साथ नाव पर ले गये। उन के साथ उसे बड़ी शान्ति मिली। उनके उस परिश्रम को देखकर—जो उन्हें नौका खेने में करना पड़ता था—वह अपने दुःख को भूल गया। उन्हीं के साथ वह भी उनका काम करने में आनन्द मानने लगा। मल्लाहों ने भी सुबोध जैसे मिष्ट भाषी नवयुवक के प्रति बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति प्रगट की वे। अपने आप को उसके सत्संग द्वारा धन्य मानने लगे।

(७)

गढ़मुक्तेश्वर का गंगा का मेला दूर दूर प्रसिद्ध है। अनेक स्थानों से लाखों मनुष्य पूर्णिमा स्नान को प्रतिवर्ष कार्तिक मास में जाते हैं। सब का विश्वास चाहे कुछ हो परन्तु अनेक उन में ऐसे भी ही होते हैं जो समझते हैं कि वर्ष भर के किए सभी पाप इस स्नान के करते ही नष्ट हो जाते हैं। गरीब पूर्णा भी अपने किसी पड़ोसी के साथ भाड़ा करके गंगा स्नान की तैयारी में लगी हुई थी। तैयारी ही उस दीना-असहाया को क्या करनी थी? केवल इसी चिन्ता में है कि किसी न किसी प्रकार वह गंगा तट पर पहुँच जाय।

वैसे तो वह बेचारी उसी वर्ष गंगा स्नान के लिये उत्सुक थी जिस वर्ष उसके लड़की उत्पन्न हुई थी परन्तु किन्हीं कारणों से न जा सकी। उसके पश्चात् पतिदेव का कठिन वियोग बाधक बन गया। इस वर्ष तीन चार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसे यह अवसर मिला है। इसका भी एक कारण था। उसने निकट की अनेक वृद्धाओं से सुना था कि गंगा स्नान के मेले पर अनेक साधु महात्मा आते हैं सम्भव है वहाँ उस के पति देव मिल ही जाँय। यह आशा उसके उत्साह को बढ़ा रही थी। इसी कारण दुखिया पूर्णा गंगा जाने को उद्यत हुई।

(८)

गजेन्द्र को केवल मद्य का ही व्यसन न था किन्तु वह घुड़दौड़ का बड़ा व्यसनी था उसी में पिता की समस्त पूँजी लुटा दी। उसके दो मकान भी इसी की भेंट चढ़ गये परन्तु इस पर भी उस के नेत्र न खुले। उसका भरण-पोषण होना अब सेठ मदनमोहन की नौकरी पर ही निर्भर रह गया था उसने उस नौकरी की भी व्यसनों में पड़कर कुछ परवाह न की।

अनेक धनवानों का उस पर क़र्ज़ हो गया था। उस की स्त्री को बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी। उसने अपने पति को कुपथ से हटाने की यथेष्ट चेष्टा की परन्तु सब निष्फल था। अन्त में विपत्तियाँ इतनी बढ़ीं कि उसे भोजन भी मिलना कठिन हो गया। रोगशैया पर पड़ी-पड़ी व्याकुलता के साथ दैवयोग से परलोक सिधार गई।

जब गजेन्द्र रुपया चुकाने में असमर्थ हो गया तो कर्ज़दारों ने उसे कारावास भिजवा दिया। उस से ही क्या होता था। उस पर दया कर के कर्ज़ का रुपया चुकाने वाला भला कौन था? कार्यालय से नौकरी भी छूट गई। उस के शरीर की अवस्था बिगड़ गई। न जाने किस साध्वी महिला के श्राप का फल भोग रहा था। कारावास से छुटकारा पाकर भोजन बिना भटकने लगा। दो तीन वर्ष बीतने पर ही उस की यह दुरवस्था हो गई।

जो गजेन्द्र एक दिन सेठ मदनमोहन के कार्यालय में बड़ी सज धज के साथ कई सिगार फूंक आता था, सिगार की तो गणना क्या करें जिसने हज़ारों रुपये एक एक घुड़दौड़ में लगा दिये परन्तु कुटिल समय ने उसे भोजन के लिए भी भटका दिया। वही गजेन्द्र आज गंगा के किनारे पेट के लिए टुकड़े की खोज में साधुवेश धारण किये फिर रहा है।

(६)

अनेक यात्री नाव का पुल पार करके गंगा के दूसरे तट पर पड़ा हुआ मेला देखने जा रहे हैं। अनेक यात्री बड़ी उत्सुकता के साथ इसी लिए जा रहे हैं कि वहाँ पर आये हुये हरिद्वार के प्रसिद्ध साधुओं के दर्शन करें।

पूर्णा ने भी किसी से सुन लिया था। उसे यह भी बतलाया गया था कि वे अनेक ज्योतिष के प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं। दुखिया पूर्णा अपनी बालिका को साथ लिये अपने पड़ोसियों के साथ न जाने किस आशा से पार मेला देखने चली जा रही है।

नौकाओं का पुल बड़ी सावधानी से बनाया जाता है। अनेक मल्लाह उस की रक्षा के लिए हर समय वहां विद्यमान रहते हैं। ऐसा न हो कि पानी का वेग रस्सों को तोड़कर नौकायें बहा ले जाय।

नौकायें दूर दूर से मंगाई जाती हैं। कई नौकाओं पर मल्लाहों ने अपनी प्रसिद्धि करने के लिए झण्डे लगा रक्खे थे।

गजेन्द्र जिस के शरीर पर फटे-पुराने वस्त्र थे, पुल पर होता हुआ गंगा के दूसरे तट पर जा रहा था। दैवात् उस ने एक पतवार पर मोटे अक्षरों में "सुबोध" लिखा देखा। फिर उसने अपने पूर्व परिचित एक व्यक्ति को नौका में खड़े देखा। ध्यान पूर्वक देखकर वह समझ गया कि यह वही कोठी में साथ २ काम करने वाला सुबोध है जिस की आत्मा को दुःखित करके मैं यह कठोर यँत्रणायें सह रहा हूं। जिस की धर्मात्मा साध्वी देवी पर मिथ्या दोषारोपण करके मैंने यह घोर नर्क की यातनायें सहन की हैं।

सुबोध ने भी एक बार उस की ओर देखा, परन्तु वह विस्मय में पड़ गया। इस पर गजेंद्र समझ गया कि सुबोध ने उसे नहीं पहिचाना है। उस ने कातर स्वर में कहा "सुबोध! प्यारे धर्मात्मा सुबोध! मैं वही दुष्ट गजेन्द्र हूं। क्षमा करो! मुझे एकबार क्षमा करो। आपका अपराधी गजेन्द्र अपने दुष्कृत्यों का फल पा रहा है। मैंने आपको व्यर्थ सताया। हाय! आपको ही! उस साध्वी धर्मात्मा सती महिला को अपार दुःख पहुँचाया है। उसी का यह फल मुझे मिल रहा है। क्षमा करो।"

सुबोध विस्मय में पड़ गया। धनवान गजेन्द्र की यह अवस्था देख कर उसके नेत्रों में जल भर आया। पाँव पर पड़े गजेन्द्र को उठाया और उसकी समस्त दुःखद कहानी सुनी।

गजेन्द्र रोता हुआ पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा "मैं आपका अपराधी हूँ। मैंने आप की

पवित्र सती पत्नी को सता कर महान दुःख पहुंचाया है। सुबोध उस देवी से क्षमा करा दो"।

सुबोध ने विस्मय के साथ पूछा उसे "सती साध्वी कहते लज्जा नहीं आती ? वह तो कुल्टा है।"

गजेन्द्र का शरीर कांपने लगा। उसने मस्तक पर हाथ रख कर कहा "नहीं भाई ऐसा न कहो। सती देवी को ऐसा न कहो। यह मेरा ही अपराध था कि उस पर मिथ्या दोषारोपण कर के उस के पवित्र चरित्र पर दोष लगाया। सुबोध! वह पूर्ण निर्दोष है।"

(१०)

पूर्णा ने नौका में खड़े हुये दो व्यक्तियों को परस्पर वार्तालाप करते देखा। एक व्यक्ति साधु वेशधारी थी। इसी कारण उसकी दृष्टि पूर्णतया उन पर पड़ी। उसने उन में से एक व्यक्ति को नेत्र भर कर देखा। उसने अपना खोया धन पाया हुआ समझ कर मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया।

गजेन्द्र ने सुबोध के पास आती हुई पूर्णा को देखा। उसने आज तक नेत्र भर कभी उसे नहीं देखा था। सुबोध ने अपनी छोटी बालिका को देख कर अपना पग आगे बढ़ाया। ममतावश उसे गोद में उठा लिया। पूर्णा अपने प्राणनाथ के चरणों में पड़ गई।

गजेन्द्र पूर्णा के पैरों में पड़ गया। उसने उस के चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाई और बड़े गम्भीर भाव से कहा "माता! क्षमा करो सती साध्वी देवी! मैंने तुम्हारे प्रति घोर अपराध किया है उसे क्षमा करो। मैंने आप को व्यर्थ कलङ्कित किया था। आप से आप के पति का बिछुड़न कराने वाला मैं ही अभागा हूं। मुझे क्षमा करो"।

सुबोध पर भारी प्रभाव पड़ा। उस को ज्ञात हो गया कि किस प्रकार उसकी सती महिला का आभूषण कहारी द्वारा चोरी कराया गया था और किस प्रकार कार्यालय में उस पर मिथ्या-दोषारोपण किया गया था।

विश्वास हो जाने पर सुबोध ने पूर्णा से क्षमा मांगी। अश्रुपात करते हुये उसने कहा "मैंने बिना निश्चय किये तुम्हें परित्याग करके जो कष्ट पहुँचाया है उसे क्षमा करो"।

चार वर्ष पश्चात् पूर्णा का मलिन मुख फिर कमल के समान खिल गया। उस ने अपने भाग्य की सराहना की, परमात्मा को कोटि २ बार धन्यवाद दिया।

इस पूर्णमासी के गंगा स्नान पर सती पूर्णा का भाग्योदय हो गया। उसकी खोई हुई बहुमूल्य सम्पत्ति प्राप्त हो गई। मेला समाप्त होने पर अपने प्राणनाथ के साथ सहर्ष घर लौट आई।

गजेन्द्र सदैव के लिये साधु बन गया। उसने अपना लक्ष्य केवल सती महिमा को जन समुदाय में फैलाना बना लिया। उसी के मधुर गान गाता हुआ आज गजेन्द्र स्वामी गजानन्द के रूप में भ्रमण कर रहा है। इति।

श्री अमरनाथ यात्रा

(पूर्णमासी श्रावण, १९८४ वि०)

[ले०—श्री० प्रो. सांझीराम जी एम. ए. एस. ऑरेगन, अमेरिका]

काश्मीर का महत्त्व जानने के लिये उसकी प्राकृतिक सुन्दरता तथा प्राचीनता का ज्ञान होना आवश्यक है। काश्मीर की घाटी किसी समय एक विस्तृत एवं गम्भीर झील के रूप में थी। कालांतर में कश्यप मुनि ने विशाल गिरिमाला को बारामूला नामक स्थान पर विदीर्ण कर के इस घाटी के जल को शुष्क किया। उन्हीं के नाम से यह प्रदेश काश्मीर कहलाया। यह प्राचीन हिंदू ऋषियों एवं मुनियों की गौरव-स्थली तथा तपोभूमि रह चुका है। वे इसे 'तत्त्वं सर्वं भूम्याम्' इस संस्मरण से याद किया करते थे। जैमिनि पुराण में लिखा है कि पाण्डवों का चौदह वर्ष का अज्ञातवास यहीं हुवा था तथा राजा अश्वरथ का युधिष्ठिर से साक्षात्कार भी यहीं हुवा था। यह स्थान योगियों एवं तपस्वियों को अत्यन्त प्रिय था अतः उनके इष्ट देवताओं की अर्चना के निमित्त यहाँ अगणित देव-स्थान बनाये गये थे तथा इन देव-मन्दिरों में सब भिन्न-भिन्न देवताओं की प्रतिमायें स्थापित की गई थीं। नीलमथ पुराण में लिखा है कि 'पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि काश्मीरमण्डले' अर्थात् इस भूमि पर जितने तीर्थ हैं उतने ही काश्मीर में हैं। राजतरङ्गिणी में भी—जो कि काश्मीर का प्राचीन शृङ्खला-बद्ध इतिहास है— इस बात का उल्लेख है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि काश्मीर देश किसी समय भारतवर्ष के अन्यतम तीर्थों का स्थान था।

भारत की प्राचीन सभ्यता के शान की साक्षियाँ जितनी काश्मीर के खँडरातों से अवगत होती हैं, उतनी अन्य किसी से नहीं। यद्यपि ये खँडरात आजकल काश्मीरी पण्डितों की दृष्टि में उतना मूल्य नहीं रखते जितना कि उन खँडरातों की उत्तम अवस्थिति, उनकी स्थापत्य-कृति की सुन्दरता तथा उनकी प्राचीनता यात्रियों के लिये चित्ताकर्षक होती है। ये मन्दिर किसी समय संख्या में अत्यधिक थे। अबुल फ़ज़ल ने अपने ग्रन्थ में ७०० को संख्या में तो केवल नागों (चश्मों) का वर्णन किया है। ईसा की चौदहवीं शताब्दी में मूर्ति-भञ्जक सिकन्दर ने इन मन्दिरों को नामावशेष करने तथा तलवार के बल पर हिंदुओं को मुसलमान बनाने का बीड़ा उठाया। अपनी ओर [illegible] तो उसने किसी व्यक्ति को भी हिंदू नहीं रहने दिया था परन्तु उसके अपने अनुयायियों तथा नव-मुस्लिमों ने कई ब्राह्मणों को छिपा लिया था। आजकल काश्मीर में इने-गिने जो ब्राह्मण देखने में आते हैं वे या तो इस प्रकार बचाये हुए ब्राह्मणों की संतान हैं या जो उस समय इधर-उधर भाग निकले थे उनकी संतति हैं। सिकन्दर की इस प्रचण्ड धर्मान्धता के निशान अब भी नदियों के बाँधों, मस्जिदों और मुसलमानों के भवनों को नींवों में तथा सम्पूर्ण घाटी भर में जहाँ-तहाँ बहुतायत से मिलते हैं!

ये निशानात उन असंख्य मन्दिरों की सत्ता के साक्षी हैं, जिन्हें काश्मीर के महाराजा दूसरी से दसवीं शताब्दि तक बनवाते रहे थे। अधिकतर

मन्दिर शिव के उपासकों के हैं, जिन में कि शिवलिंग स्थापित हैं।

इन मन्दिरों में से सब से प्राचीनतम मन्दिर शङ्कराचार्य का है जिसे मुसलमान लोग तख़्ते-सुलेमान कहते हैं । काश्मीर के सब मन्दिरों का वर्णन इस स्थान पर नहीं किया जा सकता, परंतु जो मन्दिर श्रीनगर से अमरनाथ के मार्ग में पड़ते हैं उनका प्रसङ्गानुसार कुछ वर्णन इस लेख में किया जायगा।

अमरनाथ-माहात्म्य

अमरनाथ के माहात्म्य के सम्बन्ध में यह कथानक प्रसिद्ध है कि एक बार नारद मुनि जी ने देवी पार्वती जी से पूछा कि हे पार्वति ! तूने जन्म-मरण के दुःख को इतनी देर तक क्यों सहन किया ? जब कि तुम्हारे दिव्य पति महादेव जी जन्म-मरण के बन्धन से सर्वथा मुक्त हैं। इससे पार्वती जी ने महादेव जी को, इस स्थान पर अपनी अमर-कथा कहने के लिये बाधित किया, तब से यह भूमि काश्मीर में सब तीर्थों से उत्तम मानी जाती है। बर्फ़ के लिंग, जो इस गुफ़ा में स्वयमेव बनते हैं उनको महादेव, पार्वती तथा गणेश का अवतार समझा जाता है । प्रतिवर्ष यह स्थान हिम से सर्वथा आच्छादित रहता है। केवल अगस्त मास में ही इसका मार्ग यात्रियों के लिये खुलता है, जब कि यात्री हज़ारों की संख्या में अनपढ़ से लेकर विद्वान तक तथा रंक से लेकर राजा तक देवता के दर्शन के लिये इकट्ठे होकर जाते हैं। इस कठिन यात्रा में कई कमज़ोर आदमी बीच ही में मर जाते हैं और इस प्रकार परमधाम को प्राप्त करते हैं । अमरनाथ की गुफ़ा के प्रथमावलोकन से यात्री पर सहसा एक गम्भीर आतंक छा जाता है। कहीं तो कोई आदमी फिसलता दीख पड़ता है और कहीं कोई उसाँसें भरता नज़र आता है। थकाने वाली चढ़ाई-उतराई साधारण मनुष्य के लिये अत्यन्त कठिन होती है।

यात्रा की तैय्यारी

क्योंकि यात्रियों को कई प्रकार के वायुमंडलों, ढालों तथा वनस्पति-रहित जीव-शून्य पर्वतों में से गुज़रना होता है अतः उन्हें अपने शरीर-रक्षा के लिये पूरी तैय्यारी करनी आवश्यक होती है। घर-गिरस्ती वाले अपने साथ कैम्प का पूरा साज-सामान, सवारी-घोड़े, खच्चर, गर्म कपड़े आदि ले जाते हैं। परन्तु साधु तथा निर्धन लोगों की रियासत तथा धनी लोग सहायता करते हैं। पुलिस, अस्पताल, सेवासमिति तथा रियासत के ऊँचे अफ़सरों के लिये किये गये व्यय के अतिरिक्त १२ सहस्र रुपये निर्धनों की सहायता के लिये प्रतिवर्ष राज्यकोष में से दिये जाते हैं। इस वर्ष यात्रा में तीन लङ्गर साधुओं के वास्ते खुले हुए थे। छड़ी[†] के चलने से पूर्व सड़कों एवं पुलों की भलीप्रकार मरम्मत की जाती है। इतना होने पर भी यात्रियों की रक्षा के लिये आगे और पीछे सिपाही तैनात किये जाते हैं।

छड़ी का प्रयाण

इस वर्ष पञ्चमी के दिन छड़ी-पूजा और आरती के समाप्त होने पर लगभग दो हज़ार मनुष्यों के समूह ने श्रीनगर से अमरनाथ के लिये प्रयाण किया था। जैसे-जैसे छड़ी अग्रसर होती थी, विभिन्न स्थानों पर और भी स्त्री-पुरुष उस में

[†] छड़ी का शब्दार्थ छड़ी ही है, परन्तु इससे गदा का ग्रहण होता है। दो चाँदी की गदायें रियासत की ओर से जुलूस के आगे-आगे चलती हैं, इनसे आगे किसी व्यक्ति को जाने का अधिकार नहीं है। वहाँ के मुहावरे के अनुसार छड़ी से तात्पर्य जुलूस तथा यात्रा के होते हैं।

सम्मिलित होते जाते थे और इस तरह बढ़ते-बढ़ते कोई ५ हज़ार संख्या तक पहुंच गये होंगे। आगे चलने पर मार्ग में श्रीनगर से लगभग ४ मील की दूरी पर एक वर्गाकार मन्दिर और सरोवर भग्नावस्था में पड़े मिलते हैं। इससे एक मील और आगे पाम्पुर—जिसका प्राचीन नाम पद्मपुर है—एक नगर आता है। यह स्थान अपने प्राचीन मंदिरों एवं केसर के खेतों के लिये प्रसिद्ध है। छड़ी का पहला पड़ाव यहीं होता है। अगले दिन यात्रा प्रारंभ करके श्रीनगर से १७ मील दूर स्थित अवन्तिपुर नामक नगर में पहुँचते हैं, जो कि अवन्तिवर्मन् नामक नरेश की राजधानी थी। यह यात्रा का दूसरा पड़ाव है। सन् ८५५ से ८८३ ई० तक अवन्तिवर्मन ने इस प्रदेश पर राज्य किया था। इस स्थान पर हालही में दो भव्य मंदिर खोद निकाले गये हैं।

८ मील और आगे बीजबिहारा नामक नगर है। प्राचीन काल में यहाँ पर एक मन्दिर था, जिसका अशोक ने जीर्णोद्धार किया था, किंतु पीछे से सिकन्दर ने उसको धराशायी कर दिया। प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि यहाँ एक विश्वविख्यात विद्यापीठ था। यह वही पवित्रभूमि है जहाँ के पण्डितों को महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ में पुरोहिताई के लिये बुलाया था। पहले बीजबिहारा के समीप ही विष्णु का एक प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसमें मुसलमानों के आक्रमण से संत्रस्त होकर लगभग ११२० हिंदुओं ने आश्रय लिया था, किंतु अन्त में मुसलमानों ने उन्हें ढूँढ निकाला और मन्दिर समेत उन्हें भस्मीभूत कर दिया।

तृतीय दिवस, श्रीनगर से ३४ मील की दूरी पर अनन्तनाग में हम पहुंचते हैं तथा वहाँ दुपहरिया खाकर कुछ देर विश्राम करके अपनी मञ्जिल का रास्ता लेते हैं। जैसा इसके नाम से प्रतीत होता है यह स्थान अनेक सतत-प्रवाही स्रोतों के लिये प्रसिद्ध है जिन में से मुख्य ४ गंधक के हैं।

तीसरा पड़ाव मार्तंड-तीर्थ—जिसे आजकल मटन कहते हैं—में होता है। किसी समय यह विद्वान् ब्राह्मणों का घर था और अब उनकी सन्तान अमरनाथ के पण्डे बनकर जीवन-निर्वाह करती है। इस स्थान के समीप की पहाड़ियों के ऊपर मार्तण्ड-नहर बहती है, जो काश्मीर में सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित नहर है। ४०० से ४४० ई० के मध्य में राजा रामदेव ने इसको बनवाया था। यह बात विशेषतया जानने योग्य है कि भारतवर्ष में इञ्जिनियरों की दृष्टि से दो ही पहाड़ी नहरें मुख्य हैं। उन में से एक यह भी है। मार्तण्ड के प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष यहाँ विशेषतः दर्शनीय हैं। इन मन्दिरों में से एक प्रसिद्ध मन्दिर का आकार अत्यन्त भव्य है। मन्दिर का मध्यभाग ६ गज़ लम्बा तथा इतना ही चौड़ा है। उसकी अवशिष्ट ऊँचाई १७ फ़ीट है तथा ८४ खम्भे उसकी विशाल छत को धारण करते थे। प्राचीन मन्दिर-निर्माणकला के इन भग्नावशेषों को देखकर यात्री का हृदय सहसा शोक-ग्रस्त हो जाता है। यह इसलिये नहीं कि मूर्तियाँ तोड़ दी गई हैं अपितु पुरातन भारतीय स्थापत्यकला के गौरवमय स्मारकों का विध्वंस कर दिया गया है।

मार्तण्ड से १ मील आगे एक प्राचीन गुफा है। ऐसा कहा जाता है कि यह प्राकृतिक सुरङ्गों में संसार भर में सबसे बड़ी है। रहनुमाई यात्रा नामक पुस्तक के ३४ वें पृष्ठ पर लिखा है कि इस सुरंग का दूसरा मुख चीन में निकलता है। गुफा के मुख से २०० गज़ की दूरी पर आजकल मार्ग बन्द कर दिया गया है। एक साधु जिसने बारह वर्ष तक इसी गुफा में बैठ कर घोर तपस्या की

थी लगभग १ वर्ष पूर्व उसका यहीं देहान्त होगया। कहा जाता है कि एक अँग्रेज़ यात्री ने श्रद्धापूर्वक उसकी अस्थियों को हरद्वार में ले जाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया था। लेखक जिस समय वहाँ पहुंचा गुफा बर्फ़ सदृश ठंडी, घोर अन्धकार में मग्न, पानी से साली हुई तथा चमगोदड़ों से भरी हुई थी। उस गुफा में एक शिवलिङ्ग विद्यमान था तथा पत्थर पर उस साधु का रेखा-चित्र अंकित था। वह साधु उस शिवलिङ्ग की अर्चना किया करता था। यह गुफ़ा हमारे हृदय में सहसा एक आतङ्कपूर्ण भाव को उत्पन्न कर देती है। इसके पास ही एक अन्य गुफ़ा है, जिसे घड़ कर मंदिर का रूप दे दिया गया है। इसका परिमाण २८×२७×१३ फाट है। इस मंदिर में लगभग ६ सहस्र वर्ष पुराना एक शिवलिङ्ग है।

चौथा पड़ाव जनक महल का है। जिसे मुसलमान ऐश-मुकाम कहते हैं। काश्मीरान्तर्गत किश्तवार नामक स्थान के राजा जनक ने एक गुफ़ा के ऊपर एक महल बनवाया था। जिस गुफ़ा में उसने बाद में तपस्या की थी। उसके महल को आजकल मुसलमानों ने मस्जिद बना लिया है। महाराजा की बैरागन (साधुओं की ख़ास लकड़ी) तथा खड़ाऊँ अब भी सुरक्षित हैं। इस महल के अन्दर एक निर्मल जल का झरना झरता है। जलवायु और पहाड़ों की नैसर्गिक सुन्दरता के कारण इस स्थान ने यात्रियों के हृदय में विशेष स्थान प्राप्त किया हुआ है।

जनक महल से आगे हम पहलगाँव में पहुंचते हैं। यह स्थान समुद्र पृष्ठ से ७३०० फीट ऊँचा तथा ग्रीष्म-निवास है। यह ग्रीष्म-निवास अँग्रेज़ों के समय नहीं बना है अपितु प्राचीनकाल में भृगु ऋषि को यहीं ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ था तब से यह स्थान अति पवित्र समझा जाता है। श्रीनगर से ५६ मील की दूरी पर यह स्थित है तथा छड़ी का पञ्चम पड़ाव है। यहाँ मोटर का मार्ग समाप्त हो जाता है। इस स्थान पर छड़ी की शोभा द्विगुणित हो जाती है, क्योंकि यहाँ यात्रियों का ख़ूब जमघट हो जाता है। लम्बोदरी (लिदर) नदी के दूसरे तटपर मामर गाँव है जहाँ एक छोटे से स्रोत के समीप एक प्राचीन मन्दिर अवस्थित है, हाल ही में इसका जीर्णोद्धार हुवा है। इस मन्दिर की स्थिति, बनावट तथा पत्थर की क़िस्म सब उत्तम हैं। ऊपर के कुछ मर्ग (पहाड़ी मैदान) जैसे बैसराम तथा खिन्मत दर्शन के योग्य हैं। वहाँ से हिमालय के बनों की शोभा जिन में हिममयी सरितायें बह रही हैं—बहुत भली दीख पड़ती हैं।

लगभग ५०० स्त्री-पुरुष जिनमें चौथाई संख्या साधुओं की है छड़ी के साथ जाते हैं अब से आगे रास्ता ख़तरनाक है। साढ़े सात मील चल कर अब हम अपने छठे पड़ाव चन्दनवाड़ी पर पहुंचते हैं जो १२००० फ़ीट ऊँचा है। यहाँ ख़ानाबदोश गूजरों के झोंपड़ों के अतिरिक्त किसी मानुषिक बस्ती का पता नहीं। ये झोंपड़े भी गिने-चुने और एक दूसरे से बहुत दूर हैं। गूजर भी केवल गर्मियों में अपने पशुओं को चराने के वास्ते यहाँ आते हैं क्योंकि जाड़े में यहाँ सब बर्फ़-ही-बर्फ़ होता है।

सातवें दिन हम पिस्सु घाटी में पहुँचते हैं। जिसकी दो मील की चढ़ाई बहुत खड़ी और फिसलाने वाली है। यहाँ यात्रियों का सिर चकराने लगता है। इसका कारण कुछ पहाड़ी पौधों की विषैली गन्ध बताई जाती है। ऊँचे स्थानों में ये पौधे ख़ूब फूलते-फलते हैं। चंदनवाड़ी से मील की दूरी पर दूधिया रंग की एक अत्यन्त

सुन्दर झील है—जिसे शेषनाग कहते हैं। यह १२००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है तथा इसके चारों ओर के पहाड़ कुछ बर्फ़ से तथा कुछ बनस्पति से आच्छादित हैं। पुराने बूढ़े शपथ खा कर कहते हुए सुने जाते हैं कि उन्होंने इसी झील में कई बहुमुखी सर्प देखे हैं। इस झील में स्नान करना एक बड़े साहस का काम है, किंतु फिर भी अनेक आदमी इसमें डुबकी लगाते हैं। यहाँ से आगे मार्ग वनस्पतिशून्य तथा कुछ भागों में प्रायः जीवन-शून्य है। इस स्थान से डेढ़ मील आगे वावजन नामक सातवाँ पड़ाव है। यहाँ बड़े ज़ोर की झंझा-वात चलती है तथा यह सबसे अधिक शीत जगह है। यहाँ का जल-वायू जब कि यहाँ तीखी धूप पड़ती है अनिश्चित है। अभी वर्षा हो रही है तो घड़ी भर में धूप चमकने लगती है। ठीक उसी समय सामने कोने पर काली घटा, इन्द्र भगवान् के वज्र फेंकते हुए रुद्र-रूप का दर्शन कराती है।

शेषनाग से आगे की चढ़ाई ४ मील की है जिसमें १६ हज़ार फीट ऊपर पहुँच कर फिर यात्री को पञ्चतरणी नामक पड़ाव के लिये नीचे उतरना पड़ता है। "पञ्च-तरणी" नाम पाँच छोटी-छोटी नदियों के संगम के कारण पड़ा है। यह स्थान १२६०० फीट की ऊँचाई पर है तथा यह यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। यात्री-गण अपना सामान यहाँ छोड़कर आगे अमरनाथ की गुफा के दर्शन के लिए पूर्णमासी के दिन चल पड़ते हैं। यहाँ से गुफा की दूरी तो केवल ४ मील ही है परन्तु भैरव घाटी की चढ़ाई अत्यन्त सीधी तथा भयावह है।

भैरव पर्वत के शिखर पर एक विशाल चट्टान अवस्थित है—जो कि डाम्बेश्वर भैरव के नाम से प्रसिद्ध है—उसकी प्रदक्षिणा करनी होती है। इसके तीन ओर की प्रदक्षिणा तो सुगम है परन्तु चौथी ओर से कई एक यात्री फिसल कर अपने प्राण खो चुके हैं। डाम्बेश्वर चट्टान का माहात्म्य इस प्रकार है कि "एक दिन महादेव जी स्कन्द कुमारजू के साथ खेल में ऐसे मग्न हो गये थे कि उन्हें सन्ध्या काल का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। डाम्बेश्वर जी प्रति दिन नक्कारे पर चोट लगा कर सन्ध्याकाल की सूचना दिया करते थे, परन्तु उस दिन सूचना देना भूल गये। इस परमहादेव जी को क्रोध आया और उन्होंने हमेशा के वास्ते शाप देकर उसे पत्थर बना दिया। जैसी इस पर्वत की चढ़ाई दुर्गम है इसकी उतराई भी वैसी ही कठिन है। सारी उतराई समाप्त हो जाने पर अमरावती नदी को—जो कि बर्फ़ के नीचे ही-नीचे से बहती चली जाती है—पार करके अमरनाथ गुफा दीख पड़ती है।

अमरनाथ गुफा

अमरनाथ की गुफा १३००० फीट की ऊँचाई पर सफ़ेद रंग के जिप्सम नामक पत्थर की एक विशाल चट्टान में बनी हुई है। इसका परिमाण १५०′×१५०′×१५०′ है। यह चारों ओर से १७००० से १८००० फीट ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई है। गुफा की दरारों में कुछ सफ़ेद कबूतर रहते हैं। गुफा के अन्दर सदा बहने वाले कुछ स्रोत हैं जिनका पानी सर्दियों में अपने निकास से बाहिर आते ही जम जाता है परन्तु गर्मियों में सदा बहता रहता है। इन जलों के जमने से क्रमशः शिव, पार्वती, गणेश तथा शिवलिङ्ग की आकृतियाँ बनती हैं। इनमें से शिव, गणेश और पार्वती की मूर्तियों का निर्माण इस प्रकार होता है कि इन तीन स्थानों पर चट्टान में से जल बाहर निकलता है और जिन छिद्रों द्वारा निकलता है उनके मुख पर ही जमता जाता है। इसी प्रकार निकास से

पानी निकलता रहता है और पहिले जमे हुए पानी पर जमता जाता है। इन जल के स्रोतों के जमते रहने से जो आकृतियाँ बनती हैं वे विशेष प्रकार की होती हैं। कट्टर-धर्मान्ध-विश्वासी विचार के लोगों का विश्वास है कि ईश्वर स्वयं इन हिमाकृतियों में मूर्तिमान होता है परन्तु मुझे तो यही समझ आता है कि इन मूर्तियों का आकार अन्यथा बन ही नहीं सकता।

इन मूर्तियों में से शिवलिङ्ग का निर्माण बड़ा ही विचित्र है। इस लिङ्ग के ऊपर छत में से बराबर जल की बूँदे टप-टप गिरती रहती हैं। इस मूर्ति के निर्माण की निम्नलिखित विधि युक्ति-संगत प्रतीत होती है। जब वातावरण अधिक नहीं होता है तब तो जल की बूँदें गिर कर गुफ़ा के फ़र्श पर फैल जाती हैं, और जम कर उस बर्फ़ की तह बना देती हैं। किंतु जब शीत अधिक हो जाती है तब बूँद को इतना समय नहीं मिलता कि वह फ़र्श पर फैल कर जमे—वह गिरते ही उसी स्थान पर जम जाती है। इस प्रकार से बूँद-बूँद जमते रहने से लिङ्गाकृति की मूर्ति बन जाती है। जाड़ों में तो इसका पृष्ठ खुर्दरा होता है, किंतु जब वसन्त ऋतु के आगमन पर बर्फ़ पिघलनी प्रारम्भ हो जाती है तब यह चिकना और चमकदार हो जाता है। डाक्टर अत्रि की "गाइड टु काश्मीर", पंडित दीनानाथ की "रहनुमार काश्मीर" तथा अन्य पौराणिक साहित्य को पढ़ कर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि चन्द्रमा की कलाओं के घटने-बढ़ने का इस लिङ्ग के आकार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इन पुस्तकों में लिखा है कि चन्द्र की कला की वृद्धि के साथ-साथ इस लिङ्ग का आकार भी उत्तरोत्तर बड़ा होता जाता है। अनेक योग्य व्यक्ति भी इस बात में विश्वास करते हैं। इस साल उदयपुर के वकील मुंशी अम्बालाल ने लिङ्ग के निर्माण का स्वयं निरीक्षण करने के लिये, और अपनी पूजा-अर्चना से देवादिदेव महादेव को प्रसन्न करने के लिये यथेष्ट समय पाने के उद्देश्य से पूर्णमासी के एक मास पूर्व से ही अपना डेरा गुफ़ा के अन्दर डाल दिया। पहिले दिन जब उन्होंने पूजा की तब लिङ्ग की ऊँचाई लगभग दो फीट थी। फिर प्रतिदिन उसकी ऊँचाई घटने लगी यहाँ तक कि बीस दिन पश्चात् उसका नामावशेष भी न रहा। इसके पश्चात् जितना भी जल वहाँ टपकता था वह गिरते ही इधर-उधर बह निकलता था, जिससे कि लिङ्ग का पुनः निर्माण हो ही नहीं पाया। सम्भवतः जब तक फिर जाड़ा न पड़ने लगेगा तब तक लिङ्ग का निर्माण प्रारम्भ ही नहीं होगा। यदि पुस्तकों में इस विषय में जो कुछ लिखा है उसे सत्य मान लिया जाय तो यह पहिला ही साल है जब कि लिङ्ग पूर्णतया विलीन हो गया है।

इस समस्त यात्रा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण हमारे नवयुवकों और नवयुवतियों को इसके प्रति आकर्षित होना चाहिये। मैंने अमेरिका हवाई द्वीप, जापान, फिलीपाइन-द्वीपसमूह तथा अन्य स्थानों की सैर की है, और मैं जानता हूँ कि अन्य देशों में अनेक ऐसे स्थान हैं जिन्हें देखने के लिये हज़ारों मनुष्य जाते हैं और जिनकी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषों ने प्रशंसा की है, किन्तु जहाँ तक मुझे पता है संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं है जो पहाड़ी दृश्यों की भव्यता में, नैसर्गिक स्रोतों में, हरे-भरे जंगलों में, दुर्गम गुफ़ाओं में, प्रभापूर्ण हिमराशियों में, तैरते हुए बाग़ों में, प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेषों में, प्राकृतिक अध्ययनों में काश्मीर की समता में रखा जा सके। यदि कोई मुझसे

पूछे कि "पहिले मैं यूरोप की सैर करूँ या काश्मीर की", तो उसे मेरी सलाह तो यही होगी कि "काश्मीर की"। किन्तु यात्रा या तो पैदल होनी चाहिये अथवा घोड़े पर चढ़ कर। इसका कारण निम्नलिखित है—यदि तुम मोटर इत्यादि में बन्द होकर सीधे श्रीनगर पहुँच जाओ; या तुम किश्ती में सवार होकर स्वच्छ और शांत झेलम, डल और बुलर में सैर करो; या तुम निशात बाग़, शाही बाग़, शालामार बाग़, गुलमर्ग़, बारामूला, अवन्तिपुर, अनन्तनाग, मार्तंड की झाँकी ले लो तो भी तुम्हें असली काश्मीर का दर्शन नहीं होगा।

काश्मीर यात्रा की सफलता तो तभी हो सकती है जब कि इसे या तो पैदल किया जाय या घोड़े की पीठ पर से, तीसरा कोई ढंग नहीं है। फिर इसमें भी यात्री का लक्ष्य घनी आबादी की ओर न होना चाहिये। मार्ग में आनेवाले नगरों का उपयोग विश्राम तथा दर्शन के लिये तो हो परन्तु अपना अधिकांश समय गाँव के नज़दीक जंगलों में, पहाड़ियों में और झीलों इत्यादियों के तट पर व्यतीत करना चाहिये। असली काश्मीर वस्तुतः शहरों की सीमा से बाहर-बाहर ही है। कहते हैं कि काश्मीर का जलवायु रोगनाशक, क्षुधा उत्तेजक और रुधिर-वर्द्धक है तो उनका अभिप्राय काश्मीर के होटलों से, किश्तीघरों से, या तम्बुओं के निवास से हरग़िज नहीं होता। वास्तव में उनका मतलब काश्मीर की समस्त घाटी से होता है।

पाठक वृन्द! ज़रा देर के लिये कल्पना कीजिये कि आप काश्मीर की किसी पहाड़ी के पैदल-मार्ग पर जा रहे हैं, पसीना बह रहा है, आपका मार्ग चक्कर खाता हुआ अत्यन्त ढालू पहाड़ी पर चढ़ता है, इतने में आप छायादार हरे वृक्षों के कुञ्ज के समीप पहुँचते हैं—जिसके निकट ही एक झरना है, और अपने जल को इतने वेग से गोल-गोल पत्थरों से टकरा कर झाग निकालता है मानो प्रकृति वहाँ जल-मंथन कर रही है। जिससे आपको यह प्रतीत होता है कि वहाँ की सारी परिस्थिति आपका स्वागत कर रही है, और आपको विश्राम करने के लिये आह्वान कर रही है। आप भी थके-माँदे वहाँ आराम करने के उत्सुक हैं और मखमली हरी घास पर शरीर को खुला छोड़कर लेट जाते हैं। इस प्रकार वृक्षों की सुहावनी छतरी के नीचे जिसकी हरी-हरी पत्तियाँ पश्चिमी वायु द्वारा आप पर चँवर झुलाती हैं आपका अन्तरात्मा ऐसा अनुभव करने लगता है कि मैं ही इस सारी प्रकृति का राजा हूं और वह मेरी सेवा में संलग्न है। उस समय बीसवीं सदी का प्रकृतिवाद असार प्रतीत होने लगता है और ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि—यह विनश्वर स्थूल-शरीर वास्तव में कुछ नहीं केवल भ्रमोत्पादक दिखावा है केवल मैं-ही-मैं विराजमान हूं, जैसे कि स्वप्न में रहने वाला जन्तु ही वास्तविक होता है परन्तु उसके ऊपर का शरीर सिवाय इसके कि वह केवल स्लेट साफ़ करने के काम में आए व्यर्थ मालूम पड़ता है। इतना होने पर भी भौतिक इन्द्रियों से केवल ऊपर का आकार मात्र शरीर ही दृष्टिगोचर होता है और उसके अन्दर रहने वाला वास्तविक जीव अदृश्य हो रहता है। अहा! इस तपोभूमि के लिये हृदय का गुप्त-प्रेम किस अधिक मात्रा में प्रकट होता है। सचमुच उस समय आप भारतवर्ष को अपनी पैतृक और स्वभाव-सिद्ध सम्पत्ति, अपने पूर्व पुरुषों की तपोभूमि और पृथ्वी के हृदय का हीरा-रत्न पाते हैं और उसके

लिये सर्वस्व बलिदान करना भी एक तुच्छ भेंट समझते हैं। आपका अन्तरात्मा अपने आपको इस पवित्र भूमि का सच्चा स्वामी समझने लगता है। और नगर-निवासियों की झूठी देश-भक्ति देखकर अपने आपको उनसे भिन्न श्रेणी में गिनता है।

नवयुवक यात्रियों को चेतावनी

लेखक की सम्मति में नवयुवकों को चाहिये कि काश्मीर जाने के लिये कम-से-कम ५-६ साथियों सहित तैयारी करें। और इस उद्देश्य से चलें कि जहाँ तक हो सकेगा वह अपना काम अपने हाथ से करने को तैयार रहेंगे। यदि इतने नवयुवक एक खच्चर ही ख़रीद लें, जिसको वापिस आने पर फिर बेच भी दिया जा सकता है तो कुछ अनुचित न होगा। पहाड़ी सफ़र में लद्दू खच्चर, घोड़ों तथा गधों की अपेक्षा सस्ता और उपयोगी होता है। कभी घास-पात न मिलने पर भी यह अर्द्ध गधा अपना पेट इधर-उधर के कूड़े-करकट से भर लेता है और फिर भी अपने वज़न से ज़्यादा बोझ पहाड़ों की चोटियों पर ले जाता है। स्काउट यात्रियों को अपना तम्बू आप लगाना, खाना पकाना, कपड़े धोना इत्यादि सब काम खुशी-खुशी से करने चाहिये और जहाँ तक हो सके एकही दिन में पड़ाव ख़तम करने का प्रयत्न न करें। यात्रा में नोटबुक तथा पेन्सिल साथ रखना अति आवश्यक है और जो-जो नवीन प्रतीत हो उसको जैसे-का-तैसा ही लिखना चाहिये। पूर्व-संस्कार प्रायः लेखक को ग़लत रास्ते पर ले जाते हैं, इस समय उन पर ख़ूब ध्यान रक्खें। शहर में पहुंचने पर यदि कोई पुस्तकालय मिले तो उसमें पूर्व यात्रियों के अनुभव का अध्ययन करने से नवयुवकों में एक नया उत्साह तथा ज्ञान होता है। ग्रामों में घूमते-घूमते अपने आपको बिल्कुल निष्पक्ष सेवकों की हैसियत में रखना चाहिये। उनकी ग़रीबी तथा उनकी त्रुटियों पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं करना चाहिये। जब कभी किसी घर में निमन्त्रित हो तो उस समय मिलनसार, प्रेम तथा नम्रता के स्वरूप बनकर दिखाओ। बात करते समय ऐसे शब्दों का प्रयोग करो जिन्हें वे सरलता से समझ सकें। मित्रों की तरह बात करने के लिये यह भी आवश्यक है कि उनके नाम तथा जाति से सम्बोधन किया जाय। ऐसा करने से आप उनके जीवन की सब बातों को समझ सकते हैं और इस प्रकार से मौजूदा लेखकों से भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यदि आपके ऐसे बर्ताव से कुछ मित्र पैदा हो जायँ तो कोई काम जिससे कि उनका कुछ संबन्ध हो उनकी स्वीकृति बिना न किया जाय।

बहुत पुरुषों का यह कथन है कि धनी पुरुष या साधु-अभ्यागत दूर-दराज़ देशों में भ्रमण कर सकते हैं। लेखक की दृष्टि में यह बात बिल्कुल ग़लत है प्रतीत होती है। क्योंकि आजकल के धनी पुरुष इन देखने योग्य पर्वतों में विशेषकर जहाँ मोटर का इन्तिज़ाम नहीं हो सकता नहीं पहुँच पाते और साधू लोगों का पाँव वहाँ तक ही चलता दीखता है जहाँ तक कि इनके भिक्षा-पात्र में कुछ पड़ता रहे। यद्यपि भारतवर्ष के पूर्व पुरुषों ने यात्राओं का बहुत अधिक महत्त्व रक्खा हुआ है तो भी आधुनिक समय में बहुत से योग्य पुरुषों का फुर्सत का समय व्यर्थ नष्ट होता है। प्राचीन इतिहास की ओर देखने से निस्सन्देह सिद्ध होता है कि रामचन्द्र जी आदि पूर्व पुरुषों ने यात्राओं की आकाँक्षा बहुत गंभीरता से की है।

दूर-दराज़ पहाड़ी इलाकों में तो केवल अँग्रेज़-ही-अँग्रेज़ यात्री दिखाई देते हैं। गरमी की छुट्टियों में अँग्रेज़ लोग भारत की प्रत्येक दिशा में, जहाँ उनको ठंडक मिल जाय, जाते हैं। दस रुपये के शिकार पर सैंकड़ों रुपये ख़र्च कर देते हैं। पहाड़ों के फोटोग्राफ़, रास्तों के नक़शे, नये-नये लोगों से परिचय, मिशनरी संस्थाएँ इत्यादि से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं और भावी संतति को भी इसी प्रकार यात्राओं के लिये उत्साह प्रदान करते हैं। यात्रा से न केवल मनुष्य का स्वास्थ्य ही बढ़ता है अपितु वह कठोर, अभय तथा परिश्रमी जीवन का स्वरूप हो जाता है। हमारे विद्यार्थियों को यह बात भलीप्रकार जान लेनी चाहिये कि नवयुवकोंके धर्म के विरुद्ध है कि इस अमूल्य मानव-जीवन में से सबसे उत्तम भाग में अपना फुर्सत का समय नगरों के बाज़ारों में नष्ट करें जब कि वह इस समय को बहादुराना और देशभक्ति पूर्ण भ्रमणों में गुज़ार सकते हैं।

पूज्य प्रभो !

[जगन्नारायणदेव शर्मा, 'कवि पुष्कर' साहित्यशास्त्री]

जगदाधार विश्व के स्वामी।
प्रभुवर अलख अगोचर नामी।
सब की लाज बचाने वाले।
अनुपम दृश्य रचाने वाले ॥ १ ॥

हम महिलाओं की गति देखो!
पतित हो रहीं सुख से लेखो ॥
हमें कुदृष्टि देखते न पापी ।
बल दिखलाते हम पर दापी ॥ २ ॥

अब हम सब को वह बल दीजे !
इतनी दया शीघ्र ही कीजे ॥
अबला बनी न हम दुःख पावें।
निज अधिकारों को अपनावें ॥ ३ ॥

देश–जाति की सेवा साधें ।
धर्म–कर्म के बन्धन बाँधें ॥
पूज्य पिता हम को वर दीजे।
दुर्गुण सदा हमारा छीजे ॥ ४ ॥

परिवर्त्तन

[ले०—श्री० सत्यदेव वर्मा]

आज आदित्यवार था। सब कॉलेज, स्कूल, दफ़तर तथा कचहरियों में छुट्टी थी। बाबू लोग बाज़ारों में सौदा ख़रीद रहे थे, बाज़ारों में भीड़भाड़ थी वैसे भी तो पेशावर फ्रन्टीयर की राजधानी है और बाज़ारों में भीड़ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

बाबू रामशंकर के पुत्र का आज नामकरण-संस्कार था। बाबूजी के घर में स्त्रियाँ गीत गा रहीं थी। प्रातः ६ बजे आर्यसमाजी तरीके से नामकरण-संस्कार आरम्भ हुआ। पुत्र का नाम गोपाल रखा गया। लड्डू आदि बाँटे गये। बड़ी धूमधाम से संस्कार समाप्त हुआ।

बाबू रामशंकर एक अच्छे सेठों में से थे। छोटी-छोटी संस्थाओं को दान देने तथा समाज-सेवा से उन्होंने अपना नाम खूब कमा लिया था। वैसे भी आर्य ख्यालात के थे। उनके दो पुत्र थे, एक महेन्द्र और दूसरा गोपाल। इन दोनों को शिक्षा देने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी थी।

जब गोपाल ६ वर्ष का हुआ तो इन्होंने उसे स्कूल में दाख़िल कर दिया। १६ वर्ष की अवस्था में गोपाल ने मैट्रिक पास की और गवर्मैंट कॉलेज पेशावर में दाख़िल हो गया। दो साल में उसने एफ़. ए. की परीक्षा पास की। अब माता-पिता का विचार हुआ कि पुत्र को आगे क्या पढ़ाना चाहिये। माता तो कहा करती थी कि गोपाल को डाक्टर बनाना चाहिये किन्तु पिता की सम्मति थी कि बी. ए. या एम. ए. पास करा कर प्रोफ़ेसर बनाना चाहिये। इधर गोपाल सोचा करता था कि मैं बी. ए. पास कर इँग्लैंड जा बैरिस्टरी पास करूँगा। यही उसके मन में एक प्रबल इच्छा थी। उसने यह बात अपने माता-पिता को न बतलाई। आख़िर वह पंजाब युनिवर्सिटी की बी. ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। अब उसके पिता ने उसे बैंक का काम सौंप दिया था। गोपाल स्वयं बैंक में जाकर रुपया जमा करा लाता और निकलवा लेता था। इन्हीं दिनों में उसका मित्र "सुभास" बम्बई में रहता था। उसका विचार भी इँग्लैंड जाकर पढ़ने का था। इन दोनों ने पत्रों द्वारा आपस में सलाह कर ली थी कि कौनसी तारीख को चलना चाहिये। एक दिन गोपाल किसी-न-किसी प्रकार से पंजाब नेशनल बैंक से १० हज़ार रुपया ले आया और अगले दिन प्रातः पंजाबमेल से बम्बई को रवाना हो गया। तीसरे दिन बम्बई पहुँचा। सुभास स्टेशन पर उसे लेने आया हुआ था, उसने बड़े आदर सत्कार पूर्वक गोपाल को अपने घर ठहराया। गोपाल ने बम्बई जैसे बड़े शहर को कभी नहीं देखा था अतः उसकी यह इच्छा थी कि वह इस शहर को अच्छी तरह

देखे। चार-पाँच दिन तक सुभास और गोपाल ने बम्बई की खूब सैर की। एक दिन दोनों मित्र बम्बई की नैशनल लाइब्रेरी में अख़बार पढ़ रहे थे। सुभास एकदम एक उर्दू के पत्र को लेकर गोपाल के पास उठ आया और उसे दिखाया। उसमें लिखा था—

५००) रुपये इनाम

मेरा पुत्र गोपाल, जिसने १९२४ में पंजाब युनिवर्सिटी की बी. ए. परीक्षा पास की है और जिस का रंग गन्धमी, दाँये हाथ पर नाम लिखा हुआ है तथा काला कोट, सलवार और क्रिस्ट्रीकैप पहिने हुए है पंजाब नैशनल बैंक से १० हज़ार रुपया लेकर १२ जून की प्रातः से गुम है। जो आदमी उसे ढूँढेगा या उसका पता बतलायेगा उसे ५००) इनाम दिया जायगा।

मेरा पता—

बाबू रामशंकर सेठ

हुंडीवाला

काबुली दरवाज़ा पेशावर।

इसे पढ़ते ही दोनों लाइब्रेरी से बाहर निकल आये। उन्होंनें सलाह की, अब शीघ्र ही इँग्लैंड चल देना चाहिये। दोनों को पासपोर्ट भी मिल गया था। अतः २० जून को दोनों मित्र "पसैफ़िक" नामक जहाज़ से रवाना हो गये।

इधर सेठ रामशंकर ने गोपाल को बहुत ढूँढा किन्तु इसका कहीं पता न लगा। आख़िर माता-पिता ने अपने पुत्र की आशा छोड़ दी। अब सेठजी पर बहुत कर्ज़ा हो गया था क्योंकि १० हज़ार रुपया तो गोपाल उड़ा ले गया था, दिन-प्रति-दिन उनकी अवस्था बड़ी बुरी होती चली जा रही थी। अब उनका एक भूमि के बारे में मुक़द्दमा था। सेठजी ने बड़ा ज़ोर लगाया किन्तु इस मुक़द्दमे ने उनका पीछा न छोड़ा। अनेकों वकीलों के पास गये किन्तु वह इनका मुक़द्दमा न जिता सके। आख़िर दो वर्ष योंही बीत गये। उधर गोपाल भी इँग्लैंड से "बार-एट-ला" की डिग्री लेकर पेशावर आ पहुँचा। उसने अब अपना नाम मिस्टर केदारनाथ रख लिया था। पेशावर में एक बँगला किराये पर लेकर उसने वकालत आरम्भ की। थोड़े दिनों में इनका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया था, इनके पास बहुत से मुक़द्दमे आने लग गये। आख़िर सेठजी ने भी इनको अपना वकील बनाया, थोड़े दिनों में सेठजी मुक़द्दमा जीत गये वह बड़े प्रसन्न हुए। अब सेठजी गोपाल के घर प्रतिदिन आया-जाया करते थे और उनसे सलाह-मशवरा लिया करते थे। गोपाल को तो बहुत पहले पता लग गया था कि यह मेरे पिता हैं किन्तु अभी तक सेठजी को स्वप्न में भी पता न था कि यह वही गोपाल है। एक दिन बातचीत करते हुए गोपाल ने सेठजी से पूछा,—"सेठजी! बतलाइये तो सही आपके कितने बाल-बच्चे हैं।" सेठजी बोले,—"सुनो केदारनाथ, मेरे दो लड़के हैं एक का नाम महेन्द्र और दूसरे का गोपाल। महेन्द्र तो आजकल लाहौर के डी. ए. वी. कॉलेज में पढ़ रहा है। किन्तु महेन्द्र से बड़ा गोपाल था। उसको बचपन में मैंने अच्छी प्रकार पाला-पोसा उसे

बी. ए. तक की शिक्षा दिलवा मैंने उसे अपना बैंक का काम सौंपा था। न जाने उसके मन में क्या पाप आया कि वह १० हज़ार रुपया चालाकी से लेकर कहीं भाग निकला। अब दो वर्ष से लापता है। मैंने उसे बहुत ढूँढा किन्तु उसका कहीं पता न लगा" यह कह कर सेठजी रोने लगे। इसे देखकर अब गोपाल से भी न रहा गया उसकी आँखों से भी आँसू टपक पड़े। थोड़ी देर विचार कर वह सेठ जी के पैरों में गिर कर कहने लगा,—"पिताजी, क्षमा कीजिये मैं आपका वही गोपाल हूँ। जिसको आपने बचपन में पाला-पोसा था और बैंक का काम सौंपा था।" यह सुन सेठ जी आश्चर्य से चकित हो गये। अभी तक उनको विश्वास नहीं हुआ था किन्तु जब गोपाल ने अपने दाँये हाथपर लिखा हुआ नाम दिखाया तो उन्हें अच्छी तरह विश्वास हो गया, पुत्र को गले लगाया और बड़े प्रसन्न हुए मानो अब नया जीवन मिल गया। उसी समय गोपाल अपनी माता को मिलने गया। अगले दिन उसने अपने माता-पिता को ला उस बँगले में रक्खा और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता हुआ तथा समाज-सेवा करता हुआ पेशावर में बैरिस्टरी करने लगा।

बलिदान का बीज

[जगन्नारायणदेव शर्मा, विशारद, साहित्यशास्त्री]

दोहा—गोली से मारे गये, स्वामी श्रद्धानन्द।
किन्तु न इतने से हुआ, शुद्धि-संघटन बन्द॥

(घनाक्षरी)

जाति का महत्त्व है मिटाने से मिटा न कहीं,
पापियों का पाप तो उन्हें ही धर खाता है।
नाम है न होता और काम भी न होता कभी,
व्यर्थ दोनों लोक में कलंक हाथ आता है।
झूठे धर्म धारियों के मन में पड़े से सदा,
क्रोध और द्वेष में अबोध चित्त जाता है।
कहे कवि पुष्कर विवेक से विचार करो,
ज्ञान और कर्म से मनुष्य मुक्ति पाता है।

दोहा—बीज उच्च बलिदान का, होता कभी न नष्ट!
उपजाता जातित्व को, और नसाता कष्ट॥

मेरा मिस हज़कैरी से सम्भाषण

[ले०—श्रीमती अंजनादेवी आर्या वैदिकधर्मविशारदा, सिद्धान्तविशारदा]

मिसहज़ कैरी ने मुझे कल कहा था, कि विक्टोरिया पार्क में मैं तुम्हें मिलूँगी और अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण भी करूँगी अतः मैं यथा समय पार्क में आकर मिसहज़ कैरी की प्रतीक्षा करने लगी। मुझे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। पाँच मिनट में मिसहज़ कैरी की मोटर पार्क के गेट पर आकर खड़ी हो गई, मिस हज़ कैरी ने मोटर से उतर कर आगे पाँव रखा, मैं आगे ही खड़ी थी, दोनों ने हाथ मिलाया, और धीरे-धीरे चल कर एक बैञ्च पर बैठ गईं। मिस हज़ कैरी का मुख उदास देख कर मैंने कहा,—"आप आज कुछ उदास प्रतीत होती हैं।" मिस हज़ कैरी ने बनावटी हँसी हँसते हुए धीरे से कहा,—"अतीत स्मृतियाँ आज उदास बना रही हैं!" मिसहज़ कैरी के शब्दों ने मुझे कल की प्रतिज्ञा को याद दिलाई, मैंने कहा,—"हाँ, मिसहज़ कैरी! अपनी प्रतिज्ञा याद है, जो कल मेरे साथ की थी।" मिसहज़ कैरी ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "हाँ, इसीलिये तो मैं आई हूं, सुनिये!"

"मेरी माँ एक उच्च-वंशीय-हिन्दू की कन्या थी। उनका विवाह हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों की आज्ञानुसार सात वर्ष की आयु में कर दिया गया था, किन्तु माता-पिता की एकलौती पुत्री होने के कारण वह दो वर्ष तक श्वसुर-कुल में नहीं गई थी। मेरी नानी का देहान्त हो गया था, अचानक ही देश में प्लेग फैल गई सारा नगर हाहाकार कर उठा, लोग शहर छोड़ कर भागने लगे। मेरे नाना जी भी अपनी पुत्री को साथ लेकर देहली चले आये। दुर्भाग्य से जहाँ लोग भाग कर जाते वहाँ भी प्लेग फैलने लगता था अतः देहली में आकर अचानक प्लेग हो जाने से मेरे नानाजी की मृत्यु हो गई, गृह में कोई भाई-बहिन नहीं था अतः मेरी माँ पिता के मरने के १५ दिन पश्चात् सुसराल चली गई।

माता-पिता के लाड़-प्यार से पली हुई मेरी माँ सांसारिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ थी, वह अभी विवाह का नाम भी नहीं समझती थी अतः उन्हें नवीन गृह में, नवीन सम्बन्धियों से बहुत-कुछ दुःख उठाना पड़ा। किन्तु यह हिन्दू-नारी के लिये एक सामान्य बात है (यद्यपि इस ईसाई अवस्था में मेरी माँ या मैं उन व्यवहारों को कदापि सहन न करतीं) किन्तु हिन्दू-रमणी इन व्यवहारों को सहन करने में काफ़ी से ज़्यादा शक्ति रखती है। अतः मेरी माँ के लिये यह साधारण बात कही जा सकती है। ईसाई होने का विशेष कारण तो मेरी माँ का वैधव्य काल था। मेरी माँ को श्वसुर कुल में प्रवेश किये लगभग तीन वर्ष होने नहीं पाये थे, जब कि एक दिन अनायास ही दिल की हरकत के बन्द हो जाने से उनके पति का प्राणान्त हो गया। मेरी माता के साथ उनका बहुत स्नेह था। जब भी मेरी माँ को सास आदि के दुर्व्यवहारों से दुःखी होना पड़ता था तब वह माता को बड़े प्रेम से धैर्य दिया करते थे। मेरी माँ उनकी सांत्वना को पाकर शान्त हो जाया करती थी

वह प्रायः कहा करते थे, कि यशोदा एक बार मैं पास हो जाऊँ तो फिर ऐसे स्थान पर जाकर काम आरम्भ करूँगा जहाँ तुम्हें कोई दुःख न दे सकेगा जहाँ तुम रानी बनकर रहोगी। मेरी माता के दिन इसी सुख-स्वप्न में व्यतीत हो रहे थे, कि अनायास उनकी आशाओं पर तुषार फिर गया वह जहाँ खड़ी थी वहीं पत्थर की मूर्ति की भाँति धड़ाम से धरती पर गिर कर बेहोश हो गई। उनके सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा, उनकी जीवन-नौका बिना मल्लाह की भाँति (जो समुद्र में डगमगा रही हो) हो गई, उनको निराशा की प्रत्यक्ष प्रतिमा दृष्टिगोचर होने लगी, दिन और रात उनके रोते ही कटती थी, वह पहले ही अपने दुःख से दुःखी होगई थी, इधर सास ननद आदि का व्यवहार भी पूर्व की अपेक्षा कई गुणा अधिक कठोर हो चला था जो सर्वथा असह्य था। सारा दिन काम करने पर भी उन्हें कभी किसी के स्नेह की आशा नहीं थी। ईसाई प्रचारिकायें ऐसे समय को प्रभु से माँगा करती हैं। अतः मेरी माँ के साथ साथ भी उन्होंने मेल-जोल बढ़ाया, जिसका परिणाम यह हुआ, कि एक दिन समय देख कर मेरी माँ गृह से भाग कर चली आई और ईसाई हो गई। यहाँ आकर उनका पुनर्विवाह किया गया, जिससे मेरा जन्म हुआ।"

मैंने लम्बी आह भर कर कहा-"अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार कर ही आज हम शक्ति हीन हो रहे हैं।" कुछ देर तक हम दोनों चुप रहीं।

सहसा शान्ति को भंग करते हुये मिसहज़ कैरी ने कहा—"पर फिर भी हम सुखी न हो सके यद्यपि उस समय मेरी माँ को ईसाई बना कर ईसाइयों ने बड़ा उपकार किया था और मेरी माँ वास्तव में उस समय सुखी होगई थी पर"—इतना कह कर मिसहज़कैरी चुप होगई मैंने आश्चर्य से पूछा—"पर क्या?" मिसहज़ कैरी बोली-"यही, कि अब हम धोबी के कुत्ते की भाँति न गृह के न घाट के!" मैंने कहा—'क्यों'! वह बोली—हिन्दुओं की दृष्टि में हम अपवित्र हैं, म्लेच्छ हैं, इस लिए उनके धार्मिक कार्य्यों में विवाहों में वैसे ही सम्मिलित नहीं हो सकते, विवाहादि नहीं कर सकते मन्दिरों में जाकर मस्तिक नहीं नवा सकते। और इधर अङ्गरेज़ लोग हम से घृणा करते हैं हमें काला आदमी कह कर पुकारते हैं, वहाँ भी हम उन लोगों के साथ विवाहादि नहीं कर सकते धार्मिक उत्सव सम्मिलित होकर नहीं मना सकते। हाँ, जो लोग विशेष पठित एवं धनवान होते हैं उन के साथ खाना पीना हो जाता है पर वह क्या? जैसे कि हिन्दू लोग भी जो पश्चिमी शिक्षा के रङ्ग में रँगे जा चुके हैं किया करते हैं।

पर उससे क्या हो सकता है, हम दोनों ओर से बहिष्कृत हैं। साधारण प्रकृति के ईसाइयों के साथ तो वह भी दोनों ओर से नहीं हो सकता। वह दिन अङ्गरेज़ मिशनरियों के हमें नहीं भूले जब स्वार्थ के लिए हमारे वस्त्र तक धोने को उद्यत हो जाते थे।"

मैंने धीरे से कहा—"बहिन एक बात कहूँ!" मिस हज़ कैरी ने कहा—"कहिये। क्या?"

मैंने कहा—"अब तो हिन्दुओं में से वह बुराइयां बहुत कुछ निकलती जाती हैं, और निकल जावेंगी अब वह बात नहीं, कि जो धर्म से एक बार भ्रष्ट हो जावे तो पुनः उसे धर्म में न लाया जा सके! हिन्दुओं के धर्म पर प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है, हम लोग आर्य धर्म को सत्य सनातन समझते हैं और उस पर प्राणी मात्र का अधिकार समझते हैं।"

मिस हज़कैरी ने कहा—"ठीक है, होगा। पर अब मुझे किसी पर विश्वास नहीं है, दूर के ढोल सुहावने हुआ करते हैं हमारे में अब एक ऐसी पार्टी बन गई है, जो अपने को न हिन्दू समझती है न ईसाई !" मैंने कहा—"क्या आपका मतलब थियोसोफ़िकल सुसायटी से है !" उसने कहा—"नहीं, हम ऐसे झूठे ढकोसलों को नहीं मानते जो बातें हिन्दुओं की अच्छी हैं, जो ईसाईयों और अंगरेज़ों की अच्छी हैं हम उन्हें लेने का यत्न किया करते हैं और सदा अपनी बुराईयों से दूर भागना चाहते हैं ? फिर न हमें चर्च की अवश्यकता है, न मन्दिर की। धर्म मन्दिरों और चर्चों को चौकीदार सम्भाल रखें ! हमारा मन ही मन्दिर और चर्च हैं ! बहिन बुरा न मानना ! दूर से पहाड़ बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ करते हैं, पर वास्तव में वह वैसे नहीं होते ! मुझे हिन्दुओं पर विश्वास नहीं है। हम आप की शुद्धि को लेकर क्या करें ! जब हमारे विवाहादि सम्बन्ध वहाँ भी स्वतन्त्ररूप से प्रत्येक के साथ नहीं हो सकते तो !"

"यही बात तो हमारी यहाँ है। हमें चर्च में प्रेम से बिठाया जावे पर फिर भी हम अलग के अलग हैं ! हमारे विवाहादि आपस में ही हो सकते हैं। यदि हमारे पास आकर भी यही हो तो फिर व्यर्थ धर्म परिवर्तन से क्या लाभ ! आप बतावें, कि यदि मैं चाहूं कि शुद्ध हो कर आप के परिवार की कन्या से अपने पुत्र का विवाह करूं तो क्या आप उद्यत हैं ?"

मैंने कहा—क्यूं नहीं, ज़रूर पर एक शर्त पर यदि आप के लड़के का गुण कर्म स्वभाव हमारी कन्या के समान हो तो ! इस बात पर मिस हज़ कैरी बहुत ज़ोर से हँसी ! वह हँसी उपेक्षा की हँसी थी, मैंने कहा—"आप हँसती क्यों हैं मैं सत्य कह रही हूं !" मिस हज़ कैरी ने गम्भीरता के साथ कहा—"हाँ बहिन क्षमा करें ! मुझे आप की बात पर हँसी आई है ! मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि दूर के ढोल सुहावने हुआ करते हैं। ख़ैर अब तो देर हो गई है, कल फिर इस समय पर यहाँ आवें मैं आप को अपने हँसने का कारण प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ बताऊँगी ! (अपूर्ण)

प्रेम-पथिक

[श्री० पं० जगन्नारायणदेव शर्मा, 'कवि पुष्कर']

(१)

विकट संकट में टरता नहीं !
कुटिल कण्टक से डरता नहीं ॥
पथिक! है तव कष्टमयी कथा—
सह रहा हठ के वश तू व्यथा ॥

(२)

हृदय में प्रिय का बस ध्येय है ।
सरस सुन्दरता-रस पेय है ॥
भ्रमित भावुक है अनुराग में—
सुख मिला तुझको जगत्याग में ॥

(३)

सुबुध हो कर भी छल में फँसा !
इस लिये बल गौरव है नसा ॥
तप रहा नित ऐहिक ताप से,
विषय लोलुपता वश आप से ॥

(४)

सुन सखे! अब संशय छोड़ दे !
दुखद बन्धन को झट तोड़ दे ॥
विदित है नय-नाशक प्रेम है !
न इसके हित का कुछ क्षेम है ॥

स्त्री-जाति और स्वतन्त्रता

[ले०—श्री० कुमारी सीतादेवी संस्कृत-हिन्दी-विशारदा]

यह संसार परिवर्तनशील है, इसमें नित्य नूतन परिवर्तन होते रहते हैं। इतिहासावलोकन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में वीराङ्गनायें युद्ध में जाती थीं, कई वेदमन्त्रों की व्याख्यात्रियाँ भी स्त्रियाँ हो चुकी हैं। वर्तमान स्त्री-जाति की अवस्था देखकर हमें प्राचीन काल की बातें स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होती हैं। इसमें स्त्री-जाति का किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है। मुसलमानी शासनकाल में ऐसा समय आया जब कि यवनों की क्रूरता तथा दुराचार के कारण एक अल्पवयस्का बालिका भी घर से बाहिर पैर नहीं रख सकती थी। अतः बाल-विवाह इत्यादि प्रथायें भी प्रचलित हो गईं। उसी समय से स्त्रियों में स्वतन्त्रता आदि का ह्रास होता गया। लोग स्त्रियों को अति घृणा की दृष्टि से देखने लगे। तत्कालीन आचार्यों ने "द्वारं किमेकं नरकस्य नारी" यह वाक्य तक कहने में कसर न रक्खी। स्त्रियों को चारदिवारी के अन्दर बन्द रख कर, उनके स्वास्थ्य का सर्वनाश करने में ही पुरुष अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते थे। उस समय कई आचार्य्य हुए, जिनका नाम आज तक स्वर्णाक्षरों में भारतीय इतिहास में अङ्कित है, जिसे आर्य्य-जाति बड़े गौरव के साथ पढ़ती है। उन्होंने भी स्त्री-जाति की शोचनीय दशा को सुधारने का किञ्चिन्मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि संसार से स्त्री-जाति का लोप हुआ ही चाहता है। केवल पुरुष इस संसार-चक्र को चलायेंगे। इस तमोनिशा में दक्षिण दिशा से एक विद्युत्-रेखा चमकी। महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इस जाति के सुधार का भरसक प्रयत्न किया, तथा समानाधिकारों की घोषणा की, इन्हें द्विज-पद प्रदान किया। कई प्रमाणों द्वारा स्त्रियों की महत्ता को दर्शाया। यथा—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्य्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् उपाध्याय से दश गुणा अधिक आचार्य्य होता है, आचार्य्य से सौ गुणा अधिक पिता, पिता से हज़ार गुणा अधिक माता है। तथा—"मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् मनुष्य माता-पिता तथा आचार्य्य की शिक्षा से ज्ञानी होता है, इसमें भी सबसे ऊँचा दर्ज़ा माता का ही रक्खा गया है। इस प्रकार और कई प्रमाणों द्वारा स्त्रियों के प्रति अति सम्मान के भाव प्रकट किये हैं। स्वामीजी की महती कृपा तथा क्रियात्मक प्रेरणा से स्त्रियों की ओर से भी स्वतन्त्रता, शिक्षा तथा समानाधिकारों की माँग होने लगी। इसी प्रकार क्रमशः स्त्रियों में शिक्षा, स्वतन्त्रता आदि का प्रचार होता गया। शिक्षा के अति प्रचार से जनता को स्त्री-शिक्षा तथा स्वतन्त्रता की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अब ऐसा समय आया कि शिक्षित सभ्य-समाज इस बात को सम्यक्तया समझने लगा है कि किसी देश की उन्नति वा अवनति वहाँ की स्त्री-जाति पर ही निर्भर है। आजकल व्याख्यानों

तथा लेखों में भी इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि स्त्रियों को समानाधिकार मिलने चाहिये। उनको पुरुषों के समान ही स्वतन्त्रता तथा विद्याध्ययन की आज्ञा होनी चाहिये। नैपोलियन बोनापार्ट ने भी कहा था कि देश की उन्नति स्त्रियों की उन्नति पर ही निर्भर है। गर्भावस्था से लेकर पाँच वर्ष तक माता सन्तान को जो कुछ सिखा सकती है वह सारी आयु में भरसक प्रयत्न करने पर भी शिक्षक नहीं सिखा सकते। जैसे कुम्हार आवे में रखने से पूर्व स्वेच्छानुसार घड़े को बना सकता है, उसी प्रकार बाल्यावस्था में ही मातायें सन्तान को जैसा चाहें बना सकती हैं। देशोद्धारनिमित्त बलि होने के लिये नवयुवक तथा नवयुवतियों की महती आवश्यकता है। इनको सुयोग्य तथा वीर बनाना स्त्रियों के हाथ में है। अतः सिद्ध हुआ कि भारतोद्धार ही स्त्रियों पर निर्भर है। सन् १९२१ में सत्याग्रह के दिनों में स्त्रियों के सहयोग से कुछ दिनों के अन्दर ही भारत का भाग्य पलट गया था, यद्यपि इससे पूर्व भी देशमें कई क्रान्तिकारी घटनायें होचुकी थीं, परन्तु यह घटना एक अपूर्व घटना थी। स्त्रियों के असहयोग के कारण वर्तमान काल में किसी नेता को भी महात्मा गाँधी के सदृश तुलनातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई। अब भी यदि स्त्रियाँ इस कार्य्य को पूर्ववत् दत्तचित्त होकर करें तो भारत में फिर वही स्वराज्य का आशादायक दिवस कुछ समय में ही आ सकता है, जिसके लिये सारे नेता अपना तन, मन, धन लगा कर भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। स्त्रियों के अन्दर एक विशेष शक्ति है जिससे कि वह जो कुछ चाहें कर सकती हैं। स्त्रियों के सहयोग के बिना भारत का उद्धार दुस्तर ही नहीं, अपितु असम्भव है। इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन समय में भारतीय स्त्रियाँ ही थीं, जिन्होंने शिवा जी सदृश वीर रणधीर पुत्र को उत्पन्न किया। जिस औरङ्गज़ेब ने अपने अत्याचारों तथा क्रूरता से सब के नाक में दम कर दिया था, जिसकी पेचीली चालों से कोई भी विजय प्राप्त नहीं कर सका था, ऐसे म्लेच्छ यवन को अपनी अपूर्व वीरता तथा धीरता से परास्त करने वाला भारतजननी का सुपुत्र शिवा जी ही था। क्या कभी मेवाड़सूर्य, भारत-रत्न, प्रतापी प्रताप की वीरता तथा मातृभूमि के लिये अपूर्वत्याग और देशोद्धार की सच्ची लगन कभी भुलाई जा सकती है। वर्तमान काल में भी निखिल जगत् को अकेला ही परास्त करने वाला भारतमाता की गुलामी की जंजीर को तोड़ने वाला आर्यसमाज का प्रवर्तक महर्षि दयानन्द; सर्वपूज्य नेता, त्यागमूर्ति, मातृभूमि की स्वतन्त्रता का मार्गदर्शक महात्मा गाँधी; देशहितैषी सच्चे सेवक तिलक तथा गोखले जैसे सुपुत्र भारतीय महिलाओं क कोख से ही उत्पन्न हुए हैं। ऐसे पुत्रों की उत्पादिकाओं को भला कौन अबला कह सकता है? क्या आज स्त्री-जाति इतिहासवर्णित वीराङ्गनाओं को भूल गई है, क्या अपनी पूर्व बहिनों का अनुगमन न करके शुभ्रज्योत्स्नासम उनकी अक्षय कीर्ति को कलङ्कित करेगी? राजपूती इतिहास आज भी पूर्व ललनाओं की अपूर्व वीरता की साक्षी देरहा है। यदि किसी समय पुरुष अपने पथ से च्युत भी हो जाते थे तो स्त्रियाँ उन्हें कर्त्तव्यपथ पर दृढ़ रहने का आदेश करती थीं। जिस समय कर्मदेवी का एकलौता पुत्र युद्ध में जाने से घबराता है, उस समय कर्मदेवी उसे उपदेश देती है कि यदि तू युद्ध से पराङ्मुख होगा तो मैं समझूंगी कि तू वीर क्षत्राणी के दूध को कलंकित करता है। हे मेरे वीर पुत्र! युद्ध में जाओ, देखो शत्रु को जीत कर आना, अन्यथा युद्ध में ही

प्राण दे देना। यदि रण से पराङ्मुख होकर घर लौटोगे तो तुम्हारे लिए द्वार बन्द है। ऐसे कायर पुत्र से तो मैं बन्ध्या ही भली हूँ। इसी प्रकार बहिन कर्णावती ने भी कर से तलवार बाँध कर अपने भाई को आशीर्वाद देकर उत्साहित कर के युद्ध के लिये भेजा। स्त्रियों को अबला कह कर पुकारने वाले लोग प्रायः कहा करते हैं कि जहाँ स्त्रियों में शारीरिक बल कम है वहाँ इनका मस्तिष्क भी पुरुषों से वज़न में कुछ औंस कम होता है, तथा बहुत भोगविलास में प्रिय होती हैं, क्या निम्नलिखित घटना उनकी बात को निर्मूल सिद्ध नहीं करती? विवाह के पश्चात् जिस समय पृथ्वीराज भोगविलास में मस्त होकर राज्यकार्य की ओर ध्यान नहीं देता, उधर से शहाबुद्दीन गौरी भारत पर आक्रमण कर रहा है, उस समय संयुक्ता पृथ्वीराज के हाथ में तलवार देकर युद्ध के लिए उत्साहित करती हुई कहती है कि—हे प्राणनाथ संसार में अक्षय कीर्ति को छोड़ कर कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। आज हम पार्थिव शरीर से अनेकों सुख भोग रहे हैं, पर यह एक दिन अवश्य नष्ट हो जायगा। क्षणिक सुख के लिए चिरस्थायी कीर्ति को नष्ट करना उचित नहीं। वीर जन युद्ध में प्राण देने से नहीं घबराया करते। अतः हे आर्यपुत्र! युद्ध में जाओ, अपनी अपूर्व वीरता से शत्रुओं को पराजित करके अपनी अक्षय कीर्ति की रक्षा करो। यदि आप साहस और पराक्रम से मातृभूमि की रक्षा के लिये सहर्ष प्राण त्याग करेंगे तो मैं भी सुखपूर्वक मर सकूंगी। पाठकगण स्वयं निर्णय करें कि इस से स्त्रियों का मस्तिष्क न्यून विदित होता है या पुरुषों का। महाराणी दुर्गावती तथा लक्ष्मीबाई ने तो बड़ी वीरता से युद्ध करते २ प्राण दे दिये। क्या यह घटनायें स्त्रियों की वीरता का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं दे रहीं। अब समय है कि स्त्रियाँ कार्य्यक्षेत्र में आकर विद्वत्ता तथा वीरता से कार्य्य करके अपने कलङ्क को दूर कर पुनः स्त्री-जाति के नाम को उज्ज्वल करें। आर्यकाँग्रेस में स्वीकृत प्रस्तावानुसार सर्व आर्य्यजाति को ही सत्याग्रह में भाग लेना चाहिये, परन्तु स्त्रियों की इस समय विशेष परीक्षा होगी। अब अतिवीरता तथा साहस से कार्य्य कर के दुर्गावती, लक्ष्मीबाई इत्यादि वीराङ्गनाओं के समान अपनी वीरता का परिचय दें। यदि इसी प्रकार की स्त्रियाँ भारत में होंगी तभी देशोद्धार हो सकेगा ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें बल, बुद्धि तथा शक्ति दे, जिससे कि हम इस कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हों।

पाखण्डी

[ले०—श्रीयुत बाँकेलाल जी कपूर कलकत्ता]

(१)

मालती ब्राह्मण-कन्या थी। उसके पिता पण्डित शुकदेव मिश्र ने "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" के कथनानुसार मालती का विवाह अल्पावस्था में ही कर दिया था, किन्तु विधाता से उसका यह सुख-सौभाग्य देखा न गया। मालती पन्द्रह वर्ष में कदम रखते-न-रखते विधवा हो गई। उसकी गोद में डेढ़ वर्ष का एक नन्हा-सा बच्चा था। वही उसकी आशा का अवलम्ब, आँखों की ज्योति, प्राणों का आधार और उसके भावी जीवन का टिमटिमाता हुआ चिराग़ था। किन्तु दैव जिस पर कुपित होता है, उसे सर्वश्रान्त करके भी निश्चित नहीं बैठता, जिसे जलाता है उसे तिल-तिल करके जलाता है। बेचारी मालती का वह सुकुमार नन्हा-सा बच्चा एक ही दिन की बीमारी में जीवन-लीला समाप्त कर चलता बना। मालती को सारा संसार अन्धकारमय दिखाई देने लगा। उसने रो-रो कर प्राण दे देना चाहा, किन्तु अभी तो संसार में अनेक दुःख झेलना बदा था, प्राण भी न निकले।

बच्चे की मृत्यु ने उस पर और भी दुःखों का पहाड़ ढाया। जेठ और देवर उसे कुलक्षणा कहते। देवरानी-जेठानी उस पर रात-दिन वाक्य-बाण बर्षाया करतीं। सुसराल में रहना उसके लिये असम्भव हो गया। वह जीते-जी ही मर चुकी थी, उसने पिता को पत्र लिखा और पीहर चली गई।

(२)

कोई कहीं भी जाय किन्तु भाग्य साथ ही लगा रहता है। भाग्य-रेखा का फल उसे भोगना ही पड़ता है। पीहर में आकर भी मालती सुखी नहीं हो सकी। भाभियों के ताने-तराने ने वहाँ भी रहना दूभर कर दिया। मालती के पिता अपने भरसक प्रयत्न से उसे उनके अत्याचारों से बचाने की चेष्टा करते, किन्तु नौजवान लड़कों और नयी कर्कशा बहुओं के सन्मुख उनकी एक न चलने पाती। अस्तु, यह अत्याचार अबाधगति से चलता रहा। बात बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ी कि एक दिन मालती के छोटे भाई शिवनाथ ने उसे मारपीट कर घर से बाहर निकाल दिया। बात सिर्फ़ इतनी ही थी कि मालती ने शिवनाथ की स्त्री को कुछ खरी-खोटी सुनादी थी। यही उसका सबसे बड़ा अपराध था। शुकदेव मिश्र अपने कमाऊ-पूत के दुर्व्यवहार का खुले कण्ठ से प्रतिवाद भी न कर सके।

मालती पथ की भिखारिणी हो गई।

(३)

डूबते को तिनके का सहारा ही काफ़ी होता है। मालती अपने पड़ोसी सेठ करोड़ीमल के साथ भाग कर कलकत्ते चली आई। सेठजी के यहाँ उसे रोटी बनाने का काम मिला। उसने सोचा कि ख़ैर, पेट भर अन्न और पाँच गज़ कपड़े का तो अभाव नहीं होगा। परन्तु उसे इस अन्न-वस्त्र के बदले में बहुत बड़ी चीज़ देनी पड़ी। करोड़ीमल उसके रूप पर मोहित हो गया और उसे अपनी

प्रेमिका बना लिया। बात दो कान, चार कान, होते-होते सारे समाज में फैल गई। उस बेचारी अज्ञातकुलशीला ब्राह्मणी पर तो कम, पर उस दुराचारी करोड़ीमल पर चारों ओर से धिक्कार की बौछारें पड़ने लगीं। बेचारे को समाज के सन्मुख अपना मुँह दिखाते भी शर्म्म आने लगी।

कुछ दिन इसी प्रकार कटे। मालती को अब अन्न-वस्त्र का कष्ट न रहा। उसके दिन चैन से कटने लगे। परन्तु उसकी आत्मा इतनी पतित हो गई थी कि उसने एक दिन भी नहीं सोचा कि उसे कितना बड़ा अमूल्य धन गँवा कर यह क्षण भर की लौकिक सुविधा प्राप्त करनी पड़ी है।

समय के साथ-साथ इस बात को लेकर जाति-बिरादरी में पैदा होनेवाली हलचल भी धीरे-धीरे दब गयी। संसार पूर्ववत अपनी साधारण गति से चलने लगा। लोग प्रायः इस ओर से उदासीन हो गये। चर्चा बन्द हो गयी।

(४)

कलकत्ते में उस दिन बड़ा जोश था। किसी आर्य्यसमाजी ने किसी सभा में व्याख्यान दे दिया कि विधवाओं का पुनर्विवाह अवश्य होना चाहिये। बस, अब क्या था? ज़मीन हिल गयी, आसमान फट पड़ा, बिना बादल के बिजली कड़क उठी। दुर्भाग्य से उस सभा का आयोजन किसी सनातनधर्मी ने ही किया था; पर उस बेचारे को क्या ख़बर थी कि एक आर्य्यसमाजी भी इस भीड़ में से निकल कर इस प्रकार के विवादास्पद विषय को छेड़कर तूफ़ान खड़ा कर देगा? उस सीधे-सादे सज्जन का नाम था सेठ चम्मनलाल!

सेठ चम्मनलाल बड़े ही धर्मात्मा, दानी, परोपकारी और कट्टर सनातनधर्म्मावलम्बी थे; पर चूँकि उनकी आमन्त्रित सभा में एक आर्य्यसमाजी अण्डबण्ड बातें बक गया, इसलिये उसी बेचारे पर आफ़त ढाने का षड्यन्त्र रचा जाने लगा। इस षड्यन्त्र के रचयिता हुये हमारे सेठ करोड़ीमल जी!

करोड़ीमल ने काशी से एक बहुत बड़े धर्मोपदेशक बुलाकर बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया जिसमें पूर्वोक्त सभा के साथ-साथ सेठ चम्मनलाल की भी ख़ूब निन्दा की गई। ख़ूब तालियाँ पिटीं। पं० जी को बड़ी-बड़ी फूलमालायें पहनायी गईं। पाँच हज़ार की थैली भी पुरस्कार स्वरूप भेंट की गई। उन्होंने गला फाड़ कर वह व्याख्यान दिया कि सोया हुआ धर्म भड़भड़ाकर जग पड़ा।

सभा का आयोजन सेठ करोड़ीमल जी के विशाल भवन में ही हुआ था और वे काशी वाले पंडित जी भी उन्हीं के यहाँ डेरा डाले हुये थे। दो-चार दिन उनका आतिथ्य स्वीकार कर, जगह-जगह दो-चार व्याख्यान देकर पंडित जी काशी लौट जाने को तैयार हो गये। आज दो बजे दिन की गाड़ी से वे घर चले जायेंगे, यह निश्चित हो गया है। सेठ चम्मनलाल के ऊपर तो वे वज्र गिरा हो चले। बेचारा इस अज्ञानकृत अपराध के लिये निरपराध ही जाति-बहिष्कृत कर दिया गया।

(५)

उपदेशक जी आज चले जायेंगे। सबेरे से दल-के-दल लोग उनसे मिलने आ रहे हैं। स्त्रियाँ भी उनके दर्शन कर कृतार्थ हो रही हैं। सब के चले जाने पर अपने घर से निकल कर मालती उनके पास पहुंची और उन्हें एक नन्हें बच्चे की भाँति प्यार करती हुई बोली—"बेटा! अब भला तू मुझे काहे को पहचानेगा? अब तो तू पंडित होकर बड़े-बड़ों को ज्ञान सिखाता चलता है, अब तुझे अपनी बुआ की याद थोड़े ही आयगी?"

पं० जी की भवें तन गईं, नासारन्ध्र फड़क उठे, बोले—"यह क्या हरकत है ? तुम कैसी बातें करती हो ? तुम मेरी बुआ काहे को होने लगीं ?"

मालती—तू उस समय गोद में खेलता था। मैंने वर्षों तुझे अपने इन्हीं हाथों से खिलाया है। मैं तेरे दादा शुकदेव मिश्र की कन्या मालती हूं। तेरा बाप शिवनाथ मेरा छोटा भाई है। तेरे बाप ने जब मुझे घर से बाहर निकाल दिया, तब से मैं अपना जीवन-जन्म, धर्म-कर्म, सबकुछ इसी सेठ के हाथ बेचकर इसकी दासी बनकर रहती हूं।"

× × ×

उपदेशक जी बिना और किसी से मिले-जुले काशी चले गये। उसके बाद ही सुनने में आया, कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली है !

असहाय देवियाँ

[श्री पं० जगन्नारायणदेव शर्मा, 'कवि पुष्कर' शास्त्री]

(१)

देवियों की दुर्दशा है हो रही,
काँप जाती देख कर जिस को मही !
पर हमारी जाति के दृग बन्द है,
या हमारे भाग्य बल ही मन्द हैं ॥

(२)

हैं हमारे अंक से हा ! छिन रही—
मृत्यु की घड़ियाँ विचारी गिन रही।
हम पुरुष फिर भी बने, धिक्कार है !
क्या कहें ! सब बात ही बेकार है ॥

(३)

वे बिलखती हैं हमें क्या ध्यान है !
हानि का किंचित् न होता ज्ञान है ॥
हम रसातल में दिनों दिन जा रहे !
मौन हम कब तक रहेंगे यों गहे ॥

(४)

बन रही हैं द्वेषियों की दासियाँ !
हो रहीं जग में हमारी हाँसियाँ ॥
घर हमारे हीन इन से नस रहे !
या विधर्मी पर इन्हें हैं बस रहे ॥

(५)

हा ! हमारी श्रीमती सह-धर्मिणी !
बन रहीं हत भागिनी दुष्कर्मिणी ॥
दुष्ट इन पर लोभ कर के टूटते—
हैं पतिव्रत हाय ! इन के लूटते ॥

(६)

पर हमीं जीते मृतक हैं हो रहे !
वंश की मर्याद अपने खो रहे ॥
क्यों नहीं अन्यायियों को डाँटते,
और धर कर के गढ़े में पाटते ॥

(७)

क्या ! हमारा आर्य-जीवन गत हुआ ?
या हमारा शास्त्र है अवनत हुआ ॥
जो मनुज हम हैं मनुजता दें दिखा,
उच्चतम साहस खड़े हो दें सिखा ॥

स्त्रियों के अधिकार

[लेखिका—एक देवी]

आज कल हमारी स्त्री जाति अपने धन पर क्या अधिकार रखती है वर्तमान "हिन्दू ला" के अनुसार स्त्रियों को कौन कौन सा धन प्राप्त है वह पाठकों के सन्मुख रखती हूं इस के पश्चात् आपको पता लगेगा कि "ला" के अनुसार क्या स्त्रियों को यह सब प्राप्त है। यदि नहीं प्राप्त होता तो इस का क्या कारण है । और साफ ही साफ यदि "ला" हमें कुछ अधिकार देता है, तो वह स्त्रियों से कौन छीनता है और क्यों छीना जाता है। और हमें पुनः प्राप्त करने का क्या उपाय करना चाहिये । यदि हम पुराने शास्त्र कारों के शास्त्रों का निरीक्षण करने बैठें तो हमें पता लगेगा, कि केवल कात्यायन को छोड़ कर बाकी मनु और विष्णु आदि शास्त्रकारों ने १० प्रकार के अधिकार माने हैं।

१. वह जो विवाह के समय प्राप्त !

२. गौने के समय प्राप्त !

३. श्वसुर कुल में जाते ही बड़ों की बन्दना से प्राप्त !

४. पिता द्वारा अन्य प्रकार का दिया हुआ धन!

५. माता का दिया हुआ धन ?

६. भ्राता से प्राप्त धन ! विष्णु चार और भी धनों को स्त्री धन मानते हैं।

७. जब पति दूसरा विवाह करें ? और पहली को प्रसन्न करने के लिये जो दे !

८. विवाह के पश्चात् किसी सम्बन्धी से प्राप्त

९. शुल्क कई तरफ रिवाज है कि विवाह से पहले पिता अपनी पुत्री के लिये कुछ धन लिखा लेता है, अथवा जब वृहद विवाह होता है, या एक स्त्री के जीते जी दूसरा विवाह होता है, तो पिता पुत्री के लिये या तो इकट्ठा कुछ धन लेता है, या मासिक !

१०. पुत्र या किसी अन्य सबन्धी से दान स्वरूप प्राप्त !

कात्यायन केवल साधव्य अवस्था में स्त्री धन को स्त्री धन नहीं समझते उन के मतानुसार कौमारावास्था में और वैधव्य में वह धन स्त्री धन कहलाते हैं । जो कन्या या विधवा कमावें या किसी से प्राप्त करें वह धन भी स्त्री धन मानते हैं।

इसी प्रकार कई शास्त्रकार हो चुके हैं, और उन के शास्त्रों का प्रभाव समय समय पर "ला" पर रहा है। किन्तु इन सब में से विचारणीय बात यह है, कि वर्त्तमान "हिन्दू ला" किन शास्त्रों का अधिक सम्मान करता है । और निर्णय किन शास्त्रों के आधार पर हुआ करते हैं । प्रोवी कौन्सिल आज कल प्रायः मनुस्मृति-स्मृति-चन्द्रिका-व्यवहार मयूख-दाय भाग मिताक्षरा का ही विशेष सहारा लिया करती है । पर इन सब के होते हुए भी एक बात और याद रखने योग्य है। कि विशेष अवस्थाओं में इनके विपरीत भी निर्णय हो जाया करते हैं । यह सब पुस्तकें अपने-अपने प्रान्त में माननीय हैं। पञ्जाब और यू. पी. में एक ही "ला" माना जाता है। मैं अन्य प्रान्तों को छोड़ कर पञ्जाब प्रान्त को ही लेती हूं। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है, कि

समय पर शास्त्रों से भी बढ़कर रिवाज़ों की कदर की जाती है। रिवाज़ प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न हैं। जैसे देहली में कास्तगरों के विवाहिक नियम कुछ और ही हैं, तो ऐसे साधनों पर उनके रिवाज़ों की एक पुस्तक ही अधिक बनायी गई है, और ऐसे स्थानों पर निर्णय भी रिवाज़ों के अनुसार ही होते हैं। इसी प्रकार पञ्जाब के अन्तर्गत कई प्रकार के पृथक् पृथक् रिवाज़ हैं यदि कोई मनुष्य यह सिद्ध कर दें ! कि हमारी तरफ दूसरे ही प्रकार का रिवाज़ है, तो फैसला रिवाज़ के अनुसार ही हो जायेगा। जैसे कि पहले १० धनों को गिना आई हूं ? वह सब वर्तमान "ला" के अनुसार (यदि उस में पृथिवी अथवा मकानादि न हो) वह सब स्त्री धन कहलाते हैं। और स्त्री को यह पूरा हक है, कि वह इन को ले सके। जैसे विवाह के समय प्राप्त वस्त्राभूषण आदि ! पञ्जाब में बहुत स्थानों में रिवाज़ है, कि जब कन्या प्रथम वार श्वसुर कुल में प्रवेश करती हैं, तो बड़ों को नमस्कार करने पर सम्बन्धानुसार उसे कोई रु० कोई सात रुपये देता है और कई आभूषण भी देते हैं ! रुपयों की गिनती सम्बन्धानुसार न्यूनाधिक हुआ करती है। "हिन्दू ला" के अनुसार उस धन पर किसी का अधिकार नहीं होता, स्त्री चाहे उसे जिस प्रकार भी व्यय करे। और किसी को व्यय करने का अधिकार नहीं होता। हमारी भोली बहिनें समझती हैं, कि यदि यह धन अभी से हमने अपने अधिकार में रखना आरम्भ किया तो लोग मुझे लोभिन आदि कहेंगे। वह चुप चाप वह धन सास के हाथ में दे दिया करती हैं। उस समय कहने को कह दिया जाता है, कि इस धन से तुम्हें आभूषण बनवा देंगे ! किन्तु यह सब कहने को ही होता है। और शायद कई बनवा भी देते हों, परन्तु आम तौर पर वह धन पुनः लड़की के दृष्टि गोचर नहीं होता कई स्थानों पर रिवाज़ है कि पहिली वार लड़की ससुराल जाती है तो वह ससुरगृह के भीतर तभी प्रवेश करती है, जब ससुर या सास किसी आभूषण के बनवा देने की प्रतिज्ञा करें। या कुछ रुपया देने की प्रतिज्ञा करें। किन्तु कहने को कह दिया जाता है, और शायद सौ के पीछे पाँच लड़कियों को वह धन प्राप्त हुआ करता है, और कई तो उसी समय कह दिया करते हैं, कि सारा गृह इसी का है, उस की इच्छा है जो बनावे। या करे ! किन्तु क्या सारा गृह उस कन्या का हो जाता है, कभी नहीं। इसी प्रकार दहेज प्रथा है, जो विवाह के समय कन्या को दिया जाता है, उस पर "ला" के अनुसार यद्यपि पूरा हक स्त्री का होता है, तथापि कन्याओं को प्राप्त नहीं होता। यहाँ तक कि वर्ष के भीतर यदि उससे अधिक वस्त्र धारण किये गये हैं तो बाकी उसे दिये ही नहीं जाते। वर्ष के भीतर क्या ? कन्या को प्रत्येक समय यह भय रहता है, कि कहीं सास-स्वसुर वस्त्रों के लिये कुछ कहें नहीं ! जो वस्त्र वह पिता से विवाह के समय दहेज मान कर लाती है वह भी इसलिये रख लिये जाते हैं, कि दूसरे लड़के के विवाह में लड़की को यही दे दिये जायेंगे। इसी प्रकार आभूषण भी हैं। यथा समय पुत्र के या पुत्री के विवाह पर वह भी लगा दिये जाते हैं, और कह दिया जाता है, तुम्हें सब दे दिया जावेगा, किन्तु कहां मिलता है। दिखाने के लिये लोगों के मांग कर वस्त्राभूषण सुसराल वाले कई समय पर लड़की को दे देते हैं किन्तु जब लड़की घर पहुंची तो न वस्त्र रहे ! न आभूषण। और तो और रहा, यदि स्त्री कमा रही है ! और वह धन घर में इकट्ठा ही रखा जाता है, पृथक् किसी बैंक में जमा नहीं किया जाता, तो समय पर वह भी स्त्री धन नहीं

रहता, वह भी पुरुष का हो जाता है। मुसलमानों के "ला" के अनुसार मुसलमान लड़की को पिता की जायदाद का शायद चौथा हिस्सा मिल जाता है, किन्तु "हिन्दू ला" में इसका भी विधान नहीं है। यदि किसी पुरुष के मर जाने पर उसकी विधवा रह जाती है, और वह पुरुष लाखों की जायदाद छोड़ कर पुत्रहीन मरता है, तो विधवा केवल निर्वाह के लिये आयु पर्यन्त धन ले सकती है, यदि उसकी पुत्री है तो उसके विवाह के लिये, पठन पाठन के लिये धन ले सकती है, किन्तु "ला" के अनुसार जायदाद पर उसका कोई हक नहीं। पति के मकानों में रह सकती है, आमदनी ले सकती है किन्तु खास हालतों को छोड़ कर बेच नहीं सकती। वे विशेष हालतें इस प्रकार हैं। यदि उसने पति का श्राद्ध करना हो, पिण्ड देना हो, पिण्ड देने के लिये तीर्थ यात्रा करनी हो, स्वजात पुत्री का विवाह करना हो, पति के सम्बन्धियों के विवाह के समय यथा रिवाज़ कुछ देना हो तभी पत्नी जायदाद को बेच सकती है। नहीं तो अपने किसी कार्य्य के लिये उसका कोई अधिकार नहीं। एक स्त्री का पति शुद्धाचरण स्त्री को छोड़ कर पुनः विवाह करता है, तो "ला" के अनुसार स्त्री पुरुष पर डिगरी प्राप्त करके धन ले सकती है। जब तक वह शुद्धाचरण रहेगी उसका हक होगा कि वह पुरुष से निर्वाह मात्र के लिये धन प्राप्त करे। हां एक हालत में पृथिवी भी स्त्री, धन हो जाती है, जब उसके निर्वाह के लिये उसे किश्तों के हिसाब से मासिक अथवा एक बार ही इकट्ठा धन या पृथिवी निर्वाह के लिये दे दी जाती है किन्तु वह भी संप्रदायों के अनुसार चाहे यह धन साधव्य अवस्था में दिया हो अथवा वैधव्य अवस्था में। ऐसी अवस्था में यह धन उसके उत्तराधिकारियों को मिलता है। आगे देखिये। जैसे एक पिता के पश्चात उसके पुत्र का पूर्ण अधिकार है कि वह उस जायदात का स्वामी बने और उसी प्रकार पीढ़ियों तक चलता जावे, यह नियम स्त्रियों में लागू नहीं है। यदि स्त्री खास २ अवस्थाओं में बेच, तोड़ भी सकती है। तो यद्यपि वह धन या जायदात पीछे पुत्री को मिलती है, परन्तु वह उसे किसी भी अवस्था में बेच तोड़ नहीं सकती क्योंकि धर्मशास्त्र के अनुसार उसे न पिता का श्राद्ध करना है न पिण्डदान ही देना है। यदि देना भी हो तो इस से विधवा को और विधवा की पुत्री को क्या लाभ हो सकता है। और यदि निर्वाह से प्राप्त धन बचा हुआ माता का पुत्री को मिलता है तो वह सामान्य धन माना जाता है स्त्री-धन नहीं। पुरुषों की तरह पीढ़ी पर पीढ़ी नहीं चलता। इससे यही सिद्ध होता है कि "हिन्दू ला" के अनुसार हमारा हक न पति की जायदाद पर है, न पिता की जायदाद पर ही हैं। जो अधिकार हमें अपनी प्राप्त हुई सम्पत्ति पर है, वह भी हमारे सम्बन्धी हम से छीन लेते हैं, यद्यपि यह अधिकार हमें जन्म सिद्ध है, और "हिन्दू ला" की आज्ञानुसार हमें प्राप्त है। अब दूसरी ओर देखिये। "हिन्दू ला" के अनुसार अथवा धर्मशास्त्रों के अनुसार एक पुरुष को अपनी सुन्दर, युवा तथा शुद्धाचरण स्त्री के होते हुए भी अनगिन विवाह करने की आज्ञा है और दूसरी ओर यदि इसी बात को कुछ पलट दिया जावे कि एक स्त्री यह देख कर अपना अधिकार जमावेंगी और जबरदस्ती लेने की चेष्टा करेंगी तभी हम अपने मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकेंगी। और प्रत्येक बहिन के वर्णगोचर यह बात हो जानी चाहिये। इस के लिये जैसे भी कोई सहूलियत समझती है प्रचार करें। टैक्सों द्वारा, समाचारपत्रों द्वारा, पुस्तकालयों द्वारा व्याख्यानों द्वारा, भजनों द्वारा कई तरीके

हैं जहां भी चार पांच स्त्रियां सम्मिलित हों वहां ही इस की चर्चा होनी चाहिये । ताकि हमारी स्त्री जाति भी कुछ-कुछ पददलित होने से बच सके । "हिन्दू ला" के अनुसार स्त्री पुरुष के समानाधिकार होने चाहियें । यह तभी हो सकता है, जब पहले हम प्राप्त धन पर अधिकार जमायें और फिर बाकि बातों में भी हस्ताक्षेर करें ।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

संध्या की अन्तिम किरण

[रचयिता—श्री 'प्रियहंस']

ले चली विदा हो सजनि !
कहाँ किस ओर ?
किस जगती के कुंज वनों में
जा उतरोगी ?
कर दोगी प्रभात वेला यों
मृदुमुस्क्यान बखेर !
इधर क्या डालोगी न निगाह ?
यहाँ भी खड़ा हुआ है 'एक'
हृदय में भर कर आह ।
तुम्हीं सा उतरा था जग बीच
बचपन का रख रूप
उषा की प्रथम किरण सा ।
वह था माया जाल,
अनोखे जादूगर का
उसी के पास चली हो आज
कहने को निज व्यथा अनन्त ?
वहीं का मैं बना फ़कीर
चलो फिर साथ, कटेगी राह
उसी पगडन्डी पर चुपचाप
क्षितिज की ओर !
कभी तो पहुँच मिलेगा योगिन !
उस छलिया के द्वार !!

आर्यों ! बदला लो !!

[ले०—श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री वैद्य]

बदला लेना और देना ज़िन्दा क़ौमों का स्वभाव है। जो क़ौम दोस्त को दोस्ती का और दुश्मन को दुश्मनी का ठीक बदला नहीं चुका सकती उस पर थू है। वह नामर्दों की जाति है और वह यदि दुनियाँ में जीती है तो झख मारती है।

स्वामी श्रद्धानन्द मार डाले गये ! बूढ़े और रोगी, लाचार और साधु, किस लिये ? इस बात को सोचो ! जब तुम अपने स्त्री-बच्चों से हँसने-खेलने लगो तब सोचो, जब एक घूँट पानी पीने लगो तब सोचो, जब आराम से सोने लगो तब सोचो, और तब तुम देखोगे कि इस ख़ून का बदला लेना तुम्हारे लिये कितना ज़रूरी है, और बिना बदला लिये तुम्हें एक साँस भी लेनी—तुम्हारी ग़ैरत के लिये मुनासिब नहीं है।

सार्वजनिक न्याय और शान्ति-रक्षा के नाम पर बदला लेना तुम्हारे लिये इन्सानियत के लिहाज़ से ज़रूरी है, और एक प्रशान्त धर्मोपदेशक के नाते बदला लेना तुम्हारे आर्यत्त्व के नाते ज़रूरी है। इसी प्रकार एक बूढ़े रोगी असहाय की हत्या का बदला लेना तुम्हारी युवक-वीर-आत्मा के लिये स्वाभाविक है।

पर बदला लोगे किससे ? अभागे हत्यारे से ? इस भावना का मन में आना भी घृणित है, यदि हमें बदला लेना ही है तो इस्लाम से लेना है। हम यह साहस पूर्वक कह सकते हैं ऐसा भयानक धर्म—जो ऐसे कमीने, हत्यारे पैदा कर सकता है दुनिया से जितनी जल्दी नष्ट हो उतना ही अच्छा।

धर्म के अन्धों ने कुछ शताब्दियों पूर्व मसीह के पवित्र नाम पर लाखों बेगुनाह नर-नारियों का ख़ून बहाया था। और उसके बाद इस्लाम की तलवार के आगे पृथ्वी का कोई देश न बचा था जिसने अपने बच्चों के ख़ून से लतपत शरीर तड़फते न देखे हों। अगर यूरोप के शेर इस्लाम के तूफ़ान को ज़मीदोज न कर देते तो आज इस्लाम की नारकीय हवा से जगत् के परित्राण पाने का क्या उपाय बचता ?

क्या धर्म ऐसी वस्तु है जो आत्मा के ऊपर अत्याचार करे ? धर्म तो वह है जो अमर आत्मा के असल रूप को प्रकट कर नश्वर शरीर को अमरत्व प्रदान कर सकता है। लाखों वर्षों बाद आज मानव जीवन का स्रोत शायद अपने उस स्वातन्त्र्य की पुनरावृत्ति कर रहा है जो उसके मनुष्यत्त्व को पशुत्व से पृथक् बनाता है। इस विकास युग में प्रवाहवाद अब क्यों ज़िन्दा रहे ! सदैव ही शान्ति और व्यवस्था से प्रथम क्रान्ति उत्पन्न हुआ करती

है, प्रकृति में आँधी के बाद शीतल जल के छींटे पड़ते हैं, व्यवस्था का जो युग आने वाला है उसके प्रथम एक क्रान्ति अवश्यम्भावी है। माण्डलिक जीवनों का भविष्यरूप प्रकाण्ड सामूहिक जीवन है। ब्रह्माण्ड भर के मनुष्य निकट भविष्य में एक समूह होंगे। वे प्रथम मनुष्य होंगे पीछे और कुछ। इस महाविधान में जो अन्धजातियाँ प्रयत्नशील हैं वे तो चकनाचूर होनी ही चाहियें। यह बात निर्विवाद है कि इस्लाम ही एक ऐसी जाति है जिसमें विवेचना और विकास की ज़रा भी गुंजायश नहीं है। उसमें यह भारी दोष है कि वह न केवल अपने विश्वासों पर अटल है किन्तु वह हर तरह सारी पृथ्वी को बलपूर्वक अपने विश्वासों के आधार पर नचाया चाहती है। कहना पड़ेगा कि हिन्दू भी कट्टरपन और अन्धविश्वास में कुछ कम नहीं हैं—परन्तु वे जगत् पर बलात्कार नहीं करते।

आर्यसमाज एक क्रान्ति का प्रारम्भ है, और प्रत्येक आर्य क्रान्ति का देवता है, अन्धविश्वास, मानवीय पराधीनता को नष्ट करके विकास और ज्ञान के प्रकाश में मनुष्यों को जीवित रखने के विधान बनाना और उन्हें समाज में सफलता पूर्वक प्रचारित करना—उसका एकमात्र धर्म है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या एक चेतावनी है, जो आर्यों को सावधान करके कहती है, तुम जिस गुरु के शिष्य थे, उसने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" कहते-कहते प्राण त्यागे। पर तुम अपनी दलबन्दी के कीचड़ में पड़े उस बालब्रह्मचारी के नाम को लजाते रहे! यह रक्त की लाल झण्डी कहती है ठहरो! और सोचो कि तुम क्या आर्य हो? समझो और कर्तव्य का पालन करो।

इस ख़ून का बदला लो। ऐसा कि तुम चाहे संसार में रहो या न रहो—पर ऐसे कायर ख़ून कभी न हों। और यह तब होगा जब कि तुम इस्लाम को आर्यत्व की काया पलट कर दोगे। और यही तुम्हारा—तुम्हारी प्रतिष्ठा को सजाने-योग्य, बदला होगा।

सामाजिक क्रान्तिके इतिहास का एक पृष्ठ

(एक सच्ची घटना के आधार पर)

[ले०—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार]

(१)

कार्नवालिस स्ट्रीट
कलकत्ता
१२ जून १८५६.

प्रिय मित्र रौबर्ट,

तुम समझते होगे कि मैं यहाँ बड़े आनन्द में हूँ, परन्तु तुम्हारी यह धारणा नितान्त अशुद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि हम मिशनरियों के साथ भारत सरकार का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण होने के कारण हम लोग बहुत से कष्टों से छुट्टी पा जाते हैं, तथापि इस देश के दुःखित निवासियों की सहायता करते हुए हमें बहुत से कष्टों का सामना करना पड़ता है। सबसे बड़ी आफ़त यह है कि ये लोग हमारी सेवाओं का मूल्य ही नहीं समझते ; इतना ही नहीं, साथ ही ये मूर्ख हमें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अगर तुम्हें कभी खुद इस मुल्क में आने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुवा तो तुम स्वयं ही हमारी दिक़्क़तों को समझ जाओगे।

आज मैं तुम्हें एक विशेष मतलब की चिट्ठी लिखने लगा हूं। मेरा यह आन्तरिक दृढ़ विश्वास है कि धर्म के दार्शनिक या आध्यात्मिक पहलू की दृष्टि से भी संसार का कोई भी धर्म हिन्दू-धर्म का मुक़ाबला नहीं कर सकता। साथ ही समाज के त्यागभाव तथा आचार की शुद्धता की दृष्टि से भी संसार की कोई सभ्यता भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता का मुक़ाबला नहीं कर सकती। परन्तु सदियों की गुलामी तथा दूसरे कुछ कारणों से हिन्दू लोगों में कुछ ऐसी बिमारियाँ घर कर गई हैं, जिनकी बदौलत हिन्दू-धर्म और अधिक देर तक अपनी सत्ता कायम नहीं रख सकता।

मेरी यह बात पढ़ते-पढ़ते शायद तुम ऊब गये होगे। मैं जानता हूँ कि तुम एक बहुत स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति हो। परन्तु जिस कारण आज मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ उसे जानकर तुम मेरा अभिप्राय भली प्रकार समझ सकोगे।—इस देश की स्त्रियाँ प्रायः अशिक्षिता हैं, वे सरलता से किसी भी बात पर विश्वास कर लेती हैं। उनकी हालत गुलामों से कुछ विशेष अच्छी नहीं है। मेरा विचार है कि किसी प्रकार हम लोग अगर हिन्दुओं के इस कमज़ोर पहलूपर अपना कुछ प्रभाव डाल सकें तो भारत में ईसाइयत की जड़ शीघ्रता से और मज़बूती के साथ कायम हो सकती है। इसी उद्देश्य से मैंने हिन्दू-घराने की एक लड़की को खुद लिखा-पढ़ा कर तैयार किया है। इसका जन्म मैसूर रियासत में हुवा था। लड़की के पिता एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे ; उनका देहान्त हो चुका है। लड़की का नाम रमाबाई है। उसकी उम्र लगभग १८ बरस की है। वह बड़ी होनहार प्रतीत होती है। मैं चाहता हूं कि वह इङ्गलैण्ड में उच्च-शिक्षा प्राप्त करके फिर इसी देश में ईसाइयत का प्रचार करने में हमारी

सहायता करे। इसीलिये मैं शीघ्र ही इस लड़की को इङ्गलैण्ड भेजने वाला हूं।

यह तो तुम जानते ही हो कि हज़ारों मील दूर से इस लम्बे-चौड़े देश पर बिना अपनी सभ्यता फैलाये हम लोग शासन ही नहीं कर सकते हैं; अतः मैं आशा करता हूं कि "धर्म" के नाम से घृणा करते हुए भी तुम इतना अवश्य करोगे कि इस लड़की पर पूरी तरह निगरानी रखते हुए इसके आचरण और इसकी प्रवृत्तियों से मुझे समय-समय पर सूचित करते रहो। रमा तुम्हारे घर में ही ठहरेगी।

पत्र का उत्तर शीघ्र देना। रमाबाई अगस्त मास के अन्त तक इङ्गलैण्ड पहुँच जायगी।

तुम्हारा स्नेही सुहृद—
पी० केनिन

(२)

ट्रैफालगर स्क्वेअर
लण्डन
१७ सितम्बर १८५९

प्रिय मित्र केनिन,

उन दिनों जब कि हम दोनों एक साथ पढ़ा करते थे, मैं सदा तुम्हारे धार्मिक भावों की हँसी उड़ाया करता था। मैं कहा करता था कि वे लोग जिन्हें सारी दुनियाँ अधर्म और नाश की ओर जाती हुई दिखाई देती है—सबसे अधिक अभागे हैं। वे अपने को बहुत उच्च समझ कर शेष दुनियाँ के लोगों को घृणा के योग्य समझते हैं। वे गम्भीरता पूर्वक दुनियाँ को एक ऐसे मार्ग पर चलने का उपदेश करते हैं जिसे कि वे खुद भी नहीं समझ रहे होते। आज इस भारतीय कन्या को देख कर मेरी वह धारणा और भी अधिक दृढ़ हो गई है। मैं इस कन्या को देख कर बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ; यह गम्भीर स्वभाव वाली भारतीय कन्या जिसके अङ्ग से नम्रता, सौजन्यता और गम्भीरता टपकती है—कौन सा नया धार्मिक भाव सीखने के लिये यहाँ भेजी गई है, इसे मैं बिल्कुल नहीं समझ सका। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह कन्या इस देश की कन्याओं को अपने आचार की पवित्रता द्वारा बहुत कुछ सिखला सकती है। तुम मुझे लिखते रहे हो कि भारतीय स्त्रियाँ कायर, मूर्ख और दास हृदय की होती हैं, परन्तु इस भारतीय कन्या को देख कर मैं इससे सर्वथा विपरीत परिणाम पर पहुँचा हूं। मेरी सम्मति में इस होनहार कन्या को व्यर्थ के धार्मिक आडम्बरों में डाल कर तुम इसका जीवन नष्ट कर रहे हो। अगर तुम इस कन्या को कोई उच्च-शिक्षा देने के लिये यहाँ भेजते तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती। परन्तु मैं तुम्हारे इस कार्य में कोई दखल नहीं देना चाहता। अपने धार्मिक पादरी मित्र की आज्ञा शिरोधार्य है। तुम्हारे निर्देशों का यथासम्भव पालन करता रहूंगा।—अपने खुदा से मेरे लिये भी थोड़ी सिफ़ारिश कर देना।

तुम्हारा वही दोस्त—
एच० रौबर्ट

(३)

ट्रैफालगर स्क्वेअर
लण्डन
२५ सितम्बर १८५९

प्रियवर भाई जी,

सादर प्रणाम.

मैं यहाँ आनन्द पूर्वक हूँ। केवल एक बात ही मेरे कष्ट का कारण बनी हुई है, वह है आपका वियोग। इसके अतिरिक्त यहाँ और कोई कष्ट नहीं है। मैं माननीय रौबर्ट के यहाँ ठहरी हुई हूँ; यह

एक बहुत उच्च विचारों और स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष हैं। इनके उदार विचारों से मैं बहुत प्रभावित हुई हूँ।

यह देश बहुत महिमाशाली है। मुझे यहाँ आकर प्रथमवार मनुष्य की महत्ता का अनुभव हुवा है। मनुष्य अपने उपजाऊ दिमाग़ की मदद से यहाँ तक उन्नति कर सकता है। यहाँ लोगों में सचमुच जीवन प्रतीत होता है; सब लोग चुस्त-चालाक हैं; कोई भी आलसी या निकम्मा प्रतीत नहीं होता। किसी के मुँह पर उदासी या निराशा के भाव प्रगट नहीं होते, ये लोग चलते तो इस प्रकार हैं कि मानों कहीं आग बुझाने जा रहे हों।

एक बात पर यहाँ आते ही मेरी दृष्टि पड़ी है—मुझे यहाँ धार्मिक शिक्षा लेने के लिये भेजा गया है परन्तु इस देश के निवासियों में धर्म-भीरुता के भाव मुझे बिल्कुल प्रतीत नहीं होते। ये लोग धर्म के प्रति बिलकुल उदासीन जान पड़ते हैं; गिरजों में लोग केवल शौकिया ही जाते हैं, धार्मिक भाव भरने के लिये नहीं। खुद माननीय रौबर्ट को मैंने आज तक कभी "धर्म" या "चर्च" का नाम लेते तक भी नहीं सुना। अस्तु; फिर भी मेरा विश्वास है कि यहाँ की जीवित-जागृत सभ्यता के प्रसार से मेरी अभागिनी मातृभूमि का बहुत कुछ उपकार हो सकेगा।

लिखने को तो बहुत कुछ है, परन्तु अध्यापिका के आने का समय हो गया है, यहाँ के निवासी समय-पालन में बड़े पक्के होते हैं; इसलिये यह पत्र समाप्त करना पड़ रहा है। अपने समाचार विस्तार से अवश्य लिखना; आपके पत्रों की उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करती हूँ।

आपकी प्यारी बहिन—
रमाबाई

(४)

चर्च रोड मद्रास
६ जून १८६१

प्रिय मित्र रौबर्ट,

तुम अपने पत्रों में सदैव मेरे विचारों की हँसी उड़ाते रहे हो। तुम्हारा यह विश्वास रहा है कि मैं न केवल अपना जीवन ही व्यर्थ नष्ट कर रहा हूँ; परन्तु दुनियाँ के बहुत से मूर्खों को बहका कर उन्हें गुमराह कर रहा हूं। तुम धर्म को एक तुच्छ और हेय वस्तु समझते हो। मैं तुमसे इस विषय पर वाद-विवाद करने से सदैव घबराता हूँ। परन्तु आज मुझे अपने परिश्रम का सुफल मिलना प्रारम्भ हो गया है इसलिये मैं अब साहस के साथ इस सम्बन्ध में तुम्हें दो-एक पाठ पढ़ा सकता हूँ।

आज से छः वर्ष पूर्व जब मैंने रमा को इङ्गलैंड भेजा था, तुमने मुझे लिखा था कि मैं उसका जीवन नष्ट कर रहा हूँ। आज इतनी प्रतीक्षा के बाद मैं तुम्हारे उस आक्षेप का पूरी तरह जवाब देने लायक हो गया हूँ। आज वही रमाबाई अपनी जाति का ख़ूब उपकार कर रही है। भारतीय स्त्रियों में से अन्धविश्वास निकाल कर वह उन्हें ईसू का पवित्र मार्ग दिखला रही है। हिन्दू-जाति की दुःखित और अत्याचार पीड़ित विधवाएँ उसके आश्रम में आकर शान्ति प्राप्त करती हैं, वह उन्हें अन्धकार में से निकाल कर दिन के प्रकाश में लाती है। वह केवल अपनी जाति का ही उपकार नहीं कर रही; वह जिस गहराई से हिन्दुओं में ईसाइयत का बीज बो रही है, उतनी गहराई से हम जैसे सैंकड़ों धर्म-प्रचारक मिलकर भी कभी न बो सके थे। इस कार्य के द्वारा भारतवर्ष में अँग्रेज़ी-राज्य की जड़ों को स्थिर कर रही है। मुझे विश्वास है अगर

इसी ढंग से कार्य होता रहा तो ५०, ६० वर्षों में सारा भारतवर्ष ईसाई-धर्म स्वीकार कर लेगा।

तुम सात समुद्र पार बैठे हुए ताने मारना तो ख़ूब जानते हो, कभी खुद यहाँ आकर इस देश के अभागे निवासियों की हालत अपनी आँखों से क्यों नहीं देख लेते। तमाशा तो यह है कि इस बुरी हालत में भी ये लोग धर्म के नाम पर लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। इन दस सालों में तुम दस बार अमेरिका की सैर कर आए हो, एकबार तो यहाँ भी दर्शन दे जाओ। यहाँ के मज़े निराले हैं, यहाँ आए बिना तुम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

तुम्हारा स्नेही—
पी० केनिन

(५)

वनिता आश्रम
मङ्गलौर
२१ नवम्बर १८६८.

मान्यवर भाई जी,
सादर प्रणाम.

कुछ दिनों से एक बड़ी भारी समस्या सामने आकर खड़ी होगई है। उस समस्या के कारण बहुत दिनों से व्यवस्था-पूर्वक चले आते हुए कार्यक्रम में व्यवधान पड़ने लगा है। जिसे अब तक जीवन का उद्देश्य मानती रही हूँ, वही अब एक भ्रम-सा जान पड़ने लगा है। पहले जब मैं किसी बहिन को ईसाई-धर्म में सम्मिलित करती थी, तब मुझे यह सोचकर आत्मिक आनन्द प्राप्त होता था कि मैं एक आत्मा को अन्धकार से प्रकाश में लाई हूँ, परन्तु अब कुछ दिनों से यह कार्य करते हुए मुझे एक विशेष प्रकार का सन्देह भयभीत कर रहा है।

इस विकट समस्या का कारण एक विचित्र और तेजस्वी सन्यासी है। मैं उसे वर्तमान युग का आचार्य और ऋषि समझती हूँ। इस ऋषि का नाम तुमने सुना ही होगा। यद्यपि मुझे अभी तक उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुवा तथापि पत्रव्यवहार द्वारा मैं उनसे कुछ परिचिति प्राप्त कर चुकी हूँ। उनकी मुझ पर बड़ी कृपादृष्टि है। इसी तेजस्वी समाज-सुधारक ने मेरे विचारों में तीव्र क्राँति उत्पन्न करदी है। जो सभ्यता इस अवस्था में स्वामी दयानन्द जैसी महान आत्माओं को जन्म दे सकती है, वह कदापि हेय नहीं हो सकती।

अधिक क्या लिखूँ? आज हृदय अशान्त है। मेरे पितृसम पूज्य केनिन महोदय जी अब मुझ से कुछ नाराज़ प्रतीत होते हैं। कुछ सूझ नहीं रहा है। परन्तु यह तो निश्चित ही है कि अब हिन्दू-धर्म में मैं वापिस नहीं जा सकती।

आपकी स्नेहमयी भगिनी—
रमा

(६)

ताजमहल होटल
बम्बई
३ मई १८६९

प्रियमित्र रौबर्ट,

तुम बड़े हठी हो, तुम्हें इतनी बार निमन्त्रण दिया, परन्तु तुमने कभी यहाँ आने का कष्ट नहीं किया, ख़ैर, तुम नहीं आये, न सही। मैं स्वयं शीघ्र ही तुम्हारे कान खींचने को लण्डन आरहा हूँ। आगामी जून मास के मध्य में मैं लण्डन पहुँच जाऊँगा।

बहुत बड़े अरसे के बाद अपनी मातृभूमि के दर्शन करने के लिये प्रस्थित हुवा हूँ। यहाँ के हालात बहुत नाज़ुक हो गए हैं। मैंने एक बार तुमको लिखा था कि अब ५०, ६० साल के अर्से में सारा

हिन्दोस्तान ईसाई हो जायगा, परन्तु अब यह बात असम्भव होगई है। इस गुलाम क़ौम में भी, न जाने किस प्रकार, एक तीव्र ज्योति उत्पन्न हो गई है, जो हम लोगों के बुझाए बुझ नहीं सकती। यह ज्योति हिन्दुओं के एक साधु में प्रकट हुई है। इस साधु का नाम दयानन्द है, मैंने इस विचित्र शक्ति वाले साधु को अपनी आँखों से देखा है। इसमें सचमुच एक आकर्षण है ; इसकी ज़बान में जादू है, आँखों में ज्योति है। इसके शरीर से ब्रह्मचर्य और पवित्रता की आभा टपकती है। केवल हम लोग ही नहीं, हिन्दू-मुसलमान सभी इसके दुश्मन हैं ; परन्तु मुझे विश्वास है कि हम तीनों के सम्मिलित उद्योग से भी यह ज्योति दब नहीं सकती। इस प्राणी के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से वहीं आकर बताऊँगा।

अब थोड़े समय के लिये बिदाई दो।

तुम्हारा स्नेही—
पी० केनिन

(७)

मद्रास.
६ फरवरी १८७०

श्रद्धेय स्वामी जी,

सादर प्रणाम.

आप का कृपा पत्र प्राप्त हुआ। उसे पढ़ कर हृदय में उत्साह और नवजीवन की बिजली सी दौड़ गई। आप की विद्वत्ता की मैं पहले से ही कायल थी, अब आप की एक तुच्छ भक्त बन गई हूं। अगर आप जैसे दो चार महात्मा इस अभागी हिन्दू जाति में और पैदा हो जांय तो यह मृतप्राय जाति संसार की सर्वश्रेष्ठ जातियों में शिरोमणि हो उठे। धन्य है वह संस्कृति, जो आप जैसे पवित्र महात्मा को जन्म दे सकती है।

अभाग्य से मेरा जीवन जिस ढंग पर ढाला गया है वह आप के सिद्धान्तों से सर्वथा प्रतिकूल है। मैं इस मार्ग पर बहुत आगे बढ़ आई हूं; अब लौटना लगभग असम्भव है। फिर भी मैं पूरी शक्ति से अपना जीवन आप के दिखाए मार्ग पर ढालने का यत्न करूंगी।

अनुग्रहाभिलाषिणी
रमाबाई

(८)

कलकत्ता
२७ फरवरी १८७०

चिरञ्जीव रमाबाई,

आप का पत्र प्राप्त हुआ। आप ने मेरी प्रशंसा में जो वाक्य लिखे हैं, मैं अपने को उन के योग्य नहीं समझता। तथापि आप की मंगल कामनाओं के लिये धन्यवाद। मुझे आप के जीवन का इतिहास जान कर आप से बहुत सहानुभूति होगई है।

मुझे इस बात का हर्ष है कि आप मेरी तुच्छ सेवाओं का इतना आदर करती हैं।

मेरी ईश्वर से यह विनम्र प्रार्थना है कि वह आप को सत्य का प्रकाश दे और आप अपने देश की अभागिनी बहनों की सेवा कर सकें। अगला पत्र उदयपुर के पते से लिखना।

आपका शुभचिन्तक—
दयानन्द सरस्वती

ईश्वर का नाम जपना

[लेखक—श्री कृष्णानन्द जी]

ईश्वर का नाम जपने की अपेक्षा संसार का उपकार करना श्रेष्ठ है। जो लोग केवल नाम ही जपा करते हैं और आत्मोन्नति वा परोपकार नहीं करते वे कर्तव्यभ्रष्ट अथवा संसार में भाररूप हैं। हां जो पूर्ण विरक्त हो, विश्वप्रपंच से या पापपुण्य से कुछ वास्ता न रखता हो अथवा गृहस्थों का अन्न न खाता हो वह यदि नित्य निरन्तर ईश्वर का नाम जपा करे तो कदापि निन्दनीय नहीं और उससे संसार की लेश भर भी हानी नहीं। परन्तु संसार में रहकर "केवल नाम जपना और अन्य धार्मिक कार्यों को न करना" धर्म वा न्याय की दृष्टि से प्रशंसनीय वा कल्याणकारी नहीं है। बहुत से लोग नाममाहात्म्य के भरोसे दुष्कर्मों को नहीं त्यागते। नाममाहात्म्य के विश्वास पर दुष्कर्म करना बड़ी धृष्टता और नीचता है। यह कभी नहीं हो सकता कि नाम जपने से पाप का फल न मिले। जाप से पापका फल टल नहीं सकता। विचार कीजिये, कोई झूठ बोल कर, चोरी या व्यभिचार कर के राम नाम जपने लगे तो इससे क्या उन कर्म्मों का फल नहीं मिलेगा? आप विचार कीजिए कि कोई आदमी आप से बेईमानी करके या आपको धोखा देकर नाम नाम जपने लगे तो क्या आप उसका विश्वास करने लगेंगे? राम नाम के जापसे यदि आप पाप कट जाना मानते हैं तो जो आदमी आपकी वस्तु चुरा कर या आपको ठग कर रुपया वसूल करके राम जपने लगे तो उसे आप क्यों नहीं क्षमा कर देते? क्योंकि जाप के प्रताप से उनका पाप तो कट गया, फिर इसमें आपको शंका या अविश्वास करने की क्या आवश्यकता? कोई पुरुष किसी स्त्री से व्यभिचार करके दोनों गंगास्नान कर लें तो इस सिद्धान्त के अनुसार दोनों को क्षमा कर देना चाहिए। गंगा की धारा यदि सचमुच पाप काटने की आरा है तो जो लोग व्यभिचार करके गंगास्नान कर लेते हैं, इस विश्वास के विश्वासी लोग उन्हें क्यों नहीं क्षमा कर देते? गंगास्नान से पाप दूर हो जाने में तो सन्देह रह ही नहीं गया फिर क्यों क्रोध करते वा दण्ड देते हैं? यदि आप कहें कि इन नियमों से बड़ा गड़बड़ होगा, तो ठीक इसी प्रकार ईश्वर के भी नियम कुछ भिन्न ही हैं। उसका ऐसा नियम नहीं है कि पाप करने वाला जाप करे तो पाप न मिले। नाम जपने का दूसरा फल है और पाप करने का दूसरा फल है। उसके यहां अदलबदल नहीं होता कि अन्याय वा अधर्म करके नाम जपने लगे तो पाप क्षमा हो जाय। जैसे पुस्तक पढ़ने का अन्य फल है और खाने पीने का अन्य फल है। यदि कोई खराब वस्तु खाकर पोथी पढ़ने लग जाय तो यह नहीं हो सकता कि खाई वस्तु का प्रभाव न पडे। ठीक इसी प्रकार नामस्मरण वा गंगास्नान का अन्य फल है। और पाप करने का अन्य फल है। महात्माओं ने

जो नाम की महिमा लिखी है उसका तात्पर्य यह है कि लोग ईश्वर का नाम जपेंगे तो ईश्वर की ओर मन लगेगा जिससे अन्याय और अधर्म्म को त्याग देंगे। उनका यह आशय कदापि नहीं है कि लोग ईश्वर का नाम भी जपें और दुष्कर्म भी करें तो मुक्ति मिले। उनका यही आशय है कि नाम जपें परन्तु दुष्कर्मों को सदाके लिये त्याग दें तब अवश्य कल्याण होगा। जहां कहीं यह लिखा है कि नाम जपने से अमुक पुरुष ने सद्गति पाई वहां ज़रा बुद्धि से विचार कीजिएगा तो पता लग जायगा कि उस पापी ने सच्चे हृदय से पश्चाताप किया और सच्चे प्रेम से ईश्वर का नाम जपा और पापकर्मों को सदा के लिये छोड़ दिया तब उसकी उन्नति वा सुदशा हुई। आपको किसी ग्रन्थ में ऐसा उदाहरण नहीं मिल सकता जिसमें कोई व्यक्ति नाम जपता हो और पाप भी करता हो और उसे सद्गति मिली हो। हमको चाहिए कि सांसारिक दृश्यों और घटनाओं पर ध्यान देकर ईश्वरीय नियमों के जानने का यत्न करें। ईश्वरीय नियमों को जान लेने पर भ्रम वा संदेह नहीं हो सकता। ईश्वरीय नियमों को जानने वाला सब बातों को ठीक ठीक परख सकता और सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है। जो ईसाई ईसा पर विश्वास रखने का दम भरता हो पर ईसा के उत्तम गुण प्रेम, दया और उदारता से रहित हो अथवा इंजील के उपदेश के विरुद्ध निष्ठुरता और अन्याय से अन्यों की सम्पत्ति और भूमि को हरण करता हो तो क्या वह ईसा का भक्त वा सच्चा ईसाई कहलाने योग्य है? कदापि नहीं। जो मुसलमान अल्ला अल्ला चिल्लाता हो या रसूल और कुरान पर ईमान रखने का दावा करता हो लेकिन खुदा के उत्तम गुण रहम करम और इंसाफ़ को तथा रसूल के उत्तम गुण शिष्टता और सौजन्य को न धारण करे और कुरान के सदुपदेश के विरुद्ध बेरहमी, बेइन्साफी और जुल्म में लगा रहे तो क्या वह खुदा का बन्दा या सच्चा मुसलमान कहलाने का अधिकारी है? कदापि नहीं। जो पुरुष हनुमान का भक्त बनता हो पर उनके उत्तम गुण ब्रह्मचर्य को न धारण करे अथवा एक पत्नीव्रत न करें तो क्या वह हनुमान का भक्त कहा जा सकता है? नहीं। जो "शिव शिव" जपता हो परन्तु शिव जी के उत्तम गुण एक पत्नीव्रत, परोपकार और योगाभ्यास को न धारण करके व्यभिचार, अपकार और दुर्व्यसन में लिप्त हो तो वह शिव का सच्चा भक्त नहीं कहला सकता। जो 'कृष्ण कृष्ण'' रटता हो पर श्री कृष्ण के अमृतोपम उपदेश (गीता के ज्ञान) से बिलकुल शून्य हो अथवा अन्याय वा परपीड़ा में रत हो तो क्या उसे श्रीकृष्ण का सच्चा भक्त कह सकेंगे? कदापि नहीं। जो 'राम राम' नित्य जपता हो पर उनके सच्चरित्रों का अनुकरण न करता हो तो क्या वह श्री राम का सच्चा भक्त कहलाने योग्य है? कदापि नहीं। ऐसे ही भक्तों के लिए महात्मा तुलसीदास जी कह गए हैं—वंचक भक्त कहा राम के, किंकर कंचन कोह काम के।

* * *

सुखी जीवन की प्राप्ति

[ले०—श्री ज्ञानचन्द्र शास्त्री.]

सकल संसार पर दृष्टि डाल जाइये, प्रत्येक जीव के हृदय में सुखी जीवन प्राप्त करने की तथा अपनी आत्मा को शान्त रखने की इच्छा सदैव विद्यमान रहती है। कीट पतंगे से लेकर साधारण मनुष्य और अमीर वज़ीर, राजे महाराजे तक सभी प्राणी अपने प्राणप्रिय जीवन को दुःखों से रहित बनाने का प्रयत्न किया करते हैं। धन कमाना, आरोग्य रहने का अवलम्बन करना, कुटुम्ब की वृद्धि की उत्कटाभिलाषा रखना, और धर्म के कार्यों में योग देना इत्यादि सब कार्य सुख प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति करने वाले समझे जाते हैं। जिन व्यक्तियों का विश्वास है कि मानव जीवन अनन्त है और उस का अन्त वर्तमान ज़िन्दगी की समाप्ति के साथ ही नहीं हो जाता, वह लोग अपने भविष्य जीवन को सुखी बनाने का कुछ न कुछ प्रयास किया ही करते हैं। जन्मान्तर अथवा परलोक के विषय में लोगों का भले ही विवाद हो, किन्तु वर्तमान तथा विद्यमान जीवन को शान्तिपूर्ण बनाने का लक्ष्य मनुष्य जाति के सभी सम्प्रदायों का है। यहाँ हम कुछ संकेत उन उपायों की ओर करेंगे जिन का अवलम्बन करने से परलोक में प्राप्त होने वाले सुख इहलोक अर्थात् इस जन्म में ही प्राप्त हो सकें। इस के साथ ही साथ यह बता देना भी अनुचित न होगा, कि उपर्युक्त मार्ग से चलने पर यह न होगा कि केवल इसी ज़िन्दगी में मनुष्य सुखी हों और उस का परलोक बिगड जावे। कदापि नहीं, लोक और परलोक दोनों के कल्याण को सिद्ध करना ही मनुष्य का पुरुषार्थ है। इसीलिये यहां जिन जिन बातों का उल्लेख किया जावेगा उन के द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा।

सुख और दुःख के वास्तविक कारणों को विचारने से विदित होगा कि यथार्थ में यह दोनों मन के भाव हैं। लोग पदार्थों को सुख और दुःख के देने वाले समझते हैं और उन्हें दृढ़ विश्वास है कि संसार के भीतर पीड़ा और प्रसन्नता के कारण एक मात्र पदार्थ ही हैं, परन्तु ऐसा समझना नितान्त भ्रम का मूल है। यदि सचमुच पदार्थ ही सुखदायी अथवा दुःखदायी होते तो धन को कोई मनुष्य कभी छोड़ने के लिये कभी तय्यार न होता। परन्तु हमें दिखाई देता है कि कई मनुष्य उसे अनिष्टकर समझ तृण की भाँति त्याग देते हैं। इसी प्रकार जो वस्तु किसी एक मनुष्य को सुखदायी है वही दूसरे को दुःख का कारण हो जाती है। वास्तव में बाह्य पदार्थ केवल दुःख के कारण मात्र ही हैं सुख और दुःख मानना यह मन का धर्म है। जङ्गल में रहने वाले चरवाहे थोड़ा सा धन और आडम्बर प्राप्त न होने पर भी आनन्दपूर्ण नज़र आते हैं और बड़े बड़े सेठ साहूकार लाखों का द्रव्य पर्याप्त प्राप्त होने पर भी दुखी रहते हैं। इस से स्पष्ट है कि सुख अथवा दुःख यह अपने मन के ही भाव हैं, उस की सम्पत्ति हैं। यदि आत्मा शुद्ध बलवान् है तो बाहरी अनिष्ट सामग्री के उपस्थित होने पर भी वह सुखी

और शान्त रह सकता है। यदि चित्तदुर्बल है, पापवासनाओं से पूर्ण और शंकाओं से क्षुब्ध है तो उसे स्वर्ग में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण सुख के इच्छुक विचार शील मनुष्य अपनी आत्मा को उन्नत बनाने का सदैव यत्न किया करते हैं।

तनिक विचारिये आत्मा क्या वस्तु है ? दर्शनशास्त्र का बाल की खाल निकालने वाला तर्क उसे चाहे जो सिद्ध करे, और बड़े २ धुरन्धर विज्ञ चाहे जितनी मत्थापच्चो करें परन्तु बुद्धि के द्वारा विचारने से मालूम होता है कि मनुष्य के विचार और कार्य्यों के समूह का ही नाम आत्मा है। इस के अतिरिक्त आत्मा और कोई वस्तु है अथवा नहीं इस का बोध होना कठिन ही नहीं, वरन असम्भव है। जैसे विचार और कार्य्य हैं वैसा ही आत्मा है। यदि विचार और कार्य नीच हैं तो आत्मा भी नीच और दुर्बल होगा। यदि विचार और कार्य्य उन्नत और सुशील हों तो आत्मा भी बलवान् होगा। इसीलिये जो अपनी आत्मा को उन्नत करना चाहते हैं जो अपने मन को दृढ़ बनाना चाहते हैं उनका मुख्य कर्त्तव्य है कि वह अपने विचार और कार्य्यों की सम्भाल रक्खें, उन पर नियंत्रण का अंकुश रक्खें, निज चरित्र गठन, मनोबल, पुण्य, उन्नति और धर्म सभी इस उपाय के भिन्न भिन्न नाम हैं। इस प्रकार से आत्मा स्वच्छ विशुद्ध और बलवान होता है।

अब यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है और कई लोग समझते होंगे कि "जिस आत्मा को हम देख नहीं सकते, जिस का हमें अनुभव नहीं है उस की उन्नति का उपाय करना क्या हमारी शक्ति के भीतर होगा ? ऋषि मुनि लोगों से भले ही यह काम बन सके, परन्तु विविध प्रकार के सांसारिक कार्यों में फंसे रहने पर क्या अस्मादृश साधारण जन भी इस महान् कार्य्य को सम्पादन कर सकते हैं" अपने तईं इस प्रकार शक्तिसत्त्वविहीन समझ लेने का दोष बड़े २ महात्माओं में भी पाया जाता है। बेचारे जनसाधारण को इस के लिये हम दोषी नहीं ठहरा सकते। आत्मविश्वास होना भी तो आत्मा की उन्नति का फल ही है। परन्तु ज़रा सोचो तो सही, तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ वह भगवान् अनन्त शक्तिशाली, सच्चा परमेश्वर क्या नहीं कर सकता। उस की अनन्त शक्ति को भूल कर ही तुम आज पंगु बन रहे हो। देखो, विचार करो और उद्योग करो। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिस को तुम न कर सको, अपनी आत्मा की उन्नति कर लेना तो कोई बात ही नहीं। यदि एक बार भी दृढ़ निश्चय कर के तुम स्वर्ग का दरवाज़ा खोलने का प्रयत्न आरम्भ कर दो तो थोड़े ही समय में तुम अवश्य सदेह स्वर्ग में भी पहुंच सकोगे।

कार्य रहित, निश्चल और सुखी जीवन में पड़े पड़े लोग आलसी और डरपोक हो जाते हैं, शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये जो यत्न किये जाते हैं उनका आनन्द ऐसे मनुष्यों को स्वप्न में भी दुर्लभ है, "संग्राम का आनन्द" इस वाक्य को सुन कर इस प्रकार के लोग भौंचक से रह जाते हैं, किन्तु यदि सत्य पूछो तो इस अकर्मण्यता का छा जाना ही मृत्यु का स्पष्ट निशान है। समझ लेना चाहिये कि ऐसे मनुष्यों की मृत्यु अब निकट ही है। यदि जड़ संसार की यह बातें सत्य हैं तो चैतन्य संसार में भी इन्हें सत्य समझो। विचारशील मनुष्य यदि अपने हृदय में देखे तो उसे महाभारत का सच्चा दृश्य दिखाई दिये बिना न रहेगा। सदैव ही मानव हृदय में पापवासनाओं और शुद्ध आत्मिकशक्तियों का तुमुल युद्ध मचा रहता है। दुर्बल आत्मा वासनाओं से पराजित होकर उनके दास

बन जाते हैं । इस के विपरीत बलवान् आत्मा इन कुवासनाओं को दूर परे भगा आनन्दमय और सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं ।

इस संसार में जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं और अकर्मण्य बन रहे हैं, उन लोगों से न तो कुछ लौकिक उन्नति ही हो सकती है और न पारलौकिक ही । उन्नति का मूल मंत्र यही है कि मनुष्य के हृदय में असन्तोष हो । अपनी वर्तमान स्थिति में जो दोष हैं, जो २ असुविधायें अथवा तक़लीफ़ें हैं उन से हृदय में जब तक सच्चा असन्तोष न पैदा हो जावे तब तक उन्नति की कल्पना ही नहीं हो सकती । दैनिक जीवन का यह सिद्धान्त आत्मिक उन्नति के मार्ग में भी अक्षरशः सत्य है । जब तक हम लोग अपने अवनत और गिरे हुवे चरित्र को देख उससे असन्तुष्ट हो कर उन्नति का उपाय न करेंगे तब तक सुखी जीवन की बातें कोसों दूर हैं । अपने आप पर भरोसा और विश्वास रखना, साहसी और उद्यमी बनना, अपने आचरण को पवित्र रखना, निरन्तर उद्योग करना, संक्षेप से ये बातें ही सुखी जीवन की प्राप्ति के लिये मूल मंत्र हैं । जिन लोगों ने इनको निजहृत्पटल में धारण कर लिया है वे अवश्य संसार में कल्याण के भागी हैं ।

छप कर तय्यार है

कला-कौमुदी

क्रोशिये का कार्य सिखाने की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक

बड़ा साईज़, बढ़िया मोटा चिकना आर्ट पेपर, ६० के लगभग चित्र

बहुरंगे चित्र से सुशोभित कवर

मूल्य केवल १॥)

विस्तृत विवरण के लिये देखो अन्तिम पृष्ठ

मैनेजर 'ज्योति'

अमर-जीवन

["श्रीपति"]

(१)

बज रही रण-भेरी अब आज,
हो रहा वीरों का बलिदान,
बने कायर कब तक रणधीर !
सुरक्षित रख सकते हो प्रान !

(२)

किया अर्पण प्रियवर ! सर्वस्व—
जिन्होंने हम पर सह कर कष्ट,
उठाते संकट वे ही आज—
हो रहे सहसा हा ! वे नष्ट।

(३)

पूज्य गुरुजन, नर पुँगव श्रेष्ठ,
देश के जो हैं प्राणाधार—
शीशयुत वीस कोटि के हन्त !
उन्हीं पर होता वज्र प्रहार।

(४)

जा रही अबलाओं की लाज,
जाति, कुल, धर्म, कर्म, सम्मान।
सभ्यता का सर पर रख ताज—
सहोगे कब तक यह अपमान।

(५)

अहिन्सा का यह कैसा पाठ,
कर्म-पथ का यह कैसा ज्ञान।
धर्म-वीरों का कैसा ध्येय ?
शूर-वीरों की कैसी शान।

(६)

युधिष्ठिर कब हो बैठे मौन ?
कृष्ण का कब था यह आदेश,
"सुमति दे लंकेश्वर को ईश"
राम का क्या था यह उपदेश ?

(७)

हो लिये सुनकर नव बलिदान—
सहस्रों की संख्या मे साथ,
इसी पर कर लेते सन्तोष—
चिता की भस्म लगा कर माथ।

(८)

व्यर्थ है जाति धर्म का ध्यान,
सुजनता, मानवता पर गर्व,
व्यर्थ सुख, सम्पति, शील, सनेह,
ज्ञान, गुण, गौरव गरिमा सर्व।

(९)

दे रही गीता यह उपदेश,
आर्य्य-कुल-भूषण ! भारत रत्न !
"हृदय से कायरता कर दूर—
अमर बनने का करो प्रयत्न।"

मोहिनी के आंसू

(गतांक से आगे)

[१९]

मिस्टर मार्टिन अपनी सह-धर्मिणी एवं षड्वर्षीय प्रिय पुत्र बटलर [Batlar] के साथ सैर करने जा रहे हैं। जब मार्ग में आप एक विशाल एवं सुसज्जित भव्य-भवन के आगे से निकले तो उस में सहस्रों मनुष्यों का जनघोष सुनाई दिया। जिसे सुन मि. मार्टिन ने उस भवन को विशेष ध्यान से देखा— वह भवन बाहर से भीतर तक नवल-मृदुल कदली-दलों से, विविध पत्र-पुष्पों से, शिक्षाप्रद धर्म-तत्व-दर्शी संस्कृत वैदिक एवं इङ्गलिश के वाक्यों से–जो लाल और हरे वर्ण के वस्त्रों पर स्वर्णाक्षरों में बनाये गए थे- उन Mottoes से, एवं ध्वजा पताकादि नाना रम्य-उपकरणों से अलंकृत हो रहा था। जिसके समुन्नत शीर्ष पर विशाल झण्डा लहरा लहरा कर "ओंकार" के दर्शन करा रहा था। कूचे के सिरे से उस भव्य-भवन के मनोहर समुन्नत मस्तक पर्य्यन्त बांधी हुई लहलहाती कृत्रिम * कर्गल वल्लरियाँ स्वयमेव वहाँ के महोत्सव की शुभ सूचना दे रही थीं। वायु-वेग से हिल हिला कर नमस्ते करती हुई पथिकों को, समागतों को अन्तःप्रवेशार्थ संकेत कर रही थीं। उस भवन के विशाल दिव्य द्वार के मुख पर स्वर्णसम कमनीय कर्गल* के कटे हुए, स्वर्णाक्षरों से सुनिर्मित, निम्नवाक्य का रमणीय रक्त-पट, हँसता हुआ बता रहा था:—

आर्य्य-समाज

का

वार्षिक महाधिवेशन

इसे पढ़, मिस्टर मार्टिन का हृदय सहसा उत्कण्ठा-पूर्ण हुआ। वे आर्य-समाज को बिलकुल भूल चुके थे, किन्तु आज यहां यह सुन्दर शब्द पढ़ इस पवित्र समाज की अनुपम-उदारता का उन्हें स्मरण हुआ। इसी आर्य-समाज की वेदी पर छात्रावस्था के गाए हुए 'पद्य' भी सहसा मूर्तिमान हो उनके समक्ष उपस्थित हुए। ओः! रोमाञ्च खड़े होने लगे। आगे चलने के लिये टाँगों ने भी इनकार किया। यद्वा-तद्वा कुछ परे चले भी कि इधर हृदय ने रोक लिया। तब तो रुके, और अपनी प्राणेश्वरी की ओर देख, बोले—"क्या तुम जानती हो— यहां क्या हो रहा है?"

मिसेज़-मार्टिन— [जन्म नाम गङ्गा] "नहीं जी! कुछ हिन्दू खुशी मनाते होंगे?"

मि. मार्टिन— "यहां आर्य-समाज का जलसा हो रहा है, आओ देखते चलें।"

मिसेज़ मार्टिन— "अच्छा, चलिये।"

---

* कर्गल कागज़;

पत्नी पुत्र सहित मि. मार्टिन अन्दर घुसे। वहां जाकर देखा कि सभा भवन ऊपर से नीचे तक पाँच छः हज़ार नर नारियों से ठसाठस भरा हुआ है। यत्र-तत्र आर्य स्वयंसेवक सब को जल-वायु पहुंचा रहे हैं। इतनी उपस्थिति में इस प्रकार सन्नाटा देख, मि. मार्टिन चकित हुए और जान गए कि निश्चय प्रभावोत्वादक वक्ता की वक्तृता से ही लोग निश्चल निर्वाक् से चित्रांकित से स्तब्ध बैठे हैं। एक-टक वक्ता के वाक्यामृत का पान कर रहे हैं।

द्वार के स्वयं सेवकों ने मि० मार्टिन को तथा उनके परिवार को समादर से वेदी (Plat form) के निकट ले जाना चाहा, परन्तु मि. मार्टिन "नो-नो, शान्ति भङ्ग होगी" कह, धीरे से दीवार के सहारे सहारे जा दीवार से लगी बेंच पर विराज गए। वे कुछ एक शब्द सुनते ही समझ गए कि उपदेशक महाशय संस्कृत के धुरंधर-पण्डित होने के अतिरिक्त आंग्ल भाषा में भी निपुण हैं। साहित्य के अनुभवी-पुरुष हैं। मतों और सम्प्रदायों के सारवेत्ता भी हैं। नैष्ठिक होने के कारण वर्चस्वी हैं। तपस्वी जीवन बनाए हुए हैं। तार्किक होते हुए श्रद्धालु और संयमी हैं। उस समय वे देश का चित्र जनों के हृदय पटलों पर अत्यधिक योग्यता से अंकित कर रहे थे। स्वतन्त्र रूप से उड़ीसा-बिहार देश की दशा का-जो शोचनीय हो रही थी-चित्रण कर रहे थे। जिस बिहार-भूमि में विकराल अकाल महामुख फाड़े अकाण्ड-ताण्डव कर रहा था, उसी का संक्षिप्त-रीत्या चित्रण था। आप भाव-भरे शब्दों में कह रहे थे:—

"......हा, दुर्दैव के दृश्य देखिए— यह वही भारत है, जो संसार भर को अन्न, वसन एवं विद्या देता था, जो सब प्रकार इतनी कर्मण्यता एवं कौशल रखता था कि जिस पर मुग्ध हो विदेशीय नृपाधिपों को यहां आकर शिर झुकाना पड़ता था, जो भारत पदार्थ-विद्या से अत्युच्च ब्रह्मविद्या का न केवल पूर्ण-पण्डित, प्रत्युत नव नवाविष्कारक रहा, जिसने पदार्थ-विद्या का समुद्धार कर प्रकृति देवी को अपने भारत के रमणीयाङ्गण में नाच नचाया था, जिसने संसार के तत्वों की सर्व-प्रथम पूर्ण-विवेचना कर, ईश्वर, जीव, प्रकृति के गहन रहस्य को १०-१० सफ़ों के ट्रेक्टों[1] पर अङ्कित कर (आत्म-तत्व, परमात्म-तत्व और भौतिक-विवेचना का पूर्ण-विज्ञान, सांसारिक मनुष्यों को प्राप्त कराने के लिये) उपकार किया। जिस भव्य-भारत ने भूगोल और खगोल के सूक्ष्म-विज्ञान के कमनीय[2] कुसुम गूंथ कर जो कभी म्लान न होंगे-मानव जाति के लिये सर्व-प्रथम प्रस्तुत किये। यों आदि-काल में जिस ने अपने यशश्शरीर को महिमा-मण्डित किया।

"मध्यकाल में भी सब प्रकार सारे[3] संसार का 'गुरु' रहा। सारे संसार का 'सम्राट्' रहा। अब यह वही भारत देश कराल-काल के चक्र में आकर दो २ सेर अन्न के वास्ते अपने बाल-लालों को विधर्मियों के हाथों बेच रहा है। अपनी प्यारी प्रजा को नंगी, बेहाल, दर दर की भिखारिन-बनी देख रहा है। आज इस की कुशल-पठित सन्तान भी विधर्मियों और विदेशियों के गुलाम (बहरे लोगों) के मन यदि प्रसन्न न करे तो सम्भव है फ़ाके-मस्त ही रहना पड़े।

---

[1] १—उपनिषदों [illegible]

"आज वही यह वृद्ध-गुरु भारत, अपनी प्यारी प्रजा को यहाँ ही पूर्ण-विद्वान् बनी नहीं देख सकता, जब तक वह अन्य देशों की तन-मन और धन से शुश्रूषा तथा अन्तेवासिता न कर ले। "चढ़ चढ़ जैसे अन्त में अस्त होत है भानु" ठीक भारत भी ऐसे ही अस्तंगत हुआ। हा! भारत का सुकृत-क्षय काल भारतीयों को खूब देखना पड़ा

"हे भुवनेश्वर! तुम्हारी क्या इच्छा है? क्या भारतीयों द्वारा ही भारत-वध कराना चाहते हो? जैसे रावण कुल का सर्वनाश तत्कुलीन भीषण विभीषण द्वारा ही कराया था। परञ्च न्यायकारिन्! वह कुल प्रबल-दुराचारी रहा, यह भारत आदि-काल से चरित्रवान् है।

"इस में सन्देह नहीं कि—आप न्यायकारी हैं। कदापि अन्याय नहीं करते। जब हमने ईर्ष्या-द्वेष दुरभिमान-वश अपने दीन—हीन—सेवकों, सेवक-भ्राताओं को 'अछूत' समझ लिया, जब हमने उन से पूर्ण-असहयोग धारण कर लिया, तो वे बिचारे। कहां तक दुर्दशा-पंक में लिथड़े पड़े रहते? कहाँ तक अत्याचार—सहन करते? अवश्यमेव उन्हें पराश्रित होना था। जब अपने ही भाई पराश्रित होते हैं, विपक्षीपक्ष-सहायक बन जाते हैं, तो वे ही हमारी जड़ें काटने वाले, विपक्षियों के बने-बनाये औज़ार होते हैं। इसी लिए हमारा सुखोच्छेद होता आ रहा है। हम स्वयमेव इसी पाप से निर्जीव (मुरदार) होते जा रहे हैं। और यदि हमने अपने इस (मनुष्य को 'अछूत' समझने के) पाप का पूर्ण-प्रायश्चित्त न किया तो आगे और भी हम निश्शोणित, निर्जीव होते जायंगे, मर जायँगे।

"हा! वे भी अबोध बिचारे (हमारे दलित भाई) यह न विचार सके, कि—'क्यों न हम विद्वानों का आश्रय लें, विद्वान बन, अविद्वानों के अत्याचारों के निर्मूल करने में यत्न-पर हों? उन बिचारों में भली भाँति अविज्ञान ने, अविद्या ने अपना साम्राज्य जमाया हुआ था, फिर भला वे सोच कैसे सकते? जो इन शताब्दियों में विद्वान कहे जाते थे वा जो स्वयं पंडितम्मन्य थे वे इन्हें शत्र (चिता) समझ, इन से; इनके विचारों से सहस्रों योजन दूर हो जाने में ही अपनी महत्ता, अपनी शुद्धि, अपना श्रेय, अपना कर्तव्य, और अपना धर्म्म मान बैठे। अन्त में वे ही (हमारे दलित बन्धु) विधर्मियों के मिथ्या-जाल में फँस, भारत-सर्वनाश करने को उद्यत हुए। 'ईंट से ईंट मिला देना' ही उन्होंने कर्तव्य सोचा। वेद नष्ट हों, वेद के मानने वाले नष्ट हों, वैदिक-साहित्य नष्ट हो, हिन्दू-धर्म नष्ट हो, हिन्दू-जाति नष्ट हो, गो-वंश नष्ट हो यही उन का ध्येय हुआ, यही उनके जीवन का प्रोग्राम हुआ।

"देखो—आँखों वाले लोगो! देखो—ज़रा आँखें खोल कर देखो वे ही तुम्हारे अंग-भूत सेवक-भाई दलित-जन जिन्हें तुम 'अछूत' कह, पास न आने देते थे, अब 'मिस्टर' 'साहब बहादुर' और 'ख़ान बहादुर' बने कैसे तुम्हारे बाल लालों, को अबोध बालिकाओं को, रमणी-रत्नों को तुम से छीन, अधर्म कूप में डाल रहे हैं किस तरह जहाँ अवसर पाते हैं—तुम्हारी छाती पर चढ़ कर, तुम्हारे धर्म और प्राणों को चूस लेने के लिये उद्यत रहते हैं। अब वे भीम बन कर, तुम्हारी गल—रक्त की २–४ घूंट ही पीने को तैयार नहीं होते, वे तो-अब तुम्हारा धर्म और प्राण—धन पीना चाहते हैं। तुम्हें निर्जीव करता चाहते हैं। रोटी का टुकड़ा दिखा

१—पर शत्र (शत्र जनाश्रित);

कर, उन्हीं तुम्हारे दलित दीन-हीन भाइयों को, भोले-भाले भाइयों को, अबोध-बालकों को, बालिकाओं को, देवियों को, ईसाई और मुसलमान बना रहे हैं।

“हमारी सीता मातेश्वरी, रावण के राज्य में, रावण के अधिकार में, रावण की कैदिनी बनी, उसी राक्षस-राज रावण के ‘सम्मुख’ हो कर इसलिये उसके प्रश्नों का उत्तर तक नहीं देती है कि वह पर पुरुष है। परपुरुष के सम्मुख पति-ताएँ संभाषण तक नहीं करतीं, पाप समझती हैं। उनके उत्तर देने की विधि रामायण में बताई गई है:—

“तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचि–स्मिता।”

+ + + +

“रावणं पृष्ठतः कृत्वा, भूयोवचनमब्रवीत् ॥”

“(अर्थात्, उस शुचिस्मिता विश्ववन्द्या-वैदेही ने घास की ओट करके रावण को उत्तर दिया × × × [फिर ऐसे भी उचित न समझ] रावण की ओर पीठ करके, कहने लगी………)—तो कहने का सार यह है कि जो प्राक्कालीन हमारी माताएँ, बहिनें परपुरुष के सम्मुख हो कर ‘सम्भाषण करना’ पाप समझती थीं। हा! अब हमारे ही दौर्भाग्य से, हमारे ही महा पाप से, उसी सीता जैसी देवियों के अंशांश से उत्पन्न हुई हमारी बहिनें, हमारे आगे पशुओं की तरह अनाच्छादित-वक्ष हो, आधी-आधी टाँगें नंगी कर, अर्थात् उच्च कोटि की बेहया बनीं, विधर्म का आश्रय ले, उसकी आड़ ले, जिस-तिस पुरुष के सँग सरे-बाज़ार राक्षसियों की भाँति विचरण करती हैं। हा! हमारे देश की बहिनों, पुत्रियों की यह ऐसी दुर्दशा, इस प्रकार पाप-प्रवाह में उन्हें बहते हमारी आँखें देखती हैं। हमारे कान सुनते हैं। हम अपने को जागने वालों में कहते हुए भी निद्रितों से अधिक ग़फ़लत में हैं। सजीव होकर भी ‘निर्जीव’ से अधिक निष्क्रिय हैं। हा! हम निन्दा-नद में डूबते हुए भी अट्टहास करते हैं। हम बुद्धि रखते हुए भी इधर कुछ ध्यान नहीं देते। रोगी होते हुए भी हम पूर्ववत् कुपथ्य-सेवी बने हुये हैं। सोचो—हमारा एक दिन नाम-शेष न हो जायगा तो क्या होगा? इस से अधिक और हमारे पाप क्या उदय होंगे? यदि, अब भी तुमने दलितों को ‘अछूत’ कहा, उन्हें प्रेम से समाश्लिष्ट न किया, गले न लगाया, तो अति शीघ्र ऐसा दिन आने वाला है, जिस में ईसाइयों, मुसलमानों के अतिरिक्त, एक भी भारतीय-जन, अपने को ‘वैदिक-धर्मी’ ‘हिन्दू’ वा ‘आर्य’ कहने वाला न मिलेगा।

“अब हम कैसे उन अपने भ्राताओं को समझाएं कि—ऐ अपने को ईसाई वा मुसलमान मान कर, आर्यावर्त्तीयों से (हिन्दुओं वा आर्यों से) अपने को भिन्न समझने वाले भोले भाइयो! तुम कुछ भी और नहीं बने—केवल अपने भाइयों के शत्रु बन गये हो। भीमसेन की तरह तुमने हमारे गल-शोणित-संचूषण की प्रतीक्षा नहीं की, तुमने तो जैसे जामदग्नि-राम (परशुराम) ने क्षत्रि-कुल-विनाश करने का विचार किया था, चेष्टा की थी, वैसे ही भारत-सर्वनाश करने का संकल्प किया है, सो यह तुम्हें किसी अवस्था में भी उचित नहीं। भारत कृषि-प्रधान पुण्य-देश है। भारतीय हिन्दू-जाति, निरामिष रहती हुई पशु-पालन कर अत्युत्तम नव-शस्य-समुत्पादन के फलों से अपने को, भारत के भारतीय-सौख्य को, सम्पत्ति को बचाए हुए है। तुम भी इस भारतीया विशाल-देहा हिन्दू-जाति के अङ्ग हो, विधर्म की आड़ लेकर,

राक्षसोचित सामिष खान-पान, व्यवहार और आचार स्वीकार कर, अर्थात् 'राक्षसत्व' स्वीकार कर और औरों को इसी श्रेणी में लाकर, इस देव-भूमि पर 'राक्षसत्व' का विस्तार कर, इस की सुख सम्पत्ति सब की सब नष्ट कर दोगे। जो वृत्ति तुम ने अङ्गीकार की है, स्पष्ट है कि—उस से भारत का सर्व--नाश होगा। भारत का 'पशु-धन, उदर-गत कर लेने पर भारत का सर्वस्व स्वयं ही विनष्ट हो जायगा।

"जो कुछ, आर्य-जाति के द्वारा तुम लोगों से दुर्व्यवहार हुआ है, वह मध्यकालिकी अविद्या के कारण। अब क्षमा करो। तुम हमारे वही भाई हो। तुम्हें हमारे संग सब प्रकार के समान व्यवहार रखने का उतना ही अधिकार है—जितना आदि-काल में था। कोई न सही, आर्यसमाज तुम्हें सोत्साह गले लगा रहा है। आओ! कहीं मत जाओ। [टेबल पर दो हाथ मार] यह Platform (प्लेटफ़ार्म) तुम्हारे लिये है। यहाँ हम में मिल बैठ कर, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करो। और ऐसा कर, उजड़ते हुए अपने प्यारे पवित्र-भारत को बचाओ।

"ईसाई वा मुसलमान बन अपने को वैदिक-धर्म के कट्टर शत्रु समझने वाले भोले-भ्राताओ! ज़रा तुम यह भी सोचलो और अपने आप फ़ैसला कर दो कि—सहोदर भाइयों की हनन-चेष्टा करने पर, जन्म-दा माता की दारुण हृदय-वेदना किस प्रकार वृद्धिगत होती है? और जन्म देने वाला पालन-पोषण कर्ता पिता वैसा करने पर प्रसन्न होता है वा अप्रसन्न? क्या वह माता अपने को दुर्भागिनी न समझेगी जिस का एक पुत्र अपने और सहोदरों की अकल्याण-कामना करता हो, विपरीत बुद्धि होकर उस का विनाश चाहता हो, तुच्छ-स्वार्थ के लिये अनुचित-चेष्टाएँ करता हो। जहाँ एक को दूसरा भाई कूप में डाल उसका सर्वनाश करने पर तुला हो, वहाँ पिता और माता की छाती क्या ठंडी होती होगी, कदापि नहीं! विचार कीजिए—यह भारत-उर्वरा हम-तुम सब की जन्मदातृ-माता है। इसी ने जन्म दिया है। इसी ने अपने सुख समीर से प्रेम-पूर्वक थपकियाँ दे, सुलाया है। इसी ने जीवन दिया है। इसी ने अपने अन्न, जल, वस्त्र से हमारी-तुम्हारी देह-रक्षा की। हम-तुम ने इसी की गोद में अनेक खेल खेले। इतनी आयु, विद्यादि-जीवन-सामग्रियाँ भी इसी की कृपा से प्राप्त कीं। और अन्त समय में फिर इसी की विशाल-गोद में शरीर त्याग कर, पुनर्जन्म लेंगे। फिर इसी की प्रजा को, अपने सहोदरों को, इसी की गोद में रहते हुए इस के अन्न-जल से पलते हुए यदि बहका कर, बलात् छीन कर अन्ध-कूप में डालने लगो, जीवन और उनका धर्म नष्ट करने लगो तो इस से अधिक पाप क्या होगा, अहसान फ़रामोशी क्या होगी? कहाँ-कहाँ भाइयों में परस्पर वैमनस्य नहीं होता? परन्तु जहाँ एक दूसरे का जीवन और धर्म-नाश करने को उद्यत होजाए, वहाँ तो अनेकानेक उत्पात जन्म धारण कर तबाही करेंगे। यह भी तुम ज़रा विचार लेना कि ईश्वरीय (वैदिक) धर्म को छोड़ कर अन्यान्य मिथ्या जाल में स्वयं फँस कर औरों को फँसा कर उस भुवन-भावन भगवान के आगे क्या कह कर, क्षमा माँगोगे? ज़रा हम से तो कहो! वह पोषण-कर्ता पिता सब कुछ देख रहा है।

"एक बात और कह, मैं अपने स्थान पर बैठ जाऊंगा। वह यह कि-यह भूल कर भी मत सोचना कि इस्लाम को वा ईसाइयत को तिलाञ्जलि दे कर यदि फिर "वैदिक धर्म" को अङ्गी-

कार कर भी लें, तो हमारा साथी कौन होगा ? निश्चय रखिये कि जीवन-मरण की समस्याएँ भी आर्य-समाज हल करेगा। आप उसी तरह हम से मिले हुए हैं, जैसे-खून से माँस। ध्यान दे कर सुन लीजिये-कई सौ अछूत बालक हमारे अनाथालयों में पहुंच चुका है। कई सौ 'अछूत'-(जो पहले कहे जाते थे) बालक इसी आर्य-समाज माता की गोद में इसी की कृपा से 'शास्त्री' 'बी. ए.' आदि उच्च कक्षाओं में उत्तीर्ण हुए भारत के नगर-मन्दिरों को वेद-गान से गुञ्जा रहे हैं, कई सौ विधर्मी जन शुद्ध होकर, शरीर के प्राण उदान वायु की तरह मिले हुये आर्य-जाति का जीवन बढ़ा रहे हैं। आप लोग भी जो शेष हैं, शुद्ध चित्त से हमारे सहायक बन आ मिलेंगे तो अवश्यमेव भारत-सन्तान के धर्म-धन की, यशोवैभव की, विद्या बल की रक्षा हो सकेगी। तब ही भारत देश मुद-मंगल-मय होगा और गरिमा से औरों को प्रभावित करेगा। कारण यह कि—आप लोगों के आ मिलने से आर्य समाज का बल, धन कई गुणा वृद्धिगत हो जायगा। जिस से हम वर्षों का काम महीनों में, महीनों का दिनों में, दिनों का घन्टों में, और घन्टों का मिन्टों में कर सकेंगे।

"यह बात भूलने की नहीं है कि जिन्हें हम 'अछूत' समझते हैं, वे ही यथार्थ में 'अछूत हैं। आप के लिये क्या और हमारे लिये क्या और किसी के लिये क्या ? वे 'अछूत' कौन हैं—हम बताते हैं। देखिए: —

'अछूत' है—आग। जो भी इसका स्पर्श करेगा वह अवश्य थोड़ा-बहुत जलेगा। और यह स्पृष्ट को जलाने में कोर-कसर न रखेगी। इसे हाथ से न छूना चाहिये। 'अछूत' है—बिच्छू। जिस से भीत रहना और जिसको न छूना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा महा-दुःख भोगना पड़ता है। 'अछूत' है—सर्प जो भयंकरी मृत्यु का सहकारी है। यम का प्रधान दूत है। अतः सर्वथा मतिमानों के लिये 'अस्पृश्य' है। इसी प्रकार हमारे लिये 'सिंह', 'खूनी हाथी', 'व्याघ्र', 'गुहेरा', 'विद्युत्', 'विदेशी-वस्त्र', 'माँस,' 'मद्य', 'मस्जिदाङ्गण', 'गणिका', 'गिरजा घर', 'अंग्रेज़ी स्कूल', 'मेशनरी', 'मिलें', 'अदालतें', 'क़ब्रें', 'मूत्र', 'पुरीष' आदि 'अस्पृश्य' हैं। ज़रा सी भी समझ रखने वाला इन की 'अस्पृश्यता' अवश्य स्वीकार करेगा। भारतीय-जनता के लिये तो यह सर्वथा अस्पृश्य हैं। और यह निश्चय जानना कि समझाने पर भी यह 'अछूत विवेचना' जिसके समझ में न आए तो वह जाति निश्चय शीघ्र अधस्तल को प्रयाण करने वाली है। ओं-शम्।"

उपदेशक महाशय यथास्थान विराज गए। यह सन्यासी उपदेशक वयोवृद्ध हैं। यथार्थ में इन की वक्तृता का श्रोता मात्र पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है मि० मार्टिन ने देखा यद्यपि व्याख्यान देने से, आपका गला बहुत ही बैठ गया था, स्वर में घरघराहट बहुत ही बढ़ गई थी किन्तु वक्तृता की सरसता से मि० मार्टिन के मस्तिष्क मण्डल में मानस-भवन में भी चारु-चमत्कार चमक उठा, परन्तु मसीमत के कठिन-कारागार से छूटने का अपने लिये साधारण सा साधन न देख, बड़ी दल दल में फँस गए। पर कुछ हो, श्री स्वामी जी महाराज ने अपनी विचक्षणता से इन दम्पति के हृदय-युगल को कठिन-यन्त्रणा से यन्त्रित कर दिया।

सन्ध्या हो चुकी थी। अतः एक भजन, और शान्ति-पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हुई। मि०

मार्टिन एवं इनकी सहचरी ने कठिन-से-कठिन हिन्दी की तुलसी-कृत-रामायण-सी पुस्तकें साद्यन्त पढ़ी थीं। प्रतिभा प्रखर थी। इस कारण व्याख्यान का कोई शब्द ऐसा नहीं रह जो इनकी समझ में न आया हो। अस्तु! अतिकाल हो जाने के कारण अन्यत्र सैर को न जा कर, सपरिवार मार्टिन अपने आवास-स्थान को चल दिये।

कला-कौमुदी
समाचार पत्र मुक्त कण्ठ से प्रसंशा कर रहे हैं
यदि आप ने अभी तक न मंगाई हो
तो
एक प्रति अवश्य मंगाइये

बालकों में अपराध विज्ञान

अध्यापकों और माता पिताओं के प्रति

चार शब्द

[ले०—श्रीयुत रामचन्द्र ऐयर, सम्पादक "ब्रह्मचर्य"]

विद्रोह की स्पिरिट प्रकृति की देन है और वर्तमान परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष और युद्ध के बिना जीवन असम्भव हो जाता है। बालक भी इस सार्वत्रिक नियमके अपवाद नहीं है। यही नहीं वे उसके मूर्तिमान स्वरूप हैं। किसी बालक या लड़के की किसी बुरी प्रवृत्ति को दबाने से पहले प्यारे माता पिता या उत्तरदायी अध्यापक को दोबार सोचना चाहिये। अमेरिका की कम उम्र की अदालत के जज लिंडसे ने संक्षेप से कहा है कि "बालक जन्म से ही स्वभावतः बाग़ी होते हैं"। वे सब प्रचलित रूढ़ियों और रिवाजों के प्रति बाग़ी होते हैं और उनकी यह प्रवृत्ति बालिग़ होने तक अर्थात् लगभग १४ वें वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में वह अपने आप में भलाई और बुराई के बीजों की पुष्टि करता रहता है। इस के दो कारण हैं, एक यह कि उसे जिस संसार में प्रवेश करना है उस के आचार के नियमों का उसे ज्ञान नहीं होता, दूसरा यह कि वह जो शरारतें खेल खेल में करता है वे पक कर जुर्म नहीं बन जातीं कि वे मातापिताओं या अध्यापक का ध्यान आकर्षित कर सकें। किन्तु यदि कोई ग़ौर से उदारता और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से बच्चे के शरीर की प्रत्येक हरकत, होठों के हिलने, माथे की सिकुड़न, आंखों का मटकाना और सबसे ऊपर बोलने चालने और काम करने के ढंग का निरीक्षण करे तो वह उस छोटे से शरीर में रहने वाली प्रसुप्त प्रवृत्तियों को देख सकता है।

मातापिताओं को बच्चों की आंखों को देख कर उन के मन की बात जानने के लिये न तो फ़ुर्सत ही है और न उन्होंने इसे सीखा ही है, उन्होंने अपनी संतान का हृदय जीत लेने के लिए विश्वास उत्पन्न नहीं किया। तब हम शिक्षक को दोष कैसे दे सकते हैं, जिसको कि थोड़ी सी तनख्वाह मिलती है और जो अपने परिवार की चिन्ताओं से दबा रहता है। बहुत से माता पिता ६ घंटे के लिये बच्चों की शरारतों से छुटकारा पाने के लिये ही उन्हें स्कूल भेजते हैं। और भी बुरी बात यह है कि बेकाबू लड़कों को ऐसी संस्थाओं के लिये जिनमें रहने का भी इन्तज़ाम हो, विशेष उपयुक्त समझा जाता है, मानों कि सब अध्यापक जेल के वार्डर हैं और सब गुरुकुल रिफ़ार्मेटरी (चरित्रहीन लड़कों को सुधारने के स्कूल)। माता पिताओं को अपनी जिम्मेदारियों का कुछ भाग दूसरों पर लाद देने की इस प्रवृत्ति का परिणाम पीछे से मिलता है।

वस्तुतः जब बच्चा शरारत करता है तब उन दोनों को सब से सुगम उपाय यही सूझता है कि उसे दंड दिया जाय और फिर-फिर दंड दिया जाय, यह ऋषियों की भूमि है और ऋषि लोग सब से पहले शिक्षक थे और कुछ उससे पीछे यहां पर समझा जाता है कि अहिंसा सब के मन में विराजती है, किन्तु यहां पर इस समस्या को सुलझाने का एक बार भी सच्चे दिल से प्रयत्न नहीं किया गया, यही नहीं बल्कि इस के विपरीत मृदु कठोर आदि आदि नाना भेदों से दंड की अनेक श्रेणियां बना दी गई हैं और दंड देना एक अलग कला बन गयी है और उसको जायज़ करार देने के लिये कानून बना दिये गये हैं । अब समय आ गया है कि हम को गम्भीरता के साथ इस समस्या का सामना करके उसे सुलझाना चाहिए और युनिवर्सिटियों, अध्यापक-संघों तथा कान्फ़रेन्सों का कर्तव्य है कि वे माता पिताओं से (और विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों से भी क्यों नहीं) मिल कर इस विषय के अध्ययन की चाट लगाएँ तथा पश्चिम के शिक्षाशास्त्र के पंडितों ने इस विषय पर जो भारी साहित्य पैदा किया है, उसका अध्ययन करें । हम को धैर्य और विद्वत्ता की मूर्तिस्वरूप इन बड़ी आत्माओं के आगे छोटे बच्चे के अन्दर परिपक्क होती हुई आत्मा के प्रति उनकी भक्ति के लिए सिर झुकाना चाहिये और उनके चरणों में बैठ कर उनसे शिक्षा लेनी चाहियें । अगस्त सन् १९२५ की "फ़िज़िकल कल्चर" नामक पत्रिका में जज लिंडसे ने कम उम्र लड़कों की अदालत के अपने लंबे अनुभव से जो निम्नलिखित शब्द लिखते हैं उन पर प्रत्येक मातापिता और अध्यापक को ध्यान देना चाहिये और विचारना चाहिये । वे लिखते हैं, "मैं न अनाचार का पक्षपाती हूँ और न किसी भी किस्म के समाज विरुद्ध व्यापार का । मैं सबसे ज़रूरी इस बात को समझता हूँ कि ऐसे उपाय निकाले जायं जिससे ये बालक दुबारा अपराध न करें और जिस दण्ड के देने से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता उस से संभव है कि वे भयानक अपराधी बन जायं बालक का सुधार तभी हो सकता है, जब कि उस की विचारधारा को—उसके सोचने के तरीक़े को—बदल दिया जाय । वह जान बूझ कर अशुद्ध नहीं सोचता बल्कि इस लिए कि उस के तर्क की इमारत ही गलत होती है । यदि तुम उसको बदल दो तो बालक अपने आप ही सुधर जायगा क्योंकि सीधी, सहेतुक स्वाधीन और पुरानी रूढ़ियों के बंधनों से स्वतन्त्र विचार शैली बाल्यावस्था की देन है" । एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं "जब कभी बालक बग़ावत-शरारत करता है उसका कोई कारण होता है । उसको ढूँढ निकालो । मेरी दृष्टि में बच्चा जो कुछ सोचता है उसमें ईमानदारी सचाई और प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों को ठीक ठीक ज्ञान के लिए सबक मिलता है जिससे अन्य मनुष्य अच्छी तरह लाभ उठा सकते हैं .... बच्चों में परीक्षण की स्वतन्त्रता आविष्कार की खुशी, और 'तुम अपने काम का ख़याल रक्खो और मैं अपने काम का' यह स्पिरिट होती है, जो कि सच्चे प्रजातन्त्र की सूचक है ।"

तब वे अपने लेख के अंत में, जिस का शीर्षक 'छोटे शरारतियों को बड़े अपराधी बनने से किस तरह बचावें' यह है, लिखते हैं "जिन मनुष्यों को पशुओं का अनुभव है वे एक विशेष प्रकार की स्थितियें रखने से पशु क्या करेगा यह पहिले ही से ठीक ठीक निश्चय से बतला सकते हैं। यही बात मनुष्यों के विषय में भी है, केवल इतना अंतर है कि उन में बहुत सी सूक्ष्म पेचीदगियां हैं और इसी कारण से कुछ अनिश्चितता भी है।"

माता पिताओं और अध्यापक को इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये कि वे अपने ही अधैर्य और अज्ञान के कारण बच्चों को फौरन दंड दे देते हैं और इस का भयानक परिणाम यह होता है कि वे बच्चे सुधरते नहीं प्रत्युत जन्म भर के वास्ते दिखाऊ और छिप कर पाप करने वाले बन जाते हैं।

तब इस का प्रतीकार क्या है ?

कला-कौमुदी
'ज्योति' के ग्राहकों को विशेष रियायत
अथवा
१॥) के स्थान में केवल १।) में
आर्डर देते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें

कुसुमोद्यान

१. अमेरिका की सामाजिक अवस्था.

आजकल मिस मेयो की पुस्तक "मदर-इंडिया" अर्थात् भारत-माता की बहुत चर्चा है। इसमें उसने भारतवासियों को बड़े ही अश्लील और घृणित रूप में पेश किया है। क्या मिस मेयो New York Herald Tribune के एक लेखक के इस प्रश्न का उत्तर देगी:—

"जब कि अमेरिका में १५ और २५ वर्ष की बीच की आयु के १२०० युवक और युवतियाँ एक वर्ष में आत्म-हत्या करते हैं; जब कि आजकल की गणना के अनुसार प्रत्येक विवाह का ११ वर्ष की औसत में तलाक हो जायगा ; जब कि सब प्रकार के अपराधों में से ८० प्रतिशतक १८ वर्ष की कम आयु के बच्चों द्वारा किये जाते हैं; जब कि अविवाहित (कुंवारी) माताओं में से ४२ प्रतिशतक १६ वर्ष से कम आयु की स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियाँ हैं तो क्या अब हमारे लिये यह उचित नहीं कि आत्म-श्लाघा को छोड़ कर आत्मत्याग की ओर अधिक ध्यान दें।"

× × ×

२. शिक्षा का माध्यम.

भारतीय विश्वविद्यालयों के स्नातकों में स्वतन्त्र-विचार-शक्ति की बड़ी न्यूनता है क्योंकि उनका अधिकांश समय एक विदेशी भाषा में अपने भाव प्रगट करने की शक्ति को प्राप्त करने के यन्त्रवत् प्रयत्न में ही नष्ट हो जाता है। विदेशी भाषा के व्याकरण और मुहावरों का ज्ञान प्राप्त करने में उनका इतना समय नष्ट हो जाता है कि मुख्य विषय की ओर उनका ध्यान ही नहीं रहता। इसका परिणाम यह होता है कि उनका मन केवल शब्दों से भर जाता है और वह विचार जिनके यह शब्द पर्यायवाची हैं पास नहीं आने पाते। इस कठिनता को दूर करने के लिये वह पुस्तकों में से बड़े-बड़े वाक्य और लम्बी-लम्बी रचनायें कण्ठस्थ कर लेता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार बिना समझे कण्ठस्थ करने का यह स्वभाव उसकी मानसिक शक्तियों के लिये बड़ा अहितकर होता है।…………………

यदि आप चाहते हैं कि कोई जाति अधिक उदार विचारों और अधिक उपयोगी तरीकों को प्राप्त करे तो आपको उसके मन को अधिक क्षमतापूर्वक शिक्षित करना चाहिये। परन्तु इस प्रकार की मानसिक शिक्षा ऐसी शिक्षा-पद्धति द्वारा

असम्भव है जिसका शिक्षा-माध्यम विदेशी भाषा के आधीन है। भारत उसी समय अपने जातीय बुद्धि-विकास को प्राप्त कर सकेगा जब हम अपनी देशी भाषाओं को उचित महत्त्व देंगे और शिक्षा का माध्यम बनायेंगे। जापान ने हमारे सामने ऐसा उदाहरण पेश किया है जिसका अनुकरण हमारे लिये लाभकारी होगा। उन्हीं तरीकों द्वारा भारत भी अपने जातीय आचार सभ्यता की उन्नति कर सकता है और संसार की जातियों में उस उच्च पद को प्राप्त कर सकता है जिसके लिये प्रत्येक भारत-सन्तान का हृदय लालायित रहता है।

(म. अकबर अली)

× × ×

३. कोयल के बच्चे.

कहते हैं कि कोयल आप नहीं सेती, उसके अण्डे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में उन्हीं के द्वारा सेये जाते हैं। परन्तु कोयल के अण्डे इन पक्षियों के घोंसलों में पहुँचते कैसे हैं? यह अब तक एक रहस्य था। कई लोगों का विचार था कि कोयल उन घोंसलों में ही अण्डे देती है, परन्तु पक्षि-विद्या-विशारद फैबर महोदय का विश्वास था—यद्यपि इसका उनके पास कोई सबूत न था—कि कोयल पहले अपने अण्डों को निगल जाती है और फिर पुनः उगल देती है। मिस्टर बनयार्ड नाम के विद्वान ने अब इस रहस्य को जान लिया है और वह फेबर के सिद्धान्त की ही पुष्टि करते हैं। एक स्थान पर दो गायक पक्षियों का घोंसला था जहाँ पर कोयल प्रायः आया-जाया करती थी। इसके निकट ही इन्होंने अपने छुपने के लिये स्थान बना लिया और प्रति दिन राह देखने लगे। एक दिन उन्हें सफलता हुई। वह लिखते हैं कि:—

“इस घोंसले में इन पक्षियों के दो अन्डे थे। कोयल जब घोंसले के पास पहुंची तो उसकी चोंच में कोई अण्डा न था। पक्षी भयभीत होकर चीखने चिल्लाने लगे; कोयल घोंसले को चिमट गई और उसने अपना सिर और गर्दन घोंसले के भीतर डाला। पुनः इन्हें बाहर निकाल कर एक तरफ को हट गई और फिर दुबारा भीतर डाला। अब चोंच के बाहर निकालने पर मैंने देखा कि एक अण्डा था जिस को लेकर वह उड़ गई।” इस समय मिस्टर बानयार्ड अपने छुपने के स्थान से बाहर निकल आये और उन्होंने घोंसले के पास जाकर देखा तो उस में अब भी दो अण्डे थे, परन्तु उनमें से एक अण्डा कोयल का था। “कोयल ने घोंसले पर ८ सैकन्ड से अधिक नहीं लगाया, वह न तो घोंसले के ऊपर ही गई और न उसके चारों तरफ। केवल एक ही तरीके से उसका अण्डा घोंसले में पहुंच सकता था और वह हलक में से उगाल कर।”

× × ×

४. मोटरों द्वारा दुर्घटनायें

आजकल मोटरकारों का युग है। नगरों से निकल कर अब वे गावों तक में पहुंच गई हैं। देहात में जाने के लिये, पर्वतों की सैर के लिये, असंख्य संख्या वाले नगरों और निर्जन वनों में मोटरकार का ही आश्रय लिया जाता है। आज कल तो यह रेल का भी मुकाबला करती है, रेल से पहुँचती भी जल्दी है और किराया भी कम लेती है। परन्तु मोटरों द्वारा प्राप्त सफर में इस सुविधा का— इन के टकराने इत्यादि दुर्घटनाओं के रूप में— बड़ा भारी मूल्य देना पड़ता है। हम प्रायः सुनते रहते हैं कि अमुक स्थान पर दो मोटरें टकरा गईं और इतने आदमी मरगये; वहाँ

पर मोटर चलती रेल से टकरा गई और टुकड़े २ हो गई; इतने आदमी लन्डन न्युयार्क में मोटर के नीचे आकर मर गये इत्यादि २ ।

इन दुर्घटनाओं से बचाने के लिये प्रावीडैन्स नाम के नगर में एक रक्षा-समिति बनी है; परन्तु उसकी रिपोर्ट से पता लगता है कि मोटरकारों और मोटर बसों से भरी हुई सड़कों पर चलने की अपेक्षा घरों के भीतर रहना अधिक मौतों का कारण है। इस वर्ष के पहिले सात महीनों में नगर में १५ मृत्यु मोटरों द्वारा हुईं परन्तु इसी समय में घरों में ३२ दुर्घटनायें ऐसी हुईं कि जिनका अन्त मृत्यु हुआ। यह भी पता लगा कि मोटर वाली १५ में से केवल १ मृत्यु नगर के घनी आबादी वाले भाग में हुई शेष १४ देहात में । यह संख्या इस वर्ष के लिये विशेष नहीं है क्योंकि गत वर्ष भी इसका ऐसा ही परिमाण था।

इन दुर्घटनाओं का कारण भी दिया गया है। प्रथम घरों के भीतर बूढ़ों और दुर्बलों की अधिक संख्या है और यही घरों के भीतर की दुर्घटनाओं के लिये जिम्मेवार हैं।

देहात में मोटरों द्वारा अधिक संख्या में दुर्घटनाओं का होना भी सुगमता से समझ में आ सकता है। नगरों में पैदल चलने वाली जनता अधिक सावधान होती है और पोलिस का भी बड़ा पहरा रहता है अतः मोटरें बहुत तेज़ नहीं चलाई जा सकती देहात में ये दोनों बातें नहीं हैं।

घरों की अधिकांश मौतों में छतों और सीढ़ियों पर से गिरने से हुई, ६ मृत्यु जलने और दम घुटने से और केवल एक भूल में विष खा लेने से।

× × ×

५. जातीय शारीरिक और मानसिक उन्नति

आजकल पाश्चात्य देशों में जाति उद्धार का विषय (जो कि Eugenics के नाम से प्रसिद्ध है) बड़ा महत्व पकड़ता जा रहा है, सन्तति शास्त्र भी इसी के अन्तर्गत है। गत मास में इस शास्त्र के पंडित श्रीयुत मेजर लेयोनर्ड डार्विन ने लन्डन के बेडफोर्ड कालिज में व्याख्यान देते हुये कितनी ही बड़े महत्व की बातें कहीं। आपके श्रोताओं में से अधिकांश शिक्षित महिलायें थी। उन्होंने कहा कि अब तक विकासवादियों का सिद्धान्त 'संसार के संघर्ष में निर्बल स्वयं नष्ट हो जाता है' अक्षरशः सत्य माना जाता था। परन्तु वस्तुतः इस विषय पर यह अन्तिम शब्द नहीं है। इङ्गलैण्ड में 'चुनाव' अशुद्ध रीति से हो रहा है। शिक्षित और शुद्ध संस्कार वाले स्त्री पुरुषों की संख्या प्रायः घट रही है। यदि हम अपनी सभ्यता की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उच्च संस्कृत कुलों में सन्तान वृद्धि की ओर अधिक ध्यान देना होगा और यह तभी हो सकता है जब कि ऐसे नियम बनाये जायें कि जाति के निर्बल, उजड्ड, कुसंस्कारों वाले भाग को सन्तान उत्पन्न करने से रोका जाय, और इसके विपरीत दूसरों को उत्साह दिया जाय। आज कल तो उच्च वर्णों के शिक्षित और सभ्य लोगों में सन्तान उत्पत्ति के पवित्र कार्य से अरुचि हो रही है। परन्तु उन्होंने आशा प्रगट की कि जब उन्हें इस बात का ज्ञान हो जायगा कि उनकी सन्तान के अल्पसंख्यक होने के क्या २ बुरे परिणाम हैं तो वे स्वयं ही शुद्ध नैतिक और देशहित के विचारों से प्रेरित होकर बहुसंख्यक परिवारों को रचने में सहायक होंगे। इसी ओर आशा की झलक दिखलाई देती है।

श्रोताओं में कितनी ही कालिज में पढ़ने वाली

महिलायें थीं और दो या तीन भारतीय रमणियां भी थीं। उनकी ओर आदेश कर के व्याख्याता ने कहा कि उनके जीवन का विशेष अनुष्ठान 'मातृत्व' है और यह पुरुषों के आक्रमण से सर्वथा सुरक्षित है। यह ऐसा कृत्य है जिसे वे ही पूरा कर सकतीं हैं। निःसन्देह किसी भी सभ्यता का आधार मानव समाज की स्वाभाविक अन्तरीय प्रवृत्तियाँ ही होती हैं, परन्तु सभ्यता के एक बार निर्माण हो जाने पर सभ्यता का प्रसार वंश परम्परा द्वारा ही होता है और गृह ही ऐसा स्थान है जहां आने वाली सन्तानों के आचार और विचारों का निर्णय होता है और माता ही इस की विशेष निर्णायक है पुरुष की अपेक्षा माता पर यह अधिक निर्भर है कि किसी विशेष परिस्थिति में बालक ने संसार में जन्म लेना है कि नहीं। हमारी सभ्यता के लिये यह बड़े संकट का समय है क्यों कि इस का बड़ा ही शनैः २ और चुपके २ ह्रास हो रहा है, यदि इस की किसी प्रकार से रक्षा हो सकी है तो विशेषकर स्त्रियों द्वारा ही। अतः शिक्षित स्त्री जाति को इस प्रश्न की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

× × ×

६. उपन्यास लेखिका महिलायें

अभी-अभी एक इटैलियन महिला को जो कि सारडिनिया के कृषिकों के जीवन के सम्बन्ध में उपन्यास लिखती है साहित्य सेवा के उपलक्ष्य में नोबल प्राईज़ मिला है। परन्तु यह बहुत कम अनुभव में आया है कि किसी स्त्री ने कोई ऐसा उपन्यास लिखा हो जिस ने साहित्य में अमर स्थान प्राप्त किया हो। निःसन्देह जेन आस्टन एक विशेष श्रेणी की प्रतिनिधि है तो भी यह प्रायः देखने में आया है कि स्त्रियों द्वारा लिखे हुये उपन्यास और कहानियाँ रचना के समय बड़ी सन्तोषजनक होती हैं और खूब बिकती हैं यद्यपि उन्हें एक बार पढ़ कर दुबारा फिर पढ़ने का मन नहीं होता। वह प्रायः अलमारियों की शोभा बढ़ाती रहती हैं। इस का क्या कारण है ? आजकल सफल उपन्यास लेखिकायें वे हैं जो कि जनता के मनोगत भावों को समझती हैं और अपनी मातृत्वदक्ष बुद्धि द्वारा उसके लिये वही भोजन तैय्यार करती हैं जो कि रुचिकर हो। जोज़ेफ कानरेड के कथनानुसार विशेष २ लेखिकाओं की पुस्तकों के अधिक बिकने का कारण यह है कि "वह साधारण जनता के विचारों को प्रगट करती हैं और जनता उन्हें इस लिये पसन्द करती है कि उन के लेखों में वह अपने विचारों का समर्थन पाकर इस विचार से प्रसन्न होती है कि ऐसे बड़े-बड़े विचारशील व्यक्तियों के भी वही विचार हैं जो हमारे हैं।"

एक समय था जब कि विशेष प्रकार के लेख लिखना और पढ़ना स्त्रियों के लिये बुरा समझा जाता था। अतः स्त्री लेखिकाओं का यह विशेष ध्यान रहता था कि उन की लेखनी से कोई ऐसी बात न निकले जो शिष्टाचार के विरुद्ध हो। परन्तु अब यह कहना बड़ा कठिन है कि आज कल की स्त्री अपने आप को किस चीज़ के पढ़ने और लिखने के लिये स्वतन्त्र समझती है। अब तो स्त्री लेखिका मानवस्वभाव के उन सब अङ्गों पर से परदा उठाने के लिये तय्यार है जिन्हें गोपनीय रहना चाहिये और जिन पर कुछ लिखने के लिये पुरुष भी तय्यार नहीं। सदाचार और साहित्य के दृष्टिकोण से यह कहां तक लाभदायक होगा यह एक विचारणीय विषय है। इस प्रकार से मनुष्य स्वभाव के अन्तरीय अङ्गों की चीरफाड़ करना और इन टुकड़ों को जनता की दृष्टि के सामने बिखेर देना व्यवसायिक दृष्टि से चाहे सफल समझा जाय परन्तु साहित्य कला की दृष्टि से तो यह अशुभ ही है।

× × ×

७. विशाल भारत

एक समय था कि भारतीय आचार,और शिक्षा कृत बुद्धिमत्ता का भारतेतर देशों में प्रचार था, अपितु साम्राज्य था । यह आवश्यक नहीं कि भारतीय संस्कृति वहां ही फैली हुई थी जहां भारतीय उपनिवेश थे या भारत का साम्राज्य था क्योंकि इस संस्कृति का उद्देश्य अन्य जातियों और देशों की शारीरिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता हरण करना न था । वह अपने आचार विचार सम्बन्धी नियमों की उच्चता से ही दूसरों पर मानसिक विजय प्राप्त करना अपना ध्येय समझती थी। अतः अब यह विचार प्रबल रूप धारण करता जाता है कि भारत का राजनैतिक और धार्म्मिक इतिहास अपरिपूर्ण रहेगा जब तक कि हम भारतेतर देशों और उपनिवेशों में—जैसा कि चीन, तुर्किस्तान, जावा,सुमात्रा कम्बोडिया इत्यादि—भारतीय संस्कृति के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास का भी पूरा २ सदुपयोग न करें। यह हर्ष की बात है कि इस उद्देश्य की पूर्ति की ओर अब हमारे विद्वानों का ध्यान आकर्षित होने लगा है। गत वर्ष कलकत्ते में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'विशाल भारत' नाम से एक संस्था स्थापित हुई है जिसमें भारत के प्राचीन गौरव में श्रद्धा रखने वाले अनेक विद्वान् सम्मिलित हुये हैं। इस संस्था का लक्ष्य अनुसन्धान द्वारा प्राचीन समय में भारत का अन्य देशों और जातियों से जो मानसिक सम्बन्ध था उस की खोज करना है।

इसी विषय पर प्रोफ़ेसर फणीन्द्र नाथ बोस एम. ए. ने गुरुकुल विश्वविद्यालय हरद्वार में कई महत्वपूर्ण व्याख्यान दिये थे। इनमें से पहला व्याख्यान नवम्बर मास के वैदिक मैगज़ीन में छपा है। उस में से दो एक महत्वपूर्ण उद्धरण 'ज्योति' की पाठिकाओं और पाठकों के लिये नीचे दिये जाते हैं:—

“…भारतीय इतिहास के अज्ञात अध्यायों—जिनका सम्बन्ध विशाल भारत से है—के अध्ययन से भारत के मानसिक और औपनिवेशिक इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ता है । इस से पहले हमें बतलाया जाता था कि भारत का कोई उपनिवेश न था, यहाँ तक कहा जाता था कि भारत वासी कभी अपने देश की चार दीवारी से बाहर ही नहीं गये । परन्तु विशाल भारत का इतिहास पढ़ने पर पता चलता है कि इस प्रकार के वक्तव्य कितने निर्मूल और फ़िज़ूल हैं । फ्रान्सीसी विद्वानों के अन्वेषण से पता लगता है कि किसी समय भारत में कम्बोडिया, सियाम, चम्पा, जावा और सुमात्रा तथा पूर्वीय एशिया के अन्य देशों में भारत का भारी साम्राज्य था । परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि भारत के उपनिवेशों का उद्देश्य मातृ-देश की राजनैतिक और आर्थिक महत्वकाँक्षाओं की पूर्ति न था ।

यह उपनिवेश एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से पैदा हुये और इन्हें भारत के किसी भी राजघराने ने अपने राज्य का भाग नहीं बनाया । भारत और इन में कोई राजनैतिक बन्धन न था, किसी भारतीय महाराजा ने इन से कर वसूल नहीं किया । परन्तु संस्कृति के कोण से यह एक महान सभ्यता के भाग थे जिस में कि केवल सियाम, कम्बोडिया, चम्पा और जावा ही सम्मिलित नहीं थे वरन चीन, तिब्बत, जापान, कोरिया, मध्य एशिया और अन्य देश भी थे ।

यद्यपि अंग्रेज़ी और भारतीय विद्वान भारतीय इतिहास का वैज्ञानिक अनुसन्धान गत सौ वर्ष से कर रहे थे, परन्तु कुछ समय पहले उन्हें भारतीय इतिहास के उज्ज्वल समय का कुछ पता न था । हमें न तो भारत के प्राचीन प्रताप के विषय में कुछ बतलाया जाता था, और न हीं

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अन्य देशों में प्रसार के संबन्ध में, और न ही उन गगन-स्पर्शी मन्दिरों के विषय में जो कि हमारे पूर्व-पुरुषों ने अन्य देशों में बनाये थे। जब कि भारतीय विद्वानों का फ्रान्सीसी विद्वानों से सम्पर्क हुआ तभी उन्हें पता लगा कि एशिया की संस्कृति के इतिहास में भारत का कितना हाथ था।

विशाल भारत सम्बन्धी ज्ञान बिना हमारा भारतीय इतिहास का ज्ञान अधूरा है। हमें अपने इतिहास को एक नवीन प्रकाश में पढ़ना होगा। हम अब तक के विद्वानों द्वारा बतलाये हुये वर्णन से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। हमें बतलाया जाता है कि भारतीय इतिहास हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज़ी काल एक दूसरे से सर्वथा भिन्न भागों और समयों में विभक्त है। बतलाया जाता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत का इतिहास केवल मगध का इतिहास था, जब कि प्रतापी मौर्य वंश के अन्त के पश्चात संगों और कन्वों में आपस में युद्ध होता था। परन्तु अब हमें पता चलता है कि उसी समय में श्रीमार ने चम्पा में एक भारतीय-राज्य की स्थापना की थी। उसी समय एक दूसरे भारतवासी कुन्दन सोम ने कम्बोडिया में एक अन्य राजवंश की नींव डाली। हमें यह भी बतलाया जाता था कि भारत से बाहर हिन्दू धर्म कहीं नहीं फैला। परन्तु चीनी यात्री फाहियान कहता है कि चौथी शताब्दी में जावा में हिन्दू धर्म बड़ी उन्नत अवस्था में था। यह समझा जाता है कि मुसलमानों के आक्रमणों के साथ हिन्दु-गति रुक गई। परन्तु यह वास्तव में ऐसा नहीं है। उस समय जब कि मुसलमान भारत के द्वार को खटखटा रहे थे, भारत चीन में अनेक धर्म प्रचारक भेज रहा था। बौद्ध भिक्षुओं के समूह गोबी मरुस्थल को लांघ कर चीन में भगवान बुद्ध का सुधा सन्देश पहुंचा रहे थे। एक सहस्र वर्ष तक भारत ने चीन को आध्यात्मिक गुरु प्रदान किये। उस समय जब कि भारत में मुसलमान शासन कर रहे थे वर्मा उपनामधारी भारतीय राजवंश चम्पा, कम्बोडिया और सियाम पर राज्य कर रहे थे। भारतीय राजाओं ने कम्बोडियामें १३ वीं शताब्दि तक राज्य किया और सियाम में तो इस के कहीं पीछे तक। आज तक भी सियाम एक स्वतन्त्र एशियाई साम्राज्य है। आज भी बाली द्वीप में हिन्दू समाज का—जिस में कि चार वर्णों का रूप विद्यमान है—चित्र दिखलाई देता है। इसलिये हम भारतीय इतिहास के हिन्दू और मुसलमानी समय को अलग २ नहीं कर सकते। हम नहीं कह सकते कि यहां पर हिन्दू-काल समाप्त होता है और इस के आगे हिन्दुओं का कोई वर्णन करने योग्य कृत्य नहीं।

अब हमें भारत के धार्मिक इतिहास पर कुछ विचार करना है। हम प्रायः मान लेते हैं कि हिन्दू धर्म ने अन्य मतावलम्बियों के लिये कभी अपने द्वार नहीं खोले। परन्तु चम्पा, कम्बोडिया, जावा, बाली और अन्य देशों के इतिहास से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में हिन्दू धर्म इन देशों में पहुँच गया, और वहां के निवासियों को अपने में सम्मिलित कर वहां कितने ही स्थिर कीर्ति स्तम्भ तथा स्मारक चिन्ह छोड़ आया, जो कि अब भी कला विशारदों में प्रशंसा पात्र हैं। इस समस्त प्रायःद्वीप में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अन्य हिन्दू और बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्त्तियां हैं। गया के 'विष्णुपाद' की भाँति कम्बोडिया में 'शिवपाद' है।

भारत ने सैकड़ों वर्षों तक कई एशियाई देशों में आध्यात्मिक गुरु भेजे। यह एक आदर्श गुरुकुल

रहा, जहाँ से कि भिक्षुगण ज्ञान का प्रकाश संग लेकर जाते रहे। नालिन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय वह केन्द्र थे जहां से कि अध्यात्म शिक्षा में प्रवीण नेता शास्त्र और शास्त्रों का ज्ञान ले बाहर जाते रहे। इन शास्त्रों का चीनी, तिब्बती, जापानी और अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया। अब भारत में असली शास्त्र तो नहीं मिलते परन्तु चीन और तिब्बत में इन के अनुवाद मिलते हैं। भारतीय साहित्य के इतिहास लेखक को इन्हें अवश्य देखना पड़ेगा। ………जावा की भाषा में महाभारत के मिलने ने भारतीय साहित्य के एक प्रश्न का उत्तर दे दिया है।

भारतीय उपनिवेश भारतीय संस्कृति के साम्राज्य का अटूट भाग हैं, जो कि मध्य एशिया तक फैले हुये थे। साम्राज्य के जो आजकल अर्थ किये जाते हैं, भारत ने वे अर्थ कभी नहीं किये अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिये उस ने कभी सेनाओं को बाहर नहीं भेजा। समस्त साम्राज्य के साधनों और शक्ति से सम्पन्न सैनिकों के स्थान में उस ने शान्त स्वभाव–बौद्ध भिक्षुकों को जो कि युद्ध विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ थे बाहर भेजा। इन्होंने एशिया के पूर्वीय और दक्षिणीय देशों में भारतीय संस्कृति को फैलाया। यह सभ्यता की विजय थी, जो कि बौद्धों ने चीन, तिब्बत, तुर्किस्तान, कोरिया और जापान में प्राप्त की। यदि भारत ने इन देशों में सुसज्जित सेना को भेजा होता तो वहां भारतीय संस्कृति और सभ्यता अब तक न बची होती। भारत से भेजी हुई सेना इन देशों में भारत के नाममात्र से अरूचि पैदा कर देती। बौद्ध और हिन्दू धर्म ने सियाम, कम्बोडिया चम्पा, जावा और अन्य स्थानों में भारतीय उपनिवेश निर्माण के लिये स्थान बना दिया। वहाँ पर भारतीय धार्मिक विचार भारतीय व्यापारियों के साथ २ गये। किसी भारतीय राज्यवंश की स्थापना से पहले ये देश भारतीय बन चुके थे।

× × ×

८. मध्य एशिया में आर्य सभ्यता

जिस समय बौद्ध-धर्म अपनी उर्जितावस्था में था, उस समय यूनान, रूम, मिश्र, काबुल आदि का तो कहना ही क्या, मध्य एशिया की राह उसके आचार्य चीन तक जाते और वहाँ अपने धर्म का प्रचार करते थे। अफ़गानिस्तान उस समय भारतीय साम्राज्य का एक अंग ही था। उस समय के भारतवासी बलख, बुखारा, खुरासान, खादोन और ताशकन्द तक फैले हुये थे। चीन और भारत के बीच आवागमन का मार्ग पूर्वी तुर्किस्तान में से था। ………इस प्रान्त में पहले कई बड़े २ नगर थे। बौद्धों के विहारों और मठों से यह सर्वत्र भरा हुआ था। इन मठों में बौद्ध विद्वान् हज़ारों विद्यार्थियों को विद्या दान देते थे। उन्होंने अपने मठों में बहुमूल्य पुस्तकालयों तक की स्थापना की थी। जो बौद्ध श्रमण चीन से भारत और जो भारत से चीन जाते थे वे इन्हीं मठों और विहारों में ठहरते हुये जाते थे। इन लोगों के काफिले के काफिले चलते थे। चीनी परिव्राजक ह्वेन सांग और इत्सिंग आदि इसी मार्ग से भारत आये थे। उन के यात्रा-वर्णनों में इस मार्ग में पड़ने वाले नगरों, नदियों, पर्वतों, रेगिस्तानों आदि का बहुत कुछ उल्लेख पाया जाता है।

कालान्तर में वर्वर में मुसलमानों का ज़ोर होने पर उन्होंने चीन और भारत के बीच के इस राज मार्ग को धीरे २ नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मठों, स्तूपों और विहारों को उजाड़ दिया। हज़ारों बौद्ध-श्रमणों को तलवार के घाट उतार दिया। नगरों को तहस नहस करके उन्हें ज़मीदोज़ कर दिया। ये सभी स्था। बालू के टीलों में परिणत हो गये। तूफ़ानों

के कारण उड़ी हुई बालू ने इन सबको अपने नीचे यहाँ तक दबा दिया कि इन का नामोनिशान तक न रहा।

अपने ऊपर आई हुई या आने वाली विपत्ति से अपनी प्राण-रक्षा असम्भव समझ कर बौद्ध विद्वान् प्राण दान देने के लिये तय्यार होगये। परन्तु उन्होंने अपने एकत्र किये हुये ग्रन्थ और चित्रादि के समुदाय को अपने प्राणों से भी अधिक समझा। अतएव कहीं २ उन्होंने इस समुदाय को पर्वतों की गुफाओं के भीतर, कहीं २ ज़मीन के नीचे भूतलवर्तिनी कोठरियों के भीतर, और कहीं २ पत्थर की संदूकों के भीतर रख कर उन्हें छिपा दिया। उन में से अनेक वस्तुसमुदाय तो अवश्य ही नष्ट होगया पर जो गुफाओं के भीतर और पृथिवी के पेट में छिपा दिये गये थे, वे अब धीरे २ निकलते जाते हैं। इस का विशेष श्रेय बौद्ध और हिन्दू धर्म के अनुयायियों को नहीं, योरोप के पुरातत्व प्रेमी ईसाइयों को है। लाखों रुपया खर्च कर के और कठिन से भी कठिन क्लेश उठा कर ये लोग निर्जन वनों रेतीले स्थानों के ध्वंसों को खोद-खोद कर उन हज़ारों वर्ष के पुराने ग्रन्थों और काग़ज पत्रों को ज़मीन के पेट से बाहर निकाल रहे हैं। उन में से कितने ही तो विवरण और टीका टिप्पणी सहित छप कर प्रकाशित भी होगये हैं। परन्तु अभी अनन्त रत्न राशि प्रकाश में आने को बाकी है।

१८७९ ईसवी में जर्मन विद्वान् डाक्टर रेजल का ध्यान चीनी तुर्किस्तान के उजाड़ खण्ड की ओर आकृष्ट हुआ। वे वहाँ गये। उन्हें वहाँ कितने ही प्राचीन खण्डहरों का पता चला। इस के बाद रूस के रहने वाले दो पुरातत्व वेत्ताओं ने, १८९६-९७ ईस्वी में, उसी तुर्किस्तान के तुरफान प्रान्त में खोज की। उन्हें, अपनी खोज में जो-जो चीज़ें मिली उन का विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी भाषा में प्रकाशित किया। उनकी देखा-देखी फिनलैण्ड के भी कुछ पुरातत्वज्ञों ने उस रेगिस्तान में पदार्पण करके वहाँ का कुछ हाल लिखा। इस तरह, धीरे-धीरे, लोगों का कौतूहल बढ़ता ही गया। अन्त में रूसी विद्वान् रैडलफ ने १८९९ ईसवी में, पुरातत्व विशारदों की एक सभा में, इस बात का प्रस्ताव किया कि पूर्वी और मध्य एशिया के खण्डहरों की बाकायदा जाँच की जाय। यह प्रस्ताव "पास" हो गया। तब से इन प्रान्तों की जाँच के लिये कई देशों के विद्वानों के यूथ-के-यूथ वहाँ पहुँचे और अनेक बहुमूल्य पुस्तकों, मूर्तियों, चित्रों आदि का पता लगा कर उन्होंने उन पर बड़े मार्के के लेख प्रकाशित किये। यहाँ तक कि सुदूरवर्ती जापान ने भी कई विद्वानों को भेज कर वहाँ खोज कराई। वे लोग भी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री अपने देश को ले गये।

१८९१ ईस्वी में ब्रिटिश गवर्मेंट के एक दूत चीनी तुर्किस्तान में थे। उनका नाम था कप्तान बावर। उन्हें भोजपत्र पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ मिला। उसे उन्होंने बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी को भेज दिया। डाक्टर हार्नली ने उसे पढ़ा। मालूम हुआ कि वह गुप्त नरेशों के समय की देवनागरी लिपि में है और ईसा की चौथी शताब्दी में लिखा गया था। अतएव उसकी रचना उसके भी बहुत पहले हुई होगी। एक-आध को छोड़कर इससे अधिक पुरानी हस्तलिखित पोथी भारत में कहीं नहीं पाई गई। जो पोथियाँ सब से अधिक पुरानी हैं वे ईसा के ग्यारहवें शतक के पहले की नहीं। यहाँ की आबोहवा में इससे अधिक पुरानी पुस्तकें रही नहीं सकतीं, वे टूट-फूट कर नष्ट हो जाती हैं।' बावर साहब को मिली हुई पोथी में भिन्न भिन्न सात पुस्तक हैं। उन में से तीन वैद्यक विषय की

हैं। अवशिष्ट पुस्तकें विशेष करके बौद्ध-धर्म से सम्बन्ध रखती हैं।

जब से बावर साहब की पोथी प्रकट हुई तब से तुर्किस्तान के रेगिस्तानी खण्डहरों की खुदाई आदि का काम और भी जोरों से किया जाने लगा। फ्राँस, रूस, स्वीडन, जर्मनी आदि के पुरातत्वज्ञ वहाँ से ऐसी-ऐसी प्राचीन वस्तु समुदाय, अपने अपने देश को उठा ले गये। चुनाचें ब्रिटिश गवर्मेंण्ट भी इस सम्बन्ध में चुप नहीं रही। उसने इस काम के लिये कलकत्ता मदरसा के प्रधान अध्यापक, डाक्टर आरल स्टीन की योजना की। १९००-०१ ईसवी में डाक्टर साहब चीनी तुर्किस्तान को गये। वहां उन्होंने खुतन या खेटान के सूबे में जाँच पड़ताल की। उन्हें अपने काम में अच्छी कामयाबी हुई। अनेक पत्र-रत्न उन्हें प्राप्त हुए। उनका वर्णन उन की लिखी हुई पुस्तक—"प्राचीन खेटान" में सविस्तार पाया जाता है। इसके बाद डाक्टर साहब ने चीनी तुर्किस्तान पर दो चढ़ाइयाँ और कीं। उनकी तीसरी चढ़ाई १९१३ में हुई। १९०६ ईसवी वाली दूसरी चढ़ाई में उन्हें एक ऐसी कोठरी मिली, जो बाहर से बन्द थी, परन्तु जिसके भीतर पुस्तकें भरी हुई थीं। इन पुस्तकों का कुछ ही अँश डाक्टर स्टीन को मिला, अवशिष्ट अंश एम्० पेलियो नाम के एक फ्रेंच विद्वान् के हाथ लगा। इस चढ़ाई का बहुत ही विशद वर्णन डाक्टर स्टीन ने पाँच बड़ी बड़ी जिल्दों में किया है। वे प्रकाशित भी हो गई हैं। उनका नाम है "सेरैंडिया"।

अपनी दूसरी चढ़ाई में जिस समय डाक्टर स्टीन तुर्किस्तान में प्राचीन चिन्हों और वस्तुओं की खोज कर रहे थे, उसी समय मध्य एशिया में खोज करने के लिये फ्राँस की राजधानी पेरिस में एक परिषद् की स्थापना हुई। उस की सहायता फ्राँस की गवर्मेंण्ट ने भी धन से की और कई एक अन्य सभाओं ने भी की। इस परिषद् ने एक चढ़ाई की योजना की। एम्० पोलियो, जिनका नाम ऊपर एक जगह आया है, इसके प्रधानाध्यक्ष नियत हुए। वे अपने दलबल समेत जून १९०६ में पेरिस से रवाना हुए और मास्को ताशकन्द होते हुए, पामीर के उत्तर काशगर तक पहुंच गये। वहाँ आस पास खोज करते हुए वे तुनहाँग नामक स्थान में पहुँचे। इसके कुछ ही समय पहले डाक्टर स्टीन एक गुफा से बहुत सी पुस्तकें प्राप्त करके लौट चुके थे। यह एक प्रसिद्ध प्राचीन स्थान था। इस की खबर पोलियो को पहले ही से थी। उन्होंने यह भी सुन लिया था कि डाक्टर स्टीन वहाँ से बहुत सी प्राचीन पुस्तकें लेकर पहले ही चम्पत हो गये हैं फिर भी उन्होंने वहाँ पर अपने मतलब की कुछ चीजें पाने की आशा न छोड़ी।

खोज करने पर पोलियो को मालूम हुआ कि वैगताऊ नाम का एक चीनी बौद्ध पुरानी पुस्तकों का स्थिति स्थान जानता है। पता लगाने पर वह बौद्ध साधु उन्हें मिल गया। पोलियो ने उस से हेलमेल करके पुस्तकों का अनुसन्धान लगाने की प्रार्थना की। उसने इस प्रार्थना को स्वीकार किया। वह उन्हें एक ऐसी जगह ले गया जहाँ पर कोई एक हज़ार वर्ष की पुरानी सैकड़ों बौद्ध गुफाएँ या कोठरियाँ थीं। उन में से किसी समय उस ने एक को खोल कर देखा था और वह उसे पुस्तकों से परिपूर्ण मिली थी। इसी गुफा को बैंग ने पोलियो के लिये खोला। खोलने पर जो दृश्य पोलियो को दिखाई दिया उससे उनके आश्चर्य और हर्ष की सीमा न रही। ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी के अन्त में जब मुसलमानों ने बौद्धों के नाश का बीड़ा उठाया तब उस प्रान्त के बौद्ध विद्वानों ने अपना सारा ग्रन्थ और चित्र समुदाय लाकर उस गुफा में बन्द कर दिया। फिर उस का मुँह

चुनवा दिया और चुनी हुई जगह पर बेल-बूटे और चित्र खिचवा दिये। वह इस लिये किया, जिस में वह दीवार सी मालूम हो, किसी को यह सन्देह न हो कि यह गुफा है और इस के भीतर पुस्तकें भरी हुई हैं। मुसलमानों ने पुस्तकादि के इस संग्रह के स्वामी बौद्धों की क्या दशा की, कुछ मालूम नहीं तब से १९०६ ईसवी तक यह गुफा बराबर बन्द ही रही।

इस गुफा के भीतर कोई १५ हज़ार पुस्तकें–संस्कृत, प्राकृत, चीनी, तिब्बती तथा कई अन्य अज्ञात भाषाओं और लिपियों में—मिलीं, रेशम के टुकड़ों पर खिचे हुए सैकड़ों अनमोल चित्र भी प्राप्त हुए। पुस्तकें सभी ग्यारहवीं सदी के पहले की हैं। कितनी ही ब्राह्मी लिपि में हैं। अधिकतर पुस्तकों का सम्बन्ध बौद्ध-धर्म से है। परन्तु काव्य, साहित्य इतिहास, भूगोल, दर्शन आदि शास्त्रों से भी सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें इस पुस्तकालय से मिलीं। संस्कृत भाषा में लिखी हुई कितनी ही पुस्तकें इस में ऐसी हैं जो भारत में सर्वथा अप्राप्य हैं। यहाँ तक कि इसकी अनेक पुस्तकें, जो चीनी में भी दुर्लभ क्या अलभ्य ही हैं। पुराने बही खाते, रोजनामचे और दस्तावेज तक यहाँ मिले। इन सब का प्रकाशन धीरे धीरे हो रहा है।

इस से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत ने, मध्य एशिया की राह, चीन ईरान, सीस्तान (शकस्थान) और यूनान आदि को विद्यादान देने और उन्हें सभ्य बनाने का कितना काम किया था।

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

संयुक्त प्रान्त की कौन्सिल ने भी महिलाओं को मताधिकार दे दिया है यह प्रस्ताव प्रधान द्वारा पेश होकर सर्व सम्मति से स्वीकृत हुवा ।

—:*:—

श्रीमती मुथुलक्ष्मी अमल एम. एल. सी. ने इस वर्ष में देवदासी रूपी कुप्रथा का अन्त करने के लिये जो आन्दोलन शुरू किया था वह एक प्रकार से सफल रहा । मद्रास की नियामिका समिति ने सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि उन मन्दिरों को जहां पर कि देवदासियों की प्रथा प्रचलित है सार्वजनिक कोष से कोई सहायता न दी जाय । शोक कि अब भी कुछ एक देवदासियां पुरानी लकीर पीटने के पक्ष में हैं उनके विचार में इस प्रथा के हट जाने से देवतागण गाने और नाचने के स्वाद से वंचित रह जांयगे ।

—:*:—

मद्रास की महिलाओं ने कांग्रेस सप्ताह के अन्तिम दिन एक महिला-दिवस मनाने का निश्चय किया है उनकी इच्छा है कि उन सब विषयों पर जिनका कि स्त्री जाति से बड़ा गूढ़ सम्बन्ध है विचार किया जाय और वहां पर एकत्रित स्त्री समाज की उपस्थिति से लाभ उठाया जाय उन दिनों कांग्रेस के प्रतिनिधि तथा दर्शिकाओं के रूप में वहां पर बहुत सी स्त्रियां एकत्रित होंगी उन सब को इस महिला दिवस में सहयोग देने के लिये आमन्त्रित किया जायगा जिससे कि इस कार्य्य को अखिल-भारतीय रूप मिल सके स्वागत सम्बन्धी सब कार्य्य करने के लिये मद्रास की महिलाओं ने श्रीमती मालती पटवर्धन बी. ए. के मन्त्रित्व में एक सभा बनाली है । तीन में से दो बैठकों की स्वागताध्यक्ष का कार्य्य श्रीमती डा. बेसेन्ट तथा डा. मुथुलक्ष्मी करेंगी । इस महिला दिवस की सभानेत्री का पद श्रीमती सरोजनी ग्रहण करेंगी ।

—:*:—

बम्बई कौंसिल की आगामी बैठक में तीन बिल पेश करना चाहते हैं:—

(१) चौदह वर्ष से कम आयु की कन्या तथा अठारह वर्ष से छोटे लड़कों का विवाह नियम विरुद्ध ठहराया जावे; (२) प्रत्येक विवाह की सरकारी पत्रों में रजिष्टरी कराई जावे; और (३) विधवाओं को गोद लेने का अधिकार न रहे ।

—:*:—

हमारी पाठिकाओं को पता होगा कि किस प्रकार श्रीयुत् खड्ग बहादुर सिंह ने युवती कन्याओं पर अत्याचार का बदला लेने के निमित्त कलकत्ते के एक धनवान वणिक् पर गोली चलाई थी । इस अपराध में इनको आठवर्ष की कड़ी कैद मिली थी । भारतवर्ष के प्रत्येक कोने से खड्ग बदादुर की वीरता की प्रशंसा हुई थी और बंगाल के गवर्नर महोदय से प्रार्थना की गई थी कि वह दया करके वीर के इस दण्ड को हटा दें । हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि दो वर्ष के कारावास के पश्चात् इस विषय पर पुनः विचार होगा । पूरी आशा है कि उस समय इन्हें छोड़ दिया जायगा । शोक कि नेपाली कन्या राजकुमारी को सरकारी कचहरियों से उस मार्मिक वेदना के लिये जो कि उसे सहनी पड़ी किसी प्रकार का आश्वासन न मिला । उन हजारों स्त्रियों में से जो कि पुरुषों की शारीरिक और पैशाचिक कामवासना का शिकार होती हैं इस कन्या का जीवन केवल एक उदाहरण है ।

—:*:—

गत अक्तूबर मास की घटनाओं में से श्री धनपाले मुडलियर के मुकाबिले में श्रीमती हेनन एंजलो का मद्रास म्युनिसिपल कमेटी की सदस्या चुना जाना एक उल्लेखनीय घटना है । इस से पहले श्रीमती एंजलो ईसाइयों के प्रतिनिधि रूप से कमेटी की सदस्या रह चुकी हैं परन्तु अब मिश्रित चुनाव में उन को अपना प्रतिनिधि चुन कर जनता ने उनके प्रति अपने विश्वास का परिचय दिया है ।

—:*:—

भारतीय महिला समाज की बम्बई शाखा की सदस्याओं ने स्त्रियों से चालीस सहस्र रुपया गुजरात में गत बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ एकत्र किये हैं ।

—:*:—

मिस मेयो की घृणित पुस्तक "मदर इण्डिया" के प्रतिरोध में भारत के कई स्थानों पर महिलाओं ने एकत्रित होकर प्रस्ताव पास किये हैं ।

—:*:—

बड़ोदा दरबार ने कन्याओं के विवाह के लिये न्यून से न्यून आयु चौदह वर्ष निश्चय की है यह नियम किसी अवस्था में भी शिथिल नहीं किया जायगा । जो माता पिता अथवा अन्य सम्बन्धी इस नियम की अवहेलना करेंगे उन्हें कारावास दण्ड दिया जायगा ।

—:*:—

इस वर्ष मद्रास में होने वाली इंडियन सोशल कान्फरेंस की स्वागत समिति ने डा. मुथुलक्ष्मी

अमल को स्वागताध्यक्ष चुना है। आपने अपने प्रान्त में समाज सुधार सम्बन्धी बहुत कुछ कार्य किया है आप अन्तर्जातीय महिला समिति में भारत की प्रतिनिधि बन कर सम्मिलित हो चुकी हैं।

पंजाब सरकार ने कुमारी "जमीला मेरी सराजुद्दीन को स्त्री शिक्षणालयों में व्यवसाय विषयक शिक्षा की निरीक्षका नियुक्त किया है। आप लाहौर फारमन क्रिश्चियन कालिज के प्रोफेसर आर. सराजुद्दीन की पुत्री हैं। पंजाब युनिवर्सिटी से एम. ए. की उपाधि प्राप्त कर अधिक शिक्षा प्राप्त करने के हेतु आप विलायत गई। वहां पर पहले तो आपने लंडन विश्वविद्यालय के व्यवसायिक शिक्षा का डिप्लोमा प्राप्त किया। और तत्पश्चात् एडिनबरा विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि ली। भारत में लौटने से पहले आपने फ्रांस, जर्मनी और स्विज़रलैंड के गृह प्रबन्ध की शिक्षा देने वाली संस्थाओं का अवलोकन किया।

कुमारी रूप को भारतीय संगीत अधिक पसंद है। वे कहती हैं पश्चिमीय गान मनुष्य के मनोविकारों को उत्तेजित करता है परन्तु इस के विपरीत भारतीय गान चित्त को शान्त कर परमात्मा के निकट पहुंचाता है।

आज कल योरुप में स्त्रियों में बाल कटाने की प्रथा बढ़ती जाती थी परन्तु अब ऐसा प्रतीत होता है कि पैरिस में शौक़ीन स्त्रियां पुनःलम्बे बालों की ओर झुक रही हैं।

गृह प्रबन्ध

१. कपड़ों में माया लगाने के लिये यदि इसे साबुन के पानी में मिला लिया जाय तो चमक अधिक आती है और इस्त्री चिमटती नहीं।

२. छातों पर से मट्टी के धब्बे उड़ाने के लिये यदि कपड़े से मैथिलेटिड स्पिरिट से रगड़ा जाय तो ये तुरन्त दूर हो जाते हैं।

३. लकड़ी अथवा चमकदार रोग़नी वस्तुओं पर से पैन्सिल के निशान ताजा काटे हुए निम्बू से रगड़ने और उसके पश्चात थोड़ा सा चूना फेरने से हट जाते हैं।

४. यदि कपड़ों पर चाय के धब्बे पुराने पड़ जायें तो साधारण रीति से धोने से नहीं जाते, परन्तु यदि जल में थोडा सा सुहागा मिला कर धोया जाय तो तुरन्त दूर हो जाते हैं।

५. लाल चमड़े के जूते के घिसने पर प्रायः सफेद चमडा चमकने लगता है। यदि इस स्थान पर थोडा सा टिंचर आयोडीन लगा कर और इसके सूकने पर रोगन किया जाय तो रंग पुनः ठीक हो जाता है।

६. यदि लाल जूतों को काला करना हो तो पहले उन्हें कच्चे कटे हुए आलू से रगड़ो और फिर साधारण रीति से पालिश कर दो।

७. चावलों को उबालते समय यदि पानी में नीम्बू का रस मिला दिया जाय तो इनका रंग बहुत सफेद हो जाता है और एक एक दाना अलग हो जाता है।

वैज्ञानिक संसार

१. शरीर के आरपार देखना

डाक्टर ऐन्ड्री टाऊर्ज़ फ्रान्स के एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उन्होंने एक खोज की है जिस से उन का कथन है कि रोगियों के औषधि द्वारा इलाज और चीर फाड़ के तरीकों में बड़ी भारी क्रान्ति उत्पन्न हो जायगी। कितने ही विद्वानों का कथन है कि यह खोज ऐक्स-रेज़ की खोज से भी कहीं महत्वपूर्ण है। इस के द्वारा मनुष्य शरीर के ऊपर का चमडा और माँस इतना पारदर्शी बन सकता है कि शरीर के भीतर के सब अङ्ग इस प्रकार काम करते हुए दीख सकेंगे जैसा कि हम किसी दर्पण में देख रहे हों। डाक्टर टाऊर्ज़ का विचार है कि वह शीघ्र ही अपनी खोज को बड़े-बड़े डाक्टरों और वैद्यों के सामने रखेंगे। यदि यह खोज वैसी ही हुई जैसा कि डाक्टर साहब का कथन है तो निःसन्देह यह तपेदिक, रसौली इत्यादि कितनी ही बिमारियों के ठीक ठीक निदान और चिकित्सा में अमूल्य साधन सिद्ध होगी।

× × ×

२. तैरने की नई ईजाद

कारिथिया में वर्दर नाम की एक झील है। उस के जल पर दो पुरुषों और एक स्त्री को साथ-साथ चलते देखकर लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ। झील प्रायः आधा मील चौड़ी है परन्तु यह बड़ी सुगमता से उस के एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुँच गये।

इन में से एक आदमी का नाम काल मैन था। यह जङ्गलों के महकमे में इन्जिनियर है और इस प्रकार चलने का तरीका आप ही की ईजाद है। यह ईजाद चौड़े २ चप्पुओं की भाँति के लम्बे-लम्बे पङ्ख से हैं जो कि साधारण बूटों के साथ जोड़े जा सकते हैं। और इनकी सहायता से चलने वाले को जल में डूबने का कोई भय नहीं रहता।

दर्शकों में से एक पुरुष ने इन पङ्खों को प्रयोग में लाने की आज्ञा प्राप्त की और बिना किसी विधि के बतलाने के वह झील में चला गया।

जल में क्षोभ था परन्तु उसको चलने में कोई कष्ट न हुआ और वह किश्तियों के बीच में से होता हुआ कोई पौने मील जल के ऊपर चलकर पुनः किनारे पर पहुँच गया।

इस के पश्चात् और भी कितने ही स्त्री पुरुषों ने उनका अनुकरण किया और उन्हें भी कोई कठिनाई नहीं हुई।

कालमैन का कथन है कि झील पर चलना

कोई कठिन कार्य नहीं और तैरना न जानने वाले व्यक्तियों को भी किसी हानि की सम्भावना नहीं यदि वह बहुत दूर न जावें ।

× × ×

३. वह पौदे जो कि पत्थर को खा जाते हैं

यह ध्यान में लाना भी कठिन है कि किस प्रकार गन्धमुखी, दीमक इत्यादि मट्टी के डेले की आड़ लेकर उस के नीचे पृथिवी में गहरा छेद कर लेते हैं, परन्तु यह ध्यान में लाना और भी कठिन है कि ऐसे भी प्राणी हैं जो कि पत्थर तक में आरपार छेद कर सकते हैं ।

परन्तु यह ठीक ही है । यह छेद करने वाले कोई बड़े बलिष्ट जीव नहीं वरन इतने नन्हें-नन्हें कोमल पौदे हैं कि वे सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र की सहायता द्वारा दिखलाई भी नहीं पड़ते ।

यह आश्चर्य जनक छेद करने वाले जीव काई की प्रकार की वनस्पति श्रेणी से सम्बन्ध रखते हैं, जो कि सड़ने वाले जलाशयों पर जम जाती है । इन में यह विचित्र शक्ति है कि यह उस पत्थर को जिस पर यह उगते है—यदि उस पत्थर में चूने के लेश हों— घोल डालते हैं । यह देखा गया है कि जब यह असंख्यों की संख्या में समुद्र के किनारे उगते हैं तो बड़ी बड़ी चूने की पहाडियों को खोखला कर डालते हैं ।

× × ×

४. बहिरों के लिये कानों का व्यायाम

डाक्टरों का यह विचार है कि यदि बहिरों के कान में लगातार शब्द पहुंचाया जाय तो वह कान के पर्दे पर जाकर एक प्रकार की खुजली सी उत्पन्न करता है जिस से कि उनकी श्रवण शक्ति में बड़ी उन्नति होती है । एक ऐसी मशीन बनाई गई है जिसके द्वारा बहुत से बहिरों के कानों में एक साथ यह उसकाहट पैदा की जा सकती है । यह बहिरों को शिक्षा देने वालों के बड़े काम की है । यह अनुमान किया गया है कि बीस प्रतिशतक जनता की श्रवण शक्ति में कुछ न कुछ दोष हैं यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है जिन्हें बिलकुल सुनाई न देता हो । उस मशीन द्वारा उत्पन्न वायु कम्पन्न इन के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है । यह वायु कम्पन्न वाह्य कर्ण में सीधा पहुंचाया जाता है । यदि कान की कोमल हड्डियां और नसें कड़ी पड़ गई हों तो इस से यह नरम पड़ कर बलवती हो जाती हैं ।

× × ×

५. रेडियो माल्ट

फेफड़ों की बीमारियों में और वैसे भी साधारणतया बल प्राप्ति के लिये डाक्टर लोग प्रायः काडलिवर तेल का प्रयोग बतलाते हैं । परन्तु अब रेडियों माल्ट नाम की एक ऐसी औषधि तैयार हुई है जो कि इस काडलिवर तेल मिश्रिब माल्ट से कहीं उपयोगी है । उस में तीनों वाईटेमिन (A. B. और D. विद्यमान हैं । यह कहा जाता है कि इस में निम्न प्रकार की खूबियां हैं:—

१. इस में काडलिवर आयल और माल्ट से अधिक मात्रा में वाईटेमिन है ।

२. इस की वाईटेमिन मात्रा सदा निश्चित रहती है जब कि काडलिवर आयल की बदलती रहती है ।

३. इस नवीन औषधि का स्वाद बड़ा उत्तम है, जहां कि काडलिवर आयल बहुत ही गन्दा और बकबका है ।

४. यह निरामिष है ।

× × ×

६. अंधेरे में देखना

जैसा कि हम ज्योति के पाठकों को कई वार बतला चुके हैं सूर्य की किरण का प्रकाश इन्द्रधनुष के सात रंगों से मिल कर बना है। यदि त्रिपार्श्व शीशे में से निकलने दिया जाय तो दूसरी ओर छोटा सा इन्द्र धनुष बन जाता है जिस में कि ऊदा, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल सातों रंग बड़े स्पष्ट रूप से दिखलाई देते हैं। क्या सफेद प्रकाश में केवल यही सात रंग हैं? रंग तो और भी हैं परन्तु हमारी इन आंखों को दिखलाई नहीं देते। ऊदा से आगे और लाल के इस ओर भी अदृश्य प्रकाश रश्मियाँ निकलती रहती हैं जिन्हें हमारी आंखें देख नहीं, सकतीं। प्रत्येक गरमी रखने वाले पदार्थ में से लालेतर किरणें निकलती रहती हैं। इस का अभिप्राय यह हुआ कि रात्रि के अन्धकार में भी बहुत से पदार्थों में से प्रकाश की किरणे निकलती हैं परन्तु हमारी आंखों के लिए वह न निकलने वाली रोशनी है। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिस से हम इन आंखों द्वारा इस प्रकाश को देख सकें? यदि ऐसा हो सके तो "अंधे को आंखें मिलने वाली बात हो जाय। परन्तु विज्ञान के लिये यह भी सुगम है महाशय बेयर्ड ने 'रात्रि-ज्योति' नाम का एक यन्त्र बनाया है जिस की सहायता से पदार्थों के लालेतर प्रकाश को एक स्थानपर इकट्ठा करके साधारण प्रकाश में परिवर्तित कर दिया जाता है जिस का चित्र एक धुन्धले शीशे पर पड़ता है और इसे हमारी आंखें देख सकती हैं, इस अदृश्य प्रकाश दर्शक की सहायता से अमावस्या की रात्रि में भी दिन के समान पदार्थ दिखलाई देते हैं।

जब की दो लडने वाली सेनायें रात्रि के समय एक दूसरे के सामने पड़ी हों तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह नितान्त विश्राम कर रही हैं। परन्तु अंधकार का आश्रय लेकर अगले दिन के युद्ध के लिये नाना प्रकार की तय्यारी की जाति हैं। सेना का स्थान परिवर्तन होता है, तोपें और बन्दूकें उचित स्थान पर लगाई जाती हैं, और अपनी रक्षा का सामान जोड़ा जाता है इत्यादि। यह सब कुछ होता है परन्तु शत्रु को इसका कुछ भी पता नहीं होता। परन्तु अब इस नवीन यन्त्र की सहायता से यह सब असम्भव हो जायगा। परन्तु यह यन्त्र शान्ति के समय में भी उपयोगी होगा। धुन्ध वाली रात्रियों से जहाज़ों को चलाने में बड़ा काम का होगा। और भी कई प्रकार से इस से मानव जाति को सुख पहुँचाने की सम्भावना है।

× × ×

७. सब से तीव्र कृत्रिम प्रकाश

'मनुष्य ने एक छोटा सा सूर्य बना लिया है' यह कथन कितना आश्चर्यजनक है, परन्तु है सर्वथा सत्य। यह एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ है। जिस में प्रकाश की किरण निकल कर मीलों तक उजाला करती हैं। इस के बनाने का उद्देश्य एक ऐसा प्रकाश दायक यन्त्र रचना था जो कि हवाई जहाज़ों को पथदर्शन का काम दे सके। परन्तु भविष्य में इस से क्या-क्या काम लिये जा सकेंगे यह कहना बड़ा कठिन है।

यह प्रकाश की किरणों का गुच्छा चार्लटविल अमरीका में स्थापित किया गया है। अब तक बने हुए किसी भी प्रकाश-स्तम्भ से इसका प्रकाश पाँचगुना अधिक है। इस के प्रकाश में १३८५०००००० बत्ती

की रोशनी है जो कि आकाश की ओर फैल कर रात्रि के समय न केवल परमात्मा की महिमा को ही दर्शाती है वरन मनुष्य की बढ़ती हुई शक्तियां का भी आभास कराती है। साफ रात्रि में यह प्रकाश ३०० मील की दूरी से दिखलाई देता है और जब इसका मुंह सीधा वायु-मण्डल की ओर कर दें तो ७०० से १००० मील तक पहुँच जाता है। इस प्रकाश स्तम्भ के यन्त्र में एक नन्हा सा स्थान ऐसा है जिसका ताप सूर्य के ताप के बराबर है। रात्रि के समय प्रकाश के सहारे आकाश में नाना प्रकार के दृश्य दिखलाई देते हैं। सात मील की उंचाई पर बादलों की चादर दृष्टि गोचर होती है। यही नीचे आकर वर्षा का कारण बन जाते हैं। उस प्रकाश से बादलों में जल और नन्हें नन्हें पृथिवी के कण नापे जा सक्ते हैं।

ऊपर बतलाये इन्द्रधनुष के ऊदे प्रकाश से परे की अदृश्य किरणें मनुष्य और प्राणि मात्र तथा वनस्पति के लिये बड़ी आवश्यक हैं। यह प्रकाश-स्तम्भ इन किरणों का बड़ा भारी भण्डार है। यह प्रकाश इतना तेज़ है कि इसे देखने के लिये हमें विशेष प्रकार के शीशों में से देखना पड़ता है। यदि हमारे नंगे शरीर पर पड़ जाय तो उसे झुलस देता है चाहे वह कई सौ गज़ पर क्यों न हो। इस प्रकाश से ५० मील के फासले से समाचार पत्र पढ़ सकते हैं। जो हवाई जहाज दिन में दिखलाई नहीं देते वे इस प्रकाश से रात्रि को बड़ी सुगमता से दिखलाई दे सकते हैं। यह प्रकाश धुन्ध को नहीं चीर सकता परन्तु जहां धुन्ध हो वहां रुक कर यह एक प्रकाश का बड़ा तालाब सा बन जाता है। अमरीका में निःसन्देह यह एक आश्चर्यमयी वस्तु है।

× × ×

८. सांप के काटे का इलाज

आजकल बहुत से रोगों का टीका द्वारा इलाज किया जाता है। चेचक, प्लेग, राजयक्ष्मा, टाइफाइड इत्यादि ऐसे ही रोग हैं। टीके का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य के शरीर में टीके द्वारा सीरम पहुंचाने से उस शक्ति पर हलका सा उसी रोग का आक्रमण हो जाता है। जिसका कि वह सीरम होता है। इस आक्रमण से मनुष्य तथा अन्य पशुओं के रक्त में जो रोग के जीवाणुओं का प्रतिरोध करने वाले “रक्षाणु” होते हैं वह उत्तेजित हो जाते हैं और उनकी संख्या बढ़ने लगती है। इस प्रकार द्वन्द युद्ध आरम्भ हो जाता है। यदि रोग के कीटाणु थोड़े और निर्बल होते हैं जैसा कि हलके प्रकोप की अवस्था में होता है तो “रक्षाणु” इन्हें मार डालते हैं और मनुष्य बच जाता है। यदि रोग का आक्रमण बहुत तीव्र हो तो “रक्षाणुओं” का उत्तेजित होने और संख्या में बढ़ने का समय नहीं मिलता और कीटाणु विजय प्राप्त कर लेते हैं। यह सीरम का टीका कर के, हम रोग का इतना हलका आक्रमण करवाते हैं कि रक्त में “रक्षाणु” पर्याप्त समय पाकर यथोचित वृद्धि को प्राप्त हो सकें। एक बार पर्याप्त संख्या में उत्पन्न हो जाने पर यह भिन्न २ रोगों के अनुसार यह न्यूनाधिक समय तक रक्त में विद्यमान रहते हैं और उतने समय तक प्राणि भविष्यत में कभी हो जाने वाले उस रोग से निर्भय रहता है। कितने ही रोगों में—रोग होने के पीछे भी टीका करने से रक्त में विद्यमान “रक्षाणुओं” की वृद्धि में बड़ी सहायता मिलती है और वह रोग कीटाणुओं के प्रबल होने से पहले ही उन्हें दबा सकते हैं। राजयक्ष्मा, टाईफाइड इत्यादि का टीका इस के उदाहरण हैं।

इसी सिद्धान्त पर अब सांप के काटे का इलाज किया जाने लगा है। सांप का जो विष उस के मसतिष्क में रहता है यदि वह मनुष्य या अन्य पशुओं के शरीर में एक दम प्रवेश कर जाय तो यह प्राणि उसका प्रति रोध नही कर सकते, परन्तु यदि इसका आक्रमण बहुत हलका हो और इसके रोगानुरोग कीटानुओं को बढने का अवसर न मिले तो परिणाम भयङ्कर नहीं होता। यह तभी हो सकता है जब कि उस के शरीर में टीके द्वारा ऐसी औषध को पहुँचाया जाय कि जिस में रोग के कीटाणु' तो न हों परन्तु 'रक्षाणु' बहुत बड़ी मात्रा में हों। सांप के विष का "सीरम" इसी प्रकार का होता है। यदि किसी रोगी के रक्त को बाहर निकाल कर उबाला किया जाय तो रक्त के लाल अण्डे इकट्ठे होकर गुच्छा-सा बन जाते हैं और इनके साथ-ही रोग के कीटाणु भी मर जाते हैं परन्तु "रक्षाणुओं" को कोई क्षति नहीं होती। छानने पर एक सफेद रंग का पानी-सा निकल आता है जिसमें सब 'रक्षाणु' विद्यमान रहते हैं और इसे "सीरम" कहते हैं ;

बम्बई की सरकारी प्रयोगशाला में साँप के विष का सीरम बनाया जाता है। इस प्रयोगशाला में बहुत से साँप पाले हुये हैं। इनको एक-एक करके पिंजरे से बाहर निकाल कर सिर को एक बड़ी मोटी लाठी से दबाकर पूँछ को एक पैर से दबा लेते हैं। अब हाथ से उसके सिर को इस प्रकार पकड़ते हैं कि वह हिल कर काट न सके। सिर को उलटा कर मसतिष्क में रहनेवाली विष की गिल्टियों को दबाकर विष को काँच के गिलास में निकाल लेते हैं। फिर सांप को पकड़े पकड़े ही मुंह में दूध डाल कर उसे दूध पिलाते हैं। इस से वह पुनः अपनी पहली अवस्था में आजाता है और कुछ समय बीतने पर पुनः विष देने योग्य बन जाता है। अब इस विष को कई बार बहुत थोड़ी थोड़ी मात्रा में परन्तु उत्तरोत्तर बढ़ने वाली मात्रा में पिचकारी द्वारा जीवित घोड़े के शरीर में (रक्त में) मिला देते हैं। शनैः २ रक्त में "रक्षाणु" बढ़ कर बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं। अब घोड़े के शरीर से कई सेर रक्त बाहर निकाल कर उस का सीरम तय्यार करते हैं। यह सीरम साँप के विष का प्रतिरोध करने वाली बड़ी उत्तम औषध है। इस के द्वारा सांप काटे का अब बहुत करके इलाज किया जाता है।

* * *

कन्या-गुरुकुल समाचार

देहली से देहरादून आने के पश्चात कई अनिवार्य्य कारणों से ज्योति में कन्या गुरुकुल समाचार न दिये जा सके । इन में से मुख्य कारण सम्पादिका जी का रुग्ण होना था । ईश कृपा से अब उनका स्वास्थ उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है अतः अब ज्योति भी समय पर निकला करेगी और प्रतिमास पाठकों को गुरुकुल समाचार भी विदित होते रहेंगे ।

निवास स्थान

देहरादून में राजपुर रोड पर २१ तथा २२ नं० की दो कोठियाँ किराये पर ली गई हैं, यह स्थान अति रमणीक तथा मनोहर है । समीप ही एक छोटी-सी नदी भी बहती है। सामने एक अति-उत्तुङ्ग शिखरों से युक्त हिमालय पर्वत इस कुल की भी महत्ता का परिचय देता हुआ, इसकी शोभा को द्विगुणित कर रहा है । यद्यपि यहां पर दो कोठियां किराये पर ली गई हैं, एक में विद्यालय तथा दूसरी में आश्रम विभाग है । तथापि स्थानाभाव के कारण कई हजार रु० व्यय करके एक विशाल-भवन बनाया गया है, जिसमें १३० ब्रह्मचारिणियां रह सकती हैं, उसे उपहास में ताजमहल नाम से पुकारते हैं । अब नवीन कन्यायें प्रविष्ट हुई हैं। ताजमहल में स्थान पर्याप्त नहीं है अतः नये कमरे तैय्यार हो रहे हैं । स्थान की कमी निजी स्थायी-भवन बनने तक रहेगी । यहां पर एक विशेषता है जो कि देहली में नहीं थी । इस कोठी में अमरूद अनार आम मालदे इत्यादि के कई वृक्ष हैं, एक सुन्दर छोटा सा उद्यान भी है जिस में कई प्रकार की भाजिया इत्यादि लगाई गई हैं । चारों ओर हरियावल ही हरियावल दिखलाई देती है । इस उद्यान ने कुल की शोभा को द्विगुणित कर दिया है ।

व्यायाम

कन्याओं के व्यायाम के लिये अत्युत्तम प्रबन्ध हो गया है । ब्रह्मचारिणियां प्रातः तथा सायं गतका, लाठी, छुरा, तलवार इत्यादि चलाना सीखती हैं । सब कन्यायें अति उत्साह से व्यायाम करती हैं, क्रीड़ास्थल में खूब चहल पहल रहती है। छोटी झूला झूलती हैं, तथा रस्सियों से अन्य खेल करती रहती हैं ।

स्वास्थ्य

यहां की जलवायु अत्युत्तम है अतः जब से कन्यायें यहां आई हैं बहुत ही स्वास्थ्य लाभ कर रही हैं, प्रायः सब का भार दो दो तीन २ सेर बढ़ गया है । रोगी शाला प्रायः बन्द ही रहती है

परीक्षायें

छोड़ छोटी श्रेणियों की परीक्षायें १२ दिसम्बर से प्रारम्भ होगई हैं। कई श्रेणियों की समाप्त हो चुकी हैं, कईयों की हो रही हैं। बड़ी श्रेणियों की परीक्षायें १५ जनवरी से प्रारम्भ होंगी। सब अति परिश्रम से परीक्षा की तैयारी में संलग्न हैं। अध्यापिकायें भी कोर्स समाप्त कराने में लगी हुई हैं। आज कल पठन पाठन का कार्य्य अति तीव्रता से हो रहा है।

नवीन कन्याओं का प्रवेश

४ दिसम्बर को प्रवेश दिवस था। बहुत सी कन्यायें तो प्रविष्ट हो चुकी हैं, परन्तु कुछ कन्यायें जिन के प्रवेश फार्म भर के आचुके हैं वह अभी तक नहीं आई। भारतवासियों के अन्दर समय पर कार्य्य न करने का बड़ा भारी दुर्गुण है। प्राचीन समय में लोग समय पर कार्य करते होंगे! वर्त्तमान काल में तो समय पर कार्य न करने का व्यसन पड़ गया है, जिस से सब को हानि होती है। ४ दिसम्बर को दाखला (प्रवेश दिवस) था, उस दिन नवीव कन्याओं को प्रविष्ट कराने वाले संरक्षकों का कर्त्तव्य था कि समय पर पहुंचते परन्तु बहुत से संरक्षक अब पीछे से कन्याओं को ले ले कर आ रहे हैं। सयम पर नियमानुकूल कार्य न करने से कुल को तथा कन्याओं को हानि पहुंचती है। पीछे प्रविष्ट हुई कन्यायें पढ़ाई में पीछे रह जाती हैं। प्रबन्धकर्त्ताओं को भी कठिनता होती है। अतः सब को समय पालन पर ध्यान देना चाहिए।

इस प्रकार के माता पिता अपने बच्चों से यह कैसे आशा रख सकते हैं कि उन की सन्तान कर्त्तव्य परायण तथा समय पालन करने वाली हो। हमें घड़ी की तरह समय पालन करने में आदर्शमय बनना चाहिये।

कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देहरादून में

बलिदान उत्सव

आज प्रातः ८½ बजे से ११ बजे तक सब ब्रह्मचारिणियों ने मिलकर श्रद्धानन्द बलिदान के उपलक्ष्य में सभा की।

सब से प्रथम ब्र० सुशीलादेवी का भाषण हुआ, उस में उन्हों ने बताया कि स्वामी जी को प्राचीन शिक्षा तथा संस्कृति से अति प्रेम था, अतः उन्होंने उसे उन्नत करने का अति प्रयत्न किया। अपने भाषण में सुशीला जी ने प्रमाणों सहित सिद्ध किया कि प्राचीन शिक्षा तथा संस्कृति से ही भारत का उद्धार हो सकता है। तदन्तर ब्र० शान्तीदेवी अष्टम श्रेणी का भाषण हुआ, उन्होंने उस में स्वामी जी की जीवनी का वर्णन करते हुए बताया कि हमारा कर्त्तव्य क्या है। तदन्तर ब्र० चन्द्रकला जी का भाषण हुआ, उन्होंने उस में स्वामी जी की जीवनी की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करते हुए बताया कि स्त्री जाति स्वामी जी की अति ऋणि है, हमारा कर्त्तव्य है कि जो कार्य्य स्वामी जी अधूरा छोड़ गये हैं, उसे हम पूरा करें। तदन्तर ब्र० स्वर्णकला ब्र० सत्यव्रती ब्र० विद्यावती ब्र० इन्दुमती इत्यादि के भाषण हुए, उन में इन्होंने सम्यक् स्वामी जी की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए बड़े जोशीले शब्दों में सिद्ध किया कि हम स्वामी जी के कार्य को पूरा करेंगीं। उस के पश्चात् श्री अञ्जनादेवी जी वैदिक धर्म विशारदा कन्या गुरुकुल ने अपने भाषण में बताया कि वस्तुतः स्वामी जी उसी समय में हुए, जिस समय उनकी नितान्त आवश्यकता थी। तदन्तर सुप्रसिद्ध उपदेशिक लक्ष्मी देवी जी का प्रभावशाली भाषण हुआ, उन्होंने स्वामी जी के वाक्यों को स्मरण करते हुए बतलाया कि यह कन्या गुरुकुल उन्हीं की कृपा से स्थापित

हुआ है, सब से पूर्व उन्हों ने ही इस प्रस्ताव को रक्खा था। अतः सारी जाति उनकी अति ऋणी है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके उद्देश्यों को पूर्ण करें, तदन्तर सुप्रसिद्ध उपदेशिका श्री ठाकुरदेवी जी का मनोहर व्याख्यान हुआ। उसके पश्चात् श्री प्रधान जी का अति प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। उन्होंने बतलाया कि स्वामी जी तो अमर होगये हैं उन्होंने तो अपने उद्देश्यों को भलीभाँति पूर्ण कर लिया। अब हमारा कर्त्तव्य है कि जो कार्य वे छोड़ गये हैं उसे हम पूरा करें। बड़े जोश से कहा कि इस समय हमारा मुसलमानों तथा अंग्रेज़ी सरकार से संघर्ष है, मुसलमान हमारे धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप करके हमें दबाना चाहते हैं, हमारा कर्त्तव्य है कि हम सब लोग मिलकर उनका मुकाबिला करें। यदि इसी प्रकार हम दबते गये तो किसी दिन आर्य्यजाति का नाश होजायगा। तदन्तर प्रधान जी ने आर्यकाँग्रेस में स्वीकृत सत्याग्रह के प्रस्ताव को सबके सन्मुख रक्खा आर्य्यवीर दल की सदस्य बनने के लिये कई ब्रह्मचारिणियों तथा अध्यापिकाओं ने अपने नाम लिखवाये। सारी ब्रह्मचारिणियां आर्य्यवीर दल की सदस्या बनने के लिए अत्युत्सुक थीं। आयु कम होने के कारण जिनका नाम नहीं लिखा गया वह अति दुःखित हुईं। उन्होंने सानुरोध प्रार्थना की कि १३ वर्षीय कन्याओं को भी सदस्या बनने की आज्ञा दी जावे। सार्वदेशिक सभा की आज्ञा न होने के कारण उनकी प्रार्थना अस्वीकृत की गई। तदन्तर भजन तथा शान्ति पाठ सहित सभा विसर्जित की गई।

निम्न लिखित कार्य्यकर्तृणि देवियां तथा ब्रह्मचारिणियाँ आर्य्यवीर दल की सदस्या बनीं।

१. श्री कु० विद्यावती जी सेठ बी. ए.
आचार्य्या कन्यागुरुकुय
२. श्री कु० सीतादेवी जी विशारदा मुख्याध्यापिका
३. श्री कु० अंजाना देवी जी वैदिक-धर्म विशारदा
अध्यापिका
४. श्री राधारानी जी मुख्याधिष्ठात्री कन्यागुरुकुल
५. श्री दुर्गादेवी जी नैने अध्यापिका
६. श्री लदमी देवी जी प्रबन्ध कर्तृणी
७. श्री चन्द्रवती जी अध्यापिका
८. श्री लदमी देवी जी

ब्रह्मचारिणियाँ

१. ब्र० सुशीलादेवी कच्छ (अष्टम श्रेणी)
२. ब्र० शान्तादेवी जैजैवन्ती (")
३. ब्र० सुलभा देवी ब्रह्मा (")
४. ब्र० सत्यवती अमृतसर (सप्तम श्रेणी)
५. ब्र० विद्यावती जामपुर (सप्तम श्रेणी)
६. ब्र निर्मला सूरत (षष्ठ श्रेणी)
७. ब्र० सुभद्रा बेलगाँव (पंचम श्रेणी)

* * *

हमारी मंजूषा

प्रेम-द्वादशी—लेखक श्री प्रेमचन्द; प्रकाशक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ; पृष्ठ संख्या २०६; मूल्य १।).

यह हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध गल्प लेखक और सिद्धहस्त उपन्यासकार की समय-समय पर भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित १२ कहानियों ा संग्रह है, इनमें से कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं ो पहली बार इस संग्रह में छपी हैं। इस संग्रह में श्री प्रेमचन्द जी की सामाजिक, आध्यात्मिक, मनोविज्ञान सम्बन्धी इत्यादि सब प्रकार की कहानियों के नमूने हैं। लेखक के शब्दों में वह कहानी किसी काम की नहीं जो कि 'जीवन के किसी अङ्ग पर प्रकाश न डाले. जो सामाजिक रूढ़ियों की तीव्र आलोचना न करती हो, जो मनुष्य के सद्‌भावों को दृढ़ न करे या जो मनुष्य में कौतुहल का भाव न जाग्रत करे, यह प्रसन्नता और हमारी भाषा के सौभाग्य की बात है कि लेखक का यह उच्च-उद्देश्य उसकी रचनाओं में पूर्णतया सुरक्षित है। कहानियाँ सभी मनोरञ्जक हैं, शिक्षाप्रद हैं और आतमा और मन को उभारने वाली हैं।

× × ×

बाल ब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—लेखक, श्री भगवानदास केला; प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन; पृष्ठ संख्या २२५; सजिल्द मूल्य १॥).

इस पुस्तक में एक ऐसी देवी का जीवनचरित्र है जिसने हमारे स्त्री-समाज के सन्मुख चरित्र-बल, धर्म-प्रेम, जाति-सेवा और देशानुराग का उज्ज्वल दृष्टान्त पेश किया है। उसने अपने जीवन से बतला दिया कि किस प्रकार एक नारी अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन को अपने बन्धुओं तथा जनता के लिये सुख का साधन बना सकती है। पति परिवार के विविध सज्जनों, पुरुषों तथा महिलाओं से यथेष्ट व्यवहार कर वह इस कुल में सदैव प्रेम तथा आदर का भाजन बनी रही; अपने सार्वजनिक जीवन में शिक्षिका लेखिका और उपदेशिका के रूप में उन्होंने बड़ा सराहनीय कार्य किया। अपने पतिदेव श्री आनन्दभिक्षु जी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर प्राचीन विदुषी महिलाओं के समान, इस समय के लिये अनूठा और अद्वितीय उदाहरण पेश किया है। शोक कि ऐसी कर्त्तव्य परायणा रमणी-रत्न अल्प आयु में ही काल के कराल गाल में पड़ गई। यह पुस्तक सब गृहस्थी स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

× × ×

नवीन पद्य संग्रह—संग्रह कर्ता श्री पं० भवानीप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग; पृष्ठ संख्या १४२ मूल्य ॥=).

कई वर्ष हुये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने एक पद्य संग्रह प्रकाशित किया था जो प्रथमा की पाठ्य-पुस्तकों में था। आजकल यह संग्रह प्रायः अप्राप्य हो गया था अतः यह नवीन पद्य संग्रह प्रकाशित किया गया है। इस संग्रह में ८३ नवीन कवियों की एक-एक सर्वोत्तम कविता को स्थान दिया गया है। किसी भी कवि की एक सर्वोत्तम कविता को चुनना सहज काम नहीं और न ही कोई यह दावे से कह सकता है कि यह उसकी

सर्वोत्तम कविता है क्योंकि यह चुनने वाले की रुचि, कल्पना शक्ति और आलोचना की योग्यता पर निर्भर है तो भी इस संग्रह में दी हुई कविताओं के विषय में कहा जा सकता है कि बहुत से साहित्य मर्मज्ञ एक मत होंगे कि इसमें बहुत से नवीन कवियों की सर्वोत्तम रचना आगई है। संग्रहकार ने अपने कार्य में अपनी सुरुचि और योग्यता का परिचय दिया है। इस संग्रह की दी हुई कविताओं के आधार पर अपने नवीन कवियों पर हिन्दी-भाषा यथोचित अभिमान कर सकती है। पुस्तक में कवियों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है जिससे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। संग्रह अच्छा हुआ है और संग्रहणीय है।

× × ×

छत्रसाल-ग्रन्थावली—संपादक श्री वियोगी हरि; प्रकाशक श्री छत्रसाल-समिति-स्मारक; पृष्ठ संख्या १९५; मूल्य १) रुपया।

बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल हिन्दू महाराजाओं के सिरमौर थे। आपकी वीरता, स्वार्थ-त्याग, देशभक्ति, न्याय प्रियता और शासन-कुशलता जगत् प्रसिद्ध है। इन पर हिन्दू-संसार जितना भी गर्व करे थोड़ा है। भारत से मुगल-राज्य की जड़ उखाड़ फेंकने और हिन्दू-राज्य की पुनः स्थापना में इनका बड़ा भारी हाथ है। परन्तु हमें बड़ा आश्चर्य होता है जब हम देखते हैं कि महाराज छत्रसाल का कवि-जगत में भी बड़ा ऊँचा स्थान है, और हमारा आश्चर्य और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि महाराज का समस्त जीवन बीहड़ ज़ंगलों, निर्जन उपत्यकाओं और भीषण रण-क्षेत्रों में ही बीता है। तो इन अवस्थाओं में ऐसी उच्च-कोटि की कविता, निःसन्देह यह महाराज की बहुमुखी प्रतिमा का उदाहरण है। महाराज छत्रसाल की कविता का विषय भक्ति, नीति और विशुद्ध-शृङ्गार है। इस पुस्तक में श्री वियोगी हरि ने आरम्भ में महाराज का जीवन-चरित्र देकर पश्चात् उनकी कविता पर तुलनात्मक विचार किया है और बाद में छत्रसाल कृत आज तक प्राप्त सर्व कविता ग्रन्थों को दिया है। इस पुस्तक की रचना का आधार "महाराज छत्रसाल के काव्य" और "नीति मंजरी" नामक दो ग्रन्थ हैं छत्रसाल की रचनायें व्रज-भाषा में हैं जो कि बड़ी मधुर और शुद्ध है। पुस्तक बड़े सुन्दर मोटे टाइप में उत्तम काग़ज़ पर छपी है तो भी मूल्य कुछ अधिक मालूम पड़ता है।

× × ×

जनरल अवारी—लेखक व प्रकाशक श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार असहयोग आश्रम नागपुर; पृष्ठ संख्या ५२; मूल्य ≡).

इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने शुद्ध ओजस्विनी भाषा में आधुनिक पारसी वीर अवारी के संक्षिप्त जीवन, कार्य और सिद्धान्तों का वर्णन किया है। आजकल भी राजनैतिक-क्षेत्र में पुस्तिका के चरित्र नायक जैसे त्यागी, दृढ़ प्रतिज्ञ, शुद्धाचारी, निडर और सादा जीवन रखनेवाले देशभक्त मौजूद हैं यह हमारे सौभाग्य की बात है। श्रीयुत अवारी का जीवन निःसन्देह हमारे नवयुवकों को आदर्श की ओर ले जानेवाला है। उन्हें अवश्य इस पुस्तक को पढ़ना चाहिये।

× × ×

अक्षर-तत्त्व—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत गौरीशङ्कर भट्ट; मसवानपुर (कानपुर); मूल्य ॥).

गत १७ वर्ष से पंडित गौरीशङ्कर जी हिन्दी लिपि को सुन्दर, नेत्रग्राही और मनोरञ्जक बनाने का जो प्रयत्न कर रहे हैं वह हिन्दी-संसार से छुपा नहीं है। आपने नागरी लिपि को वैज्ञानिक रीति से लिखने की ओर दृष्टि आकर्षित की और

यह प्रसन्नता की बात है कि आपको अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। आपकी बनाई हुई सुलेख्य, आलेख्य, चित्रलिपि इत्यादि पुस्तकें अनेक पाठशालाओं, गुरुकुलों में प्रचलित हैं तथा कई प्रान्तों के शिक्षा-विभागों से स्वीकृत हैं। हमारे बालकों को सुन्दर हिन्दी अक्षर लिखना सिखलाने के सफल प्रयत्न का सहल कुछ श्रेय श्री भट्ट जी को है। श्री भट्ट जी निरन्तर इस प्रयत्न में लगे हुये हैं कि हमारी राष्ट्रीय-लिपि अधिक सुन्दर बनती जाये। यद्यपि आप हिन्दी कलम की लाग से बने अक्षरों को ही Standand मानते हैं, तो भी आपने इन अक्षरों को ज्यामितिक रूप से बनाने की विधि सिखाने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार जो अक्षर बन सकते हैं वह कितने सुन्दर हैं, उनमें क्या-क्या त्रुटियाँ रह जाती हैं, कहाँ-कहाँ उन्नति की सम्भावना है, इन विषयों पर विद्वानों की सम्मति जानने के लिये अक्षर-तत्त्व पुस्तक लिखी गई है। भट्ट जी ने कोई ९० पृष्ठ में वर्णमाला के सब अक्षरों के ज्यामितिक रूप दिये हैं। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-भाषा के विद्वान् नागरी अक्षरों के रूप-सुधार सम्बन्धी अपने विचारों से भट्टजी को अवश्य सूचित कर उन्हें उत्साहित करेंगे।

× × ×

विश्व-धर्मशास्त्र—लेखक श्री आनन्द स्वामी B. A. (Nat); प्राप्तिस्थान— (१) दीनानाथ बुक्सेलर भैरों-बाज़ार जालन्धर शहर, (२) वैदिक पुस्तकालय लाहौर; पृष्ठ संख्या १७०, तीन चित्र; मूल्य १=).

गतवर्ष १९८३ में शिवरात्रि के पर्व पर स्वामी जी नैपाल गये थे। उसी अवसर पर मार्ग में उन्हें एक आप्त विद्वान् महर्षि घोर का सत्संग लाभ हुआ था। उन्हीं के उपदेश के आधार पर स्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ लिखा है। ग्रन्थ का विषय भारत का वही आध्यात्मिक-ज्ञान, सृष्टिउत्पत्ति, आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध, कर्मफल, स्वर्ग-नरक, मुक्ति इत्यादि है जिनके विषय में हमारे पूर्व ऋषि गूढ़-मनन करने के उपरान्त भी नेति-नेति कह गये हैं। ग्रन्थकर्ता ने इन सब समस्याओं को उक्त महर्षि के उपदेश के आधार पर दार्शनिक और वैज्ञानिक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया है जो युक्ति-युक्त जान पड़ता है। पुस्तक में तीन चित्रों (Diagrams) द्वारा सृष्टि उत्पत्ति के क्रम, आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध, पुनर्जन्म, आत्मा की व्यापकता और विभुत्व आदि को सरलता पूर्वक समझाया गया है। इसके समझ लेने पर सभी दार्शनिक आर्ष-ग्रन्थों में एक अद्भुत संगति जान पड़ने लगती है। पुस्तक में आधुनिक समस्याओं, जन संख्या की वृद्धि, सामाजिक अशान्ति और विषमता आदि का विवेचन भी दार्शनिक दृष्टिकोण से आध्यात्मिक आधार पर किया गया है। ग्रन्थकार का दावा है कि यदि भविष्य में संसार में कभी शान्ति का साम्राज्य हो सकेगा तो वह इस पुस्तक में वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर ही सम्भव होगा, चाहे सिद्धान्तों के प्रचार का कारण कुछ भी क्यों न हो, अध्यात्म और दर्शन में रुचि रखनेवाले सज्जनों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की चीज़ है। पुस्तक के विशेष-विशेष स्थल यदि कुछ विस्तार से लिखे जाते तो सम्भवतः पुस्तक अधिक सरल हो सकती थी।

विचार-प्रवाह

१. काँग्रेस का मद्रास अधिवेशन

भारतवर्ष की जातीय महा सभा का बयालीसवाँ वार्षिक अधिवेशन डाक्टर अन्सारी के सभापतित्व में मद्रास नगर में बड़े समारोह और सफलता के साथ होगया। सभापति का भाषण, उपस्थिति, समारोह, उत्साह, प्रस्ताव आदि सभी दृष्टियों से काँग्रेस का यह अधिवेशन पूर्णतया सफल कहा जा सकता है। पिछले वर्ष जब गोहाटी में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुवा था, दिल्ली में एक ऐसी कल्पनातीत दुर्घटना होगई थी कि सम्पूर्ण देश का ध्यान गोहाटी की ओर से हट कर उसी तरफ आकृष्ट होगया था, गोहाटी का अधिवेशन उस देश व्यापी शोक पूर्ण आतंक के सन्मुख बिल्कुल फीका पड़ गया था। परन्तु इस वर्ष शाही कमीशन की विचित्र नियुक्ति के कारण सारा देश मद्रास के निर्णयों की ही प्रतीक्षा कर रहा था, अतः मद्रास-अधिवेशन की सफलता निश्चित ही थी। 'लीडर' के अनुभवी सम्वाददाता का कथन है कि मद्रास काँग्रेस के पण्डाल में कम से कम ३० हज़ार व्यक्ति उपस्थित थे। उस का विश्वास है कि मद्रास में इस से पूर्व कभी किसी कार्य के लिये इतना बड़ा पण्डाल न बना होगा। पण्डाल एक छोटी मोटी पहाड़ी के समान प्रतीत होता था। केवल मञ्च पर ही ३ हज़ार व्यक्ति बैठे हुए थे। स्त्री-दर्शकों की संख्या भी ५ हज़ार से कम न होगी। काँग्रेस नगर कुम्भ के मेले के समान प्रतीत होता था। इस काँग्रेस में ३ हज़ार प्रतिनिधि सम्मिलित हुए, पिछले अधिवेशनों की अपेक्षा यह संख्या बहुत अधिक है। लोगों में अपूर्व उत्साह था। प्रातः काल स्त्रियाँ टोले बना कर काँग्रेस नगर में जातीय गीत गाती हुई घूमा करती थीं। सभापति का भाषण भी उस पद के सर्वथा योग्य था। कांग्रेस के निर्णयों की दृष्टि से भी इस अधिवेशन को पूरी तरह सफल कहना चाहिये। इस अधिवेशन से पूर्व देश में शाही कमीशन के प्रति तीव्र विरोध का भाव होते हुए भी कमीशन का पूर्ण बहिष्कार कर सकना एक असम्भव कार्य प्रतीत होता था, परन्तु काँग्रेस के निर्णयों की बदौलत अब बहिष्कार के मार्ग की बाधाएँ बहुत कम होगई हैं। हिन्दू मुस्लिम समझौते के प्रस्ताव का अभिनन्दन यद्यपि दोनों सम्प्रदायों ने पूर्ण रूप से नहीं किया, तथापि उस के द्वारा अवस्था अवश्य सुधरी है। इस से पूर्व बम्बई और कलकत्ता के समझौते को जो तिरस्कार दोनों सम्प्रदायों के नेताओं से सहना पड़ा था, वह इस समझौते का नहीं हुआ। बहुत से विचारशील हिन्दू तथा मुसलमान नेता, जो उन समझौतों से असन्तुष्ट थे, इस समझौते के पक्ष में हैं। महात्मा गाँधी ने काँग्रेस के प्रबन्ध पर कड़ी आलोचना की है। सम्भवतः इस का कारण आशातीत भीड़ होजाना ही हो; यदि इस एक न्यूनता को स्वीकार कर भी लिया जाय तो भी अन्य सब दृष्टियों से हम मद्रास-काँग्रेस को पूर्णतया सफल कह सकते हैं। ईश्वर करे कि इस वर्ष देश में आशा और उत्साह का सञ्चार रहे।

× × ×

२. सभापति का भाषण

कोकोनाडा के बाद अब मद्रास में महासभा ने एक मुसल्मान सज्जन को अपना सभापति निर्वाचित किया है। डा० अन्सारी वस्तुतः इस पद के सर्वथा योग्य थे; डाक्टर साहब उन थोड़े से सौभाग्यशाली नेताओं में से हैं, जिन पर अभी तक हिन्दू और मुसल्मानों का थोड़ा बहुत

विश्वास बना हुआ है। डा० अन्सारी का भाषण उन की व्यक्ति तथा पद दोनों की दृष्टि से उन के योग्य ही था। वह न बहुत लम्बा था, न बहुत छोटा। मौ० मुहम्मद अली के भाषण की तरह उस में मुस्लिम इतिहास का ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। हमारी सम्मति में यदि डाक्टर साहब कमीशन के बायकाट तथा काँग्रेस में सब दलों को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में कोई व्यवहारिक स्कीम भी प्रस्तुत कर सकते तो और भी अधिक अच्छा होता।

बृटिश साम्राज्य वादियों की पोल खोलते हुए आपने कहा— "राज नीतिज्ञ और शासक सभ्य बनाने का बीड़ा, और 'श्वेताङ्गों का बोझ' आदि बातें बड़ी तमक के साथ कहा करते हैं पर दक्षणी अफ्रीका के अग्रिणी साम्राज्य वादी रोडिस ने यह कह कर कि मानवहित अच्छा ही है, परन्तु उस के साथ यदि फी सदी ५ रुपया लाभ भी हुवा करे तो वह उस से कहीं अच्छा है, उस की पोल खोल दी है। साम्राज्यवाद के बड़े पुजारी चैम्बर लेन ने साफ शब्दों में कहा है— 'साम्राज्य वाद का अर्थ रोज़गार है। भारत हमारा सब से बड़ा और अमीर ग्राहक है।' इस परोपकारी डकैती का इतिहास एशिया के सब देशों में खून से लिखा हुवा है।" स्वराजदल की नीति के सम्बन्ध में आपने कहा— "पर इस नीति के समर्थकों ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि १९१९ के भारत शासन विधान ने जो सीमा बना दी है, उसी से इस तरह का सारा विरोध बेकार हो जाता हैं और वैध रुकावट वस्तुत: असम्भव हो जाती है। उन्हें और असहयोगियों को जान लेना चाहिये था कि जो प्रश्न कौन्स्टिट्यूशन या विधि के बाहर का है उस की लड़ाई सिर्फ वैध भूमि पर ही नहीं लड़ी जा सकती।" इस के बाद आपने आवश्यकतानुसार नीति में हेरफेर करने की आवश्यकता बतलाई है।

हिन्दू मुस्लिम समस्या पर विचार प्रकट करते हुए आपने कहा—"हमें यह न भूलना चाहिये कि हम भारतवासी हैं। हमें भारत में ही रहना और भारत में ही मरना है ......अगर मेरा कोई हिन्दू भाई समझता हो कि वह अपने सात करोड़ मुस्लिम भाईयों से अपना पिण्ड छुड़ा सकेगा तो वह बड़े भारी भ्रम में पड़ा है और यह भ्रम जितना ही जल्द दूर होगा उतना हो उस का और देश का लाभ है। इसी तरह अगर मेरा कोई मुसल्मान भाई २५ करोड़ हिन्दुओं पर प्रभुत्व करने का स्वप्न देख रहा हो तो वह मूर्खों के स्वर्ग में विहार कर रहा है और वह जितनी जल्द आँख खोलेगा उतना ही मुस्लिम समाज और देश का लाभ है। जिस स्वराज्य के लिये हम झगड़ रहे हैं वह न हिन्दू राज होगा न मुस्लिम राज; वह दोनों का संयुक्त राज्य होगा।" इसके बाद आपने बम्बई और कलकत्ता के समझौतों का समर्थन किया है।

अछूतों की समस्या पर आप का कथन है— "अछूतपन दूर करने का प्रश्न यद्यपि हमारे हिन्दू भाइयों का ही प्रश्न है पर प्रत्येक भारत सन्तान के लिये भी यह प्रश्न गम्भीर चिन्ता का प्रश्न हुए बिना नहीं रह सकता, क्यों कि भयंकर सामाजिक और राजनीतिक अयोग्यता के नीचे दबे हुए इतने अधिक भाईयों का अस्तित्व ही देशोद्धार के प्रयत्न में बाधक हुए बिना नहीं रह सकता।"

ईसाइयों को भी कांग्रेस में सम्मिलित होने की सलाह देते हुए आप कहते हैं— "वर्षों तक मुसल्मानों ने राष्ट्रीय शक्ति (कांग्रेस) को छोड़ कर अन्य शक्तियों का साथ दिया था पर कड़वे अनुभव के बाद उन्हें मालूम हुआ कि कांग्रेस में सम्मिलित होकर तथा अन्य भाइयों के लक्ष्य को ही अपना कर वे निजी हित की रक्षा कर सकते हैं।" इस के बाद वह कांग्रेस में सब दलों को मिला लेने की अपील करते है— "कांग्रेस का द्वार सब दलों के लिये खोल देना चाहिये और प्रत्येक दल को कांग्रेस में लाने के लिये मूल सिद्धान्त के सिवा और कोई त्याग करने से हमें मुह न मोड़ना चाहिये। मतभेद तो रहेंगे ही, परन्तु उन्हें मिटाने या उन के लिये झगड़ने का सर्वोत्तम स्थान कांग्रेस का मञ्च ही है जो इस देश की सब राजनैतिक संस्थाओं को जननी है।" इसके बाद आपने कौंसिलों में भी मिल कर कार्य करने की सलाह दी है।

शाही कमीशन के सम्बन्ध में आपका कहना है— "परमात्मा ने बड़ी दया कर के हमारे लिये बड़ा अच्छा इनाम भेजा है,......इस से हम में से बड़े से बड़े आशावादी की भी आंखें खुल जानी चाहियें।...मुझे कमीशन की नियुक्ति से न निराशा हुई और न आश्चर्य।...प्रश्न यह नहीं कि कमीशन में किसी हिन्दू 'लार्ड' या मुसल्मान 'सर' को नियुक्त होना चाहिये। मूलसिद्धान्त कुछ और है। वह है अपने भविष्य

का निर्णय करने का अन्तिम अधिकार हमारा ही है। यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।''

एशियाई संघ की समस्या पर डाक्टर साहब का कथन है—''यूरोप और एशिया के झगड़े में एशिया को प्रायः नीचा देखना पड़ा है इस का कारण यही है कि काम के समय सारा यूरोप मिल जाता है और ऐशियाई देशों के पृथक् पृथक् रहने के कारण उन्हें हार खानी पड़ती है।......संस्कृति की समानता और हितों की समानता के कारण एशियाई राष्ट्रों के संघ की वह योजना सफल होनी चाहिये जो देशबन्धु चित्तरञ्जन दास ने अपनी दूरदृष्टि से प्रस्तुत की थी।''

डाक्टर अन्सारी एक अनुभवी चिकित्सक हैं अतः अपने भाषण में उन का ध्यान जातीय स्वास्थ्य की ओर जाना भी आवश्यक ही था। इस प्रकरण में आपने पर्दा, बाल विवाह आदि कुप्रथाओं का ज़ोरदार शब्दों में विरोध किया है।

पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव

मद्रास कांग्रेस की कतिपय विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि उस ने भारतवर्ष का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता उद्घोषित कर दिया है। कांग्रेस पिछले पांच वर्षों से जिस प्रस्ताव को लगातार अस्वीकार करती आरही है उसे थोड़े बहुत हेर फेर के साथ मद्रास कांग्रेस ने बहुत बड़े बहुमत से, जिसे लगभग सर्व सम्मति ही कहना चाहिये, स्वीकार कर लिया। यद्यपि कांग्रेस के ध्येय में कोई परिवर्तन नहीं किया गया तथापि यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि भारतीय 'स्वराज्य' का अभिप्राय पूर्ण स्वतन्त्रता से ही है। यहां तक कि पं० मालवीय तथा डा० बीसेण्ट जैसे नेताओं ने भी इस प्रस्ताव के पक्ष में ही हाथ उठाया। कांग्रेस में पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव को उपस्थित किया था। आपने हाल ही में एक घोषणा द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि पूर्ण स्वतन्त्रता का अभिप्राय साम्राज्य से बाहर स्वराज्य का है, ऐसे स्वराज्य का है जिस में सेनाओं तथा विदेशी नीति पर भी भारत का अपना ही अधिकार होगा। पं० जवाहरलाल नहरू के सुयोग्य पिता पं० मोतीलाल नहरू ने बर्लिन में एक सम्वाददाता से कहा है कि इस पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव द्वारा भी कांग्रेस की यह पुरानी घोषणा कि 'यदि सम्भव हो तो साम्राज्य के अन्दर और यदि आवश्यक हो तो साम्राज्य के बाहर' खण्डित नहीं होती। श्रीयुत श्रीनिवास एयंगर ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए कहा था कि इस के द्वारा कांग्रेस बर्किनहैड की चुनौती का जवाब दे रही है। महात्मा गान्धी इस प्रस्ताव से बेतरह खफ़ा हैं, आप का कथन है कि कांग्रेस का यह कार्य अविचारपूर्ण है, जिस बात को हम कर नहीं सकते उस की घोषणा करना स्वयं अपने को हास्यास्पद बनाना है। परन्तु हमारी सम्मति में महात्मा जी की यह बात युक्तिसंगत नहीं है। कांग्रेस का ध्येय जब तक स्वराज्य प्राप्ति था तब तक भी उस ने स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लिया था, अब यदि उसने अपना ध्येय स्पष्ट कर लिया है तो इस में कोई हानि की बात प्रतीत नहीं होती। पिछले वर्ष श्रीयुत जमनादास ने भी विदेश से वापिस आकर इसी बात पर बल दिया था कि इङ्गलैंड के लोग भारतीय समस्याओं में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं लेते अतः भारत को अपना ध्येय स्पष्ट शब्दों में साम्राज्य से बाहर स्वराज्य उद्घोषित कर देना चाहिये। हमें इस प्रस्ताव के विरोधियों की एकता के नाम पर की गई अपील भी प्रभावित नहीं करती। कांग्रेस के ध्येय में 'स्वराज्य' जैसा लचकीला—जिसे ज़बरदस्ती लचकीला बना दिया गया है— शब्द रहने मात्र से ही एकता नहीं हो सकती, उस के लिये अन्य बातें अपेक्षित हैं। हमारी सम्मति में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर के बड़ी बुद्धिमता का कार्य किया है।

× × ×

शाही कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव

जैसी कि आशा की जाती थी, मद्रास कांग्रेस ने साइमन कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। इस बहिष्कार को सफल बनाने के लिये यह योजना तैयार की गई है कि कमीशन जिस २ स्थान पर जाय वहां पूर्ण हड़ताल कर के उसका आतिथ्य किया जाय। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में, जिन की कार्रवाई का निरीक्षण करने के लिए शाही कमीशन फरवरी मास में आरहा है, कांग्रेस के सदस्य उपस्थित ही न हों। कांग्रेस की कार्य समिति को बहिष्कार के सम्पूर्ण उचित साधनों का निर्देश देने का अधिकार दिया गया है।

हमारी सम्मति में कमीशन के बहिष्कार सम्बन्धी समस्या पर विचार करते हुए एक बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये । सौभाग्यवश इस समय देश के सभी राजनीतिक संगठन कमीशन के बहिष्कार के पक्ष में हैं, इसी कारण कांग्रेस को भी बहिष्कार सफल होने की आशा हो गई है। अन्यथा देश की हालत को देख कर कमीशन का सफल बहिष्कार एक असम्भव बात जान पड़ती थी । यदि बर्किनहैड नीतिज्ञों की तरह दो तीन भारतीयों को भी कमीशन में नियुक्त कर देता तो सम्भवतः देश के बहुत से राजनीतिक संगठन उसके बहिष्कार की चर्चा न करते । परन्तु कांग्रेस इस कमीशन का जो बहिष्कार करना चाहती है इस का कारण कमीशन में दो एक भारतीयों को नियुक्त न करना नहीं है । यदि सरकारभक्त भारतीयों द्वारा ही इस कमीशन की नियुक्ति की जाती तब भी कांग्रेस इस कमीशन का इसी प्रकार बहिष्कार करती। कांग्रेस का विश्वास है कि भारत के शासन विधान को तैयार करने का अन्तिम अधिकार भारतवर्ष को ही होना चाहिये, इसी अटल और जन्मसिद्ध अधिकार की रक्षा के लिये कांग्रेस कमीशन का बहिष्कार करने जा रही है। इस अवस्था में लार्ड बर्किनहैड की अनीतिमत्ता के कारण ही कांग्रेस को यह सुवर्णीय अवसर प्राप्त हुवा है कि सारा भारत एक स्वर से कमीशन का बहिष्कार करने को तैयार हो गया है। अतः यह आवश्यक है कि इस बहिष्कार को सफल बनाने के लिये कांग्रेस देश के अन्य सब दलों को भी अपने साथ रक्खे । हमें ज्ञात है कि नरम दल तथा इसी प्रकार कुछ अन्य दलों के प्रभावशाली व्यक्ति व्यवस्थापिका सभाओं में अनुपस्थित रहने की नीति का विरोध कर रहे हैं । अतः हमारी सम्मति में अपनी सामर्थ्य का सच्चा ज्ञान रखते हुए कांग्रेस को बहिष्कार की यह योजना तभी निश्चित करनी चाहिये जब कि वह इस के लिये अन्य दलों को भी अपने साथ रख सके, अन्यथा नहीं। इस ज़रा से मत भेद के कारण बहिष्कारवादी नेताओं में दो या तीन विभिन्न दल खड़े हो जाना देश के हित की दृष्टि से अच्छा न होगा। विशेष कर जिन प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं में कांग्रेसी सदस्य अल्प संख्या में हैं, वहां उन का अधिवेशनों से बाहर रहना अन्य देश हितकारी दलों के सरकार विरोध में बाधक सिद्ध होगा । हम चाहते हैं कि कांग्रेस अन्य दलों के बहिष्कार वादी नेताओं के साथ मिल कर ही बहिष्कार की योजना तैयार करे ।

हिन्दू-मुसलिम समझौता

पिछले वर्ष आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई तथा कलकत्ता के अधिवेशनों में जिस हिन्दू मुसलिम समझौते को स्वीकार किया था, मद्रास कांग्रेस ने उस में कुछ हेर फेर कर दिया है । यह हेर फेर अच्छा ही हुआ है, जो राष्ट्रवादी नेता उन समझौतों से असन्तुष्ट थे उन में से कतिपय मुख्य २ नेता इस समझौते के पक्ष में हैं । इस समझौते का सार यह है कि भाषा के अनुसार सिन्ध, बृटिश बलोचिस्तान, तामिलनाड़, आन्ध्र तथा केरल-इन प्रान्तों को पृथक् प्रान्त बना दिया जावे; सीमा प्रान्त को सुधार दे दिये जावें; देश की सब व्यवस्थापिका सभाओं में सम्मिलित निर्वाचन प्रारम्भ कर दिया जावे; सब को धार्मिक स्वतन्त्रता हो। बाजे तथा गोबध के सम्बन्ध में निर्णय हुआ है कि मुसल्मान हिन्दुओं के भावों की इज्जत करते हुए अपने मुसल्मान भाइयों को गोकुशी न करने के लिये समझावें और हिन्दू अपने हिन्दू भाइयों को मस्जिदों के सामने बाजा न बजाने के लिये प्रेरित करें ।' हम समझौते के इन दोनों पहलुओं पर पृथक् २ विचार करेंगे ।

राजनीतिक समझौते में सम्मिलित निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है हमारी सम्मति में भारतवर्ष में निवास करने वाली दोनों जातियों का संघर्ष समाप्त करने के लिये यह बात सब से अधिक आवश्यक है। इस तीव्र वैमस्य के जारी रहते हुए मुसल्मान अपने साम्प्रदायिक हित की दृष्टि से इस सम्मिलित निर्वाचन की प्रथा को हानिकर कह सकते हैं। हम यह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं कि मुसल्मानों का सम्मिलित निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना वस्तुतः उन के लिये प्रशंसास्पद है । इस सम्मिलित निर्वाचन के एवज़ में मुसल्मान नेता भारतवर्ष को १५ प्रान्तों में विभक्त कर के उन में से १० प्रान्तों में हिन्दुओं का बहुमत तथा ५ प्रान्तों में अपना बहुमत बना लेना चाहते हैं। इस के लिये भाषा के नाम पर उन्हों ने जो नये प्रान्त बनाने का प्रस्ताव किया है, उस के सम्बन्ध में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि भाषा के आधार पर सिन्ध को बम्बई से पृथक् कर देना वस्तुतः युक्तियुक्त है ; परन्तु

साथ ही हम यह भी कहते हैं कि यदि भारतवर्ष के प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्विभाग किया जाय तो इस देश को कम से कम २५ या ३० प्रान्तों में बांट देना पड़ेगा । अतः भाषा की युक्ति को गौण समझते हुए भी हम सम्मिलित निर्वाचन के मूल्यरूप में ही सिन्ध को बम्बई से पृथक् प्रान्त बना देने के पक्ष में हैं । हमें ज्ञात है कि सिन्ध की आबादी बङ्गाल के मैमनसिंह ज़िले से भी कम है, उस की वार्षिक आय भी बहुत कम है, बृटिश बलोचिस्तान की आबादी तो बम्बई, कलकत्ता जुदा रहे, मद्रास और हैदराबाद (दक्खन) से भी कम है । यह होते हुए भी हमारी सम्मति में सिन्ध का क्षेत्रफल और प्राकृतिक दशाएं इस योग्य हैं कि वहां जन और धन दोनों की पर्याप्त वृद्धि हो सके, अतः सम्मिलित निर्वाचन को मुख्य उपयोगिता मान कर युक्ति की दृष्टि से भी सिन्ध को इसी समय बम्बई से पृथक् करना अनुचित प्रतीत नहीं होता । सभ्यता, समीपता, समान इतिहास, रीतिरिवाज या भाषा किसी भी दृष्टि से सिन्ध को बम्बई के साथ जोड़ देना युक्तियुक्त नहीं है। साथ ही हमें यह भी विश्वास है कि सिन्ध में मुस्लिम बहुमत हो जाने पर भी वहां के हिन्दुओं को कोई विशेष हानि न होगी क्योंकि सम्मिलित निर्वाचन द्वारा ये प्रतिस्पर्धा और वैमनस्य के भाव स्वयं ही कम हो जाँयगे ।

समझौते का दूसरा पहलू बाजे और गाय कुशी से सम्बन्ध रखता है । इस प्रश्न पर विचार करते हुए हमें यह बात कदापि न भूलनी चाहिये कि आखिरकार यह है एक समझौता ही । समझौते में पूरी विजय किसी एक पक्ष की नहीं होती, दोनों पक्षों को कुछ प्राप्त होता है और दोनों को कुछ त्याग करना होता है दूसरी ओर यह बात भी स्पष्ट है कि गोहत्या और बाजे के प्रश्न को एक सी महत्ता देना अनुचित है। परन्तु गो-हत्या की समस्या को बहुत अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक मानते हुए भी इस बात से इन्कार तो नहीं किया जा सकता कि चाहे ठीक हो या अशुद्ध, बाजे का प्रश्न भी एक समस्या है । अतः यदि समझौते के रूप में हिन्दू नेताओं के समझाने से हिन्दू मस्जिदों के सामने बाजा बजाना छोड़ दें और उस के प्रतिफल में मुसल्मानों के समझाने से मुसलमान गोहत्या सर्वथा छोड़ दें तो यह समझौता हिन्दुओं के लिए बहुत मंहगा नहीं है । इस दृष्टि से हम इस मद्रास के समझौते को कलकत्ता के समझौते से अधिक श्रेष्ठ समझते हैं ।

इस प्रकार इस हिन्दू मुस्लिम समझौते की युक्ति युक्तता स्वीकार कर के भी हमारा यह कहना है कि इस धार्मिक समझौते का व्यवहारिक प्रभाव देश पर सम्भवतः शून्य के बराबर ही पड़ेगा। जो हिन्दू नेता अब हिन्दुओं को मस्जिदों के सन्मुख बाजा न बजाने के लिए कहेंगे और जो मुसलमान नेता मुसल्मानों को गोकुशी सर्वथा बन्द कर देने के लिए कहेंगे, उन में से अधिकांश पहले भी अपने सहधर्मियों को यही सलाह देते रहे हैं, परन्तु उस का कुछ असर नहीं हुआ । वास्तविक प्रश्न दोनों जातियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने का है; यह गोकुशी और बाजे का प्रश्न तो उसी कुत्सित मनोवृत्ति का बाह्य रूप मात्र ही है । यदि मनोवृत्ति में परिवर्तन न लाया गया तो ये दो प्रश्न मिट कर कोई और नये दो प्रश्न खड़े हो जायंगे। फिर इस समझौते के धार्मिक भाग में हमें कोई ऐसी क्रियात्मक बात भी दिखाई नहीं देती, जिस का देश की वर्तमान अवस्था पर गहरा प्रभाव पड़े ।

× × ×

अन्य प्रस्ताव

मद्रास कांग्रेस में उपर्युक्त तीनों मुख्य प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से प्रस्ताव पास हुए। इन में से भारत का शासन विधान बनाने का प्रस्ताव, कांग्रेस का साम्राज्य विरोधी संघ से सम्बन्ध स्थापित करने का निर्णय, चीन से सहानुभूति तथा काकोरी के अभियुक्तों से समवेदना के प्रस्ताव विशेष महत्व पूर्ण थे। सब से पूर्व स्वनामधन्य बंग केसरी देशबन्धु चित्तरञ्जन ने बङ्गाल की प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स में स्वर्गीय गोपीनाथ सहा के देश भक्ति तथा आत्माभिमान के भावों की प्रशंसा का प्रस्ताव स्वीकार करवाया था। तब इस सम्बन्ध में बड़ी चर्चा हुई थी। इस वर्ष मद्रास कांग्रेस ने भी काकोरी के चारों फांसी पाये हुए अभियुक्तों से सहानुभूति प्रगट कर के उन के भावों की प्रशंसा की है। सचमुच वे चारों आत्म हुत वीर धन्य हैं, उन्होंने देश के नाम पर हंसते हंसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। उनका मार्ग कितना ही हेय

और आलोच्य क्यों न हो परन्तु उनके देश भक्ति के भावों की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

× × ×

लिबरल फिडरेशन का बम्बई अधिवेशन

मद्रास कांग्रेस की स्वागत समिति के निमन्त्रण को अस्वीकार कर के नरम दल ने अपना वार्षिक अधिवेशन बम्बई में किया। अधिवेशन अच्छी सफलता से हुवा। सभापति सर तेज बहादुर सप्रू का भाषण बहुत योग्यतापूर्ण था। आपने अपने भाषण के अधिक भाग में साइमन कमीशन की तीव्र आलोचना की। कमीशन के पक्ष में दी जाने वाली दलीलों तथा बर्किन हैड के भाषण का आपने मुहतोड़ जवाब दिया। लिबरल फिडरेशन ने भी कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किया है, इस बहिष्कार को सफल बनाने के लिये कुछ व्यक्तियों की एक समिति बना दी गई है। जो आवश्यकतानुसार असहयोग को छोड़ कर अन्य सब वैध उपायों को अमल में लाकर बहिष्कार की सफलता के लिये यत्न करेगी।

× × ×

मुस्लिम लीग का कलकत्ता अधिवेशन

प्रत्येक देशभक्त के लिये यह एक बड़े सन्तोश का विषय है कि मुसल्मानों के अधिकांश नेता साइमन कमीशन के बहिष्कार के पक्ष में है। हाल ही में कलकत्ता नगर में मुस्लिम लीग का जो शानदार अधिवेशन हुवा है उस में बहुत बड़े बहुमत से आगामी शाही कमीशन का मुसलमानों की ओर से भी बहिष्कार करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है। लीग के इस अधिवेशन के सभापति का आसन श्रीयुत मुहम्मद याकूब ने ग्रहण किया था। पहले मीयां शफी को इस पद के लिये निर्वाचित किया गया था परन्तु वह लाहौर में ही अपनी ढाई चावल की खिचड़ी पकाते रहे अतः लीग के अधिवेशन से दो दिन पूर्व ही नवीन सभापति का निर्वाचन करना पड़ा। इस समस्या के कारण यद्यपि बड़ी कठिनाई उपस्थित होगई थी, यहां तक कि बहुत से मुसल्मान नेता लीग का अधिवेशन स्थागित कर देने का प्रयत्न करने लगे थे, तथापि मि० जिन्हा के प्रयत्न से यह अधिवेशन आशातीत सफलता के साथ समाप्त होगया। लीग ने कमीशन के बहिष्कार के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है, उसके सम्बन्ध में लीग के उत्साही कार्यकर्ताओं को साधुवाद देने के अतिरिक्त हमें कोई वक्तव्य नहीं है। परन्तु मुसलिम-हिन्दू समझौते के रूप में लीग ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है उस पर हमें तीव्र विप्रतिपत्ति है। प्रस्ताव का अभिप्राय यह है कि जब सिन्ध और बालूचिस्तान को पृथक् प्रान्त बना दिया जाय, सीमा प्रान्त को सुधार देदिये जांय और मुसल्मानों को केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं (Central Bodies) में कम से कम एक तिहाई स्थान दे दिये जांय तब मुसल्मान सम्मिलित निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार करने को तैयार हैं।' इस प्रस्ताव को लाहौर के श्रीयुत बरकत अली ने प्रस्तुत किया था, आपने कहा कि जब तक उपर्युक्त शर्तें स्वीकार नहीं कर ली जातीं तब तक हम सम्मिलित निर्वाचन शुरू करने के पक्ष में नहीं हैं। हमारी सम्मति में लीग का यह प्रस्ताव युक्तियुक्त नहीं है। मुसल्मानों को चाहिये था कि वे सम्मिलित निर्वाचन के सिद्धान्त को देश के लिये हितकर समझ कर उसे इसी दृष्टि से स्वीकार कर लेते। यदि सम्मिलित निर्वाचन को वह एक ऐसी चीज़ समझते हैं जिस के प्रतिफल में उन्हें कुछ अन्य विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहिये तो वे उन की मांग भी शौक से करें। परन्तु यह करते हुए वे यह न भूल जांय कि आखिर कार उन की वे मांगें पूरा करने का अन्तिम अधिकार इस समय तक अंग्रेज़ सरकार के हाथ में ही है। अभी तक वे हिन्दुओं से अधिक से अधिक इतनी आशा ही कर सकते हैं कि हिन्दू लोग उन की इन मांगों में सहयोग दें अर्थात् हिन्दू भी इस बात को स्वीकार कर लें कि सिन्ध को जुदा प्रान्त बना दिया जाय, आदि। हिन्दुओं ने ऐसा किया भी है। इसी प्रकार मुसलमानों को चाहिए कि वे सम्मिलित निर्वाचन के पक्ष में पूरी सामर्थ्य से कांग्रेस का साथ दें। देश के सब दल मिल कर जो 'स्वराज्य विधान' तैयार करें उस में भी ये दोनों बातें स्वीकार कर ली जांय। ध्यान रखना चाहिये कि इन सब मांगों की पूर्त्ति अभी तक बृटेन की न्याय बुद्धि अथवा हमारी सम्मिलित शक्ति पर ही आश्रित है। अतः हिन्दुओं से समझौता करते हुए एक ऐसी शर्त रख लेना जिस का पूरा करना हिन्दुओं के हाथ में नहीं, कदापि युक्ति युक्त नहीं है। क्या हम मुसल्मान नेताओं से यह आशा करें कि वे इस संकट के समय [illegible] का परिचय देंगे।

एक और बात । मुसल्मानों के लोक प्रिय नेता सर आगाखान ने हाल ही में एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित की है, जिस में उन्होंने लिखा है कि वे प्रारम्भ ही से मुसल्मानों के जुदा संगठन करने के विरुद्ध थे; उन की सम्मति में मुसलमान यदि कांग्रेस के साथ रहते तो यही उनके तथा देश के हित की दृष्टि से अधिक अच्छा था। परन्तु दुर्भाग्य वश उस समय यह बात नहीं हो सकी, मुसल्मानों ने मुस्लिम लीग के रूप में अपना पृथक् संगठन बना लिया। सर आगाखान की सम्मति में अब मुसलमानों को अपना एक प्रामाणिक और प्रबल संगठन बना लेना चाहिये जो कि सदा विश्वास के साथ मुसल्मानों के प्रतिनिधि होने का दावा कर सके।' हमारी सम्मति में मुसलमानों को चाहिए कि वे अब अपना पृथक् राजनीतिक संगठन छोड़ कर कांग्रेस में ही सम्मिलित हो जाँय। पिछले ४२ वर्षों के अनुभव से यह भली प्रकार स्पष्ट हो गया है कि कांग्रेस मुसल्मानों के हितों का पूरा ख्याल रखती है। मुसलमानों का अपना पृथक् राजनीतिक सङ्गठन होते हुए भी वह बहुत बार मुसलमान सज्जनों का अपना प्रधान निर्वाचिन करती रही है। यदि हिन्दू मुसल्मान समान रूप से कांग्रेस को अपनी प्रतिनिधि संस्था स्वीकार कर लें तो बरसों की मंज़िल कुछ महीनों में ही तय हो सकती है।

× × ×

लाहौर आर्यसमाज का अर्धशताब्दी महोत्सव

सन १९२७ के अन्तिम सप्ताह में लाहौर आर्यसमाज का अर्धशताब्दी महोत्सव बड़े समारोह और उत्साह से मनाया गया। सन् १८७७ के एप्रिल मास में ऋषि दयानन्द ने स्वयं अपने करकमलों से इस पञ्जाब के केन्द्रीय आर्य समाज की स्थापना की थी। आज ५० बरस बाद हम देख रहे कि आर्यसमाज की शक्ति बहुत अधिक बढ़ चुकी है। आज यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि पञ्जाब की राजधानी लाहौर में आर्यसमाज ही सब से अधिक शक्तिशाली, सुसंगठित और ज़िन्दा संस्था है। केवल लाहौर ही नहीं, सारे उत्तरीय भारत के लिये यही बात सत्य सिद्ध होती है। इस में संदेह नहीं कि आजकल आर्यसमाज पर आपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। कुछ ही मास पूर्व लाहौर के कुछ बिगड़े-दिल मुसलमान आर्यसमाज के विरोध में भयंकर तौर से प्रचार करते रहे; यह विरोध केवल बातों तक ही सीमित नहीं रहा, लाहौर के कतिपय आर्यपुरुषों का खून कर दिया गया, आर्यसमाज के एक सन्त प्रचारक पर छुरे से वार किया गया। यह सब होते हुए भी आर्य समाज अनुत्साहित और भयभीत नहीं हुआ। लाहौर की पिछली अर्धशताब्दी इस बात का एक प्रबल प्रमाण है। पिछले वर्ष मार्च मास में ५० हज़ार की संख्या में आर्यों का भागीरथी के तट पर 'श्रद्धानन्दतीर्थ' की रजत जयन्ती पर उपस्थित होना, उस के बाद नवम्बर मास के प्रारम्भ में दिल्ली नगर में अपनी समस्याओं का हल करने के लिये समाज के सम्पूर्ण अग्रिणी पुरुषों का एकत्र होना और उस के डेढ़ मास बाद ही लाहौर में इतने अदम्य उत्साह से स्थानीय आर्यसमाज की अर्धशताब्दी मनाना आर्यों की अतुल कार्यशक्ति और उत्साह को सूचित करता है।

× × ×

मीयां शफ़ी और इक़बाल

मीयां मुहम्मद शफ़ी ने लाहौर में डेढ़ दो सौ मनुष्यों को उपस्थिति में विश्वामित्र की नयी सृष्टि की तरह एक नई मुस्लिमलीग की सृष्टि कर डाली! इस मुस्लिम लीग का वृत्तान्त बहुत ही मनोरञ्जक है। इस लीग का हाल पढ़ते जाइये,— आप की सारी उदासी झड़ जायगी। इस ढाई चावल की खिचड़ी का गान बहुत ही दिलचस्प है। हमें विश्वास है कि इस "लीग" (?) की कार्रवाई को थोड़ा बहुत हेर फेर कर के लिखने से एक बहुत बढ़िया प्रहसन की रचना की जा सकती है। कमीशन के स्वागत के प्रस्ताव पर सम्मति लेने से पूर्व सभापति महोदय ने प्रस्तावक से भी अधिक लम्बा भाषण दिया, इस पर उन्हें जब कहा गया कि सभापति का यह कार्य प्रथा के विरुद्ध है, तब आप तमक कर बोले—"मैं हाउस ऑफ कामन्स का सभापति थोड़े ही हूं, जो सिर्फ समय समाप्त होने पर घंटी बजाता रहूं। मुझे तो सारी जाति का राहनुमा बनना है!" क्या खूब! इस ढाई चावल की खिचड़ी का एक एक गान इसी ढंग से मज़ेदार है।

इक़बाल के लिये हम क्या कहें। हमें याद है, एक दिन पञ्जाबी होने के नाते से हमें इक़बाल पर नाज़ था। कितनी ही बार मस्त होकर हमने भी इक़बाल का यह गीत गुनगुनाया है- 'हिन्दी हैं, हम वतन हैं, हिन्दोसतां हमारा!" परन्तु जजी की उमेदवारी ने इक़बाल की काया ही पलट डाली। जजी की उमेदवारी भी कितना भयङ्कर विष है। इसी विष ने रङ्गीला रसूल का तूफान खड़ा करवाया, और इसी ने मुस्लिम

लीग की अलहदी आवृत्ति करवाई। इकबाल साहब साइमन कमीशन पर बोलते हुए भी नया मुसलमान जज नियुक्त करने की बात कहने से बाज़ न आसके। यह खब्त़ ही ऐसा है। हे ईश्वर, तेरे जिस नरक की आग का भयङ्कर वर्णन हम यहां सुना करते हैं क्या उस की लपटें इस जजी की ख्वाहिश रूपी आग से भी अधिक तेज़ हैं।

यह सन्तोष का विषय है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने लाचार होकर गल गये अंग की तरह से इस 'शफ़ी एण्ड कम्पनी' को अपने से जुदा कर दिया है। उस के स्थान पर पञ्जाब में नई मुस्लिम लीग की रचना कर दी गई है।

× × ×

प्रो० इन्द्र और पं० सत्यकाम को सज़ा

दिल्ली के ज़िला जज ने अर्जुन के सम्पादक तथा प्रकाशक प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति और पं० सत्यकाम विद्यालङ्कार को जुर्माना प्रदान न करने पर क्रमशः पांच और ढाई वर्ष की कड़ी सज़ा दी है। अभियोग अभी चल रहा है अतः इस मामले के सम्बन्ध में कुछ आलोचना करना उचित नहीं, तथापि यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि १५३ अ धारा के नीचे इतनी भयङ्कर सज़ा देना एक अश्रुत्पूर्व घटना है। क्या प्रो० इन्द्र और पं० सत्यकाम सचमुच ऐसे ही भयङ्कर व्यक्ति हैं। हमारे पाठक दिल्ली के राष्ट्रीय पत्र 'दैनिक अर्जुन' से भली प्रकार परिचित होंगे। 'अर्जुन' सच्चे अर्थों में हिन्दू मुस्लिम मेल का का कट्टर हिमायती है। प्रो० इन्द्र और पं० सत्यकाम से हमारा घनिष्ट परिचय है। हमें भली प्रकार ज्ञात है कि दोनों महानुभाव खरे सोने की तरह उज्वल चरित्र के हैं, उन के हृदय में देश भक्ति की ज्वाला हर समय धधकती रहती है। ऐसे सज्जनों पर जातिगत वैमस्य फैलाने का अपराध लगाना ही हास्यास्पद है। प्रो० इन्द्र और पं० सत्यकाम की नसों में आर्यसमाज के वन्दनीय नेता, अमर शहीद, कर्मयोगी श्रद्धानन्द का खून बह रहा है, अतः हमें पूर्ण विश्वास है कि दोनों वीर इस विपत्ति को बड़े धैर्य से सहेंगे।

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशिये की दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लेण्ड अमरीका इत्यादि देशो में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	=)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
४—बालिका की ऊनी जर्ज़ी [दुरंगा]	≡)	पुरुषों का नुन्दकीदार मौज़ा [सचि]	=॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।=)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद—यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर, भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोड देहरादून।

अपने बच्चे को फुटबॉल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताज़ा और खुश मिज़ाज़ होगा यदि तुम हम से उस के लिए फुटबॉल खरीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे यहां है । जल्द आर्डर भेजिये ।

बी० डी० गुप्ता एण्ड को०

पंच कुई रोड, दिल्ली ।

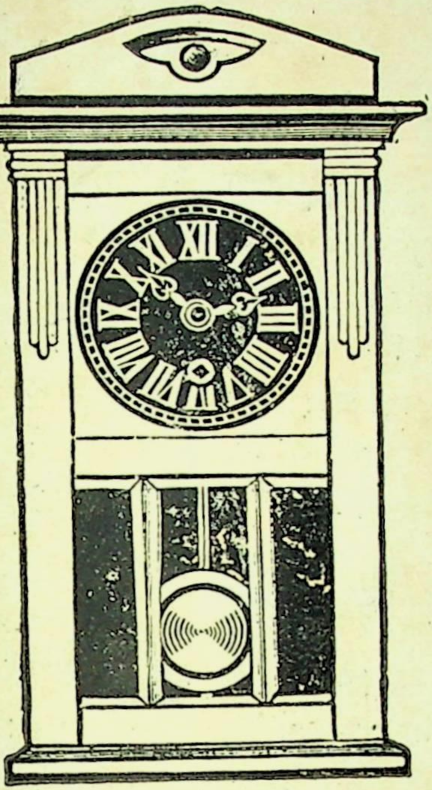

PRICE RS. 3.

Our ... The Best New The Cheapest Model ... and the Clock ... most economical wall Clock gives correct ime and guaranteed for three tyears. Try once and convinc Yourself.

P riceRs. 3.

V. S. WATCH Co.,

P. B. 105, MADRAS.

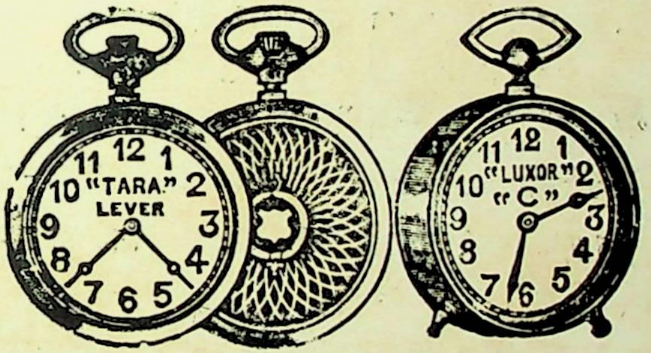
12
11
1
10
"TARA"
2
LEVER
9
3
8
4
7
6
5
12
11
1
10
"LUXOR"
2
"C"
9
3
8
4
7
6
5

मुफ्त ! मुफ्त !!

सौ' रजिस्टर्ड टाइमपीस

हर किसी को मुफ्त

हमारी "तारा, लिव्हर १८ करेंट रोल्ड गोल्ड पाकेट वाच" जिसके पीछे उत्तम नक्काशी की गयी है, गारण्टी ५ वर्ष, मूल्य ५) रु०, मंगाने वाले को ऊपर की टाइम्पीस मुफ़्त दी जायगी।

पताः— केप्टेन वाच कम्पनी, पोस्ट बाक्स २६५ मद्रास।

Captain Watch Co. P. B, 265. Madras.

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक-इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इससे कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूनों की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ......पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार को और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये मूल्य १।।)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २।।।=)।। के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत।

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

चौधरी हुलासराय प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. NO. A. 1711

वर्ष ८, खंड ८]   जनवरी, फरवरी १९२८   [संख्या ९, १०

ज्योति

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी. ए.

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय — पृष्ठ से

१. ज्योति 'कविता' (रमाशंकर मिश्र) ३५७
२. भारतीय आनुश्रुतिक तिथियां— (श्रीआचार्य रामदेव जी) ३५८
३. स्वास्थ्य और उसके चिन्ह— (श्री डाक्टर राधाकृष्ण जी) ३६३
४. वृक्ष का आत्मा (श्री पं० चमूपति जी) ३७४
५. फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण— (श्री ब्र० सर्वमित्र जी) ३८७
६. अब्दुल रसीद की डायरी के कुछ पृष्ठ— (श्री पं० वागीश्वर जी) ३९३
७. मेरा मिसहजकैरी के साथ संभाषण, गतांक से आगे— (अंजनादेवी आर्यवैदिक धर्मविशारदा) ३९९
८. सच्चा अछूतोद्धार (श्री बुद्धिसागर वर्मा) ४०३
९. सुक्तिमाला (श्री बुद्धिशागर वर्मा) ४०६
१०. विद्याओं का भण्डार वेद— श्री पं० प्रियव्रत जी) ४०७
११. कुसुमोद्यान ४१३
१२. विचार–प्रवाह ४२१

ज्योति सम्बन्धि पत्रव्यवहार—

आचार्य्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड़
(देहरादून).

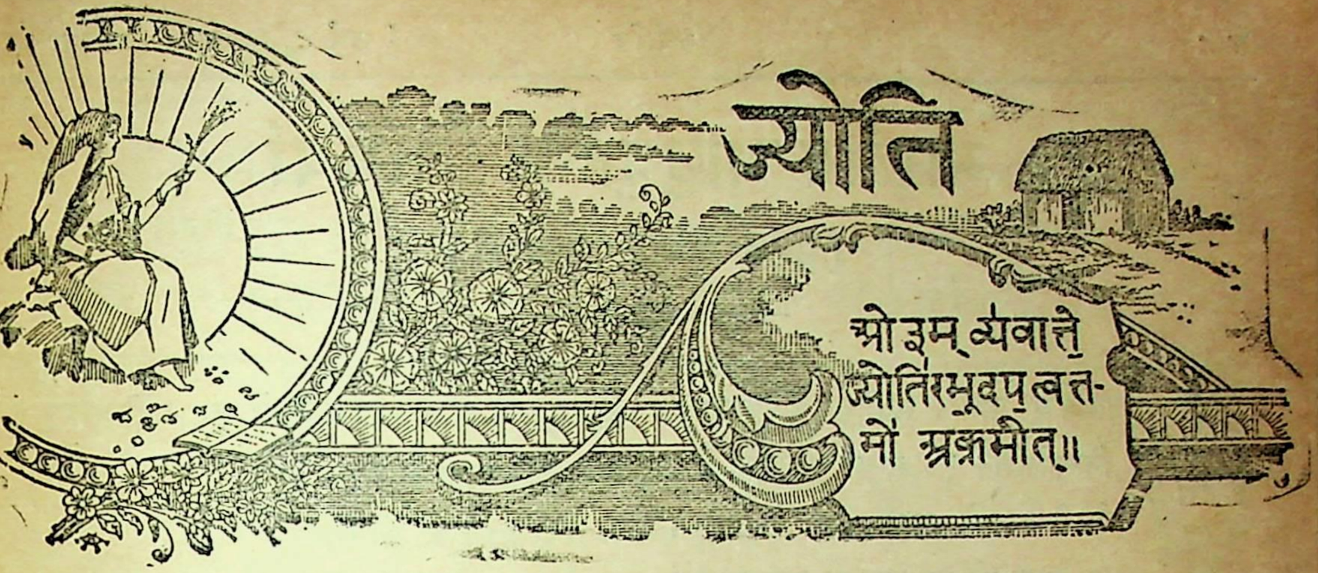
ज्योति
ओ३म् व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत्॥

वर्ष ८ } पौष, माघ सं० १९८४ * जनवरी फ़र्वरी, सन् १९२८ { संख्या ९,१०

ज्योति

(रचयिता—रमाशंकर मिश्र)

जाह्नवी का प्रिय पावन अंक,
सुखप्रद शीतल मलय समीर।
मरुस्थल हो अथवा सन्तप्त,
ज्वलित ज्वाला से प्राण अधीर॥ १॥

कोकिला कूजित कुञ्ज अनेक,
सुमन संवृत कमनीय वसन्त।
ग्रीष्म की अथवा हो दावाग्नि,
हिंस्र पशु युक्त अरण्य अनन्त॥ २॥

खचित मणियों से सुन्दर धाम,
जटित रत्नों से मुक्तामाल।
तपस्या में अथवा संलग्न,
दिगम्बर वेष भस्मयुत भाल॥ ३॥

प्रेम-तृष्णा में हो उन्मत्त,
प्रेम-प्रतिमा में हो तल्लीन।
त्याग तृष्णा अथवा एकान्त,
पड़ा हो सरिता तट स्वाधीन॥ ४॥

भुवन-व्यापक विस्तृत साम्राज्य,
हितैषी गाते हों यश गीत।
विपिन में अथवा मरणासन्न,
पास हो कहीं न अपना मीत॥ ५॥

स्वजन में अथवा निर्जन वास,
चन्दनार्चित काया या कीच।
बाल्य जीवन अथवा कृष गात,
अमरता, अमृत या विष, मीच॥ ६॥

कहीं भी, किसी दशा में देवि!
उच्च हूँ अथवा हूँ अति नीच।
दिव्य-द्युति-दामिनि सी तव ज्योति,
दिखाई दे मम मानस बीच॥ ७॥

भारतीय आनुश्रुतिक तिथियां

[ले० श्री आचार्य रामदेव जी]

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में मुख्यतया निम्नलिखित १० सम्वत् प्राप्त होते हैं। ईसवी काल के अनुसार इन के प्रारम्भ का समय भी हम साथ ही उद्धृत करते हैं—

१. सृष्ट्याब्द	१९५५८८३१०१ ई० पू०
२. चतुर्युग सम्वत्	३८९११०२ ई० पू०
३. कलियुग सम्वत्	३१०२ ई० पू०
४. लौकिकाब्द	३०७८ ई० पू०
५. युधिष्ठिराब्द	३१३९ ई० पू०
६. शककाल	५५० ई० पू०
७. श्री हर्ष काल	४५७ ई० पू०
८. विक्रम सम्वत्	५७ ई० पू०
९. शालिवाहनाब्द	७८ ई० पू०
१०. कोल्लम सम्वत्	८२५ ई० पू०

इन सम्पूर्ण सम्वतों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. सृष्ट्याब्द—वर्तमान सृष्टि का प्रारम्भ १९५५८८३१०१ वर्ष ईसवी पूर्व हुआ है। हिन्दू संस्कारों में काल गणना करते हुए यही सम्वत् कार्य में लाया जाता है।

२. चतुर्युग सम्वत्—भारतीय साहित्य के अनुसार काल को चार युगों में बांट रखा है। ये चारों युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलि हैं। इन का काल १२००० ब्राह्मवर्ष, अर्थात् ४३२०००० वर्ष है। इन में से कृतयुग १७२८००० वर्ष, त्रेता १२९६००० वर्ष, द्वापर ८६४००० वर्ष तथा कलियुग ४३२००० वर्षों का है। सन् १९२७ तक इस के ५०२८ वर्ष बीत चुके हैं; इस प्रकार इस सम्वत् का काल ३८९११०२ ई० पू० हुआ।

३. कलियुग सम्वत्—कलियुग की सम्पूर्ण अवधि ४३२००० वर्ष है। यह ३१०२ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। दक्षिणी ज्योतिषियों के अनुसार इस का प्रारम्भ चान्द्र वर्ष की चैत्र प्रतिपदा को होता है, परन्तु इस के काल के सम्बन्ध में सभी ज्योतिषी एकमत हैं।

इन तीनों सम्वतों का हिसाब ब्राह्म वर्षों में मिलता है । मनुस्मृति तथा शान्ति पर्व के अनुसार एक ब्राह्म वर्ष ३६० साधारण वर्षों का होता है ।

मनुस्मृति में तथा महाभारत शान्ति पर्व में काल का विभाग तथा चारों युगों की अवधि आदि के सम्बन्ध में पूरा वर्णन प्राप्त होता है ।[1]

---

१. निमेषा दश चाष्टौ च काष्टा त्रिंशत्तु ताः कलाः ।
त्रिंशत काला मुहूर्तः स्यात् अहोरात्रं तु तावतः ॥६४॥
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां, चेष्टायै कर्मणा महः ॥६५॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्म चेष्टा स्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुनः ।
अहस्तत्रोद गमनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ।
एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत् ॥ ६८ ॥
चत्वार्याहुः सहस्त्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संख्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापादेन वर्तन्ते सहस्त्राणि शतानि च ॥ ७० ॥
यद्देतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युजम् ।
एतद् द्वादश साहस्त्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥
दैविकानां युगानान्तु सहस्त्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्म मेक महर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥
तद्वै युग सहस्त्रान्तं ब्राह्मं पुण्य महर्विदुः ।
रात्रिं च तावतीमेव ते ऽहोरात्र विदो जनाः ॥ ७३ ॥

(मनुस्मृति अध्याय १)

इसी प्रकार महाभारत शान्ति पर्व में—

काष्ठा निमेषा दश पञ्चचैव त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत् कलां ताम्
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तो भागः कलाया दशमश्च स्यात्यः ॥ २ ॥
त्रिशन्मुहूर्तं तु भवेदहश्च रात्रिश्चसंख्या मुनिभिः प्रणीता ।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत्-सम्वत्सरो द्वादशमास उक्तः ॥ १३ ॥

४. लौकिकाब्द— इस का दूसरा नाम सप्तर्षि-काल भी है। इस का प्रारम्भ कलियुग के २४वें वर्ष से हुआ है। यह मुख्यतया काश्मीर में प्रचलित रहा है। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में इस सम्वत् का ही व्यवहार किया है। कुछ लोगों का मत है कि इस सम्वत् का प्रारम्भ २६ कलि सम्वत में हुआ।

५. युधिष्ठिराब्द— यह कलियुग के प्रारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व शुरु हुआ। महाभारत के महायुद्ध की समाप्ति के अनन्तर सम्राट् युधिष्ठिर जब राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, तभी से इस सम्वत का प्रारम्भ होता है। ईसवी सन् से ३१३९ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर सिंहासनारूढ़ हुए। जैन तथा बौद्ध लोग इस सम्वत का प्रारम्भ कलियुग के ४६८वें वर्ष, अर्थात् २६३४ ई० पू० में मानते हैं।

६. शककाल—उज्जैन के श्री हर्ष विक्रमादित्य ने जब शक लोगों को परास्त किया तब से इस सम्वत का प्रारम्भ हुआ। यह युधिष्ठिर के मृत्युकाल के २५२६ वर्ष बाद शुरु हुआ। युधिष्ठिर का देहान्त ३१०२ ई० पू० में, श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के एक दम बाद, हुआ था। इस प्रकार इस सम्वत की तिथि ५७६ ई० पू० निश्चित होती है। कल्हण के अनुसार श्री हर्ष विक्रमादित्य, हिरण्य, मात्रिगुप्त तथा प्रवरसेन द्वितीय का समकालीन था। उस ने सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पर अपना शासन स्थापित किया, उसने शक लोगों को भारी हार दी तभी से शक सम्वत का प्रारम्भ हुआ। इसी कारण इस श्री हर्ष को विक्रमादित्य की उपाधि मिली। कविवर मात्रिगुप्त ने इस विक्रमादित्य को इसी कारण 'शकारि' लिखा है।

सम्वत्सरं द्वे त्वयने वदन्तिसंख्याविदो दक्षिणमुत्तरञ्च ॥ १४ ॥
अहो रात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणा महः ॥ १५ ॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयो पुनः।
शुक्लोहः कर्मचेष्टायां कृष्णः स्वप्नाय शर्वरी ॥ १६ ॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुनः।
अहस्तत्रोदगमनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ १७ ॥
ये ते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते दैवमानुषे।
तयो संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहं क्षपे ॥ १८ ॥
दिव्यै वर्ष सहस्रैस्तु कृतत्रेतादि संज्ञकम्।
चतुर्युगं द्वादशभि स्तद्विभागं निबोध मे ॥ १९ ॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ २० ॥

७. श्री हर्ष काल—का प्रारम ४५७ ई० पूर्व से होता है। सुप्रसिद्ध विक्रमी सम्वत से ४०० वर्ष पूर्व यह सम्वत शुरु हुआ। मुसल्मान ऐतिहासिक अल्बरूनी के अनुसार विक्रमादित्य से ४०० वर्ष पूर्व नैपाल तथा अन्य उत्तरीय देशों में यह सम्वत प्रयुक्त किया जाता था। इस सम्वत के सम्बन्ध में विस्तार से हम तीसरे अध्याय में लिखेंगे।

८. विक्रम सम्वत— मालव के सम्राट् विक्रमादित्य ने ५७ ई० पू० में इस सम्वत का प्रारम्भ किया। इस के दो नाम-सम्वत और मालवकाल भी हैं। यह सम्वत सम्पूर्ण भारत में आज तक भी व्यवहृत होता है।

९. शालिवाहनाब्द— प्रस्थान के राजा शालिवाहन ने ७८ ई० पश्चात् में इसका प्रारम्भ किया।

१०. कोल्लम सम्वत्— ८२५ ई० पश्चात् कोल्लम (कीलन—Quilon) ने इसका प्रारम्भ किया।

भारतवर्ष में मुख्यतया यही सम्वत भिन्न २ समयों में, भिन्न २ प्रान्तों अथवा सम्पूर्ण देश में, प्रचलित रहे हैं। इन के अतिरिक्त कतिपय अन्य सम्वत भी भारतीय साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इस देश के प्राचीन साहित्य में प्राप्त होने वाले अधिकांश सम्वतों की तिथि १ वैशाख १९८५ तदनुसार १३ अप्रिल १९२८ शुक्रवार के दिन निम्न लिखित है—

इतरेषु ससन्ध्येषु संध्यांशेषु ततस्त्रिषु।
एक पादेन हीयन्ते सहस्त्राणि शतानि च ॥ २१ ॥
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम्।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलै युगौ ॥ २८ ॥
एतां द्वादश साहस्त्रीं युगाख्यां कवयो विदुः।
सहस्र परिवर्तं तत् ब्राह्मं दिवस मुच्यते ॥ २९ ॥
रात्रिमेतावतीं चैव तदादौ विश्वमीश्वरः।
प्रलये ध्यान माविश्य सुप्त्वा सोन्ते विबुध्यते ॥ ३०
सहस्र युग पर्यन्त महर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युग सहस्त्रां तां तेऽहोरात्रविदो जना ॥ ३१ ॥

(शान्तिपर्व, २३१ अध्याय)

१. आसन मघासु मुनयः शासतिपृथवीं युधिष्ठिरे नृपतौ
षड द्विक् पञ्च द्वियुतः शक कालस्तस्य राज्ञस्य ॥५६॥

(राजतरङ्गिणी अध्याय १)

१. सृष्ट्याब्द—	१९५५८८५०३०.
२. बार्हद्रथाब्द (मगध)—	५२२८.
३. श्री कृष्ण जननाब्द—	५१३४.
४. बार्हस्पत्यमान सृष्ट्याब्द—	५१०८.

(काश्मीर के गोनन्द प्रथम द्वारा प्रचालित)

५. युधिष्ठिराब्द (हिन्दुओं का) —	५०३७.
६. सौरमान शष्ट्याब्द—	५०४३.

(नैपाल के यलम्बरा द्वारा प्रचालित)

७. श्री कृष्ण निर्वाणाब्द—	५०३१.
८. कल्याब्द (या परीक्षिताब्द)—	५०३०.
९. लौकिकाब्द—	५००६.

(काश्मीर के गोनन्द द्वितीय द्वारा प्रचाचित)

१०. युधिष्ठिराब्द (जैन आदि का)—	४५६२.
११. प्रद्योताब्द (मगध)—	४०५३.
१२. शैशुनागाब्द (मगध)—	३८८८.
१३. तृतीय गोनन्दाब्द (काश्मीर)	३८४७.
१४. पशुप्रेक्ष देवाब्द (नैपाल)—	३७९५.
१५. भूमवर्माब्द (नैपाल)—	३६४०.
१६. नन्दाब्द (मगध)—	३५२८.
१७. मौर्याब्द (मगध)—	३३४४.
१८. शुङ्गाब्द (मगध)—	३०२८.
१९. प्रतापादित्याब्द (काश्मीर)—	२८४५.
२०. कण्वाब्द (मगध)—	२७२९.
२१. आन्ध्राब्द (मगध)—	२६८४.
२२. मेघवाहनाब्द (काश्मीर)—	२६५३.
२३. शक काल (शकों का पराजय)—	२५०४.
२४. श्री हर्षाब्द (उज्जैन)—	२३८५.
२५. गुप्ताब्द (मगध)—	२२५३.
२६. वसन्त देवाब्द (नैपाल)—	२२२९.
२७. अंशुवर्माब्द (नैपाल)—	२०२९.
२८. विक्रमाब्द (मालव)—	१९८५.
२९. शालिवाहनाब्द (प्रस्थान)—	१८५१.
३०. वीरदेवाब्द (नैपाल)—	१६२९.
३१. कर्कोटाब्द (काश्मीर)—	१३२७.
३२. हर्षवर्धनाब्द (कन्नौज)—	१३२२.
३३. प्रताप रुद्राब्द (ओरङ्गल)—	१२४१.
३४. गुणकाम देवाब्द (नैपाल)—	१२०६.
३५. सदाशिवदेवाब्द (नैपाल)—	११७८.
३६. कोल्लाब्द (मालाबार)—	११०३.
३७. उत्पलाब्द (काश्मीर)—	१०७३.
३८. नैपालाब्द—	१०४८.

(नैपाल के जयदेवमल्ल द्वारा प्रचालित)

३९. नारायण देवाब्द (नैपाल)—	१०३८.
४०. यशस्कर देवाब्द (काश्मीर)	९८९.
४१. प्रथम लोध्राब्द (काश्मीर)	९२५.
४२. भोज देवाब्द (धारा)—	९१४.
४३. द्वितीय लोध्राब्द (काश्मीर)	८२७.
४४. राम देवाब्द (देवगिरि)—	६२८.
४५. हरिसिंह देवाब्द (नैपाल)—	६०४.
४६. कृष्ण रायाब्द (विजय नगर)—	४००.
४७. पृथवीनारायणाब्द (नैपाल)	१६०.

* * *

स्वास्थ्य और उस के चिन्ह

[डाक्टर राधाकृष्ण B. Sc., M.B., B. S. अध्यक्ष स्वास्थ्य]
रक्षा विभाग गुरुकुल काँगड़ी

प्रत्येक व्यक्ति जो स्वास्थ्य चाहता है प्राप्त कर सकता है। सब मनुष्य एक-समान स्वस्थ नहीं हो सकते क्योंकि जो प्रारम्भिक स्वास्थ्य माता-पिता से जन्म से ही मिला है उस का भी प्रभाव होता है। अतः यही कारण है कि कोई तो शीघ्र ही थोड़े से यत्न से स्वस्थ हो जाते हैं और किसी को अधिक परिश्रम करने पर ही स्वास्थ्य उपलब्ध होता है। सच मुच हमारी निर्बलता का हमारी सन्तान को भी फल भोगना पड़ता है।

स्वास्थ्य क्या है ? क्या रोग से मुक्त रहने को ही स्वास्थ्य कहते हैं ? यह भी है और इस के अतिरिक्त और भी है कि मनुष्य जीवन को घसीटे नहीं प्रत्युत इस से अधिक-से-अधिक लाभ उठावें जिस से हमें आत्म-अभिमान, आत्मविश्वास, और आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव हो सके, तथा हम अपने और औरों के लिये लाभदायक हो सकें।

स्वास्थ्य कितनी अमूल्य वस्तु है, सब जानते हैं। स्वास्थ से तो धन कमाया जा सकता है परन्तु केवल धन से स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता। यश प्राप्ति का यह एक साधन है परन्तु केवल यश से स्वास्थ्य नहीं मिलता। क्या यह सच नहीं है कि एक निर्धन स्वस्थ मज़दूर अस्वस्थ महाराजा से अधिक भाग्यशाली है ? एक धनी पुरुष जब अपने गिरे हुयें स्वास्थ्य के लिये चिकित्सकों के प्रति अपनी दीन अवस्था का वर्णन करते हुए स्वास्थ्य की आकांक्षा करता है तो करुणा का कितना पात्र बन जाता है। बुरे स्वास्थ्य के कारण ही कितने हितैषी और नेता जाति की सेवा करने में असमर्थ हो जाते हैं।

स्वास्थ्य का सब से अधिक लाभ वह असीम प्रसन्नता है जो मनुष्य अनुभव करता है। वह सृष्टि-मात्र को इस प्रसन्नता से पूर्ण देखता है। उदासी और निराशा उस से कोसों दूर रहते हैं। वह तो आशा और प्रसन्नता की जीवित मूर्ति है। निराशावादी तो वह हैं जिन्हें जीवन काटने दौड़ता है, और जिनके लिए कष्ट-दायक है। स्वस्थ व्यक्ति के लिए जगत् क्रीड़ा स्थल है। उस के प्रत्येक कार्य से उत्साह प्रत्यक्ष होता है। वह स्वयं हँसता है और दूसरों को हँसाता है। उस के लिये संसार मिथ्या, दुःखमय और स्वप्न नहीं है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए जहाँ पहिले स्वस्थ माता पिता की आवश्यकता है, और दूसरे हमारी परिस्थिति अर्थात् हमारा नगर, गली मुहल्ला, म्युंसिपल जल इत्यादि साफ़ होने की, जिस जातीय स्वस्थवृत्त के लिये हैल्थ ऑफ़ीसर नियुक्त किये जाते हैं, वहाँ तीसरे यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने स्वास्थ्य का स्वयम् भी ध्यान रक्खें। बिना इस व्यक्तिगत स्वस्थवृत्तके स्वास्थ्य लाभ कठिन है।

अपने स्वास्थ की उन्नति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमें अपने स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था का पता हो। इस का पता कोई उत्तम चिकित्सक ही दे सकता है, जो शारीरिक विकारों और रोगों की अवस्था पर कुछ निर्देश भी करेगा। स्मरण रखें कि अपने स्वास्थ्य की ठीक अवस्था को जानने के लिये किसी योग्य और निपुण चिकित्सक

को उसके अवकाश के समय मिलना चाहिये, क्योंकि इस शारीरिक निरक्षण में एक दो घंटे अवश्य लग जाते हैं। (इस शारीरिक निरीक्षण के लिए फार्म गुरुकुल काँगड़ी के कार्यालय से पुरुषों के लिये और कन्या गुरुकुल के कार्यालय से स्त्रियों के लिये =) के टिकट भेजने पर मिल सकते हैं)

इस निरीक्षण में चिकित्सक ऊंचाई, भार, ताप-परिमाण, नाड़ी, रक्त दबाव तथा श्रवण शक्ति और दृष्टि आदि को मापेगा। केश, त्वचा, ग्रन्थियों, अंगों, दांत, मसूड़े, कान, नाक, गला, टौंसिल, हृदय, फुफ्फुस, कोष्ट, वृक्क, यकृत तथा उत्पादक अंगों की अवस्था का ज्ञान प्राप्त करेगा। शारीरिक पोषण तथा मानसिक रचनाओं का भी परीक्षण करेगा। इन सब की अवस्था के आधार पर वह ठीक बता सकेगा कि कौन कौन सी रचनाएं निर्बल हैं और विशेष ध्यान के योग्य हैं। यदि उचित होगा तो इन की चिकित्सा भी करेगा।

इस का अभिप्राय यह है कि उन्नति करने से पूर्व त्रुटियों का दूर होना अनिवार्य है। इस से वृद्धि सुगमता और शीघ्रता से होती है। इस का यह भी अभिप्राय है कि इन त्रुटियों को ऐसी अवस्था में ही दूर कर दिया जावे जब कि वह अभी जड़ पकड़ रही हैं। समय बीतने पर जब वे वास्तव में रोग के रूप में स्पष्ट होंगी तो फिर बहुत परिश्रम करने तथा पर्याप्त धन व्यय करने पर भी उन के कष्टदायक और कठिन-साध्य परिणाम से मुक्त होना असंभव सा होजायगा। कभी २ तो उपद्रव इतने भयंकर होते हैं कि जीवन ही समाप्तहो जाता है।

इस शारीरिक निरीक्षण के उत्तम फल को अमरीका की एक जीवन-बीमा कम्पनी ने १९१४ में कई वर्षों के एक परीक्षण से स्पष्ट सिद्ध किया था। २ वर्ष तक इस कम्पनी ने ७०,००० व्यक्तियों का शारीरिक निरीक्षण कर के उन्हें, प्रत्येक की अवस्था के अनुसार, स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देश दिये। तथा ऐसे व्यक्तियों का भी रिकौर्ड रखा जिन्होंने यह निरीक्षण नहीं कराया। ५ वर्ष के पीछे इस कम्पनी ने पुनः जांच की तो पता लगा कि निरीक्षित व्यक्तियों में से केवल २१७ मरे और बिना निरीक्षण वालों में से ४१२ मरे। तथा निरीक्षितों में मृत्यु संख्या ३९ प्रति शतक थी और अन्यों में ७० प्रति शतक।

इस परीक्षण से यह भी पता लगा कि जो व्यक्ति यह निरीक्षण प्रति पाँचवें वर्ष करवाते रहते हैं वे अधिक स्वस्थ होते हैं। यह भी कि प्रायः ७५ प्रतिशतक मनुष्य किसी न किसी शारीरिक विकार से ग्रस्त होते हैं।

वैसे तो चिकित्सक विस्तार से शरीर की को अवस्था का ठीक ज्ञान देगा परन्तु सर्व साधारण जनता भी निम्न मुख्य चिन्होंसे स्वास्थ्य की अवस्था का अनुमान कर ही सकती है:—

१. भार तथा उंचाई

संलग्न चक्र अमरीकन बाल स्वास्थ्य सुधार समिति के हैं जो बालक तथा बालिकाओं दोनों के लिये हैं। यह माध्यम भार चक्र हैं। थोड़ा से अधिक या कम का तो कोई हर्ज नहीं परन्तु यदि भार कुछ ज्यादा अधिक या कम हो तो स्वास्थ्य ठीक न समझना चाहिये। साधरण नियम यह है कि बाल अवस्था में भार यदि थोड़ा-सा अधिक हो तो कम होने की अपेक्षा अच्छा है परन्तु युवा अवस्था से पीछे अधिक भार सर्वदा शोचनीय होना चाहिये। ३५ वर्ष की आयु से पीछे तो भार कम रखने का ही यत्न करना चाहिये।

भार प्रति मास निश्चित समय पर और निश्चित अवस्था में ही लेना उचित है। वैसे तो भार प्रतिमास भी कुछ न कुछ घटता बढ़ता ही रहेगा परन्तु यदि प्रतिमास घटता ही जावे या शीघ्र घटना आरम्भ हो जावे तो यह किसी रोग विशेषतः क्षय-रोग का सूचक है। तब चिकित्सक की सम्मति लेनी आवश्यक है।

भारचक्र बालकों के वास्ते (भार पौंड़ों में)

उचाई इञ्चों में	आयु ५ वर्ष	६ वर्ष	७ वर्ष	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	आयु १९ वर्ष	उचाई इञ्चों में
३८	३४	३४														३८
३९	३५	३५														३९
४०	३६	३६														४०
४१	३८	३८	३८													४१
४२	३९	३९	३९	३९												४२
४३	४१	४१	४१	४१												४३
४४	४४	४४	४४	४४												४४
४५	४६	४६	४६	४६	४६											४५
४६	४७	४८	४८	४८	४८											४६
४७	४९	५०	५०	५०	५०	५०										४७
४८		५२	५३	५३	५३	५३										४८
४९		५५	५५	५५	५५	५५	५५									४९
५०		५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८								५०
५१			६१	६१	६१	६१	६१	६१								५१
५२			६३	६४	६४	६४	६४	६४	६४							५२
५३			६६	६७	६७	६७	६७	६८	६८							५३
५४				७०	७०	७०	७०	७१	७१	७२						५४
५५				७२	७२	७३	७३	७४	७४	७४						५५
५६				७५	७६	७७	७७	७७	७८	७८	८०					५६
५७					७९	८०	८१	८१	८२	८३	८३					५७
५८					८३	८४	८४	८५	८५	८६	८७					५८
५९						८७	८८	८९	८९	९०	९०	९०				५९
६०						९१	९२	९२	९३	९४	९५	९६				६०
६१							९५	९६	९७	९९	१००	१०३	१०६			६१
६२							१००	१०१	१०२	१०३	१०४	१०७	१११	११६		६२
६३							१०५	१०६	१०७	१०८	११०	११३	११८	१२३	१२७	६३
६४								१०९	१११	११३	११५	११७	१२१	१२६	१३०	६४
६५								११४	११७	११८	१२०	१२२	१२७	१३१	१३४	६५
६६									११९	१२२	१२५	१२८	१३२	१३६	१३९	६६
६७									१२४	१२८	१३०	१३४	१३६	१३९	१४२	६७
६८										१३४	१३४	१३७	१४१	१४३	१४७	६८
६९										१३७	१३९	१४३	१४६	१४९	१५२	६९
७०										१४३	१४४	१४५	१४८	१५१	१५५	७०
७१										१४८	१५०	१५१	१५२	१५४	१५९	७१
७२											१५३	१५५	१५६	१५८	१६३	७२
३											१५७	१६०	१६२	१६४	१६७	७३
७४											१६०	१६४	१६८	१७०	१७१	७४

माध्यम भार वृद्धि (बालक) जो एक वर्ष में उंचाई के अनुसार होनी चाहिये:—

आयु ६		७		८		९		१०		११		१२		
उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	
४३	३	४५	४	४७	५	४९	५	५१	५	५३	६	५४	९	यह उंचाई थोड़ी कहलाती ह
४६	४	४८	५	५०	६	५२	६	५४	६	५६	७	५८	९	” ” माध्यम ”
४९	५	५१	७	५३	७	५३	७	५७	७	५९	८	६१	१२	” ” पर्याप्त ”
१३		१४		१५		१६		१७		१८		१९		
उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	
५३	९	५८	११	६०	१४	६२	१३	६४	७	६५	३	६५		यह उंचाई थोड़ी कहलाती है
६०	११	६३	१५	६५	११	६७	८	६८	४	६९	३	६९		” ” माध्यम ”
६४	१६	६७	११	७०	९	७२	७	७२	३	७३	४	७३		” ” पर्याप्त ”

भारचक्र कन्याओं के लिये

ऊंचाई इंचों में	आयु ५ वर्ष	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
३८	३३	३३												
३९	३४	३४												
४०	३६	३६	३६											
४१	३७	३७	३७											
४२	३९	३९	३९											
४३	४१	४१	४१	४१										
४४	४२	४२	४२	४२										
४५	४५	४५	४५	४५	४५									
४६	४७	४७	४७	४८	४८									
४७	४९	५०	५०	५०	५०	५०								
४८		५२	५२	५२	५२	५३	५३							
४९		५४	५४	५५	५५	५६	५६							
५०		५६	५६	५७	५८	५९	६१	६२						
५१			५९	६०	६१	६१	६३	६५						
५२			६३	६४	६४	६४	६५	६७						
५३			६६	६७	६७	६८	६८	६९	७१					
५४				६९	७०	७०	७१	७१	७३					
५५				७२	७४	७४	७४	७५	७७	७७				
५६					७६	७८	७८	७९	८१	८३				
५७					८०	८२	८२	८२	८४	८८	९२			
५८						८४	८८	८६	८८	९३	९६	१०१		
५९						८७	९०	९०	९२	९६	१००	१०३	१०४	
६०						९१	९५	९५	९७	१०१	१०५	१०८	१०९	१११
६१							९९	१००	१०१	१०५	१०८	११२	११३	११६
६२							१०४	१०५	१०६	१०९	११३	११५	११७	११८
६३								११०	११०	११२	११६	११७	११९	१२०
६४								११४	११५	११७	११९	१२०	१२२	१२३
६५								११८	१२०	१२१	१२२	१२३	१२५	१२६
६६									१२४	१२४	१२५	१२८	१२९	१३०
६७									१२८	१३०	१३१	१३३	१३३	१३५
६८									१३१	१३३	१३५	१३६	१३८	१३८
६९										१३५	१३७	१३८	१४०	१४२
७०										१३६	१३८	१४०	१४२	१४४
७१										१३८	१४०	१४२	१४४	१४५

माध्यम भार वृद्धि प्रति वर्ष कन्याओं की ऊंचाई के अनुसार

आयु ६		७		८		९		१०		११		
ऊं	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	ऊंचाई
४३	४	४५	४	४७	४	४९	५	५०	६	५२	६	साधारण
४५	५	४७	५	५०	६	५२	७	५४	८	५६	१०	मध्यम
४७	६	५०	८	५३	८	५५	९	५७	११	५९	१३	पर्याप्त
१२		१३		१४		१५		१६		१७		
उ	वृ	उ	वृ	उ	व	उ	वृ	उ	वृ	उ	वृ	ऊंचाई
५४	१०	५७	१३	५९	१०	६०	७	६१	२	६१	१	साधारण
५८	१३	६०	१०	६२	६	६३	४	६४	३	६४	१	मध्यम
६२	९	६४	८	६६	४	६६	४	६७	१	६७	१	पर्याप्त

भार चक्र पुरुषों के वास्ते पौंडों में

ऊंचाई फुट	इञ्च	आयु १५—१९	२०—२४	२५—२९	३०—३४	३५—३९	४०—४४	४५—४९	५०—५४	५५—५९
४	११	१११	११७	१२२	१२५	१२७	१३०	१३२	१३३	१३४
५	०	११३	११९	१२४	१२७	१२९	१३२	१३४	१३५	१३६
५	१	११५	१२१	१२६	१२९	१३१	१३४	१३६	१३७	१३८
५	२	११८	१२४	१२८	१३१	१३३	१३६	१३८	१३९	१४०
५	३	१२१	१२७	१३१	१३४	१३६	१३९	१४१	१४२	१४३
५	४	१२४	१३१	१३४	१३७	१४०	१४२	१४४	१४५	१४६
५	५	१२८	१३५	१३८	१४१	१४४	१४६	१४८	१४९	१५०
५	६	१३२	१३९	१४२	१४५	१४८	१५०	१५२	१५३	१५४
५	७	१३६	१४२	१४६	१४९	१५२	१५४	१५६	१५७	१५८
५	८	१४०	१४६	१५०	१५४	१५७	१५९	१६१	१६२	१६३
५	९	१४४	१५०	१५४	१५८	१६२	१६४	१६६	१६७	१६८
५	१०	१४८	१५४	१५८	१६३	१६७	१६९	१७१	१७२	१७३
५	११	१५३	१५८	१६३	१६८	१७२	१७५	१७७	१७८	१७९
६	०	१५८	१६३	१६९	१७४	१७८	१८१	१८३	१८४	१८५
६	१	१६३	१६८	१७५	१८०	१८४	१८७	१९०	१९१	१९२
६	२	१६८	१७३	१८१	१८६	१९१	१९४	१९७	१९८	१९९
६	३	१७३	१७८	१८७	१९२	१९७	२०१	२०४	२०५	२०६

भार चक्र स्त्रियों के वास्ते पोंडों में

ऊंचाइ										
फुट	इञ्च	१५—१९	२०—२४	२५—२९	३०—३४	३५—३९	४०—४४	४५—४९	५०—५४	५५—५९
४	११	११०	११३	११६	११९	१२२	१२६	१२९	१३१	१३२
५	०	११२	११५	११८	१२१	१२४	१२८	१३१	१३३	१३४
५	१	११४	११७	१२०	१२३	१२६	१३०	१३३	१३५	१३७
५	२	११७	१२०	१२२	१२५	१२९	१३३	१३६	१३८	१४०
५	३	१२०	१२३	१२५	१२८	१३२	१३६	१३९	१४१	१४३
५	४	१२३	१२६	१२९	१३२	१३६	१३९	१४२	१४४	१४६
५	५	१२६	१२९	१३२	१३६	१४०	१४३	१४६	१४८	१५०
५	६	१३०	१३३	१३६	१४०	१४४	१४७	१५१	१५२	१५३
५	७	१३४	१३७	१४०	१४४	१४८	१५१	१५५	१५७	१५८
५	८	१३८	१४१	१४४	१४८	१५२	१५५	१५९	१६२	१६३
५	९	१४१	१४५	१४८	१५२	१५६	१५९	१६२	१६६	१६७
५	१०	१४५	१४९	१५२	१५५	१५९	१६२	१६६	१७०	१७३
५	११	१५०	१५३	१५५	१५८	१६२	१६६	१७०	१७४	१७७
६	०	१५५	१५७	१५९	१६२	१६५	१६९	१७३	१७७	१८२

२. शारीरिक ताप-परिमाण भी स्वास्थ्य का एक चिन्ह है। साधारणतया यह ९८-९ °फ. होना चाहिये।

३. नाड़ी संख्या प्रति मिनट लगभग ६५ से ७५ हो सकती है परन्तु व्यायाम और शारीरिक परिश्रम के पीछे बढ़ जाती है।

४. वक्षस (छाती) का माप ऊँचाई से आधे से कम न होना चाहिये।

५. कमर (कटि) का माप वक्षस के माप से कभी भी अधिक न होना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि जिनके पेट बड़े होते हैं वह तो अस्वस्थ हैं ही उनके अतिरिक्त कई ऐसे भी होंगे जिनका पेट वक्षस से बड़ा होगा, परन्तु कपड़े पहने रहने के कारण दिखाई नहीं देता, यह लोग भी अस्वस्थों में ही गिने जावेंगे।

६. सबसे उत्तम चिन्ह तो यह है कि किसी भी स्वस्थ व्यक्ति को शारीरिक कार्य करते हुए बहुत थकावट अनुभव न करनी चाहिये। यदि कार्य करते, भार उठाते, कुछ दौड़ने या सीढ़ियों पर ही तेज़ चढ़ते दम उखड़ जाता है और श्वास फूल जाता है तो ऐसा व्यक्ति स्वस्थ नहीं।

ऊपरलिखित चिन्हों से स्वास्थ्य की अवस्था का कुछ अनुमान लग सकता है। यदि ज़रा भी संदेह हो तो तुरन्त ही सावधान हो जाना चाहिये और किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श करना चाहिये। स्मरण रहे कि यह आवश्यक नहीं कि चिकित्सक औषधियों का ही सेवन बताएगा प्रत्युत उत्तम चिकित्सक यथा सम्भव यही यत्न करेगा कि आपका स्वास्थ्य औषधियों की सहायता के बिना ही स्वास्थ्य संबन्धी नियमों के पालन से ही ठीक हो जावे। अतः चिकित्सक के पास जाने से भय न खाना चाहिये क्योंकि उसके पास केवल औषधियें ही नहीं प्रत्युत् स्वास्थ्य ठीक करने के और भी अनेक उपाय हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी उपाय और नियम प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक अवस्था के अनुसार कुछ भिन्न भिन्न भी होते हैं जिनका निर्देश चिकित्सक करेगा, परन्तु सामान्यतः यह उपाय निम्न हैं। इनका यहाँ विस्तृत उल्लेख कठिन है अतः संक्षेप रूप में ही दिये जा सकते हैं:—

१. हर समय शुद्ध वायु का ही सेवन करना चाहिये।

२. खुले स्थान में, कमरे और घर से बाहर जितना रह सकें रहें।

३. जगत् में धूप सबसे बढ़कर क्रिमिहर और रोगजीवाणु-नाशक है। जब तक सह सकें धूप में रहने का प्रयत्न करें।

४. शुद्ध, उत्तम, बल्य भोजन पर्याप्त खावें परन्तु भूख से अधिक कभी न खाएँ।

५. जल जितना अधिक पी सकें पीवें क्योंकि यह शरीर के प्रत्येक स्थान को धोकर विष इत्यादि को घोल कर ले जाता है।

६. अपने भार को कभी भी अपनी ऊँचाई तथा आयु के अनुसार निश्चित भार से न बढ़ने दें। स्मरण रखें कि भार कम होना लाभदायक है और अधिक होना हानिकारक। परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि अधिक भारवाले शीघ्रही किसी-न-किसी रोग से मृत होते हैं और अस्वस्थ भी रहते हैं।

७. स्वास्थ्य के लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि आपके अंग सर्वदा स्फूर्ति मेंरहें। अतः जो कार्य करें बलपूर्वक करें और पर्याप्त व्यायाम

करें। व्यायाम तो दिन-चर्या का एक आवश्यक भाग बनजाना चाहिये।

८. निद्रा पर्याप्त लें। स्मरण रहे कि रात्रि के प्रथम भाग की निद्रा स्वास्थ्यप्रद है अतः रात्रि को जल्दी सो जाना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो खुले स्थान में सोवें।

९. वस्त्र आवश्यकता से अधिक न पहनें और जो भी पहनें हलके, ढीले और सछिद्र हों ताकि इन छिद्रों द्वारा वायु का त्वचा पर स्पर्श होता रहे।

१०. सर्वदा प्रसन्न-चित्त और सन्तुष्ट रहने का यत्न करें। संसार की कठिनाइयों को अपनी उन्नति का साधन समझें। स्मरण रहे कि क्षोभ, चिन्ता और क्रोध से जितना मस्तिष्क ख़राब होता है उतना और किसी रोग से नहीं।

११- अपने नेत्रों और अन्य प्रत्येक अंग का ध्यान रखें।

१२. शौच दिन में एक बार अवश्य पर्याप्त होना चाहिये।

१३. जिन लोगों को छूतदार रोग हों उनसे दूर ही रहें विशेषतः ज़ुकाम, क्षय रोग, नेत्र शोथ, गुप्त रोग इत्यादि।

१४. विषैली और नशीली वस्तुएँ शरीर के लिये विष हैं।

१५. जब रोगी हों तो इधर-उधर पाखंडियों से चिकित्सा करा कर जीवन दुःखदायी न बनावें। उत्तम चिकित्सक से यदि लाभ न होगा तो हानि भी न होगी। स्वास्थ्य और जीवन जैसी अमूल्य वस्तुएँ मरम्मत के लिये किसी उत्तम कारीगर को ही सौंपनी चाहिये। इन्हें इधर-उधर व्यर्थ फेंकने या इनसे खेलने का अवसर नहीं है।

१६. अन्त में स्मरण रखना चाहिये कि स्वास्थ्य लाभ कोई सुगम कार्य नहीं है। कोई हलवा नहीं जो गर्म-गर्म मुख में डाल लिया जाय प्रत्युत् इस पर परिश्रम करने की आवश्यकता है और वह भी निरन्तर। स्वास्थ्य-मार्ग पर चलने से कई बार दिल बैठेगा, कई बार पीछे मुड़ जाने की इच्छा होगी, और कई बार निरुत्साहित भी होंगे परन्तु अन्त में जो उत्तम स्वास्थ्य से आत्म-आनन्द आता है जब उसकी एक बार चाट लगी तो फिर पीछे कोई नहीं मुड़ता।

केवल आत्म-आनन्द का ही प्रश्न नहीं प्रत्युत जीवन के सब कामों का आधार-स्तूप तो स्वास्थ्य ही है। संसार का कौनसा कार्य है जो इसके बिना हो सकता है। धन-उपार्जन में, यश और कीर्ति में, समाज-सेवा में और घर को स्वर्ग बनाने में इसी एक से तो सहायता मिलती है, इमर्सन ने सच कहा था कि स्वास्थ्य ही धन है—'Health is Wealth.' और यह कि मुझे स्वास्थ्य दो और मैं चक्रवर्ती सम्राटों की शान को तुच्छ बना सकता हूं—'Give me health and I will make the pomp of emperors ridiculous.'

पाठकगण! मानाकि आप अपने गिरे हुए स्वास्थ्य ही में अपनी सुस्ती के कारण सन्तुष्ट पड़े हैं परन्तु क्या आप जानते हैं कि आपका शरीर अपना नहीं, यह तो उस जननी का है जिसके दर से आपको इतना अन्न, इतना सुख और इतनी प्रसन्नता मिली है। वह लक्ष्मी भारतमाता ही आपके शरीर की स्वामिनी है। आपका कोई अधिकार नहीं कि उसकी वस्तु को निर्बल रखकर इस दुखिया जननी को अन्य उन स्त्रियों के सन्मुख अपमानित करें जो कल इसके दर की भिखारिनें

थीं। इसके दिये शरीर को अस्वस्थ रखकर आप पाप करते हैं। क्या आपको पता है कि संसार में भ्रमण करनेवाले क्या कहते हैं। सुनकर लज्जा आएगी कि सारे संसार में यदि हड्डियों के पिंजड़ दिखाई देते हैं तो इसी अभागिनी भारतमाता की गोद में। जिसके लाल सपूतों की यह अवस्था हो क्या वह जाति कभी उठ सकती है। जिस जाति के व्यक्तियों का माध्यम जीवन काल २७ वर्ष है (जबकि अन्य जातियों का ५७ वर्ष है) वह जाति कब तक दूसरी जातियों के साथ भागेगी। उसे तो मार्ग में ही मूर्छित और मृत होकर इस संसार से नष्ट ही होना पड़ेगा।

अतः सोच लें कि आप क्या चाहते हैं—

१. स्वस्थ होकर जीवन-संग्राम में विजय और भारतमाता का उद्धार या

२. अस्वस्थ रह कर नित्य के लिये नाश।

छप कर तय्यार है
कला-कौमुदी
क्रोशिये का कार्य सिखाने की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक
बड़ा साईज़, बढ़िया मोटा चिकना आर्ट पेपर, ६० के लगभग चित्र
बहुरंगे चित्र से सुशोभित कवर
मूल्य केवल १॥)
विस्तृत विवरण के लिये देखो अन्तिम पृष्ठ
मैनेजर 'ज्योति'

वृक्ष का आत्मा

(श्री पं० चमूपति जी एम. ए.)

प्राचीन मत

अन्त्येष्टि के समय जीव की विविध गतियों पर विचार करने का स्वाभाविक, और अतएव सबसे उत्तम, अवसर होता है। उस समय एक मन्त्र पढ़ते हैं:—

र्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥
अथर्व १८. २. १.

अर्थात् (हे जीव!) तू नेत्रेन्द्रिय के द्वारा सूर्य को प्राप्त हो, प्राण द्वारा वायु में। अपने धर्म द्वारा द्युलोक और पृथिवी में जा। या तो कर्म को प्राप्त हो, यदि तेरा वहाँ हित हो। अथवा ओषधियों में जा। शरीरों के साथ इन सब स्थानों का गमन तथा अधिष्ठान कर।

इस मन्त्र के पूर्व भाग में भौतिक शरीर तथा आत्मा का भिन्न-भिन्न धर्म बता कर आत्मा की दो गतियां वर्णन की हैं— एक वहाँ जहाँ क्रिया होती है, दूसरी ओषधियों में। जिस गति से आत्मा का कल्याण हो, वही उसको मिलती है। यदि उसके पूर्व जीवन की प्रवृत्तियां इतनी जघन्य हैं कि उन्मत्त रोगी के सदृश कुछ समय क्रिया-क्षेत्र से अलग रखने से उसका सुधार हो सकता है तो ओषधि जीवन उसके लिए उत्तम है। इसमें इच्छा पूर्वक क्रिया का अभाव रहता है। और यदि क्रिया-क्षेत्र में जीव के कल्याण की संभावना है तो उसे अन्य योनियों में लाया जाता है।

अथर्ववेद के ओषधिसूक्त (का० ८. सू० ७) मन्त्र ९ में कहा है:—

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्। अरुन्धती-
मुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये।

यहां भी 'ओषधी' के लिये 'जीवन्ती' विशेषण आया है जिसका अर्थ है जीनेवाली। कोई णिच् प्रत्यय कर इसका अर्थ जिलाने वाली कर सकते हैं, परन्तु उस अवस्था में 'जीवलाम्' विशेषण व्यर्थ होगा जिसका अर्थ है 'जीवन देनेवाली'। अतः 'जीवन्ती' का अर्थ जीने वाली ही करना चाहिए।

मनु अध्याय १२ में जीव की कर्मानुसार गतियों का वर्णन आता है। श्लोक ४२ में लिखा है

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥

अर्थात् वनस्पति, कृमि, कीट, मछली, सांप, कछुआ, पशु, मृग सबसे नीच तामसी गति हैं।

ऋषि दयानन्द ने इस श्लोक का उद्धरण सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में (सप्तम बार २७० पृष्ठ पर) कर इस सिद्धान्त का समर्थन किया है।

महाभारत शान्तिपर्व अ० १८२ में भारद्वाज के प्रश्न करने पर भृगु यह उत्तर देते हैं:—

ऊष्मतो म्लायते वर्णं त्वक्फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥ ११॥
वाय्वग्न्यशनिनिष्पेषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥१२॥

वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति ।
नह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः ॥१३॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि ।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥१४॥
पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चापिदर्शनात् ।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे ॥ १५ ॥
वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत् ।
तया पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः ॥ १६ ॥
सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात् ।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

अर्थात् गरमी से इनका रङ्ग बिगड़ता है त्वचा फल और पुष्प कुम्हलाते और झड़ते हैं । अतः वृक्षों में स्पर्श है ॥ ११ ॥ वायु, अग्नि और विद्युत के आघात से फल और पुष्प झड़ते हैं । शब्द के लिए श्रोत्र चाहिए । अतः इनमें श्रोत्रेन्द्रिय है ॥१२॥ वृक्ष को बेल लपेटती और उसके चारों ओर जाती है । रास्ता बिना दृष्टि के नहीं दीखता अतः वृक्ष देखते हैं ॥ १३ ॥ पवित्र अपवित्र गन्धों तथा धूपों से वृक्ष नीरोग और फलवान् होते हैं अतः वृक्ष सूंघते हैं ॥ १५ ॥ जड़ों से पानी पीने और रोगों के देखे जाने तथा उनके प्रतिकार से वृक्षों में रसनेन्द्रिय का अनुमान होता है ॥ १५ ॥ कोपल की डंडी को मुख बना कर जैसे ऊपर जल को ले जायं वैसे वायु के साथ मिल कर जड़ों से रस खींचते हैं॥१६॥ सुख दुःख के ग्रहण करने तथा टूटने पर न उगने से ,मैं वृक्षों में जीव देखता हूं । यह अचेतन नहीं है ॥ १७ ॥

महाभारत के लेख वैज्ञानिक नहीं हैं । केवल लोक-प्रचलित विज्ञान को अनिश्चित लोकभाषा में कह दिया है । वृक्षों में जीव की विद्यमानता है— इतना ही मूल सिद्धान्त है । इसके अतिरिक्त कल्पना का चमत्कार है । सर जगदीशचन्द्र वसु ने भी अपने परीक्षणों के आरम्भ काल में इसी प्रकार की कल्पनाएं उठाई थी, परन्तु पीछे, जैसे हम आगे चल कर दिखायंगे, वह सावधान हो गये । महाभारत का प्रामाण्य वैज्ञानिक नहीं, ऐतिहासिक है । जन साधारण के विश्वास का चित्र-मात्र है । वैज्ञानिकों के अङ्गीकार करने योग्य केवल अन्तिम श्लोक का उत्तरार्ध है:—

जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ।

इस मूल तार्किक धारणा के चारों ओर कल्पना का ताना तना है । शब्द एक शक्ति है, उसका धमाका (जब कि उसकी प्रबलता पर्याप्त हो) अचेतनों पर भी पड़ता है । परन्तु श्रोत्रेन्द्रिय के पीछे मन है । उसके लिए शब्द का अर्थावगमन चाहिए । रंग अचेतनों का भी बदलता है । रास्ता अन्धे भी ढूंढ लेते हैं । इससे चेतनता पूर्वक स्पर्श और दृष्टि की कल्पना निराधार है । रसारोह तथा श्वासादि वास्तव में जीवन के लक्षण हैं । सुख दुःख की अनुभूति का विवेचन हम आगे चल कर करेंगे ।

उपर्युक्त प्रमाण हमने यह सिद्ध करने को दिये हैं कि आर्यसाहित्य में वनस्पतियों में आत्मा के अस्तित्व की भावना बहुत पुरानी है । जहां पाश्चात्य लोग पशुओं में भी जीव की सत्ता इन्हीं दिनों स्वीकार करने लगे हैं, और तो और स्त्रियों में आत्मा होती है, यह सचाई वहां का अर्वाचीन आविष्कार है, वहां हमारे यहां स्त्री और पशु का तो कहना ही क्या है, ओषधियों में भी चेतनता का अनुभव पुरातन काल से किया गया है ।

सर जगदीशचन्द्र वसु ने जब पिछले वर्षों यह प्रतिपादित किया कि ओषधियों की जीवन-क्रियाएं उसी जीवन-शक्ति का परिणाम हैं, जिसका करिश्मा पशुजगत् में रक्त-प्रवाह श्वासोच्छ्वास अङ्ग-प्रत्यङ्ग के युगपत् विकास, आदि के रूप में प्रकट हो रहा है, तो बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने वसु महाशय की खिल्ली उड़ाई थी। घोर विरोध के पश्चात् आज वैज्ञानिक संसार ने इस इस तथ्य को अङ्गीकार किया है कि प्राणी होने की दृष्टि से मनुष्य, पशु, और ओषधि-जगत् एक ही जीवन लड़ीके दाने हैं।

हम इस लेख में प्रथम उन परीक्षणों और युक्तियों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे जो वसु महाशय के इस चमत्कारिक आविष्कार का आधार हैं। फिर वसु महाशय की धारणा की शास्त्रीय विवेचना कर पशुओं और ओषधियों की जीवनावस्था के भेद पर दृष्टि डालेंगे। अन्त में इस आविष्कार के जीवहिंसा पर प्रभाव अप्रभाव की आलोचना वसु महाशय के अपने लेखों की छाया में करेंगे। हमारे लेख का अभिप्राय सर्वसाधारण को इस विषय का बोध प्रदान करना है, तो भी विषय वैज्ञानिक है, कुछ परिभाषाओं के प्रयोग के लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। विषय के महत्व को ध्यान में रख कर पाठकों को कुछ न कुछ परिश्रम तो सहना चाहिए ही।

जीवन क्या है ?

पाठकों की सुविधा के लिए हम सब से पूर्व जीवन-अजीवन के भेद का दिग्दर्शनमात्र कराते हैं जीवित प्राणियों में साधारणतया तीन विशेषताएं पाई जाती हैं—(१) स्वशरीर धारण की (Sustenant) (२) सन्तानोत्पत्ति की (Generative) (३) अंग प्रत्यंग के परस्पर सहकारित्व की (Correlative)।

(१) स्वशरीर-धारण की शक्ति का अभिप्राय यह है कि प्राणियों के शरीरों के अणु परिस्थिति के प्रभाव के कारण प्रतिक्षण क्षीण होते हैं। इस क्षय का प्रतिकार करने को इनके शरीरों ही में निरन्तर ऐसी क्रियाएं होती रहती हैं जो पल-पल में होने वाली त्रुटि की साथ-साथ पूर्ति करती रहती हैं। पूर्ति त्रुटि से अधिक हो तो हास होता है। स्वयं जीवन में शरीर की सामग्री का व्यय होता है। और स्वयं जीवन द्वारा उस व्यय की स्थान-पूर्ति को आय भी होती है। यथा पशुओं को ओषजन और पौधों को प्रधानतया कार्बन चाहिए। श्वासोच्छ्वास से यह कार्य स्वयं हो जाता है। इसी प्रकार रक्त तथा जीवन-रस (Sap) के प्रवाह से क्रमशः इन दोनों प्रकार के प्राणियों के कायिक यन्त्रों की यथेष्ट स्थिति तथा वृद्धि होती रहती है।

२. सन्तानोत्पत्ति का अर्थ अपनी जाति के एक वा अनेक प्राणियों को जन्म देना है। मनुष्य ऐसा करते हैं, पशु ऐसा करते हैं, और पौधे भी ऐसा करते हैं, धातु ऐसा नहीं करते। जीवित प्राणियों की यह विशेषता वैज्ञानिकों को जीव की पृथक् सत्ता स्वीकार करने पर सबसे अधिक बाधित करनेवाला हेतु है। विकासवादियों की धारणा थी कि जीवन की उत्पत्ति अचेतन पदार्थों में किसी विशेष क्रिया का भौतिक फल सिद्ध हो जायगी। परन्तु अब तक अचेतन के चेतन में स्वतन्त्रतया परिणत होने को कोई साक्षि नहीं मिली। जीवन,

जीवन ही से उत्पन्न होता है †, कहीं बीज कहीं वीर्य—जीवित देह का अंश ही दूसरे जीवित देह को प्रादुर्भूत करता है। बिना इस अंश के प्राणी की उत्पत्ति का कोई प्रकार देखा नहीं गया, चेतन अचेतन के विभेद का यह विशेष सबसे प्रबल साधन है।

३. अंग प्रत्यङ्ग का सहकारित्व उस विशेष सम्बन्ध का परिणाम है जो प्राणियों के शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में केवल प्राकृतिक संयोग की ही सृष्टि नहीं करता, किन्तु उनके अन्योऽन्याश्रय तक का कारण होता है। वातनाडियों (Nerves) का जाल जो शरीर के समस्त अवयवों में छाया हुआ है जैवी चेतनता की भौतिक कला प्रतीत होता है। यह तन्तु कोष्ठों (Cells) के समूह हैं जो विविध रचनाओं के विविध रूपों में सारे प्राणिकाय को आच्छादित करते हैं। एक कोष्ठ को आघात (Impulse) हो जाए सही, सारा शरीर उससे सचेत होता है। बाह्य परिस्थिति का शरीर की वृद्धि तथा संकोच पर इन्हीं तन्तुओं (Nerves) की सूक्ष्म उत्तेजना (Excitement) द्वारा प्रभाव पड़ता है। ताप और वायु की आर्द्रता तथा शुष्कता इन्हीं वातिककोष्ठों द्वारा शरीर के अन्तःस्थ पट्ठों (Muscles) को सुकेड़ती तथा फैलाती हैं। इस सुकड़ाव तथा फैलाव का फल पशुओं में हृदय की धड़कन और पौधों में रस-नालियों की गति है जिससे क्रमशः रक्त एवं रस का समस्त देह में सञ्चार होता है।

इस प्रकार यह तीसरी विशेषता पहली विशेषता की सहायक है। प्राणियों के अवयवों में है तो संयोग-सम्बन्ध ही, जो अचेतनों के अंग-प्रत्यङ्ग में भी होता है, परन्तु जहाँ अचेतनों के अङ्ग एक दूसरे से अलग किये जा सकते हैं और उसका अङ्गी की भौतिक सत्ता पर कोई मार्मिक प्रभाव नहीं होता, वहाँ चेतनो के अंगों में एक विशेष प्रकार की पारस्परिक एकता है। एक अंग का जीवन अन्य अंगों के जीवन का सहायक है। यह सहायकता वातनाडियों की संकीर्णता (complexity) के साथ बढ़ जाती है। यथा किसी पशु का एक इन्द्रिय—उदाहरणतया श्रोत्र या घ्राण या चक्षु—बिगाड़ दीजिए। सारे शरीर के विकास पर उसका हानिकर प्रभाव होगा, अचेतनों में यह बात नहीं।

वातनाडी-संस्थान और रक्त-प्रवाह

हम ऊपर कह चुके हैं कि जीवित प्राणियों के देह के जीवन का आधार वातनाडियों का जाल है, जो हृदय आदि मर्मस्थानों के साथ जुड़ा है। ताप और वाष्प की एक विशेष सीमा इन वातनाडियों पर हितकर प्रभाव डालती है। इस प्रभाव का रूप विद्युत् है। विद्युत् का यह धक्का हृदय तक पहुँच कर उसे सुकेड़ता है, जिससे उसके अन्दर का

---

† The 'thoroughly logical evolutionist simply says, sometimes, somehow, somewhere, some way living matter, in its simplest form, arose form nonliving matter. But he has not seen that happening, nor does attempt to say when, where, or rsally how it happened. Evolution the Way the Man by Kellog p. III. Only life produces life.

'A Second difficulty which confronts the geologist is the lack of evidence as to the origin of the great phyla into which the animal and plant kingdom are divided.' Evolution in the Light of Nodern Knowledge. Chapter on Geology by Dr. William W. Watts D., Sc. L L. D. M. Sc. F. R. S.

रक्त बाईं ओर की निष्कासक धमनियों (arteries) में जाता है। रक्तवाहिनियों के घूम-घुमाव में रक्त अशुद्ध होता है। प्रवेशक सिराओं द्वारा फिर हृदय में पहुँचता है और बाईं ओर की निष्कासक धमनियों में चला जाता है पशु-जगत् की स्व-शरीर-धारक क्रिया का मूल यही हृदय का संकोच और विकास है।

रसारोह

पौधों में रक्त का स्थान रस (Sap) ने लिया है। सर जगदीशचन्द्र वसु के परीक्षणों से पूर्व रस के निरन्तर आरोह का कारण वृक्ष के मूल का दबाव समझा जाता था। वनस्पति-शास्त्रियों का विचार यह था कि मूल का कार्य एक पम्प का-सा है जो पानी को ऊपर फेंकता है। वसु महाशय ने मूल को काट कर पौधे का कटा सिर पानी में रखा। पानी का चढ़ाव दीर्घकाल तक स्थिर रहा। दूसरा सिद्धान्त यह था कि पौधे पत्रों के लोम कूपों द्वारा श्वासोछ्वास करते हैं। इस क्रिया में पोधा पानी बाहर निकालता है। निकसित-जल का स्थान रिक्त हो जाने से नीचे के पानी पर खिंचाव पड़ता है। कल्पना यह थी कि जल का आरोह इसी खिंचाव का फल है। वसु महोदय ने पत्ते नोच डाले और त्वचा द्वारा वाष्प के बहिर्गमन का निरोध पौधे पर वेज़लीन की अत्यन्त पतली परत लगा देने से किया। रसारोह स्थिर रहा। रसारोह की क्रिया वृक्ष के किसी अवयव-विशेष तक परिमित नहीं—इसके परीक्षण के लिये पौधे के प्रत्येक अंग का उपर्युक्त अवलोकन पृथक्-पृथक् किया। परिणाम यह निकला कि रसारोह की क्रिया किसी समस्त शरीर-व्यापी कला का चमत्कार है।

पौधे के इधर-उधर का ताप घटाया-बढ़ाया तो पता लगा कि पशु-शरीर के सदृश एक सीमा तक ताप की वृद्धि रसारोह की गति को तीव्र करती है और एक सीमा के नीचे ताप की न्यूनता रसारोह को रोक देती है। शेषोक्त सीमा विकसित पौधों में १४०० सें० है और विकास पारहों में २२०० सें०।

पौधे को क्लोरोफ़ॉर्म से अभिभूत कर देने पर उसका रसारोह धीमा पड़ जाता है। समय अधिक हो जाय तो सर्वथा निरुद्ध हो जाता है, जो पौधे की मृत्यु है। विष देने से शेषोक्त परिणाम शीघ्र घटित होता है।

वायुमण्डल की शुष्कता की अवस्था में पत्रों द्वारा जल का निकास बढ़ जाता है। यदि इस क्रिया का फल-स्वरूप पौधे की आन्तरिक आर्द्रता का ह्रास रसारोह का कारण होती तो शुष्कता (अवृष्टि) रसारोह की गति को तीव्र कर पौधे के विकास पर अनुकूल प्रभाव डालती। अवस्था इसके विरुद्ध है। शुष्कता वृक्षों के जीवन की प्रगति को घटाती है।

इस प्रकार यह तो सिद्ध हो गया कि पौधों का रसारोह कोई यान्त्रिक (Mechanical) क्रिया नहीं, किन्तु पशुओं के रक्त-सञ्चार के सदृश Protoplasmic कलल-रस सम्बन्धी क्रिया है। देखना यह चाहिये कि क्या पौधों में भी रस-प्रवाह का यन्त्र वैसा ही है जैसे पशुओं में ?

अन्वय-व्यतिरेक की विधि से वसु महोदय ने उस यन्त्र का पता भी लगाया है। उन्होंने Electric Probe वैद्युत एषणी नामक सूक्ष्म यन्त्र बनाया। उससे पौधे की छाल से डण्डी के केन्द्र तक एक-एक सूक्ष्मतम परत को टटोला। अन्त में Cortex नाम के त्वगवयव के सबसे अन्दर के

परत में उन्हें तन्तु मिले। इन तन्तुओं में धड़कन पाई गई। यह धड़कन पशु-शरीर के सदृश किसी एक पट्ठे तथा हृदय तक परिमित नहीं, किन्तु वृक्ष, उसकी, डण्डियों तथा नालियों सबकी लम्बाई में पाई जाती हैं। इस धड़कन का रूप कौष्ठिक गति के समान समझकर उन्होंने निश्चय किया कि वृक्ष का हृदय एक स्थान पर केन्द्रित नहीं किन्तु विकीर्ण है। (Physiology of the Aescnt of Sap by J. C. Bose.)

हृदय की धड़कन का हेतु वाततन्तु हैं। पौधे में इनका स्थान Phloem में फैली हुई कोष्ठ-नलिकाएँ हैं, इनका स्थान-निर्णय अतीव सूक्ष्म विद्युत यन्त्रों से हुआ है, जिनका वर्णन इस लेख में करने से विस्तृत और जटिल हो जायगा।

(Life-Mechanism of Plants by J. C. Bose)

सार यह कि हमारे वाततन्तुओं के स्थान में पौधा अपने वाततन्तु रखता है। उनके उत्तेजन से हमारे हृदय की भाँति पौधे का विकीर्ण हृदय सङ्कुचित तथा विकसित होता है। इससे हमारे रक्त-सञ्चार की भाँति उसका रस-सञ्चार होकर उसकी जीवन-सामग्री का योगक्षेम किया जाता है। पौधे का रक्तवाही यन्त्र इस अंश में अधूरा अवश्य है कि इसमें निष्कासक नलिकाएँ तो हैं, प्रवेशक नलिका नहीं।

यह हुई पौधे की पशुओं से पहली विशेषता—अर्थात् स्व-शरीर धारण में समता। दूसरी और तीसरी विशेषता पर अधिक विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं। दूसरी विशेषता स्वयं सिद्ध है और तीसरी पहली ही में समाविष्ट है।

वेदना का प्रश्न

इस प्रकार जहाँ तक प्राणित्व का सम्बन्ध है, पौधे और पशु में कोई मौलिक अन्तर नहीं। प्राणित्व के पश्चात् प्रश्न वेदना अर्थात् मानसिक क्रिया का है। हमारे पुराने शास्त्र तथा आधुनिक जीवन-विज्ञान इस विषय में सहमत हैं कि जीवन Life और वेदना Consciousness का आधार एक ही चेतन पदार्थ को मानना चाहिए,‡ एक ही चेतनता जीवन तथा वेदना का अवलम्ब है। पशुओं की वेदना का भौतिक साधन वाततन्तु ही माने जाते हैं। इन्हीं की उत्तेजना से—जैसे हम ऊपर कह चुके हैं—रक्त-सञ्चार तथा प्राणायाम आदि क्रियाएँ होती हैं। वैद्युत आघातों का प्रत्युत्तर जैसे पशु और पौधे देते हैं, ठीक उसी प्रकार धातु भी देते हैं। परन्तु धातुओं की उत्तेजना का फल न जीवन है न वेदना। इसलिए उन्हें चेतन नहीं कहा जा सकता। चेतन पौधे, पशु और मनुष्य हैं।

आत्मा का लक्षण

हमारे शास्त्रों में जीव का लक्षण 'चित्' किया गया है और लिङ्ग सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ज्ञान (न्याय दर्शन) अथवा प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, इन्द्रियान्तर्विकार, मन, गति, इत्यादि (वैशेषिक दर्शन) बताए गए हैं। लक्षण तो पदार्थ का स्वभाव होता है। उसके अभाव में पदार्थ का अभाव माना जाता है। परन्तु लिङ्ग की वह बात नहीं। लिङ्ग का भाव तो पदार्थ के भाव ही में होता है, परन्तु अभाव के लिए पदार्थ का अभाव आवश्यक नहीं। उपर्युक्त लिङ्गों में कई ऐसे हैं जो जीवन से सम्बन्ध रखते हैं, यथा प्राणापान,

---

‡ Encyclopaedia Britannica-Article on Biology.

निमेषोन्मेष इत्यादि। कुछ वेदना से सम्बन्ध रखते हैं, यथा—सुख, दुःख, ज्ञान इत्यादि। कुछ उभयात्मक हैं, यथा—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, इन्द्रियान्तर्विकार इत्यादि।

पशुओं में मन

पशुओं में जीवन के अतिरिक्त वेदना भी है। वेदना का साधन जिसे अन्तःकरण कहते हैं मन है। पशुओं में मन की विद्यमानता का सबसे स्पष्ट चिन्ह उनकी इच्छा है। उन्हें सिखाया और समझाया जा सकता है। जो क्रियाएँ उन्हें स्वभाव से नहीं आतीं, वह शिक्षण से आजाने की सम्भावना है। एलबर्फ़ेड के घोड़े Cube-root (घन मूल) के प्रश्न निकाल सकते हैं। Lola लोला नामक कुतिया को दिन की गति से समय का निश्चय करना समझा दिया गया है। यह बात पौधों में सम्भव नहीं है।

पौधों में मन नहीं

पौधों के वाततन्तुओं को वैद्युत आघात द्वारा उत्तेजित करने और उस आघात का सूक्ष्म प्रत्युत्तर पाने से वसु महाशय का प्रारम्भ में अनुमान यह था कि पौधे सुख, दुःख अनुभव करते हैं। महाभारत के ऊपर उद्धृत किये श्लोकों में भी ऐसा कहा गया है परन्तु वैद्युत आघात से उत्तेजित तो धातु भी होते हैं और यह भी उत्तेजना का प्रत्युत्तर ठीक पौधों की तरह देते हैं। सम्मोहन और विषप्रदान का प्रभाव भी उभयत्र एकसा है। वसु महाशय ने धातुओं के उत्तेजन की फल-स्वरूप कुछ स्थिर रेखाएँ देखकर आशा की थी * कि इस परीक्षण आधार पर प्राणि-जगत् की भाँति धातुओं तक में मानसिक क्रिया की विद्यमानता सिद्ध होकर पशुओं में पाई जाती स्मृति-शक्ति का भौतिक स्पष्टीकरण हो जायगा, परन्तु अनुभव ने उन्हें बताया कि उनका क्षेत्र प्राणियों और पौधों की शरीर-रचना तो है, मनोवृत्तियाँ नहीं। शेषोक्त क्रियाओं की खोज किसी मनो-वैज्ञानिक का काम है।

'महाबोधी' नाम का आँगलभाषा का बौद्ध पत्र कलकत्ते से निकलता है। उसमें किसी प्रश्नकर्त्ता के उत्तर में श्री वसु महाशय का पत्र प्रकाशित हुआ था। उसका प्रासङ्गिक भाग हम नीचे दिए देते हैं—

'प्रतीत यह होता है कि चेतनता पौधे में पशु की अपेक्षा अधिक विकीर्ण है। भय मृत्यु से बुरा है। पौधों में भय की विद्यमानता की कल्पना का कोई आधार नहीं।'

(Modern Review for July 1925.)

कहाँ तो स्मृति-शक्ति का भौतिक स्पष्टीकरण करने की आशा और कहाँ अब यह स्थिति कि भय की कल्पना तक पौधे में नहीं की जा सकती! मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि भय-प्रतिकूल अनुभव (दुःख की पूर्व वेदना) का परिणाम मात्र है—यह प्रतिकूल अनुभव चाहे इस जन्म में हुआ हो या पूर्व जन्म में। दुःख की स्मृति का फल भय है और सुख की स्मृति का आशा। वसु महाशय हिंसा अर्थात् दुःख की सम्भावना सम्बन्धी प्रश्न ही का उत्तर दे रहे थे। अतः उन्होंने केवल भय की वर्त्तमानता का निराकरण किया। अर्थापत्ति से यह निराकरण आशा की वर्त्तमानता का भी समझना चाहिये।

दिसम्बर १९२४ के माडर्न रिव्यू में वसु महोदय का एक लेख छपा है जिस में वह स्वयं

---

* The Response of the Living and the Non—Living by J. C. Bose.

प्रश्न करते हैं— 'क्या पौधों में अनुभूति है ?' इस का उत्तर दिया है:— 'इस में हां या ना करने के लिए स्वयं पौधा बनना चाहिए'। इसके आगे पौधे में जो-जो शक्तियां हैं उनकी सत्ता का वर्णन किया है। पौधे के बातनाडीसंस्थान में कमी है मस्तिष्क की, रीढ़ की ganglionic centres शिरास्फोटों की। यह इस संस्थान के वह अंश हैं जो संगठित ज्ञान (systematised consciousness) का भौतिक आधार कहे जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में पौधों में एक ओर तो आशा और भय के न होने से यह निश्चय होता है कि इन में किसी सरल वेदना (Simple sensation) का, यदि वह उन में होती हो, कोई स्थिर प्रभाव नहीं होता। दूसरी ओर वातनाडीसंस्थान के उत्कृष्ट अवयवों के अभाव से यह धारणा स्थिर होती है कि पौधे वैद्युत आघात के सरल भौतिक प्रभावों को किसी संकीर्ण मानस् वेदना को आधारभूत, संकीर्ण भौतिक उत्तेजना में भी परिणत नही कर सकते।

सुषुप्तावस्था

चेतनता का प्रारम्भिक परिणाम जीवन है। वह पशुओं में सुषुप्ति-अवस्था में भी पाया जाता है। उस समय वेदना का अभाव रहता है परन्तु जीवन यन्त्र वात-तन्तुओं की जीवन-जनक उत्तेजना द्वारा चलता रहता है। यही स्थिति स्थिर रूप में पौधों की है। अत्यन्त ताप में जीवन का निरोध भी हो सकता है, उस में मन्दता भी आ सकती है। सुषुप्ति का ताप की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं। उदाहरण तया हम दिन में भी सोते हैं। और ध्रुव के निकटवर्ती मनुष्य तो बहुत कम ताप में मनमाना दिन और मन मानी रात बनाते हैं। अतः पौधों के ताप की न्यूनता के कारण मन्द जीवन को सुषुप्ति कहना भ्रम है। उन की सुषुप्ति स्थिर सुषुप्ति है। कारण कि उन में मन नहीं। ताप के घटने बढ़ने से सुषुप्तावस्था में ही जीवन की गति तीव्र तथा मन्द होती रहती है।

इस से पाठक जान गए होंगे कि पौधे पर आघात करने से उसकी हिंसा नहीं होती।

इसी बात को ऋषि दयानन्द इस प्रकार कहते हैं:—

"पीड़ा उन्हीं जीवों को पहुँचती है जिनकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो, इस में प्रमाणः—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः॥सांख्य.अ० ५।सू० २७॥

जब पांचों इन्द्रियों का पांचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प व्याघ्रादि भयानक जीवों का चला जाना, शून्यबहिरी वाले को स्पर्श, पीनस रोगवाले को गन्ध और शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार उन (वृक्षशरीरगत) जीवों की भी व्यवस्था है। देखो ! जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है तब उस को सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता और जैसा वैद्य वा आजकल के डाक्टर लोग नशे की वस्तु खिला वा सुंघा के रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं, उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर वाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता वैसे वे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्छित होने से सुख दुःख को

प्राप्त नहीं हो सकते। फिर इनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है? जब उनको सुख दुःख की प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती तो अनुमानादि यहां कैसे युक्त हो सकते हैं। (प्रश्न) जब वे जीव हैं तो उनको सुख दुःख क्यों नहीं होगा? (उत्तर) सुनो भोले भाइयो! जब तुम सुषुप्ति में होते हो तब तुम को सुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख दुःख की प्राप्ति का हेतु प्रसिद्ध संबन्ध है, अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघा के डाक्टर लोग अङ्गों को चीरते फाड़ते और काटते हैं। जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता इसी प्रकार अतिमूर्च्छित जीवों को सुख दुःख क्योंकर प्राप्त होवे क्योंकि वहां प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं। (प्रश्न) देखो! निलोति अर्थात् जितने हरे शाक, पात और कन्दमूल हैं उनको हम लोग नहीं खाते क्योंकि निलोति में बहुत और कन्दमूल में अनन्त जीव हैं जो हम उनको खावें तो उन जीवों को मारने और पीड़ा पहुँचाने से हम लोग पापी हो जावें। (उत्तर) यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरित शाक खाने में जीव का मारना मन को पीड़ा पहुंचनी क्योंकर मानते हो? भला जब तुम को पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और जो दीखती है तो हम को भी दिखलाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देख वा हम को दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान और शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकता। फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं वह इस बात का भी उत्तर है क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार महासुषुप्ति और महानशा में जीव हैं इनको सुख दुःख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है जिन्होंने तुम को ऐसी युक्ति और विद्याविरुद्ध उपदेश किया है।”

सत्यार्थप्रकाश सप्तमावृत्ति पृ० ४८४-५।

वेद भगवान् की आज्ञा है:—

पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्। अथर्व १८-३१-५

अर्थात् परमात्मा मुझे पशुओं का दूध और ओषधियों का रस दे।

हमने इस लेख में यह सिद्ध कर दिया है कि पौधा चेतन तो है जैसे पशु और मनुष्य। परन्तु पौधे की चेतनता का आविर्भाव केवल जीवन ही में होता है और पशु और मनुष्य की चेतनता का जीवन और वेदना दोनों में पशु और मनुष्य की सुषुप्तावस्था में अपनी चेतनता को पौधे की भांति केवल जीवन का आधार बनाते हैं। और पौधे सदा सुषुप्त होने से अपनी चेतनता का सदैव यही प्रयोग करते हैं।

जीव-दया का युग

हमने अपने सारे लेख में केवल वैज्ञानिक दृष्टि से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त का कतिपय धार्मिक मन्तव्यों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। श्री वसु महाशय अपने आविष्कारों द्वारा कृषि-शास्त्र की उन्नति की सम्भावना तो करते ही हैं। वैद्यक विद्या के परीक्षणों में भी उन्हें एक नए युग की प्रवृत्ति की आशा है। जब पशु और पौधा जीवन की दृष्टि से एक हैं और ओषधि-उपचार का प्रभाव दोनों पर एक सा पड़ता है तो आगे को वैद्यक शास्त्र के परीक्षणों के पात्र पशु न बन कर पौधे बनाए जायंगे। पौधों के जीवन की अपेक्षाकृत सरलता वैद्यों के लिये सुगमता पैदा करेगी और जीवदया-वाद का वैद्यक परीक्षणालयों में भी प्रवेश होगा। वसु महाशय दृढ़ दयावादी हैं। वह विज्ञान की उन्नति चाहते और करते हैं परन्तु

प्राणियों को मनुष्य के हिंसक आविष्कारों का आखेट नहीं बनाते ।

प्राचीन भारतीयों ने घोर अहिंसावदी होते हुए वैद्यकशास्त्र को उत्कर्ष की पराकाष्ठा तक पहुंचाया था—इस का रहस्य वसु की उक्त उक्ति से झट समझ में आ जाता है । वैद्यक दया है— पूर्ण दयानन्दी दया । उस का आधार ऋषियों के हाथों प्राणि-हत्या-युक्त परीक्षण-शृङ्खलाएं हुई हों, बुद्धि स्वीकार नहीं करती । ऋषि दयानन्द ने वृक्षों में जीव की सत्ता को तो स्वीकार किया ही है परन्तु उन में वेदना के अभाव की वैज्ञानिक युक्ति देकर प्राणियों को हिंसा से बचा दिया है । यह स्मरण कर ऋषि के चरणों में सहसा सिर झुकता है । वाणी मुग्ध है, मूक है, पर हृदय को कौन रोकेगा पौधों का विकीर्ण हृदय कहता है—दयानन्द की जय ! पशुओं का केन्द्रित परन्तु दीन हृदय कहता है— दयानन्द की जय !! चमूपति का भक्तिलीन हृदय कहता है—दयानन्द की जय !!!

कला-कौमुदी
समाचार पत्र मुक्त कण्ठ से प्रसंशा कर रहे हैं
यदि आप ने अभी तक न मंगाई हो
तो
एक प्रति अवश्य मंगाइये

अँधी-रतन

[ले०—श्री राजनारायण जी चतुर्वेदी]

रतन शूद्र-कन्या थी। उस के पिता रामनाथ ने चमड़े के व्यापार में अच्छा पैसा कमाया था। देश-विदेश में उस के कारखाने की धूम थी। सैकड़ों आदमी उस के कारखाने में काम करते थे। हज़ारों रुपये नित्य बेंक में जमा होते—साथ ही हज़ारों का भुगतान होता। किन्तु रामनाथ के चाल-चलन, आचार-विचार अथवा रहन-सहन में किसी प्रकार की अमीराना बू न आई थी।

रामनाथ हमारी ज़मींदारी में निवास करता था। उस ने बाल्यावस्था से लेकर बुढ़ापे तक वहीं व्यतीत किया था। अतुल ऐश्वर्य्य का स्वामी होने पर भी उस ने अपना पैतृक-स्थान नहीं छोड़ा था। वरन उसी जगह दो तल्ला पक्का मकान बनवा कर रहता था। प्रत्येक वर्ष ख़ज़ाना देने के लिए नंगे पाँव, एक मोटी-सी मामूली चद्दर ओढ़ कर आता और आते ही पिता जी को साष्टाँग दण्डवत कर ख़ज़ाने का रुपया उन के पैरों पर रख हाथ जोड़ कर कहता—प्रभो ! आशीर्वाद दीजिये, जिस से रतन सुखी हो !

पिता जी हँस कर उत्तर देते—अच्छा रामनाथ तेरे पास इतना रुपया होने पर भी ख़ज़ाने का सामान्य रुपया जमा करने के लिये कंगाली की तरह तू स्वयं क्यों आता है? रामनाथ और नम्र होकर कहता—बाबू जी ! हम आप की प्रजा हैं, हमारे बाप-दादे तक आपके टुकड़ों से पले हैं। आप ही के आशीर्वाद से आज चार पैसों का मुँह देखा है। क्या इसी सामान्य स्थिति पर गर्व करके स्वयं न आऊँ? आप के आशीर्वाद तथा बहूरानी जी की कृपा से ही आज मेरे पास सब कुछ है। आशीष दीजिये कि संसार में जब तक जिऊँ, आप ही की छत्र-छाया में रहूँ।

पिता जी के सदुद्योग से गाँव में एक पाठशाला स्थापित हुई थी, जिस में सब जाति के लड़के-लड़कियाँ बिना किसी भेदभाव का विचार किये एक साथ ही पढ़ते थे। उन्हीं के कहने-सुनने से ग्रामवालों की अनुमति लेकर रामनाथ ने भी अपनी कन्या रतन को पाठशाला में भर्ती कर दिया था। रतन मेरी समवयस्का तथा सहपाठिका थी। उसकी बाल सुलभा सरलता, गुलाब सदृश्य सुन्दर गोल कपोलों को देखकर उसे शूद्र-कन्या कहने का किसे साहस हो सकता था। वह प्रायः मेरे पास ही बैठती। तीन वर्षों में ही हम लोगों की निम्न प्राथमिक परीक्षा हो गई। फल स्वरूप रतन प्रथम और मैं द्वितीय हुआ। उस के बाद उच्च प्राथमिक कक्षा में भी प्रथम और मैं द्वितीय रहा। तत्पश्चात् पिता जी ने सरकार से लिखा-पढ़ी कर के पाठशाला को मिडिल स्कूल में तबदील करा दिया। हम दोनों ने यथा समय परीक्षा दी और फल स्वरूप रतन प्रत्येक विषय में प्रथम हुई।

रामनाथ एक दिन पिता जी के पास आकर कहने लगा—प्रभो! यदि आप की आज्ञा हो तो रतन को और आगे पढ़ाऊँ। कलकत्ते में मेरे एक चचेरे भाई सपरिवार रहते हैं। उन्हीं के यहाँ रह कर पढ़ेगी।

पिता जी ने उत्तर दिया—तुम अपनी कन्या को लिखना-पढ़ना सिखाओगे। इस में मेरी आज्ञा की आवश्यकता ही क्या है?

रामनाथ ने दाँत के नीचे ऊँगली दाब कर कहा—यह क्या कहते हो स्वामी! आप ही के आशीर्वाद से तो रतन सरीखी कन्या मिली है। प्रभू के आशीर्वाद बिना मैं क्या कोई काम कर सकता हूं!

पिता जी प्रसन्न होकर बोले—तो ठीक है, रतन को भेज दो—स्त्री शिक्षा की आवश्यकता भी है और आजकल तो सभी छोटे-बड़े अपनी सन्तान को शिक्षित बनाने के पक्ष में हैं। मैं भी श्याम को कलकत्ते भेजूंगा।

× × ×

उक्त वार्त्तालाप को चार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं मैट्रिक की परीक्षा देकर मैं गाँव में आगया। रतन और उस के पिता इलाहाबाद चले गये।

जिस दिन परीक्षा का फल अँगरेज़ी गज़ट में प्रकाशित हुआ। देखा कि मैं और रतन दोनों प्रथम श्रेणी में पास हुए। कुछ दिन बाद ही सुबह उठ कर देखता क्या हूँ कि रतन और उस का बाप घर के आँगन में खड़े माताजी को प्रणाम कर रहे हैं। रामनाथ ने कहा—बहू जी! रतन इस बार भी परीक्षोत्तीर्ण हुई है। आशीर्वाद दीजिये।

माँ बहुत प्रसन्न हुईं इतने में पिता जी ने भी आकर इस आनन्दोत्सव में योगदान दिया। गज़ट में छात्रवृत्ति की सूचि प्रकाशित हुई। रतन ने विश्वविद्यालय की परीक्षा में सर्वोत्तम स्थान प्राप्त किया।

× × ×

फर्स्ट आर्ट्स पढ़ते समय रामनाथ ने कहा था कि बीच २ में मैं कॉलेज में रतन को देख आया करूँ। रतन बेथून कॉलेज में पढ़ती थी और मैं पढ़ता था सेण्ट ज़ेमियार्स में, हफ़्ते में दो बार रतम से मिल आया करता था।

पहले ही लिख चुका हूं कि रतन और मैं प्रायः समवयसी थे। वह अब नितान्त बालिका नहीं थी, पूर्ण युवती—सौन्दर्य्य की साक्षात सजीव प्रतिमा थी।

मिलने के समय मेरे प्रश्नों का उत्तर वह बड़े ही धीरे और नम्र भाव से दिया करती। उच्च-शिक्षा का दाम्भिक भाव उस में तनिक भी न था।

रतन के यहाँ से वापिस आकर प्रायः उसी के सम्बन्ध में सोचता। नाना प्रकार के भाव हृदय में उठते थे। कभी सोचता कि कॉलेज में आकर ऊँच-नीच ब्राह्मण-अब्राह्मण का विचार नहीं रह जाता तो समाज में क्यों नहीं ऐसा होता?

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुये। शनैः किसी अज्ञात शक्ति के आकर्षण में पड़ गया! धूप और छाया की भाँति परस्पर की संगति में सुख और शान्ति का अनुभव करता।

रतन और मैं बी० ए० की परीक्षा में ससम्मान उत्तीर्ण हुये। इन पाँच-छः वर्षों में कितने ही परिवर्तन हो गये। मेरी माता तथा पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। ज़मींदारी आदि विषय सम्पत्ति का भार एक विश्वस्त कर्मचारी को सौंप कर मैंने कलकत्ते में ही रहकर वकालत करना आरम्भ कर दिया था।

रतन बाल्यावस्था में ही मातृ-पितृहीन होगई थी। उसके चाचा ने विषय-सम्पत्ति और सारा कारबार अपने हाथों में ले लिया। संसार में रतन को अपना कहनेवाला कोई न रहा। कलकत्ता विद्यालय से एम० ए० पास करके एक बालिका-

विद्यालय में प्रधान अध्यापिका होकर रतन स्वतन्त्रता-पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी।

× × ×

थर्ड इयर में पढ़ते समय रतन ने एक बार मुझसे पूछा था—क्या तुम विवाह न करोगे?

मैं—तुम कब करोगी?

रतन—मुझ अभागिनी, मातृ-पितृहीन अनाथा से विवाह कौन करेगा?

मैं—कौन कहता है कि तुम अनाथा हो? विद्यारूपी अमूल्य धन से जिसका भंडार पूरित हो—वह भी कभी अनाथा हो सकती है।

रतन—किन्तु फिर भी समाज की आज्ञा अन्य प्रकार की है। समाज शिक्षा नहीं देखता—समाज चाहता है धन—ऐश्वर्य! रुपये की मार के सन्मुख उसकी मर्यादा टिक नहीं सकती। उसकी शान, उसकी आन तथा कर्त्तव्य, धन और ऐश्वर्य पर अवलम्बित है।

उस दिन और कोई बात नहीं हुई। आज तक उसने विवाह नहीं किया।

× × ×

इसी प्रकार समय बीत रहा था। एक दिन सम्वाद मिला कि रतन की आँखें उठ आई हैं। सुनते ही मैं अपने एक डाक्टर मित्र को लेकर देखने गया। आँखों की अवस्था अच्छी न थी। तीन-चार महीने दवा करने पर भी आँखें अच्छी न हो सकीं। लाचार रतन को अपने निवास-स्थान पर ले आया। लाख चेष्टा की किन्तु उसकी आँखों को बचा न सका। अभागिनी रतन—सर्वगुण-सम्पन्न रतन आज से दृष्टि हीन हो गई।

रतन आश्रय-हीन होकर मेरे ही पास रहने लगी। सन्ध्या समय कचहरी से वापिस आकर अक्सर उसके पास बैठकर बातें किया करता था। वह कहती—छोटे बाबू! कैसी सुहावनी सन्ध्या है!

मैं उदास भाव से कहता—रतन! तुम नीले आकाश की रक्त-रञ्जित लालिमा देख सकती हो! आह रतन! अब तुम प्रकृति देवी के अपूर्व सौंदर्य का उपभोग क्या कर सकती हो?

वह कहती—क्यों नहीं कर सकती। मेरी आँखों में तुम्हारा आँखें हैं—और इन आँखों में तुम्हारी ज्योति है। फिर क्यों नहीं देख सकती?

मेरी आँखें सजल हो आईं।

पाँच वर्ष पश्चात् एक दिन सवेरे रतन ने कहा—छोटे बाबू! कलेज़े में मीठा-मीठा दर्द-सा मालूम पड़ता है।

मैंने फ़ौरन डाक्टर बुलाया, डाक्टर दवा देकर चला गया। दिनभर दर्द कम रहा। रात्रि होने पर फिर क्रमशः दर्द बढ़ने लगा। रातभर चारपाई पर छटपटाती रही और मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठा उसके मलान मुख की ओर निहारता रहा।

क्षणभर को पलक लगी ही थी कि रतन दर्द के मारे चीख़ उठी। मैंने सादर कातर कण्ठ से पूछा—रतन! क्या तकलीफ़ ज़्यादा है? किन्तु कोई शब्द नहीं। सिर पर हाथ रखकर पुकारा—कोई शब्द नहीं। अधिक न सह सका—छाती पर सर रखकर रोते हुये पुकारा—"रतन"!—किन्तु आह! सब शेष! मैं बेहोश होकर गिर पड़ा।

मैंने ही उसका अग्नि-संस्कार किया। आज भी दृष्टि-हीन दो आँखें किसी की प्रतीक्षा में कभी-कभी टकटकी लगाये दिखाई देती हैं। रतन नहीं है—है केवल उसकी पुण्य-स्मृति!!

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के कारण

[ले०—ब्र० सर्वमित्र जी, गुरुकुल विश्वविद्यालय]

संसार के इतिहास में आमूलचूल परिवर्तन कर देने वाली अद्भुत घटनाओं में फ्रांस की राज्यक्रान्ति का प्रमुख स्थान है। इङ्गलैण्ड का प्रधानमन्त्री बीकन्सफील्ड कहा करता था कि दुनियाँ के इतिहास में दो ही अजूबा खेल हैं एक तो ट्राय का घेरा दूसरा फ्रासीसी राज्यक्राँति। १८वीं सदी के उत्तरार्ध में इतिहास के रुख को बदल देने वाली अन्य क्रान्तियाँ भी हुई हैं। व्यावसायिक-क्राँति द्वारा मध्य श्रेणी का विकास हुआ और मानवीय आर्थिक संगठन में भूमि तथा भूमिपतियों का महत्व कम हुआ। वाणिज्य की वृद्धि हुई। अमेरिकन-क्रान्ति ने प्रजातन्त्र की ओर पग बढ़ाया। इन सब क्रांतियों का क्षेत्र सीमित था। परन्तु फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति ने सब दिशाओं-राष्ट्रीय, मानसिक, आर्थिक एवं समाजिक-में अपना प्रभाव फैलाया। इस ने फ्यूडलिज्म (समान पद्धति) के आर्थिक और सामाजिक अवशेषों को मेट दिया। (सरदार लोग) नोबल्स के विशेषाधिकारों को रद्द कर दिया। एकता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव का बिगुल बजाया। इस ने पुरानी संस्थाओं को उखाड़ दिया, गहरी नींद में सोते हुए संसार को जगा दिया और दीन, धनहीन, पददलित और शृङ्खलाबद्ध जन-समाज को मुक्ति का सन्देश सुनाया। इस कथन का मतलब यह नहीं कि फ्रांस की जनता अन्य देशों की अपेक्षा अधिक दबाई जा रही थी परन्तु उस में अन्य देशों से अधिक चेतनता थी जिस के परिणाम स्वरूप क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। इस क्रान्ति को फ्रांस की राज्यक्रान्ति कहा जाता है। यद्यपि इस का काल १७८९ से १७९९ तक ही है परन्तु इसका प्रभाव आज तक बना हुआ है। मायर के शब्दों में फ्रांस की राज्यक्रान्ति शान्त तालाब में फेंके हुए उस पत्थर के समान है जिस से सारे तालाब में विक्षोभ पैदा हो जाता है। इस प्रकार की विश्वतोमुखी घटनाओं के लिए काफी समय की अपेक्षा है—इनका बारूद अनेक सालों में एकत्रित होता है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के कारण १६ वीं और १७ वीं सदी की राष्ट्रिय व्यवस्थाओं में निहित हैं। यद्यपि इनका ठीक ठीक कारण बता सकना कठिन है फिर भी हम इस के कारणों को ढूंढने का प्रयत्न करेंगे।

क्रान्ति को जन्म देने का सब से अधिक श्रेय तत्कालीन अनुत्तरदायी एवं स्वच्छन्द राजसत्ता को प्राप्त है। इस समय सारे यूरोप में राजाओं के "दैवीय अधिकार" का जोर था। फ्यूडलिज्म के खण्डहरों पर राजसत्ता का मन्दिर खड़ा हुआ था। राजा वंशपरम्परागत और अनुत्तरदायी होता था। राजा का इच्छा ही फ्रांस का कानून था। न्याय का स्रोत राजा ही था। सरकारी पदों की नियुक्ति राजा के हाथ में थी। वह अपनी इच्छानुसार कर लगा सकता था और इच्छित कार्यों में खर्च कर सकता था। सन्धि और विग्रह उस के हाथ में था। राजा की इच्छा मात्र से ही कोई भी व्यक्ति कैद या मृत्युदण्ड पा सकता था। लूई १६ वां कहा करता था—'यह कार्य वैध है क्योंकि मैं इसे चाहता हूं। सारी शासक शक्ति मेरे वैय-

क्षिव में निवास करती है। मुझे ही कानून बनाने का अधिकार है। राष्ट्र के अधिकार और हित पूर्णतया मेरे आधीन हैं।" इस का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि राष्ट्र का सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक एवं आर्थिक जीवन राजा के अधिकार में था। ये लोग प्रजा पर रोब बढ़ाने के लिए अपने दर्बार पर खूब खर्च करते थे। बढ़िया महल और हजारों नौकर, दरबारों में खर्चीला सामान सुन्दर पार्क तथा कृत्रिम झीलें थी। इन्हीं पर $ १००,०००,००० खर्च होता था। राजा के दरवार में १५००० आदमी थे जिन पर सारी स्टेट की आमदनी का १/१२ खर्च होता था। रानी के ही ५०० नौकर थे। शाही अस्तबल पर $४,०००,००० खर्च होता था पेशआराम और धूमधाम का खर्च लगभग $२०,०००,००० था। इस प्रकार प्रजा से लिए गए कर का उपभोग किया जाता था जब कि सारी प्रजा भूखी और नङ्गी थी। इसी शानशौकत को रखने के लिए (१) मुद्रापद्धति को घटिया बना दिया गया (२) और "राष्ट्रीय ऋण" लिए जाने लगे जिन की मात्रा इतनी बढ़ गई कि अब उनका मिलना भी मुश्किल हो गया। प्रजा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था। इस प्रकार की फिजूलखर्ची से प्रजा में असन्तोष बढ़ गया। प्रजा "उपकारी राजसत्ता" (Benevolent dlespotism) को बुरी निगाहों से नहीं देखती, यदि प्रजा का सम्यक्‌तया ध्यान रखा जाय, उचित न्याय किया जाय। परन्तु वह अनुत्तरदायी एवं उच्छृङ्खल राजसत्ता को सहन नहीं कर सकती।

क्रान्ति को विकसित करने के लिए "नौकर-शाही" को उस का श्रेय देना आवश्यक है। "श्रेणी तन्त्र" को ही बुरे अर्थों में 'नौकरशाही' कहते हैं। जब श्रेणीतन्त्र-शासक अपनी श्रेणी के हितों को सम्मुख रख कर शासन करते हैं और शासितों के हितों की रत्ती भर परवाह नहीं करते तब उन्हें "नौकर-शाही" कहते हैं। इतना बड़ा देश एक ही राजा से शासित होना असम्भव था, अतः आर्थिक, न्याय और विदेशी मामलों में सहायता देने के लिए लूई ने ४ कौंसिलें बनाईं। इसी प्रकार सब विषयों का निरीक्षण करने के लिए एक प्रिवी कौंसल का निर्माण किया। इन नियमों में राजा और अपनी श्रेणी के हितों का ध्यान रखा जाता था, शासितों का नहीं।

राष्ट्रीय आयव्यय की अवस्था बहुत खराब थी। राजकीय व्यक्तियों और दरबार की पूर्ण करने के लिये भी पर्याप्त आय न थी। अतः ऋण लिया जाता था जिसका शानशौकत में अपव्यय होता था। करों को लेने का ढङ्ग बहुत ही अशुद्ध था। जिन व्यक्तियों—नोबल और क्लर्जी—में अधिक कर देने की हिम्मत थी उन से बहुत थोड़ा लिया जाता था और साधारण जनता से जिस में अधिक कर देने की क्षमता न थी- अधिक कर वसूल किया जाता था। यदि किसी राज़कीय व्यक्ति के पास इतनी जमीन हो जिसका इन्कम टैक्स $ ५००००० हो उस से $ ४०००० ही लिये जाते थे। दूसरी ओर एक साधारण आदमी-जिसे न्यायतः $ १४ ही कर देना चाहिए-से $ १५२ कर लिया जाता था। सर्वसाधारण जनता जमीन के २/५ की स्वामिनी थी जब कि उसे कुल कर का ४/५ हिस्सा देना पड़ता था। ३/५ भूमि के स्वामी क्लर्जी और नोबल लोगों से सिर्फ १/५ भाग कर लिया जाता था। इसी प्रकार ये लोग कई करों से सर्वथा मुक्त थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन में कर देने की क्षमता अधिक थी उनसे कम और जिनमें कर देने की क्षमता कम थी उनसे अधिक कर लिया जाता था। गरीबों के लिए १) की बहुत कीमत है क्योंकि उनकी

दृष्टि में उन की सम्पत्ति की सीमान्त राशि (Marginal incriment) की उपयोगिता (utility) धनियों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। यदि किसी गरीब के १०) खोजायें तो उसे बहुत शोक होगा पर-किसी धनी के १००) खोने पर भी सम्भवतः उसे रञ्ज न हो-इसी से हम कल्पना कर सकते हैं कि करों के इस अवैज्ञानिक बँटवारे से सर्वसाधारण में कितना असन्तोष उत्पन्न हुआ होगा।

न्यायालयों की दशा शोचनीय थी। न्यायाधीश या तो वंशपरम्परागत होते थे या उन्होंने उस पद को खरीदा हुआ होता था। अतः स्वाभाविक था कि न्यायाधीशों की दृष्टि में उनका वास्तविक कर्तव्य 'न्याय करना' न होकर रुपया कमाना हो जावे। चूंकि उन्होंने उस पद का खरीदा था अतः स्वाभाविक था कि वे लोग अपनी गई हुई पूंजी को वसूल करें और साथ ही मुनाफा भी प्राप्त करें। अतः घूस का बाजार गर्म था। रुपयों के बदले न्याय बिकता था। ये लोग स्वार्थी थे और राजा तथा नोबिलिटी के अधिकारों की रक्षा करते थे। न्यायालयों की ऐसी शोचनीय अवस्था के साथ ही Lettre de cachet नामक पत्रों ने न्याय का गला घोंट दिया था। राजा इन पत्रों को अपने प्रेमपात्रों को दे देता था। इन पर राजा के हस्ताक्षर होते थे। पत्र का स्वामी किसी भी अपने दुश्मन को पकड़वा सकता था। पत्रों में अभियुक्त के नाम का स्थान खाली रहता था, इसी पर पकड़े गये व्यक्ति का नाम लिख दिया जाता था। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति-जो कि किसी भी प्रकार से राजा का कृपापात्र होता था-इन पत्रों को प्राप्त कर सकता था। इतने पर ही बस नहीं। क्रिमिनल लॉ कठोर और क्रूर थे। अपराध स्वीकार कराने के लिए अभियुक्त को सताया (Torture) जाता था। अभियुक्तों को मारने के लिये जंगली उपायों को काम में लाया जाता था।

चर्च का संगठन पर्याप्त दृढ़ था। यह एक राष्ट्र के अन्दर दूसरा राष्ट्र (State within state) था। फ्रांस के भिन्न २ क्षेत्रों में १% से लेकर ४०% तक भूमि चर्च के हाथ में थी। दशांश (Tithe) नामक कर चर्च वसूल करता था। जिस प्रकार आजकल प्रत्येक व्यक्ति स्थानीय सरकार को आमदनी आदि के अनुसार निश्चित कर देता है उसी प्रकार मध्यकाल में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आमदनी का $\frac{१}{10}$ भाग चर्च को देना पड़ता था। चर्च की सालाना आमदनी $१००,०००००० थी। चर्च पर किसी प्रकार का कर न था। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर चर्च कुछ रुपये राज्य को दे देता था। चूंकि ऊंचे पादरियों में न लिया जाकर भूमि के रूप में लिया जाता था अतः कृषि की हानि पहुंचती थी। High clear- को राजा ही नामज़द करता था ये लोग नोबल होते थे। और कई गांवों के स्वामी होते थे अतः (Feudal lords) के समान वार्सले में रहना पसन्द करते थे। अतः इनकी अनुपस्थिति से चर्च में धर्म का नाम भी न रहा। दूसरे ये लोग भी शानशौकत से रहते थे, अतः इन्होंने धर्म को भुला दिया। इन की गणना नोबलस में होती थी। इस के साथ ही छोटे पादरी भी थे-जिनकी गिनती सर्वसाधारण में होती थी। ये लोग गांवों में शिक्षा और धर्म का प्रचार करते थे और ग्रामीणों के सुख दुःख में साथ देते थे। विशेषाधिकार प्राप्त होते हुए भी इन लोगों ने क्रान्ति का पक्ष लिया।

फ्रांस की जनता मुख्यतया दो भागों में विभक्त थी (१) सरदार लोग (Nobility) (२) सर्वसाधारण। समाज का संगठन स्थिति (Status)

पर आश्रित था–अर्थात् मनुष्य न स्वतन्त्र थे और न समान ही। समाज का आधार विशेषाधिकार और असमानता थी। नोबिलिटी से अभिप्राय राजकीय परिवार, नोबल्स, पादरी और धनियों से है, और सर्वसाधारण जनता में देहाती किसान, बढ़ई आदि थे। सारी जन संख्या में इनका बहुत बड़ा भाग था। इसी लिये हम देखते हैं कि विशेषाधिकार और असमानता के विरुद्ध फ्रांस की क्रान्ति का लक्ष्य "स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव बन गया।

फयूडल सिस्टम का आधार ही सामन्त व सरदार लोग (नोबिलिटी) हैं। मध्यम काल में नोबिलिटी एक शानदार वस्तु थी क्योंकि इन में वीरता (Chivalry) थी। ये लोग दरिद्रों और गरीबों के रक्षक थे। धर्म और अबलाओं के पहरेदार थे। किन्तु इस समय नोबल लोग गरीबों और स्त्रियों की रक्षा को छोड़ कर राजा के ऐश आराम में सम्मिलित होने वाले ही रह गए थे। लल्लोचप्पो से राजा को खुश करना ही इनका काम हो गया अब नोबिलिटी तलवार की नहीं अपितु पोशाक की बन गई थी। (Nobility of robe not of sword)। इस समय फ्रांस के नोबल्स में दो भाग थे (१) नए और (२) पुराने। पुराने नोबल तलवार के द्वारा टैक्स देते थे। यदि उन के पास कुछ धन हुआ तो वे शान के साथ राजा के दरबार में रहते थे अन्यथा अपनी जायदाद पर रहते थे। नए नोबल या तो नोबल पद खरीद कर नोबल बने हुए थे या उन पदों पर थे जिन पर नोबल्स की छाप थी। दोनों एक दूसरे से घृणा करते थे। पर क्रान्ति के समय दोनों में विवाह आदि सम्बन्ध होने लग गए और ये आपस में एक हो गए। नोबल्स की यह अवस्था होने पर भी उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त थे। केवल नोबल ही सेना, राज्य और चर्च के उच्च-पदों को पा सकते थे। वे कई प्रत्यक्ष करों से मुक्त थे। इन्हें फ्यूडल अधिकार प्राप्त थे। इन्हें बाजार और शिकार के सम्बन्ध में विशेषाधिकार प्राप्त थे, विशेष सम्मान मिलते थे। सर्वसाधारण इन विशेषाधिकारों को घृणा की दृष्टि से देखते थी क्योंकि नोबल्स को विशेषाधिकर इसी लिये मिले थे क्योंकि वे गरीबों की रक्षा करते थे। अब उनका काम राजा से ठकुरसुहाती बातें ही करना रह गया था। अतः सर्व साधारण इनके विशेषाधिकारों को नापसन्द करते थे। विशेषाधिकारों के प्राप्त होत हुये भी बहुत से नोबल गरीब थे क्योंकि प्रथा यह थी कि नोबल के मरने के बाद उसके सब से बड़े पुत्र को $\frac{२}{३}$ सम्पत्ति और शेषों को $\frac{१}{३}$ मिले। अतः एक तो धनी रहता था और शेष गरीब हो जाते थे। इसी प्रथा के कारण कई नोबल कबूतर, खरगोश और शिकारी कुत्ते के बराबर जमीन के स्वामी होते हुवे भी 'शक्तिशाली शासक" समझे जाते थे। साधारण जनता धनियों के अत्याचारों को सह लेती है वह समझती है कि यह तो अमीरों का काम है। हम भारत में देखते हैं कि यदि कोई धनी बिरादरी के नियमों का उल्लंघन भी करे तो कोई उसे बहिष्कृत करने का साहस नहीं करता। परन्तु जब नोबिलिटी–गरीब नोबल–और मध्य श्रेणी की आर्थिक अवस्था एक जैसी थी तो वे क्योंकर उनके विशेषाधिकारों को सहन करते। इस भावना ने आग में घी का काम किया।

सर्वसाधारण जनता में व्यापारियों तथा किसानों की गणना की जाती थी। इस श्रेणी में कई लोग आर्थिक चिन्ता से शून्य होगये थे अतएव ये क्रान्ति के संचालक बने। हम देखते हैं कि प्रत्येक क्रान्ति में या नए सुधारों में मध्यश्रेणी ही अगुआ होती है, क्योंकि गरीब लोग पेट की चिन्ता को छोड़

कर अन्य कोई काम कर नहीं सकते, और धनियों को अपनी सम्पत्ति के लुट जाने का डर रहता है अतः वे सदा तत्कालीन सरकार के पक्षपाती होते हैं और क्रान्ति के विरोधी। सर्वसाधारण जनता में दो भाग थे- (१) मध्यम श्रेणी एवं (२) देहाती मजदूर और किसान। मध्यम श्रेणी में वकील, हकीम, विद्वान्, व्यापारी, बैंकर, नट, आर्टिस्ट, और सरकारी अफ़सर थे। ये शहरों और कस्बों में रहते थे और फ्राँस के धन, दिमाग और व्यापार के प्रतिनिधि थे। यद्यपि इन्हें चर्च और राज्य के भार को उठाना पड़ता था तथापि इन्हें कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे। इन्हें अपनी सामाजिक दीनता महसूस होती थी। राष्ट्र कहीं दिवालिया न हो जाय, इस डर से ये लोग राजा के ख़र्च को कम करना चाहते थे और धन पर स्वयं निरीक्षक बनने की इच्छा करते थे। ये लोग तत्कालीन संस्थाओं से असन्तुष्ट थे और सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार चाहते थे। यद्यपि नोबल इनसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं करना चाहते थे तो भी गरीब नोबल स्वयं या अपने पुत्र को किसी धनी बैंकर से शादी कर देते थे। इस प्रकार मध्यम-श्रेणी और नोबल एक सतह पर आ रहे थे।

इसके अलावा एक चौथी श्रेणी थी। इसकी अवस्था अर्धदासों से अच्छी न थी। ये लोग जमींदार को छोड़ नहीं सकते थे क्योंकि उसके बिना इनकी पेट-पूजा असम्भव थी। इनकी संख्या कम न थी। ये बहुत कष्टों से दुःखित थे। ये लोग दासत्व में ग्रस्त थे। उनके विचार से सामाजिक ऊँच-नीच ईश्वरेच्छा के अनुसार होती था। सबसे बड़ा दासत्व वह है जिसमें दास अपने दासत्व को अनुभव नहीं करता। यह दासत्व सदा उसकी गर्दन पर सवार रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फाँस की जनता किन कष्टों को भुगत रही थी और उनकी क्या अवस्था थी। अत्याचारों से ही नवीन परिवर्तन नहीं हो जाते उन्हें दूर करने के लिये अनुभूति की आवश्यकता है। जब तक अत्याचार-पीड़ितों में यह विचार नहीं आता-"हम सब समान पैदा हुए हैं, हम सब स्वतन्त्र हैं, किसी को हम पर अत्याचार करने का अधिकार नहीं"-तब तक वे लोग उसी चक्की में पिसते रहेंगे उस दायरे से बाहर निकलने का प्रयत्न न करेंगे। हम देख चुके हैं कि फ्राँस की जनता में करों के अपव्यय, न्याय की अव्यवस्था, नोबिलिटी के विशेषाधिकार तथा अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक हीनता के कारण असन्तोष था परन्तु इस क्षेत्र को तय्यार करने का श्रेय कुछ दार्शनिकों और लेखकों को है। उनमें माण्टैस्क्यू, वाल्टेयर, रूसो और डिडेरैट मुख्य हैं। माण्टैस्क्यू ने Spirit of Law नाम की पुस्तक लिखी। इसमें उसने प्रतिपादित किया कि राजा "दैवीय" नहीं है वह प्रजा की इच्छा से ही बना है। मध्यकाल में सब पर "दैवीय अधिकार" का असर था। वे लोग समझते थे कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। यदि आज तूफ़ान और वर्षा के कारण मकान नष्ट हो जाएँ, कृषि ख़राब हो जाय तो हम किसी के पास फ़रियाद करने नहीं जाते, इसे ईश्वरेच्छा समझ कर मन-मसोस कर रह जाते हैं। वैसे ही जब राजा ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाने लगा तो स्वभावतः मनुष्यों में यह प्रवृत्ति हो गई कि वे राजा के उचित या अनुचित कार्यों का विरोध न करें। परन्तु जब जनता को यह बता दिया गया कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं अपितु राज्य कार्य को चलाने के लिये प्रजा ने उसे चुना है तो स्वभावतः ये विचार उत्पन्न हुवे कि जिसे भले के लिये राजा बनाया गया हो उसे बुरा काम करने

पर गद्दी से उतारा जा सकता भी है। वोल्टेयर ने अपने ग्रन्थों में ग़रीबों की दयनीय दशा का चित्र खेंचा। जेल के कष्टों का वर्णन किया। इसके लेख क्या थे— जो विषैले तानों से भरे हुए तीर थे। प्रत्येक सुधारक के लिए आवश्यक होता है कि वह तानों द्वारा लोगों को उनकी भीषण अवस्था का ज्ञान करावे। मीठे बचन वह असर नहीं करते जो एक ताना कर जाता है। यह ईश्वर, चर्च और धर्म का विरोधी था, क्योंकि इन्हीं के नाम पर ये अत्याचार हो रहे थे। साम्यवादियों के पिता रूसो ने तत्कालीन सामाजिक अवस्था के आमूल-चूल परिवर्तन पर जोर दिया। वह गरीबी की अवस्था में सारे यूरोप में घूमा शा अतः उसे गरीबों की अवस्था का भली प्रकार ज्ञान था। वह कट्टर साम्यवादी था। यह उस काल्पनिक युग का चित्र खैंचा करता था जिसमें सबके पास भूमि थी, सब स्वतन्त्र थे और समान अधिकारों का उपभोग करते थे। यह कहा करता था कि सभ्यता से ही अत्याचार, स्वार्थ, लोभ, वैयक्तिक-सम्पत्ति एवं दासत्व का प्रादुर्भाव हुआ है। डिडरैट ने एक विश्वकोष लिख डाला, जो कि मूर्तिमान अत्याचार का ख़ाका था। क्राँतिकारियों को पुराने शासन की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं को मट्टी-पलीद करने का अच्छा मौका मिल गया। यह कोष स्वेच्छाचार, असहिष्णुता, दासप्रथा, क्रूर क्रिमिनल लो, अनुचित कर और फ्यूडलिज्म पर धावे मारने के लिये हथियार का काम देता था।

यद्यपि इन लेखकों ने सर्वसाधारण में नई भावनाओं का उदय कर दिया, तो भी इन पर सबसे अधिक प्रभाव अमेरिकन क्राँति का हुआ। अमेरिकन राज्यक्रान्ति की सफलता ने उन्हें उन उदार विचारों का और भी अधिक पक्षपाती बना दिया जिनके लिए वे घर में लड़ रहे थे। अनेक फ्रैंच युवक अमेरिका की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये इस क्रान्ति में शामिल हुए थे। उन्होंने अमेरिकन प्रजातन्त्र की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं में उन भावनाओं की विजयों का साक्षात्कार किया, जिनका फ्राँस के साहसी लेखकों ने प्रादुर्भाव किया शा। जब वे लोग लौटे तो उनमें नई उमंगें थीं। अपने देश को नया और स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने की चाह थी। वे लोग स्वाधीनता का मज़ा चख आए थे अतः अब वे इन अत्याचारों को सहन न कर सकते थे। जो कुछ नूतन-संसार में देखा उसे वे पुरातन संसार में लाना चाहते थे।

इस प्रकार सारी फ्रैंच जनता में नए भाव फैल रहे थे जिसके परिणाम स्वरूप क्रान्ति का उदय हुआ।

अब्दुल रशीद की डायरी के कुछ पृष्ठ

(ले०— श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

आप आम अक्सर खाते होंगे। वे आम किन पेड़ों के होते हैं और कहां से आते हैं यह जान सकना कुछ मुश्किल नहीं होता तो भी मुझे यकीन है कि आप ऐसा कभी नहीं करते क्यों कि इससे आपको कुछ मतलब नहीं। मतलब की बातें ही दुनिया में इतनी ज़्यादा हैं कि उनसे फुर्सत नहीं मिलती फिर बेमतलब की बातों में माथापच्ची करने से क्या फ़ायदा?

डायरी

(१)

डायरी लिखने की मुझे आदत सी है। यह लिखे बिना मुझे कल नहीं पड़ती। २२ दिसम्बर सन् १९२६ की डायरी घर पर ही लिख दी थी। उसमें घर-बार रिश्तेदार सबके नाम हमेशा के लिये अलविदा लिख कर उसे ख़तम कर दिया था पर खुदा को अभी और भी लिखना मंजूर था। हां, २२ दिसम्बर से अबतक फिर लिखने का मौका न मिला। हवालात में और फिर ख़ूनी को अपने साथ जिस सलूक की उमीद रखनी चाहिये वही मेरे साथ किया जाने लगा। जो कोई आता मुझे हिकारत की नज़र से देखता। मैं अपने आप को भले ही गाज़ी समझता था मगर दूसरे सब लोग मुझे पाजी कहते थे। ज़ोरों की तहकीकात जारी थी। मुझ से भी ख़ूब पूछताछ होती थी। नरम गरम सभी तरीकों से पुलिस मेरे पेट से बात निकलवाना चाहती थी पर मैं भी निरी कच्ची गोली का न था। जितना सब जानते थे—जो मैंने दिन दोपहरे सब के सामने किया था—वही कि "मैंने काफ़िर को मारा है" यह टकासा जवाब मैंने दे दिया और अड़ गया। पुलिस की परेशानी और बढ़ी। वह ज्यादा सरगर्मी से कोशिश करने लगी। मुझे डराया धमकाया भी जाने लगा।

मगर आज एकाएक न मालूम क्यों सब का रुख़ बदल गया। ऐसे बढ़िया दस्तरख़ानों पर ऐसी लज़ीज़ तश्तरियां मैंने अपनी ख़ास सुसराल में भी न चखी थीं जैसी की मुजरिमों की इस आम सुसराल में मुझे अब नसीब हो रही हैं। मेरे बहुत से दोस्तों को अगर इन ख़ातिरदारियों का हाल मालूम हो जावे तो मुझे पूरा यकीन है कि वे बड़ी खुशी के साथ अपनी सारी उमर यहीं गुज़ारने के लिये तय्यार हो जावें। ख़ैर, बहुत-सी और २ आज़ादियों के साथ, मेरे दरख़ास्त करने पर आज मुझे डायरी लिखने की भी इजाज़त मिल गई है इसलिये ये कुछ सतरें लिखने बैठा हूं।

काम मार लिया। बात जितनी मुश्किल समझी थी उतनी निकली नहीं। मेरा ख़याल था कि ये आरिये दूसरों पर पत्थर फेंकते हुवे खुद तो शीशे के मकान में न रहते होंगे। इनके बाक़ायदा जासूस होंगे जिनकी निगाहों से बच कर मैं वहां पहुंच ही न पाऊँगा। अगर किसी तरह पहुंच भी गया तो फिर वहां निज़ामुद्दीन की तरह पहरेदारों का बन्दोबस्त होगा अगर किसी तरह कामयाब भी होगया तो फिर मुझे देख कर तो वे ज़रूर ही कच्चा खाजावेंगे। मगर इनमें से एक भी बात न हुई। ये अब भी वैसे ही बेवक़ूफ़ हैं जैसे पृथिवीराज के ज़माने में थे।

इस में शक नहीं कि मैं पकड़ा गया मगर अब क्या परवाह है। मैंने जो करना था कर गुज़रा। मेरी जान ले लेने से भी वह काफ़िर तो फिर लौट ही नहीं सकता। हूँ, और करो शुद्धि।

मेरे घर-बार का बन्दोबस्त हो ही गया है उसकी मुझे कुछ फ़िकर नहीं। यह ठीक है कि मैंने रुपये के लालच में पड़ कर यह काम नहीं किया, इस्लाम की ख़िदमत के लिये अपनी जान पर खेला हूं। तो भी वे लोग तो अपने वादे पर पक्के रहेंगे ही और जो कुछ ठहरा है उसे पूरा करेंगे। पाँच हज़ार! पाँच हज़ार कुछ कम नहीं। बेंक से ठीक उसी दिन तो वे मँगवाये गये थे। ठ...न्न, ठ...न्न, आहा कितनी मीठी आवाज़ थी। रुपये की सूरत भी क्या ही दिल पसन्द है। ओ हो! इकट्ठे इतने रुपये मैंने पहले कभी न देखे थे। ज़िन्दगी के बचे खुचे थोड़े से दिनों में मर-खप के इनका पाँचवा हिस्सा भी मैं न कमा सकता। मगर हाँ, मैंने यह काम इन रुपयों के लालच से नहीं किया। अब जान बच गई तो भी वाह-वाह चली गई तो भी वाह-वाह। घर से तो सिर पर कफ़न बाँधकर ही निकला था। अब होनहार ख़ुदा के ख़ुदा के बन्दों के हाथ में है। यूं मुझे तो अब जीने की कोई ख़ास ख़्वाहिश नहीं। बहिश्त का दरवाज़ा मेरे लिये खुला हुवा है। हाथों में फूलों की माला लिये हुवे वे हूरें मुझे अपनी तरफ़ बुला रही हैं।

(२)

एक ओर शहादत की शान है दूसरी ओर सिर्फ़ पागलपन के ढोंग से बचती जान है। दोस्त कहते हैं कि एक ज़िन्दगी हज़ार न्यामत है। सच है, यह बार-बार तो मिलती नहीं। बड़े-बड़े लीडर कह रहे हैं कि बस, एकबार पागल बनकर दिखादो, फिर हम रुपया पानी की तरह बहा देंगे, किसकी मजाल है जो तुम्हें फाँसी दिला सके। दिन को रात और रात को दिन कर दिखाना क़ानून के बायें हाथ का खेल है। रुपये से क्या नहीं हो सकता। हम समुन्दर पर रुपयों का पुल बाँध देंगे और प्रिवी-कौंसिल तक जाकर लड़ेंगे।

मगर मैं तो अँग्रेज़ अफ़सरों के सामने अपना जुर्म कबूल कर चुका हूँ। खुद पुलिस के आदमी ने मेरे हाथ से पिस्तौल छीनी है। आँखों देखा बयान करनेवाले गवाह मौजूद हैं ऐसी हालत में क्या उम्मीद हो सकती है। यह भी सुना गया है कि काफ़िर को मारकर भी अगर गाज़ी के दिल में अपनी जान बचाने का ख़याल पैदा हो जावे तो सब सवाब मिट्टी हो जाता है इसलिये शान ही बचानी चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि शान भी जावे और जान भी जावे। उधर कहते हैं कि अगर यह साबित हो जावे कि मैंने पागलपने के दौर में यह काम किया है तो मैं साफ़ छूट सकता हूँ। और दिन-दोपहरे, लोगों के सामने गोली चलाना और पूछे जाने पर बिना किसी हिचकिचाहट के इसको कबूल करना ही पागलपन का काफ़ी सबूत है क्योंकि कोई सही दिमाग़ का आदमी ऐसा नहीं कर सकता। उसके लिये जान से बढ़कर प्यारी चीज़ कोई नहीं होती। और पागल को न तो अपनी जान का ख़याल होता है न इस बात का कि वह क्या कर या कह रहा है। अच्छा, तो फिर यही सही। मैं ही कौनसा अपनी ज़िन्दगी से बेज़ार हो बैठा हूँ। मुझे भी इसका एक-एक लहमा उतना ही प्यारा है जितना औरों को। मुझे भी काँटा लगने से उतना ही दर्द होता है जितना औरों को। मुझे भी अपने घरवालों से उतनी ही मुहब्बत है जितनी औरों को। फिर वे—जिन्होंने फ़तवे लिख-लिखकर मुझे दिये, वे—जिन्होंने तरह-तरह

के लालच देकर मुझे पक्का किया, वे—जिन्होंने जान बचा लेने का पूरा-पूरा भरोसा दिलाकर मुझे फुसलाया, क्यों दुनियाँ की मौजें लूटते रहें और मैं फाँसी पर लटकाया जाकर क़यामत तक कब्र में पड़ा सड़ता रहूँ। अगर वे इस काम को अच्छा समझते थे तो खुद ही क्यों न कर बैठे। श्रद्धानन्द ने मेरा क्या बिगाड़ा था। अगर मेरा कुछ बिगाड़ा था तो वह तो उनका भी उतना ही। तो फिर वे ही पिस्तौल लेकर क्यों न निकल पड़े। मैंने सुना है कि मेरे बहुत से काग़ज़ात आरियों के हाथ लग गये हैं और जिन लोगों ने मुझे तय्यार किया था उनमें से भी बहुतों का सुराग पुलिस ने पा लिया है। यह भी अच्छा ही हुवा। एकही नाव में चढ़नेवाले बहुत-से मुसाफ़िर हो जावें तो डर ज़रा कम लगता है। तो क्या मैं भी सब भेद दे दूँ? मगर एक बहुत बड़े लीडर तो यह राय देगये हैं कि वे सरकार के इन्साफ़ में विश्वास नहीं करते इसलिये वे अगर मेरी जगह होते तो कोई बयान न देते। इसका क्या मतलब है? क्या भेद न दूँ? मगर अब तो कोई पूछता भी नहीं। अच्छा देखा जावेगा। पहले पागलपने का नाटक ही सही।

(३)

कोई बी. ए., एम. ए., कोई वकालत, डाक्टरी का इम्तिहान देने लाहौर जाते हैं मैं पागलपन का, या यूँ कहो कि अपनी क़िस्मत का इम्तिहान देने वहाँ गया था। अफ़सोस कि फ़ेल होगया। मगर एक बात ज़रूर लिखूंगा कि मेरा इम्तिहान ठीक नहीं हुवा। यह माना कि श्रद्धानन्द को क़त्ल करने के वक्त मैं पागल नहीं था लेकिन अपने नादान-दोस्तों के हाथों की कठपुतली बनते हुवे और पागलपन का इम्तिहान देते हुवे मैं पागल ज़रूर था।

कुछ दिनों पागलपन का ढोंग करने का नतीज़ा यह हुवा की अब मैं खुद अपने आप को पागल समझने लगा हूँ। मेरा दिमाग़ कुछ काम नहीं करता है। नींद ठीक नहीं आती और डरावने ख़्वाब बहुत दीखते हैं। सोते की बात ही क्या, मैं जागते हुवे भी यकायक चौंक पड़ता हूँ। मेरा दिल धड़कने लगता है और जिस्म काँप उठता है।

कम्पनी के मैनेजर का हुक्म है कि अब मुझे नया पार्ट प्ले करना होगा। पागल का पार्ट कुछ अच्छा नहीं हुवा। अब राहगीर बनकर स्टेशन की ओर से आना होगा और कहना होगा कि आर्यों ने खुद श्रद्धानन्द को मार डाला और मुझे—राह-चलते अनजान को ऊपर बुला लिया। मेरे हाथ में पिस्तौल पकड़ा दी। मुझे दबा लिया और मेरे सिर पर किसी चीज़ से इस क़दर मारा कि मेरे होश बिगड़ गये। दिमाग़ ठिकाने नहीं रहा। और उसी हालत में पुसिल ने डरा-धमकाकर मेरा बयान ले लिया। अच्छा यह भी कर देखूं। पञ्च कहें बिल्ली तो बिल्ली ही सही। शायद यूंही निशाना ठीक जा बैठे। डूबते को तिनके का सहारा।

(४)

अब खेल थोड़ा ही बाकी है। मैंने तो लोगों से बहुत कहा कि अब मुझे कोई उम्मीद नहीं, क्यों रुपया ख़राब करते हो। मगर वे नहीं मानते। कहते हैं कि यह तुम्हारा ज़ाती काम नहीं, इस्लाम की ज़िन्दगी या मौत का सवाल है। हम इस्लाम पर कुर्बान होनेवालों के सामने यह मिसाल रख देना चाहते हैं कि मुसलमान उनके लिये क्या-क्या सकते हैं। रँगे-हाथों पकड़े जाने पर भी उन्हें कैसे छुड़ाया जासकता है। मगर मुझे तो कोई उम्मीद नहीं। ढाक के वही तीन पात। जो कानून यहाँ है वही विलायत में है। और कुछ दिनों का

दिलबहलाव सही। बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनावेगी। क्या सचमुच ही एक दिन मुझे फाँसी दी जावेगी। हाय ! यह तो सोचकर भी मेरे रोंगटे खड़े होते हैं। यूं तो मुर्ग़ी को तड़प-तड़प कर जान देते हुवे मैंने बहुत बार देखा है पर आदमी को कितनी तकलीफ़ होती है इसका अन्दाज़ मुझे न था। हाय ! क्या मैं भी उन्हीं मुर्ग़ियों की तरह हलाल किया जाऊँगा। यूं तो किसी दिन सभी ने मरना है पर मैं ही एक साल, नहीं-नहीं एक दिन या एक सेंकण्ड भी पहिले क्यों मरूँ ? मेरे ही सिर पर कोन-सा उल्लू बोला है ? क्या यह सारी दुनिया हमेशा के लिये छूट जावेगी। क्या अपने इन अज़ीज़ों को फिर कभी न देख पाऊँगा। दुनियाँ के लोगो ! कातिल के साथ बेइन्साफ़ी न करो। उसका दिल भी हमेशा एक-सा नहीं रहता, उसमें भी प्यार-मुहब्बत, ख़ौफ़, डर, रहम दया सभी जुज़ मिले रहते हैं। और मैंने तो सिर्फ़ एक लहर में आकर यह काम कर दिया। मैं असल में यह करना चाहता न था। हैं, मेरा हाथ क्यों काँपता है ? यह दिल क्यों उमड़ने लगा ? रोना रोकने की कोशिश करने से गला दुखने लगा। आँसुओं के मारे अब कुछ नहीं दीखता—लिखा नहीं जाता।

(५)

सुना है अजमेर, लाहौर वगैरह में बहुत से हिन्दुओं पर हमले किये गये हैं। जिनमें से कई मर भी गये हैं। क्या उन्हें भी वही तकलीफ़ हुई होगी जो मुझे होनी है। क्या उनका इतना ही कसूर था कि वे हिन्दू थे। मुझे खुशी मनानी चाहिये या ग़म। ख़ैर, यह बात मन्तक से तय करके अमल में नहीं लाई जाती। मगर सोचने की बात यह है कि अगर इस तरह रोज़मर्रा ही ये वारदात हुईं तो लोगोंका यह ख़याल फिर पक्का हो जावेगा कि इनकी जड़ में कोई साज़िश ज़रूर है। हिन्दू कह रहे हैं कि अगर किसी आदमी ने कोई छोटा-सा भी काम करना हो तो वह हफ़्तों उसे विचारता रहता है अपने मिलने-जुलने वालों से राय लेता है जगह-जगह से मदद माँगता है तब कहीं उस काम को करता है। एक आदमी को क़त्ल करना तो एक बहुत बड़ी बात है। मारनेवाला जब तक खुद मरने को तय्यार न हो तब तक यह काम हो नहीं सकता। दो-चार दिन को भी कहीं बाहर जाना हो तो पीछे घर पर बाल-बच्चों की फ़िकर परेशान कर डालती है तो हमेशा के लिये उनकी फ़िकर छोड़कर, हथेली पर जान रखकर निकलना कुछ मामूली बात नहीं। यह ग़ैरमामूली बात बिना ख़ूब जोश दिलाये, बिना ख़ूब लालच दिखाये, बिना ख़ूब ढारस बँधाये हो नहीं सकती इसलिये ऐसे मामलों के पीछे ज़रूर ही कोई बड़ी साज़िश होती है यह सचाई इतनी ही साफ़ है जितनी सूरज की रोशनी मगर उल्लू उसे अगर देखना ही न चाहे तो यह बात ही दूसरी है। मुझे तो खुद शुरू से ही इस बात का ख़तरा था मगर न-मालूम क्या बात है कि हिन्दुओं के इतना शोर मचाने पर भी पुलिस इस बात को मानना नहीं चाहती। क्या यह बात इतनी बारीक है कि पुलिस की मोटी अकल उस में घुस नहीं सकती या पुलिस की अकल इतनी बारीक है कि यह मोटी बात उस में दाख़िल नहीं हो सकती ख़ैर जो असली भेद है है वह तो मैं जानता ही हूं। मगर अब मुझे इन बातों से क्या लेना है। एक ख़ून तो मेरे माथे है ही अब नाहक और क्यों लूं। जिसका जो फ़ेल है वह खुद उस के आगे आवेगा। अल्लाह सब से बड़ा है वह सब को माफ़ करे।

(६)

होनी होकर रहती है टल नहीं सकती। उमीद के जिस कच्चे सूत में मेरी ज़िन्दगी का भारी बोझ लटक रहा था आज वह भी टूट गया। अब मैं नीचे ही नीचे गिरा जा रहा हूँ। प्रिवी कौन्सिल ने मेरी अपील ना मंजूर करदी यह सुनते ही मैंने अपने हाथों अपना सिर पीट लिया और दाढ़ी नोच डाली। मुझे फाँसी ज़रूर दी जावेगी यह तो मैं पहले ही जानता था पर आज मौत की इतनी डरावनी सूरत एकाएक इतनी नज़दीक देख कर मैं काँप उठा। मेरा जिस्म पसीने से तरबतर होगया। मैंने बहुत चाहा कि अपने दिल को थाम सकूं मगर सब बेकार। बालू की मुट्ठी से दरया का बहाव नहीं रुकता। मेरी कोठरी मुझे दोज़ख़ मालूम होने लगी। मैंने देखा कि मुझे जीते जी आग में डाल दिया गया है। मेरा तिल-तिल भर जिस्म चट चट कर जल रहा है। छाले पड़-पड़ कर फूट रहे हैं हज़ारों बिच्छुओं के एकसाथ काटने की-सी दर्द मेरी बोटी बोटी में हो रही हैं। मैं इतनी देर से जल रहा हूँ पर मरता नहीं। नीचे से नई नई खाल निकल आती है और जलने लगती है। मैंने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुये उन फ़रिश्तों से कहा—शायद आप ग़लती कर रहे हैं। मैंने तो एक बड़ेभारी काफ़िर को मारकर बहिश्त का हक़ हासिल किया है। आप मुझे यहां क्यों ले आये। मेरा नाम तो अब्दुल रशीद है। बड़े २ मुल्ला मौलवियों से फ़तवे लेकर मैंने श्रद्धानन्द को जहन्नुम रसीद किया है। हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े मुसलमानों ने मुझे काज़ी और गाज़ी के ख़िताब दिये हैं। मस्जिदों में हज़ारों मोमिनों ने एक दिल होकर मेरे लिये दुआयें मांगी हैं। कुरान की शरह के मुताबिक मुझे बहिश्त मिलना चाहिये। क्या खुदा के घर में ही खुदा की हुकम अदूली की जावेगी।

उन्होंने डाटकर कहा—चुप रह बदज़ात कुत्ते! खुदा का पाक नाम अपनी गन्दी ज़बान पर मत ला। उसके एक प्यारे को मारकर तूने बहुत बड़ा गुनाह किया है। मैं चौंक पड़ा। मेरी हैरत का कुछ ठिकाना न रहा। मैंने कहा—क्या इस्लाम से बाहर भी खुदा के प्यारे हो सकते हैं? मैंने तो अबतक यही पढ़ा है कि खुदा एक है मुहम्मद उसका रसूल है उस में ईमान लाये बिना इन्सान काफ़िर है उसकी नजात नहीं हो सकती। तो क्या वह झूठ था? उन्होंने कहा— अरे कूवे के मेंढक! यह कौन कहता है कि खुदा एक नहीं लेकिन पैग़म्बर वक्त-वक्त और जगह-जगह के लिहाज़ से बदलते रहते हैं। पानी एक ही समन्दर का है मगर कहीं वह कूवे से, कहीं नदी से, कहीं तालाब से और कहीं सोत से हासिल होता है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, दयानन्द सब उसी एक खुदा का पैग़ाम लाने वाले थे। अगर तुझे यकीन न होतो एक बार आँख बन्द कर अपने दिल के अन्दर देख। यह कह कर उनमें से एक ने मेरे मुँह पर हाथ फेर दिया। मेरी आँखें बन्द होगईं। मैंने देखा एक ऊंचे तख़्त पर खुदा बैठा है। सभी पैग़म्बर उसके चारों ओर आस पास बैठे हैं। मुहम्मद और श्रद्धानन्द ख़ूब घुलघुल कर बातें कर रहे हैं। मेरी पिस्तौल की गोलियां जहां लगी थीं वहां फूलों का ओ३म् लिखा हुवा है।

इतने ही में मैंने देखा कि चारों तरफ़ से मुझ पर गोलियों की बौछार आने लगी। एक एक गोली मेरे जिगर को छेद कर पार होने लगी। मैंने दौड़ कर प्यारे रसूल का दामन पकड़ना चाहा पर उन्होंने मुझे झिड़क कर अलग कर दिया। तब श्रद्धानन्द जी ने गोलियों की बाढ़ को अपनी छाती पर लेकर मुझे अपनी आड़ में कर लिया। मगर रसूल कहने लगे कि— नहीं स्वामी जी! इस पाज़ी को अपना बोया काटने दीजिये ऐसे ही नासमझ

इस्लाम-परस्तों ने जहान में मुझे बदनाम कर रक्खा है। मैंने दुनिया को एक भाईपने का सन्देशा दिया था ये उसकी मिट्टी यूं ख़राब कर रहे हैं। स्वामीजी ने हँस कर कहा—रशीद अब कोई डर नहीं। जिस पर प्यार होता है भूल होने पर उसी पर ज़्यादा गुस्सा किया जाता है इसीलिये ये तुमसे नाराज हैं। रसूल ने कहा— रशीद ! यूं तो हम सब पैग़म्बरों में कुछ फ़रक नहीं । शीशेमें देखने से अपना मुँह भी थोड़ा बहुत बदल जाता है उतना ही फ़रक हम में हो सकता है तौ भी इस वक्त इन्हीं स्वामी जी ने तुम्हें पनाह दी है इस लिये तुम इनकी कदमबोसी करो। ये चाहेंगे तो तुम्हारा कुछ भला कर देंगे। शरम, डर, भक्ति वगैरह कई भावों ने मुझ पर एक साथ कब्ज़ा कर लिया। मैंने देखा—स्वामी जी के चेहरे पर एक ख़ास नूर है। उनकी आँखों से मुहब्बत टपकी पड़ती है । उनकी एक-एक मुस्कराहट में रहम हिलोरे ले रहा है उनके रोंये २ से माफ़ी-माफ़ी झलक रही है। उनकी छाती पर शुद्धि लिखा हुवा है। आहिस्ते २ स्वामीजो का जिस्म बढ़ने लगा। उनका सिर आसमानमें जा लगा। उनकी बांहें पूरब से पच्छिम तक फैल गईं । साथ ही साथ वे 'शुद्धि' के हरफ़ भी उतने ही बढ़ गये। सारी दुनिया शुद्धि में डूब गई । पर यह शुद्धि दिल की शुद्धि थी और कुछ नहीं । क्या इन्हीं को मैं मारना चाहता था। ओह ! मैं कैसा पागल था ? मेरा सिर झुक गया मैं उन के कदमों पर जागिरा। उन्होंने मुझे उठा कर गले लगा लिया। और कहा— रशीद ! अब से तुम्हारा नाम ऋषिदत्त रक्खा गया। हिन्दुओं के असूल के अनुसार पुनर्जन्म भी होता है। इन ऋषि दयानन्द जी की कृपा से तुन्हें नया जन्म प्राप्त होगा । जाओ शुभ कर्म करो और शुभ गति पावो।

जेल का घण्टा बजा, मेरी आंखें खुल गई। मैं बार बार आँखें मीच कर उस नज़ारे को देखने की कोशिश करने लगा मगर कामयाब न हुआ। अब मुझे मौत का डर नहीं। पुराना चोला फेंक कर नया पहनूंगा। मग़र अपने भाइयों को इतना ज़रूर कहूंगा कि एक हाथी को छू कर जानने वाले उन ६ अन्धों की तरह मज़हब की छोटी २ बातों पर लड़ना छोड़ दो। अपने ख़ून की मैं तुम से यही क़ीमत मांगता हूं। मेरे हममज़हब भाइयो ! मेरे लिये खुदा से दुआ करो।

तुम्हारा बिछुड़ता हुआ भाई
रशीद

* * *

मेरा मिसहज़्कैरी के साथ सम्भाषण

(गतांक से आगे)

[ले० अंजना देवी आर्य्या वैदिक धर्म विशारदा, सिद्धान्त विशारदा]

अपने प्रण के अनुसार दूसरे दिन जब मैं पार्क में पहुंची तो मिसहजकैरी पूर्व ही आ चुकी थीं। आज उस के साथ एक और स्त्री थी, इस की आयु सम्भवतया २८, ३० की होगी मुझे दूर से ही आते देख कर मिस हज कैरी बेंच पर से उठ खड़ी हुई और कुछ इधर उधर की हो जाने पर मिस हजकैरी अपनी बात पर आईं उन्होंने कहा—मैंने आप से कल कहा था कि मैं प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ अपनी हंसी का कारण बतलाऊंगी, अतः यह बहिन के प्रमाण हैं। जिन का पूर्व नाम सरला देवी है और अब यह मिसजेम्स के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपने मुझ से कहा था कि गुण कर्म स्वभाव का मिलान होने पर किसी भी वंश का वर या कन्या लेकर आप लोग विवाह कर सकते हैं मसलन मिसकैरी की शादी आप के लड़के के साथ हो सकती है यदि दोनों का गुण कर्म स्वभाव एक है, अतः आप की बात को काटने के लिए सरला देवी तो तैयार हैं, यह आप को अपना हाल सुनाने को उद्यत हैं जिस से आप मेरा कहने का कारण जान जायंगी, मिस हज़कैरी यह सब कुछ एक श्वास में कह गई। मिसहजकैरी के चुप हो जाने पर मिसजैम्स ने कहा—प्यारी बहिन आप नाराज़ तो नहीं हो गई मैंने कहा—नहीं आप अपना इतिहास कह जाइये मिसजैम्स ने कहना शुरू किया।

मैं अपने मां बाप की तीसरी सन्तान थी, मेरे माता पिता आर्य समाजी थे, उन्हें आर्य समाज में दाखिल हुए कोई १२ वर्ष हो गये होंगे मेरा बचपन बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ जब मैं पाँच वर्ष की हुई तो मुझे पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजा गया पर मैंने पांचवीं क्लास तक शिक्षा ग्रहण की, बाद में मुझे मेरी माता ने पाठशाला से हटा लिया बुला लिया, कि मेरी काफ़ी लियाकत हो चुकी है। खैर बाद में मैंने घर का काम सीखना शुरु किया इस प्रकार होते २ मेरी आयु १४ वर्ष की हो गई। (एक बात जो मैं कहना भूल गई थी कि मेरी सगाई तभी करदी गई थी जब मेरी आयु ९ वर्ष के लगभग थी) जब मेरी आयु चौदह वर्ष की हुई तो मेरे विवाह के साज सजने लगे। खूब धूम धाम के साथ मेरी शादी हो गई मेरे पिता जाति के अरोड़ क्षत्रिय थे अतः मेरा विवाह भी जाति के भीतर ही हुआ विवाह में खूब पंडित आये। मेरे पति का नाम मोहनलाल था जो बी० ए० क्लास में पढ़ता था उनकी आयु अधिक से अधिक २२ वर्ष की होगी खूब दहेज दिया गया बड़ी धूम धाम से मुझे ससुराल में लाया गया ! जब मैं ससुराल में गई तो हिन्दुओं की रस्मों के अनुसार दो घण्टे तक कुछ खेल जैसा होता रहा पश्चात् मुझे पति से परिचित होने का समय दिया गया मैं पहिले उन को जानती पहिचानती भी न थी खैर मैं कमरे में बैठी थी वह आये पर मैं वैसे ही घूंघट ओढ़े बैठी रही

उन्होंने पुनः बाते कहीं मैंने उत्तर न दिया इस के बाद कुछ देर सन्नाटा रहा पर थोड़ी देर के पश्चात् उन्होंने बैठते हुवे कहा—कि मुझे यह बुरका पोशी पसन्द नहीं है इसे उतार डालो, आज्ञा पालन अपना कर्तव्य समझ कर मैंने अपना घूंघट हटा दिया ।

घूंघट हटाते हुवे जब मेरी दृष्टि उन पर पड़ी, तो मैंने देखा कि वह मुझे बड़े ध्यान से देख रहे हैं, मुझे देखते ही उन्होंने कहा—उफ् बस इतना कह कर वह कमरे से बाहिर हो गये । (मैं एक बात लिखनी भूल गई मिस हज़जैस्स का रंग यद्यपि बहुत ही सख्त काला नहीं था पर हम उस रङ्ग को सफेद भी नहीं कह सकते) मैं स्तम्भित सी रह गई यह क्या हुआ मुझे कुछ भी समझ में न आया मैंने समझा कि अभी लौट कर आते होंगे पर घंटा भर व्यतीत हो गया वह न आये कुछ समय के पश्चात् मेरी सास ने धीरे २ कमरे में कदम रक्खा वह वैसे ही चुप चाप बैठी थी मेरी सास आकर मेरे पास खाट पर वैठ गईं उन्होंने मेरी कमर पर हाथ फेरते हुवे कहा—सरला बेटी मोहन को क्या कहा था—मैं हैरान हो गई मैं आश्चर्य से सास के दुःख की ओर देखने लगी मेरी सास ने फिर उन्हीं शब्दों को दोहराया मैंने धीरे से कहा—मैंने तो कुछ नहीं कहा वह बोली अच्छा कोई डर नहीं सो जाओ वह मेरी साथ वाली खाट पर सो गई और मुझे भी सोने का सा ढंग करना पड़ा पर मुझे सारी रात नींद नहीं आई । मैं मन में कहूं हे ईश्वर ! यह क्या हुआ, मैंने तो कुछ भी नहीं किया जैसे तैसे दिन हुआ नियमानुसार मुझे सात दिन सुसराल मे रहना था, पर सात दिनों में मुझे एक बार भी ऐसा अवसर नहीं मिला जब कि मैं उन के दर्शन ही कर पाती । हां इतना अवश्य कि मुझे उन के रूठने का कारण मालूम हो गया आप देख रही हैं कि मेरी शकल कैसी है बस उन की नाराज़गी का यही कारण था मेरे दिल पर उस समय क्या गुजरी होगी आप सोच सकती हैं, यदि उन के और मेरे माता-पिता ने पहले हमारा परिचय करा दिया होता तो वह फल कभी न निकलता, खैर जैसे तैसे सात दिन काट कर पीहर में आ गई, तीन मास के लगभग मैं पीहर में रही पर मेरा दिल जानता है कि वह दिन मेरे कैसे कटा करते थे। मेरे माता पिता ने तीन मास के पश्चात् मुझे फिर—कुछ धन देकर मेरी सास के साथ सुसराल को भेजा, मेरी सखियों सहेलियों ने मुझे बहुत कुछ पाठ पढ़ाये थे मैंने वहाँ आकर उन सब को धीरे २ उपयोग में लाना शुरु किया, पर वहां तो पत्थर दिल थे जो कभी पिघलने का नाम ही न लेते थे, गरमियों की छुट्टियों में बड़ी कठिनता से उन्हें घर बुलाया गया था। एक दिन जब कि वह कमरे में अकेले बैठे हुए थे मुझे मेरी सास ने जान बूझ कर किसी कार्य के बहाने भेजा मैं भीतर गई वह कुछ सोच कर रहे थे मुझे देख कर चौंक पड़े। फिर एक ही बार उठ कर खड़े हो गये, मैं समझ गई कि मुझे भीतर आया जान बाहर जा रहे हैं मैंने गिर कर पांव पकड़ लिये और बैठने के लिये प्रार्थना। की पता नहीं उस दिन ईश्वर की कैसे कृपा हो गई वह मुझ से कुछ दूर उठ कर कुरसी पर बैठ गये उन्होंने कहा तुम क्या कहना चाहती हो मैंने कहा—यदि मेरा कुछ दोष होतो आप मुझे बता दें, मैंने तो उस दिन आप को कुछ भी नहीं कहा था उन्होंने लम्बी आह भर कर कहा—दोष तुम्हारा तो नहीं दोष तुम्हारे और हमारे

माता पिता का है या हम हिन्दु क़ौम के उलटे कानूनों का है। मैं कुछ भी नहीं समझी उन्होंने फिर कहा— तुम्हारा इतना सज सज कर मुझे प्रसन्न करने का फल व्यर्थ है मेरे दिल में वह भाव आ ही नहीं सकता, जिस की तुम आशा रखती हो दुनिया इस को चाहे धर्म का सम्बन्ध कहे तो कहे, पर मैं तो यह समझता हूं कि यह प्रेम का सम्बन्ध है। यदि मेरे दिल में तुम्हारे प्रति प्रेम ही नहीं तो मैं तुम्हें खुश रखना कोई फ़र्ज ही नहीं समझता प्रेम करने पर ही आदमी किसी के साथ आराम से आयु गुजार सकता है, बिना प्रेम के यह घर एक जञ्जाल हो जाता है जो मुझे पसन्द नहीं।

अफ़सोस कि मुझ से कोई राय नहीं ली गई थी और मेरी राय लेना कोई जरूरी नहीं समझा गया था, इस में चाहे तुम मेरी गलती कहो या न कहो, पर मैं मज़बूर हूँ मेरी ओर से तुम आजाद हो जहाँ चाहो, रहो न रहो मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। इतना वह एक वार ही कह गये अन्तिम वाक्य के समाप्त होते न होते वह उठ कर कमरे से बाहिर चले गये मैं जहां की तहां धरती पर पड़ी रह गई न जाने कितने समय तक पड़ी हुई मैं अपने भाग्य को रोती रही, उस दिन की बात का मुझ पर बहुत बुरा या अच्छा जो भी आप समझें प्रभाव हुआ, मुझे पहिले अपने पति पर क्रोध आया करता, फिर सास ससुर पर, फिर माता पिता पर कभी अपने भाग्य पर! दिन २ निकलते मेरे विवाह को वर्ष व्यतीत हो गया अब मैं बिलकुल ही पीहर में रहने लगी, थी, इसी बीच में हमारे घर के पास एक मिशनरी ने आकर घर किराये पर लिया था वह मिशन की प्रचारिका थी, पहले पहल वह मुहल्लों में सद् गृहस्थों की तरह रहने लगी उस की वेश भूषा रहन सहन सब हिन्दुओं सा था केवल थी वह ईसाई, उस ने मुहल्ले की कन्याओं को सिलाई लिखाई शुरु की मैं भी उस के पास जाने लगी धीरे २ मेरा बोल चाल उस से बढ़ा, एक दिन मैंने उसे अपना सारा हाल सुनाया उस ने मुझे ईसाई धर्म की विशेषतायें बतलाईं उन्होंने कहा कि हमारे धर्म में ऐसा नहीं होता इत्यादि, धीरे २ मुझे इस की बात बहुत भाई। मुझे ले जाने के पांच छः दिन पूर्व उस ने उस गृह को छोड़ दिया और हमारे घर से बहुत दूर एक चर्च में चली गई पश्चात् एक दिन शाम को जिस का फैसला पहिले हो चुका था मुझे अपने साथ चर्च में ले आईं वहां पहुँचते ही मुझे ईसाई बना लिया गया और दो घण्टे बाद उस शहर को छोड़ कर बम्बई भेज दिया गया वहां पर मैं २२ साल की उमर तक रही वहां के कालेज में पढ़ती रही और मेरी इच्छा के अनुसार मेरा विवाह मिस्टर जैम्स के साथ हो गया इतना कह कर मिसेज़जैम्स चुप हो गई? मैं चुप चाप सिर झुका कर सुनती रही कुछ देर चुप रहने के पश्चात् मिसहज़ कैरी ने कहा—क्यों बहिन जी क्या मेरी हंसी फ़जूल थी मैं तो अभी तक चुप चाप बैठी थी उन की इतनी बात सुन कर चौंक पड़ी मैंने कहा—बहिन मैं तुम्हें क्या कहूँ? आप की हंसी बिलकुल ठीक थी मेरा चेहरा बहुत कुछ उतर चुका था। मिस हज़जैम्स ने मेरे भाव को ताड़ कर कहा बहिन जी आप ऐसी क्यों हो गई हैं, आपने कोई असत्य नहीं कहा था आप की धर्म पुस्तकों में जरूर ऐसा विधान है, स्वामी दयानन्द ने अवश्य ऐसे रूल बनाये हैं और उस को लेकर आप कह सकती हैं, और शायद आप

इस बात के पालने को भी तैय्यार होंगी तभी तो आपने कहा है, पर इन का मतलब महज़ यह था, कि नियमों पर लोग नहीं चलते। आप समझ सकती हैं कि जिस की आँखों के आगे ऐसे उदाहरण मौजूद हो कि जिस से हिन्दु जाति की कमजोरियां साफ़ जाहिर हो रही हैं। वह आप की इस बात को मुश्किल से ही ठीक मान सकता है। मैंने अपने आप को सम्हाल कर कहा ठीक है, बेशक यह हमारी कमजोरियां हैं जो हमें आगे कदम नहीं बढ़ाने देतीं पर आप देखेंगी कि कुछ देर में आप को ऐसी शिकायत आर्य्य जाति से करने का समय नहीं मिलेगा मिस हज़ कैरी ने कहा—प्रभु करे! ऐसा ही हो! तब मैं भी शुद्ध होने के लिये आऊंगी अभी तो हम ऐसे ही निभा रहे हैं। आप देखिए! कि हम ईसाई लोग।सारे तो ये ही हिन्दु या मुसलमान हैं? महज़ ऐसी बातों से ही मजबूर हो कर दूसरे धर्म का सहारा लिये हैं। कोई ऐसे भी हैं जो रुपये के लोभ में ईसाई हुये हों पर आप को ऐसे लोग मिलेंगे जो अधिकतर केवल ऐसी बातों से ईसाई होते हैं। अस्तु।

बहुत देर हो जाने के कारण फिर हम सब वापिस लौट आईं।

इति

कला-कौमुदी
'ज्योति' के ग्राहकों को विशेष रियायत
अथवा
१॥) के स्थान में केवल १।) में
आर्डर देते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें

सच्चा अछूतोद्धार

[ले० बुद्धिसागर वर्मा विशारद बी. ए. एल. टी.]

किसी समाचार पत्र को उठाइये, किसी मासिक पत्रिका को पढ़िये, अछूतोद्धार और संगठन की आवाज़ बुलन्द की जा रही है । इस ओर काम भी बहुत हो रहा है । पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी की कुर्बानी ने और भी जोश पैदा कर दिया है । किन्तु हमारी दृढ़ धारणा है कि जब तक हिन्दू-जाति की सामाजिक कुरीतियों का समुचित संशोधन न किया जायगा तब तक यह असमर्थ जाति मुसलमान जैसी संगठित जाति का पूर्णरूप से मुक़ाबिला नहीं कर सकती । कहावत है—"जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय ।" रोग के आदि कारण को दूर करने से सारे शरीर का स्वास्थ्य आप ही आप सुधर जाताहै । हिन्दू-जाति के कर्णधारों को साथ-ही-साथ सामाजिक बुराइयों को दूर करने का भगीरथ प्रयत्न करना चाहिये । इसके विना न तो सच्चा संगठन हो सकता है, और न सच्चा अछूतोद्धार ।

आजकल जिस ढंग पर अछूतोद्धार का काम हो रहा है, उस में हमारी समझ से कई त्रुटियां हैं । अछूतों को साथ बिठलाने, उनके साथ सहानुभूति दिखलाने उनके हाथ का छुआ खाने; उन्हें देव मन्दिरों पर चढ़ाने आदि का प्रयत्नादि, यहीं अधिकांश में अछूतोद्धार का कार्यक्रम समझा जाता है; समय को देखते हुये इन सभी बातों की आवश्यकता भी है । किन्तु केवल इन्हीं से अछूतों का उद्धार नहीं हो सकेगा ।

हम देखते हैं, समय के हेरफेर से अछूतों में भी जागृति आरही है । वेभी अपने को श्रेष्ठ बनाने की फ़िकर में हैं । लेकिन तरीका जो इस्तेमाल किया जा रहा है वह नितान्त भ्रममूलक है । शिक्षा प्राप्त करना निस्संदेह उपयोगी है । मैं तो कहूँगा कि अछूतोद्धार के कार्यक्रम के साथ प्रत्येक ग्राम में, प्रत्येक नगर में, प्रत्येक मुहल्ले में रात्रि पाठशालाओं की आयोजना होनी चाहिये । इन पाठशालाओं में वैतनिक अध्यापक रखने की अपेक्षा शिक्षित समुदाय के लोग वारी २ से अपना कुछ समय दिया करें तो बहुत लाभ हो । यह बड़ी सुगमता से हो भी सकता है । आधा घंटा वकील साहब भी देसकते हैं । आधा घंटा डाक्टर साहब भी देसकते हैं । आधा घंटा मास्टर साहबान भी आसानी से दे सकते हैं । कम से कत इतना ही समय सेठ साहूकारों को भी देना चाहिये । इस प्रकार यह कार्यक्रम किसी एक व्यक्ति पर भाररूप न होकर मज़े में और बहुत थोड़े खर्च में चल सकता है । किन्तु पढ़ कर जो कुवासनायें उदय हो जाती हैं वही विष बुरा है और सच्ची उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाता है । जहाँ एक नाई का लड़का मिडिल तक पढ़ गया, फिर वह नाईगिरी के काम में लजाने लगता है । एक चमार का लड़का इन्ट्रेन्स पास करके जूते बनाने की अपेक्षा १५) की गुलामी को कहीं अच्छा समझने लगता है । शिक्षित अछूत के लिए खेत की मेढ़ पर बैठना और हल में हाथ लगाना जघन्य कर्म हो जाता है । हम ४–५ ऐसे अछूत भाइयों को जानते हैं, जिनके यहाँ

खेती वारी आदि का काम मुद्दतों से हुआ करता था। किन्तु अब वे वरनाक्यूलर फाइनल पास कर चुके हैं । हम लोग उन्हें कुर्सी पर नहीं तो अपने मोढ़े या चारपाई पर अवश्य सहर्ष बैठाते है। वे उजले अंगरेजी काट के कपड़े पहिनते हैं। अब उन से हरी ऐनक के बिना धूप में चला नहीं जाता। देहात का बना जूता उन के पाँव को बड़ा कष्ट देता है। अब उन से खेती वारी का काम नहीं होता। इसके लिये उन्हें अपने निर्धन भाइयों को नौकर रखना पड़ा है। उन्होंने नौकरी के लिए डिस्ट्रिक बोर्ड में प्रार्थना पत्र दिये हैं । दो तो नौकर भी हो गये हैं।

एक बार ठाकुर मशालसिंह भूतपूर्व एम. एल. सी. चेयरमैन डिस्ट्रिकृबोर्ड हरदोई से बात चीत में ज़िकर आया । उन्होंने कहा 'जो भी मिडिल पास करता है सीधा मेरे पास आता है कि कहीं नौकरी दिला दीजिए। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे पास न जाने कितने प्रार्थना पत्र पड़े हुये हैं किन्तु नौकरी के लिये इतनी जगहें कहां से पैदा की जा सकती है। यह तो दशा है। सुधार कैसे हो सकता है।

अतः शिक्षा प्रचारकों का कर्तव्य होना चाहिए कि इन कुवासनाओं को मिटाकर रोज़गार धन्धों की ओर उन्हें प्रोत्साहित करें । धनी-मानी सज्जनों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उत्साह बनाना चाहिये अन्यथा उन्नति के मार्ग पर चल कर अवनति के गढ़े में गिरने के अतिरिक्त और क्या परिणाम होगा ?

अछूतोद्धार का वास्तविक अर्थ तो यह होना चाहिये कि एक चमार का लड़का उच्चशिक्षा प्राप्त कर जूता गाँठने की बजाय Leather boot फैकृरी खोले। हिन्दू जूता फ़रोश बहुत कम हैं ; यह भी हिन्दू-समाज में एक बड़ी न्यूनता है। इसकी भी पूर्ति होनी चाहिये। इसी प्रकार कोरी के लड़के को ऊँची शिक्षा प्राप्तकर कपड़ा बुनने का उच्चादर्श स्थापित करना चाहिये । धोबी के लड़के को भी अपने निजी काम में उन्नति करनी चाहिये। इसी भाँति अन्य सारी जातियों को भी अपने पेशे में उन्नतिशील होने का प्रयत्न करना चाहिये। विद्या का अभिप्राय ही यही है। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुये मनु मनु महाराज ने कहा है—

> 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्म्मो भयावहः।'

अन्यथा हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सकने से कितना कष्ट होगा, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

दूसरी बात लीजिये। नाई पढ़-लिखकर अपने को ब्राह्मण कहलाना चाहते हैं। सुनार अपने को वर्मा लिखकर क्षत्रिय बनते हैं। धानुक कहते हैं कि हम अछूत नहीं हैं। हमारे पूर्वज 'धानुष्क' क्षत्रिय थे। पासी भी अपनी बहादुरी डींग मारकर क्षत्रियों के वंशज बनते हैं इत्यादि-इत्यादि। यह सारी बातें हमारी समझ में नितान्त बे सिर-पैर की हैं। हम मनु महाराज के इस वाक्य का खंडन नहीं करते कि—"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।" शूद्र ब्राह्मण बन सकता है, वैश्य भी बन-सकता है ; किन्तु गुण और कर्मों द्वारा खाली गला फाड़ने और ढोल पीटने से नहीं। कहार अपनी सभा में प्रस्ताव पास करते हैं कि चौका-बर्तन का काम हमें नहीं करना चाहिये। शहरों और गाँवों में कहारों के कान फूँके जाते हैं कि ठाकुर साहब का काम छोड़ दो। मैं पूछता हूँ क्या इस प्रकार कहार अपनी स्थिति को ऊँचा

बना लेंगे ? पहले योग्य बनो, अधिकार स्वयं प्राप्त हो जायगा ; यही प्राकृतिक नियम है । इसमें कुछ थोड़ी हमारी भी ग़लती है । हममें से बहुत अदूरदर्शी एषणाप्रिय महानुभाव इन लचर विचारों का समर्थन करने लगते हैं । पात्रापात्र का विचार छोड़कर जनेऊ तक दे देते हैं । इस प्रकार जिन्हें परीक्षा दिये बिना यों ही सनद मिल जाती है, उन्हें योग्यता प्राप्त करने की क्या आवश्यकता ?

इसी प्रकार और भी बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं; जिन्हें दृष्टि-पथ में रखकर यदि अछूतोद्धार का काम उठाया जाय तो निस्सन्देह वास्तविक अछूतोद्धार कहा जा सकता है । एक बात और भी है । अछूतोद्धार का काम प्रायः दो प्रकार के प्रचारकों द्वारा होता है । (१) वैतनिक प्रचारकों द्वारा (२) लोकेषणाप्रिय अवैतनिक प्रचारकों द्वारा । यह दोनों प्रकार के प्रचारक धन-लिप्सा से अथवा यश-लिप्सा से काम करते हैं । ऐसे प्रचार में अन्तरात्मा की शक्ति का योग बहुत न्यून रहता है । अतः उसका परिणाम भी चिरस्थाई नहीं होता । यह मनोविज्ञान का अटूट सिद्धान्त है । आर्यसमाज और हिन्दूसभा की अवनति का यह भी एक कारण है कि सच्चे (Sincere) प्रचारकों का अभाव-सा है । इसके प्रतिकूल मुसलमान और ईसाइयों में सच्चे प्रचारकों की कमी नहीं ; जिसका परिणाम हमारे सामने है । हममें यह न्यूनता क्यों है ? हम वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा भुला बैठे हैं । हमने वानप्रस्थाश्रम का नाम ही मिटा रक्खा है । हमें गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर मधुमक्षिकावत शहद के एक किनारे पर बैठकर सांसारिक भोगों का रसास्वादन करना चाहिये । ताकि हमारे पंख हमारे सांसारिक मायामोह-रूपी शहद में लथड़कर बेकाम न हो जायँ और समय पड़ने पर हम आसानी से निकल सकें । किन्तु आज हमारी स्थिति उस मूर्ख मक्खी की-सी होरही है । जो बीच कटोरे में लोभवश कूद पड़ती है और फिर इच्छा रहते हुये भी निकल नहीं पाती और परिणाम यह होता है कि उसी में मर जाती है । प्रत्येक अवस्था में उन्नति के लिये त्याग की आवश्यकता होती है । हमें गृहस्थाश्रम का विधिवत पालन कर मायामोह के जाल को काटकर कुछ समय वानप्रस्थ के लिये अवश्य देना चाहिये । यदि हम ऐसा करें तो ये सारी कठिनाइयाँ सहज में ही दूर हो जायँ । सच्चा वानप्रस्थी ही इन कामों को भली प्रकार कर सकता है । हमें अछूतोद्धार के लिये पहले अपना सुधार करना होगा । तभी हम देश, जाति एवं समाज का कल्याण करने में समर्थ हो सकेंगे ।

सूक्तिमाला

(ले०—बुद्धिसागर वर्मा विशारद बी.ए.एल.टी)

१. समय बीतने पर हमें वस्तुओं तथा मनुष्य के गुण दोषों का पता चलता है ।

२. अधिक सावधान होने के साथ साथ हम तार्किक भी हो जाते हैं । छोटी से छोटी बातों पर हमारी दृष्टि पहुंचती है ।

३. सुन्दरता प्रायः विवेक को नष्ट कर देती है ।

४. स्वच्छता गृहस्थ का सब से बड़ा धर्म है ।

५. एक ही चीज जो हमें बिना मूल्य मिलती है वह प्रेम है ।

६. किसी देश का महत्व उसके आकार और उस के द्वारा शाशित प्रदेशों की संख्या पर निर्भर नहीं होता वरन् उस के आदर्शों और भीतरी शक्ति पर निर्भर होता है ।

७. प्राणियों के मन में प्रेम की उत्पत्ति स्वाभाविक होती है, उस का बीज हृदय क्षेत्र में परमात्मा ही बो देता है ।

८. प्रेम अन्धा होता है— अन्धे को क्या रूप क्या कुरूप ?

९. जिस परिवार में आपस में ही मत भेद हो, वह सफल कभी नहीं हो सकता ।

१०. व्यर्थ ही सन्देह करने का स्वभाव अन्त में भारी विपत्ति का कारण हो जाता है ।

११. शत्रु के पंजे में फंस कर दास रहना अपमान की बात नहीं है । अप्रतिष्ठा वहीं आरम्भ होती है जहां तुम स्वेच्छा पूर्वक दास रहते हो ।

१२. सौन्दर्य प्रेम को जाग्रत कर सकता है, पर उस का कारण नहीं हो सकता ।

१३. माता पिता के वार्तालाप का अज्ञानतः सन्तान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

१४. जीवन संगिनी भार्या के शुद्ध प्रेम की उपमा संसार में नहीं है ।

१५. पाप कभी छिपाये नहीं छिपता ।

१६. जब मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो जाता है, आत्मा के विरुद्ध कार्य करने लगता है और मर्यादा के बन्धन तोड़ देता है, तब उसे घोर से घोर पाप करने में डर नहीं लगता ।

१७. पाप शीघ्र ही पराजय स्वीकार नहीं करता ।

१८. मनुष्य की वाह्य आकृति का कुछ न कुछ संबन्ध आभ्यंतरिक प्रकृति से अवश्य रहता हैं ।

१९ द्वेष से भरा हुआ हृदय पवित्र आमोद भी नहीं सह सकता ।

२०. गर्भिणी के सुख और स्वास्थ्य पर लड़के का सब कुछ निर्भर है ।

विद्याओं का भण्डार वेद

(लेखक— श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार)

भारतीय आर्य लोगों का बहुत पुराना—शायद इतना पुराना जितनी पुरानी कि स्वयं सृष्टि है—विश्वास है कि करुणामय भगवान् ने मनुष्य जाति के कल्याणार्थ - उसे अभ्युदय और निःश्रेयस, ऐहिक और पारलौकिक चरम सुख, की प्राप्ति का सत्य और सरल मार्ग दिखाने के लिये—सृष्टि के आरम्भ में वेदों का प्रकाश किया था, और ये वेद अखिल विज्ञान का भण्डार हैं। ब्राह्मण और उपनिषदें, दर्शन और स्मृतिग्रन्थ, पुराण तथा रामायण और महाभारत, सब के सब वेदों के इस परम महत्व की ऊँची स्वर से उद्घोषणा कर रहे हैं। एक शब्द में, आर्य जाति का समग्र साहित्य वेदों की महिमा के गीत गा रहा है। आर्य्यों के विगत इतिहास में, कुछेक को छोड़ कर, कोई ऐसा नाम लेने योग्य नेता या विचारक नहीं हुआ जिसने वेदों के इस महत्व को मानने से इन्कार किया हो। "शतपथ ब्राह्मण" की वेदों के सम्बन्ध में राय है कि,

एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्। एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। श० कां १४। अ० ५। ब्रा० ४। कं. १०

अर्थात् हे! मैत्रेयि! चारों वेद परमात्मा ने इस प्रकार अनायास उत्पन्न कर दिये हैं जिस प्रकार कि श्वास प्रश्वास की क्रिया अनायास होती रहती है। वेदों का ईश्वर-कर्तृत्व बताने के लिए ब्राह्मण-कार रूपकसे वेदों को ईश्वर का निःश्वसित ही कह देता है। एक दूसरी जगह यही ग्रन्थ कहता है—

स ऐक्षत प्रजापतिः, "त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि। हन्त त्रयीमेव विद्यामात्मानमभि संस्करवै" इति। श० १०। ४। २। २१-२२

अर्थात सृष्टि के स्वामी प्रजापति ने सब भूतों (सृष्टि) को देखा और कहा—"त्रयी विद्या में सब भूत आजाते हैं अर्थात् वेदों में सब भूतों का ज्ञान है, इस लिये त्रयी विद्या को ही आत्मा की उन्नति और पूर्णता के लिए देता हूँ।" इसी प्रकार "तैत्तिरीय ब्राह्मण" में एक स्थान में लिखा है—

अथ सर्वाणि भूतानि पर्य्यैक्षत्। स त्रय्यामेव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत्॥ अत्र हि सर्वेषां छन्दसा मात्मा सर्वेषां स्तोमानां सर्वेषां प्राणानाम् सर्वेषां देवानाम्। एतद्वै अस्ति, एतद्ध्यमृतं यद्ध्यमृतं तद्ध्यस्ति। एतदुत यन्मर्त्यम्।

यही शब्द श. १०। ४। २। २१ में भी आते हैं जिन का अभिप्राय यह है कि "प्रजापति ने सब भूतों को देखा। उसने सब भूतों को त्रयी विद्या में पाया। त्रयी विद्या को ही सब छन्द, स्तोम प्राण और देवों का आत्मा पाया अर्थात् त्रयी विद्या में इन सब का ज्ञान निहित देखा। त्रयी मरणधर्मा मनुष्यों के लिए है।" "तैत्तिरीय ब्राह्मण" ३। १०। ११। ३-४ में एक कथा इस प्रकार आती है—

भारद्वाजो ह त्रिभिरायुभिर्ब्रह्मचर्य्यमुवास । तंह जीर्णं शयानमिन्द्र उपब्रज्योवाच, "भारद्वाज यत्ते चतुर्थमायुर्दद्यां किमेतेन कुर्य्या इति" । ब्रह्मचर्य्य मेवैतेन चरेयमिति होवाच । तं ह त्रीन् गिरिरूपान विज्ञातानिव दर्शयांचकार । तेषां ह एकैकस्मान् मुष्टिमाददे । सहोवाच भारद्वाजेत्यामंत्र्य । वेदा वै एते । अनन्ता वै वेदा । एतद्वै त्रिभिरायुभिरन्व वोचेथाः । अथ हीतरदनूक्तमेव । एहि इमं विद्धि । अयं वै सर्वा विद्या इति ।

अर्थात् "भारद्वाज ने तीन जन्मों में ब्रह्मचर्य्य पूर्वक वेदों का ही अध्ययन किया । जब वृद्ध होकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा था तब इन्द्र ने उस से कहा कि अगर मैं तुम्हें चौथा जन्म और देदूँ तो क्या करोगे ? भारद्वाज ने उत्तर दिया कि उस जीवन में भी ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदों का ही स्वाध्याय करूँगा । तब इन्द्र ने उसे उसे तीन बड़े बड़े पहाड़ से दिखाये और हरेक से एक २ मुष्टि लेकर कहा "भारद्वाज ! आओ, ये वेद हैं । ये अनन्त हैं । तूने तो तीनों जन्मों में भी इतना सा ही पढ़ पाया है । अधिकांश तो तेरे लिए अज्ञात ही पड़ा है । आओ इसे जानो इस में सब विज्ञान है ।"

इसी प्रकार आर्य्यों के प्रसिद्ध स्मृतिकार (Lawgiver)मनु महाराज की सम्मति है—

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातम् ।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थं ऋग्यजुः साम लक्षणम् ।
मनु० १।२३

अर्थात् "**सनातन**वेदों को परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अग्न्यादि ऋषियों पर प्रकट किया ताकि यज्ञ (व्यवहारों) की सिद्धि हो सके" । भगवान् मनु अपने धर्मशास्त्र के प्रथमाध्याय के २१ श्लोक में वेदों की सर्व-विद्या-प्रतिपादकता सिद्ध करते हुए कहते हैं—

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थश्च निर्ममे ॥

अर्थात् "परमात्मा ने वेदों के अनुसार ही सब चीजों और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की" । वेदों की अखिल-विज्ञान-प्रतिपादकता इस से भी स्पष्ट शब्दों में भगवान् मनु अपने शास्त्र के १२वें अध्याय के ९७–१०० श्लोकों में इस प्रकार दरशाते हैं—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वार श्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भवद् भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥
शब्दाः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूति गुण कर्मतः ॥
बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मा देतत् परम्मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥
सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्व मेव च
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

अर्थात् "चारों वर्ण, चारों आश्रम, तीनों लोक (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ), भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाली सारी चीजें, ये सब वेद से ही जाने जाते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध (इन के संबन्ध का सम्पूर्ण ज्ञान) वेद से ही जाने जाते हैं । सनातन वेद शास्त्र ही सब भूतों का पालन कर रहा है, इस लिये मनुष्य का उसे सिद्ध करना— सम्यक् रूप से जानना— ही मुख्य कर्तव्य है । वेद

शास्त्र-वित् ही सैनापत्य (Command of armies), राज्य (Royal athority), दण्डनेतृत्व (Administration of justice), और सर्वलोकाधिपत्य (Sovereignty of the whole world) कर सकता है (अर्थात् वेद राजनीति (Politics) का सम्पूर्ण ज्ञान दे रहे हैं)।

इतना ही नहीं, भारतीय आर्यों के मन में वेदों का महत्व कितना अधिक था, वे वेदों को किस प्रकार अनेक विद्या-विज्ञानों का गम्भीर रत्न-निधि समझते थे, इसे समझने में सहायता देने के लिये वेदान्त-दर्शन शांकर-भाष्य से कुछ पंक्तियें उद्धृत की जाती हैं। दार्शनिक लोग ईश्वर-सिद्धि के लिये "सृष्टि-कर्तृत्व की युक्ति" दिया करते हैं। जिस प्रकार एक घड़ी स्वयं नहीं बन सकती— उस की जटिल और सूक्ष्म रचना हमें किसी रचयिता का अनुमान करने के लिये बाधित करती है, उसी प्रकार यह विश्व-ब्रह्माण्ड भी अपने आप नहीं बन सकता—इस की जटिल और सूक्ष्म रचना भी हमें किसी निर्माता का अनुमान करने के लिये बाधित करती है। वेदान्त-दर्शन के प्रथमाध्याय के दूसरे सूत्र "जमाद्यस्य यतः" में ब्रह्म (ईश्वर) सिद्धि के लिये इसी "सृष्टि-कर्तृत्व की युक्ति" (Cosmological argument) का आश्रय लिया गया है। वेदान्त के रचयिता को मानो इतने से सन्तोष नहीं होता। वह ब्रह्म की सिद्धि के लिये एक दूसरी युक्ति देता है। वह है "वेदों का कर्तृत्व" (Authorship of the Vedas)। इसके लिये वेदान्त के लेखक अगला सूत्र बनाते हैं— "शास्त्रयोनित्वात्" अर्थात् वेद जैसी ज्ञान की भण्डार पुस्तकें अपने आप नहीं बन सकतीं, इस लिये कोई उन का कर्ता होना चाहिये, और वह कर्ता है ब्रह्म। इस सूत्र के शांकर-भाष्य की कुछ पंक्तियें देखने योग्य हैं—

"महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य अनेक विद्यास्थानोप बृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति। यद्यद्विस्तरार्थं शास्त्रं यस्मात् पुरुष विशेषात् संभवति— यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेः ज्ञेयैक देशार्थ मपि— स ततोऽप्यधिकतर-विज्ञान इति। किमु वक्तव्यम्, अनेक शाखाभेदभिन्नस्य देव निर्यङ्मनुष्य वर्णाश्रमादि प्रविभाग हेतोः ऋग्वेदाद्याख्यस्य सर्वज्ञानाकरस्य अप्रयत्नेनैव लीलान्यायेन पुरुषनिःश्वास वत् यस्मान्महतो भूतात् योनेः संभवः।"

इन पंक्तियों का संक्षेप में भावार्थ यह है कि "ऋग्वेदादि वेद अनेक विद्याओं से युक्त, सर्वज्ञान के खजाने और दीपक की भांति सब पदार्थों का बोध कराने वाले हैं। इन का सर्वज्ञ ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई कारण नही हो सकता।"

दर्शन, विज्ञान और भाषा-विज्ञानों के क्षेत्रों में आर्यों ने जो उन्नति की थी वह सारी चार 'उपवेद' छः 'अंग' और छः 'उपांग' इन तीन शीर्षकों के नीचे आजाती है। इन तीनों को वेदों पर आश्रित माना जाता है। जिस का अभिप्राय यह है कि इन में जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सब मूल

रूप में वेदों में विद्यमान हैं, उन्हीं की व्याख्या इन में की गयी है। चार उपवेद निम्न हैं:—

(१) "आयुर्वेद" या Science of life, इस में जिन विषयों वर्णन आता है उन के आधुनिक नाम Medicine, Surgery, Hygene, Chemistry, Physiology, Anatomy आदि हैं।

(२) "अर्थवेद" या शिल्पविज्ञान--Science of Mechanics,

(३) "गन्धर्ववेद" या Science cf Music and song, drama and dancing.

(४) "धनुर्वेद" Science of war and weapons.

छः अंग इस प्रकार हैं:—

(१) "शिक्षा" या Science of Phonetics and Orthoepy.

(२) "कल्प"

(i) "धर्मसूत्र" या Principles of Law.

(ii) श्रौत सूत्र" Rules of vedic ceremonies.

(iii) "गृह्य सूत्र" Rules of domestic-ceremonies

(iv)"शुल्व सूत्र" Principles of Geometry.

(३) "व्याकरण" Grammer.

(४) "निघण्टु" Phylology.

(५) "छन्द" Prosody.

(६) "ज्योतिष" Astronomy.

छः उपांग ये हैं:—

(१) न्याय (२) वैशेषिक (३) सांख्य (४) योग (५) मीमांसा और (६) वेदान्त दर्शन। इन छः दर्शनों में जिन विषयों का वर्णन हुआ है उन के आधुनिक पाश्चात्य नाम Logic, Metaphysics, Psychology, Ethics और Physics आदि हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि इन सब का आधार वेदों को माना जाता है। जिस का अर्थ यह है कि भारतीय आर्य विचारक वेदों में प्रायः उन सब विज्ञानों का मूल मानते रहे हैं जिन्हें कि अब तक का सभ्य संसार जान पाया है।

वेदों का इतना महत्व होने पर भी, सैंकड़ों शताब्दियों पूर्व, स्वयं भारत वर्ष में ही जो कि सदा वैदिक सचाइयों का परीक्षा-क्षेत्र और लीला-भूमि रहा है, किन्हीं अज्ञात कारणों से वेदों का गम्भीर स्वाध्याय बन्द होगया। इन सैंकड़ों--बल्कि हजारों-शताब्दियों में वेदों का जो स्वाध्याय होता रहा वह बहुत ही उथले ढंग का और वेदों के अभिप्राय को अधिकाधिक छिपाने वाला ही होता था। इस प्रकार के स्वाध्याय के परिणाम स्वरूप, सायण, महीधर उवट आदि के जो भाष्य वेदों पर मिलते हैं उन्हें देख कर, यह धारणा कि वेद 'अनेक विद्यास्थानोप बृंहित' 'सर्वज्ञ कल्प' 'प्रदीपवत् सर्वपदार्थाव द्योती' और 'सर्वज्ञानाकर' हैं शिथिल हो जाती है। मालूम होता है कि जिन नियमों के अनुसार इस काल में वैदिक शब्दों के अर्थ किये जाते रहे वे नियम वेदों का अभिप्राय समझने के लिये ठीक

नियम न थे। इसी लिये ये भाष्यकार वेदों में उस प्रकार की कोई बात न दिखा सके जिस प्रकार की बातों का वेदों में होना मनु आदि प्राचीन विद्वान् देखते थे।

ईसा की सत्रहवीं सदी से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर आकृष्ट होना आरम्भ हुआ। कितने ही विद्वानों ने संस्कृत पढ़ी और उसके विभिन्न अंगों के अनुवादों का प्रकाशन और उन पर अपनी समालोचनाओं का लिखना प्रारम्भ किया। वैदिक साहित्य पर भी अनेक विद्वान् लगे। वेदों के जिस प्रकार के भाष्य और टीकायें इन लोगों के सामने आये उन के स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया जा चुका है। पौराणिक कथाओं और याज्ञिक कर्म-क्रियाओं के अतिरिक्त इन भाष्यों में तत्व की बातें बहुत कम थीं। इन्हीं भाष्यों की सहायता से पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के अनुवाद किये और उन पर अपनी समालोचनायें लिखीं। ये अनुवाद और समालोचनायें अधिकांश में वेदों के प्राचीन महत्व को कम करने वाली और उन के प्रति अरुचि उत्पन्न करने वाली थीं। अंग्रेज़ी शासन काल में पाश्चात्य विद्वानों की ये पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा भारतीय लोगों को भी पढ़ने की मिलीं। संस्कृत भाषा का प्रचार प्रायः सर्वथा कम होगया था। वैदिक भाषा का तो कहना ही क्या है। स्वयं भारतीयों को भी वेदों के संबन्ध में पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति की अपेक्षा होने लगी। उन लोगों से जो सम्मति मिली उसने भारतीय नव-शिक्षितों के मनों में भी वेदों के प्रति अरुचि के भाव पैदा कर दिये। पुराने ढर्रे के संस्कृत पढ़े लिखे लोगों में यह यह सामर्थ्य न था कि इस पाश्चात्य-प्रभाव का विरोध और समाधान कर सकते।

यह अवस्था थी जब भारत वर्ष के रंग-मंच पर ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। उसने वेदों के महत्व का प्राचीन शंख फिर से फूँका। उसने फिर से गम्भीर घोषणा की कि "वेदों में सब विद्यों का मूल है।" फिर से उस ने शंकर कि आवाज़ में आवाज़ मिलाकर कहा—वेद "अनेकविद्यास्थानोपबृंहित" हैं, 'सर्वज्ञकल्प' हैं, और 'सर्वज्ञानाकर' हैं। लोगों ने कहा, पिछले भाष्यकार और पाश्चात्य विद्वान् जो रूप वेदों का दिखाते हैं वह तुम्हारी बात का विरोध करता है। उसने उत्तर दिया—ये लोग जिन नियमों का आश्रय लेकर वेदों को समझना चाहते हैं उन नियमों से वेदों के मर्म को नहीं समझा जा सकता। ये लोग मंत्र में आये 'विशेष्य' की अपनी पूर्व-कल्पित मूर्ति को सामने रखते हैं और उस के अनुसार 'विशेषण' शब्दों को तोड़ते मरोड़ते हैं। इस से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उचित विधि यह है कि 'विशेषण' शब्दों को सामने रखते हुए, उन के अनुसार 'विशेष्य' का अर्थ निर्धारित किया जाय। इस प्रकार वेद में रूढ़ि-वाद का स्थान नही रहने देना चाहिए। उसने निरुक्त, महाभाष्य, ब्राह्मण तथा दूसरे प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाणों से अपने पक्ष को पुष्ट किया। इस का परिणाम यह हुआ कि जो लहर लोगों के मनों में वेदों के लिये

अरुचि उत्पन्न करती और इन्हें आदिम आर्यों (Primitive Aryans) के विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति में गाये गये गीतमात्र समझने को उन्हें प्रेरित करती थी, उसे एक ज़बरदस्त रुकावट मिली। अनेक लोग वेदों को नवीन रीति से—जो कि वस्तुतः अति प्राचीन थी—पढ़ने और विचारने लगे। इस नये अध्ययन से प्राचीन आर्य्य-विश्वास, कि वेदों में सब सत्य-विद्याओं का मूल है, पुष्ट होता हुआ मालुम हुआ। वेदों के अनेक स्थलों की नयी और वैज्ञानिक व्याख्यायें होने लगीं। यद्यपि इस दिशा में अभी तक इतना कार्य्य नहीं हुआ है कि अविश्वासी पाश्चात्य संसार वेदों के प्राचीन महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करले। पर फिर भी इस ओर जो काम हो रहा है, और उस में जो आशा-जनक सफलता मिल रही है, उस से विश्वास होता है कि वह समय बहुत अधिक दूर नहीं है, जब कि संसार फिर से मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेगा कि वेद वास्तव में "सर्वज्ञ कल्प" हैं— 'सर्वज्ञानाकर' हैं— और सृष्टि के प्रारम्भ में परम कारुणिक भगवान् ने मनुष्यों के कल्याणार्थ ही उन का पवित्र प्रकाश किया था।*

---

*लेखक की अप्रकाशित पुस्तक "वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त" का एक अंश।

कुसुमोद्यान

१. रूस में अबाधित प्रेम के चमत्कार ।

भारतीय विचारों के अनुसार विवाह केवल मात्र प्रेमका बन्धन नहीं, उस में प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य का स्थान अधिक है । यहाँ विवाह संस्कार द्वारा पति पत्नी सदैव के लिये पारस्परिक उत्तर-दायित्व के बन्धन में बँध जाते हैं। हिन्दू समाज के आदर्शानुसार यह अटूट है, सदा के लिये स्थिर है, जन्म जन्मान्तरों तक साथ जाने वाला है। अर्वाचीन पाश्चात्य सभ्यता विवाह को प्रेम का बन्धन मानती है, वहाँ विवाह संबन्ध में कर्तव्य कीअपेक्षा प्रेम का स्थान अधिक है। भारतवर्ष क्रमशः व्यावहारिक रूप में अपने सिद्धान्त की चरम सीमा तक पहुंच गया, अर्थात् यहाँ विवाह बंधन में से प्रेम का स्थान सर्वथा निकाल डाला गया। सामाजिक बन्धनों की सीमा का उल्लघन न करते हुए स्त्री और पुरुष के जीवन को सदा के लिये एक अटूट सूत्र में बाँध देने का नाम 'विवाह' समझा जाने लगा। आँख मूंद कर धार्मिक बन्धन मान कर किये गये इन सम्बन्धों द्वारा भारत वर्ष के विवाह संस्कार में अवश्य ही बहुत से दोष पैदा हो गये। विवाह में प्रेमतत्व को उचित स्थान न मिलने से पारिवारिक शान्ति में निस्सन्देह भारी व्याघात पहुंचा। परन्तु विवाह बन्धन के यूरोपियन आदर्शों द्वारा भी वहाँ एक दूसरे प्रकार की विकट समस्या उत्पन्न हो गयी है। वह विकट समस्या भारतीय पारिवारिक समस्या की अपेक्षा भी बहुत अधिक गम्भीर और चिन्ताजनक है।

विवाह के सम्बन्ध में यूरोपियन आदर्श रूस देश में चरम सीमा तक पहुंच गये हैं। वहाँ विवाह संस्कार में से कर्तव्य का बन्धन सर्वथा निकाल डाला गया है। बोलशेविक सिद्धान्तों के अनुसार विवाह में एक मात्र प्रेम के अतिरिक्त और किसी बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। जब किसी स्त्री और पुरुष में परस्पर प्रेम हो जाय तब समझ लेना चाहिये कि दोनों में परस्पर विवाह हो गया। यदि कभी वह पारस्परिक प्रेम की गाँठ ढीली पड़ गयी तो स्वयं ही यह विवाह बन्धन टूट गया। इस स्पष्ट बात के लिये और किसी बन्धन या बाधा की आवश्यकता नहीं है। बोलशेविकों के इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाकर आज कल का रूस एक अचिन्त्य दुरवस्था में पहुंच गया है। अमरीका के श्री एच० मालखुस बहुत समय तक रूस में रह कर वहाँ

की सामाजिक दशा का अध्ययन करते रहे हैं। उनके एक लेखके आधार पर हाल ही में न्यूयार्कके सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "लिटरेरी डाइजेस्ट" ने रूस की इस समस्या के सम्बन्ध में कुछ तथ्य और गणनाएं उद्धृत कीहैं। उसी के आधार पर हम रूस की वर्तमान पारिवारिक समस्या पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

रूस में पारिवारिक प्रथा का लगभग अन्त कर दिया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों पूर्ण स्वाधीन हैं, किसी का किसी पर कोई अधिकार या दावा नहीं है। अतः घर और बाहर दोनों जगह स्त्री पुरुष दोनों का समान अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष स्वतन्त्र आजीविका करके खाते पीते हैं उसी प्रकार विवाह हो चुकने पर भी स्त्री पति के कमाये धन पर आश्रित नहीं रह सकती, उसे स्वयं उपार्जित करके खाना होगा। इस प्रकार वहाँ विवाह हो जानेपर भी पति-पत्नी का एक ही घर में परिवार बना कर रहना आवश्यक नहीं है। दो घनिष्ठ मित्र आपस में जिस सम्बन्ध से जुड़े होते हैं, रूस में विवाहित स्त्री पुरुष सन्तानोत्पत्ति की एकमात्र विशेषता को छोड़ कर परस्पर ठीक वही सम्बन्ध मानते हैं।

जब कोई दो स्त्री पुरुष चाहते हैं कि उनका परस्पर विवाह हो जाय तब उनके लिये और किसी प्रकार के आडम्बर की आवश्यकता नहीं रहती। अपनी इस इच्छामात्र से ही वे विवाहित समझ लिये जाते हैं। न पादरी कुछ कहता है, न पुरोहित मन्त्र पढ़ता है, यहां तक कि परस्पर रूमाल वा अंगूठी का विनिमय करने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती। यदि नवविवाहित दम्पती चाहें तो सरकारी रजिस्टरों में अपने विवाह की बात दर्ज करवा सकते हैं, परन्तु इसके लिये वे बाध्य नहीं हैं। दर्ज करवा देने से तलाक देते समय स्वयं उन्हीं को लाभ होता है। अतः यह बात उनकी अपनी इच्छा पर ही छोड़ दी गयी है। विवाह की तरह तलाक देना भी बहुत आसान है, यदि दम्पती ने विवाह के समय अपने विवाह की सूचना सरकारी रजिस्टरों में दर्ज न करवायी हो तब तो कोई टंटा ही नहीं। यदि सूचना दर्ज करवायी गयी हो तो उन्हें चाहिये कि वे अवश्य ही अपने तलाक की सूचना भी दर्ज करवा दें। बस, सब झन्झट समाप्त हो गया। सोमवार को बिना किसी झन्झट के विवाह किया और मङ्गलवार को उठते ही आरम्भ में तलाक दे डाला। फिर कोरे के कोरे बन गये। परन्तु तलाक देने से पूर्व यदि सन्तान उत्पन्न हो चुकी हो तो कानून की दृष्टि से मामला उतना आसान नहीं, इस अवस्था में माता-पिता को—जो कि अब बालक से माता पिता का सम्बन्ध तोड़ लेना चाहते हैं—उस सन्तान के बालिग होने तक अपनी आय का तीसरा भाग देना आवश्यक है। तलाक पर केवल मात्र यही एक बन्धन है। सन्तान के प्रति इस आर्थिक बन्धन को छोड़ कर वहां माता पिता पर नैतिक एक भी बन्धन नहीं है। वह एकमात्र आर्थिक बन्धन भी बहुत से मामलों में असफल सिद्ध होता है। बच्चों के बाप सन्तान उत्पन्न कर के स्वयं बाप बनने से ही इनकार कर देते हैं। जो विवाह दर्ज नहीं कराये जाते उनमें तो अधिकाँश बाप, कभी कभी माताएं भी, इसी मार्ग का अनुसरण करती हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि विवाहित दम्पती विवाह के कुछ घन्टे बाद ही तलाक भी दे सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि रूस में विवाह के बाद एक सप्ताह के अन्दर ही तलाक

दे देने वालों की संख्या भी वहुत अधिक है। गत वर्ष १००००० स्त्रियों ने न्यायालयों में इस आशय के आवेदन पत्र भेजे कि उनके पति उन्हें छोड़कर भाग गये हैं। आश्चर्य यह है कि इनमें ९०००० स्त्रियां या तो अपने अपने पतियों को प्राप्त नहीं कर सकीं या उन्हें अपनी सन्तान का पिता सिद्ध नहीं कर सकीं। इसी वर्ष लगभग २००००० तलाक ऐसे हुए, जिनमें पुरुषों ने अपने तलाक को दर्ज कराने की आवश्यकता नहीं समझी।

विवाह बन्धन को इस प्रकार विलकुल ढीला कर देने का सब से अधिक घातक प्रभाव रूसके भावी पिता, वहां के बालकों पर पड़ा है। रूसमें इस समय तक ऐसे बालकों की संख्या ४०००००० तक जा पहुंची है जिनके वास्तविक मां बाप अब उनके माँ बाप नहीं रहे। मां बाप के जीवित रहते हुए भी इन बालकों की दशा अनाथों के समान हो गयी है। गत वर्ष २०८००० ऐसी स्त्रियों ने अपने तलाक दर्ज कराये थे जो बालबच्चों वाली थीं। तलाक दे देने के बाद इन सब स्त्रियों के सम्पूर्ण बालक नितान्त निस्सहाय की सी हालत में डाल दिये गये। स्त्री को स्वभावतः ही पुरुष की अपेक्षा अपनी सन्तान से अधिक प्रेम होता है। अतः इन में से बहुत सी स्त्रियाँ आजकल स्वयं कमा कर जिस किसी प्रकार अपनी सन्तान का पालन करती हैं। बहुत सी स्त्रियां एक बार तलाक देकर विवाह से ही घृणा करने लगती हैं। संभोग की इच्छा से कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करने वाले स्त्री पुरुषों की संख्या भी कम नहीं है। गीता के शब्दों में वर्तमान रूस में पूरी तरह वर्णसङ्करता का राज्य हो गया है।

रूस की सरकार राष्ट्र के बालकों की इस दुरवस्था से बहुत अधिक चिन्तित है इन बालकों का पालन करने के लिये सरकार अनाथलयों की तरह "राष्ट्रीय-गृहों" की स्थापना कर रही है। परन्तु मज़ा तो यह है कि बालक इस प्रकार के कृत्रिम नियन्त्रण और आडम्बर पूर्ण प्रेम के बन्धन में रहना पसन्द नहीं करते। उदाहरणार्थ एक राष्ट्रीय गृह में २८७ बालक प्रविष्ट किये गये थे, ३ मास बाद ही इन में से २७० बालक भाग गये या छोड़ कर चले गये। इतना ही नहीं, सरकार को इन गृहों की व्यवस्था में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। एक दो वर्ष की आयु के दूध पीते बालकों का पालन करना आसान कार्य नहीं है। सरकार को इस कार्य में बड़ी तङ्गी का सामना करना पड़ता है। मास्को के एक 'गृह' में १२५ बालकों की गुञ्जाइश थी। बड़ा यत्न करने पर इस गृह में केवल ७५ बालक जमा किये जा सके। इन ७५ बालकों का पालन पोषण करने के लिये ४५-अधिष्ठाताओं का स्टाफ़ रखना पड़ा! तब जाकर कहीं काम चला। इस पर तुर्रा तो यह है कि सम्पूर्ण देश में इस प्रकार के गृहों की संख्या भी बहुत अपर्याप्त है। सन् १९२५ में जब कि रूस में लावारिस बालकों की संख्या ३५००००० के लगभग थी, इन गृहों में कुल मिला कर २९०००० बालकों की ही गुञ्जाइश थी।

इन पाँच छः वर्षों के परीक्षण से ही सरकार पूरी तरह निराश हो गयी है। अब व्यावहारिक रूप में नये राष्ट्रीय-गृह बनाना तो एक ओर रहा पुराने गृह भी क्षीण कलेवर होते चले जा रहे हैं। सरकार ने इन अनाश्रित बालकों की रक्षा के लिये रूसके उन पुरानी लकीर के फकीर किसानों की शरण लेनी प्रारम्भ की है, जिन्हें रूस की सभ्य कहलायी जाने वाली जनता अब तक 'अर्धसभ्य' गिनती रही है। इनके पुराने ढंग से बसे हुए

परिवारों में अनाश्रित बालकों को शरण देने का यत्न किया जा रहा है। परन्तु अनाश्रित बालकों की सख्या जिस अनुपात में बढ़ रही है उस के मुकाबले में ये शरण-गृह कुछ भी नहीं है। समस्या विषम से विषमतर हो चली है।

बोल्शेविक विचारकों का कथन है कि यह एक क्रिया के मध्य की अवस्था है। यद्यपि यह अवस्था निस्सन्देह हानिकर है तो भी इस क्रिया का अन्त मनुष्य-समाज के लिये हित कर ही सिद्ध होगा। परन्तु हमारे आदर्शों के अनुसार परिवार प्रथा में ही मनुष्य-समाज की उन्नति की व्यवस्था अन्तर्हित है। परिवार व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्व-पूर्ण और उच्च है। यह परिवार प्रथा सभ्यता के समय से भी पुरानी है। विवाह केवल प्रेम का बन्धन नहीं है, प्रेम नष्ट हो जाने पर यह बन्धन नहीं टूट जाता। यह बन्धन पवित्र और स्थायी है। देखें, परिवार प्रथा का यह विरोध परीक्षण कहां तक सफल होता है।

(सरस्वती)

२. क्या भारतीय संगीत पाश्चात्य देशवासियों को प्रिय हो सकता है? ✓

यद्यपि आनन्द तथा रस का भाव सर्वत्र समान है, तथापि शिक्षा तथा संस्कार की भिन्नता के कारण एक देशवासी दूसरे देशवासियों की कला का रस सहज भाव से ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। किसी देश अथवा जाति का मूल-प्राण समझने के लिये उसकी शिक्षा तथा संस्कार से पूर्णतया अभिज्ञ होकर उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनी पड़ती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। मानसिक चिंता-धारा के साथ हृदय का बहुत कुछ संबन्ध है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि मानव हृदय सर्वत्र समान है, इसलिये किसी देश की सुकुमार कलाओं का रस लेने के लिये किसी भी मानसिक चेष्टा की आवश्यकता न होकर, उनका प्रभाव दूसरे देश के लोगों के हृदय में स्वतः होना चाहिए। पर हम देखते हैं, ऐसा नहीं होता। कोई अच्छी कविता पढ़कर किसी छोटे बच्चे को सुनाइये तो वह उसका रस लेने में कदापि समर्थ न होगा। कारण यह है कि उसकी बुद्धि अभी इतनी संस्कृत नहीं हुई कि वह उसका रहस्य समझ सके। इसी प्रकार हम देखते हैं कि रवीन्द्रनाथ की कविता का रसास्वादन करने में बहुत कम लोग समर्थ हैं, अधिकांश पाठकों को उनकी कविता फीकी तथा क्लिष्ट जान पड़ती है। रवीन्द्रनाथ की श्रेणी के कवियों की कविता का आनन्द जिसे लूटना है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह रसिक हो, साथ ही उसका चित्त सुसंस्कृत हो।

यही बात गीत के संबन्ध में भी कही जा सकती है। जन-साधारण के सामने यदि उच्च श्रेणी का गीत अलापा जाय, तो उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। पर यदि दो चार अच्छी-अच्छी ग़ज़लें गाकर गलेबाज़ी दिखलाई जाय, तो जनता मुग्ध हो जाती है। संगीत का रस लेने के लिये भी मानसिक उत्कर्ष की आवश्यकता है। चित्त जितना सुसंस्कृत होता जाय, गीत की सूक्ष्मताओं का भी वह उतना ही अनुभव कर सकेगा। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हृदय के आनन्द के लिये मस्तिष्क की सहायता लेनी ही पड़ती है।

यदि हम यह सोचते हैं कि भारतीय संगीत में विशेषता होने से योरोपवासी उसका रस अवश्य ग्रहण करेंगे, तो हम भूल करते हैं। हमारी विचार-धारा से जब तक वे परिचित न हों, तब तक उन्हें हमारे संगीत में विशेष आनन्द नहीं

प्राप्त हो सकता। इसमें संदेह नहीं कि जर्मनी फ्रांस तथा रूस के कुछ संगीत-विशेषज्ञ हमारे संगीत का रहस्य समझने में समर्थ हैं, और उस का रसास्वादन भी करते हैं; पर फिर भी अधिकांश लोग उसमें कुछ रस नहीं पाते। उसी प्रकार भारतवासियों को भी योरप का संगीत प्रिय नहीं मालूम देता।

संगीत में दो बातों की प्रधानता रहती है। एक भावावेग और दूसरा स्वर-वैचित्र्य। कुछ गीत ऐसे होते हैं, जिनमें स्वर-वैचित्र्य नहीं होता, पर जो अच्छी तरह से गाए जाने पर संगीत-विशेषज्ञ को भी मुग्ध कर देते हैं। ऐसे गीतों में भावावेग की प्रधानता रहती है, पर हमारे देश के दुर्भाग्य से यहाँ अधिकांश गायनाचार्य नीरस प्रकृति के लोग होते हैं। वे संगीत में आवेग के प्रति बिलकुल ध्यान न देकर अरसिक वैयाकरणों की तरह गीत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण द्वारा उसके टुकड़े २ करके स्वर-वैचित्र्य तथा गलेबाज़ी प्रदर्शित करने में ही अपना गौरव समझते हैं। पर विलायत में यह बात नहीं पाई जाती। वहाँ आवेग की तरफ़ अधिक ध्यान दिया जाता है। जो संगीतकार अपने गीतों की राग-रागिनियों में अधिक गंभीर आवेग भर सकता है, वहाँ उसी की अधिक क़दर होती है। बीटोफ़ेन की रचनाओं पर वहाँ के लोग इसीलिये मुग्ध हैं। इस जर्मन संगीताचार्य के गीतों में इतना गम्भीर भावावेग पाया जाता है कि भारतीय संगीतज्ञ भी उसकी मूर्च्छना पर मर मिटते हैं। यदि हमारी राग-रागिनियों में भी इसी प्रकार आवेग की प्रधानता भरने की चेष्टा की जाय तो उसे सुन कर योरप के लोगों के भी कान खड़े होने लगें।

योरप के संगीत में आनन्द-उत्सव के समय जीवन की चञ्चलता हिलोरें लेती हुई जान पड़ती है। भारतीय संगीत में विश्व की शांत-क्लांत आत्मा अपने को ध्वनित करना चाहती है। भावावेग की इन दो धाराओं को संयुक्त करके यदि सामंजस्य प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की जाय, तो योरपवासी हमारे और हम योरप के संगीत का रस लेने में समर्थ हो सकेंगे। हमारे वर्तमान तामसिक, अलस तथा निरानंदमय जीवन को जागरित तथा उत्तेजित करने के लिये पाश्चात्य संगीत के भावावेग की आवश्यकता है। पाश्चात्य देशवासियों को अपने असंतोषपूर्ण, प्रतिहिंसामूलक, घोर राजसिक जीवन को संयत बनाने के लिये हमारे संगीत के अनंतोन्मुख आवेग की प्रशांत तथा गम्भीर धारा की आवश्यकता है।

पाश्चात्य देशवासियों को यदि हमें अपने देश की सभ्यता के मूल-रहस्य से परिचित कराना है, यदि अपने देश की आत्मा के अन्तरतम भाव से उन्हें प्रणोदित करना है, तो हमें अपने संगीत को ऐसा रूप देना होगा कि वह उनकी शिक्षा तथा संस्कार के अनुकूल भी हो, और उससे हमारे संगीत का मूल-प्राण भी अक्षत रहे।

(सुधा)

३. संसार के १२ सर्वोत्तम उपन्यास ✓

प्रसिद्ध लेखक जॉन गैल्सवर्दी की राय में संसार के १२ सर्वोत्तम उपन्यास ये हैं—

सरवैंटिस — डॉनक्विकजॉट
टॉल्सटॉय — { वार एंड पीस
एनाकेरानीना
डास्टोविस्की— ब्रदर्स कैरेमैज़ो
टूर्गेनिफ़ — { फ़ादर्स एंड चिलड्रेन
स्मोक

डिकेंस —	पिकविक पेपर्स डेविड कॉपरफ़ील्ड
डूमा	थ्री मस्केटियर सीरीज़ या रेन मैरनेट सीरीज़
मार्क ट्वेन —	टॉम सायपर हकलेबेरी फिन
थैकरे	वैनिटी फेयर

४. ज़ैकोस्लोवेकिया की जन-संख्या

१९२१ की मर्दमशुमारी के अनुसार ज़ेकोस्लोवेकिया में निम्नलिखित संख्या-सहित जन-भेद हैं:–

८,७६०,९५७ ज़ेकोस्लोवेक
३,१२३,४४८ जर्मन
७४७,०९६ मगियार (हंगेरियन)
४६१,४६६ रूथेनियन
७५,८५२ पोल्स

धार्मिक दृष्टि से भी बोहेमिया युरोप का बड़ा केन्द्र रहा है। प्रसिद्ध "तीस साल का युद्ध" यहीं से प्रारम्भ हुआ। परन्तु साधारणतः यहां कैथलिक लोग अधिक हैं। इधर कैथलिक लोगों की संख्या घट गई है। इस समय ज़ेकोस्लोवेकिया में १०,३८४,८६० कैथलिक, ९८२,०९३ इवांजेलिस्ट (प्रोटेस्टेन्ट) ५३२,५०८ ग्रीकचर्च, ३२,३३२ यहूदी और ७,२६९ ग्रीक (पुराने चर्च के) हैं।

५. नव–दम्पती के लिए ✓

नवदम्पतियों की दाम्पत्य-जीवन-सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ अक्सर सामने आया करती हैं। कहीं पति-पत्नी में आपस में मन-मुटाव हो जाता है; कहीं दूसरे लोग उन्हें एक दूसरे के ख़िलाफ़ बहका कर उनका गृह-जीवन क्लेशमय कर देते हैं, कहीं वे माँ-बाप से बिगाड़ लेते हैं; कहीं कच्ची उम्र में ही माता-पिता के पद को पहुँच कर दुःखी होते हुए देखे जाते हैं और कहीं तरह-तरह के गुप्त रोगों के शिकार हो जाते हैं। बाल्यावस्था में हुए विवाहों के ऐसे दुष्परिणाम बहुत देखे जाते हैं। एक ओर उन्हें सामाजिक ओर सासारिक व्यवहार के नियमों का यथेष्ट ज्ञान नहीं होता और दूसरी ओर समाज की अलिखित मर्यादा उन्हें अपने बड़े-बूढ़ों के सलाह-मशवरे से रोक देती है। ऐसी अवस्था में, कठिनाई, उलझन या संकट के समय, न स्वयं उन्हें प्रकाश-पथ दिखाई देता है और न दूसरों की काफ़ी सहायता उन्हें मिल पाती है। धूर्त और स्वार्थी लोग ऐसी परिस्थितियों से न केवल खुद बेजा लाभ उठाते हैं बल्कि दम्पती को भी बड़े संकट में डाल देते हैं, धनी और रईस लोगों के यहाँ ऐसी दुर्घटनायें अधिक होती हैं। क्योंकि उनका धन और ऐश्वर्य खुशामदियों, धूर्तों, स्वार्थियों के काम की चीज़ होता है। अतएव अपने नव-विवाहित भाई-बहनों के लाभ के लिए कुछ ऐसे व्यावहारिक नियम यहाँ दिये जाते हैं, जिनके ज्ञान और पालन से वे बहुतेरे संकटों से बच सकेंगे—

(१) सब से पहली और ज़रूरी बात यह है कि उन्हें आपस में खूब प्रेम बढ़ाना चाहिए। एक को दूसरे के गुण की क़द्र करनी चाहिए और दोषों को उदार दृष्टि से देखकर उन्हें दूर करने में परस्पर सहायता देनी चाहिए। पति बड़ा और पत्नी छोटी, यह भाव दिल से निकाल डालना चाहिए। प्रेम बढ़ाने का यह मतलब नहीं कि दिन रात भोग-विलास की बातें सोचते रहें, बल्कि यह कि एक-दूसरे का हृदय एक-दूसरे से अभिन्न होजाय। एक का दुख दूसरे को अपना दुःख मालूम होने लगे; एक-दूसरे को अपना सखा, हितैषी और सेवक समझे। एक-दूसरे की रुचि का खयाल

रक्खे। स्वभाव की त्रुटि या व्यवहार की भूलों को हृदय का दोष न समझ लें।

(२) दूसरी बात यह कि परस्पर इतना विश्वास पैदा करलें और रक्खें कि तीसरा कोई भी शख्श एक-दूसरे के बारे में उन्हें कुछ भी कह दे तो एकाएक उनके दिल पर उस का असर न हो। यदि असर हो भी जाय तो उस के अनुसार व्यवहार तो एकाएक हर्गिज़ न कर बैठना चाहिए। चरित्र-संबन्धी बुराई एक ऐसी बात होती है, जिसे स्वार्थी या नादान हितैषी इस तरह कह देते हैं कि सहसा विश्वास हो जाता है या होने लगता है। ऐसे समय ख़ास तौर पर सावधान रहने की ज़रूरत है। ऐसे मामलों में अत्युक्ति और अनुदारता की बहुत प्रबलता देखी जाती है। ऐसी बातें सुनकर, एकाएक आवेश में आकर, पति का पत्नी से या पत्नी का पति से बिगाड़ कर लेना भारी भूल है। ऐसे मामलों में एकबार तो मनुष्य अपनी आँखों पर भी विश्वास न करे तो अच्छा। दोनों को एक दूसरे के हृदय पर इतना विश्वास हो जाना चाहिए कि कोई बुराई प्रत्यक्ष दिखाई देने पर भी उस पर सहसा विश्वास न बैठे। यह मालूम हो कि नहीं, मेरी आँखोंको, कुछ भ्रम हो रहा है। ऐसा विश्वास अपना हृदय परस्पर खोल देने से जमता है। पति-पत्नी दोनों का निज़ी जीवन एक-दूसरे के लिए खुली पुस्तक होना चाहिए। यदि दो में से किसी के मन में कोई कुविचार भी पैदा हो तो उस तक का ज़िक्र परस्पर में करने योग्य हृदयैक्य दोनों का होना चाहिए। दो में से जो ज़्यादा समझदार और योग्य है उसे चाहिए कि ऐसे कुविचारों और कुविकारों की हानियां दूसरे को समझावे और उस के दूर करने में सहायता दे। दोनों को एक दुसरे के दिल का इतना इत्मीनान होना चाहिए कि वह निर्भय होकर अपनी बुराइयाँ उससे कहदे और विश्वास-घात का भय न रहे। विश्वास में कही गयी बातों की रक्षा अपने प्राण की रक्षा के समान करनी चाहिए।

(३) तीसरी और सबसे नाज़ुक बात है दो में से किसी से कोई नैतिक भूल होजाने के समय की व्यवहार-नीति। दुर्भाग्य से हमारे समाज में पुरुष की नैतिक भूल इतनी बुरी निगाह से नहीं देखी जाती, जितनी कि स्त्री की देखी जाती है। ऐसी बुराइयों की भयङ्करता तो दोनों दशाओं में समान है। यदि ऐसी कोई भूल हो जाय तो एकाएक लड़ पड़ने, बहिष्कार कर देने या आवेश में और कोई अनहोनी बात कर बैठने के पहले यह देखना चाहिए कि यह दोष भूल से हुआ है, या जान बूझ कर किया गया है, अथवा बाधित होकर हुआ है। यदि भूल से हुआ है तो भूल दिखाना और उसका प्रायश्चित कराना पहला उपाय है। यदि जान बूझ कर किया गया है तो इसका विचार अधिक गम्भीरता से करना चाहिए। इसके मूल कारण को खोजना चाहिए। कैसे लोगों की सङ्गति में अब तक का जीवन बीता है, कैसा साहित्य पढ़ने या देखने की रुचि है, कैसा आहार-विहार है, घर का वायु-मण्डल कैसा है, इत्यादि बातों की छान-बीन करके फिरभूल को नष्ट करने का उद्योग करना चाहिए। असफल होने की अवस्था में बहिष्कार या सम्बन्ध-विच्छेद अन्तिम उपाय होना चाहिए। यदि जब्र किया गया हो तो जब्र करने वाला असली अपराधी है, उसका इलाज करना चाहिए; और जिस पर जब्र हुआ है, उसे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त कराने का उद्योग करना चाहिए जिससे किसी किस्म के

बलात्कार का शिकार वह न हो पावे। ऐसे अवसरों पर मनोभावों का उत्कृष्ट हो जाना स्वाभाविक है; परन्तु ऐसे ही समय बहुत शान्ति, धीरज, गम्भीरता, कुशलता और दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है। नवीन दम्पती ऐसे अवसरों पर कर्तव्य-विमूढ़ हो सकते हैं। उन्हें घर के समझदार विश्वास-पात्र बड़े-बूढ़ों की अथवा अनुभवी मित्रों की सहायता ऐसे समय ले लेनी चाहिए। बिना सोचे, तौले और आदमी देखे ऐसी बातों की चर्चा हलके दिल से न करनी चाहिए। दूसरे के घर की सुनी ऐसी बातों की चर्चा भी बिला वजह और बिना प्रयोजन के न करनी चाहिए।

(४) चौथी बात यह है कि नवीन दम्पतियों को या तो घर के किसी बड़े-बूढ़े को या किसी विश्वास-पात्र मित्र को या किसी महापुरुष को अपना पथ-दर्शक बनाना चाहिए। लज्जा और संकोच छोड़ कर अपनी कठिनाइयां उनके सामने रखना चाहिए और उनसे सलाह लेनी चाहिए। अक्सर देखा गया है कि झूठी लज्जा के वशवर्ती होकर कितने ही युवक-युवती बुराइयों, बुरी बातों, बुरे व्यवहारों और हरकतों को मन मसोस कर सहते रहते हैं—इससे स्वयं वे भी बुराई के शिकार होते रहते हैं और घर या समाज में भी गन्दगी फैलती रहती है। साथ ही उनकी आत्मा को भीतर ही भीतर क्लेश होता रहता है। कई बीमारियों में वे फंस जाते हैं और दुःख पाते रहते हैं। यह हालत बहुत ख़तरनाक है। इससे बेहतर यह है कि निःसंकोच हो कर गुह्य बातों की भी चर्चा अधिकारी पुरुषों के सामने कर ली जाय।

(५) पाँचवाँ नियम यह होना चाहिए कि विवाह के बाद योग्य अवस्था होते ही पति-पत्नी को साथ रहना चाहिए। दूर देशों में अलग-अलग रहना, सो भी बहुत दिनों तक, भयप्रद है। साथ रहते हुए जहाँ तक हो संयम का पालन करना चाहिए। पर संयम के लोभ से अथवा खर्च-वर्च और असुविधा के ख्याल से दूर रहना और अनुचित और कुफलदायी है।

(६) गुप्त रोग हो जाने की अवस्था में अपने जीवन के दूसरे साथी को उससे बचाने की चिन्ता रखनी चाहिए। उसके इलाज का पूरा प्रबन्ध करके आइन्दा उसे न होने देने के लिये उसके कारणों को जड़ से उखाड़ डालना चाहिए। अनुचित आहार-विहार, असंयम, गन्दे स्थानों पर पाख़ाना-पेशाब, वेश्या सेवन आदि से गुप्त रोग हो जाया करते हैं। सादा और अल्प आहार, संयम, स्वच्छता के ज्ञान और पालन से मनुष्य ऐसे रोगों से दूर रह सकता है। विज्ञापनी दवाइयों से हमेशा बचना चाहिए।

(७) सातवीं बात यह कि अश्लील और कामुकता तथा विलासिता के भावों को बढ़ाने वाले नाटक, उपन्यास, कहानी आदि पढ़ने, ऐसे थियेटर, सिनेमा, चित्र आदि देखने से अपने को बचाना चाहिए। ऐसे मित्रों की सङ्गति और ऐसे विषयों की चर्चा से उदासीन रहना चाहिए।

(८) आठवीं बात यह कि पत्नी की रुचि अपने अङ्गीकृत कामों में धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए और उन्हें उसके ज्ञान और अनुभव का अवसर देना चाहिए। दोनों को एक-दूसरे के जीवन को बनाने और अङ्गीकृत कार्यों को पूर्ण करने में पूरी दिलचस्पी लेनी चाहिये। (त्यागभूमि)

* * *

विचार-प्रवाह

जागृति के शुभ लक्षण

बरसों के बाद भारतवर्ष फिर से करवटें बदलता हुआ दिखाई दे रहा है। पिछले ५ वर्षों में अन्धी साम्प्रदायिकता के नाम पर सैंकड़ों मनुष्यों का खून हुआ, हज़ारों बुरी तरह से ज़ख्मी हुए। इतने दिनों तक जी खोल कर लड़ झगड़ लेने के उपरान्त आज प्रतीत होता है कि, दोनों पक्षों के लोग यह बात कुछ कुछ समझने लगे हैं कि धर्म के नाम पर किये गये इन उपद्रवों द्वारा हम दोनों में से किसी को भी लाभ नहीं है। चाहे लाख मतभेद और रुचिभेद क्यों न हो, आखिर रहना दोनों ने ही इसी देश में है। पिछले वर्ष के अन्त तक दोनों सम्प्रदायों के समझदार लोग उपर्युक्त तथ्य से अभी अवगत हुए ही कि थे कि लार्ड बर्कनहैड की अनीतिमत्ता से यह बात और भी अधिक स्पष्ट होगई कि यदि हिन्दु मुस्लिम फसादों से किसी को वास्तविक लाभ है तो वह इङ्गलैण्ड के साम्राज्यवादियों को ही है। लार्ड बर्किन हैड ने भारतवासियों को परस्पर लड़ता हुआ देख कर बड़े गर्व के साथ जो चुनौती दी, हमें यह सन्तोष है कि सम्पूर्ण देश ने उसका उचित उत्तर दिया था। इङ्गलैण्ड निवासियों ने आश्चर्य के साथ देखा कि जी भर कर आपस में लड़ने वाले भारतवर्ष के दोनों पक्ष सहसा परस्पर कन्धे से कन्धा मिला कर मोरचा लेने के लिए डट गये। गत ३ फरवरी के दिन सचमुच हमें १९२१ के सुवर्णीय युग की झलक एक बार फिर दिखाई दी। उसी दिन गोरे कमीशन ने भारतवर्ष की भूमि पर पैर रक्खा था। इसी उपलक्ष में देश भर के प्रायः सम्पूर्ण नगरों में बड़ी सफलता के साथ हड़ताल की गई, शहर शहर में विराट सभाओं का आयोजन किया गया। सम्पूर्ण राष्ट्र ने बड़े उत्साह से राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिये भरसक प्रयत्न किया।

१९ का विराट असहयोग आन्दोलन ६ एप्रिल की देश व्यापी हड़ताल के साथ ही प्रारम्भ हुआ था। ईश्वर करे कि गत ३ फरवरी का ऐतिहासिक दिन भी भारतवर्ष के लिये एक सौभाग्यशाली दिवस का प्रारम्भ सूचक सिद्ध हो देश में यह जो नव-जीवन का सञ्चार हो रहा है, यह चिरस्थायी हो।

× × ×

एसेम्बली का निर्णय

गोरे कमीशन के प्रधान सर जान साइमन ने दिल्ली पहुंचने के कुछ दिनों बाद ही भारत वर्ष की बड़ी व्यवस्थापिका सभा से अपनी सहायता

के लिये उपसमिति बनाने के सम्बन्ध में जो मांग की थी, उस का एसेम्बली ने गत १८ फरवरी को समुचित उत्तर दे दिया है। गत १६ और १८ फरवरी के दिन भारतीय व्यवस्थापिका सभा के इतिहास में सदैव के लिये स्मरणीय रहेंगे। इन दोनों दिनों में अधिकतर सदस्यों ने व्यवस्थापिका सभा की बैठक में भाग लिया। मुकाबला बड़ा ज़बरदस्त था। सरकार ने लाला लाजपतराय के कमीशन पर अविश्वास सम्बन्धी प्रस्ताव को फेल करवाने के लिये सम्पूर्ण सम्भव उपायों का आश्रय लिया, परन्तु यह प्रस्ताव फेल न कराया जा सका। प्रस्ताव पर खूब गर्मागर्म बहस होने के अनन्तर ६८ मत पक्ष में और ६२ विपक्ष में आने से प्रस्ताव स्वीकृत उद्घोषित कर दिया गया। २ सदस्य तटस्थ रहे। इस ६ मतों की अधिकता से लाला जी का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। इस प्रस्ताव द्वारा देश की प्रतिनिधिसभा ने बर्किन हैड की चुनौती का यथायोग्य उत्तर दे दिया है। देश के प्रतिनिधियोंने भारतवर्ष की वास्तविक ध्वनि द्वारा इस दिन बड़ी व्यवस्थापिका सभा के भवन को गुञ्जा दिया। इन दोनों दिनों में देश के नेताओं ने जो भाषण दिये उन्हें हम देश की सच्ची आवाज़ कह सकते हैं। पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय ने कहा—"सरकार हम भारतीयों को सब मामलों में नालायक बताती रहती है। हम ऊंचे अफसर नहीं बन सकते, शासन नहीं कर सकते, विदेशी राजनीति नहीं समझ सकते, यहां तक कि स्वभाग्य निर्णय भी नहीं कर सकते, तो क्या हम केवल कर (Tax) देने के योग्य ही हैं, और किसी बात के योग्य नहीं?" स्वराज्य दल के नेता माननीय पं० मोतीलाल नेहरू ने कहा— "मैं मानता हूँ कि सर साइमन एक बड़े और समझदार व्यक्ति हैं, परन्तु मैं देशभाइयों को संसार के किसी बड़े से बड़े मनुष्य के सन्मुख भी अपने अधिकार बेचने की सलाह नहीं दूँगा।" "लार्ड बर्किन हैड ने भारतवासियों को पागलों के समान समझ लिया है। केवल पागल ही क्या, वह तो हमें प्रदर्शनी में रखने लायक जानवर बना देना चाहता है। अधिकार का मद पी कर लार्ड बर्किन हैड चाहे जो कुछ बक सकता है।" आप नेइस सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति स्पष्ट करते हुए अन्त में कहा—"हम स्वयं अपने पैरों पर ही खड़े हुए हैं। सरकार इतिहास के सत्य सिद्धान्तों की उपेक्षा कर रही है इस का परिणाम यही होगा कि संसार के इतिहास में एक और विनष्ट साम्राज्य की वृद्धि हो जायगी।" महात्मा पं० मदनमोहन मालवीय ने कहा—"कमीशन की नियुक्ति के लिये इङ्गलिस्तान की सरकार को सब से पूर्व भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा से ही निर्देश मिला था, परन्तु कमीशन की रचना करते हुए, भारतीय राजभक्तों के वार बार चेतावनी देने पर भी भारत के अधिकार को ठुकरा दिया गया। इस प्रकार सभी राष्ट्रीय नेताओं के भाषण बहुत ही उच्च कोटी के थे। इस एसेम्बली को इस उचित निर्णय के लिये साधुवाद देते हैं।

क्या इंगलैण्ड का यही सब से बड़ा दिमाग है?

इन सात गोरे अक्लमन्दों की शाही कमीशन के रूप में नियुक्ति के समय लार्ड बर्कन हैड ने दिल खोल कर सर ज़ोन साइमन के दैवीय दिमाग़ के प्रशंसा-गीत गाये थे। उस के बाद भी इंग्लैण्ड के सभी पत्र सर साइमन को अपने देश के सर्वोत्तम दिमाग़ों में से एक कहते रहे। इस में सन्देह नहीं कि सर साइमन इंग्लिस्तान के सर्वश्रेष्ठ वकील समझे जाते हैं। हमारे देश के सब से बड़े कानूनदाँ पं० नेहरू भी साइमन महोदय की प्रतिमा के कायल हैं। परन्तु कमीशन के आधार रूप से इस

देश में आकर साइमन साहब आज कल जिस ढंग की बातें कह रहे हैं उसे देख कर इन दो बातों में से एक बात मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि या तो इश देस में आकर सर साइमन के दिमाग़ की कोई कल अचानक ढीली पड़ गई है अथवा वह जो कुछ कर रहे हैं वह अपने को तथा संसार को धोखा देने के लिये कर रहे हैं। अभी पिछले ही दिन जब असेम्बली ने कमीशन पर अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार किया तब आप ने फरमाया कि ६ मतों की अधिकता से ही देश का भाग्य निर्णय नहीं हो सकता। क्या कहना है? क्यों जनाब, क्या आप के देश में एक ही वोट विपक्ष में अधिक होने से सरकार बदल नहीं जाती? ६ मतों के बहुमत को बहुमत न मानना किस कानून की उपज है? फिर असेम्बली का यह बहुमत केवल मतों के आधार पर ही तो नहीं है। प्रस्ताव के विरोध में जो ६२ मत थे उन में निर्वाचित भारतीय सदस्यों के मत बहुत ही कम थे। इन में अधिकांश मत जिन लोगों के थे उन की नियुक्ति का ढंग ही इतना दोष पूर्ण है कि अंग्रेज़ी सरकार की अयोग्यता प्रदर्शित करने के लिये अकेले उसी को ही प्रमाण रूप में उपस्थित किया जा सकता है। इन ६२ मतों में से २६ मत सरकारी अधिकारियों के थे जो सरकार की नमक हलाली की ही दोहाई दिया करते हैं, १३ मत उन गैर सरकारी नामज़द सदस्यों के थे जिन्हें सरकार स्वयं अपनी पीठ पर थपकी देने के लिये नामज़द किया करती है, ११ मत उन योरोपियनों के थे जिन का दिल ही भारत को गुलाम बनाये रखने में है। इन ५० मतों को दूसरे शब्दों में हम १ मत कह सकते हैं। क्योंकि प्रतिनिधि शासन की किसी भी परिभाषा के अनुसार इन्हें देश के भिन्न-भिन्न प्रतिनिधि सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार १ यह मत और अन्य १२ निर्वाचित प्रतिनिधियों के यह, अर्थात् कुल १३ मत ही लाला लाजपतराय के प्रस्ताव के विरोध में थे। क्या सर साइमन इस जरा सी बात को समझ नहीं सकती या समझ कर भी बेसमझी का पार्ट अदा करती है? क्या ८० निर्वाचित प्रतिनिधियों में से ६८ की संख्या को पूर्ण मत न कह कर उपेक्षित किया जा सकता है?

गरज़ आदमी को सचमुच बावला बना देती है। सर साइमन इस बात के जीते जागते उदाहरण हैं। जिस दिन आपने ६ अक़्लमन्द साथियों के साथ भारत में पदार्पण किया उस दिन सारे देश ने हड़तालें कर के आप का स्वागत किया। अब भी आप जहाँ जाते हैं, गुप्तचरों की तरह लुक छिप कर जाते हैं, इस पर भी लोग आप का पीछा नहीं छोड़ते। कालिज़ों के विद्यार्थी काले झण्डे हाथों में लेकर आप को घेर लेते हैं और सैंकड़ों गले एक साथ चिल्ला कर कहते हैं— "साइमन! लौट जाओ। हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं।" बम्बई, दिल्ली, मेरठ, बनारस, कलकत्ता सभी जगह आप का यही हाल हुआ परन्तु इतने पर भी आप बार २ यही बात दोहराते हैं कि 'मेरा बड़ा स्वागत हो रहा है। प्रतिदिन बीसियों डैपूटेशन मिलने आते हैं। मेरे पास स्वागत के हज़ारों तार और पत्र आये हैं। सैंकड़ों अखिल भारतीय सभा समितियों ने मेरा हार्दिक स्वागत किया है।' वाह, भाई साइमन बलिहारी है। जिसे अपमान में भी अपना मान दिखाई दे उस से बढ़ कर मूर्ख और कौन होगा हमें तो सर साइमन के यह कारनामें देख कर एक प्राचीन घटना स्मरण हो आई है। आज से कई सौ बरस पूर्व भारत के किसी नगर में एक पठान चोरी के अपराध में पकड़ा गया। अदालत ने उसे दोषी पाकर उस का सिर उस्तरे से मूंडने और गधे पर चढ़ा कर सारे शहर में से घुमाने का दण्ड दिया।

इस दण्ड से दण्डित होने के उपरान्त जब वह पठान अपने देश में वापिस गया तब उसने अपने देश भाइयों से बड़े उत्साह के साथ कहा—"यारो, हिन्दोस्तान सचमुच बड़ा अच्छा मुल्क है। वहां मैं चोरी के अपराध में पकड़ा गया, इस पर बिना पैसे लिये ही मेरी हजामत बना दी गई और गधे की मज़ेदार सवारी घाते में मिली।" संसार की सम्पूर्ण बुद्धि के ठेकेदार सर साइमन का भी यही हाल हैं।

हाल ही में जब सर साइमन ने कलकत्ता पहुँच कर अपने स्वागत का बखान प्रारम्भ किया तो एक मनचले सम्वाद दाता ने पूछ लिया कि क्या आप उन सैंकड़ों अखिल भारतीय सभा समितियों के नाम मुझे दिखा सकेंगे ? इस पर आपने बड़े तपाक से उत्तर दिया— 'कभी नहीं, कभी नहीं। वे सब गुप्त हैं।' आमीन ! अमीन !

× × ×

प्रसिद्धि का एक आसान उपाय

साइमन साहब की कृपा से इस गए गुज़रे ज़माने में भी प्रसिद्धि प्राप्त करने का एक आसान तरीका ईज़ाद होगया है। कोई ५, ७ व्यक्ति मिल कर अपना एक अखिल भारतीय नाम रख लीजिये और साइमन साहब के पास चाहे २ पैसे के कार्ड पर ही गोरे कमीशन को कुछ स्तुति लिख भेजिये बस आप का नाम इंग्लिस्तान के अखबारों में बड़े २ अक्षरों में प्रकाशित हो जायगा, मानो आप ही इस दीन देश के भाग्यविधाता है यह क्या मज़ाक है ! भारतवर्ष के गण्य मान्य नेताओं के मुकाबले में सर साइमन झट से टके टके के आदमियों का नाम उपस्थित कर देते हैं । यह स्वयं अपने को धोखा देना नहीं तो और क्या है। सर साइमन भारत में रह कर अपने को धोखा देने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं और लार्ड बर्कन हैड अपने देश वासियों को गोरे कमीशन के स्वागत की कल्पित बातें सुना सुना कर मुग्ध कर रहे हैं। भारत और विलायत के गोरे तथा अधगोरे अखबार भी यही तमाशा कर रहे हैं। हाल ही में अलाहबाद में थोड़े से जीहज़ूर मुसलमानों की एक सभा हुई थी। इस सभा का नाम उन्होंने अखिलभारतीय मुस्लिम प्रतिनिधि सभा" रक्खा। इस के प्रधान भी मियां शफी के कोई दूर के रिश्तेदार ही थे। इस सभा में अलाहाबाद ही के ४० या ५० टटपूंजे क्लर्क, सरकारी दफ़्तरों के चपड़ासी, स्कूलों के कुछ तमाश बीन विद्यार्थी अलाहाबाद के कुछ मुसलमान भंगी और सभापति आदि के कुछ घरेलू नौकर एकत्र हुए थे । सभापति ने बड़ी सञ्जीदगी से अपने भाषण में कहा—"दूर से आये हुए, संसार की एक सभ्यतम जाति के प्रतिनिधियों ! आप लोगों पर इस समय एक भारी उत्तरदायित्व हैं । आप यहां ७ करोड़ मुसलमानों की आवाज़ को बुलन्द करने के लिये जमा हुए हैं......इत्यादि" हमें आश्चर्य यह है कि सभापति महोदय को उपर्युक्त बातें कहते हुए हंसी क्यों न अगाई ! इस पर तुर्रा यह कि भारत तथा इंगलैण्ड के मुख्य-मुख्य पत्रों ने इस 'नाटकी सभा' के समाचारों को बड़े मोटे-मोटे टाइप में छापा, और अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में यह सिद्ध कर दिया कि वास्तव में भारत के सम्पूर्ण मुसलमान कमीशन का स्वागत कर रहे हैं !

इस सब पर हम क्या टिप्पणी करें ? हमें तो यही कहना है कि इस प्रकार अपने को धोखा देने से इंगलिस्तान को स्वयं ही भारी हानि उठानी पड़ेगी। सर साइमन की ये बातें तो बिल्ली के भय से कबूतर के आंख बन्द कर लेने से भी अधिक हास्यास्पद हैं !

साइमन महोदय की इन चालों के अधिकांश शिकार भारत की दलित कहलाने वाली जातियों

ही बन रही हैं । यद्यपि हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि इन दलितों के नेता कहलाये जाने वाले लोगों के पीछे दलितों का थोड़ा सा भी अनुगर्भमत्व नहीं है । तथापि हमें यह बात अवश्य स्वीकार करनी होगी कि दलित लोग भारत का एक ऐसा कमजोर अंग हैं, जिस पर विदेशी प्रभाव की बीमारी बड़ी आसानी से अपना अधिकार कर सकती है । अतः इस दलित समस्या को हम लोग जितना शीघ्र सुलझा लें, भारत के हित की दृष्टि से यह उतना ही लाभ कर होगा । उच्च जातियों ने दलितों पर जो अत्याचार किये हैं, उन की दोहाई देकर सरकार उन्हें फाड़ने का प्रयत्न अवश्य करेगी । परन्तु दलितों को हिन्दु समाज की आन्तरिक सुधार प्रेमी धाराओं से ही कुछ आशा करनी चाहिये, विदेशी सरकार को उन से क्या हिताकांक्षा हो सकती हैं ? वह तो उन्हें अपनी स्थिरता का साधन मात्र ही बना सकती है; उन्हें मनुष्यत्व के अधिकार देना विदेशी सरकार को कभी अभीष्ट न होगा ।

× × ×

अंग्रेजी मजदूर दल की प्रवृत्ति

हमारे देश के कुछ नरम नेताओं को इंगलिस्तान के मज़दूर दल से बड़ी आशाएं थी । मज़दूर दल के नेता श्रीयुत-मैकडानल्ड स्वयं भी भारतवासियों को समय समय पर बड़ी बड़ी आशाएं बंधाते रहे हैं । परन्तु इस गोरे कमीशन की नियुक्ति से लेकर अब तक मज़दूर दल ने जो रुख दिखाया है उस से यह भली प्रकार स्पष्ट हो गया है कि यह दल भी अनुदार दल की तरह ही पक्का साम्राज्यवादी है । इङ्गलिस्तान के थोड़े से गिने चुने भद्रपुरुषों को छोड़ कर बाकी सम्पूर्ण देश भारत को अपने अधीन बनाये रखने में ही अपना हित समझता है । हमारी सम्मति में यह मज़दूरदल की मनोवृत्ति का स्पष्टीकरण भारत के लिये शुभ ही सिद्ध होगा । स्वतन्त्रता स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने से ही मिल सकती है किसी दूसरे के आश्रय से नहीं । किसी दूसरे आश्रय पर जीने का नाम ही तो पराधीनता है ।

गुरुकुल कांगड़ी का आगामी वार्षिकोत्सव

गुरुकुल प्रेमियों में यह समाचार बड़े हर्ष और सन्तोष के साथ सुना जायगा कि नवीन गुरुकुल के निर्माण के लिये ४ बरस के निरन्तर प्रयत्न के बाद उसी स्थान पर यथेष्ट भूमि प्राप्त होगई है, जिस स्थान पर कि आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की की अन्तरङ्ग सभा नये गुरुकुल की स्थापना करना चाहती थी । यह स्थान आबादी से यथेष्ट दूर, गङ्गा की बड़ी नहर के किनारे अवस्थित है । यहां से गंगा भी बहुत दूर नहीं, हिमालय का दृश्य जितना सुन्दर इस स्थान से दिखाई देता है उतना हरिद्वार भर में शायद ही किसी दूसरे स्थान पर से दिखाई दे । इस भूमि के लिये गुरुकुल को पर्याप्त धन व्यय करना पड़ा है । इस वर्ष के वार्षिकोत्सव के अवसर पर किसी भारतविख्यात महानुभाव द्वारा नये गुरुकुल की आधार शिला रखवा दी जायगी यह भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ कि गुरुकुल की रजत जयन्ती के अगले ही वर्ष नये गुरुकुल की आधार शिला रखदी जायगी । इस शिलान्यास के कारण गुरुकुल का यह आगामी वार्षिकोत्सव भी बड़ा महत्व पूर्ण होगया है ।

गत वर्ष नवम्बर मास में दिल्ली का आर्यकांग्रेस के अवसर पर जिस 'आर्यवीर दल' की रचना की गई थी, उस का प्रारम्भिक प्रदर्शन प्रधान दल पति श्री आचार्य ररमदेव जी की प्रध्यता में गुरुकुल के इसी वार्षिकोत्सव पर किया जायगा । आर्यवीर दल के सहस्रों 'आर्य वीर' अपने नियत वेश में इस शुभ कार्य के लिये गुरुकुलोत्सव पर आएगें । इस

दृष्टि से भी गुरुकुल का यह वार्षिकोत्सव एक स्मरणीय अवसर बन जायगा । हमें विश्वास है कि आर्य सज्जन अधिक से अधिक संख्या में इस अवसर पर गुरुकुल पधार कर कुल के अधिकारियों को उत्साहित करेंगे ।

× × ×

देशभक्त हरचन्दराय विशनदास

असेम्बली के सदस्य सेठ हरचन्द राय विशनदास की मृत्यु सचमुच वीरतापूर्ण मृत्यु है । पिछले दिनों आप रुग्ण बीमार थे, डाक्टरों ने आप को इस अवस्था में यात्रा करने से रोका था । परन्तु जब लाला लाजपतराय के तार द्वारा आप को यह ज्ञात हुवा कि सरकार पूरी शक्ति से उन का प्रस्ताव अस्वीकार करवाने का यत्न कर रही है, तब आप डाक्टरों की सलाह की उपेक्षा कर के कराची से दिल्ली चले आये । दिल्ली पहुंचते ही आप का स्वास्थ्य बहुत गिर गया और दोपहर तक आप का देहान्त होगया । देश की पुकार सुन कर सेठ हरिचन्दराय विशनदास ने अपने जीवन की उपेक्षा कर के भी कर्तव्य पालन को अधिक महत्व पूर्ण समझा । असेम्बली में सेठ जी कराची के हिन्दुओं के प्रतिनिधि थे । आप आजीवन बड़े उत्साह से राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेते रहे । सन् १९१३ में जब काँग्रेस का अधिवेशन करांची नगर में हुवा था सेठ जी ही स्वागत समिति के अध्यक्ष थे । मृत्यु के समय आप की अवस्था ६६ बरस की थी । लार्ड बर्कन हैड को ज्ञात होना चाहिये कि उन की सब चालाकियां अकेले इस देश भक्त की वीरतापूर्ण कुर्बानी की बदौलत ही असफल रह जांयगी । हमें विश्वास है कि सेठ हरचन्द राय का यह बलिदान निष्फल न जायगा ।

“मदर इण्डिया” की फिल्म

अमेरिका से समाचार आया है कि वहां अब “मदर इण्डिया” की फिल्म बना कर एक सिनेमा कम्पनी भारत की दुरवस्था का सिनेमा दिखाया करेगी । इस सिनेमा में अछूतों से बुरा व्यवहार, भारतीयों के अन्ध विश्वास, सन्तानोत्पत्ति के दृश्य, बनारस के दृश्य, और सब से बढ़ कर भारतीय देवियों को अपमानित करने वाले अश्लील चित्र दिखाये जांयगे । हमें समझ नहीं आता कि इस बात से बढ़ कर भारतवर्ष का और अधिक क्या अपमान किया जा सकता है । यदि भारतवर्ष स्वतन्त्र होता तो क्या कभी यह सम्भव था कि बदमाश और बदतमीज़ विदेशी अधेड़ औरत इस मुल्क में सरकार की मदद से घूम फिर कर ‘मदर इण्डिया’ जैसी वाहियात किताब लिखती और फिर अमेरिकन सिनेमा कम्पनी उस का सिनेमा बना कर अपने देशवासियों का मनोरञ्जन करती । पराधीनता के परिणामों की इस से अधिक विकट कल्पना क्या की जा सकती है क्या ३२ करोड़ भारतीय यह मुंह सुजा देने वाली ठोकर खाकर भी न जागें ?

शारदाजी का विवाह बिल

रायसाहब हरबिलास शारदा ने भारतीय व्यवस्थापिका सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि हिन्दु समाज में बालक बालिकाओं की उम्र विवाह के समय कम से कम क्रमशः १५ और १३ वर्ष की हो । इस छोटी उम्र में किये गये विवाह नाजायज़ समझे जांय, और ऐसा विवाह करने पर विवाह कराने वाले व्यक्ति दण्डित हों । हमारी सम्मति में शारदा जी को अपने बिल में बालक बालिकाओं के विवाह की न्यूनतया अवधि क्रमशः २४ और १६ वर्ष होनी चाहियें । हमारी

सम्मति में १५ वर्ष के बालक और १३ वर्ष के बालिका को विवाह करने का कानूनी अधिकार दे देना बहुत ही अनुचित है। तथापि क्योंकि अब तक इस सम्बन्ध में कोई भी प्रतिबन्ध नहीं था, अतः हमारी सम्मति में यह प्रतिबन्ध कुछ न कुछ लाभ अवश्य करेगा। अतः हम इस प्रस्ताव के भाव का हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

हाल ही में दिल्ली नगरी में जो अखिल भारतीय महिला परिषद् हुई थी, उस की ओर से एक डैपूटेन भारतीय नेताओं, सरकारी अधिकारियों और वायसराय के पास गया था। इस डैपुटेशन का एक उद्देश्य यह भी था कि यह बालिकाओं के विवाह की न्यूनता अवधि १६ वर्ष निश्चित करवाये। सभी नेताओं ने ईसाइस डैपुटेशन को खूब आशाएं बंधवाई। क्या हम आशा करें कि राय साहब हरबिलास शारदा इस डैपुटेशन की प्रार्थना स्वीकार करके अपने प्रस्तुत बिल में उपर्युक्त संशोधन कर देंगे।

हिन्दी साहित्य में क्रान्ति

शीघ्रता करिए ! नहीं तो पछताना होगा !! शीघ्रता करिए !!!

"सोहागरात" या बहूरानी की सीख

केवल विवाहिता स्त्रियों के लिये

पञ्जाब केशरी लाला लाजपतराय जी लिखित भूमिका सहित

[लेखक—पंडित कृष्णकान्तजी मालवीय]

इस पुस्तक ने हिन्दी साहित्य में एक अद्भुत क्रान्ति मचादी है। पुस्तक में है क्या इसे इसका नाम ही चिल्ला र कर कह रहा है। वैवाहिक ही नहीं; घरेलू जीवन किस प्रकार स्वर्गीय हो सकता है, पत्नी किन उपायों से पति को हाथ ही में नहीं रख सकती वरन् किस प्रकार पति के हृदय पर अखण्ड राज्य कर सकती है, आदि सभी बातों का पुस्तक में समावेश है। विवाह सम्बन्धी बातें, सोहागरात, जड़ मनुष्य पर अधिकार, शरीर आकर्षक कैसे हो, भोजन तथा वसन कैसा हो शृङ्गार, रजोधर्म, मानव मस्तिक पर अधिकार तथा स्त्री-जीवन का उद्देश्य, प्रेम की ग्रन्थि, लड़का या लड़की, सन्तान-निग्रह, समाज में व्यवहार, सतीत्व आदि शक्ति आदि अध्यायों में तथा पतिव्रता चरित, लक्ष्मी किन स्त्रियों के पास वास करती हैं, गर्भ में लड़का या लड़की, व्यायाम शिक्षा, स्त्री की महत्ता आदि परिशिष्ट भाग में। पं० कृष्णकान्त जी मालवीय ने सभी गूढ़ बातों को सरल कर दिया है। पुस्तक में "कामसूत्र" "रति-रहस्य" "अनङ्ग रङ्ग" "कन्दर्पचूड़ामणि" आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों और यूरोपीय विद्वानों के उपदेश भरे पड़े हैं। सब से बढ़ कर विशेषता जो इस पुस्तक की है वह यह है कि इस विषय के यूरोप के नूतन आदर्शों को आंखों की ओट न करते हुए प्राचीन भारतीय और वैदिक आदर्शों को ही सामने रखा गया है और यह सिद्ध कर दिया गया है कि एक स्त्री इस तरह आचरण कर सुखी रह सकती है।

पुस्तक की और अधिक प्रशंसा न कर हम केवल यही कह देना आवश्यक समझते हैं कि पुस्तक को पण्डित कृष्णकान्त जी ने अपनी पुत्र-वधू के लिए लिखी है और प्रायः सभी भाषा के पत्र-पत्रिकाओं तथा विद्वानों ने इसको भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसी लिए हम बलपूर्वक कहते हैं कि यह पुस्तक प्रत्येक विवाहिता स्त्री को पढ़नी ही नहीं बल्कि

सदा मार्ग-प्रदर्शिका के रूप में अपने पास रखनी चाहिये और प्रत्येक पति को, जो अपने और साथ ही अपनी पत्नी के जीवन को सुखमय बनाना चाहता हो, यह पुस्तक अपनी सहधर्मिणी को पढ़ा देनी चाहिये। नव-वधुओं को भेंट करने के लिए तो इस से बढ़कर और कोई पुस्तक हो ही नहीं सकती। पुस्तक १ तिरंगे और १९ सादे चित्रों के साथ ३५ पौण्ड मोटे एण्टीक कागज़ पर ५०० से अधिक पृष्ठों में बहुत सुन्दर छपी है। ऐसी महत्वपूर्ण, इतनी सुन्दर और इतनी मोटी पुस्तक का मूल्य पाठकों के सुभीते के लिए सजिल्द का केवल ३॥) रखा गया है।

विद्वत्मण्डली ने जिन शब्दों में पुस्तक की प्रशंसा की है उस से ही मालूम होता है कि पुस्तक क्या है। हम यहां पर केवल कुछ अवतरण देते हैं, पाठक स्वयं देखें। जिन लोगों ने पुस्तक एकवार मंगाई है वे मुक्त कण्ठ से पुस्तक की प्रशंसा करते हुये दूसरी पुस्तक भेज देने का आग्रह करते हैं। नित्य ही ऐसे पत्रों की भरमार रहती है।

कुछ सम्मतियां

उत्तरी भारत का सब से प्रभावशाली पत्र "हिन्दुस्तान टाइम्स" लिखता है:—

"पुस्तक ज्ञान से भरी है और बड़ी सफाई से शुद्ध भाषा में अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। **अभी तक हमारे सामने इस पुस्तक के टक्कर की कोई भी पुस्तक अंग्रेजी अथवा देशी भाषाओं में नहीं आई जो** इस प्रकार शुद्ध भाषा में इस बारीक विषय पर लिखी गई हो। **पुस्तक को कोई भी पिता बिना संकोच के या भय के अपनी कन्या के हाथ में दे सकता है!** कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक में हिन्दी कविता के प्रकाण्ड विद्वान पं० गया प्रसाद जी शुक्ल "सनेही" लिखते हैं:—

"........भाषा और भाव की पवित्रता का जितना सुन्दर निर्वाह पण्डित जी ने किया है, वह उन की लेखनी की स्वयं सिद्ध सफलता है।......हम हृदय से चाहते हैं कि यह पुस्तक प्रत्येक नर-नारी, बालक, युवक तथा वृद्ध के हाथ में पहुंचे और **सचमुच वह हिन्दी पाठक अभागा ही कहलायेगा जो इस पुस्तक को कम से कम एक बार आद्योपान्त न पढ़ सका।......"** दिल्ली से प्रकाशित प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक "अर्जुन" लिखता है:—

".....पण्डित जी ने यह पुस्तक अपनी पुत्र वधू के लिये लिखी है इसी से कल्पना की जा सकती है कि इस में कोई भी बात अनुचित अथवा अश्लील रूप में शामिल नहीं की जा सकती। विषय की दृष्टि से यह **पुस्तक केवल नव विवाहित दम्पतियों के ही नहीं बहुत से बालकों के माता पिताओं तथा अन्य गृहस्थियों के लिये भी उपयोगी साबित होगी।"** प्रयाग के प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र "लीडर" ने लिखा है:—

"......यदि यह पुस्तक यूरोप के इस विषय संबन्धी पुस्तकों से बढ़ कर नहीं तो घट कर भी नहीं है। पुस्तक प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक साहित्यिक रचना है। मेरे पास जितनी शक्ति है उतनी सब शक्ति लगाकर मेरा कहना है कि पुस्तक प्रत्येक विवाहित नारियों को, जो अपना जीवन सुखी बनाना चाहती हैं अवश्य पढ़नी चाहिये।......"

सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका "माधुरी" ने अपने सम्पादकीय विचार में लिखा है:— "................ "सोहागरात" जैसे विषय पर अपनी पुत्रवधू को उपदेश देकर न केवल पं० कृष्णकान्त जी ने अपने उत्तरदायित्व का पालन ही किया है, वरन् उन्होंने अपूर्व नैतिक साहस का परिचय दिया है। .... **हिन्दी साहित्य में यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अद्वितीय है।** .... पं० कृष्णकान्त जी ने जो प्रकथन लिखा है वह अपूर्व है। .... अन्त में हमें यही कहना है कि पुस्तक उपादेय है और हिन्दी संसार में इसका आदर होना चाहिये।

पंजाब का प्रसिद्ध प्रभावशाली उर्दू दैनिक "वन्देमातरम्" लिखता है:—

"........पुस्तक न केवल स्त्रियों के लिए बल्कि हर एक गृहस्थ के पढ़ने योग्य है।

प्राप्ति स्थान:— "अभ्युदय" प्रेस प्रयाग.

अपने बच्चे को फुटबॉल खिलाओ

तुम्हारा बच्चा बहुत मोटा ताज़ा और खुश मिज़ाज़ होगा यदि तुम हम से उस के लिए फुटबॉल खरीदोगे !

खेल के सब तरह के सामान का स्टाक हमारे यहां है। जल्द आर्डर भेजिये।

बी० डी० गुप्ता एण्ड को०

पंच कुई रोड, दिल्ली।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक-इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इससे कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूनों की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ……पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई हैं जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥।=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत।

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल
राजपुरा रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

चौधरी हुलासराय प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष ६] सितम्बर, १९२८ [संख्या ५,

अक्तूबर, १९२८

ज्योति

वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—
विद्यावती सेठ बी.ए.

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ से
१. याचना [कविता]— "देव"	१८५
२. चरित्र— लेखक "क्ष"	१८६
३. "अभिलाषा"— श्रीयुत हरिकृष्ण जी मढवाल	१९०
४. उत्तेजना— "जीवन"	१९३
५. गुजरात में हिन्दी-साहित्य— 'गुजराती'	१९४
६. सार्वभौम-वैदिकधर्म— प्रथम अध्याय श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति	२०३
७. भारत-साम्राज्य-विस्तार— नारायण रामरख देशपांडे	२१३
८. टेसू— पं० आनन्दस्वरूप विद्यालंकार	२१६
९. विद्यार्थियों का संगठन – एक विद्यार्थी	२१८
१०. निर्झर— [कविता] श्री प्रियहंस	२२१
११. अभिजनन शास्त्र का एक अंग (कृत्रिमरोध) श्री पं० अत्रिदेव जी विद्यालंकार	२२२
१२. दक्खनी ब्राह्मण— ऐम. राय	२३०
१३. वसन्त— "श्री शान्त"	२३२
१४. सार्वभौम-वैदिकधर्म— द्वितीय अध्याय श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति	२३३
१५. जातकर्म-संस्कार— श्री पं० अत्रिदेव जी आयुर्वेदालंकार	२५०
१६. विचार-प्रवाह—	२५८

लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरोंमें कागज़ के एक ओर ही हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।

ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार—

आचार्य्या कन्या गुरुकुल

कोठी नं० २१, राजपुर रोड़

(देहरादून)

लूटो ! लूटो !! ६१ इनाम लूटो !!!

दौलतका खून ! सिर्फ नामके लिये

३॥।≡) दर्जन दाद की दवा पर ६१ बहुमूल्य वस्तुवें इनाम !

फैशनेबिल "ट्वाय" रिस्टवाच और पाकेटवाच भी इनाम में ही शामिल हैं ॥

☞ इनाम की चीजों को देखते ही दिल फड़क उठेगा ।

कैसा ही नया पुराना ख़राब से ख़राब दाद क्यों न हो इस दवा के लगाते ही २४ घण्टे में बिना किसी कष्ट के जड़ से मिट जाता है । दादकी १२ डिबियोंकी कीमत ३॥।≡) है और साथ में नीचे की बहुमूल्य ६१ चीजें मुफ्त इनाम में दाद की दवा के साथ भेजी जाती हैं इनामकी चीजें :—

१ ड्वाय पाकेट वाच । २घड़ीकी चैन । ३अंगुठी ४बढ़िया तास । ५झुनझुना । ६ सुतका गट्ठा । ७सुन्दर सुइज बन्डल । ८नगीनेवाली अंगूठी । ९बहुत बढ़िया चस्मा । १०खूबसूरत जलछवी । ११बढ़िया इत्रसी शीशी। १२ खुशबूदार साबुन । १३ बहुत बढ़िया ब्रश। १४ फाऊनन्टे पेन । १५ खूबसूरत रुमाल ।

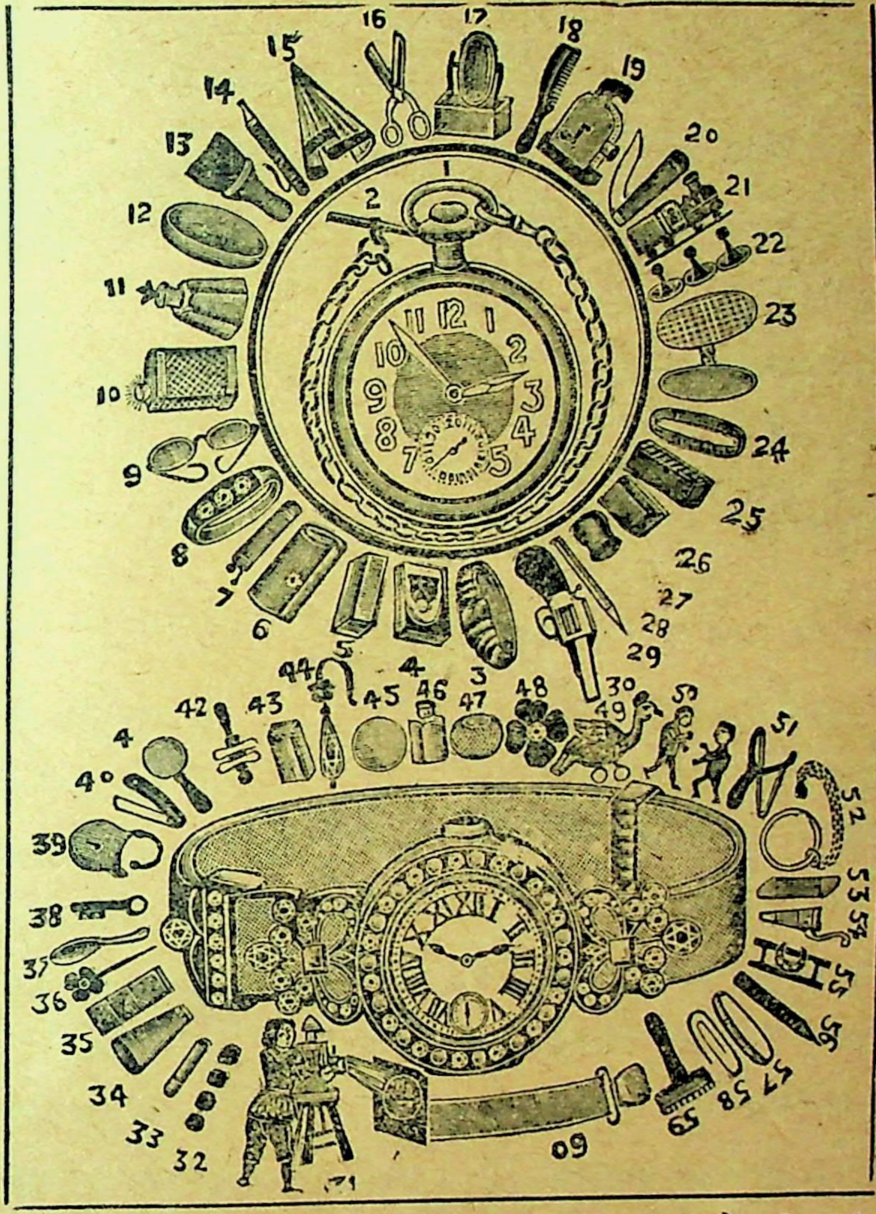
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60

१६ बहुत बढ़िता कैंची। १७ खूबसूरत शीशा। १८ सुन्दर कंघा । १९ सुन्दर खिलौना २० खूबसूरत चाकू। २१ सुन्दर विचित्र । शीशा । २२ सुन्दर बदाम। २३बहुत बढ़िया कफके बटाम । २४ खूबसूरत बाली । २५ बहुत बढ़िया पियानो जरमनी हारमोनियम। २६बालउड़ानेकासाबुन २७ बढ़िया शीशेका दवात २८सुन्दरपेनसिल क्लिप २९खूबसूरत पेन्सिल ३० बढ़िया पिस्तौल। ३१पचास तमासवाला बायसकोप । ३२ बहुत बढ़ियारबड़कीगेंद। ३३ खूबसूरत बांसुरी। ३४ बढ़िया जर्मनी सीटी। ३५ खूबसूरत मनीबेग। ३६ सुन्दर सिरमें लगाने का काटा। ३७ खूबसुरत चम्मच । ३८ चाभी

३९ मजबूत ताला । ४० सुन्दर चिमटी । ४१ दूध या चाय छाननेका यन्त्र । ४२ कानसे मैल निकालनेका यंत्र । ४३ खूबसूरत घुघरु । ४४ खूबसूरत इयर रिङ्ग । ४५ गोली । ४६ खुशबूदार तेलकी शीशी । ४७ सुन्दर, तमाशेकी गेंद । ४८ खूबसूरत नाकका फूल । ४९ आटोमेटिक सुन्दर बत्तक । ५० मसखरा । ५१ बिचित्र जिभो । ५२ चाभीका रींग । ५३ दांतसे मैल निकालनेका यंत्र । ५४ फौण्टेनबेनकी क्लिप । ५५ छाती पर लगानेका सेफ्टीपेन ५६ नीबी । ५७ ऐंठदार सुन्दर छल्ला । ५८ पेपर किल्प । ५९ हजामत बनाने का सेफ्टी रेजर । ६० सुन्दर फीता । ६१ बढ़िया 'ट्वाय' रिष्टवाच ।

पता—दी फ्रेण्ड्स आफ़ इण्डिया, २८१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता ।

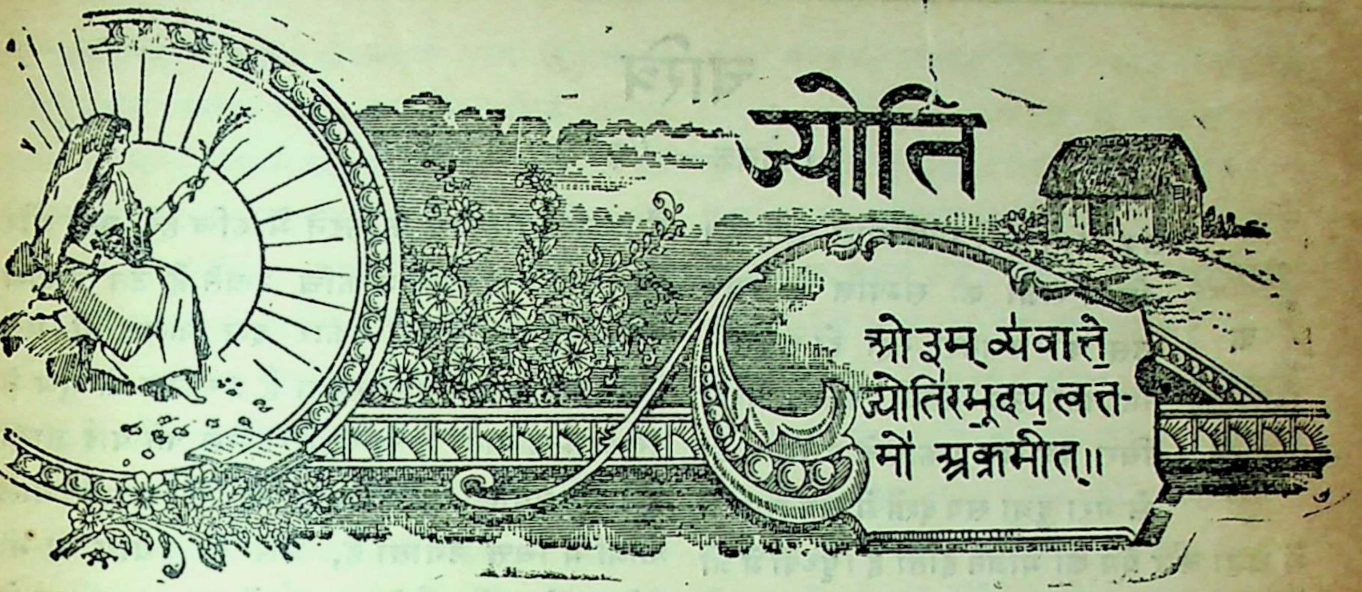

विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष ६ | भाद्रपद १९८५ * सितम्बर १९२८ | संख्या ५

याचना

सत्य स्नेह की सरस लता में,
भोग योग के भव्य भवन में,
मलय-पवन से मुदित मनों में,
कष्ट समय में तृषित जनों में,
नाथ ! नित निज निवास बना दो जी ॥१॥

* * *

मधुर-मन्द-मुख चन्द हास से,
सुन्दर सरस अरु रंग रास से,
मन मोहन मञ्जु-मञ्जरी से,
पुष्प विपिन की प्रणयवल्लरी से,
देव ! अबतो दिव्य स्वरूप दिखा दो जी ॥२॥

* * *

आदर अनुनय प्रणय याचना की,
भक्ति प्रेम की वसन्त वासना की,
नवलनेह के शुभ परिमल की,
कञ्ज कुञ्ज युत विमल महल की,
घनश्याम ! स्नेही की ये प्यास बुझा दो जी ॥३॥

* * *

नट वर ! निज नाद सुनादो
मुरली धर ! मद-मधु चखादो !
भटकों को निज बाट दिखा दो
दुःखियों को निज गोद सुलादो !!
सुमन सुमन से सेज सजा दो जी !!!

* * *

"देव"

चरित्र

(लेखक— "द्व")

कलंक रहित चरित्र अनमोल धन है। किसी राजा की सम्पत्ति के साथ उस की बराबरी नहीं हो सकती। मिहनती, सच बोलने वाला, उदार चित्त एवं सब प्रकार के उत्तम भावों से भरा हुआ सब देशों में सब समाजों में श्रद्धा और प्रेम का भाजन होता है। पृथ्वी में जो कुछ सब से उत्तम हैं उसका वह अधिकारी होता है। उनके न होने से संसार उजाड़ होकर सदा एक न एक उपद्रव खड़ा करता है। वे जिस समाज में रहते हैं वह समाज नदी के जल से सींचे हुए लहलहाते भूखण्ड की भाँति शोभा पाता है। मनुष्य में सचाई उदारता और साधुता चरित्र ही के गुण से बढ़ती हैं।

बुद्धिमान् मनुष्य लोगों में प्रशंसा पाता है। अच्छे चरित्रवाला प्रशंसा के साथ ही लोगों में भक्ति और श्रद्धा का पात्र होता है। प्रतापी पुरुष जब समाज में बुद्धिमानी के कामों के करने में लगता है तो चरित्र से समपन्न मनुष्य समाज में धर्म भाव की उन्नति के लिए यत्न करता है। समाज एक मनुष्य को प्रसिद्ध करता है और दूसरे के ढर्रे पर चलने में व्यग्र होता हैं।

विशेष गुणों में भरे हुए महापुरुष संसार में दुर्लभ हैं। जीवन की छोटी सीमा में बिरले ही मनुष्य बड़ाई की योग्यता पाते हैं। और प्रत्येक विषय में बराबर भाग्यवान् नहीं होते। जिन में बुद्धि है उन में उद्योग का स्वभाव नहीं। जो उद्योगी हैं, उन में बुद्धि की तेज़ी नहीं। जो सम्पत्तिशाली हैं; उनको सत्कार्य के करने में रुचि ही नहीं और जो सत्कार्य के करने में रुचि रखते हैं उन के पास सम्पत्ति ही नहीं। इस प्रकार इस जगत् में एक दूसरे का अभाव बना रहता है। चरित्र के गुण में इन अनमेल बातों में से बहुतेरी मेल की पाई जाती हैं। चरित्रवाला व्यक्ति जैसे बुद्धि के बढ़ाने वाले कामों में चित्त लगाता है, वैसे ही उद्योग का भी परिचय देता है। जैसे सुमार्ग में रह कर धन के कमाने में प्रवृत्त होता है वैसे ही अच्छे कामों के करने में कमाये हुए धन को लगाता है। असाधारण महापुरुष की पदवी की प्रतिष्ठा को पाकर भी अपनी शक्ति के अनुसार बड़े कामों के करने में संकोच नहीं करता। परोपकार ही से उनको संतोष और तृप्ति होती है। दूसरों की उन्नति करने में उन को आग्रह होता है। वे पिता और माता की भक्ति में तत्पर होकर कुटुम्बियों के साथ जैसा प्रेम रखते हैं, पड़ोसियों के साथ भी वैसा ही सदाचार का परिचय दिया करते हैं तात्पर्य यह है कि जगत् पिता परमात्मा ने उनको जिस अवस्था में रक्खा है, वे उसी अवस्था में रह कर संतुष्ट चित्त से सब भाँति साधुता के सम्मान की रक्षा करते हैं। दूसरे लोग उनके दिखलाए हुए दृष्टान्तों पर चल कर अपनी उन्नति के करने में बद्धपरिकर हो जाते हैं। सूर्य की किरणों के पड़ने से जैसे भूमि खिल उठती है, पूर्णचन्द्र की शीतल किरणों से जैसे संतप्त शरीर शान्त हो जाता है वैसे ही उनके मिलने और उनके साथ रहने से मनुष्य ज्ञानरूपी प्रकाश से खिल उठते हैं, उपदेश पाने से प्रफुल्ल और अच्छे आचारों से दुःख रहित होजाते हैं।

केवल ज्ञान के अनुशीलन के साथ चरित्र की पवित्रता का उतना निकट सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इतना सम्बन्ध न होने पर भी विद्या की चर्चा का तिरस्कार करना उचित नहीं है। विद्या के साथ साधुता का संयोग होना आवश्यक है। कभी २ विद्या के साथ बुरे चरित्र भी मिले हुए देखे जाते हैं। कोई मनुष्य साहित्य, विज्ञान और शिल्प शास्त्र में पण्डित हो सकता है; पर साधुता, धर्म वासना, सत्यभाषण और कार्य निष्ठा में उन सब के होने पर लण्ठ किसान की अपेक्षा भी निकम्मा होता है। किसी अच्छे पण्डित और लेखक ने लिखा है। "मैंने बहुतेरी पुस्तकें पढ़ी हैं, बहुतेरे ज्ञानियों को देखा है, बहुतेरे धनशाली पुरुषों के साथ बातचीत की है, परन्तु बिना पढ़े लिखे हुए पुरुष और स्त्रियों ने मुझ से जो मत प्रकट किया है वह सब पुस्तक इत्यादियों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे हैं।" हम लोग जब तक चन्द्रमा की चाँदनी की तरह विमल भाव का परिचय न दे सकेंगे तब तक जीवन के यथार्थ उद्देश्य के साधन में समर्थ न हो सकेंगे।

विद्या की अपेक्षा धन के सहित चरित्र की उन्नति का अधिक दूर का सम्बन्ध है। धन प्रायः चरित्र को बिगाड़ देता है। धन भोग का व्यसन, असमय का काम और पाप, इन का आपस में बहुत बड़ा सम्बन्ध है। धन जो बुद्धि हीन और विषयी मनुष्य के हाथ पड़े तो बहुतेरे अनर्थों का मूल हो जाता है। इसके विरुद्ध दरिद्रता के सङ्ग साधु चरित्र का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। संसार में अपने परिश्रम से संभल कर खर्च करने से और अच्छे आचरण पर चलने से बड़े सुख से काल बिताया जा सकता है। किसी ज्ञानी ने अपने लड़के को उपदेश दिया था कि— "चाहे तुम्हारे पास एक कौड़ी भी न हो पर मनुष्यत्व की रक्षा से मुंह मत मोड़ना, क्योंकि हृदय के साधु और मनुष्य के योग्य न होने से किसी का सम्मान नहीं होता।" एक मनुष्य बड़े कष्ट से धन कमा कमा कर अपने कुटुम्ब का पालन पोषण करता था, वह यद्यपि पाठशाला में बहुत दिन तक नहीं पढ़ा था तो भी उसको विलक्षण ज्ञान था। उसके पुस्तकालय में एक धर्म पुस्तक और कई एक साहित्य के ग्रन्थों को छोड़ कर कुछ न था। उस की आमदनी भी मामूली थी। उस अच्छे विचार वाले की कर्त्तव्य निष्ठा, सौम्य प्रकृति और उत्तम व्यवहार की इतनी ख्याति हुई कि जो बहुतेरे धनवानों को नसीब भी नहीं होती।

फल इसका यह है कि अदूरदर्शी लोगों के हाथ में धन पड़ने से केवल अनर्थ ही अनर्थ होता है। उत्तम चरित्र वाले धन को अच्छे कामों में लगाते हैं, वे लोग भोग विलास में पड़कर धन को व्यर्थ ही बहाकर पाप मोल नहीं लेते। इस के विपरीत निरा दरिद्री मनुष्य अपने अनमोल चरित्र रत्न के प्रसाद से जिस अक्षय कीर्त्ति के अधिकारी होता है, उस के आगे बड़े धनी राजा भी भक्ति रस से भरे हुए हृदय से माथा झुकाते हैं। ईसवी सन् १८०० के अन्त में नवद्वीप (नदिया) में रामनाथ तर्कसिद्धान्त नामी एक पण्डित हुए हैं। न्यायशास्त्र में वे अपने समय के एक ही विद्वान थे। रामनाथ दरिद्री होने पर भी धन के लालच से कभी किसी के दरवजे नहीं गए, वे नवद्वीप के पास के जंगल में कुटी बनाकर रहा करते थे। और उसी कुटी में शान्त होकर शास्त्र विचारा करते थे। उनकी धर्मात्मा पत्नी ने एक वार किसी दूसरे पदार्थ के न मिलने पर कुटी के पास वाले इमली के पेड़ की पत्ती को उबाल कर अन्न के साथ अपने पति के

आगे रख दिया। दरिद्र रामनाथ ने अमृत समान मान कर उन्हीं इमली की पत्तियों के साथ भोजन किया। नवद्वीप के राजा ने यह सुनकर कि उनके बराबर कोई दूसरा चरित्र युक्त तथा शास्त्र के जानने वाला नहीं है, बहुत सा धन देना चाहा। धनवान् होने से भोग-लालसा बढ़ेगी, पढ़ने पढ़ाने में विघ्न पड़ेगा। सन्तान होने पर भोग विलासी होकर चरित्र छोड़ देंगे, इसी विचार से निर्धन ब्राह्मण ने धन नहीं लिया। उनकी तेजस्विनी पत्नी ने नवद्वीप के राजा से कहा कि—"बेटा! हम को किसी बात की कमी नहीं हैं, हमारे पहिनने के लिए धोती है, जल पीने के लिए लुटिया है, बिछाने को चटाई है। अधिक क्या? बाएँ हाथ में लोहे का कड़ा है, हमको किसी बात की कमी नहीं है।" नवद्वीप का राजा प्रतिप्राणा इस स्त्री के अनुपम चरित्र बल और तेज को देख कर बड़ा चकित हुआ। यह ब्राह्मण दम्पति अपने सरल सदाचार से जो कीर्त्ति छोड़ गए हैं वह कभी नष्ट नहीं हो सकती। बहुत दिन बीते एक सामान्य झोंपड़ी के रहने वाले, जन्म दरिद्री ब्राह्मण ने केवल अपने अच्छे चरित्र के गुण से इस तरह से संयम करके ज्ञान पाया था कि उस से संसार के जीतने वाले महाराज को भी आश्चर्य होता है।

चरित्र वाले पुरुष सदा विवेक के आधीन रहते हैं। वे झूठी बातों से जितनी घृणा करते हैं, उतना ही सच्ची बातों का आदर करते हैं, उनके हर एक काम में उनकी साधुता टपकती है। यूनान देश के परम प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने वार २ दुःख पाने पर भी कभी क्रोध नहीं किया। जिस क्रोध रूपी शत्रु का दबाना बहुत कठिन है; वह मानों आज्ञाकारी सेवक की भाँति सदा सिर झुकाये खड़ा रहता था। मेवाड़ के राणा रायमल के लड़के जयमल के किसी अनुचित काम करने पर एक राजपूत वीर ने क्रोध में आकर उस को मारडाला महात्मा रायमल ने लड़के के घातक को इनाम देकर राजपूत धर्म की मर्यादा की रक्षा की। इसी प्रकार अन्य भी कई दृष्टान्त दिए जासकते हैं। सच्चरित्र लोग इसी तरह से सदा भलाई की ओर श्रद्धा रखते हैं। उनके कृत्यों से भली श्रद्धा, विनय और सुजनता झलका करती है। वे जैसे बड़े बूढ़ों का सन्मान और गुरुजन की ओर भक्ति रखते हैं वैसे ही बन्धु बांधवों पर प्रेम और नौकरों पर स्नेह प्रकट करते हैं। यही नहीं उनके लिए यह सारा विश्व अनन्त प्रेम की डोरी में बंध जाता है। सामान्य लोगों में भी किसी गुण को देख कर उन पर श्रद्धा प्रकट करने से मुंह नहीं मोड़ते। मल्लाह के चाण्डाल होने पर भी उसकी विनति और भलाई से सन्तुष्ट होकर महानुभाव रामचन्द्र ने उसके साथ भाई का सा वर्ताव किया।

सच्चरित्र मनुष्य सदा अपने कर्त्तव्य के करने में लगे रहते हैं। मनुष्य परिवार में बंधा रहता है, इसलिए उस को सब से पहिले माता-पिता स्त्री पुत्र इत्यादि कुटुम्ब-सम्बन्धी कामों को करना पड़ता है। इसके सिवाय हित नात, अपनी जाति तथा परजाति वाले अपने पराये सब के लिए कुछ न कुछ करना ही होता है। चरित्र वाले मनुष्य इन सब कर्त्तव्यों के पालन करने से कभी विमुख नहीं होते। वे माता पिता के साथ आज्ञाकारी सेवक की तरह पेश आते हैं, स्त्री-पुत्र आदियों के साथ शान्त, अच्छे २ उपदेश देने तथा पालन करने वाले की तरह वर्तते हैं। अपनी जाति, परजाति और बिगानों के साथ दया धर्म की निगाह रखते हैं। वे अपने जीवन को तुच्छ समझ कर अपने कर्त्तव्य के निबाहने का यत्न करते हैं। रामचन्द्र जी राज्य

के अधिकारी होने वाले थे, परन्तु कर्त्तव्य पालन से इन्कार नहीं किया झट बलकल वस्त्र पहिन बन जाने के लिये तय्यार होगए।

पहिले इटली देश में पम्पियाई नामक एक बड़ा सम्पन्न नगर था। किसी समय एक फ़ौजी आदमी नगर के पहरे का काम करता था। उसी समय विसुवियस नामी ज्वालामुखी पहाड़ से भयङ्कर आग बरसने लगी। लावे के ढेर से सारा शहर छा गया, पर शहर का पहरेदार अपनी जगह से तिल मात्रभी न हटा। नियत स्थान पर खड़ा हो कर पहिरा देना उसका काम था। आग के उत्पात से बिना भौंह सिकोड़े हुए अपने काम के करने के साथ वहीं पर मर गया। उसका शरीर राख की ढेर में मिलगया बस उसकी कीर्त्ति सदा बनी रहेगी। उसकी टोपी हथियार, ढाल आज तक उसके असाधारण चरित्र गुणों को दिखाने के लिए नेयुलस नगर की प्रदर्शिनी में बड़ी शान से रक्खे हुए हैं।

यत्न के बिना चरित्र नहीं बनता और न उच्चभाव ही बनते हैं। चरित्र की उन्नति के लिये आत्मशासन तथा आत्मावलम्बन की बड़ी भारी आवश्यकता है। पृथिवी के चारों ओर संसार को नष्ट करने के लिये पाप मंडरा रहे हैं। चारों ओर प्रलोभन की सामग्री तय्यार है। पाप और लोभ के बीच में पड़कर आत्मशासन की आवश्यकता जान पड़ती है। जिससे पाप उत्पन्न हो और न करने योग्य हो उसे सदा के लिए घृणा सहित त्याग देना चाहिये। आत्मशासन के अभाव में पापों से दूर रह कर भी अच्छे मार्ग पर चला नहीं जा सकता। ऐसे स्थल में प्रायः बुरे मार्ग पर हम अपने पैर रख देते हैं और अपने चरित्र को बिगाड़ बैठते हैं। जब किसी बुरे काम करने की इच्छा हो तो उसी क्षण आत्मशासन के बल से उस इच्छा को दूर कर देना चाहिए। बचपन की शिक्षा और संगति पर चरित्र का सुधार तथा बिगाड़ बहुत अंशों में निर्भर है। सदा बुरी बात की शिक्षा और बुरे संग से बचे रहना चाहिए।

आत्मशासन के साथ उत्तम शिक्षा और अच्छे दृष्टान्त का संयोग रहना हितकर है, क्योंकि सुशिक्षा से अन्तःकरण धुल जाता है। हृदय बढ़ता है और कर्त्तव्य का ज्ञान अटल हो जाता है। धीरे २ उत्तम शिक्षा और उत्तम दृष्टान्तों से चरित्र विमल तथा सुधर जाता है। चरित्र के शुद्ध न होने से शिक्षा सार्थक नहीं होती, परन्तु उलटा विषय ही फल जाता है। चरित्र की शुद्धता पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए। शुद्ध भाव की रक्षा, शुद्ध विषय की चिन्ता और शुद्ध ग्रन्थों के विचार करने से शिक्षा को जीतना लाभ पहुँचता है, उससे अधिक चरित्र की भी उन्नति होती है।

"अभिलाषा"

(लेखक— श्रीयुत हरिकृष्ण जी मढवाल)

(१)

कल्याणपुर कन्या महाविद्यालय के छात्रालय के एक कमरे में दो युवतियाँ बैठी हुई परीक्षा की तैय्यारी में संलग्न हैं। मेज़ पर कापियाँ और पुस्तकें फैली हुई हैं। दोनों पुस्तकों के अध्ययन में तल्लीन हैं। यकायक कमला ने अपनी पुस्तक बन्द करके कहा— बहिन ११ बज चुके— अब तो सोना चाहिये— प्रातः ४ बजे उठ कर फिर पढ़ना है। मैं तो पढ़ते पढ़ते थक गई—

चन्दाः— अरी, कल परीक्षा का अन्तिम दिन है— ईश्वर अब तक की भाँति उसे भी भली प्रकार निभा देते तो हमारे उत्तीर्ण होने में कुछ भी संशय नहीं रहता।

कमलाः— सब अच्छा ही होगा, उसकी कोई चिन्ता नहीं। देखो तो छात्रालय में कैसी निस्तब्धता छाई हुई हैं। हमारे कमरे का प्रकाश इस तमोमय निशा में किसी अन्धेरी गुफा में रखे हुए कौस्तुभ-मणि से कम नहीं लगता होगा।

चन्दाः— तू स्वयं क्या किसी मणि से कम है? तभी तो तुझे ऐसी अनूठी उक्तियाँ सूझा करती है सच तो यह है कि कमला का निवासस्थान ही मणियों का आगार है।

कमलाः—बहिन! बस मैंने कोई शब्द कहा नहीं कि तू उलट फेर कर मेरे ही लिए उसका प्रयोग करने के लिये तत्पर रहती है। बस अब प्रकाश बन्द करती हूँ। नींद पलकों में झूम रही है। चन्दा तो दो चार करवटें लेकर सो गई लेकिन अभी-अभी की पुस्तक-मग्ना कमला, विचार-मग्ना होकर निद्रा देवी की सुखद गोद को छोड़, कोसों दूर चली गई। उसका व्यग्र मन उसको कभी जीवन-समरस्थली में ले जाकर छोड़ देता है। और कभी सामाजिक जटिल समस्याओं के उलझन में बेचारी उद्विग्न होकर अपनी विचार धारा का प्रवाह दूसरी ओर मोड़ती है। अब की बार सुख सौरभ मयी वाटिका की शान्ति का कोमल दृश्य है। एक ओर संसार के सम्पूर्ण सुख और दूसरी ओर तलवार की पैनी धार पर चलना। स्नातिका बन कर उस को कोई सा एक मार्ग निश्चित करना होगा। वैवाहिक बन्धन से उसे स्वाभाविक ही अरुचि है उसका विचार आते ही वह करवटें बदलने लगती है। स्वतंत्रता की पतवार से वह अपनी जीवन— नौका खेना चाहती है। परीक्षा की समाप्ति पर कल घर ही जाकर वह क्या करेगी यह विचार उसके हृदय-स्थल में बार २ उठता जाता था। विद्यालय से कुछ लड़कियां स्वयंसेविका बन कर आने वाले कुम्भ में जाने की तैय्यारी कर रही हैं। क्या वह भी उस सेवक-संघ में भर्ती हो जाय? घर को पत्र लिख कर माता पिता को समझा देना कोई कठिन काम नही है। ऐहिकसुखों पर हँसने का यह अवसर कितना अच्छा है। इन्हीं संकल्प विकल्पों में तरङ्गित होकर वह सो गई।

* * *

(२)

चन्दाः— कमला ! मैं तो आज रात की ही गाड़ी से चली जाऊँगी । मुझे मोंटगोमरी से श्री माता जी का पत्र मिला है और वे मुझे परीक्षा समाप्त होते ही वहां आने के लिए कहती हैं। हमारा परिवार भी वहीं पर है । तू भी कल प्रातः ही हावड़ा एक्सप्रेस से अपने घर चली जावेगी ।

कमलाः—मैंने घर न जाने का निश्चय किया है।

चन्दाः— तो कहाँ जावोगी ?

कमलाः— हरिद्वार के कुम्भ में ।

चन्दाः— क्या सेवक संघ के साथ ?

कमलाः—हाँ बहिन,मैंने यही विचार किया है।

चन्दाः—तेरी प्रवृत्ति आज कल कुछ निराली हो गई है । देख, अपने घर जाकर माता पिता की सेवा शुश्रूषा और भाई बहनों के निर्मल स्नेह से स्निग्ध होकर, विवाह-विभूति को अपनाकर जीवन की घड़ियों से केलि करना ही मुझे श्रेय जान पड़ता है ।

कमलाः—बहिन ! जिसने जीवन को बालकों का क्रीड़ास्थल समझ रक्खा हो उसका वहाँ कन्दुकादि से केलिकरना आश्चर्य नहीं, लेकिन जिसने उसको एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला बना रक्खा है उसको इतना अवसर कहाँ कि प्रयोगशाला के बाहर भी झाँक कर देखे । अच्छा यह तो हुआ । प्यारी चन्दा ! तेरी जुदाई समीप देख कर मेरा हृदय उमड़ रहा है आज तक तू और मैं धूप और छाया, प्रकाश और ताप, स्वर और शब्द की भाँति एक साथ रही हैं । पर समय आज हमें पृथक् २ कर देना चाहता है । आ जी भर कर रोलें, फिर कदाचित् ऐसा सुखद अवसर न आय ।

चन्दाः—प्यारी कमला, ईश्वर ने चाहा तो अवश्य फिर तुझ से भेंट होगी । तेरी याद मुझे प्रतिपल आया करेगी । मैं घर पहुँचते ही तुझे हरिद्वार के पते से पत्र लिखूंगी (दोनों एक दूसरे से मिल कर रोती हैं) अरी ! अब स्टेशन जाना है । बहुत दूर है, रो रो कर कुछ नहीं बन पड़ेगा । देख मेरे साथ की लड़कियां तैयार हो गई । मैं भी जाती हूँ अच्छा नमस्ते..............

(३)

कमला एक छोलदारी में पड़ी सो रही है। दिन भर के अनवरत परिश्रम से थकी हुई है। पूर्व दिशा में भगवान् भास्कर उन्मीलित नेत्रों से हरिद्वार में उमड़े हुए जन-समुद्र को देख रहे हैं । उनके कोमल किरण-तन्तु भक्तों के हृदयों को अपनी ओर खींच रहे हैं । एकाएक कमला को एक अस्पष्ट ध्वनि ने जगा दिया— भूमि पर पड़े पड़े वह ध्यान से उसको सुनने लगी । स्वर निकट निकट आ रहा था । जान पड़ा कि कोई एक तारे पर कुछ गारहा है— अहा ! कैसा सुन्दर पद है—

“राह के चलने वाले क्यों, तेरे नैनन नींद विराज रही”

कमला उठ बैठी— उसका मन गायक की मधुर-स्वर लहरी के साथ नाचने लगा । हृदय एक अनिर्वचनीय आनन्द से बल्लियों उछलने लगा । तन पर नशा सा छा गया । एक तारे के तारों के साथ उसके हृदय के तार भी झनझना उठे । वह अपने आपको भूल गई । कुछ देर इसी अवस्था में बैठी रही । जब अपने टैंट से बाहर आकर देखा तो गाने वाला साधू दूर चला गया था— उसका स्वर भी पहिले की भाँति अस्पष्ट होगया था ।

कमला नित्यकर्म से निवृत्त हो कर अपने काम पर जाने के लिए लैस होगई । अन्य “सेविकाओं” के समान “संघसर्दार” ने उसकी भी ड्यूटी (Duty) लगा दी— सब के कंधे में नीचे एक झोला लटक रहा था जिस में आवश्यक दवाइयों

के साथ साथ अन्य कई वस्तुएँ भी रखी हुई थी। हाथ में एक एक लम्बी लाठी ली हुई थी और गले में एक badge। अपने कैम्प से बाहर आकर कमला भीड़ के साथ साथ हो ली।

मार्ग में अनेक बच्चों और बूढ़ी औरतों की कमला ने सहायता की। उनको मार्ग से हटा कर उनके आश्रमों पर पहुँचाया— अनेकों के शारीरिक कष्टों पर अपना समय और औषधियाँ लगाई। इसी प्रकार अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए वह सन्ध्या के ६ बजे "हर की पैड़ी के चबूतरे पर गई। यहाँ भीड़ असाधारण थी— आदमियों का दम घुट रहा था— कमला ने बड़ी कठिनाई से अपना मार्ग निकाला और Platfom के बीच में आगई। यहाँ कुछ शान्ति थी। लोग बैठे हुए थे— कमला ने देखा-एक युवक एक मेज़ के आगे खड़ा होकर वक्तृता देरहा है। उसका शब्द कमला तक पूर्ण रूप से पहुँच रहा था— उसने जो कुछ सुना वह यह है—

"हम लोग वहाँ पाँच वर्षों से लगातार कार्य्य कर रहे हैं। उन लोगों के अन्दर अब जागृति का प्रादुर्भाव हो रहा है— अन्य सामाजिक विषयों में हमारा सबसे ज़बरदस्त सुधार अछूतोद्धार और हिन्दी प्रचार है। जहाँ मद्रास में आज से ५ वर्ष पहिले अछूतों पर होने वाले लोमहर्षण-अत्याचारों का ठिकाना न था वहाँ अब उनके अधिकार उनको दिए जाने लगे हैं। किसी भी कार्य-कुशल व्यक्ति को दक्षिण का कार्य्य-क्षेत्र विजय-श्री-दायक है। वहाँ के स्त्री-समाज-सुधार का कार्य्य श्रीमती आनन्दी देवी जी कर रही हैं। वहाँ कार्य्य समाप्त करने के अनन्तर हम सब लोग लङ्का द्वीप और मारिशस में प्रचार करने जावेंगे।

सज्जनो! हमारी तीर्थ यात्रा यही है कि देश में और विदेश में मानव-समाज की सेवा करें। देश और काल के अनुसार कार्य्य करना ही धर्म है। यहाँ आये हुए सहस्रों साधू यदि आज जीवन की यथार्थता को समझने लगें तो देश के नेताओं का बहुतसा कार्य्य हल्का हो जाय। हमारे तीर्थ—स्थान व्यभिचार के अड्डे हो गये हैं। देवद्वार अब "परी द्वार" हो गये हैं। स्नान-कुण्ड को कामान्ध लोग इन्द्र का अखाड़ा समझने लगे हैं। मातृभूमि की रूप-गरिमा आज विदेशियों के विलास की सामग्री बन रही है लेकिन प्यारे भाईयो? काल-चक्र घूम रहा है। परिवर्तनशील संसार में पुरानी जर्जर रूढ़ियों और प्रथाओं के शिरच्छेदन करने में हमें संलग्न रहना चाहिये। विधवाओं का तप्त श्वासोच्छ्वास पंडित-प्रवरों के आसनों को हिला रहा है और अछूतों की चीत्कार"………

इतना कहते ही कुछ लोगों ने शोर करना प्रारम्भ किया और कमला आगे नहीं सुन सकी। युवक उस असंख्य जन समूह में अदृश होगया। लोग अंड बंड बकने लगे। आरक्त पश्चिमाकाश, पर्वत शिखर के ज्वलन्त स्वर्ण मुकुट के सदृश शोभित था। कमला एक क्षण के लिये आनन्द निमग्न होगई। उसके नेत्रों से आनन्द और उल्लास छलकने लगा—

रात्रि को कमला अपने टैण्ट में पड़ी हुई पतितपावनी भागीरथी के मृदुल निनाद को हृदयगंम कर रही है। उस का मधुर शब्द और विचित्र कल कल निनाद, अगभंगी के साथ नाचना कूदना, पुरुष और प्रकृति दोनों के पुरातत्व का साक्षात् प्रमाण देरहा है। कोई दूसरा युक्ति-तर्क नहीं केवल एक तरल संगीत-ध्वनि, एक विनीत स्वर, एक तरंगनिन्दित ग्रीवासञ्चालन के

अतिरिक्त और कुछ नहीं। भगवती भागीरथी के इस अनुनय-प्रवाह में कमला स्वयं भी बह रही है।

कुम्भ भी समाप्त हुआ। अब किधर ? कल्पना और वास्तविकता में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। जीवन यात्रा में अनेक असुविधाएँ भोगनी पड़ेंगी। इसके लिए अनेक आवश्यकताएँ अनिवार्य्य हैं। देह के होते हुए देह से नाते तोड़ना असम्भव है। माता पिताओं से अनायास मुंह मोड़ना अपराध है। वास्तव में यह अपराध भी नहीं है तथापि समय विशेष पर यह भी एक अक्षम्य अपराध दिखाई पड़ेगा। एक बार अवश्य उनकी आज्ञा ले लेनी चाहिए। वंशी और छिद्रविहीन बाँस जिस प्रकार क्रम से वाद्य यंत्र और लाठी का काम करते हैं उसी प्रकार एक ही मनुष्य को भिन्न २ अवस्थाओं में होकर गुज़रना पड़ता है। जो नियम एक धूलिकण में है वही नियम अनन्ताकाश में काम कर रहा है क्योंकि सीमाबद्ध नियम अपनी अंकित रेखा से यव भर भी विचलित नहीं होता है और प्राणिमात्र भी उसी के अन्तर्गत रहते हैं।

श्रेष्ठ जीवन चलच्छक्ति और वृद्धिशक्ति का द्योतक है और इसी की प्राप्ति के लिए सब गुणों को संचारित करना होगा— चलना फिरना होगा। स्थान बदलना होगा।

हम लोग हीरे नहीं-तृण हैं। हीरे की ज्योति हीरे में स्वतः प्रकाशित है उसके प्रकाशित करने के लिए हीरे को तोड़ कर उस में से ज्योति बाहर नहीं निकालनी पड़ती ; परन्तु तृण किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा करता है। उसमें जब आग लगाते हैं तभी उस की ज्योति प्रकाशित होती है, सो भी क्षण भरके लिये।

विदुषी कमला ने इन विचारों की उलझन से न जाने कैसे अपना छुटकारा किया— अपने मनमथन से कौन सा निष्कर्षनवनीत निकाला— परन्तु रात्रि के अन्धकार में उसने अकेले ही उसको निगल डाला और करवट बदली।

(क्रमशः)

उत्तेजना।

वीरो! वृद्धा आर्य्य जाति के प्राण तुम्हीं हो।
निर्बल औ असहाय देश के त्राण तुम्हीं हो।
क्लेशों के अवसान, सौख्य सामान तुम्हीं हो।
सम्प्रति उस के लिए, स्वयं भगवान तुम्हीं हो।
पर कब ? बलि-पथ पर पैर को।
जब अपने रुकने न दो।
सिर धड़ से छुट झुक जाय पर।
तुम झंडा झुकने न दो॥

जीवन।

गुजरात में हिन्दी-साहित्य ✓

ले०-"गुजराती"

१. हिन्दी भाषा का गुजरात में प्रभाव

गुजरात निवासियों को चिर काल से हिन्दी भाषा का परिचय है। रेलगाड़ी के जारी होने से पूर्व अनेक साधु संत तीर्थ यात्रा के निमित्त इस देश में भ्रमण किया करते थे। गुजराती लोग उनकी भाषा समझते, उनके साथ बात चीत करते और उनका आदर सत्कार करते थे। प्रायः ये सारे साधु हिन्दी में ही बात चीत करते अथवा उपदेश करते। जब भिक्षा मांगने साधु जाते तब गुजराती स्त्रिएं इन से पूछती कि "महाराज ? भूख लगी है ? क्या चाहते हैं" ? प्रायः सब गुजराती स्त्रियां हिन्दी भाषा से परिचित होती थीं। उत्तर भारत के तीर्थ स्थानों में जाने वाले गुजराती स्त्री और पुरुषों को हिन्दी बोलना पड़ता था और उससे वे लौटते समय भली प्रकार हिन्दी सीख कर फिर देश लौटते थे। गुजरात का व्यापारी समुदाय भारत में चक्कर लगाता था, तथा आढ़तियों के साथ हिन्दी में ही लेन देन करता था, उस समय में प्रान्तिक भाषाओं के भिन्न २ होने पर भी हिन्दी भाषा समग्र देश व्यापी, प्रचलित एवं सत्कृत थी।

२. विघ्न के कारण

परन्तु रेलगाड़ी के जारी होने से हजारों मीलों तक सीधा ही व्यवहार होने लगा। थोड़े दिवस पर्यटन कर शीघ्र ही लोग लौट आने लगे। इससे यात्रा के बीच में आए प्रदेशों के लोगों का समागम छूट गया। और अंग्रेजी भाषा के प्रचार के बढ़ने से भिन्न २ प्रान्त के लोग मुख्यतया अंग्रेजी में ही व्यवहार चलाने लगे ; जिस से हिन्दी भाषा का उपयोग थोड़ा हो गया और क्रमशः हिन्दी भाषा भुला दी गई। इस अवसर के लोप जाने पर आज हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये उलटा भगीरथ प्रयत्न करने का समय आया है।

३. हिन्दी पर गुजरातियों का प्रेम

गुजरातिओं का प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषा पर बहुत प्रेम है। इस लिए वे हिन्दी को "भाषा" या "भाखा" के नाम से पुकारते हैं और यदि कोई पुरुष गुजराती की जगह हिन्दी में कोई काव्य रचना करता है तो उसकी बड़ी प्रशंसा होती है। कथानक सुनाने वाले भाटचारण लोग अपनी कथा में दो चार कवित सोरठे या दोहे सुनाते हैं जिस से वह सरस हो जाती है। राज रजवाड़ों में कवि लोग हिन्दी में ही राजाओं की कीर्ति का गान करते थे और इस रीति द्वारा गुर्जर-नरेशों में हिन्दी प्रेम उत्पन्न होता था। वे लोग हिन्दी समझते थे यही बात नहीं परन्तु कईयो ने हिन्दी भाषा में काव्य- रचना की है। "प्रवीण सागर" और "तुलसी कृत-रामायण" तो कई रजवाड़ो में और खास कर गृहस्थियों में अभ्यास रूप से वा शौक के लिए पढ़ा जाता है। रजवाड़ो में गान करने वाले गवैये हिन्दी के पद बहुत गाते हैं। साधारण गुजराती जनता का हिन्दी से गाढ़ परिचय है। गुजरात में हिन्दी साहित्य अति प्राचीन समय से प्रचलित है।

४. हिन्दी साहित्य का प्रचार

गुजरात का हिन्दी साहित्य दो प्रकार का है :— (१) हिन्दी कवियों का लिखा हुवा और

गुजरात में बहुतायत से कीर्तित और (२) गुजराती कवियों द्वारा चरित हिन्दी के कवियों द्वारा निर्मित साहित्य में तुलसीदासजी की "रामायण" अथवा "रामचरितमानस" मुख्य हैं गुजरात के भाग्य में कदाचित कोई ऐसा अभागा गाँव होगा जिस में तुलसी कृत रामयण का पाठ न होता हो। लोगों में धार्मिक भावना आज कल की अपेक्षा उस समय अधिक थी इस लिए साधु मण्डलियां रामायण की कथा को याद कर सुनाती फिरती थीं और लोग उनके पास आकर बैठते थे। कबीर नानक, मीरा, सूरदास और तुलसीदास इत्यादि महात्माओं के हिन्दी-पद सन्त मण्डलियों और मन्दिरों में धर्म भावना से बहुत गाए जाते थे। आज भी ये गाए जाते हैं और उन्हें लोग समझते हैं। "पंची करण" और "विचार सागर" इत्यादि वेदान्त ज्ञान से भरे हुए ग्रन्थों के द्वारा सन्त साधु समुदाय वेदान्त का अभ्यास करता था और आज भी करता है। योग वाशिष्ठ रामायण और आत्म पुराण के हिन्दी ग्रन्थ धर्म-भावना और वेदान्त-ज्ञान के लिए लोगों में आज तक भी पढ़े जाते हैं। बल्लभ-सम्प्रदाय का समग्र साहित्य व्रज अथवा हिन्दी भाषा में है। चोर्यासी और बसो बावन वैष्णव के वार्ता लापों की हिन्दी पुस्तक वैष्णवों के घर-घर पढ़ी जाती हैं। और गो स्वामी श्री हरिराय जी कृत शिक्षा पत्र इत्यादि ग्रन्थ बड़े प्रेम से पढ़े जाते हैं। जो कि हिन्दी में ही है। गोसाईं जी महाराज के स्वजन व्रज भाषा बोलते हैं। और वैष्णव लोग भली प्रकार समझते हैं। साहित्य रसिक पुरुषों में मधु मालती का सम्वाद पहिले लोगों में इतना प्रिय था कि "दगलबाद दोना नमें चित्ता चोर कमान" इत्यादि कई इसके वाक्य कहावत रूप से प्रचलित हो गए हैं। रसिक प्रिया और कवि प्रिया नायिका भेद और शृंगार रस के ग्रन्थ हैं। इन में इतना अधिक शृंगार—रस का वर्णन किया गया है कि स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सेवकों को इस का पढ़ना मना किया गया है। रसिक प्रिया एक चातुर्य का ग्रन्थ है और बहुत पढ़ा जाता है। इस लिए "रसिक प्रिया बिन चातुरी क्या गीता बिन ज्ञान" यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। जसुराम का राजनीति का ग्रन्थ आम तौर पर पढ़ा जाता है तथा राज रजवाड़ों में उसका प्रचार है। काव्य साहित्य के अभ्यास के लिए भाषा भूषण, सुन्दर शृंगार, चमत्कार चन्द्रिका, मान मञ्जरी, नाग पिङ्गल इत्यादि ग्रन्थों का अभ्यास करना पड़ता है। भुज की पाठशाला में आज तक इन ग्रन्थों का अभ्यास कराया जाता है। लोगों के घरों में से आजतक इन ग्रन्थों की हाथ से लिखि हुई प्रतियां मिलती हैं। उन से साफ यह पता चलता है कि इन ग्रन्थों का बहुत प्रचार था। दार्शनिक उपदेश देने के लिए हिन्दी के कवि गिरधराय की कुण्डलियां लोगों में बहुत प्रचलित थीं!

५. गुजराती कवियों का हिन्दी साहित्य में भाग

ऊपरके प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि गुजरात में हिन्दी साहित्य का बहुत भाग था। अब खुद गुजराती कवियों ने जो जो ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में रचे हैं उनकी ओर नज़र डालिए।

६. नरसिंह मेहता

गुजराती कवियों का प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषा में मान था। हिन्दी भाषा में भली प्रकार कविता करने से इन्हें मान मिला है। गुजराती के आदि कवि श्री नरसिंह मेहता की हिन्दी में लिखी हुई कविताएं मिलती हैं। गुजराती काव्यसाहित्य

की नींव डालने वाले इस भक्त कवि की यात्रा के निमित्त लिखी हुई हिन्दी-कविता कैसी भक्त रस से पूर्ण है जरा इस का भी स्वाद चख लीजिए नरसिंह मेहता के काव्यों में स्थल स्थल पर हिन्दी प्रयोग मालूम पड़ते हैं। इतना ही नहीं निम्न एक स्वतन्त्र हिन्दी-पद दृष्टी गोचर होता है:—

कुन्ज भवन में खोजती खोजत मदन गोपाल,
प्राणनाथ पावे नहीं तातें व्याकुल ब्रज बाल।
चलत चलत व्याकुल भइ ब्रज बाला,
ढूंढती फिरे आय ताल तमाल।
जाइ बुझती चम्पक जाइ
काहु देख्यो नन्द जी को राई।
पिया संग एकान्त रस विलसन राधानार,
कन्ध चढ़ावत को कह्यो तातें तज गयेऊ मुरार।
तहां और सखी सब आई,
काहु देख्यो मोहन राई।
मैं तो मान कियो मोरी बाई,
तातें तजी गए जु कन्हाई।

७. लल्लू जी लाल का प्रेमसागर

महात्मा तुलसीदास जी ने बालमीकि रामायण पर भगवान रामचन्द्र जी के गुणानुवाद से भरी हुई हिन्दी रामायण की रचना की है। उसी रीति से श्रीमद्भागवत पर साधु प्रेमदास जी ने प्रेमसागर नामक श्री कृष्णचरित्र पर ग्रन्थ बनाया है। प्रेम सागर तो वास्तव में प्रेमसागर ही है। यह ग्रन्थ हिन्दी भागवत नाम से भी कहा जाता है। इस के बनाने वाले साधु प्रेमदासजी एक गुजराती लल्लू जी नाम के सिद्धपुर के ब्राह्मण थे, ऐसा जाना जाता है। सम्पूर्ण भारत की सन्त मण्डलियों में प्रेमदास जी का नाम प्रसिद्ध है

८. महेरामण जी का प्रवीणसागर

गुजरात में तथा हिन्दी भाषियों में ऐसा कोई भी काव्यप्रिय जन न होगा कि जिस ने प्रवीण सागर का नाम न सुना हो। प्रवीण सागर तो वास्तव में प्रवीणता का समुद्र है। काव्य अलंकार, वैद्यक, ज्योतिष, संगीत, इतिहास, पुराण, वेदान्त इत्यादि कोई ऐसा विषय नहीं है जो इस में समाया न हो ग्रन्थ सम्वादात्मक है और सम्वाद की नायिका कला प्रवीण और नायक रस सागर के नाम से ग्रन्थ का नाम पड़ा है। जिस से पता चलता है कि इस में कितना ऐतिहासिक-धर्म पड़ा हुवा है, परन्तु इस बात के स्पष्ट करने की इस स्थल पर जरूरत नहीं। ग्रन्थ में काव्य और अलंकार शास्त्र की अद्भुत खूबी समाई हुई है वर्णन चातुर्य अलौकिक है। यह ग्रन्थ राज रजवाड़ों में परमप्रिय और साहित्य प्रेमियों के लिए आत्मरूप है। बहुत से भाट चारणों का तो यह-जीवन निर्वाह है। गुजरात में ऐसा कोई भी हिन्दी कवि न होगा। जिसकी जबान पर इसके बीस पचीस पद न बसते हों। इस ग्रन्थ के निर्माता काठियावाड़ के राज कोट संस्थान के महाराज महेरामणसिंह जी थे। ये काव्य शास्त्र के उद्भट विद्वान् और रसात्मज्ञ थे, अपने पांच सात मित्रों की सहायता से इन्होंने हिन्दी भाषा में रत्न रूप यह ग्रन्थ तय्यार किया। बिना ग्रन्थ को पूरा पढ़े इसकी खूबी का समझ में आना कठिन है। परन्तु रसज्ञ वाचकों के विनोद के लिए यहां दो चार दृष्टान्त देते हैं। नायिका अपने झरोखे में बैठी है। और नायक बाजार में से घोड़े पर चढ़ा हुवा जाता है। उस समय उत्पन्न हुवा दर्शनानुराग को वर्णन करवाता हुवा कवि नायिका के मुह से कहलवाता है:—

कटि फेंट छोरन में भृगुटी मरोरन में
सीस पेंच तोरन में अति उरझाय के;

मन्द मन्द हासन में बरुनी विलासन में
अनन उजासन में चक चोंध जाय के ;
मोती मनी मालन में सोरुनी दुसालन में
चिकुटी के तालन में चेटक लगाय के ;
प्रेमवाण दे गयो न जानिए किते गयो
सुपंथि मनले गयो झरोखे द्दग लाय के।
सुगन्ध समीर जैसे हंसवार छीर जैसे,
भूजल मिहिर जैसे मयूखी चढ़ाय के ;
पारद कुमारी जैसे हरिस्वांत धार जैसे,
अभ्र एन सार जैसे धूम्र उरझाय के ;
उक्ति एक दन्त जैसे बोध सन्त जैसे,
मिंत बात मिंत जैसे सेनन जनाय के ;
प्रेम बान दे गयो न जानिए किते गयो
सुपन्थी मन ले गयो झरोखे द्दग लायके।
अहि खगराज जैसे, चिरियां सुबाज जैसे,
केहरी सुगाज जैसे, पान निकसाय के ;
जलचर झषाया जैसे मीन २ हाह जैसे,
कीर पंख ग्राह जैसे, फंद उरझायके ,
भागीरथ गंग जैसे, घंटिक कुरंगां जैसे ;
कुहिया कुलंग जैसे, भूतल भ्रमाय के
प्रेमबान दे गयो, न जानिए किते गयो ;
सुपंथी मनले गयो झरोखे द्दग लायके।

इस से अधिक सुन्दर वाणी का माधुर्य और हृदय का भाव अन्य किस जगह मिलेगा। प्रकृति के वर्णन करने में तो ग्रन्थकार ने कुछ बाकी नहीं रखा। चमत्कार से भरी हुई उत्प्रेक्षाएं, विविध रस से भरी हुई उपमाएं, तर्क द्वारा लिखी हुई समस्याएं किस चतुर वाचक को मुग्ध नहीं करती। वर्षा वर्णन का एक द्रष्टान्त देखिए।

बद्दर पै रंच बंधे, दद्दरन घोर डौंरू,
चद्दर बिछाई हरि हरनाई धर की,
तापर रच्यो हे खेल, व्याल करी कुञ्ज बेल ;
बूढ़ कर औंग गैल, गैल बुन्द छरकी ;
चातुकी के काग कक्का, कुलके उलूक राग ;
बाग गीध जाग जाग किए पौन भर की,
बीज मुख ज्वाल साजी, चिनगे खद्योत;
सागर बनाई घन, बाजी बाजीगर की।

इस में मदारी बाजीगर जिस रीति से अपने जादू के खेल करता है उसी प्रकार रूप लगा कर वर्षा ऋतु का वर्णन किया है। तार्किकों से अगम्य समस्याओ को भीः—

एक-नवीन समीर चल्यो,
तिन से जलधार घटा बरसे ;
वे जलधार परीं तीन से,
इक पावक ज्वाल घनी दर से ;
पावक ज्वाल भई तिन से,
इक बेल हरि हि हरी रुरसे ;
कोनहि बेल यत्त हे कहां,
कही ठोर प्रबीन रहे परसे ॥
घट राखत पानी रहे
कारण कोन प्रबीन
घट फूटे पानी रहे
कारण कोन प्रबीन ॥

इत्यादि, उपदेश पद और द्रष्टान्त के लिए उपयोगी काव्य इन ग्रन्थों में से इतना

अधिक प्राप्त हो सकता है कि उत्तम बक्ता को शुद्ध कराने के लिए कहीं दूसरी जगह जाने को जरूरत नहीं। इन में से थोड़ों को भी कण्ठ कर लेने से बहुत साधन हो सकता है। इन में से स्वभाव वर्णन बहुत सुन्दर है:—

सीन हरी दिन एक निशाचर,
लंक लइ दिन एसो हि आयो,
एक दिनां दमयन्ति तजि नल,
एक दिनां फिर हि सुख पायो;
एक दिनां बन पांडव गे अरु
एक दिनां छिनी छत्र धरायो,
शोच प्रबीन कछू न करो,
किरतार यही विधि खेल बनायो ॥

उपरला कवित्त तो बहुत लोक प्रिय और सर्व सामान्य हो गया है। सुन्दर २ कविताओं की शृङ्खलाएं इस ग्रन्थ में से दी जा सकती हैं परन्तु लेख के लम्बे होने के भय से ऐसा न करते हुए हम पाठकों को सारे ग्रन्थ के पढ़ने की अनुमति देते हैं। अपने सारे वेदान्ति कवि, जो ज्ञान की छाया के लिए प्रख्यात हैं उन्होंने भी हिन्दी साहित्य की बहुत सेवा की है। विविध पद्य, साखिएं, दोहे' कवित्त इत्यादि सम्पूर्ण हिन्दी कविताओं का यदि संग्रह किया जाय तो एक मोटा ग्रन्थ बन जाएगा।

रविदास और मानदास नाम के महात्मा गुजराती ही थे और बड़ौदे के पास शेरखी गाँव में जिनकी गद्दी है, उन्होंने हिन्दी में बहुत से पद बनाए हैं जो सन्त मण्डलियों में आम तौर से गाए जाते हैं।

९. दादूदयाल

दादू पंथ के चलाने वाले महात्मा दादू जी अहमदाबाद के नागर ब्राह्मण थे, इन के सम्प्रदाय का सारा साहित्य हिन्दी में ही है! सुन्दर दास जी का बनाया हुआ सुन्दर विलास ग्रन्थ हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध है।

१०. स्वामी दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज के स्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती एक गुजराती पुरुष थे। इन का बनाया हुवा सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ हिन्दी में ही है और वह समग्र भारत में पढ़ा जाता है। स्वामी दयानन्द हिन्दी में ही बात चीत करते और व्याख्यान देते थे। उत्तर भारत में इनकी कीर्ति विशेष विख्यात है। आर्यसमाज सम्पूर्ण भारत में प्रसरित है और मुख्यतया पञ्जाब में इसका अधिक प्रभाव है। प्रायः गुजरात के उत्तम संत साधुओं ने थोड़ी या अधिक हिन्दी में दिव्य रचना की है।

११. स्वामी नारायण सम्प्रदाय के कवियों का भाग

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के साधुओं ने हिन्दी में कुछ कम भाग नहीं लिया। स्वामी मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द इत्यादि इस संत समाज के महात्माओं ने हिन्दी में बहुत साहित्य लिखा है। प्रेमान्द स्वामी का हिन्दीसंगीत-काव्य तो गायकों के कण्ठ के भूषण तुल्य हो गए हैं। "कंगनवा मोहे कर से सरक गयो रे" यह इनकी ठुमरी संगीत समाज को आप्लावित कर देती है। श्री सहजानन्द स्वामी महाराज की सवारी जब बड़ौदे में पधारी उस समय की सवारी के इन के वर्णन की।

"पधारे वट पतन स्वामीरे
पधारे बट पतन स्वामी,
सहजानन्द महाराज पुरण
पुरुषोत्तम बहु नामी"—पधारे०

यह लावनी इस सम्प्रदाय के भक्तों में बहुत प्रसिद्ध है। इनकी हिन्दी भाषा में गज़लें ठुमरियां और लावनियां बहुत प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मानन्द स्वामी तो जाति के बारोट थे और भुज की पाठशाला में पढ़ने के कारण प्रारम्भ ही से हिन्दी में कविता करते थे। ब्रह्म बिलास इत्यादि कितने ही बड़े ग्रन्थ इन्हों ने हिन्दी में लिखे हैं, इनके कवित्त तथा सवैये बहुत प्रभाव कारक तथा भावमय हैं। हिन्दी पद्य इन्हों ने बहुत से लिखे हैं। साधु होते हुए भी इन्हों ने श्रृंगार में लिखा है। परन्तु इन का श्रृंगार अपने प्रिय देव श्री हरि के साथ ही है। वह कितना भाव मय है जरा देखिये:—

जरिहु दिन रैन न चैन हिया,
परदेश पिया अब का करिहुं,
करिहुं तन जार के खाख सखि,
एहि पीर से धीर कैसे धरिहुं
धरिहुं शिर जोगन भेख अबे,
भगवा करिके जग में फिरिहुं,
फिरिहुं कब देखिहुं नेनन से,
कहे ब्रह्म मुनि ब्रह में जरिहुं ॥

कहने कि जरुरत नहीं कि इस प्रेमी सन्त नें अपने प्यारे प्रभु के विरह में भगवे वस्त्र धारण कर लिए थे। बीर रसकी उत्पत्ति तो भाट लोगों में पैतृक है। "सूरमा का अङ्ग" लिखते हुए ब्रह्मानन्द स्वामी ने "कायर पर बलवान चढ़ धाता है" ऐसी वाणी कही है :—

घुरे नगारा जंग का, चढे बदन तब रंग,
अरिदल में टूटी परे, जैसे दीप पतंग,
जैसे दीप पतंग, अंग की आशा पाखे,
मार मर मुख कहे, म्यान तरवार न राखे
दाखत ब्रह्मानन्द जिन करि श्याम जुहारा
चढत बदन तब रंग जंग का घुरे नगारा।

× × × ×

लीना खांड़ा हाथ में कीन्हां शिर कुरबान,
सो जग साचा शूरमा, बैरी करत बखान
बैरी करत बखान, मारि घमसान मचावे
अरये शीष अचूक, तन टूट-टूट होई जावे
दाखत ब्रह्मानन्द, संत को धीर प्रवीना
कीना शीष कुरबान, हाथ में खांड़ा लीना

यह युद्ध का उपदेश उन सन्त लोगों के लिए है जिनके सामने षड् रिपु उपस्थित हैं; वैराग्य के ग्रहण करने वालो के लिए संसार—समरस्थली में उतरने का मार्ग है। सत्संग की महिमा का गान करते हुए ब्रह्मानन्द स्वामी कहते हैं कि :—

राज भयो कहा काज सर्यो,
महाराज भयो कहा लाज बढ़ाई,
साह भयो कहा बान बड़ी,
अरु साह भयो कहा आन फिराई,
देवभयो तोउ कहा भयो,
अह मेव बढ्यो तृषणा अधिकाई
ब्रह्म मुनि सत्संग बिना सब,
ओर भयो तो कहा भयो भाई ॥

परन्तु प्रभु भक्ति का उपदेश देते हुए ऐसी फटकार बतलाई है कि:—

मद मोह में ही मगरूर फिर्यो,
तन ताकता नारियां ताजियां का
सद् गुरु साहिब का रंग चढ्या नहीं
संग किया नर पाजियां का
ब्रह्मानन्द कहे कैसे बान माने
ते तो ग्राक हे जूतियां ओझाझियां का।

ऐसी प्रखर प्रहार करने वाली इन की बहुत सी हिन्दी कवितायें हैं। स्वामी मुक्तानन्द ने भी हिन्दी में बहुत सा साहित्य लिखा है। तुलसीदास जी के बाद इनकी साखियां आज दृष्टान्त रूप से हिन्दी में बहुत बोली जाती हैं। इन तीन संत पुरुषों के सिवाय अन्य कई सम्प्रदायों के सन्तो ने भी हिन्दी में कवितायें लिखीं हैं।

१२—शामलभट्ट.

महा कवि प्रेमानन्द के समकालीन कवि शामल भट्ट ने भी हिन्दी में बहुत काव्य रचना की है। इन की बनाई "अंगद विष्टि" में स्थल स्थल पर कवित्त, कुण्डलियां, छप्पय इत्यादि हिन्दी में लिखे हुए मिलते हैं। इन के दृष्टान्त देने की जरूरत नहीं है। शामल के ऊपर हिन्दी-साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा है और इस लिए हिन्दीवृत्त—दोहा, चौपाई, कवित्त, छप्पय आदि गुजराती में भी बनाए हैं। महाकवि प्रेमानन्द ने हिन्दी में ही सारी कविता की होती, और समग्र भारत में डंका बजाया होता, परन्तु ये गुजराती भाषा के महाभिमानी और गुजराती भाषा को समृद्ध करने के लिये प्रण लिये हुए थे। गुजराती साहित्य में प्रेमानन्द की तरह ये भी एक महारथी हैं। प्रारम्भ में इन्हों ने हिन्दी में ही कविताएं बनाईं थीं। परन्तु अपने गुरु के प्रतिज्ञा-पाश में बंधे होने के कारण इन्होंने भी पीछे से सब कविताएं गुजराती में ही रचीं।

१३ कवि दयाराम.

गुजरात के रस-मस्त कवि श्री दयाराम ने जितनी काव्य रचना गुजराती में झलकाई हैं, उतनी ही काव्य चमत्कार हिन्दी में भी झलकाया है। इन्होंने हिन्दी में "रसिक रंजन" "सतसैया" "वस्तुवृन्द दीपिका' अलक चरित्र चन्द्रिका" इत्यादि स्वतन्त्र सुन्दर ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से संगीत काव्य, पद्य, कवित्त, सवैया इत्यादि लिखे हैं। कवि दयाराम की हिन्ही-वाणियों को जो कोई पढ़ेगा वह बारम्बार मुग्ध हुए विना न रहेगा। इनके कई पद्य तो भिक्षुकों की जीविका हैं और संगीत कविताएं मजलिसों में गवैयों के कण्ठ भूषण रुपाए हैं। रसिक रञ्जन ग्रन्थ तो रसिकों का रंजन करने हारा है। इस कवि की वाणी में चातुर्य तथा रस लबालब भरा है। इस सामान्य बात के कहने में कवि कैसा चमत्कार दिखता है जरा देखिए:—

जो मुख में बांसुरी बजाई रास मण्डल में,
जो मुख अधरामृत सर्वस्व गोपी केरोहै
जो मुख सें गुह्यबात करो राधाप्यारी संग,
जो मुख रसायन रसिकन के घनेरो है,
जो मुख में विश्वरूप माता कुं दिखायो नाथ,
जो मुख बरदान दिये सतत आप चेरो है
सो मुखारबिन्द सो श्रीकृष्णचन्द्र एक वेर
करुणा करि कहिए प्रभो'दासदयोमेरो है'

कवि भक्त था अपने उद्धार के लिए कैसी युक्ति सोचता है देखिए:—

जो पतित पावन तो मो सो ना पतित कोई,
अधम उधार हो तो मो अधम उधारिये,
जो गरीब के निवाज नाथ हूं गरीब साचो,
रंक के रक्षक हो तो मेहूं रंकतारिये,
दीन के बन्धु हो तो मोसों दीन और कौन,
आरत के त्राता मेरी आरती निवारिए,
अशरण शरण हो तो पर्यो शरण तिहारी
कोई भाँति कृष्ण ? काम दया को तो सारिये,

परन्तु इस से आगे--यह युक्ति प्रभु को न भूलो इस लिए-एक और युक्ति लड़ाता है। कवि प्रभु को डर दिखाता है और इस रीति से अपना उद्धार मांगता है, देखिए:—

पतित के पावन हो अधम उद्धारन हो,
हरि बिट्ठल बर्दहेतु तर्क कैसे जाऊंगो ?
सुधो कबु होत तो तो काहे कुं में शरन ले तो,
अबचाहो साधन नाथ ? कहो कहां ते लाऊंगो,
घर को भुलाय कर्यो तेहू रहे कर्मयोग,
परमानन्द स्वामी द्वार दास दुःख पाऊंगो,
रंक जानि दयाकुं डुबाओगे जो दयानाथ ?
अकेलो नहिं डूबुं के ते बर्द कुं डूबाऊंगो ॥

कवि स्वयं परम भक्त था और प्रभु को यदि भक्त का हृदय कुटिल लगे तो एक विचित्र युक्ति से कारण बतलाता है:—

चाहुं बसाय हृदय में, धरुंत्रिभंगी ध्यान
तातें राख्यो कुटिल उर, हो ही असि सो म्यान।

निम्न एक और युक्ति कृपा-याचना में लगाता है:—

करितुण्डगिरे कन चेटी परिवार जीवे,
रच स्हां में देखो मेरी सब पीड़ा जावेगी,
बड़े से जो काहुं करी आतुर की आस पूरे,
आपे सखी सहज मेरो—कहेत अजा नावेगी,
मासुक की मीठी दीठी आसक की जीवनी है
श्रम ना मेहेबुव कों पे मेहेर जवे छावेगी,
कृपानिधे दयानाथ ? जान रायकृष्णचन्द्र
मोय कृपा दृष्टि किए कहा खोट आवेगी ?

इस प्रकार अनेक रत्न कवि के खजाने में भरे पड़े हैं। नए रस में कवि की बाणी विलसती है। कविकी वाणी की मधुरता को देखने के लिए अब कवि की एक संगत कविता लेते हैं:—

पद—राग धनाश्री गति ठुमरी,
मोहे कित ल्याए सघन वन में,
सघन वन में रे सघन वन में--मोहे०
तेरे सों मैं तो डरपत हूं सुन पंछिन के सोर,
कहां संकेत कहां वे रसिया नागर नंद किशोर,
यातों कठिन डगर वेदैयां, क्यों आवेंहांछेल,
तू जाने मैं तो मानुं निश्चे भूलिगेल,--मोहे०
तूं तो बड़ी डरे नाहिंप्यारे, मैं तो छोटा बाल
एते में मिल आए अचानक दया प्रीतम
नन्दलाल ॥ मोहे० ॥

१४—गिरधर दास.

कवि श्री दयाराम के समय में कृष्ण चरित्र के कर्ता वैश्य कविगिरधरदास हो गए हैं। इन्हों ने हिन्दी में पृथक् २ बहुत से पद्य लिखे हैं। हिन्दी भाषा में इन्हों ने कुण्डलियां बड़ी प्रभाओत्पादक लिखी हैं, हिन्दी भाषा की तरफ इनका बड़ा बल था इस लिए गुजराती कविताओं में भी इन्हों ने हिन्दी जबरदस्ती घुसेड़ डाली है, ऐसा देखने में आता है। चरोत्तर के वेणीदास नाम के गृहस्थ साहित्य के बड़े उपासक थे। और खासकर के वे हिन्दी भाषा में ही कविता करते थे। इन्हों ने

तथा बालाशंकर उल्लासराय ने मिल कर एक आलंकारिक ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम "बृहद् बेनीबाल विलास कर के प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का उल्लेख बालाशंकर ने अपने "भारती भूषण" ग्रन्थ में किया है जो अब अप्राप्य है।

१५–नर्मदाशंकर और दलपतराय.

प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य युग के सन्धि के समय कविदलपतराय और नर्मदाशंकर ने हिन्दी में काव्य--रचना की है। दलपतराय ने तो भुज की पाठशाला में अध्ययन किया था इस लिए हिन्दी में बहुत कविता करते थे। "श्रवणाख्यान' नाम का एक हिन्दी ग्रन्थ बना कर इन्हों ने उत्तर भारत के एक राजा को समर्पित किया था। जिस से इन्हें इनाम रूप में बहुत सा द्रव्य प्राप्त हुवा था। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के आचार्य के पास रहकर इन्हों ने 'पुरुषोत्तम प्रकाश" नामक श्री स्वामीनारायण के चरित्र ग्रन्थ को हिन्दी में लिखा है

फुटकर छप्पय कुण्डलियां, कवित्त, सवैया इत्यादि इन्हों ने लिखे हैं इनकी गिरा हिन्दी कविओं से कम हो ऐसी बात नहीं है। प्रवीणसागर की कितनी ही लहरें इन्हों ने लिखि हैं ऐसा कहा जाता है।

१६–कवि सवितानारायण.

कवि सविताराम हिन्दी में बहुत अभ्यस्त थे, और एक हिन्दी साहित्य सभा के प्रमुख होने का इन्हें एक दफा मान भी मिला है। ये हिन्दी में बहुत सी कविता करते थे। एक सतसई इन्हों ने बनानी प्रारम्भ की थी पर वह अधूरी ही रह गई। विहारी सत सई पर इन्हों ने टीका लिखी है।

१७–हीराचंद और जीवाराम आदि.

कच्छ के कवि हीराचन्द कहानजी तथा जीवराम अजरामर होगए हैं। इन्हों ने हिन्दी में ही सारी कविताएं की हैं। हीराचन्द कहान जी दलपत और नर्मद के समकालीन थे। इन्हो ने हिन्दी भाषा भूषण पर एक स्वतन्त्र टीका लिखी है और उपमा विलास नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इन्हों ने इस के सिवाय कितने ही ग्रन्थ तथा फुटकर कविताएं लिखी हैं। कवि जीवराम तो अभी ही हुए हैं। इन्हों ने भी हिन्दी में ही सारी कविताएं लिखी हैं। कविनाथुराम सुन्दर जी काठियावाड़ में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। गुजराती के बाद इन्हों ने हिन्दी में बहुत सी कविताएं की हैं। श्रीश्रेयः साधक अधिकारी वर्ग के संस्थापक श्री नृसिंहाचार्य भी हिन्दी में कविता लिख सके हैं। अहमदाबाद के कविहर्षद हिन्दी में बहुत सी कविता किया करते थे इन्हों ने "नागर वतीसी" नामक एक हिन्दी ग्रन्थ भी लिखा है।

गुजरात के भाट चारण भी हिन्दी में कविता करते हैं। राज रजवाड़ों में अपने बनाए हुए कवित्त सवैया इत्यादियों से सभा–रंजन करते हैं। मुख्यतयाय हिन्दी के ही कवि होते हैं। और इन की कविताएं इतनी अधिक हैं कि यदि इन का संग्रह किया जाय तो एक बड़ा मोटा पोथा तैय्यार हो जाए। इन प्रमाणों से गुजरात का हिन्दी साहित्य बहुत कुछ झलकता है। स्वयं गुजराती कवियों ने हिन्दी साहित्य–क्षेत्र में जो भाग लिया है उसका मूल्य हिन्दी भाषा के प्रचारकों और उत्तेजकों से कम नहीं और भारत की अन्य प्रान्तों की अपेक्षा गुजरात हिन्दी भाषा की सेवा करने में आगे ही रहा है और रहता है। आज भी बहुत से गुजराती विद्वान हिन्दी को भली प्रकार समझ सकते हैं और हिन्दी में अपनी कला को प्रकट कर सकते हैं यह बात गुजरात के लिए गौरवास्पद तथा आदरणीय है। इति

सार्वभौम-वैदिकधर्म

ईश्वर और उसका आदेश

ले०—श्री० पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

प्रस्तावना

वैदिक धर्म सबसे पुराना और सबसे सरल धर्म है। वैदिक धर्ममें ईश्वर सम्बन्धी जो विचार दिया गया है, वह बहुत ऊंचा और सरल है, उस का आचार शास्त्र बहुत सीधा और स्वच्छ है। यह इस ग्रन्थ के लेखक का मत है और इसी के दिखाने के लिये यह पुस्तक आरम्भ की गई है।

लेखक का यह भी सिद्धान्त है कि संसार में व्यापी धर्म वही हो सकता है जो शुद्ध होने के साथ ही साथ सरल भी हो, जिसे समझना कठिन न हो, और जिसे समझ कर व्यवहार में लाना भी सुगम हो। यहाँ सुगमता से भाषा की सुगमता का अभिप्राय नहीं, जो भाषा अपने समय में बिलकुल सुगम हो, वही एक सदी पीछे दुर्गम हो जायगी। जो भाषा जितने पुराने समय की होगी, वह उतनी ही दुर्गम हो जायगी। भाषा की दुर्गमता भाषा के परिवर्तन से सरल हो जाया करती है। पुराने ग्रन्थ का प्रचलित भाषा में अनुवाद कर दीजिये, भाषा की कठिनता दूर जायगी। पुराने अहदनामे की असली भाषा हिब्रू कितनी कठिन है-परन्तु आज बाइबल से सरल पुस्तक मिलना कठिन है। कारण यह है कि उसका सब भाषाओं में अनुवाद मिलता है। भाषा की कठिनता भाषा बदल देने से हल हो जाती है, परन्तु भाव की और अभिप्राय की सरलता भाषान्तर कर देने से दूर नहीं होती। वैदिक धर्म की सरलता से लेखक का तात्पर्य यह है कि वेद ईश्वर और आचार सम्बन्धी जो विचार देता है वे सुगम हैं-भाषा सम्बन्धी कठिनाई के दूर हो जाने पर उन्हें जान लेना, और जान कर इच्छा और प्रयत्न के रहते हुए उसे जीवन में ढाल लेना कठिन नहीं है।

वैदिक धर्म ऊंचा है। वह जीवनमें सहज ही ढाला जा सकता है। तर्क और विवेक उस की पुष्टि करते हैं। यह हम भली प्रकार से दिखा सकते हैं। इस ग्रन्थ में वैदिक धर्म के प्रत्येक अंश की व्याख्या करके, उसे युक्ति और प्रमाण से सिद्ध करने का यत्न किया गया है। किसी वस्तु की उपादेयता को सिद्ध करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उसके गुण दिखा दिये जायं। सूर्य को तेजस्वी सिद्ध करने के लिये किवाड़ खोल कर बाहिर आजाना और आंख उठा कर ऊपर को देख लेना पर्याप्त है। लेखक का विश्वास है कि यदि वैदिक धर्म का स्वरूप दिखा दिया जाय तो हरेक विवेकशील व्यक्ति उसके आगे सिर झुकाने को तय्यार हो जायगा। दिखा देना ही मना देना है यह लेखक का मत है-और इसी विश्वास पर यह दुर्गम उद्योग किया गया है।

वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को मनुष्य मात्र के सन्मुख रखने का कार्य आर्य समाज ने अपने ऊपर लिया है। न केवल शब्द से, अपितु कर्म से भी आर्य

समाज वैदिक धर्म को सिद्ध करके दिखाने का यत्न करता है। इस कारण वैदिक धर्म से आर्यसमाज का अटूट और अनन्य सम्बन्ध है। वैदिक धर्म की व्याख्या करते हुए आर्य समाज के बारे में कुछ न कुछ लिखना आवश्यक है। क्या आर्य समाज वेदों के साथ न्याय करता है? क्या आर्यसमाज वेदों का प्रचार केवल शब्द से कर रहा है? या कर सकता है? प्रचार का उचित साधन कौन सा है? इस संस्था का भविष्य क्या है? इन सब प्रश्नों पर विचार करना वैदिक धर्म के प्रसंग में अत्यन्त आवश्यक समझ कर पुस्तक की समाप्ति का भाग आर्यसमाज के अर्पण किया गया है।

पुस्तक का क्रम इस प्रकार है। सारी पुस्तक चार भागों में बांटी गई है। पहला भाग ईश्वर और वेद के सम्बन्ध में प्रकाश डालेगा, दूसरे भाग में आत्मा और प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले वैदिक धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या होगी तीसरा भाग वर्णाश्रम धर्म के अर्पण होगा। वैदिक धर्म की क्रियात्मक समस्याओं पर इसी भाग में विवाद किया जायगा। चौथा भाग वैदिक धर्म के कार्य में परिणत होने की आशाओं और आर्य समाज के वर्तमान और भविष्य पर प्रकाश डालेगा। इस प्रकार संकल्प यह है कि चार भागों में वैदिक धर्म के हरेक पहलू पर प्रकाश डाल दिया जाय। कार्य बहुत भारी है, और योग्यता की अपेक्षा करता है। लेखक का यह दावा नहीं है कि उसके कन्धे इतना भारी बोझ उठाने की शक्ति रखते हैं या उसमें इतनी योग्यता है, तथापि वैदिक धर्म को समष्टि रूप से एक ही पुस्तक में रखने का कार्य इतना आवश्यक है कि उसके लिये यत्न करना धर्म समझ कर और सब अवान्तर विचारों की उपेक्षा की गई है।

यह उद्देश्य है और यह क्रम है। लेखक अनेक कार्य के झगड़ों में फंसा हुआ होने के कारण नहीं जानता कि वह कितने समय में इस भारी कार्य को समाप्त कर सकेगा—और कर भी सकेगा या नहीं। तो भी विघ्न या अपूर्णता के डर से कार्य आरम्भ करना बुद्धिमत्ता में शामिल नहीं है। पुस्तक का प्रथम भाग धर्म विवेचकों की सेवा में आदर सहित समर्पित है।

प्रथम अध्याय

धर्म

(१)

प्रश्न

धर्म क्या है? यह प्रश्न कुछ आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। जब से मनुष्य जाति के चिन्ह पाये जाते हैं। और जहाँ कहीं भी मनुष्य जाति किसी रूप में रही है, वहाँ किसी न किसी नाम से धर्म अवश्य रहा है। जो वस्तु इतनी पुरानी और इतनी व्यापक है, उसका हम लक्षण पूछें यह कुछ आश्चर्य जनक है, परन्तु जब यह विचार कि जो वस्तु दिन रात व्यवहार में आती है, उसी के बिगड़ने का डर होता है; जो सिक्का दिन रात हाथों में घूमता है, वह अपनी कीमत खो देता है, तब प्रतीत होता है कि पुराना या व्यापी होने से यह नहीं सिद्ध हो सकता कि उस वस्तु के स्वरूप परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। धर्म का भाव जितना ही व्यापी है, उतना ही अस्पष्ट है, भिन्न भाषाओं तथा जातियों में न केवल भिन्न ही हैं, अपितु उलटा है। किसी के लिये मूर्तिपूजा धर्म है, किसी के लिये अधर्म, एक के लिये एक व्यक्ति विशेष पर विश्वास धर्म है, दूसरे के लिये अधर्म। कहीं कर्म का पर्याय वाचक धर्म शब्द है, तो कहीं

केवल विश्वास या ईमान को धर्म शब्द से पुकारा जाता है। कोई विचारक धर्म और विज्ञान की लड़ाई दिखाने का यत्न किया करते हैं, परन्तु अन्यों का मत है कि विज्ञान भी धर्म का अङ्ग है। अभ्युदय और निःश्रेयस का कारण धर्म को बताने वाला वैशेषिक दर्शन द्रव्य गुण और कर्म की व्याख्या को आवश्यक समझता है।

धर्म शब्द के अर्थ में जो गड़बड़ है, वह उस के अनुवाद में प्रतिभासित होता है। कई लोग धर्म और मत को पर्याय शब्द समझते हैं, परन्तु अन्य विद्वान् उन दोनों में भेद करते हैं। प्रायः धर्म का अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए 'Religion' शब्द का प्रयोग करते हैं। अन्य विवेचक उसे ठीक नहीं समझते। 'Law' 'Duty' 'Faith' आदि कई शब्दों से धर्म के अर्थ को बताने का यत्न किया है, परन्तु पूरी सहमति किसी शब्द पर भी नहीं हुई। 'ईमान या 'मज़हब' धर्म के पर्याय वाची हैं, या नहीं, इस प्रश्न का भी अभी तक निश्चित उत्तर नहीं मिला।

इन मतों की विविधता को देख कर यह प्रश्न होता है कि 'धर्म क्या है?' यह प्रश्न सर्वथा निर्मूल या उपेक्षायोग्य नहीं है। 'धर्म धर्म' सब पुकारते हैं, फिर भी पूछना पड़ता है कि धर्म क्या है? इसे आप एक मज़ाक कहें या इस पर दुःख प्रकट करें; सम्भव है आप मनुष्य-जाति की नासमझी पर दो सर्द आहें भरकर रह जायँ, परन्तु यह सत्य है कि धर्म शब्द अब तक भी बहुत संदिग्धार्थ बना हुआ है, और इसका बिना सोचे समझे प्रयोग सन्दिग्धार्थता को प्रतिदिन बढ़ाता जाता है।

(२)

उद्देश्य

धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ जानने की बड़ी आवश्यकता है, परन्तु क्या इस एक अध्याय में लेखक यह आशा कर सकता है, कि वह इतने जटिल प्रश्न को निपटा देगा? जिसे बड़े-बड़े विवेचक न निपटा सके, उसे इस ग्रन्थ का लेखक निपटा देगा, यह विचार यदि लेखक का हो तो दुःसाहस है, और यदि अध्येता का है तो दुराशा है। इस छोटे से अध्याय में धर्म की पूरी व्यवस्था करने का असम्भव उद्योग नहीं किया जायगा, अपितु केवल यह यत्न होगा कि धर्म शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों को दिखाकर यह बता दिया जाय कि इस पुस्तक में उस शब्द को किन अर्थों में लिया जायगा।

(३)

'धर्म' और 'धर्मन्'

वेदों में धर्म शब्द का ही प्रयोग नहीं है, वहाँ धर्मन् शब्द का भी प्रयोग है। 'धर्मन्' शब्द का प्रयोग और उसकी व्युत्पत्ति धर्म शब्द के मूलार्थ पर बहुत-सा प्रकाश डालती है। वेद में धर्मन् शब्द का प्रयोग ऐसे स्थलों में है—

> यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
> ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवाः
> यजुः । ३१ । १६

देवों ने यज्ञ से यज्ञ का यजन किया, यह प्रथम 'धर्मन्' थे। श्रेष्ठ पुरुषों ने श्रेष्ठ कर्मों तथा अग्निहोत्रादि यज्ञों से परमात्मा प्रजापति को प्राप्त किया,—यह उत्कृष्ट 'धर्मन्' है। यहाँ 'धर्मन्' शब्द 'कर्मन्' का पर्यायवाची ही प्रतीत होता है। पहले पद में कहा हुआ कर्म उत्कृष्ट 'धर्मन्' माना गया है। यहाँ धर्म और धर्मन् को एक समझ लेना अनुचित नहीं है।

'धर्मन्' शब्द धर्म का पर्यायवाचक हो सकता है, परन्तु देखना यह है कि उसका धात्वर्थ क्या किया जाता है। निरुक्त में दो स्थानों पर 'धर्मन्' शब्द की व्याख्या है।

धर्मणे धारणाय। निरुक्त । ७ । २५

धर्माणं धारयितारम्। निरुक्त । ९ । २५

पहले स्थानपर 'धर्मन्' का अर्थ धारण किया है, और दूसरे पर धारण करनेवाला है। 'यज्ञेन यज्ञम्' इत्यादि मन्त्र में 'धर्मन्' न धारण किया का वाचक है और न धारण करने वाले पुरुष का। वह धर्म के अधिक समीप है। प्रतीत होता है कि 'धारयितारम्' से निरुक्तकार का अभिप्राय निम्नलिखित है।

"जो अपनी शक्ति से जगत् का धारण करवाते वे 'धर्मन' हैं।"

सत्येनोत्तभिता भूमिः सत्येनोत्तभिता द्यौः।

इत्यादि मन्त्रों में सत्य को जगत का आधार कहा गया है। वेद में 'धर्मन्' और 'धर्म' शब्द सत्य के बहुत समीप पाये जाते हैं। 'ऋत' और 'सत्य' शब्दों से ही वेद में प्रायः वह अभिप्राय प्रकाशित किया गया है, जो धर्म शब्द से प्रकट किया जाता है। कहीं 'सत्य' शब्द 'धर्मन्' का विशेषण भी मिलता है (सत्य धर्मणि भूतये) उन स्थानों पर 'धर्मन' का सत्य शब्द से अभिप्राय वर्णन ही है।

वेद में 'धर्मन्' शब्द 'ऋत' और 'सत्य' का पर्याय वाची तो नहीं— परन्तु उनका समीपवर्ती अवश्य है। परन्तु वेद में उसका प्रयोग बहुत कम होने से उसके 'विशेष' अर्थों तक पहुंचना कठिन है। सामान्य अर्थ जाना जा सकता है और ज्ञात होता है कि वेद में 'धर्मन्' शब्द है भी सामान्यार्थवाची ही। वह सामान्य अर्थ लोकका धारण करने वाला यह प्रतीत होता है।

(४)

क्या ज्ञान और धर्म में भेद है ?

जब हम उपनिषदों का अध्ययन करते हैं तब साधारण दृष्टि से तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि धर्म को ज्ञान से बिल्कुल भिन्न समझा गया है। उपनिषदों में ज्ञान प्रधान है। एक स्थान पर भी ऐसा निर्देश नहीं मिलता जिससे उपनिषदों का उपदेश 'धर्म' की प्राप्ति बताया गया हो। कहीं २ धर्म शब्द आता है, वह कर्म का पर्याय वाची है। यथा—

'त्रयो धर्मस्कन्धाः, यज्ञो ऽध्ययनंदानमिति'। धर्म के यहां तीन स्कन्ध बताये गये हैं। यज्ञ, अध्ययन और दान। ये तीनों कर्म हैं। ज्ञान या विश्वास का उपनिषदों के धर्म शब्द में अन्तर्भाव नहीं है। धर्म केवल ज्ञान से अतिरिक्त कर्तव्य समूह समझा गया है। उपनिषदों में धर्म शब्द का प्रयोग बहुत ही कम है, जहां कहीं है वह भी ज्ञान के अतिरिक्त कर्म का वाचक है। परन्तु अगले विवेचन से ज्ञात होगा कि उपनिषदों में भी धर्म से ज्ञान का ऐसा निर्वासन नहीं किया गया है।

धर्मशब्द क्या है, और क्या नहीं है, यह स्मृतियों से भली प्रकार जाना जा सकता है। दर्शन ग्रन्थों में यद्यपि धर्म शब्द बहुत बार नहीं आया, परन्तु जहां कहीं आया है, इतनी स्पष्टता से आया है, और उसका भाव इतना असन्दिग्ध हो जाता है कि दर्शन ग्रन्थ भी धर्म शब्द का अर्थ और विस्तार जानने में हमारी बहुत सहायता कर सकते हैं।

(५)

दर्शन ग्रन्थों में धर्म का विस्तृत अर्थ

दर्शनग्रन्थों में से वैशिषिक और मीमांसा में धर्म का व्यवच्छेदक लक्षण किया गया है। उस में से वैशेषिक का बहुत विस्तृत और मीमांसा का परिमित है। वैशेषिक् कार ने धर्म का यह लक्षण किया है—

यतोऽभ्युदय निः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।

जिस से (अभ्युदय) इस लोक का ऐश्वर्य और (निःश्रेयस) परलोक का सुख प्राप्त हो वह धर्म है। कर्म ज्ञानमय हो या विश्वासमय-जो भी बहुत अभ्युदय या ऐश्वर्य में साधनभूत हो, वह धर्म कहा जायगा। यह अर्थ बहुत विस्तृत है—और कर्म की चौड़ी से चौड़ी सीमाओं को प्रगट करता है। धर्म का रूप विशाल है ही-उसका ठीक अनुरूप लक्षण इस से अच्छा और कहीं शायद ही किया गया हो। यह फल द्वारा धर्म का लक्षण होने से फल लक्षण कहा जा सकता है।

मीमांसाकारने धर्म का इस प्रकार लक्षण किया है—

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।

ऐसा करो, ऐसा न करो, इस प्रकार की आज्ञाओं से विहित या निषिद्ध कर्म का नाम धर्म है। इस में धर्म के कारण द्वारा धर्म का स्वरूप बताया गया है।

इन दोनों लक्षणों में देखने में भिन्नता है परन्तु वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। एक में धर्म का कारण बताया गया है, दूसरे में कार्य। धर्म वेद से जाना जाता है और अभ्युदय तथा मोक्ष का साधन है। एक में ज्ञान का हेतु बताया गया है दूसरे में फल। विरोध कोई नहीं। इतना अवश्य है कि यह स्पष्ट जान लेने से कि वेद धर्म का ज्ञान हेतु है, उसकी सीमायें परिचित हो जाती हैं, और यह जानकर कि जो भी अभ्युदय तथा ऐश्वर्य साधन हो वह धर्म है उसकी सीमायें बहुत विस्तृत हो जाती हैं, परन्तु जो लोग यह बात मानते हैं कि वेद में इहलोक और परलोक के सुख के समान साधनों का विधान कर दिया गया है, उनके लिये दोनों लक्षण एक हैं।

यह भी यहां ध्यान में रखना चाहिये कि मीमांसा के सूत्र के केवल कर्म परक अर्थ भाष्यकारों ने किये हैं। जो ज्ञान विधि और निषेध का सहायक हो सकता है, उसे मीमांसा में आवश्यक ही माना गया है। शब्द की नित्यता पर मीमांसा में लम्बा चौड़ा शास्त्रार्थ है। यदि यह मानें कि मीमांसाकार ज्ञान का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं मानते तो मीमांसाकार के व्यवहार से ही उसका खण्डन होता है। मीमांसा के सूत्रका शब्दार्थ इतना है 'प्रेरणा से विहित अर्थ धर्म है।' अर्थ शब्द से ज्ञान को निर्वासित नहीं किया जा सकता। वेद में ज्ञान भी प्रतिपादित है,कर्तव्य कर्म भी। विधि निषेध के समझने में ज्ञान परम सहायक होता है।

इस प्रकार दोनों लक्षणों में परस्पर विरोध नहीं है। धर्म शब्द प्रधानतया विधि में आये हुए कर्मों का नाम है। वह अभ्युदय और निःश्रेयस का हेतु होता है। कर्तव्य कर्म में सहायक होने से वह भी धर्म की परिधि से बिल्कुल बाहिर नहीं हो सकता-वह कर्म के सहायक रूप से साथ रहेगा। हमने देखा था कि उपनिषत्कार ने ज्ञान से अतिरिक्त धर्म बताया है। परन्तु उसमें भी 'अध्ययन' को धर्म कहा गया है। अध्ययन 'ज्ञान प्राप्ति' का नाम है। उपनिषत्कार के मतानुसार भी ज्ञान को धर्म के लिये आवश्यक माना गया है, और ज्ञान प्राप्त करने को धर्मों में गिना गया है।

वेद में 'धारण करने वाला' इस अभिप्राय में धर्म शब्द का प्रयोग है। यह भी बहुत विस्तृत लक्षण है। इस में भी कर्म के सहायक रूप में ज्ञान का समावेश कर लेने में विशेष हानि नहीं।

परन्तु धर्म शब्द में प्रधान तया कर्म का समावेश है, ज्ञान उस के सहायक रूप से ही प्रवेश कर सकता है।

(६)

स्मृतियों में धर्म

स्मृतियों का विषय ही 'धर्म' है, जब हम उनके किये धर्म के लक्षण और व्याख्यान पर दृष्टि डालते हैं तो हमें दर्शनों की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार मिलता है। कई विचार परिपक्व हो गये हैं, कई अधिक विस्मृत होगये हैं। इसका एक कारण समय है और दूसरा यह है कि जहां वैशेषिक या मीमांसा तत्वज्ञान के ग्रन्थ थे, वहाँ स्मृतियों का उद्देश्य ही क्रियात्मक धर्म बताना है।

मीमांसा में कहा गया था कि 'विधिनिषेध द्वारा प्रतिपादित अर्थ धर्म है' स्मृति बतलाती है कि-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधम्प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् । मनु २अ.

वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मा का प्रिय-यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण है। यह धर्म का कारण लक्षण है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशक धर्मलक्षणम् । मनु ।

यह धर्म का स्वरूप लक्षण है।

स्मृति के कारण लक्षण और स्वरूप लक्षण को देखने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि स्मृतियों के अनुसार धर्म की परीक्षा के-एक नहीं-चार साधन हैं। यद्यपि अन्य स्थान पर स्मृतियों ने भी माना है कि श्रुति से विरुद्ध होने पर अन्य कोई लक्षण माननीय नहीं है। धर्म का स्मृतियों में प्रतिपादित स्वरूप इस बात को व्यक्त करता है कि धर्म क्रियात्मक वस्तु है। किन्तु धर्म में, और विद्या का गिना जाना यह भी बताता है कि धर्म से ज्ञान का सर्वथा निर्वासन नहीं है। ज्ञान भी धर्म के क्रियात्मक जीवन में सहायक है। "भगवद्गीता को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वह भी ज्ञान और कर्म के समुच्चय को ही धर्म मानता है।

(७)

धर्म क्या नहीं है ?

इस ऊपर के विवाद से हम यह जान सकते हैं कि धर्म क्या नहीं है? केवल 'ज्ञान' को जो लोग धर्म मानते हैं, हमारा विवेचन उनका खण्डन करता है। केवल 'कर्म' को जो विचारक धर्म शब्द का वाच्य मानते हैं, वह भी हमारे ऊपर के विचार के प्रतिकूल ठहरते हैं। कई लोग विश्वास (Faith) को धर्म का पर्यायवाची समझते हैं, वह भी ठीक नहीं। जिस विश्वास का क्रिया पर उत्तम असर न पड़े, वह निकम्मा है। केवल विश्वास धर्म के साधनों में से एक हो सकता है धर्म के क्षेत्र को नहीं व्याप सकता। धर्म से मुख्यभाव आचरण तथा वृत्तका है। जहाँ तक आचरण तथा वृत्तका ज्ञान सहायक है, वहाँ वह धर्म का साधन है परन्तु जहाँ तक वह आचरण में शामिल है, वहाँ स्वयं धर्म है। केवल ईश्वरविश्वास, केवल अग्नि होत्र, केवल रीतिरिवाज इनमें से कोई धर्म नहीं हो सकता। ऊपर का विवेचन इन बातों को स्पष्ट करदेता है।

(८)

धर्म क्या है ?

वैदिक साहित्य में धर्म शब्द उस विस्तृत सिद्धान्त के लिये आता है जो 'धारण करता' है। ऋत और सत्य उसके बहुत समीपस्थ हैं। जो संसार को स्थिति को धारण करता है, वह धर्म है। उसे नियम, व्यवस्था, मर्यादा, कुछ कहिये। वह कैसे जाना जा सकता है ? इस प्रकार का उत्तर ढूंढने में यत्न करके ऋषि चार कसौटियों पर

पहुँचे। वह चार कसौटियां श्रुति, स्मृति, सदाचार, और 'आत्मनः प्रिय' ये हैं। इन चार कसौटियों से धर्म की अर्थात् संसार का शासन करने वाले व्यापक नियमों की परख की जा सकती है। धर्म शब्द को बहुत विस्तृत अर्थों में लें तो वह सारे जगत को धारण करने वाले नियमों का समूह है। उसे केवल मनुष्य के सम्बन्ध में लें तो वह मनुष्य के जीवन सम्बन्धी सब नियमों का समुच्चय है। वेद में धर्म शब्द पहले—अत्यन्त विस्तृत—अर्थों में आया है। दर्शनों और स्मृति ग्रन्थों में वह दूसरे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

दर्शनों और स्मृतियों में धर्म का जो क्षेत्र माना गया है वह कुछ कम नहीं है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिस नियम के पालन से ऐहलौकिक या पारलौकिक सुख प्राप्त हो, वह धर्म है। मनुष्यजीवन सम्बन्धी कोई भी कार्य इस क्षेत्र से पृथक् नहीं है। मीमांसा के अनुसार जो विहित है वह धर्म है। जो लोग वेद के विधिविस्तार को जानते हैं, उनसे छिपा नहीं है कि जीवन सम्बन्धी कोई भी विषय वेद के विधान से नहीं बचा। स्मृतियों की ओर देखिये तो भी धर्म की परिधि बहुत लम्बी चौड़ी दिखाई देती है। एक मानव धर्मशास्त्र ही को लीजिये। मनु की रचना केवल धर्म का ज्ञान कराने के लिये हुई है। मनुमहाराज एकान्त में बैठे थे। ऋषि लोगों ने उनके समीप पहुँच कर निम्नलिखित प्रार्थना की।

> भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
> अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तु मर्हसि । मनु । १ । २

भगवन! सब वर्णों और अन्तरप्रभवों के धर्मों का क्रम से वर्णन करने की कृपा कीजिये। मनुमहाराज धर्म का वर्णन आरम्भ करते हैं। मनुमहाराज की सम्मति में धर्म का क्षेत्र कितना विस्तृत है-यह जानने के लिये एक वार मनुस्मृतिकी विषय सूचि पर दृष्टि डालना ही पर्याप्त है। पुरुष के चारों आश्रमों के कर्तव्य, राजनियम, सामाजिक नियम, परलोककी व्यवस्था ये सब विषय धर्म के अन्तर्गत हैं। मनुष्य सृष्टि सम्बन्धी कोई भी ऐसा विषय नहीं जो मानव धर्म के अन्तर्गत न हो। धर्म और नियम अपने व्यापक अर्थों में एक हैं। जीवन सम्बन्धी कोई नियम धर्म से बाहर नहीं है।

(६)

Religion और धर्म

पहले पाश्चात्य विद्वान धर्म शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए Religion शब्द का प्रयोग किया करते थे, परन्तु अब छोड़ रहे हैं। अब वे लोग स्वीकार करते हैं कि धर्म शब्द का पर्यायवाची अंग्रेजी भाषा में कोई शब्द नहीं है। पर्यायवाची शब्द ऐसा होना चाहिये कि वह उस सारे भाव को कह सके, जो मूल शब्द में आता है। हम अभी देखेंगे कि Religion शब्द का विषय बहुत संकुचित है।

कई लोग धर्म शब्द का अनुवाद Duty करते हैं। Duty कर्तव्य है। कर्तव्य शब्द केवल चेतन के साथ सम्बन्ध रखता है और आध्यात्मिक महत्व नहीं रखता। कर्तव्य तब बनता है, जब एक नियम से परिणाम निकाल लिया जाता है। वह नियम धर्म है, उसके कारण मनुष्य के लिये मार्ग अनुसरणीय होता है वह कर्तव्य कहाता है। कर्तव्य एक विशेष अवसर और दशा से सम्बन्ध रखता है, धर्म सामान्य नियम है। धर्म कारण है, कर्तव्य कार्य है। अथवा इसे और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि धर्म व्यापक है, कर्तव्य व्याप्य है। इस कारण धर्म शब्द के अर्थ को duty शब्द नहीं कह सकता।

धर्म और Religion में क्या भेद है? यह स्पष्ट कर देना बहुत आवश्यक है। अब दोनों शब्दों को एक दूसरे के पर्यायवाची न समझते हुए भी लोग ग्रन्थों में और व्यवहार में दोनों का बहुत झमेला कर देते हैं। जो लोग Religion को धर्म का शब्दानुवाद नहीं मानते, वे भी भावानुवाद अवश्य मान लेते हैं। Religion के विषय में A Study of Religion में मार्टिन्यू (Martinue) महाशय लिखते हैं—

Religion can be taken in its simplest form as man's recognition of a world order, or a system of things in which he himself has merged.

'Religion (is a) belief in an everlasting God, that is a Divine mind and will, ruling the universe and holding moral relations with mankind.

Religion शब्द का अत्यन्त सरल अर्थ लेना हो तो यह है कि मनुष्य संसार में व्यवस्था को अंगीकार करे, एक ऐसे संगठन को स्वीकार करे जिस का वह केवल एक भाग है। वह स्वीकृति धर्म कहायगी।

Religion नित्य परमात्मा में विश्वास का नाम है। अर्थात् एक दिव्य मनन शक्ति और इच्छा शक्ति जो संसार का शासन करती है, और मनुष्य जाति के साथ आचार सम्बन्धी सम्बन्ध रखती है—उस में विश्वास Religion है।

संसार में काम करती हुई व्यवस्था Religion नहीं अपितु उसे अंगीकार करना Religon है। दिव्य शक्ति का मनुष्य जाति से जो सम्बन्ध है—वह Religion नहीं, उस दिव्य शक्ति में विश्वास Religion है। विश्वास का नाम Religion है। इसीलिये उसका दूसरा नाम फेथ (Faith) है। 'ईमान' 'मजहब' ये दोनों शब्द भी विश्वास के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

एक ओर धर्म शब्द है और दूसरी ओर 'Religion' 'Faith' 'मजहब' 'ईमान' ये सब शब्द हैं। धर्म में और इन शब्दों में भेद स्पष्ट होगया है। धर्म कहते हैं, संसार के चेतन अचेतन पदार्थों के संचालन करने वाले व्यापक नियमों को। सदाचार सम्बन्धी नियम, ईश्वर का अधिष्ठातृत्व यह सब उसके भाग हैं। वह इन तक परिमित नहीं। अन्य ऊपर कहे हुए सब शब्द मनुष्य के ईश्वर विश्वास की ओर निर्देश करते हैं। वह विश्वास, धर्म में एक नियम के रूप में अंग होकर प्रवेश कर सकता है उसके सम्पूर्ण रूप को नहीं कह सकता।

(१०)

धर्म और ईश्वर विश्वास

यद्यपि धर्म और Religion और ईमान में बहुत भेद है, तथापि यह बात असन्दिग्ध है कि भारतवर्ष की प्रजा में धर्म का जो स्थान है, क्रिश्चियनों तथा इस्लाम के अनुयायियों में Religion का वही स्थान है। Religion का जो प्रामाणिक लक्षण ऊपर दिया गया है, योरप के विद्वान प्रायः इस में सहमत हैं। हम यदि संस्कृत में Religion का पर्यायवाची शब्द दें तो 'आस्तिकता' या 'ईश्वर विश्वास' आदि शब्द मिल सकते हैं। धर्म और ईश्वर विश्वास भिन्न है परन्तु क्या उन दोनों में कोई परस्पर सम्बन्ध है?

ईश्वर में विश्वास करने से मनुष्य की आत्मा पर क्या २ प्रभाव पड़ते हैं यह तो ईश्वर प्रकरण में विस्तार से लिखा जायगा, यहां इस बात का

निर्देश मात्र करना है कि ईश्वर विश्वास का धर्म से गहरा सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध अटूट तो नहीं है—क्योंकि ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं है, जहां ईश्वर विश्वास के विना भी धर्म प्रेम रहा हो परन्तु यह विना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि अधिकांश में इन दोनों का सहवास ही पाया जाता है। कारण क्या है?

धर्म संसार के चलाने वाले व्यापी नियमों का नाम है। मनुष्य की प्रकृति है कि वह नियम को नियन्ता के जोर पर मानता है। नियम कैसा है? यह कोई २ विचारशील ही देखता है, परन्तु नियम किस का बनाया हुआ है? क्या नियम का बनाने वाला नियम का पालन भी करा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तरों पर ही प्रजा में नियम पालन की मात्रा का आधार रहता है। धर्म रूपी नियम अच्छे हैं, इस कारण उनके मानने में गिने चुने लोग प्रवृत्त होते हैं, परन्तु उनका चलाने वाला परमात्मा है, वह नियम भङ्ग करने वाले को अवश्य दण्ड देगा, वह धर्मात्मा को अवश्य पारितोषिक देगा, उसका न्याय अटल है—ये विचार धर्म में प्रवृत्ति कराने के अधिक सहायक होते हैं। नियम तभी माना जाता है यदि उसके पालन में लाभ और न पालन में हानि दिखाई दे, ऐसे लोग बिरले ही होते हैं, जो निष्काम भाव से पुण्य करते हैं। हानि लाभ का निश्चय देने वाले जज की शक्ति पर किया जाता है। जिस राज्य की कचहरी या पुलिस कमजोर है वहां राजनियम का पालन भी नहीं होता।

ईश्वर धर्म रूपी नियमों का बनाने वाला, और उनको चलाने वाला है। वह सर्वशक्तिमान् है। उसके हाथ से कोई अपराधी बच नहीं सकता। यह विश्वास धर्म के पालन में बड़ा भारी सहायक होता है। इस से प्रतीत होता है कि ईश्वर विश्वास धर्म के पालन में बड़ा भारी सहायक है।

कहीं २ धर्म की स्थिति विना ईश्वर विश्वास के भी पायी जाती है। उसका कारण यह है कि या तो ऐसे स्थानों में भलाई की ओर पूर्व जन्म के संस्कारों से ऐसी प्रबल प्रवृत्ति होती है कि किसी अन्य प्रेरक की आवश्यकता नहीं रहती; या ऐसे स्थानों पर नियामक ईश्वर के स्थान पर 'प्रकृति' 'Nature' 'कुदरत' आदि को रख दिया जाता है। वस्तु कोई रख दीजिये, यदि उसे आप नियम की स्थापना और रक्षा करने वाली मानते हैं तो वह धर्म के लिये प्रेरक कारण बनाती है। बौद्ध लोगों ने कर्म को ही अपरिमित शक्ति से सम्पन्न मान कर धर्म के प्रति प्रेरक कारण बनाया। उनका काम भी चल गया। बौद्ध धर्म ने करोड़ों को ही धर्म का अनुयायी बनाया। ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं है, परन्तु ध्यान से देखा जाय तो वहां भी ईश्वर विश्वास को किसी न किसी रूप में रखने का यत्न किया ही जाता है।

(११)

धर्म और उसका प्रयोग

सामान्य नियम, जो मनुष्य जीवन का शासन करते हैं, धर्म कहाते हैं। मनुष्य के व्यवहार में जब वह विषय लाये जाते हैं, तब सामान्य रूप में नहीं रह सकते, उन्हें विशेष रूप में आना पड़ता है। मनुष्य उन नियमों को विशेष व्यवहार में लाता है। उन नियमों के पालन का या वास्तविक जीवन में उन नियमों के आ जाने का नाम सदाचार है। उस व्यावहारिक शास्त्र का नाम सदाचार शास्त्र या Ethics है।

सदाचार श्रेष्ठ आचार जब किसी जाति के प्रयोग में आने लगता है, तब धीरे २ वह मौलिक

साधारण नियम लोगों के सन्मुख विशेष क्रियाओं के रूप में आते हैं। जाति के सब लोग इतने समझदार नहीं होते कि वह उन मौलिक नियमों को समझ सकें। वह अपने से पूर्वजों और अधिक योग्यों के व्यवहार को देख कर अवस्थाओं के अनुकूल विशेष नियम बना लेते हैं और उनके अनुसार जातीय और व्यक्तिगत जीवनों को ढाल देते हैं। वह क्रमागत विशेष नियम 'स्मृति धर्म' में गिने जाते हैं।

सब लोग स्मृतियों तक भी नहीं पहुंच सकते। बहुतसों में स्मृतियों तक पहुंचने की शक्ति नहीं, और बहुत से इतनी फुर्सत ही नहीं रखते कि नित्य के काम धन्धे छोड़ कर स्मृतियों से इतिकर्तव्यता जानें। वे अपने बुजुर्गों के चलन के अनुसार चलते हैं, और उसी को धर्म मान लेते हैं। यह 'आचार' या श्रेष्ठों का आचार इस अर्थ में 'सदाचार' कहाता है।

समय आता है कि सामान्य नियम या तो सभी को भूल जाते हैं, या कुछ इने गिने आदमियों के पेट में रह जाते हैं। स्मृति धर्म को स्मृतियों से खोजने का यत्न भी सब नहीं करते। आचार-अपने से बड़ों का आचरण ही उत्कृष्ट हो जाता है, वही माना जाता है, उसी से लोग अपने आचरणों के लिये रास्ता बनाते हैं। तब जिस रास्ते का लोग अवलम्बन करते हैं, उसे 'रूढि' या रिवाज कहते हैं।

रूढि या रिवाज धर्म नहीं है। वह धर्म रूपी सामान्य नियमों के संकुचित रूप स्मृति धर्म अथवा श्रेष्ठों के आचरणों का व्यावहारिक मोटा रूप है। श्रेष्ठों का आचरण भी इन्हीं अर्थों में धर्म है कि वह सामान्य नियमों का एक यथासम्भव विशुद्ध प्रयोग है। स्मृति धर्म धर्म का विशेष दशाओं के अनुकूल प्रयोग है। दशाओं को नापने का काम स्मृतियों के बनाने वाले करते हैं। इस कारण स्मृति धर्म और आचार इन दोनों में मनुष्य बुद्धि का आवश्यक प्रवेश रहता है। रूढि में बुद्धि की अपेक्षा मनुष्य में विद्यमान अनुकरण शक्ति का अधिक प्रयोग रहता है। स्पष्ट है, कि इन तीनों की ही दशाओं में स्मृति, आचार और रूढि में, क्रम से मनुष्यगत निर्बलताओं की अधिकाधिक सम्भावना है।

कभी २ यह तीनों आपस में उलझ जाते हैं। रूढि धीरे २ स्मृति में शामिल हो जाती है। श्रेष्ठों के आचरण रूढि के प्रतिबिम्बमात्र रह जाते हैं। आचार की छाया स्मृति और रूढ़ि दोनों पर पड़ती है। उस समय इन तीनों को भिन्न भिन्न ढूंढ निकालना बहुत कठिन हो जाता है।

इस पुस्तक में शब्दों का प्रयोग ऊपर लिखे अनुसार ही होगा। संग्रह रूप में उन्हें नीचे दिया जाता है।

धर्म = जीवन सम्बन्धी सामान्य नियम

स्मृति धर्म = भिन्न भिन्न ग्रन्थों में प्रतिपादित व्यावहारिक धर्म

आचार = श्रेष्ठों का आचरण। श्रेष्ठ से यहाँ वृद्धों का ग्रहण करना चाहिये।

सदाचार = उत्तम आचरण।

मत = भिन्न २ महापुरुषों द्वारा प्रचारित स्मृति धर्म। जैसे बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, शैव, वैष्णव आदि।

सम्प्रदाय = मतों के अवान्तर भेद।

(क्रमशः)

भारत-साम्राज्य-विस्तार

[लेखक— नारायण रामरख देशपांडे]

गत अंक में यह सिद्ध किया गया है, कि भारत-साम्राज्य-विस्तार आफ्रिका खंड तक हो चुका था, परन्तु जिन देशों का उल्लेख किया गया है वे सब दक्षिण आफ्रिका से सम्बन्ध रखते हैं, मषण और साची प्रांत दक्षिण आफ्रिका में हैं, इस लिये यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सम्पूर्ण आफ्रिका खण्ड पर आर्यों का साम्राज्य था, आज के लेख में इसी पर विचार करेंगे कि वैदिक साहित्यमें उत्तर आफ्रिका का सम्बन्ध रखने वाले आधार मिल सकते हैं या नहीं। वैदिक साहित्य में निम्नलिखित मंत्र मिलता है—

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम्।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १९ ॥ सू० २६ मंत्र ९

इस मन्त्र पर जो भाष्य है वो नीचे उद्धृत किया जाता है—

विश्वमना ऋषिः श्वेतयावरीनाम्न्या नद्यास्तीरे अश्विनावस्तौत्। अनया नद्यपि स्तुतवतीत्याह उतापिच श्वेतयावरी श्वेतजला यातीति श्वेतयावरी। कीदृशी। सिंधुः स्यंदमाना हिरण्यवर्तनिः हिरण्मयस्वीयमार्गा हिरण्योभयकूला स्या. एषा श्वेतयावरी नामिका नदीनां अन्यासां नदीनां मध्ये वां युवां वाहिष्ठा स्तुत्या अतिशयेनागन्त्री भवति। एषापि युवां स्तौतीत्यर्थः। यद्वा एषा नदी युवयो रथस्य वाहिष्ठा वोढृतमा सती प्रियकरी भवति यस्मादहमस्याः तीरे युवामस्तुवमिति ॥ भाष्यम् ॥

भाष्य के आरम्भ में बतलाया गया है कि विश्वमना ऋषि ने श्वेतयावरी नाम की नदी के किनारे अश्विनिकुमारों का स्तवन किया। श्वेतयावरी श्वेत जल से सम्पन्न होकर बहने वाली। सिंधु स्यंदमान (वहने वाली)। हिरण्यवर्तनि जिसका मार्ग हिरण्मय है अथवा जिसके दोनों किनारों पर सुवर्ण है।

" हे अश्विनीकुमारो ! इतर नदियों से शीघ्र और जल्द बहा ले जाने वाली श्वेतयावरी नाम की नदी है" यह इस मंत्र का स्पष्ट और सरलार्थ है, तथापि भाष्यकारों ने वाहिष्ठा पद का अर्थ अतिशय स्तवन करने वाली किया है परन्तु इस अर्थ से स्पष्टतया अरुचि उत्पन्न होती है इसलिये उन्होंने यद्वा से प्रारम्भ करके "तुम्हारे रथ को अतिशय वेग से बहा ले जाने वाली" अर्थ बतलाया है। अस्तु।

इस मंत्र के अर्थ पर विचार करने से पहिले उचित मालूम होता है कि एक और मंत्र और उसका भाष्य भी उद्धृत किया जाय और दोनों मन्त्रों के अर्थ पर एक समय ही में विचार किया

जाय— ताकि सही तात्पर्य निकाला जा सके, वह मंत्र निम्नलिखित है—

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया।
वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ । सू० २६ मं० ९ ॥

भाष्यः— हे शुभ्रयावाना शोभनशीलगमनवन्तौ हे अश्विना अश्विनौ सुकीर्त्या शोभनस्तुत्या श्वेतया श्वेतजलया धिया धारयित्र्या हिरण्मयकूलवत्या उभयकूलस्थितानां प्राणिनां धनदानेन पोषयित्र्या एतया नद्या स्मत् सुमत् शोभनं वहेथे युवां स्तुतिं प्राप्नुथः। एषा युवामस्तौदित्यर्थः ॥ १९ ॥

वहेथे शब्द का अर्थ भाष्य में "तुम्हारा स्तवन हो रहा है" किया गया है— "शुभ्रयावाना" यह अश्विनिकुमारों का विशेषण है, भाष्य में इस का अर्थ "जिन का नदी रूप गमन मार्ग शुभ्र है" किया गया है परन्तु इस पद का अर्थ "जिनका नदी रूप गमन मार्ग शुभ्र है" यह भी हो सकता है। 'सुकीर्त्या' 'श्वेतया' और 'धिया' यह तीन विशेषण इस मंत्र में "श्वेतयावरी" नदी के हैं और "एतया" यह दर्शक सर्वनाम है। "धिया" का अर्थ धारण करने वाली अर्थात् सुवर्णमय किनारों से युक्त होने के कारण दोनों किनारों पर रहने वाले प्राणियों को धन देकर पोषण करने वाली ऐसा अर्थ भाष्य में किया गया है, "सुकीर्त्या" यानी उत्तम कीर्तिसे संपन्न। "अश्विनिकुमारो श्वेत जल और महान् कीर्ति संपन्न और धारण पोषण करने वाली श्वेतयावरी नदी के कारण तुम बहते जा रहे हो" यह इस मंत्र का अर्थ होता है।

नदी के नाम श्वेतयावरी का और पहिले मंत्र में वर्णित दो विशेषण हिरण्यवर्तनिः और वाहिष्ठा और दूसरे मंत्र में वर्णित तीन विशेषण श्वेतया, धिया और शुभ्रयावाना ऐसे पांच विशेषणों का एकत्रित विचार करके देखना है कि इस संसार की किस नदी के लिये ये विशेषण और नाम संगत हो सकते हैं-श्वेता विशेषण और श्वेतयावरी संज्ञा भागीरथी नदी को दी जा सकती हैं-परन्तु "वाहिष्ठा" यह विशेषण उसमें सार्थक नहीं हो सकता। कारण पूर्व गोलार्ध में जो नदियां बहती हैं, उनमें भागीरथी से दीर्घ प्रदेश पर बहने वाली दस नदियां हैं। इसके अतिरिक्त भागीरथी जिस प्रदेश से बहती है उस प्रदेश में सोने की कानें मुतलक नहीं हैं—उत्तर अमेरिका में "मिसिसिपी" नदी बहुत दीर्घ वाहिनी—अर्थात् वाहिष्ठा है; परन्तु वह श्वेत जल से युक्त और हिरण्यवर्तनिः नहीं है-इतर नदियों की यही अवस्था है-इस वास्तें उत्तर आफ्रिका में नाइल नदी में ये विशेषण सार्थक हो सकते हैं। यह नदी ४३०० मील प्रदेश पर बहती है, और अंदाजन १००० मील तक श्वेत जल से युक्त है— इसी कारण श्वेत नाइल (White Nile) इसकी संज्ञा और "बहुत दूर बहाते जानेवाली" विशेषण इसी नदी से युक्त किये जा सकते हैं कारण कि इस नदी में जितने दूर प्रदेश पर किश्तियां, नावें, जहाज इत्यादि घूम सकते हैं किसी और नदी में नहीं घूम सकते। वाहिष्ठा का अर्थ अतिशय शीघ्र गतिवान भी किया जाय तो

भी इसी नदी से पूर्ण हो सकता है—इस लिये कि इस नदी में इतने जोर के प्रवाह मिले हैं कि किश्तियां नावें चलाना अशक्य हो गया है ।

२—दूसरा विशेषण “धिया” है जिसका अर्थ धारण पोषण करने वाली है । अबिसीनिया” प्रांत एक काल में सोने की कानों का आगर कहलाता था । यह नदी मिसर Egypt में बहती है, इसी नदी के कारण यह देश ज़र खेज़ और वैभव सम्पन्न है—घेवडा, कपास, सत्तु, बाजरा, जवार, इत्यादि धान्य तंबाकू, चावल, गन्ना, साग, नील, इत्यादि पैदावार इस देश में होती है; खजूर के वन, अंगूर, संत्रे, नींबू, अंजीर, खरबूजे भी इसी नदी के किनारों पर करसत से होते हैं; “पांचू” की कानें भी इसी नदी के अतराफ हैं

३. “एतया” और “स्या” यानी एषा यह दो दर्शक सर्वनाम नदी के लिये आये हैं—एषा (स्या) यह “एतत्” सर्वनाम का स्त्रीलिंगी प्रथमांत रूप है,— और एतया यह तृतीयांत रूप है । एषा का अर्थ 'यह' है । जिस वस्तु का अंगुली से निर्देश हो सकता है उसी के लिये यह दर्शक सर्वनाम आ सकता है,—विश्वमना ऋषि “स्या” और “एतया” दर्शक सर्वनाम का प्रयोग इस नदी के लिये कर रहा है, अर्थात् यह सिद्ध होता है कि स्तवन करते समय विश्वमना ऋषि इस नदी के किनारे पर था ।

४—नाईल नदी की श्वेत नाईल संज्ञा (White Nile) उसी सीमा तक है जहां तक ब्ल्यू नाईल (Blue Nile) अथवा नीलवर्ण नाइल नाम नहीं है । दक्षिण अफ्रिका के एक सरोवर से जो कि विषुवृत्त के दक्षिण में है, श्वेत नाईल का उद्गम हुआ है । और यह सरोवर मध्य अफ्रिका में है । अर्थात वैदिक आर्यों का साम्राज्य केवल अफ्रिका के एक ही दिशा में न था किंतु संपूर्ण अफ्रिका खंड में उसकी व्याप्ति थी—मषण सांची इत्यादि प्रांत दक्षिण अफ्रिका में है तो नाईल नदी उत्तर अफ्रिका और भूमध्य को मिलाती है—

टेसू

(ले०—पं० आनन्दस्वरूप विद्यालङ्कार)

आचार्य्य गड़बड़ानन्द की टेसुओं में भक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। वह इन्हें देश का नेता * समझा करता है। जिस समय कि जंगल में टेसू अपनी प्रचुर लालिमा को दिग्दिगन्त में फैला रहे होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि मानों सारे जंगल में देशभक्ति, स्वाधीनता और स्वतन्त्रता की आग लग रही है। मानों इस जंगल से कांटों और झाड़ियों का राज्य जल जायेगा और उसकी जगह फिर से आम और केलों का राज्य हो जायगा परन्तु इस लालिमा में गरमी नहीं है। वह तेज, वह ओज, वह वीर्य जो कि कांटों को भस्म करने के लिये चाहिये, इन टेसुओं में नहीं है। यह तो दिखावटी आग है जो व्याख्यानों और अखबारों तक ही रह जाती है। यह वह जोश है जो कि मेज पर मुक्के मार कर ठंडा हो जाता है। आचार्य्य गड़बड़ानन्द ने टेसुओं की आग से किसी को जलते हुए नहीं देखा।

टेसुओं की यह लाली भी १२ मास नहीं रहती। खाली होली की छुट्टियों से लेकर ईस्टर की छुट्टियों तक ही रहती है। इन दिनों इनकी बहार देखने लायक होती है। आप कांग्रेस पहुंच जाइये टेसू वहां लच्छेदार अंग्रेजी में अपनी लालिमा फैला रहे होंगें। आप हिन्दु महासभा चले जाइये वहां भी आप को टेसू ऊंची आवाज में हवा के अन्दर सां २ करते मिलेंगे। कहां तक गिनायें जो कोई भी कांफ्रेंस हो टेसू जी को आप ज़रूर वहां पाइयेगा। इसलिये आचार्य्य गड़बड़ानन्द का उपदेश है कि जिसने अपनी सभा को सजाना हो वह दरवाजों पर, विशेष करके सभापति की कुर्सी को इन टेसुओं से खूब सजाये। फिर देखिये कि टेसुओं पर मुग्ध कितने भ्रमर आ जुटते हैं। यदि किसी को टेसू न भी मिल सकें तो वह अखबारों में निकाल दे कि 'हमारी सभा में बड़े टेसू आयेंगे' फिर भी रसिक भ्रमरों की कमी न रहेगी।

पर टेसू होली की छुट्टियों से ईस्टर की छुट्टियों तक ही फूलते हैं, बाद में सूख जाते हैं। लोग इन्हें भट्टी में चढ़ा देते हैं। टेसुओं की यह हालत बहुत ही दयनीय होती है इन का चेहरा कुम्हला जाता है। भट्टी में चढ़ने से इन

---

*—यहां नेताओं से अभिप्राय उन पूजनीय, प्रातःस्मरणीय नेताओं से नहीं है जिन्होंने कि भारत भूमि के लिये सर्वस्व त्याग किया है।

से पीला रंग निकला करता है। इन टेसुओं की लाली के अन्दर पीला रंग छुपा है। यह आचार्य्य गड़बड़ानन्द जैसे किसी २ विज्ञ को ही मालूम रहता है। इस समय टेसू काउन्सिल और एसम्बली की भट्टी में चढ़ा करते हैं। वहाँ सब जोश ठंडा पड़ जाता है। चुनाव के समय जो लाली टेसू दिखाते हैं, काउन्सिलों में वह नहीं रहा करती। उसकी जगह पीला रंग निकला करता है।

किसी २ साल टेसू हद से ज्यादा फूलते हैं। सारे जंगल में टेसू ही टेसू दिखाई देते हैं इन सालों में टेसू चुनाव में लगे रहते हैं। आचार्य्य गड़बड़ानन्द ने ऐसे साल दो दो फुट के ढाकों में भी, जिनमें कि अभी पत्ते भी नहीं निकले, टेसू खिलते देखे हैं। आचार्य्य गड़बड़ानन्द इनकी बोली खूब समझता है। यह टेसू इन दिनों घंटों लम्बी वक्तृता दिया करते हैं। परन्तु उसका सार यही होता है कि "हमें वोट दो, हम काउन्सिल में जायेंगे। हमें वोट दो, हम नेता कहायेंगे"।

टेसुओं में मिठास बिल्कुल नहीं होती। किसी २ के अन्दर एक आध बूंद मीठे रस की पाई जाती है। पर आप कहीं इस की तुलना हरे पत्तों में ढके हुए मुश्किल से दिखने वाले, निरीह आमों से न कर डालिये। इतनी ज्यादा लाली के अन्दर कहीं एक आध बूंद मीठे की पाइयेगा। वह भी विरले २ में। यह मिठास भी टेसू के बाहर ही बाहर चिपका होता है, अन्दर नहीं होता। टेसू खाने में बहुत बेस्वाद बकबका सा होता है। न यह मीठा होता है, न कड़वा, न खट्टा, न तीखा। निरा बकबका होता है। इसे जंगली पशु भी नहीं खाते।

इन की लकड़ी किसी काम की नहीं होती इससे कोई चीज नहीं बन सकती। निरी जलाने लायक होती है। जरा सा बोझ डालते ही टूट जाती है। कई तो कुछ महीनों की सादी जेल के बोझ से ही टूट जाते हैं, कई मिनिस्टरी के बोझ से, कई जजी के बोझ से, कोई रायबहादुरी के बोझ से, कोई 'Sir' के बोझ से, कोई बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों के बोझ से टूट जाते हैं। मतलब यह कि किसी तरह का बोझ पड़े, ढाक की लकड़ी बिल्कुल नहीं सहार सकती। झट टूट जाती है। अन्त में आचार्य्य गड़बड़ानन्द का आशीर्वाद है—

विद्यार्थियों का संगठन

(ले०— एक विद्यार्थी)

इस समय संसार में संगठन की आंधी चल, रही है, चारों ओर इसी की धूमधाम है ; पर हमारे समझदार विद्यार्थियों के कानों पर अब तक जूं भी नहीं रेंगी। सब का सिद्धान्त है, विद्यार्थियों का काम खाना पीना, मौज उड़ाना और एकमात्र पढ़ना है। स्वयं विद्यार्थी राजनीति को बांध समझते हैं, और उस की आहट से डरते और दबते हुए मुंह से एक भी शब्द निकालने को तैयार नहीं होते। उन को सन् २०, २१ का समय याद है, जब उन्होंने महात्मा जी के कहने पर पढ़ना लिखना इस लिये छोड़ा कि वह राजनीति में पदार्पण करेंगे। उन का उद्देश्य पवित्र था, यह कौन नहीं मानेगा ; पर अपने ध्येय को पैरों तले रौंद कर राजनीतिज्ञ बनाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। हमारे देश के बड़े बूढ़ों ने विद्यार्थियों को एकदम निकम्मा और बेकाम सा समझ रक्खा है। यदि ऐसा न होता तो आज धार्मिक या राजनैतिक क्षेत्र में बड़ी २ सभाओं की मेम्बरी—सर्वथा तुच्छ मेम्बरी--प्राप्त करने के लिये अवस्था की बांध नहीं बांध दी जाती । विद्यार्थी दूसरों के गुलाम हैं ; वे गर्भ दास हैं क्योंकि उन का लालन, पालन, भरण, शिक्षा, दीक्षा का प्रबन्ध दूसरों की आधीनता में है । वह स्वयं चाहे कितने विद्वान्, कितने बुद्धिमान हों कुछ नहीं पर उनके बाप दादे चाहे बेपढे, अनपढे, बेवकूफ क्यों न हों सभी कुछ हैं। मेरा मतलब यह नहीं पितृभक्ति मत करो, मेरा मतलब है पितृभक्ति करो, उन के दीवाने बनो, पर अपने अस्तित्व को साथ रख कर--खो कर नहीं। भारतीय बालकों का पराधीनता मूलमंत्र है और वह आजन्म इसे ही जपते २ दूसरों की ठोकरें खाने के आदी हो गये हैं। वह कुछ नहीं पर उन के बाप दादा सब कुछ हैं। इसी बुद्धि और पाठ के अभ्यास ने नवयुवकों को मंजिलों पीछे छोड़ दिया है। आज सब अपने अधिकार खोजते हैं, सदियों के छिने छिनाये अधिकारों को वापिस लेने की चिन्ता में है, पर विद्यार्थी मौज से सुख की नींद सो रहे हैं, आनन्द से खुर्राटें ले रहे हैं।

आज कोई सभा खोलो उसी में काम करने को बुड्ढे तैयार हैं । मैं तो आर्य कुमार सभाओं में सालों से रहा हूँ पर मैंने कभी कुमार सभाओं का सभापति किसी कुमार को बनते नहीं देखा, मैंने सदा जिम्मेवारी के कामों में बड़ों बूढ़ों को धरना दिये देखा है। मेरी समझ में कुमार सभाओं तथा युवक सभाओं की पृथक् सत्ता का कोई अभिप्राय नहीं, जब कुमार उस के कार्यकर्त्ता न हों। मैं

इस बात का मानने वाला नहीं कि नवयुवक नासमझ होते हैं और वे सदा गलतियें करते रहेंगे। उन में जोश भी है और ज्ञान भी है, और वे सभी आन्दोलनों के प्राण हैं पर परदे में। उसका श्रेय, उस की वाहवाही लूटने वालों की कमी नहीं। याद रहे बुड्ढे लहलहाते हुए पौधे हैं तो युवक खिले हुए सुगन्ध से गमगमाते फूल। पर पौधे फूलों के लिये हैं फूल पौधों के लिये नहीं। इस उपर्युक्त भूमिका का अभिप्राय एक मात्र अखिल-भारतवर्षीय-विद्यार्थी-परिषद् की स्थापना है। इसका यह आशय नहीं कि ऐसी संस्था ने भारत में अब तक जन्म नहीं लिया। लिया है और शायद है भी पर वह विद्यार्थियों की नहीं उन के पिताओं की है। आज महासभाओं में विद्यार्थी बड़ों के मुंह ताकते हैं, उन पर कोई आपत्ति आती है इधर उधर सहायक खोजते हैं। उन की कोई हिमायती संस्था नहीं जो उन के खोये गये स्वत्वों की रक्षा करे। बात भी ठीक है सभी मतलब के यार हैं। संसार स्वार्थ का पुतला है और स्वार्थ पर सब कुछ बलिदान कर सकता है। पिता पुत्र का पालन करता है किसी भावी आशा से, अतएव याद रहे अपने स्वत्वों की रक्षा करने के लिये अपनी संस्था चाहिये। हम सुनते हैं सैकड़ों यूनिवर्सिटियों में सैकड़ों वार लड़कों पर नाजायज फरमाने जारी किये, सैकड़ों परीक्षाओं में हद से ज्यादह फीस है। हम पूछते हैं क्या किसी ने कौंसिलों में इस के विषय में प्रश्न किये! कौंसिलों में जाने के लिये उमर चाहिये। वह तुम्हारे चुने हुए नहीं फिर वह क्यों तुम्हारे स्वत्वों की रक्षा का प्रश्न उठावें?

मेरी इच्छा केवल हिन्दुओं की नहीं वरन् समस्त भारतीयों की और संभव हो तो यूरोपीय विद्यार्थियों की सम्मिलित परिषद् की स्थापना करने की है। मुझे पता नहीं कि अन्य विद्यार्थी भी मेरा हाथ बटावेंगे या नहीं। मेरा तो संकल्प शुद्ध है और कोई कारण नहीं जो विद्यार्थी मण्डल मुझे धक्का देकर आगे बढ़ने को न प्रेरित करें। मैं इस का आधार धर्म पर नहीं मानता और न मैं हिन्दु विद्यार्थियों के सवाल को समानता से अधिक महत्व देता हूं। मुझे पता नहीं कि यह काम कब होगा पर मैं इस को जल्दी से जल्दी करना चाहता हूँ। इस के लिये स्वर्णीय अवसर बड़ी शीघ्रता से आरहा है। सफलता स्वयं मिलेगी जब इस के लिये कतिपय युवक विद्यार्थी स्वयं तय्यार हो जायेंगे। अब इस विषय में कितने प्रश्न उपस्थित होंगे जिन का निर्णय कर देना अभी से उचित और आवश्यक है। पहला प्रश्न होगा विद्यार्थियों की परिभाषा क्या हो? विद्यार्थी वही होंगे जो अविवाहित हों।

अवस्था की बांध, बांध नहीं समझी जा सकती क्योंकि प्रायः अविवाहित अवस्था ही विद्याध्ययन की अवस्था है। कम से कम कोई भी सुधारक २५ साल से पहले अपनी शादी करना पसन्द नहीं करेगा और इस बांध से कोई गलतफैमी नहीं हो सकती क्योंकि संभव है कोई ४८ साल का पूर्ण

ब्रह्मचर्य्य धारण कर विद्याभ्यास करता है। वह २५ साल की हद रखने से छूट ही जायगा। ऐसे लोग जिन्होंने विद्याध्ययन में जीवन खपा दिया है और इस के सच्चे अधिकारी हैं हमारे हाथों से छूट जावेंगे।

(१) मुख्य उद्देश्य— विद्यार्थीमात्र में भ्रातृ-भाव पैदा करना होगा।

(२) विद्यार्थियों के स्वत्वों की रक्षा करना और किसी प्रकार की आपत्ति में सब प्रकार की सहायता करना।

(३) उन को राजनीतिकुशल बनाना। पाठकों को पता होना चाहिये कि इस संस्था की नीव राजनीति पर अवलम्बित रहेगी। कोई संस्था जिस में भिन्न २ विचारों के अनुयायी हों धार्मिक आधार पर नहीं ठहर सकती। इसको विद्यार्थियों की कांग्रेस कह सकते हैं।

अब इस का कार्य पत्रों द्वारा स्थान २ में प्रान्तीय विद्यार्थी सभा तथा विद्यार्थी सभाओं को बनवाना और प्रतिनिधियों के बुलाने का प्रबन्ध करना होगा। राजनीति हौआ नहीं और न वह विद्यार्थियों को खा जायगी अतएव विद्यार्थीमात्र को जाग कर और खाटों को छोड़ मैदान में आना चाहिये और अपनी शक्ति दिखाकर जन्मसिद्ध स्वतन्त्रता पाने का यत्न करना चाहिये।

निर्झर

किस प्रभात में जागे हो ?
किसे पकड़ने भागे हो ?
कुन्द कुसुम की ले कलियां
मोती की भर अञ्जलियाँ
पारिजात की पंखड़ियां
चन्द्रहार की ये लड़ियां
अश्रु-बिन्दु का लेकर हार
कहाँ चढ़ाने को तैयार !!

* * * * * *

सुधा-वृष्टियाँ सी उज्ज्वल
शुभ्र दृष्टियाँ ये चञ्चल
कहाँ डाल दोगे निर्मल ?
किसे लुभाने को यह छल ?
शैशव सा मनोज्ञ आकार !
यौवन सा प्रचण्ड शृङ्गार !
किसे जताने को निज प्यार
छोड़ चले अपना घर बार ?

* * * * * *

अपनी हृदय-रागिणी आज
किसे सुनाने को यह साज
यह मर्मर है या संगीत
या सृष्टि के मन्त्र पुनीत
किसी 'निराले' की यह तान
या विषाद के हैं ये गान ?
यह व्याकुल मानस की 'आह'
सुनने की न किसी को चाह
सभी जा रहे अपनी राह
नहीं किसी को है परवाह !!

* * * * * *

हृदय हीन पत्थर साकार—
हैं कठोरता के अवतार—
डाल रहे क्यों वारम्वार
इन पर स्नेह मयी जल-धार ?
चल दे यहाँ प्यार मत डाल
ये हैं स्नेह-हीन कंगाल !
रस तेरा पीकर के आप-
तुझे छोड़ देगें चुपचाप !

* * * * * *

देख सामने होकर मौन-
चली जारही है यह कौन ?
यह वात्सल्य-वीचि वाली
शत शत मत्स्य-नेत्र वाली
प्रेम लोरियाँ जो गाती
निशिदिन एक गीत गाती
शीतल हृदय देख इसका
क्या न इसे पहिचान सका ?

* * * * * *

यह तेरी सरिता माता
जोड़ इसी से बस नाता
यही तुझे गोदी में पाल
निज श्यामल आँचल में डाल
—जहाँ शान्त है हाहाकार
जहाँ 'प्यार' की नहीं पुकार
जहाँ 'निराशा' का अवसान
जहाँ स्नेह का अक्षय दान-
इस जगती-तल के उस पार
जायेगी 'अनन्त' के द्वार !!

——श्री प्रियहंस

अभिजनन शास्त्र का एक अंग (कृत्रिमरोध)

(ले०— श्री० पं० अत्रिदेव जी विद्यालंकार)

मनुष्य की सब इच्छाओं में कामेच्छा—मैथुन की इच्छा, अति प्रबल है यह एक स्वाभाविक बात है जिस प्रकार कि उत्पन्न होते ही बच्चा भूख से चिल्लाता है उसी प्रकार युवावस्था में पदार्पण करने के साथ ही मैथुन की भूख उत्पन्न होती है और प्रत्येक युवा को समय-समय पर इसका अनुभव होता है।

जिस प्रकार भूख की इच्छा प्राकृतिक है, इसलिये ही वह पवित्र है, उसी प्रकार इस इच्छा को भी प्रकृति उत्पन्न करती है, इसलिये यह भी पवित्र है और पूर्ण करने योग्य है।

इस इच्छा को पूर्ण करने के Dr. Hall ने तीन उपाय बताये हैं।

I. Self Abuse— यह दो प्रकार का है Mechanical और Physical.

Mechanical:—हस्त मैथुन-अर्थात् हाथ के द्वारा या किसी अन्य उपाय से उत्पादक अंगों में उत्तेजना उत्पन्न करना।

Physical-इसका कारण शिश्न की त्वचा के नीचे मल का एकत्र होकर उत्तेजना करना; अथवा लिंग के रोग, जैसे Phymasi Peraprymosis (निरुद्ध प्रकर्ष)।

इस दूसरे कारण को हटाने के लिये तथा कई धर्मों का धार्मिक अंग होने से बहुत से मनुष्य और चिकित्सक भावी आपत्तियों से बचने के लिये Cercumcison खतने का करना आवश्यक तथा स्वास्थ्य के लिये हितकर मानते थे, परन्तु अमेरीका के प्रसिद्ध डाक्टर मैकफीच की सम्मति में यह केवल निरर्थक ही नहीं अपितु अत्यन्त हानिकारक है। उसकी सम्मति में खतने का कार्य शिश्न की मणि को धोने से हो सकता है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में मल-मूत्र-त्याग के समय पानी का पास होना आवश्यक बताया गया है। इसके साथ त्वचा के कटने से सुपारी अरक्षित हो जाती है और थोड़ी सी उत्तेजना-वस्त्रादि से भी शिश्न में रक्त की वृद्धि हो जाती है और कामेच्छा उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि उत्पादक-संस्थान के अंगों में वातमण्डल का शरीर के अन्य भाग की अपेक्षा बहुत अधिक सम्बन्ध है। इसी अधिकता के कारण यह सब से अधिक सचेत (Sensitive) है, थोड़े से स्वप्नमात्र से शुक्रच्युति हो जाती है। किसी भी अन्य अंग चक्षु के देखने मात्र से-प्रेमपात्र के ध्यान में आने से चेहरे पर ललाई और प्रसन्नता, आंखों में चमक और और चंचलता और हृदय में आनन्द और उत्साह की लहरें उमड़ आती हैं। दो शरीर और एक प्राण का सच्चा उदाहरण इसी समय मिलता है।

"धन्वी स मार एवैकः द्वयोरेकं करोति यः"

ii दूसरा कारण Immoral women से सम्बन्ध है-इस का विचार करने के साथ ही औपसर्गिक रोगों (Eneral Disease) का प्रश्न एकदम उपस्थित हो जाता है। इस बात से कोई भी चिकित्सक इन्कार नहीं कर सकता कि सब वेश्यायें— कुछ थोड़े समय के लिये और शेष सारे समय के लिये—रोगग्रस्त होती हैं। इस के साथ यह भी प्रत्येक

चिकित्सक जानता है कि इन रोगों के संक्रमण की चिकित्सा से (वह रोगी को) पूर्ण स्वस्थ नहीं कर सकता और नाही इन रोगों से बचने का कोई उपाय है । सब कृत्रिम उपाय French leather, Sheath, Antiseptic आदि निश्चय के साथ इन रोगों से मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकते ।

इस के साथ ही बहुत से व्यक्तियों का विचार है कि बाजारू पेशेवाली औरतों से गृह वाली लड़कियां उत्तम तथा इन रोगों से रहित होती हैं । परन्तु ऐसी लड़कियां बाजारू औरतों से कहीं अधिक भयानक होती हैं । क्योंकि उनको इस विषय में बहुत कम ज्ञान होता है, और पृथक् रहने के कारण वे औपसर्गिक रोगों से बहुत अधिक ग्रस्त रहती हैं तथा इन रोगों के विषय में प्रायः अनभिज्ञ रहती हैं ।

औपसर्गिक रोगोंसे मेरा अभिप्राय औपसर्गिक प्रमेह Gonorrhœa और उपदंश-फिरंग Syphlis से है ।

इन दोनों रोगों की भयंकरता इस बात से स्पष्ट है कि अमेरिका में २० से ३० तक अन्धों का कारण औपसर्गिक प्रमेह होता है-एवं ७० से ९० प्रतिशतक का कारण उपदंश होता है । इन रोगों का प्रभाव यहाँ तक ही नहीं रहता अपितु पुत्र-प्रपौत्रों में चलता जाता है ।

अतः मेरी सम्मति में उपरोक्त दोनों उपायों से कोई भी युवक अपनी कामेच्छा को पूर्ण करने का विचार न करेगा ।

डाक्टर Hall ने तीसरा उपाय "मातृवत् परदारेषु" अर्थात् सबको माता के भाव से देखने को कहा है ।

कई युवक कहते हैं कि मैं किसी के धर्म को नष्ट नहीं करता अपितु वह स्वयं (Voluntarily) आकर मुझको बाधित करती है । उनके प्रति यही कथन है कि यदि तुम्हारी बहिन या लड़की का कोई धर्म नष्ट करता हो तो तुम क्या करोगे ? तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल हो जावेंगी, और एकदम यही-या इस से मिलता जुलता-उत्तर दोगे कि "मैं उसे मारडालूंगा"। प्रिय युवको ! इन में कोई किसी की बहिन और कोई किसी की कन्या है, तुम्हारे भी बहिन और कन्यायें हैं, जो व्यवहार तुम अपने लिये चाहते हो वही दूसरे भी चाहते हैं, अतः उसी व्यवहार को अन्यों के लिये भी करो, उनको माता और भगिनी की दृष्टि से देखो-यही पवित्र, शुद्ध उपाय है ।

परन्तु जो मनुष्य इस प्रकार तीनों उपायों में से अपनी भूख प्रथम दो उपायों के अतिरिक्त तृतीय उपाय से बुझाने में असमर्थ हों, उनके लिये शास्त्र ने एक उपाय बताया है जिसको विवाह-गृहस्थ-पाणिग्रहण-निकाह आदि कहते हैं । यह एक पवित्र शुद्ध और धार्मिक उपाय है ।

सारो आयुभर इन्द्रियदमन-ब्रह्मचर्य्यव्रत-धारण करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है । इसीलिये शास्त्रों ने इस कर्म की आवश्यकता को समझ कर धर्म का रूप दे दिया है—

"प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थञ्चमानवाः" मनु ।

परन्तु विवाह करके आयु भर में एक सन्तान उत्पन्न करने के लिये एक वार ही सम्भोग करना और शेष आयुभर ब्रह्मचर्य्य धारण करना यह सम्भवतः पति पत्नी दोनों के लिये असम्भव होगा। इसके साथ ही २५ वर्ष बाद सम्भोग करना शायद आजकल के संसार में क्रियात्मक रूप से असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा—एवं इसका परिणाम अतिसन्तानोत्पत्ति होता है । जिसके कारण भविष्य में कई प्रकार के सांसारिक-आर्थिक-वैवाहिक कष्टों

का भोग करना होता है। अतः इन कष्टों से बचने के सम्पूर्ण उपाय निम्न दो शीर्षकों में आ जाते हैं—

१. उत्तम सन्तान उत्पन्न करना

२. कम सन्तान उत्पन्न करना (क) इन्द्रिय दमन (ख) कृत्रिम निरोध

उत्तम सन्तान उत्पन्न करना—वह कार्य्य राज्य की तरफ से हो सकता है। अमेरिका और स्विटज़लैंण्ड ने १८९० में अपनी आधी कुष्ठरोग से ग्रस्त प्रजा को पृथक् कर दिया था। १० साल बाद वहां केवल एक कुष्ठी रहा था। इसके साथ ही जो लोग इन्द्रियदमन करने में असमर्थ हैं, उनको सन्तानोत्पत्ति के सर्वथा अयोग्य बांझ (Removing of Testes) अण्डों को नष्ट कर देना चहिये, जिससे कि सन्तान उत्पन्न ही न कर सकें। यदि वह इस प्रकार से असम्भव हो तो कृत्रिम उपायों को प्रयोग में लाने को आवश्यकता होती है।

यद्यपि यह उपाय घृणित और विष के समान है, परन्तु जिस प्रकार संखिया भयानक विष होता हुवा भी कई रोगों के लिये रामबाण औषध है इसी प्रकार यह भी प्रयुक्त होता है।

सन्तानोत्पत्ति के लिये चार वस्तुओं की आवश्यकता है। बिना इन चार वस्तुओं के कोई भी बीज, कोई भी वृक्ष, कोई भी सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। इसके साथ इन चार वस्तुओं में से किसी एक का अभाव हो अथवा किसी में विकार हो तो भी सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती।

उन चार वस्तुओं को धन्वन्तरि ने ऋतु, क्षेत्र, अम्बु, बीज इन शब्दों से स्मरण किया है। प्रत्येक वृक्ष का बीज अपने ही काल में उर्वर क्षेत्र में शुद्ध पानी से सींचे जाने पर तथा शुद्ध बीज होने पर वृक्ष उत्पन्न करता है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के लिये ऋतु-मासिक धर्म, क्षेत्र-जननी का गर्भाशय, अम्बु-गर्भ को पोषण करने के लिये रक्त, और बीज-पुरुष का वीर्य इनकी आवश्यकता है।

मासिक धर्म—यदि रजस्वला के साथ सन्तानोत्पत्ति के लिये संगम किया जावे तो जिस प्रकार बहती नदी में वस्तु स्थिर नहीं हो सकती उसी प्रकार गर्भ स्थिति का होना असम्भव है, इसके बाद चतुर्थ दिवस में न होने के बाद गर्भस्थिति हो सकती है। अमेरिका के एक डाक्टर ने भिन्न भिन्न समयों के गर्भधारण का हिसाब लगाया है। उसके अनुसार स्नान के प्रथम दिवस से ९ वें दिवस तक प्रतिशतक संख्या में ४८ गर्भ स्थिर हुए, ९वें दिन से ११ वें दिन तक के गर्भों में ६२ और ११ वें से २३वें दिन तक १३, २३वें से मासिक धर्म के आरम्भ तक ९ गर्भ स्थिर हुवे।

सुश्रुत और मनुस्मृति में कहा है कि जिस प्रकार कमल सूर्य्य की प्रथम किरणों के साथ खुलना आरम्भ होता है और सूर्य की अन्तिम किरण के साथ सायंकाल बन्द हो जाता है; उसी प्रकार गर्भाशय और योनिमुख मासिक धर्म के शुरू में खुलता है और धीरे धीरे बन्द होता हुवा १६ वें दिन तक बन्द हो जाता है। इसके साथ ही शास्त्र में यह भी कहा गया है कि उत्तरोत्तर दिनों में किया हुवा गर्भाधान उत्कृष्ट और बलवान होता है। यही कारण है कि उपरोक्त चिकित्सक की ९वें दिन से ११ वें दिन तक की संख्या सब से अधिक है।

क्षेत्र-बीज के लिये भूमि यदि बञ्जर-अनुर्वरा-है, तो उस में उत्तम बीज भी उत्पन्न नहीं होता—इसी प्रकार यदि गर्भाधान में कोई रोग जैसे अपभ्रंश, वसा की वृद्धि, अर्बुद (Tumour) आदि होगा, तो गर्भ स्थिर नहीं हो सकता।

अम्बु— यदि समय में उत्तम भूमि में बीज बोया जावे परन्तु उसका सिञ्चन न किया जावे तो वह उत्पन्न नहीं होता इसी प्रकार यदि गर्भ का पोषण न हो जैसा कि Chlarisis—Pernicis Analmae. आदि रोगों में होता है—तो गर्भ स्थिर हो कर भी पुष्ट नहीं हो सकता।

बीज— यदि बीज ही न हो तो अङ्कुर उत्पन्न नहीं हो सकता अथवा निर्बल हो तो भी अङ्कुर उत्पन्न करने में असमर्थ होता है—इसी प्रकार यदि उत्पत्ति में बीज (वीर्य) का अभाव हो जैसा कि अतिकामेच्छा के प्रबल होने पर अथवा उन औरतों में जो कि बच्चे के लिये अति उत्कण्ठित रहती हैं, गर्भस्थिति का ध्यान-कल्पना-करके मासिक धर्म का बन्द होना, स्तनों में वृद्धि आदि सच्चे लक्षण अनुभव करने लगती हैं, परन्तु 'यदि संज्ञापहरण करके विज्ञ चिकित्सक परीक्षा करे तो केवल भ्रम ही ज्ञात होता है। इसके साथ यदि अतिकामेच्छा से दो स्त्रियां आपस में मैथुन करें तो जो सन्तान (Fertilization) होगा उस में पितृ भाग अर्थात् कठिन भाग अस्थि आदि का अभाव रहता है। इसके साथ ही यदि वीर्य दूषित होगा चाहे पुरुष का शुक्राणु-अथवा स्त्री के डिम्ब में किसी एक में दोष हो तो सन्तान उत्पन्न न होगी। यदि उत्पन्न भी होगी तो निर्बल अथवा गर्भपात होने की आशङ्का है।

संक्षेप में गर्भस्थिर न होने के निम्न कारण हैं।

i गर्भाशय में रोग होना यथा(१) मांस मज्जा की वृद्धि (२) डिम्ब का उत्पन्न न होना (३) गर्भाशय का दग्ध होना जैसा कि छोटी आयु की कन्या से संभोग करना (४) गर्भाशय का उलट जाना अथवा गिरजाना (५) वायु का बढ़ना (६) शीत पैदा होना।

ii रजोधर्म के रोग— (१) मासिक धर्म का न होना (२) ठीक समय पर न होना (३) कम होना (४) कष्ट से होना (५) अधिक होना

iii संयोग का अभाव—(१) पुरुष में शुक्रकीट का अभाव होना (२) गर्भाशय में न पहुँचना

iv मनःशक्ति की प्रतिकूलता— यदि मन प्रतिकूल होंगे तो भी सन्तानोत्पत्ति होनी असम्भव है।

v प्रेम का अभाव।

vi शुक्र और डिम्ब का न मिलना।

सन्तान रोधके सब उपाय उपरोक्त Unpathalogical condition को ध्यान में रख कर स्थिर किये गये हैं—

इसके साथ ही चारों वस्तुओं में क्षेत्र मुख्य है— चूंकि कार्य वहीं उत्पन्न होता है। अतः सन्तान रोधके उपायों का सम्बन्ध स्त्री पक्ष के साथ ही है।

यह सत्य है कि अण्ड के नाश होने पर पुरुष या पशु सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हो जाता है परन्तु उसकी कामेच्छा सदा बनी रहती है, केवल वह उसे संयोग के द्वारा पूर्ण करने में अशक्त होता है। अतः कामाग्नि इस से शान्त नहीं होती हां सन्तान के योग्य अवश्य नहीं रहता।

परन्तु इन कृत्रिम उपायों के द्वारा पुरुष अपनी कामाग्नि को शान्त कर सकता है। अपनी मैथुन की भूख को बुझा सकता है और सन्तानोत्पत्ति से भी सर्वथा नहीं तो बहुत अधिक संख्या में बच सकता है। इसके साथ ही ये उपाय रोगोत्पादक भी नहीं हैं— जिस प्रकार मैक्सिको के प्राचीन मनुष्य अपने अण्ड के बहिःस्राव को रोकने के लिये अपनी अण्डक्रिया को घोड़ों की पीठ पर लगातार आरोहण करने से नष्ट करते थे। इसके विरुद्ध प्राचीन

आर्य्य योगक्रिया हठयोग के द्वारा उक्त कार्य्य को नष्ट करते थे। मैक्सिको के पूर्व पुरुषों की क्रिया रोगोत्पादक है और दूसरी आर्यों की क्रिया स्वास्थ्यवर्धक और रोगोत्पत्तिरहित है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के सम्पूर्ण उपाय रोगोत्पत्ति रहित और स्वास्थ्य वर्धक हैं।

संतानरोधके जो भी उपाय हैं वे निम्न दो शीर्षकों के नीचे आजाते हैं।

i Chemical method—रासायनिक उपाय

ii Mechanical method

रासायनिक उपाय—इनके द्वारा शुक्राणु को नष्ट कर दिया जाता है अथवा उनको क्रियाहीन कर देते हैं जिससे कि डिम्ब के साथ उनका संयोग नहीं हो सकता।

Mechanical—इन उपायों के द्वारा शुक्राणु और डिम्ब का पारस्परिक संयोग नहीं होने पाता।

उपरोक्त दोनों उपायों को पृथक् पृथक् अथवा दोनों उपायों को एकत्र करके यदि प्रयोग किया जावे तो भी ये सम्पूर्ण अवस्थाओं में कृतकार्य्य नहीं हो सकते परन्तु बहुत सी अवस्थाओं में इनके द्वारा कृतकार्य्यता प्राप्त होती है। संतानरोधके जो उपाय प्रयुक्त होते हैं वे भी दो प्रकार हैं।

i बिना औषध के—without medicine.

ii औषधियों के द्वारा—with medicine.

बिना औषध के—

i शिश्न का शुक्रच्युति से पृथक्करण—यह उपाय अतिसुरक्षित और प्राकृतिक है परन्तु इस उपाय के प्रयोग करने में कई आपत्तियां हैं। मनुष्य को प्रथम ज्ञान ही नहीं हो सकता कि कब शुक्र च्युति हो जाती है-इसके साथ यदि ज्ञान भी हो जावे तो उस समय वात संस्थान के एकदम थके-श्रान्त-होने से मनुष्य किंकर्तव्य मूढ़ सा हो जाता है अतः उसे इस बात का ज्ञान नहीं हो सकता कि कब शुक्रच्युत हुआ और यदि ज्ञान भी होजावे तो वह उस समय पृथक् करने में असमर्थ होता है।

इसके साथ ही प्रायः शिश्न का अग्रभाग गर्भाशय के मुख तक पहुँच जाता है अथवा गर्भाशय का मुख योनि तक आजाता है अतः शुक्राणु और डिम्ब के मिलने की बहुत अधिक सम्भावना होती है एवं योनि में भी च्युत शुक्राणु अपनी पूंछ की सहायता से गति करता हुवा डिम्ब के मिलने के लिये गर्भाशय में आ पहुंचता है।

इन सब से बढ़ कर कारण यह है कि जिस प्रकार लोहे को चुम्बक से एक विशेष प्रीति है उसी प्रकार डिम्ब को शुक्राणु से विशेष स्नेह है अतः वह शुक्राणु को खींचता है यही कारण है कि पशुओं में डिम्बोत्पत्ति के समय दूसरे लिंग से मिलने की प्रबल उत्कण्ठा होती है और अन्य समय में उनमें इच्छा उत्पन्न नहीं होती। इसलिये यदि मासिक धर्म के बाद शीघ्र मैथुन किया जायेगा तो डिम्ब अवश्य योनि के मुख में भी पड़े शुक्राणु को खींच लेगा।

(गर्भधृति के बाद डिम्ब का न उत्पन्न होना, मासिक धर्म का न होना इस बात की साक्षी है कि इस समय मैथुन करना हानिकारक तथा निरर्थक है) इसलिये योनि वा भग में गिरा हुआ शुक्र संतानोत्पत्ति में कारण बन सकता है परन्तु उसका योनि में क्षरण न होने देना संतानरोध में एक कारण है क्योंकि बिना बीज के संयोग के संतानोत्पत्ति असम्भव है।

ii Sheath-Capsul—यह एक बारीक Gatta Percha जैसे चमड़े के खोल बने होते हैं जो

कि मैथुन से पूर्व शिश्न के उपर और योनि में रक्खे जाते हैं। यह अत्यन्त पतले और Elastic होते है अतः शिश्न के उपर सुगमता से आ जाते हैं।

इनको पहिन कर औपसर्गिक रोगों से बच ज़ाते हैं ऐसा बहुत से व्यक्तियों का विचार है। परन्तु यह इस अर्थ के लिये अतिभयानक कार्य करते हैं क्योंकि पतले होने के कारण संघर्षण से इनके फटने की बहुत आशंका रहती है और Elastic होने के कारण इनका विदीर्ण स्थान नहीं दीख सकता अतः मनुष्य अपने को औपसर्गिक रोग से ग्रस्त औरत के संयोग में सुरक्षित समझता है परन्तु कृमि इस मार्ग से प्रवेश करके मनुष्य के अज्ञान से लाभ उठाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

इसके अतिरिक्त इनको पहिन कर मैथुन करने का आनन्द भी अनुभव नहीं होता क्योंकि रबड की तरह Elastic होने से यह शिश्न के मूल के वर्धक नर्व्स की मांसपेशियों को भींच देते हैं, जिस से कि उनके अन्दर पूर्णतः रक्त प्रवेश न होने से उस में उत्तेजना नहीं होती और यदि वे बहुत तंग हों तो मूत्रमार्ग को भी दबा सकते हैं।

उपरोक्त दोनों दोषों के अतिरिक्त यदि संघर्षण के कारण सुपारी के ऊपर का अग्रभाग विदीर्ण हो जावे जैसा कि प्रायः होता है तो शुक्रच्युति होती है और संतानोत्पत्ति की सम्भावना है।

एवं यह Capsul एक बार ही प्रयुक्त हो सकते हैं यदि दो बार प्रयुक्त किये जावें अथवा इनको निकालते समय रोगग्रस्त औरत के साथ संयोग से बाहिर के पार्श्व के स्पर्श के कारण कृमि शिश्न में आ पहुँचते हैं जिससे कि रोग की अधिक सम्भावना है।

परन्तु यदि उचित उपायों को ध्यान में रख कर इन का प्रयोग किया जावे जैसे कि Sheath हटाने से पूर्व उनको बाहर से Antiseptic Lotion आदि से धोकर बाहर करें एवं तदनन्तर अपने हाथों और शिश्न को भी Antiseptic वस्तुओं से धोड़ालें तो यह उपाय भी संतान निरोध में एक अच्छा सहायक है।

iii. Douch हमको यह मालूम है कि यदि शुक्र को गर्भाशय के मुख तक पहुँचने से पूर्व ही अथवा गर्भाशय में पहुंचने पर भी यदि किसी प्रकार से बाहर कर दिया जावे तो संतानोत्पत्ति की बहुत कुछ सम्भावना रुक जाती है, परन्तु यह कार्य्य जितना शीघ्र किया जावे उतना ही उत्तम है और उतना ही अधिक इस की सफलता का अनुमान किया जा सकता है। इसके लिये दूरतक धोने के लिये Douch बस्ति की आवश्यकता होती है। इसकी नली का मुख चौड़ा और लम्बा होना चाहिये यदि यह योनि के मुख को चौड़ा कर सके तो उत्तम है।

हमको यह भी ज्ञात है कि अधिक शीत या अधिक उष्ण अथवा अम्ल (Acid) क्रिया वाले पदार्थ शुक्राणु या किसी भी Microbe को बहुत अधिक सुगमता से शीघ्र नष्ट कर सकते हैं। इस लिये यदि अधिक गरम अथवा शीत पानी का उपयोग किया जावेगा तो शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। एवं यदि कृमिहर-कृमिनाशक पदार्थ जैसे Lysal या त्रिफला कषाय (स्तम्भक गुणी होने से) का प्रयोग किया जावेग। तो भी शुक्राणु नष्ट किये जा सकते हैं।

गर्भाशय में पहुँच कर डिम्ब से मिलने में शुक्राणु को दो-तीन-चार दिन अथवा कई बार सप्ताह तक लग जाता है इसलिये Fertilization की निश्चित तिथि का जानना असम्भव है। उसके चार-पांच दिन आगे पीछे का ज्ञान हो जाता है। इसलिये

मैथुन के अगले दिन भी योनि को धोया जा सकता है, परन्तु उत्तम यही है कि जितना शीघ्र हो उतना ही शीघ्र भय को दूर कर देना चाहिये।

iv Syringe– Douch की अपेक्षा यह उत्तम है क्योंकि इसके द्वारा योनि का मुख चौड़ा किया जा सकता है एवं योनि के पदार्थों को भली प्रकार धोया जा सकता है जिससे कि सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना बहुत दूरी तक हटाई जा सकती है।

v. Quinine Suppositry–हमको यह मालूम है कि Quinine के बहुत हलके घोल में भी यदि किसी कृमि को रख दें तो वह मर जाता है और यदि वह अधिक बलवान है और घोल निर्बल है तो उसे क्रियाहीन अवश्य ही कर देगा, इसके साथ ही काय चिकित्सा शास्त्र हमको यह भी बताता है कि Quiuine गर्भपात करती है, इसलिये गर्भवती स्त्री को बहुत सावधानता से दी जाती है क्योंकि यह गर्भाशय की मांस पेशियों में संकोच उत्पन्न करके गर्भपात करा देती है, एवं इसी संकोच के कारण यह मासिक स्राव को बढ़ाती है— अस्तु Quinine के अन्दर कृमियों को नष्ट या क्रियारहित करने की एक बड़ी भारी शक्ति है। इसी सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार रक्त में रहने वाले मलेरिया के कृमि को Quinine नष्ट करती है उसी प्रकार वीर्य में रहने वाले शुक्राणु को भी नष्ट करती है, क्योंकि दोनों के रहने का माध्यम एक है अर्थात् दोनों क्षारीय गुण वाले हैं। अतः Quinine शुक्राणु को नष्ट करने में एक बहुत बड़ा कारण बनती है।

इसी कल्पना के आधार पर Quinine की पिचकारी या Quinine की फलवर्ति 'Suppositry' प्रयुक्त होती है। यह एक प्रकार का Plug होता है, जो कि बाजार में Suppositry के नाम से प्रत्येक दुकानदार के यहां मिलता है, परन्तु शोक यह है कि बाजार में जो फलवर्ति मिलती है उनमें Quinine की मात्रा बहुत कम होती है इसका कारण Quinine का महंगा होना है। यह कार्य्य घर में Quinine के घोल से भी किया जा सकता है।

२ गुने Quinine को १ औन्स पानी में घोल कर उस में थोड़ा सा Citric Acid यदि मिला कर योनि का प्रक्षालन करें तो जहां Quinine अपनी कृमिनाशक शक्ति के द्वारा शुक्राणु को नष्ट करेगी वहां (Acid) अम्ल की उपस्थिति के कारण माध्यम उदासीन हो जावेगा जिसका परिणाम यह होगा कि यदि कोई कीटाणु शेष भी रहेगा वह भी माध्यम के विरुद्ध होने से जीवित नहीं रह सकता क्योंकि जो कीटाणु जिस माध्यम में रहते हैं वह उस से विपरीत माध्यम में क्रियारहित या मर जाते हैं क्योंकि उस माध्यम में उनके भोजन का अभाव तथा जीवन शक्ति का ह्रास हो जाता है। अतः शुक्राणु को नष्ट करने में यह भी एक उत्तम साधन है।

vi. Possary— यह एक प्रकार की रबर की फलवर्ति होती है जो कि योनि के द्वारा गर्भाशय के मुख में रक्खी जाती है, इन से गर्भाशय का मुख बन्द रहता है यही कारण है कि गर्भपात के समय गर्भाशय का मुख बन्द करने के लिये इनका प्रयोग होता है। मैथुन से पूर्व यदि इनका प्रयोग किया जावे तो गर्भाशय का मुख बन्द रहेगा जिस से कि शुक्राणु गर्भाशय में न पहुंच सकेंगे, इसके साथ यदि मैथुन के बाद निकाल ली जावें तो शुक्राणु के पहुंचने की आशंका हो जाती है। इसलिये निकालने से पूर्व योनि को Douch के द्वारा धोकर फिर इनको निकालें। उत्तम यह है कि एक रात तक लगी रहने दे और अगले दिन Lysal Lotion से धोकर फिर निकालें।

प्रारम्भ में इनका उपयोग किसी योग्य चिकित्सक द्वारा करवाना चाहिये अन्यथा रोग का भय है।

इस उपाय के साथ रबर Possary के स्थान पर Suppositry का भी प्रयोग किया जाता है। इनका भी उद्देश्य गर्भाशय के मुख को बन्द करना ही होता है जिससे शुक्राणु गर्भाशय में प्रविष्ट होकर डिम्ब से न मिल सकें।

vii. Soluble Capsul— घुलने वाले खोल— मक्खी के पर यदि शहद में चिपट जावें तो वह उड़ नहीं सकती इसी प्रकार यदि किसी भी Microbe कीटाणु को तैल जैसे चिकने पदार्थ में छोड़ दिया जावे तो वह क्रिया रहित हो जाता है।

यही बात शुक्राणु के सम्बन्ध में भी है यदि किसी भी स्निग्ध पदार्थ में कीटाणु को रख दिया जावे तो वह क्रियारहित हो जायेगा। इसी सिद्धान्त को लेकर बाजारू औरतें तेल, Vesaline, घी, मक्खन आदि चिकने पदार्थ का प्रयोग करती हैं। इसके साथ ये भगोष्ठ को नर्म भी रखते हैं। भगोष्ठ को नर्म रखने का कार्य प्रकृति की ओर से योनिस्थ ग्रन्थियां करती हैं। परन्तु अधिक मैथुन के कारण ग्रन्थियां अपने कार्य्य में अशक्त हो जाती हैं जिससे कि योनि बड़ी-रूक्ष तथा मैथुन में निर्बल एवं आनन्दरहित हो जाती हैं। इसलिये उपरोक्त दोष के लिये उस में Vesaline आदि का प्रयोग करते हैं।

यह भी किसी अंश तक संतानरोधका कारण है क्योंकि शुक्राणु डिम्ब तक नहीं आसकता।

viii. इन्द्रिय दमन-इन सब से बढ़कर उपाय जितेन्द्रियता है। सम्पर्क ही न करना।

इस का दूसरा भाग अर्थात् औषध की सहायता से सन्तानोत्पत्ति को रोकना वह प्रथम भाग में ही विशेषतः आजाता है। केवल औपसर्गिक रोगों से बचने के लिये विशेषतः Syphlis से बचने के लिये मैथुन से पूर्व ही Calomal की मरहम का प्रयोग करना होता है।

परन्तु क्रियात्मक रूप में पूर्ण सिद्धि के लिये निम्न विधि है—

मैथुन से पूर्व— योनि का प्रक्षालन करके फलवर्ति और Possary का प्रयोग।

मैथुन के पश्चात्— योनि का प्रक्षालन फिर Possary और फलवर्ति को अगले दिन निकालें।

यद्यपि उपरोक्त उपायों से इस कार्य्य में शत प्रतिशतक कृत कार्यता नहीं होती तो भी ६० फी सदी कृतकार्यता देखी गई हैं।

अपनी प्रबल कामेच्छा को जो कि पवित्र उपाय इन्द्रियदमन से रोकने में असमर्थ हैं उनके लिये उपरोक्त कृत्रिम उपाय संतुष्टि के लिये पर्याप्त है।

डाक्टर J-walls ने कामाग्नि के लिये निम्न कथन कहा है।

“जाठराग्नि की धधकती हुई ज्वाला और क्षुधा के बाद प्रज्वलित भीषण कामाग्नि का नम्बर आता है। गहरा विचार करने पर प्रकट होता है कि साधारणतः कामाग्नि की प्रबल लहरों को जीवन पर्यन्त के लिये दबाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।”

अतः उसको शान्त करने के लिये पवित्र विधि विवाह की रचना हुई एवं उसमें भी संतानोत्पत्ति को नियमित रखने के लिये जिस से कि मनुष्य भावी दुःखों से बच सके वैज्ञानिकों ने ब्रह्मचर्य के अतिरिक्त उससे हीन गुण कृत्रिम उपायों का निर्माण किया— उन्हीं का एक छोटा सा दिग्दर्शन यह किया गया है। इसके विस्तार के लिये शारीरिक क्रिया और रचना (विशेषतः उत्पादक अंगों की) की आवश्यकता है परन्तु विस्तार के भय से वह नहीं लिखा।

दक्खनी ब्राह्मण

(लेखक— ऐम. राय)

बड़ा धोता, बड़ा पोथा (चोटा) पण्डिता पगड़ा बड़ा ।
अक्षरं नैव जानाति ढपोल संखाय नमो नमः ॥

बोलो भगवान् ढपोल संख महाराज की जय, लम्बी धोती वाले की जय, लम्बी चोटी वाले की जय ।

दुनिया की अजूबात के अन्दर दक्खनी ब्राह्मण भी एक चीज़ है । लम्बी लांगदार धोती ठीक टखनों तक चली गई है । शरीर पर एक घुटनों तक लम्बा जनेऊ है । सिर पर देखिये तो एक गौ के खुर के बराबर लम्बी चोटी है । इस से आप यह न समझिये कि मामूली गौ के खुर से काम निकल जायेगा । नहीं आपको रोहतक और हिसार के किसी बड़े बैल को ढूंढना होगा । कभी २ एक खुर भी चोटी का मुकाबला न कर सकेगा और दो दो खुर जोड़ने पड़ेंगे ।

इस से आप सहज समझ सकते हैं कि कि स्वामी शंकराचार्य के देश में धर्म का प्रतिपालन ठीक पूरी तौर पर होता है । इस धर्म के जुए को ब्राह्मण अनन्त काल और अनवरत परिश्रम से खींचते चले आ रहे हैं । हां कभी २ इस धर्म की गाड़ी को अछूत आकर रोक लेते हैं तो बहुत अनर्थ हो जाता है । सदियों से चलती हुई गाड़ी रुक जाती है और देश जाति में तहलका मच जाता है ।

यदि रास्ते में यह तकलीफ न पड़े तो धर्म की गाड़ी को रोकने में किसी की ताकत नहीं होती । वह सीधी Bombay Mail की तरह वायु वेग से दौड़ती जाती है । नदीं, पहाड़ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते । ब्राह्मण देवता को पैसे देकर अपना स्थान (Seat) रिज़र्व करा लिजिये, फिर आप सीधे स्वर्ग लोक में पहुंच जाइयेगा ।

इस गाड़ी की रफ़ार देख मैं हैरान हो गया । मांस मदिरा मैथुन इस धर्म की गाड़ी को नहीं रोक सकते बशर्ते कि उसकी सड़क में अछूत न आजाय ।

इस गूढ़ तत्व का पता लगाने के लिये मैंने अनेक यत्न किये । यह अछूत क्या चीज है जो इस गाडी को एक दम रोक लेती है, जिसके स्पर्श ही नहीं, पर कई गज़ दूर रहने से ही ब्राह्मणत्व नष्ट होजाता है । मैं कई बड़े २ वैज्ञानिकों के पास गया पर रहस्य न खुला । एक विज्ञ ब्राह्मण देवता से पूछा तो उसने कहा कि अछूतों में एक

तरह की बिजली (Electricity) रहती है। मैं इसे अधर्म बिजली का नाम देता हूं, जिस की सूक्ष्म किरणों से धर्म की गाड़ी एकदम रुक जाती है। यह अधर्म बिजली दिन में ही काम करती है रात में नहीं। क्योंकि बड़ी बड़ी चोटी वाले उच्च कुल के ब्राह्मण रात को अब्राह्मणियों के यहां आलिङ्गन सुख का उपभोग करते हुए भी धर्म की गाड़ी को खींचे चले जा रहे हैं। इसी तरह असूर्यम्पश्या ब्राह्मणी भी कमनीय कलेवर मुसलमानों तक से स्वर्गीय सुख का अनुभव करती हुई वैदिक मर्यादा का पालन करती चली जा रही है, अपनी रूपज्योत्स्ना को दिग्दिगन्त में फैला कर ब्राह्मणधर्म का विस्तार करती जाती है। पर शर्त यह है कि कहीं अछूत वह सड़क न छू जाय जहां पूज्यपाद ब्राह्मण अपने पदपङ्कज रखते हों। मदिरा और मांस भी कोई बाधा नहीं देते, खाइये छिप कर पर ब्राह्मणत्व के व्याघातक अछूत से परहेज़। यह सहज शुद्ध ब्राह्मण किसी चीज़ से अशुद्ध नहीं होते। मांस मदिरा इन पर असर नहीं करती। पाखाने के बाद हाथ मांजने की भी इन सहज शुद्धों को ज़रुरत नहीं होती। हां किसी अछूत की छाया न पड़नी चाहिये।

आप यह न समझिये कि मैं सब ब्राह्मणों का ज़िक्र कर रहा हूं। नहीं कई बहुत सदाचारी भी हैं। पर मेरे कहने का मतलब यह है कि उपरोक्त कार्य करते हुए यदि कोई आदमी अछूत से परहेज़ रखता है तो 'कचित्स्पर्शं न कुर्वन्ति नलिनिदलमम्बुवत्' कोई चीज भी ब्राह्मणत्व पर व्याघात नहीं कर सकती। इस अधर्म बिजली की रहस्य पाश्चात्य लोग भी नहीं समझ सके हैं। इसकी किरणें.......... से भी सूक्ष्म हैं।

मुझे तो धर्म के बचाने का एक ही उपाय दिखता है कि इन अब्राह्मणों को काले-पानी भेज दिया जाय, जहां से वे कभी वापस न आ सकें। फिर देखिये कि ब्राह्मण लोग धर्म को किस गति से इस धर्म भूमि पर खींच लेजाते हैं। फिर कोई बाधा न होगी।

* * *

वसन्त

छाई छटा वसन्त की, खेलत फाग अनन्त ।
चहकैं विहगरु द्रुमलता फूलन व्याज हसन्त ॥

* * * *

चम्पा–कुसुमों ने किस उत्सव के हेतु आज,
ब्रह्मचारी का सा पीत पर आज धारा है ?
केवडे ने कहो किस बात पर खुश होके,
भीने भीने सौरभ को खूब यों पसारा है ?
गाल पै गुलाब के गुलाबी किस बात ने दी,
छूटी क्यों पलाश पै गुलाल–भरी धारा है ?
आज ये अनोखा खेल खेलता खिलाड़ी कौन,
यही जानने को चित चञ्चल हमारा है ॥ १ ॥

* * * *

प्रकृति-प्रदर्शनी के दर्शन के हेतु आज,
दूरतम देश छोड़ भारी भीड़ आई है ?
कुल माता ने रचाया उत्सव अनोखा आज,
सोने में सुगन्ध भरी सारी कार्रवाई है ?
दूर दुनियां में कुल चिन्ताओं का भार छोड़,
धर्म-धुनी जनता उमंग भरे आई है ?
पढ़ाई–बढ़ाई के न घण्टे बजते हैं आज,
बालकों के मुख पै अनोखी छटा छाई है ॥ २ ॥

"श्री शान्त"

सार्वभौम-वैदिकधर्म

द्वितीय अध्याय

धर्म की परख

(ले०— श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति)

पृष्ठ २१२ से आगे

(१)

धर्म और सदाचार

प्रथम अध्याय के अन्तिम खण्ड में हम बता आये हैं कि धर्म नाम के व्यापी सिद्धान्तों का मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध में क्रियात्मक प्रयोग सदाचार कहाता है। जो विचारक सदाचार शास्त्र को संसार के चलाने वाले व्यापक नियमों का विशेष प्रयोग नहीं मानते, अपितु एक स्वतन्त्र शास्त्र मानते हैं, वे कभी पूरी सचाई पर नहीं पहुँच सकते। यह असन्दिग्ध बात है कि सदाचारशास्त्र संसार के नियम शास्त्र का एक भाग मात्र है। सदाचार का आधार धर्म है।

पश्चिम के बहुत से विचारक, जिन में ईसाई विचारक भी सम्मिलित हैं, इस बात को अंगीकार नहीं करते। डाक्टर फिलण्ट ने अपने ईश्वर वाद सम्बन्धी ग्रन्थ में लिखा है कि सदाचार का आधार Religion नहीं है। इसका कारण यह है कि जो धर्म है, ईसाइयों का Religion उस से बहुत भिन्न है। हम आगे चल कर देखेंगे कि अपने व्यापी अर्थों में ईश्वर विश्वास सदाचार का एक आवश्यक आधार स्तम्भ है, परन्तु इस में तो कोई दूरदर्शी विचारक भी इन्कार न कर सकेगा, कि सदाचार शास्त्र एक व्यापी तत्वज्ञान का भाग होना चाहिये, उन नियमों पर आश्रित होना चाहिये जो सम्पूर्ण संसार का शासन कर रहे हैं।

धर्म पर सदाचार आश्रित है। जीवन सम्बन्धी सत्य नियमों का प्रकाश मनुष्य के व्यवहार में सामान्यतया प्रवृत्ति (Character) और विशेषतया व्यवहार (Conduct) के रूप में प्रकाशित होता है। मनुष्य में व्यापी नियमों की भावना है या नहीं इसका भान प्रवृत्ति और व्यवहार द्वारा ही होता है। धर्म का भाव या अभाव मनुष्य के व्यवहार द्वारा प्रगट होता है। व्यवहार कई प्रकार का है। सच बोलना, चोरी न करना, शान्ति का प्रयोग करना— ये सब व्यवहार हैं, जो धर्म की सूचना देते हैं। ये श्रेष्ठ व्यवहार बताते हैं कि मनुष्य में जीवन सम्बन्धी सत्य नियमों का ज्ञान है, प्रयोग की इच्छा है, या कम से कम संस्कारों के कारण उसकी प्रवृत्ति (Character) धर्मानुकूल है। धैर्य क्षमा सत्य आदि गुण धर्म भाव के चिन्ह अर्थात् लक्षण हैं। मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक का यही तात्पर्य है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

(२)

धर्म और सत् (Right)

यथार्थ का नाम सत् है। भाषा में उसके लिये ठीक शब्द है। धर्म और सत् का परस्पर क्या

सम्बन्ध है ? क्या सत् से धर्म को लक्षित या सूचित कर सकते हैं ?

सदाचार शास्त्र (Ethics) के विचारकों में चिर काल से मतभेद चला आया है। योरपियन सदाचार पर विचार करने वालों ने सत्यविद्याओं में सदाचार के उद्देश्यों पर विवेचना करते हुए जिन जिन उद्देश्यों को माना है, उनकी विस्तृत व्याख्या और आलोचना तीसरी पुस्तक में की जायगी, यहां तो हमें केवल संक्षेप में यह निर्देश करना है कि मुख्यतया उन तत्ववेत्ताओं में तीन मत हैं।

१. Heractitus, Stoics और Kant यह तीन मुख्य नाम उस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि हैं, जो सत् (Right) को सदाचार का लक्ष्य मानता है।

२. Democritus, Epicurians और Bentham यह तीन तत्ववेत्ता सुख (Good) कों सदाचार का उद्देश्य मानने वाले सम्प्रदाय के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं।

३. तीसरा सम्प्रदाय उन लोगों का है जो पूर्णता (Perfection) को सदाचार का लक्ष्य मानते हैं। ग्रीन अन्तरात्मा (Inner self) आदि की पूर्णता को सब से ऊँचा मानते हैं।

इन में भारी विरोध समझा जाता है। इनके गुण दोष विवेचन तीसरे अध्याय में किये जायँगे, यहां हमने यह देखना है कि यह तीनों ही सम्प्रदाय धर्म रूपी सचाई के तीन भिन्न २ पहलुओं को लेकर प्रवृत्त हुए हैं। धर्म को केन्द्र मान लीजिये तो यह तीनों अपने २ स्थान पर सुघड़ता से रखे दिखाई देंगे।

सत् यथार्थ का दूसरा नाम है। जो कुछ संसार के व्यापी और नित्य नियमों के अनुकूल है, वही यथार्थ हो सकता है और रह सकता है, जो इन नियमों के अनुकूल नहीं है, वह किसी दिन नष्ट हो जायगा। यथार्थ और नित्य नियमों में बहुत समीप सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे से सदा सम्बद्ध हैं। सत् में दोनों सम्मिलित हैं धर्म भी और धर्मी भी। उन में से Right शब्द धर्मी अंश को छोड़ कर धर्म का ही ग्रहण करता है। इस कारण हम कह सकते हैं, कि सत् और धर्म प्रायः अभिन्न हैं।

(३)

धर्म और सुख (Happiness या Good)

हमने ऊपर देखा है कि मनुष्य जीवन के संबन्ध में धर्म के व्यवहृत भाग का नाम सदाचार है। हम आगे विवेचना करेंगे कि सदाचार का निश्चय करना हो तो पहले संसार के व्यापी नियमों को, जिनका दूसरा नाम धर्म है, जानो, और फिर उन का मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में प्रयोग करो। यहां पर एक और सिद्धान्त हमारे सम्मुख आता है। हमारे प्राचीन विचारकों में से बृहस्पति आचार्य चार्वाकों का गुरु हुआ है। उस ने जीवन का उद्देश्य सुख को बतलाया है, और भले बुरे की परख भी सुख दुःख को ही ठहराया है। वह सदाचार पर विश्वास नहीं रखता कार्य नीति में विश्वास रखता है। इसका चलाया हुआ सम्प्रदाय चार्वाक सम्प्रदाय कहाता है। पश्चिम में भी सुख को ही सदाचार का फल और निमित्त माना जाता है, प्राचीन दार्शनिकों में Democritus और Epicurian सम्प्रदाय के लोग सुखवादी थे, और नये तत्ववेत्ताओं में से Bentham ने Happiness को भले बुरे की कसौटी बताया है। उसके अनुयायी उपयोगितावादी (Utilitarian) कहे जाते हैं। मिल आदि उस के अनुयायी हैं।

ये लोग सुख को सदाचार की कसौटी मानते हैं क्या उनका मत सर्वथा झूठ है इसका विवेचन

तीसरी पुस्तक में विस्तार से होगा, यहां इतना संकेत ही पर्याप्त है कि उनके कहने में एक बहुत मोटी सचाई भी है । मनुष्य सुख के लिये सारे यत्न करता है। अच्छे आचरणों का इस लोक में फल यही होना चाहिये कि मनुष्य को सुख प्राप्त हो। बड़े से बड़े आस्तिक भी यह स्वीकार करते हैं। 'सुखार्था हि मानवानां प्रवृत्तिः' यह भारतीय दर्शनकारों का भिन्न २ प्रकार से दोहराया हुआ वाक्य है। आस्तिक भी स्वीकार करते हैं कि सदाचार का फल सामान्यतया सुख होना चाहिये। इतना अंश उपयोगितावाद में सच है।

उनके कथन में अपूर्णता यह है कि एक तो सुख शब्द इतना स्थूल है कि यह उस आस्तिक सन्तोष के भाव को प्रगट नहीं कर सकता, जो सदाचार का मुख्य फल है। दूसरी न्यूनता यह है कि उपयोगिता वादी परलोक को बिल्कुल भुला देते हैं। तीसरी न्यूनता, जो इन्हीं दोनों के कारण उत्पन्न होती है यह है कि जो एक अधूरा परिणाम है, उसे अव्यभिचारी–आवश्यक--परिणाम मान कर उसी को सदाचार की कसौटी बना देते हैं। इन तीन न्यूनताओं के होने पर भी हम सामान्य तौर पर कह सकते हैं कि सदाचार से सुख उत्पन्न होता है। उसे दर्शनों की निश्चित भाषा में 'अभ्युदय' कहते हैं। ऐहलौकिक ऐश्वर्य उत्तम आचरणों का फल है। उत्तम आचरण धर्म के जीवन सम्बन्धी नियमों के पालन का नाम है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस लोक की दृष्टि से, धर्म, सदाचार द्वारा 'अभ्युदय' या सुख का हेतु होता है। वैशेषिक दर्शन में 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' में अभ्युदयसिद्धि से यही तात्पर्य है। इस प्रकार सुख या अभ्युदय को लोकभाषा में धर्म का अधूरा लक्षण कह सकते हैं।

४–धर्म और पूर्णता (Perfectoin)

मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के पूर्ण विकास का नाम पूर्णता है। कोई त्रुटि न रह जाय–उस दशा का नाम 'निर्दोषता' 'शुद्धता' या 'पूर्णता' है। वह कैसे प्राप्त हो सकती है ? यह कह कर सिद्धि के लिये अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि शरीर, मन और आत्मा के सम्बन्ध में जितने नियम हैं। उनके यथार्थ पालन से ही पूर्णता प्राप्त हो सकती है, वे जीवन-सम्बन्धी नियम संसार के व्यापी नियम धर्म हैं। पूर्णता धर्म से ही प्राप्त हो सकती है। यह पूर्णता पहले खण्ड में दिखाये हुए अभ्युदय से ऊंचे दर्जे पर आती है।

५–धर्म और मोक्ष

पूर्णता का फल मोक्ष है। उसका दूसरा नाम निःश्रेयस है। वह मोक्ष पूर्णता से प्राप्त होता है, और पूर्णता धर्म से उत्पन्न होती है। परम्परा से निःश्रेयस की उत्पत्ति का कारण धर्म ही है। मोक्ष क्या है ? पूर्णता किस प्रकार उत्पन्न होती है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर तीसरे भाग में दिये जायेंगे जहां क्रियात्मक धर्म की व्याख्या होगी। मोक्ष की विशेष व्याख्या दूसरे भाग में की जायगी यहां तो हमें यह देखना अभीष्ट है कि भिन्न २ विचारकों ने भलाई बुराई के जो पैमाने निश्चित किये हैं, वे धर्म के साथ सीधे या प्रकारान्तर से सम्बन्ध रखते हैं, वे अधूरे हैं, क्यों कि मूलभूत कारण को छोड़ जाते हैं। सदाचार का आधार धर्म है। सुख, पूर्णता, और मोक्ष–क्रमशः उसके फल हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म इस आधार सम्बन्धी संसार की नाभि है। उसी के चारों ओर सब विचार और आदर्श घूमते हैं । इसी कारण धर्मशास्त्रकारों ने कहा है कि

'धर्मे सर्वम्प्रतिष्ठितम्'

सब संसार धर्म के ही आश्रय में रहता है। इस विवेचन से धर्म के लक्षण निम्नलिखित प्रकार से किये जा सकते हैं--और धर्म इन्हीं लक्षणों से परखा जा सकता है

(१) जो नियम संसार के धारण करने वाले हैं, उनका नाम धर्म है। 'धारयतीति धर्मः'
(२) सदाचार का बीज धर्म है। 'आचारो धर्ममूलो हि'
(३) सुख का कारण धर्म है। 'धर्मात् सुखम्'
(४) सांसारिक विभूति का कारण धर्म है। 'यतोऽभ्युदयसिद्धिः स धर्मः'
(५) पूर्णता उत्पन्न करने का साधन धर्म है।
(६) मोक्ष उत्पन्न करने का एक मात्र साधन धर्म है। यतो निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'

तृतीय अध्याय

धर्म के ज्ञान-साधन

१. नियमों का ज्ञान आवश्यक है

यह साधारण बुद्धि की बात है कि किसी राज्य में रहने के लिये उसके नियमों का जान लेना आवश्यक है। राज्य के अधिकारी राजनियमों को प्रकाशित कर देते हैं, और आशा करते हैं कि सारी प्रजा उन नियमों को जान लेगी, और जान कर उनका पालन करेगी। अपराध होने पर यह नहीं पूछा जाता कि 'तुम्हें नियमों का ज्ञान था या नहीं ?' नियम की जानकारी न होना नियमभङ्ग का बहाना नहीं हो सकता। इस संसार रूपी राज्य के भी नियम हैं। उन नियमों का पालन करने से ही मनुष्य अपना अभीष्ट-सुख-प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। वही संसार के धारण करने वाले नियम 'धर्म' शब्द से कहे जाते हैं। उनको जानना हरेक पुरुष का कर्तव्य है। यदि वह नियमों से अनजान रहे और उनका पालन न कर सके, तो दण्ड अवश्य मिलेगा। वह प्रत्यक्ष जगत् में दिखाई देता है। धर्म का ज़ानना आवश्यक है। परन्तु उसे जानने के साधन कौन से हैं ?

२. धर्म के 'साक्षात् लक्षण'

मनुष्य धर्म को जानने के लिये कहां जाते हैं ? यह देख लेने पर हम कम से कम इतना परिज्ञान अवश्य कर सकेंगे, कि लोक में धर्म के कौन से ज्ञान हेतु या 'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्' 'जिस द्वारा जाना जावे वह लक्षण है' इस अर्थ में लक्षण हैं। वह लक्षण–ज्ञानहेतु–लोक प्रसिद्ध होने से साक्षात् कहाते हैं। मनुस्मृति में मनुभगवान् ने निम्नलिखित श्लोक में धर्म के साक्षात् लक्षणों का वर्णन किया है—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधम्प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

यह चार धर्म के साक्षात् लक्षण हैं। १ श्रुति २ स्मृति। ३ सदाचार। ४ स्वस्य–आत्मनः–प्रियम्, अपने आत्मा को प्रिय। श्रुति से यहां वेदों का ग्रहण होता है। भारतवर्ष के आर्य मनुस्मृति के समय, और उस से पूर्व वेदों को धर्म का अन्तिम प्रमाण मानते थे। वेद से विरुद्ध अधर्म माना जाता था। वेद के मंत्र ईश्वर की ओर से आये हुए समझे जाते थे। स्मृति उन ग्रन्थों का नाम है जिन में ऋषियों और आचार्यों के सिद्धान्तों के संग्रह हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस ऋषि के नाम से जो स्मृति प्रसिद्ध है, वह उसी ऋषि ने लिखी हो। मनुस्मृति मनु ने नहीं लिखी, धम्मपद बुद्धदेव का लिखा हुआ नहीं है, बाइबल का कर्ता ईसा नहीं है, और लाइकर्गस ने कोई विस्तृत नियम पुस्तक नहीं लिखा। तो भी ये लोग स्मृतिकार हैं, क्योंकि

ऐसे ग्रन्थ पाये जाते हैं, जिन में इन आचार्यों के सिद्धान्तों का संग्रह है। वे ग्रन्थ उनकी स्मृतियां हैं, उन के सिद्धान्तों का स्मरण रख कर संग्रह किये गये हैं, और चिरकाल तक लोग उनका स्मरण करते हैं। प्रायः मनुष्य जाति का प्रधान भाग स्मृतियों को ही धर्म में प्रमाण मानता है। तीसरा लक्षण सदाचार है। मनुष्य जाति का अज्ञानी भाग श्रुति को नहीं जानता, स्मृति तक पहुँच नहीं सकता। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो श्रुति और स्मृति में से धर्म को ढूंढने का यत्न करते हैं। अधिकतया अज्ञानी प्रजा अपने बुजुर्गों और माने हुए गुरुओं को ही श्रुति और स्मृति का प्रतिनिधि मान कर उनका अनुसरण करती है। धर्म के गुरु लोग—पुरोहित, पादरी, भिक्षु, या मौलवी किसी भी नाम के हों—श्रुति और स्मृति के प्रतिनिधि मान लिये जाते हैं। जाति के बड़े और बूढ़े धर्म के साक्षी माने जाते हैं। चौथा लक्षण 'आत्मनः प्रिय' है। जो अपने को प्रिय हो वही धर्म है। जो लोग धार्मिक दृष्टि से बिलकुल दीन हीन हैं, अथवा जिन्होंने श्रद्धा और विश्वास से ऊपर तर्क को बिठा लिया है, वे दोनों 'अपनी सम्मति' या अपनी प्रिय बात को धर्म और सचाई का सब से उत्कृष्ट प्रमाण मानते हैं। इसके अच्छे और बुरे— दोनों पहलू हैं। दोनों पहलुओं का विवेचन हम आगे करेंगे, यहां यही बताना अभीष्ट है कि ऐसा सम्प्रदाय बहुत प्राचीन काल से चला आया है जो अपने तर्क या अपनी सम्मति या अपनी रुचि को अन्य सब से ऊपर रखकर धर्म की कसौटी मानता है।

३. पृथक २ इनकी अपूर्णता-श्रुति

धर्म के इन चारों ही 'साक्षात् लक्षणों' को जुदा २ लें और केवल एक २ से सारा काम चलाना चाहें तो हमें थोड़े से यत्न से ही ज्ञान हो जायगा कि वैसे काम चलना कठिन है। अकेला धर्म जानने का कोई भी साधन पूर्ण नहीं हो सकता।

हम श्रुति से आरम्भ करते हैं। श्रुति अर्थात् वेद को धर्म का अन्तिम प्रमाण माना है, परन्तु वेद पर अनन्त श्रद्धा रखने वालों को भी निम्नलिखित बातें माननी पड़ेंगी।

(१) वेद में धर्म के मूलसिद्धान्त ही हो सकते हैं-उसके विस्तृत अंग नहीं।

(२) वेद में देश काल की उपेक्षा करके ही उपदेश सम्भव है, विशेष देशकाल के अनुसार धर्म का ज्ञान वेद से नहीं हो सकता।

(३) सिद्धान्त वेद में हैं—उनका प्रयोग व्यक्ति के आधीन है।

(४) संसार के प्रश्नों की सम्भावनायें कभी परिमित नहीं हो सकतीं।

(५) वेद का पूर्ण ज्ञान सब के लिये सम्भव नहीं है। आजकल तो करोड़ों की आबादी में एक भी वेद का पूर्ण ज्ञाता नहीं है। आर्ष काल में भी वेदों की व्याख्या और व्याख्यारीति में मत भेद थे।

इन सब कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि केवल वेद को धर्म में प्रमाण मानकर काम नहीं चल सकता। कल्पना में हम वेद को केवल नहीं—परन्तु अन्तिम प्रमाण-मान सकते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये 'अन्तिम प्रमाण' शब्द ही उसके सिवाय अन्य प्रमाणों की अपेक्षा करता है।

४. स्मृति

क्या केवल स्मृति को धर्म में प्रमाण मान कर कार्य चल सकता है?

स्मृति देश और काल की अपेक्षा करके प्रवृत्त होती है। मनुष्यों के विशेष देश और विशेष समय की स्थिति को दृष्टि में रख कर आचार्य लोग

स्मृति की रचना करते हैं। एक पुरुष को—चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो—बुद्धि भ्रमरहित नहीं हो सकती। न ही वह इस व्यापक जगत् की चौड़ाई तक अपनी बुद्धि को पहुंचा सकता है। फिर स्मृति तो देश और काल की सीमाओं को लांघ ही नहीं सकती। ऐसी दशा में किस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी भी मनुष्य की लिखी या कही हुई स्मृति सब देशों या सब समयों के लिये प्रमाण हो कर काम चला सकती है?

मनुस्मृति में जो राज्यसंघटन बताया गया है, वह विशेष दशाओं के सिवाय नहीं चल सकता। कई आज्ञायें या सामान्य सिद्धान्त ऐसे भी होंगे, जिन में परिवर्तन नहीं होता, परन्तु अधिकांश नियम कुरान में भी ऐसे हैं जो मनुष्यों की विशेष दशा को अंगीकार करते हैं। Code Napoleon का प्रयोग मिसर या चीन में नहीं हो सकता। इस प्रकार केवल स्मृति को धर्म में एक मात्र प्रमाण मानकर सारा कार्य नहीं चल सकता।

५. सदाचार

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः,
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं नपरां गतिम्।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।
—गीता॥

क्या केवल बुजुर्गों, विद्वानों या गुरुओं का उपदेश अथवा व्यवहार हमारे लिये प्रमाण हो सकता है?

जिन युक्तियों से स्मृति को धर्मग्रन्थ मानना असम्भव है, उन्हीं युक्तियों से सदाचार को धर्म में अन्तिम प्रमाण मानना भी असम्भव है। धर्म एक सा है—सामान्य नियम एक से ही होने चाहियें। परन्तु संसार के बुजुर्ग, विद्वान और वृद्ध एक दूसरे से भिन्न ही बात करते हैं। 'मुण्डे मुण्डे मति र्भिन्ना' हरेक सिर की मति भिन्न है। जितने आचार्य हैं—उतने मत हैं। इतनी विभिन्न मति होने पर धर्म का अन्तिम प्रमाण मनुष्यों को कैसे माना जा सकता है।

६. आत्मा को प्रिय

क्या अपनी प्रियता—अपने आपको अच्छा या सुख कारक प्रतीत होना-धर्म का लक्षण माना जा सकता है? बहुत से विद्वान सुख, प्रसन्नता या अनूकूलता को धर्म में प्रमाण मानते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहना उत्तम है कि वे लोग उपयोगिता को कर्तव्याकर्तव्य की कसौटी मानते हैं। उपयोगिता प्रति मनुष्य पृथक् पृथक् है। सुख या उपयोगिता की कमी या अधिकता का निर्णय व्यक्ति स्वयं ही करता है। उपयोगितावादियों के प्रधानमल्ल जान स्टुआर्ट मिलने अपनी Utilitarianism नाम की पुस्तक में लिखा है—

"The creed which accepts as the foundation of morals, Utility, or the Greatest Happiness Principle, holds that actions are right in proportion as they tend to promote happiness, wrong as they tend to produce the reverse of happiness. By happiness is intended pleasure and the absence of pain; by unhappiness, pain and the privation of pleasure."

उपयोगितावाद मानता है कि जो कार्य सुख को उत्पन्न करे वह अच्छा और जो सुख के अभाव अर्थात् दुःख को उत्पन्न करे वह बुरा है। अपने सुख दुःख का सब से उत्कृष्ट निर्णायक स्वयं अपना आप है। परन्तु क्या सामाजिक सदाचार कोई

सदाचार नहीं ? इसका उत्तर उपयोगितावादी यह देते हैं—कि मनुष्य के अन्दर एक स्वाभाविक सामाजिक भाव है, जो उसे बतलाता है कि औरों के हित में ही उसका हित, औरों के सुख में ही उसका सुख है। भलाई या कर्तव्य का अन्तिम प्रमाण अपना सुख है, सामाजिक सुख भी अपने सुख का साधन होने से माननीय है। अन्तिम निर्णायक अपने सुख की राशि ही है। निश्चय करने वाला प्रत्येक व्यक्ति है।

क्या यह कसौटी पर्याप्त है ? निम्नलिखित कारणों से केवल इतने से धर्माधर्म या कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय नहीं हो सकता।

(१) केवल सुख—अर्थात् अनुकूल अनुभव-मनुष्य का लक्ष्य नहीं हो सकता। केवल इतना लक्ष्य अपूर्ण है। स्वार्थ त्याग, भलाई के लिये बलिदान, आदि ऊंचे कर्तव्य केवल सुख के लिये नहीं किये जाते। यह सब उपयोगितावाद के अनुसार कर्तव्यों की कोटी में नहीं आते।

(२) इतने विस्तृत जगत् में, इतनी विशाल मनुष्य जाति में, भलाई और बुराई की परख परमात्मा या प्रकृति (Nature) ने एक व्यक्ति को रखा हो, यह बिल्कुल बेजोड़ प्रतीत होता है। मनुष्य जाति के सुख की अपेक्षा व्यक्ति अपने अपने सुख को कर्तव्याकर्तव्य विचार में ऊंचा रखे, यह विचारने पर ही बहुत भद्दा प्रतीत होता है। कर्तव्य शास्त्र के विचार से इतना संकुचित लक्ष्य कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(३) यह मानना पड़ता है कि अपने लिये कर्तव्याकर्तव्य का अन्तिम निश्चय मनुष्य स्वयं ही करता है। यह भी ठीक है कि किसी मनुष्य को धर्माधर्म के निर्णय में अपनी बुद्धि को दूसरे के यहां गिर्वी न रख देना चाहिये। उसे सब विचारों और कार्यों को स्वयं कसौटी पर रखना चाहिये; परन्तु प्रश्न यह है कि क्या निर्णायक भी वही होगा, और निर्णय का साधन भी वही होगा ? कसने वाला भी वही और कसौटी भी वही होगा, धर्माधर्म का निर्णय वह स्वयं करेगा, परन्तु निर्णय का साधनभूत कोई और होना चाहिये।

(४) यदि मनुष्य के सुख दुःख पर, और उसकी निश्चय शक्ति पर ही कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय छोड़ दिया जाय तो जितने मनुष्य उतने ही शास्त्र बन सकते हैं। अपने अपने संस्कार, चारों ओर के प्रभाव, शिक्षा के गुण दोष पृथक् पृथक् होने से 'मुझे अधिक से अधिक सुख किस प्रकार मिलेगा ?' इस प्रश्न के उत्तर सब लोग भिन्न भिन्न ही देंगे। किसी को परोपकार में सुख प्रतीत होता है, परन्तु किसी को दूसरों का सुख बढ़ाने में कुछ भी सुख दिखाई नहीं देता। किसी को धन कमाना बोझ प्रतीत होता है, दूसरे को अच्छे या बुरे साधनों से धन कमा कर ही सुख का अनुभव होता है। जितने परखने वाले— उतने ही परख के साधन—और उतने ही कर्तव्याकर्तव्य शास्त्र-इस से बढ कर अराजकता इस संसार में क्या हो सकती है ?

इन कारणों से केवल आत्मा को प्रिय प्रतीत होना सुख की कसौटी नहीं हो सकती, और अन्य बन्धनों रहित केवल मनुष्य स्वयं अपने कर्तव्याकर्तव्य का परखय्या नहीं हो सकता।

७. चारों में सत्यता के अंश

पदार्थों के ज्ञान के लिये तीन प्रमाण कार्य में लाये जाते हैं। (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) शब्द। इन तीनों प्रमाणों में से अकेला कोई भी पर्याप्त नहीं—और न किसी को छोड़ा ही जा सकता है। स्थूल पदार्थों को प्रत्यक्ष के विना जानना कठिन है। अन्य प्रमाणों का आधार, और

जहां उसकी गति हो वहां अन्तिम प्रमाण भी वही है। जहां उसकी गति नहीं, वहां अनुमान की प्रवृत्ति होती है। जहां अनुमान भी कार्य नहीं करता, या जहां अभी अनुमान की शक्ति उत्पन्न न हुई हो, वहां शब्द को प्रमाण मानना पड़ता है। जहां तक शब्द प्रमाण की परीक्षा प्रत्यक्ष और अनुमान से सम्भव हो, अवश्य होनी चाहिये। साथ ही हरेक शब्द प्रमाण नहीं है— आप्त का शब्द ही प्रमाण है। 'शब्द' प्रमाण के वक्ता की आप्तता का निर्णय केवल शब्द से नहीं हो सकता— उसके लिये प्रत्यक्ष और अनुमान का पूरा प्रयोग करना चाहिये। (शास्त्रीय विषय में उपमान अनुमान का अंग हो कर ही आता है, इस कारण यहां उसे छोड़ दिया गया है)

प्रमाणों के साथ तुलना करके जब धर्म के जानने के साधनों पर विचार करते हैं, तब हमें आश्चर्य जनक समानता मिलती है। देखिये—

प्रत्यक्ष = आत्मनः प्रिय
अनुमान = स्मृति, सदाचार
शब्द = श्रुति

धर्म सुख का साधन समझा जाता है। सुख कहां है ? और उसके स्पष्ट साधन कौन से हैं ? यह प्रत्यक्ष का विषय है। सामान्य बातों में इतिकर्तव्यता का ज्ञान परीक्षण, निरीक्षण और अनुभव से हो जाता है। मनुष्य जीवन के अनेक भाग ऐसे हैं, जिन में सृष्टि के नियमों का परिज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा हो जाता है। उन विषयों में आत्मा की अनुकूलता और विचार शक्ति पथदर्शक का कार्य दे सकती है।

स्मृति और सदाचार को अनुमान के अन्तर्गत करना शायद आश्चर्यजनक प्रतीत हो, और उन दोनों को एक कोटि में रखना भी कुछ अचम्भे में डालने वाला है। हम उन दोनों को उसी प्रकार एक कोटि में रख सकते हैं, जैसे उपमान को अनुमान की कोटि में रक्खा है। स्मृति क्या है ? लेखबद्ध सदाचार है। सदाचार का शब्दों में समावेश ही स्मृति है। यदि यह क्लिष्ट कल्पना ही प्रतीत हो तो उपमान को सदाचार के समान माना जा सकता है। सादृश्य से इतिकर्तव्यता का ज्ञान ही सदाचार है।

स्मृति का सादृश्य अनुमान से है। स्मृति को शब्द प्रमाण मानना भूल है। जहां पूरी आप्तता का निर्णय हो जाय वहां फिर सन्देह या परस्पर विरोध न होना चाहिये। स्मृतियां भिन्न भिन्न आचार्यों की स्थापनायें हैं। वे व्यापी सिद्धान्तों का विशेष दशा में प्रयोग है। सामान्य व्याप्ति का विशेष दशाओं में प्रयोग अनुमान है— सामान्य सिद्धान्तों का विशेष दशाओं में प्रयोग स्मृति है। स्मृति के सिद्धान्त अटल नहीं, दशा परिवर्तन के साथ उनमें परिवर्तन हो सकता है। लिंग के भेद से अनुमान द्वारा भी भिन्न ही परिणाम निकलता है— व्याप्ति उसी रूप में रहती है।

चार व्यावहारिक प्रमाणों के समान धर्म के ज्ञानसाधन प्रमाण भी चार हैं। यदि कोई विशेष आपत्ति न ज्ञात हो तो दोनों का तीन में भी समावेश किया जा सकता है।

इन में बलाबल का निर्णय कुछ कठिन नहीं है।

स्थूल वस्तुओं में प्रत्यक्ष प्रबल है। भौतिक जगत् में, रोज के साधारण व्यवहार में इहलोक के कामों में आत्मा—आत्मा की प्रवृत्ति और विवेक शक्ति—धर्म का निश्चय कराने में समर्थ हो सकती हैं।

प्रत्यक्ष की सहायता अनुमान करता है। प्रत्यक्ष की सीमा से दो एक हाथ आगे, अनुमान पहुंच जाता है। स्मृति वहीं तक पहुँचती है। जहां

प्रत्येक साधारण बुद्धि वाले आदमी की गति नहीं वहां स्मृति रास्ता दिखाती है।

अनुमान का प्रकारान्तर कहिये या छोटा भाई कहिये उपमान है। स्मृति का छोटा भाई सदाचार है। वह सादृश्य द्वारा धर्म के नियमों का प्रयोग बतलाता है।

जहां न साधारण मनुष्य का प्रत्यक्ष जाता है, और न अनुमान लगाने के लिये 'लिंग दर्शन' की सम्भावना, वहां शब्द प्रमाण कार्य में आता है। आप्त का कथन मानना पड़ता है। मैंने पेरिस नहीं देखा। उसके सदृश कोई बड़ा शहर भी नहीं देखा कि अनुमान लगा सकूं। मेरा भाई पेरिस देख कर आया है—यह मुझे निश्चय है। यह भी मुझे अन्य व्यवहार से निश्चय हो चुका है कि वह जैसा देखता है, वैसा ही कहता है। मैं पेरिस के सम्बन्ध में उसकी बातों पर विश्वास कर लेता हूं। यह स्वाभाविक है और आवश्यक है। उन परोक्ष बातों में, जहां प्रत्यक्ष और अनुमान की गति नहीं, जहां आत्मा की पहुंच नहीं है, स्मृति मूक है, और सदाचार असमर्थ है, वहां शब्द प्रमाण श्रुति का आश्रय लेना पड़ता है। श्रुति वह है, जो सुनी जाय। शब्द सुना जाता है। शब्द और श्रुति एकार्थ वाचक हैं। श्रुति ही शब्द प्रमाण है— अन्य नहीं।

अपने अपने विषय में, एक विशेष सीमा तक सभी प्रमाण हैं। परोक्ष विषय में जहां और प्रमाण अशक्त हैं, वहां श्रुति ही समर्थ है। वह श्रुति कौन सी है? इस प्रश्न पर पीछे विचार होगा— यहां केवल यह दिखाना अभीष्ट है कि जो चारों ज्ञान-साधन बताये गये हैं, उन में से किसी की भी उपेक्षा नहीं हो सकती। स्थान २ पर सब का प्रयोग होना चाहिये यदि इस व्यवस्था को ध्यान में रख कर यत्न किया जाय, तो इस सृष्टि के नियमों का परिज्ञान अर्थात् धर्म-ज्ञान कुछ भी कठिन नहीं हैं।

चतुर्थ अध्याय

मत, धर्म और देवपूजा (Religion)

१. प्रश्न

हम बता आये हैं कि धर्म और Religion भिन्न २ वस्तुएं हैं। अब देखना है कि धर्म में और Religion में क्या सम्बन्ध है? मनुष्य जाति बौद्ध, ईसाई, मुसलमान और भक्ति वाद आदि अनेक भागों में बंटी हुई है। क्या यह भिन्न २ धर्म हैं? यदि धर्म नहीं तो इन का क्या नाम है? इन का धर्म से क्या सम्बन्ध है?

२. Religion का लक्षण

हम पहले अध्याय में देख चुके हैं कि Religion ईसाई विचारकों के मत में ईश्वर विश्वास है। परन्तु जब शास्त्रीय या ऐतिहासिक विवेचन को आरम्भ करते हैं तब ऐसे एकदेशी लक्षण को अन्तिम नहीं मान सकते। Religion पर विचार करते हुए वैज्ञानिक लोग उसे एक बहुत व्यापी वस्तु बना देते हैं और मनुष्य जाति में सामान्य तौर पर विस्तृत श्रद्धा और महत्ता के माप की व्याख्या Religion से ही करते हैं। उस विस्तृत Religion का लक्षण देख कर ही हम यह निश्चय कर सकते हैं कि धर्म से उस का क्या सम्बन्ध है?

मैक्समूलर का मत है कि " Faculty or disposition, which independent of, nay, inspite of sense and reason, enables man to apprehend the infinite under different names, and under varying dignities.

वह मानसिक शक्ति या प्रवृत्ति Religion है जो बुद्धि की पर्वाह न कर के अतीन्द्रिय क्रिया— अपरिमित शक्ति— का बोध करा देती है। बोध के रूप भिन्न २ हैं। तत्व एक है।

यह Religion है। यह मानसिक शक्ति है, परन्तु बुद्धि की पर्वा नहीं करती। तत्वज्ञानी इस लक्षण पर आक्षेप करते हैं। वे कहते हैं कि Religion मानसिक वस्तु नहीं है, अपितु हृदय की वस्तु है। इस तथा अन्य प्रकार के कई आक्षेपों को दूर करने के लिये मैक्समूलर ने अपनी Natural Religion नाम की पुस्तक में Religion का दूसरा लक्षण किया है—

Religion consists in the perception of the infinite under such manifestations as are able to influence the most character of man.

Religion अनन्त शक्ति का ऐसे रूपों में भान है, जिसका मनुष्य के आचरणों पर प्रभाव पड़े।

इस प्रकार केवल भान का नाम Religion प्रतीत होता है। परन्तु इस लक्षण पर यह आक्षेप हुआ है कि Religion केवल 'भान' नहीं है, साथ ही कुछ क्रिया भी है, जिसके विना Religion का भाव अपूर्ण रह जाता है। वही क्रिया 'पूजा' या Worship नाम से कही जाती है। केवल अनन्त शक्ति का भान Religion नहीं है, उसकी पूजा भी उस में सम्मिलित है।

वह पूजा क्यों? सुख या शान्ति के लिये। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से Religion का लक्षण निम्न लिखित किया जाता है—

'Worship of higher powers from a sense of need,(History of Religion. by Nitze)

आवश्यकता अनुभव करके अपने से ऊंची शक्तियों की पूजा Religion है। संस्कृत में इस भाव को प्रकट करने के लिये सर्वोत्तम शब्द 'देव भावना' है।

३. देव भावना और धर्म

यह पहले बताया जा चुका है कि ईश्वर-विश्वास का धर्म से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। धर्म सृष्टि के व्यापक नियमों का नाम है। नियम नियन्ता के जोर पर ही चल सकते हैं। नियन्ता ईश्वर है। नियन्ता पर जितना दृढ़ विश्वास होगा, नियम पालन में उतनी ही अधिक प्रवृत्ति होगी।

देव भावना एक सामान्य परिभाषा है, जिस के अन्दर ईश्वर पूजा या आस्तिक भाव भी आ जाता है। देव भावना के अनन्त भेद हैं। एकेश्वर विश्वास से लेकर पत्थर, लकड़ी, जल तक में देव भावना कर के उस की पूजा देव पूजा के अन्तर्गत है। उस देव भावना का धर्म से क्या सम्बन्ध है? धर्म संसार में व्याप्त नियम हैं। नियामक की तलाश मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक है। जहां वह तलाश तो आरम्भ हो जाती है—और शायद ही कोई हृदय हो जहां वह तलाश न हो— परन्तु ठीक उत्तर नहीं मिलता— न मिलने का कारण चाहे कोई हो— वहां मनुष्य नियन्ता की कल्पनायें करता है। कभी कभी वह एक नहीं—अपितु अनेक नियन्ताओं को मान कर सन्तोष कर लेता है। वह अनेक-देवता-वाद (Polytheisn) कहाता है। कभी वह जड़ों में जीवित भावना कर लेता है—तब मूर्ति वाद (Fatishism), जड़ चेतन वाद (Animism) आदि आरम्भ हो जाते हैं। कभी वह अनेक देवताओं में से एक को प्रधान मान कर उसकी उपासना में लग जाता है, वह Monotheism कहाता है। वाद कोई हो— पर मूल में वही नियम के नियन्ता की तलाश है।

धर्म का हेतु तलाश किया जाय, जगह का नियन्ता ढूंढा जाय, यह प्रवृत्ति सब जगह है। उस के अनेक उत्तर दिये जाते हैं। जो शुद्ध उत्तर

हैं, वे उत्कृष्ट देव पूजा के भाव के प्रेरक हैं; जो अशुद्ध उत्तर हैं, वे निकृष्ट देव पूजा के भाव के प्रेरक हैं।

३. अनेक मतों की उत्पत्ति के कारण

यदि सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक का धार्मिक इतिहास पढ़ा जाय तो अनेक मतों की संख्या का पार पाना कठिन होगा। फिर यदि उन के अवान्तर भेदों पर दृष्टि डालें तो मनुष्य बुद्धि शान्त प्रतीत होने लगती है। इन असंख्य मतों और सम्प्रदायों की उत्पत्ति के सामान्य कारणों पर विचार करने से निम्नलिखित परिणाम संग्रह रूप में हमारे संमुख आता है।

अनेक मतों के भेद के कारणों में से निम्नलिखित प्रधान हैं—

(१) देव भावना में भेद—जगत् के अद्भुत कार्यों के कर्ता की तलाश करते हुए किस प्रकार की भिन्न २ देव भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं, यह हम ऊपर बता आये हैं। बहुत से मतों के भेद के मूल में यही भावनाभेद है। यहुदियों को मिसर का देवसमूह पसन्द नहीं आया। उन्हें मोज़ेज़ ने एकेश्वरवाद का पाठ पढ़ाया। देव भावना में भेद मतों में भेद का कारण हुआ। यह मूल भेद था। अन्य कई प्रकार के भेद थे—परन्तु वह मुख्य भेद के सन्मुख गौण थे। आइसिस और यहोवा का भेद यहूदियों को मिसरियों से जुदा करने वाला हुआ।

(२) धर्म भावना में भेद—धर्म भावना से हमारा अभिप्राय निम्न है। धर्म जगत् के व्यापी नियमों का नाम है। पूज्य देव में कोई विशेष मतभेद न होने पर भी जीवन सम्बन्धी मौलिक नियमों के सम्बन्ध में इतना भारी मत भेद हो सकता है, कि मतों की भिन्नता उत्पन्न हो जाय। यहूदियों के और ईसाइयों के ईश्वर में कोई विशेष भेद नहीं है। ईसाइयों की ईश्वर सम्बन्धी कल्पना पुराने अहदनामे के पहले अध्याय से ही ली गई है। दोनों मतों में भेद होने का कारण यही हुआ, कि हजरत ईसा संसार को उन नियमों से व्याप्त नहीं मानता था, जिनसे व्याप्त उसके समय के यहूदी आचार्य मानते थे। ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म में भी ऐसा ही भेद था। बुद्ध ने पौराणिक देवताओं के विषय में कुछ नहीं कहा था। उसकी सब से मुख्य विशेषता यही थी की वह धर्म को बहुत विस्तृत और उदार समझता था।

(३) संस्थापक में अत्यधिक श्रद्धा—कभी २ अन्य सब कारण गौण हो जाते हैं और संस्थापक का व्यक्तिगत गौरव, और उस के शिष्यों का भक्ति भाव ही मुख्य हो जाते हैं। हजरत मुहम्मद की कामयाबी का रहस्य उस का अपने देशवासी अनुयायियों में महत्त्व था। वह जाति की दशा को जानता था—उसकी बुराइयों का ठीक इलाज भी जानता था। शिष्यों और भक्तों के लिये उसके ईश्वर सम्बन्धी विचार उत्कृष्ट थे, परन्तु उन विचारों की उत्कृष्टता को हेतु या तर्क से समझने की शक्ति उन में नहीं थी। वे मुहम्मद को बड़ा मान कर उसके वाक्यों को सर्वोपरि मानते थे। उन्होंने सिद्धान्त इसलिये समझे क्योंकि उन्हें हजरत मुहम्मद कहता था, और हजरत मुहम्मद इस लिये बड़ा था क्योंकि वह इतना महान् था।

हजरत मुहम्मद ने जो बड़े पैमाने पर किया, प्रत्येक देश और समय में लोगों ने उसे दोहराने का यत्न किया। किसी को थोड़ी बहुत कामयाबी हुई किसी को नहीं। धीरे २ सभी मतों में संस्थापक का व्यक्तिगत महत्त्व एक दूसरे की देखादेखी या मनुष्य स्वभाव के वशंगत हो कर प्रधानता को प्राप्त कर लेता है, परन्तु प्रारम्भ में आवश्यक नहीं

कि कोई मत केवल संस्थापक के व्यक्तिगत महत्त्व के कारण ही गौरव पाये, यद्यपि यह अंश थोड़ा बहुत सर्वदा रहता है।

मतों की रचना के विस्तृत सिद्धान्तों पर विचार करने से यही तीन मुख्य कारण प्रतीत होते हैं। मतों के भेद के जो अनेक कारण हैं, उनमें से धर्म केवल एक है। भिन्न २ मतों को भिन्न २ धर्म कहना बहुत भ्रमात्मक है। धर्म और वस्तु है—मत और वस्तु, यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार उनका गहरा सम्बन्ध है। वह गहरापन और भी स्पष्ट हो जाता है, जब हम देखते हैं कि हरेक मत वादी अपने मत का आधार धर्म को ही बताता है और मत का प्रचार धर्म के चोगे में रह कर ही करना चाहता है।

पांचवा अध्याय

धर्म, श्रद्धा और तर्क

१. श्रद्धा और तर्क में युद्ध

इंग्लैण्ड के हौब्स नाम के प्रसिद्ध विचारक ने माना है कि मनुष्य के ईश्वर सम्बन्धी विचार शब्द प्रमाण पर, और अन्य सब प्रकार के विचार बुद्धि पर अवलम्बित हैं। उसने दो जुदा २ विभाग बना दिये हैं। वह स्वयं बड़ा भारी स्वतन्त्र विचारक था, परन्तु साथ ही वह अपने को गिर्जे का भक्त ईसाई भी कहता था। उसका मत था कि धार्मिक विचारों में तर्क की आवश्यकता नहीं है। न वह विचार तर्क के सामने ठहर ही सकते हैं।

योरप में यह विचार पुराना है—अब तक माना जाता है कि धर्म और विज्ञान इकट्ठे नहीं रह सकते—और न धर्म और स्वतन्त्र विचार एक साथ रह सकते हैं। व्यवहार से योरप इसे सिद्ध कर रहा है। कुछेक अपवादों को छोड़ कर शेष वैज्ञानिक और तत्वज्ञानी Religion को एक पुरानी बची हुई अनावश्यक चीज़ समझते हैं। विकासवाद और प्रकृतिवाद ने लोगों को अनीश्वरवादी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। समझा जाता है कि रस-क्रिया-भवन और गिर्जा दोनों एक स्थानपर नहीं रह सकते।

इतिहास पर दृष्टि डालें तो वैज्ञानिकों का यह कार्य कुछ नया नहीं प्रतीत होता। गिर्जे के प्रतिनिधि विज्ञानवादियों पर प्रायः ऐसे आक्रमण करते आये हैं कि यदि विज्ञान और तत्वज्ञान योरप में धर्म को अपना शत्रु समझ लें तो कुछ आश्चर्य नहीं। उन सैकड़ों दृष्टान्तों को किताबों में से संगृहीत किया जा सकता है, जिन में कुछ थोड़े से स्वतन्त्र विचार के लिये विचारक को कठोर दण्ड—मृत्यु तक—भोगने पड़े। मिसर में हिपेशिया (Hypatia) नाम की एक विदुषी थी। वह अलैग्जेण्ड्रिया में तत्वज्ञान सम्बन्धी व्याख्यान देती थी। वह नगरी ईसाई मत की भी एक राजधानी थी। वहां का लाट पादरी सेण्ट साइरिल (St. Cyril) एक कट्टर और अन्ध ईसाई था। वह ईसा की माता मेरी की पूजा गिर्जों में चलाता था। एक तत्वविचारिका विदुषी के व्याख्यानों को वह लाटपादरी इतने ख़तरनाक समझता था कि उसने अपने अनुयायियों को भड़का दिया। एक दिन व्याख्यान देने के लिये जाती हुई वह देवी साइरिल के चेलों में घिर गई। लोगों ने–जिन में से बहुत से पादरी थे–उस देवी के कपड़े उतार डाले, नंगी को घसीट कर लोग गिर्जे में ले गये, और पवित्र डण्डे से उसे मार डाला। उसके शरीरके टुकड़े २ कर दिये गये, हड्डियों से मांस नोच लिया गया, और शेष भाग अग्निसात् कर दिया गया।

पलेगियस नाम के एक ईसाई पादरी के मन में यह विचार उठा कि बाइबिल का यह कहना ठीक नहीं प्रतीत होता कि आदम शुरू २ में अमर था, पीछे से शैतान की प्रेरणा से पाप में फंसकर वह मरणधर्मा होगया। उस की सम्मति थी कि मनुष्य पहले से ही मरणधर्मा था। इस सम्मति का प्रचारमात्र करने के कारण उसे रोम के सम्राट की आज्ञा द्वारा देशनिकाला दिया गया, उस के शिष्य भी देश से निकाल दिये गये, और उन की जायदाद ज़ब्त कर ली गई।

समय आया जब मुसलमान सेनापति अमरूने मिसर पर धावा किया। अलैग्ज़ेण्ड्रिया को जीत लेने पर उस अनपढ़ सिपाही को अलैग्ज़ेण्ड्रिया का प्रसिद्ध पुस्तकालय मिला। वहां के एक विद्वान् जोन ने अमरू से प्रार्थना की कि उस पुस्तकालय की पुस्तकें उसे बख़्श दी जांय। अमरू ने इस आवश्यक विषय पर ख़लीफ़ा की राय मांगी। ख़लीफ़ा ने निम्नलिखित उत्तर दिया 'यदि वे पुस्तकें खुदा की किताब कुरान के अनुकूल हैं तो व्यर्थ हैं, और उनकी रक्षा आवश्यक नहीं हैं; यदि उसके विरूद्ध हैं तो हानिकारक हैं; इस कारण इन्हें नष्ट कर दो' इस आज्ञा के अनुसार सदियों में एकत्र की गई लाखों पुस्तकें सिपाहियों को चूल्हे में जलाकर रोटी बनाने के लिये बांट दी गईं।

ये तीन दृष्टान्त पर्याप्त हैं। इन्हें पढ़ कर यह सम्मति बना लेना कठिन नहीं है कि तत्वज्ञान और धर्म में स्वाभाविक लड़ाई है। यह तीन तो केवल दृष्टान्त हैं। इतिहास ऐसे दृष्टान्तों से भरा पड़ा है। कौपर्निकस, गैलीलियो और ब्रूनो के साथ ईसाइयों ने जो व्यवहार किया उसे किसने नहीं सुना। जब धर्म का ऊंचा हाथ था तब विज्ञानी और तत्वज्ञानी सताये जाते थे, अब सायंस का ऊंचा हाथ है तो लोगों की ईश्वर पर से श्रद्धा उठ रही है। इस से सिद्ध होता है कि धर्म का विज्ञान और तत्वज्ञान से नैसर्गिक युद्ध है।

धर्म में श्रद्धा प्रधान है। विज्ञान और तत्व ज्ञान में तर्क प्रधान हैं। फलतः श्रद्धा और तर्क एक दूसरे के विरोधी समझे जायेंगे।

२—अपवाद

क्या ऊपर लिखा नियम व्यापी है? क्या सब स्थानों पर धर्म और विज्ञान, श्रद्धा और तर्क, विरोधी शत्रु ही दिखाई देते हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर में हमें सभी देशों और जातियों में अपवाद दिखाई देते हैं। यहाँ कुछ दृष्टान्तों की ओर निर्देश ही पर्याप्त होगा। ग्रीस और रोम में उन के प्राचीन धार्मिक विचारों के साथ साथ तत्व ज्ञान की वृद्धि होती रही। एक सुकरात का दृष्टान्त मिलता है, जिस में सम्मति के कारण दण्ड दिया गया है। वहाँ भी मुख्य कारण यह था कि एथेन्स के शासकों ने भ्रम से समझ लिया था कि सुकरात की तर्कणायें देश की जातीय आकृति को ढीला करदेंगी। सामान्य तौर पर ग्रीस और रोम में तत्व ज्ञान का अबाधित संचार रहा। बौद्ध धर्म की तह में खुला हेतुवाद था। शास्त्रीय विचार, विज्ञान, ज्योतिष आदि के साथ उसका कुछ भी संग्राम नहीं हुआ। यहूदी लोग बहुत कट्टर माने जाते थे, परन्तु इतिहास बताता है कि दार्शनिक और वैज्ञानिक विचारों की अन्वेषणा में वे कभी पीछे नहीं रहे। इस्लाम के ख़लीफ़ा ने एक वार सिकन्दरिया का पुस्तकालय अवश्य जलवा दिया था, परन्तु बहुत शीघ्र इस्लाम के अनुयायी इस दशा से पार उतर गये थे। खलीफा मायून का नाम विज्ञान के क्षेत्र में

प्रसिद्ध रहेगा। उसने जहाँ एक ओर पृथिवी की गोल सिद्ध करने के लिये परीक्षण कराये, वहाँ कई पुस्तकालय भी स्थापित किये। अल गज़्ज़ाली और एवरोज़ जैसे स्वतन्त्र विचारक इस्लाम में ही पैदा हुए थे। मध्यकालिक योरप को ज्योतिष, गणित और स्वतन्त्र विचार का रास्ता अरब के विद्वानों ने ही दिखाया था।

सारांश यह कि सब धार्मिक मतों का विज्ञान या तत्व विचार के साथ संग्राम रहा हो— ऐसा नहीं है। बहुत अपवाद हैं— थोड़े में नियम है। ऐसी दशा में यह कहना असंगत न होगा कि धार्मिक मतों के साथ विज्ञान या तत्व विचार का युद्ध न होना नियम और युद्ध होना अपवाद है।

३. वेद में श्रद्धा और मेधा

भारतवर्ष में धर्म और विज्ञान, श्रद्धा और ज्ञान, विश्वास और तर्क, ये दोनों एक ही रथ के दो पहिये समझे जाते रहे हैं। भारत वर्ष की आर्य जाति का इतिहास धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों की गाढ़ी मित्रता का एक ज्वलन्त दृष्टान्त है। भारत के विचारों का इतिहास वेदों से प्रारम्भ होता है। वेदों में जहां एक ओर श्रद्धा की महिमा का वर्णन है, वहां दूसरी ओर ज्ञान, बुद्धि और मेधा का गौरव बताया गया है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक श्रद्धा सूक्त है। उसके कुछ मन्त्र हम नीचे देते हैं:—

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि। ऋ।१०।१५१।१

परमात्मा की उपासना श्रद्धा द्वारा की जाती है, हवन में आहुति (हवि) श्रद्धा द्वारा ही डाली जाती है, स्तुतियों द्वारा भगवान के सन्मुख हम श्रद्धा की भेंट ही रखते हैं।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वाले, ईश्वर को अपना रक्षक मानने वाले लोग श्रद्धा की ही उपासना करते हैं। हृदय के आन्तरिक अभिप्राय से वे श्रद्धा की उपासना करते हैं। क्योंकि वसु— ऐश्वर्य श्रद्धा से ही प्राप्त होता है। वसु से यहां आध्यात्मिक और आधिभौतिक ऐश्वर्य से तात्पर्य है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५

प्रातः काल, सायं काल, सूर्य के अस्त होने पर, हम श्रद्धा को ही हृदय में निमन्त्रित करते हैं। हम उस से प्रार्थना करते हैं कि हे श्रद्धे! तू हम से श्रद्धा करवा।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ य.।१९।३०
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥ य.।१९।७७

जिस में विश्वास है, उस में श्रद्धा होती है। उत्कट भक्ति, अखण्डित प्रेम, और अकण्टक भावना का नाम श्रद्धा है। वेद में उसे सब श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरिका कहा है। उसके लिये प्रार्थना मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक धर्म में श्रद्धा का स्थान बहुत ऊंचा है। परन्तु क्या इससे तर्क, विचार शक्ति, या बुद्धि का स्थान नीचा हो जाता है? नहीं। वेद में श्रद्धा की महिमा जिस प्रकार बतलाई है, 'मेधा' बुद्धि की महिमा भी उसी प्रकार गाई है। नीचे कुछ मन्त्र मेधाविषयक उद्धृत किये जाते हैं।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ य०।३२।१४

विद्वान् और बुजुर्ग जिस मेधा की उपासना करते रहे हैं, उसी मेधासे हे भगवन्! मुझे भी मेधावी बनाओ।

गायत्री मन्त्र वेदों का प्रधान मन्त्र है।

तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

उस सर्वोत्पादक परमदेव परमात्मा के पवित्र तेज का हम ध्यान करें। वह हमारी बुद्धियों को प्रेरित करने वाला हो।

वाजश्च मे प्रसवश्चमे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे।

धीतिश्चमे इत्यादि में अन्न और सन्तति आदि के साथ धीति-बुद्धि के लिये भी प्रार्थना मिलती है।

मेधाम्मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मयि मेधाम्मयि प्रजां।

नाना तु विद्या चाविद्या च। यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति। छान्दोग्य।

४—भारत वर्ष में तर्क और धर्म का भ्रातृभाव

योरप के एक लेखक ने Religion और Science को ऐसी बहिनें बताया है, जो सदा आपस में लड़ती रहती हैं। परन्तु भारतवर्ष में इससे बिल्कुल उल्टा रहा है। कभी२ विदेशी प्रभाव या अत्यन्त जडता के कारण कहीं कहीं श्रद्धा और ज्ञान का युद्ध दिखाई देता हो, परन्तु सामान्यतया प्राचीनतम काल से धार्मिक विचारों की तत्वज्ञान से मित्रता रही है। वेदों में श्रद्धा और तर्क दोनों की महिमा बताई गई है। उपनिषदें, जिनकी धार्मिकता सर्व सम्मत है, तत्वज्ञान की खान हैं। दर्शन ग्रन्थ मोक्ष के साधन बताते हैं, धर्म की व्याख्या करते हैं और और स्वतन्त्र दार्शनिक विचारों द्वारा सृष्टि का रहस्य जानने का यत्न करते हैं। भारतवर्ष में जब तक विदेशी प्रभाव ने लोगों को अनुचित कट्टरपन नहीं सिखाया था, तब तक धर्म का तत्वज्ञान या विज्ञान से युद्ध नहीं दिखाई दिया। सम्पूर्ण इतिहास में ऐसे दृष्टान्त ढूंढने से भी न मिलेंगे, जहां केवल तत्वविचारणा और स्वतन्त्र वैज्ञानिक विचार को धर्म का विरोधी समझ कर दबाया गया हो। यह एक आश्चर्यजनक दृश्य है, जिसे पश्चिम की दुनिया मानने तक का साहस नहीं कर सकती।

५. इनका स्वाभाविक सख्य या विरोध

इस का कारण क्या है? कारण यह है कि भारतवर्ष में निम्न लिखित सचाइयों को सदा स्वीकार किया गया है।

(१) सृष्टि के आधिभौतिक, आधिदैवत तथा आध्यात्मिक नियमों का नाम धर्म है।

(२) तत्वज्ञान तथा विज्ञान इन्हीं नियमों के भिन्न २ पहलुओं के ढूंढने के यत्न का नाम है। इस कारण तत्वज्ञानी और विज्ञानी धर्म के ही उपासक हैं।

(३) सचाई एक है— इस कारण यदि ठीक प्रकार से Philosophy (तत्वज्ञान) और विज्ञान (Science) का प्रयोग किया जायगा तो उस का फल धर्म के यथार्थ रूप का परिज्ञान ही होगा। तत्व ज्ञान और विज्ञान धर्म परिज्ञान के ही साधन हैं।

इस दशा में युद्ध कैसा? युद्ध तब होता है जब धर्म या तत्वज्ञान का स्वरूप उल्टा समझ लिया जाय। Religion और Rationalism या Philosophy या SeiNce में जो युद्ध दिखाई देते हैं, उन की तह में निम्नलिखित भूलें प्रतीत होती हैं—

(१) धर्म केवल ईश्वर पर अहेतुक विश्वास का नाम है।

(२) ईश्वरविश्वास हृदय का विषय है, दिमाग़ का नहीं।

पिछले
ा ध्येय
णा की
विवाद
अपना
स्थापित
कांग्रेस
ुत थे।
के भी
ामन्त्रित
कांग्रेस
है, इस
ुआ भी
क्रिया के
ाशचन्द्र
आदि ने
ंघ' की
ाकायदा
ऐयङ्गर
ुए हैं।
ारत के
ुआ है।
ो स्थिति
रिपोर्ट
कमेटी
नवेशिक
का अंग
ंगीभाव
ा होगा।
को लाभ
ात कमेटी
ाक कि

(३) तत्वज्ञान या विज्ञान का कार्य केवल विद्यमान विश्वासों को तोड़ना है, संसार की सारी स्थिति को समझाना नहीं।

(४) भौतिक नियमों के परिज्ञान से ईश्वर पर विश्वास उड़ जायगा।

ऐसे ऐसे भ्रम हैं, जो Religion नाम की संकुचित वस्तु के साथ तत्वविचार का युद्ध कराने के कारण होते हैं। योरप में ईसाइयत का विज्ञान से जो भारी संग्राम हुआ उसके विशेष कारण निम्नलिखित थे—

(१) हज़रत ईसा ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में केवल विश्वास और प्रेम से काम लिया। विश्वास और प्रेम की अनिवार्य शक्ति का यह फल हुआ कि, ईसाइयत ने इतनी दुनिया को व्याप लिया, परन्तु क्योंकि ईसा ने लोगों के दिमागों को प्रभावित या जागृत करने का यत्न नहीं किया, इस कारण ईसाई मत सदियों तक योरप में ज्ञान रूपी प्रकाश का शत्रु बना रहा।

(२) सेण्ट आगस्टाइन ने ईसाई मत के दार्शनिक सिद्धान्तों की जड़ पुराने अहदनामे के प्रारम्भिक भाग पर रखी। यह ईसाइयत की घातक अशुद्धि थी। हजरत ईसा ने सृष्टि उत्पत्ति आदि विषयों को मनुष्यों के विचार पर छोड़ दिया था। सेण्ट आगस्टाइन ने एक पुराने कल्पनाप्रधान कथानक ग्रन्थ में ईसाइयों के दिमागों को बांध दिया। परिणाम यह हुआ कि तत्वज्ञान और विज्ञान को सदियों तक ईसाई अन्धकार के किले के साथ टक्करें मारनी पड़ीं।

(३) ईसाई जगत् में 'धर्म' का विस्तृत विचार कभी समझा ही नहीं गया। उनकी दृष्टि में Religion एक छोटी सी संकुचित वस्तु रही है जो छुई मुई के पत्ते के समान किसी हल्के से हल्के स्पर्श को भी नहीं सह सकती।

६. तत्व ज्ञान और विज्ञान धर्म ज्ञान के साधन हैं

संसार के व्यापी नियमों का नाम धर्म है। विज्ञान संसार के भौतिक नियमों के ज्ञान का यत्न करता है। विज्ञान धर्म के एक अंग की खोज करता है। इन दोनों में विरोध क्यों होना चाहिये?

तत्वज्ञान संसार के सूक्ष्म रहस्यों और परोक्ष नियमों के ज्ञान का यत्न करता है। वे परोक्ष व्यापी नियम भी धर्म के अन्तर्गत हैं। उन नियमों के ज्ञान का यत्न नियमों का विरोधी कैसे हो सकता है?

धर्मज्ञान और तत्वज्ञान में कोई युद्ध नहीं हो सकता। धर्म का ऐसा विशाल रूप मानने के कारण ही भारतवर्ष में हमें पादरी लोग विज्ञान के पण्डितों से लड़ते दिखाई नहीं देते। धर्म-सत्य नियमों-के जानने के जितने साधन हैं, उन्हें हमारे दर्शन ग्रन्थों में और धर्म ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है।

वैशेषिककारने भौतिक नियमों के जानने का जो यत्न किया, उसे वह धर्म के जानने का ही उपाय समझता था। दूसरी ओर धर्म के चार साक्षात् लक्षण बताने वाला ग्रन्थ एक स्मृति ग्रन्थ है। स्मृति ग्रन्थ का दूसरा नाम धर्मशास्त्र है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' वेद को धर्म का मूल पुस्तक माना गया है-और उसके अंगों को देखिये तो ज्योतिष भी उन में है। भारत में धर्म का ज्योतिष से इतना मेल आश्चर्य में डालने वाला है। ईसाइयत ने चौदवी सदी तक योरप में अपना राज्य रखा। इतिहास साक्षी है कि इतने लम्बे समय में योरप ने एक भी स्वतन्त्र विचारक ज्योतिषी

उत्पन्न नहीं किया। जब कौपर्निकस, गैलीलियो आदिने ज्योतिष का रहस्य जानने का यत्न किया, तब उनके साथ जो व्यवहार किया गया, वह ईसाइयत के इतिहास पर बड़ा गहरा धब्बा है।

७—धर्म और तर्क तथा श्रद्धा

तर्क को हम यहाँ बड़े विस्तृत अर्थों में लेते हैं। तर्क किसी वस्तु के सत्य रूप को जानने के लिये उचित प्रमाणों से उसके विषय में अन्वेषण है। अन्वेषण के कई उपाय हैं। जैसा पदार्थ है, उसका रहस्य जानने के लिये वैसे ही उपाय काम में लाने पड़ते हैं। भौतिक पदार्थों के अन्वेषण के लिये भौतिक विज्ञान की आवश्यकता है। मानसिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये मनोविज्ञान की उपयोगिता है। आत्मा के सदाचार सम्बन्धी विज्ञान की उपलब्धि सदाचार शास्त्र का विषय है। ये सब विज्ञान और तत्वज्ञान के प्रकार धर्म के ज्ञान में ही साधन भूत हैं।

धर्म का परिज्ञान सब से प्रथम आवश्यक है। धर्म को जान कर उस पर श्रद्धा होती है। श्रद्धा का आधार एक विशेष कोटि का ज्ञान ही है। यह समझना भ्रमात्मक है कि श्रद्धा का तर्क से कोई सम्बन्ध नहीं है। तर्क से ज्ञान की प्राप्ति है। जानी हुई बात में निश्चयात्मकता हो जाने पर विश्वास हो जाता है। विश्वास की सहचारिणी श्रद्धा ही सात्विकी श्रद्धा है, विना भली प्रकार निश्चयात्मक ज्ञान के जो विश्वास या श्रद्धा उत्पन्न हो जाते हैं, वे अन्धविश्वास और अन्धी श्रद्धा के नाम से कहे जाते हैं। वेद में ऐसी श्रद्धा की प्रशंसा नहीं है। संसार में ऐसी श्रद्धा फलदायिनी नहीं होगी।

संसार के व्यापी नियमों का अर्थात् धर्म का परिज्ञान विज्ञान और तत्वज्ञान द्वारा होता है। निश्चयात्मक परिज्ञान हो जाने पर उसमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। ऐसी दशा में विज्ञान या तत्वज्ञान का श्रद्धा से युद्ध समझ में ही नहीं आ सकता। जहां युद्ध दिखाई देता है, वहां या तो धर्म का स्वरूप उलटा समझा गया है और या अन्धी श्रद्धा का नाम श्रद्धा रख दिया गया है।

* * *

जातकर्म संस्कार

लेखक—पं० अत्रिदेव आयुर्वेदालंकार

१-प्रथम दिवस
२-Early development.
३-भोजन और पाचन
४-वस्त्र और व्यायाम
५-वृद्धि (Growth **)और स्वास्थ्य**
६-मानसिक उन्नति
७-धात्री का कर्तव्य
८-माता के लिये आवश्यक बातें

प्रथम दिवस—

यह स्वीकार करते हुवे कि शिशु विना किसी बाधा के पूर्ण स्वस्थ उत्पन्न हो गया है अब हमारा क्या कर्तव्य है ?

सब से प्रथम शिशु का जातकर्म संस्कार करना पड़ता है-शिशु की नाभि से २ इंच की दूरी पर रेशम या अन्य कोमल पदार्थ से एक बन्ध दें और उस से आध इंच की दूरी पर एक अन्य बन्ध दें, जिससे कि यदि रक्त स्राव होगा भी तो बहुत नहीं होगा, अब किसी कृमिरहित (Disinfect) कैंची या चाकू से उस नल का छेदन करें-(आचार्य्य ने सोना या चांदी की कैंची का उपयोग लिखा है क्यों कि वह और धातुओं की अपेक्षा कृमिरहित (Antiseptic) होते हैं उनके परमाणु घनिष्ट होते हैं)

अब एक रुई के फोये से शिशु के नाक और मुख की श्लेष्मा को सम्यक् प्रकार साफ करें और आंख को टंकण क्षार (Lotion) से धोवें और उनमें ½ %Caustic Lotion डाल दें। शिशु उत्पन्न होते ही चिल्लाता है, जिस से कि श्लेष्मा बाहर होती है, और फेफड़ों में श्वास प्रश्वास की गति होने लगती है, इस लिये प्रथम रुदन (First Cry) आवश्यक है यदि ऐसा न हो तो अपशकुन लक्षण है और इसका यत्न चिकित्सक की सहायता से करना चाहिये।

इसी प्रकार श्रवण शक्ति को उद्बुद्ध करने के लिये शिशु के कानों पर पत्थरों का शब्द करने को ऋषि अत्रि आदेश करते हैं। इसके साथ "अङ्गादङ्गात् सम्भवसि" इत्यादि मन्त्र का पाठ करें।

इसके पश्चात् शिशु के स्नान का प्रबन्ध करें। स्नान का पानी बहुत गरम या बहुत ठण्डा न हो। उसके शरीर को कोमल हाथों से Ralling गति के साथ जैतून के तैल या सरसों लोध्र आटे के उबटन से मालिश करें। यह तब तक मलें, जब तक कि शरीर से मैल की बत्तियां सम्पूर्ण रूप से न उतर जावें। तदनन्तर कोसे गरम पानी से एक २ अंग को पृथक् २ रूप से धोवें, और साथ २ सुखाते

जावें। शिशु को पानी में गोता न दें। नाभिनाल को गीला होने से बचावें। फिर फलालैन के कपड़े में उसे लपेट दें।

तदनन्तर स्वर्ण भस्म और वच को मधु से मिला कर चटावें-जिस से कि बल्ग़म बाहर हो जावेगा-और शिशु में निर्बलता न होगी (वच और मधु में श्लेष्मा के लिये लेखन गुण है, स्वर्ण बुद्धिमद और शीतवीर्य है) तदनन्तर शिशु को, यदि बालक हो तो दक्षिण और कन्या हो तो वाम, स्तन देवें। इसके पश्चात् शिशु को सोने दें।

स्तन—

यद्यपि इस स्तन के देने से बालक को किसी प्रकार का दूध नहीं मिलता, क्योंकि तीन चार दिन तक स्तनों में शुद्ध दूध नहीं आता, अपितु Cosin होती है, जो कि मृदु विरेचक है।

स्तन के स्पर्श से माता को एक विशेष प्रकार का अनुभव होता है जिस से उसका शरीर रोमाञ्चित होता है और स्तनों में दूध आ जाता है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार प्रिय वस्तु के संस्पर्श, स्मरणादि से उत्पादक अंगों में उत्तेजना होती है, और जिस प्रकार अधिक उत्तेजना से शुक्रसरण होता है, ठीक उसी प्रकार माता के स्तनों में भी स्नेह से दूध क्षरण होता है। यही कारण है कि जिन माताओं के स्तनों में दूध नहीं उतरता, उनकी यही चिकित्सा है कि दिन में कई वार स्तन बच्चे को दिया जावे।

जो मातायें शिशु को दूध नहीं पिलातीं या आंगी या कपड़े के ऊपर से पिलाती हैं उनके बालक कमज़ोर रहते हैं।

दूध और आर्त्तव का आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यदि स्तन ढीले हों तो Quedecalane और पानी मिलाकर उनकी मालिश करें।

यदि स्तनों में दूध न झरे तो धात्री का दूध या कृत्रिम दूध देवें। इसके लिये धात्री को जो कि निम्न गुणों वाली हो चुनें।

धात्री—

धात्री युवा और पूर्ण स्वस्थ हो। उसका बालक जीवित हो और समान आयु और समान शील का हो। स्वच्छ तथा उत्तम स्वभाव की हो। यदि श्यामाङ्गी हो तो बहुत उत्तम है। श्यामाङ्गी उसे कहते हैं कि जिसका दूध शीत-ऋतु में उष्ण और ग्रीष्म में शीत हो तथा शिशु से प्यार करने वाली हो।

कृत्रिम दूध—

इसके लिये बहुत से नियम हैं परन्तु संक्षेप से निम्नतालिका है-

	दुध	खांड	पानी	मलाई	राशि	विशेष
तीसरेसे १०वें दिन तक	$\frac{1}{2}$ Table.	$\frac{1}{8}$ Tea.	$1\frac{1}{2}$ Table.	———	२० औन्स.	*Table* – Table-spoonful.
१० वें से ३ सप्ताह तक	$\frac{1}{2}$–$\frac{3}{4}$ Table.	$\frac{1}{2}$ Tea.	$1\frac{1}{2}$ Table.	$\frac{1}{2}$ Tea.	३० „	*Tea*–Tea-spoonful.
द्वितीय मास	$1\frac{1}{2}$ Table.	$\frac{3}{8}$ Tea.	$2\frac{1}{2}$ Table.	1 Tea.	३२ „	
तृतीय मास	$2\frac{1}{2}$ Table.	1 Tea.	3 Table.	2 Tea.	३२ „	
पञ्चम मास	4 Table.	$1\frac{1}{2}$ Tea.	2 Table.	3 Tea.	४० „	

दूध पिलाने का नियम—

प्रथम २ महीने तक प्रत्येक २$\frac{१}{२}$ घन्टे बाद और फिर ६ मास तक ३$\frac{१}{२}$ घन्टे बाद, इसके उपरान्त ४ घन्टे के बाद दें, रात्रि को १या२ बार से अधिक न दें ।

संक्षिप्त नियम

१–दूध के समय यदि सोता हो और सोने से न उठे तो बीच में मत देना ।

२–दूध देते समय नाक स्तन पर न लगने दें ।

३–दूध देते समय सिर को एक हाथ से उंचा रखें और शेष भाग तिरछा ।

४–स्तन को दूध पिलाने से पूर्व और पीछे साफ़ करलें ।

५–बच्चे के मुख को भी अच्छी प्रकार रुई से साफ़ कर दें ।

३–रोते समय चुप करने के लिये स्तन न दें ।

७-बीच में न दें ।

८–सोते समय छाती पर या बगल पर रख कर न सुलावें और न स्तन दें, अपितु बैठ कर दें ।

Early development —

भार–

शिशु का भार प्रायः उत्पन्न होने के प्रथम दिन से तीन दिन तक कुछ घटता है, और फिर बढ़ता है, जिसका कारण मल (Meconium) का निकलना है, जो कि पेट में एकत्रित रहता है । यदि यह न निकले तो एरण्ड का तेल १ड्राम मात्रा में दें । उत्पन्न होते समय भार लड़के का ७$\frac{१}{४}$ पौण्ड होता है और कन्या का ७ पौण्ड । उस के बाद प्रथम दो महीने में प्रति सप्ताह ५$\frac{१}{५}$औं० बढ़ता है, २ से ४ महीने तक प्रति सप्ताह ४$\frac{१}{२}$औं० और ४ से ६ महीने तक प्रति सप्ताह ३$\frac{१}{२}$औं० बढ़ता है । २६ सप्ताह में १५ पौं० ५ औन्स और १ साल में तिगुना हो जाता है और अगले चार वर्षों में प्रथम वर्ष का दुगना हो जाता है ।

उंचाई—

चौथे साल में उत्पत्ति से दुगना हो जाता है अर्थात् १ वर्ष में ५०% बढ़ता है उदाहरण के लिये २० इंच का शिशु ३० इंच हो जावेगा। इसी प्रकार छाती चौथे साल १½ गुनी होती है, यदि कम फैले तो कोई विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं, क्योंकि शिशु का स्वास्थ्य भार पर निर्भर है। यदि शिशु का भार बढ़ता है तो कोई घबराने की बात नहीं। छाती के लिये प्राणायाम, मुखबन्द कर के गहरा श्वास, रात को भी मुख बन्द कर के नासिका से श्वास लेवे यदि अभ्यास हो तो मुख पर पट्टी बांध दें।

तोलना—

शिशु को प्रथम वर्ष कम से कम ६ मास तक अवश्य प्रति सप्ताह तराजू पर नियत समय पर और नियत कपड़ों में (उत्तम है नग्न) तोलना चाहिये और यदि भार न बढ़े तो चिकित्सक से पूछना चाहिये।

Vaccination या Circumcision,

Vaccination—

Vaccination का समय प्रथम ६ सप्ताह से २ साल तक उत्तम है। इस से शिशु चेचक (Small Pox) से बच जाता है-स्थान को पानी आदि से बचाना चाहिये।

खतना Circumcision.—

कई चिकित्सक इसे आवश्यक समझते हैं क्योंकि इस से स्वास्थ्य (Health) और इन्द्रिय की स्वच्छता रहती है जिस से कि असाधारण तौर पर उत्तेजना नहीं होती इस के लिये भी प्रथम ६ सप्ताह का समय उत्तम है।

कोई २ चिकित्सक इसे आवश्यक नहीं समझते। उनका कहना है कि इससे बाह्य विक्षोभ अधिक होता है और इन्द्रिय में उत्तेजना होती है। अस्तु, लेखक भी इसी के साथ सहमत है।

दांत—प्रथम दाँत ६ महीने से निकलते हैं दाँतों का निकलना स्वाभाविक क्रिया होने से कोई बाधा नहीं देते, परन्तु यदि अपचन या आमाशय का रोग हो तो तकलीफ़ होती है।

२ नीचे के कर्त्तक दांत	६-८ मास
४ ऊपर के " "	७-९ मास
२ नीचे कर्त्तक और ऊपर नीचे के ८ Moler	१२-१४ "
Canine—	१८-२० "

कुल योग २०

यही कारण है कि ६ ठे मास से ९ वें मास में माता के दूध के साथ कृत्रिम दूध भी देना स्वीकार करना चाहिये और ९ वें मास से १२ वें मास तक दूध छुड़ा देना चाहिये।

यही कारण है कि ६ ठे महीने में अन्न प्राशन संस्कार का विधान है।

भोजन—

भोजन सर्वथा नरम और पाचक होना चाहिये। भोजन में असुविधा होने से नाना

प्रकार के विकार, मलबन्ध आदि होते हैं। कई मातायें रुपये की इच्छा से शीघ्र दूध छुड़ा देती हैं जिस से कि शिशु कमज़ोर होजाता है। इस के विपरीत कई मातायें गर्भ धारण न होने के लिये अधिक दिनों तक दूध पिलाती हैं जिस से कि उनका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। भोजन नरम और नियमित होना चाहिये और नियत समय पर होना चाहिये।

गति—

४र्थ मास में सिर ऊपर रखता है, ७ वें मास में रेंगता है और खड़ा होने लगता है। १२ वें मास में चलना आरम्भ करता है। शिशु को शीघ्र खड़े होने का अभ्यास न कराना चाहिये, इस से उसे Ricket हो जाता है।

मल बन्ध—

यह एक साधारण बीमारी है जो कि अनियमित भोजन के कारण होती है—

कारण—i. पैतृक निर्बलता-जिससे आंत कमज़ोर होती है।

ii. भोजन की कमी

iii. वसा की कमी

चिकित्सा—i. इस के कारण को हटा दें इस के साथ भोजन, खुली वायु और व्यायाम की ओर ध्यान दें।

ii. आन्तों को एरण्ड के तैल से उदर के ऊपर मलें, शीत से बचावें।

iii. Enema दें। परन्तु जहां तक हो इस से बचें। इस के लिये गरम पानी में एरण्ड का तैल दें परन्तु इस से उत्तम फलवर्त्ति या Glycerine की पिचकारी हैं।

त्वग् रोग—

इस में त्वचा पर छोटी २ फुन्सियां होंजाती हैं। इसके लिये एक हल्का विरेचन दे दें और अपचन की चिकित्सा करें।

Roughness—

इस के लिये त्वचा को धीरे २ कोमल वस्त्र से रगड़ें और फिर कोई Vaseline आदि लगादें।

कृत्रिम दूध के लिये बोतल को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखना आवश्यक है। उसकी Teat को बदलते रहना चाहिये। उत्तम हो यदि बोतलें २ हों, एक साफ़ हो।

दूध को देने से पूर्व उबालना अवश्य चाहिये। उसे मक्खी आदि से बचाकर रखना चाहिये Pusturition करना उत्तम है, इससे Vitamine नहीं मरते।

वस्त्र और व्यायाम

वस्त्र में तीन गुण होने चाहियें— i कोमलता (Softness). ii. हल्कापन iii रक्षा कर सकें।

वस्त्र मुलायम, हल्के तथा ढीले हों। हाथ और पाँव की किसी भी गति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने देनी चाहिये। गर्दन पर खुले हों। इनसे सर्दी आदि की रक्षा हो।

व्यायाम

शिशु स्वयमेव अपनी व्यायाम आप करता है। वह किसी वस्तु को खींचता है, फेंकता है, चिल्लाता है, रोता है, भागता है, धकेलता है, दौड़ता है, चीख मारता है। परन्तु यह सब उसकी स्वाभाविक क्रिया है, उसे इसके विषय में कुछ ज्ञान नहीं, यही कारण है कि जब वह दौड़ता है तो सिर नीचे करके दौड़ता है, इसलिये उसे बताना चाहिये कि सिर पीछे करके और छाती को आगे निकाल कर दौड़े इत्यादि।

व्यायाम खुली वायु में करनी चाहिये। इसी प्रकार सोते समय दर्वाजे खुले होने चाहियें, परन्तु सीधी वायु और सर्दी से बचाना चाहिये।

शिशु को कड़ी चटाई और बिना सिरहाने या थोड़े से सिरहाने पर, जिससे शरीर समानान्तर रहे, ऐसी अवस्था में सुलाना चाहिये।

यदि रात्रि को मूत्र-स्राव हो तो उसे जगाकर करवा देना चाहिये। इसका कारण वातनाड़ियों की कमज़ोरी (Nerve weakness) है। यह यातो ३½ साल तक स्वयमेव बन्द हो जावेगा, न हो तो चिकित्सा करानी चाहिये।

वृद्धि (Growth)

शिशु का स्वास्थ्य उसके भोजन और पालन पर निर्भर है, परन्तु इसके होते हुए भी कुछ रोग हैं जो कि आक्रमण कर जाते हैं और उनका ज्ञान होना चाहिये—

i. आंत्रवृद्धि (Hernia)-यह एक प्रकार की वंक्षण प्रदेश पर अण्डाकृति सूजन होती है जो कि अण्डकोषों की तरफ़ जाती है। इसमें Navel छिद्र में आँत उतर आती है।

ii. पाषाण गर्दभ (Mumps)—यह एक प्रकार का शोथ है, जो कानों के नीचे होता है। इसमें गला सूज जाता है, मुख खुलता नहीं, निगलना मुश्किल हो जाता है, मलबन्ध, और ज्वर होता है। इसके लिये शिशु को पृथक् करके विरेचन दें और गले पर सेक करें।

iii. विचर्चिका (Roughness)—यह एक Eczema है। इसमें त्वचा पर खाज होती है, और छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं, जिनसे पानी निकलता है, और जहाँ पानी लगता है वहाँ और नई फुन्सियाँ पैदा हो जाती हैं। इसका कारण अपचन होता है, उसकी चिकित्सा करें।

iv. दद्रु (Ringworm)— इसमें फुन्सियाँ चारों ओर होकर एक चक्र बनाती हैं, और फैलती जाती हैं। इनमें सिर का दाद अधिक कठिन है। इसके लिये स्थान को स्वच्छ रक्खें, सिर के बालों को कटा कर Formaline Lotion से धो दें और Chrysophanic oint. लगावें।

V Roshas कोठ

i. Pimples—यह मुख पर होती है। इसके लिये मुख को तौलिये से रगड़ कर Vaseline लगावें।

ii. खसरा (Chickenpox) यह एक प्रकार का कोठ होता है जो माथे पर निकलता है, फिर धीरे-धीरे सारे शरीर पर फैल जाता है, और त्वचा लाल होती है; यह समूह में होता है।

iii. चेचक Small Pox—इसमें कोठों में पानी भरता है, फिर फटा सा पानी बनकर फट जाते हैं और छिलके छिलके उतरते हैं, ज्वर अधिक होता है।

iv. Measel—इस में कोठ माथे, गालों पर समूह में होते हैं और मुख में श्वेत Spot होते हैं। शिशु को जुखाम, खाँसी, ज्वर होता है।

v. आंत्रज्वर (Typhoid)— इस रोग में ग्रीवा पर कोठ निकलते हैं और ज्वर १०४ या इस से अधिक होता है प्रातः कम और सायं अधिक होता है। इस रोग में Bedsore से रोगी को बचना चाहिये।

इन सब लक्षणों में रोगी को पृथक् कर देना चाहिये। उसके पास ज़्यादा नहीं आना चाहिये। उसके सब उपकरण पृथक् कर देने चाहियें। हाथों को कृमिरहित (Disinfect) रखना चाहिये। चिकित्सक से अवश्य सम्मति लेवे। भोजन द्रव (Liquid) दूध दें।

V1 सर्दी (Cold) इसमें छींके बहुत आती हैं, खाँसी उठती है, कभी कभी ज्वर भी हो जाता है, इसके लिये भपारा Eucalyptis oil आदि का दें।

स्वास्थ्य को जिह्वा बता देती है, इसलिये यदि मलबन्ध हो तो उसकी उचित चिकित्सा करें, अपचन को हटा दें।

V11 अतिसार (Dioarrhia)-इसके लिये यदि अतिसार अधिक हो और अजीर्ण या अपचन हो तो एरण्ड तेल (CasterOil) की एक मात्रा दें अन्यथा चूने का जल (Lime Water) दूधादि में देवें।

V111 कृमि (worms)--अशुद्ध पानी के पीने से आँतों में कृमि हो जाते हैं। ये कृमि मुख्यतः दो प्रकार के हैं—i. गोल (Round.) ii. सूत्र (Thread.) इसके लिये (Salt Enema) आदि दें, और चिकित्सक से सम्मति लें।

IX (Insect)-ये रात को शिशु को सोते समय काटते हैं, इसके लिये शरीर पर तैलादि लगा देना चाहिये और मसहरी का प्रयोग करें, सन्तरे का तेल (Oil Cetanila) उत्तम है।

10 विष (Poison)-यदि विष का पता लगे या सन्देह हो तो—

१. डाक्टर बुलावें २. बोतल या अन्नादि जिससे विष गया हो वह रक्खें ३. यदि विष का पता लगे तो प्रतिविष दें।

यदि पता न लगे तो—

१. मुख और वस्त्रों को देखें यदि वे जले हों तो वमन न दें।

२. यदि बेहोश हो तो वमन न दें। उसे होश में लाने के लिये शोर Pinch करें परन्तु Smelling salt न सुंघावें।

३. इन दोनों अवस्थाओं से अतिरिक्त वमन देवें।

४. इसके बाद दूध, चाय आदि देवें उत्तेजना दें, सोने न देवें।

xi कुचलना— स्थान को ठण्डे पानी से Pod रख कर बाँध दें और अच्छा होने पर मालिश करें और आराम देवें।

xii जलना—यदि थोड़ा जला हो तो गरम पानी डालें, अधिक जला हो तो अलसी का तेल और चूना मिलाकर लगावें। अङ्ग को आराम दें।

xiii आक्षेप— इसके लिये गरम जल से स्नान (Hot water bath) दें। हाथ पाँव पर राई का लेप कर गरम रक्खें।

xiv अस्थिभंग—चिकित्सक को दिखावें। स्थान को बाँध दें।

xv नकसीर— इसके लिये रोगी को लेटा दें और सिर पर ठण्ढा पानी डालें। हाथों को सिर के ऊपर कर दें।

xvi आंख—यदि आँख में कुछ वस्तु गिर पड़ी हो तो उसे मलें नहीं, अपितु पलक को उलट करके देखकर निकाल दें, अथवा शहद लगा दें या ऊपर की पलक खींच कर नीचे की पलक के ऊपर ऊपर की पलक कर दें।

मानसिक विकास

मैं इस विषय से एकदम अनभिज्ञ हूं, इसलिये मैं कुछ नहीं लिख सकता हूं, तथापि संक्षेप से चन्द पंक्तियां लिखता हूं।

शिशु-मन का उपयोग बहुत शीघ्र करने लगता है। वह नाना प्रकार के प्रश्न करता है—क्यों—यह प्रश्न वह प्रत्येक उत्तर में पूछता है? कोई कोई पिता इससे उकता जाते हैं। उन्हें चाहिये कि वे शिशु को सब समझा दें।

यदि वह एक गरम पतीली को छूता है तो उसे विस्तारपूर्वक बता देना चाहिये कि इस से तुम्हारा हाथ जल जावेगा। यदि वह फिर भी न मानें तो उसे करने दें, जिस से वह आगे से न करेगा। शिशुओं को सिखाने का सबसे उत्तम साधन (Instruments) उसके खेल और खिलौने हैं। उसे प्रारम्भ में इन्हीं के द्वारा शिक्षा देनी चाहिये।

शिशु को भूतादि से नहीं डराना चाहिये।

को मत्सरणि लोकेऽस्मिन
विद्वान् किञ्चित् चिकीर्षति।
किन्तु कश्चिद् भवेत् साधुः
ततोऽयं मे परिश्रमः॥

पिछले
ा ध्येय
णा की
विवाद
अपना
स्थापित
कांग्रेस
थत थे।
के भी
मन्त्रित
कांग्रेस
है, इस
हुआ भी
क्रिया के
ाशचन्द्र
आदि ने
घ' की
कायदा
ऐयङ्गर
ए हैं।
ारत के
आ है।
स्थिति
रिपोर्ट
कमेटी
वेशिक
ा अंग
ीभाव
होगा।
ो लाभ
त कमेटी
क कि

विचार-प्रवाह

१. दीवाली का सन्देश

वर्ष भर के बाद आज फिर दीवाली आई है। आर्य जाति के वंशधर आज लक्ष्मी पूजा करेंगे, श्री राम की स्मृति मनाएंगे, ऋषि दयानन्द के उपकार याद करेंगे। आज हिन्दुओं के गरीब से गरीब परिवार में भी दो चार मिट्टी के दीये अवश्य जलाए जायेंगे, वर्ष भर आधा पेट भोजन करने वाले भारतीय भी आज कम से कम गुड़ की मिठाई अवश्य खाएंगे, कपड़ों के अभावसे नग्नप्राय रहने वाले इस देश के निवासी भी आज अपने चीथड़ों को धोकर स्वच्छ कर लेंगे, यदि सम्भव हुआ तो एक आध कपड़ा नया भी खरीद लेंगे। हमारा सम्पूर्ण समाज आज खुशी मनाएगा। बाजारों में रोशनी की जायगी, घरों में दीयों की पँक्तियां जलेंगी, लोग लक्ष्मी माता की अभ्यर्थना करेंगे। वर्ष भर दुख से सिसकने वाली हमारी जाति आज थोड़ी देर के लिये, अपना सम्पूर्ण दुःख भुला देगी। यह सब होगा। परन्तु किस लिये?

इस, 'किस लिये?' का उत्तर बहुत कठिन नहीं है। किसी हिन्दू से इस प्रश्न का उत्तर पूछ देखिये। झट से उत्तर मिलेगा—'इसलिये कि हमारे पुरखा भी आज के दिन यही सब कृत्य करते थे। उन पर लक्ष्मी माता की कृपा थी। इस अनुष्ठान से हम पर भी माता प्रसन्न होगी।' परन्तु मालूम नहीं कि लक्ष्मी माता हम आर्यजाति के कमज़ोर वंशधरों पर कब प्रसन्न होगी। हमलोग बाकायदा, नियमपूर्वक पिछले एक हज़ार वर्षों से इसी प्रकार दीये जला कर लक्ष्मी की अर्चना करते आरहे हैं, परन्तु माता प्रसन्न नहीं हुई। विपत्ति आने पर भी हम लोग दीवाली को नहीं भूले—औरङ्गजेब के अत्याचारमय शासन में, जङ्गली नादिरशाह की आंधी के वर्ष, तथा भारतवर्ष के सब से बड़े अत्याचारी और लुटेरे शासक हेस्टिंग्स के ताण्डव नृत्य के दिनों में भी हम लोग दिवाली मनाना नहीं भूल सके। परन्तु इस देश से एक वार रूठ कर, एक हज़ार दीवालियों द्वारा स्तुत किये जाने पर भी लक्ष्मी माता प्रसन्न नहीं हो सकी।

आज भी लक्ष्मी इस देश पर प्रसन्न नहीं है। यहां लोग भूखे मर रहे हैं। जाति के शरीर और दिमाग़ क्रमशः कमज़ोर होते चले जा रहे हैं। आयु का माध्यम २३ वर्ष तक जा पहुंचा है। बीमारियों ने इस देश को अपना घर बना लिया है। प्रति वर्ष ४० लाख के करीब मौतें संक्रामक रोगों के कारण ही हो रही हैं। देश का व्यवसाय और व्यापार नष्ट हो चुका है। इस पर भी देश में साम्प्रदायिक मतान्धता बढ़ रही है—भाई भाई से लड़ रहा है। आश्चर्य है कि हमारी सैंकड़ों अर्चनाएं भी लक्ष्मी को प्रसन्न नहीं कर सकीं। देश की लक्ष्मी बहुत दिन हुए, यह देश छोड़ कर चली गई है—उसे फिर लौटाया नहीं जा सका।

हां, एक दिन माता लक्ष्मी हम लोगों पर भी प्रसन्न रह चुकी है। एक समय हमारे यहां भी माता की सच्ची अर्चना होती रही है। उस समय हम लोग विजयी थे, वीर थे, मिले हुए थे। उस दिन हमारी बाहुओं में बल था, मस्तिष्क में विचार शक्ति थी, हृदय में क्षमा थी और मुख पर सरल मुसकिराहट थी। उन्हीं दिनों ठीक आज के दिन ही, एक साल हम लोगों ने अपने हृदय-सम्राट् रामचन्द्र का स्वागत किया था। इन्हीं रामचन्द्र ने बरसों से चली आरही आर्यों और अनार्यों

की लड़ाई का अन्त किया था। वह विजयी आज के दिन ही अपनी विजय यात्रा समाप्त कर वापिस आया था।

हमारी आज की दीवाली उस युग की दीवाली का नाटकमात्र ही सही, परन्तु हम इसे इसी रूप में मनाते चले जायेंगे। हमें विश्वास है कि एक दिन अवश्य इस मुर्दे में जान आ जायगी। एक दिन यही निर्जीव दीवाली भारतीय हृदयों में जीवन का सार फूंक देगी। यह दिन तब आ जायगा जब कोई सच्चा वीर लक्ष्मी पूजा का वास्तविक मर्म समझ जायगा—जब कोई माई का लाल सन्त रामदास की तरह,इस दीवाली के वज्र को हाथ में लेकर भारत में नवीन आत्मा का सञ्चार कर देगा। हमारी आज की दीवाली निर्जीव है सही—परन्तु इस निर्जीव हड्डियों के ढेर में दधीची ऋषि के कंकाल के समान वज्र की दैवीय शक्ति सन्निहित है। यह कठोर वज्र, भारत का कोई शत्रु सहन न कर सकेगा। वह समय आने पर इस देश के निवासी सहसा जाग कर यह अनुभव करने लगेंगे कि हम आज भी वही हैं, जो आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व थे!

इस दीवाली में भारतवर्ष के गौरवमय इतिहास का निचोड़ जीवित रूप में विद्यमान है। भारतवासी जिस दिन इस अमृत को पीकर प्राचीन और नवीन को एक ही समझने लगेंगे—उसी दिन सच्ची दीवाली मनाई जा सकेगी। उस दिन संसार की कोई शक्ति लक्ष्मी माता को भारत में आने से रोक नहीं सकेगी।

२. औपनिवेशिक स्वराज्य बनाम पूर्ण स्वतन्त्रता

नेहरू कमेटी की रिपोर्ट के सर्व-दल-सम्मेलन द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद से इस देश में औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वतन्त्रता के नाम पर खासी बहस उठ खड़ी हुई है। पिछले वर्ष मद्रास कांग्रेस ने 'जातीय महासभा का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना है' यह घोषणा की थी। उस समय भी इस प्रश्न पर पर्याप्त विवाद हुआ था। अब सर्व-दल-सम्मेलन ने अपना ध्येय भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना स्वीकार किया है। इस सम्मेलन में कांग्रेस के प्रतिनिधि भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित थे। इस सम्मेलन के प्रधान जातीय महासभा के भी प्रधान हैं, उन्होंने ही यह सम्मेलन आमन्त्रित किया था। अतः यह स्वभाविक था कि कांग्रेस का वह भाग, जो पूर्ण स्वतन्त्रता का पोषक है, इस ध्येय के विरुद्ध आवाज़ उठाता। ऐसा ही हुआ भी है। सर्व-दल-सम्मेलन के निर्णय की प्रतिक्रिया के रूप में पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाशचन्द्र वसु और श्रीयुत् श्री निवास ऐयङ्गर आदि ने कांग्रेस के अन्दर 'स्वाधीन-भारत-संघ' की स्थापना की है। पिछले दिनों इस संघ का बाकायदा संगठन भी कर लिया गया है। श्री निवास ऐयङ्गर महोदय ही इस संघ के प्रधान निर्वाचित हुए हैं। इन्हीं सब अवस्थाओं से देश में आजकल भारत के ध्येय के विषय में खासा विवाद उठ खड़ा हुआ है।

औपनिवेशिक स्वराज्य में भारतवर्ष की स्थिति क्या होगी—इस प्रश्न पर नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अन्त में कमेटी के सदस्य इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि औपनिवेशिक स्वराज्य में भारतवर्ष अंग्रेज़ी साम्राज्य का अंग बन कर तो रहेगा, परन्तु साम्राज्य का यह अंगीभाव भारतवर्ष की अपनी इच्छा पर ही आश्रित होगा। साम्राज्य की संघशक्ति के द्वारा भारतवर्ष को लाभ ही होगा, हानि नहीं। परन्तु कांग्रेस का बहुमत कमेटी की इस राय से सहमत नहीं है। यहां तक कि

स्वयं माननीय पं० मोतीलाल नेहरू भी व्यक्ति रूप से पूर्ण स्वतन्त्रता के पोषक हैं, उन्होंने अन्य राजनीतिक दलों के साथ समझौते के तौर पर औपनिवेशिक स्वराज्य को सर्व-दल-सम्मेलन का ध्येय बनाना स्वीकार कर लिया है । कांग्रेस का बहुमत पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। आज भी कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही है।

हमारी सम्मति में वर्तमान समय की अवस्थाओं में इस प्रश्न पर गम्भीर विवाद छेड़ कर आपस में फटाव उत्पन्न कर लेना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं है। जब अवसर निकट आवेगा, तब स्वयं ही इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय हो जायगा। यदि स्वराज्य-प्राप्ति के साधनों पर कुछ मतभेद खड़ा होता, तो यह एक समझ आने लायक बात थी, परन्तु केवल ध्येय के प्रश्न पर ही आपस में लड़ कर भेद-भाव पैदा कर लेना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता। देश के अन्य सब राजनीतिक दल जिस ध्येय तक पहुँचने में काँग्रेस का साथ देने के लिये तैयार हैं, वहाँ तक जाने में उन्हें साथ ले लेने से देश का ही कल्याण है। इस गम्भीर प्रश्न का अन्तिम निर्णय आज ही कर लेने से क्या लाभ है? औपनिवेशिक स्वराज्य वालों को अपने साथ मिला लेने से अभी तक तो कुछ नहीं छिनता। जिस दिन उन्हें साथ रखने से पूरी स्वाधीनता छिनने की नौबत आ जायगी उस दिन औपनिवेशिक स्वराज्यवादी स्वयं भी पूर्ण स्वाधीनतावादी बन जायँगे। इस सम्बन्ध में विचार करना कुछ बुरा नहीं है, परन्तु केवल इसी कारण आपस में वैमनस्य या अनेकता के भाव ले आना कभी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।

× × ×

३. स्वाधीन-भारत-संघ

देश के दो यशस्वी नवयुवक नेताओं के उद्योग से हाल ही में स्वाधीन-भारत-सङ्घ की स्थापना हुई है। यह सङ्घ काँग्रेस का हिस्सा बनकर रहेगा, अर्थात् इसका सदस्य बनने के लिये काँग्रेस का सदस्य बनना भी आवश्यक होगा। सङ्घ का मासिक चन्दा प्रत्येक सदस्य की मासिक आय का शतांश होगा। इस सङ्घ का सङ्गठन आर्यसमाज के सङ्गठन के ढंग पर ही किया गया है। सङ्घ के सदस्यों के लिये एक आवश्यक शर्त यह भी है कि वे सम्प्रदायवादी न हों। किसी सम्प्रदाय या धर्म के नाम पर किसी भी क्षेत्र में कोई विशेष अधिकार माँगना—यह सम्प्रदायवाद की व्याख्या की गई है। हम इस स्वाधीन-भारत-सङ्घ का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि देश के नवयुवक पूरी तरह इस सङ्घ के साथ हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने काँग्रेस में जो यह नई भावना सम्मिलित की है, वह एक दिन खूब फूले फलेगी।

यह स्वाधीन-भारत-सङ्घ इस देश के लिये एक बिल्कुल नवीन ढंग की संस्था है, इसलिये यह आवश्यक है कि इस सङ्घ का सञ्चालन अत्यधिक सावधानता के साथ किया जाय। दिल्ली की अखिल-भारतीय-काँग्रेस-कमेटी के बाद पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतराय ने अपने जो संस्मरण लिखे हैं, उनमें पूर्ण स्वाधीनतावादियों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। लालाजी का कथन है कि पं० जवाहरलाल नेहरू और सुभाश बाबू के अतिरिक्त स्वाधीन-भारत-सङ्घ के अन्य अधिकाँश कार्यकर्ता इस सङ्घ में बहुत प्रकार की ऊँची-नीची भावनाएँ लेकर ही सम्मिलित हुए हैं। यदि लालाजी की यह बात सही है तो हमें भय है कि

यह उपयोगी संस्था कहीं उचित विकास से वञ्चित न रह जाय। आशा है कि नवयुवकों के कप्तान पं० जवाहरलाल और सुभाश बाबू इस ओर पूरा ध्यान देंगे। क्या हम यह आशा करें कि कलकत्ता कांग्रेस तक इस सङ्घ के सन्मुख कोई रचनात्मक ठोस कार्य भी प्रस्तुत कर दिया जायगा।

× × ×

४. नेताओं पर प्रहार

बहुत दिनों के बाद पञ्जाब से एक ऐसी ख़बर आई है जिसे सुनकर हम फड़क उठे। वीर पञ्जाब, डायर की गोलियों और ओडवायर के अत्याचारों से प्रताड़ित पञ्जाब, आज भी मर नहीं गया है। उसमें राष्ट्रीयता बाकी है। साइमन सप्तक के पहलवानों का काले झण्डों से स्वागत करने के लिये पञ्जाब का हृदय लाहौर स्टेशन पर पहुँचा। इस हृदय का प्रतिनिधित्व लाहौर के हज़ारों निवासी कर रहे थे। साथ में था पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय। अन्य हिन्दू-मुसलमान नेता भी साथ थे। पूज्य मालवीय जी, पञ्जाब के अतिथि होते हुए भी, इस जलूस का नेतृत्व कर रहे थे। यूं तो भारतवर्ष की पोलीस ही मदान्ध है, परन्तु ख़ासकर पञ्जाब की पोलीस तो सचमुच नादिरशाह की फ़ौज है। उन्हें अवसर मिले तो सारा प्रान्त लूट खावें। जलूस शान्त था, फिर भी पोलीस ने उस पर डण्डे बरसाये। पञ्जाब के बूढ़े शेर पर ताक-ताक कर पोलीस का एक उज्जड्ड गोरा निशाने लगा रहा था। उसके अन्य सहयोगियों ने ये प्रहार अपने पर लेने के प्रयत्न भी किये, तथापि वह शेर ज़ख्मी होने से न बच सका। पञ्जाब केसरी पूरे धैर्य और गम्भीरता के साथ उन प्रहारों को सहता रहा,—यदि वह चाहता तो उसके इशारे मात्र से ही लोग उस नरपिशाच गोरे के वहीं टुकड़े टुकड़े कर देते; परन्तु उसने वैसा नहीं किया। उसकी अहिंसात्मक प्रतिज्ञा ने उसे वैसा नहीं करने दिया। उसने स्वयं मार खाते हुए भी जनता को भड़कने से रोका। उस दिन सचमुच उसने अपने नेतृत्व के प्रभाव का पूरा परीक्षण किया।

हम उस बूढ़े पञ्जाब केसरी के लिये क्या शब्द कहें? जिस समय आज के अधिकाँश नेता स्कूलों के 'शरारती' विद्यार्थी थे, उन दिनों भारतवर्ष के राजनीतिक आकाश में तीन सितारे चमका करते थे। उन तीन में से आज एक का स्वर्गवास हो चुका है, दूसरा समय के फेर से इस क्षेत्र से बहुत दूर जा पड़ा है; परन्तु उस ज़माने का एक सितारा आज और भी अधिक ज्योति के साथ प्रकाशमान हो रहा है। लोकमान्य का स्वर्गवास हो गया, पाल बाबू किसी और दिशा में फिसल गए, परन्तु यह पञ्जाब केसरी आज भी उतने ही उत्साह के साथ भारतवर्ष के नवयुवकों के लिये प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर रहा है।

लाहौर में उस दिन जनता के नेताओं की सच्ची परीक्षा होगई। एक तरफ़ थे हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक हितों के ठेकेदार नेता कहलाये जाने वाले लोग, जो सरकार की जूतियां चाटने में ही देशहित समझते हैं; दूसरी तरफ थे, राष्ट्रीय पञ्जाब के पूज्य और अनुभवी अभिभावक, जो पैदल थे, निहत्थे थे, परन्तु दृढ़ थे। एक श्रेणी के नेता मोटरों पर उड़ते हुए प्लेट फार्म पर पहुंचे, पुलिस के दस्तों ने उन्हें झुक कर सलाम किया, वे अपने चमकीले जूते खटखटाते हुए देश के शत्रु का स्वागत करने के लिये जा खड़े हुए। कमीशन आया, ये लोग बड़े अदब के साथ उन की आर्दल में बैठ कर पञ्जाब सरकार के महलों

की ओर चल दिये। दूसरी श्रेणी के नेता पैदल ही जूतियां घिसते हुए स्टेशन की तरफ आए। पोलीस ने कांटेदार तारें लगा कर उन के स्वागत का प्रबन्ध पहिले ही कर रक्खा था। वहाँ आम सड़क पर खुले मैदान में खड़े रह कर ये लोग काफ़ी समय तक जनता को नियन्त्रण में रखते रहे— इस पर भी पुलीस ने डण्डे बरसा कर इन वीरों की अभ्यर्थना की। हम जानते हैं, इन वीरों में इस योग्यता के व्यक्ति भी थे, जो कि यदि आज भारत स्वाधीन होता तो भारतीय राष्ट्र के राष्ट्रपति पद को भी सम्मानित कर चुके होते। परन्तु देश के दुर्भाग्य से आज वह स्थिति नहीं है। उपर्युक्त दोनों श्रेणियों में से जनता का वास्तविक हितैषी कौन है— स प्रश्न का निर्णय, आशा है कि पञ्जाबी जनता ब सुगमता के साथ कर सकेगी।

५. स्वराज्य पार्टी का भविष्य

व्यवस्थापिका सभाओं तथा ऐसेम्बली के नवीन निर्वाचन का समय अब निकट आ रहा है। आगामी वर्ष के अक्तूबर मास में नया निर्वाचन प्रारम्भ हो जायगा। देश में, आगामी निर्वाचन के सम्बन्ध में, थोड़ी बहुत चहल पहल अभी से प्रारम्भ हो गई है। भारतवर्ष का राजनीतिक जीवन पिछले तीन वर्षों में अत्यधिक परिवर्तित हुआ है। वर्तमान व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचन जिस दलबन्दी के आधार पर हुआ था, उस दलबन्दी की आज बुनियाद ही हिल गई है। पिछले निर्वाचन में लाला लाजपतराय तथा मालवीय जी के उद्योग से स्वतन्त्र-कांग्रेस-दल के नाम से एक नये दल का निर्माण हुआ था। उन दिनों स्वराज्य पार्टी के नेता पं० मोतीलाल नेहरू और इस नई पार्टी के नेता लाला लाजपतराय में अनेक गम्भीर मत भेद थे, परन्तु आज वह अवस्था नहीं रही। दोनों दलों के सिद्धान्तों में भी अब कोई वास्तविक भेद नहीं रहा। पिछ
निर्वाचन में इस नये ढंग की दलबन्दी का पञ्
और युक्तप्रान्त के निर्वाचन पर बहुत बड़ा प्रभ
पड़ा था। इसी दलबन्दी के कारण ही, स्वराज्य पा
को पञ्जाब तथा यू० पी० की व्यवस्थापिका सभा
में बहुत स्थानों पर पराजय हाथ लगी थी। ऐ
म्बली के निर्वाचन में भी स्वराज्य पार्टी के बहु
से उमेदवार नहीं चुने जा सके थे। यहां तक
परिडत मोतीलाल जी के अपने प्रान्त में ही श्र
रंग ऐयर को छोड कर स्वराज्यदलका अ
कोई गैर मुसलिम उमेदवार सफल नहीं हो स
था। परन्तु अब परिस्थितियों के प्रभाव से इन दो
दलों के मतभेद प्रायः दूर हो गए हैं। पिछ
दिनों भी दोनों दल प्रायः मिल कर ही कार्य क
रहे हैं। अब आशा की जाती है कि आगामी निर्वा
चन में ये दोनों दल परस्पर सहयोग से ही का
करेंगे।

दूसरी ओर स्वराज्य दल की आन्तरि
परिस्थितियों में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आग
है। युक्तप्रान्त के कमायूं विभाग से बड़ी व्यवस्
पिका सभा में निर्वाचित श्री रंग ऐयर ने खु
खुला अपने नेता के बखिलाफ़ विद्रोह का झ
खड़ा कर दिया है। वह महाशय तो अपने
पर अभियोग चलाने तक का विचार कर रहे
मद्रास के एम० के० आचार्य महोदय पह
स्वराज्य दल से पृथक् हो चुके हैं। इधर जा
महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा स्वराज्य
के उपनेता और मद्रास प्रान्त के सर्व मान्य
श्रीयुत श्रीनिवास ऐयङ्गर महोदय भी अपने
से कुछ विद्रोह करते हुए प्रतीत होते
लाला लाजपतराय ने तो खुले शब्दों में उ
यह दोषारोप किया है कि मि० ऐयङ्गर पं०
लाल जी की बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्या करते

ोषारोप चाहे पूर्ण रूप से सत्य न भी हो, परन्तु तना तो भली प्रकार स्पष्ट है कि स्वराज्य दल के उपनेता महोदय अपने नेता से कम से कम पूर्ण सहयोग की नीति नहीं बरत रहे हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वराज्यदल के अधिकांश मद्रासी सदस्य अपने दल की नीति तथा नेता से सन्तुष्ट नहीं हैं। हमें श्रीनिवास ऐयङ्गर की देशभक्ति तथा बुद्धिमत्ता पर पूर्ण विश्वास है, अतः हमें आशा है कि वह इस आपत्ति के समय फूट के बीज नहीं बोयेंगे। यदि वे स्वराज्य दल से पृथक् भी होगये तो कम से कम उनका दल देशद्रोही कदापि सिद्ध न होगा। पिछले निर्वाचन से पूर्व स्वराज्य दल के तत्कालीन उपनेता लाला लाजपतराय ने अपने दल से विद्रोह कर दिया था, इस निर्वाचन से पूर्व भी यदि स्वराज्य दल के उपनेता महाशय अपने दल से विद्रोह कर देंगे तो यह एक आश्चर्य की घटना ही होगी।

नये निर्वाचन में स्वराज्यदल का भविष्य क्या होगा, इस पर अभी से कुछ भविष्य-वाणी कर सकना केवल साहस का कार्य होगा। हमारा विचार है कि इस सम्बन्ध में कलकत्ता कांग्रेस के बाद ही कुछ निश्चित भविष्यवाणी की जा सकेगी। यदि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट को भारतवर्ष के नेताओं का बहुमत स्वीकार कर लेगा, और मुसलमानों के अधिकांश नेता भी उसका साथ देंगे, तब तो यह निश्चित समझना चाहिये कि आगामी निर्वाचन में स्वराज्यदल को आशातीत विजय प्राप्त होगी। परन्तु स्वयं नेहरू रिपोर्ट का भविष्य भी अभी तक कुछ निश्चित नहीं है।

६. साम्प्रदायिक गवाहियां

साइमन सप्तक का साहस सचमुच सराहनीय है। ये लोग अपना काम इस ढंग से किये चले जाते हैं कि मानो इन्हें देश भर का पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा है। गोल के बाद गोल होते जाने पर भी जो खिलाड़ी हिम्मत न हारे वही तो सच्चा खिलाड़ी है। साइमन टीम के सन्मुख जितनी थोड़ी बहुत गवाहियां दी जाती हैं, इनको वह इस प्रकार सुनती है कि मानों देश भर के प्रतिनिधि चुन चुन कर उन के पास लाये जा रहे हैं। मालूम नहीं कि यह धोखा भारतवासियों को दिया जा रहा है, अथवा बृटिश पार्लियामैण्ट को या स्वयं अपने आप को।

पिछले दिनों लाहौर में कमीशन के सन्मुख जो गवाहियां हुईं, वे सचमुच बड़ी मज़ेदार हैं। वहां हिन्दु मुसलमान तथा सिक्ख—तीनों पंजाबी सम्प्रदायों के गैरराष्ट्रीय नेता डेपूटेशन बना कर कमीशन के सन्मुख तशरीफ़ ले गये। इन गवाहियों को पढ़ते हुए सचमुच नाटक का सा मज़ा आता है। हिन्दू कहते थे, जब तक सम्मिलित निर्वाचन न शुरू किया जाय तब तक हम नये सुधार नहीं चाहते। मुसलमानों का कथन था कि यदि पृथक् निर्वाचन प्रारम्भ करना हो तो उस के बदले में वर्तमान सुधार भी वापिस ले लो। सिक्खों की मांग थी कि यदि हमें ३० प्रतिशतक स्थान नहीं दिये जाते और निर्वाचन के ढंग में सुधार नहीं करना तो ये सुधार हमारे लिये किसी काम के नहीं हैं। ये सब स्थापनाएं परस्पर कितनी प्रतिकूल हैं। हमारी सम्मति में इन गवाहियों के आधार पर तो केवल एक बात ही की जा सकती है। पंजाब के इन तीनों 'जी हज़ूर' डेपूटेशनों की मांगें परस्पर बिल्कुल विरोधिनी हैं। यदि इन हिन्दू कहलाये जाने वाले लोगों की माँग पूरी की जाय तो मुसलमान सुधार लौटा लेने की प्रार्थना करेंगे और यदि मुसलमानों की मांग स्वीकार कर ली जाय तो शेष दोनों सम्प्रदाय मचल उठेंगे। अतः इनमें

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

से तो एक भी मांग स्वीकार करना सम्भव न होगा। हां, एक बात ऐसी भी है जिस से शायद इन तीनों डेपूटेशनों को कम से कम विरोध न होगा। वह यह कि वर्तमान सुधार भी पूरी तरह लौटा लिये जांय।

कितनी हास्यास्पद और लज्जाजनक बात है। ये लोग एक देश के होते हुए भी विदेशियों के सम्मुख एक दूसरे की चुगली करने में अपना कल्याण समझ रहे हैं। मनुष्यता का, आत्म गौरव का, इससे बढ़ कर क्या ह्रास हो सकता है।

७. आर्य कांग्रेस

सार्वदेशिक सभा ने इस वर्ष भी पुनः आर्य कांग्रेस करने का प्रस्ताव स्वीकार किया है। सम्भवतः आर्यकांग्रेस का यह अधिवेशन दिसम्बर के प्रारम्भ में करने का विचार था, परन्तु अभी तक कांग्रेस किस नगर में की जाय, यह भी निश्चित नहीं हो पाया है। हमारी सम्मति में इस वर्ष आर्य कांग्रेस करने की कुछ वैसी आवश्यकता भी न थी। पिछले वर्ष की आर्य कांग्रेस में यही निश्चय किया गया था कि आवश्यकता पड़ने पर सार्वदेशिक सभा इस नवीन संस्था की बैठक करवाती रहेगी। परन्तु अब प्रतीत होता है कि इस सम्मेलन को वार्षिक सम्मेलन कर देने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारी सम्मति में यह परिवर्तन आर्यसमाज के लिये हितकर सिद्ध न होगा। पिछले वर्ष आर्यकांग्रेस ने जो कार्यक्रम स्वीकार किया था, वह अभी तक पूरा नहीं किया जा सका, इस अवस्था में कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हमारा विचार है कि बिना आवश्यकता के आर्यकांग्रेस को आहूत करने से आर्य समाज के धन और समय की कुछ न कुछ हानि होने की सम्भावना ही है। क्या हम आशा करें कि सार्वदेशिक सभा के मान्य अधिकारी इस सम्बन्ध में पुनः विचार करने की कृपा करेंगे।

110488

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशिये की दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैण्ड अमरीका इत्यादि देशो में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे विना किसी की खुशामद के बनालो अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	=)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुत [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका की ऊनी जर्ज़ी [दुरंगा]	≡)	पुरुषों का नुन्दकीदार मौज़ा [सचि].	=॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।=)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद— यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोड देहरादून।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"ट्रब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूनों की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ······पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये   मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

~~H0468~~

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१—२२ देहरदून

चौधरी हुलासराय प्रिन्टर तथा पं० [illegible] पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित ।

10
२०।४।९५

Compiled
1999-2000

376
420-424
429-430

1927 46-
358
374-383
393-398

[illegible] (८)